श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवत महापुराण

बाल बोधिनी भाषा टीका सहित

दूसरा खंड

(आठवें स्कंध से बारहवें स्कन्ध तक)

टीकाकार—

पं० गोविन्ददास "विनोद"

काव्य-कला भूषण, कुशल अभिनयाचार्य, साहित्य-भूषण, नाट्य-मनीषी

(दीनबन्धु-ताल बेहट झाँसी)

जिसको—

लाला श्यामलाल हीरालाल ने

निज श्यामकाशी प्रेस, मथुरा में

छापकर प्रकाशित किया।

प्रथम बार] [मूल्य दूसरा खण्ड ४)

सर्वाधिकार प्रकाशक के आधीन हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मेहरचंद लक्ष्मणदास
संस्कृत हिन्दी पुस्तकालय
जैन स्ट्रीट, संद मिट्ठा, लाहौर.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

* श्रीराधाकृष्णाभ्यांनमः *

श्रीमद्भागवत-महापुराण

बाल बोधिनी भाषा टीका सहित

दूसरा खण्ड

(आठवें स्कन्ध से बारहवें स्कन्ध तक)

टीकाकार—

श्री पं० गोविन्ददास "विनीत"

काव्य-कला भूषण, कुशल-कवि, अभिनयाचार्य, साहित्य-भूषण, काव्य-मनीषी

(दीनकुटीर-तालबेहट झाँसी)

मेहरचंद लक्ष्मणदास

जिसको संस्कृत हिन्दी पुस्तकालय

न्यू स्ट्रीट, संद मिठा, लाहौर

लाला श्यामलाल हीरालाल न

निज श्यामकाशी प्रेस मथुरा में

छापकर प्रकाशित किया।

प्रथम बार] [मूल्य द्वितीयखण्ड ४)

सर्वाधिकार प्रकाशक के आधीन है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

* श्रीगणेशायनमः *

विषयानुक्रमणिका ।

अध्याय	विषय	पृष्ठ
	आठवां स्कन्ध	
१	चार मनुओं का वर्णन	१
२	ग्राह से पीड़ित गजेन्द्र द्वारा भगवान् की स्तुति	४
३	गजेन्द्र-मोक्ष	६
४	ग्राह का गन्धर्व देह पाना तथा गजेंद्र को पार्षद रूप मिलना	१०
५	पाँचवें और छठे मनु का वर्णन तथा देवकृत भगवान् की स्तुति	१२
६	देवासुरों द्वारा अमृतके लिये उद्योग	१६
७	शिवजी द्वारा विष-पान	१९
८	मोहनी अवतार	२३
९	देवताओं का अमृत-पान	२७
१०	देवासुर-संग्राम	३०
११	शुक्राचार्य द्वारा दैत्योंका जीवित होना	३४
१२	मोहिनी-रूप देखकर शिवजी का मोहित होना	३७
१३	सातवें मनु से छः प्रकार के मन्वंतरों का वर्णन	४२
१४	मनु आदिके कार्य का अलग २ वर्णन	४४
१५	बलिका यज्ञ द्वारा स्वर्ग जीतना	४५
१६	कश्यपजी द्वारा अदिति को पयोव्रत का उपदेश	४८
१७	श्री वामनावतार	५२
१८	श्रीवामनजी का बलि के यहाँ जाना	५५
१९	बलिकी तीन डग पृथ्वी देने के लिये स्वीकृति और शुक्राचार्य का रोकना	५८
२०	वामनजी का त्रिविक्रम स्वरूप	६०
२१	बलि-बन्धन	६५
२२	बलिको सुतल लोक की प्राप्ति	६७
२३	बलिका सुतल लोक को प्रस्थान	७१
२४	मत्स्यावतार	७३
	नवां स्कन्ध	
१	सुद्युम्न का स्त्रीत्व	७९
२	मनुके करूष आदि ५ पुत्रों की कथा	८२
३	सुकन्या तथा रैवतका आख्यान	८५
४	नाभाग और अंबरीष की कथा	८७
५	दुर्वासा मुनिका कष्ट से छूटना	९३
६	अंबरीष तथा इक्ष्वाकुवंश और सौभरि ऋषि का चरित्र	९६

अध्याय	विषय	पृष्ठ
७	पुरुकुत्स व हरिश्चन्द्रकी कथा	१००
८	रोहित-वंश तथा सगरके पुत्रोंकी कथा	१०२
९	राजा खट्वांग तक अंशुमान का वंश	१०५
१०	श्रीराम-चरित्	१०९
११	श्री रामाश्वमेध	११४
१२	कुश-वंश तथा शशाद-वंश का अन्त	११६
१३	राजा निमि का वंश	११८
१४	बुधकी उत्पत्ति, पुरूरवा की कथा	१२०
१५	परशुरामजी द्वारा सहस्रार्जुन-बध	१२३
१६	जमदग्निके बध होने पर परशुरामजी द्वारा क्षत्रियों का बध	१२७
१७	आयु के पाँच पुत्रोंका वर्णन	१२९
१८	ययाति को उसके छोटे पुत्र द्वारा युवावस्था मिलना	१३१
१९	ययाति का विरक्त होना	१३५
२०	दुष्यन्त और भरत की कथा	१३७
२१	भरत वंशी अजमीढ़ आदि राजाओं का वर्णन	१४०
२२	दिवोदास का वंश तथा ऋक्ष वंश में जरासंध, पार्थ-दुर्योधनआदिका जन्म	१४३
२३	अनु आदि का वर्णन और ज्यामघ तक यदुवंश का वर्णन	१४६
२४	विदर्भके तीन पुत्रों की उत्पत्ति और श्रीराम-कृष्णतक अनेक वंश वर्णन	१४९
	दशवां स्कन्ध पूर्वार्द्ध	
१	देवकीके छः पुत्रोंका कंस द्वारा बध	१५५
२	देवकीके गर्भगत भगवान्की स्तुति	१६१
३	भगवान् का गोकुल-गमन	१६५
४	कंस के द्वारा व्रजके नवजात बालकों का बध	१७०
५	नन्द-वसुदेव मिलन	१७४
६	मरी हुई पूतना को देखकर नन्दजी का विस्मित होना	१७७
७	शकट-ली०, तृणावर्त-बध औरविश्व-दर्शन	१८१
८	श्रीकृष्ण नाम-करण तथा मिट्टी खाते हुए मुखमें यशोदाको विश्व-दर्शनहोना	१८४
९	श्रीकृष्ण का रज्जु-बन्धन	१८९
१०	यमलार्जुन-मोक्ष	१९१
११	वत्सासुर तथा बकासुर का बध	१९५
१२	अघासुर-बध	२००

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१२	ब्रह्माजी द्वारा वत्स तथा गोप-हरण	२०४
१४	ब्रह्माजी द्वारा श्रीकृष्ण-स्तुति	२१०
१५	धेनुकासुर-वध तथा कालिय के विष से ग्वालों की रक्षा	२१६
१६	कालिय-दमन	२२१
१७	कालिय-निर्वासन तथा दावाग्नि से बन्धुओं की रक्षा	२२७
१८	प्रलम्ब-वध	२२६
१६	मुञ्ज-वनकी अग्निसे गोपादि की रक्षा	२३१
२०	वर्षाऋतु की लीला	२३३
२१	गोपियों कृत वेणु-गीत	२३७
२२	कात्यायनी व्रत तथा चीर-हरण	२४०
२३	ब्राह्मण-पत्नियोंपर श्रीकृष्णका अनुग्रह	२४३
२४	गोवर्द्धन-यज्ञ	२४७
२५	गोवर्द्धन-धारण	२५०
२६	श्रीनन्दजी का गर्गजी द्वारा कहाहुआ श्रीकृष्ण का प्रभाव कह कर गोपों का भ्रम मिटाना	२५३
२७	सुरभी तथा इन्द्र द्वारा श्रीकृष्ण का अभिषेक	२५५
२८	श्रीकृष्ण का वरुण-गृह से नन्दजी को छुड़ाना और गोपों को वैकुण्ठ के दर्शन कराना	२५७
२६	रास-क्रीड़ा	२५६
३०	विरहणी गोपियोंका श्रीकृष्णको ढूंढना	२६३
३१	गोपी-गीत	२६७
३२	श्रीकृष्णका पुनः प्रकट होना	२६६
३३	श्रीकृष्णजी द्वारा जल व स्थल की क्रीड़ा होना	२७१
३४	अजगर से नन्दजी को छुड़ाना और शंखचूड़-बध	२७५
३५	युगुल-गीत	२७८
३६	अरिष्टासुर-वध तथा अक्रूर को कंस द्वारा श्रीराम-कृष्णको लानेकी आज्ञा	२८०
३७	केशी-वध, नारद-कृत स्तुति और व्योमासुर-वध	२८३
३८	अक्रूरजी का गोकुल में आना	२८६
३६	श्रीकृष्णका मथुरा-गमन, गोपी-विलाप और अक्रूरजीको वैकुंठ-दर्शन होना	२६०
४०	अक्रूर द्वारा श्रीकृष्ण स्तुति	२६५
४१	मथुरा में धोबी-बध, सुदामा माली तथा दर्ज़ी को वरदान	२६७
४२	कुब्जापर अनुग्रह, धनुर्भंग पहरेदारों का बध, कंस के अरिष्ट तथा रंग का उत्सव	०२
४३	कुबलयापीड़ हाथी का बध चाणूर से बात-चीत	३०४
४४	कंस-बध तथा माता-पितासे मिलना	३०८
४५	नन्द-विदाई, उग्रसेनका राज्य-तिलक गुरुके यहाँ विद्या पढ़कर लौटना	३१२
४६	उद्धवजीको व्रजमें पहुंचाना	३१६
४७	उद्धवजी का गोपियों को समझा कर मथुरा लौटना	३२०
४७	कुब्जा-गृह-गमन और अक्रूरजी का हस्तिनापुर पहुंचाना	३२६
४६	अक्रूरजी का हस्तिनापुर से संदेश लेकर लौटना	३२६

दसवां स्कन्ध उत्तरार्द्ध

५०	द्वारका का बसाना	३३२
५१	कालयवन-बध	३३७
२	द्वारका-गमन	३४२
५३	रुक्मिणी-हरण	३४६
५४	रुक्मिणीजीका पाणिग्रहण करना	३५१
५५	प्रद्युम्न-जन्म तथा शंबरासुर-बध	३५१
५६	जांबवती व सत्यभामा का विवाह	३५८
५७	अक्रूरजी से मणि मँगवाना	३६२
५८	कालिन्दी, सत्या, भद्रा, मित्रविन्दा और लक्ष्मणा का विवाह	३६५
५६	भौमासुर-बध, पारिजात का स्वर्ग से लाना	३७०
६०	श्रीकृष्ण-रुक्मिणी विनोदका वर्णन	७४
६१	श्रीकृष्ण-सन्तान तथा रुक्म-बध वर्णन	३८०
६२	उषा से रमण करते हुए अनिरुद्ध का वाणासुर द्वारा क़ैद होना	३८३
६३	वाणासुर-यादव-संग्राम	३८६
६४	नृग-मोक्ष	३६०
६५	बलरामजी द्वारा यमुनाकर्षण	३६४
६६	पौंड्रक तथा उसके पुत्र और मित्रका बध	३६७
६७	द्विविद बध	४००
६८	बलरामजी द्वारा हस्तिनापुराकर्षण	४०२
६६	श्रीकृष्ण की गार्हस्थ लीला देखकर नारदजी का चकित होना	४०६
७०	श्रीकृष्ण का राजसूय यज्ञमें जाने का विचार	४१०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अध्याय	विषय	पृष्ठ
७१	भगवान्का इन्द्रप्रस्थ जाना	४१४
७२	जरासंध-बध	४१८
७३	जरासंधके बंदी राजाओं की मुक्ति	४२२
७४	शिशुपाल-बध	४२५
७५	अवभृथ स्नानोत्सव तथा दुर्योधन का मान भंग	४२६
७६	शाल्व-युद्धमें प्रद्युम्न का युद्ध से जाना	४३२
७७	शाल्व-बध	४३४
७८	दन्तवक्र,विदूरथ व रोमहर्षण-बध	४३७
७९	बल्वल-बध तथा बलरामजी की तीर्थ-यात्रा	४४०
८०	सुदामा तथा भगवान् की भेंट	४४३
८१	सुदामाको संपदा प्रदान करना	४४६
८२	श्रीकृष्ण का कुरुक्षेत्र-गमन	४५०
८३	श्रीकृष्ण की रानियों द्वारा अपने २ ब्याह का वर्णन	४५४
८४	वसुदेवकृत यज्ञ महोत्सव	४५८
८५	श्रीकृष्ण द्वारा देवकीके मृतक पुत्रोंका फिरसे आना तथा वसुदेवजीको उपदेश	४६४
८६	सुभद्रा-हरण तथा श्रीकृष्ण द्वारा श्रुत देव तथा विदेह को आनन्द मिलना	४६९
८७	देव-स्तुति	४७४
८८	विष्णु-भक्तको मोक्ष तथा अन्य देवताओंके भक्तोंको ऐश्वर्य प्राप्त होनेका वर्णन	४८२
८९	भृगु द्वारा श्रीविष्णुकी सब देवताओं से श्रेष्ठता निश्चित करना	४८५
९०	श्रीकृष्णकी संक्षेप लीला तथा यादवों की असंख्यता का वर्णन	४९१

ग्यारहवां स्कन्ध

१	यदुकुल को शाप होना	४९६
२	नारदजी तथा वसुदेवजी का संवाद	४९८
३	माया, माया से मुक्ति का उपाय, ब्रह्म और कर्म-इन प्रश्नोंका उत्तर	५०३
४	अवतार-लीला के प्रश्नका उत्तर	५०८
५	भक्तिहीन पुरुषोंकी गति तथा युग-युग की पूजा-विधि	५११
६	ब्रह्मादिकों द्वारा श्रीकृष्ण विनय	५१६
७	दत्तात्रेयजीके गुरुओं का वर्णन	५२१
८	,, ,, ,, ,,	५२७
९	,, ,, ,, ,,	५३१
१०	आत्माको संसारके कारण का वर्णन	५३४
११	बद्ध,मुक्त,साधु और भक्तिके लक्षण	५३८
१२	सत्संग-महिमा, कर्म तथा कर्म-त्याग की व्यवस्था	५४२
१३	गुण-मुक्ति-विधि व हंसका इतिहास	५४५
१४	भक्तिकी श्रेष्ठता व ध्यान योग वर्णन	५४९
१५	सिद्धियों का वर्णन	५५३
१६	भगवान्की विभूतियों का वर्णन	५५६
१७	ब्रह्मचर्य तथा वानप्रस्थ के धर्म	५५९
१८	वानप्रस्थ तथा सन्यासके अधिकारानुसार धर्म	५६४
१९	पूर्वोक्त ज्ञानादि का त्याग	५६८
२०	त्रियोग वर्णन	५७२
२१	द्रव्य-देश आदि का गुण-दोष	५७५
२२	तत्व-संख्या; अविरोध; प्रकृति-पुरुष विवेक, जन्म-मरण विधि वर्णन	५७९
२३	भिक्षुगति	५८५
२४	सांख्य उपदेश	५९०
२५	युगों की वृत्तियों का वर्णन	५९३
२६	सत्संग तथा कुसंग का परिणाम	५९६
२७	संक्षिप्त सांग पूजा वर्णन	५९९
२८	संक्षिप्त ज्ञान योग	६०४
२९	संक्षिप्त भक्ति योग	६०९
३०	यदुकुल संहार	६१३
३१	लीला संवरण	६१७

बारहवां स्कन्ध

१	जरासंध के वंशजों का वर्णन	६२१
२	कलियुग का भावी वर्णन	६२४
३	भगवान्को नमस्कार करना ही पाप दूर कर सकताहै-इसका वर्णन	६२७
४	चार प्रकारके प्रलय का वर्णन	६३१
५	परीक्षित को ब्रह्मोपदेश करना	६३५
६	परीक्षित-मोक्ष, जन्मेजय द्वारा सर्प सत्र तथा तीन वेदों का विस्तार	६३६
७	अथर्ववेदका विस्तार तथा पुराणों के विभाग और लक्षण	६४२
८	मार्कण्डेयजी का तप	६४४
९	मार्कंडेयको भगवानकी माया का दर्शन	६४८
१०	मार्कण्डेयजी को शिव-वरदान	६५१
११	पूजार्थ महा पुरुष का वर्णन और मासिक सूर्य-व्यूह का वर्णन	६५५
१२	भागवत के मुख्य-मुख्य विषयों की अनुक्रमणिका	६५८
१३	पुराणों की संख्या तथा श्रीमद्भागवत का दान तथा माहात्म्य	६६४

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

श्रीमद्भागवत

बाल बोधिनी भाषा टीका सहित ।

अष्टमस्कन्ध

पहिला अध्याय

(चार मनुओं का वर्णन)

राजोवाच

स्वायंभुवस्येह गुरो वंशोऽयं विस्तराच्छ्रुतः ।
यत्र विश्वसृजां सर्गो मन्वन्तरानुवर्णितः ॥ १ ॥

राजा बोले–हे गुरो ! अब मैं स्वायंभुव मनु का वंश तो विस्तार-पूर्वक सुन चुका हूँ कि जिसमें मरीचि आदि प्रजापतियों के पुत्र-पौत्रों की उत्पत्ति का वर्णनहै, अब दूसरे मनुओंका वर्णन करिये ॥१॥

यत्र यत्र हरेर्जन्म कर्माणि च महीयसः ।
गृणंति कवयो ब्रह्मंस्तानि नो वद शृण्वताम् ॥२॥

हे ब्रह्मन् ! जिस-जिस मन्वन्तरमें व्यापक भगवान् के जन्म और चरित्र कवि-जन गाया करते हैं, वे हमसे कहिये, मुझे सुनने की बड़ी लालसा है ॥

यस्मिन्मन्वंतरे ब्रह्मन् भगवान्विश्वभावनः ।
कृतवान्कुरुते कर्ता ह्यतीतेऽनागतेऽद्य वा ॥ ३ ॥

हे ब्रह्मन् ! जगत्पालक भगवान्ने जिस मंवंतर में जो किया हो, इस समय जो कुछ कर रहे हों, तथा अगले मन्वन्तर में वह जो कुछ करेंगे, सो सब मुझसे कहिये ॥ ३ ॥

श्रीशुक उवाच

मनवोऽस्मिन्व्यतीताः षट् कल्पे स्वायंभुवादयः ।
आद्यस्ते कथितो यत्र देवादीनां च संभवः ॥ ४ ॥

शुकदेवजी बोले–इस कल्प में स्वायंभुव मनु आदि छः मनु होचुके हैं, उनमें से पहले स्वायंभुव का मैं वर्णन कर चुका हूँ कि जिसमें देवता आदि की उत्पत्ति हुई है ॥ ४ ॥

आकूत्यां देवहूत्यां च दुहित्रोस्तस्य वै मनोः ।
धर्मज्ञानोपदेशार्थं भगवान्पुत्रतां गतः ॥ ५ ॥

स्वायंभुव मनु की आकूति और देवहूति नाम की दो कन्याओं से धर्म का उपदेश करने के लिये भगवान् के अवतार हुए हैं ॥ ५ ॥

कृतं पुरा भगवतः कपिलस्यानुवर्णितम् ।
आख्यास्ये भगवान्यज्ञो यच्चकार कुरुद्वह ॥ ६ ॥

हे राजन् ! उनमें से कपिल भगवान् का मैं पहले वर्णन कर चुका हूँ, अब यज्ञ भगवान् ने जो चरित् किया है सो भी सुनिये ॥ ६ ॥

विरक्तः कामभोगेषु शतरूपापतिः प्रभुः ।
विसृज्य राज्यं तपसे सभार्यो वनमाविशत् ॥७॥

जब शतरूपाके पति समर्थ स्वायंभुवमनु काम तथा भोग-विलाससे विरक्त होकर, राज्य छोड़कर स्त्री के साथ वनमें तपस्या के लिये गये ॥ ७ ॥

सुनंदायां वर्षशतं पदैकेन भुवं स्पृशन् ।
तप्यमानस्तपो घोरमिदमन्वाह भारत ॥ ८ ॥

तब हे राजन् ! वह वहाँ सुनंदा नदीके तट पर पैर से पृथ्वीपर खड़े रहकर घोर तपस्या करनेलगे तथा वे भरतवंशी इस प्रकार कहने लगे ॥ ८ ॥

मनुरुवाच

येन चेतयते विश्वं विश्वं चेतयते न यम् ।
यो जागर्ति शयानेऽस्मिन्नायं वेद वेद सः ॥ ९ ॥

मनु बोले–जिनके द्वारा यह संसार चेतन होताहै, पर जिनको जगत् चेतन नहीं कर सकता, क्योंकि वे स्वयं चैतन्य-रूप हैं, जो इस विश्व के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सोने पर भी जाग्रत रहते हैं, वह ईश्वर तो इसे जानते हैं पर यह संसार उन्हें नहीं जानता ॥९॥

आत्मावास्यमिदं विश्वं यत् किंचिज्जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् १०॥

इस लोकमें जो कुछभी है उसमें ईश्वरही व्यापक है, इसलिये जो कुछभी भगवान् देवें उसीसे अपना निर्वाह करो, पराये धनकी इच्छा न करो ॥ १० ॥

यं न पश्यति पश्यंतं चक्षुर्यस्य न रिष्यति ।
तं भूतनिलयं देवं सुपर्णमुपधावत ॥११॥

जो इस संसार को देखरहे हैं परन्तु उन्हें यह संसार नहीं देखता, जिनका ज्ञान अविनाशी है उन प्राणी मात्र के अन्तर्यामी असंग परमात्मा का भजन करो ॥ ११ ॥

न यस्याद्यंतौ मध्यं च स्वःपरो नांतरं बहिः।
विश्वस्यामूनि यद्यस्माद्विश्वं च तदृतं महत् ॥१२॥

जिसका आदि, अन्त तथा मध्य नहीं है, जिस के अपना-पराया नहीं है, भीतर-बाहर नहीं है, परन्तु उसके द्वारा संसार की यह सभी बातें होती हैं, यह जगत् जिसका स्वरूप है, वही सत्य तथा पूर्ण ब्रह्म है ॥ १२ ॥

स विश्वकायः पुरुहूत ईशः सत्यः स्वयंज्योति रजः पुराणः। धत्तेऽस्य जन्माद्यजयात्मशक्त्या तां विद्ययोदस्य निरीह आस्ते ॥१३॥

वह परब्रह्म सत्य, स्वयं प्रकाश, जन्म-रहित, ईश्वर, पुराण, अनन्त नाम युक्त और जगत् स्वरूप है, इसलिये वही अपनी माया-शक्ति द्वारा जगत्की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करता है और विद्या शक्ति के द्वारा माया से अलग रहकर स्वयं सदैव निर्विकार ही रहता है, एवं कर्म करके भी निष्क्रिय रहता है ॥ १३ ॥

अथाग्रे ऋषयः कर्माणीहंतेऽकर्महेतवे ।
ईहमानो हि पुरुषः प्रायोऽनीहां प्रपद्यते ॥१४॥

पूर्व कालमें ऋषि लोगभी कर्म-त्याग का उपाय किया करते थे, क्योंकि जो (कर्त्तव्य) कर्म किया करताहै वह निष्क्रिय होजाता है ॥ १४ ॥

ईहते भगवानीशो न हि तत्र विषज्जते ।
आत्मलाभेन पूर्णार्थो नावसीदंति येऽनु तम्॥१५॥

भगवान् ईश्वर सभी कर्म करतेहैं, परन्तु उनमें आसक्त नहीं होते, इसी प्रकार जो भगवान्के अनुसार चलनेवालेहैं वहभी कर्मोंमें आसक्त नहीं होते॥

तमीहमानं निरहंकृतं बुधं निराशिषं पूर्णमनन्य चोदितम् । नृन् शिक्षयंतं निजवर्त्मसंस्थितं प्रभुं प्रपद्येऽखिलधर्मभावनम् ॥१६॥

कर्म करते हुए भी अहङ्कार न करनेवाले,सर्वज्ञ निष्काम, परिपूर्ण, दूसरे की प्रेरणा से रहित,अपने आचरणों द्वारा मनुष्योंको शिक्षा देने वाले, मनुष्य अवतार के उचित मार्ग पर चलनेवाले, सब धर्मों के प्रवर्त्तक परमेश्वर की शरणको मैं प्राप्त हुआहूँ ॥

श्रीशुक उवाच

इति मंत्रोपनिषदं व्याहरंतं समाहितम् ।
दृष्ट्वाऽसुरा यातुधाना जग्धुमभ्यद्रवन्क्षुधा ॥१७॥

शुकदेवजी बोले-मनुजी इस प्रकार सावधानी पूर्वक उपनिषद के मन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे, उसी समय उन्हें देखकर दैत्य और यातुधान भूखे होकर खाने को दौड़े ॥ १७ ॥

तांस्तथावसितान्वीक्ष्य यज्ञः सर्वगतो हरिः ।
यामैः परिवृतो देवैर्हत्वाऽशासत्त्रिविष्टपम् ॥१८॥

उन यक्ष तथा राक्षसों का ऐसा विचार देख कर सर्व व्यापक हरि यज्ञ भगवान् याम नाम के देवताओं को साथ लिये हुए वहाँ आये और उन सबको मार कर वे स्वर्गका राज्य करने लगे ॥१८॥

स्वारोचिषो द्वितीयस्तु मनुरग्नेः सुतोऽभवत् ।
द्युमत्सुषेणरोचिष्मत्प्रमुखास्तस्य चात्मजाः ॥१९॥

दूसरे मनु स्वारोचिष नामक अग्नि के पुत्र हुए, उनके द्युमत्, सुषेण और रोचिष्मत् आदि पुत्रहुए॥

तत्रेंद्रो रोचनस्त्वासीद्देवाश्च तुषितादयः ।
ऊर्जस्तंभादयः सप्त ऋषयो ब्रह्मवादिनः ॥२०॥

उस मन्वन्तरमें रोचन नामक इन्द्र हुए, तुषित आदि देवता हुए तथा ऊर्जस्तंभ आदि ब्रह्मवेत्ता ऋषि हुए ॥ २० ॥

ऋषेस्तु वेदशिरसस्तुषिता नाम पत्न्यभूत् ।
तस्यां जज्ञे ततो देवो विभुरित्यभिविश्रुतः ॥२१॥

वेदशिरा नामक मुनिकी तुषिता नामवाली स्त्री से विभु नामक भगवान् का अवतार हुआ ॥२१॥

अष्टाशीतिसहस्राणि मुनयो ये धृतव्रताः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वशिक्षन्व्रतं तस्य कौमारब्रह्मचारिणः ॥२२॥

अठासी हज़ार व्रतधारी ऋषियों ने उन बाल-ब्रह्मचारी विभु भगवान् से नियम सीखे ॥२२॥

तृतीय उत्तमो नाम प्रियव्रतसुतो मनुः ।
पवनः सृञ्जयो यज्ञहोत्राद्यास्तत्सुता नृप ॥२३॥

तीसरे राजा प्रियव्रतके पुत्र उत्तम नामक मनु हुए, हे राजन् ! उनके पवन, सृञ्जय, यज्ञ और होत्र आदि पुत्र हुए ॥ २३ ॥

वसिष्ठतनयाः सप्त ऋषयः प्रमदादयः ।
सत्या वेदश्रुता भद्रा देवा इंद्रस्तु सत्यजित् ॥२४॥

वसिष्ठजीके प्रमद आदि सप्तर्षि पुत्र हुए,सत्या वेदश्रुता और भद्रा नामक देवता हुए और उस समय सत्यजित नामक इन्द्र हुए ॥ २४ ॥

धर्मस्य सूनृतायां तु भगवान्पुरुषोत्तमः ।
सत्यसेन इति ख्यातो जातः सत्यव्रतैः सह ॥२५॥

धर्म की पत्नी सूनृता से पुरुषोत्तम भगवान् ने सत्यव्रतों के सहित सत्यसेन नामक अवतार धारण किया ॥ २५ ॥

सोऽनृतव्रत दुःशीलानसतो यक्षराक्षसान् ।
भूतद्रुहो भूतगणांस्त्ववधीत्सत्यजित्सखः ॥२६॥

सत्यजित् के सखा सत्यसेन भगवान् ने झूठ बोलने वाले तथा क्रूर स्वभाववाले दुष्ट यक्ष-राक्षसों का तथा प्राणियों से द्रोह करनेवाले प्राणियों का वध किया ॥ २६ ॥

चतुर्थ उत्तमभ्राता मनुर्नाम्ना च तामसः ।
पृथुः ख्यातिर्नरः केतुरित्याद्या दश तत्सुताः॥२७॥

चौथे उत्तम मनु के भाई तामस नामक मनु हुए, उनके पृथु, ख्याति, नर और केतु आदि दस पुत्र हुए ॥ २७ ॥

सत्यका हरयो वीरा देवास्त्रिशिख ईश्वरः ।
ज्योतिर्धामादयः सप्त ऋषयस्तामसेऽन्तरे ॥२८॥

सत्यक, हरि और वीर-ये देवता हुए, त्रिशिख नामक इन्द्रहुए और ज्योतिर्धाम आदि सप्तर्षि हुए॥

देवा वैधृतयो नाम विधृतेस्तनया नृप ।
नष्टाः कालेन यैर्वेदा विधृताः स्वेन तेजसा ॥२९॥

हे राजन् ! तामस मन्वंतर में विधृति के पुत्र वैधृति नामक देवताभी हुए, जिन्होंने कालके प्रभाव से अपने तेजद्वारा नष्ट प्रायः वेदोंका उद्धारकिया॥

तत्रापि जज्ञे भगवान्हरिण्यां हरिमेधसः ।
हरिरित्याहृतो येन गजेंद्रो मोचितो ग्रहात् ॥३०॥

इस मन्वंतर में हरिमेधा की हरिणी नाम्नीस्त्री से "हरि" अवतार हुआ, जिन्होंने गजेन्द्र को ग्राह के फन्दे से छुड़ाया ॥ ३० ॥

राजोवाच

बादरायण एयत्ते श्रोतुमिच्छाम हे वयम् ।
हरिर्यथा गजपतिं ग्राहग्रस्तममूमुचत् ॥३१॥

परीक्षित बोले-हे शुकदेवजी ! भगवान् हरि ने ग्राह द्वारा पकड़े हुए गजराज को किस प्रकार से छुड़ाया ? मैं यह सुनना चाहता हूँ ॥३१॥

तत्कथासु महत्पुण्यं धन्यं स्वस्त्ययनं शुभम् ।
यत्र यत्रोत्तम श्लोको भगवान्गीयते हरिः ॥३२॥

जिन कथाओं में श्रेष्ठ यश वाले भगवान् की कीर्त्ति वर्णन की जाती है, वह कथायें बड़ी ही शुभ धन्य तथा कल्याण करने वाली होती हैं ॥३२॥

सूत उवाच

परीक्षितैवं स तु बादरायणिः प्रायोपविष्टेन कथासु चोदितः । उवाच विप्राः प्रतिनंद्य पार्थिवं मुदा मुनीनां सदसि स्म शृण्वताम् ॥३३॥

सूतजी बोले-हे शौनक आदि ऋषिवरो ! अनशन व्रत धारण कर बैठे हुए राजा परीक्षित ने जब कथा कहने के लिये इस प्रकार शुकदेवजी से आग्रह किया, तब शुकदेवजी ने राजा की प्रशंसा करके, मुनियों को सुनाते हुए सभा के बीच में आनन्द पूर्वक कहा ॥३३॥

इति श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूसरा अध्याय

(गजेन्द्र मोक्ष वर्णन)

श्रीशुक उवाच

आसीद्गिरिवरो राजंस्त्रिकूट इति विश्रुतः ।
क्षीरोदेनावृतः श्रीमान्यो जनायुतमुच्छ्रितः ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! त्रिकूट नामक एक पहाड़ सुन्दर, उत्तम तथा परम प्रसिद्धहै, वह दस हज़ार योजन ऊँचा और श्री सम्पन्न है, उसके चारों ओर क्षीर सागर है ॥ १ ॥

तावता विस्तृतः पर्यक्त्रिभिः शृंगैः पयोनिधिम् ।
दिशः खं रोचयन्नास्ते रौप्यायसहिरण्मयैः॥ २ ॥

उस पहाड़ का फैलाव भी दस हज़ार योजनहै उसकी तीन चोटियाँ हैं, जो क्रमशः चाँदी, लोहे तथा सोने की हैं, उनके प्रकाश से क्षीर सिन्धु, दिशायें तथा आकाश प्रकाशित रहते हैं ॥२॥

अन्यैश्च ककुभः सर्वा रत्नधातुविचित्रितैः ।
नानाद्रुमलतागुल्मैर्निर्घोषैर्निर्झरांभसाम् ॥ ३ ॥

इनके सिवा और भी शिखर हैं जो रत्न तथा धातुओं से चित्र-विचित्र दीख पड़ते हैं, अनेक प्रकार के वृक्ष, वेल तथा गुच्छों से शोभायमान हो रहे हैं, झरनों के जल-प्रवाह का जिनमें सुहावना शब्द हो रहा है, उनसे भी सब दिशायें प्रकाशित हो रही हैं ॥ ३ ॥

स चावनिज्यमानांघ्रिःसमंतात्पयऊर्मिभिः ।
करोति श्यामलां भूमिं हरिन्मरकताश्मभिः ॥४॥

जिस पर्वत के चारों ओर नीचे भाग में क्षीर समुद्र लहरा रहा है, जिसकी हरे रङ्ग की मरकत मणियों की शिलाओं की कान्तिसे पृथ्वी भी श्याम वर्ण सी हो रही है ॥ ४ ॥

सिद्धचारणगंधर्वविद्याधरमहोरगैः ।
किन्नरैरप्सरोभिश्च क्रीडद्भिर्जुष्टकंधरः ॥ ५ ॥

जिसकी गुफाओंमें सिद्ध, चारण, गन्धर्व, महा नाग, किन्नर तथा अप्सरागण क्रीड़ा कररहे हैं ।५॥

यत्र संगीतसन्नादैर्नदद्गुहममर्षया ।
अभिगर्जंति हरयः श्लाघिनः परशंकया ॥ ६ ॥

उनके गाने का शब्द सुनकर उन गुफाओं में रहने वाले सिंह दूसरे सिंह के शब्द का भ्रम करके जो नाद करते हैं, उससे गुफायें गुंजित हुआ करती हैं ॥ ६ ॥

नानारण्यपशुव्रातसंकुलद्रोण्यलंकृतः ।
चित्रद्रुमसुरोद्यानकलकंठविहंगमः ॥ ७ ॥

अनेक प्रकारके वन-पशुओंसे संकुलित गुफायें शोभायमान होरही हैं, भांति २ के वृक्षोंसे शोभायमान देवताओं के बागोंमें कोकिलायें बोल रही हैं ॥

सरित्सरोभिरच्छोदैः पुलिनैर्मणिवालुकैः ।
देवस्त्रीमज्जनामोदसौरभांब्वनिलैर्युतः ॥ ८ ॥

मणि के समान चमकीले रेतवाले तटोंसे युक्त निर्मल जल वाले तालाब और नदियोंका जल तथा वहाँ का पवन देवाङ्गनाओं के स्नान करने की सुगंधि से सुगंधित हो रहा है ॥ ८ ॥

तस्य द्रोण्यां भगवतो वरुणस्य महात्मनः ।
उद्यानमृतुमन्नाम आक्रीडं सुरयोषिताम् ॥ ९ ॥

उस पहाड़ की गुफामें महात्मा भगवान् वरुण का ऋतुमत नामक उद्यानहै जिसमें देवियाँ सर्वदा विहार किया करती हैं ॥ ९ ॥

सर्वतोऽलंकृतं दिव्यैर्नित्यं पुष्पफलद्रुमैः ।
मंदारैः पारिजातैश्च पाटलाशोकचंपकैः ॥१०॥
चूतैः प्रियालैः पनसैराम्रैराम्रातकैरपि ।
क्रमुकैर्नारिकेलैश्च खर्जूरैर्बीजपूरकैः ॥११॥
मधूकैः सालतालैश्च तमालैरसनार्जुनैः ।
अरिष्टोदुंबरप्लक्षैर्वटैः किंशुकचंदनैः ॥१२॥
पिचुमंदैः कोविदारैः सरलैः सुरदारुभिः ।
द्राक्षेक्षुरंभाजंबूभिर्बदर्यक्षाभयामलैः ॥१३॥
बिल्वैः कपित्थैर्जंबीरैर्वृतो भल्लातकादिभिः ।
तस्मिन्सरःसुविपुलं लसत्कांचनपंकजम् ॥१४॥

उसके चारों ओर सर्व फूलने-फलने वाले वृक्ष शोभा देरहे हैं, मंदार, पारिजात, पाटल, अशोक, चम्पा, आम, चिरौंजी, कटहल, आम्र, सुपारी, नारियल, खजूर, बिजौरा, महुआ, साल, ताल, तमाल, पीतसाल, अर्जुन रसाल, रीठा, गूलर, पिलखन, वट, केयूला, चन्दन, पिचुमन्द, कोविदार,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सरल, देवदार, दाख, ऊख, केला, जामुन, बेर के वृक्ष, बहेड़ा, हरड़ें, आमला, बेल, कपित्थ, जंभीरी और भिलावे आदि वृक्षों से जो शोभायमान हो रहा है, उस पर्वत के एक बड़े विशाल सरोवर में पीले कमल फूल रहे हैं ॥१०॥११॥१२॥१३॥१४॥

कुमुदोत्पलकह्लार शतपत्रश्रियोर्जितम् ।
मत्तषट्पदनिर्घुष्टं शकुंतैश्च कलस्वनैः ॥१५॥

जो कुमुद, उत्पल, कल्हार, शतपत्रसे शोभायमानहै, उसमें सुन्दर मदमत्त भौंरे गुञ्जार कररहे हैं। हंसकारंडवाकीर्णं चक्राह्वैः सारसैरपि ।
जल कुक्कुटकोयष्टिदात्यूहकुलकूजितम् ॥१६॥

सुन्दर बोलने वाले पक्षी हंस, कारंड आदि से वह भरा हुआ है, चकवी, चकवा, सारस, जलमुर्गी, पपीहा तथा दादुरगण कूँज रहे हैं ॥१६॥

मत्स्यकच्छपसंचारचलत्पद्मरजः पयः ।
कदंबवेतसनलनीपवंजुलकैर्वृतम् ॥१७॥
कुंदैः कुरवकाशोकैः शिरीषैः कुटजेंगुदैः ।
कुब्जकैः स्वर्णयूथीभिर्नागपुन्नागजातिभिः ॥१८॥
मल्लिकाशतपत्रैश्च माधवीजालकादिभिः ।
शोभितं तीरजैश्चान्यैर्नित्यर्तुभिरलं द्रुमैः ॥१९॥

मछली तथा कछुआ के चलनेसे उसके कमल हिल रहे हैं, उनका पराग-रस जल में मिल रहा है, किनारे पर कई भांति के कदम्ब, वेतस, नल, मौलसिरी, कुंद, कुरबक, अशोक, शिरीष, कुटज, हिंगोट, कुब्जक, सुनहरी जुही, नाग, नागकेसर, जाई, मल्लिका, शतपत्र, माधव और जालक आदि वृक्ष शोभा दे रहे हैं, जो सभी ऋतुओं में फल-फूलों से समृद्धवान् रहते हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

तत्रैकदा तद्गिरिकाननाश्रयः करेणुभिर्वारणयूथपश्चरन् । सकंटान्कीचकवेणुवेत्रवद्विशालगुल्मं प्ररुजन्वनस्पतीन् ॥२०॥

एक समय उस पर्वत के वनमें रहने वाले हाथियों के समूहका नायक एक हाथी अपनी हथनियोंको साथ लिये हुए काँटे सहित कीचक बांस तथा बेंतवाली बड़ी झाड़ियोंको तोड़ता और वृक्षों को गिराता हुआ उसी वनमें विचर रहा था ॥२०॥

यद्गंधमात्राद्धरयो गजेंद्रा व्याघ्रादयो व्याल मृगाश्च खड्गाः । महोरगाश्चापि भयाद्द्रवंति सगौरकृष्णाः शरभाश्चमर्यः ॥२१॥

वृका वराहा महिषर्क्षशल्या गोपुच्छशालावृक मर्कटाश्च । अन्यत्र क्षुद्रा हरिणाः शशादय श्चरंत्यभीता यदनुग्रहेण ॥२२॥

उसकी गन्ध पाते ही सिंह, गजराज, व्याघ्र आदि दूसरे हिंसक जानवर, गैंडे, बड़े-बड़े सर्प, काले या पीले हिरन, शरभ, चँवरी गौएँ, भेड़िये, शूकर, आरणे, भैंसे, रीछ, शैले, वानर, कुत्ते और मरकट दूर भाग जाते हैं और शश आदि क्षुद्र पशु उसकी ही दया से लुके-छिपे निर्भय फिरते हैं ॥

स घर्मतप्तः करिभिः करेणुभिर्वृतो मदच्युत्कलभैरनुद्रुतः । गिरिं गरिम्णा परितः प्रकंपयन्निषेव्यमाणोऽलिकुलैर्मदाशनैः ॥२३॥

उसके मस्तक से मद चू रहा था और वह धूप से संतप्त होकर अपने बच्चे तथा हथनियों के साथ शरीर के भार से पहाड़ को चारों ओर से हिलाता हुआ जल तलाश कर रहा था और मद रसके भूखे भौरों के झुण्ड उसकी सेवा कररहे थे ॥२३॥

सरोऽनिलं पंकजरेणुरूषितं जिघ्रन्विदूरान्मद विह्वलेक्षणः । वृतः स्वयूथेन तृषार्दितेन तत्सरोवराभ्याशमथागमद्द्रुतम् ॥२४॥

मद से विह्वल नेत्र वाला वह गजेन्द्र कमल-परागसे मिले हुए सरोवरके पवनको दूरसे सूंघता हुआ, प्यास से पीड़ित अपने झुण्ड के साथ शीघ्र उस तालाब के पास आया ॥२४॥

विगाह्य तस्मिन्नमृतांबुनिर्मलं हेमारविंदोत्पलरेणु वासितम् । पपौ निकामं निजपुष्करोद्धृतमात्मान मद्भिः स्नपयन्गतक्लमः ॥२५॥

उसने सरोवर में स्नान करके कांचनी कमल तथा उत्पल के पराग से सुगंधित अमृतके समान निर्मल जल अपनी सूंड में ले-लेकर मन चाहा पिया, जिससे उसका खेद निवृत्त होगया ॥२५॥

स पुष्करेणोद्धृतशीकरांबुभिर्निपाययन्संस्नपयन्यथा गृही । घृणी करेणूः कलभांश्च दुर्मदो नाचष्ट कृच्छ्रं कृपणोऽजमायया ॥२६॥

वह दयावान् गजराज अपनी सूंड़में जल लेकर अपने बच्चे तथा हथनियों को गृहस्थकी भांति जल पिलाता हुआ नहला रहा था, परन्तु उस कृपण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मदान्ध को दैवी माया से आने वाले कष्ट का पता न पड़ सका ॥ २६ ॥

तं तत्र कश्चिन्नृप दैवचोदितो ग्राहो बलीयांश्चरणे रुषाऽग्रहीत् । यदृच्छयैवं व्यसनं गतो गजो यथा बलं सोऽतिबलो विचक्रमे ॥२७॥

हे राजन् ! वहाँ किसी बलवान् ग्राह ने दैवी माया से प्रेरित होकर क्रोध-पूर्वक उसका पाँव पकड़ लिया, ऐसे अक्समात् आये हुए कष्ट में भी उसने यथाशक्ति पूर्ण पराक्रम किया ॥२७॥

तथातुरं यूथपतिं करेणवो विकृष्यमाणं तरसा बलीयसा । विचुक्रुशुर्दीनधियोऽपरे गजाः पार्ष्णिग्रहास्तारयितुं न चाशकन् ॥२८॥

अपने बलवान् यूथ-पति को ग्राह के खींचने से व्याकुल देखकर वे दीन हथनियां पुकारने लगीं, उसके साथी हाथी भी उसे छुड़ा न सके ॥२८॥

नियुध्यतोरेवमिभेंद्रनक्रयोर्विकर्षतोरंतरतो बहिर्मिथः । समाः सहस्रं व्यगमन्महीपते सप्राणयोश्चित्रममंसतामराः ॥२९॥

इस प्रकार गजेन्द्र और ग्राह का युद्ध होता रहा, कभी ग्राह हाथीको भीतर खींच ले जाता था, कभी हाथी ग्राह को बाहर खींच लाता था, हे महाराज ! इस प्रकार युद्ध करते हुए उन्हें दिव्य हज़ार वर्ष बीत गये फिर भी उन्हें जीवित देखकर देवता-गण आश्चर्य करने लगे ॥२९॥

ततो गजेंद्रस्य मनोबलौजसां कालेन दीर्घेण महानभूद्व्ययः । विकृष्यमाणस्य जलेऽवसीदतो विपर्ययोऽभूत्सकलं जलौकसः ॥३०॥

पर अधिक समय तक की खींचा-तानी तथा क्लेश के कारण गजराज का उत्साह, बल तथा इन्द्रियोंकी शक्ति बहुत कुछ क्षीण होगई और जल में रहने वाले ग्राह की यह बातें बढ़ गईं ॥३०॥

इत्थं गजेंद्रः स यदाप संकटं प्राणस्य देही विवशो यदृच्छया । अपारयन्नात्मविमोक्षणे चिरं दध्याविमां बुद्धिमथाभ्यपद्यत ॥३१॥

नमामिमे ज्ञातय आतुरं गजाः कुतः करिण्यः प्रभवंति मोचितुम् । ग्राहेण पाशेन विधातुरावृतो ऽप्यहं च तं यामि परं परायणम् ॥३२॥

इस भांति दैव-इच्छासे परवश पड़े हुए गजेंद्र के प्राण सङ्कट में पड़ गये, तब अपने छुटकारे का कोई उपाय न देखकर विचार करते-करते उसे यह समझ में आया कि मुझ विकल को छुड़ानेके लिये जब मेरी जाति वाले हाथियों में सामर्थ्य न हुई तब हथनियां तो करही क्या सकती हैं ? इसलिये अब दैव-पाश में बँधा हुआ मैं उसी परब्रह्म की शरण लेता हूँ जो ब्रह्मादिको भी आश्रय-दाता है ॥

यः कश्चनेशो बलिनोऽतकोरगात्प्रचंडवेगादभिधावतो भृशम् । भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भयान्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि ॥३३॥

प्रचण्ड वेग से दौड़ते हुए बलवान् काल-रूपी सर्प से भयभीत मनुष्य की जो रक्षा करता है तथा जिसके भय से काल चारों ओर भागा करता है, मैं उसी परमेश्वर की शरण जाता हूँ ॥३३॥

इति श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तीसरा अध्याय

(गजेन्द्र मोक्ष)

श्रीशुक उवाच

एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि । जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले–हे राजन् ! ऐसी बुद्धि से दृढ़ विचार करके मनको हृदय में एकाग्र करके पूर्व जन्म में सीखे हुए जप करने योग्य मंत्र का जाप करने लगा ॥ १ ॥

गजेंद्र उवाच

नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम् । पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि ॥ २ ॥

गजेन्द्र बोला–जिनसे यह चैतन्य स्वरूप प्रकट हुआ है; जो पुरुष रूप, सबके आदि कारण तथा परमेश्वर हैं, मैं उन भगवान् को ध्यान पूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम्।
योस्मात्परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयंभुवम् ॥ ३ ॥

जो इस संसार के आधार, कार्य-कारण से परे, स्वयं सिद्ध, विश्वरूप तथा विश्वोत्पत्तिकर्त्ता हैं, मैं उन प्रभु की शरण लेता हूँ ॥३॥

यः स्वात्मनीदं निजमाययार्पितं क्वचिद्विभातं क्व च तत्तिरोहितम्। अविद्धदृक्साक्ष्युभयं तदीक्षते स आत्म मूलोऽवतु मां परात्परः ॥ ४ ॥

जो अपनी माया द्वारा इस संसार को अपने स्वरूप में धारण करके कभी प्रकट करते हैं और कभी लीन करते हैं, पर जिनकी दृष्टि कभी लीन नहीं होती तथा जो साक्षी बनकर कार्य-कारणरूप सभी को देखते हैं, वह स्वयं प्रकाश परात्पर प्रभु मेरी रक्षा करें ॥ ४ ॥

कालेन पंचत्वमितेषु कृत्स्नशो लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु। तमस्तदासीद्गहनं गभीरं यस्तस्य पारेऽभिविराजते विभुः ॥५॥

जब काल के प्रताप से यह लोक, लोकपाल और सबके कारण महत्तत्वादि लीन होजाते हैं, तब केवल घोर और गंभीर अन्धकार ही रहजाता है और कुछ भी नहीं रहता, उस अन्धकार से परे रहने वाले ही नारायण हैं ॥५॥

न यस्य देवा ऋषयः पदं विदुर्जंतुः पुनः कोऽर्हति गंतुमीरितुम्। यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टितो दुरत्ययानुक्रमणः स मावतु ॥ ६ ॥

जिनके स्वरूप को देवता और ऋषि भी नहीं जानते; उनको दूसरे प्राणी क्या जानने या कहने की सामर्थ्य रख सकते हैं ? जैसे स्वांग बनाकर नाटक करने वाले नट के चरित्र समझे नहीं जाते, वैसे ही जिनके चरित्र समझ में नहीं आते, वही प्रभु मेरी रक्षा करें ॥ ६ ॥

दिदृक्षवो यस्य पदं सुमंगलं विमुक्तसंगा मुनयः सुसाधवः। चरंत्यलोकव्रतमव्रणं वने भूतात्म भूताः सुहृदः स मे गतिः ॥ ७ ॥

जिनके मङ्गलमय पद देखने के लिये प्राणीमात्र में समदृष्टि रखने वाले, सबके सुहृद श्रेष्ठ साधु मुनि लोग संग त्यागकर बनमें अखण्ड ब्रह्मचर्य आदि व्रत धारण करते हैं, वह परमात्मा मुझे गति (शरण) रूप हों ॥ ७ ॥

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा न नामरूपे गुणदोष एव वा। तथाऽपि लोकाप्यय संभवाय यः स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ॥ ८ ॥

जिनका जन्म, कर्म, नाम, रूप या गुण-दोष कुछ भी नहीं है, फिर भी जो लोकों की उत्पत्ति तथा प्रलय के लिये अपनी माया से समय २ पर जन्म आदि ग्रहण करते हैं ॥८॥

तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनंतशक्तये।
अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्यकर्मणे ॥ ९ ॥

उन अनन्त शक्ति, अरूप, बहुरूपधारी, आश्चर्य मय कर्म करने वाले परब्रह्म परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ९ ॥

नम आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने।
नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि ॥१०॥

जो स्वयं प्रकाश, साक्षी, मन तथा वाणी से परे हैं, उन परमात्मा को मेरा नमस्कार है ॥१०॥

सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता।
नमः कैवल्यनाथाय निर्वाणसुखसंविदे ॥११॥

शुद्ध सन्यास तथा सतोगुण से प्राप्त होनेवाले मोक्ष सुख के जानने वाले, मोक्षपति को मेरा नमस्कार है ॥११॥

नमः शांताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे।
निर्विशेषाय सौम्याय नमो ज्ञानघनाय च ॥१२॥

शान्त, घोर, गूढ़ गुणों के धर्म का अनुकरण करने वाले, विशेष-रहित, साम्यरूप, ज्ञानघन प्रभु को मेरा प्रणाम है ॥१२॥

क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे।
पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥१३॥

क्षेत्रज्ञ, सबके अध्यक्ष, साक्षी, पुरुष, स्वयंप्रकाश और प्रकृति के मूल कारण प्रभुको मेरा प्रणामहै ॥

सर्वेंद्रियगुणद्रष्ट्रे सर्वप्रत्ययहेतवे।
असताच्छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः ॥१४॥

जो सब इन्द्रियों के द्रष्टा, इन्द्रियों की वृत्ति में व्यापक, पदार्थ मात्र में सत् रूप से प्रकाश करने वाले और असत् पदार्थों से भी इस प्रकार समझ में आने वाले हैं, जैसे प्रतिबिंब से बिंब समझ में आता है, उन प्रभु को मेरा प्रणाम है ॥१४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नमो नमस्तेऽखिलकारणायनिष्कारणायाद्भुत कारणाय । सर्वागमाम्नायमहार्णवाय नमोऽपवर्गाय परायणाय ॥१५॥

सबके कारण होते हुए भी स्वयं कारण रहित, विचित्र कारण, सब शास्त्र तथा वेदोंके महा समुद्र श्रेष्ठ पुरुषों के आधार, मोक्ष रूप प्रभु को मेरा नमस्कार है ॥१५॥

गुणारणिच्छन्नचिदूष्मपाय तत्क्षोभविस्फूर्जित मानसाय । नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागमस्वयं प्रकाशाय नमस्करोमि ॥१६॥

जो गुणरूपी अरणि से ढके हुए ज्ञान अग्नि के समान हैं, जिनका मन सृष्टि के आरम्भ में गुणों के क्षोभ से बहिर्वृत्ति वाला होजाता है, जो आत्म-स्वरूप की भावना से विधि निषेध को त्यागने वाले ज्ञानी पुरुषों में स्वयं प्रकाशित हैं, मैं उन प्रभु को प्रणाम करता हूँ ॥१६॥

मादृक् प्रपन्नपशु पाशविमोक्षणाय मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय । स्वांशेन सर्वतनु भृन्मनसि प्रतीतप्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते१७॥

मुझ ऐसे शरणागत पशु के बंधन छुड़ाने वाले सब प्रकार से मुक्त, परम करुणामय, निरालस्य, अखंड, अपने अंतर्यामी स्वरूपसे प्राणीमात्र के मन में प्रतीत होने वाले प्रभु को मेरा प्रणाम है ॥१७॥

आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तैर्दुष्आपणाय गुणसंगविवर्जिताय । मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ॥१८॥

देह, पुत्र, परिवार, घर, धन या जनमें आसक्त रहने वाले पुरुष जिनको कभी प्राप्त नहीं हो सकते तथा देहाभिमान रहित पुरुष जिनका हृदयमें चिंतवन करते हैं, उन गुण-संग रहित, ज्ञान स्वरूप भगवान् को मेरा प्रणाम है ॥१८॥

यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा भजंत इष्टां गतिमाप्नुवंति । किं त्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम् ॥१९॥

जिनका भजन करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी इच्छा करके परमगति पाते हैं, वे कामनावानों की कामना पूर्ण करने वाले दयासिन्धु मुझे बंधन से मुक्त करें ॥१९॥

एकांतिनो यस्य न कंचनार्थं वांछंति ये वै भगवत्प्रपन्नाः । अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमंगलं गायंत आनंदसमुद्रमग्नाः ॥२०॥

भगवान् की शरण लेने वाले एकान्त भक्त किसी अर्थ की इच्छा नहीं करते, वे तो केवल उनके अत्यन्त अद्भुत मङ्गलरूप चरित्र गा कर ही आनन्द सागर में मग्न रहा करते हैं ॥२०॥

तमक्षरं ब्रह्म परं परेशमव्यक्तमाध्यात्मिकयोग गम्यम् । अतींद्रियं सूक्ष्ममिवातिदूरमनंतमाद्यं परिपूर्णमीडे ॥२१॥

उन अक्षर, परब्रह्म, परमेश्वर, अव्यक्त, आत्म विचार से गम्य, अगोचर, सूक्ष्म, महान् दूर के रहने वाले के समान, अनन्त, आदि परिपूर्ण प्रभु की मैं स्तुति करता हूँ ॥२१॥

यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचराः । नामरूपविभेदेन फल्व्या च कलया कृताः॥२२॥

जिनकी अत्यन्त सूक्ष्म-कला द्वारा नामरूप भेद के कारण ब्रह्मादिक देवता और चराचर लोक तथा वेद रचे गये हैं, उन प्रभु की जय हो ॥२२॥

यथाऽर्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो निर्यांति संयांत्यसकृत्स्वरोचिषः । तथा यतोऽयं गुणसंप्रवाहो बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गः ॥२३॥

जैसे अग्नि में से ज्वालायें या सूर्यमें से किरणें निकल कर फिर उसी में लीन होजाती हैं, उसी प्रकार, बुद्धि, मन, इन्द्रियां तथा अनेक प्रकार के शरीर जिनके स्वयं प्रकाश शरीरमें से प्रकट होकर फिर उसी में लय होजाते हैं ॥२३॥

स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ्न स्त्री न षंढो न पुमान्न जंतुः । नायं गुणः कर्म न सन्न चासन्निषेधशेषो जयतादशेषः ॥२४॥

जो परमेश्वर देवता, दैत्य, मनुष्य, पशु, पक्षी, स्त्री, निपुंसक पुरुष या जन्तु कुछ भी नहीं हैं, वह न तो गुण हैं, न कर्म हैं, न कार्य-कारण रूप हैं, किन्तु 'यह नहीं-यह नहीं' ऐसा कहते २ अन्त में जो शेष रह जाता है और जो माया शक्ति द्वारा सर्वात्मक हैं, वह प्रभु मेरे छुड़ाने को प्रकटहोवें ॥

जिजीविषे नाहमिहाऽमुया किमंतर्बहिश्चावृतये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भयोन्या । इच्छामि कालेन न यस्य विप्लवस्त स्यात्मलोका वरणस्य मोक्षम् ॥२५॥

भीतर और बाहर अज्ञानसे भरे हुए इस हाथी के शरीर का मुझे क्या प्रयोजन है ? मैं जीवन नहीं चाहता हूँ, वरन् आत्म-स्वरूप को ढकनेवाले और काल से भी नष्ट न होने वाले अज्ञान से छूटना चाहता हूँ ॥२५॥

सोऽहं विश्वसृजां विश्वमविश्वं विश्ववेदसम् ।
विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम्॥२६॥

जो भगवान् जगत्-रचयिता, जगत् रूप, जगत् से पृथक्, जगत् में रमण करने वाले, जगत् के आत्मा; जन्म रहित और परम पद रूप हैं, उन्हें मैं मोक्ष की इच्छा से प्रणाम करता हूँ ॥२६॥

योगरंधितकर्माणो हृदि योगविभाविते ।
योगिनो यं प्रपश्यंति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम् २७॥

योगद्वारा अपने कर्मों कोभस्म करके योगीजन शुद्ध अन्तःकरण द्वारा जिनको देखा करते हैं, उन योगीश्वर भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२७॥

नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेगशक्तित्रयायाखिलधी गुणाय । प्रपन्नपालाय दुरंतशक्तये कदिंद्रियाणा मनवाप्यवर्त्मने ॥२८॥

जो सभी इन्द्रियों के विषय रूप से जान पड़ते हैं, जो शरणागतों की रक्षा करते हैं, जिनके मार्ग को क्रूर इन्द्रियों वाले कभी नहीं पहुंच सकते हैं तथा जो असह्य वेग वाली तीन शक्तियोंके नियंता हैं, उन अपार शक्तिधारी प्रभुको मेरा प्रणाम है ॥

नायं वेद स्वमात्मानं यच्छक्त्याऽहंधिया हतम् ।
तं दुरत्ययमाहात्म्यं भगवंतमितोऽस्म्यहम् ॥२९॥

जिनकी मायाके कारण यह मनुष्य देहाभिमान रूपी आवरण से ढके हुए अपने स्वरूप को नहीं पहिचानता, उन अपार महिमाधारी भगवान् की मैं शरण हूँ ॥२९॥

श्रीशुक उवाच

एवं गजेंद्रमुपवर्णितनिर्विशेषं ब्रह्मादयो विविध लिंगभिदाऽभिमानाः । नैते यदोपससृपुर्निखिला त्मकत्वात्तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत्॥३०॥

शुकदेवजी बोले—जब गजेन्द्र ने किसी देव विशेष का नाम न लेते हुए इस प्रकार स्तुति की, तो जुदे-जुदे नाम से देह पर अभिमान रखने वाले ब्रह्मादि देवता उसे छुड़ाने न आये, वरन् सर्व स्वरूप, सर्व देवमय भगवान् ही वहाँ प्रकटहुए॥३०॥

तं तद्वदार्तमुपलभ्य जगन्निवासः स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः । छंदोमये न गरुडेन समुह्यमानश्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेंद्रः॥३१॥

जगन्निवास भगवान् उसे इस भांतिसे पीड़ित जानकर तथा उसकी स्तुति सुनकर शीघ्रता-पूर्वक वेदमय गरुड़ पर चढ़कर चक्र हाथ में लिये हुए, स्तुति करने वाले देवताओं के साथ गजेन्द्र के स्थान पर पहुंचे ॥३१॥

सोंऽतः सरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम् । उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रान्नारायणाखिलगुरो भगवन्नमस्ते॥

सरोवर में परम पराक्रमी ग्राह द्वारा पकड़े हुए उस दुःखी गजराज ने चक्र उठाये हुए भगवान् को आकाश में देखकर कमल सहित सूंड़ को ऊपर उठाकर बड़े कष्ट के साथ पुकार कर कहा कि—हे नारायण ! सकल जगत् के गुरु ! हे भगवान् ! आपको मेरा प्रणाम है ॥३२॥

तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसाऽवतीर्य सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार । ग्राहाद्विपाटितमुखादरिणा गजेंद्रं संपश्यतां हरिरमूमुचदुस्रियाणाम् ॥३३॥

जब भगवान् ने उस पीड़ित गजराज को देख कर यह जाना कि गरुड़ यथा समय उस तक नहीं पहुंच सकेगा, तो गरुड़ से उतर कर तत्काल ही उसके पास आये और कृपापूर्वक दोनों को जलसे बाहर निकाल निकाल लिया, फिर चक्र से ग्राहका मुंह फाड़ कर सब देवताओं के सामने ही प्रभु ने उसे फन्द से छुड़ा लिया ॥३३॥

इति श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चौथा अध्याय

(गज तथा ग्राह को अपने पूर्व पद मिलना)

श्रीशुक उवाच

तदा देवर्षिगंधर्वा ब्रह्मेशानपुरोगमाः ।
मुमुचुः कुसुमारं शंसंतः कर्म तद्धरेः ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले–उससमय देवता, ऋषि, गंधर्व ब्रह्मा तथा महादेवजी भगवान् के चरित्रकी प्रशंसा करते हुए फूल बरसाने लगे ॥१॥

नेदुर्दुंदुभयो दिव्या गंधर्वा ननृतुर्जगुः ।
ऋषयश्चारणाः सिद्धास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ २ ॥

दिव्य दुन्दुभियां बजने लगीं, गन्धर्व नाचने गाने लगे, ऋषि, चारण और सिद्ध पुरुषोत्तम भगवान् की स्तुति करने लगे ॥२॥

योऽसौ ग्राहः स वै सद्यः परमाश्चर्यरूपधृक् ।
मुक्तो देवलशापेन हूहूर्गंधर्वसत्तमः ॥ ३ ॥
प्रणम्य शिरसाऽधीशमुत्तमश्लोकमव्ययम् ।
अगायत यशोधामकीर्तन्यगुणसत्कथम् ॥ ४ ॥

ग्राह उसी समय देवल ऋषि के शाप से मुक्त होकर परम अद्भुत रूप धारण कर "हूहू" नामक श्रेष्ठ गंधर्व बन गया* और श्रेष्ठ यशस्वी, अव्यय, गुण-धाम तथा जिनकी कथा गाने योग्य है, उन भगवान् को सिर से प्रणाम करके उनका यश गाने लगा ॥ ३ ॥ ४ ॥

सोऽनुकंपित ईशेन परिक्रम्य प्रणम्य तम् ।
लोकस्य पश्यतो लोकं स्वमगान्मुक्तकिल्बिषः॥५॥

भगवान् की कृपा से ग्राह सभी पापों से मुक्त होकर, प्रभुकी परिक्रमा करके प्रणाम करता हुआ, सबके देखते २ ही अपने लोक को चला गया ॥५॥

गजेंद्रो भगवत्स्पर्शाद्विमुक्तोऽज्ञानबंधनात् ।
प्राप्तो भगवतो रूपं पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ ६ ॥

भगवान् का स्पर्श होते ही गजेन्द्र के अज्ञान-बन्धन कट गये और उसने भगवान् के चतुर्भुज स्वरूप को धारण किया तथा पीतांबर पहिना ॥६॥

स वै पूर्वमभूद्राजा पांड्यो द्रविडसत्तमः ।
इंद्रद्युम्न इति ख्यातो विष्णुव्रतपरायणः ॥ ७ ॥

वह गजेन्द्र पूर्व जन्म में पांड देश का राजाथा, उसका नाम 'इन्द्रद्युम्न' था, वह द्रविड़ देश में श्रेष्ठ माना जाता था और भगवान् के व्रत करने में तत्पर रहता था ॥७॥

स एकदाऽऽराधनकाल आत्मवान्गृहीतमौनव्रत ईश्वरं हरिम् । जटाधरस्तापस आप्लुतोऽच्युतं समर्चयामास कुलाचलाश्रमः ॥ ८ ॥

एक बार इन्द्रद्युम्न मलयाचल पर आश्रम बना कर, जटा धारण किये हुए, स्थिर चित्त तप करते हुए, परमेश्वर के आराधन काल में स्नान करके मौन-पूर्वक प्रभु का पूजन कर रहा था ॥८॥

यदृच्छया तत्र महायशा मुनिः समागमच्छिष्य गणैः परिश्रितः । तं वीक्ष्य तूष्णीमकृतार्हणादिकं रहस्युपासीनमृषिश्चुकोप ह ॥ ९ ॥

दैवयोग से वहाँ यशस्वी महामुनि अगस्त्यजी अपने शिष्य-मंडल के साथ आ पहुंचे, परन्तु उसने उठकर मुनि का पूजन आदि से कोई सत्कार न किया और एकान्त में मौन ही बैठा रहा, यह देख कर अगस्त्यजी को क्रोध आगया ॥९॥

तस्मा इमं शापमदादसाधुरयं दुरात्माऽकृत बुद्धिरद्य । विप्रावमंता विशतां तमोऽधं यथा गजः स्तब्धमतिः स एव ॥१०॥

और उन्हों ने उसे यह शाप दिया कि–यह असाधु, दुरात्मा और अकृत (मन्द) बुद्धि वाला ब्राह्मणों का अपमान करता है और हाथी की भांति स्तब्ध रहता है, इसलिये इसे यही शाप उचित है कि यह हाथी होजावे ॥१०॥

एवं शप्त्वा गतोऽगस्त्यो भगवान्नृप सानुगः ।
इंद्रद्युम्नोऽपि राजर्षिर्दिष्टं तदुपधारयन् ॥११॥
आपन्नः कौंजरीं योनिमात्मस्मृतिविनाशिनीम् ।
हर्यर्चनानुभावेन यद्गजत्वेऽप्यनुस्मृतिः ॥१२॥

शुकदेवजी परीक्षित से बोले–हे राजन् ! इस प्रकार शाप देकर अगस्त्यजी अपने शिष्यों सहित चले गये और इन्द्रद्युम्न नेभी अपने भाग्यसे मिली

*–एक बार 'हूहू' गन्धर्व स्त्रियों के साथ जल में क्रीड़ा कर रहा था, उसने देवल ऋषि का पाँव पकड़कर खींचा, इसलिये उन्होंने शाप दिया था ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुई समझकर उस बुद्धि को नष्ट करने वाली शाप के कारण योनि पाई, परन्तु भगवान् की सेवा के प्रभाव से गज-योनि में भी उसे भगवान्का स्मरण बना रहा ॥ ११ ॥ १२ ॥

एवं विमोक्ष्य गजयूथपमब्जना भस्तेनापि पार्षद गतिं गमितेन युक्तः। गंधर्वसिद्धविबुधैरुपगीयमान कर्माऽद्भुतं स्वभवनं गरुडासनोऽगात् ॥१३॥

इस प्रकार पद्मनाभ भगवान् गजेन्द्रको ग्राहके फन्द से छुड़ाकर, अपना पार्षद बनाकर, अपने साथ में लेकर और गरुड़ पर बैठकर अपने अद्भुत धाम को पधारे, उस समय गंधर्व, सिद्ध और देवता प्रभु का यश गाने लगे ॥१३॥

एतन्महाराज तवेरितो मया कृष्णानुभावो गजराजमोक्षणम्। स्वर्ग्यं यशस्यं कलिकल्मषापहं दुःस्वप्ननाशं कुरुवर्य शृण्वताम् ॥१४॥

हे राजन्! यह गजेन्द्र-मोक्ष रूपी भगवान् का प्रभाव मैंने आपसे कहा है, जो इसे सुनेगा उसको सब पाप दूर होकर स्वर्ग मिलेगा और दुःस्वप्न का का दोष न लगेगा ॥१४॥

यथाऽनुकीर्तयंत्येतच्छ्रेयस्कामा द्विजातयः। शुचयः प्रातरुत्थाय दुःस्वप्नाद्युपशांतये ॥१५॥

इसलिये अपना कल्याण चाहनेवाले द्विजवृन्द प्रातःकाल जल्दीसे उठकर, पवित्रहो, दुःस्वप्न आदि की शान्तिके लिये यह गजेन्द्र-मोक्षकी कथा गातेहैं॥

इदमाह हरिः प्रीतो गजेंद्रं कुरुसत्तम। शृण्वतां सर्वदेवानां सर्वभूतमयो विभुः ॥१६॥

हे कुरुश्रेष्ठ! अब लोगोंके सुनतेहुए सब प्राणी मय भगवान्ने प्रसन्न होकर गजराज से कहा ॥१६॥

श्रीभगवानुवाच

ये मां त्वां च सरश्चेदं गिरिकंदरकाननम्। वेत्रकीचकवेणूनां गुल्मानि सुरपादपान् ॥१७॥
शृंगाणीमानि धिष्ण्यानि ब्रह्मणो मे शिवस्य च। क्षीरोदं मे प्रियं धाम श्वेतद्वीपं च भास्वरम्॥१८॥
श्रीवत्सकौस्तुभं मालां गदां कौमोदकीं मम। सुदर्शनं पांचजन्यं सुपर्णं पतगेश्वरम् ॥१९॥
शेषं च मत्कलां सूक्ष्मां श्रियं देवीं मदाश्रयाम्। ब्रह्माणं नारदमृषिं भवं प्रह्लादमेव च ॥२०॥
मत्स्यकूर्मवराहाद्यैरवतारैः कृतानि मे। कर्माण्यनंतपुण्यानि सूर्यं सोमं हुताशनम् ॥२१॥
प्रणवं सत्यमव्यक्तं गोविप्रान्धर्ममव्ययम्। दाक्षायणीधर्मपत्नीः सोमकश्यपयोरपि ॥२२॥
गंगां सरस्वतीं नंदां कालिंदीं सितवारणम्। ध्रुवं ब्रह्मऋषीन्सप्त पुण्यश्लोकांश्च मानवान्॥२३॥
उत्थायापररात्रांते प्रयताः सुसमाहिताः। स्मरंति मम रूपाणि मुच्यंते ह्येनसोऽखिलात्॥२४॥

श्रीभगवान् बोले-मैं, तू, यह सरोवर, पर्वत गुफायें, वन, वेत, कीचक, बांस, झाड़ी, कल्पवृक्ष, ब्रह्मा,महादेव, मेरे रहनेके धाम यह पर्वतके शिखर मेरा प्यारा निवास-स्थान क्षीर सागर, देदीप्यमान श्वेत द्वीप, श्रीवत्स चिह्न, कौस्तुभ मणि, वैजयंती माला, मेरी कौमोदकी गदा, सुदर्शनचक्र, पांचजन्य शंख, पक्षिराज गरुड़, मेरे सूक्ष्म अंश शेषजी, मेरे ही आधार पर रहने वाली देवी लक्ष्मी, ब्रह्माजी, नारदजी, महादेव, प्रह्लाद,मत्स्य,कूर्म, वाराह आदि मेरे अवतारों द्वारा किये हुए परम पवित्र चरित्र, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, ओंकार, सत्य,माया, गौ,ब्राह्मण भक्ति-लक्षण धर्म, दक्ष की कन्यायें जो कि धर्म, चन्द्रमा और कश्यपजी की स्त्रियांहैं, गङ्गा,सरस्वती नन्दा, यमुना ऐरावत हाथी, ध्रुव, सप्तर्षि और पवित्र कीर्त्ति वाले मनुष्य-इन सब मेरी विभूतियों का जो लोग रात्रि के तीसरे पहर उठकर एकाग्र चित्त से नियम-पूर्वक स्मरण करते हैं, वे सब पापों से मुक्त होजाते हैं ॥१७।१८।१९।२०।२१।२२।२३।२४॥

ये मां स्तुवंत्यनेनांग प्रतिबुध्य निशात्यये। तेषां प्राणात्यये चाहं ददामि विमलां मतिम्॥२५॥

हे अङ्ग! जो लोग रात्रि के पिछले पहरमें जाग कर इस 'गजेन्द्र-मोक्ष' से मेरी स्तुति करेंगे उनको मैं अंतिम समयमें निर्मल बुद्धि देता हूँ ॥२५॥

श्रीशुक उवाच

इत्यादिश्य हृषीकेशः प्रध्माय जलजोत्तमम्। हर्षयन्विबुधानीकमारुरोह खगाधिपम् ॥२६॥

शुकदेवजी बोले-भगवान् इस प्रकार से आज्ञा देकर शंख-ध्वनि से देवताओं को प्रसन्न करते हुए गरुड़ पर सवार हुए ॥२६॥

इति श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पांचवां अध्याय

(देवताओं का भगवच्छरण में जाना)

श्रीशुक उवाच

राजन्नुदितमेतत्ते हरेः कर्मा घनाशनम् ।
गजेंद्रमोक्षणं पुण्यं रैवतं त्वंतरं शृणु ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले–हे राजन् ! गजेन्द्र-मोक्ष रूपी भगवान् का पाप-नाशक तथा पवित्र चरित्र मैंने आपसे वर्णन किया है, अब 'रैवत' नामक मंवंतर का हाल सुनिये ॥१॥

पंचमो रैवतो नाम मनुस्तामससोदरः ।
बलिर्विंध्यादयस्तस्य सुता अर्जुनपूर्वकाः ॥ २ ॥

पाँचवें तामस नाम मनु के भाई रैवत नामक मनु हुए, उनसे अर्जुन आदि तथा बलि-विन्ध्य आदि पुत्र हुए ॥२॥

विभुरिंद्रः सुरगणा राजन्भूतरयादयः ।
हिरण्यरोमा वेदशिरा ऊर्ध्वबाहादयो द्विजाः॥३॥

हे महाराज ! उस समय में विभु इन्द्र, भूतरय आदि देवता तथा हिरण्यरोमा, वेदशिरा और ऊर्ध्वबाहु आदि सप्तर्षि हुए ॥३॥

पत्नी विकुंठा शुभ्रस्य वैकुंठैः सुरसत्तमैः ।
तयोः स्वकलया जज्ञे वैकुंठो भगवान्स्वयम्॥ ४ ॥

शुभ्र की विकुण्ठा नाम्नी स्त्री से वैकुंठनाम श्रेष्ठ देवताओं के साथ अपनी कला सहित स्वयं वैकुण्ठनाथ उसके यहाँ प्रकट हुए ॥४॥

वैकुंठः कल्पितो येन लोको लोकनमस्कृतः ।
रमया प्रार्थ्यमानेन देव्या तत्प्रियकाम्यया ॥ ५ ॥

जिन्होंने लक्ष्मीजी के प्रार्थना करने पर उन्हें प्रसन्न करने के लिये लोकोंके नमस्कार करने योग वैकुण्ठ लोक की रचना की ॥५॥

तस्यानुभावः कथितो गुणाश्च परमोदयाः ।
भौमान्रेणून्स विममे यो विष्णोर्वर्णयेद्गुणान्॥६॥

उन वैकुण्ठ भगवान् के प्रभाव तथा परम श्रेष्ठ गुणों का मैं संक्षिप्त वर्णन कर चुका हूँ, वास्तव में तो उनके अनन्त गुणों का वर्णन करना तो पृथ्वी के कणों के गिनने के समान (असंभव) है ॥६॥

षष्ठश्च चक्षुषः पुत्राश्चाक्षुषो नाम वै मनुः ।
पूरुः पुरुषसुद्युम्नप्रमुखाश्चाक्षुषात्मजाः ॥ ७ ॥

छठवें चक्षुष के पुत्र चाक्षुष नामक मनु हुए, उनके पुरु, पुरुष, सुद्युम्न आदि पुत्र हुए ॥७॥

इंद्रो मंत्रद्रुमस्तत्र देवा आप्यादयो गणाः ।
मुनयस्तत्र वै राजन्हविष्मद्वीरकादयः ॥ ८ ॥

हे राजन् ! उस समय मन्त्रद्रुम नामक इन्द्र, आप्य आदि देव-गण तथा हविष्मत् व वीरक आदि सप्तर्षि हुए ॥८॥

तत्रापि देवः संभूत्यां वैराजस्याभवत्सुताः ।
अजितो नाम भगवानंशेन जगतः पतिः ॥ ९ ॥

वहाँ वैराज की संभूति नाम्नी स्त्रीसे जगत्पति भगवान् के अंशसे अजित नाम अवतार हुआ ॥९॥

पयोधिं येन निर्मथ्य सुराणां साधिता सुधा ।
भ्रममाणोऽभसि धृतः कूर्मरूपेण मंदरः ॥१०॥

जिन्होंने सिंधु मन्थन करके देवताओंको अमृत पिलाया और कच्छप-रूप धारण कर जलमें चक्कर खाते हुए मन्दराचलका भार अपने ऊपर रक्खा ॥

राजोवाच

यथा भगवता ब्रह्मन्मथितः क्षीरसागरः ।
यदर्थं वा यतश्चाद्रिं दधारांबुचरात्मना ॥११॥
यथाऽमृतं सुरैः प्राप्तं किंचान्यदभवत्ततः ।
एतद्भगवतः कर्म वदस्व परमाद्भुतम् ॥१२॥

परीक्षित बोले–हे ब्रह्मन् ! भगवान् ने जिस तरह से क्षीर सिंधु-मन्थन किया और जिस लिये अपने को कच्छपरूप बनाकर मन्दराचलको धारण किया, एवं जिस प्रकारसे देवताओंने अमृत पाया, यह तथा और भी जो भगवान् सम्बन्धी चरित्र हों सो आप कृपा करके कहिये ॥ ११ ॥ १५ ॥

त्वया संकथ्यमानेन महिम्ना सात्वतां पतेः ।
नातितृप्यति मे चित्तं सुचिरं तापतापितम् ॥१३॥

आप जो भक्ति के स्वामी भगवान् की कथा कहते हैं; उसे सुन-सुनकर भी मेरे कालान्तर के संतप्त हृदय को शान्ति नहीं होती ॥१३॥

सूत उवाच

संपृष्टो भगवानेवं द्वैपायनसुतो द्विजाः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभिनंद्य हरेर्वीर्यमभ्याचष्टुं प्रचक्रमे ॥१४॥

सूतजी बोले-हे शौनक आदि ऋषियो ! जब परीक्षित ने व्यासजीके पुत्र शुकदेवजीसे इस तरह प्रश्न किया, तब शुकदेवजी राजा की प्रशंसा करके भगवच्चरित्र कहने लगे ॥ १४ ॥

श्रीशुक उवाच

यदा युद्धे सुरैर्दैवा बाध्यमानाः शितायुधैः ।
गतासवो निपतिता नोत्तिष्ठेरन्स्म भूयशः ॥१५॥

शुकदेवजी बोले-जब दैत्यों के तीक्ष्ण शस्त्रों से देवता-गण संग्राम में मरनेलगे और प्राण छूट जाने से फिर पृथ्वी से न उठ सके ॥१५॥

यदा दुर्वाससः शापात्सेंद्रा लोकास्त्रयो नृप ।
निःश्रीकाश्चाभवंस्तत्र नेशुरिज्यादयः क्रियाः॥१६॥

हे राजन् ! जब दुर्वासा* के शाप से इन्द्र सहित तीनों लोक निर्धन होगये और यज्ञादि कर्म रुक गये ॥ १६ ॥

निशाम्यैतत्सुरगणा महेंद्रवरुणादयः ।
नाध्यगच्छन्स्वयं मंत्रैर्मंत्रयंतो विनिश्चयम् ॥१७॥

यह देखकर इन्द्र, वरुण आदि देवताओं ने बहुत विचार किया परन्तु कुछ समझमें न आया॥

ततो ब्रह्मसभां जग्मुर्मेरोर्मूर्धनि सर्वशः ।
सर्वं विज्ञापयांचक्रुः प्रणताः परमेष्ठिने ॥१८॥

तब सब इकट्ठे होकर सुमेर-शिखर पर ब्रह्माजी के पासगये और प्रणाम करके सब वृत्तान्त उनकी सभा में उन्होंने कहा ॥१८॥

स विलोक्येंद्रवाय्वादीन्निःसत्त्वान्विगतप्रभान् ।
लोकानमंगल प्रायानसुरानयथा विभुः ॥१९॥
समाहितेन मनसा संस्मरन्पुरुषं परम् ।
उवाचोत्फुल्लवदनो देवान्स भगवान्परः ॥२०॥

परन्तु भगवान् ब्रह्माजी ने इन्द्र, वरुण आदि देवताओंको और भी सत्व-हीन तथा निस्तेज एवं लोकों को अमङ्गल रूप और दैत्यों को सत्व-सहित तेजयुक्त देखकर मनमें पर पुरुष भगवान्का स्मरण करते हुए एकाग्रता पूर्वक प्रफुल्ल मुख करके कहा ॥

अहं भवो यूयमथोऽसुरादयो मनुष्यतिर्यग्द्रुम धर्मजातयः । यस्यावतारांशकला विसर्जिता व्रजाम सर्वे शरणं तमव्ययम् ॥२१॥

मैं शिव, तुम, दैत्य आदि, मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष तथा स्वेदज जिस परमात्मा के पुरुष अवतार के अंश मात्रसे प्रकट हुए हैं, हम सब उसी की शरण में चलें ॥ २१॥

न यस्य वध्यो न च रक्षणीयो नोपेक्षणीयाऽऽदरणीयपक्षः । अथापि सर्गस्थितिसंयमार्थं धत्ते रजः सत्वतमांसि काले ॥२२॥

उस परमात्मा को न तो कोई मार सकता है और न कोई उसकी रक्षा कर सकता है, न कोई पक्ष उसकी उपेक्षा कर सकता और न आदर कर सकता है, क्योंकि वह निष्पक्ष है, फिर भी वह सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय के लिये सत व तम गुणों को धारण करता है ॥२२ ॥

अयं च तस्य स्थितिपालनक्षणः सत्वं जुषाणस्य भवाय देहिनाम् । तस्माद्व्रजामः शरणं जगद्गुरुं स्वानां स नो धास्यति शं सुरप्रियः ॥२३॥

देह धारियों के कल्याण करने के सतोगुण धारण करने वाले प्रभु का यह समय स्थिति और पालन करनेका है, इसलिये हम लोगोंको जगद्गुरु की शरण चलना चाहिये, वे देवताओं के प्रिय हम सेवकों को अवश्य सुख देंगे ॥२३॥

श्रीशुक उवाच

इत्याभाष्य सुरान्वेधाः सह देवैररिंदम ।
अजितस्य पदं साक्षाज्जगाम तमसः परम् ॥२४॥

हे राजन् ! ब्रह्माजी देवताओंके साथ इस तरह सम्मति करके, उनको साथ लेकर लोकालोक से परे अजित भगवान् के धाम को गये ॥२४॥

तत्रादृष्टस्वरूपाय श्रुतपूर्वाय वै विभो ।
स्तुतिमब्रूत दैवीभिर्गीर्भिस्त्ववहितेंद्रियः ॥२५॥

वहाँ जाकर उन अदृष्ट भगवान् के केवल सुने

*-एक बार रास्तेमें जाते हुए इन्द्रको दुर्वासा मुनि ने अपने गले की माला पहिना दी, उस माला के प्रभाव से पहिनने वाला पुरुष देवताओंमें प्रथम पूज्य हो सकता था, पर इन्द्र ने अभिमान वशात् वह माला ऐरावत के गले में डाल दी, ऐरावत ने उस माला को पैरों से कुचल डाला, तब दुर्वासा ने इन्द्रको शाप दिया कि तुम तीनों लोकों सहित निर्धन हो जाओ ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुए गुणों के आधार पर ही सावधान होकर देववाणी द्वारा ब्रह्माजी उनकी स्तुति करने लगे ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

अविक्रियं सत्यमनंतमाद्यं गुहाशयं निष्कलम प्रतर्क्यम् । मनोऽग्रयानं वचसा निरुक्तं नमामहे देववरं वरेण्यम् ॥२६॥

ब्रह्माजी बोले–हे देववर ! आप निर्विकार, सत्य अनन्त, आद्य, अन्तर्यामी, निरुपाधि, अतर्क्य, मन से भी अधिक वेग वाले, वाणी से न कहने योग्य, सर्वश्रेष्ठ हो, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥२६॥

विपश्चितं प्राणमनोधियात्मनामर्थेंद्रियाभासम निद्रमव्रणम् । छायातपौ यत्र न गृध्रपक्षौ तमक्षरं खं त्रियुगं व्रजामहे ॥२७॥

प्राण, मन, बुद्धि और आत्मा के जानने वाले, विषय और इन्द्रियों के प्रकाश करने वाले, निद्रा-रहित, देह-रहित, अक्षर, आकाशकी भांति व्यापक, तीन युगों में प्रकट होने वाले; जीव के पक्षमें रहने वाली विद्या तथा अविद्या से रहित; आपके हम शरण आये हैं ॥२७॥

अंगस्य चक्रं त्वजयेर्यमाणं मनोमयं पंचदशारमाशु । त्रिणाभि विद्युच्चलमष्टनेमि यदक्षमाहुस्तमृतं प्रपद्ये ॥२८॥

माया से प्रेरित मनोमय पन्द्रह (दश इंद्रियां और पंच प्राण) आरे वाला, शीघ्र गामी, त्रिगुण-रूपी तीन नाभि वाला, बिजली के समान चञ्चल, प्रकृतिरूपी आठ पुट्ठेवाला, जो यह जीवका देहादि रूपी चक्र है उसके धुरी के समान सत्वरूप आप की मैं शरण हूँ ॥२८॥

य एकवर्णं तमसः परं तदलोकमव्यक्तमनंत पारम् । आसांचकारोपसुपर्णमेनमुपासते योगरथेन धीराः ॥२९॥

ज्ञानैक स्वरूप, मायासे परे, अदृश्य, भेद-रहित निर्विकल्प, देश-काल के परिच्छेदसे रहित, नियंता होकर भी जो जीवों की रक्षा के लिये समीपस्थ ही रहते हैं, जिनकी योगरूप द्वारा उपासना की जाती है ॥२९॥

न यस्य कश्चातितितर्ति मायां यया जनो मुह्यति वेद नार्थम् । तं निर्जितात्मात्मगुणं परेशं नमाम भूतेषु समं चरंतम् ॥३०॥

जिनकी माया का कोई पार नहीं पाता, वरन् उससे मोहित होकर मनुष्य आत्म-स्वरूप को भूल जाता है, उस माया तथा माया के गुणों को जीतने वाले, प्राणी मात्र में समान रहने वाले परमेश्वरको हम नमस्कार करते हैं ॥३०॥

इमे वयं तत्प्रिययैव तन्वा सत्वेन सृष्टा बहिरंतराविः । गतिं न सूक्ष्मामृषयश्च विद्महे कुतोऽसुराद्या इतर प्रधानाः ॥३१॥

जिस प्रिय देहरूपी सतोगुण से मैं यह देवता तथा ऋषिजन उत्पन्न हुए हैं, वे बाहर-भीतर प्रकट रहते हुए भी जिनके सूक्ष्म रूपको नहीं जानते, उसे रजोगुणी यथा तमोगुणी दैत्य क्या जानें ? ॥३१॥

पादौ महीयं स्वकृतैव यस्य चतुर्विधो यत्र हि भूतसर्गः । स वै महापूरुष आत्मतंत्रः प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः ॥३२॥

जिस आपकी बनाई हुई पृथ्वी पर चार प्रकार के प्राणी उत्पन्न होते हैं, वह आपके चरण-रूप हैं, ऐसे आप स्वतन्त्र तथा ऐश्वर्यवान् महा पुरुष परमात्मा हम पर कृपा करें ॥३२॥

अंभस्तु यद्रेत उदारवीर्यं सिध्यंति जीवंत्युत वर्धमानाः । लोकास्त्रयोऽथाखिललोकपालाः प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः ॥३३॥

जल जिनका उदार पराक्रम-रूपी वीर्य है कि जिसके द्वारा तीनों लोक और लोकपाल उत्पन्न होते, जीवित रहते, तथा बढ़ते हैं, वे महा विभूति परमात्मा हम पर प्रसन्न हों ॥३३॥

सोमं मनो यस्य समामनंति दिवौकसां वै बलमंध आयुः । ईशो नगानां प्रजनः प्रजानां प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३४॥

देवताओंके अन्नरूप बल और आयु रूप वृक्षों का स्वामी और प्रजा को बढ़ाने वाला यह चंद्रमा जिनका मनहै, वे महाविभूति प्रभु हमपर प्रसन्नहों ॥

अग्निर्मुखं यस्य तु जातवेदा जातः क्रियाकांड निमित्तजन्मा । अंतःसमुद्रेऽनुपचन्स्वधातून्प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३५॥

धनको उपजाने वाला, यज्ञादि कर्म की प्रवृत्ति के लिये प्रकट होने वाला और पेट में जठराग्निरूप से भोजन को पचाने वाला, अग्नि जिनका मुख है, वे महाविभूति परमात्मा हम पर प्रसन्न हों ॥३५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यच्चक्षुरासीत्तरणिर्देवयानं त्रयीमयो ब्रह्मण एष धिष्ण्यम् । द्वारं च मुक्तेरमृतं च मृत्युः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३६॥

अर्चिरादि मार्गोंका देवता, वेदमय, परब्रह्म की उपासना का स्थान, मुक्ति का द्वार, अमृत तथा मृत्यु रूप यह सूर्य जिनका नेत्र है, वे महा विभूति परमेश्वर हम पर प्रसन्न हों ॥ ३६ ॥

प्राणादभूद्यस्य चराचराणां प्राणः सहो बल ओजश्च वायुः । अन्वास्म सम्राजमिवानुगा वयं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३७॥

स्थावर तथा जङ्गम का प्राण रूप, इन्द्रिय, मन और शरीर का बल रूप तथा जिस प्रकार दास राजा का अनुकरण करता है, वैसे ही हम सब जिसका अनुसरण करतेहैं, वह वायु जिनके प्राणों से उत्पन्न हुआ है, वह महाविभूति परमात्मा हम पर प्रसन्न हों ॥३७॥

श्रोत्रादिशो यस्य हृदश्च खानि प्रजज्ञिरे खं पुरुषस्य नाभ्याः । प्राणेंद्रियात्मासुशरीरकेतं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३८॥

जिनकी श्रवणेन्द्रिय से दिशायें उत्पन्न हुई हैं, हृदय से देह के छिद्र और नाभि से प्राण, इन्द्रिय, मन, नाग, कूर्म आदि प्राण और शरीर का आश्रय रूप आकाश उत्पन्न हुआ है, वे महाविभूति हम पर कृपा करें ॥ ३८ ॥

बलान्महेंद्रस्त्रिदशाः प्रसादान्मन्योर्गिरीशो धिषणाद्विरिंचः । खेभ्यश्च छंदांस्यृषयो मेढ्रतः कः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३९॥

जिनके बलसे इन्द्र, दयासे देवता, क्रोधसे रुद्र बुद्धिसे ब्रह्मा, छिद्रोंसे वेद और ऋषि तथा उपस्थ से प्रजापति प्रकट हुए हैं, वे महाविभूति हम पर प्रसन्न हों ॥३९॥

श्रीर्वक्षसः पितरश्छायया ऽऽसन्धर्मः स्तनादितरः पृष्ठतोऽभूत् । द्यौर्यस्य शीर्ष्णोऽप्सरसो विहारात्स प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४०॥

जिनके वक्षःस्थलसे लक्ष्मी, छायासे पितर, स्तनसे धर्म, पीठ से अधर्म, शिर से स्वर्ग और विहार से अप्सरायें प्रकट हुई हैं, वे महा विभूति हम पर कृपा करें ॥४०॥

विप्रो मुखं ब्रह्म च यस्य गुह्यं राजन्य आसीद्भुज योर्बलं च । ऊर्वोर्विडोजोंऽघ्रिरवेदशूद्रौ प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४१॥

जिनके मुख से ब्राह्मण तथा रहस्य-पूर्ण वेद, भुजा से क्षत्रिय और बल, जंघा से वैश्य और निपुणता और चरणोंसे शूद्र तथा सेवाकी उत्पत्ति हुई है, वे महाविभूति परमात्मा हमपर कृपा करें ॥

लोभोऽधरात्प्रीतिरुपर्यभूद्द्युतिर्नस्तः पशव्यः स्पर्शेन कामः । भ्रुवोर्यमः पक्ष्मभवस्तु कालः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४२॥

जिनके नीचे के होंठ से लोभ, ऊपर के होंठ से प्रीति तथा शीघ्र नासिकासे कान्ति, स्पर्शसे पशुओं का काम, भौंह से यम, पलक से काल उत्पन्न हुआ है, वे महाविभूति हम पर प्रसन्न हों ॥४२॥

द्रव्यं वयः कर्मगुणान्विशेषं यद्योगमायाविहितान्वदंति । यद्दुर्विभाव्यं प्रबुधापबाधं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४३॥

जिनकी योग-माया द्वारा द्रव्य, काल, कर्म, गुण और भौतिक प्रपंच हुए हैं और उन्हीं प्रपंचों का निरूपण करना अशक्य जानकर विद्वान् पुरुष त्याग देते हैं, वे महाविभूति प्रभु हमपर कृपाकरें ॥

नमोऽस्तु तस्मा उपशांतशक्तये स्वाराज्यलाभ प्रतिपूरितात्मने । गुणेषु मायारचितेषु वृत्तिभिर्न सज्जमानाय नभस्वदूतये ॥४४॥

शान्त शक्ति स्वरूपानन्द के लाभ से परिपूर्ण माया के रचे हुए गुणों में वृत्तियों से आसक्त न होने वाले, पवन के समान लीला करने वाले प्रभु को मेरा नमस्कार है ॥४४॥

स त्वं नो दर्शयात्मानमस्मत्करणगोचरम् । प्रपन्नानां दिदृक्षूणां सस्मितं ते मुखांबुजम् ॥४५॥

हम लोगों को आपके दर्शनों की अभिलाषा है इसलिये जिस प्रकार भी हम अपनी इन्द्रियों द्वारा आपका दर्शन कर सकें, उसी प्रकार मंद मुसकान मय अपने मुख कमल का हमें दर्शन दीजिये ॥४५॥

तैस्तैः स्वेच्छाधृतै रूपैः काले काले स्वयं विभो । कर्म दुर्विषहं यन्नो भगवांस्तत्करोति हि ॥४६॥

हे प्रभु ! आप समय-समय पर अवतार लेकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनके द्वारा ऐसे-ऐसे काम करते हो जो हम लोगों से नहीं बन सकते ॥४६॥

क्लेशभूर्यल्पसाराणि कर्माणि विफलानि च ।
देहिनां विषयार्तानां न तथैवार्पितं त्वयि ॥४७॥

विषयों में आसक्त रहने वाले मनुष्य ऐसे कर्म करते हैं, जो बहुतही क्लेश देकरभी स्वल्प सारमय होते हैं, या वास्तव में बिलकुल व्यर्थ ही होते हैं, परन्तु जो कर्म आपको अर्पण किये जाते हैं वे ऐसे नहीं होते ॥ ४७॥

नावमः कर्मकल्पोऽपि विफलायेश्वरार्पितः ।
कल्पते पुरुषस्यैष स ह्यात्मा दयितो हितः ॥४८॥

थोड़ा और कर्म का आभास रूप कर्म भी यदि ईश्वर के अर्पण किया जाय तो वह व्यर्थ नहीं जाती, क्योंकि प्रभु मनुष्योंके प्रिय, हितकारी और आत्म-रूप हैं ॥४८॥

यथा हि स्कंधशाखानां तरोर्मूलावसेचनम् ।
एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषामात्मनश्चहि ॥४९॥

जैसे पेड़ की जड़में जल सींचनेसे उसके स्कंध तथा शाखायें स्वयं तृप्त होजातीहैं, वैसेही सर्वात्मा विष्णु भगवान् का आराधन करनेसे सबका आराधन हो जाता है ॥ ४९ ॥

नमस्तुभ्यमनंताय दुर्वितर्क्यात्मकर्मणे ।
निर्गुणाय गुणेशाय सत्त्वस्थाय च सांप्रतम्॥५०॥

तर्क रहित, अनन्त, निर्गुण, गुण-पति और सत्व गुणमें स्थित भगवान्को हम प्रणाम करते हैं॥

इति श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

छठवां अध्याय

(भगवदुक्त-सिन्धु-विमन्थन-युक्त)

श्रीशुक उवाच

एवं स्तुतः सुरगणैर्भगवानहरिरीश्वरः ।
तेषामा विरभूद्राजन्सहस्रार्कोदयद्युतिः ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले-हे राजन् ! जब देवताओं ने इस प्रकार भगवान् की स्तुति की, तब हज़ारों सूर्योदय के समान तेजवान् श्रीभगवान् प्रकटहुए ॥

तेनैव महसा सर्वे देवाः प्रतिहतेक्षणाः ।
नापश्यन्खं दिशः क्षोणिमात्मानं च कुतो विभुम्२

उस तेज के मारे सब देवताओंकी आँखें मुंद गईं, जिससे आकाश, पृथ्वी या दिशायें कुछ न दीखता था, उन लोगों को अपना शरीर भी दृष्टि न आता था, फिर वे प्रभु को क्या देख सकते थे ?

विरिंचो भगवान्दृष्ट्वा सह शर्वेण तां तनुम् ।
स्वच्छां मरकतश्यामां कंजगर्भारुणेक्षणाम् ॥ ३ ॥
तप्तहेमावदातेन लसत्कौशेयवाससा ।
प्रसन्नचारुसर्वांगीं सुमुखीं सुंदरभ्रुवम् ॥ ४ ॥
महामणिकिरीटेन केयूराभ्यां च भूषिताम् ।
कर्णाभरणनिर्भातकपोल श्रीमुखांबुजाम् ॥ ५ ॥
कांचीकलापवलयहारनूपुरशोभिताम् ।
कौस्तुभाभरणां लक्ष्मीं बिभ्रतीं वनमालिनीम्॥६॥
सुदर्शनादिभिः स्वास्त्रैर्मूर्तिमद्भिरुपासिता ।
तुष्टाव देवप्रवरः सशर्वः पुरुषं परम् ।
सर्वामरगणैः साकं सर्वांगैरवनिं गतैः ॥ ७ ॥

उस स्वरूप को केवल ब्रह्माजी तथा महादेवजी ही देख सके, जो कि मरकत मणिके समान श्याम वर्ण, अति उज्ज्वल, कमल के गर्भकी भांति अरुण नेत्र वाला, तपे हुए स्वर्ण के समान कान्तिमय पीतांबर धारी, प्रसन्न तथा सुन्दर अङ्गों से युक्त, सुन्दर मुख, सुन्दर भौहों वाला, अमूल्य मणियों से जटित किरीट तथा भुजबन्द से शोभायमान, कर्ण भूषणों की कान्ति से देदीप्यमान कपोलों से शोभायमान् मुखारविंद वाला, कटिमेखला, कङ्कण, हार व नूपुर से शोभायुक्त, कौस्तुभ मणि धारण किये हुए; वनमाला पहिने हुए, लक्ष्मीजीको धारण किये हुए, मूर्त्तिमान अपने सुदर्शन आदि अस्त्रों से सेवित सुन्दर था, ऐसे स्वरूपधारी भगवान्को पृथ्वी पर साष्टांग दण्डवत् करके देवताओं सहित ब्रह्माजी तथा शिवजी स्तुति करने लगे ॥ ३-७ ॥

ब्रह्मोवाच

अजातजन्मस्थितिसंयमायागुणाय निर्वाणसुखार्णवाय । अणोरणिम्नेऽपरिगण्यधाम्ने महानुभावाय नमो नमस्ते ॥ ८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्माजी बोले–जन्म, स्थिति तथा नाश-रहित, निर्गुण, अपार मोक्ष-सुख-सिन्धु, अति सूक्ष्म, अपरिमित स्वरूप तथा महानुभाव परमात्मा को हम बारम्बार प्रणाम करते हैं ॥८॥

रूपं तवैतत्पुरुषर्षभेज्यं श्रेयोर्थिभिर्वैदिकतांत्रिकेण । योगेन धातः सह नस्त्रिलोकान्पश्याम्यमुष्मिन्नु ह विश्वमूर्तौ ॥ ९ ॥

हे पुरुषोत्तम ! कल्याण की इच्छा करने वाले पुरुष वैदिक तथा तांत्रिक उपायोंद्वारा इसी स्वरूप की उपासना करते हैं, हे धाता ! मैं अपने सहित तीनों लोकों को इस विश्वरूपमें देख रहा हूँ ॥९॥

त्वय्यग्र आसीत्त्वयि मध्य आसीत्त्वय्यंत आसी दिदमात्मतंत्रे । त्वमादिरंतो जगतोऽस्य मध्यं घटस्य मृत्स्नेव परः परस्मात् ॥१०॥

यह संसार आपके स्वतन्त्र स्वरूप में पहले था अभी है और आगे भी रहेगा, जैसे घड़े के आदि मध्य या अन्त में मिट्टी ही है, वैसे ही इस विश्व के आदि, मध्य तथा अन्त में तुम्हीं प्रकृति से परे रहने वाले हो ॥१०॥

त्वं मायया त्माश्रयया स्वयेदं निर्माय विश्वं तदनुप्रविष्टः । पश्यंति युक्ता मनसा मनीषिणो गुणव्यवायेऽप्यगुणं विपश्चितः ॥११॥

आप अपने आधीन तथा आश्रित रहने वाली माया द्वारा इस जगत को रचकर उसमें प्रवेश करके रहते हो, इसलिये विवेकी और शास्त्रवेत्ता पुरुष सृष्टि होने पर भी आपको मनसे निर्गुण ही समझते हैं ॥ ११ ॥

यथाऽग्निमेधस्यऽमृतं च गोषु भुव्यन्नमंबूद्यमने च वृत्तिम् । योगैर्मनुष्या अधियंति हि त्वां गुणेषु बुद्ध्या कवयो वदंति ॥१२॥

जैसे काष्ठमें से अग्नि, गायोंसे घृतरूपी अमृत पृथ्वी से अन्न, जल और उद्यमसे जीविका (उपाय द्वारा) मिल सकतीहै, वैसेही विद्वान पुरुष विचार शक्ति द्वारा देहादिमें आपको प्राप्त कर लेते हैं ॥

तं त्वां वयं नाथ समुज्जिहानं सरोजनाभाऽति चिरेप्सितार्थम् । दृष्ट्वा गता निर्वृतिमद्य सर्वे गजा दवार्ता इव गांगमंभः ॥१३॥

हे कमलनाभ स्वामिन् ! आपको प्रकट देखकर हम सबको ऐसा आनन्द हुआ है जैसे दावाग्नि से जले हुए हाथी गंङ्गाजल पीकर आनंदित होते हैं ॥

स त्वं विधत्स्वाखिललोकपाला वयं यदर्थास्तव पादमूलम् । समागतास्ते बहिरंतरात्मन्किंचान्य विज्ञाप्यमशेषसाक्षिणः ॥१४॥

जिस प्रयोजन से हम सब लोकपाल आपके चरणारविन्दों की शरण हुए हैं, उसे आप पूरा कीजिये, आप सर्व साक्षी हैं इसलिये जतलाने की आवश्यकता नहीं है ॥१४॥

अहं गिरित्रश्च सुरादयो ये दक्षादयोऽग्नेरिव केतवस्ते । किं वा विदामेश पृथग्विभाता विधत्स्व शं नो द्विजदेवमंत्रम् ॥१५॥

हे नाथ ! मैं, महादेव, देवता और दक्ष आदि प्रजापति अग्नि की चिनगारी की भांति आपसे जुदे जान पड़ते हैं और अपने कल्याण को नहीं जानते, इसलिये जिस प्रकार से ब्राह्मण तथा देवताओं को सुख होसके वह आपही उपाय करें ॥१५॥

श्रीशुक उवाच

एवं विरिंचादिभिरीडितस्तद्विज्ञाय तेषां हृदयं यथैव । जगाद जीमूतगभीरया गिरा बद्धांजलीन्संवृतसर्वकारकान् ॥१६॥

शुकदेवजी बोले–जब ब्रह्मादि देवताओं ने इस प्रकार स्तुति की, तब स्तुति प्राप्त भगवान् ने उनके हृदय का अभिप्राय समझकर, सब इन्द्रियों को नियम में रखकर हाथ जोड़े खड़े हुए देवताओं से मेघ के समान गंभीर वाणी से कहा ॥१६॥

एक एवेश्वरस्तस्मिन्सुरकार्ये सुरेश्वरः । विहर्तुकामस्तानाह समुद्रोन्मथनादिभिः ॥१७॥

यद्यपि देवताओं के स्वामी भगवान् अकेले ही इस काम को कर सकते थे, फिर भी समुद्र-मंथन आदि लीला करने के विचार से कहने लगे ॥१७॥

श्रीभगवानुवाच

हंत ब्रह्मन्नहो शंभो हे देवा मम भाषितम् । शृणुतावहिताः सर्वे श्रेयो वः स्याद्यथासुराः॥१८॥

भगवान् बोले–हे ब्रह्मा ! हे महादेव ! हे देवताओ ! तुम मेरा वचन सावधान होकर सुनो, जिससे तुम्हारा कल्याण होगा ॥१८॥

यात दानवदैतेयैस्तावत्संधिर्विधीयताम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कालेनानुगृहीतैस्तैर्यावद्धो भव आत्मनः ॥१९॥

तुम जाओ और अपने उदय-काल आने तक के लिये दैवी कृपा पाये हुए दैत्य और दानवों के साथ सन्धि करलो ॥१९॥

अरयोऽपि हि संधेयाः सति कार्यार्थगौरवे ।
अहिमूषकवद्देवा अर्थस्य पदवीं गतैः ॥२०॥

अपना कार्य सिद्ध करने के लिये शत्रु से भी मिलना उचित है, फिर काम सिद्ध होजाने पर जैसा मूस* के साथ सर्प ने बर्ताव किया था वैसा ही अपने शत्रु के प्रति करना चाहिये २०

अमृतोत्पादने यत्नः क्रियतामविलंबितम् ।
यस्य पीतस्य वै जंतुर्मृत्युग्रस्तोऽमरो भवेत् ॥२१॥

अब तुम शीघ्र ही अमृत उत्पन्न होनेका उपाय करो, जिसे पीकर मृत्यु-ग्रसित जीव अमर हो जाता है ॥२१॥

क्षिप्त्वा क्षीरोदधौ सर्वा वीरुत्तृणलतौषधीः ।
मंथानं मंदरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ॥२२॥
सहायेन मया देवा निर्मथध्वमतंद्रिताः ।
क्लेशभाजो भविष्यंति दैत्या यूयं फलग्रहाः ॥२३॥

क्षीर-सिन्धु में समस्त वेल, तृण लता व औषधियां डालकर, मन्दराचल को मन्थनी बनाकर, वासुकि सर्प की नेती करके, मेरी सहायता द्वारा आलस्य छोड़कर उसे मन्थन करो, हे देवताओ ! ऐसा करने से दैत्यों को केवल क्लेश होगा और तुमको फल मिलेगा ॥२२॥२३॥

यूयं तदनुमोदध्वं यदिच्छंत्यसुराः सुराः ।
न संरंभेण सिध्यंति सर्वेऽर्थाः सांत्वया यथा ॥२४

हे देवताओ ! इस समय दैत्य जैसी इच्छा करें उसे स्वीकृत करो । जैसा फल शान्ति द्वारा मिलता है वैसा क्रोध से नहीं ॥२४॥

न भेतव्यं कालकूटाद्विषाज्जलधिसंभवात् ।
लोभः कार्यो न वो जातु रोषः कामस्तु वस्तुषु २५॥

तुम लोग समुद्र से निकले हुए काल-कूट का भय न करना और निकली हुई वस्तुओं का लोभ तथा मन्थन में क्रोध या ईर्ष्या न करना ॥२५॥

*-किसी चूहे ने एक सर्प को पिटारी में से उसकी विनय पर निकाल दिया था, परन्तु सर्प ने बाहर आते ही चूहे को खा लिया था ।

श्रीशुक उवाच

इति देवान्समादिश्य भगवान्पुरुषोत्तमः ।
तेषामंतर्दधे राजन्स्वच्छंदगतिरीश्वरः ॥२६॥

शुकदेवजी बोले-हे राजन् ! इस प्रकार देवताओं को आज्ञा देकर स्वतन्त्र गति वाले पुरुषोत्तम भगवान् उन देवताओं के बीचसे अंतर्धान होगये॥

अथ तस्मै भगवते नमस्कृत्य पितामहः ।
भवश्च जग्मतुः स्वं स्वं धामोपेयुर्बलिं सुराः॥२७॥

ब्रह्माजी, महादेवजी के सहित उन भगवान्को नमस्कार करके अपने २ स्थान को चले गये और देवतागण बलि के पास गये ॥२७॥

दृष्ट्वारीनप्यसंयत्ताञ्जातक्षोभान्स्वनायकान् ।
न्यषेधद्दैत्यराट्छ्लोक्यः संधिविग्रहकालवित्॥२८॥

अपने शत्रुओं को सहजही में आया हुआ देख कर भी दैत्यगण क्रोधित हो उठे, परन्तु सन्धि और शत्रुताका अवसर जाननेवाले कीर्त्ति के योग्य बलि ने उन्हें रोक दिया ॥२८॥

ते वैरोचनिमासीनं गुप्तं चासुरयूथपैः ।
श्रिया परमया जुष्टं जिताशेषमुपागमन् ॥२९॥

दैत्य सेनापतियों से रक्षित, सर्वजित, परमोत्तम लक्ष्मी द्वारा सेवित बलि को सभामें बैठा हुआ देखकर देवता उसके पास गये ॥२९॥

महेंद्रः श्लक्ष्णया वाचा सांत्वयित्वा महामतिः ।
अभ्यभाषत तत्सर्वं शिक्षितं पुरुषोत्तमात् ॥३०॥

महा बुद्धिवान् इन्द्र ने मीठे वचनों से सांत्वना देते हुए पुरुषोत्तम भगवान् से सीखी हुई बात राजा बलि से कही ॥३०॥

तदरोचत दैत्यस्य तत्रान्ये येऽसुराधिपाः ।
शंबरोऽरिष्टनेमिश्च ये च त्रिपुरवासिनः ॥३१॥

इस बात को बलि तथा दूसरे शंवर, अरिष्टनेमी और त्रिपुर में रहनेवाले दैत्यपतियोंने मानलिया ॥

ततो देवाऽसुराः कृत्वा संविदं कृतसौहृदाः ।
उद्यमं परमं चक्रुरमृतार्थे परंतप ॥३२॥

हे राजन् ! तब दैत्य तथा देवतागण ने परस्पर मेल करके, शर्तें ठहरा कर, अमृत के लिये परम उद्योग किया, ॥३२॥

ततस्ते मंदगिरिमोजसोत्पाट्य दुर्मदाः ।
नदंत उदधिं निन्युः शक्ताः परिघबाहवः ॥३३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वज्र के समान भुज-दण्ड वाले दुर्मद देवता और दैत्य नाद करते हुए, पराक्रम-पूर्वक मन्दराचल को उठाकर समुद्र की ओर चले ॥३३॥

दूरभारोद्वहश्रांताः शक्रवैरोचनादयः ।
अपारयंतस्तं वोढुं विवशा विजहुः पथि ॥३४॥

बहुत दूरी होने के कारण जब इन्द्र तथा बलि आदि सभी उसके भार से थक गये और उसको थाम न सके तो उन्होंने विवश होकर रास्ते ही में छोड़ दिया ॥३४॥

निपतन्स गिरिस्तत्र बहूनमरदानवान् ।
चूर्णयामास महता भारेण कनकाचलः ॥३५॥

वहाँ उस मंदराचलने गिरते२ कितनेही देवता तथा दैत्यों को अपने भार से चूर्ण कर दिया ॥३५॥

तांस्तथा भग्नमनसो भग्नबाहूरुकंधरान् ।
विज्ञाय भगवांस्तत्र बभूव गरुडध्वजः ॥३६॥

हाथ जंघा और गर्दन टूट जानेसे टूटे हुए मन वाले देवता तथा दैत्यों को अत्यन्त दुःखी समझ कर गरुड़ध्वज भगवान् शीघ्र ही वहाँ प्रकट हुए ॥

गिरिपातविनिष्पिष्टान्विलोक्यामरदानवान् ।
ईक्षया जीवया मास निर्जरान्निर्व्रणान्यथा ॥३७॥

पर्वतके गिरने से पिचले हुए देवताओं तथा दैत्यों को प्रभु ने देखकर दृष्टि द्वारा ही जीवित कर के उनके दुःख और घाव हरण कर लिये ॥३७॥

गिरिं चारोप्य गरुडे हस्तेनैकेन लीलया ।
आरुह्य प्रययावब्धिं सुरासुरगणैर्वृतः ॥३८॥

और लीलापूर्वक पर्वतको एक हाथसे उठाकर गरुड़ पर रखकर तथा स्वयं उसपर सवार होकर देवता तथा दैत्योंके साथ समुद्र पर पहुंचे ॥३८॥

अवरोप्य गिरिं स्कंधात्सुपर्णः पततां वरः ।
ययौ जलांत उत्सृज्य हरिणा स विसर्जितः॥३९॥

फिर पक्षिराज गरुड़ उस पर्वत को कन्धे पर से उतार कर, जलके किनारे रखकर और प्रभु से आज्ञा माँगकर वहाँ से चला गया ॥३९॥

इति श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सातवां अध्याय

(कच्छपावतार)

श्रीशुक उवाच

ते नागराजमामंत्र्य फलभागेन वासुकिम् ।
परिवीय गिरौ तस्मिन्नेत्रमब्धिं मुदान्विताः॥ १ ॥
आरेभिरे सुसंयत्ता अमृतार्थं कुरूद्वह ।
हरिः पुरस्ताज्जगृहे पूर्वं देवास्ततोऽभवन् ॥ २ ॥

शुकदेवजी बोले–देवता और दैत्योंने नागराज वासुकि को अमृत में से भाग देने का वचन देकर उसे नेती बनाया और उसे मन्दराचल के चारों ओर लपेट कर आनन्द-सहित सावधान होकर समुद्र-मन्थन प्रारंभ किया, उस समय भगवान् ने वासुकि का मुख पकड़ा और देवतागण उनके पीछे हो लिये ॥१॥२॥

तन्नैच्छन्दैत्यपतयो महापुरुषचेष्टितम् ।
न गृह्णीमो वयं पुच्छमहेरंगममंगलम् ॥ ३ ॥

भगवान्के अभिप्रायको न समझकर दैत्यों ने इस बातको अङ्गीकार न किया और कहा कि हम सर्प की पूंछ नपकड़ेंगे क्योंकि यह अमङ्गलकारी होतीहै॥

स्वाध्यायश्रुतसंपन्नाः प्रख्याता जन्मकर्मभिः ।
इति तूष्णीं स्थितान्दैत्यान्विलोक्य पुरुषोत्तमः ४॥
स्मयमानो विसृज्याग्रं पुच्छं जग्राह सामरः ।
कृतस्थानविभागास्त एवं कश्यपनंदनाः ॥ ५ ॥
ममंथुः परमायत्ता अमृतार्थं पयोनिधिम् ।
मथ्यमानेऽर्णवे सोऽद्रिरनाधारो ह्यपोऽविशत् ॥६॥

क्या हम वेदाध्ययन तथा शास्त्र-पठनसे संपन्न नहीं है ? क्या हम जन-कर्म से प्रसिद्ध नही हैं ? ऐसा कहकर दैत्य चुप होकर खड़े होगये, उन्हें देखकर भगवान् पुरुषोत्तमने हँसकर सर्प का सिर छोड़ दिया और देवताओं सहित उसकी पूंछ को पकड़ लिया, इस भांति कश्यपजी के उन पुत्रों ने अपने-अपने स्थान नियत करके सावधानीके साथ अमृत के लिये समुद्र-मंथन प्रारंभ किया, किन्तु मन्दराचल नीचे से आधार न होने के कारण बलवानों के अधिक साधने पर भी जलमें डूबगया ॥

म्रियमाणोऽपि बलिभिर्गौरवात्पांडुनंदन !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ते सुनिर्विण्णमनसः परिम्लानमुखश्रियः ।
आसन्स्वपौरुषे नष्टे दैवेनातिबलीयसा ॥ ७॥

परम बलवान् दैव के प्रभाव से जब उनका पुरुषार्थ नष्ट होगया तब वे मनमें अत्यन्त दुःखी हुए और उनके मुखका तेज जाता रहा ॥७॥

विलोक्य विघ्नेशविधिं तदेश्वरो दुरंतवीर्योऽवित थाभिसंधिः । कृत्वा वपुः काच्छपमद्भुतं महत्प्र विश्य तोयं गिरिमुज्जहार ॥ ८॥

विघ्नेश्वर द्वारा किये हुए विघ्नको समझ कर अनन्त शक्ति तथा सत्य सङ्कल्प भगवान् कच्छप अवतार धारण कर जलमें प्रविष्ट हुए और उस पर्वत को बाहर ले आये ॥८॥

तमुत्थितं वीक्ष्य कुलाचलं पुनः समुत्थिता निर्मथितुं सुरासुराः । दधार पृष्ठेन स लक्षयोजन प्रस्तारिणा द्वीप इवापरो महान् ॥ ९ ॥

उसे ऊपर उठा हुआ देखकर देवता और दैत्य मन्थन करने के लिये फिरसे खड़े होगये तब भगवान् ने एक लाख योजन की पीठ करके उस पर्वत को अपने ऊपर धारण किया, उस समय कच्छप भगवान् की पीठ ऐसे जान पड़ती थी मानो समुद्र में दूसरा द्वीप प्रकट होगया हो ॥९॥

सुरासुरेंद्रैर्भुजवीर्यवेपितं परिभ्रमंतं गिरिमंग पृष्ठतः । विभ्रत्तदा वर्त्तनमादिकच्छपो मेनेंऽगकंडू यनमप्रमेयः ॥१०॥

हे राजन् ! देवपति तथा दैत्यपति अपनी भुजाओं के बल से उस पर्वत को कम्पित कर रहे थे, परन्तु अप्रमेय कच्छप भगवान् उस कम्पित पर्वत के फिरने को अपनी पीठ का खुजलाना सा मानते थे ॥१०॥

तथाऽसुरानाविशदासुरेण रूपेण तेषां बलवीर्य मीरयन् । उद्दीपयन्देवगणांश्च विष्णुर्दैवेन नागेंद्र मबोधरूपः ॥११॥

उसी प्रकार भगवान् ने दैत्यों में दैत्य रूप से प्रवेश करके उनको उत्साहित किया तथा सर्प में भी गुप्त रूप से प्रवेश किया ॥११॥

उपर्यगेंद्रं गिरिराडिवान्य आक्रम्य हस्तेन सहस्रबाहुः । तस्थौ दिवि ब्रह्मभवेंद्रमुख्यैरभिष्टु वद्भिः सुमनोऽभिवृष्टः ॥१२॥

दूसरे पर्वत के समान सहस्र भुजायें धारण किये हुए भगवान् मन्दराचल को अपने हाथों में दबाकर खड़े रहे, उस समय ब्रह्माजी, महादेवजी तथा इन्द्रादिक देवता स्तुति करते हुए फूल बरसाने लगे ॥१२॥

उपर्यधश्चात्मनि गोत्रनेत्रयोः परेण ते प्राविशता समेधिताः । ममंथुरब्धिं तरसा मदोत्कटा महाद्रिणा क्षोभितनक्रचक्रम् ॥१३॥

भगवान् ऊपर अपने स्वरूप से, नीचे कच्छप रूपसे, एवं पर्वत, वासुकिनाग, देव तथा दैत्योंमें उन्हीं के रूपसे थे, उनके द्वारा वृद्धि पाये हुए मदोन्मत्त देवता तथा दैत्य ज़ोर से मन्थन करने लगे, जिस से सिन्धु-वासी मकर-समूह घबरा उठा ॥१३॥

अहींद्रसाहस्रकठोरदृङ्मुखश्वासाग्निधूमाहतवर्च सोऽसुराः । पौलोमकालेयबलील्वलादयो दवाग्नि दग्धाः सरला इवाभवन् ॥१४॥

वासुकि नाग के हज़ारों विकराल नेत्र, मुख तथा श्वासों से निकले हुए अग्नि तथा धुएं से पौलोम, कालेय, बलि और इल्वल आदि दैत्योंका तेज हत होगया, तथा वे देवदारु के वृक्ष की नाईं काले पड़ गये ॥१४॥

देवांश्च तच्छ्वासशिखाहतप्रभान्धूम्रांबरस्रग्वर कंचुकाननान् । समभ्यवर्षन्भगवद्वशा घना बभुः समुद्रोर्म्युपगूढवायवः ॥१५॥

वासुकि की श्वांसों की लपटों से देवता भी कान्ति-हीन होगये और उनके वस्त्र, मालायें श्रेष्ठ कवच आदि का रंग बदल गया, तब उनपर प्रभु की दया से बादल बरसने लगे तथा समुद्र की लहरों से मिली हुई ठंडी वायु चलने लगी ॥१५॥

मथ्यमाने तदा सिंधौ देवासुरवरूथपैः ।
यदा सुधा न जायेत निर्ममंथाजितः स्वयम् ॥१६॥

इस प्रकार देवता तथा दैत्य यूथपति समुद्र को मथने लगे, परन्तु जब अमृत न निकला, तब स्वयं अजित भगवान् भी मंथन में लग गये ॥१६॥

मेघश्यामः कनकपरिधिः कर्णविद्योतविद्युन्मूर्ध्नि भ्राजद्विलुलितकचः स्रग्धरो रक्तनेत्रः । जैत्रैर्दोर्भि र्जगदभयदैर्दंदशूकं गृहीत्वा मथ्नन्मथ्ना प्रतिगिरि रिवाशोभताथो धृताद्रिः ॥१७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उस समय मेघ के समान सांवले अङ्गों पर पीताम्बर पहिने हुए, कानों में बिजली के समान कुण्डल झलकाते, बिखरे हुए सिर के बालों से देदीप्यमान; माला धारण कियेहुए, अरुण नेत्रकिये तथा पर्वत को धारण किये हुए जगत् को अभय करने वाले तथा जय करने वाले भगवान् अपनी भुजाओं से सर्प को पकड़ कर पर्वत द्वारा समुद्र को मथते हुए ऐसे शोभायमान होते थे जैसे पर्वत के निकट दूसरा पर्वत हो ॥१७॥

निर्मथ्यमानादुदधेरभूद्विषं महोल्वणं हालहला ह्वमग्रतः । संभ्रांतमीनोन्मकरादिकच्छपात्तिमिद्विप ग्राहतिमिंगिलाकुलात् ॥१८॥

मन्थन करने से जिसके अन्दर निवास करने वाले मच्छ, कच्छ तथा मगर आदि जीव व्याकुल होरहे थे तथा तिमि, जलके हाथी, ग्राह और तिमिंगल भी दुखी होरहे थे, उस समुद्र को मथते २ पहले बिलकुल साफ़ विष उत्पन्नहुआ कि जिस पर कोई उपाय नहीं चल सकता ॥१८॥

तदुग्रवेगं दिशि दिश्युपर्यधो विसर्पदुत्सर्पदसह्य मप्रति । भीताः प्रजा दुद्रुवुरंग सेश्वरा अरक्ष्य माणाः शरणं सदाशिवम् ॥१९॥

उस महा उग्र वेग वाले विषको चारों ओर से सब दिशाओं में फैलता हुआ देखकर लोकपालों सहित समस्त निरुपाय प्रजा कहीं भी शरण न पा कर भयभीत होती हुई सदा कल्याण करने वाले महादेवजी के शरण में गई ॥१९॥

विलोक्य तं देववरं त्रिलोक्या भवाय देव्या ऽभिमतं मुनीनाम् । आसीनमद्रावपवर्गहेतोस्तपोजुषाणं स्तुतिभिः प्रणेमुः ॥२०॥

तीनों लोकों के कल्याण के लिये पार्वतीजी के कैलाश पर बैठे हुए मुनियों के स्वीकार किये हुए तपको उन्हीं की मोक्ष के लिये सेवन करते हुए देवताओं में उत्तम महादेवजीको देखकर सब लोग प्रणाम करके स्तुति करने लगे ॥२०॥

प्रजापतय ऊचुः

देवदेव महादेव भूतात्मन्भूतभावन । त्राहि नः शरणापन्नांस्त्रैलोक्यदहनाद्विषात् ॥२१॥

प्रजापति बोले—हे देवदेव ! हे महादेव ! हे भूतात्मन् ! हे भूतभावन ! त्रिलोकीको भस्म करते हुए इस हलाहल से डरकर हम लोग आपकी शरण में आये हैं आप हमारी रक्षा करें ॥२१॥

त्वमेकः सर्वजगत ईश्वरो बंधमोक्षयोः । तं त्वामर्चंति कुशलाः प्रपन्नार्तिहरं गुरुम् ॥२२॥

इस समस्त संसार के ईश्वर तथा बन्ध-मोक्ष के देने वाले एक आपही हैं, इसलिये चतुर मनुष्य शरणागतों के दुःख दूर करने वाले तथा गुरु आप की पूजा करते हैं ॥२२॥

गुणमय्या स्वशक्त्याऽस्य सर्गस्थित्यप्ययान्विभो । धत्से यदा स्वदृग्भूमन्ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम्॥२३॥

हे भूमन् ! हे प्रभु ! अपनी सगुण शक्ति द्वारा जब आप इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करते हो, तब ब्रह्मा, विष्णु व महादेव नाम धारण करते हो ॥२३॥

त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्भावभावनः । नानाशक्तिभिराभातस्त्वमात्मा जगदीश्वरः ॥२४॥

आपही देव, मनुष्य, पशु आदि त्रिवर्गके उत्पन्न करने वाले और परम गुह्य ब्रह्म हो, आपही जगत् पति, जगत्-आत्मा तथा अनेक प्रकार की शक्तियों द्वारा प्रतीत होने वाले हो ॥२४॥

त्वं शब्दयोनिर्जगदादिरात्मा प्राणेंद्रियद्रव्य गुणस्वभावः । कालः क्रतुः सत्यमृतं च धर्मस्त्व ण्यक्षरं यत्त्रिवृदामनंति ॥२५॥

विद्वान् पुरुष कहतेहैं कि आप वेद तथा जगत् के कारण महत्तत्व एवं अहङ्कार-रूप हो, जिसके गुणों में से प्राण, इन्द्रियां तथा शरीर उत्पन्न होते हैं, आपही स्वभाव, काल, सङ्कल्प, सत्य, ऋत और धर्म-रूपहो तथा त्रिगुणात्मकके भी आश्रयरूपहो ।

अग्निर्मुखं तेऽखिलदेवतात्मा क्षितिं विदुर्लोक भवांघ्रिपंकजम् । कालं गतिं तेऽखिलदेवातात्मनो दिशश्च कर्णौ रसनं जलेशम् ॥२६॥

हे लोकों के उत्पन्न कर्त्ता! समस्त देवताओं का मुख रूप अग्नि आपही हैं, पृथ्वी आपका चरण-कमल है, काल आपकी गति है, निशा कान हैं और वरुण आपकी जिह्वा है, इस प्रकार सर्व देव मय आपके विराट् रूपकी विद्वान् पुरुष कल्पना करतेहैं।

नाभिर्नभस्ते श्वसनं नभस्वान्त्सूर्यश्च चक्षूंषि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जलं स्म रेतः । परावरात्माश्रयणं तवात्मा सोमो मनो द्यौर्भगवञ्छिरस्ते ॥२७॥

हे भगवन् ! आकाश आपकी नाभि है, वायु श्वास है, सूर्य नेत्र, जल वीर्य है, पर-अवर जीवों का आश्रय आपका अहङ्कार है, चन्द्रमा मनहै और स्वर्ग मस्तक है ॥२७॥

कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसंघा रोमाणि सर्वौषधिवीरुधस्ते । छंदांसि साक्षात्तव सप्त धातव स्त्रयीमयात्मन्हृदयं सर्वधर्मः ॥२८॥

हे वेदत्रय मूर्त्ति ! समुद्र आपकी कुक्षिहै, पर्वत अस्थियां हैं, सब औषधियां तथा लतायें रोम हैं, सात छन्द आपके प्रत्यक्ष धातु हैं, सब प्रकार का धर्म आपका हृदय है ॥२८॥

मुखानि पंचोपनिषदस्तवेश यैस्त्रिंशदष्टोत्तरमंत्र वर्गः । यत्तच्छिवाख्यं परमार्थतत्त्वं देवः स्वयं ज्योतिरवस्थितिस्ते ॥२९॥

हे नाथ तत्पुरुषादि पाँच मन्त्र कि जिनका पद च्छेद करने से अड़तीस मंत्र होतेहैं वे आपके मुख हैं, शिव, शान्ति प्रकाश और दीप्तमान वास्तविक तत्व आपकी शान्तिमय स्थिति है ॥२९॥

छाया त्वधर्मोर्मिषु यैर्विसर्गो नेत्रत्रयं सत्त्वरज स्तमांसि । साक्षान्मनुः शास्त्रकृतस्तवेक्षा छंदोमयो देवऋषिः पुराणः ॥३०॥

अधर्म की लहरें आपकी छाया हैं, सत, रज और तम कि जिनके द्वारा अनेक प्रकार की सृष्टि होतीहै वे तीनों गुण आपके नेत्रहैं, हे देव ! साक्षात् वेद आपका विचारहै, क्योंकि आपही वेदके कर्त्ता वेदमय तथा सनातन ऋषि हैं ॥३०॥

न ते गिरित्राखिललोकपाल विरिंचवैकुंठसुरेंद्र गम्यम् । ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च सत्वं न यद्ब्रह्म निरस्तभेदम् ॥३१॥

हे महादेव ! सत, रज, तम से रहित परम ज्योति तथा भेद रहित आपका ब्रह्म-स्वरूप सभी लोकपालों, ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रादि के ध्यान में नहीं आ सकता ॥३१॥

कामाध्वरत्रिपुरकालगराद्यनेकभूतद्रुहः क्षपयतः स्तुतये न तत्ते । यस्त्वंतकाल इदमात्मकृतं स्वनेत्र वह्निस्फुलिंगशिखया भसितं न वेद ॥३२॥

आप अपने नेत्र की चिनगारी से प्रलय-काल में भस्मीभूत होने वाले इस संसार को जानते भी नहीं हैं, आपही ने कामदेव, दक्ष-यज्ञ, त्रिपुरासुर और मृत्यु आदि अनेक जगद्विद्रोहियों का संहार किया है, अस्तु (जगत्-हित के लिये ही) आप विष पान कीजिये, इसमें स्तुति करने की आवश्यकता नहीं है (क्योंकि लोक-हित करना तो आप का काम ही है) ॥ ३२ ॥

ये त्वात्मरामगुरुभिर्हृदिचिंतितांघ्रिद्वंद्वं चरंत मुमया तपसाभितप्तम् । कत्थंत उग्रपुरुषं निरतं श्मशाने ते नूनभूतिमविदंस्तव हातलज्जाः ॥३३॥

आपको उमाजी के साथ विचरता हुआ देख कर जो लोग आपको कामी कहते हैं तथा मरघट में फिरता हुआ देखकर उग्र और हिंसक कहते हैं, वे निर्लज्ज आपकी लीला को नहीं जानते, क्योंकि जिनके चरणारविन्द का आत्माराम तथा गुरुजन ध्यान करते हैं तथा जो तपके कारण केवल शान्ति रूपहैं, उनमें कामीपन तथा उग्रता नहीं होसकती॥

तत्तस्य ते सदसतोः परतः परस्य नांजः स्वरूप गमने प्रभवंति भूम्नः । ब्रह्मादयः किमुत संस्तवने वयं तु तत्सर्गसर्गविषया अपि शक्तिमात्रम् ॥३४॥

जब कि सत् असत् से परे तथा व्यापक श्रेष्ठ कर्मा आपके स्वरूप को ब्रह्मा आदि भी आसानीसे नहीं समझ सकते, फिर उनसे अनेक पीढ़ी पीछे उत्पन्न होने वाले हम लोग आपकी क्या स्तुति कर सकते हैं ? ऐसा होते हुए भी हम लोग यथा शक्ति आपकी स्तुति करते हैं ॥३४॥

एतत्परं प्रपश्यामो न परं ते महेश्वर । मृडनाय हि लोकस्य व्यक्तिस्तेऽव्यक्तकर्मणः ॥३५॥

हे परमेश्वर ! हम आपके केवल इसी स्वरूपको जानते हैं परम स्वरूप को नहीं जानते, पर हम इतने ही में अपने को कृतार्थ मानते हैं, क्योंकि आपका जो चरित्र प्रकट है, वह लोकों के सुख के लिये है ॥ ३५ ॥

श्रीशुक उवाच

तद्वीक्ष्य व्यसनं तासां कृपया भृशपीडितः । सर्वभूतसुहृद्देव इदमाह सतीं प्रियाम् ॥३६॥

शुकदेवजी बोले-हे राजन् ! उन देवताओं का दुःख देखकर करुणा से महान् पीड़ित प्राणी मात्र के सुहृद श्रीशिवजी ने अपनी प्रिया सतीसे कहा ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शिव उवाच

अहो बत भवान्येतत्प्रजानां पश्य वैशसम् ।
क्षीरोदमथनोद्भूतात्कालकूटादुपस्थितम् ॥३७॥

महादेवजी बोले-अहह ! हे भवानी ! क्षीर समुद्र के मन्थन से निकले हुए हलाहल के कारण इस प्रजा मात्र का दुःख देखो ॥३७॥

आसां प्राणपरीप्सूनां विधेयमभयं हि मे ।
एतावान्हि प्रभोरर्थो यद्दीनपरिपालनम् ।
प्राणैः स्वैः प्राणिनः पांति साधवः क्षणभंगुरैः॥३८॥

प्राण बचाने की अभिलाषा करने वाली प्रजा को अभय करना उचितहै, क्योंकि दीनों का पालन करना ही समर्थ स्वामी का धर्म है ॥३८॥

बद्धवैरेषु भूतेषु मोहितेष्वात्ममायया ।
पुंसः कृपयतो भद्रे सर्वात्मा प्रीयते हरिः ॥३९॥

हे भद्रे ! यह प्राणी तो भगवान् की माया से मोहित होकर एक दूसरे के प्राण लेने पर तुले हुए हैं, परन्तु साधु पुरुष अपने क्षण-भंगुर जीवन के द्वारा भी जीवों की रक्षा किया करते हैं, इससे सर्वात्मा भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥३९॥

प्रीते हरौ भगवति प्रीयेऽहं सचराचरः ।
तस्मादिदं गरं भुंजे प्रजानां स्वस्तिरस्तु मे ॥४०॥

भगवान्के प्रसन्न होने से चराचर सहित मैं प्रसन्न होता हूँ, इसलिये मैं इस विष को भक्षण करूँगा, जिसमें मेरे द्वारा प्रजामात्र का कल्याणहो।

श्रीशुक उवाच

एवमामंत्र्य भगवान्भवानीं विश्वभावनः ।
तद्विषं जग्धुमारेभे प्रभावज्ञाऽन्वमोदत ॥४१॥

शुकदेवजी बोले-जगत्पालक भगवान् शिवजी इस प्रकार पार्वतीजी से सम्मति करके उस विष को खाने लगे, तब उसके प्रभाव को जानने वाली पार्वतीजी ने उसका अनुमोदन किया ॥४१॥

ततः करतलीकृत्य व्यापि हालाहलं विषम् ।
अभक्षयन्महादेवः कृपया भूतभावनः ॥४२॥

तत्पश्चात् सर्व व्यापक उस हलाहल को हथेली में लेकर भूतभावन शिवजी उसे पान कर गये ।४२।

तस्यापि दर्शयामास स्ववीर्यं जलकल्मषः ।
यच्चकार गले नीलं तच्च साधोर्विभूषणम् ॥४३॥

जलके विकार रूप उस महाविष ने महादेवजी पर विशेष प्रभाव दिखलाया कि उनके कण्ठ में नीलापन दिखलाने लगा, परन्तु साधु महादेवजी को वह भूषणरूप होगया ॥४३॥

तप्यंते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः ।
परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः ॥४४॥

बहुधा साधु पुरुष लोकके दुःखसे दुखी हुआ करतेहैं, सर्वात्मा भगवान्का यही परम आराधनहै।

निशम्य कर्म तच्छंभोर्देवदेवस्य मीढुषः ।
प्रजा दाक्षायणी ब्रह्मा वैकुंठश्च शशंसिरे ॥४५॥

देवाधिदेव तथा मनोरथ के पूर्ण करने वाले श्रीशङ्करजी का यह चरित्र देखकर प्रजा, सती, ब्रह्माजी और विष्णुजी आदि सभी उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ४५ ॥

प्रस्कन्नं पिबतः पाणेर्यत्किंचिज्जगृहुः स्म तत् ।
वृश्चिकाहिविषौषध्यो दंदशूकाश्च ये परे ॥४६॥

शिवजी के विष पान करते समय जो थोड़ा-बहुत विष उनके हाथ से गिर गया उसे बिच्छू, सांप, विषैली औषधियां तथा अन्य विषैले जीवों ने ले लिया ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

आठवां अध्याय

(श्री जी की उत्पत्ति)

श्रीशुक उवाच

पीते गरे वृषांकेण प्रीतास्तेऽमरदानवाः ।
ममंथुस्तरसा सिंधुं हविर्धानी ततोऽभवत् ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले-जब शिवजी ने विष पान कर लिया तब देवता और दैत्य फिर उत्साह-पूर्वक समुद्र मथने लगे, इस बार उसमें से कामधेनु उत्पन्न हुई ॥ १ ॥

तामग्निहोत्रीमृषयो जगृहुर्ब्रह्मवादिनः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यज्ञस्य देवयानस्य मेध्याय हविषे नृप ॥ २ ॥

हे राजन् ! वह अग्निहोत्र को आश्रय देनेवाली गौ को ब्रह्म-लोक के मार्ग को देनेवाली यज्ञ-संबंधी हविके लिये ब्रह्मवादी ऋषियों ने ले लिया ॥२॥

तत उच्चैःश्रवा नाम हयोऽभूच्चंद्रपांडुरः ।
तस्मिन्बलिः स्पृहां चक्रे नेंद्र ईश्वरशिक्षया ॥ ३ ॥

फिर चंद्रमा के समान श्वेत वर्ण उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा प्रकट हुआ, बलि दैत्य की इच्छा देख कर भगवान् की आज्ञानुसार इन्द्रने उसे लेने का विचार भी न किया ॥३॥

तत ऐरावतो नाम वारणेंद्रो विनिर्गतः ।
दंतैश्चतुर्भिः श्वेताद्रेर्हरन्भगवतो महिम् ॥ ४ ॥

फिर ऐरावत नामक गजेन्द्र प्रकट हुआ जिस ने अपने चार दांतों की शोभा के सामने कैलाश की शोभा को हरण कर लिया था ॥४॥

कौस्तुभाख्यमभूद्रत्नं पद्मरागो महोदधेः ।
तस्मिन्हरिः स्पृहां चक्रे वक्षोऽलंकरणे मणौ ॥५॥

फिर समद्र में से कमलके समान लाल कौस्तुभ मणि निकली, उसे लेने की भगवान्ने इच्छा प्रकट करके उसे अपना आभूषण बना लिया ॥५॥

ततोऽभवत्पारिजातः सुरलोकविभूषणम् ।
पूरयत्यर्थिनो योऽर्थैः शश्वद्भुवि यथा भवान्॥ ६ ॥

फिर स्वर्ग को शोभायमान् करने वाला कल्प वृक्ष निकला, हे राजन् ! जैसे भूलोक वालोंके आप मनोरथ पूर्ण करते हो वैसे ही वह स्वर्ग-लोकवालों के मनोरथ पूर्ण करता है ॥६॥

ततश्चाप्सरसो जाता निष्ककंठ्यः सुवाससः ।
रमण्यः स्वर्गिणां वल्गुगतिलीलावलोकनैः ॥ ७ ॥

फिर पदक तथा सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए अप्सरायें उत्पन्न हुईं जो अपनी सुन्दर गति तथा लीलामय चितवन द्वारा स्वर्ग-निवासी पुरुषों को रमण कराया करती हैं ॥७॥

ततश्चाविरभूत्साक्षाच्छ्री रमा भगवत्परा ।
रंजयंती दिशः कांत्या विद्युत्सौदामनी यथा ॥८॥

तत्पश्चात् साक्षात् भगवत्परायण रमा नाम्नी श्रीलक्ष्मीजी उत्पन्न हुईं, जो अपनी कान्ति द्वारा दशों दिशाओंको प्रकाशित करतीहुई सुदामा पर्वत पर बिजली की भांति दीप्तिमान होरही थीं ॥८॥

तस्यां चक्रुः स्पृहां सर्वे ससुरासुरमानवाः ।
रूपौदार्यवयोवर्णमहिमाक्षिप्तचेतसः ॥ ९ ॥

रमाजी को लेने की देवता, दैत्य और मनुष्य सभी इच्छा करते थे, क्योंकि उनके रूप, उदारता अवस्था और वर्ण आदि के प्रभाव से सभी के मन मोहित हो रहे थे ॥९॥

तस्या आसनमानिन्ये महेंद्रो महदद्भुतम् ।
मूर्तिमत्यः सरिच्छ्रेष्ठा हेमकुंभैर्जलं शुचि ॥१०॥

इन्द्र उनके लिये एक अद्भुत आसन ले आये नदियां मूर्त्तिमान हो-होकर श्रेष्ठ सोने के कमलों में पवित्र जल भर लाईं ॥१०॥

आभिषेचनिका भूमिराहरत्सकलौषधीः ।
गावः पंच पवित्राणि वसंतो मधुमाधवौ ॥११॥

पृथ्वी अभिषेक के योग्य समस्त औषधियां ले आई, गौयें पवित्र पंचगव्य ले आईं और वसन्त चैत्र तथा वैशाखमें उत्पन्न हुए फूल ले आया ॥११॥

ऋषयः कल्पयांचक्रुरभिषेकं यथाविधि ।
जगुर्भद्राणि गंधर्वा नट्यश्च ननृतुर्जगुः ॥१२॥

ऋषियोंने यथाविधि अभिषेक कराया, गन्धर्व मङ्गलगीत गानेलगे और नर्त्तकियां नृत्य करनेलगीं।

देवा मृदंगपणवमुरजानकगोमुखान् ।
व्यनादयञ्छंखवेणुवीणास्तुमुलनिस्वनान् ॥१३॥

मेघ देवता तुमुल नाद वाले मृदङ्ग, पणव, मुरज, नक्कारा, गोमुख, शंख, वेणु और वीणा बजाने लगे ॥ १३ ॥

ततोऽभिषिषिचुर्देवीं श्रियं पद्मकरां सतीम् ।
दिगिभाः पूर्णकलशैः सूक्तवाक्यैर्द्विजेरितैः ॥१४॥

फिर दिग्गजों ने कलश भर-भर कर ब्राह्मणों के मन्त्रोच्चारण करते हुए, कमल हाथमें लिये हुए देवी लक्ष्मी का अभिषेक किया ॥१४॥

समुद्रः पीतकौशेयवाससी समुपाहरत् ।
वरुणः स्रजं वैजयंतीं मधुना मत्तषट्पदाम् ॥१५॥

समुद्र ने श्रीलक्ष्मीजी को पीले वस्त्र भेंट किये, वरुण ने मदमत्त भौंरों से गुञ्जायमान वैजयन्ती माला पहिनाई ॥१५॥

भूषणानि विचित्राणि विश्वकर्मा प्रजापतिः ।
हारं सरस्वती पद्मजो नागाश्च कुंडले ॥१६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रजापति विश्वकर्मा ने विचित्र आभूषण भेंट किये, सरस्वती ने हार, ब्रह्माजी ने कमल तथा नागों ने कुण्डल दिये ॥१६॥

ततः कृतस्वस्त्ययनोत्पलस्रजं नदद्द्विरेफां परिगृह्य पाणिना । चचाल वक्त्रं सुकपोलकुंडलं सव्रीड हासं दधती सुशोभनम् ॥१७॥

फिर मांगलिक वस्त्र तथा आभूषण धारण कर के भौंरों से गुञ्जायमान् कमलों की माला हाथ में लिये हुए श्रीमहा लक्ष्मीजी मन्द गति से चलने लगीं, जिनके लज्जा तथा मुसकान मय कपोलों से युक्त मुख पर कुण्डल शोभा दे रहे थे ॥१७॥

स्तनद्वयं चातिकृशोदरी समं निरंतरं चंदन कुंकुमोक्षितम् । ततस्ततो नूपुरवल्गुसिंजितैर्विसर्पती हेमलतेव सा बभौ ॥१८॥

निरन्तर समान चन्दन तथा कुंकुम से चर्चित स्तनों से शोभायमान कृशोदरी श्रीलक्ष्मीजी जिस समय चलने लगीं तब उनके नूपुर बजने लगे तथा वे स्वर्ण-लता के समान शोभा देने लगीं ॥१८॥

विलोकयंती निरवद्यमात्मनः पदं ध्रुवं चाव्यभिचारि सद्गुणम् । गंधर्वयक्षासुरसिद्धचारण त्रैविष्टपेयादिषु नान्वविंदत ॥१९॥

वे सर्वथा श्रेष्ठ गुणवाले निर्दोष एवं अपने योग्य आश्रय को ढूंढने लगीं, परन्तु गन्धर्व, यक्ष, दैत्य, सिद्ध, चारण और देवता आदि में उन्हेंकोई अपने योग्य वर न मिला ॥१९॥

नूनं तपो यस्य न मन्युनिर्जयो ज्ञानं क्वचित्तच्च न संगवर्जितम् । कश्चिन्महांस्तस्य न कामनिर्जयः स ईश्वरः किं परतोव्यपाश्रयः ॥२०॥

लक्ष्मीजी ने विचार किया कि दुर्वासा आदि तपस्वी तो अवश्य हैं परन्तु वे क्रोधी हैं, गुरु और शुक्राचार्यजी ज्ञानवान् होते हुए भी आसक्त हैं, ब्रह्माजी तथा चन्द्रमा आदि बड़े होकरभी कामदेव के वशीभूत हैं, इन्द्र ईश्वर कहला कर भी दूसरों से सहायता चाहते हैं ॥ २० ॥

धर्मः क्वचित्तत्र न भूतसौहृदं त्यागः क्वचित्तत्र न मुक्तिकारणम् । वीर्यं न पुंसोऽस्त्यज वेगनिष्कृतं न हि द्वितीयो गुणसंगवर्जितः ॥२१॥

परशुराम आदि धर्मात्मा होकर भी निर्दयी हैं, शिवि आदि दानी हैं, परन्तु उनका दान मोक्ष के लिये नहीं है, सहस्रार्जुन आदि पराक्रमी अवश्य हैं परन्तु उनकी कभी न कभी मृत्यु हो सकती है, सनकादि भी समाधिनिष्ठ होने के कारण वरण योग्य नहीं है ॥२१॥

क्वचिच्चिरायुर्न हि शीलमंगलं क्वचित्तदप्यस्ति न वेद्यमायुषः । यत्रोभयं कुत्र च सोऽप्यमंगलः सुमंगलः कश्च न कांक्षते हि माम् ॥२२॥

मार्कंडेय आदि चिरजीवी हैं परन्तु उनका स्वभाव मङ्गलमय नहींहै, क्योंकि वे सर्वदा इन्द्रियों का दमन किया करते हैं, हिरण्यकश्यप आदि में यह बातें हैं तो उनकी आयु का निश्चय नहीं है, भगवान् रुद्र की आयु स्थायी है, परन्तु उनका चरित मङ्गलमय नहीं है, हाँ, श्रीविष्णु भगवान् सुन्दर मङ्गलमय और दोष रहित हैं परन्तु वे मेरी इच्छा नहीं करते ॥२२॥

एवं विमृश्याव्यभिचारिसद्गुणैर्वरं निजैकाश्रयतया गुणाश्रयम् । वव्रे वरं सर्वगुणैरपेक्षितं रमा मुकुंदं निरपेक्षमीप्सितम् ॥२३॥

ऐसा विचार करके अव्यभिचारी, धर्म-ज्ञान आदि श्रेष्ठ गुणों, निरपेक्षता, सर्वोत्तमता व प्रकृति के गुणों से परे लक्षणों और अणिमादिक सकल सिद्धियों से संयुक्त अपने मनोभिलषित श्री विष्णु भगवान् को लक्ष्मीजी ने वरण किया ॥२३॥

तस्यांसदेश उशतीं नवकंजमालां माद्यन्मधुव्रत वरूथगिरोपघुष्टाम् । तस्थौ निधाय निकटे तदुरः स्वधाम सव्रीडहासविकसन्नयनेन याता ॥२४॥

श्रीलक्ष्मीजी मदोन्मत्त भ्रमर-समूह मधुर स्वर से जिसपर गुञ्जार कर रहे थे, ऐसी सुन्दर और नवीन कमलों की माला विष्णुजी के कण्ठ में डालकर लज्जा तथा हास्य सहित प्रफुल्लित नेत्र कर के अपने स्थान भगवान् के वक्षःस्थल की प्रतीक्षा करती हुई उनके निकट चुपचाप खड़ी होगईं ॥२४॥

तस्याः श्रियस्त्रिजगतो जनको जनन्या वक्षो निवासमकरोत्परमं विभूतेः । श्रीः स्वाः प्रजाः सकरुणेन निरीक्षणेन यत्र स्थितैधयत साधिपतीं स्त्रिलोकान् ॥२५॥

भगवान् ने उन जगदम्बिका, त्रिलोक की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विभूति-रूप श्रीलक्ष्मीजी को अपना वक्षःस्थल रूपी अचल पद दिया, जहाँ स्थिर होकर लक्ष्मीजी ने अपनी प्रजा और लोकपालों सहित तीनों लोकोंकी दया पूर्वक वृद्धि की ॥२५॥

शंखतूर्यमृदंगानां वादित्राणां पृथुः स्वनः ।
देवानुगानां सस्त्रीणां नृत्यतां गायतामभूत् ॥२६॥

शंख तुरी और मृदङ्ग आदि बाजों का विशेष शब्द होने लगा और देवताओं के अनुचर स्त्रियों सहित पृथक् २ नाचने गाने लगे ॥ २६॥

ब्रह्मरुद्रांगिरो मुख्याः सर्वे विश्वसृजो विभुम् ।
ईडिरेऽवितथैर्मंत्रैस्तल्लिंगैः पुष्पवर्षिणः ॥२७॥

ब्रह्मा, रुद्र और अङ्गिरा आदि समस्त प्रजापति फूल बरसाकर विष्णुके प्रतिपादन करनेवाले यथार्थ मन्त्रों से उनकी स्तुति करने लगे ॥२७॥

श्रिया विलोकिता देवाः सप्रजापतयः प्रजाः ।
शीलादिगुणसंपन्ना लेभिरे निर्वृतिं पराम् ॥२८॥

श्रीलक्ष्मीजी की दृष्टि पड़ने से देवता, प्रजापति और प्रजा शील आदि गुण पाकर परमानंदितहुई॥

निःसत्त्वा लोलुपा राजन्निरुद्योगा गतत्रपाः ।
यदा चोपेक्षिता लक्ष्म्या बभूवुर्दैत्यदानवाः॥२९॥

हेराजन् ! जब लक्ष्मीजीने दैत्य तथा दानवों की उपेक्षा की, तब वे लालची, सत्ताहीन, निरुपाय और निर्लज्ज होगये ॥२९॥

अथासीद्वारुणी देवी कन्या कमललोचना ।
असुरा जगृहुस्तां वै हरेरनुमतेन ते ॥३०॥

फिर कमलनयनी देवी वारुणी नाम की कन्या उत्पन्न हुई, उसे भगवान् की सम्मति से दैत्यों ने ग्रहण किया ॥ ३० ॥

अथोदधेर्मथ्यमानात्काश्यपैरमृतार्थिभिः ।
उदतिष्ठन्महाराज पुरुषः परमाद्भुतः ॥३१॥

हे राजन् ! देवता और दैत्य फिर अमृत के लिये समुद्र को मथने लगे, तब एक बड़ा अद्भुत पुरुष प्रकट हुआ ॥३१॥

दीर्घपीवरदोर्दंडः कंबुग्रीवोऽरुणेक्षणः ।
श्यामलस्तरुणः स्रग्वी सर्वाभरणभूषितः ॥३२॥

जिसकी भुजायें लम्बी तथा पुष्ट थीं, शंख के समान कण्ठ, अरुण नयन, श्याम वर्ण और तरुण अवस्था थी, वह माला पहिने हुए, सब अलङ्कारों से सुसज्जित था ॥३२॥

पीतवासा महोरस्कः सुमृष्टमणिकुंडलः ।
स्निग्धकुंचितकेशांतः सुभगः सिंहविक्रमः ॥३३॥

वह पीताम्बर ओढ़े हुए था, उसका वक्षःस्थल बड़ा था, उज्ज्वल मणियों के कुण्डल झलक रहेथे, चिकने और घुंघर वाले केश, सुन्दर भाग्य और सिंह के समान उसका पराक्रम था ॥३३॥

अमृतापूर्णकलशं बिभ्रद्वलयभूषितः ।
स वै भगवतः साक्षाद्विष्णोरंशांशसंभवः ॥३४॥

वह अमृतसे भरा हुआ कलश लिये था, कङ्कण से शोभायमान था और साक्षात् विष्णु के अंश से प्रकट हुआ था ॥ ३४ ॥

धन्वंतरिरिति ख्यात आयुर्वेददृगिज्यभाक् ।
तमालोक्यासुराः सर्वे कलशं चामृताभृतम्॥३५॥
लिप्संतः सर्ववस्तूनि कलशं तरसाऽहरन् ।
नीयमानेसुरैस्तस्मिन्कलशेऽमृतभाजने ॥३६॥
विषण्णमनसो देवा हरिं शरणमाययुः ।
इति तद्दैन्यमालोक्य भगवान्भृत्यकामकृत् ।
मा खिद्यत मिथोऽर्थं वः साधयिष्ये स्वमायया ॥

महापुरुष का नाम धन्वन्तरि है, जिन्होंने वैद्यक का प्रचार किया और यज्ञ में भाग पाया, उनके हाथ में अमृत से भरा हुआ कलश देखकर दैत्य-गण सारी वस्तु को अकेले ही लेने की इच्छा कर के ज़बरदस्ती ही कलश को छीन कर भाग पड़े, जब अमृत-घट दैत्यों ने ले लिया तब देवता-गण दुःखी होकर भगवान् विष्णु की शरण गये, देवताओं को दुःखी देखकर भक्तोंका कार्य करने वाले, भक्तवत्सल भगवान् बोले कि तुम खेद न करो, मैं अपनी माया से दैत्योंमें क्लेश उत्पन्न करके तुम्हारा काम सफल करूँगा ॥३५॥३६॥३७॥

मिथः कलिरभूत्तेषां तदर्थे तर्षचेतसाम् ।
अहं पूर्वमहं पूर्वं न त्वं न त्वमिति प्रभो ॥३८॥

हे राजन् ! अब अमृतके लालची सम बलवाले दैत्यों ही में परस्पर कलह होने लगा कि-तू नहीं, तू नहीं, तू नहीं, मैं पहले पिऊँगा ॥३८॥

देवाः स्वं भागमर्हंति ये तुल्यायासहेतवः ।
सत्रयाग इवैतस्मिन्नेष धर्मः सनातनः ॥३९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इति स्वान्मत्यषेधन्वै दैतेया जातमत्सराः ।
दुर्बलाः प्रबलान्राजन्गृहीतकलशान्मुहुः ॥४०॥

हे राजन् ! उनमें से जो निर्बल थे वह दैत्य कहने लगे कि इस अमृत में से भाग लेने के देवता भी अधिकारी हैं, क्योंकि उन्होंने भी समानता से सभी चेष्टा की हैं, अस्तु सनातन धर्म के अनुसार तो यज्ञ की नाईं सबको समान भाग मिलना चाहिये ॥३९॥४०॥

एतस्मिन्नंतरे विष्णुः सर्वोपायविदीश्वरः ।
योषिद्रूपमनिर्देश्यं दधार परमाद्भुतम् ॥४१॥

उसी समय समस्त उपायों के जानने वाले ईश्वर भगवान् विष्णुने बड़ाही अद्भुत तथा अकथनीय स्त्री रूप धारण किया ॥४१॥

प्रेक्षणीयोत्पलश्यामं सर्वावयवसुंदरम् ।
समानकर्णाभरणं सुकपोलोन्नसाननम् ॥४२॥

जो देखने योग्य, नील कमल के समान श्याम वर्ण, सर्वाङ्ग सुन्दर था, कानोंमें आभूषणथे, सुन्दर कपोल तथा नासिका सहित मुख था ॥ ४२ ॥

नवयौवननिर्वृत्तस्तनभारकृशोदरम् ।
मुखामोदानुरक्तालिझंकारोद्विग्नलोचनम् ॥४३॥

नवीन तरुण अवस्थासे परिपूर्ण स्तनों के भार से उदर कृश था, मुख की सुगन्धि से अनुरागी भौंरों की झङ्कार से नेत्र चञ्चलसे होरहे थे ॥४३॥

बिभ्रत्स्वकेशभारेण मालामुत्फुल्लमल्लिकाम् ।
सुग्रीवकंठाभरणं सुभुजांगदभूषितम् ॥४४॥

केश-पाश में फूली हुई चमेली की माला गुंथी हुई थी, सुन्दर कंठ में कंठाभरण थे और सुन्दर बाजूबन्द शोभायमान थे ॥४४॥

विरजांबरसंवीतनितंबद्वीपशोभया ।
कांच्या प्रविलसद्वल्गुचलच्चरणनूपुरम् ॥४५॥

दीप के समान शोभायमान माटे नितंब पर निर्मल वस्त्र था, कटिमेखला देदीप्यमान थी, चरणों में चलने से नूपुर बाज रहे थे ॥४५॥

सव्रीडस्मितविक्षिप्तभ्रूविलासावलोकनैः ।
दैत्ययूथपचेतस्सु काममुद्दीपयन्मुहुः ॥४६॥

वह स्वरूप लज्जा तथा मन्द मुसकान के साथ भ्रकुटियों को चलाकर तथा चितवन के द्वारा दैत्य यूथ पतियों के चित्त में बारम्बार कामोद्दीपन कर रहा था ॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नौवां अध्याय

(मोहनी रूप द्वारा देवताओं को अमृत-प्राप्ति)

श्रीशुक उवाच

तेऽन्योन्यतोऽसुराःपात्रं हरंतस्त्यक्तसौहृदाः ।
क्षिपंतो दस्युधर्माण आयांतीं ददृशुः स्त्रियम्॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले–वे दैत्यगण सुहृदता छोड़कर चोरों की भांति आपस में अमृत-घट छीन रहे थे, और गालियां दे रहे थे, इतने में उन्होंने एक स्त्री को आता हुआ देखा ॥ १ ॥

अहो रूपमहो धाम अहो अस्या नवं वयः ।
इति ते तामभिद्रुत्य पप्रच्छुर्जातहृच्छयाः ॥ २ ॥

अहो, देखो तो इसका रूप तथा कान्तिकैसी है और कैसी नई अवस्था है?इस भांति कहते हुए कामातुर दैत्योंने दौड़ते हुए उसके पास जाकर पूछा॥

का त्वं कंजपलाशाक्षि कुतो वा किं चिकीर्षसि ।
कस्यासि वद वामोरु मथ्नंतीव मनांसि नः॥ ३ ॥

हे कमल नयनी ! तू कौ नहै ? कहाँ से आई है तेरी क्या इच्छा है ? हे वामोरु ! तू बतला तो कि किसकी है, तू हम लोगों के मनको मथन सा कर रही है ॥ ३ ॥

न वयं त्वाऽमरैर्दैत्यैः सिद्धगंधर्वचारणैः ।
नास्पृष्टपूर्वा जानीमो लोकेशैश्च कुतो नृभिः ॥ ४ ॥

हम जानते हैं कि देवता, दैत्य, सिद्ध, गंधर्व, चारण और लोकपाल–इनमें से किसी ने भी तेरा स्पर्श नहीं किया है, फिर मनुष्यों की तो शक्ति ही क्या है ? ॥ ४ ॥

नूनं त्वं विधिना सुभ्रूः प्रेषितासि शरीरिणाम् ।
सर्वेंद्रियमनःप्रीतिं विधातुं सघृणेन किम् ॥ ५ ॥

हे सुन्दर भ्रकुटि वाली ! क्या विधाता ने हम लोगों पर कृपा करके देहधारियों की समस्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इन्द्रियां और मन प्रसन्न करने के लिये ही तुझे भेजा है या तू इच्छा से आई है ? नहीं, नहीं, तुझे उसी ने पहुंचाया है ॥५॥

सा त्वं नः स्पर्धमानानामेकवस्तुनि मानिनि।
ज्ञातीनां बद्धवैराणां शं विधत्स्व सुमध्यमे ॥ ६ ॥

हे सुमध्यमे ! हम भाई होकर भी एक वस्तु के लिये ईर्ष्या पूर्वक बैर बाँधकर कटे मरते हैं, इस लिये हम लोगों की सुख-शान्ति का उपाय करो ॥

वयं कश्यपदायादाभ्रातरः कृतपौरुषाः ।
विभजस्व यथान्यायं नैव भेदो यथा भवेत् ॥ ७ ॥

हम सब कश्यपजी के पुत्र होने के नातेसे भाई भाई हैं, हम लोगों ने एकसा ही पुरुषार्थ किया है, इसलिये जिस प्रकार से हम लोगों में कलह न हो उस प्रकार से अमृत बाँट दो ॥७॥

इत्युपामंत्रितो दैत्यैर्मायायोषिद्वपुर्हरिः ।
प्रहस्य रुचिरापांगैर्निरीक्षन्निदमब्रवीत् ॥ ८ ॥

जब दैत्यों ने इस प्रकार प्रार्थना की तब माया मय स्त्रीरूप हरि ने मुसका कर, सुन्दर कटाक्ष से उनकी ओर देखकर यह कहा ॥८॥

श्रीभगवानुवाच

कथं कश्यपदायादाः पुंश्चल्यां मयि संगताः ।
विश्वासं पंडितो जातु कामिनीषु न याति हि ॥ ९ ॥

भगवान् बोले-तुम कश्यपजी के पुत्र होकर मुझ व्यभिचारिणी में किस प्रकार आसक्त होगये हो ? बुद्धिमान् मनुष्य स्त्रियों का कभी विश्वास नहीं करते ॥९॥

सालावृकाणां स्त्रीणां च स्वैरिणीनां सुरद्विषः ।
सख्यान्याहुर नित्यानि नूनं नूनं विचिन्वताम् १०

हे दैत्यो ! कुत्ते और व्यभिचारिणी स्त्री की मित्रता कभी स्थिर नहीं रहती, क्योंकि वे दोनों नित्य नये की तलाश में रहा करते हैं ॥१०॥

श्रीशुक उवाच

इति ते ष्वेलितैस्तस्या आश्वस्तमनसोऽसुराः ।
जहसुर्भावगंभीरं ददुश्चामृतभाजनम् ॥ ११ ॥

शुकदेवजी बोले-इस प्रकार उनके हास्य मय वचन सुनकर असुरों ने मर्ममय दूसरे अभिप्रायकी इच्छा धरकर हँसते हुए वह अमृत-पात्र मोहनी भगवान् को सौंप दिया ॥११॥

ततो गृहीत्वाऽमृतभाजनं हरिर्बभाष ईषत्स्मित शोभया गिरा । यद्यभ्युपेत कृच साध्वसाधु वा कृतं मया वो विभजे सुधामिमाम् ॥ १२ ॥

भगवान् मोहनी ने अमृत-कलश हाथ में लेकर मन्द मुसकान पूर्वक मधुर वाणी से कहा कि-हे दैत्यो ! यदि मुझसे कुछ उचित या अनुचित बन आये और वह भी तुम्हें स्वीकृत हो, तो मैं अमृत बाँटूँ ॥ १२ ॥

इत्यभिव्याहृतं तस्या आकर्ण्यासुरपुंगवाः ।
अप्रमाणविदस्तस्यास्तत्तथेत्यन्वमंसत ॥ १३ ॥

दैत्यों में श्रेष्ठ नायकों ने उनके वचन सुनकर भाव न समझा और वैसाही स्वीकार कर लिया ॥

अथोपोष्य कृतस्नाना हुत्वा च हविषाऽनलम् ।
दत्त्वा गोविप्रभूतेभ्यः कृतस्वस्त्ययना द्विजैः ॥ १४ ॥
यथोपजोषं वासांसि परिधायाऽहतानि ते ।
कुशेषु प्राविशन्सर्वे प्राग्ग्रेष्वभिभूषिताः ॥ १५ ॥

फिर देवता और दैत्य व्रत, स्नान और हवि द्वारा अग्नि में होम करके गौ, ब्राह्मण और जीवों को यथा योग्य बलि देकर ब्राह्मणों द्वारा स्वस्ति वाचन करवाके, यथा-रुचि नवीन वस्त्र धारण कर के और शृङ्गार करके पूर्व दिशा की ओर नोकवाले कुशासन पर बैठे ॥१४॥१५॥

प्राङ्मुखेषूपविष्टेषु सुरेषु दितिजेषु च ।
धूपामोदितशालायां जुष्टायां माल्यदीपकैः ॥ १६ ॥
तस्यां नरेंद्र करभोरुरुशद्दुकूलश्रोणीतटालसग तिर्मद विह्वलाक्षी । सा कूजती कनकनूपुरसिंजि तेन कुंभस्तनीकलशपाणिरथाविवेश ॥ १७ ॥
तां श्रीसखीं कनककुंडलचारुकर्णनासाकपोल वदनां परदेवताख्याम् । संवीक्ष्य संमुमुहुरुत्स्मित वीक्षणेन देवासुरा विगलितस्तनपट्टिकांताम् ॥ १८ ॥

धूप से सुगन्धित तथा पुष्प और दीपक से दीप्तमान् सभा में पूर्व की ओर मुख करके देवता एवं दैत्य बैठे। फिर हे राजन् ! मोहिनी भगवान् हाथ में कलश लेकर सभा में प्रविष्ट हुए, केले के समान जंघा वाली, सुन्दर वस्त्र से श्रोणी-तट ढके हुए, नितंब भार से मन्द गति धारण किये हुए, मद से विह्वल नेत्रों वाली तथा काँचनी नूपुर को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

झनकारती हुई, परदेवता नामक लक्ष्मी की सखी के समान कानों में स्वर्ण के सुन्दर कुण्डल धारण किये हुए, सुन्दर मुख, सुन्दर कपोल, सुन्दर नासिका सहित मोहिनीजी को कि जिनके स्तनों का वस्त्र बार-बार खिसक पड़ता था, देखकर मन्द मुसकान सहित कटाक्ष से सब देवता तथा दैत्य मोहित होगये ॥१६॥१७॥१८॥

असुराणां सुधादानं सर्पाणामिव दुर्नयम् ।
मत्वा जातिनृशंसानां न तां व्यभजदच्युतः॥१९॥

क्रूर जाति वाले दैत्यों को अमृत देना, मानों साँप को दूध पिलाना है, ऐसा अयोग्य समझ कर भगवान् ने उन्हें अमृत नहीं दिया ॥१९॥

कल्पयित्वा पृथक्पंक्तीरुभयेषां जगत्पतिः ।
तां श्रोपवेशयामास स्वेषु स्वेषु च पंक्तिषु ॥२०॥

जगत्पति भगवान् ने उन देवता और दैत्योंको अलग-अलग करके जुदी २ पंक्तियोंमें बिठा दिया ॥

दैत्यान्मृहीतकलशो वंचयन्नृप संचरैः ।
दूरस्थान्पाययामास जरामृत्युहरां सुधाम् ॥२१॥

मोहनी भगवान् ने हाथ में कलश लेकर स्त्री चरित द्वारा दैत्यों को ठगकर, उनसे दूर बैठे हुए देवताओं को जरा-मृत्यु हरण करने वाला अमृत पिला दिया ॥२१॥

ते पालयंतः समयमसुराः स्वकृतं नृप ।
तूष्णीमासन्कृतस्नेहाः स्त्रीविवादजुगुप्सया ॥२२॥

वे दैत्य अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार मोहके कारण स्त्रीसे विवाद करना उचित न जानकर चुपही बैठे॥

तस्यां कृतातिप्रणयाः प्रणयापायकातराः ।
बहुमानेन चाबद्धा नोचुः किंचन विप्रियम् ॥२३॥

दूसरे चूंकि दैत्यों का मोहनी से अत्यन्त स्नेह बँधगया था, इसलिये स्नेह भंग होजानेकी आशङ्का से तथा मोहनी का मान रखने के विचार से दैत्यों ने कोई भी अप्रिय वचन न कहा ॥२३॥

देवलिंगप्रतिच्छन्नः स्वर्भानुर्देवसंसदि ।
प्रविष्टः सोममपिबच्चंद्रार्काभ्यां च सूचितः ॥२४॥

उस समय राहु देवताओं के समान स्वरूप बनाकर, गुप्त रूप से देव-मण्डल में जा बैठा और अमृत भी पीगया, तब सूर्य और चंद्रमाने भगवान् को सूचना दी ॥२४॥

चक्रेण क्षुरधारेण जहार पिबतः शिरः ।
हरिस्तस्य कबंधस्तु सुधयाऽप्लाबितोऽपतत् ॥२५॥
शिरस्त्वमरतां नीतमजो ग्रहमचीकल्पत् ।
यस्तु पर्वणि चंद्रार्कावभिधावति वैरधीः ॥२६॥

सूचना पातेही भगवान्ने अमृत पीते हुए राहु का सिर छुरेके समान धारवाले चक्रसे उड़ा दिया उसके धड़ तक अमृत नहीं पहुंचाथा, इसलिये वह तो गिर पड़ा परन्तु सिर अमर होगया, जिसे ब्रह्माजीने ग्रह बनादिया, जो अमावस्या या पूर्णिमा की सन्धि पाकर सूर्य या चन्द्र के सामने वैर का बदला चुकाने के लिये दौड़ा करता है ॥२५॥२६॥

पीतप्रायेऽमृते देवैर्भगवाँल्लोकभावनः ।
पश्यतामसुरेंद्राणां स्वं रूपं जगृहे हरिः ॥२७॥

जब देवगण अमृत पी चुके तब लोक-रक्षक भगवान् दैत्यों के देखते-देखते ही पुरुष रूप से प्रकट होगये ॥२७॥

एवं सुराऽसुरगणाः समदेशकालहेत्वर्थकर्ममत
योपि फले विकल्पाः । तत्राऽमृतं सुरगणाः फल
मंजसापुर्यत्पादपंकजरजःश्रयणान्न दैत्याः ॥२८॥

इस भांति यद्यपि अमृत-मथन में देवता और दैत्यों के देश, काल, पर्वत, लता आदि पदार्थ, परिश्रम तथा विचार सब समान ही थे, परन्तु फल प्राप्ति में अन्तर रहा, क्योंकि भगवान्के चरणारविन्द के आश्रय से देवताओं को यथोचित अमृत रूपी फल मिलगया और दैत्यगण उससे वंचित रह गये ॥२८॥

यद्युज्यतेऽसुवसुकर्ममनोवचोभिर्देहात्मजादिषु
नृभिस्तदसत्पृथक्त्वात् । तैरेव सद्भवति यत्क्रियते
ऽपृथक्त्वात्सर्वस्य तद्भवति मूलनिषेचनं यत् ॥२९॥

मनुष्य भेद-दृष्टि रखकर देह तथा पुत्रादि के लिये प्राण, धन, कर्म, मन और वाणी से जो कुछ करते हैं उसका फल व्यर्थ जाता है, परन्तु अभेद-दृष्टि से सबको ईश्वर मय जानकर जो कियाजाता है उसका महा फल होता है, क्योंकि जो फल जड़ में सींचा जाता है वह वृक्ष के सर्वाङ्गों को तृप्त कर देता है ॥२९॥

इति श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दसवां अध्याय

(देवासुर संग्राम)

श्रीशुक उवाच

इति दानवदैतेया नाविंदन्नमृतं नृप ।
युक्ताः कर्मणि यत्ताश्च वासुदेवपराङ्मुखाः॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले–हे राजन् ! दैत्य और दानवों ने पूर्ण परिश्रम किया और वे निरन्तर काम भी करते रहे, परन्तु भगवान् से विमुख होनेके कारण उन्हें कोई फल न मिला ॥१॥

साधयित्वाऽमृतं राजन्पाययित्वा स्वकान्सुरान् ।
पश्यतां सर्वभूतानां ययौ गरुडवाहनः ॥ २ ॥

हे राजन् ! भगवान् अमृत उत्पन्न कर अपने प्रिय देवताओं को पिलाकर सब लोगों के देखते २ गरुड़ पर सवार होकर पधार गये ॥२॥

सपत्नानां परामृद्धिं दृष्ट्वा ते दितिनंदनाः ।
अमृष्यमाणा उत्पेतुर्देवान्मत्युद्यतायुधाः ॥ ३ ॥

तब वे दैत्य अपने शत्रुओं की विशेष उन्नति देखकर, उसे सहन न करसके और शस्त्र लेकर देवताओं पर चढ़ दौड़े ॥३॥

ततः सुरगणाः सर्वे सुधया पीतयैधिताः ।
प्रतिसंयुयुधुः शस्त्रैर्नारायणपदाश्रयाः ॥ ४ ॥

तब तो देवतागणभी अमृत पीकर एवं भगवान् के चरणों का आश्रय लेकर समस्त शस्त्र लिये हुए युद्ध करने लगे ॥४॥

तत्र दैवासुरो नाम रणः परमदारुणः ।
रोधस्युदन्वतो राजंस्तुमुलो रोमहर्षणः ॥ ५ ॥

हे राजन् ! वहाँ समुद्र तट पर देवासुर-संग्राम नामक महा भयंकर और घोर युद्ध होने लगा कि जिसे देखकर रोमांच होजाता था ॥५॥

तत्रान्योन्यं सपत्नास्ते संरब्धमनसो रणे ।
समासाद्यासिभिर्बाणैर्निजघ्नुर्विविधायुधैः ॥ ६ ॥

क्रोध से भरे हुए शत्रु युद्धमें बढ़-बढ़कर तलवार, बाण तथा अनेक प्रकार के शस्त्रों का एक दूसरे पर प्रहार करते थे ॥६॥

शंखतूर्यमृदंगानां भेरीडमरुणां महान् ।
हस्त्यश्वरथपत्तीनां नदतां निःस्वनोऽभवत् ॥ ७ ॥

शंख, तुरई, मृदङ्ग और डमरू का घोर शब्द होरहा था, इसी प्रकार घोड़ा, रथ और प्यादों का भी घोर नाद होरहा था ॥७॥

रथिनो रथिभिस्तत्र पत्तिभिः सह पत्तयः ।
हया हयैरिभाश्चेभैः समसज्जंत संयुगे ॥ ८ ॥

रथी से रथी, प्यादे से प्यादा, घुड़सवार से घुड़सवार और हाथियों से हाथी युद्ध कररहे थे ॥

उष्ट्रैः केचिदिभैः केचिद परे युयुधुः खरैः ।
केचिद्गौरमृगैर्ऋक्षैर्द्वीपिभिर्हरिभिर्भटाः ॥ ९ ॥

हे राजन् ! कई एक तो ऊँटों पर सवार थे और कई एक गधों पर, कई एक हाथियों और मृगों, रीछों, द्वीपि और सिंहों पर सवार थे ॥९॥

गृध्रैः कंकैर्बकैरन्ये श्येनभासैस्तिमिंगिलैः ।
शरभैर्महिषैः खड्गैर्गोवृषैर्गवयारुणैः ॥१०॥
शिवाभिराखुभिः केचित्कृकलासैः शशैनरैः ।
बस्तैरेके कृष्णसारैर्हंसैरन्ये च सूकरैः ॥११॥
अन्ये जलस्थलखगैः सत्त्वैर्विकृतविग्रहैः ।
सेनयोरुभयो राजन्विविशुस्तेऽग्रतोऽग्रतः ॥१२॥

कई एक गिद्ध, कङ्क, बगुला, बाज, भैंसा, ग्राह मत्स्य, शरभ, गैंडा, बैल, रोज, अरुण, स्यारनियाँ, मूषक, गिरगिट, शश,मनुष्य,बकरे, कालिय हिरन, हंस, शूकर तथा और भी विकृत शरीर वाले जल-थल के पक्षियों पर बैठ-बैठकर दोनों सेनाओं में आगे-आगे प्रवेश कर गये ॥१०॥११॥१२॥

चित्रध्वजपटैः राजन्नातपत्रैः सितामलैः ।
महाधनैर्वज्रदंडैर्व्यजनैर्बार्हचामरैः ॥१३॥
वातोद्धूतोत्तरोष्णीषैरर्चिर्भिर्वर्मभूषणैः ।
स्फुरद्भिर्विशदैः शस्त्रैः सुतरां सूर्यरश्मिभिः ॥१४॥

हे राजन् ! चित्र-विचित्र ध्वजाओंके पट, श्वेत उज्ज्वल छत्र, अमूल्य हीरों की डण्डी वाले मोर पंख के व्यजन तथा चमर, पवनसे उड़ते हुए दुपट्टे पागें, चमकते हुए कवच और आभूषण, सूर्य की किरणों से विशेष जगमगाते हुए उज्ज्वल शस्त्रादि शोभा दे रहे थे ॥१३॥१४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देवदानववीराणां ध्वजिन्यौ पांडुनंदन ।
रेजतुर्वीरमालाभिर्यादसामिव सागरौ ॥१५॥

हे पाण्डु-नन्दन ! जैसे जल-जन्तुओं से समुद्र शोभा देते हैं वैसे ही इन सबसे देवता तथा दैत्यों की सेना शोभा दे रही थी ॥१५॥

वैरोचनो बलिः संख्ये सोऽसुराणां चमूपतिः ।
यानं वैहायसं नाम कामगं मयनिर्मितम् ॥१६॥
सर्वसांग्रामिकोपेतं सर्वाश्चर्यमयं प्रभो ।
अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं दृश्यमानमदर्शनम् ॥१७॥
आस्थितस्तद्विमानाग्र्यं सर्वानीकाधिपैर्वृतः ।
वालव्यजनछत्राग्र्ये रेजे चंद्र इवोदये ॥१८॥

दैत्यों का सेनापति विरोचन का पुत्र बलि, मय दैत्य के बनाये हुए कामचारी ,वैहायस नामक विमान पर बैठा हुआ था जो इच्छित स्थान पर ले जाता था, उसमें सब प्रकार का सामान सजा हुआ था, वह महान आश्चर्य मय था तथा तर्कनामें न आता था; उसका वर्णन भी न हो सकता था, वह कभी तो दीख पड़ता था और कभी अदृश्यहो जाता था, ऐसे उत्तम विमान में बैठा हुआ बलि सेनापतियों से घिरा हुआ तथा चमर, पंखे और उत्तम छत्र से ऐसा शोभायमान हो रहा था जैसे उदय गिरि पर चन्द्रमा निकला हो ॥१६॥१७॥१८॥

तस्यासन्सर्वतो यानैर्यूथानां पतयोऽसुराः ।
नमुचिः शंबरो बाणो विप्रचित्तिरयोमुखः ॥१९॥
द्विमूर्धा कालनाभोऽथ प्रहेतिर्हेतिरिल्वलः ।
शकुनिर्भूत संतापो वज्रदंष्ट्रो विरोचनः ॥२०॥
हयग्रीवः शंकुशिराः कपिलो मेघदुंदुभिः ।
तारकश्चक्रदृक् शुंभो निशुंभो जंभ उत्कलः ॥२१॥
अरिष्टोऽरिष्टनेमिश्च मयश्च त्रिपुराधिपः ।
अन्ये पौलोमकालेया निवातकवचादयः ॥२२॥

नमुचि, शंबर, बाण; विप्रचित्ति, आयोमुख, द्विमूर्धा, कालनाभ, प्रहेति, हेति, इल्वल, शकुनि, भूत संताप, वज्रदंष्ट्र, विरोचन, हयग्रीव, शंकुशिरा कपिल, मेघ, दुन्दुभि, तारक, चक्रदृक्, शुंभ,निशुंभ जंभ, उत्कल, अरिष्ट, अरिष्टनेमि, त्रिपुर का स्वामी मय और भी पौलोम कालेय और निवात कवच आदि अनेक दैत्य सेनापति वाहनों पर बैठे हुए उसको चारों ओरसे घेर रहे थे ॥१९॥२०॥२१॥२२॥

अलब्धभागाः सोमस्य केवलं क्लेशभागिनः ।
सर्व एते रणमुखे बहुशो निर्जितामराः ॥२३॥
सिंहनादान्विमुंचंतः शंखान्दध्मुर्महास्वनान् ।
दृष्ट्वा सपत्नानुत्सिक्तान्बलभित्कुपितो भृशम् ॥२४॥
ऐरावतं दिक्करिणमारूढः शुशुभे स्वराट् ।
यथा स्रवत्प्रस्रवणमुदयाद्रिमहर्पतिः ॥२५॥

उन सभी ने कई बार रण-भूमि में देवताओं को हराया था, यद्यपि उन्हें अमृत का भाग नहीं मिला था और वे सदैव क्लेश ही के भागी हुए, फिर भी वे सिंह नाद करते हुए घोर शब्द वाले शंखों को बजाने लगे, इस प्रकार शत्रुओं को बढ़ता हुआ देखकर इन्द्र अत्यन्त क्रोध करके ऐरावत हाथी पर चढ़े, उस समय वे ऐसे शोभायमान होते थे मानों झरते हुए झरनों वाले उदयाचल पर सूर्य शोभा देता हो ॥२३॥२४॥२५॥

तस्यासन्सर्वतो देवा नानावाह ध्वजायुधाः ।
लोकपालाः सह गणैर्वाय्वग्निवरुणादयः ॥२६॥

लोकपाल, वायु, अग्नि और वरुण आदि देवता अपने २ गणों को साथ लेकर, अपने २ वाहन, ध्वजा और शस्त्र सजाये हुए, इन्द्रके चारों ओर शोभा देने लगे ॥२६॥

तेऽन्योन्यमभिसंसृत्य क्षिपंतो मर्मभिर्मिथः ।
आह्वयंतो विशंतोऽग्रे युयुधुर्द्वंद्वयोधिनः ॥२७॥

वे परस्पर भिड़कर मार्मिक वचनों द्वारा धिक्कार देते तथा दुतकारते हुए बुला-बुलाकर आगे बढ़ २ कर द्वंद्व युद्ध करने लगे ॥२७॥

युयोध बलिरिंद्रेण तारकेण गुहोऽस्यत ।
वरुणो हेतिनाऽयुध्यन्मित्रो राजन्प्रहेतिना ॥२८॥
यमस्तु कालनाभेन विश्वकर्मा मयेन वै ।
शंबरो युयुधे त्वष्ट्रा सवित्रा तु विरोचनः ॥२९॥
अपराजितेन नमुचिरश्विनौ वृषपर्वणा ।
सूर्यो बलिसुतैर्देवो बाणज्येष्ठैः शतेन च ॥३०॥
राहुणा च तथा सोमः पुलोम्ना युयुधेऽनिलः ।
निशुंभशुंभयोर्देवी भद्रकाली तरस्विनी ॥३१॥
वृषाकपिस्तु जंभेन महिषेण विभावसुः ।
इल्वलः सहवातापिर्ब्रह्मपुत्रैररिंदम ॥३२॥
कामदेवेन दुर्मर्ष उत्कलो मातृभिः सह ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बृहस्पतिश्चोशनसा नरकेण शनैश्चरः ॥३३॥
मरुतो निवातकवचैः कालेयैर्वसवोऽमराः ।
विश्वेदेवास्तु पौलोमैः रुद्राः क्रोधवशैः सह ॥३४॥

त एवमाजावसुराः सुरेंद्रा द्वंद्वेन संहत्य च युध्यमानाः । अन्योन्यमासाद्य निजघ्नुरोजसा जिगीषवस्तीक्ष्णशरासितोमरैः ॥३५॥

हे राजन् ! बलि और इन्द्र, तारक और स्वामि कार्तिक, हेति और वरुण, प्रहेति और मित्र, कालनाभ और यम, मय और विश्वकर्मा, शंवर और त्वष्टा, विरोचन और सविता, नमुचि और अपराजित, वृषपर्वा और अश्विनीकुमार, बाण आदि सौ बलि-पुत्र और सूर्य, राहु और चंद्रमा, पुलोमा और पवन, निशुंभ शुंभ और बलवती भद्रकाली देवी, जंभ और वृषाकपि, महिषासुर और विभावसु, हे शत्रुघ्न ! इल्वल सहित वातापि और ब्रह्मा जी के पुत्र, दुर्भर्ष और कामदेव, उत्कल और मातृ गण, शुक्राचार्य और बृहस्पति, नरकासुर और शनिश्चर, निवात कवच और मरुत गण, कालेय और वसु, पौलोम और विश्वेदेवा, क्रोध वश और रुद्रगण, इस भांति वे देवता तथा दैत्यगण परस्पर भिड़-भिड़कर द्वंद्व-युद्ध करने लगे और एक दूसरे पर बढ़-चढ़कर, जय की इच्छा से तीक्ष्ण बाण, तलवार और भालों द्वारा बल-पूर्वक प्रहार करने लगे ॥२८॥२९॥३०॥३१॥३२॥३३॥३४॥३५॥

भुशुंडिभिश्चक्रगदर्ष्टिपट्टिशैः शक्त्युल्मुकैः प्रासपरश्वधैरपि । निस्त्रिंशभल्लैः परिघैः समुद्गरैः सभिंदिपालैश्च शिरांसि चिच्छिदुः ॥३६॥

भुशुंडी, चक्र, गदा, ऋष्टि, पट्टिश, शक्ति, उल्मुक प्रास, परश, खड्ग, भाले, परिघ, मुद्गर और भिंदिपाल-इन शस्त्रों द्वारा एक-दूसरे के सिर कटने लगे॥

गजास्तुरंगाः सरथाः पदातयः सारोहवाहा विविधा विखंडिताः । निकृत्तबाहूरुशिरोधरांघ्रयश्छिन्नध्वजेष्वासतनुत्रभूषणाः ॥३७॥

हाथी, घोड़े, रथ, पैदल, और सवारों सहित दूसरे भी अनेक प्रकार के वाहन छिन्न-भिन्न होने लगे, हाथ, जंघा, गर्दन और पांव कट-कट कर गिरने लगे। ध्वजा, धनुष, कवच और आभूषण बिखरने लगे ॥ ३७ ॥

तेषां पदाघातरथांगचूर्णितादायोधनादुल्बणमुत्थितस्तदा । रेणुर्दिशः खं द्युमणिं च छादयन्न्यवर्ततासृक्स्रुतिभिः परिप्लुतात् ॥३८॥

उनके पाँव पड़ने तथा पहियों के फिरने से, रण-भूमि में जो धूल उठी वह एक बार तो इतनी भयङ्कर फैली कि सब दिशायें, आकाश और सूर्य ढकगया, परन्तु रक्त-धार बहनेसे फिर वह बैठगई॥

शिरोभिरुत्कृत्तकिरीटकुंडलैः संरंभदृग्भिः परिदष्टदच्छदैः । महाभुजैः साभरणैः सहायुधैः सास्तृता भूः करभोरुभिर्वभौ ॥३९॥

किरीट, मुकुट, कुण्डल सहित, क्रोधमय दृष्टि पूर्ण तथा दाँतों से होंठ चबाते हुए कटे मस्तकों, आभूषण तथा आयुधों सहित भुजाओं की राशि और जंघाओं से ढकी हुई रणभूमि महान् शोभा पा रही थी ॥३९॥

कबंधास्तत्र चोत्पेतुः पश्यंतः स्वशिरोक्षिभिः ।
उद्यतायुधदोर्दंडैराधावंतो भटान्मृधे ॥४०॥

अपने मस्तक के खुले हुए नेत्रों के देखते हुए, कितने ही कबंध हाथों में शस्त्र लेकर योधाओं के सामने दौड़ते हुए युद्ध करने लगे ॥४०॥

बलिर्महेंद्रं दशभिस्त्रिभिरैरावतं शरैः ।
चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकेनारोहमार्च्छयत् ॥४१॥

शुकदेवजी बोले-हे राजन् ! उस समय बलिने दस बाण इन्द्र को, तीन बाण ऐरावत हाथी को, चार बाण वाहनोंको और एक बाण महावतको मारा।

स तानापततः शक्रस्तावद्भिः शीघ्रविक्रमः ।
चिच्छेद निशितैर्भल्लैरसंप्राप्तान्हसन्निव ॥४२॥

इन्द्र ने उन बाणों को देखकर, आने से पहले ही, अपने तीक्ष्ण बाणों द्वारा हँसते हँसते शीघ्र ही काट डाला ॥ ४२ ॥

तस्य कर्मोत्तमं वीक्ष्य दुर्मर्षः शक्तिमाददे ।
तां ज्वलंतीं महोल्काभां हस्तस्थामच्छिनद्धरिः॥४३॥

इन्द्र का यह श्रेष्ठ कार्य देखकर बलि ने शक्ति हाथ में ली जो कि उल्का की भांति प्रकाशित हो रहीथी, इन्द्र ने उसे भी हाथही में काट गिराया ॥

ततः शूलं ततः प्रासं ततस्तोमरमृष्टयः ।
यद्यच्छस्त्रं समादद्यात्सर्वं तदच्छिनद्विभुः ॥४४॥

तब बलि ने त्रिशूल लिया फिर प्रास, भालाव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऋष्टि ग्रहण किये, हे राजन् ! बलि ने जो-जो शस्त्र भी हाथमें लिये, इन्द्र ने उन सबको काट गिराया ॥

ससर्जाथासुरीं मायामंतर्धानं गतोसुरः ।
ततः प्रादुरभूच्छैलः सुरानीकोपरि प्रभो ॥४५॥

हे राजन् ! फिर बलि ने अन्तर्धान होकर आसुरी माया फैलाई, जिससे देव-दल पर एक पर्वत प्रकट हुआ ॥४५॥

ततो निपेतुस्तरवो दह्यमाना दवाग्निना ।
शिलाः सटंकशिखराश्चूर्णयंत्यो द्विषद्बलम् ॥४६॥

फिर उस पर्वत की दावाग्निसे जलते हुए वृक्ष गिरने लगे और शत्रु-दल को चूर्ण करती हुई शिलायें और टाँकी के समान पैने अग्र भाग वाले शिखर गिरने लगे ॥४६॥

महोरगाः समुत्पेतुर्दंदशूकाः सदष्टिकाः ।
सिंहव्याघ्रवराहाश्च मर्दयंतो महागजान् ॥४७॥

बड़े-बड़े साँप, बिच्छू, कनखजूरे गिरने लगे और सिंह,व्याघ्र तथा वराह–यह बड़े-बड़े हाथियों का संहार करने लगे ॥४७॥

यातुधान्यश्च शतशः शूलहस्ता विवाससः ।
छिंधिभिंधीतिवादिन्यस्तथा रक्षोगणाः प्रभो॥४८॥

हे राजन् ! सैकड़ों राक्षस और राक्षसनी त्रिशूल हाथ में लिये हुए नग्न होकर "काटो-काटो, छेदो-छेदो" यह शब्द कहने लगीं ॥४८॥

ततो महाघना व्योम्नि गंभीरपरुषस्वनाः ।
अंगारान्मुमुचुर्वातैराहताः स्तनयित्नवः ॥४९॥

फिर गंभीर तथा घोर शब्द करते हुए बड़े २ मेघ नभ-मंडल में छागये और पवन की प्रेरणा से 'कड़-कड़' करते हुए अङ्गार बरसाने लगे ॥४९॥

सृष्टो दैत्येन सुमहान्वह्निः श्वसनसारथिः ।
सांवर्तक इवात्युग्रो विबुधध्वजिनीमधाक् ॥५०॥

फिर बलि दैत्यने पवन की सहायता से प्रलय के समान महा भयङ्कर अग्नि उत्पन्न की, उसने देवताओं की सेना को जला डाला ॥५०॥

ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्रत्यदृश्यत ।
प्रचंडवातैरुद्धूततरंगावर्तभीषणः ॥५१॥

फिर प्रचंड पवन से लहराता हुआ तथा भंवर पड़ता हुआ मर्यादा से बाहर समुद्र चारों ओर से दिखाई देने लगा ॥५१॥

एवं दैत्यैर्महामायैरलक्ष्यगतिभीषणैः ।
सृज्यमानासु मायासु विषेदुः सुरसैनिकाः ॥५२॥

जिनकी गति समझी नहीं जाती, ऐसे महा भयङ्कर और मायावी दैत्योंने इसभांति अनेकप्रकार की मायाकी, तो देवताओंकी सेना घबरा उठी ॥

न तत्प्रतिविधिं यत्र विदुरिंद्रादयो नृप ।
ध्यातः प्रादुरभूत्तत्र भगवान्विश्वभावनः ॥५३॥

हे राजन् ! इन्द्र आदि देवताओं को जब वहाँ कोई उपाय न सूझा, तब स्मरण करते ही जगत्-पालक भगवान् स्वयं प्रकट हुए ॥५३॥

ततः सुपर्णांसकृतांघ्रिपल्लवः पिशंगवासा नव कंजलोचनः । अदृश्यताष्टायुधवाहुरुल्लसच्छ्रीकौस्तुभानर्घ्यकिरीटकुंडलः ॥५४॥

वे प्रभु गरुड़पर चरणकमल रक्खे हुए,पीतांवर पहिने, आठ भुजा में आठों आयुध धारण किये हुए, श्री, कौस्तुभमणि, अमूल्य कुण्डल व किरीट से दीप्तमान् और कमल के समान नेत्र धारण किये हुए दृष्टि पड़े ॥५४॥

तस्मिन्प्रविष्टेऽसुरकूटकर्मजा मायाविनेशुर्महिना महीयसः । स्वप्ना यथा हि प्रतिबोध आगते हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम् ॥५५॥

भगवान् के पधारते ही उनकी महिमा से दैत्यों के छल से रची हुई समस्त माया ऐसे नष्ट होगई जैसे जागने पर स्वप्न की माया नष्ट होजाती है, क्योंकि भगवान् का स्मरण सब विपदाओं से मुक्त करने वाला है ॥५५॥

दृष्ट्वा मृधे गरुडवाहमिभारिवाह आविध्य शूल महिनोदथ कालनेमिः । तल्लीलया गरुडमूर्ध्नि पतद्गृहीत्वा तेनाहनन्नृप सवाहमरिं त्र्यधीशः॥५६

सिंह पर चढ़े हुए कालनेमि दैत्य ने भगवान् को रण-स्थल में गरुड़ पर सवार देखकर त्रिशूल चलाया, हे पृथ्वीनाथ ! वह गरुड़के माथे पर पड़ने वाला ही था कि त्रिलोकीनाथ ने खेल ही में उसे बीचसे पकड़ लिया और उसी त्रिशूलसे कालनेमि को वाहन सहित मार गिराया ॥५६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

माली सुमाल्यतिबलौ युधि पेततुर्यच्चक्रेण कृत्त शिरसावथ माल्यवांस्तम् । आहत्य तिग्मगदयाऽह नदंडजेंद्रं तावच्छिरोऽच्छिनदरेर्नदतोऽरिणाऽऽद्यः ॥

इसके पीछे महाबली माली और सुमाली के सामने आनेपर भगवान्‌ने चक्र द्वारा उनके मस्तक काट गिराये, तब माल्यवान्‌ने तीक्ष्ण गदाका गरुड़ पर प्रहार किया, परन्तु भगवान् ने उस गर्जना करते हुए शत्रु का मस्तक उतने ही बीच में काट गिराया ॥५७॥

इति श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

ग्यारहवां अध्याय

(देवासुर की समर-समाप्ति)

श्रीशुक उवाच

अथो सुराः प्रत्युपलब्धचेतसः परस्य पुंसः परयानुकंपया । जघ्नुर्भृशं शक्रसमीरणादयस्तां स्तान्रणे यैरभिसंहताः पुरा ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–भगवान् की कृपासे चेतन्यता पाये हुए इन्द्र और वायु आदि देवता जिन दैत्यों द्वारा पहले घायल किये गये थे, उनको भलीभांति मारने लगे ॥ १ ॥

वैरोचनाय संरब्धो भगवान्पाकशासनः । उदयच्छद्यदा वज्रं प्रजा हाहेति चुक्रुशुः ॥ २ ॥

जब इन्द्रने क्रोधित होकर राजा बलि पर वज्र उठाया तब समस्त प्रजा हाहाकार करने लगी ॥२॥

वज्रपाणिस्तमाहेदं तिरस्कृत्य पुरःस्थितम् । मनस्विनं सुसंपन्नं विचरंतं महामृधे ॥ ३ ॥

सामने खड़े हुए उदार चित्त, महा सम्पन्न, घोर युद्ध-भूमि में विचरते हुए बलि का अपमान करके वज्र धर इन्द्रने यह वचन कहा ॥३॥

नटवन्मूढ मायाभिर्मायेशान्नो जिगीषसि । जित्वा बालान्निबद्धाक्षान्नटो हरति तद्धनम् ॥ ४ ॥

हे मूर्ख ! जैसे नट मूर्खों की आँखें बन्द करके जय पाकर उनका धन हरलेता है वैसे ही तू मुझ मायापति पर माया फैलाकर जीतना चाहताहै ॥४॥

आरुरुक्षंति मायाभिरुत्सिसृप्संति ये दिवम् । तान्दस्यून्विधुनोम्यज्ञान्पूर्वस्माच्च पदादधः ॥ ५ ॥

जो मायापूर्वक स्वर्ग में चढ़ना चाहते हैं या स्वर्ग को उल्लंघन करना चाहते हैं, उन मूर्ख चोरों को मैं पहले स्थानसे भी पतित कर देता हूँ ॥५॥

सोऽहं दुर्मायिनस्तेऽद्य वज्रेण शतपर्वणा । शिरो हरिष्ये मंदात्मन्धटस्व ज्ञातिभिः सह ॥ ६ ॥

हे मूर्ख ! तुझ मायावी का सिर मैं अपने सौ धार वाले वज्र से आज उड़ा दूँगा, इसलिये तुझसे जो बनसके, अपने जाति वालों के साथ वह उपाय करले ॥ ६ ॥

बलिरुवाच

संग्रामे वर्तमानानां कालचोदितकर्मणाम् । कीर्तिर्जयोऽजयो मृत्युः सर्वेषां स्युरनुक्रमात् ॥ ७ ॥

बलि बोला–दैव जिनको कर्मों की प्रेरणा कर रहा है, ऐसे संग्राम में खड़े हुए वीरोंको यश, हार, जीत और मृत्यु तो मिला ही करती है ॥७॥

तदिहं कालरशनं जनाः पश्यंति सूरयः । न हृष्यंति न शोचंति तत्र यूयमपंडिताः ॥८॥

ज्ञानी पुरुष इस संसार को दैव के आधीन जानकर इससे न तो आनन्द मानते हैं और न शोक, पर तुम इस बात को नहीं जानते ॥८॥

न वयं मन्यमानानामात्मानं तत्र साधनम् । गिरो वः साधु शोच्यानां गृह्णीमो मर्मताडनाः ॥९॥

तुम कीर्त्ति या जय आदि में अपने को कर्त्ता मानते हो, इसलिये तुम साधुजनों द्वारा शोचनीय हो, इसलिये हम तुम्हारे इन मार्मिक कठोर वचनों पर ध्यान नहीं देते ॥९॥

श्रीशुक उवाच

इत्याक्षिप्य विभुं वीरो नाराचैर्वीरमर्दनः । आकर्णपूर्णैरहनदाक्षेपैराहतं पुनः ॥१०॥

श्रीशुकदेवजी बोले–वीरों को मर्दन करने वाले वीर बलि ने इस प्रकार तिरस्कार करके वचनों द्वारा ताड़न पाये हुए इन्द्र पर कान तक खींचे हुए नाराचों से प्रहार किया ॥१०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एवं निराकृतो देवो वैरिणा तथ्यवादिना ।
नामृष्यत्तदधिक्षेपं तोत्राहत इव द्विपः ॥११॥

जब सत्यवादी शत्रु बलि ने इस प्रकार अपमान किया, तो इन्द्र उसे उसी भांति सहन न कर सका जैसे कि अंकुश से ताड़ित हाथी अपना तिरस्कार नहीं सहन करता है ॥ ११ ॥

प्राहरत्कुलिशं तस्मा अमोघं परमर्दनः ।
सयानो न्यपतद्भूमौ छिन्नपक्ष इवाचलः ॥१२॥

शत्रुओं को मर्दन करने वाले इन्द्र ने उस पर वज्र चलाया, तो वह विमान सहित पर कटे पर्वत की नाईं पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥१२॥

सखायं पतितं दृष्ट्वा जंभो बलिसखः सुहृत् ।
अभ्ययात्सौहृदं सख्युर्हतस्यापि समाचरन् ॥१३॥

अपने मित्र को पड़ा हुआ देखकर मरने पर भी मित्रता निभाने के लिये बलि का मित्र जंभ इन्द्र के सामने आया ॥१३॥

ससिंहवाह आसाद्य गदामुद्यम्य रंहसा ।
जत्रावताडयच्छक्रं गजं च सुमहाबलः ॥१४॥

सिंह पर चढ़े हुए उस दैत्य ने शीघ्र ही इन्द्र के पास आकर, गदा उठाकर इन्द्र के हाथी पर प्रहार किया ॥१४॥

गदाप्रहारव्यथितो भृशं विह्वलितो गजः ।
जानुभ्यां धरणिं स्पृष्ट्वा कश्मलं परमं ययौ॥१५॥

गदाके प्रहार से दुःखी होकर वह हाथी अत्यंत विह्वल होगया और उसने पृथ्वीपर घुटने टेकदिये एवं बहुत ही पीड़ित होगया ॥१५॥

ततो रथो मातलिना हरिभिर्दशशतैर्वृतः ।
आनीतो द्विपमुत्सृज्य रथमारुरुहे विभुः ॥१६॥

तब मातलि सारथी ने एक हज़ार घोड़ों वाला रथ लाकर उपस्थित किया और इन्द्र ऐरावत को छोड़कर उस रथपर सवार हुए ॥१६॥

तस्य तत्पूजयन्कर्म यंतुर्दानवसत्तमः ।
शूलेन ज्वलता तं तु स्मयमानोऽहनन्मृधे ॥१७॥

दैत्यों में चतुर (जंभ) ने मातलि के काम की प्रशंसा की और युद्ध में हँसकर कान्तिमय त्रिशूल से उसपर प्रहार किया ॥१७॥

सेहे रुजं सुदुर्मर्षां सत्वमालंब्य मातलिः ।
इंद्रो जंभस्य संक्रुद्धो वज्रेणापाहरच्छिरः ॥१८॥

मातलि ने धैर्य धारण कर उस असह्य पीड़ा को सहन किया और इन्द्रने भी क्रोध पूर्वक जंभ का सिर वज्र से काट गिराया ॥१८॥

जंभं श्रुत्वा हतं तस्य ज्ञातयो नारदादृषेः ।
नमुचिश्च बलः पाकस्तत्रापेतुस्त्वराऽन्विताः ॥१९॥

उसके सजातीय नमुचि, बल और पाक नारद जी के द्वारा उसका वध-संवाद पाकर शीघ्र ही उसके पास आये ॥१९॥

वचोभिः परुषैरिंद्र मर्दयंतोऽस्य मर्मसु ।
शरैरवाकिरन्मेघा धाराभिरिव पर्वतम् ॥२०॥

और कठोर वचनों द्वारा इन्द्रको मार्मिक पीड़ा देते हुए ऐसी बाण-वर्षा करने लगे जैसे बादलों से पर्वत पर मूसलाधार वर्षा होरही हो ॥२०॥

हरीन्दशशतान्याजौ हर्यश्वस्य बलः शरैः ।
तावद्भिरर्दयामास युगपल्लघुहस्तवान् ॥२१॥

फुर्तीले हाथ वाले बल दैत्य ने युद्ध में इन्द्र के एक हज़ार घोड़ोंको उतनेही बाणोंद्वारा बींधदिया॥

शताभ्यां मातलिं पाको रथं सावयवं पृथक् ।
सकृत्संधानमोक्षेण तदद्भुतमभूद्रणे ॥२२॥

पाक दैत्य ने एक साथ धनुषमें सौ बाण जोड़ कर मातलिको बींध डाला तथा रथ के प्रत्येक अङ्ग को पृथक् २ भेदन किया; उस समय एक साथ बाण चढ़ाने तथा चलाने का काम बड़े ही आश्चर्य का हुआ ॥२२॥

नमुचिः पंचदशभिः स्वर्णपुंखैर्महेषुभिः ।
आहत्य व्यनदत्संख्ये सतोय इव तोयदः ॥२३॥

नमुचि ने सोनेकी पंख वाले पन्द्रह बाण चला कर जल सहित बादलों की भांति गर्जना की ॥२३॥

सर्वतः शरकूटेन शक्रं सरथसारथिम् ।
छादयामासुरसुराः प्रावृट् सूर्यमिवांबुदाः ॥२४॥

जैसे वर्षा-ऋतु के सूर्य को बादल घेर लेते हैं, वैसेही रथ और सारथी सहित इन्द्रको दैत्यों ने बाणों द्वारा चारों ओर से घेर लिया ॥२४॥

अलक्षयंतस्तमतीव विह्वला विचुक्रुशुर्देवगणाः सहानुगाः । अनायकाः शत्रुबलेन निर्जिता वणिक्पथा भिन्नवहो यथाऽर्णवे॥२५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इन्द्र को न देखकर अनुचरों सहित देवता गण अत्यंत विह्वल होगये और शत्रुदलसे हारकर ऐसी पुकार करने लगे जैसे समुद्र में जहाज़ डूबने पर वणिक पुकारते हैं ॥२५॥

ततस्तुराषाडिषुबद्धपंजराद्विनिर्गतः साश्वरथ ध्वजाग्रणीः । बभौ दिशः खं पृथिवीं च रोचयन्स्व तेजसा सूर्य इव क्षपात्यये ॥२६॥

फिर शीघ्र ही उस बाणों के पींजरे से घोड़े, रथ और सारथी के साथ इन्द्र बाहर निकले और दिशा, आकाश तथा पृथ्वीको अपने तेज से प्रकाशित करके ऐसे शोभायमान् हुए जैसे रातके अन्त में सूर्य निकल कर प्रकाश करता हुआ शोभित होता है ॥ २६ ॥

निरीक्ष्य पृतनां देवः परैरभ्यर्दितां रणे । उदयच्छ द्रिपुं हंतुं वज्रं वज्रधरो रुषा ॥२७॥

इन्द्र ने युद्ध में शत्रुओं द्वारा अपनी सेना को पीड़ित देखकर उनके मारने के लिये वज्र उठाया ॥

स तेनैवाष्टधारेण शिरसी बलपाकयोः । ज्ञातीनां पश्यतां राजञ्जहार जनयन्भयम् ॥२८॥

हे राजन् ! उसी आठ धार वाले वज्रके द्वारा उसकी जाति वालों को भयभीत करते हुए, उन्हींके सामने इन्द्र ने बल और पाकके मस्तक काटडाले ॥

नमुचिस्तद्वधं दृष्ट्वा शोकामर्षरुषान्वितः । जिघांसुरिंद्रं नृपते चकार परमोद्यमम् ॥२९॥

हे राजन् ! उन दोनों को मरा हुआ देखकर नमुचि ने शोक, अमर्ष तथा क्रोधमें उमड़कर इन्द्र को मारनेके लिये महान् उद्योग किया ॥२९॥

अश्मसारमयं शूलं घंटावद्धेमभूषणम् । प्रगृह्याभ्यद्रवत्क्रुद्धो हतोऽसीति वितर्जयन् । प्राहिणोद्देवराजाय निनदन्मृगराडिव ॥३०॥

घंटा बंधा हुआ, स्वर्ण से शोभायमान, पाषाण का सार रूप त्रिशूल हाथ में लेकर "मार लियाहै" इस प्रकार के वचनों से इन्द्र का अपमान करता हुआ वह दौड़ पड़ा और सिंह की भांति गरज कर उसने इन्द्र पर त्रिशूल चलाया ॥३०॥

तदापतद्गगनतले महाजवं विचिच्छिदे हरिरिषुभिः सहस्रधा । तमाहनन्नृप कुलिशेन कंधरे रुषान्वितस्त्रिदशपतिः शिरोऽहरत् ॥३१॥

हे राजन् ! इन्द्र ने अपने बाणों द्वारा आकाशमें तीव्र वेग के साथ आते हुए, उस त्रिशूल के हज़ारों टुकड़े कर डाले, फिर क्रोध-पूर्वक उसका सिर काटने के लिये उसके कण्ठ पर वज्र प्रहार किया ॥

न तस्य हि त्वचमपि वज्र ऊर्जितो बिभेद यः सुरपतिनौजसेरितः । तदद्भुतं परमतिवीर्यवृत्रभित्तिरस्कृतो नमुचिशिरोधरत्व चा ॥३२॥

यद्यपि इन्द्र ने बड़े वेग के साथ बज्र चलाया, परन्तु उससे नमुचि की खाल भी न छिद सकी, यह बात बड़े ही आश्चर्य की हुई कि महा पराक्रमी वृत्रासुर को मारने वाला वज्र नमुचि के गले की खाल से तिरस्कृत होगया ॥ ३२ ॥

तस्मादिंद्रोऽबिभेच्छत्रोर्वज्रः प्रतिहतो यतः । किमिदं दैवयोगेन भूतं लोकविमोहनम् ॥३३॥

तब तो वज्र को रोक देने वाले उस दैत्य से इन्द्र भी डर गये और सोचने लगे कि विश्व-विमोहन दैवयोगसे यह क्या हुआ ? ॥३३॥

येन मे पूर्वमद्रीणां पक्षच्छेदः प्रजात्यये । कृतो निविशतां भारैः पतत्रैः पततां भुवि ॥३४॥

जिस वज्रके द्वारा मैंने उन पर्वतों के पंख काट गिराये थे, जो पंखों से उड़ते हुए पृथ्वीपर गिरकर अपने भार से प्रजाका नाश किया करते थे ॥३४॥

तपःसारमयं त्वाष्ट्रं वृत्रो येन विपाटितः । अन्ये चापि बलोपेताः सर्वास्त्रैरक्षतत्वचः ॥३५॥

जिसके द्वारा त्वष्टा के तप का सार-रूप वृत्रासुर विदीर्ण कियाथा, औरभी अनेक ऐसे बलवानों को मैंने जिसके द्वारा मारा कि जो दूसरे शस्त्रों से न मर सके थे ॥ ३५ ॥

सोऽयं प्रतिहतो वज्रो मया मुक्तोऽसुरेऽल्पके । नाहं तदाददे दंडं ब्रह्मतेजोऽप्यकारणम् ॥३६॥

तब मैं केवल उस वज्र को (एक साधारण से दैत्य पर असफल देखकर) केवल लकड़ीकी भांति लेकर क्या करूँ ? आश्चर्य है कि दधीचि ऋषि की सामर्थ्य भी यहाँ कुछ काम न दे सकी ॥३६॥

इति शक्रं विषीदंतमा ह वागशरीरिणी । नायं शुष्कैरथो नार्द्रैर्वधमर्हति दानवः ॥३७॥

इस प्रकारसे दुःखी इन्द्र के लिये आकाशवाणी हुई कि यह दैत्य न तो गीले पदार्थसे मर सकेगा, और न सूखे से ॥३७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मयास्मै यद्वरो दत्तो मृत्युर्नैवार्द्रशुष्कयोः ।
अतोऽन्यश्चिंतनीयस्ते उपायो मघवन्रिपोः ॥३८॥

क्योंकि मैंने इसे यही वरदान दिया कि तू गीले या सूखे पदार्थ से न मरेगा।' इसलिये हे इन्द्र ! इसके मारने के लिये दूसरा उपाय सोचो ॥३८॥

तां दैवीं गिरमाकर्ण्य मघवान्सुसमाहितः ।
ध्यायन्फेनमथापश्य दुपायमुभयात्मकम् ॥३९॥

इस दैव-वाणी को सुनकर इन्द्र ने एकाग्रचित्त से विचार किया तो उन्हें यह समझ में आया कि ऐसा पदार्थ तो केवल समुद्रफेन है, जो न गीला ही है और न सूखा ॥३९॥

न शुष्केण न चार्द्रेण जहार नमुचेः शिरः ।
तं तुष्टुवुर्मुनिगणा माल्यैश्चावाकिरन्विभुम्॥४०॥

पस-उसी भय रूप समुद्रफेनसे इन्द्र ने नमुचि का सिर काट डाला, तब तो मुनि-वृन्द स्तुति करने और फूल बरसाने लगे ॥४०॥

गंधर्वमुख्यौ जगतुर्विश्वावसुपरावसू ।
देवदुंदुभयो नेदुर्नर्तक्यो ननृतुर्मुदा ॥४१॥

गन्धर्वोंमें प्रमुख विश्वावसु और परावसु गाने लगे, देवगणों की दुन्दुभियां बजने लगीं और नटनी नृत्य करने लगीं ॥४१॥

अन्येऽप्येवं प्रतिद्वंद्वान्वायव्यग्निवरुणादयः ।
सूदयामासुरस्त्रौघैर्गान्केसरिणो यथा ॥४२॥

दूसरे वायु, अग्नि,वरुण आदि देवताभी अपने अपने शत्रुओं का अस्त्रों द्वारा इस प्रकार संहार करने लगे जैसे सिंह हिरणोंका संहार करताहै ॥

ब्रह्मणा प्रेषितो देवान्देवर्षिर्नारदो नृप ।
वारयामास विबुधान्दृष्ट्वा दानवसंक्षयम् ॥४३॥

हे राजन् ! ब्रह्माजी ने दैत्यों का संहार देखकर देवर्षि नारदजी को भेजकर उनके द्वारा देवताओं को ऐसा करने से रोका ॥४३॥

नारद उवाच

भवद्भिरमृतं प्राप्तं नारायणभुजाश्रयैः ।
श्रिया समेधिताः सर्व उपारमत विग्रहात् ॥४४॥

श्रीनारदजी बोले-तुम लोग भगवान् की भुजाओं का आश्रय पाकर अमृत पीचुके हो तथा श्रीसंपन्न हो चुके हो, इसलिये अब युद्ध न करो ॥४४॥

श्रीशुक उवाच

संयम्य मन्युसरंभं मानयंतो मुनेर्वचः ।
गीयमाना अनुचरैर्ययुः सर्वे त्रिविष्टपम् ॥४५॥

श्रीशुकदेवजी बोले-मुनि नारदका वचन मान कर देवताओं ने क्रोधका वेग रोका और स्वर्ग को चलदिये, उस समय उनके अनुचर यश गाते हुए जाते थे ॥ ४५ ॥

येऽवशिष्टा रणे तस्मिन्नारदानुमतेन ते ।
बलिं विपन्नमादायास्तं गिरिमुपागमन् ॥४६॥

बचे हुए दैत्य गण नारदजी की सम्मति से मृतकों और बलि को अस्ताचल पर ले गये ॥४६॥

तत्राऽविनष्टावयवान्विद्यमानशिरोधरान् ।
उशना जीवयामास संजीविन्या स्वविद्यया॥४७॥

उन दैत्यों में जिनके अङ्ग नष्ट नहीं हुए थे तथा गले अक्षत थे, उनको शुक्राचार्यजी ने संजीवनी अद्भुत विद्याके द्वारा जीवित कर दिया ॥४७॥

बलिश्चोशनसा स्पृष्टः प्रत्यापन्नेंद्रियस्मृतिः ।
पराजितोऽपि ना खिद्यल्लोकतत्त्वविचक्षणः॥४८॥

शुक्राचार्य के स्पर्श करते ही बलि दैत्य को फिर चैतन्यता आगई, उसे अपने हारने का ध्यान आगया, किन्तु उसने किंचित खेद न माना, क्यों कि वह जगत् के तत्वको भले प्रकार जानता था ॥

इति श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

बारहवां अध्याय

(रुद्र-संमोहन)

बादरायणिरुवाच

वृषध्वजो निशम्येदं योषिद्रूपेण दानवान् ।
मोहयित्वाऽसुरगणान्हरिः सोममपाययत् ॥ १ ॥
वृषमारुह्य गिरिशः सर्वभूतगणैर्वृतः ।
सह देव्या ययौ द्रष्टुं यत्रास्ते मधुसूदनः ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-जब महादेवजीने यह बात सुनी कि भगवान् ने स्त्री का वेष बनाकर दैत्यों को मोहित करके, देवताओं को अमृत पिलाया है, तब

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वे सभी भूतगणों को साथ लेकर, पार्वतीजीसहित नंदी पर सवार होकर वहाँ पहुंचे, जहाँ भगवान् विराजमान् थे ॥१॥२॥

सभाजितो भगवता सादरं सोमया भवः ।
सूपविष्ट उवाचेदं प्रतिपूज्य स्मयन्हरिम् ॥ ३ ॥

भगवान् ने पार्वतीजी सहित महादेवजी का बहुतही सन्मान किया और श्रीमहादेवजी भी भले प्रकार आसन पर बैठ कर भगवान् से आदरपूर्वक मुसकाते हुए यह वचन कहने लगे ॥३॥

श्रीमहादेव उवाच

देवदेव जगद्व्यापिञ्जगदीश जगन्मय ।
सर्वेषामपि भावानां त्वमात्मा हेतुरीश्वरः ॥ ४ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे देवदेव ! हे जगत्व्यापक ! हे जगदीश ! हे जगन्मय ! सब पदार्थों के कारण, आत्मा और ईश्वर आपही हैं ॥४॥

आद्यंतावस्य यन्मध्यमिदमन्यदहं बहिः ।
यतोऽव्ययस्य नैतानि तत्सत्यं ब्रह्म चिद्भवान् ॥५॥

जिससे संसार का आदि, मध्य और अन्त होता है, परन्तु स्वयं आदि, मध्य और अन्त से रहित हैं, जिससे द्रष्टा, दृश्य, भोक्ता या भोग्य कुछ भी भिन्न नहीं है, वह अव्यय-रूप, सत् और चैतन्मय परब्रह्म आपही हैं ॥५॥

तवैव चरणांभोजं श्रेयस्कामा निराशिषः ।
विसृज्योभयतः संगं मुनयः समुपासते ॥ ६ ॥

कल्याणकी इच्छावाले निष्काम मुनिवृन्द इहिलौकिक तथा पारलौकिक मोह को छोड़कर केवल आपही के चरणार्विन्द की आराधना करते हैं ॥६॥

त्वं ब्रह्म पूर्णममृतं विगुणं विशोकमानंदमात्रम विकारमनन्यदन्यत् । विश्वस्य हेतुरुदयस्थितिसंयमानामात्मेश्वरश्च तदपेक्षतयाऽनपेक्षः ॥ ७ ॥

आप पूर्ण अमृत, निर्गुण, निःशोक, आनन्दमय, निर्विकार, सर्वमय, सबसे पृथक् और परब्रह्म स्वरूप हो, फिर भी जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के कारण रूप हो और जीवों को पृथक् २ फल देते हो, आप किसी की अपेक्षा नहीं करते, वरन् सब जीव आपकी अपेक्षा करते हैं ॥७॥

एकस्त्वमेव सदसद्द्वयमद्वयं च स्वर्णं कृताकृतमिवेह न वस्तुभेदः । अज्ञानतस्त्वयि जनैर्विहितो विकल्पो यस्माद्गुणैर्व्यतिकरो निरुपाधिकस्य ८॥

किसी आकार विशेष में ढला हुआ और साधारण रूप वाला सोना जैसे एकही वस्तु हैं, वैसे ही कार्य-कारण रूप द्वैत तथा द्वैत के परम कारण रूप आप एक ही हैं, आपमें किसी प्रकारका वस्तुभेद नहीं है, जो भेद प्रतीत होता है वह अज्ञानता से माना गया है, क्योंकि आपके निरुपाधिक स्वरूप में प्रतीत होने वाला भेद केवल गुण-कृत है, वास्तविक नहीं ॥८॥

त्वां ब्रह्म केचिदवयंत्युत धर्ममेक एके परं सद सतोः पुरुषं परेशम् । अन्येऽवयंति नवशक्तियुतं परं त्वां केचिन्महापुरुषमव्ययमात्मतंत्रम् ॥ ९ ॥

कोई आपको ब्रह्म कहते हैं, कई एक धर्मकहते हैं, कोई प्रकृति और पुरुष से परे कहते हैं, कोई पुरुष मानते हैं, कोई नौ शक्तियों से संयुक्त कहते हैं, कोई अक्षर स्वतन्त्र और महापुरुष जानते हैं ॥

नाहं परायुर्ऋषयो न मरीचिमुख्या जानंति यद्विरचितं खलु सत्त्वसर्गाः । यन्माययामुषित चेतस ईशदैत्यमर्त्यादयः किमुत शश्वदभद्रवृत्ताः १०

मैं, ब्रह्मा और मरीचि आदि ऋषि जो कि सत्व गुण से उत्पन्न हैं, जब आपके रचे हुए जगत् को ही भले प्रकार नहीं जानते तब हे नाथ ! आप की माया से मोहित तथा रज-तम से उत्पन्न हुए ये दैत्य और मनुष्य यदि इस संसार को न जान सकें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? ॥१०॥

स त्वं समीहितमदः स्थितिजन्मनाशं भूतेहितं च जगतो भवबंधमोक्षौ । वायुर्यथा विशति खं च चराचराख्यं सर्वं तदात्मकतयाऽवगमोऽवरुंत्से॥

आप अपने रचे हुए जगत् की उत्पत्ति, स्थिति प्रलय, प्राणियों की चेष्टा तथा जगत्के बन्धन और मोक्ष को जानते हो, जैसे वायु स्थावर, जङ्गम तथा आकाश में व्याप्त है, वैसे ही आप ज्ञानरूप से सब में प्रविष्ट एवं सर्वात्मा हो ॥११॥

अवतारा मया दृष्टा रममाणस्य ते गुणैः ।
सोऽहं तद्द्रष्टुमिच्छामि यत्ते योषिद्वपुर्धृतम् १२॥

गुणों के द्वारा रमण करने वाले आपके कई अवतार मैंने देखे हैं, किन्तु अब आपने जो स्त्रीरूप धारण किया है मैं उसे देखना चाहता हूँ ॥ १२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

येन संमोचिता दैत्याः पायिताश्चामृतं सुराः ।
तद्दिदृक्षव आयाताः परं कौतूहलं हि नः ॥१३॥

जिस स्वरूप के द्वारा आपने दैत्यों को मोहित करके देवताओं को अमृत पिलाया है, वह स्वरूप देखने की इच्छा से मैं यहाँ आया हूँ, क्योंकि मुझे इस बात का बड़ा ही आश्चर्य है ॥१३॥

श्रीशुक उवाच

एवमभ्यर्थितो विष्णुर्भगवाञ्छूलपाणिना ।
प्रहस्य भावगंभीरं गिरिशं प्रत्यभाषत ॥१४॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! शूलपाणि (महादेवजी)की ऐसी प्रार्थना सुनकर विष्णुभगवान् ने हँसकर गंभीर भाव से यह कहा ॥१४॥

श्रीभगवानुवाच

कौतूहलाय दैत्यानां योषिद्वेषो मया कृतः ।
पश्यता सुरकार्याणि गते पीयूषभाजने ॥१५॥

श्रीभगवान् बोले-जब मैंने यह देखा कि अमृत घट दैत्यों के हाथ में चला गया है, तब देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिये मैंने दैत्यों को छलने का विचार करके स्त्री-रूप धारण किया था ॥१५॥

तत्तेऽहं दर्शयिष्यामि दिदृक्षोःसुरसत्तम ।
कामिनां बहु मंतव्यं संकल्पप्रभवोदयम् ॥१६॥

इसलिये हे सुरोत्तम ! यदि आपकी इच्छा है तो मैं वह कामियों का महा मान्य तथा कामोद्दीपन करने वाला रूप आपको अवश्य दिखलाऊँगा ॥१६॥

श्रीशुक उवाच

इति ब्रुवाणो भगवांस्तत्रैवांतरधीयत ।
सर्वतश्चारयंश्चक्षुर्भव आस्ते सहोमया ॥१७॥

श्रीशुकदेवजी बोले-इस प्रकार कहते २ प्रभु वहीं अन्तर्धान होगये और पार्वतीजी सहित महादेवजी वहीं बैठे हुए चारों ओर देखते रहे ॥१७॥

ततो ददर्शोपवने वरस्त्रियं विचित्रपुष्पारुणपल्लवद्रुमे । विक्रीडतीं कंदुकलीलया लसद्दुकूलपर्यस्त नितंबमेखलाम् ॥१८॥

फिर एक विचित्र फूल तथा पत्तों वाले एक बाग में गेंद खेलती हुई एक स्त्री महादेवजी को दिखलाई दी, जिसके शोभामय वस्त्र से ढके हुए नितंब पर कटिमेखला कान्ति देरही थी ॥१८॥

आवर्तनोद्वर्तनकंपितस्तनप्रकृष्टहारोरुभरैः पदे पदे । प्रभज्यमानामिव मध्यतश्चलत्पदप्रवालं नयतीं ततस्ततः ॥१९॥

गेंद खेलनेमें शरीर ऊँचा-नीचा करनेसे कंपित होते हुए स्तन तथा उत्तम हार के भार से पग-पग पर कमर को लचकाती हुई वह स्त्री चारों ओर अपने सुकोमल चरण-पल्लव धर रही थी ॥१९॥

दिक्षु भ्रमत्कंदुकचापलैर्भृशं प्रोद्विग्नतारायतलोललोचनाम् । स्वकर्णविभ्राजितकुंडलोल्लसत्कपोल नीलालकमंडिताननाम् ॥२०॥

चारों दिशाओंमें उछलती हुई गेंदकी चञ्चलता के साथ उद्वेग-पूर्ण पुतलियों वाले विशाल नेत्र चपल होरहे थे तथा कानों के कान्तिमय कुण्डलों से दीप्तमान् कपोलों और नीली अलकों से मुख शोभायमान होरहा था ॥ २० ॥

श्लथद्दुकूलां कबरीं च विच्युतां सबह्नतीं वाम करेण वल्गुना । विनिघ्नतीमन्यकरेण कंदुकं विमोहयंतीं जगदात्ममायया ॥२१॥

वह खिसकते हुए रेशमी वस्त्र तथा छिटकती हुई वेणी को अपने सुन्दर बायें हाथ से संभालती हुई दायें हाथ से गेंद को उछाल २ कर जगत् को मोहित कर रही थी ॥२१॥

तां वीक्ष्य देव इति कंदुकलीलयेषद्व्रीडास्फुट स्मितविसृष्टकटाक्षमुष्टः । स्त्रीप्रेक्षणप्रतिसमीक्षण विह्वलात्मा नात्मानमंतिक उमां स्वगणांश्च वेद२२

इस प्रकार गेंद लीला तथा किंचित् लज्जामय मन्द हास्य-संयुक्त कटाक्ष देखकर उसकी आँखोंमें आँखें मिलतेही महादेवजी मोह-वंचित होकर ऐसे विह्वल होगये कि उन्हें अपने निकट बैठी हुई पार्वतीजी तथा गणों का भी ध्यान न रहा ॥२२॥

तस्याः कराग्रात्स तु कंदुको यदा गतो विदूरं तमनुव्रजत्स्त्रियाः । वासः ससूत्रं लघु मारुतोऽहर द्भवस्य देवस्य किलानुपश्यतः ॥२३॥

जब उसके हाथ से गेंद कुछ दूर होगई, तो मोहनी भी उसके पीछे दूर निकल गई, इतनेही में महादेवजी के देखते २ कटिमेखला सहित उसके भीने वस्त्र को पवन ने हर लिया ॥२३॥

एवं तां रुचिरापांगीं दर्शनीयां मनोरमाम् ।
दृष्ट्वा तस्यां मनश्चक्रे विषज्जंत्यां भवः किल॥२४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उस सुन्दर कुंचित कटाक्षमयी, मनोहर तथा दर्शनीय मोहनी ने जब कटाक्ष पूर्वक महादेवजीकी ओर देखा तो उनका मनभी उनपर आसक्त होगया।

तयाऽपहृतविज्ञानस्तत्कृतस्मरविह्वलः ।
भवान्या अपि पश्यंत्या गतह्रीस्तत्पदं ययौ ॥२५॥

मोहनीद्वारा ज्ञान हरण होने तथा उसके प्रभाव से कामदेव उत्पन्न होने के कारण महादेवजी ऐसे विह्वल होगये कि पार्वतीजीके देखते हुएभी निर्लज्ज होकर उसके पीछे चल दिये ॥२५॥

सा तमायांतमालोक्य विवस्त्रा व्रीडिता भृशम् ।
निलीयमाना वृक्षेषु हसंती नान्वतिष्ठत ॥२६॥

श्रीशिवजीको आता हुआ देखकर अपना वस्त्र खिसक जाने के कारण अत्यन्त लज्जित सी होकर हँसती हुई वह वृक्षों की ओटमें छिपने लगी और कहीं भी न रुकी ॥ ३६॥

तामन्वगच्छद्भगवान्भवः प्रमुषितेंद्रियः ।
कामस्य च वशं नीतः करेणुमिव यूथपः ॥२७॥

श्रीमहादेवजी अपना मन हरण होने से काम-विवश होकर उसके पीछे इस प्रकार दौड़े जैसे काम-विवश हाथी हथनी के पीछे दौड़ता है ॥२७॥

सोऽनुव्रज्यातिवेगेन गृहीत्वाऽनिच्छतीं स्त्रियम् ।
केशबंध उपानीय बाहुभ्यां परिषस्वजे ॥२८॥

श्रीमहादेवजी बड़ी ही फुर्ती के साथ उस स्त्री के पास पहुंचे और उसकी इच्छा न होते हुए भी चोटी पकड़ कर खींचते हुए भुजाओं से आलिंगन करने लगे ॥२८॥

सोपगूढा भगवता करिणा करिणी यथा ।
इतस्ततः प्रसर्पंती विप्रकीर्णशिरोरुहा ॥२९॥

जैसे हाथी हथनी से आलिंगन करता है, वैसे ही शिवजी उसे बगलमें करके आलिंगन करनेलगे, उस समय वह छूटकर भागने के लिये चेष्टा करने लगी तो उसकी वेणी छूट गई ॥२९॥

आत्मानं मोचयित्वांऽग सुरर्षभभुजांतरात् ।
प्राद्रवत्सा पृथुश्रोणी माया देवविनिर्मिता ॥३०॥

हे राजन् ! अन्तमें वह महत्कटि धारणी भगवान् की रची हुई माया, महादेवजी की बगल से अपने को छुड़ाकर वहाँ से निकल भागी ॥ ३० ॥

तस्याऽसौ पदवीं रुद्रो विष्णोरद्भुतकर्मणः ।
प्रत्यपद्यत कामेन वैरिणैव विनिर्जितः ॥३१॥

श्रीमहादेवजी उस अद्भुत चरित्रवाले भगवान् के पीछे फिर दौड़े, उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो शिवजी के पूर्व शत्रु कामदेव ने इस वार उनको जीत लिया हो ॥३१॥

तस्यानुधावतो रेतश्चस्कंदामोघरेतसः ।
शुष्मिणो यूथपस्येव वासितामनुधावतः ॥३२॥

जैसे गौ के पीछे मदांध सांड़ दौड़ता है, वैसे ही मोहनी के पीछे दौड़ते हुए उन अमोघ वीर्य शिवजी का वीर्य स्खलित होगया ॥३२॥

यत्र यत्रापतन्मह्यां रेतस्तस्य महात्मनः ।
तानि रूप्यस्य हेम्नश्च क्षेत्राण्यासन्महीपते ॥३३॥

हे पृथ्वीनाथ ! जहाँ-जहाँ उन महात्मा महादेवजी का वीर्य पृथ्वी पर पड़ा, वहाँ-वहाँ चाँदी तथा स्वर्ण की खानें बनगईं* ॥३३॥

सरित्सरःसु शैलेषु वनेषूपवनेषु च ।
यत्र कचासन्नृषयस्तत्र सन्निहितो हरः ॥३४॥

नदियां, तालाब, पर्वत, बन, उपवन और जहाँ जहाँ ऋषिवृन्द थे, वहाँ भी महादेवजी उसी स्त्रीके पीछे लगे हुए सबके समीप चले गये ॥३४॥

स्कन्ने रेतसि सोऽपश्यदात्मानं देवमायया ।
जडीकृतं नृपश्रेष्ठ संन्यवर्तत कश्मलात् ॥३५॥

हे नृपोत्तम ! ओज स्खलित होने पर अपने मनको भगवान् की माया से जड़ हुआ समझकर महादेवजी उस मोह से निवृत्त होगये ॥३५॥

---

*—उपरोक्त आख्यान ऐतिहासिक नहीं, विज्ञान मय है, जगत् या मनुष्य की दैवी तथा आसुरी वृत्तियों द्वारा सर्वदा ही विचार-विमन्थन हुआ करता है, उसमें मन-मन्दर, विचार वासुकि का आश्रय रहना स्वाभाविक है, जिसके फल-स्वरूप चौदह प्रकार के अशुभ या शुभ फल-मृत्यु, इच्छा-पूर्त्ति, श्री, अमरता आदि प्राप्त हुआ करते हैं। वे फल मनुष्य की विभिन्न नाड़ी शक्तियों को ही पृथक्-पृथक् प्राप्त हैं। दूसरे शिव कोई भौतिक देह धारी नहीं, वे उन परब्रह्म के अंश मात्र हैं, तथा उनकी माया के सामने उनका तेज हत हो सकता है, ऐसा मानना चाहिये, प्रभु की रुद्र-शक्ति का तेज ही स्वर्ण चाँदी में व्याप्त है, अस्तु यह पदार्थ मनुष्य को तामसी तेज की ओर घसीट लेजाते हैं, वास्तविक भाव यह है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथावगतमाहात्म्य आत्मनो जगदात्मनः ।
अपरिज्ञेयवीर्यस्य न मेने तदुहाद्भुतम् ॥३६॥

जिनकी शक्ति समझमें नहीं आती, उन जगदात्मा की माया से अपने को मोहित जानकर महादेवजी ने इस घटना को कोई महान् आश्चर्य की बात नहीं समझी ॥३६॥

तमविक्लवमव्रीडमालक्ष्य मधुसूदनः ।
उवाच परमप्रीतो बिभ्रत्स्वां पौरुषीं तनुम् ॥३७॥

हे राजन् ! महादेवजीको सावधान तथा लज्जा रहित देखकर, प्रसन्न होकर अपना पुरुष स्वरूप धारण करके भगवान् ने कहा ॥३७॥

श्रीभगवानुवाच

दिष्ट्या त्वं विबुधश्रेष्ठ स्वां निष्ठामात्मनास्थितः ।
यन्मे स्त्रीरूपया स्वैरं मोहितोऽप्यंग मायया॥३८॥

श्रीभगवान् बोले-हे सुरश्रेष्ठ ! बधाई है कि आप मेरी स्त्री-रूप मायासे एक बार मोहित होकर फिर अपने आपही अपनी स्थिति (सावधानी) पर आ गये ॥३८॥

को नु मेऽतितरेन्मायां विषक्तस्त्वदृते पुमान् ।
तांस्तान्विसृजतीं भावान्दुस्तरामकृतात्मभिः॥३९॥

अजितेंद्रिय पुरुषोंसे विजय न होनेवाली तथा अनेक भाव दिखलाने वाली मेरी माया को आपके सिवा दूसरा कौनसा असक्त पुरुष जीत सकताहै?

सेयं गुणमयी माया न त्वामभिभविष्यति ।
मया समेता कालेन कालरूपेण भागशः ॥४०॥

हे तात ! सृष्टि आदि के कारण तथा कालरूप मेरे प्रभाव से घटते-बढ़ते रजोगुण आदि अंश से मेरे आधीन रहने वाली यह मेरी गुण मयी माया कभी आपका पराभव न कर सकेगी ॥४०॥

श्रीशुक उवाच

एवं भगवता राजञ्छ्रीवत्साङ्केन सत्कृतः ।
आमंत्र्य तं परिक्रम्य सगणः स्वालयं ययौ ॥४१॥

श्रीशुकदेवजी बोले-श्रीवत्स का चिह्न धारण करने वाले भगवान् से इस प्रकार सन्मान पाकर श्रीमहादेवजी उनसे विदा माँग तथा परिक्रमा कर के अपने गणों के साथ स्वस्थान को पधारे ॥४१॥

आत्मांशभूतां तां मायां भवानीं भगवान्भवः ।
शंसतामृषिमुख्यानां प्रीत्याचष्टाथ भारत ॥४२॥

हे राजन् ! सब ऋषियों के सामने ही अपनी अर्धाङ्गी मायारूपी पार्वतीजी से प्रसन्न होकर महादेवजी ने कहा ॥ ४२ ॥

अपि व्यपश्यस्त्वमजस्य मायां परस्य पुंसः परदेवतायाः । अहं कलानामृषभो विमुह्ये यया ऽन्वशोऽन्ये किमुतास्वतंत्राः ॥४३॥

हे भद्रे ! तुमने जन्म-रहित, पर पुरुष और परम दैवतरूप भगवान् की माया को देख लिया है न ? जिसके द्वारा जब भगवान् की विभूतियों में श्रेष्ठ कहलाने वाला मैं भी मोहित होगया हूँ, तब परतन्त्र लोगों की तो बात ही क्या है ? ॥४३॥

यं माम पृच्छस्त्वमुपेत्य योगात्समासहस्रांत उपारतं वै । स एष साक्षात्पुरुषः पुराणो न यत्र कालो विशते न वेदः ॥४४॥

हे पार्वती ! एक हज़ार वर्ष तक समाधि लगा कर जब मैं उससे निवृत्त हुआ था तब तुमने जिन के विषय में प्रश्न किया था, वे साक्षात् सनातन पुरुष यही हैं, जिन तक न तो काल की पहुंच है और न वेद की ॥४४॥

श्रीशुक उवाच

इति तेऽभिहितस्तात विक्रमः शार्ङ्गधन्वनः ।
सिंधोर्निर्मथने येन धृतः पृष्ठे महाचलः ॥४५॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे तात ! इस प्रकार शार्ङ्ग धर भगवान् का चरित्र मैंने तुमसे कहा है जिन्हों ने सिंधु-विमन्थन के समय अपनी पीठ पर महा मन्दराचल को धारण किया था ॥४५॥

एतन्मुहुः कीर्तयतोऽनुशृण्वतो न रिष्यते जातु समुद्यमः क्वचित् । यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनं समस्तसंसारपरिश्रमापहम् ॥४६॥

जो पुरुष इस चरित्र को कहेगा अथवा सुनेगा उसका उद्यम कभी निष्फल न होगा, क्योंकि भगवान् के गुणों का वर्णन करना सब सांसारिक परिश्रमों को नष्ट करने वाला है ॥४६॥

असदविषयमंघ्रि भावगम्यं प्रपन्नानमृतममरव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

र्यानाशयत्सिंधुमथ्यम् । कपटयुवतिवेषो मोहयन्यः
सुरारींस्तमहमुपसृतानां कामपूरं नतोऽस्मि॥४७॥

जिन प्रभु ने छल-मय स्त्रीरूप बनाकर, दैत्यों को मोहित कर, दुष्टों को न मिलने वाले तथा साधुओं को प्राप्त होने वाले, चरणारविन्दों के आश्रित देवताओंको, सिन्धु-विमंथन द्वारा प्रकट कर के अमृत पिलाया, उन शरणागतों के मनोरथ पूर्ण करने वाले भगवान् को मैं नमस्कार करताहूँ॥४७॥

इति श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

तेरहवां अध्याय

(सातवें से चौदहवें मनु तक का वर्णन)

श्रीशुक उवाच

मनुर्विवस्वतः पुत्रः श्राद्धदेव इति श्रुतः ।
सप्तमो वर्तमानो यस्तदपत्यानि मे शृणु ॥ १ ॥
इक्ष्वाकुर्नभगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च ।
नरिष्यंतोऽथ नाभागः सप्तमो दिष्ट उच्यते ॥ २ ॥
करूषश्च पृषध्रश्च दशमो वसुमान्स्मृतः ।
मनोर्वैवस्वतस्यैते दश पुत्राः परंतप ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-विवस्वान के पुत्र श्राद्धदेव नामक मनु जो अभीहैं, उनकी सन्तानोंका मैं वर्णन करता हूँ, सो हे परन्तप ! वैवस्वत मनु के इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट; शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, सातवें दिष्ट, करूष, पृषध्र और दसवें वसुमान-यह दस पुत्र हुए ॥१॥२॥३॥

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ।
अश्विनावृभवो राजन्निंद्रस्तेषां पुरंदरः ॥ ४ ॥

हे राजन् ! वसु, आदित्य, रुद्र, विश्वेदेवा; मरुद्गण, अश्विनीकुमार और ऋभु-यह देवता हैं, सुन्दर इनका इन्द्र है ॥४॥

कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथ गौतमः ।
जमदग्निर्भरद्वाज इति सप्तर्षयः स्मृताः ॥ ५ ॥

कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, भरद्वाज-यह सप्तर्षि हैं ॥५॥

अत्रापि भगवज्जन्म कश्यपाददितेरभूत् ।
आदित्यानामवरजो विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥ ६ ॥

इस मन्वंतर में भी कश्यपजी के अदिति से विष्णु भगवान्ने वामन अवतार धारण कियाहै, जो समस्त आदित्यों में छोटे हैं ॥६॥

संक्षेपतो मयोक्तानिसप्तमन्वंतराणि ते ।
भविष्याण्यथ वक्ष्यामि विष्णोःशक्त्यान्वितानि च७

सात मन्वंतरों का संक्षिप्त वर्णन तो मैंने तुमसे किया, अब भगवान् की शक्ति युक्त आगे के मंवंतर कहता हूँ सो सुनो॥७॥

विवस्वतश्च द्वे जाये विश्वकर्मसुते उभे ।
संज्ञा छाया च राजेंद्र ये प्रागभिहिते तव ॥ ८ ॥

हे राजेन्द्र ! विवस्वत के दो स्त्रियाँ थीं १-संज्ञा २-छाया, वे दोनों विश्वकर्मा की बेटियां थीं, इनका मैं पहले वर्णन कर चुका हूँ ॥८॥

तृतीयां वडवामेके तासां संज्ञासुतास्त्रयः ।
यमो यमीश्राद्धदेवश्छायायाश्च सुताञ्छृणु ॥ ९ ॥

कुछ लोगों का कहना है कि विवस्वत (सूर्य) की तीसरी पुत्री वड़वा थी, उनमें से संज्ञा के तीन सन्तानें हुईं-यम,यमुना और श्राद्धदेव, अब छाया की सन्तान सुनो ॥९॥

सावर्णिस्तपती कन्या भार्या संवरणस्य या ।
शनैश्चरस्तृतीयोऽभूदश्विनौ वडवात्मजौ ॥१०॥

हे राजन् ! सावर्णि सवर्णाकी स्त्री, तपती नाम की कन्या और तीसरा शनैश्चर यह तीन संतानें हुईं, बड़वाके अश्विनीकुमार नामक दो पुत्र हुए ॥

अष्टमेऽतर आयाते सावर्णिर्भविता मनुः ।
निर्मोकविरजस्काद्याः सावर्णितनया नृप ॥११॥

अब अगले आठवें मन्वंतरमें सावर्णि मनु होंगे हे राजन्! निर्मोक, विरजस्क आदि उनकेपुत्र होंगे ॥

तत्र देवाः सुतपसो विरजा अमृतप्रभाः ।
तेषां विरोचनसुतो बलिरिंद्रो भविष्यति ॥१२॥

सुतपा, विरजा, अमृत प्रभा-यह देवता होंगे, विरोचन का पुत्र बलि इनका इन्द्र होगा ॥१२॥

दत्त्वेमां याचमानाय विष्णवे यः पदत्रयम् ।
राद्धमिंद्रपदं हित्वा ततः सिद्धिमवाप्स्यति ॥१३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिस वलिने याचना करते हुए भगवान् को तीन डग पृथ्वी दी, वह आठवें मन्वंतर में समृद्ध इन्द्र-पद को छोड़ कर मोक्ष पायेगा ॥१३॥

योऽसौ भगवता बद्धः प्रीतेन सुतले पुनः ।
निवेशितोऽधिके स्वर्गादधुनास्ते स्वराडिव ॥१४॥

जिसको पहले तो भगवान् ने बाँधा, फिर प्रसन्न होकर स्वर्ग से भी उत्तम सुतल लोक में पहुंचाया जहां वह इन्द्रकी भांति अवतक रहताहै॥

गालवो दीप्तिमात्रामो द्रोणपुत्रः कृपस्तथा ।
ऋष्यशृंगः पिताऽस्माकं भगवान्बादरायणः॥१५॥
इमे सप्तर्षयस्तत्र भविष्यंति स्वयोगतः ।
इदानीमासते राजन्स्वे स्व आश्रममंडले ॥१६॥

गालव, दीप्तिमान, परशुराम, अश्वत्थामा,कृपाचार्य, ऋष्यश्रृङ्ग और मेरे पिता भगवान् वेदव्यास यह उस समय सप्तर्षि होंगे, हे राजन् ! इस समय यह सब अपने २ आश्रमों में रहते हैं ॥१५॥१६॥

देवगुह्यां सरस्वत्यां सार्वभौम इति प्रभुः ।
स्थानं पुरंदराद्धृत्वा बलये दास्यतीश्वरः ॥१७॥

देव गुह्य की स्त्री सरस्वती से सार्वभौम नाम भगवान् का अवतार होगा, जो पुरन्दर से स्वर्ग छीनकर वलि को देंगे ॥१७॥

नवमो दक्षसावर्णिर्मनुर्वरुणसंभवः ।
भूतकेतुर्दीप्तिकेतुरित्याद्यास्तत्सुता नृप ॥१८॥

हे राजन् ! वरुण का पुत्र दक्ष सावर्णि नवमा मनु होगा, उसके भूतकेतु, दीप्तिकेतु इत्यादि पुत्र होंगे ॥१८॥

पारामरीचिगर्भाद्या देवा इंद्रोऽद्भुतः स्मृतः ।
द्युतिमत्प्रमुखास्तत्र भविष्यंत्यृषयस्ततः ॥१९॥

पारा, मरीचि, गर्भ आदि देवता होंगे, अद्भुत नामक इन्द्र होंगे, द्युतिमत् आदि सप्तर्षि होंगे ।१९।

आयुष्मतोऽम्बुधारायामृषभो भगवत्कला ।
भविता येन संराद्धां त्रिलोकीं भोक्ष्यतेऽद्भुतः ॥२०॥

आयुष्मान् की अंबुधारा नाम्नी स्त्री से ऋषभ नामक भगवान् का अवतार होगा, उन्हीं के प्रभाव से अद्भुतनाम इन्द्र समृद्ध त्रिलोकीका राज्य करेंगे ॥

दशमो ब्रह्मसावर्णिरुपश्लोकसुतो महान् ।
तत्सुता भूरिषेणाद्या हविष्मत्प्रमुखा द्विजाः॥२१॥
तत्रापि जन्म भवति हरेर्विश्वसृजां गृहे ।
आपूर्तिरिति विख्यातो येनाप्यायत वै जगत्॥२२॥
हविष्मान्सुकृतः सत्यो जयो मूर्तिस्तदा द्विजाः ।
सुवासनविरुद्धाद्या देवाः शंभुः सुरेश्वरः ॥२३॥

उपश्लोक के पुत्र ब्रह्म सावर्णि नामक दसवें बड़े मनु होंगे, भूरिषेण आदि उनके पुत्र होंगे, हविष्मत्, सुकृत, सत्य जय और मूर्त्ति इत्यादि सप्तर्षि होंगे, सुवासन, विरुद्ध आदि देवता होंगे और शंभ नामक इन्द्र होंगे, वहाँ प्रजापति के घरमें आपूर्त्ति नाम से भगवान् का अवतार होगा, जिन के द्वारा समस्त संसार सुखी होगा ॥२१॥२२॥२३॥

विष्वक्सेनो विषूच्यां तु शंभोः सख्यं करिष्यति ।
जातः स्वांशेन भगवान्गृहे विश्वसृजो विभुः॥२४॥

विष्वक्सेन, विषूचि से उत्पन्न होकर शंभु नामक इन्द्र का पक्ष करेंगे, वे अपने अंश से प्रजापति के यहाँ जन्म लेंगे ॥२४॥

मनुर्वै धर्मसावर्णिरेकादशम आत्मवान् ।
अनागतास्तत्सुताश्च सत्यधर्मादयो दश ॥२५॥

आत्मज्ञानी धर्म सावर्णि नामक ग्यारहवें मनु होंगे, उनके सत्य, धर्म आदि दस पुत्र होंगे ॥२५॥

विहंगमाः कामगमा निर्वाणरुचयः सुराः ।
इंद्रश्च वैधृतिस्तेषामृषयश्चारुणादयः ॥२६॥

विहंगम, कामगम, निर्वाण, रुचि-यह देवता होंगे, वैधृती नामक इन्द्र होंगे, अरुण आदि सप्तर्षि होंगे ॥२६॥

आर्यकस्य सुतस्तत्र धर्मसेतुरिति स्मृतः ।
वैधृतायां हरेरंशस्त्रिलोकीं धारयिष्यति ॥२७॥

आर्यक के वैधृता स्त्री से धर्मसेतु नामक भगवान् का अंशावतार होगा, जो त्रिलोक को धारण करेगा ॥ २७ ॥

भविता रुद्रसावर्णी राजन्द्वादशमो मनुः ।
देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठादयः सुताः ॥२८॥

हे राजन् ! रुद्र सावर्णि नामक बारहवें मनु होंगे, उनके देववान्, उपदेव और देवश्रेष्ठ आदि पुत्र होंगे ॥२८॥

ऋतधामा च तत्रेंद्रो देवाश्च हरितादयः ।
ऋषयश्च तपोमूर्तिस्तपस्व्याग्नीध्रकादयः ॥२९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऋतधामा नामक इन्द्र होंगे; हरित आदि देवता होंगे, तपोमूर्त्ति, तपस्वी, आग्नीध्रक आदि सप्तर्षि होंगे ॥२९॥

स्वधामाख्यो हरेरंशः साधयिष्यति तन्मनोः ।
अंतरं सत्यसहसः सूनृतायाः सुतो विभुः ॥३०॥

सत्यसहा के सूनृता नाम की स्त्री से स्वधाम नामक भगवान् का अंशावतार होगा, जो इस मन्वन्तर का पालन करेगा ॥३०॥

मनुस्त्रयोदशो भाव्यो देवसावर्णिरात्मवान् ।
चित्रसेनविचित्राद्या देवसावर्णिदेहजाः ॥३१॥

आत्मज्ञानी देव सावर्णि नामक तेरहवें मनु होंगे, चित्रसेन, विचित्र आदि उनके पुत्र होंगे ३१

देवाः सुकर्मसुत्रामसंज्ञा इंद्रो दिवस्पतिः ।
निर्मोकतत्त्वदर्शाद्या भविष्यंत्यृषयस्तदा ॥३२॥

सुकर्म, सुत्राम नामक देवता होंगे; देवस्पति नामक इन्द्र होंगे, निर्मोक, तत्वदर्श आदि सप्तर्षि होंगे॥

देवहोत्रस्य तनय उपहर्ता दिवस्पतेः ।
योगेश्वरो हरेरंशो बृहत्यां संभविष्यति ॥३३॥

देवहोत्र के बृहती नाम की स्त्री से योगेश्वर नामक भगवान् का अंशावतार होगा जो देवस्पति की सहायता करेगा ॥३३॥

मनुर्वा इंद्रसावर्णिश्चतुर्दशमएष्यति ।
उरुगंभीरबुद्ध्याद्या इंद्रसावर्णिवीर्यजाः ॥३४॥

इन्द्र सावर्णि नामक चौदहवें मनु होंगे, उरु, गंभीर बुद्धि आदि अनेक पुत्र होंगे ॥३४॥

पवित्राश्चाक्षुषा देवाः शुचिरिंद्रो भविष्यति ।
अग्निर्बाहुः शुचिः शुद्धो मागधाद्यास्तपस्विनः३५॥

पवित्र चक्षुष नामके देवता होंगे, शुचि नामक इन्द्र होंगे, अग्नि, बाहु, शुचि, शुद्ध, मागध आदि सप्तर्षि होंगे ॥३५॥

सत्रायणस्य तनयो बृपद्भानुस्तदा हरिः ।
वितानायां महाराज क्रियातंतून्वितायिता॥३६॥

हे राजन् ! सत्रायण की विनता नाम की स्त्री से बृहद् भानु नामक भगवान् का अवतार होगा, जो क्रिया-काण्ड का विस्तार करेगा ॥३७॥

राजंश्चतुर्दशैतानि त्रिकालानुगतानि ते ।
प्रोक्तान्येभिर्मितः कल्पो युगसाहस्रपर्ययः ॥३७॥

हे राजन् ! तीनों काल के यह चौदह मन्वंतर मैंने कहे हैं, युगों की हज़ार चौकड़ियों में चौदह मन्वंतर होते हैं, चौदह मन्वंतरों के समय को कल्प कहते हैं ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चौदहवां अध्याय

(मनुओं का पृथक्-पृथक् कार्य वर्णन)

राजोवाच

मन्वंतरेषु भगवान् यथा मन्वादयस्त्विमे ।
यस्मिन्कर्मणि ये येन नियुक्तास्तद्ब्रूहि मे ॥ १ ॥

परीक्षित बोले–हे भगवन् ! मन्वंतरों में ये मनु आदि जिस काम के लिये, जिसके द्वारा, जिस भांति नियुक्त किये जाते हैं, वह मुझसे कहिये ॥१॥

ऋषिरुवाच

मनवो मनुपुत्राश्च मुनयश्च महीपते ।
इंद्राः सुरगणाश्चैव सर्वे पुरुषशासनाः ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! मनु, मनु के पुत्र, ऋषि, इन्द्र और देवता–यह सभी भगवान् के आधीन हैं ॥ २ ॥

यज्ञादयो याः कथिताः पौरुष्यस्तनवो नृप ।
मन्वादयो जगद्यात्रां नयंत्याभिः प्रचोदिताः॥ ३ ॥

हे राजन् ! यज्ञादि जो भगवान् के अवतार कहे हैं, उनकी प्रेरणा से मनु आदि जगत् का पालन करते हैं ॥३॥

चतुर्युगांते कालेन ग्रस्तान् श्रुतिगणान्यथा ।
तपसा ऋषयोऽपश्यन्यतो धर्मः सनातनः ॥ ४ ॥

सप्तर्षि प्रत्येक चौकड़ी (चार युगों) के अन्तमें काल के प्रभाव से नाश हुए वेदों को अपने तपबल द्वारा फिर से प्रकट करते हैं कि जिनके द्वारा सनातन धर्म का ज्ञान होता है ॥ ४ ॥

ततो धर्मं चतुष्पादं मनवो हरिणोदिताः ।
युक्ताः संचारयंत्यद्धा स्वे स्वे काले मही नृप ॥५॥

फिर भगवान् की आज्ञा से मनु सावधानी के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साथ अपने-अपने समय में चारों चरण युक्त धर्म का पृथ्वी पर प्रचार करते हैं ॥५॥

पालयंति प्रजापाला यावदंतं विभागशः ।
यज्ञभागभुजो देवा ये च तत्रान्विताश्च तैः ॥ ६ ॥

प्रजाका पालन करने वाले मनु के पुत्र पौत्रादि मन्वंतरके अंत तक पृथ्वी का पालन करते हैं, देवता तथा देवताओं के साथी यज्ञका भाग ग्रहण करते हैं ॥ ६ ॥

इंद्रो भगवता दत्तां त्रैलोक्यश्रियमूर्जिताम् ।
भुंजानः पाति लोकांस्त्रीन्कामं लोके प्रवर्षति॥ ७ ॥

भगवान् की दी हुई तीनों लोकों की सम्पदा का भोग करते हुए, इन्द्र तीनों लोकों का पालन करते हैं; तथा वर्षा करते हैं ॥७॥

ज्ञानं चानुयुगं ब्रूते हरिः सिद्धस्वरूपधृक् ।
ऋषिरूपधरः कर्मयोगं योगेशरूपधृक् ॥ ८ ॥

भगवान् प्रत्येक युग में सनकादि सिद्धों का स्वरूप धारण कर ज्ञान का उपदेश करते हैं, याज्ञवल्क्य आदि ऋषिजनों का स्वरूप धारण करके कर्मका उपदेश करतेहैं तथा दत्तात्रेय आदि योगीश्वरों का रूप धरकर योगका उपदेश करते हैं ॥८॥

सर्गं प्रजेशरूपेण दस्यून्हन्यात्स्वराड्वपुः ।
कालरूपेण सर्वेषामभावाय पृथग्गुणः ॥ ९ ॥

मरीचि आदि प्रजापतियोंके रूप धरकर सृष्टि रचते हैं; राजाओं का रूप धरकर चोरों का नाश करते हैं तथा सर्दी-गर्मी आदि जुदे-जुदे गुण वाले काल का स्वरूप धरकर सबका संहार करते हैं॥९॥

स्तूयमाना जनैरेभिर्मायया नामरूपया ।
विमोहितात्मभिर्नानादर्शनैर्न च दृश्यते ॥१०॥

नाम और रूपमयी माया से मोहित लोक, अनेक प्रकार के शास्त्रों से भगवान् का निरूपण किया करते हैं, फिर भी वे किसी के जानने में नहीं आते ॥१०॥

एतत्कल्पविकल्पस्य प्रमाणं परिकीर्तितम् ।
यत्र मन्वंतराण्याहुश्चतुर्दश पुराविदः ॥११॥

महाकल्प के अन्तर्गत,अवान्तर कल्पका प्रमाण यह मैंने आपसे कहा है, कि जिसमें चौदह मनु होते हैं, विद्वान् पुरुष ऐसा कहते हैं ॥११॥

इति श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे चर्तुदशोऽध्यायः ॥१४॥

पन्द्रहवां अध्याय

(बलि के विश्वजित् यज्ञ का वर्णन)

राजोवाच

बलेः पदत्रयं भूमेः कस्माद्धीररयाचत ।
भूत्वेश्वरः कृपणवल्लब्धार्थोऽपि बबंध तम् ॥ १ ॥

परीक्षित बोले–भगवान् ने ईश्वर होकर भी कृपण की भांति बलि से तीन डग पृथ्वी क्यों माँगी ? और अपना प्रयोजन सिद्ध होजाने पर भी फिर उसे क्यों बाँधा ? ॥१॥

एतद्वेदितुमिच्छामो महत् कौतूहलं हि नः ।
यज्ञेश्वरस्य पूर्णस्य बंधनं चाप्यनागसः ॥ २ ॥

हे श्रीशुकदेवजी ! यज्ञेश्वर एवं पूर्ण भगवान् ने निरपराधी बलि को बाँधा, इसका मुझे महान आश्चर्य होने के कारण मैं इस कथा को सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥

श्रीशुक उवाच

पराजितः श्रीरसुभिश्च हापितोहींद्रेण राजन् भृगुभिः स जीवितः । सर्वात्मना तानभजद्भृगून् बलिः शिष्यो महात्माऽर्थनिवेदनेन ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! जब इन्द्र ने संग्राम में राजा बलि के प्राण तथा लक्ष्मी को हरण कर लिया, तब शुक्राचार्यने उसे जीवित कर दिया तो महात्मा बलि सभी प्रकार से सर्वस्व अर्पण करके उनकी शिष्य-भावसे सेवा करने लगा ॥३॥

तं ब्राह्मणा भृगवः प्रीयमाणा अयाजयन् विश्वजिता त्रिणाकम् । जिगीषमाणं विधिनाऽभिषिच्य महाऽभिषेकेण महानुभावाः ॥ ४ ॥

भृगुवंशियों में श्रेष्ठ महा प्रभावशाली ब्राह्मणों द्वारा शुक्राचार्यजी ने प्रसन्न होकर उस स्वर्ग को जीतने की इच्छा वाले बलि को 'विश्वजित्' नामक यज्ञ महाभिषेककी रीतिसे अभिषेक करके करवाया।

ततो रथः कांचनपट्टनद्धो हयाश्च हर्यश्वतुरंग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वर्णाः । ध्वजश्च सिंहेन विराजमानो हुताशनादास हविर्भिरिष्टात् ॥५॥

धनुश्च दिव्यं पुरटोपनद्धं तूणावरिक्तौ कवचं च दिव्यम् । पितामहस्तस्य ददौ च मालामम्लान पुष्पां जलजं च शुक्रः ॥ ६ ॥

जब हवन किया गया तो अग्नि में से स्वर्ण के पट्टे से बँधा हुआ रथ, इन्द्र के घोड़ोंके समान घोड़े सिंह के चिह्न वाली ध्वजा, स्वर्ण से मढ़ा हुआ दिव्य धनुष, अक्षय तरकस और दिव्य कवच प्रकट हुए, प्रह्लादजी ने कभी न मुरझाने वाले फूलों की माला पहिनाई और शुक्राचार्यने उसे शंखदिया॥

एवं स विप्रार्जितयोधनार्थस्तैः कल्पितस्वस्त्ययनोऽथ विप्रान् । प्रदक्षिणी कृत्य कृतप्रणामः प्रह्लादमामंत्र्य नमश्चकार ॥ ७ ॥

अथारुह्य रथं दिव्यं भृगुदत्तं महारथः । सुस्रग्धरोऽथ सन्नह्य धन्वी खड्गी धृतेषुधिः ॥८॥

हेमांगदलसद्बाहुः स्फुरन्मकरकुंडलः । रराज रथमारूढो धिष्ण्यस्थ इव हव्यवाट् ॥ ९ ॥

इस प्रकार ब्राह्मणों ने इसके युद्ध के लिये सब सामग्री एकत्र की और स्वस्ति वाचन किया, उन को प्रणाम तथा प्रदक्षिणा करके प्रह्लादजीसे आज्ञा लेकर तथा उन्हें प्रणाम करके महारथी बलि भृगुजी के दिये हुए रथ पर चढ़कर, माला कवच पहिन कर तथा धनुष तलवार और तरकस बाँध कर, भुजाओं में सोनेके बाजूबंद बाँधे मकराकृत कुंडल चमकता हुआ, कुण्ड-स्थित अग्नि के समान शोभा दे रहा था ॥७॥८॥९॥

तुल्यैश्वर्यबलश्रीभिः स्वयूथैर्दैत्ययूथपैः । पिबद्भिरिवखं दृग्भिर्दहद्भिः परिधीनिव ॥१०॥

वृतो विकर्षन्महतीमासुरीं ध्वजिनीं विभुः । ययाविंद्रपुरीं स्रद्धां कंपयन्निव रोदसी ॥११॥

अपने ही समान ऐश्वर्य, बल और लक्ष्मीवाले दैत्य सेनापति कि जो अपनी दृष्टि-मात्रसे आकाश को पीते हुए तथा दिशाओं को जलाते हुए से जान पड़ते थे और दैत्यों की भरी सेना को साथ लेकर पृथ्वी और आकाश को कंपायमान सा करता हुआ बलि समृद्धिशालिनी इन्द्रपुरी पर चढ़ा ॥१०॥११॥

रम्यामुपवनोद्यानैः श्रीमद्भिर्नंदनादिभिः । कूजद्विहंगमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ॥१२॥

जहाँ समृद्धि युक्त नन्दन आदि कई वन तथा उपवन शोभा देरहे हैं, जिनमें कूँजते हुए पक्षियोंके जोड़े शोभायमान हैं और मदमत्त भौंरे कूंजरहे हैं॥

प्रवालफलपुष्पोरुभारशाखामरद्रुमैः । हंससारसचक्राह्वकारंडवकुलाकुलाः । नलिन्यो यत्र क्रीडंति प्रमदाः सुरसेविताः ॥१३॥

पत्तों, फल, फूल और अंकुरों के भार से कल्प वृक्ष की शाखायें झुकरही हैं, जिनमें हंस, सारस, चकवा और कारंडव पक्षियोंके समूह व्याप्त होरहे हैं, ऐसे तालाबों में देवता तथा देवियां विहार कर रहीं हैं ॥१३॥

आकाशगंगया देव्या वृतां परिखभूतया । प्राकारेणाग्निवर्णेन साट्टालेनोन्नतेन च ॥१४॥

जिसे खाई की भांति आकाश गङ्गा घेरे हुए है और बड़े-बड़े बुर्जों वाला स्वर्ण का ऊँचा कोट जिसके चारों ओर है ॥१४॥

रुक्मपट्टकपाटैश्च द्वारैः स्फटिकगोपुरैः । जुष्टां विभक्तप्रपथां विश्वकर्मविनिर्मिताम् ॥१५॥

सभाचत्वररथ्याढ्यां विमानैर्नर्बुदैर्युताम् । शृंगाटकैर्मणिमयैर्वज्रविद्रुमवेदिभिः ॥१६॥

स्वर्ण-पत्रों से जड़े हुए किवाड़ों वाले द्वार हैं, तथा राजद्वार स्फटिक से बना हुआहै, जहाँ विश्व-कर्मा-रचित जुदे २ राजमार्ग, सभा, चौहट्टे, गलियां, मणिमय चौक, हीरे और विद्रुम की वेदियां हैं, दस करोड़ गन्धर्व और अप्सराओं तथा अनन्त विमानोंसे युक्त हीरामूंगे की वेदिकावाले बाज़ारहैं॥

यत्र नित्यवयोरूपाः श्यामा विरजवाससः । भ्राजंते रूपवन्नार्यो ह्यर्चिर्भिरिव वह्नयः ॥१७॥

जिनका रूप तथा यौवन सर्वदा स्थिर रहताहै वे स्त्रियाँ स्वच्छ वस्त्र पहिने हुए अग्नि की ज्वाला के समान प्रकाश कर रही हैं ॥१७॥

सुरस्त्रीकेशविभ्रष्टनवसौगंधिकस्रजाम् । यत्रामोदमुपादाय मार्ग आवाति मारुतः ॥१८॥

जहाँ देवाँगनाओं के केशों से गिरी हुई कमल की माला की सुगन्धि लिये हुए मार्गों में वायु वहा करती है ॥१८॥

हेमजालाक्षनिर्गच्छद्धूमेनागुरुगंधिना ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पांडुरेण प्रतिच्छन्नमार्गे यांति सुरप्रियाः ॥१९॥

जहाँ स्वर्ग के जालीदार झरोखों में से निकलते हुए श्वेत अगर के धुयेंसे ढके हुए मार्गों में देवांगनायें जारही हैं ॥१९॥

मुक्तावितानैर्मणिहेमकेतुभिर्नानापताकावलभी भिरावृताम् । शिखंडिपारावतभृंगनादितां वैमानिकस्त्रीकलगीतमंगलाम् ॥२०॥

जहाँ चँदोवों में मोतियों के गुच्छे लटक रहे हैं मणि तथा स्वर्ण की ध्वजायें और अनेक प्रकारकी पताकायें फहरा रही हैं, छज्जों पर बैठे हुए मोर, कबूतर और भौंरे बोल रहे हैं, विमानों में बैठी हुई देवाङ्गनायें मधुर, मांगलिक गीत गारही हैं ॥२०॥

मृदंगशंखानकदुंदुभिस्वनैः सतालवीणामुरजर्ष्टि वेणुभिः । नृत्यैः सवाद्यैरुपदेवगीतकैर्मनोरमां स्वप्रभयाजितप्रभाम् ॥२१॥

मृदङ्ग, शंख, नक्कारे, दुन्दुभि, ताल, वीणा, मुरज, ऋष्टि और वेणु आदि वाजे वाज रहे हैं, गन्धर्व आदि के सुन्दर गायन तथा नाच-रङ्ग हो रहे हैं, जिस पुरी ने अपनी कान्ति द्वारा दूसरी पुरियों की प्रभा हर ली है ॥२१॥

यां न व्रजंत्यधर्मिष्ठाः खला भूतद्रुहः शठाः । मानिनः कामिनो लुब्धा एभिर्हीना व्रजंति यत्२२

जिसमें अधर्मी, दुष्ट, जीव-द्रोही, शठ, अभिमानी,लंपट और लोभी पुरुष नहीं रहते, वरन् ऐसे अवगुणों से रहित पुरुष ही रहते हैं ॥२२॥

तां देवधानीं स वरूथिनीपतिर्बहिः समंताद्रुरुधे पृतन्यया । आचार्यदत्तं जलजं महास्वनं दध्मौ प्रयुंजन् भयमिंद्रयोषिताम् ॥२३॥

हे राजन् ! ऐसी उस इन्द्रपुरी को सेनाध्यक्ष बलि ने अपनी सेनाके द्वारा चारों ओरसे घेरलिया और वह महा नादवाले शुक्राचार्यके दिये हुए शंख को बजाने लगा जिससे इन्द्राणी भयभीत होगईं ॥

मघवांस्तदभिप्रेत्य बलेः परममुद्यमम् । सर्वदेवगणोपेतो गुरुमेतदुवाच ह ॥२४॥

राजा बलिका यह बड़ा भारी उद्योग देख, उस का अभिप्राय समझकर इन्द्र ने सब देवताओं के साथ गुरु बृहस्पतिजी के पास जाकर यह कहा ॥

भगवन्नुद्यमो भूयान् बलेर्नः पूर्ववैरिणः । अविषह्यमिमं मन्ये केनासीत् तेजसोर्जितः ॥२५॥

हे भगवन् ! मेरे पूर्वशत्रु बलिका विशेष उद्योग जान पड़ताहै, इसका मुझे आश्चर्य होरहा है कि इसका तेज क्योंकर बढ़ गया ? ॥२५॥

नैनं कश्चित् कुतो वापि प्रतिव्योढुमधीश्वरः । पिबन्निव मुखेनेदं लिहन्निव दिशो दश । दहन्निव दिशो दृग्भिः संवर्ताग्निरिवोत्थितः ॥२६॥

इसे कोई किसीभी प्रकारसे हटा नहीं सकता क्योंकि यह तो इस समय अग्नि की नाईं चारों ओर से उठता हुआ ऐसा जान पड़ता है, मानो अपने मुंह से संसार को पी जायगा, दसों दिशाओं को चाटलेगा और दृष्टिसे दिशाओंको जला देगा ॥

ब्रूहि कारणमेतस्य दुर्धर्षत्वस्य मद्रिपोः । ओजः सहो बलं तेजो यत एतत्समुद्यमः ॥२७॥

यह मेरा शत्रु किस कारण से इतना भयंकर होगया है ? सो मुझसे कहिये कि जिसके कारण ओज, सह बल और तेज के प्रभाव से इसने ऐसा उद्योग किया है ॥२७॥

गुरुरुवाच

जानामि मघवन् शत्रोरुन्नतेरस्य कारणम् । शिष्यायोपभृतं तेजो भृगुभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥२८॥

बृहस्पतिजी बोले–हे इन्द्र ! मैं इसकी उन्नति का कारण जानता हूँ, ब्रह्मवादी भृगुवंशी ब्राह्मणों ने इसे अपना तेज दिया है ॥२८॥

भवद्विधो भवान् वापि वर्जयित्वेश्वरं हरिम् । नास्य शक्तः पुरःस्थातुं कृतांतस्य यथा जनाः॥२९

जैसे कालके सामने ईश्वरके सिवा कोई नहीं ठहर सकता वैसेही बलिके सामने भी परमेश्वर के सिवा तू या तेरे समान कोईभी ठहर नहीं सकता॥

तस्मान्निलयमुत्सृज्य यूयं सर्वे त्रिविष्टपम् । यातकालं प्रतीक्षंतो यतः शत्रोर्विपर्ययः ॥३०॥

इसलिये तुम सब देवता स्वर्ग को छोड़कर भाग जाओ और शत्रुका समय बदलनेकी प्रतीक्षा करते रहो ॥ ३० ॥

एष विप्रबलोदर्कः संप्रत्यूर्जितविक्रमः । एषामेवापमानेन सानुबंधो विनंक्ष्यति ॥३१॥

अभी इस राजा बलका भाग्योदय तथा प्रताप की उन्नति ब्राह्मणों के बल से हुई है, इसलिये जब

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह उनका अपमान करेगा तब आपही सपरिवार नष्ट हो जायगा ॥३१॥

एवं सुमंत्रितार्थास्ते गुरुणार्थानुदर्शिना ।
हित्वा त्रिविष्टपं जग्मुर्गीर्वाणाः कामरूपिणः॥३२॥

श्रीशुकदेवजी बोले–अर्थ-काम-दम गुरुकी बताई हुई सम्मतिसे देवता स्वर्ग छोड़कर भाग गये और अनेक प्रकार के रूप बनाकर छिप रहे ॥३२॥

देवेष्वथ निलीनेषु बलिर्वैरोचनः पुरीम् ।
देवधानीमधिष्ठाय वशं निन्ये जगत्त्रयम् ॥३३॥

जब देवता स्वर्ग छोड़कर चले गये तब बलि ने सुरपुर में रहकर तीनों लोकों पर अधिकार कर लिया ॥३३॥

तं विश्वजयिनं शिष्यं भृगवः शिष्यवत्सलाः ।
शतेन हयमेधानामनुव्रतमयाजयन् ॥३४॥

फिर शिष्यपर परमदयालु भृगुवंशियों ने विश्व विजयी और आज्ञाकारी अपने शिष्य का इंद्र पद अटल रहने के लिये सौ अश्वमेध कराने का प्रारम्भ किया ॥३४॥

ततस्तदनुभावेन भुवनत्रयविश्रुताम् ।
कीर्तिं दिक्षु वितन्वानः स रेजे उडुराडिव ॥३५॥

इसके पीछे शुक्रजी के प्रताप से बलि तीनों लोकों में विख्यात कीर्त्ति को दशों दिशाओंमें फैला कर चंद्रमा के समान शोभायमान हुआ ॥३५॥

बुभुजे च श्रियं स्पृद्धां द्विजदेवोपलंभिताम् ।
कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानो महामनाः ॥३६॥

वह उदार चित्त बलि अपनेको कृतार्थ मानता हुआ ब्राह्मणों की दी हुई समृद्धि मयी राज-लक्ष्मी का भोग करने लगा ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

सोलहवां अध्याय

(पयोव्रत)

श्रीशुक उवाच

एवं पुत्रेषु नष्टेषु देवमाताऽदितिस्तदा ।
हृते त्रिविष्टपे दैत्यैः पर्यतप्यदनाथवत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले दैत्यों द्वारा स्वर्ग छीने जाने से अपने पुत्रोंकी निपट दुर्दशा देखकर, अदिति अनाथों की तरह संताप करने लगी ॥ १ ॥

एकदा कश्यपस्तस्या आश्रमं भगवानगात् ।
निरुत्सवं निरानंदं समाधेर्विरतश्चिरात् ॥ २ ॥

एक बार कश्यपजी बहुकालीन समाधि से निवृत्त होकर अदिति के आश्रम में आये, जहाँ उत्सव और आनन्द कुछ भी न था ॥२॥

स पत्नीं दीनवदनां कृतासनपरिग्रहः ।
सभाजितो यथान्यायमिदमाह कुरूद्वह ॥ ३ ॥

हे राजन् ! अदिति द्वारा दिये हुए आसन पर बैठकर उचित सत्कार पाने के पश्चात् अपनी प्रियतमा का मलीन मुख देखकर कश्यपजी कहनेलगे ॥

अप्यभद्रं न विप्राणां भद्रे लोकेऽधुना गतम् ।
न धर्मस्य न लोकस्य मृत्योश्छंदानुवर्तिनः ॥ ४ ॥

हे भद्रे ! अभी लोकमें ब्राह्मणों का अमङ्गल तो नहीं आया है ? या धर्माचरण करने वाले मृत्यु के वशवर्त्ती लोकका कुछ अकल्याण तो नहीं हुआहै ॥

अपि वा कुशलं किंचिद गृहेषु गृहमेधिनि ।
धर्मस्यार्थस्य कामस्य यत्र योगो ह्ययोगिनाम् ॥५॥

हे गृह-स्वामिनी ! या जिसमें स्वधर्म पालन करने से विना योग साधन किये ही योग का फल मिल जाताहै, उस घरमें धर्म, अर्थ या काम संबंधी कोई बाधा या त्रुटि तो नहीं आगई ? ॥५॥

अपि वाऽतिथयोऽभ्येत्य कुटुंबासक्तया त्वया ।
गृहादपूजिता याताः प्रत्युत्थानेन वा क्वचित्॥ ६ ॥

अथवा पारिवारिक कामों में आसक्त रहने के कारण तू किसी अतिथिका सत्कार नहीं कर सकी है और वह तिरस्कृत होकर चला गया है ॥ ६ ॥

गृहेषु येष्वतिथयो नार्चिताः सलिलैरपि ।
यदि निर्यांति ते नूनं फेरुराजगृहोपमाः ॥ ७ ॥

जिन घरों में अतिथों का जलसे भी सत्कार न किया जाय और अतिथि योंही चले जाँय, वे घर स्यारों के विल की भांति हैं ॥७॥

अप्यग्नयस्तु वेलायां न हुता हविषा सति ।
त्वयोद्विग्नधिया भद्रे प्रोषिते मयि कर्हिचित्॥ ८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे सती ! हे कल्याणी ! मेरे परदेश जाने पर तू उद्विग्न चित्त होकर कहीं यथा समय हवि-द्वारा अग्नि में होम करना तो नहीं भूल गई ? ॥८॥

यत्पूजया कामदुघान्याति लोकान्गृहान्वितः ।
ब्राह्मणोऽग्निश्च वै विष्णोः सर्वदेवात्मनो मुखम् ९॥

ब्राह्मण और अग्नि-यह दोनों समस्त वेदमय भगवान्के मुखहैं, इनके पूजन करनेसे गृहस्थ पुरुष को इच्छित फल देनेवाला लोक प्राप्त होता है ॥९॥

अपि सर्वे कुशलिनस्तव पुत्रा मनस्विनि ।
लक्षये ऽस्वस्थमात्मानं भवत्या लक्षणैरहम् ॥१०॥

हे मनस्वनी ! तेरे सब पुत्र तो कुशल से हैं ? लक्षणोंसे तेरा चित्त स्वस्थ नहीं जान पड़ता ॥१०॥

अदितिरुवाच

भद्रं द्विजगवां ब्रह्मन्धर्मस्यास्य जनस्य च ।
त्रिवर्गस्य परं क्षेत्रं गृह मेधिन्गृहा इमे ॥११॥

अदिति बोली-हे ब्रह्मन् ! ब्राह्मण, गौ, धर्म और प्रजा का सब प्रकार से कल्याण है, हे गृह-मेधिन ! घरमें धर्म, अर्थ और काम का भी उचित पालन हो रहा है ॥ ११ ॥

अग्नयोऽतिथयो भृत्या भिक्षवो ये च लिप्सवः ।
सर्वं भगवतो ब्रह्मन्ननुध्यानान्न रिष्यति ॥१२॥

हे ब्रह्मन् ! मैं जो आपका ध्यान किया करतीहूँ उसके प्रभाव से अग्नि, अतिथि, नौकर-चाकर या याचक जो भी जिस इच्छासे आतेहैं उनकी इच्छा पूर्ण होने में कभी कमी नहीं आती ॥१२॥

को नु मे भगवन्कामो न संपद्येत मानसः ।
यस्या भवान्प्रजाध्यक्ष एवं धर्मान्प्रभाषते ॥१३॥

हे भगवन् ! आप सरीखे प्रजापति जिसे धर्म का उपदेश किया करते हैं, उसके मनका कौनसा मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता ? ॥१३

तवैव मारीच मनःशरीरजाः प्रजा इमाः सत्त्व रजस्तमोजुषः । समो भवांस्तास्वसुरादिषु प्रभो तथापि भक्तं भजते महेश्वरः ॥१४॥

हे कश्यपजी ! सत, रज तथा तम गुण वाली यह सारी प्रजा आपहीके मन और शरीरसे उत्पन्न हैं, इसलिये यद्यपि आपका देवता या दैत्यों आदि पर समान भावहै, फिर भी बड़े पुरुष अपने भक्तों का पक्ष करते हैं ॥ १४ ॥

तस्मादीश भजंत्या मे श्रेयश्चिंतय सुव्रत ।
हृतश्रियो हृतस्थानान् सपत्नैः पाहि नः प्रभो॥१५॥

हे नाथ ! हे सुव्रत ! मैं आपकी दासी हूँ, इस लिये मेरे कल्याण का विचार कीजिये, हे प्रभु ! शत्रुओं ने मेरे स्थान तथा राज्य-लक्ष्मी का हरण कर लिया है, इसलिये मेरी रक्षा कीजिये ॥१५॥

परैर्विवासिता साऽहं मग्ना व्यसनसागरे ।
ऐश्वर्यं श्रीर्यशः स्थानं हृतानि प्रबलैर्मम ॥१६॥

हे प्रभु ! शत्रुओं ने मुझे निकाल दिया है, उन बलवानों ने मेरा ऐश्वर्य धन, यश तथा स्थान सब छीन लियाहै, इसलिये मैं दुःखसागरमें डूबरही हूँ।

यथा तानि पुनः साधो प्रपद्येरन्ममात्मजाः ।
तथा विधेहि कल्याणं धिया कल्याणकृत्तम॥१७॥

हे साधु ! हे कल्याणकारी लोगों में श्रेष्ठ ! मेरे पुत्रों को खोये हुए वैभवादि जिस प्रकार मिलसकें वैसेही विचार करके उनका कल्याण कीजिये ।१७।

श्रीशुक उवाच

एवमभ्यर्थितोऽदित्या कस्तामाह स्मयन्निव ।
अहो मायाबलं विष्णोः स्नेहबद्धमिदं जगत्॥१८॥

श्रीशुकदेवजी बोले-अदितिकी ऐसी बात सुन कर श्रीकश्यपजी हँसते हुए से कहने लगे कि-अहो ! भगवान् की माया के बलसे ही यह संपूर्ण संसार स्नेह में बँधा हुआ है ॥१८॥

क्व देहो भौतिकोऽनात्मा क्व चात्मा प्रकृते परः ।
कस्य के पतिपुत्राद्या मोह एव हि कारणम् ॥१९॥

भला कहाँ तो यह पञ्चभूतों का बना हुआ शरीर और कहाँ प्रकृति से परे यह आत्मा ? कौन तो किसका पति है और कौन किसका पुत्र है ? केवल मोह ही सबका कारण है ॥१९॥

उपतिष्ठस्व पुरुषं भगवंतं जनार्दनम् ।
सर्वभूतगुहावासं वासुदेवं जगद्गुरुम् ॥२०॥

हे भद्रे! यदि तू अपने पुत्रोंका कल्याण चाहती है तो प्राणियों के अन्तर्यामी, वासुदेव, जगद्गुरु, पुरुष, जनार्दन, भगवान् की भक्ति कर ॥२०॥

स विधास्यति ते कामान् हरिर्दीनानुकंपनः ।
अमोघा भगवद्भक्तिर्नेतरेति मतिर्मम ॥२१॥

वही दीनदयाल भगवान् तेरी इच्छा पूर्णकरेंगे,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मेरा निश्चय है कि प्रभु के सिवा किसी भी देवता की भक्ति से सफलता नहीं मिलती ॥२१॥

अदितिरुवाच

केनाहं विधिना ब्रह्मन् उपस्थास्ये जगत्पतिम् ।
यथा मे सत्यसंकल्पो विदध्याच्च मनोरथम् ॥२२॥

अदिति बोली–हे ब्रह्मन् ! मैं किस नियम से जगत्पति भगवान् की भक्ति करूँ कि जिससे सत्य सङ्कल्प भगवान् मेरे मनोरथ को पूर्ण करें ॥२२॥

आदिश त्वं द्विजश्रेष्ठ विधिं तदुपधावनम् ।
आशु तुष्यति मे देवः सीदंत्याः सह पुत्रकैः॥२३॥

हे द्विजोत्तम ! मुझे भगवान्की भक्तिके नियम का उपदेश कीजिये, जिससे पुत्रों सहित मुझ दुःखिया पर भगवान् शीघ्रही प्रसन्न होजावें ॥२३॥

कश्यप उवाच

एतन्मे भगवान् पृष्टः प्रजाकामस्य पद्मजः ।
यथाह ते प्रवक्ष्यामि व्रतं केशवतोषणम् ॥२४॥

कश्यपजी बोले–एक समय पुत्र की इच्छा कर के मैंने भगवान् ब्रह्माजी से पूछा था, तब उन्होंने भगवान्को शीघ्रही प्रसन्न करनेवाला जो व्रत मुझ से कहा था, उसे मैं कहता हूँ सुन ॥२४॥

फाल्गुनस्यामले पक्षे द्वादशाहं पयोव्रतः ।
अर्चयेदरविंदाक्षं भक्त्या परमयान्वितः ॥२५॥

फाल्गुण मास के शुक्ल-पक्ष में बारह दिन तक पयोव्रत धारण कर, भगवान् कमलनयन की परम भक्ति सहित पूजा करनी चाहिये ॥२५॥

सिनीवाल्यां मृदाऽऽलिप्य स्नायात्क्रोडविदीर्णया ।
यदि लभ्येत वै स्रोतस्येतं मंत्रमुदीरयेत् ॥२६॥

अमावस्याके दिन बन-शूकरोंकी खोदी हुई मिट्टी शरीर में लगाकर, नदी में स्नान करना चाहिये और इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये ॥ २६ ॥

त्वं देव्यादिवराहेण रसायाः स्थानमिच्छता ।
उद्धृतासि नमस्तुभ्यं पाप्मानं मे प्रणाशय॥२७॥

कि-हे देवि ! जगत् को रहने के लिये स्थान बनाने की इच्छा से भगवान् वाराह तुझे पातालसे लाये हैं, इसलिये हे पृथ्वी ! मेरी तुझे नमस्कार है, तू मेरे समस्त पापों का नाश कर ॥२७॥

निर्वर्तितात्मनियमो देवमर्चेत्समाहितः ।
अर्चायां स्थंडिले सूर्ये जले वन्हौगुरावपि ॥२८॥

अपने नित्य-नैमित्तिक कर्म से निवृत्त होकर, मूर्त्ति, पृथ्वी, जल, अग्नि या गुरुमें सावधान होकर भगवान् का पूजन करना चाहिये ॥२८॥

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे ।
सर्वभूतनिवासाय वासुदेवाय साक्षिणे ॥२९॥

(और यह स्तुति करना चाहिये कि) सबसे महान्, सर्वभूत निवासी, साक्षी, पुरुष, वासुदेव, भगवान् को मेरा नमस्कार है ॥२९॥

नमोऽव्यक्ताय सूक्ष्माय प्रधानपुरुषाय च ।
चतुर्विंशद्गुणज्ञाय गुणसंख्यानहेतवे ॥३०॥

अव्यक्त, सूक्ष्म, प्रधान पुरुष रूप, चौबीसगुणों के ज्ञाता तथा सांख्य शास्त्रके प्रवर्त्तक प्रभुको मेरा प्रणाम है ॥३०॥

नमो द्विशीर्ष्णे त्रिपदे चतुःशृंगाय तंतवे ।
सप्तहस्ताय यज्ञाय त्रयीविद्यात्मने नमः ॥३१॥

दो मस्तक, तीन चरण, चार सींग और सात हाथवाले यज्ञ और वेदत्रयी स्वरूप, फलके विस्तार करने वाले प्रभु को मेरा प्रणाम है ॥३१॥

नमः शिवाय रुद्राय नमः शक्तिधराय च ।
सर्व विद्याधिपतये भूतानां पतये नमः ॥३२॥

शिवरूप प्रभुको नमस्कार है, रुद्र रूप प्रभु को नमस्कार है, शक्तिधारी प्रभुको नमस्कार है, सर्व सर्व प्राणियों के स्वामी को नमस्कार है ॥ ३२ ॥

नमो हिरण्यगर्भाय प्राणाय जगदात्मने ।
योगैश्वर्यशरीराय नमस्ते योगहेतवे ॥३३॥

हिरण्यगर्भ रूप, समस्त संसार के प्राणरूप, जगदात्मा, योग के लिये योगेश्वर स्वरूप प्रभु को नमस्कार है ॥३३॥

नमस्ते आदिदेवाय साक्षिभूताय ते नमः ।
नारायणाय ऋषये नराय हरये नमः ॥३४॥

साक्षी रूप आदि देव को नमस्कारहै, नारायण रूप हरि को नमस्कार है ॥३४॥

नमो मरकतश्यामवपुषेधिगतश्रिये ।
केशवाय नमस्तुभ्यं नमस्ते पीतवाससे ॥३५॥

मरकत मणि के समान श्याम वर्ण, लक्ष्मीपति, पीतांबरधारी, केशव को नमस्कार है ॥ ३५ ॥

त्वं सर्ववरदः पुंसां वरेण्य वरदर्षभ ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अतस्ते श्रेयसे धीराः पादरेणुमुपासते ॥३६॥

हे वर देनेवालों में श्रेष्ठ ! हे वरेण्य ! आप सब को वर देते हैं, इसलिये धीरपुरुष कल्याण के लिये आपके चरण-कमल की उपासना करते हैं ॥३६॥

अन्ववर्तंत यं देवाः श्रीश्च तत्पादपद्मयोः ।
स्पृहयंत इवामोदं भगवान् मे प्रसीदताम् ॥३७॥

जिनके चरणकमल की देवता तथा लक्ष्मीजी इस प्रकार से सेवा करती हैं जैसे उनकी सुगन्धि चाहती हों, वे प्रभु मुझपर प्रसन्न हों ॥३७॥

एतैर्मंत्रैर्हृषीकेशमावाहनपुरस्कृतम् ।
अर्चयेच्छ्रद्धया युक्तः पाद्योपस्पर्शनादिभिः ॥३८॥

इन मन्त्रों द्वारा आह्वान करके प्रभुका सन्मान करे, फिर श्रद्धा-सहित पाद्य तथा आचमन आदि से भगवान् का पूजन करे ॥३८॥

अर्चित्वा गंधमाल्याद्यैः पयसा स्नपये द्विभुम् ।
वस्त्रोपवीताभरणपाद्योपस्पर्शनैस्ततः ।
गंधधूपादिभिश्चार्चेद् द्वादशाक्षरविद्यया ॥३९॥

गन्ध, पुष्प आदि से पूजन करके, भगवान् को पय-स्नान कराना चाहिये, फिर वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, पाद्य, आचमन, गन्ध, धूप आदि उपचारों से द्वादश मंत्र–"ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" का उच्चारण करते हुए पूजन करना चाहिये ॥३९॥

घृतं पयसि नैवेद्यं शाल्यन्नं विभवे सति ।
ससर्पिः सगुडं दत्त्वा जुहुयान्मूलविद्यया ॥४०॥

यदि सामर्थ्य हो तो घी-शक्कर मिलाकर खीर का भोग धरना चाहिये और उसी का होम करना चाहिये ॥४०॥

निवेदितं तद् भक्ताय दद्याद् भुंजीत वा स्वयम् ।
दत्त्वाचमनमर्चित्वा तांबूलं च निवेदयेत् ॥४१॥

भगवान् को अर्पण किया हुआ प्रसाद या तो किसी भक्त को दे देना चाहिये या स्वयं पा लेना चाहिये, फिर आचमन कराके पूजन कर, भगवान् को ताम्बूल अर्पण करना चाहिये ॥४१॥

जपेदष्टोत्तरं तं स्तुवीत स्तुतिभिः प्रभुम् ।
कृत्वा प्रदक्षिणं भूमौ प्रणमेद् दंडवन्मुदा ॥४२॥

भगवान् के स्तोत्रोंसे एकसौ आठ बार स्तुति करनी चाहिये, फिर परिक्रमा देकर आनंद पूर्वक पृथ्वी पर दण्डवत् प्रणाम करना चाहिये ॥ ४२॥

कृत्वा शिरसि तच्छेषं देवमुद्वासयेत्ततः ।
द्व्यवरान् भोजयेद्विप्रान् पायसेन यथोचितम् ॥४३॥

भगवान् के प्रसाद को माथे पर चढ़ाकर, प्रभु का विसर्जन करना चाहिये, यथा योग्य खीर के द्वारा कमसे कम दो ब्राह्मणों को नित्य भोजन कराना चाहिये ॥४३॥

भुंजीत तैरनुज्ञातः शेषं सेष्टः सभाजितैः ।
ब्रह्मचार्यथ तद्रात्र्यांश्वोभूते प्रथमेऽहनि ॥४४॥
स्नातः शुचिर्यथोक्तेन विधिना सुसमाहितः ।
पयसा स्नापयित्वार्चेद्यावद्व्रतसमापनम् ॥४५॥

ब्राह्मणों के सत्कार करने के पीछे, उनसे आज्ञा लेकर कुटुम्बियों सहित शेष अन्न का स्वयं भोजन करना चाहिये, उस रात में ब्रह्मचर्य रखना चाहिये, दूसरे दिन प्रातःकाल स्नान करके, पवित्र होकर, एकाग्र चित्त से विधि-पूर्वक दूध से भगवान् को स्नान कराके, उनका पूजन करना चाहिये और व्रत पूर्ण होने तक इसी प्रकार करते रहना चाहिये ॥

पयोभक्षो व्रतमिदं चरेद्विष्ण्वर्चनादृतः ।
पूर्ववज्जुहुयादग्निं ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥४६॥

भगवान् विष्णु के पूजन में प्रेम रखकर, दूध पीते हुए, यह पयोव्रत नामक व्रत करना चाहिये और पूर्ववत् ही अग्नि में होम तथा ब्रह्म-भोज्य करते रहना चाहिये ॥४६॥

एवं त्वहरहः कुर्याद् द्वादशाहं पयोव्रतः ।
हरेराराधनं होममर्हणं द्विजतर्पणम् ॥४७॥

इस प्रकार से बारह दिन तक पयोव्रत करे, भगवान् का आराधन, होम और पूजन करे, ब्राह्मणों को भोजन कराये और तर्पण करे ॥४७॥

प्रतिपदिनमारभ्य यावच्छुक्लत्रयोदशी ।
ब्रह्मचर्यमधःस्वप्नः स्नानं त्रिषवणं चरेत् ॥४८॥

परिवा से शुक्ल पक्ष की एकादशी तक व्रत रक्खे, ब्रह्मचर्य से रहे, पृथिवी पर शयन करे, त्रिकाल स्नान करे ॥४८॥

वर्जयेदसदालापं भोगानुच्चावचांस्तथा ।
अहिंस्रः सर्वभूतानां वासुदेवपरायणः ॥४९॥

असत्य न बोले, असाधु से बात-चीत न करे, समस्त नीच भोग त्याग दे, किसी प्राणीकी हिंसा न करे, और भगवत्परायण रहे ॥४९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्रयोदश्यामथो विष्णोः स्नपनं पंचकैर्विभोः ।
कारयेच्छा स्त्रदृष्टेन विधिना विधिकोविदैः ॥५०॥
पूजां च महतीं कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ।
चरुं निरूप्य पयसि शिपिविष्टाय विष्णवे ॥५१॥
श्रृतेन तेन पुरुषं यजेत सुसमाहितः ।
नैवेद्यं चातिगुणवद्दद्यात् पुरुषतुष्टिदम् ॥५२॥

त्रियोदशी के दिन पञ्चामृत से भगवान् को स्नान कराये और विधि जानने वाले ब्राह्मणों की बतलाई हुई शास्त्रोक्त विधि से धन का लोभ छोड़ कर भगवान् का महा-पूजन करे, दूध का चरु बनाकर भगवान् को अर्पण करे, फिर उसी औटाये हुए दूध से एकाग्र चित्त होकर होम करे, तथा अति गुण वाला ऐसा नैवेद्य धरे कि जिससे भगवान् प्रसन्न होजायें ॥५०॥॥५१॥॥५२॥

आचार्यं ज्ञानसंपन्नं वस्त्राभरणधेनुभिः ।
तोषयेदृत्विजश्चैव तद्विद्ध्याराधनं हरेः ॥५३॥

ज्ञानवान् आचार्य को वस्त्र, आभूषण और गौ दान देकर तथा ऋत्विजों को भी दक्षिणा देकर प्रसन्न करना ही भगवान् का मुख्य आराधन समझना चाहिये ॥५३॥

भोजयेत् तान् गुणवता सदन्नेन शुचिस्मिते ।
अन्यांश्च ब्राह्मणान् शक्त्या ये च तत्र समागताः५४

हे शुचिस्मते ! उनको तथा और भी उस अवसर पर आये हुए ब्राह्मणों को सुन्दर गुण वाले अन्नसे शक्तिके अनुसार भोजन करवाना चाहिये ॥

दक्षिणां गुरवे दद्यादृत्विग्भ्यश्च यथार्हतः ।
अन्नाद्येनाऽश्वपाकांश्च प्रीणयेत् समुपागतान्॥५५॥

गुरु तथा ऋत्विजों को यथा योग्य दक्षिणा देनी चाहिये तथा अन्न आदि से तो उस समय आये हुए चाण्डाल को भी संतुष्ट करना चाहिये ॥

भुक्तवत्सु च सर्वेषु दीनांधकृपणेषु च ।
विष्णोस्तत् प्रीणनं भुंजीत सह बंधुभिः ॥५६॥

जब दीन,अंधे और कृपण आदि सभी भोजन कर चुकें तब स्वयं परिवार सहित भोजन करना चाहिये, इससे प्रभु बहुत प्रसन्न होते हैं ॥५६॥

नृत्यवादित्रगीतैश्च स्तुतिभिः स्वस्तिवाचकैः ।
कारयेत्तत्कथाभिश्च पूजां भगवतोऽन्वहम् ॥५७॥

नृत्य, गीत, वादन, स्तुति, स्वस्ति वाचन और भगवान् की कथाओं को कह-सुनकर भगवान् का नित्य पूजन करना चाहिये ॥५७॥

एतत् पयोव्रतं नाम पुरुषाराधनं परम् ।
पितामहेनाभिहितं मया ते समुदाहृतम् ॥५८॥

यह पयोव्रत नामक भगवान्का परम आराधन मुझसे ब्रह्माजीने कहाथा, जिसे मैंने तुझसे कहाहै॥

त्वं चानेन महाभागे सम्यक्चीर्णेन केशवम् ।
आत्मना शुद्धभावेन नियतात्मा भजाव्ययम्॥५९॥

हे महाभागे ! तूभी इस व्रतका अनुष्ठान करके शुद्ध भावसे अविनाशी केशव भगवान्का भजनकर ।

अयं वै सर्वयज्ञाख्यः सर्व व्रतमिति स्मृतम् ।
तपःसारमिदं भद्रे दानं चेश्वरतर्पणम् ॥६०॥

हे कल्याणी ! यह व्रत समस्त यज्ञ-रूप, सर्व व्रतरूप तथा तपका सार एवं दानरूप है; इसलिये यह भगवान् को प्रसन्न करने वाला है ॥६०॥

त एव नियमाः साक्षात्त एव च यमोत्तमाः ।
तपो दानं व्रतं यज्ञो येन तुष्यत्यधोक्षजः ॥६१॥

साक्षात् उत्तम नियम वही हैं और तप, दान; व्रत तथा यज्ञ भी वही हैं कि जिनसे भगवान् प्रसन्न हों ॥६१॥

तस्मादेतद्व्रतं भद्रे प्रयता श्रद्धया चर ।
भगवान् परितुष्टस्ते वरानाशु विधास्यति ॥६२॥

हे मङ्गलरूपणी ! तू इस व्रत को श्रद्धा पूर्वक पवित्र होकर कर, जिससे कि भगवान् प्रसन्न हो कर तेरे सब मनोरथ पूर्ण करेंगे ॥६२॥

इति श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सत्रहवां अध्याय

(अदिति के गर्भ से भगवान् का जन्म)

श्रीशुक उवाच

इत्युक्त्वा साऽदिती राजन् स्वभर्त्रा कश्यपेन वै।
अन्वतिष्ठद्व्रतमिदं द्वादशाहमतंद्रिता ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! अपने स्वामी कश्यपजी के इस प्रकार कहने पर अदिति ने आलस्य छोड़कर बारह दिनतक वह पयोव्रत किया ॥

चिंतयंत्येकया बुद्धया महापुरुषमीश्वरम्।
प्रगृह्णेंद्रियदुष्टाश्वान् मनसा बुद्धिसारथिः ॥ २ ॥

उसने एकाग्र बुद्धिसे महापुरुष ईश्वरका ध्यान करके बुद्धिरूपी सारथी द्वारा इन्द्र-रूपी घोड़े वश में कर लिये ॥२॥

मनश्चैकाग्रया बुद्धया भगवत्यखिलात्मनि।
वासुदेवे समाधाय चचार ह पयोव्रतम् ॥ ३ ॥

एकाग्र बुद्धि से सर्वात्मा भगवान् वासुदेव में मन लगाकर अदितिने पयोव्रत किया ॥३॥

तस्याः प्रादुरभूत्तात भगवानादिपूरुषः।
पीतवासाश्चतुर्बाहुः शंखचक्रगदाधरः ॥ ४ ॥

उसके प्रभाव से पीतांवर पहिने हुए, चारों भुजाओं में शंख, चक्र, गदा आदि धारण किये हुए आदि पुरुष भगवान् वहाँ प्रकट हुए ॥४॥

तं नेत्रगोचरं वीक्ष्य सहसोत्थाय सादरम्।
ननाम भुवि कायेन दंडवत् प्रीतिविह्वला ॥ ५ ॥

उन अगोचर प्रभु को प्रत्यक्ष देखकर अदिति तत्क्षण ही आदर-पूर्वक उठ खड़ी हुई और प्रेम में विह्वल होकर उसने पृथ्वी पर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया ॥५॥

सोत्थाय बद्धांजलिरीडितुं स्थिता नोत्सेह आनंदजलाकुलेक्षणा। बभूव तूष्णीं पुलकाकुला कृतिस्तदर्शनात्युत्सवगात्रवेपथुः ॥ ६ ॥

फिर उसने खड़े होकर हाथजोड़ स्तुति करनी चाही, परन्तु कर न सकी, क्योंकि उसके नेत्र आनन्द-जलसे व्याकुल होगये, शरीर पुलकायमान होगया और प्रभु के दर्शनोंके आनन्दसे देह काँपने लगी, जिसके कारण वह चुप रह गई ॥६॥

प्रीत्या शनैर्गद्गदया गिरा हरिं तुष्टाव सा देव्यदितिः कुरूद्वह। उद्वीक्षती सा पिबतीव चक्षुषा रमापतिं यज्ञपतिं जगत्पतिम् ॥ ७ ॥

हे राजन् ! फिर भी वह अदिति देवी भगवान् का रूप-रस पान करती हुई धीरे-धीरे गद्गदवाणी से उनकी स्तुति करने लगी ॥७॥

अदितिरुवाच

यज्ञेश यज्ञपुरुषाच्युत तीर्थपाद तीर्थश्रवः श्रवण मंगलनामधेय। आपन्नलोकवृजिनोपशमोदयाद्य शं नः कृधीश भगवन्नसि दीननाथः ॥८॥

अदिति बोली–हे यज्ञेश ! हे यज्ञपुरुष ! हे अच्युत ! हे पवित्र चरणों वाले ! हे शुद्ध यशवाले! हे मङ्गलमय नाम और श्रवण वाले ! हे शरणागत दीनों के दुःख हरने वाले ! हे ईश ! आप दीनों के नाथ हैं, इसलिये हमें भी सुख दीजिये ॥८॥

विश्वाय विश्वभवनस्थितिसंयमाय स्वैरं गृहीत पुरुशक्तिगुणाय भूम्ने। स्वस्थाय शश्वदुपबृंहित पूर्णबोधव्यापादितात्मतमसे हरये नमस्ते ॥ ९ ॥

विश्वमूर्त्ति, विश्वके उत्पन्न, पालन तथा संहार करने वाले, अपनीही इच्छासे माया के अनेक गुण धारण करने वाले, व्यापक, अच्युत-स्वरूप, सर्वदा बुद्धि को प्राप्त होने वाले, पूर्ण ज्ञान द्वारा आत्मिक माया रूपी अज्ञान को दूर करने वाले, हे हरि ! मैं आपको प्रणाम करती हूँ ॥९॥

आयुः परं वपुरभीष्टमतुल्यलक्ष्मीर्द्यौर्भूरसाः सकलयोगगुणास्त्रिवर्गः। ज्ञानं च केवलमनंत भवंति तुष्टात्त्वत्तो नृणां किमु सपत्नजयादिराशीः ॥

हे अनन्त ! जब आप प्रसन्न होते हैं तब ब्रह्मा जीके समान दीर्घ आयु, सुन्दर रूप, अतुल संपदा, स्वर्ग पृथ्वी और पाताल का राज्य, समस्त योग के गुण धर्म, अर्थ, काम और केवल ज्ञान मनुष्यको देते हैं, फिर शत्रु आदि को विजय करनेकी तुच्छ कामनाओं की तो बात ही क्या है ? ॥१०॥

श्रीशुक उवाच

अदित्यैवं स्तुतो राजन् भगवान् पुष्करेक्षणः।
क्षेत्रज्ञः सर्व भूतानामिति होवाच भारत ॥ ११ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! इस प्रकार अदिति द्वारा स्तुति किये जाने पर कमलके समान नेत्र वाले, समस्त प्राणियों के अन्तर्यामी भगवान् यह कहने लगे ॥११॥

श्रीभगवानुवाच

देवमातर्भवत्या मे विज्ञातं चिरकांक्षितम् ।
यत् सपत्नैर्हृत श्रीणां च्यावितानां स्वधामतः१२॥
तान् विनिर्जित्य समरे दुर्मदानसुरर्षभान् ।
प्रतिलब्धजय श्रीभिः पुत्रैरिच्छस्युपासितुम् ॥१३॥
इंद्रज्येष्ठैः स्वतनयैर्हतानां युधि विद्विषाम् ।
स्त्रियो रुदंतीरासाद्य द्रष्टुमिच्छसि दुःखिताः १४॥

भगवान् बोले-हे देवमाता ! मैंने तेरे मनकी कालान्तर से लगी हुई इच्छा समझ ली है कि दैत्यों ने जो मेरे पुत्रोंकी सब लक्ष्मी हरली है और उनको स्वर्ग से च्युत कर दिया है, सो मेरे पुत्र संग्राम में इन दुर्मद दैत्यों को जीतकर फिरसे जय और लक्ष्मी को प्राप्त हों और अपने बड़े पुत्र इन्द्र सहित देवों के हाथ से संग्राम में दैत्य मारे जाँय तथा उनकी स्त्रियाँ दुःखी होकर रोवें-यह दृश्य तू देखना चाहती है ॥१२॥१३॥१४॥

आत्मजान् सुसमृद्धांस्त्वं प्रत्याहृतयशःश्रियः ।
नाकपृष्ठमधिष्ठाय क्रीडतो द्रष्टुमिच्छसि ॥१५॥

फिर तू अपने पुत्रों को यश तथा संपदावान् होने पर भले प्रकार समृद्धिशाली होकर स्वर्ग में क्रीड़ा करता हुआ देखना चाहती है ॥१५॥

प्रायोऽधुना तेऽसुरयूथनाथा अपारणीया इति देवि मे मतिः । यत्तेऽनुकूलेश्वरविप्रगुप्ता न विक्रमस्तत्र सुखं ददाति ॥१६॥

परन्तु उस असुरपति का जीतना अभी बहुत कठिनहै, क्योंकि उसपर दैव और ब्राह्मण अनुकूल हैं इसलिये वे लोग रक्षित हैं, इस समय उनपर बल दिखलाने से कुछ फल न होगा ॥१६॥

अथाप्युपायो मम देवि चिंत्यः संतोषितस्य व्रतचर्यया ते । ममार्चनं नार्हति गंतुमन्यथा श्रद्धानुरूपं फलहेतुकत्वात् ॥१७॥

हे देवी ! फिरभी मैं कोई न कोई उपाय सोचूंगा क्योंकि तूने पयोव्रत करके मुझे प्रसन्न किया है, मेरा पूजन कभी व्यर्थ नहीं जाता, उसका फल श्रद्धा के अनुसार ही मिलता है ॥१७॥

त्वयार्चितश्चाहमपत्यगुप्तये पयोव्रतेनानुगुणं समीडितः । स्वांशेन पुत्रत्वमुपेत्य ते सुतान् गोप्ताऽस्मि मारीचतपस्यधिष्ठितः ॥१८॥

तूने पयोव्रत करके अपने पुत्रोंकी रक्षाके लिये मेरा पूजन किया है तथा यथा गुण मेरी स्तुति की है, इसलिये मैं कश्यपजी के तप से स्थित होकर अपने ही अंश द्वारा तेरा पुत्र बनूंगा और तेरे पुत्रों की रक्षा करूँगा ॥१८॥

उपधाव पतिं भद्रे प्रजापतिमकल्मषम् ।
मां च भावयती पत्यावेवंरूपमवस्थितम् ॥१९॥

इसलिये हे भद्रे ! अब तू निष्पाप रहकर अपने पति कश्यपजी की सेवा कर और जैसे स्वरूप से स्थित हूँ वैसे ही स्वरूप से तेरे पति में भी स्थित होरहा हूँ; अपने पतिमें मेरे प्रति ऐसी भावनाकर ।

नैतत्परस्मा आख्येयं पृष्टयाऽपि कथंचन ।
सर्वं संपद्यते देवि देवगुह्यं सुसंवृतम् ॥२०॥

यदि कोई तुझसे पूछे भी तो भी यह बात न कहना, क्योंकि हे देवि ! देवता का रहस्य छिपाने से ही सिद्ध होता है ॥२०॥

श्रीशुक उवाच

एतावदुक्त्वा भगवांस्तत्रैवांतरधीयत ।
अदितिर्दुर्लभं लब्ध्वा हरेर्जन्मात्मनि प्रभोः॥२१॥
उपाधावत् पतिं भक्त्या परया कृतकृत्यवत् ।
स वै समाधियोगेन कश्यपस्तदबुध्यत ॥२२॥
प्रविष्टमात्मनि हरेरंशं ह्यवितथेक्षणः ।
सोऽदित्यां वीर्यमाधत्त तपसा चिरसंभृतम् ।
समाहितमना राजन् दारुण्यग्निं यथाऽनिलः॥२३॥

श्रीशुकदेवजी बोले-इतना कहकर भगवान्हरि अन्तर्धान होगये, और अदिति अपने गर्भ से भगवान् के अवतार होनेका दुर्लभ वर पाकर कृतकृत्य होगई तथा भगवान् की आज्ञानुसार परम भक्ति पूर्वक पति की सेवा करने लगी, अमोघ दृष्टि रखने वाले कश्यपजी ने भी समाधि के द्वारा यह बात समझ ली कि भगवान् का अंश मेरे अन्दर प्रविष्ट होचुका है, हे राजन् ! तब उन्होंने एकाग्र चित्त से कालान्तर का संचय किया हुआ वीर्य तपके प्रभाव से अदिति के गर्भ में इस प्रकार स्थित किया, जैसे पवन काठ में अग्नि स्थित करता है ॥२१॥२२॥२३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अदितेर्धिष्ठितं गर्भे भगवंतं सनातनम् ।
हिरण्यगर्भो विज्ञाय समीडे गुह्यनामभिः ॥२४॥

जब ब्रह्माजी को यह ज्ञात हुआ कि अदिति के गर्भ में सनातन भगवान् ने प्रवेश किया है, तब वे गुह्य नामों से स्तुति करने लगे ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

जयोरुगाय भगवन्नुरुक्रम नमोऽस्तुते ।
नमो ब्रह्मण्यदेवाय त्रिगुणाय नमोनमः ॥२५॥

ब्रह्माजी बोले–हे उरुगाय ! हे भगवन् ! हे उरुक्रम ! आपकी जय हो; मैं आपको प्रणाम करता हूँ हे ब्रह्मण्यदेव ! हे त्रिगुण ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥२५॥

नमस्ते पृश्निगर्भाय वेदगर्भाय वेधसे ।
त्रिनाभाय त्रिपृष्ठाय शिपिविष्टाय विष्णवे ॥२६॥

पृश्नि के गर्भ, वेदों में प्रकाशित, त्रिलोकी को नाभि में रखने वाले, त्रिलोकी से ऊपर विराजमान् और जीवों के अन्तर्यामी, विष्णुरूप ! आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२६॥

त्वमादिरंतो भुवनस्य मध्यमनंतशक्तिं पुरुषं यमाहुः । कालो भवानाक्षिपतीश विश्वं स्रोतो यथांऽतःपतितं गभीरम् ॥२७॥

हे ईश ! इस जगत् के आदि, मध्य तथा अंत आपही हैं, आपही अनन्त शक्ति पुरुष कहलाते हैं, आपही कालरूप हैं, क्योंकि जैसे नदी का प्रवाह अपनी धारा में पड़े हुए पदार्थों को खींचताहै वैसे ही आप अपनी काल-शक्तिसे संसारको खींचते हैं॥

त्वं वै प्रजानां स्थिरजंगमानां प्रजापतीनामसि संभविष्णुः । दिवौकसां देव दिवश्च्युतानां परायणं नौरिव मज्जतोऽप्सु ॥२८॥

आपही इस चराचर प्रजा तथा प्रजापतियोंको को उत्पन्न करने वालेहैं, हे देव ! जैसे जलमें डूबते हुए मनुष्य को नाव का आसरा होता है, वैसे ही इन देवताओंको अब आपका ही आसरा है ॥२८॥

इति श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अठारहवां अध्याय

(वामनावतार)

श्रीशुक उवाच

इत्थं विरिंचस्तुतकर्मवीर्यः प्रादुर्बभूवामृतभूरदित्याम् । चतुर्भुजः शंखगदाब्जचक्रः पिशंगवासा नलिनायतेक्षणः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! जब ब्रह्माजी ने इस प्रकार से भगवान् की महिमा का वर्णन किया तब जन्म-मृत्यु सहित, कमलनयन भगवान् पीतांबर पहिने, शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए अदिति के भीतर चतुर्भुज रूप से प्रकट हुए ॥१॥

श्यामावदातो झषराजकुंडलत्विषोल्लसच्छ्रीवदनांबुजः पुमान् । श्रीवत्सवक्षा वलयांगदोल्लसत्किरीटकांचीगुणचारुनूपुरः ॥ २ ॥

जो श्यामसुन्दर उज्ज्वल वर्ण वाले हैं, मकराकृत कुण्डलों की कान्ति से जिनका मुख सुन्दर है, जिनके वक्षःस्थल पर कौस्तुभ मणि शोभायमानहै, जो भुजबन्द, किरीट मुकुट, हार क्षुद्रघंटिका और नूपुरों से शोभायमान हैं ॥२॥

मधुव्रतव्रातविघुष्टया स्वया विराजितः श्रीवनमालया हरिः । प्रजापतेर्वेश्मतमः स्वरोचिषा विनाशयन् कंठनिविष्टकौस्तुभः ॥ ३ ॥

जिसपर भोरों का समूह गुञ्जार कर रहा है, ऐसी वनमाला से शोभित श्रीभगवान् ने अपनी कान्ति से कश्यपजी के घरका अन्धकार दूर कर दिया, वे कण्ठमें कौस्तुभ मणि धारण किये हुए प्रकट हुए ॥३॥

दिशः प्रसेदुः सलिलाशयास्तदा प्रजाः प्रहृष्टा ऋतवो गुणान्विताः । द्यौरंतरिक्षं क्षितिरग्निजिह्वा गावो द्विजाः संजहृषुर्नगाश्च ॥ ४ ॥

उनके प्रकट होते ही दिशायें और जलाशय निर्मल होगये, प्रजा प्रसन्न हुई, ऋतु में सभी गुण आगये, स्वर्ग पृथ्वी, आकाश, देवता, गौ, ब्राह्मण और भक्त सभी आनन्दित हुए ॥४॥

श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः । सर्वे नक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम् ॥ ५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाद्रपद शुक्ला द्वादशीके दिन अभिजित् मुहूर्त में प्रभु वामन प्रकट हुए, उस समय सभी ग्रह, नक्षत्र आदि शुभ थे ॥५॥

द्वादश्यां सविता तिष्ठन् मध्यंदिनगतो नृप ।
विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः॥ ६ ॥

हे राजन् ! द्वादशी को मध्याह्न समय में श्री-वामनजी का अवतार हुआ, इसीलिये उसे विजया द्वादशी कहते हैं ॥६॥

शंखदुंदुभयो नेदुर्मृदंगपणवानकाः ।
चित्रवादित्रतूर्याणां निर्घोषस्तुमुलोऽभवत् ॥ ७॥

शंख, दुन्दुभि, मृदङ्ग, पणव, आनक आदि बाजे बजने लगे और अनेकों विचित्र बाजों का तुमुल नाद होने लगा ॥७॥

प्रीताश्चाप्सरसोऽनृत्यन् गंधर्वप्रवरा जगुः ।
तुष्टुवुर्मुनयो देवा मनवः पितरोऽग्नयः ॥ ८ ॥

प्रसन्न होकर अप्सरायें नृत्य करने लगीं और श्रेष्ठ गन्धर्व गानेलगे, मुनि, देवता, मनु, पितृ और अग्नि स्तुति करने लगे ॥८॥

सिद्धविद्याधरगणाः सकिंपुरुष किन्नराः ।
चारणा यक्षरक्षांसि सुपर्णा भुजगोत्तमाः ॥ ९ ॥
गायंतोऽतिप्रशंसंतो नृत्यंतो विबुधानुगाः ।
आदित्या आश्रमपदं कुसुमैः समवाकिन् ॥१०॥

सिद्ध, विद्याधर, किन्नर, किंपुरुष, चारण, यक्ष राक्षस, गरुड़, श्रेष्ठ नाग और देवताओंके अनुचर गाते, नाचते तथा विशेष प्रशंसा करतेहुए अदिति के आश्रम में फूल बरसाने लगे ॥९॥१०॥

दृष्ट्वाऽदितिस्तं निजगर्भसंभवं परं पुमांसं मुद माप विस्मिता । गृहीतदेहं निजयोगमायया प्रजा पतिश्चाह जयेति विस्मितः ॥११॥

साक्षात् परम पुरुष को अपने गर्भ से प्रकट हुआ देखकर अदिति अत्यन्त आनन्दित तथा चकित हुई और अपनी योग-माया देह धारणकिये हुए भगवान् को देखकर कश्यपजी भी आश्चर्य मानकर जय-जय करने लगे ॥११॥

यत्तद्वपुर्भातिविभूषणायुधैरव्यक्तचिद्व्यक्तम धारयद्धरिः । बभूव तेनैव स वामनो बटुः संपश्य तोर्दिव्यगतिर्यथा नटः ॥१२॥

अद्भुत चरित्र, अव्यक्त, चैतन्य रूप भगवान् कान्ति, आभूषण तथा आयुधों वाले जिस स्वरूप से प्रकट हुए थे उसी स्वरूप से आप माता-पिता के समक्ष ही वामन रूप बनगये, जैसे कोई नट वेष बदल कर स्वांग करता है ॥१२॥

तं बटुं वामनं दृष्ट्वा मोदमाना महर्षयः ।
कर्माणि कारयामासुः पुरस्कृत्य प्रजापतिम्॥१३॥

वामन बटु रूप देखकर महर्षिगण बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कश्यपजी को अग्रणी बनाकर उन के जाति कर्म संस्कार आदि कराये ॥१३॥

तस्योपनीयमानस्य सावित्रीं सविताऽब्रवीत् ।
बृहस्पतिर्ब्रह्मसूत्रं मेखलां कश्यपोऽददात् ॥१४॥

जब वामन भगवान् का यज्ञोपवीत हुआ उस समय सूर्यने गायत्री मंत्रका उपदेश किया, बृहस्पति ने यज्ञोपवीत पहिनाया और कश्यपजी ने मेखला प्रदान की ॥१४॥

ददौ कृष्णाजिनं भूमिर्दंडं सोमो वनस्पतिः ।
कौपीनाच्छादनं माता द्यौश्छत्रं जगतःपतेः॥१५॥

पृथ्वीने मृगचर्मदिया, बनोंके स्वामी चंद्रमा ने दंड (डंडा) दिया, माताने कौपीन दी और स्वर्गने जगत्पति वामनजी को छत्र दिया ॥१५॥

कमंडलुं वेदगर्भः कुशान्सप्तर्षयो ददुः ।
अक्षमालां महाराज सरस्वत्यव्ययात्मनः ॥१६॥

हे राजन् ! वेदगर्भ ब्रह्माजीने कमंडलदिया, सप्त ऋषियोंने कुश दान किये और उन अखंड आत्मा प्रभु को सरस्वतीजी ने अक्षमाल दी ॥१६॥

तस्मा इत्युपनीताय यक्षराट् पात्रिकामदात् ।
भिक्षां भगवती साक्षादुमाऽदादंबिका सती॥१७॥

यज्ञोपवीत हो चुकने पर कुबेर ने वामनजी को भिक्षा-पात्र दिया और साक्षात् भगवती उमा अम्बिकाजी ने भिक्षा दी ॥१७॥

स ब्रह्मवर्चसेनैवं सभां संभावितो बटुः ।
ब्रह्मर्षिगणसंजुष्टामत्यरोचत मारिषः ॥१८॥

इस प्रकार बटुक श्रेष्ठ वामनजी सबसे आदर पाकर अपने ब्रह्म-तेज से ब्रह्मर्षियों की सभा में सबसे अधिक शोभायमान् होने लगे ॥१८॥

समिद्धमाहितं वह्निं कृत्वा परिसमूहनम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिस्तीर्य समभ्यर्च्य समिद्भिरजुहोद्द्विजः ॥१९॥

अग्न्याधान* कर, अग्नि को प्रदीप्त कर, परिसमूह द्वारा कुशों से परिस्तरण तथा पूजन कर समिधाओं से होम किया ॥१९॥

श्रुत्वाऽश्वमेधैर्यज मानमूर्जितं बलिं भृगूणामुप कल्पितैस्ततः । जगाम तत्राखिलसारसंभृतो भारेण गां सन्नमयन् पदेपदे ॥२०॥

तब तक वामनजी ने यह समाचार पाया कि भृगुवंशी ब्राह्मण राजा बलिको अश्वमेध यज्ञ करवा रहे हैं कि जिनसे उसकी सब प्रकार वृद्धि होरही है, यह सुनते ही समस्त बल तथा सार से संपन्न भगवान् अपने भार से पग-पगपर पृथ्वीको कंपित करते हुए वहाँ को चले ॥२०॥

तंनर्मदायास्तट उत्तरे बलेर्ये ऋत्विजस्ते भृगु कच्छसंज्ञके । प्रवर्तयंतो भृगवः क्रतूत्तमं व्यचक्ष तारादुदितं यथा रविम् ॥२१॥

नर्मदा नदी के उत्तरी तटपर भृगु कच्छनामक क्षेत्र में राजा बलिको श्रेष्ठयज्ञ कराते हुए भृगुवंशी ब्राह्मणों ने समीप में सूर्योदय के समान प्रकाशित वामनजी को देखा ॥२१॥

ते ऋत्विजो यजमानः सदस्या हतत्विषो वामन तेजसा नृप । सूर्यः किलायात्युत वा विभावसुः सनत्कुमारोऽथ दिदृक्षया क्रतोः ॥२२॥

हे राजन् ! वामनजी के तेज से उन सब यज्ञ कराने वालों, यजमानों का तथा सभासदों का तेज हत होगया, तब वे सोचने लगे कि क्या यज्ञ देखने के लिये सूर्य देव आरहे हैं या अग्निदेव अथवा सनत्कुमार पधारे हैं ? ॥२२॥

इत्थं सशिष्येषु भृगुष्वनेकधा वितर्क्यमाणो भगवान् स वामनः । सदंडछत्रं सजलं कमंडलुं विवेश बिभ्रद्धयमेधवाटम् ॥२३॥

इस प्रकार अपने शिष्यों सहित समस्त भृगुवंशी विचार कर ही रहे थे कि तब तक दंड, छत्र, जल-पूर्ण कमंडल को लिये हुए भगवान् वामनजी अश्वमेध यज्ञ के मण्डप में पधारे ॥२३॥

मौंज्या मेखलया वीतमुपवीताजिनोत्तरम् ।
जटिलं वामनं विप्रं मायामाणवकं हरिम् ॥२४॥
प्रविष्टं वीक्ष्य भृगवः सशिष्यास्ते सहाग्निभिः ।
प्रत्यगृह्णन् समुत्थाय संक्षिप्तास्तस्य तेजसा ॥२५॥

मूज की मेखला पहिने हुए, उपवीत और मृग चर्म रूपी उत्तरीय धारण किये हुए, जटा बाँधे, माया से बालकरूप वामन भगवान्को यज्ञमें आता देखकर उनके तेजसे शिष्य सहित सब भृगुवंशी ब्राह्मण और सभी अग्नि खड़े होगये तथा स्वागत करनेके लिये आगे बढ़े ॥२४॥२५॥

यजमानः प्रमुदितो दर्शनीयं मनोरमम् ।
रूपानुरूपावयवं तस्मा आसनमाहरत् ॥२६॥

उनके दर्शनीय स्वरूपके अनुकूलही अङ्गों वाले वामनजी को देखकर यजमान (बलि) ने प्रसन्न होकर उन्हें आसन दिया ॥२६॥

स्वागतेनाभिनंद्याथ पादौ भगवतो बलिः ।
अवनिज्यार्चयामास मुक्तसंगं मनोरमम् ॥२७॥

फिर राजा बलिने आगत-स्वागत सहित अभिनन्दन करके चरणों को धोकर उन संग-रहित सुन्दर स्वरूपधारी वामनजी का पूजन किया ॥२७॥

तत्पादशौचं जनकल्मषापहं स धर्मविद्मूर्ध्न्यदधात् सुमंगलम् । यदेवदेवो गिरिशश्चंद्रमौलिर्दधार मूर्ध्ना परया च भक्त्या ॥२८॥

उस धर्मज्ञ राजा बलि ने संसार के पाप नाश करने वाले चरणामृत को शिर पर चढ़ाया, जिसे देवाधिदेव चन्द्रमौलि महादेव ने परम भक्ति के साथ अपने शिरपर धारण किया है ॥२८॥

बलिरुवाच

स्वागतं ते नमस्तुभ्यं ब्रह्मन् किं करवाम ते ।
ब्रह्मर्षीणां तपः साक्षान्मन्ये त्वार्य वपुर्धरम् ॥२९॥

बलि बोला–हे ब्रह्मन् ! आपका अच्छा आगमन हुआ है मैं आपको प्रणाम करता हूँ, मुझे क्या आज्ञा है ? हे आर्य ! मैं आपको समस्त साक्षात् ब्रह्मर्षियों का तप ही मानता हूँ ॥२९॥

अद्य नः पितरस्तृप्ता अद्य नः पावितं कुलम् ।
अद्य स्विष्टः क्रतुरयं यद्भवानागतो गृहान् ॥३०॥

आज मेरे पितर तृप्त होगयेहैं, मेरा कुल पवित्र होगया है और यज्ञ भी सफल होगया है, क्योंकि आप मेरे यहाँ पधारे हैं ॥३०॥

*—अग्नि को स्थापन करना ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अद्याग्नयो मे सुहुता यथाविधि द्विजात्मज त्वच्चरणावनेजनैः । हतांहसो वार्भिरियं च भूरहो तथा पुनीता तनुभिः पदैस्तव ॥३१॥

हे ब्राह्मणात्मज ! आज मेरे अग्नियों में विधि पूर्वक होम हुआ है और आपके चरणार्विन्दके जल से मैं भी पाप-रहित होगया हूँ, और यह पृथ्वी भी आपके छोटे-छोटे चरणों से पवित्र होगई है ।३१॥

यद्ब्रह्मबटो वांछसि तत् प्रतीच्छ मे त्वामर्थिनं विप्रसुतानुतर्कये । गां काञ्चनं गुणवद्धाम मृष्टं तथान्नपेयमुत वा विप्र कन्याम् । ग्रामान् समृद्धान् तुरगान् गजान् वा रथांस्तथाऽर्हत्तम संप्रतीच्छ ॥

हे ब्राह्मण-कुमार ! हे वटुक ! हे परमपूज्य ! जो आपकी इच्छाहो वह मुझसे माँगिये, जो आप माँगेंगे वही पायेंगे, मुझे जान पड़ता है कि आप कुछ माँगने ही आये हैं, इसलिये पृथ्वी, स्वर्ण, गुण युक्त सुन्दर स्थान, मिष्टान्न, ब्राह्मण की कन्या, समृद्धि वाले गाँव, घोड़ा, हाथी या रथ, जो भी आप चाहें मुझसे माँग लें ॥३२॥

इति श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे अष्टदशोऽध्यायः ॥१८॥

उन्नीसवां अध्याय

(वामनजी द्वारा बलि-छलन)

श्रीशुक उवाच

इति वैरोचनेर्वाक्यं धर्मयुक्तं स सूनृतम् । निशम्य भगवान् प्रीतः प्रतिनंद्य दमब्रवीत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–इस प्रकार राजा बलि के धर्ममय सत्य तथा प्रिय वचन सुनकर वामन भगवान्ने प्रसन्नतापूर्वक उसकी प्रशंसा करके यहकहा ।

श्रीभगवानुवाच

वचस्तवैतज्जनदेव सूनृतं कुलोचितं धर्मयुतं यशस्करम् । यस्य प्रमाणं भृगवः सांपराये पितामहः कुलवृद्धः प्रशांतः ॥ २ ॥

श्रीभगवान् बोले–हे राजन् ! हे देव ! तुम्हारा यह धर्मसंयुक्त,यशकारी और सुन्दर वचन तुम्हारे कुल के अनुकूलही है, क्योंकि तुम्हारे वंश के पारलौकिक धर्म में शुक्र तथा शान्त चित्त पितामह प्रह्लादजी प्रमाणभूत हैं ॥ २ ॥

न ह्येतस्मिन् कुले कश्चिन्निःसत्त्वः कृपणः पुमान् । प्रत्याख्याता प्रतिश्रुत्य यो वाऽदाता द्विजातये३॥

इस वंशमें कोई भी व्यक्ति सत्वहीन या कृपण नहीं हुआ है कि जिसने 'हाँ' कहकर फिर पीछे से 'न' कहा हो और ब्राह्मणको कुछ न दिया हो ॥३॥

न संति तीर्थे युधि चार्थिनार्थिताः पराङ्मुखा ये त्वमनस्विनो नृपाः । युष्मत्कुले यद्यशसाऽमलेन प्रह्लाद उद्भाति यथोडुपः खे ॥ ४ ॥

इस तुम्हारे वंश में आजतक ऐसा कोई कृपण राजा नहीं हुआहै कि जिसने युद्ध-याचक या भिक्षुक के लिये मुंह फेर लिया हो, तुम्हारे वंशमें प्रह्लादजी अपने पवित्र यश के कारण ऐसे ही प्रकाशमान् हुए हैं जैसे आकाश में चन्द्रमा प्रकाशमान् हो ॥४॥

यतो जातो हिरण्याक्षश्चरन्नेक इमां महाम् । प्रतिवीरं दिग्विजये नाविंदत गदायुधः ॥ ५ ॥

इसी वंश में हिरण्याक्ष ऐसा वीर हुआ है कि जो अकेले ही गदा लिये हुए दिग्विजय के लिये पृथ्वी पर घूमा फिरा परन्तु उसकी समता करने को कोई भी समर्थ न हुआ ॥५॥

यं विनिर्जित्य कृच्छ्रेण विष्णुः क्ष्मोद्धार आगतम् । नात्मानं जयिनं मेने तद्वीर्यं भूर्यनुस्मरन् ॥ ६ ॥

पृथ्वी के उद्धार करते समय विष्णु भगवान् ने उसे बड़ी ही कठिनता से मारा और उसके पराक्रम को देखकर भगवान्ने अपनी जीत न मानी ॥

निशम्य तद्वधं भ्राता हिरण्यकशिपुः पुरा । हंतुं भ्रातृहणं क्रुद्धो जगाम निलयं हरेः ॥ ७ ॥

उसका भाई हिरण्यकश्यप विष्णुजी के द्वारा उसका बध सुनकर पहले अपने भाई के मारनेवाले को मारने के लिये क्रोधित होकर वैकुण्ठ गया ॥७॥

तमायांतं समालोक्य शूलपाणिं कृतांतवत् । चिंतयामास कालज्ञो विष्णुर्मायाविनां वरः॥ ८ ॥
यतो यतोऽहं तत्रासौ मृत्युः प्राणभृतामिव । अतोऽहमस्य हृदयं प्रवेक्ष्यामि परान्दृशः ॥ ९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्रिशूल हाथमें लिये हुए कालके समान उसे आता हुआ देखकर समयकी गति के जानने वाले तथा मायाधारियों में श्रेष्ठ विष्णु भगवान्ने विचार किया कि मैं जहाँ भी जाऊँगा यह वहीं चला आयेगा और जैसे मृत्यु प्राणियों का पीछा नहीं छोड़ती, वैसे ही यह मेरा पीछा न छोड़ेगा, इस लिये मुझे इस बहिर्दृष्टि वाले के हृदय में ही प्रवेश करना चाहिये ॥८॥९॥

एवं स निश्चित्य रिपोः शरीरमाधावतो निर्वि विशेऽसुरेंद्र । श्वासानिलांतर्हितसूक्ष्मदेहस्तत्प्राण रंध्रेण विविग्नचेताः ॥१०॥

हे दैत्यराज ! ऐसा विचार कर अपने हृदय में थर-थर काँपते हुए विष्णुजी छोटासा रूप बनाकर उस दौड़ते हुए शत्रु के शरीर में श्वांस लेते समय प्राण-छिद्र द्वारा प्रवेश कर गये ॥१०॥

स तन्निकेतं परिमृश्य शून्यमपश्यमानः कुपितो ननाद । क्ष्मां द्यां दिशः खं विवरान्समुद्रान्विष्णुं विचिन्वन्न ददर्श वीरः ॥११॥

तब हिरण्य कश्यप ने वैकुण्ठ को शून्य देख, विचार करके, क्रोध-पूर्वक गर्जना की, फिर उसने स्वर्ग, पृथिवी, दिशा, आकाश, पाताल और समुद्र सर्वत्र ढूंढा, पर विष्णुजी उसे न मिले ॥११॥

अपश्यन्निति होवाच मयाऽन्विष्टमिदं जगत् । भ्रातृहा मे गतो नूनं यतो नावर्तते पुमान ॥१२॥

जब उसने विष्णु जी को कहीं भी न देखा,तब वह इस प्रकार कहने लगा कि–मैंने समस्त जगत् देख डाला, परन्तु उसका कहीं पता नहीं लगा, इससे जान पड़ता है कि मेरे भाई का मारने वाला ऐसी जगह गया हुआ है, जहाँ से कोई लौट कर नहीं आता, अर्थात् वह मर गया है ॥१२॥

वैरानुबंध एतावानामृत्योरिह देहिनाम् । अज्ञानप्रभवो मन्युरहंमानोपबृंहितः ॥१३॥

इस संसार में वीरों का वैर-सम्बन्ध केवल मरने तक ही रहता है, अज्ञान नष्ट होने से पहले पुरुषार्थ का त्याग कर देना भी निर्बलता ही है, क्योंकि क्रोध अज्ञान से उत्पन्न होता है ॥१३॥

पिता प्रह्लादपुत्रस्ते तद्विद्वान्द्विजवत्सलः । स्वमायुर्द्विजलिंगेभ्यो देवेभ्योऽदात् स याचितः१४

तुम्हारे पिता विरोचन को ब्राह्मणों के प्रति इतनी दया थी कि उन्होंने ब्राह्मणों के वेष में आये हुए देवताओं को जानकर भी उनके माँगने पर अपनी आयु दे दी ॥१४॥

भवानाचरितान्धर्मानास्थितो गृहमेधिभिः । ब्राह्मणैः पूर्वजैः शूरैरन्यैश्चोदामकीर्तिभिः ॥१५॥

हे राजन् ! तुम भी अपने शूरवीर पूर्वजों ब्राह्मण तथा दूसरे उदार-कीर्त्ति गृहस्थों के आचरित धर्मों पर चला करते हो ॥१५॥

तस्मात्त्वत्तो महीमीषद्वृणेऽहं वरदर्षभात् । पदानि त्रीणि दैत्येंद्र संमितानि पदा मम ॥१६॥

इसलिये वर देने वालों में श्रेष्ठ आपसे मैं थोड़ी सी पृथिवी माँगता हूँ, हे दैत्येन्द्र ! वह भी केवल तीन डग चाहिये ॥१६॥

नान्यत्ते कामये राजन्वदान्याज्जगदीश्वरात् । नैनः प्राप्नोति वै विद्वान्यावदर्थपरिग्रहः ॥१७॥

हे राजन् ! तुम ऐसे जगत् के स्वामी से भी मैं और इच्छा नहीं करता, मेरा तो केवल इतना ही प्रयोजन है, क्यों कि जो विद्वान् आवश्यकता के अनुसार ही संग्रह करताहै,उसे पाप नहीं लगता॥

बलिरुवाच

अहो ब्राह्मणदायाद वाचस्ते वृद्धसंमताः । त्वं बालो बालिशमतिः स्वार्थं प्रत्यबुधो यथा १८

बलि बोला कि–हे ब्राह्मण कुमार ! तुम्हारी बातें तो वृद्ध पुरुषों की भाँति हैं; परन्तु तुम अब तक बाल-स्वभाव से मूर्ख ही हो और अपने स्वार्थ को नहीं जानते ॥१८॥

मां वचोभिः समाराध्य लोकानामेकमीश्वरम् । पदत्रयं वृणीते योऽबुद्धिमान् द्वीपदाशुषम् ॥१९॥

तुम मुझ ऐसे लोकेश्वर से कि जो द्वीप दे सकता है, केवल तीन डग पृथिवी माँगते हो, यही तुम्हारी मूर्खता है ॥१९॥

न पुमान् मामुपव्रज्य भूयो याचितुमर्हति । तस्माद्वत्तिकरीं भूमिं बटो कामं प्रतीच्छ मे॥२०॥

मेरे पास आकर मनुष्य फिर याचना करने के योग्य नहीं रहता, इसलिये हे बटुक ! जितनी पृथिवी से तुम्हारी जीविका भले प्रकार चल सके, उतनी पृथिवी मुझसे इच्छानुसार ले लो ॥२०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीभगवानुवाच

यावंतो विषयाः प्रेष्ठास्त्रिलोक्यामजितेंद्रियम् ।
न शक्नुवंति ते सर्वे प्रतिपूरयितुं नृप ॥२१॥

श्रीभगवान् बोले कि-हे राजन्! तीनों लोकों में जितने प्रिय विषय हैं, यदि वे सभी किसी एक ही अजितेन्द्रिय मनुष्य को मिल जाँय, तो भी उसकी कामना पूर्ण नहीं हो सकती ॥२१॥

त्रिभिः क्रमैरसंतुष्टो द्वीपेनापि न पूर्यते ।
नववर्षसमेतेन सप्तद्वीपवरेच्छया ॥२२॥

जो तीन डग पृथिवी पाकर सन्तुष्ट न होगा, वह द्वीप पाकर भी क्या तृप्त हो सकेगा? क्योंकि द्वीप मिलने पर फिर सप्तद्वीपों सहित नवों खण्डों की इच्छा होगी ॥२२॥

सप्तद्वीपाधिपतयो नृपा वैन्यगयादयः ।
अर्थकामैर्गता नांतं तृष्णाया इति नः श्रुतम्॥२३॥

मैंने सुना है कि पृथु और गय आदि राजाओं का सातों द्वीपों में राज्य था, फिर भी उन्होंने धन और विषय-सुख की तृष्णा से अन्त नहीं पाया ॥२३॥

यदृच्छयोपपन्नेन संतुष्टो वर्तते सुखम् ।
नासंतुष्टस्त्रिभिर्लोकैरजितात्मोपसादितैः ॥२४॥

सन्तोषी पुरुष दैवेच्छा से मिले हुए धन पर सुखी रहता है, परन्तु अजितेन्द्रिय पुरुष को चाहे त्रिलोकी का राज्य भी क्यों न मिल जाय, वह कभी सुखी नहीं रह सकता ॥२४॥

पुंसोऽयं संसृतेर्हेतुरसंतोषोऽर्थकामयोः ।
यदृच्छयोपपन्नेन संतोषो मुक्तये स्मृतः ॥२५॥

अर्थ और काम में सन्तोष न होने के कारण संसार से मुक्ति नहीं मिल सकती, परन्तु यदृच्छा से मिले हुए पर सन्तोष करना मोक्ष का द्वारा है॥

यदृच्छालाभतुष्टस्य तेजो विप्रस्य वर्धते ।
तत्प्रशाम्यत्यसंतोषादं भसेवाशुशुक्षणिः ॥२६॥

दैवेच्छा से मिले हुए लाभ पर सन्तुष्ट रहने वाले ब्राह्मण का तेज बढ़ता है, परन्तु असन्तोष से तेज नष्ट हो जाता है, जैसे कि अग्नि जल से बुझ जाती है ॥२६॥

तस्मात्त्रीणि पदान्येव वृणे त्वद्वरदर्षभात् ।
एतावतैव सिद्धोऽहं वित्तं यावत्प्रयोजनम् ॥ २७॥

इसीलिये वरदाताओं में श्रेष्ठ मैं तुझसे तीन डग पृथिवी माँगताहूँ, क्योंकि प्रयोजन के अनुसार धन रखने से ही सुख होता है, अधिक से नहीं, मेरा प्रयोजन इतने ही में सिद्ध हो जायगा ॥२७॥

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तः स हसन्नाह वांछतः प्रतिगृह्यताम् ।
वामनाय महीं दातुं जग्राह जलभाजनम् ॥२८॥

श्रीशुकदेव जी बोले कि-तब बलि ने हँसकर कहा कि-अच्छी बात, आपकी जितनी इच्छा है, उतना ही ले लीजिये, ऐसा कहकर उसने वामनजी को पृथिवी देने के लिये जलका पात्र हाथ में लिया॥

विष्णवे क्ष्मां प्रदास्यंतमुशना असुरेश्वरम् ।
जानंश्चिकीर्षितं विष्णोः शिष्यं प्राह विदां वरः२९

उसी समय वेद ज्ञाताओं में श्रेष्ठ शुक्राचार्य ने विष्णुजी का भाव समझकर अपने शिष्य दैत्य-राज बलि से कहा ॥२९॥

शुक्राचार्य उवाच

एष वैरोचने साक्षाद्भगवान् विष्णुरव्ययः ।
कश्यपाददितेर्जातो देवानां कार्यसाधकः ॥३०॥

शुक्राचार्य जी बोले कि-हे बलि! यह अव्यय स्वरूप साक्षात् विष्णु भगवान् हैं और देवों का कार्य सिद्ध करने के लिये कश्यपजीके यहाँ अदिति से उत्पन्न हुए हैं ॥ ३० ॥

प्रतिश्रुतं त्वयैतस्मै यदनर्थमजानता ।
न साधु मन्ये दैत्यानां महानुपगतोऽनयः ॥३१॥

तूने बड़ा ही बुरा किया है, जो अनर्थको सोचे बिना ही पृथिवी देने की प्रतिज्ञा कर डाली है, इसमें मैं दैत्यों का भला नहीं देखता; उनके प्रति यह घोर अन्याय आ पड़ा है ॥३१॥

एष ते स्थानमैश्वर्यश्रियं तेजो यशः श्रुतम् ।
दास्यत्याच्छिद्य शक्राय मायामाणवको हरिः३२॥

अब यह तेरा स्थान, ऐश्वर्य, धन, तेज और यश लेकर इन्द्र को देंगे, इन्होंने तो माया के द्वारा मनुष्य-रूप धारण किया है ॥३२॥

त्रिभिः क्रमैरिमाँल्लोकान् विश्वकायःक्रमिष्यति ।
सर्वस्वं विष्णवे दत्त्वा मूढ वर्तिष्यसे कथम्॥३३॥

अरे मूर्ख! यह विश्व-रूप तीन डग से तीनों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लोकों को नाप लेंगे, तब तू अपना सर्वस्व विष्णु को देकर निर्वाह कैसे करेगा ?*॥३३॥

क्रमतो गां पदैकेन द्वितीयेन दिवं विभोः ।
खं च कायेन महता तार्तीयस्य कुतो गतिः॥३४॥

यह आकाश तक अपने शरीर को बढ़ाकर एक डग से समस्त पृथिवी को नाप लेंगे और दूसरी डग से आकाश को नाप लेंगे, फिर तीसरी डग के लिये क्या गति होगी ? यह बतला ॥३४॥

निष्ठां ते नरके मन्येह्यप्रदातुः प्रतिश्रुतम् ।
प्रतिश्रुतस्य योऽनीशः प्रतिपादयितुं भवान्॥३५॥

मैं मानता हूँ कि तू अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार दान न दे सकने के कारण नरकमें जायगा, क्योंकि जो कुछ देने की तूने प्रतिज्ञा की है, वह देने की तेरी शक्ति नहीं है ॥३५॥

न तद्दानं प्रशंसंति येन वृत्तिर्विपद्यते ।
दानं यज्ञस्तपः कर्म लोके वृत्तिमतो यतः ॥३६॥

फिर संसार में तो ऐसे दान की प्रतिज्ञा होती है, कि जिसमें अपनी जीविका छिन्न-भिन्न न हो जाय, क्योंकि जिसकी जीविका लगी हुई है; वह पुरुष दान, यज्ञ,तप आदि सभी कर्म कर सकताहै॥

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च ।
पंचधा विभजन् वित्तमिहामुत्र च मोदते ॥३७॥

धन, यश, धन की वृद्धि, शरीर-सुख और परिवार के लिये जो धन के पाँच समान भाग करता है, वह इस लोक तथा परलोक दोनों में आनन्द पाता है ॥३७॥

अत्रापि बह्वृचैर्गीतं शृणु मेऽसुरसत्तम ।
सत्यमोमिति यत् प्रोक्तं यन्नेत्याहानृतं हि तत्॥३८

हे दैत्यों में श्रेष्ठ ! इस विषय में जैसी ऋग्वेद वालों ने व्यवस्था कही है, वह मैं तुझसे कहता हूँ. तू सुन, जो स्वीकार किया जाय, उसका पालन करना सत्य है और स्वीकार की हुई बातको पालन न करना ही असत्य है ॥३८॥

सत्यं पुष्पफलं विद्यादात्मवृक्षस्य गीयते ।
वृक्षेऽजीवति तन्न स्यादनृतं मूलमात्मनः ॥३९॥

देह-रूपी वृक्ष के लिये सत्य फल-फूल रूप है, परन्तु ये फल-फूल भी तभी रह सकते हैं, जब कि देह-रूपी वृक्ष बना रहेगा, इसलिये देह को झूंठ बोलकर भी बचा लेना चाहिये, क्योंकि देह का मूल ही असत्य है* (अर्थात् असत् पदार्थों द्वारा ही देह बनी है) ॥३९॥

तद्यथा वृक्ष उन्मूलः शुष्यत्युद्वर्ततेऽचिरात् ।
एवं नष्टानृतः सद्य आत्मा शुष्येन्न संशयः ॥४०॥

जैसे उखड़ी हुई जड़ का वृक्ष सूख जाता है और थोड़ी ही देर में उखड़ जाता है, वैसे ही यदि असत्य नाम-मात्रको भी न रहे, तो शरीर बिलकुल सूख जाय, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥४०॥

पराग्रिक्तमपूर्णं वा अक्षरं यत् तदोमिति ।
यत्किंचिदोमिति ब्रूयात् तेन रिच्येत वै पुमान्॥४१॥

"हाँ"—यह अक्षर धन को अलग करने वाला तथा धनी को धन से रहित करने वालाहै, क्योंकि जिस वस्तु को देने के लिये "हाँ" कह दिया जाता है, मनुष्य को उस वस्तु से रहित होना पड़ता है॥

भिक्षवे सर्वमोंकुर्वन्नालं कामेन चात्मने ।
अथैतत्पूर्णमभ्यात्मं यच्च नेत्यनृतं वचः ।
सर्वं नेत्यनृतं ब्रूयात्स दुष्कीर्तिः श्वसन्मृतः ॥४२॥

जो मनुष्य भिक्षुकके लिये सर्वस्व देना स्वीकार कर लेता है, वह अपने आप को भी सुख नहीं दे सकता, उसी प्रकार "नहीं" यह असत्य शब्द दूसरों के भी धन को खींचने वाला है और धनको व्यय से बचाकर धनी पुरुष को परिपूर्ण रखने वाला है ॥ ४२ ॥

स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्त्यर्थे प्राणसंकटे ।
गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम्॥४३

स्त्रियों के पास, हास्य-विनोद में, विवाह में, जीविका के लिये, प्राण बचाने तथा गौ, ब्राह्मण के हित के लिये और जहाँ सत्य बोलने से किसी का वध होता हो, ऐसे अवसर पर झूंठ बोलने का अपराध नहीं है ॥४३॥

---

* शुक्राचार्य का वचन—

यही हैं जिन्होंने वध किया हिरण्याक्ष का था ।
लिये थे बहाने भूमि हरने धरम के ॥
यही हैं जिन्होंने नरसिंह रूप धार यहाँ ।
मार हिरण्य कश्यप मुंह मोड़े भरम के॥
छला था इन्हीं ने छल-रूप धार हरिश्चन्द ।
सीधा मत जानो यह घर हैं छदम के॥
ना जाने कितने जन छल डाले इसी भाँति ।
राजन् ! भगवान् भी हैं छलिया जनम के॥

इति श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बीसवां अध्याय

(विश्वरूप-दर्शन)

श्रीशुक उवाच

बलिरेवं गृहपतिः कुलाचार्येण भाषितः ।
तूष्णीं भूत्वा क्षणं राजन्नुवाचावहितो गुरुम्॥ १॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! इसप्रकार कुलाचार्य शुक्रजीका कहाहुआ वचन सुनकर पृथ्वीपति राजा बलि एक क्षणतक चुप रहने के पश्चात् फिर सावधान होकर गुरु से बोला ॥१॥

बलिरुवाच

सत्यं भगवता प्रोक्तं धर्मोऽयं गृहमेधिनाम् ।
अर्थं कामं यशो वृत्तिं यो न बाधेत कर्हिचित्॥२॥

बलि बोला-हे गुरो ! आपने सत्य कहा है, गृहस्थों का कर्तव्य यही है कि अर्थ, काम, यश और वृत्ति का नाश करने वाला काम न करें ॥२॥

स चाहं वित्तलोभेन प्रत्याचक्षे कथं द्विजम् ।
प्रतिश्रुत्य ददामीति प्राह्रादिः कितवो यथा॥ ३ ॥

परन्तु मैं प्रह्लाद का वंशज होकर 'मैं दूँगा'-इस प्रकार प्रतिज्ञा करके धनके लोभसे अब ब्राह्मण के साथ कपटी पुरुषकी भांति कैसे पलट जाऊँ ?

न ह्यसत्यात्परोऽधर्म इति होवाच भूरियम् ।
सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीकपरं नरम् ॥ ४ ॥

इस पृथ्वी ने भी कहा है कि मैं समस्त भार उठा सकती हूँ, परन्तु एक झूठे आदमी का भार नहीं सह सकती, क्योंकि असत्य से बढ़कर कोई अधर्म नहीं है ॥४॥

नाहं बिभेमि निरयान्नाधन्यादसुखार्णवात् ।
न स्थानच्यवनान्मृत्योर्यथा विप्रप्रलंभनात् ॥ ५ ॥

मैं इतना नरकसे नहीं डरता और न दरिद्रता, दुःखसागर; पद-हीनता या मृत्युसे डरताहूँ,जितना ब्राह्मण के साथ छल करने में मुझे डर लगता है ॥

यद्यद्धास्यति लोकेऽस्मिन्संपरेतं धनादिकम् ।
तस्य त्यागे निमित्तं किं विप्रस्तुष्येन्न तेन चेत्॥६॥

यह धन आदि पदार्थ हमारे न छोड़ने पर भी हमें स्वतः मरने पर छोड़ देंगे, फिर उन्हें अपने ही हाथ से क्यों न दे दिया जाय ? दूसरे यदि दिया भी और उससे ब्राह्मण प्रसन्न न हुआ तो ऐसा देना ही किस काम का ? ॥ ६ ॥

श्रेयः कुर्वंति भूतानां साधवो दुस्त्यजासुभिः ।
दध्यङ्शिबिप्रभृतयः को विकल्पो धरादिषु ॥ ७ ॥

दधीचिऋषि और राजा शिविआदि सत्पुरुषों ने तो अपने दुस्त्यज (कठिनाई से त्यागने योग्य) प्राणों को त्यागकर प्राणियों का उपकार किया है, फिर पृथ्वी आदि पदार्थ देने में सोच-विचार की क्या आवश्यकता है ? ॥७॥

यैरियं बुभुजे ब्रह्मन्दैत्येंद्रैरनिवर्तिभिः ।
तेषां कालोऽग्रसील्लोकान्न यशोऽधिगतं भुवि ॥८॥

हे ब्रह्मन् ! युद्ध में मुंह न मोड़ने वाले जिन दैत्यराजों ने इस पृथ्वी का भोग किया है, उनके लोक तथा परलोक सम्बन्धी वैभवों को तो काल खा गया परन्तु पृथ्वी पर फैले हुए यश को वह नहीं खा सका ॥८॥

सुलभा युधि विप्रर्षे ह्यनुवृत्तास्तनुत्यजः ।
न तथा तीर्थ आयाते श्रद्धया ये धनत्यजः॥ ९ ॥

हे विप्रर्षि ! युद्धसे मुंह न मोड़कर प्राण त्यागने वाले तो अनेक पुरुष हैं, परन्तु सुपात्र को पाकर उसे श्रद्धासे दान देने वाले बहुत ही कम हैं ॥९॥

मनस्विनः कारुणिकस्य शोभनं यदर्थिकामोदनयेन दुर्गतिः । कुतः पुनर्ब्रह्मविदां भवादृशां ततो बटोरस्य ददामि वांछितम् ॥१०॥

यदि याचक की इच्छा पूर्ण करने में दुर्दशा भी होजाय तो वह दयालु तथा उदार पुरुषों के लिये भलाई ही है, फिर यदि आप ऐसे ब्रह्मवेत्ताओं का मनोरथ पूर्ण करने में यदि दुर्दशा हो तो कहना ही क्याहै, इसलिये मैं इस बटुकको इच्छित दानदूँगा।

यजंति यज्ञं क्रतुभिर्यमादृता भवंत आम्नाय विधानकोविदाः । स एष विष्णुर्वरदोऽस्तु वा परो दास्याम्यमुष्मै क्षितिमीप्सितां मुने ॥११॥

हे मुनि ! आप ऐसे वेद-विधि में निपुण महात्मा भी जिनका यज्ञों के द्वारा आदर-पूर्वक पूजन करते हैं, चाहे यह बटुक वही वर देने वाले विष्णु हों, चाहे कोई दूसरा हो, परन्तु मैं इसे मनोवांछित पृथ्वी दूँगा ॥११॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तदप्यसावधर्मेण मां बध्नीयादनागसम् ।
तथाप्येनं न हिंसिष्ये भीतं ब्रह्मतनुं रिपुम् ॥१२॥

चाहे यह मुझ निरपराधी को अधर्म-पूर्वक बाँध ही क्यों न ले, परन्तु मैं इसको न मारूँगा, क्योंकि इसने शत्रु होते हुए भी डर के मारे ब्राह्मण का वेष बनाया है ॥१२॥

एष वा उत्तमश्लोको न जिहासति यद्यशः ।
हत्वा मैनां हरेद्युद्धे शयीत निहतो मया ॥१३॥

यह उत्तम कीर्त्ति वाले विष्णु भगवान् यदि अपने यशको न छोड़ना चाहते तो युद्ध में मुझे मारकर पृथ्वी को ले जाते, या मैं इन्हें मार कर पृथ्वी पर सुला देता ॥१३॥

श्रीशुक उवाच

एवमश्रद्धितं शिष्यमनादेशकरं गुरुः ।
शशाप दैवप्रहितः सत्यसंधं मनस्विनम् ॥१४॥

श्रीशुकदेवजी बोले–जब बलि ने इस प्रकार से अपने गुरु पर श्रद्धा न रखकर उनका कहना न माना, तब उन्होंने दैवी-प्रेरणासे अपने सत्य प्रतिज्ञ तथा उदार शिष्य बलि को शाप दिया ॥१४॥

दृढं पंडितमान्यज्ञः स्तब्धोऽस्यस्मदुपेक्षया ।
मच्छासनातिगो यस्त्वमचिराद्भ्रश्यसे श्रियः॥१५

शुक्राचार्यजी बोले–हे मूर्ख ! तू अपने को दृढ़ श्रेष्ठ और पण्डित मानता है और मेरी उपेक्षा कर के नम्रता-रहित होकर मेरी आज्ञाका उल्लंघनकरता है, इसलिये तू शीघ्रही लक्ष्मी से भ्रष्ट हो ॥१५॥

एवं शप्तः स्वगुरुणा सत्यान्न चलितो महान् ।
वामनाय ददावेनामर्चित्वोदकपूर्वकम् ॥१६॥

यद्यपि गुरुने इस प्रकार शाप देदिया, फिरभी वह महान् हृदय बलि अपने सत्य से विचलित न हुआ और पूजन करके जलसे संकल्प करता हुआ वामनजी को पृथ्वी देने लगा ॥१६॥

विंध्यावलिस्तदाऽऽगत्य पत्नी जालकमालिनी ।
आनिन्ये कलशं हैममवनेजन्यपां भृतम् ॥१७॥

हे राजन् ! उसी समय मोतियों का हार पहिने हुए विन्ध्या रानी राजा बलि की पत्नी अपने पति के चरण धोने के लिये जलसे भरा हुआ सोने का कलश लिये हुए वहाँ आई ॥१७॥

यजमानः स्वयं तस्य श्रीमत्पादयुगं मुदा ।
अवनिज्यावहन्मूर्ध्नि तदपो विश्वपावनीः ॥१८॥

राजा बलिने अपने हाथोंसे उनके शोभायमान् युगल चरण आनंद-पूर्वक धोये और वह जगत्को पवित्र करनेवाला जल अपने सिरपर धारणकिया ॥

तदासुरेंद्रं दिवि देवतागणा गंधर्वविद्याधरसिद्ध चारणाः । तत्कर्म सर्वेऽपि गृणंत आर्जवं प्रसून वर्षैर्ववृषुर्मुदाऽन्विताः ॥१९॥

उस समय स्वर्ग में खड़े हुए देवता, गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध और चारण राजा बलिकी सिधाई तथा चरित की प्रशंसा करके आनन्द-पूर्वक फूल बरसाने लगे ॥१९॥

नेदुर्मुहुर्दुंदुभयः सहस्रशो गंधर्वकिंपूरुषकिन्नरा जगुः । मनस्विनाऽनेन कृतं सुदुष्करं विद्वानदाद्य द्रिपवे जगत्त्रयम् ॥२०॥

हज़ारों दुन्दुभियां बारंबार बजने लगीं, गंधर्व, किन्नर और किंपुरुष गाने लगे तथा सब कहनेलगे कि राजा बलि ने कितना दुष्कर कर्म किया है जो जान-बूझ कर अपने शत्रुको तीनों लोक देदिये हैं॥

तं वामनं रूपमवर्धताद्भुतं हरेरनंतस्य गुणत्र यात्मकम् । भूः खं दिशो द्यौर्विवराः पयोधस्ति र्यङ्नृदेवा ऋषयो यदासत ॥२१॥

हे राजन् ! संकल्प करतेही श्रीअनन्त भगवान् हरि का वह त्रिगुणात्मक वामन रूप ऐसी विचित्र रीति से बढ़ने लगा कि जिसमें पृथ्वी, आकाश, दिशायें, स्वर्ग, पाताल, समुद्र, पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता और ऋषि भले प्रकार समा रहे थे ॥२१॥

काये बलिस्तस्य महाविभूतेः सहर्विगाचार्य सदस्य एतत् । ददर्श विश्वं त्रिगुणं गुणात्मके भूतेंद्रियार्थाशयजीवयुक्तम् ॥२२॥

उन परम विभूति धारी भगवान् के गुणात्मक शरीरमें ऋत्विज, आचार्य और सभासदोंके सहित राजा बलि ने पञ्चमहाभूत, इन्द्रियाँ, विषय, अन्तः-करण और जीवों के साथ इस त्रिगुणमय समस्त संसार को देखा ॥२२॥

रसामचष्टांघ्रितलेऽथ पादयोर्महीं महीध्रान्पुरुष स्य जंघयोः । पतत्त्रिणो जानुनि विश्वमूर्तेरूर्वोर्गणं मारुतमिंद्रसेनः ॥२३॥

राजा बलिने विराट प्रभुके चरणतल में पाताल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चरणों में पृथ्वी, जंघाओं में पर्वत, घुटनों में पक्षी और पवन का समूह देखा ॥२३॥

संध्यां विभोर्वाससि गुह्य ऐक्षत्प्रजापतीञ्जघने आत्ममुख्यान् । नाभ्यां नभः कुक्षिषु सप्तसिंधूनुरुक्रमस्योरसि चर्क्षमालाम् ॥२४॥

भगवान्के नेत्रोंमें संध्या देखी;गुह्य-भागमें प्रजापति, जंघाओंमें बलि आदि दैत्य, नाभिमें आकाश, कुक्षि में सातों समुद्र और वक्षःस्थल में नक्षत्र-माला देखी ॥२४॥

हृद्यंग धर्मं स्तनयोर्मुरारेर्ऋतं च सत्यं च सत्यं च मनस्यथेंदुम् । श्रियं च वक्षस्यरविंदहस्तां कंठे च सामानि समस्तरेफान ॥२५॥

हे राजन् ! भगवान् के हृदय में धर्म, स्तनों में ऋत और सत्य, मनमें चन्द्रमा, वक्षःस्थलमें कमल को हाथ में लिये हुए लक्ष्मी और कण्ठ में साम तथा उसके शब्द देखे ॥२५॥

इंद्रप्रधानानमरान्भुजेषु तत्कर्णयोः ककुभो द्यौश्च मूर्ध्नि । केशेषु मेघाञ्छ्वसनं नासिकायामक्ष्णोश्च सूर्यं वदने च वह्निम् ॥२६॥

भुजाओं में इन्द्र आदि देवता, कानोंमें दिशायें मस्तक में स्वर्ग, केशोंमें मेघ, नासिकामें पवन, नेत्रों में सूर्य और मुख में अग्नि ॥२६॥

वाण्यां च छन्दांसि रसे जलेशं भ्रुवोर्निषेधं च विधिं च पक्ष्मसु । अहश्च रात्रिं च परस्य पुंसो मन्युं ललाटेऽधर एव लोभम् ॥२७॥

वाणी में छंद, जिह्वामें वरुण, भृकुटि में विधि-निषेध, पलकों में रात दिन, ललाट में क्रोध और भगवान् के अधरमें लोभ देखा ॥२७॥

स्पर्शे च कामं नृप रेतसोऽभः पृष्ठे त्वधर्मं क्रमणेषु यज्ञम् । छायासु मृत्युं हसिते च मायां तनूरुहेष्वोषधिजातयश्च ॥२८॥

हे राजन् ! उनके स्पर्श में काम, शुक्र (वीर्य) में जल, पीठ में अधर्म, डग रखने में यज्ञ, छाया में मृत्यु,हास्यमें माया और रोमोंमें समस्त औषधियां।

नदीश्च नाडीषु शिला नखेषु बुद्धावजं देवगणान् ऋषींश्च । प्राणेषु गात्रे स्थिरजंगमानि सर्वाणि भूतानि ददर्श वीरः ॥२९॥

नाड़ियों में नदियां नखों में शिलायें, बुद्धि में ब्रह्मा, प्राणों में देवता तथा ऋषि-वृन्द और अङ्गोंमें उस वीर (बलि) ने समस्त चराचर जीव देखे ॥

सर्वात्मनीदं भुवनं निरीक्ष्य सर्वेऽसुराः कश्मल मापुरंग । सुदर्शनं चक्रमसह्यतेजो धनुश्च शार्ङ्गं स्तनयित्नुघोषम् ॥३०॥

हे राजन् ! सर्वात्मा भगवान् के स्वरूप में इस जगत् को देखकर सब दैत्य मोहित होगये और असह्य तेज सुदर्शन चक्र, बिजली की कड़क के समान शब्द वाला शार्ङ्ग धनुष ॥३०॥

पर्जन्यघोषो जलजः पांचजन्यः कौमोदकी विष्णु गदा तरस्विनी । विद्याधरोऽसिः शतचंद्रयुक्तस्तूणोत्तमावक्षयसायकौ च ॥३१॥

सुनंदमुख्या उपतस्थुरीशं पार्षदमुख्याः सह लोकपालाः ।स्फुरत्किरीटांगदमीनकुंडलः श्रीवत्स रत्नोत्तममेखलांबरैः ॥३२॥

मधुव्रतस्रग्वनमालया वृतो रराज राजन्भगवानुरुक्रमः । क्षितिं पदैकेन बलेर्विचक्रमे नभः शरीरेण दिशश्च बाहुभिः ॥३३॥

पदं द्वितीय क्रमतस्त्रिविष्टपं न वै तृतीयाय तदीयमण्वपि । उरुक्रमस्यांघ्रिरुपर्युपर्यथो महर्जनाभ्यां तपसः परं गतः ॥३४॥

बड़ी ही फुर्तीली भगवान् की कौमोदकी नाम्नी गदा, सौ चन्द्रमाओं सहित विद्याधर नामक खड्ग, अक्षय तीरों वाले उत्तम दो तरकश और सुनन्द, नन्द आदि पार्षद–यह सब भगवान् के पास आ पहुंचे, हे राजन् ! उस समय भगवान् के किरीट, बाजूबन्द, मकराकृत कुण्डल जगमगा रहे थे, श्रीवत्स का चिह्न, कौस्तुभ मणि, कटि मेखला, सुन्दर पीतवस्त्र और भ्रमरोंसे गुञ्जारमान बनमाल धारण किये हुए श्रीवामन भगवान् अत्यन्त शोभा दे रहे थे, उन्होंने एक डग से तो पृथ्वी नापली, आकाश और दिशाओंको शरीर तथा भुजाओंसे नापलिया, अब तीसरी डग के लिये उसके पास कुछ भी शेष न रहा, उन उरुक्रम भगवान् का चरण ऊपर की ओर जाते-जाते महर्लोक, जनलोक और तपलोक से भी आगे चला गया ॥३१॥३२॥३३॥३४॥

इति श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इक्कीसवां अध्याय

(बलि-बन्धन)

श्रीशुक उवाच

सत्यं समीक्ष्याब्जभवो नखेंदुभिर्हतस्वधामद्युति राबृतोऽभ्यगात्। मरीचिमिश्रा ऋषयो बृहद्व्रताः सनंदनाद्या नरदेव योगिनः ॥ १ ॥

वेदोपवेदा नियमान्विता यमास्तर्केतिहासांग पुराणसंहिताः। ये चापरे योगसमीरदीपितज्ञानाग्निना रंधितकर्मकल्मषाः। ववंदिरे यत्स्मरणानुभावतः स्वायंभुवं धाम गता अकर्मकम् ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन्! जब भगवान् का चरण सत्यलोक में पहुंचा और उसके नखरूपी चन्द्रमाओं के प्रकाश से ब्रह्माजीके भवनकी कान्ति फीकी पड़गई और वे भी नख-चन्द्रों से ढक गये, तब वे मरीचि आदि ऋषि, सनत्कुमार आदि नैष्ठिक ब्रह्मचारी, योगीजन, वेद, उपवेद, नियम, यम, तर्क, इतिहास, वेदांग, पुराण और उनकी संहितायें तथा दूसरे ऐसे पुरुष कि जिनके कर्मोंका दोष, योगरूपी वायु से प्रदीप्त हुए ज्ञानरूपी अग्नि से भस्म होगये हैं, ये सभी भगवान् के चरणों के निकट आकर उन्हें प्रणाम करने लगे कि जिनके स्मरण के प्रभाव से कर्म द्वारा प्राप्त न होने वाला ब्रह्मलोक उन्होंने पाया था ॥१॥२॥

अथांघ्रये प्रोन्नमिताय विष्णोरुपाहरत्पद्मभवो ऽर्हणोदकम्। समर्च्य भक्त्याऽभ्यगृणाच्छुंचिश्रवा यन्नाभिपंकेरुहसंभवः स्वयम् ॥ ३ ॥

फिर उत्तम कीर्त्तिवाले ब्रह्माजीने विष्णुभगवान् कि जिनकी नाभि के कमल से वे उत्पन्न हुए हैं, के बढ़े हुए चरण कमल की जल से पूजा की और भक्ति सहित स्तुति की ॥३॥

धातुः कमंडलुजलं तदुरुक्रमस्य पादावनेजन पवित्रतया नरेंद्र। स्वर्धुन्यभून्नभसि सापतती निमार्ष्टि लोकत्रयं भगवतो विशदेव कीर्तिः ॥ ४ ॥

हे राजन्! ब्रह्माजी के कमण्डल का जल, जो कि भगवान् के चरण धोने से पवित्र हुआ, गङ्गाजी के नाम से प्रख्यात होगया, जो गङ्गाजी भगवान्की शुद्ध कीर्त्तिरूप आकाश से गिरती हुई त्रिलोकी को पवित्र करती हैं ॥४॥

ब्रह्मादयो लोकनाथाः स्वनाथाय समाहृताः। सानुगा बलिमाजह्रुः संक्षिप्तात्मविभूतये ॥ ५ ॥

ब्रह्मादिक लोकनाथों ने अपने-अपने अनुचरोंके साथ उन भगवान् वामनजी को भेंटें दी कि जो अपने विराट स्वरूप के विस्तार को समेटकर फिर वामनरूप कर चुके थे ॥५॥

तोयैः समर्हणैः स्रग्भिर्दिव्यगंधानुलेपनैः। धूपैर्दीपैः सुरभिर्लाजाक्षतफलांकुरैः ॥ ६ ॥

और जल, उत्तम द्रव्य, दिव्य गंधका अरगजा धूप, दीप, नैवेद्य, सुगन्धित धान की लाई, अक्षत, फल, अंकुर आदि भेंट किये ॥६॥

स्तवनैर्जयशब्दैश्च तद्वीर्यमहिमांकितैः। नृत्यवादित्रगीतैश्च शंखदुंदुभिनिःस्वनैः ॥ ७ ॥

भगवान् के चरित्रोंकी महिमासे भरे हुए दिव्य स्तोत्र, जय, नृत्य, गीत, बाजे, शंख और दुन्दुभी के शब्दों से भगवान् का सत्कार किया ॥७॥

जांबवान्ऋक्षराजस्तु भेरीशब्दैर्मनोजवः। विजयं दिक्षु सर्वासु महोत्सवमघोषयत् ॥ ८ ॥

मनके समान वेगवान् रीछों के राजा जामवंत ने भेरी बजाकर, बड़े ही समारोह के साथ सब दिशाओं में विजय की डौंड़ी पीटी ॥८॥

महीं सर्वां हृतां दृष्ट्वा त्रिपदव्याजयाच्ञया। ऊचुः स्वभर्तुरसुरा दीक्षितस्यात्यमर्षिताः ॥ ९ ॥

तीन डग मांगने के बहाने से भगवान् ने बलि की सब पृथ्वी हरली, यह देखकर अपने दीक्षित स्वामी (बलि) पर क्रोध करके सब दैत्यों ने कहा ॥

न वा अयं ब्रह्मबंधुर्विष्णुर्मायाविनां वरः। द्विजरूपप्रतिच्छन्नो देवकार्यं चिकीर्षति ॥ १० ॥

यह ब्राह्मण नहीं है, यह तो माया करने वालों का शिरोमणि विष्णु है, यह ब्राह्मणों का वेष बना कर गुप्तरूपसे देवोंका कार्य करना चाहता है ॥१०॥

अनेन याचमानेन शत्रुणा बटुरूपिणा। सर्वस्वं नो हृतं भर्तुर्न्यस्तदंडस्य बर्हिषि ॥ ११ ॥

इस शत्रु ने ब्रह्मचारी का वेष बनाकर, याचना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करके अपने स्वामीका सर्वस्व हर लियाहै कि जिस ने यज्ञमें सब प्रकारके दण्ड का त्याग करदियाहै ॥

सत्यव्रतस्य सततं दीक्षितस्य विशेषतः ।
नानृतं भवितुं शक्यं ब्रह्मण्यस्य दयावतः ॥१२॥

सत्य सन्ध, दीक्षित, ब्राह्मणों के भक्त और दयालु हमारे यह स्वामी बलि कभी झूंठ नहीं बोल सकते ॥ १२ ॥

तस्मादस्य वधो धर्मो भर्तुः शुश्रूषणं च नः ।
इत्यायुधानि जगृहुर्बलेरनुचराऽसुराः ॥१३॥

इसलिये इस वामन का मार डालना ही इस समय हम लोगों का धर्म तथा स्वामी की सेवा है, ऐसा विचार कर के बलि के अनुचर दैत्यों ने हथियार उठाये ॥१३॥

ते सर्वे वामनं हंतुं शूलपट्टिशपाणयः ।
अनिच्छतो बले राजन्प्राद्रवञ्जातमन्यवः ॥१४॥

वे सब राजा बलि की स्वीकृति बिना ही क्रोध पूर्वक त्रिशूल और पट्टिश हाथों में लेकर वामनजी को मारने के लिये दौड़े ॥१४॥

तानभिद्रवतो दृष्ट्वा दितिजानीकपान्नृप ।
प्रहस्यानुचरा विष्णोः प्रत्यषेधन्नुदायुधाः ॥१५॥

हे राजन् ! उन दैत्यपतियोंको दौड़ाहुआ आते देखकर भगवान् विष्णुके पार्षदों ने शस्त्र उठा कर उनको हँसते-हँसते रोक दिया ॥१५॥

नंदः सुनंदोऽथ जयो विजयः प्रबलो बलः ।
कुमुदः कुमुदाक्षश्च विष्वक्सेनः पतत्रिराट् ॥१६॥
जयंतः श्रुतदेवश्च पुष्पदंतोऽथ सात्वतः ।
सर्वे नागायुतप्राणाश्चमूं ते जघ्नुरासुरीम् ॥१७॥

नन्द, सुनन्द, जय, विजय, प्रबल, बल, कुमुद, कुमुदाक्ष, विष्वक्सेन, गरुड़, जयन्त, श्रुतदेव, पुष्पदन्त, सात्वत्-यह सभी दस हज़ार हाथियों का बल धारण किये हुए दैत्यों की सेना का संहार करने लगे ॥१६॥१७॥

हन्यमानान्स्वकान्दृष्ट्वा पुरुषानुचरैर्बलिः ।
वारयामास संरब्धान्काव्यशापमनुस्मरन् ॥१८॥

भगवान्के पार्षदोंद्वारा तिरस्कार पायेहुए क्रोध युक्त अपने दैत्यों को देखकर शुक्राचार्य के शापको सोचकर राजा बलि ने उनको रोका ॥१८॥

बलि उवाच

हे विप्रचित्ते हे राहो हे नेमे श्रूयतां वचः ।
मा युध्यत निवर्तध्वं न नः कालोऽयमर्थकृत् ॥१९॥

बलि बोला-हे विप्रचित्ति ! हे राहु ! हे नेमे ! मेरी बात सुनो, अभी यह समय हम लोगोंके अनुकूल नहीं है, इसलिये तुम सब पीछे लौट जाओ और युद्ध न करो ॥१९॥

यः प्रभुः सर्वभूतानां सुखदुःखोपपत्तये ।
तं नातिवर्तितुं दैत्याः पौरुषैरीश्वरः पुमान् ॥२०॥

हे दैत्यो ! जो सब जीवों को सुख-दुःख देनेकी शक्ति रखताहै, उस कालकी कोई भी मनुष्य अपने पुरुषार्थ द्वारा अवहेलना नहीं कर सकता ॥२०॥

यो नो भवाय प्रागासीदभवाय दिवौकसाम् ।
स एव भगवानद्य वर्तते तद्विपर्ययम् ॥२१॥

जो काल पहले हमारा हित तथा देवताओं का हित करने वाला था, वही दैव आज विपरीत हो गया है ॥२१॥

बलेन सचिवैर्बुद्ध्या दुर्गैर्मंत्रौषधादिभिः ।
सामादिभिरुपायैश्च कालं नात्येति वै जनः ॥२२॥

बल, मन्त्री, बुद्धि, गढ़, सम्मति, औषधि और साम आदि उपाय करने पर भी मनुष्य दैवगति का उल्लंघन नहीं कर सकता ॥२२॥

भवद्भिर्निर्जिता ह्येते बहुशोऽनुचरा हरेः ।
दैवेनर्द्धैस्त एवाद्य युधि जित्वा नदंति नः ॥२३॥

तुमने इन विष्णुके पार्षदोंको कईवार जीतलिया है, परन्तु आज यही दैवगतिसे उन्नति पाकर तुम्हें जीतते हुए संग्राम में गरज रहे हैं ॥२३॥

एतान्वयं विजेष्यामो यदि दैवं प्रसीदति ।
तस्मात्कालं प्रतीक्षध्वं यो नोऽर्थत्वाय कल्पते ॥२४॥

जब दैव अनुकूल होगा तब हमलोग फिर इन्हें जीत लेंगे, इसलिये अनुकूल समय आने की प्रतीक्षा करो ॥२४॥

श्रीशुक उवाच

पत्युर्निगदितं श्रुत्वा दैत्यदानवयूथपाः ।
रसां निविविशू राजन्विष्णुपार्षदताडिताः ॥२५॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! भगवान् विष्णु के पार्षदों द्वारा मार खाते हुए दैत्य तथा दानवों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के पतियों ने अपने स्वामीका वचन सुनकर पाताल का मार्ग लिया ॥२५॥

अथ तार्क्ष्यसुतो ज्ञात्वा विराट्प्रभुचिकीर्षितम् ।
बबंध वारुणैः पाशैर्बलिं सौत्येऽहनि क्रतौ ॥२६॥

फिर पक्षिराज गरुड़ने भगवान्का भाव समझ कर यज्ञ में सोमाभिषेक के दिन राजा बलि को वरुण-पाश से बाँध लिया ॥ २६ ॥

हाहाकारो महानासीद्द्योदस्योः सर्वतो दिशम् ।
गृह्यमाणेऽसुरपतौ विष्णुना प्रभविष्णुना ॥२७॥

जब विष्णुजी ने दैत्यपति राजा बलि को बाँध लिया; तब स्वर्ग और पृथ्वी में महान् हाहाकार मच गया ॥ २७ ॥

तं बद्धं वारुणैः पाशैर्भगवानाह वामनः ।
नष्टश्रियं स्थिरप्रज्ञमुदारयशसं नृप ॥२८॥

वरुण-पाश में बँधे हुए, श्री-हीन, स्थिर बुद्धि और उदार यश वाले राजा बलि से श्री वामन भगवान् ने यह कहा ॥२८॥

पदानि त्रीणि दत्तानि भूमेर्मह्यं त्वयाऽसुर ।
द्वाभ्यां क्रांता मही सर्वा तृतीयमुपकल्पय ॥२९॥

हे दैत्य ! तूने मुझे तीन डग देने को कहा है, उनमें से दो डगमें तो मैंने तेरी सब पृथ्वी दबाली है, अब तीसरी डग और दे ॥२९॥

यावत्तपत्यसौ गोभिर्यावदिंदुः सहोडुभिः ।
यावद्वर्षति पर्जन्यस्तावती भूरियं तव ॥३०॥

जितनी दूर तक सूर्य अपनी किरणों से प्रकाश करता है, जितनी दूर तक चन्द्रमा नक्षत्रों के साथ प्रकाश करताहै, तथा जितनी दूर तक मेघ बरसते हैं, उतनी दूर तक तेरी पृथ्वी है ॥३०॥

पदैकेन मया क्रांतो भूर्लोकः खं दिशस्तनोः ।
स्वर्लोकस्तु द्वितीयेन पश्यतस्ते स्वमात्मना ॥३१॥

तूने देखा, कि मैंने एक डग से तो भूलोक को दबा लिया और मेरे व्यापक शरीर ने आकाश व दिशायें दबालीं तथा दूसरे डग से तेरा सर्वस्वरूप स्वर्ग दबा लिया ॥३१॥

प्रतिश्रुतमदातुस्ते निरये वास इष्यते ।
विश त्वं निरयं तस्माद्गुरुणा चानुमोदितः ॥३२॥

हे राजा बलि ! तूने प्रतिज्ञा करके भी पूर्णदान नहीं दिया, इसलिये तुझे नरक मिलना चाहिये, इसमें तेरे गुरू की भी सम्मति है, अस्तु तू नरक को जा ॥ ३२ ॥

वृथा मनोरथस्तस्य दूरे स्वर्गः पतत्यधः ।
प्रतिश्रुतस्यादानेन योऽर्थिनं विप्रलंभते ॥३३॥

जो प्रतिज्ञा करके भी नहीं देता वरन् याचकों को छलता है, उसका सब मनोरथ व्यर्थ है, वह स्वर्गके बदले उल्टा नरकमें गिरता है ॥३३॥

विप्रलब्धो ददामीति त्वयाहं चाढ्यमानिना ।
तद्व्यलीकफलं भुंक्ष्व निरयं कतिचित्समाः ॥३४॥

तूने धनी होने का अभिमान करके देने की प्रतिज्ञा करके भी मुझसे छल किया है, इसलिये इस झूठ बोलने के फल-स्वरूप कितने ही वर्षों तक नरक का भोग कर ॥३४॥

इति श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

बाईसवां अध्याय

(बलि का सुतल-लोक प्रस्थान)

श्रीशुक उवाच

एवं विप्रकृतो राजन्बलिर्भगवताऽसुरः ।
भिद्यमानोऽप्यभिन्नात्मा प्रत्याहाविक्लवं वचः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! भगवान् ने इस प्रकार से बलि दैत्य का अहित किया और उसे धैर्य से विचलित करना चाहा, परन्तु बलि इसपर भी अपने धीरज से न डिग कर दृढ़ता-पूर्ण यह वचन कहने लगा ॥१॥

बलि उवाच

यद्युत्तमश्लोक भवान्ममेरितं वचोऽव्यलीकं सुरवर्य मन्यते ।
करोम्यृतं तन्न भवेत्प्रलंभनं पदं तृतीयं कुरुशीर्ष्णि मे निजम् ॥ २ ॥

बलि बोला-हे पवित्र कीर्त्ति ! हे देववर ! मैंने जो प्रतिज्ञा की है उसको पूर्ण करने से कदापि इनकार नहीं करता, आप मेरे वचनको असत्य मानते हैं, परन्तु मैं उसे सत्य करता हूँ, जब आपने मेरी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भुजाओं के बलपर पाया हुआ समस्त भू-मंडल और राज्य दो डग किया तब क्या मैं एक ही डग न होऊँगा ? इसलिये हे नाथ ! तीसरी डग पूर्ण करने के लिये आप अपना चरण मेरे मस्तक पर रखिये ॥ २ ॥

बिभेमि नाहं निरयात्पदच्युतो न पाशबंधाद्व्यसनाद्दुरत्ययात् । नैवार्थकृच्छ्राद्भवतो विनिग्रहाद साधुवादाद्भृशमुद्विजे यथा ॥ ३ ॥

मैं अपने पद से गिरने पर भी जितना असत्य और अपकीर्त्ति से डरता हूँ उतना नरक, पाश-बन्धन, अपार दुःख, आर्थिक कष्ट या आपके दिये हुए दण्ड से नहीं डरता ॥३॥

पुंसां श्लाघ्यतमं मन्ये दंडमर्हत्तमार्पितम् । यं न माता पिता भ्राता सुहृदश्चादिशंति हि॥ ४ ॥

जो महान् पुरुषों के द्वारा दंड मिलता है उसे मैं अत्यन्त सराहनीय मानताहूँ, क्योंकि ऐसा दंड माता, पिता, भाई, बंधु कोई भी नहीं देते ॥४॥

त्वं नूनमसुराणां नः पारोक्ष्यः परमो गुरुः । यो नोऽनेकमदांधानां विभ्रंशं चक्षुरादिशत् ॥ ५ ॥

आप निःसंदेह ही हम दैत्यों के परोक्ष विधि से परम पूज्य गुरू हैं, क्योंकि आप विविध प्रकार के मदों से अन्धे हम लोगों को पद से गिरा कर सावधान करते हो ॥५॥

यस्मिन्वैरानुबंधेन रूढेन विबुधेतराः । बहवो लेभिरे सिद्धिं यामुहैकांतयोगिनः ॥ ६ ॥

अनेक दैत्यगण आपसे बैर बांधकर,उस सिद्धि को पागये हैं जिसे एकान्त योगी पुरुष पाते हैं॥६॥

तेनाहं निगृहीतोऽस्मि भवता भूरिकर्मणा । बद्धश्च वारुणैः पाशैर्नातिव्रीडे न च व्यथे ॥ ७ ॥

इस प्रकार के अनेक कर्म करने वाले आपने मुझे दमन किया है और वरुण-पाश से बांधा है, इसलिये मैं इससे न तो विशेष लज्जित ही होताहूँ और न दुःख ही मानता हूँ ॥७॥

पितामहो मे भवदीय संमतः प्रह्राद आविष्कृत साधुवादः । भवद्विपक्षेण विचित्रवैशसं संप्रापित स्त्वत्परमः स्वपित्रा ॥ ८ ॥

आपने मुझे भक्त प्रह्लादजीका पौत्र जानकर यह दयारूप दण्ड दिया है, वास्तव में तो मैं कृपा के योग्य नहीं हूँ, आपके भक्तों में महा मान्य और सत्यता प्रकट करने वाले मेरे पितामह प्रह्लादजीको आपका भक्त जानकर, आपके शत्रुओं और उसके पिता हिरण्यकश्यप ने उनको अनेक प्रकारसे दुःख दिया, तो भी उन्होंने सोचा कि ॥८॥

किमात्मनाऽनेन जहाति योंऽततः किं रिक्थहारैः स्वजनाख्यदस्युभिः । किं जायया संसृतिहेतु भूतया मर्त्यस्य गेहैः किमिहायुषो व्ययः ॥ ९ ॥

इस देह से क्या प्रयोजन है ? कि जिसको अन्तमें छोड़ जाना है, सम्बन्धीरूपी चोर कि जो अन्त में सब कुछ छीन लेते हैं, उनसे भी क्या हो सकता है ? जन्म-मरण की कारण-रूपा स्त्री में क्या सार है और जिसमें रहने से केवल आयु मात्र ही क्षीण होती है, उसमें रहनेसे क्या सार है ? ॥९॥

इत्थं सनिश्चित्य पितामहो महानगाधबोधो भवतः पादपद्मम् । ध्रुवं प्रपेदे ह्यकुतोभयं जनाद्भीतः स्वपक्षक्षपणस्य सत्तम ॥ १० ॥

इस प्रकार हमारे पितामह परमज्ञानी प्रह्लादजी निश्चय करके दैत्यों के मारने वाले आपके निर्भय तथा अविचल चरणार्विन्दकी शरणको प्राप्त हुएहैं।

अथाहमप्यात्मरिपोस्तवांतिकं दैवेन नीतः प्रसभं त्याजितश्रीः । इदं कृतांतांतिकवर्ति जीवितं ययाऽध्रुवं स्तब्धमतिर्न बुध्यते ॥ ११ ॥

इसलिये मुझे उन्हीं के भाग्य ने आप शत्रु रूप मित्र के चरणों के निकट पहुंचाया है और ऐसी लक्ष्मी को बलात्कार मुझसे छुड़ाया है कि जिसके कारण मन्द बुद्धिवाला मनुष्य मृत्युके निकट रहते हुए जीवन को भी अनित्य नहीं जानता ॥ ११ ॥

श्रीशुक उवाच

तस्येत्थं भाषमाणस्य प्रह्लादो भगवत्प्रियः । आजगाम कुरुश्रेष्ठ राकापतिरिवोत्थितः ॥ १२ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! राजा बलि इस प्रकार कहही रहेथे कि उसी समय भगवान्के परम भक्त और उदित चन्द्रमा के समान सुख देने वाले प्रह्लादजी वहाँ आगये ॥१२॥

तमिंद्रसेनः स्वपितामहं श्रिया विराजमानं नलिनायतेक्षणम् । प्रांशुं पिशंगांबरमंजनत्विषं प्रलंब बाहुं सुभगं समैक्षत ॥ १३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कमलके समान नेत्र तथा पीतांबर धारण किये हुए, सांवले, ऊँचे, लम्बी भुजाओं वाले और परम भाग्यवान् एवं शोभाशाली अपने पितामह प्रह्लादजी को राजा बलि ने देखा ॥१३॥

तस्मै बलिर्वारुणपाशयंत्रितः समर्हणं नोपजहार पूर्ववत् । ननाम मूर्ध्नाऽश्रुविलोललोचनः सव्रीडनीचीनमुखो बभूव ह ॥१४॥

वरुण-पाश में बँधे हुए राजा बलि ने प्रह्लादजी का पहलेकी भांति पूजन न करने पाया अस्तु उसने केवल सिर झुकाकर उन्हें प्रणामकिया और अपने अहङ्कार आदि अपराधों को स्मरण करके लज्जा के मारे मस्तक झुकाकर आँसू बहाने लगा ॥ १४ ॥

स तत्र हासीनमुदीक्ष्य सत्पतिं सुनंदनंदाद्यनुगैरुपासितम् । उपेत्य भूमौ शिरसा महामना ननाम मूर्ध्ना पुलकाश्रुविह्वलः ॥१५॥

सुनन्द नंद आदि पार्षदोंसे सेव्यमान्, सज्जनों के स्वामी भगवान् को वहाँ विराजमान देखकर उदार चित्त प्रह्लादजी ने उनके पास जाकर, पृथ्वी पर मस्तक झुकाते हुए उन्हें प्रणाम किया और राजा बलि पर किये हुए अनुग्रह को देखकर उनके रोमाञ्च होगये और अश्रु-प्रवाह होने लगा ॥१५॥

प्रह्लाद उवाच

त्वयैव दत्तं पदमैंद्रमूर्जितं हृतं तदेवाद्य तथैव शोभनम् ।मन्ये महानस्य कृतो ह्यनुग्रहो विभ्रंशितो यच्छ्रिय आत्ममोहनात् ॥१६॥

प्रह्लादजी बोले–हे प्रभो ! राजा बलिको आपही ने इन्द्र-पद दिया था और आज उसे छीन लियाहै, यह बहुत अच्छा किया और मेरे पुत्रको लक्ष्मीरूपी महामोहसे छुड़ाया, यह इसपर बड़ीही दयाकी है॥

यया हि विद्वानपि मुह्यते यतस्तत्को विचष्टे गतिमात्मनो यथा । तस्मै नमस्ते जगदीश्वराय नारायणायाखिललोकसाक्षिणे ॥१७॥

जिस लक्ष्मीसे विद्वान् पुरुषभी मोहित होजाते हैं, उसके पास रहने तक कौनसा मनुष्य यथार्थ रूप से आत्म-तत्व को देखता है ? इसलिये ऐसे जगदीश्वर और सब लोगों के साक्षी नारायण को मैं प्रणाम करता हूँ ॥१७॥

श्रीशुक उवाच

तस्यानुशृण्वतो राजन्प्रह्लादस्य कृतांजलेः । हिरण्यगर्भो भगवानुवाच मधुसूदनम् ॥१८॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! हाथ जोड़े हुए प्रह्लादजी के वचन सुनते हुए श्रीहिरण्यगर्भ ब्रह्माजी मधुसूदन भगवान् से कहने लगे ॥१८॥

बद्धं वीक्ष्य पतिं साध्वी तत्पत्नी भयविह्वला । प्रांजलिः प्रणतोपेंद्रं बभाषेऽवाङ्मुखी नृप ॥१९॥

हे राजन् ! परन्तु उसी समय अपने पति को बँधा हुआ देखकर भय से विकल उसकी पतिव्रता रानी विन्ध्यावली ने नम्र होकर हाथ जोड़े हुए प्रणाम करके वामनजी से कहा ॥१९॥

विंध्यावलिरुवाच

क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत्कृतं ते स्वाम्यं तु तत्र कुधियोऽपर ईश कुर्युः । कर्तुः प्रभोस्तव किमस्य त आवहंति त्यक्तह्रियस्त्वदवरोपितकर्तृवादाः ॥२०॥

विंध्यावली बोली–हे नाथ ! अपनी क्रीड़ा के लिये आपही ने यह संसार बनाया है, उसमें यह दूसरे कुबुद्धि और निर्लज्ज मनुष्य वृथा ही अपना स्वामीपन मानतेहैं, तीनों लोकोंके कर्त्ता-धर्त्ता आप ही हैं और जो दूसरे पुरुष कहते हैं कि हम स्वतंत्र हैं, यह कहने का अधिकार भी आपही देते हैं,आप को कुछ भी देना संभव नहीं, क्योंकि सब कुछ आपका ही दिया है ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

भूतभावन भूतेश देवदेव जगन्मय । मुंचैनं हृतसर्वस्वं नायमर्हति निग्रहम् ॥२१॥

ब्रह्माजी बोले–हे भूतभावन, हे अखिल भूतेश्वर! हे देवदेव ! सर्वस्व हरण किये हुए इस राजा बलि को अब आप छोड़ दीजिये, यह दण्ड के योग्य नहीं है ॥२१॥

कृत्स्ना तेऽनेन दत्ता भूर्लोकाः कर्मार्जिताश्च ये । निवेदितं च सर्वस्व मात्माऽविक्लवया धिया॥२२॥

हे महाराज ! इसने आपको सब पृथ्वी दी है तथा कर्मों के द्वारा जीते हुए लोक भी अर्पण कर दिये हैं और सर्वस्व देने पर भी बची हुई देह को दृढ़ बुद्धि से आपके भेंट कर दिया है ॥ २२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यत्पादयोरशठधीः सलिलं प्रदाय दूर्वांकुरैरपि विधाय सतीं सपर्याम् । अप्युत्तमां गतिमसौ भजते त्रिलोकीं दाश्वानविक्लवमनाः कथमार्तिमृच्छेत्॥२३

आपके जिन चरणों में निष्कपट भाव से केवल जल अर्पण करने या अंकुर मात्र के भेंट करने से उत्तम गति मिलती है, उन चरणों में इतनी महान् दृढ़ता से जो त्रिलोकी का राज्य अर्पण करदे, उसे दुःख कैसे होगा ? ॥२३॥

श्रीभगवानुवाच

ब्रह्मन्यमनुगृह्णामितद्विशो विधुनोम्यहम् ।
यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते॥२४॥

श्रीभगवान् बोले-हे ब्रह्माजी ! मैं जिसपर कृपा करता हूँ उसके धनको पहले नाश करता हूँ, क्योंकि धन का मद वाला पुरुष मेरा लोक नहीं पा सकता और वह मेरे भक्तों की अवज्ञा करने लगता है ॥ २४ ॥

यदा कदाचिज्जीवात्मा संसरन्निज कर्मभिः ।
नानायोनिष्वनीशोऽयं पौरुषीं गतिमाव्रजेत्॥२५॥

अपने कर्मों से अनेक योनियों में भटकता हुआ यह पराधीन जीव किसी समय मनुष्य देह पा जाता है ॥ २५ ॥

जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः ।
यद्यस्य न भवेत्स्तंभस्तत्रायं मदनुग्रहः ॥२६॥

इसलिये यदि इस मनुष्य देह में जन्म, कर्म, अवस्था, रूप, विद्या, प्रभुता और धन आदि का अभिमान न हो तो यह मेरी दयाही माननी चाहिये॥

मानस्तंभनिमित्तानां जन्मादीनां समंततः ।
सर्व श्रेयःप्रतीपानां हंत मुह्येन्न मत्परः ॥२७॥

जो मेरे भक्तहैं वे अभिमानके कारण रूप देह आदि को पाकर भी उन्हें कल्याण का शत्रु समझ कर उनमें मोहित नहीं होते ॥२७॥

एष दानवदैत्यानामग्रणीः कीर्तिवर्धनः ।
अजैषीदजयां मायां सीदन्नपि न मुह्यति ॥२८॥

यह बलि दानव तथा दैत्योंमें श्रेष्ठ और उनकी कीर्त्ति को बढ़ाने वालाहै, इसने मेरी अजित माया को जीत लिया है, क्योंकि यह महान् दुःख से भी नहीं घबराता ॥२८॥

क्षीणरिक्थश्च्युतः स्थानात्क्षिप्तो बद्धश्च शत्रुभिः ।
ज्ञातिभिश्च परित्यक्तो यातनामनुयापितः ॥२९॥

इसका धन गया, पद हरण हुआ, शत्रुओं के हाथों बंधन पड़ा, तिरस्कार हुआ, जाति-बंधुओंद्वारा परित्याग हुआ और इसने वेदना भी पाई ॥२९॥

गुरुणा भर्त्सितः शप्तो जहौ सत्यं न सुव्रतः ।
छलैरुक्तो मया धर्मो नायंत्यजति सत्यवाक्॥३०॥

गुरुने झिड़की देकर शापतक दे डाला, मैंने भी कितनेही छलके वचन कहकर इसे चक्करमें डालना चाहा, परन्तु इस सत्यवादी तथा सुव्रत राजा बलि ने अपना धर्म नहीं छोड़ा ॥३०॥

एष मे प्रापितः स्थानं दुष्प्रापममरैरपि ।
सावर्णेरंतरस्यायं भवितेंद्रो मदाश्रयः ॥३१॥

इसलिये यह मेरे उस पदको पा चुका है जो देवताओंको भी दुर्लभहै, अर्थात् सावर्णि मन्वंतरमें यह इन्द्र होगा और मेरे आधीन रहेगा ॥३१॥

तावत्सुतलमध्यास्तां विश्वकर्मविनिर्मितम् ।
यन्नाधयो व्याधयश्च क्लमस्तंद्रा पराभवः ।
नोपसर्गा निवसतां संभवंति ममेक्षया ॥३२॥

उस समय तक यह विश्वकर्मा के बनाये हुए सुतल-लोक में बास करेगा, जहाँ आधि (चिन्ता) व्याधि, खेद, निद्रा पराभव या किसी प्रकार का उपद्रव नहीं है ॥३२॥

इंद्रसेन महाराज याहि भो भद्रमस्तु ते ।
सुतलं स्वर्गिभिः प्रार्थ्यं ज्ञातिभिः परिवारितः॥३३

हे इन्द्रसेन ! हे महाराज ! तुम अपनी जाति वालों को साथ लेकर सुतल-लोक में जाओ जिसे देवता भी चाहते हैं, तुम्हारा कल्याण होगा ॥३३॥

न त्वामभिभविष्यंति लोकेशाः किमुतापरे ।
त्वच्छासनातिगान्दैत्यांश्चक्रं मे सूदयिष्यति ॥३४॥

तुम्हारा पराभव लोकपालभी न कर सकेंगे औरों की तो बात ही क्या है ? और जो दैत्य तुम्हारी आज्ञा न मानेंगे उनको मेरा चक्रसुदर्शन मारडालेगा॥

रक्षिष्ये सर्वतोऽहं त्वां सानुगं सपरिच्छदम् ।
सदा सन्निहितं वीर तत्र मां द्रक्ष्यते भवान्॥३५॥

मैं घर के सामान तथा अनुचरों सहित तेरी सबसे रक्षाकरूँगा, हे वीर ! मैं सर्वदा तेरे द्वार पर रहूँगा जिससे तू सदैव मेरे दर्शन कर सकेगा॥३५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तत्र दानवदैत्यानां संगात्ते भाव आसुरः ।
दृष्ट्वा मदनुभावं वै सद्यः कुंठो विनंक्ष्यति ॥३६॥

दैत्य और दानवों में रहने से जो अभी तेरा आसुरी भावहै, वह भी वहाँ रहकर मेरा प्रभाव देखने से धीरे-धीरे नष्ट होजायगा ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

तेईसवां अध्याय

(बलि का सुतल लोक-गमन तथा इन्द्र को स्वर्ग-प्राप्ति)

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तवंतं पुरुषं पुरातनं महानुभावोऽखिल साधुसंमतः । बद्धांजलिर्बाष्पकलाकुलेक्षणो भक्त्युद्गलो गद्गदया गिराऽब्रवीत् ॥ १॥

श्रीशुकदेवजी बोले–पुराण-पुरुष भगवान्के इस प्रकार वचन सुनकर भक्तिकी उत्कंठावाला,महानुभाव और समस्त साधु पुरुषों से मान्य बलि आँसुओं से विकल नेत्र होता हुआ, हाथ जोड़ कर गद्गद वाणी से कहने लगा ॥१॥

बलिरुवाच

अहो प्रणामाय कृतः समुद्यमः प्रपन्नभक्तार्थ विधौ समाहितः । यल्लोकपालैस्त्वदनुग्रहोऽमरैर लब्धपूर्वोऽपसदेसुरेऽर्पितः ॥२॥

बलि बोला–अहो आपको प्रणाम करनेके लिये जो उद्योग किया जाता है, वही शरणागत भक्तों के मनोरथ सिद्ध करने में समर्थ है, जो आपका अनुग्रह लोकपाल तथा देवताओंने भी पहले नहींपाया, वह अनुग्रह मुझ नीच असुर ने पाया है ॥ २ ॥

श्रीशुक उवाच

इत्युक्त्वा हरिमानम्य ब्रह्माणं सभवं ततः ।
विवेश सुतलं प्रीतो बलिर्मुक्तः सहासुरैः ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! इस प्रकार कह कर ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजी को प्रणाम करके बन्धन-मुक्त होकर, दैत्यों को साथ लिये हुए, प्रसन्नता-पूर्वक सुतल-लोक में उसने प्रवेश किया ॥

एवमिंद्राय भगवान्प्रत्यानीय त्रिविष्टपम् ।
पूरयित्वादितेः काममशासत्सकलं जगत् ॥ ४ ॥

इस प्रकार भगवान् फिरसे इन्द्रको स्वर्ग देकर अदिति की कामना पूर्ण करके समस्त जगत् का पालन करने लगे ॥४॥

लब्धप्रसादं निर्मुक्तं पौत्रं वंशधरं बलिम् ।
निशाम्य भक्तिप्रवणः प्रहाद इदमब्रवीत् ॥ ५ ॥

कृपा पाकर बन्धन से छूटे हुए, वंश को उद्धार करने वाले अपने पौत्र बलि को देखकर भक्ति-परायण नम्र प्रह्लादजी ने यह कहा ॥५॥

प्रह्लाद उवाच

नेमं विरिंचो लभते प्रसादं न श्रीर्न शर्वः किमु तापरे ते । यन्नोऽसुराणामसि दुर्गपालो विश्वाभि वंद्यैरपि वंदितांघ्रिः ॥६॥

प्रह्लादजी बोले–जिनको समस्त संसार प्रणाम करता है और ब्रह्मादिक देवता भी जिनको प्रणाम करते हैं, ऐसे आप हम सब असुरोंके द्वारपाल हुए हैं, जैसा अनुग्रह आपने हमपर किया है वैसा ब्रह्मा लक्ष्मी तथा महादेवजी को भी नहीं मिला, फिर औरों की तो बात ही क्या है ? ॥६॥

यत्पादपद्ममकरंदनिषेवणे न ब्रह्मादयः शरण दाश्नुवते विभूतीः । कस्माद्वयं कुसृतयः खलयोन यस्ते दाक्षिण्यदृष्टिपदवीं भवतः प्रणीताः ॥ ७ ॥

हे शरणद ! आपके जिन चरणार्विन्दोंका मकरंद सेवन करने से ब्रह्मादिक देवता भी ऐश्वर्य भोगरहे हैं; तब आपके चरणार्विन्दों का सेवन न करनेवाले दुराचारी और उग्र जाति पर पूर्ण सेवा करने से प्राप्त होने वाली कृपा-दृष्टि किस कारणसे हुई ॥७॥

चित्रं तवेहितमहोऽमितयोगमायालीलाविसृष्ट भुवनस्य विशारवस्य । सर्वात्मनः समदृशो विषमः स्वभावो भक्तप्रियो यदसि कल्पतरुस्वभावः॥८॥

अपार योग-माया की लीला से समस्त ब्रह्मांड को रचने वाले और सर्वज्ञ प्रभु ! आपका चरित्र बड़ाही विचित्र है, आप सर्वात्मा और समदर्शी हैं, यद्यपि आपको भक्त प्रियहैं, फिरभी आपका स्वभाव विषम नहीं, वरन् कल्पवृक्षके समान है ॥ ८ ॥

श्रीभगवानुवाच

वत्स प्रहाद भद्रं ते प्रयाहि सुतलालयम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मोदमानः स्वपौत्रेण ज्ञातीनां सुखमावह ॥ ९ ॥

श्रीभगवान् बोले-हे वत्सप्रह्लाद ! तेरा कल्याण हो, तू अपने पौत्र को साथ लेकर सानन्द सुतल-लोकमें जा और अपनी जातिको आनंदित कर ॥९॥

नित्यं द्रष्टासि मां तत्र गदापाणिमवस्थितम् ।
मद्दर्शनमहाह्लाद्ध्वस्तकर्मनिबंधनः ॥१०॥

वहाँ तू मुझे हाथमें गदा लिये हुए नित्य बैठा देखेगा और मेरे दर्शनों से उत्पन्न हुए परमानन्दसे तेरे सब बन्धन कट जाँयगे ॥१०॥

श्रीशुक उवाच

आज्ञां भगवतो राजन् प्रहादो बलिना सह ।
बाढमित्यमलप्रज्ञो मूर्ध्न्याधाय कृतांजलिः ॥११॥
परिक्रम्यादिपुरुषं सर्वासुरचमूपतिः ।
प्रणतस्तदनुज्ञातः प्रविवेश महाबिलम् ॥१२॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! वह निर्मलबुद्धि और सब दैत्यों के सेनापति प्रह्लादजी ने बलि को साथ लेकर, हाथ जोड़ 'जो आज्ञा' कहकर आदि पुरुष भगवान् की परिक्रमा देकर, नम्र होकर और विदा माँगकर सुतल-लोकमें प्रवेश किया ॥११॥१२॥

अथाहोशनसं राजन हरिर्नारायणोऽतिके ।
आसीनमृत्विजां मध्ये सदसि ब्रह्मवादिनाम्॥१३॥

हे राजन् ! उस समय ब्रह्मवादियों की सभा में ऋत्विजों के बीच में अपने निकट बैठे हुए शुक्राचार्यजी से भगवान् ने कहा ॥१३॥

ब्रह्मन् संतनु शिष्यस्य कर्मच्छिद्रं वितन्वतः ।
यत् तत् कर्मसु वैषम्यं ब्रह्मदृष्टं समं भवेत् ॥१४॥

हे ब्रह्मन् ! यज्ञ-कर्म करने वाले तुम्हारे शिष्य बलि राजाके यज्ञमें जो कमी रहगईहै उसे तुम पूर्ण करो, कर्म में जो न्यूनता रह जाती है वह ब्राह्मणों की दृष्टि मात्र से ही पूर्ण होजाती है ॥१४॥

शुक्राचार्य उवाच

कुतस्तत् कर्मवैषम्यं यस्य कर्मेश्वरो भवान् ।
यज्ञेशो यज्ञपुरुषः सर्वभावैन पूजितः ॥१५॥

शुक्राचार्यजी बोले-जिसने आप कर्मपति और यज्ञ पुरुष का सर्व भावों द्वारा पूजन किया है उस के कर्म में न्यूनता कैसे आ सकती हैं ? ॥१५॥

मंत्रतस्तंत्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः ।
सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्तनं तव ॥१६॥

मन्त्र, तन्त्र, देश, काल, पात्र और दक्षिणा आदि में जो न्यूनता रह जाती है, वह आपके नाम कीर्त्तन ही से पूर्ण होजाती है ॥१६॥

तथाऽपि वदतो भूमन् करिष्याम्यनुशासनम् ।
एतच्छ्रेयः परं पुंसां यत्तवाज्ञाऽनुपालनम् ॥१७॥

हे भूमन् ! फिर भी आपकी आज्ञा का पालन करूँगा, क्योंकि आपकी आज्ञा का पालन करना ही परम लाभ है ॥१७॥

श्रीशुक उवाच

अभिनंद्य हरेराज्ञामुशना भगवानिति ।
यज्ञच्छिद्रं समाधत्त बलेर्विप्रर्षिभिः सह ॥१८॥

श्रीशुकदेवजी बोले-इस प्रकार से भगवान् की आज्ञा का अनुमोदन करके, शुक्राचार्यजीने ब्राह्मणों को साथ लेकर बलिके यज्ञकी कमीको पूर्णकिया ॥

एवं बलेर्महीं राजन् भिक्षित्वा वामनो हरिः ।
ददौ भ्रात्रे महेंद्राय त्रिदिवं यत्परैर्हृतम् ॥१९॥

हे राजन् ! इस प्रकार भगवान् ने वामन-रूप धारण कर बलि से पृथ्वी को माँगकर, दैत्यों द्वारा हरण किये हुए स्वर्ग का राज्य अपने भाई इन्द्र को दे दिया ॥१९॥

प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा देवर्षिपितृभूमिपैः ।
दक्षभृग्वंगिरोमुख्यैः कुमारेण भवेन च ॥२०॥
कश्यपस्यादितेः प्रीत्यै सर्वभूतभवाय च ।
लोकानां लोकपालानामकरोद्वामनं पतिम् ॥२१॥

प्रजापतियोंके पति ब्रह्माजीने सब जीवोंके हित के लिये और कश्यपजी तथा अदिति को प्रसन्न रखने के लिये देवता, ऋषि; पितृ, राजा, दक्ष, भृगु और अङ्गिरा आदि मुनि, सनत्कुमार और शिवजी से एक मत करके श्रीवामनजी को समस्त लोकों तथा लोकपालों का स्वामी बनाया ॥२०॥२१॥

वेदानां सर्वदेवानां धर्मस्य यशसः श्रियः ।
मंगलानां व्रतानां च कल्पं स्वर्गापवर्गयोः ॥२२॥
उपेंद्रं कल्पयांचक्रे पतिं सर्वविभूतये ।
तदा सर्वाणि भूतानि भृशं मुमुदिरे नृप ॥२३॥

वेद, सब देवता, धर्म, यश, श्री, कल्याण, व्रत, स्वर्ग और मोक्षको पालन करने में चतुर वामनजी को सबकी उन्नतिके लिये स्वामी बनाया गया, हे राजन् ! इससे प्राणी मात्र प्रसन्न हुए ॥२२॥२३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ततस्त्विन्द्रः पुरस्कृत्य देवयानेन वामनम् ।
लोकपालैर्दिवं निन्ये ब्रह्मणा चानुमोदितः ॥२४॥

फिर इन्द्र वामनजी को विमान में आगे बिठा कर आकाश-मार्गसे लोकपालों सहित स्वर्गको गये।

प्राप्य त्रिभुवनं चेंद्र उपेंद्रभुजपालितः ।
श्रिया परमया जुष्टो मुमुदे गतसाध्वसः ॥२५॥

श्रीवामनजीकी भुजाओंसे रक्षित इन्द्र त्रिलोकों का राज्य पाकर, परम संपदा से परिपूर्ण होकर, निर्भीकता के साथ आनन्द करने लगे ॥२५॥

ब्रह्मा शर्वः कुमारश्च भृग्वाद्या मुनयो नृप ।
पितरः सर्वभूतानि सिद्धा वैमानिकाश्च ये ॥२६॥
सुमहत् कर्म त द्विष्णोर्गायंतः परमाद्भुतम् ।
विष्ण्यानि स्वानि ते जग्मुरदितिं च शशंसिरे ॥

हे राजन् ! ब्रह्मा, महादेव, सनत्कुमार, भृगु आदि मुनि, पितर, समस्त प्राणी और विमान में बैठनेवाले सिद्ध, भगवान् विष्णुके इस परमविचित्र और महान् चरित्र का गायन करते हुए अपने २ स्थानको चले गये और अदिति की प्रशंसा करने लगे ॥२६॥२७॥

सर्वमेतन्मयाख्यातं भवतः कुलनंदन ।
उरुक्रमस्य चरितं श्रोतृणामघमोचनम् ॥२८॥

हे कुरुनन्दन ! मैंने वामनजी का संपूर्ण चरित्र तुमसे वर्णन कियाहै, जो लोग इस चरित्रको सुनेंगे उनके पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाँयगे ॥२८॥

पारं महिम्न उरुविक्रमतो गृणानो यः पार्थिवानि विममे स रजांसि मर्त्यः । किं जायमान उत जात उपैति मर्त्य इत्याह मंत्रदृगृषिःपुरुषस्य यस्य ॥२९॥

पृथ्वी के परमाणुओं की गिनती चाहे हो भी जाय, परन्तु महान् कर्म करने वाले पूर्ण भगवान्की महिमा का पार पाना असंभवहै, मन्त्र द्रष्टा वशिष्ठ मुनि ने भी कहा है कि जन्मा हुआ अथवा जन्म लेता हुआ पुरुष भगवान् की महिमा का क्या पार पा सकता है ? ॥२९॥

य इदं देवदेवस्य हरेरद्भुतकर्मणः ।
अवतारानुचरितं शृण्वन् याति परांगतिम् ॥३०॥

देवाधिदेव तथा अद्भुत चरित्रवाले भगवान् के इस अवतार सम्बंधी चरित्र को जो सुनता है वह परम गति को प्राप्त होता है ॥३०॥

क्रियमाणे कर्मणीदं दैवे पित्र्येऽथ मानुषे ।
यत्र यत्रानुकीर्त्येत तत्तेषां सुकृतं विदुः ॥३१॥

देव, पितर या मनुष्य सम्बन्धी कर्मों में जहाँ इसका कीर्त्तन किया जायगा वह कर्म पूर्णतया सिद्ध होगा, ऐसा विद्वान् पुरुषों का कहना है ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

चौबीसवां अध्याय

(मत्स्यावतार)

राजोवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि हरेरद्भुतकर्मणः ।
अवतारकथामाद्यां मायामत्स्यविडंबनम् ॥ १ ॥

परीक्षित बोले-हे भगवन् ! अद्भुत चरित्रवाले भगवान् ने जो पहले मायामयी मत्स्यावतार की लीला की है वह मैं सुनना चाहता हूँ ॥१॥

यदर्थमदधाद्रूपं मात्स्यं लोकजुगुप्सितम् ।
तमःप्रकृति दुर्मर्षं कर्मग्रस्तमिवेश्वरः ॥ २ ॥

सम्पूर्ण जगत् में निन्दित, तमोगुणमय और असह्य मत्स्यरूप धारण करने से तो ऐसा जान पड़ता है मानो भगवान् स्वयं ही कर्ममें बँधे हों ॥२॥

एतन्नो भगवन् सर्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ।
उत्तमश्लोकचरितं सर्वलोकसुखावहम् ॥ ३ ॥

हे भगवन् ! सब लोगों को सुख देने वाला यह भगवान् का चरित्र मुझसे ठीक २ वर्णन कीजिये ॥

सूत उवाच

इत्युक्तो विष्णुरातेन भगवान् बादरायणिः ।
उवाच चरितं विष्णोर्मत्स्यरूपेण यत्कृतम् ॥ ४ ॥

सूतजी बोले-जब राजा परीक्षित ने इस तरह प्रश्न किया, तब श्रीशुकदेवजी मत्स्य-रूप द्वारा किये हुए भगवान् का चरित कहने लगे ॥४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीशुक उवाच

गोविप्रसुरसाधूनां छंदसामपि चेश्वरः ।
रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—गौ, ब्राह्मण, देवता, सज्जन, धर्म और अर्थ की रक्षा करने का विचार करके भगवान् अनेक रूप धारण करते हैं ॥५॥

उच्चावचेषु भूतेषु चरन् वायुरिवेश्वरः ।
नोच्चावचत्वं भजते निर्गुणत्वाद्धियो गुणैः ॥ ६ ॥

जैसे वायु उत्तम या अधम सभी पदार्थों में विचरण करताहै, परन्तु वह स्वयं उत्तम या अधम नहीं बनता, वैसे ही बुद्धि के गुणों से ऊँच-नीच माने जाने वाले पदार्थों में परमेश्वर व्याप्त हैं, परन्तु निर्गुण होने से उनपर ऊँच-नीच होने का विकार नहीं आता ॥ ६ ॥

आसीदतीतकल्पांते ब्राह्मो नैमित्तिको लयः ।
समुद्रोपप्लुतास्तत्र लोका भूरादयो नृप ॥ ७ ॥

जब कल्पान्त होने पर ब्रह्माजी को निद्रा आने के कारण प्रलय होगई, तब समस्त भूत आदि समुद्र में डूब गये ॥७॥

कालेनागतनिद्रस्य धातुः शिशयिषोर्बली ।
मुखतो निःसृतान् वेदान् हयग्रीवोऽतिकेहरत् ॥ ८ ॥

समयानुसार ब्रह्माजी को निद्रा वेग के कारण जँभाई आई, इसलिये उनके मुखमें से निकले हुए वेदों को हयग्रीव ने हरण कर लिया ॥ ८ ॥

ज्ञात्वा तदानवेंद्रस्य हयग्रीवस्य चेष्टितम् ।
दधार शफरीरूपं भगवान् हरिरीश्वरः ॥ ९ ॥

दानव-पति हयग्रीव का यह चरित्र देखकर भगवान् ने मत्स्य रूप धारण किया ॥९॥

तत्र राजऋषिः कश्चिन्नाम्ना सत्यव्रतो महान् ।
नारायणपरोऽतप्यत् तपः स सलिलाशनः ॥ १० ॥

वहाँ सत्यव्रत नामक एक राजर्षि भगवान् में परायण होकर जल मात्रका आहार रखकर तपस्या करता था ॥१०॥

योऽसावस्मिन् महाकल्पे तनयः स विवस्वतः ।
श्राद्धदेव इति ख्यातो मनुत्वे हरिणार्पितः ॥ ११ ॥

जो कि इस कल्प में सूर्य के पुत्र श्राद्धदेव के नाम से प्रसिद्ध हुआ है और जिसे भगवान् ने मनु का पद दिया है ॥११॥

एकदा कृतमालायां कुर्वतो जलतर्पणम् ।
तस्यांजल्युदके काचिच्छफर्येकाऽभ्यपद्यत ॥ १२ ॥

एक बार वह कृतमाला नाम्नी नदी में जल से तर्पण कर रहाथा कि अक्समातही उसकी अञ्जलि के जल में एक मछली आगई ॥१२॥

सत्यव्रतोऽञ्जलिगतां सह तोयेन भारत ।
उत्ससर्ज नदीतोये शफरीं द्रविडेश्वरः ॥ १३ ॥

हे राजन्! द्रविड़ देश के राजा सत्यव्रत ने अञ्जलि में आई हुई उस मछली को जल के साथ नदी में छोड़ दिया ॥१३॥

तमाह साऽतिकरुणं महा कारुणिकं नृपम् ।
यादोभ्यो ज्ञातिघातिभ्यो दीनां मां दीनवत्सल ।
कथं विसृजसे राजन् भीतामस्मिन् सरिज्जले १४॥

तब परम दयालु राजासे उस मछलीने अत्यंत करुणापूर्वक यह कहा कि हे दीनवत्सल, हे राजन्! अपनी ही जाति को मारने वाले इन जल-जन्तुओं से मैं गरीबनी भयभीत हूँ, मुझे आप जल ही में क्यों छोड़ रहे हैं ? ॥१४॥

तमात्मनोऽनुग्रहार्थं प्रीत्या मत्स्यवपुर्धरम् ।
अजानन् रक्षणार्थाय शफर्याः स मनोदधे ॥ १५ ॥

राजाको यह पता न था कि भगवान्ने मुझपर कृपा करने के लिये ही मछली का रूप धारणकिया है, फिर भी उसे मछली की रक्षा करने की प्रेम-पूर्वक उमंग आगई ॥१५॥

तस्या दीनतरं वाक्यमाश्रुत्य स महीपतिः ।
कलशाप्सु निधायैनां दयालुर्निन्य आश्रमम् ॥ १६ ॥

वह दयालु राजा उसके अत्यन्त करुणामय वचन सुनकर उसे कलश में रखकर अपने आश्रम में ले गया ॥१६॥

सा तु तत्रैकरात्रेण वर्धमाना कमंडलौ ।
अलब्ध्वात्मावकाशं वा इदमाह महीपतिम् ॥ १७ ॥
नाहं कमंडलावस्मिन् कृच्छ्रं वस्तुमिहोत्सहे ।
कल्पयौकः सुविपुलं यत्राहं निवसे सुखम् ॥ १८ ॥

वह वहाँ एक रातमें इतनी बढ़गई कि कमंडल में न समा सकी, तब वह राजा से बोली कि—मैं इस कमंडल में बहुत दुःख पातीहूँ इसलिये मैं यहाँ नहीं रहना चाहती, मेरेलिये कोई बड़ा स्थान नियत करो, जहाँ मैं सुख से रह सकूँ ॥१७॥॥१८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स एनां तत आदाय न्यधादौदंचनोदके ।
तत्र क्षिप्ता मुहूर्त्तेन हस्तत्रयमवर्धत ॥१९॥

राजा ने उस स्थानसे उठाकर मछलीको मटके के पानी में डुवादिया, वहाँ डालने पर वह मछली दो घड़ी में ही तीन हाथ वढ़ गई ॥१९॥

न म एतदलं राजन् सुखं वस्तुमुदंचनम् ।
पृथु देहिपदं मह्यं यत्त्वाऽहं शरणं गता ॥२०॥

वह फिर बोली कि हे राजन् ! इस मटके के अन्दर तो मैं सुख-पूर्वक नहीं रह सकती क्योंकि यह मेरे रहने के लिये पर्याप्त नहीं है, मेरे रहने के लिये कोई बड़ा स्थान हो मैं तुम्हारी शरण आईहूँ ।

तत आदाय सा राज्ञा क्षिप्ता राजन् सरोवरे ।
तदावृत्त्यात्मना योयं महामीनोऽन्ववर्धत ॥२१॥

हे राजन् ! तब राजाने मटकेमें से उसे निकाल कर तालाबमें डालदिया, तब वह तालावके जलको ढककर बड़ा मच्छ बन गया ॥२१॥

नैतन्मे स्वस्तये राजन्नुदकं सलिलौकसः ।
निधेहि रक्षायोगेन ह्रदे मामविदासिनि ॥२२॥

और उसने फिर कहाकि–हे राजन् ! मुझ जल में रहने वाले का इतने जलसे सुख न होगा, मुझे तो किसी ऐसे तालाब में ले चलो जिसका जल न घटे और ऐसा उपाय करो कि जिसमें मेरी रक्षा बनी रहे ॥२२॥

इत्युक्तः सोऽनयन् मत्स्यं तत्र तत्राविदासिनि ।
जलाशये संमितं तं समुद्रे प्राक्षिपज्झषम् ॥२३॥

जब मत्स्य भगवान् ने ऐसा कहा तब राजा उसे अनेक बड़े जलाशयों में लेगया, परन्तु वह मत्स्य जिस जलाशय में पड़ता था उसमें उतनाही वढ़ जाताथा, अन्तमें राजा उसे समुद्रमें डालनेलगा ।

क्षिप्यमाणस्तमाहेदमिह मां मकरादयः ।
अदंत्यतिबला वीर मां नेहोत्स्रष्टुमर्हसि ॥२४॥

समुद्र में जाते समय मत्स्य ने कहा कि–हे राजन् ! यहाँ मुझे बड़े बलवान् जन्तु खा लेंगे इस लिये यहाँ न छोड़ो ॥२४॥

एवं विमोहितस्तेन वदता वल्गुभारतीम् ।
तमाह को भवानस्मान्मत्स्यरूपेण मोहयन् ॥२५॥

मत्स्य की ऐसी मीठी वाणी से मोहित होकर राजा ने उससे कहा कि–आप मत्स्य रूप से मुझे मोहित करने वाले कौन हैं ? ॥२५॥

नैवंवीर्यो जलचरो दृष्टोऽस्माभिः श्रुतोऽपि च ।
यो भवान् योजनशत मह्नाऽभिव्यानशे सरः ॥२६॥

मैंने ऐसे पराक्रमी मत्स्य को न तो आज तक देखा है और न सुना है, आपके समान जो दिनभर में सौ योजन वढ़ता हो ॥२६॥

नूनं त्वं भगवान् साक्षाद्धरिर्नारायणोऽव्ययः ।
अनुग्रहाय भूतानां धत्से रूपं जलौकसाम् ॥२७॥

हे महाराज ! आप अवश्य ही साक्षात् श्रीमन्-नारायण हो और जीवों पर अनुग्रह करने के लिये आपने जल-जन्तु का रूप धारण किया है ॥२७॥

नमस्ते पुरुषश्रेष्ठ स्थित्युत्पत्त्यप्ययेश्वर ।
भक्तानां नः प्रपन्नानां मुख्यो ह्यात्मगतिर्विभो ॥२८

हे पुरुषोत्तम ! हे सृष्टिकी स्थिति तथा संहार कर्त्ता ईश्वर ! हे प्रभु ! आप शरणागत भक्तों के सत्यात्मा तथा गतिरूपहैं, मैं आपको प्रणाम करताहूँ।

सर्वे लीलाऽवतारास्ते भूतानां भूतिहेतवः ।
ज्ञातुमिच्छाम्यदो रूपं यदर्थं भवता धृतम् ॥२९॥

आपके सब लीलावतार जीवों के अभ्युदय के लियेहैं, अस्तु आपने यह अवतार किस लिये धारण किया है ? मैं यह जानना चाहता हूँ ॥२९॥

न तेऽरविंदाक्ष पदोपसर्पणं मृषा भवेत् सर्व सुहृत्प्रियात्मनः । यथेतरेषां पृथगात्मनां सतामदीदृशो यद्वपुरद्भुतं हि नः ॥३०॥

हे कमलनयन ! सबके सुहृद, प्रिय और आत्म रूप आपके चरणारविन्द की शरण में आना कभी वृथा नहीं होता, जैसे भेद दृष्टि वाले दूसरे असत् पुरुषों की शरण वृथा है, इसलिये आपने मुझे इस अद्भुत रूप का दर्शन दिया है ॥३०॥

श्रीशुक उवाच

इति ब्रुवाणं नृपतिं जगत्पतिः सत्यव्रतं मत्स्य वपुर्युगक्षये । विहर्तुकामः प्रलयार्णवेऽब्रवीच्चिकीर्षुरेकांतजनप्रियः प्रियम् ॥३१॥

शुकदेवजी बोले–जब राजा सत्यव्रत यह कह रहा था इतने में एकान्त भक्तों के प्रिय, जगत्पति, मत्स्य रूप भगवान् प्रलयके समुद्र में विहार करके राजा का हित करने की इच्छा से बोले ॥३१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीभगवानुवाच

सप्तमेऽह्यतनादूर्ध्वमहन्येतदरिंदम ।
निमंक्ष्यत्यप्ययांभोधौ त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम् ३२॥

मत्स्य भगवान् बोले—हेशत्रुघ्न ! आजसे सातवें दिन प्रलय होगी और तीनों लोक प्रलय-सागर में डूब जाँयगे ॥३२॥

त्रिलोक्यां लीयमानायां संवर्ताभसि वै तदा ।
उपस्थास्यति नौः काचिद्विशाला त्वां मयेरिता ३३

जब त्रिलोकी प्रलय के जलमें डूब जायगी तब मेरी प्रेरणासे एक बड़ी नाव तुम्हारे पासआयेगी ।

त्वं तावदोषधीः सर्वा बीजान्युच्चावचानि च ।
सप्तर्षिभिः परिवृतः सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥३४॥
आरुह्य महतीं नावं विचरिष्यस्यविक्लवः ।
एकार्णवे निरालोके ऋषीणामेव वर्चसा ॥३५॥

तब तू सब औषधियां, छोटे-बड़े सब बीज, सप्तर्षियों और सब जीवों को साथ लेकर उसी आती हुई नाव में बैठकर निर्भय होकर, ऋषियों के ही तेज से उस अँधेरे प्रलय-सागर में विचरते रहना ३४॥ ॥३५॥

दोधूयमानां तां नावं समीरेण बलीयसा ।
उपस्थितस्य मे शृंगे निबध्नीहि महाहिना ॥३६॥

जब तीव्र वायु से वह नाव डिगने लगेगी तब मैं आ पहुंचूंगा, सो वासुकि नाग के द्वारा उस नाव को मेरे सींग में बाँध देना ॥३६॥

अहं त्वामृषिभिः साकं सहनावमुदन्वति ।
विकर्ष न्विचरिष्यामि यावद्ब्राह्मी निशा प्रभो ३७

हे राजन् ! जब तक ब्रह्माजी की रात रहेगी, तब तक ऋषियों सहित तुम्हारी नाव को समुद्रमें खींचता हुआ विचरा करूँगा ॥३७॥

मदीयं महिमानं च परं ब्रह्मेति शब्दितम् ।
वेत्स्यस्यनुगृहीतं मे संप्रश्नैर्विवृतं हृदि ॥३८॥

मेरी परब्रह्म नाम से विख्यात महिमा पर उस समय तू मुझसे प्रश्न करेगा और मैं तुझे उत्तर दूँगा, उसे सुनकर मेरी कृपा से उसका सार तू समझ लेगा ॥३८॥

इत्थमादिश्य राजानं हरिरंतरधीयत ।
सोऽन्ववैक्षत तं कालं यं हृषीकेश आदिशत् ॥३९॥

भगवान् राजा को इस प्रकार आज्ञा देकर अन्तर्धान होगये और राजाभी भगवान्की आज्ञानुसार उस समय की प्रतीक्षा करने लगा ॥३९॥

आस्तीर्य दर्भान् प्राक्कूलान् राजर्षिः प्राग्दुदङ्मुखः ।
निषसाद हरेः पादौ चिंतयन् मत्स्यरूपिणः ॥४०॥

वह राजर्षि पूर्वमुखी कुशासन पर ईशान की ओर मुख करके मत्स्य भगवान्के चरणों का ध्यान करता हुआ बैठा ॥४०॥

ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्लावयन् महीम् ।
वर्धमानो महामेघैर्वर्षद्भिः समदृश्यत ॥४१॥

तदनन्तर सात दिन बीतने पर महान् मेघों के बरसने से समुद्र चारों ओर से मर्यादा छोड़कर बढ़ता हुआ दिखाई दिया ॥४१॥

ध्यायन् भगवदादेशं ददृशे नावमागताम् ।
तामारुरोह विप्रैर्द्वैरादायौषधिवीरुधः ॥४२॥

राजा भगवान् का स्मरण कर ही रहा था कि उसी समय एक नाव आई, उसे देखकर समस्त औषधियां और बनस्पतियां आदि लेकर सप्तर्षियों सहित उस पर सवार होगया ॥ ४२ ॥

तमूचुर्मुनयः प्रीता राजन् ध्यायस्व केशवम् ।
स वै नः संकटादस्मादविता शं विधास्यति॥४३॥

उस समय सप्तर्षियोंने प्रसन्न होकर राजा से कहा कि हे राजन् ! परमेश्वर का स्मरण कर, वही हम लोगोंकी सङ्कटमें सहायताकरेंगे और सुखदेंगे॥

सोऽनुध्यातस्ततो राज्ञा प्रादुरासीन्महार्णवे ।
एकशृंगधरो मत्स्यो हैमो नियुतयोजनः ॥४४॥

राजा के स्मरण करते ही मत्स्य भगवान् स्वर्ण मय एक लाख योजन का शरीर तथा एक सींग धारण किये हुए प्रकट हुए ॥४४॥

निबद्ध्य नावं तच्छृंगे यथोक्तो हरिणा पुरा ।
वरत्रेणाहिना तुष्टस्तुष्टाव मधुसूदनम् ॥४५॥

जैसा भगवान् ने पहले कहा था उसी के अनुसार राजा ने वासुकि सर्प रूपी रस्सी द्वारा उस नावको मत्स्य रूपी भगवान् के सींग से बाँधकर प्रसन्नता पूर्वक भगवान् की स्तुति करनेलगा ॥४५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजोवाच

अनाद्यविद्योपहतात्मसंविदस्तन्मूलसंसारपरिश्रमातुराः । यदृच्छयेहोपसृता यमाप्नुयुर्विमुक्तिदो नः परमो गुरुर्भवान् ॥४६॥

राजा बोला—अनादि कालकी अविद्या से आत्म ज्ञान रहित होने के कारण अन्धकार मूलक संसार के परिश्रमों से विकल पुरुष, अकस्मात् आश्रयही से जिनको पा जाते हैं, वे मोक्ष-दाता और मेरे परम गुरु आप हैं ॥४६॥

जनोऽबुधो यं निजकर्मबंधनः सुखेच्छया कर्म समीहतेऽसुखम् । यत्सेवया तां विधुनोत्य सन्मतिं ग्रंथिं स भिंद्याद्धृदयं स नो गुरुः ॥४७॥

अपने कर्म से बंधे हुए यह अज्ञानी जन सुखके लिये महान् दुःख उठाकर कर्म किया करते हैं, उस सुख की अभिलाषा रूपणी दुर्बुद्धि जिनकी सेवा से निवृत्त होजाती है, वे भगवान् आप मेरे गुरु हो कर मेरे हृदयकी देहाभिमानरूपी ग्रन्थिको खोलिये।

यत्सेवयाऽग्नेरिव रुद्ररोदनं पुमान् विजह्यान्मलमात्मनस्तमः । भजेत वर्णं निजमेष सोऽव्ययो भूयात्स ईशः परमो गुरोर्गुरुः ॥४८॥

जैसे सोना और चाँदी अग्नि के सेवन से मैल को त्याग कर अपने स्वाभाविक वर्ण को पाजाते हैं, वैसे ही जिन भगवान्की सेवासे मनुष्य अपने मन के मलरूपी अज्ञान को त्यागकर अपने स्वरूप को प्राप्त होता है, वही यह अविनाशी प्रभु मेरे परम गुरु हों ॥ ४८ ॥

न यत्प्रसादायुतभागलेशमन्ये च देवा गुरवो जनाः स्वयम् । कर्तुं समेताः प्रभवंति पुंसस्तमीश्वरं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥४९॥

दूसरे देवता, गुरु और लोक इकट्ठे होकर भी जिनकी कृपा के दस हज़ारवें भाग के समान भी प्रभाव नहीं कर सकते, उन परम ऐश्वर्यवान् आपकी मैं शरण हूँ ॥४९॥

अचक्षुरंधस्य यथाग्रणीः कृतस्तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरुः । त्वमर्कदृक् सर्वदृशां समीक्षणो वृतो गुरुर्नः स्वगतिं बुभुत्सताम् ॥५०॥

मूर्ख का गुरू भी मूर्खहो, यह ऐसेहैं जैसे अंधे को राह ले जाने वाला भी अन्धा हो, परन्तु आप सूर्यरूपी दृष्टि से सब इन्द्रियों के प्रकाशक और सब दिशाओं के देखने वाले हैं, इसलिये अपना स्वरूप जानने के लिये मैंने आपको गुरु किया है ॥

जनो जनस्यादिशतेऽसतीं मतिं यया प्रपद्येत दुरत्ययं तमः । त्वं त्वव्ययं ज्ञानममोघमंजसा प्रपद्यते येन जनो निजं पदम् ॥५१॥

मनुष्य मनुष्यको कुबुद्धि देताहै, जिसकेकारण यह प्राणी अपार संसार में पड़ा हुआ है, आप सफल तथा अक्षय ज्ञान देतेहैं जिसके द्वारा मनुष्य सहज ही में अपने पदको पाता है ॥५१॥

त्वं सर्वलोकस्य सुहृत् प्रियेश्वरो ह्यात्मा गुरुर्ज्ञानमभीष्टसिद्धिः । तथापि लोको न भवंतमंधधीर्जानाति संतं हृदि बद्धकामः ॥५२॥

आप सबके मित्र, प्रिय, ईश्वर, आत्मा, गुरु, ज्ञानमय और इष्ट की सिद्धि रूप सदैव हृदय में विराजते हो, फिर भी अन्ध-बुद्धि और तृष्णा में बँधा हुआ यह लोक आपको नहीं जानता ॥५२॥

तं त्वामहं देववरं वरेण्यं प्रपद्य ईशं प्रतिबोधनाय । छिंध्यर्थदीपैर्भगवन् वचोभिर्ग्रंथीन् हृदय्यान् विवृणु स्वमोकः ॥५३॥

इसलिये हे सम्पूर्ण देवताओं में श्रेष्ठ, उदार और ईश्वर ! मैं ज्ञान प्राप्ति के लिये आपकी शरण आया हूँ, इसलिये हे भगवन् ! आप परमार्थ-प्रकाशक अपने वचनों से हमारे हृदय की ग्रन्थियों का छेदन करके अपने रूप को प्रकाशित कीजिये ।५३।

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तवंतं नृपतिं भगवानादिपूरुषः । मत्स्यरूपी महांभोधौ विहरंस्तत्त्वमब्रवीत् ॥५४॥

श्रीशुकदेवजी बोले—राजा सत्यव्रत ने इस प्रकार जब प्रार्थना की तब आदि पुरुष, मत्स्य रूप भगवान् ने समुद्र में विहार करते समय उससे सब तत्व कहा ॥५४॥

पुराणसंहितां दिव्यां सांख्ययोगक्रियावतीम् । सत्यव्रतस्य राजर्षेरात्मगुह्यमशेषतः ॥५५॥

सांख्य, योग और कर्म का जिसमें निरूपण किया गया है और जिसमें अपना सब रहस्य है, ऐसा दिव्य मत्स्य-पुराण भगवान् ने राजासे कहा।

अश्रौषीदृषिभिः साकमात्मतत्त्वमसंशयम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नाव्यासीनो भगवता प्रोक्तं ब्रह्मसनातनम् ॥५६॥

नाव में बैठे हुए सत्यव्रत राजा ने सप्तर्षियों सहित भगवान् के श्रीमुख से सनातन ब्रह्म और आत्म-तत्व का विवेचन निःसन्देह विधिसे सुना।

अतीतप्रलयापाय उत्थिताय स वेधसे।
हत्वाऽसुरं हयग्रीवं वेदान् प्रत्याहरद्धरिः ॥५७॥

इन मत्स्यरूप भगवान् ने प्रलय के अन्तमें उठे हुए ब्रह्माजी के लिये हयग्रीव दैत्य को मार कर फिर वेद ला दिये ॥५७॥

स तु सत्यव्रतो राजा ज्ञानविज्ञानसंयुतः।
विष्णोःप्रसादात् कल्पेऽस्मिन् आसीद्वैवस्वतो मनुः॥

वह ज्ञान और विज्ञान मय सत्यव्रत राजा भगवान् की कृपा से इस कल्प में वैवस्वत नामक मनु हुआ ॥५८॥

सत्यव्रतस्य राजर्षेर्मायामत्स्यस्य शार्ङ्गिणः।
संवादं महदाख्यानं श्रुत्वा मुच्येत किल्बिषात् ५९

माया से मत्स्य रूप भगवान् और सत्यव्रत राजा के सम्वाद रूप इस बड़ी कथाको जो सुनेगा वह पापों से छूट जायगा ॥५९॥

अवतारो हरेर्योऽयं कीर्तयेदन्वहं नरः।
संकल्पास्तस्य सिध्यंति स याति परमां गतिम्॥६०॥

जो मनुष्य भगवान् के इस अवतार का नित्य कीर्त्तन करे, उसके सब मनोरथ सिद्ध होते हैं और वह परम गति को पाता है ॥६०॥

प्रलयपयसि धातः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः श्रुतिगण मुपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा। दितिजमकथयद्यो ब्रह्म सत्यव्रतानां तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि ॥६१॥

प्रलय के जल में हयग्रीव दैत्य को मारकर कि जिसने सोते हुए ब्रह्माजी के मुख से वेद हरण किये थे, उन वेदों को लाकर ब्रह्माजी को सौंपदिये जिन्होंने सप्तर्षियों तथा सत्यव्रत को ब्रह्म-विद्या का उपदेश किया, उन सकल बातोंके कारण, रूप और माया से मत्स्य रूप धारी भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ६१ ॥

इति श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

अष्टमस्कन्ध समाप्त

विविध रूप लीला विविध, लेत विवस चित चोर।
द्रवहु दास "गोविन्द" पर, नागर नन्द किशोर॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

* श्रीगणेशायनमः *

श्रीमद्भागवत

बाल बोधिनी भाषा टीका सहित ।

नवम स्कन्ध

जे छाये छाया लिये, ओर छोर भरपूर ।
ते मन हर बसिहैं कहा, मेरे मन तें दूर ॥

पहिला अध्याय

(सुद्युम्न की कथा)

राजोवाच

मन्वंतराणि सर्वाणि त्वयोक्तानि श्रुतानि मे ।
वीर्याण्यनंतवीर्यस्य हरेस्तत्र कृतानि च ॥ १ ॥

परीक्षित बोले–हे भगवन् ! आपके वर्णनकिये हुए सब मन्वंतर तथा उनमें अपार पराक्रमी भगवान् के किये हुए पराक्रमों को मैंने सुन लिया ॥१॥

योऽसौ सत्यव्रतो नाम राजर्षिर्द्रविडेश्वरः ।
ज्ञानं योऽतीतकल्पांते लेभे पुरुषसेवया ॥ २ ॥
स वै विवस्वतः पुत्रो मनुरासीदिति श्रुतम् ।
त्वत्तस्तस्य सुताश्चोक्ता इक्ष्वाकुप्रमुखा नृपाः ॥३॥

और द्रविड़ देशका राजा राजर्षि सत्यव्रत कि जिसे पिछले कल्प के अन्तमें भगवान् की सेवा से ज्ञान प्राप्त हुआ था, वह सूर्य का पुत्र श्राद्धदेव नामक मनु हुआ तथा उसके इक्ष्वाकु राजा आदि पुत्र हुए–यह भी सुना ॥२॥३॥

तेषां वंशं पृथक् ब्रह्मन्वंश्यानुचरितानि च ।
कीर्तयस्व महाभाग नित्यं शुश्रूषतां हि नः ॥ ४ ॥

अब हे ब्रह्मन् ! उसके वंशज इक्ष्वाकु आदि राजाओं तथा उनके वंशों का पृथक् २ वर्णनकरिये हे महाभाग ! मुझे सुनने की इच्छा है ॥४॥

ये भूता ये भविष्याश्च भवंत्यद्यतनाश्च ये ।
तेषां नः पुण्यकीर्तीनां सर्वेषां वद विक्रमान् ॥ ५ ॥

जो राजा होगये हैं, इस समय हैं, तथा जो आगे होंगे, उन पवित्र कीर्त्ति वाले राजाओं का पराक्रम कहिये ॥५॥

श्रीशुक उवाच

एवं परीक्षिता राज्ञा सदसि ब्रह्मवादिनाम् ।
पृष्टः प्रोवाच भगवान् शुकः परमधर्मवित् ॥ ६ ॥

सूतजी बोले–जब परीक्षित ने ब्रह्मवादियों की सभा में ऐसा प्रश्न किया, तब श्रेष्ठ धर्म के जानने वाले श्रीशुकदेवजी ने कहा ॥६॥

सूत उवाच

श्रूयतां मानवो वंशः प्राचुर्येण परंतप ।
न शक्यते विस्तरतो वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे परंतप ! तुमने मनु का वंश संक्षेप में सुना है, विस्तार पूर्वक तो कोई उसे सौ वर्ष में भी नहीं कह सकता ॥७॥

परावरेषां भूतानामात्मा यः पुरुषः परः ।
स एवासीदिदं विश्वं कल्पांतेऽन्यन्न किंचन ॥ ८ ॥

पर और अवर समस्त भूतों के आत्मा परपुरुष श्रीनारायण ही कल्पान्त में इस जगत्के रूप थे, उस समय ईश्वरके सिवा और कुछभी न था।

तस्य नाभेः समभवत् पद्मकोशो हिरण्मयः ।
तस्मिन् जज्ञे महाराज स्वयंभूश्चतुराननः ॥ ९ ॥

उन प्रभु की नाभि में से स्वर्णमय कमल कोष उत्पन्न हुआ, जिसमेंसे चतुर्मुखी ब्रह्माजी पैदाहुए ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मरीचिर्मनसस्तस्य जज्ञे तस्यापि कश्यपः ।
दाक्षायण्यां ततोऽदित्यां विवस्वानभवत् सुतः१०॥

ब्रह्माजीके मनसे मरीचि नामक मनु उत्पन्न हुए मरीचि के कश्यपजी हुए, कश्यपजी के यह दक्षकी कन्या अदिति से सूर्य उत्पन्न हुए ॥१०॥

ततो मनुः श्राद्धदेवः संज्ञायामास भारत ।
श्रद्धायां जनयामास दश पुत्रान्स आत्मवान्११॥

हे भारत ! सूर्य की संज्ञा नामक स्त्री से श्राद्धदेव नामक मनु हुए, उनके यहाँ श्रद्धा नामकी स्त्री से दस पुत्र हुए ॥११॥

इक्ष्वाकुनृगशर्यातिदिष्टधृष्टकरूषकान् ।
नरिष्यंतं पृषध्रं च नभगं च कविं विभुः ॥१२॥

इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति दिष्ट, धृष्ट, करूषक, नरिष्यन्त,पृषध्र,नभग और कवि-उनके नाम यहहैं॥

अप्रजस्य मनोः पूर्वं वसिष्ठो भगवान्किल ।
मित्रावरुणयोरिष्टिं प्रजार्थमकरोत्प्रभुः ॥१३॥

मनु के यहाँ पहले पुत्र नहीं हुआ, तब संतान होने के लिये वसिष्ठजी ने मित्रावरुण की इष्टी (यज्ञ-क्रिया) करवाई ॥१३॥

तत्र श्रद्धा मनोः पत्नी होतारं समयाचत ।
दुहित्रर्थमुपागम्य प्रणिपत्य पयोव्रता ॥१४॥

तब पयोव्रत करने वाली मनुकी स्त्री श्रद्धा ने होताके निकट आकर प्रणाम करतेहुए यह प्रार्थना की कि ऐसा यज्ञ कीजिये कि जिसमें मेरे कन्याहो।

प्रेषितोऽध्वर्युणा होता यत्तया सुसमाहितः ।
हविषि व्यचरत्तेन वषट्कारं गृणन्द्विजः ॥१५॥

अध्वर्यु की प्रेरणानुसार होता (यज्ञ कराने वाले) ने हविष्य लिया और मनु की स्त्रीके कहने पर ध्यान रखकर 'वषट्कार' उच्चारण करते समय यजन में "वौषट्" कहकर फेरफार करदिया ॥१५॥

होतुस्तद्व्यभिचारेण कन्येलानाम साऽभवत् ।
तां विलोक्य मनुः प्राह नातिहृष्टमना गुरुम्॥१६॥

होता के इस फेरफार से 'इला' नामकी कन्या हुई, उसे देखकर मनु ने अत्यन्त अप्रसन्न चित्त होकर वसिष्ठजी से कहा ॥१६॥

भगवन् किमिदं जातं कर्म वो ब्रह्मवादिनाम् ।
विपर्ययमहो कष्टं मैवं स्याद्ब्रह्मविक्रिया ॥१७॥

हे ब्रह्मन् ! यह क्या हुआ ! आप ऐसे ब्रह्मज्ञानियों के कर्म का उलटा फल हुआ, यह बड़े कष्टकी बात है, वैदिक मंत्रों में तो ऐसा विकार न होना चाहिये ॥ १७॥

यूयं मंत्रविदो युक्तास्तपसा दग्धकिल्बिषाः ।
कुतः संकल्पवैषम्यमनृतं विबुधेष्विव ॥१८॥

आप मंत्रवेत्ता, तपसे पाप-रहित तथा सावधानहो, फिर यह विपरीतकर्म कैसे होगया ? क्या देवताओं में भी असत्य का प्रचार होगया है ? या देवताओं की भांति क्या आप भी असत्य पर चलने लगे हैं ॥१८॥

तन्निशम्य वचस्तस्य भगवान्प्रपितामहः ।
होतुर्व्यतिक्रमं ज्ञात्वा बभाषे रविनंदनम् ॥१९॥

मनु के इस प्रकार वचन सुनकर होता का अपराध समझकर वसिष्ठजी उनसे (मनु से) कहने लगे ॥१९॥

एतत् संकल्पवैषम्यं होतुस्ते व्यभिचारतः ।
तथाऽपि साधयिष्ये ते सुप्रजस्त्वं स्वतेजसा॥२०॥

हे राजन् ! तेरे होता के फेरफार से ही यह सङ्कल्प में विषमता हुईहै, फिरभी मैं अपनी शक्ति से तुझे पुत्र दूँगा ॥२०॥

एवं व्यवसितो राजन्भगवान् सुमहायशाः ।
अस्तौषीदादिपुरुषमिलायाः पुंस्त्वकाम्यया॥२१॥

हे राजन् ! इस प्रकार निश्चय करके इला को पुरुष बनाने के लिये परम यशस्वी वसिष्ठजी ने भगवान् की स्तुति की ॥२१॥

तस्मै कामवरं तुष्टो भगवान् हरिरीश्वरः ।
ददाविलाऽभवत्तेन सुद्युम्नः पुरुषर्षभः ॥२२॥

भगवान् ने प्रसन्न होकर उनको इच्छित वर दिया जिसके कारण वह इला नामक कन्या से सुद्युम्न नामक पुत्र हुआ* ॥२२॥

---

*-इच्छा से जिनके बाण जाकर लौट आते थे, अग्नि, मेघ, वज्र, वायु ऐसे हथियार थे । उड़ते आकाश में थे, वेगवान् वायुयान, प्रचलित त्रिलोकों में बिना तार, तार थे । निशि-दिन बदल दें, पुत्र-पुत्री बदल दें, तन तक बदल दें, विज्ञान-भंडार थे । रात में बसादें नग्र, सिन्धु पै बना दें राह, प्यारे हिन्द ! तेरे पूत ऐसे शिल्पकार थे ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स एकदा महाराज विचरन् मृगयां वने ।
वृतः कतिपयामात्यैरश्वमारुह्य सैंधवम् ॥२३॥
प्रगृह्य रुचिरं चापं शरांश्च परमाद्भुतान् ।
दंशितोऽनुमृगं वीरो जगाम दिशमुत्तराम् ॥२४॥

हे महाराज ! एक दिन सुद्युम्न अनेक मन्त्रियों को साथ लिये हुए शिकार खेलने के लिये सिन्धु देश के घोड़े पर चढ़ कर, सुन्दर धनुष और अद्भुत बाण लेकर तथा कवच पहिन कर वन में गया और मृग के पीछे दौड़ता-दौड़ता उत्तरदिशा में जा पहुंचा ॥२३॥॥२४॥

स कुमारो वनं मेरोरधस्तात्प्रविवेश ह ।
यत्रास्ते भगवान् रुद्रो रममाणः सहोमया ॥२५॥

उस राजकुमार ने सुमेरु के नीचे बनमें प्रवेश किया कि जिसमें महादेवजी, पार्वतीजी के साथ विहार किया करते हैं ॥२५॥

तस्मिन् प्रविष्ट एवासौ सुद्युम्नः परवीरहा ।
अपश्यत् स्त्रियमात्मानमश्वं च वडवां नृप ॥२६॥

वह शत्रुओं को मारने वाला सुद्युम्न उस बनमें प्रवेश करते ही अपने को स्त्री-रूप में देखने लगा और हे राजन् ! उसने यह भी देखा कि घोड़ा भी घोड़ी बन गया है ॥ २६ ॥

तथा तदनुगाः सर्वे आत्मलिंगविपर्ययम् ।
दृष्ट्वा विमनसोऽभूवन् वीक्षमाणाः परस्परम् ॥२७॥

उसी प्रकार उसके साथीभी अपने को स्त्रीरूप देखकर उदास होतेहुए एक-दूसरेका मुंह ताकनेलगे।

राजोवाच

कथमेवंगुणो देशः केन वा भगवन् कृतः ।
प्रश्नमेनं समाचक्ष्व परं कौतूहलं हि नः ॥२८॥

परीक्षित बोले-हे महाराज ! उस प्रदेश में वैसा गुण कैसे और किसके करने से हुआ ? इस बात को बतलाइये, मुझे बड़ाही आश्चर्य है ॥२८॥

श्रीशुक उवाच

एकदा गिरिशं द्रष्टुमृषयस्तत्र सुव्रताः ।
दिशो वितिमिराभासाः कुर्वंतः समुपागमन् ॥२९॥

शुकदेवजी बोले-एक बार अपनी कान्ति से दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए शुद्ध व्रतधारी ऋषि श्रीमहादेवजी के दर्शन करने के लिये उस बनमें जा पहुंचे ॥२९॥

तान् विलोक्यांबिका देवी विवासा व्रीडिता भृशम् ।
भर्तुरंकात् समुत्थाय नीवीमाश्वथ पर्यधात् ॥३०॥

उन्हें देखकर वस्त्र-हीन पार्वतीजी ने अत्यन्त लज्जा-पूर्वक महादेवजी की अङ्क से उठकर शीघ्रही वस्त्र धारण कर लिया ॥३०॥

ऋषयोऽपि तयोर्वीक्ष्य प्रसंगं रममाणयोः ।
निवृत्ताः प्रययुस्तस्मान्नरनारायणाश्रमम् ॥३१॥

ऋषि भी उस समय शिव-शिवा रमण का चरित्र देखकर, कलुषित चित्त के साथ नर-नारायण के आश्रम को लौट आये ॥३१॥

तंदिदं भगवानाह प्रियायाः प्रियकाम्यया ।
स्थानं यः प्रविशेदेतत् स वै योषिद्भवेदिति ॥३२॥

उस समय पार्वतीजी को प्रसन्न करने के लिये महादेवजी ने कहा कि जो इस स्थानमें आयेगा, वही स्त्री हो जायगा ॥ ३२ ॥

तत ऊर्ध्वं वनं तद्वै पुरुषा वर्जयंति हि ।
सा चानुचरसंयुक्ता विचचार वनाद्वनम् ॥३३॥

उस दिनसे पुरुषों ने उस बनमें जाना छोड़ दिया, वह 'इला' स्त्री उस दिनसे अपनी अनुचरियों के साथ एक बनसे दूसरे में, दूसरे से तीसरे बन में फिरने लगी ॥३३॥

अथ तामाश्रमाभ्याशे चरंतीं प्रमदोत्तमाम् ।
स्त्रीभिः परिवृतां वीक्ष्य चकमे भगवान् बुधः ॥३४॥

उस उत्तम स्त्री को अन्य स्त्रियों के साथ विचरता हुआ देखकर, भगवान् बुध उसपर आसक्त होगये ॥३४॥

सापि तं चकमे सुभ्रूः सोमराजसुतं पतिम् ।
स तस्यां जनयामास पुरूरवसमात्मजम् ॥३५॥

और उस सुन्दर भृकुटि वाली इलाने भी चंद्र पुत्र (बुध) को वरण करनेकी इच्छा की, फिर बुध द्वारा उससे पुरूरुवा नामक पुत्र हुआ ॥३५॥

एवं स्त्रीत्वमनुप्राप्तः सुद्युम्नो मानवो नृपः ।
सस्मार स्वकुलाचार्यं वसिष्ठमिति शुश्रुम ॥३६॥

हे राजन् ! इस प्रसंग में ऐसा सुनाहै कि इस प्रकार स्त्री रूप पाया हुआ मनु-पुत्र सुद्युम्न कुछ दिनों पश्चात् अपने कुलाचार्य वसिष्ठजीको स्मरण करने लगा ॥३६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स तस्य तां दशां दृष्ट्वा कृपया भृशपीडितः ।
सुद्युम्नस्या शयन् पुंस्त्वमुपाधावत शंकरम् ॥३७॥

पीड़ित सुद्युम्न की यह गति देखकर उसे पुरुष बनाने की इच्छा से, वसिष्ठजी ने श्रीमहादेवजी का आराधन किया ॥३७॥

तुष्टस्तस्मै स भगवानृषये प्रियमावहन् ।
स्वां च वाचमृतां कुर्वन्निद माह विशां पते ॥३८॥

श्रीमहादेवजी उन ऋषि वसिष्ठजी पर प्रसन्न होकर उसका कल्याण तथा अपनी वाणी सिद्ध करने के लिये यह वचन कहने लगे ॥३८॥

मासं पुमान् स भविता मासं स्त्री तव गोत्रजः ।
इत्थं व्यवस्थया कामं सुद्युम्नोऽवतु मेदिनीम् ३९॥

यह तुम्हारा पुत्र सुद्युम्न एक माह तक पुरुष और एक माह तक स्त्री रहेगा और इस व्यवस्था से यह भली भांति पृथ्वी का पालन करे ॥३९॥

आचार्यानुग्रहात् कामं लब्ध्वा पुंस्त्वं व्यवस्थया ।
पालयामास जगतीं नाभ्यनंदन् स्म तं प्रजाः॥४०॥

आचार्य वसिष्ठजीके अनुग्रहसे पुरुषत्व पाकर वह सुद्युम्न इस व्यवस्था से पृथ्वीका पालन करने लगा, परन्तु उसे एक महीने तक (स्त्री होजानेपर) छिपकर रहना पड़ता था, इसलिये वह प्रजा को रुचिकर न लगा ॥४०॥

तस्योत्कलो गयो राजन् विमलश्च सुतास्त्रयः ।
दक्षिणापथराजानो बभूवुर्धर्मवत्सलाः ॥४१॥

हे राजन्! उस सुद्युम्न के उत्कल, गय और विमल नाम के तीन पुत्र हुए जो दक्षिण देश के धर्मात्मा राजा हुए ॥४१॥

ततः परिणते काले प्रतिष्ठानपतिः प्रभुः ।
पुरूरवस उत्सृज्य गां पुत्राय गतो वनम् ॥४२॥

फिर बहुत काल बीतनेपर प्रतिष्ठान-पुर(झूंसी प्रयाग) का स्वामी सुद्युम्न अपने उदरसे उत्पन्न हुए पुरुरवा को राज्य देकर वनमें चला गया ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवते नवमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

दूसरा अध्याय

(सूर्यवंश)

श्रीशुक उवाच

एवं गतेऽथ सुद्युम्ने मनुर्वैवस्वतः सुते ।
पुत्र कामस्तपस्तेपे यमुनायां शतं समाः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–इसप्रकार अपने पुत्र सुद्युम्न के बनमें चले जाने पर वैवस्वत मनु ने दूसरे पुत्रके लिये यमुनाजी पर सौवर्ष तक तपस्या की ॥१॥

ततोऽयजन्मनुर्देवमपत्यार्थं हरिं प्रभुम् ।
इक्ष्वाकुपूर्वजान् पुत्रान् लेभे स्वसदृशान् दश॥ २ ॥

और सन्तान के लिये भगवान् का आराधन किया, उससे उन्हीं के सतान इक्ष्वाकु आदि दस पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २ ॥

पृषध्रस्तु मनोः पुत्रो गोपालो गुरुणा कृतः ।
पालयामास गा यत्तो रात्र्यां वीरासनव्रतः ॥ ३ ॥

मनु-पुत्र पृषध्रको गुरु वसिष्ठने गौओंके पालन पर नियत कर रक्खाथा, वह रातमें सावधानी से वीरासन लगाकर गौओं की रक्षा करने लगा ॥३॥

एकदा प्राविशद्गोष्ठं शार्दूलो निशि वर्षति ।
शयाना गाव उत्थाय भीतास्ता बभ्रमुर्व्रजे ॥ ४ ॥

एक रातमें वर्षा होते समय एक सिंह गाय-बाड़ी में आ पहुंचा, उसके भयसे सोती हुई गायें चौंक कर इधर-उधर भागने लगीं ॥४॥

एकां जग्राह बलवान् सा चुक्रोश भयातुरा ।
तस्यास्तत्क्रंदितं श्रुत्वा पृषध्रोऽभिससार ह ॥ ५ ॥

उस बलवान् सिंहने उनमेंसे एक गौको पकड़ लिया, जब वह चिल्लाने लगी तब उसकी पुकार सुनकर पृषध्र हाथ में तलवार लेकर शीघ्रता से गाय के निकट पहुंचा ॥५॥

खड्गमादाय तरसा प्रलीनोडुगणे निशि ।
अजानन्नहनद्बभ्रोः शिरः शार्दूलशंकया ॥ ६ ॥

रातमें नक्षत्र भी न चमकते थे, इसलिये अंधकारमें सिंहके धोखेसे तलवार लेकर पृषध्र ने अनजाने एक गाय का सिर काट डाला ॥६॥

व्याघ्रोऽपि वृकणश्रवणो निस्त्रिंशाग्राहतस्ततः ।
निश्चक्राम भृशं भीतो रक्तं पथि समुत्सृजन्॥ ७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तलवार की नोकसे सिंहका कान भी कट गया। इसलिये वह भयभीत होकर राह में लोहू गिराता हुआ निकल भागा ॥७॥

मन्यमानो हतं व्याघ्रं पृषध्रः परवीरहा।
अद्राक्षीत्स्वहतां बभ्रुं व्युष्टायां निशि दुःखितः॥८॥

पृषध्रने यही समझा कि मैंने सिंहको मारा है, परन्तु जब उसने दूसरे दिन प्रभात में देखा तो अपने हाथ से गौ-वध का होना समझ कर बड़ा खेद किया ॥८॥

तं शशाप कुलाचार्यः कृतागसमकामतः।
न क्षत्रबंधुः शूद्रस्त्वं कर्मणा भवितामुना ॥ ९ ॥

हे महाराज! अनजाने अपराध करनेवाले पृषध्र को गुरु वसिष्ठने यह शाप दिया कि इस पाप के कारण तू क्षत्रिय-जाति से गिरकर शूद्र होजा ॥९॥

एवं शप्तस्तु गुरुणा प्रत्यगृह्णात्कृतांजलिः।
अधारयद्व्रतं वीर ऊर्ध्व रेता मुनिप्रियम्॥१०॥

जब इस प्रकार गुरुने शापदिया, तब वह हाथ जोड़कर शापको सिर पर धारण करके उसी दिन से मुनियों को प्रिय लगने वाला व्रत ब्रह्मचर्य-पूर्वक करने लगा ॥१०॥

वासुदेवे भगवति सर्वात्मनि परेऽमले।
एकांतित्वं गतो भक्त्या सर्वभूतसुहृत्समः ॥११॥
विमुक्तसंगः शांतात्मा संयताक्षोऽपरिग्रहः।
यदृच्छयोपपन्नेन कल्पयन् वृत्तिमात्मनः ॥१२॥

सर्वात्मा, सर्वोपर, निर्मल भगवान् वासुदेवकी भक्ति करने से एकाग्र चित्त, प्राणी मात्र का मित्र, समदर्शी, जितेंद्रिय, संग-रहित, परिग्रह रहित, और शान्त अन्तःकरण वाला वह पृषध्र दैवेच्छा से जो कुछ भी मिल जाता उसी पर निर्वाह करने लगा ॥ ११ ॥॥१२॥

आत्मन्यात्मानमाधाय ज्ञानतृप्तः समाहितः।
विचचार महीमेतां जडांधबधिराकृतिः ॥१३॥

ज्ञानसे तृप्त पृषध्र अपने जीवात्माको परमात्मा के स्वरूपमें धरकर, समाधि लगाये हुए जड़, अंधे और बहरे के समान रूप किये हुए पृथ्वी पर विचरने लगा ॥१३॥

एवं वृत्तो वनं गत्वा दृष्ट्वा दावाग्निमुत्थितम्।
तेनोपयुक्तकरणो ब्रह्म प्राप परं मुनिः ॥१४॥

ऐसा व्रत लिये हुए वह बनमें चला गया और वहाँ उठी हुई दावानल देखकर, उसमें अपने को जलाकर परब्रह्म को प्राप्त होगया ॥ १४ ॥

कविः कनीयान् विषयेषु निःस्पृहो विसृज्य राज्यं सह बंधुभिर्वनम्। निवेश्य चित्ते पुरुषं स्वरोचिषं विवेश कैशोरवयाः परं गतः ॥१५॥

कवि नामक मनुका सबसे छोटा पुत्र बालकपन ही में सब प्रकार के विषय छोड़कर बन्धुओं तथा राज्य को त्यागकर और स्वयं प्रकाश हरिको चित्तमें धारण कर परमेश्वरको प्राप्त होगया ॥१५॥

करूषान्मानवादासन् कारूषाः क्षत्रजातयः।
उत्तरापथगोप्तारो ब्रह्मण्या धर्मवत्सलाः ॥१६॥

मनु के पुत्र करूष से कारूष नामक क्षत्रियों की जाति हुई, वे सब ब्राह्मणों के भक्त और धर्म प्रिय थे तथा उत्तर में राज्य करते थे ॥१६॥

धृष्टाद्धार्ष्टमभूत् क्षत्रं ब्रह्मभूयं गतं क्षितौ।
नृगस्य वंशः सुमतिर्भूतज्योतिस्ततो वसुः ॥१७॥

धृष्ट से धार्ष्ट नामक क्षत्रिय-वंश उत्पन्न हुआ, उनमें से बहुत से पृथ्वी पर ब्राह्मण होगये, नृग का पुत्र सुमति हुआ, उसके भूतज्योति पुत्र हुआ और भूतज्योति के वसु उत्पन्न हुआ ॥१७॥

वसोः प्रतीकस्तत्पुत्र ओघवानोघवत्पिता।
कन्या चौघवती नाम सुदर्शन उवाह ताम् ॥१८॥

वसुका पुत्र प्रतीकहुआ, प्रतीक के ओघवान और ओघवान का पुत्र भी ओघवान हुआ तथा ओघवती कन्या हुई, इस कन्याका सुदर्शनके साथ विवाह हुआ ॥१८॥

चित्रसेनो नरिष्यंताद्दक्षस्तस्य सुतोऽभवत्।
तस्य मीढ्वांस्ततः कूर्च इंद्रसेनस्तु तत्सुतः ॥१९॥
वीतिहोत्रस्त्विंद्रसेनात्तस्य सत्यश्रवा अभूत्।
उरुश्रवाः सुतस्तस्य देवदत्तस्ततोऽभवत् ॥२०॥

मनु-पुत्र नरिष्यन्तके चित्रसेन नामक पुत्रहुआ उसके दक्ष, दक्ष के मीढ्वान, उसके कूर्च, कूर्च के इन्द्रसेन, इन्द्रसेनके वीतिहोत्र, वीतिहोत्र के सत्यश्रवा, सत्यश्रवा के उरुश्रवा, उरुश्रवा के देवदत्त नाम का पुत्र हुआ ॥१९॥॥२०॥

ततोऽग्निवेश्यो भगवानग्निः स्वयमभूत् सुतः।
कानीनइति विख्यातो जातूकर्ण्योमहा नृषिः२१॥

इस देवदत्त के घर में अग्नि का अवतार हुआ उनका अग्निवेश्य नाम पड़ा, यह कारी कन्या से उत्पन्नहुए, इसलिये इनको कानीनभी कहतेहैं और इनका नाम महात्मा जातुकर्ण भी प्रसिद्ध है ॥॥२१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ततो ब्रह्मकुलं जातमाग्निवेश्यायनं नृप ।
नरिष्यंतान्वयः प्रोक्तो दिष्टवंशमतः शृणु ॥२२॥

इन अग्निवेश्य के वंशमें अग्नि वैश्यायन नामक ब्राह्मण-वंश हुआ, यह नरिष्यन्त का वंश कहा गया है, अब दिष्टका वंश कहता हूँ, सो सुनो ॥ २२॥

नाभागो दिष्टपुत्रोऽन्यः कर्मणा वैश्यतां गतः ।
भलंदनः सुतस्तस्य वत्सप्रीतिर्भलंदनात् ॥२३॥

दिष्ट के नाभाग नामक पुत्र हुआ, यह दूसरा ही नाभागहै (आगे चलकर दूसरे नाभागका वर्णन आयेगा, इसे वही न समझना चाहिये) यह कर्म से वैश्य होगया, नाभाग के भलन्दन, भलन्दन के वत्सप्रीति नाम का पुत्र हुआ ॥२३॥

वत्सप्रीतेः सुतः प्रांशुस्तत्सुतं प्रमतिं विदुः ।
खनित्रः प्रमतेस्तस्माच्चाक्षुषोऽथ विविंशतिः॥२४॥

वत्सप्रीतिके प्रांशु पुत्रहुआ, उसका पुत्र प्रमिति हुआ, प्रमितिका पुत्र खनित्रहुआ, खनित्रका चाक्षुष और चाक्षुष का पुत्र विविंशति हुआ ॥ २४ ॥

विविंशतिसुतो रंभः खनिनेत्रोऽस्य धार्मिकः ।
करंधमो महाराज तस्यासीदात्मजो नृपः ॥२५॥
तस्यावीक्षित्सुतो यस्य मरुत्तश्चक्रवर्त्यभूत् ।
संवर्तोऽयाजयद्यं वै महायोग्यंगिरः सुतः ॥२६॥

विविंशति का पुत्र रंभ, रंभ का पुत्र धर्मात्मा खनिनेत्र, खनिनेत्र का पुत्र करंधम, करंधम का पुत्र अवीक्षित हुआ, उसका पुत्र चक्रवर्त्ति मरुत हुआ, हे राजन् ! अङ्गिराके पुत्र महायोगी संवर्त्तने मरुत से यज्ञ करवाया ॥ २५॥२६ ॥

मरुत्तस्य यथा यज्ञो न तथाऽन्यस्य कश्चन ।
सर्वं हिरण्मयं त्वासीद्यत्किंचिच्चास्य शोभनम्२७॥

जैसा यज्ञ राजा मरुत का हुआ वैसा किसी दूसरे का नहीं हुआ, इसके यज्ञमें जो कुछभी पात्र आदि थे वे सभी शोभायमान् स्वर्ण के थे ॥२७॥

अमाद्यदिंद्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः ।
मरुतः परिवेष्टारो विश्वेदेवाः सभासदः ॥२८॥

इसके यज्ञमें सोमपानसे इन्द्र और दक्षिणा से ब्राह्मण प्रसन्न हुए, इसके यज्ञ में मरुत् देवता तो परोसने वाले थे और विश्वेदेवा सभासद थे ॥२८॥

मरुत्तस्य दमः पुत्रस्तस्यासीद्राज्यवर्धनः ।
सुधृतिस्तत्सुतो जज्ञे सौधृतेयो नरः सुतः ॥२९॥

मरुतके दम नामक पुत्रहुआ, दमके राज्यवर्द्धन राज्यवर्द्धनके सुधृति और सुधृतिके नर पुत्रहुआ ।

तत्सुतः केवलस्तस्माद्बंधुमान् वेगवांस्ततः ।
बंधुस्तस्याभवद्यस्य तृणबिंदुर्महीपतिः ॥३०॥

सुधृतिके केवल, केवलके बन्धुमान, बन्धुमान् के वेगवान्, वेगवान् के बन्धु, बन्धु के तृणविन्दु नामक पुत्र हुआ ॥३०॥

तं भेजेऽलंबुषा देवी भजनीयगुणालयम् ।
वराप्सरा यतः पुत्राः कन्या चेडविडाऽभवत्॥३१॥

इस अत्यन्त गुणवान् तृणविन्दु को अलम्बुषा नाम की अप्सराने वरणकिया, इस अप्सरा से इस के यहाँ पुत्र हुए और इड़विड़ा नामकी कन्याहुई॥

तस्यामुत्पादयामास विश्रवा धनदं सुतम् ।
प्रादाय विद्यां परमामृषिर्योगेश्वरात्पितुः ॥३२॥

इस कन्या से विश्रवा द्वारा कुबेर नामक पुत्र हुआ,वे विश्रवा ऋषि अपने पिता महान् योगेश्वर पुलस्त्य ऋषि से उत्तम विद्या को पढ़े थे ॥३२॥

विशालः शून्यबंधुश्च धूम्रकेतुश्च तत्सुताः ।
विशालो वंशकृद्राजा वैशाली निर्ममे पुरीम्॥३३॥

तृणविन्दुके विशाल, शून्यबन्धु और धूम्रकेतु-यह तीन पुत्र उस अप्सरा से उत्पन्नहुए, वंशरक्षक विशाल राजाने वैशाली नामक नगर बसाया॥३३॥

हेमचंद्रः सुतस्तस्य धूम्राक्षस्तस्य चात्मजः ।
तत्पुत्रात्संयमादासीत्कृशाश्वः सहदेवजः ॥३४॥

विशालके हेमचन्द्र, हेमचन्द्रके धूम्राक्ष,धूम्राक्ष के कृशाश्व और देवज-ये दो पुत्र हुए ॥३४॥

कृशाश्वात्सोमदत्तोऽभूद्योऽश्वमेधैरिडस्पतिम् ।
इष्ट्वा पुरुषमापाग्र्यां गतिं योगेश्वराश्रितः ॥३५॥

कृशाश्वके सोमदत्त नामका पुत्र हुआ जो अश्वयज्ञों द्वारा भगवान् का पूजन करके योगेश्वरों की शरण से मोक्ष को पा गया ॥३५॥

सौमदत्तिस्तुसुमतिस्तत्सुतो जनमेजयः ।
एते वैशाल भूपालास्तृणबिंदोर्यशोधराः ॥३६॥

सोमदत्त के सुमति, सुमतिके जन्मेजय नामक पुत्र हुआ, विशाल-वंश के यह राजा तृणविन्दु के यश को धारण करने वाले हुए ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते नवमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तीसरा अध्याय

(मनु-तनय शर्य्याति का वंश-कीर्तन)

श्रीशुक उवाच

शर्यातिर्मानवो राजा ब्रह्मिष्ठः स बभूव ह ।
यो वा अंगिरसां सत्रे द्वितीयमह ऊचिवान्॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-मनुका पुत्र राजा शर्याति वेद-तत्व का जानने वाला था, उसने अङ्गिरा कुल के ब्राह्मणों के यज्ञ में दूसरे दिनका करने योग्य कर्म कहा था ॥१॥

सुकन्या नाम तस्यासीत् कन्या कमललोचना ।
तया सार्धं वनगतो ह्यगमच्च्यवनाश्रमम् ॥ २ ॥

उसके यहाँ कमलके समान नेत्र वाली सुकन्या नाम की पुत्री हुई, राजा उस कन्याको साथ लेकर च्यवन ऋषि के आश्रम में गया ॥ २ ॥

सा सखीभिः परिवृता विचिन्वंत्यंघ्रिपान्वने ।
वल्मीकरंध्रे ददृशे खद्योते इव ज्योतिषी ॥ ३ ॥

वह कन्या सखियोंसहित वनमें वृक्षोंको देखती विचरती हुई एक बाँबी के निकट पहुंची, उसके छेदमें जुगनू के समान चमकती हुई ज्योति उसे दिखाई दी ॥ ३ ॥

ते दैवचोदिता बाला ज्योतिषी कण्टकेन वै ।
अविध्यन्मुग्धभावेन सुस्रावासृक् ततो बहु ॥ ४ ॥

इस भोले भाव वाली कन्या ने दैवी प्रेरणा के कारण काँटे से इन ज्योतियों को बींध डाला, उन में से बहुत सा लोहू बह निकला ॥४॥

शकृन्मूत्रनिरोधोऽभूत् सैनिकानां च तत्क्षणात् ।
राजर्षिस्तमुपालक्ष्य पुरुषान् विस्मितोऽब्रवीत् ५॥

उसी समय समस्त सेना का मल-मूत्र त्याग बन्द होगया; यह बात देखकर राजा ने चकित होकर अपने मनुष्यों से पूछा ॥५॥

अप्यभद्रं न युष्माभिर्भार्गवस्य विचेष्टितम् ।
व्यक्तं केनापि नस्तस्य कृतमाश्रमदूषणम् ॥ ६ ॥

कि तुम लोगों ने कुछ च्यवन ऋषि का अपराध तो नहीं किया ? हममें से किसी ने अवश्यही उनके आश्रम में उपद्रव किया होगा ॥६॥

सुकन्या प्राह पितरं भीता किंचित् कृतं मया ।
द्वे ज्योतिषी अजानंत्या निर्भिन्ने कंटकेन वै ॥ ७ ॥

सुकन्या ने डरते हुए अपने पिता से कहा कि हे महाराज ! मैंने यह अपराध किया है कि अनजाने दो चमकतेहुए पदार्थोंको कांटेसे छेद डालाहै॥

दुहितुस्तद्वचः श्रुत्वा शर्यातिर्जातसाध्वसः ।
मुनिं प्रसादयामास वल्मीकांतर्गतं शनैः ॥८॥

कन्या की बात सुनकर शर्याति राजा घबराया और बाँबी में बैठे हुए च्यवन ऋषिके पास जाकर धीरे-धीरे क्षमा माँगने लगा ॥ ८ ॥

तदभिप्रायमाज्ञाय प्रादाद्दुहितरं मुनेः ।
कृच्छ्रान्मुक्तस्तमामंत्र्य पुरं प्रायात्समाहितः॥ ९ ॥

वहाँ बात-चीत से ऋषि का भाव समझ कर राजा ने अपनी कन्या उन्हें देदी, फिर कष्टसे छूटे हुए राजा च्यवनसे आज्ञा माँगकर सावधानीपूर्वक अपने नगर में आया ॥९॥

सुकन्या च्यवनं प्राप्य पतिं परमकोपनम् ।
प्रीणयामास चित्तज्ञा अप्रमत्ताऽनुवृत्तिभिः॥१०॥

महान् क्रोधी च्यवन ऋषि से व्याही हुई और उनके मनके भावको जानने वाली सुकन्याने सावधान होकर सेवा करके पतिको प्रसन्न किया॥१०॥

कस्यचित्त्वथ कालस्य नासत्यावाश्रमागतौ ।
तौ पूजयित्वा प्रोवाच वयो मे दत्तमीश्वरौ ॥११॥

कई एक दिन बीतने पर अश्विनीकुमार उस आश्रम में आये, उनका पूजन करके च्यवन ऋषि ने कहाकि हे उत्तम वैद्यो ! मुझे यौवनावस्था दो।

ग्रहं ग्रहीष्ये सोमस्य यज्ञे वामप्यसोमपोः ।
क्रियतां मे वयोरूपं प्रमदानां यदीप्सितम् ॥१२॥

मेरी अवस्था और रूप को स्त्रियों के योग्य कर दोगे तो मैं भी तुमको जो अबतक यज्ञमें सोम का भाग नहीं मिलता, वह दे दूँगा ॥१२॥

बाढमित्यूचतुर्विप्रमभिनंद्य भिषक्तमौ ।
निमज्जतां भवानस्मिन् ह्रदे सिद्धविनिर्मिते ॥१३॥

श्रेष्ठ वैद्य अश्विनीकुमारोंने इस बातको स्वीकार करके आदर-पूर्वक कहा कि-आप इस सिद्ध लोगों के बनाये हुए कुण्ड में गोता लगाइये ॥१३॥

इत्युक्त्वा जरया ग्रस्तदेहो धमनिसंततः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हृदं प्रवेशितोऽश्विभ्यां वलीपलितविप्रियः ॥१४॥

इस प्रकार कहकर वृद्धावस्था में ग्रस्त च्यवन ऋषि को कि जिनकी देहपर केवल नसें ही दिखाई देती थीं और जो सफ़ेद पके हुए बालों से अप्रिय से दीखते थे-अश्विनीकुमारों ने कुण्ड में प्रवेश कराया और आपभी प्रविष्ट हुए ॥१४॥

पुरुषास्त्रय उत्तस्थुरपीच्या वनितापियाः ।
पद्मस्रजः कुंडलिनस्तुल्यरूपाः सुवाससः ॥१५॥

कुछ देर में कुंडमें से तीन पुरुष निकले जो स्त्रियों को प्रिय लगनेयोग्य अधिक सुन्दर, कमलों की माला, कुण्डल तथा स्वच्छ वस्त्र धारण किये हुये एकसे दीख पड़ते थे ॥१५॥

तान्निरीक्ष्य वरारोहा सरूपान् सूर्यवर्चसः ।
अजानती पतिं साध्वी अश्विनौ शरणं ययौ ॥१६॥

उन सूर्य के समान तेजस्वी पुरुषों को देखकर सुकन्या अपने पति को न पहिचान कर अश्विनी-कुमार के शरण गई ॥१६॥

दर्शयित्वा पतिं तस्यै पातिव्रत्येन तोषितौ ।
ऋषिमामंत्र्य ययतुर्विमानेन त्रिविष्टपं ॥१७॥

उसके पतिव्रतसे प्रसन्न होकर अश्विनीकुमार उसे उसका पति दिखला कर, ऋषि से विदा माँग कर और प्रणाम करके स्वर्ग को चले गये ॥१७॥

यक्ष्यमाणोऽथ शर्यातिश्च्यवनस्याश्रमं गतः ।
ददर्श दुहितुः पार्श्वे पुरुषं सूर्यवर्चसम् ॥१८॥

एक दिन राजा शर्याति ने यज्ञका सङ्कल्प कर के च्यवनाश्रम में जाकर अपनी कन्या के सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष देखा ॥१८॥

राजा दुहितरं प्राह कृतपादाभिवंदनाम् ।
आशिषश्चाप्रयुंजानो नाति प्रीतमना इव ॥१९॥

सुकन्या ने राजाको आकर प्रणाम किया, फिर भी राजा ने उसे आशीर्वाद न दिया और विशेष उदास होकर अपनी पुत्री से कहने लगा कि ॥१९॥

चिकीर्षितं ते किमिदं पतिस्त्वया प्रलंभितो लोकनमस्कृतो मुनिः । त्वं यज्ञराग्रस्तमसत्यसंमतं विहाय जारं भजसेऽमुमध्वगम् ॥२०॥

री असति ! तूने यह क्या किया ? जिन ऋषि वर को तीनों लोक प्रणाम करते हैं, उनके साथ छल कर डाला और वृद्धपन से अप्रिय लगने वाले पति को त्याग कर, इस किसी राह चलते हुए जार पुरुष का सेवन करने लगी ॥२०॥

कथं मतिस्तेऽवगतान्यथा सतां कुलप्रसूते कुल दूषणं त्विदम् । बिभर्षि जारं यदपत्रपा कुलं पितुश्च भर्तुश्च नयस्यधस्तमः ॥२१॥

हे सत्पुरुषों की वंशजे ! उत्तम कुल में जन्म लेकर भी तेरी बुद्धि कैसे विपरीत होगई ? जो निर्लज्ज बनकर जार पुरुषों का संग कर बैठी, यह तूने कुल को कलङ्क लगाया है, इसलिये तू पिता तथा पति दोनों के कुलों को नरकमें गिराती है ॥

एवं ब्रुवाणं पितरं स्मयमाना शुचिस्मिता ।
उवाच तात जामाता तवैष भृगुनंदनः ॥२२॥

इस भांति कहते हुए अपने पिता से सुकन्या कहने लगी कि-"हे पिताजी ! यह आपके दामाद च्यवन ऋषि ही हैं" ॥२२॥

शशंस पित्रे सत्सर्वं वयोरूपाभिलंभनम् ।
विस्मितः परमप्रीतस्तनयां परिषस्वजे ॥२३॥

फिर जिस प्रकारसे च्यवन ऋषिको रूप तथा यौवन मिला था, उसका सारा हाल सुकन्या ने पिताको सुनाया, तब राजा चकित होकर प्रसन्नता के साथ अपनी पुत्री से मिला ॥२३॥

सोमेन याजयन् वीरं ग्रहं सोमस्य चाग्रहीत् ।
असोमपोरप्यश्विनोश्च्यवनः स्वेन तेजसा ॥२४॥

फिर वीर राजासे सोम यज्ञ करवातेहुए च्यवन ऋषि ने अपने तेजके बलसे सोम-भाग न पानेवाले अश्विनीकुमारों को सोमसे भरा हुआ पात्र दिया ॥

हंतुं तमाददे वज्रं सद्योमन्युरमर्षितः ।
सवज्रं स्तंभयामास भुजमिंद्रस्य भार्गवः ॥२५॥

इन्द्र ने उसी समय इस बातको सहन न कर के क्रोधित होकर, च्यवन ऋषि को मारने के लिये वज्र उठाया, परन्तु ऋषि ने वज्र सहित इन्द्र के हाथ को आगे बढ़ने से रोक दिया ॥२५॥

अन्वजानंस्ततः सर्वे ग्रहं सोमस्य चाश्विनोः ।
भिषजाविति यत्पूर्वं सोमाहुत्या बहिष्कृतौ ॥२६॥

उस दिनसे सब देवताओं ने अश्विनीकुमारों को सोम-भाग का अधिकारी मान लिया, पहले देवतागण उनको वैद्यक का कर्म करने के कारण अपनी जाति से अलग किये थे ॥२६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तानबर्हिरानर्तो भूरिषेण इति त्रयः ।
शर्यातेरभवन् पुत्रा आनर्ताद्रेवतोऽभवत् ॥२७॥

राजा शर्याति के उत्तानबर्हि, आनर्त्त और भूरिषेण-ये तीन पुत्रहुए, आनर्त्तका पुत्र रैवतहुआ।

सोऽन्तः समुद्रे नगरीं विनिर्माय कुशस्थलीम् ।
आस्थितोऽभुंक्त विषयानानर्तादीनरिंदम ॥२८॥

उस राजा रैवत ने समुद्रके बीच में कुशस्थली नाम की नगरी बसाकर उसमें निवास करते हुए आनर्त्त आदि देशों का भोग किया ॥२८॥

तस्य पुत्रशतं जज्ञे ककुद्म्यिज्येष्ठमुत्तमम् ।
ककुद्मी रेवतीं कन्यां स्वामादाय विभुं गतः ॥२९॥
कन्यावरं परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकमपाद्रुतम् ।
आवर्तमाने गांधर्वे स्थितोऽलब्धक्षणः क्षणम्॥३०॥

इस रैवत राजा के यहाँ सौ उत्तम पुत्र हुए, जिनमें ककुद्मी ज्येष्ठ पुत्र था, रैवत राजा अपनी रेवती नाम की कन्या को लेकर योग्य वर पूछनेके लिये ब्रह्म-लोक में गया, पर वहाँ गायन हो रहा था, इसलिये अवकाश न मिलने के कारण उसे कुछ देर तक बैठना पड़ा ॥२९॥३०॥

तदंत आद्यमानम्य स्वाभिप्रायं न्यवेदयत् ।
तच्छ्रुत्वा भगवान् ब्रह्मा प्रहस्य तमुवाच ह॥३१॥

हे राजन्! जब गाना होचुका तब उसने प्रणाम करके ब्रह्माजीसे अपना प्रयोजन कहा, तब ब्रह्माजी ने यह सुनकर हँसते हुए कहा कि ॥३१॥

अहो राजन् निरुद्धास्ते कालेन हृदि ये कृताः ।
तत्पुत्रपौत्रनप्तॄणां गोत्राणि च न शृण्महे ॥३२॥

हे राजन्! तूने जिन-जिन वरोंके लिये विचार किया है वे तो सब नष्ट होचुके हैं, इतना ही नहीं वरन् उनके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्रों के वंशजी भी नष्ट होचुके हैं, क्योंकि सत्ताईस युग होचुके हैं ॥३२॥

कालोभियातस्त्रिणवचतुर्युगविकल्पितः ।
तद्गच्छ देवदेवांशो बलदेवो महाबलः ॥३३॥
कन्यारत्नमिदं राजन् नररत्नाय देहि भोः ।
भुवो भारावताराय भगवान् भूतभावनः ॥३४॥
अवतीर्णो निजांशेन पुण्यश्रवणकीर्तनः ।
इत्यादिष्टोऽभिवंद्याजं नृपः स्वपुरमागतः ॥३५॥

हे राजन्! अब तू पृथ्वी पर जा और अपनी रत्न के समान कन्या को श्रीकृष्ण भगवान् के अंश रूप मनुष्योंमें रत्नके समान महा बलधारी बल्देवजी को दे, जिनका यश कहने सुनने से मनुष्य पवित्र होजाता है, वे भूत मात्रके पालने वाले भगवान् अपने अंशों द्वारा भूमि का भार उतारने के लिये अवतार धारण करके आये हैं, जब ब्रह्माजी ने इस प्रकार आज्ञादी, तब राजा रेवत उन्हें प्रणाम करके अपने नगर को आया ॥३३॥३४॥३५॥

त्यक्तं पुण्यजनत्रासाद्भ्रातृभिर्दिक्ष्ववस्थितैः ।
सुतां दत्त्वाऽनवद्यांगीं बलाय बलशालिने ।
बदर्याख्यं गतो राजा तप्तुं नारायणाश्रमम् ॥३६॥

कि जहाँ से यक्षों के डर से उसके भाई नगरी को छोड़कर चले गये थे, फिर बलधारी बल्देवजी को अपनी सुन्दर कन्या देकर राजा श्रीनारायण के आश्रम (बद्रिकाश्रम) में तप करने के लिये गया ॥

इति श्रीमद्भागवते नवमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चौथा अध्याय

(नाभाग और अम्बरीष की कथा)

श्रीशुक उवाच

नाभागो नभगापत्यं यंततं भ्रातरः कविम् ।
यविष्ठं व्यभजन् दायं ब्रह्मचारिणमागतम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन्! नभग का पुत्र नाभाग हुआ, यह गुरु के यहाँ विद्या पढ़नेके लिये गया, तब इसके बड़े भाइयों ने सोचा कि यह तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहेगा, इसलिये उसे कोई भाग न देकर पिता का भाग आपस में बाँट लिया ॥१॥

भ्रातरोऽभाक्त किं मह्यं भजाम पितरं तव ।
त्वां ममार्यास्ततामाक्षुर्मा पुत्रक तदादृथाः ॥ २ ॥

जब नाभाग ने गुरु के यहाँ से आकर पूंछा कि-"हे भाइयो! मेरे भाग में आप लोगों ने क्या रक्खा है? तब उसके बड़े भाइयों ने उत्तर दिया कि तुम्हारे भाग में वृद्ध पिताजी हैं, नाभाग ने आ कर पिता से कहा कि मेरे भाइयों ने आपको मेरे भाग में रक्खा है, पिता ने कहा कि उनके कहने को तू मंज़ूर मत कर ॥२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इमे अंगिरसः सत्रमासतेऽद्य सुमेधसः ।
षष्ठं षष्ठमुपेत्याहः कवे मुह्यंति कर्मणि ॥ ३ ॥

मैं तुझे जीविका का उपाय बतलाता हूँ कि–हे कवि ! अभी यह अङ्गिरा गोत्र के विद्वान् ब्राह्मण अभिप्लव और पृष्ठ्य नामक यज्ञ कररहे हैं, परन्तु वे हर छठवें दिन कर्म करने में भूल जाते हैं ॥३॥

तांस्त्वं शंसय सूक्ते द्वे वैश्वदेवे महात्मनः ।
ते स्वर्यंतो धनं सत्रपरिशेषितमात्मनः ॥ ४ ॥

इसलिये तू उनके पास जा और विश्वेदेवों के दो सूक्त वहाँ कह, जिससे वे अपना यज्ञ समाप्त करके स्वर्ग में जाँयगे और यज्ञ में बचे हुए भाग को तुझे दे जायेंगे ॥४॥

दास्यंत्यथ ततो गच्छ तथा स कृतवान् यथा ।
तस्मै दत्त्वा ययुः स्वर्गं ते सत्रपरिशेषितम् ॥ ५ ॥

इसलिये तू उनके पास जा, यह सुनकर नाभाग ने वैसा ही किया, तब वे बचे हुए धन को उसे देकर स्वर्ग को चले गये ॥५॥

तं कश्चित्स्वीकरिष्यंतं पुरुषः कृष्णदर्शनः ।
उवाचोत्तरतोऽभ्येत्य ममेदं वास्तुकं वसु ॥ ६ ॥

उस धन के उठाते ही एक काले वर्ण का पुरुष उत्तर दिशा से आकर बोला कि–यज्ञ का बचा हुआ भाग मेरा है ॥६॥

ममेदमृषिभिर्दत्तमिति तर्हि स्म मानवः ।
स्यान्नौ ते पितरि प्रश्नः पृष्टवान् पितरं तथा ॥७॥

नाभाग ने कहा कि–यह धन ऋषि लोग मुझे दे गये हैं, तब वह पुरुष बोला कि–मेरे-तेरे इस विवाद के विषय में तू अपने पिता ही से पूछ, तब नाभाग ने पिता से पूछा ॥७॥

यज्ञवास्तुगतं सर्वमुच्छिष्टमृषयः क्वचित् ।
चक्रुर्विभागं रुद्राय स देवः सर्वमर्हति ॥ ८ ॥

पिता ने कहा कि–यज्ञ-भूमि का बचा हुआ द्रव्य भाग महादेवजी का है, ऐसा एक बार ऋषि लोग निश्चय कर चुके, इसलिये इस समस्त धनके अधिकारी रुद्र ही हैं ॥८॥

नाभागस्तं प्रणम्याहतवेश किल वास्तुकम् ।
इत्याह मे पिता ब्रह्मन् शिरसा त्वां प्रसादये॥९॥

तब नाभाग ने शिवजी से दण्डवत् करके कहा कि–हे ईश ! यह सब द्रव्य आपका है, ऐसा मेरे पिताजी ने कहाहै, इसलिये मैं सिर झुकाकर आप को प्रसन्न करता हूँ ॥९॥

यत्ते पिताऽवदद्धर्मं त्वं तु सत्यं प्रभाषसे ।
ददामि ते मंत्रदृशे ज्ञानं ब्रह्म सनातनम् ॥१०॥

रुद्रजी बोले–तेरे पिता ने धर्म की बात कही और तूने भी सत्य कहा है, इसलिये मन्त्र के द्रष्टा तुझको मैं सनातन ब्रह्म-ज्ञान दूँगा ॥१०॥

ग्रहाण द्रविणं दत्तं मत्सत्रे परिशेषितम् ।
इत्युक्त्वांतर्हितो रुद्रो भगवान् सत्यवत्सलः ॥११॥

और यज्ञमें बचे हुए द्रव्य-भाग भी मैंने तुझे दिये, तू उसे ग्रहण कर, ऐसा कहकर भगवान् भक्तवत्सल रुद्रजी अन्तर्धान होगये ॥११॥

य एतत् संस्मरेत् प्रातः सायं च सुसमाहितः ।
कविर्भवति मंत्रज्ञो गतिं चैव तथात्मनः ॥१२॥

हे राजन् ! जो इस कथा को सायं, प्रातःकाल सावधान होकर स्मरण करता है वह विद्वान् और मन्त्र का जानने वाला हो जाता है और अपने स्वरूप को भी पहिचान लेता है ॥१२॥

नाभागादंबरीषोऽभून्महाभागवतः कृती ।
नास्पृशद्ब्रह्मशापोऽपि यं न प्रतिहतः क्वचित् १३

इस नाभाग के अंबरीष नामक पुत्र हुआ, वह परम वैष्णव और धर्मात्मा था, यद्यपि ब्राह्मण का वचन किसी प्रकार टल नहीं सकता, परन्तु उस का प्रभाव भी अंबरीष पर न पड़ सका ॥१३॥

राजोवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि राजर्षेस्तस्य धीमतः ।
न प्राभूद्यत्र निर्मुक्तो ब्रह्मदंडो दुरत्ययः ॥१४॥

परीक्षित बोले–हे भगवन् ! जिसपर चलाया हुआ दुरत्यय ब्रह्म-दंड भी अपनी शक्ति न दिखला सका, मैं उन बुद्धिमान् राजर्षि अंबरीष का चरित्र सुनना चाहता हूँ ॥१४॥

श्रीशुक उवाच

अंबरीषो महाभागः सप्तद्वीपवतीं महीम् ।
अव्ययां च श्रियं लब्ध्वा विभवं चातुलं भुवि १५
मेनेऽतिदुर्लभं पुंसां सर्वं तत्स्वप्नसंस्तुतम् ।
विद्वान् विभवनिर्वाणं तमो विशति यत्पुमान्१६॥

श्रीशुकदेवजी बोले–महा भाग्यशाली अंबरीष राजा को सातों द्वीप युक्त पृथ्वी का राज्य, अक्षय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लक्ष्मी और सबसे उत्तम वैभव कि जो दूसरेपुरुषों को मिलना अत्यन्त दुर्लभ है-यह सब प्राप्त थे,फिर भी ज्ञानवान् अंबरीष यह समझकर कि वैभव अंत में नाशवान् है, इन सब पदार्थों को स्वप्नके समान मानता था, क्योंकि वैभव से मनुष्य मोह में पड़ जाता है ॥१५॥१६॥

वासुदेवे भगवति तद्भक्तेषु च साधुषु ।
प्राप्तो भावं परं विश्वं येनेदं लोष्टवत्स्मृतम्॥१७॥

हे राजन् ! भगवान् वासुदेव और भक्त साधु पुरुषोंमें उसे बड़ा प्रेम-भाव था, जिससे वह इस समस्त संसार को मिट्टीके समान जानता था॥१७॥

स वै मनः कृष्णपदारविंदयोर्वचांसि वैकुंठ गुणानुवर्णने । करौ हरेर्मंदिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥१८॥

मुकुंदलिंगालयदर्शने दृशौ तद्भृत्यगात्रस्पर्शेंग संगम् । घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते ॥१९॥

पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे शिरोहृषीकेशपदाभिवंदने । कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया यथोत्तम श्लोकजनाश्रया रतिः ॥२०॥

यह राजा मनको सर्वदा भगवान् के चरण-कमल में, वाणी प्रभु के गुण-गान में; हाथ प्रभु के मन्दिर को झाड़ने-बुहारने में, कान भगवान् की उत्तम कथा सुनने में, नेत्र भगवान् की मूर्त्तियों के दर्शन करने में, अङ्ग भगवद्भक्तों के शरीर को स्पर्श करने में, नाक भगवान् के चरणारविन्दोंसे संबंधित तुलसीकी सुगन्धि लेनेमें, जिह्वा भगवान्को अर्पण किये हुए उनके प्रसाद वाले पदार्थ में, पांव भगवान् के क्षेत्रों में जाने में और सिर भगवान् को प्रणाम करने में लगाये रहता था और चन्दन,पुष्प आदि सुखकारी पदार्थोंका भी दास्य-भावसे प्रसाद स्वीकार करने के लिये सेवन करता, विषय-भोग की इच्छा से नहीं, वह सब काम इस प्रकार से करता था कि जिस प्रकार से भक्त पुरुषों के साथ प्रेम बढ़ सके ॥१८॥१९॥२०॥

एवं सदा कर्मकलापमात्मनः परेऽधियज्ञे भगवत्यधोक्षजे । सर्वात्मभावं विदधन्महीमिमां तन्निष्ठविप्राभिहितः शशास ह ॥२१॥

इस प्रकार वह जो कुछ भी कर्म-समूह करता था वह सब अधियज्ञ और अधोक्षज पुरुषोत्तम भगवान् को अर्पण कर देताथा और सबमें आत्मा को मानता हुआ वह वैष्णव ब्राह्मणों के उपदेशानुसार पृथ्वी का पालन करता था ॥२१॥

ईजेऽश्वमेधैरधियज्ञमीश्वरं महाविभूत्योपचितां गदक्षिणैः । ततैर्वसिष्ठासितगौतमादिभिर्धन्वन्यभिस्रोतमसौ सरस्वतीम् ॥२२॥

इस राजाने वसिष्ठ, असित और गौतम आदि ऋषियों से प्रेम बढ़ाकर निर्जल देश में सरस्वती के तटपर अनेक अश्वमेधों द्वारा यज्ञेश्वर भगवान् का यजन किया और स्वयं महा ऐश्वर्यवान् होने के कारण उन यज्ञों में अङ्ग तथा दक्षिणाओं का विशेष विस्तार किया ॥२२॥

यस्य क्रतुषु गीर्वाणैः सदस्या ऋत्विजो जनाः ।
तुल्यरूपाश्चानिमिषा व्यदृश्यंत सुवाससः ॥२३॥

इसके यज्ञ में सभासद ऋत्विज ब्राह्मण तथा अन्य मनुष्य भी स्वच्छ वस्त्र तथा आभूषण आदि से देवताओं के समान शोभा पाते थे और उनके नेत्र भी आश्चर्य देखने से देवताओं के समान खुले ही जान पड़ते थे ॥२३॥

स्वर्गो न प्रार्थितो यस्य मनुजैरमरप्रियः ।
शृण्वद्भिरुपगायद्भिरुत्तमश्लोकचेष्टितम् ॥२४॥

उसकी प्रजा भगवान् के यश कहने-सुनने में मग्न रहने के कारण देवताओं को प्रिय लगने वाले स्वर्ग की भी इच्छा न करती थी ॥२४॥

समर्धयंति तान्कामाः स्वाराज्य परिभाविताः ।
दुर्लभा नापि सिद्धानां मुकुंदं हृदि पश्यतः ॥२५॥

क्योंकि जो सदैव ही हृदयमें भगवान्को देखा करते हैं वे सिद्ध पुरुषों तक को दुर्लभ पदार्थों की भी इच्छा नहीं करते, क्योंकि स्वरूप लाभ के सुख की अपेक्षा वे किसी प्रकार भी अधिक प्रसन्न नहीं कर सकते ॥२५॥

स इत्थं भक्तियोगेन तपोयुक्तेन पार्थिवः ।
स्वधर्मेण हरिं प्रीणन् संगान्शर्वान्शनैर्जहौ ॥२६॥

इस प्रकार तप, भक्ति-योग और अपने धर्म-पालनके द्वारा भगवान्को प्रसन्न करते २ उस राजा ने धीरे-धीरे सभी प्रकारकी आसक्त छोड़दी ॥२६॥

गृहेषु दारेषु सुतेषु बंधुषु द्विपोत्तमस्यंदनवाजि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पत्तिषु । अक्षय्यरत्ना भरणायुधादिष्वनंतकोशेष्व करोदसन्मतिम् ॥२७॥

घर, स्त्रियां, पुत्र, बन्धु, उत्तम हाथी, रथ, घोड़ा, प्यादे, रत्न, आभूषण और हथियारों आदि अक्षय पदार्थों से परिपूर्ण अनेक भण्डारों को भी उसने असत्य मान लिया ॥२७॥

तस्मा अदाद्धरिश्चक्रं प्रत्यनीकभयावहम् ।
एकांतभक्ति भावेन प्रीतो भृत्याभिरक्षणम् ॥२८॥

एकान्त भक्ति-भाव से प्रसन्न होकर भगवान्ने अपने भक्त की रक्षा के लिये, शत्रुओं को भय देने वाला सुदर्शनचक्र उस राजा को दिया ॥२८॥

आरिराधयिषुः कृष्णं महिष्या तुल्यशीलया ।
युक्तः सांवत्सरं वीरो दधार द्वादशीव्रतम् ॥२९॥

राजा अंबरीष ने भगवान् का आराधन करनेके लिये अपने ही समान शीलवान् रानी के साथ एक वर्षतक अखंड एकादशी व्रत किया ॥२९॥

व्रतांते कार्तिके मासि त्रिरात्रं समुपोषितः ।
स्नातः कदाचित्कालिंद्यां हरिं मधुवनेऽर्चयत् ॥३०॥

व्रत के अन्त में कार्त्तिक मास को त्रिरात्रि व्रत धारण किया, वह राजा यमुनामें स्नान करके मधुवन में भगवान् का पूजन करने लगा ॥३०॥

महाभिषेकविधिना सर्वोपस्करसंपदा ।
अभिषिच्यांबराकल्पैर्गंधमाल्यार्हणादिभिः ॥३१॥
तद्गतांतरभावेनपूजयामास केशवम् ।
ब्राह्मणांश्च महाभागान् सिद्धार्थानपि भक्तितः ३२

सभी सामग्री तैयार करके महाभिषेककी विधि से भगवान्का अभिषेक किया और केवल भगवान् ही में चित्त लगाकर वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प और नैवेद्य आदिसे भगवान्का पूजन करते समय इस महा भाग्यशाली राजाने अपने पूजाकी अपेक्षा न करनेवाले ब्राह्मणों का भी पूजन किया ॥३१।३२॥

गवां रुक्मविषाणीनां रूप्यांघ्रीणां सुवाससाम् ।
पयः शीलवयोरूपवत्सोपस्करसंपदाम् ॥३३॥
प्राहिणोत्साधुविप्रेभ्यो गृहेषु न्यर्बुदानि षट् ।
भोजयित्वा द्विजानग्रे स्वाद्वन्नं गुणवत्तमम् ॥३४॥

और सोने के सींग तथा चाँदी के खुर मढ़ा कर, सुन्दर रूप, स्वभाव, अवस्था और बछड़ों वाली दुधार साठहज़ार गौऐं दोहनी आदि संपत्ति सहित ब्राह्मणोंके घर पहुंचादीं, इससे पहले गुणवान् स्वादिष्ट अन्नसे ब्राह्मणोंको भोजन करवाया ॥

लब्धकामैरनुज्ञातः पारणायोपचक्रमे ।
तस्य तर्ह्यतिथिः साक्षाद्दुर्वासा भगवानभूत् ॥३५॥

प्राप्त काम ब्राह्मणों की आज्ञा पाकर राजा पारणा को प्रारम्भ करनेलगा, उसी समय अतिथि बनकर दुर्वासा ऋषि आ पहुंचे ॥३५॥

तमानर्चातिथिं भूपः प्रत्युत्थानासनार्हणैः ।
ययाचेऽभ्यवहाराय पादमूलमुपागतः ॥३६॥

राजाने उठकर आसन, अर्घ्य आदिसे दुर्वासा ऋषि का पूजन किया और चरणों में गिरकर उन से भोजनों की प्रार्थना की ॥३६॥

प्रतिनंद्य स तद्याच्ञां कर्तुमावश्यकं गतः ।
निममज्ज बृहद्ध्यायन्कालिंदीसलिले शुभे ॥३७॥

तब दुर्वासा राजा की प्रार्थना स्वीकार करके मध्याह्न की संध्या करने चले गये, उन्होंने जाकर कालिन्दी (जमुना) के पवित्र जलमें स्नान करके ब्रह्म का ध्यान किया ॥३७॥

मुहूर्तार्धावशिष्टायां द्वादश्यां पारणं प्रति ।
चिंतयामास धर्मज्ञो द्विजैस्तद्धर्मसंकटे ॥३८॥

पारणा करने द्वादशी केवल एक घड़ी रह गई और दुर्वासा वहीं रहगये, इस धर्म-संकट में धर्मज्ञ राजा अंबरीष ने पारण के विषयमें ब्राह्मणों से सम्मति की ॥३८॥

ब्राह्मणातिक्रमे दोषो द्वादश्यां यदपारणे ।
यत्कृत्वा साधु मे भूयादधर्मो वा न मां स्पृशेत् ३९॥

राजा ने सोचा कि यदि दुर्वासा के आने से पहले पारणा करूँ तो दोष और द्वादशी में पारणा न करूँ तोभी दोष, ऐसी दशामें अब मैं क्याकरूँ? कि जिसमें मेरा कल्याण हो और मुझे पाप भी न लगे ॥ ३९ ॥

अंभसा केवलेनाथ करिष्ये व्रतपारणम् ।
प्राहुरब्भक्षणं विप्रा ह्यशितं नाशितं च तत् ॥४०॥

अन्तमें राजाने निश्चय किया कि अभी केवल जलसे ही पारणा करलेना चाहिये, क्योंकि ब्राह्मणों के विचार से जल-भक्षण* भोजन है भी और नहीं भी है ॥४०॥

*-अपोऽश्नाति तन्नैवाशितं नैवानशितमिति ।
(श्रुतिः)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इत्यपः प्राश्य राजर्षिश्चिंतयन्मनसाऽच्युतम् ।
प्रत्याचष्ट कुरुश्रेष्ठ द्विजागमनमेव सः ॥४१॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! ऐसा विचार कर राजा अंबरीष जल-पान करके, मनमें भगवान् का ध्यान करतेहुए दुर्वासा की राह देखने लगा ॥४१॥

दुर्वासा यमुनाकूलात्कृतावश्यक आगतः ।
राज्ञाऽभिनंदितस्तस्य बुबुधे चेष्टितंधिया ॥४२॥

दुर्वासा ऋषि नित्य-क्रिया से निवट कर जव यमुना तट से लौटकर आये, तव राजा ने उनका सत्कार किया, परन्तु राजाके किये हुए पारण-कर्म को दुर्वासाने योग-वुद्धि द्वारा जान लिया ॥

मन्युना प्रचलद्गात्रो भृकुटीकुटिलाननः ।
बुभुक्षितश्च सुतरां कृतांजलिमभाषत ॥४३॥

इससे दुर्वासा को वड़ा ही क्रोध आया,उनका शरीर काँपने लगा, भौंहों सहित मुख तिरछा पड़ गया, वे भूख के वेगमें आकर हाथ जोड़े खड़े हुए अंबरीष से इस प्रकार कहने लगे ॥४३॥

अहो अस्य नृशंसस्य श्रियोन्मत्तस्य पश्यत ।
धर्मव्यतिक्रमं विष्णोरभक्तस्येशमानिनः ॥४४॥

अहो ! देखो तो इस क्रूर, लक्ष्मी से मतवाले, भगवान् विष्णुके अभक्त और अपनी शक्ति का अभिमान रखने वाले अंवरीष ने धर्म की मर्यादा भंग कर दी है ॥४४॥

यो मामतिथिमायातमातिथ्ये न निमंत्र्य च ।
अदत्त्वा भुक्तवांस्तस्य सद्यस्ते दर्शये फलम्॥४५॥

इस राजाने मुझ आयेहुए अतिथिको भोजनके लिये निमंत्रण देकर, भोजन न देकर स्वयं भोजन करलिया, हे राजा ! मैं इसका तुझे अभी फलदूँगा॥

एवं ब्रुवाण उत्कृत्य जटां रोषविदीपितः ।
तया स निर्ममे तस्मै कृत्यां कालानलोपमाम्॥४६॥

इस प्रकार कहकर क्रोधमें भवकतेहुए दुर्वासा ने अपनी जटाका एकवाल उखाड़कर राजाके लिये कालाग्नि के समान कृत्यानल प्रकट की ॥४६॥

तामापतंतीं ज्वलतीमसिहस्तां पदा भुवम् ।
वेपयंतीं समुद्वीक्ष्य न चचाल पदान्नृपः ॥४७॥

हाथ में तलवार लिये हुए, पृथ्वी को कम्पित करतीहुई तथा प्रकाशमान् उस राक्षसी को अपनी ओर आता हुआ देखकर भी राजा अपने स्थान से विचलित न हुए ॥४७॥

प्राग्दिष्टं भृत्यरक्षायां पुरुषेण महात्मना ।
ददाह कृत्यां तां चक्रं क्रुद्धाहिमिव पावकः ॥४८॥

महापुरुष भगवान् ने चक्रसुदर्शन को अपने भक्त की रक्षा के लिये पहले ही आज्ञा दे रक्खी थी, इसलिये उसने कृत्या को इस प्रकार भस्म करदिया जैसे अग्नि क्रोधित सर्पको भस्म करदेतीहै।

तदभिद्रवदुद्वीक्ष्य स्वप्रयासं च निष्फलम् ।
दुर्वासा दुद्रुवे भीतो दिक्षु प्राणपरीप्सया ॥४९॥

अपने उद्योगको विफल तथा सुदर्शनको अपने पीछे आता हुआ देखकर दुर्वासा ऋषि भयभीत होकर प्राण वचाने के लिये दिशाओंमें भागनेलगे॥

तमन्वधावद्भगवद्रथांगं दावाग्निरुद्धूतशिखो यथाऽहिम् । तथानुषक्तं स निरीक्षमाणो गुहां विविक्षुः प्रससार मेरोः ॥५०॥

जैसे बढ़ती हुई ज्वाला सर्प के पीछे-२ भागती है वैसे ही भगवान् का चक्र दुर्वासा के पीछे-पीछे दौड़ता गया, चक्रको अपने पीछे आता देखकर दुर्वासा सुमेरु की गुफा में घुसने को भागे ॥५०॥

दिशो नभः क्ष्मां विवरान् समुद्रान् लोकान् सपालान् त्रिदिवं गतः सः । यतो यतो धावति तत्र तत्र सुदर्शनं दुःप्रसहं ददर्श ॥५१॥

इसी प्रकार वे दिशा, आकाश, पृथ्वी, पाताल, समुद्र, लोक, लोकपालों के स्थान और स्वर्ग में भी गये, परन्तु वे जहाँ भी पहुंचे वहीं उन्होंने असह्य सुदर्शन को पीछे आता हुआ देखा ॥५१॥

अलब्धनाथः स यदा कुतश्चित्संत्रस्तचित्तोऽरण मेषमाणः देवं विरिंचं समगाद्विधातस्त्राह्यात्म योनेऽजिततेजसो माम् ॥५२॥

जव उन्हें कहीं भी रक्षा करने वाला न मिला तव वे भयभीत चित्त से शरण लेने के लिये ब्रह्मा के पास गये और ब्रह्माजीसे वोले कि-हे विधाता ! भगवान् विष्णु के चक्र से मेरी रक्षा करो ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

स्थानं मदीयं सहविश्वमेतत् क्रीडावसाने द्विपरार्धसंज्ञे । भ्रूभंगमात्रेण हि संदिधक्षोः कालात्मनो यस्य तिरोभविष्यति ॥५३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्माजी बोले–हे मुनि! जब दो परार्द्ध* नामक क्रीड़ा का अन्त समय आयेगा, तब भस्म करनेकी इच्छा वाले जिन काल भगवान् की केवल भृकुटि चढ़नेसे विश्व-सहित ये मेरा स्थान नष्ट होजायगा।

अहं भवो दक्षभृगुप्रधानाः प्रजेशभूतेशसुरेश मुख्याः। सर्वे वयं यन्नियमं प्रपन्ना मूर्ध्न्यर्पितं लोकहितं वहामः ॥५४॥

हे तात! मैं, रुद्र, दक्ष, भृगु आदि प्रजापति, भूपति तथा बड़े-बड़े देवता भी जिनकी आज्ञा को पाकर ऐसी रीति से उसे शिर पर धारण करते हैं कि जिसमें लोगों का हित हो, उन भगवान्के भक्त से तुमने वैर किया है, इसलिये मैं तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता ॥५४॥

श्रीशुक उवाच

प्रत्याख्यातो विरिंचेन विष्णुचक्रोपतापितः। दुर्वासाः शरणं यातः शर्वं कैलासवासिनम्॥५५॥

श्रीशुकदेवजी बोले–जब ब्रह्माजी ने उत्तर दे दिया, तब विष्णुजी के चक्र से संतप्त दुर्वासा कैलाश पर श्रीमहादेवजी की शरण गये ॥५५॥

श्रीरुद्र उवाच

वयं न तात प्रभवाम भूम्नि यस्मिन् परेऽन्येऽप्यजीवकोशाः। भवंति काले न भवंति हीदृशाः सहस्रशो यत्र वयं भ्रमामः ॥५६॥

श्रीमहादेवजी बोले–हे तात! जिन व्यापक परमेश्वर में यह ब्रह्मांड और ब्रह्मा-रूप जीवोंके शरीर भूत दूसरे भी ऐसेही हज़ारों ब्रह्मांड हुआ करते हैं और फिर लीन होजाते हैं, अर्थात् जो समय पर जगत्की उत्पत्ति और नाश करतेहैं और लोकेश्वर होने का अभिमान रखने वाले हमभी जिनमें चक्कर खाया करते हैं, उनके कार्यों में हम कुछ भी नहीं कर सकते ॥५६॥

अहं सनत्कुमारश्च नारदो भगवानजः। कपिलोऽपांतरतमो देवलो धर्म आसुरिः ॥५७॥
मरीचिप्रमुखाश्चान्ये सिद्धेशाः पारदर्शनाः। विदाम न वयं सर्वे यन्मायां मायया वृताः ॥५८॥
तस्य विश्वेश्वरस्येदं शस्त्रं दुर्विषहं हि नः। तमेव शरणं याहि हरिस्ते शं विधास्यति ॥५९॥

मैं, सनत्कुमार, नारद, ब्रह्मा, कपिल, अपान्तरतम, देवल, धर्म, आसुरि और मरीचि आदि दूसरे सिद्ध लोग सर्वदर्शी होने पर भी जिनकी माया के आवरण से उस (माया) को नहीं जानने पाते, उन विश्वपति भगवान् के इस शस्त्र को हम भी सहन नहीं करसकते, इसलिये तुम उन्हींकी शरण जाओ वही तुमको सुख देंगे ॥५७॥५८॥५९॥

श्रीशुक उवाच

ततो निराशो दुर्वासाः पदं भगवतो ययौ। वैकुंठाख्यं यदध्यास्ते श्रीनिवासः श्रिया सह॥६०

श्रीशुकदेवजी बोले–तब दुर्वासा ऋषि निराश होकर भगवान् के धाम वैकुण्ठ को गये कि जहाँ श्रीनिवास भगवान् लक्ष्मीजी सहित विराजते हैं ॥

स दह्यमानोऽजितशस्त्रवह्निना तत्पादमूले पतितः सवेपथुः। आहाच्युतानंत सदीप्सित प्रभो कृतागसं माऽव हि विश्वभावन ॥६१॥

भगवान्के चक्रकी अग्निसे जलते तथा काँपते हुए दुर्वासा ऋषि भगवान्के चरण-मूल में गिरकर बोले कि–हे अच्युत! हे अनन्त! हे साधुओं के इच्छित! हे प्रभो! हे विश्वभावन! मुझ अपराधी की रक्षा करो ॥ ६१ ॥

अजानता ते परमानुभावं कृतं मयाघं भवतः प्रियाणाम्। विधेहि तस्यापचितिं विधातर्मुच्येत यन्नाम्न्युदिते नारकोऽपि ॥६२॥

मैंने आपके महा प्रभाव को न जानकर आपके प्रिय भक्तों का अपराध किया है, इसलिये हे विधाता! इस अपराध का प्रायश्चित करा दीजिये, क्योंकि नारकी जीव भी आपका नाम लेकर दुःख से मुक्त हो जाता है ॥६२॥

श्रीभगवानुवाच

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विज। साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥६३॥

श्रीभगवान् बोले–मैं भक्तों के आधीन होने के कारण परतन्त्र सा हूँ, मैं भक्तोंको प्रियहूँ, इसलिये उन साधु भक्तों ने मेरा हृदय हरण कर लिया है ॥

नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना। श्रियं चात्यंतिकीं ब्रह्मन् तेषां गतिरहं परा ॥६४॥

*–ब्रह्माजीकी आयु सौ दिव्य वर्षकी है, तिस के आधे अर्थात् ५० दिव्य वर्ष को परार्द्ध कहते हैं दोनों परार्द्ध बीतने पर प्रलय होजाती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे ब्राह्मण ! जिन साधुजनोंकी परम गति मैं ही हूँ, उन अपने भक्तों को छोड़मैं अपने शरीर या सर्वदा निकट रहने वाली लक्ष्मी जी को भी नहीं चाहता ॥६४॥

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् ।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे॥६५॥

जो भक्तजन स्त्री, पुत्र, घर, बन्धु, प्राण और धन को छोड़कर मेरी शरण आये हैं, उन्हें मैं कैसे छोड़ सकता हूँ ? ॥६५॥

मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः ।
वशे कुर्वंति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा॥६६॥

जिन्होंने मुझमें मन लगा दिया है, ऐसे समदृष्टि साधुजन तो मुझे इसी प्रकार से वश में कर लेते हैं, कि जिस प्रकार से पतिव्रता स्त्रियाँ अपने श्रेष्ठ पति को वशमें रखती हैं ॥६६॥

मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम् ।
नेच्छंति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत्कालविद्रुतम्॥६७॥

जो अपने को केवल मेरी सेवा से ही परिपूर्ण मानते हैं, ऐसे भक्तजन मेरी सेवा के प्रभाव से सालोक्य* आदि चारों मुक्तियों को भी नहीं चाहते, तब काल के द्वारा नाश होने वाले अन्य पदार्थों की तो बात ही क्याहै ? ॥ ६७ ॥

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ।
मदन्यत्ते न जानंति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥६८॥

साधुजन मेरे हृदयहैं और मैं साधुओंका हृदय हूँ, वे मेरेसिवा और कुछ नहीं जानते और मैं उन के सिवा और कुछ नहीं जानता[1] ॥६८॥

उपायं कथयिष्यामि तव विप्र शृणुष्व तत् ।
अयं ह्यात्माभिचारस्ते यतस्तं यातु वै भवान्॥६९॥

हे विप्र ! मैं तुमसे एक उपाय कहता हूँ सो सुनो, तुमको दुर्व्यवहार करने से जिसके कारण यह दुःख हुआ है, तुम उसी के पास जाओ ॥६९॥

साधुषु प्रहितं तेजः प्रहर्तुः कुरुतेऽशिवम् ।
तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे ।
त एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा ॥७०॥

साधु लोगों पर चलाई हुई शक्ति चलाने वाले का ही बुरा करती है, यद्यपि तप और विद्या से ब्राह्मणों का कल्याण होता है, फिरभी नम्र न रहने वाले ब्राह्मणों का इन्हींके द्वारा अहित होजाता है ॥

ब्रह्मंस्तद्गच्छ भद्रं ते नाभागतनयं नृपम् ।
क्षमापय महाभागं ततः शांतिर्भविष्यति ॥७१॥

हे ब्राह्मण ! तुम्हारा कल्याण हो, इसलिये तुम राजा अंबरीष की शरण जाओ और उस महा भाग्यशाली राजा से क्षमा माँगो तो तुमको शान्ति मिल जायगी ॥७१॥

इति श्रीमद्भागवते नवमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पाचवां अध्याय

(दुर्वासा की रक्षा)

श्रीशुक उवाच

एवं भगवतादिष्टो दुर्वासाश्चक्रतापितः ।
अंबरीषमुपावृत्य तत्पादौ दुःखितोऽग्रहीत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-इस प्रकार भगवानने आज्ञा दी, तब चक्रसे संतप्त दुर्वासाजीने लौट कर राजा अम्बरीष के चरण पकड़ लिये ॥१॥

तस्य सोद्यमनं वीक्ष्य पादस्पर्शविलज्जितः ।
अस्तावीत्तद्धरेरस्त्रं कृपया पीडितो भृशम् ॥ २ ॥

दुर्वासा का यह कर्म देखकर अपने चरण छूने से लज्जित तथा दयासे द्रवीभूत होकर राजा अंबरीष ने चक्रसुदर्शन की स्तुति की ॥२॥

अंबरीष उवाच

त्वमग्निर्भगवान् सूर्यस्त्वं सोमो ज्योतिषां पतिः ।
त्वमापस्त्वं क्षितिर्व्योम वायुर्मात्रेंद्रियाणि च॥ ३ ॥

अंबरीष बोले-हे सुदर्शन ! तुम्हीं अग्नि हो, तुम्हीं भगवान् सूर्यहो, तुम्हीं नक्षत्रपति चंद्रमाहो, तुम्हीं जल, पृथ्वी, आकाश, पवन और शब्दादि विषय तथा इन्द्रिय हो ॥३॥

सुदर्शन नमस्तुभ्यं सहस्राराच्युतप्रिय ।
सर्वास्त्रघातिन् विप्राय स्वस्ति भूया इडस्पते॥ ४ ॥

---

*-सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सायुज्य-यह चार प्रकार की मुक्तियाँ हैं ।

१-भक्त वत्सल की प्रतिज्ञा ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे सहस्र धाराधारी! हे भगवत्प्रिय! हे समस्त अस्त्र नाशक ! हे पृथ्वीपति सुदर्शन ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ, आप ब्राह्मणका कल्याण करिये ॥

त्वं धर्मस्त्वमृतं सत्यं त्वं यज्ञोऽखिलयज्ञभुक् ।
त्वं लोकपालः सर्वात्मा त्वं तेजः पौरुषं परम्॥ ५ ॥

धर्म, ऋत्* सत्य, यज्ञ, समस्त यज्ञोंके भोगने वाले, लोकपाल, सर्वात्मा और भगवान् के परम तेज तुम्हीं हो ॥५॥

नमः सुनाभाखिलधर्मसेतवे ह्यधर्मशीलासुर धूमकेतवे । त्रैलोक्यगोपाय विशुद्धवर्चसे मनोजवायाद्भुतकर्मणे गृणे ॥ ६ ॥

हे सुदर्शन ! तुम सब धर्मों के मर्यादा रूप, पापी दैत्यों को जलाने वाले, त्रिलोकों के रक्षक, विशुद्ध तेजवान् मनके समान वेग वाले और अद्भुत कर्म करने वाले हो, तुमको नमस्कार है ॥६॥

त्वत्तेजसा धर्ममयेन संहृतं तमः प्रकाशश्च धृतो महात्मनाम् । दुरत्ययस्ते महिमा गिरां पते त्वद्रूप मेतत् सदसत्परावरम् ॥ ७ ॥

तुम्हारे धर्ममय तेज से अन्धकार दूर होता है तथा सूर्य आदि का प्रकाश भी तुम्हारे ही तेज से होता है, हे वाणीपति ! तुम्हारी महिमा अपरंपार है एवं कार्य-कारण व छोटा-मोटा सब आपही का स्वरूप है ॥ ७ ॥

यदा विसृष्टस्त्वमनंजनेन वै बलं प्रविष्टोऽजित दैत्यदानवम् । बाहूदरोर्वङ्घ्रिशिरोधराणि वृक्णन्न जस्रं प्रधने विराजसे ॥ ८ ॥

जब अजित भगवान् तुम्हें छोड़ते हैं तब तुम दैत्य और दानवों की सेना में घुसकर उसके हाथ, पेट, साथल, पैर और गलों को निरन्तर काटते हुए रणमें अत्यन्त शोभा देते हो ॥८॥

स त्वं जगत्त्राणखलप्रहाणये निरूपितः सर्वसहो गदाभृता । विप्रस्य चास्मत्कुलदैवहेतवेविधेहि भद्रं तदनुग्रहो हि नः ॥ ९ ॥

तुम सबसे बढ़कर बलवान् हो, तुम्हें जगत्की रक्षा तथा दुष्टों का नाश करने के लिये भगवान् धारण करते हैं, हमारे कुल का भाग्य उदय करने के लिये आप ब्राह्मण का कल्याण कीजिये, हम पर आपकी यही बड़ी कृपा है ॥९॥

यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः ।
कुलं नो विप्रदैवं चेद्द्विजो भवतुविज्वरः ॥१०॥

मैंने जो कुछ दान या यज्ञ आदि किये हों, स्वधर्म का पालन किया हो, या मेरे वंश में यदि ब्राह्मण देवता रूप से पूजे जाते हों, तो दुर्वासाका दुःख दूर हो जाय ॥१०॥

यदि नो भगवान् प्रीत एकः सर्वगुणाश्रयः ।
सर्वभूतात्मभावेन द्विजो भवतु विज्वरः ॥११॥

सर्व प्राणियों में आत्म-भाव रखने के कारण यदि सर्व गुणों के आश्रय-भूत भगवान् मुझ पर प्रसन्नहों तो इस ब्राह्मणका संताप दूर होजाय ॥

श्रीशुक उवाच

इति संस्तुवतो राज्ञो विष्णुचक्रं सुदर्शनम् ।
अशाम्यत् सर्वतो विप्रं प्रदहद्राजयाच्ञया ॥१२॥

श्रीशुकदेवजी बोले–जब राजा ने इस प्रकार प्रार्थना की, तब दुर्वासा को चारों ओरसे जलाता हुआ भगवान् का सुदर्शन चक्र उनकी विनय मान कर शान्त होगया ॥१२॥

समुक्तोऽस्त्राग्नितापेन दुर्वासाः स्वस्तिमांस्ततः ।
प्रशशंस तमुर्वीशं युंजानः परमाशिषः ॥१३॥

चक्र की अग्नि के ताप से छूटे हुए और सुखी दुर्वासा राजा को उत्तम आशीर्वाद देकर उनकी प्रशंसा करने लगा ॥१३॥

दुर्वासा उवाच

अहो अनंतदासानां महत्त्वं दृष्टमद्य मे ।
कृतागसोऽपि यद्राजन्मंगलानि समीहसे ॥१४॥

दुर्वासा बोले–अहो ! भगवान्के भक्तोंकी महिमा मैंने आज देखी, कि अपना अपराध करने पर भी वे अपराधी का कल्याण चाहते हैं ॥१४॥

दुष्करः को नु साधूनां दुस्त्यजो वा महात्मनाम् ।
यैः संगृहीतो भगवान् सात्वतामृषभो हरिः॥१५॥

ऐसी कौनसी वस्तु है कि जिसे भगवान् भक्तपति को ग्रहण करने वाले साधु पुरुष कर नहीं सकते अथवा छोड़ नहीं सकते ? ॥१५॥

*–"ऋतं च सुनृता वाणी सत्यं च सतदर्शनम्" अर्थात्–सत्य और प्रिय वाणी को ऋत् कहते हैं और समदृष्टि को सत्य कहते हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यन्नामश्रुति मात्रेण पुमान्भवति निर्मलः ।
तस्य तीर्थपदः किं वादासानामवशिष्यते ॥१६॥

जिनका नाम मात्र सुनने ही से मनुष्य पवित्र होजाता है, उन भगवान् के भक्तजनों को कौनसा काम दुर्लभ है ? ॥१६॥

राजन्ननुगृहीतोऽहं त्वयाऽतिकरुणात्मना ।
मदघं पृष्ठतः कृत्वा प्राणा यन्मेऽभिरक्षिताः॥१७॥

हे राजन् ! तुमने मेरे अपराध पर ध्यान न देकर बड़ी दया करते हुए मेरे प्राण बचाये, यह तुम्हारा महान् अनुग्रह है ॥१७॥

श्रीशुक उवाच

राजा तमकृताहारः प्रत्यागमनकांक्षया ।
चरणावुपसंगृह्य प्रसाद्य समभोजयत् ॥१८॥

श्रीशुकदेवजी बोले–राजा अंबरीष उस दिन तक दुर्वासा के आने की राह देखते रहे और उनके न आने तक उन्होंने भी भोजन न किया, इसलिये अब उनके आने पर राजा ने चरण पकड़ कर दुर्वासाजी को भोजन करवाया ॥१८॥

सोऽशित्वाऽऽदृतमानीतमातिथ्यं सार्वकामिकम् ।
तृप्तात्मा नृपतिं प्राह भुज्यतामिति सादरम् ॥१९॥

राजाके द्वारा आदर पूर्वक सन्तोष-प्रद भोजन से तृप्त होकर दुर्वासा ने प्रेमपूर्वक अंबरीषसे कहा कि तुम भोजन करो ॥१९॥

प्रीतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि तव भागवतस्य वै ।
दर्शनस्पर्शनालापैरातिथ्येनात्ममेधसा ॥२०॥

तुम वैष्णवहो, इसलिये तुम्हारे दर्शन, स्पर्शन, भाषण और सात्विक भोजन से मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआहूँ, यह तुमने मुझपर बड़ाही अनुग्रह कियाहै।

कर्मावदातमेतत्ते गायंति स्वःस्त्रियो मुहुः ।
कीर्तिं परमपुण्यां च कीर्तयिष्यति भूरियम्॥२१॥

इस तुम्हारे पवित्र कर्म को स्वर्ग की देवियाँ सदैव गाया करेंगी और भू-लोक वाले भी तुम्हारे परम पवित्र यश को गायेंगे ॥२१॥

एवं संकीर्त्य राजानं दुर्वासाः परितोषितः ।
ययौ विहायसाऽऽमंत्र्य ब्रह्मलोकमहैतुकम् ॥२२॥

प्रसन्न चित्त वाले दुर्वासा राजा से इस प्रकार कहकर आज्ञा माँग, आकाश-मार्ग से ब्रह्म-लोक को चले गये, कि जहाँ पर निष्काम कर्म करने वाले जाया करते हैं ॥२२॥

संवत्सरोऽत्यगात्तावद्यावता नागतो गतः ।
मुनिस्तद्दर्शनाकांक्षी राजाऽभक्षो बभूव ह ॥२३॥

जबसे दुर्वासा ऋषि अंबरीष के यहाँ से चक्र के भय के मारे भागे थे और जिस दिन फिर लौट कर आये थे, उतने समय में एक वर्ष हो चुका था; इतनी अवधि तक राजा ने भी ऋषि के दर्शनों की अभिलाषा से केवल जल पीकर समय काटा था ॥

गते च दुर्वाससि सोंऽबरीषो द्विजोपयोगाति पवित्रमाहरत् । ऋषेर्विमोक्षं व्यसनं च बुद्ध्वा मेने स्ववीर्यं च परानुभावम् ॥२४॥

दुर्वासा के जाने पर ब्राह्मण भोजन से अत्यंत पवित्र अन्न से राजा अंबरीष ने भोजन किया और ऋषि को दुःख से तथा अपना धैर्य स्थिर रहने में उन्होंने भगवान् का प्रभाव माना ॥२४॥

एवंविधानेकगुणः स राजा परात्मनि ब्रह्मणि वासुदेवे । क्रियाकलापैः समुवाह भक्तिं ययाऽविरिंचान्निरयांश्चकार ॥२५॥

ऐसे अनेक गुणों वाला वह अंबरीष राजा उत्तमोत्तम कर्म तथा परमात्मा भगवान् की भक्ति करता था, जिनके प्रभाव से ब्रह्मलोक तकके वैभव उसे नरक के समान तुच्छ जान पड़ते थे ॥२५॥

अथांबरीषस्तनयेषु राज्यं समानशीलेषु विसृज्य धीरः । वनं विवेशात्मनि वासुदेवे मनो दधद्ध्वस्त गुणप्रवाहः ॥२६॥

अन्त में वह धीर राजा अपने समान स्वभाव वाले पुत्रों को राज्य देकर बनमें चला गया और वहाँ भी केवल परमात्मा वासुदेव में मन लगाकर संसार मुक्त होगया ॥२६॥

इत्येतत्पुण्यमाख्यानमंबरीषस्य भूपतेः ।
संकीर्तयन्ननुध्यायन् भक्तो भगवतो भवेत् ॥२७॥

अंबरीष राजा के इस पवित्र चरित्र को जो कहेगा या चिन्तवन करेगा, वह भगवान् का भक्त हो जायगा ॥२७॥

इति श्रीमद्भागवते नवमस्कन्धे पंचमोऽध्यायः ॥५॥

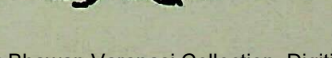

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छठवां अध्याय

(इक्ष्वाकु-वंश-विस्तार)

श्रीशुक उवाच

विरूपः केतुमान् शंभुरंबरीषसुतास्त्रयः ।
विरूपात्पृषदश्वोऽभूत्तत्पुत्रस्तु रथीतरः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–अंबरीषके विरूप, केतुमान और शंभु- ये तीन पुत्रहुए, उनमें से विरूप के पृषदस्व नामक पुत्र हुआ, उसके रथीतर पुत्र हुआ ॥

रथीतरस्याप्रजस्य भार्यायां तंतवेऽर्थितः ।
अंगिरा जनयामास ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान् ॥ २ ॥

रथीतरके कोई संतान न थी इसलिये उसने अङ्गिरा ऋषिसे प्रार्थना की, तब अङ्गिरा ऋषि ने रथीतर की स्त्रीसे ब्रह्मतेज वाले पुत्र उत्पन्नकिये ॥

एते क्षेत्रे प्रसूता वै पुनस्त्वांगिरसाः स्मृताः ।
रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः ॥ ३ ॥

ये पुत्र अङ्गिराके तेजसे रथीतर के क्षेत्रमें पैदा होने के कारण आंगिरस कहलाये और रथीतर के गोत्रमें होने से क्षत्रिय-जाति ब्राह्मण रथीतर के गोत्र में मुख्य कहलाये ॥ ३॥

क्षुवतस्तु मनोर्जज्ञे इक्ष्वाकुर्घ्राणतः सुतः ।
तस्य पुत्रशतज्येष्ठा विकुक्षिनिमिदंडकाः ॥ ४ ॥

वैवस्वत मनुकी नाकसे छींक लेतेसमय इक्ष्वाकु उत्पन्न हुए, इक्ष्वाकु के सौ बेटे थे जिनमें विकुक्षि निमि और दण्डक सबसे बड़े थे ॥४॥

तेषां पुरस्तादभवन्नार्यावर्ते नृपा नृप ।
पंचविंशतिः पश्चाच्च त्रयो मध्ये परेऽन्यतः ॥ ५ ॥

इन सौ बेटों में से पच्चीस आर्यावर्त्तमें पूर्व की ओर राज्य करते थे, पच्चीस पश्चिम की ओर और शेष उत्तर-दक्षिण तथा तीनों बड़े पुत्र मध्य में राज्य करते थे ॥५॥

स एकदाऽष्टकाश्राद्ध इक्ष्वाकुः सुतमादिशत् ।
मांसमानीयतां मेध्यं विकुक्षे गच्छमा चिरम् ॥ ६ ॥

इक्ष्वाकु ने एक दिन अष्टका श्राद्ध करते समय विकुक्षि को आज्ञा दी कि हे विकुक्षि ! तू विलम्ब न करके शीघ्र जा और पवित्र माँस ला ॥ ६ ॥

तथेति स वनं गत्वा मृगान्हत्वा क्रियार्हणान् ।
श्रांतो बुभुक्षितो वीरः शशं चाददपस्मृतिः ॥ ७ ॥

विकुक्षि ने वनमें जाकर श्राद्ध के योग्य पशु मारे, परन्तु परिश्रम तथा भूखके मारे उसे स्मरण न रहा और उसने एक खरहे को खा लिया ॥७॥

शेषं निवेदयामास पित्रे तेन च तद्गुरुः ।
चोदितः प्रोक्षणायाह दुष्टमेतदकर्मकम् ॥ ८ ॥

शेष मांस लाकर उसने पिताको दिया, इक्ष्वाकु की प्रेरणा से मांसका प्रयोग करते समय गुरु ने कहा कि यह मांस अशुद्ध है इसलिये श्राद्ध-कर्म के योग्य नहीं है ॥ ८ ॥

ज्ञात्वा पुत्रस्य तत्कर्म गुरुणाऽभिहितं नृपः ।
देशान्निःसारयामास सुतं त्यक्तविधिं रुषा ॥ ९ ॥

गुरुके कहनेसे पुत्रका अपराध जानकर क्रोधित होते हुए राजा ने शास्त्र की मर्यादा भंग करने वाले पुत्र विकुक्षि को अपने देश से निकाल दिया ॥९॥

स तु विप्रेण संवादं जापकेन समाचरन् ।
त्यक्त्वाकलेवरं योगी स तेनावाप यत्परम् ॥१०॥

इक्ष्वाकु राजा वसिष्ठजी से संवाद करके, योगी होकर, योग द्वारा देह को त्यागकर ब्रह्म को प्राप्त हुआ ॥१०॥

पितर्युपरतेऽभ्येत्य विकुक्षिः पृथिवीमिमाम् ।
शासदीजे हरिं यज्ञैः शशाद इति विश्रुतः ॥११॥

पिता के मरने पर विकुक्षिने घर आकर पृथ्वी का पालन किया, उसने अनेक यज्ञों द्वारा भगवान् का पूजन किया और शश (खरहा) भक्षण करनेके कारण उसका नाम शशाद पड़ा ॥११॥

पुरंजयस्तस्य सुत इंद्रवाह इतीरितः ।
ककुत्स्थ इति चात्युक्तः शृणु नामानि कर्मभिः ॥१२॥

उस विकुक्षिके पुत्रके कर्मानुसार पुरञ्जय, इन्द्रवाह और ककुत्स्थ–यह तीन नामथे, वे कर्म कहता हूँ सो सुनो ॥१२॥

कृतांत आसीत्समरो देवानां सह दानवैः ।
पार्ष्णिग्राहो वृतो वीरो देवैर्दैत्यपराजितैः ॥१३॥

देवता और दैत्यों को नाश करने वाला जब बड़ा भारी संग्राम हुआ, तब दैत्योंसे हारे हुए देवों ने विकुक्षि के पुत्र से सहायता माँगी ॥१३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वचनादेवदेवस्य विष्णोर्विश्वात्मनः प्रभोः ।
वाहनत्वे वृतस्तस्य बभूवेंद्रो महावृषः ॥१४॥

विकुक्षि के पुत्र ने कहा–"यदि इन्द्र मेरा वाहन बने तो मैं दैत्यों को मारूँ" इन्द्रको यद्यपि लज्जा के मारे यह बात अच्छी न लगी, फिर भी देवाधिदेव विष्णु के कहने से उस राजा के लिये इन्द्र ने बड़े बैल का रूप धारण किया ॥१४॥

स संनद्धो धनुर्दिव्यमादाय विशिखान् शितान् ।
स्तूयमानः समारुह्ययुयुत्सुः ककुदि स्थितः ॥१५॥

वह राजा कवच पहिन कर, दिव्य धनुष तथा तीक्ष्ण बाण लिये हुए, देवताओं द्वारा स्तुति करवाता हुआ कमर कसकर युद्ध के लिये उस बैल के कन्धे के निकट वाली कूबड़ पर बैठा ॥१५॥

तेजसाऽऽप्यायितो विष्णोः पुरुषस्य परात्मनः ।
प्रतीच्यां दिशि दैत्यानां न्यरुणत्त्रिदशैःपुरम्॥१६॥

महापुरुष भगवान् विष्णु के तेज से उत्तेजित होकर उस राजा ने देवताओंको साथ लेकर दैत्यों के पश्चिमी पुर को घेर लिया ॥१६॥

तैस्तस्य चाभूत्प्रधनं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
यमाय भल्लैरनयद्दैत्यान् येऽभिययुर्मृधे ॥१७॥

उस राजा के साथ दैत्योंका रोमांचकारी घोर युद्ध हुआ, जितने दैत्य युद्ध में राजा के सामने आये, उनको भालों से मार-मार कर राजा ने यमपुर में पहुंचा दिया ॥१७॥

तस्येषुपाताभिमुखं युगांताग्निमिघोल्बणम् ।
विसृज्य दुद्रुवुर्दैत्या हन्यमानाः स्वमालयम्॥१८॥

उसके बाणों का बरसना प्रलय-काल की अग्नि के समान था, उसे देखकर मार खाते हुए दैत्य युद्ध छोड़कर पाताल में भाग गये ॥१८॥

जित्वा पुरं धनं सर्वं सश्रीकं वज्रपाणये ।
प्रत्ययच्छत्सराजर्षिरिति नामभिराहृतः ॥१९॥

तब दैत्यों का लक्ष्मी सहित पुर और सम्पूर्ण धन जीतकर उस राजाने इन्द्र को दिया, इसलिये पुर को जीतने के कारण 'पुरञ्जय' इन्द्र को वाहन बनाने के कारण 'इन्द्रवाह' और ककुद पर बैठनेके कारण 'ककुत्स्थ' कहलाया ॥१९॥

पुरंजयस्य पुत्रोऽभूदनेनास्तत्सुतः पृथुः ।
विश्वरंधिस्ततश्चंद्रो युवनाश्वश्च तत्सुतः ॥२०॥

शावस्तस्तत्सुतो येन शावस्ती निर्ममे पुरी ।
बृहदश्वस्तु शावस्तिस्ततः कुवलयाश्वकः ॥२१॥

पुरञ्जय का पुत्र अनेना हुआ, अनेना के पृथु, पृथुके विश्वरन्धी. विश्वरन्धीके चन्द्र, चन्द्रके युवनाश्व, उसके शावस्त नामक पुत्र हुआ, जिसने शावस्ती नाम की नगरी बसाई, शावस्तके बृहदश्व और उसके कुवलयाश्व नामक पुत्रहुआ ॥२०॥२१॥

यः प्रियार्थमुतंकस्य धुंधुनामाऽसुरं बली ।
सुतानामेकविंशत्या सहस्रैरहनद् वृतः ॥२२॥

इस बलवान् कुवलयाश्व ने इक्कीस हज़ार पुत्रों को साथ लेकर उतङ्क ऋषि को प्रसन्न करने के लिये धुन्धु नामक दैत्य को मारा ॥२२॥

धुंधुमार इति ख्यातस्तत्सुतास्ते च जज्वलुः ।
धुंधोर्मुखाग्निना सर्वे त्रय एवावशेषिताः ॥२३॥
दृढाश्वः कपिलाश्वश्च भद्राश्व इति भारत ।
दृढाश्वपुत्रो हर्यश्वो निकुंभस्तत्सुतः स्मृतः ॥२४॥
बर्हणाश्वो निकुंभस्य कृशाश्वोऽथास्य सेनजित् ।
युवनाश्वोऽभवत्तस्य सोऽनपत्यो वनं गतः ॥२५॥
भार्याशतेन निर्विण्ण ऋषयोऽस्य कृपालवः ।
इष्टिं स्म वर्तयांचक्रुरैंद्रीं ते सुसमाहिताः ॥२६॥

इसलिये उसका नाम "धुन्धुमार" हुआ, हे राजन् ! धुन्धु दैत्य के मुंह में से जो अग्नि निकली उससे कुवलयाश्व के सब बेटे जल गये, केवल दृढ़ाश्व, कपिलाश्व और भद्राश्व–ये तीन पुत्र शेष रहे, इनमेंसे दृढ़ाश्वके पुत्र हर्यश्व, हर्यश्वके निकुंभ निकुम्भ के बर्हिणाश्व, उसके कृशाश्व, उसके सेनजित्, उसके युवनाश्व नामक पुत्र हुआ, युवनाश्व निःसंतान होने से दुःखी होकर अपनी रानियों के साथ बनमें चला गया, तब दयालु ऋषियों ने इस के यहाँ पुत्र के लिये सावधानी के साथ इन्द्र की इष्टी की ॥२३॥२४॥२५॥॥२६॥

राजा तद्यज्ञ सदनं प्रविष्टो निशि तर्षितः ।
दृष्ट्वा शयानान् विप्रांस्तान् पपौ मंत्रजलं स्वयम्२७

राजा को जब रातमें प्यास लगी, तब वह जल ढूंढताहुआ यज्ञ-स्थलमें गया और ब्राह्मणोंको सोता हुआ देखकर स्त्रीके पीने का जल स्वयं पी गया ॥

उत्थितास्ते निशम्याथ व्युदकं कलशं प्रभो ।
पप्रच्छुः कस्य कर्मेदं पीतं पुंसवनं जलम् ॥२८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्राह्मणों ने उठकर खाली कलश देखकर पूछा कि यह पुत्र को उत्पन्न करने वाला जल किसने पी लिया है ? ॥२८॥

राज्ञा पीतं विदित्वाथ ईश्वरप्रहितेन ते ।
ईश्वराय नमश्चक्रुरहो दैवबलं बलम् ॥२९॥

पीछे उनको ज्ञान हुआ कि दैवेच्छा से प्रेरित होकर उस जलको राजाही ने पी लिया, तब वे ईश्वर को नमस्कार करके कहने लगे कि-अहो ! ईश्वर का बल ही प्रधान बल है ॥२९॥

ततः काल उपावृत्ते कुक्षिं निर्भिद्य दक्षिणम् ।
युवनाश्वस्य तनयश्चक्रवर्ती जघान ह ॥३०॥

तत्पश्चात् समय आने पर युवनाश्वकी दाहनी कुक्षि चीर कर वह चक्रवर्त्ती पुत्र उत्पन्न हुआ ॥

कं धास्यति कुमारोऽयं स्तन्यं रोरूयते भृशम् ।
मां धाता वत्स मा रोदीरितींद्रो देशिनीमदात् ३१

ब्राह्मणोंने जब यह कहा कि-'यह बालक बहुत रोता है, पर स्तन न होने से क्या पियेगा ?" तब इन्द्र बोले कि-'यह मुझे पियेगा' हे पुत्र ! रो मत ऐसा कहकर उन्होंने अपनी तर्जनी उस बालक के मुंहमें डालदी, इसीलिये उसका नाम मांधातापड़ा॥

न ममार पिता तस्य विप्रदेवप्रसादतः ।
युवनाश्वोऽथ तत्रैव तपसा सिद्धिमन्वगात् ॥३२॥

ब्राह्मणों और देवताओं की कृपा से मांधाता का पिता (युवनाश्व) मर न सका, वरन् उसी बन में तप करके मोक्ष पागया ॥३२॥

त्रसदस्युरितींद्रोऽग विदधे नाम तस्य वै ।
यस्मात्रसंति द्रुह्यिमा दस्यवो रावणादयः ॥३३॥

हे राजन् ! इन्द्र ने उसका नाम 'त्रसदस्यु' रक्खा, क्योंकि उससे रावण आदि दुष्ट चोर काँपते तथा भयभीत रहते थे ॥३३॥

यौवनाश्वोथ मांधाता चक्रवर्त्यवनीं प्रभुः ।
सप्तद्वीपवतीमेकः शशासाच्युततेजसा ॥३४॥

युवनाश्व का पुत्र मांधाता चक्रवर्त्ती हुआ, वह भगवान् के तेज से सातों द्वीप संयुक्त पृथ्वी का अकेले ही पालन करता था ॥३४॥

ईजे च यज्ञं क्रतुभिरात्मविद्भूरिदक्षिणैः ।
सर्वदेवमयं देवं सर्वात्मकमतींद्रियम् ॥३५॥
द्रव्यं मंत्रो विधिर्यज्ञो यजमानस्तथर्त्विजः ।
धर्मो देशश्च कालश्च सर्वमेतद्यदात्मकम् ॥३६॥

इस आत्मज्ञानी मांधाता ने सर्व देवमय, महा प्रकाशमान, सर्वात्म तथा इन्द्रिय से अगम्य और मन्त्र, द्रव्य, विधि, यज्ञ, यजमान, ऋत्विज, धर्म, देश और काल-यह सब जिनका स्वरूप है, ऐसे भगवान् का श्रेष्ठ दक्षिणा वाले यज्ञों द्वारा यज्ञ किया था ॥३५॥॥३६॥

यावत्सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति ।
सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मांधातुः क्षेत्रमुच्यते ॥३७॥

जहाँ सूर्य उदय होताहै, एवं जहाँ अस्त होता है, वह सब मांधाता का क्षेत्र कहलाता है ॥३७॥

शशबिंदोर्दुहितरि बिंदुमत्यामधान्नृपः ।
पुरुकुत्समंबरीषं मुचुकुंदं च योगिनम् ॥३८॥

इस मांधाता के यहाँ शशबिन्दुकी कन्या बिंदुमती से पुरुकुत्स, अंबरीष और योगी मुचुकुन्द-यह तीन पुत्र हुये ॥३८॥

तेषां स्वसारः पंचाशत्सौभरिं वव्रिरे पतिम् ।
यमुनांऽतर्जले मग्नस्तप्यमानः परंतपः ॥३९॥

उन पुत्रों के पचास बहिनें हुईं जो सौभरि ऋषि को ब्याही गईं ॥३९॥

निर्वृतिं मीनराजस्य वीक्ष्य मैथुनधर्मिणः ।
जातस्पृहो नृपं विप्रः कन्यामेकामयाचत ॥४०॥

यमुनाजी के जल में डुबकी लगाकर सौभरि ऋषि महान् तप कररहे थे, वहाँ मत्स्य-मैथुन-सुख देखकर उनको भी वैसी ही इच्छा हुई, तब उन्होंने मांधाता के पास जाकर एक कन्या मांगी ॥४०॥

सोऽप्याह गृह्यतां ब्रह्मन्कामं कन्या स्वयंवरे ।
स विचिंत्याप्रियं स्त्रीणां जरठोऽयमसंमतः ॥४१॥

तब मांधाता ने उत्तर दिया कि हे ब्रह्मन् ! स्वयंवर में आप जिस कन्या को चाहें उसी को ले लें, परन्तु ऋषि ने विचार किया कि मैं स्त्रियों को असंमत, अप्रिय तथा वृद्ध हूँ ॥४१॥

वलीपलित एजत्क इत्यहं प्रत्युदाहृतः ।
साधयिष्ये तथात्मानं सुरस्त्रीणामपीप्सितम् ।
किं पुनर्मनुजेंद्राणामिति व्यवसितः प्रभुः ॥४२॥

मेरे शरीरकी त्वचा सिकुड़ गई है, बालसफ़ेद होगये हैं और सिर हिलने लगा है, इसलिये राजा ने मुझे टाल दिया है, परन्तु अब मैं ऐसा स्वरूप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बनाऊँगा कि राज-कन्या तो क्या देवाङ्गनायें भी उसपर मोहित हो जायेंगी ॥४२॥

मुनिः प्रवेशितः क्षत्रा कन्यांतः पुरमृद्धिमत् ।
वृतश्च राजकन्याभिरेकः पंचाशता वरः ॥४३॥

राज-द्वारपाल उन सौभरि को कन्याओं के समृद्धिशाली अन्तःपुर में लेगया, (उनके मायावी रूप पर मुग्ध होकर) पचासही कन्याओं ने उन्हें वरण कर लिया ॥४३॥

तासां कलिरभूद्यांस्तदर्थेऽगोह्य सौहृदम् ।
ममानुरूपो नायं व इति तद्गतचेतसाम् ॥४४॥

उन सबका चित्त सौभरि ऋषि में लग गया अतएव वे पारस्परिक प्रेम को भूलकर आपस में लड़ने लगीं कि यह पति तो मेरे ही अनुरूप है तेरे नहीं आदि, इसपर उनमें बड़ा कलह मचगया ॥

स बह्वृचस्ताभिरपारणीयतपःश्रियाऽनर्घ्यपरिच्छदेषु । गृहेषु नानोपवनामलांभःसरस्सु सौगंधिककाननेषु ॥४५॥

यह ऋग्वेदके जाननेवाले सौभरि ऋषि अपार तप की बढ़ती से अमूल्य सामानों वाले घरोंमें उन पचास स्त्रियों के साथ सर्वदा रमण करने लगे, जहाँ अनेक प्रकार के बगीचे और निर्मल जल के तालाब शोभायमान हैं और सुगन्धित कमलों का बन लहलहा रहा है ॥४५॥

महार्हशय्यासनवस्त्रभूषणस्नानानुलेपाभ्यवहारमाल्यकैः । स्वलंकृतस्त्रीपुरुषेषु नित्यदा रेमेऽनुगायद्द्विजभृंगवंदिषु ॥४६॥

शैया, आसन, वस्त्र, भूषण, स्नान के सामान, चन्दन, अरगजा, भोजन और फूल अमूल्य पदार्थ उपस्थित हैं, पक्षी, भौंरे और वन्दीजन गारहे हैं तथा शृङ्गार किये दासियां और दास फिररहे हैं ॥

यद्गार्हस्थ्यं तु संवीक्ष्य सप्तद्वीपवतीपतिः ।
विस्मितः स्तंभमजहात्सार्वभौमश्रियान्वितम् ४७॥

लक्ष्मीवान्, सप्तद्वीप के अधिकारी चक्रवर्त्ती मांधाता को सौभरि का यह गृहस्थाश्रम देखकर आश्चर्यके कारण अपने वैभवका अभिमान भूलगया।

एवं गृहेष्वभिरतो विषयान्विविधैः सुखैः ।
सेवमानो न चातुष्यदाज्यस्तोकैरिवानलः ॥४८॥

सौभरि ऋषि गृहस्थमें इस प्रकार से अनुरक्त रहकर तथा विषय भोग करते हुए भी उन सुखों से इसी भांति तृप्त न होसके कि जिस भांति घीके छींटों से अग्नि शान्त नहीं होती ॥४८॥

स कदाचिदुपासीन आत्मापह्नवमात्मनः ।
ददर्श बह्वृचाचार्यो मीनं संगसमुत्थितम् ॥४९॥

वे ऋग्वेदियों के आचार्य सौभरि ऋषि एक दिन बैठे थे, वहाँ उन्हें मत्स्य के संग से नष्ट हुई तपस्या का ध्यान आया और वे सोचनेलगे ॥४९॥

अहो इमं पश्यत मे विनाशं तपस्विनः सच्चरितव्रतस्य । अंतर्जले वारिचरप्रसंगात्प्रच्यावितं ब्रह्म चिरं धृतं यत् ॥५०॥

हाय ! मैं तो तपस्वी, सुपात्र और सुन्दर नियमों का पालन करने वाला था, अब मेरी क्या पतित दशा होगई है ? मैं जलके भीतर मछली का प्रसंग देखकर ही अपने चिरकाल से संचित किये हुए तप को नाश कर बैठा हूँ ॥५०॥

संगं त्यजेत मिथुनव्रतिनां मुमुक्षुः सर्वात्मना न विसृजेद्बहिरिंद्रियाणि । एकश्चरन्रहसि चित्तमनंत ईशे युंजीत तद्व्रतिषु साधुषु चेत्समंगः ॥५१॥

मोक्ष की इच्छा रखने वालों को दाम्पत्य धर्म वालों का कदापि साथ न करना चाहिये और इन्द्रियों को स्वतन्त्रता न देनी चाहिये, अकेले ही विचरना चाहिये, एकान्त रहना चाहिये, ईश्वरका ध्यान करना चाहिये और (आवश्यकता पड़ने पर) ईश्वर-परायण पुरुषों का ही साथ करना चाहिये ।

एकस्तपस्व्यहमथांभसि मत्स्यसंगात्पंचाशदासुत पंचसहस्रसर्गः । नांतं व्रजाम्युभयकृत्यमनोरथानां मायागुणैर्हृतमतिर्विषयेऽर्थभावः ॥५२॥

मैं जलमें तपस्या करते समय अकेला ही था, वहाँ मत्स्यका संग देखकर (विवाह करके) पचास रूपवाला होगया, फिर प्रति स्त्रीसे सौ पुत्र उत्पन्न करके पचास हज़ार रूपधारी होगया, फिर भी माया के गुणों से बुद्धि हरण होने के कारण तथा विषयोंको पुरुषार्थ मान लेनेके कारण लौकिक तथा पारलौकिक मनोरथों का अन्त नहीं पारहाहूँ ॥५२॥

एवं वसन्गृहे कालं विरक्तो न्यासमास्थितः ।
वनं जगामानुययुस्तत्पत्न्यः पतिदेवताः ॥५३॥

इस प्रकार गृहस्थमें रहते-रहते किसी समय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विरक्त तथा संग-रहित होकर वह वन में चले गये और पति को ही देवता माननेवाली उनकी स्त्रियां भी उनके साथ ही चल दीं ॥५३॥

तत्र तप्त्वा तपस्तीक्ष्णमात्मकर्षणमात्मवान्।
सहैवाग्निभिरात्मानं युयोज परमात्मनि ॥५४॥

वहां शरीर को क्षीण करने वाले तप के द्वारा ज्ञानवान् सौभरि ऋषि ने अग्निहोत्र के साथ अपने आत्मा को परमात्मा में लीन कर दिया ॥५४॥

ताःस्वपत्युर्महाराज निरीक्ष्याध्याध्यात्मिकीं गतिम्
अन्वीयुस्तत्प्रभावेण अग्निं शांतमिवार्चिषः ॥५५॥

हे राजन्! जैसे अग्नि शान्त होने पर उसकी ज्वालायें भी चली जाती हैं, वैसे ही उनकी स्त्रियां भी अपने पति के प्रभाव से मुक्त स्वामी के साथ मुक्त होगईं ॥५५॥

इति श्रीमद्भागवते नवमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सातवां अध्याय

(मांधाता-वंश-वर्णन)

श्रीशुक उवाच

मांधातुः पुत्रप्रवरो योंऽबरीषः प्रकीर्तितः।
पितामहेन प्रवृतो यौवनाश्वश्च तत्सुतः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन्! मांधाता के उत्तम पुत्र अंबरीष को उसके दादा युवनाश्व ने पुत्र-भाव करके गोदी ले लिया था, अंबरीष के यौवनाश्व नामक पुत्र हुआ था ॥१॥

हारी तस्तस्य पुत्रोऽभून्मांधातृप्रवरा इमे।
नर्मदा भ्रातृभिर्दत्ता पुरुकुत्साय योरगैः ॥ २ ॥

उसके हारीत नामक पुत्र हुआ, मांधाताके वंश में यह तीन प्रमुख हुए हैं, मांधाताके पुत्र पुरुकुत्स को सर्पों ने अपनी बहिन नर्मदा व्याह दी ॥ २ ॥

तया रसातलं नीतो भुजगेंद्रप्रयुक्तया।
गंधर्वानवधीत्तत्र वध्यान्वै विष्णुशक्तिधृक् ॥ ३ ॥

वासुकि की आज्ञानुसार वह नर्मदा अपनेपति पुरुकुत्स को पाताल में लेगई, वहाँ विष्णुकी शक्ति पाये हुए पुरुकुत्स ने वध के योग्य गन्धर्वों का वध कर डाला ॥ ३ ॥

नागालब्धवरः सर्पादभयं स्मरतामिदम्।
त्रसदस्युः पौरुकुत्सो योऽनरण्यस्य देहकृत् ॥ ४ ॥
हर्यश्वस्तत्सुतस्तस्मादरुणोऽथ निबंधनः।
तस्य सत्यव्रतः पुत्रस्त्रिशंकुरिति विश्रुतः ॥ ५ ॥

तब उसे नागों से वरदान मिला कि जो इस चरित्र का स्मरण करेगा उसे सर्पों से भय न होगा पुरुकुत्स के त्रसदस्यु पुत्र हुआ, उसके अनरण्य, अनरण्य के हर्यश्व, हर्यश्व के अरुण, अरुण के निबन्धन, निबन्धन के सत्यव्रत नामक पुत्र हुआ जो-त्रिशंकु[1] नाम से प्रसिद्ध है ॥४॥॥५॥

प्राप्तश्चांडालतां शापाद्गुरोः कौशिकतेजसा।
सशरीरो गतः स्वर्गमद्यापि दिवि दृश्यते ॥ ६ ॥

त्रिशंकु गुरु वसिष्ठके शाप से चांडाल होगया, परन्तु विश्वामित्रजी ने अपनी शक्ति से उसे शरीर सहित ही स्वर्ग भेज दिया, इसलिये वह अब भी आकाश में तारे के रूपमें दीख पड़ता है ॥६॥

पातितोऽवाक्शिरा देवैस्तेनैवस्तंभितो बलात्।
त्रैशंकवो हरिश्चंद्रो विश्वामित्रवसिष्ठयोः।
यन्निमित्तमभूद्युद्धं पक्षिणोर्बहुवार्षिकम् ॥ ७ ॥

(क्योंकि) उसे स्वर्ग पहुंचने पर देवताओं ने उलटे सिर नीचे गिरादिया था, परन्तु विश्वामित्र ने अपने बलसे बीच ही में रोक दिया, त्रिशंकु के पुत्र हरिश्चंद्र हुए, जिनके लिये विश्वामित्र और वसिष्ठजी ने पक्षी-रूप[2] धर कर वर्षों तक परस्पर युद्ध किया ॥७॥

सोऽनपत्यो विषण्णात्मा नारदस्योपदेशतः।

१-जिसमें तीन फल वाले भाले की नाईं तीन दुःखदायी दोष हों उसे त्रिशंकु कहते हैं; पिता की अप्रसन्नता, गुरु-गौ-बध और यन्त्रों का अशुद्ध प्रयोग-यह तीन दोष उसमें थे।

२-विश्वामित्र ने छल पूर्वक हरिश्चन्द्र का धन हरण कर लिया था, इसलिये वसिष्ठने विश्वामित्र को शाप दिया कि "तुम बगुला हो जाओ" यही शाप विश्वामित्र ने वसिष्ठ को दिया और दोनों पक्षी होकर लड़ते रहे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वरुणं शरणं यातः पुत्रो मे जायतां प्रभो ॥ ८ ॥

हरिश्चन्द्रके कोई सन्तान न थी इसलिये उन्हों ने दुःखी होकर नारदजीके कहने से वरुणकी शरण लेकर कहा कि हे देव ! मेरे पुत्र हो ॥८॥

यदि वीरो महाराज तेनैव त्वां यजे इति ।
तथेति वरुणेनास्य पुत्रो जातस्तु रोहितः ॥ ९ ॥

हे महाराज ! मेरे जो पुत्र होगा मैं उसी वीर को अर्पण करके आपका पूजन करूँगा, तब वरुण ने कहा कि-'तेरे पुत्र हो' इससे हरिश्चन्द्र के यहाँ रोहित नामक पुत्र हुआ ॥९॥

जातः सुतो ह्यनेनांग मां यजस्वेति सोऽब्रवीत् ।
यदा पशुर्निर्दशः स्यादथ मेध्यो भवेदिति ॥१०॥

वरुणने कहा-"हे अङ्ग ! तेरे पुत्र हुआ है इसे मारकर अब मुझे बलि दे, तब हरिश्चंद्र ने उत्तर दिया कि यह पशु दस दिनके पीछे पवित्र होगा ॥

निर्दशे च स आगत्य यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत् ।
दंताः पशोर्यज्ञायेरन्नथ मेध्यो भवेदिति ॥११॥

दस दिन बीतने पर फिर वरुण ने आकर कहा कि अब मुझे बलिदान दे, तब हरिश्चंद्र बोले कि-दाँत निकल आने पर यह पशु पवित्र होगा ॥११॥

जाता दंता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत् ।
यदा पतंत्यस्य दंता अथ मेध्यो भवेदिति ॥१२॥

दाँत निकल आने पर फिर वरुण ने बलि के लिये कहा तो राजा हरिश्चन्द्र ने कहा कि जब इस के दाँत गिर जाँयगे तब यह पवित्र होगा ॥१२॥

पशोर्निपतिता दंता यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत् ।
यदा पशोः पुनर्दंता जायंतेऽथ पशुः शुचिः॥१३॥

जब उसके दाँत गिरगये तब वरुणने फिर कहा कि 'अब दे' तो राजाने कहाकि जब इसके दूसरीबार दाँत निकल आयेंगे तब यह पशु पवित्र होगा ॥

पुनर्जाता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत् ।
सान्नाहिको यदा राजन्राजन्योऽथ पशुः शुचिः१४

दूसरी बार दांत आने पर वरुण ने फिर कहा तो हे राजन् ! हरिश्चन्द्र ने कहा कि क्षत्रिय जाति का पशु तो तभी पवित्र होगा जब कि वह संग्राम करने के योग्य होजायगा ॥ १४॥

इति पुत्रानुरागेणस्नेहयंत्रितचेतसा ।
कालं वंचयता तं तमुक्तो देवस्तमैक्षत ॥१५॥

इसी प्रकार पुत्र-स्नेहमें बंधे हुए राजाने समय की वाँचना करते २ जब-जब के लिये कहा, वरुण देवता तभी-तभी की प्रतीक्षा करते रहे ॥ १५ ॥

रोहितस्तदभिज्ञाय पितुः कर्म चिकीर्षितम् ।
प्राणप्रेप्सुर्धनुष्पाणिररण्यं प्रत्यपद्यत ॥१६॥

इतने में रोहित को भी यह पता चल गया कि मेरा पिता मुझे बलिदान करके वरुण का पूजन किया चाहता है, इसलिये वह अपने प्राण बचानेके लिये धनुष हाथ में लेकर वनमें चला गया ॥१६॥

पितरं वरुणग्रस्तं श्रुत्वा जातमहोदरम् ।
रोहितो ग्राममेयाय तमिंद्रः प्रत्यषेधत ॥१७॥

तब वरुणने क्रोध करके राजा हरिश्चन्द्र को जलोदर का रोग कर दिया, यह समाचार पाकर रोहित गाँवमें आने-जाने लगा परन्तु इन्द्र ने उसे रोक दिया ॥१७॥

भूमेः पर्यटनं पुण्यं तीर्थक्षेत्रनिषेवणैः ।
रोहितायादिशच्छक्रः सोऽप्यरण्येवसत्समाम्१८॥

और उससे कहा कि हे तात ! तीर्थ-यात्राकरना तथा पृथ्वी पर विचरनाही उचितहै, जब इन्द्रने उसे यह उपदेशदिया तब वह एक वर्षतक वनमें रहा ॥

एवं द्वितीये तृतीये चतुर्थे पंचमे तथा ।
अभ्येत्याभ्येत्य स्थविरो विप्रो भूत्वाह वृत्रहा॥१९

इस प्रकार दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें वर्ष भी इन्द्र ने वृद्ध ब्राह्मण का वेष धरकर रोहित को गाँव में जाने से रोका ॥१९॥

षष्ठं संवत्सरं तत्र चरित्वा रोहितः पुरीम् ।
उपव्रजन्नजीगर्तादक्रीणान्मध्यमं सुतम् ॥२०॥

अन्त में रोहित ने छः वर्ष वन में व्यतीत कर के अजीगर्त से उसके मझले बेटे को मोल लेकर अपने पिता के नगर में प्रवेश किया ॥२०॥

शुनःशेपं पशुं पित्रे प्रदाय समवंदत ।
ततः पुरुषमेधेन हरिश्चंद्रो महायशाः ॥२१॥
मुक्तोदरोऽयजद्देवान् वरुणादीन् महत्कयः ।
विश्वामित्रोऽभवत् तस्मिन् होता चाध्वर्युरात्मवान्॥
जमदग्निरभूद्ब्रह्मा वसिष्ठोऽयास्य सामगः ।
तस्मै तुष्टो ददाविंद्रः शातकौंभमयं रथम् ॥२२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उस शुनः शेपको अपने बदले बलिदानके लिये अपने पिता को देकर रोहित ने प्रणाम किया तब महान् यशस्वी राजा हरिश्चन्द्रवे रोग से मुक्त हो कर पुरुषमेध नामक यज्ञ से वरुण आदि देवताओं का पूजन किया, जिससे महत्पुरुषों में उनका नाम होगया, उस यज्ञ में विश्वामित्रजी होता, आत्मज्ञानी जमदग्नि अध्वर्यु, वसिष्ठजी ब्रह्मा और अयास्य मुनि उद्गाता हुआ, इन्द्र ने प्रसन्न होकर हरिश्चन्द्रको सोने का रथ दिया ॥२१॥२२॥॥२३॥

शुनःशेपस्य माहात्म्यमुपरिष्टात् प्रचक्षते ।
सत्यसारां धृतिं दृष्ट्वा सभार्यस्य च भूपतेः ॥२४॥
विश्वामित्रो भृशं प्रीतो ददावव्हितां गतिम् ।
मनः पृथिव्यां तामद्भिस्तेजसाऽऽपोऽनिलेन तत् २५
खे वायुं धारयंस्तच्च भूतादौ तं महात्मनि ।
तस्मिन् ज्ञानकलां ध्यात्वा तयाऽज्ञानं विनिर्दहन्॥
हित्वा तां स्वेन भावेन निर्वाणसुखसंविदा ।
अनिर्देश्याप्रतर्क्येण तस्थौ विध्वस्तबंधनः ॥२७॥

यहाँ जो शुनःशेप का चरित्र शेप रह गया है उसे विश्वामित्रजी के पुत्रों के चरित्रके साथ आगे कहेंगे, राजा हरिश्चन्द्र और उनकी रानी का सत्य मय धीरज देखकर विश्वामित्रजी ने अत्यंत प्रसन्न मनसे उन्हें ब्रह्मज्ञान सिखलाया, राजा ने उसके प्रभाव से अपने मनका पृथ्वी में, पृथ्वी का जलमें जल का तेज में, तेजका वायु में, वायु का आकाश में, आकाश का अहंकार में, अहङ्कार का महत्तत्व में लय करके ज्ञान-कला के ध्यान द्वारा अज्ञान को नाश कर दिया, फिर ज्ञान-कला को भी छोड़ कर निर्वाण सुख की सम्पत्ति द्वारा बन्धन-मुक्त होकर अनिर्वाच्य तथा अतर्क्य गति को प्राप्त होगये ॥

इति श्रीमद्भागवते नवमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

आठवां अध्याय

(रोहित वंश-विस्तार)

श्रीशुक उवाच

हरितो रोहितसुतश्चंपस्तस्माद्विनिर्मिता ।
चंपापुरी सुदेवोऽतो विजयो यस्य चात्मजः॥ १ ॥
भरुकस्तत्सुतस्तस्माद् वृकस्तस्यापि बाहुकः ।
सोऽरिभिर्हृतभू राजा सभार्यो वनमाविशत्॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—रोहितके हरित और हरित के चम्प नामक पुत्र हुआ, जिसने चम्पापुरी बसाई चम्प के सुदेव, सुदेव के विजय, विजय के भरुक, भरुक के बाहुक पुत्र हुआ, इस राजा का राज्य शत्रुओं ने छीन लिया, तब वह अपनी स्त्रियों के साथ बनमें चला गया ॥१॥॥२॥

वृद्धं तं पंचतां प्राप्तं महिष्यनुमरिष्यती ।
और्वेण जानतात्मानं प्रजावंतं निवारिता ॥ ३ ॥

यह राजा वृद्ध होने से मरगया, तब उसकी रानी उसके साथ सती होनेलगी, परन्तु उसे गर्भवती जानकर और्व ऋषि ने जाकर रोका ॥ ३ ॥

आज्ञायास्यै सपत्नीभिर्गरो दत्तोऽश्मना सह ।
सह तेनैव संजातः सगराख्यो महायशाः ॥ ४ ॥

उसकी सौतों ने उसे गर्भिणी जानकर अन्न के साथ विष दे दिया, परन्तु वह गर्भस्थित बालक मरा नहीं, वरन् गर (विष) के साथही उत्पन्नहुआ इसलिये उसका नाम 'सगर' होगया, वह बड़ा प्रभावशाली हुआ ॥४॥

सगरश्चक्रवर्त्यासीत् सागरो यत्सुतैः कृतः ।
यस्तालजंघान् यवनान् शकान् हैहयबर्बरान् ॥५॥
नावधीद् गुरुवाक्येन चक्रे विकृतवेषिणः ।
मुंडान् श्मश्रुधरान् कांश्चिन्मुक्तकेशार्धमुंडितान् ६॥

उस चक्रवर्त्ती राजा सगर के पुत्रों ने सागर बनाया, इस सगर राजा ने अपने गुरु और्व ऋषि के कहने से तालजंघ, यवन, शक, हैहय और बर्बर आदि जातियों में से कितनों ही को मारा तो नहीं परन्तु उनके वेष बिगाड़ डाले, कितनों ही के सिर मुड़वा डाले और दाढ़ी मूंछ शेष रहने दी, कईएक ने खुले बाल कर दिये, कुछ का आधा मुण्डन कर डाला ॥५॥॥६॥

अनंतर्वाससः कांश्चिदबहिर्वाससोऽपरान् ।
सोऽश्वमेधैरयजत सर्ववेदसुरात्मकम् ॥ ७ ॥

कई एक को भीतर के वस्त्र बिना कर दिया और कईएक को बाहरके वस्त्र बिना कर दिया ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और्वोपदिष्टयोगेन हरिमात्मानमीश्वरम् ।
तस्योत्सृष्टं पशुं यज्ञे जहाराश्वं पुरंदरः ॥ ८ ॥

और और्व ऋषि की शिक्षानुसार इस राजाने सर्ववेद तथा सर्वदेव मय ईश्वर और परमात्मा भगवान् हरि का पूजन किया, जब इसके यज्ञमें से छोड़े हुए घोड़े को इन्द्र ने हरण कर लिया ॥ ८ ॥

सुमत्यास्तनया दृप्ताः पितुरादेशकारिणः ।
हयमन्वेषमाणास्ते समंतान्न्यखनन् महीम् ॥ ९ ॥

तब राजा की आज्ञा से रानी सुमति के साठ हज़ार पुत्र अभिमान पूर्वक उस घोड़े को ढूंढने के लिये निकले, उन राजकुमारोंने शस्त्रोंके द्वारा चारों ओर से पृथ्वी को खोद डाला ॥९॥

प्रागुदीच्यां दिशि हयं ददृशुः कपिलांतिके ।
एष वाजिहरश्चौर आस्ते मीलिततलोचनः ॥१०॥

अन्त में ईशान की ओर कपिलदेवजी के पास एक घोड़ा बँधा हुआ उन्होंने देखा, उसे देखकर उन राजकुमारों ने यह सोचा कि घोड़े को चुराकर लाने वाला आँखें बन्द कियेहुए यह चोरही बैठाहै।

हन्यतां हन्यतां पाप इति षष्टिसहस्रिणः ।
उदायुधा अभिययुरुन्मिमेष तदा मुनिः ॥११॥

ऐसा निश्चय करके वे साठ हज़ार राजकुमार "इस पापी को मारो-मारो" इस प्रकार चिल्लाते हुए शस्त्र उठाकर उन्हें मारने के लिये दौड़े, उस समय कपिलजी ने अपनी आंखें खोलीं ॥११॥

स्वशरीराग्निना तावन्महेंद्रहृतचेतसः ।
महद्व्यतिक्रमहता भस्मसादभवन् क्षणात् ॥१२॥

तब इन्द्र के द्वारा बुद्धि हरण किये हुए और महात्माओं का अपराध करने से आपही मरे हुए वे राजकुमार कपिल मुनि की देह से निकली हुई अग्नि से क्षण भरमें जलकर भस्म होगये ॥ १२ ॥

न साधुवादो मुनिकोपभर्जिता नृपेंद्रपुत्रा इति सत्त्वधामनि । कथं तमोरोषमयं विभाव्यते जगत्पवित्रात्मनि खे रजो भुवः ॥१३॥

हे राजन् ! कुछ लोगोंका यह मतहै कि सगर के बेटे कपिलजी के क्रोध से जल गये, परन्तु उन का यह कहना सत्य नहीं, क्योंकि जगत्को पवित्र करने वाले कपिलजी में क्रोधरूपी अज्ञान हो ही नहीं सकता, जैसे कि आकाश में पृथ्वी की रज नहीं हो सकती ॥१३॥

यस्येरिता सांख्यमयी दृढेह नौर्यया मुमुक्षुस्तरते दुरत्ययम् । भवार्णवं मृत्युपथं विपश्चितः परात्मभूतस्य कथं पृथङ्मतिः ॥१४॥

जिनकी रची हुई सांख्य शास्त्ररूपी दृढ़ नौकासे मोक्ष चाहने वाले पुरुष मृत्यु के मार्ग रूपी अपार भवसागर को पार कर जाते हैं, उन सर्वज्ञ तथा ब्रह्मरूप कपिलजी में शत्रु-मित्र आदि की भेद-दृष्टि कैसे हो सकती है ? ॥१४॥

योऽसमंजस इत्युक्तः स केशिन्यां नृपात्मजः ।
तस्य पुत्रोंऽशुमान् नाम पितामहहिते रतः ॥१५॥

सगर की दूसरी रानी केशनी से असमंजस नामक पुत्र हुआ, असमंजस से अंशुमान हुआ,जो अपने पिता सगरके हितमें सदैव लगा रहता था ॥

असमंजस आत्मानं दर्शयन्नसमंजसम् ।
जातिस्मरः पुरा संगाद् योगी योगाद् विचालितः॥
आचरन् गर्हितं लोके ज्ञातीनां कर्म विप्रियम् ।
सरय्वांक्रीडतो बालान् प्रास्यदुद्वेजयन् जनम्॥१७॥

असमंजस पूर्व-जन्म में योगी था, परन्तु संग दोष के कारण योग-भ्रष्ट होगया था, इसलिये उसे सगर के यहाँ जन्म लेना पड़ा, उसे पूर्व समय का स्मरण था, इसलिये वह संग दोष से बचने के लिये अपना बुरा वेष बनाये रहता था और जगत् में ऐसे काम करता था जो निन्दित और प्राणियों को अप्रिय हों, इसीलिये उसने लोगों को उद्वेग पहुंचाने के लिये कितने ही खेलते हुए बच्चों को सरयू नदी में फेंक दिया था ॥१६॥१७॥

एवंवृत्तः परित्यक्तः पित्रा स्नेहमपोह्य वै ।
योगैश्वर्येण बालांस्तान् दर्शयित्वा ततो ययौ१८॥

ऐसा आचरण देखकर उसके पिताने उसे स्नेह त्यागकर घरसे निकालदिया,तब वह योगिराज उन डुबाये हुए बालकोंको दिखाकर वहाँसे चलागया॥

अयोध्यावासिनः सर्वे बालकान् पुनरागतान् ।
दृष्ट्वा विसिस्मिरे राजन् राजा चाप्यन्वतप्यत१९॥

हे राजन् अपने बालकों को फिरसे आया हुआ देखकर समस्त अयोध्यावासी आश्चर्य में पड़ गये और राजाभी अंशुमानके चले जानेसे दुखी हुआ ॥

अंशुमांश्चोदितो राज्ञा तुरंगान्वेषणे ययौ ।
पितृव्यखातानुपथं भस्मांति ददृशे हयम् ॥२०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घोड़ा ढूंढनेके लिये भेजा हुआ अंशुमान् अपने चाचाओं के खोदे हुए गढ़ों के रास्ते से चला,उस ने आगे चलकर भस्मके ढेरके पास घोड़ेको देखा।

तत्रासीनं मुनिं वीक्ष्य कपिलाख्यमधोक्षजम् ।
अस्तौत् समाहितमनाः प्रांजलिः प्रणतो महान्२१

महात्मा अंशुमान्ने वहाँ विराजे हुए साक्षात् विष्णु भगवान् के अवतार कपिल मुनिको देखकर एकाग्र चित्त से प्रणाम करते हुए हाथ जोड़ कर उनकी स्तुति की ॥२१॥

अंशुमानुवाच

न पश्यति त्वां परमात्मनोऽजनो न बुध्यते ऽद्यापि समाधियुक्तिभिः । कुतोऽपरे तस्य मनः शरीरधीविसर्गसृष्टा वयमप्रकाशाः ॥२२॥

अंशुमान् बोला–ब्रह्मा भी समाधि-युक्त द्वारा अपने से परे आप परमेश्वरको अबतक नहीं देखते फिर उनके मन, शरीर और बुद्धिसे रचीहुई सृष्टि में उत्पन्न होने वाले हम अज्ञानी लोग तो आपको जानही क्या सकते हैं ? ॥२२॥

ये देहभाजस्त्रिगुणप्रधाना गुणान् विपश्यंत्युत वा तमश्च । यन्माययो मोहितचेतसस्ते विदुः स्वसंस्थं न बहिः प्रकाशाः ॥२३॥

आपकी माया से मोहित, परतन्त्र बुद्धि तथा बहिर्ज्ञान वाले मनुष्य जागृत और स्वप्नावस्था में केवल विषयोंको देखा करतेहैं और सुषुप्तिअवस्था में अज्ञान को देखा करते हैं, वे अपने ही स्वरूप में विराजमान आपको नहीं जानते ॥२३॥

तं त्वामहं ज्ञानघनं स्वभावप्रध्वस्तमायागुण भेदमोहैः । सनंदनाद्यैर्मुनिभिर्विभाव्यं कथं हि मूढः परिभावयामि ॥२४॥

आपजो शुद्ध ज्ञानमय तथा स्वभाव से मायाके गुणात्मक भेद और मोह का नाश करने वाले हैं, जिनका सनकादि भी ध्यान करते हैं, उनको मैं मूर्ख कैसे जान सकता हूँ ? ॥२४॥

प्रशांतमायागुणकर्मलिंगमनामरूपं सदसद्विमुक्तम् । ज्ञानोपदेशाय गृहीतदेहं नमामहे त्वां पुरुषं पुराणम्

हे परम शान्त ! आप जो माया के गुण और कर्मों से ज्ञानमय, नामरूप रहित तथा पुण्य-पापसे मुक्त हो, तथा जिन्होंने ज्ञानका उपदेश करने के लिये ही अवतार धारण किया है, उन पुराण-पुरुष आपको मैं प्रणाम करता है ॥२५॥

त्वन्मायारचिते लोके वस्तुबुद्ध्या गृहादिषु । भ्रमंति कामलोभेर्ष्यामोहविभ्रांतचेतसः ॥२६॥

हे नाथ ! आपकी माया द्वारा रचे हुए लोकमें काम, लोभ, ईर्ष्या और मोह से भ्रान्त चित्त यह प्राणी घर आदि पदार्थों को सार समझकर उनमें भटका करता है ॥२६॥

अद्य नः सर्वभूतात्मन् कामकर्मेंद्रियाशयः । मोहपाशो दृढश्छिन्नो भगवंस्तव दर्शनात् ॥२७॥

हे समस्त भूतों के आत्मा ! हे भगवन् ! आज आपके दर्शन से मेरा काम कर्म-सम्बन्धी इन्द्रियों का आश्रयरूप दृढ़ मोह-पाश कट गया है ॥२७॥

श्रीशुक उवाच

इत्थं गीतानुभावस्तं भगवान् कपिलो मुनिः । अंशुमंतमुवाचेदमनुगृह्य धिया नृपः ॥२८॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! अंशुमान की विनय सुनकर प्रसिद्ध प्रभावशाली भगवान् कपिल देवजी ने उसपर कृपा करके यह वचन कहे ॥२८॥

श्रीभगवानुवाच

अश्वोऽयं नीयतां वत्स पितामहपशुस्तव । इमे च पितरो दग्धा गंगांऽभोर्हंति नेतरत् ॥२९॥

श्रीभगवान् बोले–हे पुत्र ! यह घोड़ा तेरे दादा का है इसे लेजा, तेरे जले हुए काका लोग केवल गङ्गाजल से पवित्र होंगे, दूसरे किसी उपाय से उनका उद्धार न होगा ॥२९॥

तं परिक्रम्य शिरसा प्रसाद्य हयमानयत् । सगरस्तेन पशुना क्रतुशेषं समापयत् ॥३०॥

यह वचन सुनकर अंशुमान् कपिलजी की परिक्रमा करके उनको प्रणाम करके, प्रसन्न करके और घोड़ा लेकर लौट आया, उस घोड़े से राजा सगर ने अपना अश्वमेध यज्ञ पूर्ण किया ॥३०॥

राज्यमंशुमति न्यस्य निःस्पृहो मुक्तबंधनः । और्वोपदिष्टमार्गेण लेभे गतिमनुत्तमाम् ॥३१॥

फिर अंशुमानको राज्य देकर बन्धन-मुक्त तथा निःस्पृह होकर राजा सगर और्वऋषि की बतलाई हुई विधि के द्वारा परम गति को प्राप्त हुआ ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते नवमस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नौवां अध्याय

(अंशुमान् का वंश-विस्तार)

श्रीशुक उवाच

अंशुमांश्च तपस्तेपे गंगानयनकाम्यया ।
कालं महांतं नाशक्नोत् ततः कालेन संस्थितः॥१॥

श्रीशुकदेवजी बोले–अंशुमान् राजाने गङ्गालाने के लिये बहुत वर्षों तक तप किया, पर गङ्गा को न ला सका और समय आने पर मर गया ॥१॥

दिलीपस्तत्सुतस्तद्वदशक्तः कालमेयिवान् ।
भगीरथस्तस्य पुत्रस्तेपे स सुमहत् तपः ॥ २ ॥

अंशुमान के दिलीप नामक पुत्र हुआ, परन्तु वह भी अपने पिता की नाईं गङ्गा को न ला सका और मरगया, फिर दिलीप के भगीरथ नामक पुत्र हुआ और वह भी महान् तप करने लगा ॥२॥

दर्शयामास तं देवी प्रसन्ना वरदा ऽस्मि ते ।
इत्युक्तः स्वमभिप्रायं शशंसावनतो नृपः ॥ ३ ॥

उसे दर्शन देकर गङ्गा देवीने कहा कि मैं प्रसन्न हूँ तू वर माँग, तब भगीरथने अपनी इच्छा प्रगटकी।

कोऽपि धारयिता वेगं पतंत्या मे महीतले ।
अन्यथा भूतलं भित्त्वा नृप यास्ये रसातलम्॥ ४ ॥

तो गङ्गाजी बोलीं कि मैं आकाश से पृथ्वी पर गिरूँगी, वहाँ मेरे वेगको रोकने वाला कोई होना चाहिये, अन्यथा हे राजन् ! मैं पृथ्वी को चीरती हुई पाताल में चली जाऊँगी ॥४॥

किंचाहं न भुवं यास्ये नरा मय्यामृजंत्यघम् ।
मृजामि तदघं कुत्र राजंस्तत्र विचिंत्यताम् ॥ ५ ॥

हे राजन् ! मैं पृथ्वी पर आने के लिये तैयार नहीं हूँ, क्योंकि मनुष्य अपने पाप मुझमें धोयेंगे परन्तु मैं उन पापों को कहाँ धोऊँगी ? यह बात विचारो ॥ ५ ॥

भगीरथ उवाच

साधवो न्यासिनः शांता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः ।
हरंत्यघंतेऽगसंगात् तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः ॥ ६ ॥

भगीरथ बोले–संग-रहित, जगत्के पवित्रकर्त्ता शान्त और ब्रह्मज्ञानी सत्पुरुष आपके जल में स्नान करके आपके पापोंको दूर करेंगे, क्योंकि सर्व पाप हारी भगवान् हरि उनमें विराजमान् हैं ॥६॥

धारयिष्यति ते वेगं रुद्रस्त्वात्मा शरीरिणाम् ।
यस्मिन्नोतमिदं प्रोतं विश्वं शाटीव तंतुषु ॥ ७॥

शरीरधारियों के आत्मा शिवजी कि जिनमें यह जगत् इस प्रकार ओत-प्रोतहै जैसे तन्तुओंमें वस्त्र ओत-प्रोत रहताहै, तेरे वेगको धारण करेंगे ॥ ७ ॥

इत्युक्त्वा स नृपो देवं तपसाऽतोषयच्छिवम् ।
काले नाल्पीयसा राजंस्तस्येशः समतुष्यत ॥८॥
तथेति राज्ञाभिहितं सर्वलोकहितः शिवः ।
दधारावहितो गंगां पादपूतजलां हरेः ॥ ९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! इस प्रकार कह कर भगीरथ ने तप के द्वारा महादेवजी को प्रसन्न करना प्रारम्भ किया और कुछही दिनों में शिवजी प्रसन्न भी होगये और राजाके कहने को अङ्गीकार करके सब लोगों के हितकारी शिवजी ने सावधान होकर भगवान् के चरण द्वारा पवित्र हुई गङ्गा को अपने मस्तक पर धारण किया ॥८॥९॥

भगीरथः स राजर्षिर्निन्ये भुवनपावनीम् ।
यत्र स्वपितृणां देहा भस्मीभूताः स्म शेरते ॥१०॥

राजर्षि भगीरथ अपने पितरों के भस्मी भूत पड़े हुए शरीरों के स्थान पर जगत्-पावनी गङ्गाजी को ले गये ॥१०॥

रथेन वायुवेगेन प्रयांतमनुधावती ।
देशान्पुनंती निर्दग्धानासिंचत्सगरात्मजान्॥११॥

वायुके समान वेगवाले रथपर बैठे हुए भगीरथ के पीछे-पीछे दौड़कर श्रीगङ्गाजी ने देशों को पवित्र करते हुए सगरके मृतक पुत्रोंके समूहको सिंचित कर दिया ॥ ११ ॥

यज्जलस्पर्शमात्रेण ब्रह्म दंडहता अपि ।
सगरात्मजा दिवं जग्मुः केवलं देहभस्मभिः॥१२॥

उन गङ्गाजी का केवल भस्मीभूत शरीर को ही स्पर्श मात्र होने से ब्रह्म-अपराध से मरे हुए सगर के पुत्र स्वर्ग को प्राप्त हुए ॥१२॥

भस्मीभूतांगसंगेन स्वर्याताः सगरात्मजाः ।
किं पुनः श्रद्धया देवीं ये सेवंते धृतव्रताः ॥१३॥

केवल भस्मीभूत शरीर के स्पर्श मात्रसे सगर के पुत्र स्वर्ग को पागये, तब यदि कोई श्रद्धा-पूर्वक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्रत धारण करके गङ्गाजी के सेवन से स्वर्ग चला जाय, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? ॥१३॥

न ह्येतत् परमाश्चर्यं स्वर्धुन्या यदिहोदितम् ।
अनंतचरणांभोजप्रसूताया भवच्छिदः ॥१४॥

श्रीविष्णु भगवान् के चरणारविन्द से निकली हुई श्रीगङ्गाजी का यह माहात्म्य* कोई आश्चर्य-जनक नहीं है, क्योंकि प्रभु के चरण ही संसारका बन्धन काटने वाले हैं ॥१४॥

संनिवेश्य मनो यस्मिन्श्रद्धया मुनयोऽमलाः ।
त्रैगुण्यं दुस्त्यजं हित्वा सद्यो यातास्तदात्मताम् ॥

उन प्रभुमें श्रद्धापूर्वक मन लगानेसे तो निर्मल मुनि लोग दुस्त्यज देह से सम्बन्ध तोड़कर शीघ्र ही भगवत-रूप होगये हैं ॥१५॥

श्रुतो भगीरथाज्ज्ञे तस्य नाभोऽपरोऽभवत् ।
सिंधुद्वीपस्ततस्तस्मादयुतायुस्ततोऽभवत् ॥१६॥
ऋतुपर्णो नलसखो योऽश्वविद्यामयान्नलात् ।
दत्त्वाऽक्षहृदयं चास्मै सर्वकामस्तु तत्सुतः ॥१७॥

भगीरथ के श्रुत, श्रुत के नाभावर, नाभावर के सिन्धुद्वीप, सिन्धुद्वीप के आयुतायु, आयुतायु के ऋतुपर्ण नामक पुत्र हुआ, यह राजा नल का मित्र था, इसने राजा नल से अश्व-विद्या सीखी और उसे द्युत विद्या सिखाई, ऋतुपर्ण के सर्वकाम नामक पुत्र हुआ ॥ १६ ॥१७॥

ततः सुदासस्तत्पुत्रो मदयंतीपतिर्नृप ।
आहुर्मित्रसहं यं वै कल्मषांघ्रिमुत क्वचित् ।
वसिष्ठशापाद् रक्षोऽभूदनपत्यः स्वकर्मणा ॥१८॥

सर्वकाम के सुदास, सुदास के सौदासनामक पुत्र हुआ, जो रानी मदयन्ती का पति था, इसको मित्रसह और कलमाषाघ्रि भी कहते हैं, वह वसिष्ठजी के शाप से राक्षस होगया तथा अपने कर्म से निःसन्तान रहा ॥१८॥

राजोवाच

किंनिमित्तो गुरोः शापः सौदासस्य महात्मनः ।
एतद्वेदितुमिच्छामः कथ्यतां न रहो यदि ॥१९॥

परीक्षित बोले–महात्मा सौदासको गुरुने शाप क्यों दे दिया ? यदि यह बात छिपाने योग्य न हो तो आप मुझे बतलायें, मैं इसे सुनना चाहता हूँ ॥

श्रीशुक उवाच

सौदासो मृगयां किंचिच्चरन्रक्षो जघान ह ।
मुमोच भ्रातरं सोऽथ गतः प्रतिचिकीर्षया ॥२०॥

श्रीशुकदेवजी बोले–राजा सौदास ने आखेटके लिये फिरते २ किसी राक्षस को मार डाला और उसके भाई को छोड़ दिया ॥२०॥

स चिंतयन्नघं राज्ञः सूदरूपधरो गृहे ।
गुरवे भोक्तुकामाय पक्त्वा निन्ये नरामिषम् ॥२१

वह राक्षस अपने भाई का बदला लेने के लिये सौदास के यहाँ रसोइया बनकर रहनेलगा, उसने एक दिन राजा का अकल्याण करने का निश्चय कर के भोजन के लिये आये हुए वसिष्ठ को नर-माँस परोस दिया ॥२१॥

परिवेक्ष्यमाणं भगवान् विलोक्याभक्ष्यमंजसा ।
राजानमशपत्क्रुद्धो पक्षो ह्येवं भविष्यसि ॥२२॥

उस माँसको परोसतेसमय अभक्ष्य समझकर वसिष्ठजीने राजाको क्रोध-पूर्वक यह शाप दे दिया कि तू राक्षस हो, क्योंकि तूने ऐसा काम कियाहै॥

रक्षःकृतं तद्विदित्वा चक्रे द्वादशवार्षिकम् ।
सोऽप्यपोऽजलिनादाय गुरुं शप्तुं समुद्यतः॥२३॥

परन्तु पीछे यह निश्चय हो सका कि यह काम तो राक्षस का किया हुआ है, तब वसिष्ठजी ने अपनी शाप की बारह वर्ष के लिये अवधि करदी, यहाँ राजा भी हाथमें जल लेकर गुरु को शाप देने के लिये उद्यत होगया ॥२३॥

वारितो मदयंत्यापो रुशतीः पादयोर्जहौ ।
दिशः खमवनीं सर्वं पश्यञ्जीवमयं नृपः ॥२४॥
राक्षसं भावमापन्नः पादे कल्माषतां गतः ।
व्यवायकाले ददृशे वनौकोदंपती द्विजौ ॥२५॥

उस समय मदयन्ती रानी ने उसे रोक दिया, इसलिये उसने यह शाप का जल दिशा; आकाश, पृथ्वी और समस्त संसार को जीवमय समझ कर

*–श्रीगङ्गा माहात्म्य—धेनु, द्विज-हिंसा, गुरु-मातु-पिता हत्या लहि; वारिधि वतासा जिमि बातन बिलाय देत । परतिय-गामी चोर लंपट लबार हू के; छींट मार छिनही में छिद्रन छुड़ाय देत ॥ रोग नस जात भव सोग नस जात वेग; व्याधि बापुरी के बेड़ वैर दे बुड़ाय देत । कोटिन पहार पुंज पाप के त्रितापहारि; एक बूंद गङ्गाजल पल में बहाय देत ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपने ही पैरों पर छोड़ लिया जिससे वे काले पड़ गये, इसीलिये उसे कल्माषपाद कहते हैं, फिर राजा सौदास राक्षस होकर वनमें फिरने लगा, वहाँ उसने वनवासी ब्राह्मण और ब्राह्मणी को मैथुन करते हुए देखा ॥२४॥२५॥

क्षुधार्तो जगृहे विप्रं तत्पत्न्याऽऽहाऽकृतार्थवत् ।
न भवान्राक्षसःसाक्षादिक्ष्वाकूणां महारथः॥२६॥

हे राजन् ! उस राक्षस-योनि राजा ने भूख से पीड़ित होकर ब्राह्मण को पकड़ लिया, तब ब्राह्मणी ने दीनता पूर्वक कहा कि आप राक्षस नहीं, वरन् मदयन्ती के पति, महारथी इक्ष्वाकु-वंश राजा हो ॥

मदयंत्याः पतिर्वीर नाधर्मं कर्तुमर्हसि ।
देहि मेऽपत्यकामाया अकृतार्थं पतिं द्विजम्॥२७॥

हे वीर ! आपको ऐसा अधर्म करना उचित नहीं है, हे पृथ्वीनाथ ! मुझे सन्तान की इच्छा है, इसलिये आप संभोग-सुख से अतृप्त इस ब्राह्मण को न मारकर मुझे दे दीजिये ॥२७॥

देहोऽयं मानुषो राजन्पुरुषस्याखिलार्थदः ।
तस्मादस्य वधो वीर सर्वार्थवध उच्यते ॥२८॥

हे राजन् ! यह मनुष्य-देह उसके समस्त पुरुषार्थोंको सिद्ध करतीहै, इसलिये इस देहका मारना मानो पुरुषार्थों का ही मारना है ॥२८॥

एष हि ब्राह्मणो विद्वांस्तपःशीलगुणान्वितः ।
आरिराधयिषुर्ब्रह्म महापुरुषसंज्ञितम् ।
सर्वभूतात्मभावेन भूतेष्वंतर्हितं गुणैः ॥२९॥
सोऽयं ब्रह्मर्षिवर्यस्ते राजर्षिप्रवराद्विभो ।
कथमर्हति धर्मज्ञ वधं पितुरिवात्मजः ॥३०॥

हे विभु ! हे धर्मज्ञ ! जो ब्राह्मण विद्वान् तपस्वी और गुणवान् है, जो महापुरुष ब्रह्म के आराधन करने का अभिलाषी है, जो सम्पूर्ण प्राणियों में आत्म-भाव मानता हुआ तत्सम्बन्धी गुणों से पूर्ण है; ऐसे ब्रह्मर्षियों में श्रेष्ठ ब्राह्मण का वध करना राजर्षियों में श्रेष्ठ आप को वैसे ही उचित नहीं है जैसे पिता के हाथ से पुत्र का बध उचित नहीं है॥

तस्य साधोरपापस्य भ्रूणस्य ब्रह्मवादिनः ।
कथं वधं यथा बभ्रोर्मन्यते संमतो भवान् ॥३१॥

आप सत्पुरुषोंमें मान्य होते हुए भी इस साधु निष्पाप; तीन वेदों के जानने वाले और ब्रह्मवादी ब्राह्मण का वध कैसे योग्य समझते हैं ? इसका वध तो गौ वध के समान ही है ॥३१॥

यद्ययं क्रियते भक्षस्तर्हि मां खाद पूर्वतः ।
न जीविष्ये विना येन क्षणं च मृतकं यथा ॥३२॥

हे राजन् ! यदि आप इसे खाना चाहते हैं तो पहले मुझे खा लीजिये, क्योंकि मैं इसके विना मृतकरूप बनकर एक क्षण भी न जिऊँगी ॥३२॥

एवं करुणभाषिण्या विलपत्या अनाथवत् ।
व्याघ्रः पशुमिवाखादत्सौदासः शापमोहितः॥३३॥

ब्राह्मणी को इस प्रकार करुणामय वचनों के साथ विलाप करते हुए देखकर भी शाप से मोहित राजा सौदास ने उसपर ध्यान न दिया और जैसे बाघ पशु को खालेता है, वैसे ही उस ब्राह्मण को खा लिया ॥ ३३ ॥

ब्राह्मणी वीक्ष्य दिधिषुं पुरुषादेन भक्षितम् ।
शोचंत्यात्मानमुर्वीशमशपत्कुपिता सती ॥३४॥

अपने गर्भाधान करने वाले पति को राक्षस के द्वारा खाया हुआ देखकर, अपने आत्मा का शोक करते हुए उस पतिव्रता ब्राह्मणी ने क्रोध करके राजा को शाप दिया कि ॥३४॥

यस्मान्मे भक्षितः पाप कामार्तायाः पतिस्त्वया ।
तवापि मृत्युराधानादकृतप्रज्ञदर्शितः ॥३५॥

रे पापी ! रे मूर्ख ! तूने मुझ काम-पीड़िता के पति को खालिया है, इसलिये यदि तू भी कभी मैथुन करेगा, तो मर जायगा ॥३५॥

एवं मित्रसहं शप्त्वा पतिलोकपरायणा ।
तदस्थीनि समिद्धेऽग्नौ प्रास्य भर्तुर्गतिं गता॥३६॥

इस प्रकार मित्रसह (सौदास) को शाप देकर वह पतिव्रता ब्राह्मणी अपने पति की अस्थियों को बटोर कर; अग्नि जलाकर और जलती हुई अग्नि में उनको डालकर, आप भी उसमें जलकर पतिलोक को प्राप्त होगई ॥३६॥

विशापो द्वादशाब्दांते मैथुनाय समुद्यतः ।
विज्ञाय ब्राह्मणीशापं महिष्या स निवारितः॥३७॥

बारह वर्ष बीतने पर जब राजा शाप से छूटा तब वह मैथुन के लिये तैयार हुआ, पर ब्राह्मणी के शाप का हाल जानकर मदयन्ती रानीने उसे रोका।

तत ऊर्ध्वं स तत्याज स्त्रीसुखं कर्मणाऽप्रजाः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वसिष्ठस्तदनुज्ञातो मदयंत्यां प्रजामधात् ॥३८॥

तब से सौदास ने संभोग-सुख का त्याग कर दिया और वह अपने कर्म से निःसन्तान रहा, इस के पश्चात् उसकी आज्ञा से वसिष्ठजी ने मदयन्ती रानी में गर्भ स्थित किया ॥३८॥

सा वै सप्त समा गर्भमबिभ्रन्नव्यजायत ।
जघ्नेऽश्मनोदरं तस्याः सोऽश्मकस्तेन कथ्यते३९॥

मदयन्ती रानी के गर्भ स्थित हुए सात वर्ष बीतनेपर भी बालक न हुआ, तब वसिष्ठजीने उस के पेट में पत्थर मार दिया, तब उसके प्रसव होने पर अश्मक नाम का पुत्र हुआ ॥ ३९ ॥

अश्मकान्मूलको जज्ञे यः स्त्रीभिः परिरक्षितः ।
नारीकवच इत्युक्तो निःक्षत्रे मूलकोऽभवत् ॥४०॥

अश्मक के मूलक नामका पुत्र हुआ, जब परशु रामजी ने पृथ्वी को क्षत्रिय-हीन किया, उस समय स्त्रियों ने उसे अपने साथ रखकर बचाया था, इस लिये उसका नाम 'नारी कवच' हुआ और पृथ्वी निःक्षत्रिय होजाने पर भी वह क्षत्रिय जाति का मूल रूप रहा, इसलिये उसे मूलक भी कहते हैं ॥

ततो दशरथस्तस्मात् पुत्र ऐडविडस्ततः ।
राजा विश्वसहो यस्य खट्वांगश्चक्रवर्त्यभूत्॥४१॥

मूलक के दशरथ, दशरथ के इडविड, इडविड के विश्वसह और विश्वसह के चक्रवर्त्ती खट्वांग नामक पुत्र हुआ ॥४१॥

यो देवैरर्थितो दैत्यानवधीद्द्यु युधि दुर्जयः ।
मुहूर्तमायुर्ज्ञात्वैत्य स्वपुरं संदधे मनः ॥४२॥

इस दुर्जय खट्वांग राजा ने देवताओं की प्रार्थना पर दैत्यों का संहार किया, पर (देवताओं द्वारा) अपनी आयु केवल दो घड़ी शेष जानकर वह अपने नगर में आया और ईश्वर का ध्यान करने लगा ॥४२॥

न मे ब्रह्मकुलात्प्राणाः कुलदैवान्न चात्मजः ।
न श्रियो न मही राज्यं न दाराश्चातिवल्लभाः ४३

उसने विचार किया कि ब्राह्मणों का वंश मेरे वंश का इष्टदेव है, मुझे उसके सामने प्राण, पुत्र, लक्ष्मी,पृथ्वी,राज्य या स्त्रियाँ कोई भी प्रिय नहींहैं।

न बाल्येऽपि मतिर्मह्यमधर्मे रमते क्वचित् ।
नापश्यमुत्तम श्लोकादन्यत्किंचन वस्त्वहम् ॥४४॥

मेरी बुद्धि बाल्यावस्था में कभी अधर्मकी ओर न जाती थी इसलिये मैं आज भी ईश्वर के सिवा और कुछ नहीं देखता ॥४४॥

देवैः कामवरो दत्तोमह्यं त्रिभुवनेश्वरैः ।
न वृणे तमहं कामं भूतभावनभावनः ॥४५॥

यद्यपि तीनों लोकों के स्वामी देवताओं ने मुझे इच्छित वर देने को कहा है, परन्तु मैं किसी वर को नहीं चाहता, क्योंकि मेरे मनमें तो भगवान् का प्रेम उमड़ रहा है ॥४५॥

ये विक्षिप्तेंद्रियधियो देवास्ते स्वहृदि स्थितम् ।
न विंदंति प्रियं शश्वदात्मानं किमुतापरे ॥४६॥

विषयों में इन्द्रियों और बुद्धिको बिक्षिप्तरखने वाले देवता भी अपने हृदय में स्थित, निरन्तर प्रिय, आत्म-रूप भगवान् को जानते, तब दूसरों की तो गति ही क्या है ॥४६॥

अथेशमायारचितेषु संगं गुणेषु गंधर्वपुरोपमेषु । रूढं प्रकृत्याऽऽत्मनि विश्वभर्तुर्भावेन हित्वा तमहं प्रपद्ये ॥४७॥

इसलिये भगवान्की मायाद्वारा रचेहुए,गन्धर्व नगर के समान कल्पित विषयों में जो मेरे मन की स्वाभाविक प्रीति लगी है, उसे भगवत् भावना ही से छोड़कर मैं उन प्रभु की शरण हुआ हूँ ॥४७॥

इति व्यवसितो बुद्ध्या नारायणगृहीतया ।
हित्वाऽन्यभावमज्ञानं ततः स्वंभावमाश्रितः॥४८॥

श्रीशुकदेवजी बोले-प्रभु की ध्यान मयी बुद्धि से इस प्रकार निश्चय करके राजा खट्वांग, देह आदि के अभिमान रूप अज्ञान को छोड़कर आत्म स्वरूप को प्राप्त होगया ॥४८॥

यत्तद्ब्रह्म परं सूक्ष्ममशून्यं शून्यकल्पितम् ।
भगवान्वासुदेवेति यं गृणंति हि सात्वताः ॥४९॥

जिस स्वरूप को भक्तजन "भगवान् वासुदेव" के नामसे पुकारते हैं, वह स्वरूप परम सूक्ष्म तथा शून्य न होकर भी शून्य के समान प्रतीत होता है, उसे ही परब्रह्म कहते हैं ॥४९॥

इति श्रीमद्भागवते नवमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दसवां अध्याय

(श्रीराम चरित)

श्रीशुक उवाच

खट्वांगादीर्घबाहुश्च रघुस्तस्मात्पृथुश्रवाः ।
अजस्ततो महाराज तस्माद्दशरथोऽभवत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन्! खट्वांगके दीर्घ बाहु, दीर्घबाहु के महा प्रख्यात रघु, रघु के अज और अज के पुत्र दशरथ हुए ॥१॥

तस्यापि भगवानेष साक्षाद्ब्रह्ममयो हरिः ।
अंशांशेन चतुर्धाऽगात्पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः ॥ २ ॥

दशरथ के घर में देवताओं की प्रार्थना से साक्षात् परब्रह्म भगवान् अपने अंश-अंश करके चार पुत्र रूप से प्रकट हुए ॥२॥

रामलक्ष्मण भरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया ।
तस्यानुचरितं राजन्नृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
श्रुतं हि वर्णितं भूरि त्वया सीतापतेर्मुहुः ॥ ३ ॥

जिनके नाम श्रीराम,लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न हैं, उनके चरित्र को वाल्मीकि आदि तत्ववेत्ता ऋषियों ने विस्तार पूर्वक वर्णन कियाहै, उसे तूने वार-वार सुना है, फिर भी मैं उसे संक्षेप में कहता हूँ, सुनो ॥३॥

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरींद्रानुजाभ्याम् । वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रिय विरहरुषा रोपितभ्रूविजृंभत्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोशलेंद्रोऽवतान्नः ॥ ४ ॥

जिन रामचन्द्रजी ने पिता के लिये राज्य को त्याग दिया, जो सीताके स्पर्शको भी सहन न कर सकने वाले कोमल चरणों से वनमें विचरे, जिनके मार्ग-श्रम को सुग्रीव और लक्ष्मण ने दूर किया, जिनके द्वारा शूर्पनखा के नाक-कान काटे जाने से विरूपित भगनी को देख क्षोभित होकर रावण सीताजी को हर लेगया, तब सीता के विरह से उत्पन्न हुए क्रोध के कारण भृकुटि चढ़ाकर, समुद्र को भयभीत करके, उसपर सेतु बाँधकर जिन्होंने दुष्ट रावणरूपी वनको जलाया था, वे अयोध्यानाथ श्रीरामचन्द्रजी हमारी रक्षा करें ॥४॥

विश्वामित्राध्वरे येन मारीचाद्या निशाचराः ।
पश्यतो लक्ष्मणस्यैव हता नैर्ऋतपुंगवाः ॥ ५ ॥

जिन्होंने विश्वामित्रजी के यज्ञ में लक्ष्मणजी के देखते-२ मारीच आदि राक्षसों का संहारकिया॥५॥

यो लोकवीरसमितौ धनुरैशमुग्रं सीतास्वयंवर गृहे त्रिशतोपनीतम् । आदाय बालगजलील इवे क्षुयष्टिं सज्ञीकृतं नृप विकृष्य बभंज मध्ये ॥ ६ ॥

जिन्होंने सीता-स्वयंवर के समय वीरों की समाज में, तीनसौ मनुष्यों द्वारा लाये हुए; महान् कठोर शङ्करजी के धनुष को घरमें रक्खा हुआ देखकर, हाथी के बालककी नाईं लीला करके गन्ने की लकड़ी की भांति उठाकर, चढ़ाकर तथा खींच कर तोड़ डाला था ॥६॥

जित्वानुरूपगुणशीलवयोंऽगरूपां सीताऽभिधां श्रियमुरस्यभिलब्धमानाम् । मार्गे व्रजन्भृगुपतेर्व्य नयत्प्ररूढं दर्पं महीमकृत यस्त्रिरराजबीजाम्॥ ७ ॥

अपने ही योग्य रूप, गुण, शील,अवस्था तथा अङ्गवाली श्रीजानकी देवीजी, अपने वक्षःस्थल में निवास करती तथा सन्मान पाई हुई श्रीलक्ष्मीजी का अवतार थीं, उनके साथ विवाह करके जब भगवान् चले, तब धनुष-भंग सुनकर इक्कीस वार पृथ्वी को क्षत्रियहीन करने वाले परशुरामजी के महान् गर्व को दूर किया ॥ ७॥

यः सत्यपाशपरिवीतपितुर्निदेशं स्त्रैणस्य चापि शिरसा जगृहे सभार्यः । राज्यं श्रियं प्रणयिनः सुहृदो निवासं त्यक्त्वा ययौ वनमसूनिव मुक्तसंगः॥

सत्य के बन्धन में बँधे हुए, स्त्री के आधीन रहने वाले पिताजी की आज्ञा को शिरोधार्य करके राज्य, सम्पत्ति, प्रिय, सुहृद और घरको छोड़कर सीता सहित वनको गमन किया, जैसे अनासक्त योगी अपने प्राणों को छोड़ कर जाता है ॥८॥

रक्षःस्वसुर्य्यकृत रूपमशुद्धबुद्धेस्तस्याः खरत्रि शिरदूषणमुख्यबंधून् । जघ्ने चतुर्दशसहस्रमपार णीयकोदंडपाणिरटमान उवास कृच्छ्रम् ॥ ९ ॥

रावण की अपवित्र बुद्धिवाली बहिन सूर्पनखा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के नाक-कान काटकर उसे कुरूप कर दिया और उसके भाई खर, त्रिशरा तथा दूषण आदि चौदह हज़ार राक्षसों का संहार कर दिया और धनुष-बाण हाथ में लिये हुए वनमें रहकर अतीव कष्ट सहन किया ॥९॥

सीताकथा श्रवणदीपितहृच्छयेन सृष्टं विलोक्य नृपते दशकंधरेण । जघ्नेऽद्भुतैणवपुषाऽऽश्रमतोऽपकृष्टो मारीचमाशु विशिखेन यथा कमुग्रः ॥१०॥

हे राजन् ! सीता की कथा सुनकर कामातुर रावण के पहुंचाये हुए, अद्भुत हिरणका रूप धरने वाले और श्रीरामचन्द्रजी को उनके आश्रमसे दूर ले जाने वाले मारीच को उन्होंने इस प्रकार मारा जैसे दक्षको महादेवजी ने मारा था ॥१०॥

रक्षोधमेन वृकवद्विपिनेऽसमक्षं वैदेहराजदुहितर्यपयापितायाम् । भ्रात्रा वने कृपणवत् प्रियया वियुक्तः स्त्रीसंगिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार ॥११॥

उस राक्षसाधम रावणने एकान्त पाकर विदेह की पुत्री सीता का हरण कर लिया, तब श्रीरामजी स्त्रियों का संग करने वालों को उसका दुःख रूप परिणाम जतलानेके लिये, अपनी प्रियतमाके वियोग में लक्ष्मण के सहित दीन की भांति विचरनेलगे ॥

दग्ध्वात्मकृत्यहतकृत्यमहन् कबंधं सख्यं विधाय कपिभिर्दयितागतिं तैः । बुद्ध्वाथ वालिनि हते प्लवगेंद्रसैन्यैर्वेलामगात्स मनुजोऽजभवार्चितांघ्रिः ॥

सीता की रक्षा के लिये रावण से युद्ध करके मरे हुए जटायु पक्षी का दया-पूर्वक दाह-संस्कार* किया और कबन्ध राक्षस का वध किया, फिर सुग्रीव से मित्रता करके, बलि को मारकर, बानरों के द्वारा सीताजी का पता लगाकर, बानर दल के साथ ब्रह्मा तथा महादेवजी से पूजित पादारविन्द वाले श्रीरामचन्द्रजी सहित समुद्र तटपर पहुंचे ॥

यद्रोषविभ्रमविवृत्तकटाक्षपातसंभ्रांतनक्रमकरोभयगीर्णघोषः । सिंधुःशिरस्यर्हणं परिगृह्य रूपी पादारविंदमुपगम्यबभाष एतत् ॥१३॥

वहाँ तीन रात तक उपवास करके, समुद्र की प्रतीक्षा की पर वह न आया, तब श्रीरामचन्द्रजी की क्रोधमय वक्र भृकुटि उठते ही जिसमें रहने वाले ग्राह और मकर भ्रान्त होकर घबरा गये, वह समुद्र भय के मारे अपनी गर्जना बन्द करके मूर्ति धरे हुए, सिर पर पूजन-सामग्री धरकर श्रीरामजी के चरणों में आया और यह कहने लगा कि ॥१३॥

न त्वां वयं जडधियो नु विदाम भूमन् कूटस्थमादिपुरुषं जगतामधीशम् । यत्सत्त्वतः सुरगणा रजसः प्रजेशा मन्योश्च भूतपतयः स भवान् गुणेशः ॥

हे भूमन् ! आप कूटस्थ, आदि पुरुष तथा जगन्नाथ हो, आपको हम अपनी जड़ता के कारण अपनी बुद्धिसे जान नहीं सकते, जिनके सतोगुणसे देवता, रजोगुणसे प्रजापति और तमोगुण से रुद्र जी उत्पन्न हुए हैं, वे गुणों के नियन्ता आपही हैं ॥

कामं प्रयाहि जहि विश्रवसोऽवमेहं त्रैलोक्य रावणमवाप्नुहि वीरपत्नीम् । बध्नीहि सेतुमिह ते यशसो वितत्यै गायंति दिग्विजयिनो यमुपेत्य भूपाः ॥

आप सुखसे जाइये, तीनों लोकों को रुलाने वाले विश्रवा ऋषि के मलरूप रावण को मारिये, और सीताको प्राप्त करिये, एवं अपने यशको स्थिर रखने के लिये यहाँ सेतु बाँधिये कि जिसके पास आकर दिग्विजय करने वाले राजा आपका यश गाया करें ॥१५॥

बद्ध्वोदधौ रघुपतिर्विविधाद्रिकूटैः सेतुं कपींद्रकर कंपितभूरुहांगैः । सुग्रीवनीलहनुमत्प्रमुखैरनीकैर्लंकां विभीषणदृशाऽविशदग्रदग्धाम् ॥१६॥

तब श्रीरामचन्द्रजी ने वानराधीशों के हाथोंसे कम्पित वृक्षों की शिखरवाले अनेक पर्वतों से सेतु बाँधकर सुग्रीव, नील, हनुमान आदि ने सेना सहित विभीषण की बतलाई हुई युक्ति से लङ्का में प्रवेश किया, उसी लङ्काको आगे चलकर हनुमान जी ने जलाया है ॥१६॥

सा वानरेंद्रबलरुद्धविहारकोष्ठ श्रीद्वारगोपुरसदोवलभीविटंका । निर्भज्यमानधिषणध्वजहेमकुंभशृंगाटका जगकुलैर्दिनीव घूर्णा ॥१७॥

उन बानरेन्द्रों की सेना से विहार, कोठे, कोष द्वार, पुर-द्वार, सभा, छज्जे और सब भाग रुकने तथा चबूतरे, ध्वजा, सोने के कलश और चौहट्टे

---

*—दीन, मलीन अधीन हैं अङ्ग विहङ्ग परयौ क्षिति खिन्न दुखारी । राघव दीनदयाल कृपाल को देख दुःखी करुना भई भारी ॥ गीध को गोद में राखि कृपानिधि नैन सरोजनमें भरि वारी । बारहिं बार सुधारत पंख जटायुकी धूरि जटानसों झारी ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टूटने से लङ्का ऐसे थरथरा उठी जैसे हाथीके द्वारा नदी थर्रा उठती है ॥१७॥

रक्षःपतिस्तदवलोक्य निकुंभकुंभधूम्राक्षदुर्मुख सुरांतनरांतकादीन् ।पुत्रं प्रहस्तमतिकायविकंपना दीन् सर्वानुगान्समहिनोदथ कुंभकर्णम् ॥१८॥

राक्षसों के नायक रावणने यह देखकर निकुंभ कुंभ, धूम्राक्ष, दुर्मुख, देवान्तक, नारान्तक आदि और अपना बड़ा पुत्र मेघनाद, प्रहस्त, अतिकाय और विकंपन आदि समस्त अनुचर राक्षसों को युद्धके लिये भेजा, फिर कुम्भकर्णको भी पहुंचाया॥

तां यातुधानपृतनामसिशूलचापप्रासर्ष्टिशक्तिशर तोमरखड्गदुर्गाम् । सुग्रीवलक्ष्मणमरुत्सुतगंधमाद नीलांगदर्क्षपनसादिभिरन्वितोऽगात् ॥१९॥

यह राक्षसी दल तलवार, त्रिशूल, धनुष,प्रास ऋष्टि, शक्ति- बाण, भाला और खड्ग से दुर्गम सा था, उसपर सुग्रीव, हनुमान्, लक्ष्मण, गन्धमादन, नील, अङ्गद, जांबवान् और पनस आदि सेना नायकों ने अपने योद्धाओंके साथ आक्रमणकिया॥

तेऽनीकपा रघुपतेरभिपत्य सर्वे द्वंद्वं वरूथमिभ पत्तिरथाश्वयोधैः । जघ्नुर्द्रुमैर्गिरिगदेषुभिरंगदाद्याः सीताऽभिमर्शहतमंगलरावणेशान् ॥२०॥

अङ्गद आदि श्रीरामजी के सेनापति सीताजी के स्पर्श से पुण्य-हत रावण की हाथी, घोड़े, रथ और प्यादे वाली राक्षसी सेना के साथ द्वंद्व युद्ध करते हुए उसे वृक्ष, पर्वत, गदा और बाणों से मारने लगे ॥२०॥

रक्षःपतिः स्वबलनष्टिमवेक्ष्य रुष्ट आरुह्य यान कमथाभिससार रामम् । स्वःस्यंदने द्युमति मात लिनोपनीते विभ्राजमानमहनन्निशितैः क्षुरप्रैः२१॥

अपनी सेना का संहार देखकर रावण क्रोध सहित रथ में बैठकर श्रीरामचन्द्रजी के सन्मुख आया और मातलि के लाये हुए प्रकाशमान् इन्द्र के रथ में बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजी पर तीक्ष्ण बाणों से प्रहार करने लगा ॥२१॥

रामस्तमाह पुरुषादपुरीष यन्नः कांताऽसमक्ष मसताऽपहृता श्रवत् ते। त्यक्तत्रपस्य फलमद्य जुगुप्सितस्य यच्छामि काल इव कर्तुरलंघ्यवीर्यः॥

तब श्रीरामचन्द्रजी ने कहा कि हे राक्षसों में मलरूप ! तूने मेरे पीछे लाज छोड़कर श्वान की भांति मेरी प्रिया को हर लियाहै, इसलिये मैं काल की भांति तुझ निंदित कर्म करने वाले को अपने अमोघ पराक्रमके द्वारा फल देता हूँ ॥२२॥

एवं क्षिपन् धनुषि संधितमुत्ससर्ज बाणं सवज्र मिव तद्धृदयं बिभेद । सोऽसृग् वमन् दशमुखैर्न्यपतद्र विमानाद्र हा हेति जल्पति जने सुकृतीव रिक्तः ॥२३॥

इस प्रकार तिरस्कार करके श्रीरामचन्द्रजी ने धनुष पर बाण चढ़ाकर छोड़ा, इस वज्र के समान बाण के द्वारा रावण का हृदय फटगया और वह अपने दसों मुखों से लोहू वहाता हुआ अपने रथ से इस प्रकार गिर पड़ा, जैसे पुण्य-क्षीण पुरुष स्वर्ग से गिरता है, उस समय समस्त लोकों में हाहाकार मचा हुआ था ॥२३॥

ततो निष्क्रम्य लंकाया यातुधान्यः सहस्रशः । मंदोदर्यासमं तस्मिन्प्ररुदत्य उपाद्रवन् ॥२४॥

तब मन्दोदरिके साथ हज़ारों राक्षसियां रोती हुईं लङ्कासे निकलकर रण-स्थल में आईं ॥२४॥

स्वान् स्वान् बंधून् परिष्वज्य लक्ष्मणेषुभिरर्दितान् रुरुदुः सुस्वरं दीनाघ्नंत्य आत्मानमात्मना॥२५॥

श्रीलक्ष्मणजी के बाणों से मरे हुए अपने-अपने बन्धुओं से आलिंगन करके वे ऊँचे स्वरसे रोनेलगीं और हाथों से माथा पीटने लगीं ॥२५॥

हा हताः स्म वयं नाथ लोकरावण रावण । कं यायाच्छरणं लंका त्वद्विहीना परार्दिता॥२६॥

हा नाथ ! हे लोकों को रुलाने वाले रावण ! हम मरीं, शत्रुओंसे पीड़ित तथा आपसे रहित यह लङ्का अब किसकी शरण जाय ॥२६॥

नैवं वेद महाभाग भवान् कामवशं गतः । तेजोऽनुभावं सीताया येन नीतो दशामिमाम् २७

हे महाभाग ! तुमने कामके वश होकर सीताजी के तेज का प्रभाव न जाना, उन्हींके कारण तुम्हारी यह दशा हुई है ॥२७॥

कृतैषा विधवा लंका वयं च कुलनंदन । देहः कृताऽन्नं गृध्राणामात्मा नरकहेतवे ॥२८॥

हे कुलनन्दन ! उन्हींने हम निशिचरियों तथा लङ्का को विधवा कर दिया है और तुम्हारे शरीर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को गीधों का भक्षण तथा तुम्हारे आत्मा को नरक भोगने के योग्य बना दिया है ॥२८॥

श्रीशुक उवाच

स्वानां विभीषणश्चक्रे कोशलेंद्रानुमोदितः ।
पितृमेधविधानेन यदुक्तं सांपरायिकम् ॥२९॥

श्रीशुकदेवजी बोले–श्रीरामचन्द्रजी की प्रेरणा से विभीषण ने अपने सम्बन्धियों की पितृ-श्राद्ध विधि-पूर्वक परलोक-सम्बन्धी क्रिया की ॥२९॥

ततो ददर्श भगवानशोकवनिकाश्रमे ।
क्षामां स्वविरहव्याधिं शिंशपामूलमास्थिताम्॥३०

फिर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ने अपने विरह-दुःखसे सूखतीहुई अशोक-वनके आश्रम में शिंसपा के वृक्षके नीचे बैठी हुई श्रीसीताजीको देखा॥३०॥

रामः प्रियतमां भार्यां दीनां वीक्ष्यान्वकंपत ।
आत्मसंदर्शनाह्लादविकसन्मुखपंकजाम् ॥३१॥

अपने दर्शन के आनन्द से जिनका मुखारविंद प्रफुल्लित हो उठा था, उन परम प्रिया सीताजी की दीन अवस्था देखकर श्रीरामचन्द्रजी को उनपर दया आगई ॥३१॥

आरोप्यारुरुहे यानं भ्रातृभ्यां हनुमद्युतः ।
बिभीषणाय भगवान् दत्त्वा रक्षोगणेशताम्॥३२॥
लंकामायुश्च कल्पांतं ययौ चीर्णव्रतः पुरीम् ।
अवकीर्यमाणः कुसुमैर्लोकपालार्पितैः पथि ॥३३॥

और सुग्रीव लक्ष्मण तथा हनुमान्‌जी सहित श्रीजानकीजी को पुष्पक विमान पर बिठला कर, विभीषण को राक्षसों का राज्य लङ्कापुरी और एक कल्प की आयु देकर, अपने बनवास की अवधि पूर्ण करके अयोध्या को पधारे, उस समय लोक-पालों ने मार्ग में पुष्प-वर्षा की ॥४२॥॥३३॥

उपगीयमानचरितः शतधृत्यादिभिर्मुदा ।
गोमूत्रयावकं श्रुत्वा भ्रातरं वल्कलांबरम् ॥३४॥
महाकारुणिकोऽतप्यत् जटिलं स्थंडिलेशयम् ।
भरतः प्राप्तमाकर्ण्य पौरामात्यपुरोहितैः ।
पादुके शिरसि न्यस्य रामं प्रत्युद्यतोऽग्रजम्॥३५॥

ब्रह्मादिक देवता आनन्द-पूर्वक उनका चरित्र गारहे थे- श्रीरामचन्द्रजी ने जब यह सुना कि उन के भाई भरतजी गौ-मूत्र में रँधे हुए जौ खाते हैं, वल्कल पहिनतेहैं, पृथ्वीपर सोते और जटा धारण करते हैं, तब उन परम दयालु को बड़ा ही सन्ताप हुआ, भरतजी भ्राता का आगमन सुनकर नगर-वासी, मन्त्री और पुरोहित के साथ प्रभुकी चरण पादुकाओं को शिर पर रखकर उनके संमुखगये ॥

नंदिग्रामात् स्वशिबिराद्गीतवादित्रनिःस्वनैः ।
ब्रह्मघोषेण च मुहुः पठद्भिर्ब्रह्मवादिभिः ॥३६॥

भरतजी अपने निवास-स्थान नन्दी ग्राम से गायन-वादन के साथ श्रीरामचन्द्रजी के समक्ष पहुंचे और ब्राह्मण वेद-पाठ कर रहे थे ॥३६॥

स्वर्णकक्षपताकाभिर्हैमैश्चित्रध्वजै रथैः ।
सदश्वै रुक्मसन्नाहैर्भटैः पुरटवर्मभिः ॥३७॥

सुनहरी पताकायें शोभा देरहीं थीं, सोने के रथों में सुन्दर घोड़े जुते हुए थे, उन पर विचित्र ध्वजायें फहराती थीं, योद्धागण स्वर्ण के कवच धारण किये हुए थे ॥ ३७ ॥

श्रेणीभिर्वारमुख्याभिर्भृत्यैश्चैव पदानुगैः ।
पारमेष्ठ्यान्युपादाय पण्यान्युच्चावचानि च॥३८॥

भृत्य,परिचर,सेवक-गणोंके साथ राजाके योग्य छत्र, चमर आदि पदार्थ एवं और भी छोटी-बड़ी वस्तुओं को लेकर भरतजी हैं गमन किया, उस समय नर्त्तकियां नाच कर रहीं थीं ॥३८॥

पादयोर्न्यपतत् प्रेम्णा प्रक्लिन्नहृदयेक्षणः ।
पादुके न्यस्य पुरतः प्रांजलिर्बाष्पलोचनः ॥३९॥

इस प्रकार प्रेमसे द्रवीभूत हृदयवाले भरतजी नेत्रों में जल भरे हुए श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में जा पड़े और उनके सामने पादुकायें धरकर हाथ जोड़े हुए आँसू बहाने लगे ॥३९॥

तमाश्लिष्य चिरंदोर्भ्यां स्नापयन्नेत्रजैर्जलैः ।
रामो लक्ष्मणसीताभ्यां विप्रेभ्यो येऽर्हसत्तमाः ४०
तेभ्यः स्वयं नमश्चक्रे प्रजाभिश्चनमस्कृतः ।
धुन्वंत उत्तरासंगान् पतिं वीक्ष्य चिरागतम् ॥४१॥
उत्तराः कोशला माल्यैः किरंतो ननृतुर्मुदा ।
पादुके भरतोऽगृह्णात् चामरव्यजनोत्तमे ॥४२॥
बिभीषणः ससुग्रीवः श्वेतच्छत्रं मरुत्सुतः ।
धनुर्निषंगान् शत्रुघ्नः सीता तीर्थकमंडलुम् ॥४३॥

श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मण और सीता सहित बड़ी देर तक भुजाओं के द्वारा भरतजी से भेंट की और नेत्रों के जलसे उन्हें स्नान कराया, उस समय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो ब्राह्मण तथा दूसरे योग्य पुरुष थे उनको श्रीरामचन्द्रजी ने नमस्कार किया और प्रजा ने प्रभु को प्रणाम किया, कितने ही वर्ष के पश्चात् आये हुए अपने स्वामी को देखकर उत्तरीय वस्त्रों को फहराते और फूल बरसातेहुए अयोध्यावासी लोग नाच करने लगे, भरतजीने पादुकायें लीं विभीषण ने सुग्रीव सहित उत्तम चमर और बीजना लिये, पवन के पुत्र हनुमान् ने श्वेत छत्र लिया, शत्रुघ्न ने धनुष और तरकश लिया और सीताजीने कमंडल लिया ॥४०॥४१॥४२॥४३॥

अविभ्रदंगदः खड्गं हैमं चर्मर्क्षराट् नृप ।
पुष्पकस्थोऽन्वितः स्त्रीभिः स्तूयमानश्च वंदिभिः ४४
विरेजे भगवान् राजन् ग्रहैश्चंद्र इवोदितः ।
भ्रातृभिर्नंदितःसोऽपि सोत्सवां प्राविशत् पुरीम्४५

हे राजन् ! अङ्गद ने तलवार ली, जांबवान् ने ढाल ली, पुष्पक विमान में विराजमान् श्रीरामजी स्त्रियों सहित वन्दीजनों से स्तुति कराते हुए ऐसे शोभा पाते थे जैसे ग्रहोंके साथ चन्द्रमा उदय हो रहा हो, इस प्रकार भाइयों के द्वारा सम्मानित श्रीरामचन्द्रजी ने धूम-धाम के साथ नगरमें प्रवेश किया ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

प्रविश्य राजभवनं गुरुपत्नीः स्वमातरम् ।
गुरून् वयस्यावरजान् पूजितः प्रत्यपूजयत् ॥४६॥

फिर राज-भवन में प्रवेश करके कैकई आदि माताओं, अपनी माता कौशल्या, गुरु, मित्र तथा अपने से छोटे सभी का सत्कार किया ॥४६॥

वैदेही लक्ष्मणश्चैव यथावत्समुपेयतुः ।
पुत्रान्स्वमातरस्तास्तु प्राणांस्तन्व इवोत्थिताः ।
आरोप्यांकेऽभिषिंचंत्यो बाष्पौघैर्विजहुः शुचः ४७॥

श्रीसीताजी और लक्ष्मणजी ने भी सबसे यथा योग्य भेंट की, जिस प्रकार प्राणों को पाकर देह उठ खड़ी होती है वैसे ही मातायें अपने पुत्रों को पाकर, उन्हें गोदीमें बिठलाके अश्रु-धारासे नहलाने लगीं और उनका सोच दूर होगया ॥४७॥

जटा निर्मुच्य विधिवत् कुलवृद्धैः समं गुरुः ।
अभ्यषिंचद्यथैवेंद्रं चतुःसिंधुजलादिभिः ॥४८॥

वसिष्ठजी ने श्रीरामचन्द्रजी का क्षौर-कर्म करा कर, चारों समुद्रों का जल लेकर, कुल-वृद्ध लोगों को साथ करके श्रीरामचन्द्रजी का इन्द्र की भांति विधि-पूर्वक अभिषेक किया ॥४८॥

एवं कृतशिरःस्नानःसुवासाः स्रग्व्यलंकृतः ।
स्वलंकृतैः सुवासोभिर्भ्रातृभिर्भार्यया बभौ ॥४९॥

इसी प्रकार सिर से स्नान कियेहुए और सुंदर वस्त्र, माला तथा आभूषण पहिने हुए श्रीरामजी शृङ्गार किये हुए तथा स्वच्छ वस्त्र धारण किये हुए अपने भाइयों तथा सीताके साथ शोभा देरहे थे ॥

अग्रही दासनं भ्रात्रा प्रणिपत्य प्रसादितः ।
प्रजाः स्वधर्मनिरता वर्णाश्रमगुणान्विताः ॥५०॥
जुगोप पितृवद्रामो मेनिरे पितरं च तम् ।
त्रेतायां वर्त्तमानायां कालः कृतसमोऽभवत् ॥५१॥

श्रीभरतजी ने प्रणाम करके प्रभु को प्रसन्न किया, तब उन्होंने राज्य-सिंहासन ग्रहण किया और धर्म-रत तथा वर्णाश्रम के गुणों वाली प्रजा का पिता की भांति पालन करने लगे, प्रजा भी श्रीरामचन्द्रजी को पिता के समान मानती थी, श्रीरामचन्द्रजी के राज्य-काल में त्रेताके वर्त्तमान होते हुए भी सतयुग के समान समय बीतने लगा था ॥

रामे राजनि धर्मज्ञे सर्वभूतसुखावहे ।
वनानिनद्यो गिरयो वर्षाणि द्वीपसिंधवः ॥५२॥
सर्वे कामदुघा आसन् प्रजानां भरतर्षभ ।
नाधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयक्लमाः ॥५३॥
मृत्युश्चानिच्छतां नासीद्रामे राजन्यधोक्षजे ।
एकपत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचिः ॥५४॥

हे राजन् ! सब जीवों को सुख देने वाले, धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी के शासन-काल में वन, नदियां, पर्वत, खण्ड, द्वीप और समुद्र–ये सभी प्रजा के सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करते थे और मानसिक या शारीरिक पीड़ा, बुढ़ापा, ग्लानि, दुःख, शोच, भय, खेद और बिना इच्छा मृत्यु न होती थी, वे एक स्त्री-व्रत पालन करते थे तथा उनका आचरण राजर्षियों के समान था ॥५२॥५३॥५४॥

स्वधर्मं गृहमेधीयं शिक्षयन् स्वयमाचरन् ।
प्रेम्णानुवृत्त्या शीलेन प्रश्रयावनता सती ।
धिया ह्रिया च भावज्ञा भर्तुः सीताऽहरन्मनः॥५५॥

श्रीरामचन्द्रजी स्वयं गृहस्थाश्रम के धर्म का पालन करते थे तथा औरों को भी सिखलाते थे, अपने स्वामी के भाव को जानने वाली श्रीसीताजी प्रेम, सेवा, शील, बुद्धि और लज्जा-पूर्वक उनके मनको हरण करती थीं ॥५५॥

इति श्रीमद्भागवते नवमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ग्यारहवां अध्याय

(श्रीरामचन्द्र का यज्ञादि अनुष्ठान)

श्रीशुक उवाच

भगवानात्मनात्मानं राम उत्तमकल्पकैः ।
सर्वदेवमयं देवमीज आचार्यवान्मखैः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–महात्मा तथा आचार्य की विभूति मय श्रीरामचन्द्रजी उत्तम कल्प के यज्ञों द्वारा सर्वदेवमय और प्रकाशमान निज स्वरूप का ही यजन करने लगे ॥१॥

होत्रेऽददाद् दिशं प्राचीं ब्रह्मणे दक्षिणां प्रभुः ।
अध्वर्यवे प्रतीचीं च उदीचीं सामगाय सः ॥ २ ॥
आचार्याय ददौ शेषां यावती भूस्तदंतरा ।
मन्यमान इदं कृत्स्नं ब्राह्मणोऽर्हति निःस्पृहः ३॥
इत्थंयं तदलंकारवासोभ्यामवशेषितः ।
तथा राज्ञ्यपि वैदेही सौमंगल्यावशेषिता ॥ ४ ॥

जब यह यज्ञ होचुके तब 'होता' को पूर्व, ब्रह्मा को दक्षिण, अध्वर्यु को पश्चिम, उद्गाता को उत्तर दिशा और आचार्य को दिशाओंके बीचकी पृथ्वी दान की, क्योंकि वे यह जानते थे कि यह सब राज्य ब्राह्मणों के ही योग्य है, इसलिये उन्होंने निःस्पृह होकर केवल अपने आभूषण और वस्त्र मात्रही शेष रक्खे, श्रीजानकीजीने भी अपनेसुहाग के भूषण तथा वस्त्रों के सिवा और कुछ भी अपने पास न रक्खा ॥ २ ॥ ३ ॥४॥

ते तु ब्रह्मण्यदेवस्य वात्सल्यं वीक्ष्य संस्तुतम् ।
प्रीताः क्लिन्नधियस्तस्मै प्रत्यर्पेदंबभाषिरे ॥ ५ ॥

ब्रह्मण्यदेव श्रीरामचन्द्रजी की ऐसी वत्सलता देखकर ब्राह्मणों ने प्रसन्न होकर दयालुता के साथ उनका राज्य उन्हीं को लौटाकर कहा कि ॥५॥

अदत्तं नस्त्वया किन्नु भगवन् भुवनेश्वर ।
यन्नोऽन्तर्हृदयं विश्य तमो हंसि स्वरोचिषा ॥ ६ ॥

हे भगवान् ! हे लोकेश्वर ! आपने हमें क्या नहीं दिया है ? क्योंकि आपने अन्तःकरण में प्रवेश करके, अपने स्वरूप के प्रकाशसे, हमारे अज्ञानरूप अन्धकार को हर लिया है, (यही तो सबसे बड़ी देन है) ॥ ६ ॥

नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुंठमेधसे ।
उत्तमश्लोकधुर्याय न्यस्तदंडार्पितांघ्रये ॥ ७॥

हे ब्रह्मण्यदेव ! तीव्र बुद्धि वाले ! पवित्र यश वालों में श्रेष्ठ ! लोगों को अभय दान देने वाले ! पुरुषों के मनमें चरण स्थापित करने वाले ! आप को नमस्कार है ॥७॥

श्रीशुक उवाच

कदाचिल्लोकजिज्ञासुर्गूढो रात्र्यामलक्षितः ।
चरन् वाचोऽशृणोद् रामो भार्यामुद्दिश्य कस्यचित्॥

श्रीशुकदेवजी बोले–किसीदिन लोकका वृत्तांत जानने के लिये श्रीरामचन्द्रजी रातमें वेष बदलकर गुप्त रूप से फिर रहे थे, वहाँ उन्होंने एक मनुष्य के वचन सुने, जो वह अपनी स्त्री से झगड़ता हुआ कह रहा था ॥८॥

नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम् ।
स्त्रीलोभी बिभृयात् सीतां रामो नाहं भजे पुनः९॥

कि तू दुष्टा और व्यभिचारणी पराये घर में जाकर रही है, इसलिये मैं तुझे अपने घरमें नहीं रक्खूंगा, राम तो स्त्रीके लालची हैं, इसलिये चाहे वे ऐसी सीता को रक्खे रहें, पर मैं ऐसा कदापि न करूँगा ॥ ९ ॥

इति लोकाद् बहुमुखाद् दुराराध्यादसंविदः ।
पत्या भीतेन सा त्यक्ता प्राप्ता प्राचेतसाश्रमम्॥१०

इस प्रकार बहुमुख धारी, मूर्ख और किसीभी प्रकार से प्रसन्न न होने वाले लोकापवाद के भय से श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीको त्यागकर बाल्मीकि जी के आश्रममें पहुंचा दिया और वहीं रहनेलगीं।

अंतर्वत्न्या गते काले यमौ सा सुषुवे सुतौ ।
कुशोलव इति ख्यातौ तयोश्चक्रे क्रिया मुनिः॥११॥

गर्भवती श्रीसीताजी से समय आने पर एक साथ लव और कुश नामक दो पुत्र हुए, बाल्मीकि ऋषि ने उनके जात-कर्म आदि संस्कारकिये ॥११॥

अंगदश्चित्रकेतुश्च लक्ष्मणस्यात्मजौ स्मृतौ ।
तक्षः पुष्कल इत्यास्तां भरतस्य महीपते ॥१२॥

हे राजन् ! लक्ष्मणजी के अङ्गद और चित्रकेतु नाम के दो पुत्र हुए, भरतजी के तक्ष और पुष्कल नाम के दो पुत्र हुए ॥१२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुबाहुः श्रुतसेनश्च शत्रुघ्नस्य बभूवतुः ।
गंधर्वान् कोटिशो जघ्ने भरतो विजये दिशाम् १३॥

शत्रुघ्न के सुबाहु और सुकेतु नामक पुत्र हुए, श्रीभरतजी ने दिग्विजय में करोड़ों गन्धर्वों का वध किया ॥१३॥

तदीयं धनमानीय सर्वं राज्ञे न्यवेदयत् ।
शत्रुघ्नश्च मधोः पुत्रं लवणं नाम राक्षसम् ॥१४॥
हत्वा मधुवने चक्रे मथुरां नाम वै पुरीम् ।
मुनौ निक्षिप्य तनयौ सीता भर्त्रा विवासिता १५॥
ध्यायंती रामचरणौ विवरं प्रविवेश ह ।
तच्छ्रुत्वा भगवान् रामो रुंधन्नपि धिया शुचः १६॥
स्मरंस्तस्या गुणांस्तांस्तान् नाशक्नोद् रोद्धुमीश्वरः ।
स्त्रीपुंप्रसंग एतादृक् सर्वत्र त्रासमावहः ॥१७॥
अपीश्वराणां किमुत ग्राम्यस्य गृहचेतसः ।
तत ऊर्ध्वं ब्रह्मचर्यं धारयन्नजुहोत् प्रभुः ।
त्रयोदशाब्दसाहस्रमग्निहोत्रमखंडितम् ॥१८॥

उनका सब धन लाकर रामचन्द्रजी को भेंट किया, शत्रुघ्न ने मधु के पुत्र लवण नामक राक्षस को मारकर मधुवन में मथुरा नामकी नगरी बसाई पति से त्यागी हुई श्रीसीता देवी वाल्मीकिजी को अपने दोनों पुत्र सौंपकर, रामचन्द्रजीके चरणों का ध्यान धरती हुई पृथ्वी के विवर (छिद्र) में समा गईं, यह सुनकर भगवान् रामचन्द्रजी ने बुद्धि के द्वारा अपना शोक रोकने की बहुत चेष्टा की, परन्तु उनके उन गुणों का स्मरण होने से वे उसे रोक न सके, जब ईश्वर तक को स्त्री पुरुष का प्रसंग इस प्रकार से सर्वथा त्रास-दाताहै; तब गृहस्थमें चित्त लगाने वाले जड़जीवों को इसमें दुःख होना कौन से आश्चर्य की बात है ? सीताजी के विवरमें प्रवेश करने के पीछे श्रीरामचन्द्रजी ने अखंड ब्रह्मचर्य धारण कर एक हज़ार तेरह वर्ष तक अग्निहोत्र होम किया ॥१४॥१५॥१६॥॥१७॥१८॥

स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दंडककंटकैः ।
स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात् ततः ॥१९॥

फिर दण्डक-वन में कांटों से विंधे हुए अपने चरणारविन्द को भक्तजनों के हृदयमें स्थापित कर के आप अपने धाम को पधार गये ॥१९॥

नेदं यशो रघुपतेः सुरयाच्ञयात्तलीलातनोर
धिकसाम्यविमुक्तधाम्नः । रक्षो वधो जलधिबंधन
मस्त्रपूगैः किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः ॥२०॥

जिन्होंने देवताओं की प्रार्थना से लीलावतार धारण किया था, जिनके समान किसी दूसरे का प्रभाव नहीं है, उन श्रीरामचन्द्रजी ने शस्त्रों द्वारा राक्षसों का संहार किया, समुद्रमें सेतु बाँधा, यह उनके लिये कोई बड़ी बात नहीं है तथा उन्होंने जो शत्रुओं के मारने में बानरों की सहायता ली; यह भी उनकी लीलामात्र ही है ॥२०॥

यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि गायंत्यघघ्न
मृषयो दिगिभेंद्रपट्टम् । तं नाकपालवसुपालकिरीट
जुष्टपादांबुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ॥२१॥

दिग्गजों का आभूषणरूप (सर्वत्र व्याप्त) और पाप नाश करने वाले जिनके पवित्र यश को ऋषि जन अब तक राज-सभाओं में गाया करते हैं, जिन के चरणों की देवता तथा राजा लोग अपने मुकुटों से सेवा करते हैं, मैं उन श्रीरामजी की शरण हूँ ॥

यैः संस्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा ।
कोशलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छंति योगिनः २२॥

जिन्होंने श्रीरामचन्द्रजी का स्पर्श या दर्शन किया है, जो उनके साथ बैठे हैं या जो उनके पीछे चले हैं, वे सब और अयोध्या वासी मनुष्य उस पद को प्राप्त हुए हैं कि जिसे योगीजन पाते हैं॥२२॥

पुरुषो रामचरितं श्रवणैरुपधारयन् ।
आनृशंस्यपरो राजन्कर्मबंधैर्विमुच्यते ॥२३॥

हे राजन् ! जो मनुष्य श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र सुने और सदाचार का पालन करे, वह कर्म-बंधन से छूट जाता है ॥२३॥

राजोवाच

कथं स भगवान् रामो भ्रातृन्वा स्वयमात्मनः ।
तस्मिन्वा तेऽन्ववर्तंत प्रजाः पौराश्च ईश्वरे ॥२४॥

परीक्षित बोले–भगवान रामचन्द्रजी स्वयंकैसे वर्त्तते थे और अपने अंशरूप भाइयोंके साथ कैसा व्यवहार करते थे, और उनके साथ भाइयों तथा प्रजा का कैसा व्यवहार था ? ॥२४॥

श्रीशुक उवाच

अथादिशद् दिग्विजये भ्रातॄंस्त्रिभुवनेश्वरः ।
आत्मानं दर्शयन् स्त्रीणां पुरीमैक्षत सानुगः ॥२५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीशुकदेवजी बोले-त्रिभुवननाथ श्रीरामचंद्रजी ने अपने भाइयों को दिग्विजय के लिये भेजा और स्वयं मनुष्यों को दर्शन देनेके लिये अपने अनुचरों के साथ अपनी नगरी देखने पधारते ॥२५॥

आसिक्तमार्गां गंधोदैः करिणांमदसीकरैः ।
स्वामिनं प्राप्तमालोक्य मत्तां वा सुतरामिव॥२६॥

उस नगरी के मार्गों में सुगन्धित जल तथा गज-मद की बूंदों से छिड़काव होरहा है, जैसे स्वामी को देखकर गौ मदमत्त होजाती है, वैसे ही वह पुरीभी श्रीराम-दर्शन से मदोन्मत्त होजातीहै।

प्रासादगोपुरसभाचैत्यदेवगृहादिषु ।
विन्यस्त हेमकलशैः पताकाभिश्च मंडिताम्॥२७॥

महल, नगर, द्वार, सभा, मार्गके बड़े-बड़े वृक्ष और देव-मन्दिरों पर स्वर्ण के कलश और पताकायें शोभित हैं ॥२७॥

पूगैः सट्टदै रंभाभिः पट्टिकाभिः सुवाससम् ।
आदर्शैरंशुकैः स्रग्भिः कृतकौतुकतोरणाम् ॥२८॥

गुच्छों सहित सुपारी तथा केलोंके वृक्ष शोभा देरहे हैं, सुन्दर वस्त्र बिछाये गये हैं, काँच, वस्त्र, माला और तोरणोंकी शोभा होरही है ॥२८॥

तमुपेयुस्तत्र तत्र पौरा अर्हणपाणयः ।
आशिषो युयुजुर्देव पाहि मां प्राक्त्वयोद्धृताम्२९॥

प्रत्येक स्थान पर हाथों में भेंट लिये हुए पुरवासी श्रीरामचन्द्रजीके सन्मुख आ-आकर आशीष देते हैं कि हे नाथ! वाराह अवतारमें आपने जिस पृथ्वी का उद्धार किया था उसका पालन कीजिये॥

ततः प्रजा वीक्ष्य पतिं चिरागतं दिदृक्षयोत्सृष्ट गृहाः स्त्रियो नराः। आरुह्य हर्म्याण्यरविंदलोचनमतृप्तनेत्राः कुसुमैरवाकिरन् ॥३०॥

कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी जब कभी बाहर आते और बहुत दिन पीछे जब लौटकर अयोध्या में आते, तब नगर के स्त्री-पुरुष उनके दर्शनों के लिये, घर छोड़कर, ऊँचे-ऊँचे महलों पर चढ़कर फूल बरसातेथे, उनके नेत्र दर्शनोंसे तृप्त न होतेथे।

अथ प्रविष्टः स्वगृहं जुष्टं स्वैः पूर्वजादिभिः ।
अनंताखिलकोशाढ्यमनर्घ्योरुपरिच्छदम् ॥३१॥

इसके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी अपने पूर्वजों से सेवित महलमें आते कि जिसमें अनन्त कोष और बहुमूल्य सामग्री उपस्थित है ॥३१॥

विद्रुमोदुंबरद्वारैर्वैडूर्यस्तंभपंक्तिभिः ।
स्थलैर्मारकतैः स्वच्छैर्भातं स्फटिकभित्तिभिः॥३२॥
चित्रस्रग्भिः पट्टिकाभिर्वासोमणिगणांशुकैः ।
मुक्ताफलैश्चिदुल्लासैः कांतकामोपपत्तिभिः ॥३३॥
धूपदीपैःसुरभिभिर्मंडितं पुष्पमंडितैः ।
स्त्रीपुंभिः सुरसंकाशैर्जुष्टं भूषणभूषणैः ॥३४॥

दरवाज़ों में मूंगे की देहली, वैडूर्यमणिके खंभों की पंक्ति, मरकत मणि के धरातल और उज्ज्वल स्फटिक मणि की दीवारें, चित्रमाला, पट्टिका,वस्त्र मणि-समूह की किरणें, चैतन्य के समान उज्ज्वल मुक्ताफल, सुन्दर भोग के साधन, सुगन्धि, धूप, दीप और अलङ्कारों के भी अलङ्कार रूप देवताओं के समान कान्ति वाले, पुष्पों से सुसज्जित स्त्री-पुरुषों से शोभायमान हैं ॥३२॥३३॥३४॥

तस्मिन् स भगवान्रामः स्निग्धया प्रिययेष्टया ।
रेमे स्वारामधीराणामृषभः सीतयाकिल ॥३५॥

उस महल में आत्मा राम और धीर पुरुषों में श्रेष्ठ अपनी प्रेममयी और प्यारी सीताजी के साथ स्वतन्त्र विहार करते हैं ॥३५॥

बुभुजे च यथाकालं कामान्धर्ममपीडयन् ।
वर्षपूगान्बहून् नृणामभिध्यातांघ्रिपल्लवः ॥३६॥

हे राजन्! जिनके चरणारविन्दका मनुष्य सदैव ध्यान करते हैं, ऐसे श्रीरामचन्द्रजी धर्म में बाधा न आने वाले समय के नियमानुसार सुखका अनुभव करते हुए विराजते हैं ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते नवमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

बारहवां अध्याय

(श्रीराम-तनय कुश का वंश-विवरण)

श्रीशुक उवाच

कुशस्य चातिथिस्तस्मान्निषधस्तत्सुतो नभः ।
पुंडरीकोऽथ तत्पुत्रः क्षेमधन्वाऽभवत् ततः ॥ १ ॥
देवानीकस्ततोऽनीहः पारियात्रोऽथ तत्सुतः ।
ततो बलः स्थलस्तस्माद्वज्रनाभोऽर्कसंभवः ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-कुश के अतिथि, अतिथि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के निषध, निषध के नभ, नभ के पुंडरीक, पुंडरीक के क्षेम धन्वा, क्षेमधन्वा के देवानीक, देवानीक के अनीह, अनीहके पारिजात, पारिजात के वलस्थल, वलस्थल के वज्रनाभ नामक पुत्र हुआ जो सूर्य का अंश था ॥१॥॥२॥

सुगणस्तत्सुतस्तस्माद्विधृतिश्चाभवत्सुतः ।
ततो हिरण्यनाभोऽभूद्योगाचार्यस्तु जैमिनेः ॥ ३ ॥
शिष्यः कौशल्य अध्यात्मं याज्ञवल्क्योऽध्यगाद्यतः ।
योगं महोदयमृषिर्हृदयग्रंथिभेदकम् ॥ ४ ॥

वज्रनाभके रवगण, रवगणके विधृति, विधृति के हिरण्य नाभ नामक पुत्र हुआ, यह जैमिनऋषि का शिष्य और योग-मार्ग का आचार्य था जिससे कौशल्य और याज्ञवल्क्य ऋषि ने महान् सिद्धियां देने वाली और देहाभिमान छेदनेवाली आत्मयोग विद्या सीखी थी ॥ ३॥॥४ ॥

पुष्यो हिरण्यनाभस्य ध्रुवसंधिस्ततोऽभवत् ।
सुदर्शनोऽग्निवर्णश्च शीघ्रस्तस्य मरुः सुतः ॥ ५ ॥

इस हिरण्यनाभ के पुष्प, पुष्पके ध्रुवसंधि, ध्रुव संधि के सुदर्शन, सुदर्शन के अग्निवर्ण, अग्निवर्ण के शीघ्र और शीघ्रके मरु नामक पुत्र हुआ ॥५॥

योऽसावास्ते योगसिद्धः कलापग्राममाश्रितः ।
कलेरंते सूर्यवंशं नष्टं भावयिता पुनः ॥ ६ ॥

यह योगसिद्ध मरु अबभी कलाप नामक ग्राममें रहताहै, जब सूर्यवंश का नाश होजायगा तब कलियुगके अन्तमें फिरसे सूर्यवंश को चलायेगा ॥६॥

तस्मात्प्रसुश्रुतस्तस्य संधिस्तस्याप्यमर्षणः ।
सहस्वांस्तत्सुतस्तस्मात् विश्वसाह्नोऽन्वजायत ।
ततः प्रसेनजित् तस्मात् तक्षको भविता पुनः ॥७॥

मरुके प्रसुश्रुत, उसके संधि, संधि के अमर्षण, उसके महस्वान, उसके विश्वसाह,उसके प्रसेनजित उसके तक्षक और उसके बृहद्वल नामक पुत्रहुआ॥

ततो बृहद्बलो यस्तु पित्रा ते समरे हतः ।
एते हीक्ष्वाकुभूपाला अतीताः शृण्वनागतान्॥८॥

जिसे तुम्हारे पिता अभिमन्यु ने महाभारत में मारा, इतने राजा तो इक्ष्वाकु-वंशमें होचुके हैं,अब आगे होने वाले राजाओं का नाम भी सुन ॥ ८ ॥

बृहद्बलस्य भविता पुत्रो नाम बृहद्रणः ।
उरुक्रियस्ततस्तस्य वत्सवृद्धो भविष्यति ॥ ९ ॥
प्रतिव्योमस्ततो भानुर्दिवाको वाहिनीपतिः ।
सहदेवस्ततो वीरो बृहदश्वोऽथ भानुमान् ॥१०॥
प्रतीकाश्वो भानुमतः सुप्रतीकोऽथ तत्सुतः ।
भविता मरुदेवोऽथ सुनक्षत्रोऽथ पुष्करः ॥११॥
तस्यांतीरक्षस्तत्पुत्रः सुतपास्तदमित्रजित् ।
बृहद्राजस्तु तस्यापि बर्हिस्तस्मात्कृतंजयः ॥१२॥
रणंजयस्तस्य सुतः संजयो भविता ततः ।
तस्माच्छाक्योऽथ शुद्धोदो लांगलस्तत्सुतःस्मृतः१३
ततः प्रसेनजित् तस्मात्क्षुद्रको भविता ततः ।
रणको भविता तस्मात्सुरथस्तनयस्ततः ॥१४॥
सुमित्रो नाम निष्ठांत एते बार्हद्वलान्वयाः ।
इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रांतो भविष्यति ।
यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ १५

बृहद्वल का पुत्र बृहद्रण होगा, उसके अरुक्रम, उसके वत्सवृद्ध, उसके प्रतिव्योम, उसके भानु, भानु के सेनापति दिवाक, दिवाकके सहदेव उसके वीर बृहदश्व, उसके भानुमान, उसके प्रतीकाश्व, उसके सुप्रतीक, उसके मरुदेव, उसके सुनक्षत्र, उसके पुष्कर, उसके अन्तरिक्ष, उसके सुतपा, उसके अमित्रजित, उसके बृहद्राज, उसके बर्हि, उसके कृतञ्जय, उसके रणञ्जय, उसके संजय, उसके शाक्य, उसके शुद्धोद,उसके लांगल, उसके प्रसेनजित, उसके क्षुद्रक,उसके रणक, उसके सुरथ,उसके सुमित्र नामक पुत्रहोगा, इस राजा से इस वंश का अन्त होजायगा, ये बृहद्वल राजा के वंश वालोंके नाम बतलायेहैं, हे राजन् ! इक्ष्वाकु वंशी राजाओंका यह वंश सुमित्र राजातक चलेगा फिर कलियुग में इसका नाश होजायगा ॥९-१५॥

इति श्रीमद्भागवते नवमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तेरहवां अध्याय

(निमि वंश)

श्रीशुक उवाच

निमिरिक्ष्वाकुतनयो वसिष्ठमवृतर्त्विजम् ।
आरभ्य सत्रं सोऽप्याह शक्रेण प्राग् वृतोऽस्मि भोः॥

श्रीशुकदेवजी बोले-इक्ष्वाकुके पुत्र राजा निमि ने यज्ञ करने के लिये वसिष्ठजी को वरण किया, तब वसिष्ठजी ने उसे स्वीकार कर, यज्ञारम्भ करा के कहनेलगे कि इन्द्र मुझे पहले वरण करचुकाहै॥

तं निर्वर्त्यागमिष्यामि तावन्मां प्रतिपालय ।
तूष्णीमासीद् गृहपतिः सोपींद्रस्याकरोन्मखम्॥२॥

इसलिये मैं इन्द्रका यज्ञ पूर्ण करके आऊँगा, उस समय तक तुम मेरी राह देखते रहना, यह सुनकर निमि चुप होगया और वसिष्ठजी इन्द्रको यज्ञ कराने के लिये चले गये ॥२॥

निमिश्चलमिदं विद्वान् सत्रमारभतात्मवान् ।
ऋत्विग्भिरपरैस्तावन्नागमद् यावता गुरुः ॥ ३ ॥

विद्वान् निमि ने जीवन को चंचल समझ कर वसिष्ठजी के आने से पहले ही दूसरे ऋत्विजों का वरण करके यज्ञ प्रारम्भ कर दिया ॥३॥

शिष्यव्यतिक्रमं वीक्ष्य निर्वर्त्य गुरुरागतः ।
अशपत्पतताद् देहो निमेः पंडितमानिनः ॥ ४ ॥

जब इन्द्रका यज्ञ पूर्ण करके वसिष्ठजी आये तो अपने शिष्य निमि का अपराध देखकर उन्होंने शाप दिया कि पाण्डित्य का अभिमान करने वाले निमि का शरीर गिर जाये ॥४॥

निमिः प्रतिददौ शापं गुरवेऽधर्मवर्तिने ।
तवापिपतताद् देहो लोभाद् धर्ममजानतः ॥ ५ ॥

राजा निमि ने भी अधर्मवर्त्ती गुरु वसिष्ठ को शापदिया कि आप लोभके कारण धर्म नहीं चाहते इसलिये आपका शरीर भी गिर जाये ॥५॥

इत्युत्ससर्ज स्वं देहं निमिरध्यात्मकोविदः ।
मित्रावरुणयोर्जज्ञे उर्वश्यां प्रपितामहः ॥ ६ ॥

इस प्रकार शाप देकर ब्रह्मज्ञाता राजा निमि ने अपनी देह छोड़ दी और वसिष्ठजी का भी शरीर पात होगया, फिर उन्होंने मित्रावरुणके वीर्य द्वारा उर्वशी से जन्म लिया ॥६॥

गंधवस्तुषु तद्देहं निधाय मुनिसत्तमाः ।
समाप्ते सत्रयागेऽथ देवानूचुः समागतान् ॥ ७ ॥

श्रेष्ठ मुनियोंने राजा निमि के शरीर को सुगंधि में रखकर यज्ञ समाप्त होने पर यज्ञ में आये हुए देवताओं से कहा ॥७॥

राज्ञो जीवतु देहोऽयं प्रसन्नाः प्रभवो यदि ।
तथेत्युक्ते निमिः प्राह माभून्मे देहबंधनम् ॥ ८ ॥

कि यदि आप लोग वास्तव में प्रसन्न हैं और शक्ति रखते हैं, तो राजा के इस शरीर को जीवित करदें, देवता बोले कि-ऐसा ही हो, परन्तु राजा निमि ने कहा कि मैं देहका बंधन नहीं चाहता ॥

यस्य योगं न वांछंति वियोगभयकातराः ।
भजंति चरणांभोजं मुनयो हरिमेधसः ॥ ९ ॥

भगवान् का ध्यान करने वाले मुनिजन मरनेके भय से जिस शरीर की कदापि चाहना नहीं करते वरन् मोक्ष की अभिलाषा रखते हैं ॥९॥

देहं नावरुरुत्सेहं दुःखशोकभयावहम् ।
सर्वत्रास्य यतो मृत्युर्मत्स्यानामुदके यथा ॥१०॥

मैं उस दुःख, शोक और भय के देनेवाली देह की इच्छा नहीं करता, क्योंकि जैसे जलमें मछली की सब ओर से मृत्यु है, वैसे ही इस देह की सर्वत्र मृत्यु है ॥१०॥

देवा ऊचुः

विदेह उष्यतां कामं लोचनेषु शरीरिणाम् ।
उन्मेषणनिमेषाभ्यां लक्षितोऽध्यात्मसंस्थितः॥११

देवता बोले-तुम बिना देह के ही देहधारियों के नेत्रों पर इच्छानुसार निवास करोगे, उसके प्रभाव से पलकों के बन्द होने तथा खुलने की क्रिया हुआ करेगी ॥११॥

श्रीशुक उवाच

अराजकभयं नृणां मन्यमाना महर्षयः ।
देहं ममंथुः स्म निमेः कुमारः समजायत ॥१२॥

शुकदेवजी बोले-राजाके न होने से मनुष्योंको भय होगा-ऐसा विचारकर ऋषियोंने देहका मंथन किया, उससे एक बालक उत्पन्न हुआ ॥ १२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जन्मना जनकः सोऽभूद्वैदेहस्तु विदेहजः ।
मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला येन निर्मिता॥१३

यह बालक जन्म लेने के कारण जनक, मृतक देह से उत्पन्न होने के कारण विदेह और मन्थन द्वारा प्रकट होने के कारण मिथिल कहलाया, जिस ने मिथिला नगरी बसाई ॥१३॥

तस्मादुदावसुस्तस्य पुत्रोऽभून्नंदिवर्धनः ।
ततः सुकेतुस्तस्यापि देवरातो महीपते ॥१४॥
तस्माद्बृहद्रथस्तस्य महावीर्यः सुधृत्पिता ।
सुधृतेर्धृष्टकेतुर्वै हर्यश्वोऽथ मरुस्ततः ॥१५॥
मरोः प्रतीपकस्तस्माज्जातः कृतिरथो यतः ।
देवमीढस्तस्य सुतो विश्रुतोऽथ महाधृतिः ॥१६॥
कृतिरातस्ततस्तस्मान्महारोमाथ तत्सुतः ।
स्वर्णरोमा सुतस्तस्य ह्रस्वरोमा व्यजायत ॥१७॥
ततः सीरध्वजो जज्ञे यज्ञार्थं कर्षतो महीम् ।
सीता सीराग्रतो जाता तस्मात्सीरध्वजःस्मृतः १८

जिस जनकसे उदावसु, उदावसुके नंदिवर्द्धन, नन्दिवर्द्धन के सुकेतु, सुकेतु के देवरात, देवरात के बृहद्रथ, बृहद्रथ के महावीर्य, महावीर्य के सुधृत, सुधृत के धृष्टकेतु, धृष्टकेतु के हर्यश्व, हर्यश्व के मरु, मरु के प्रदीपक, प्रदीपक के कृतिरथ, कृतिरथ के देवमीढ़, देवमीढ़ के विश्रुत, विश्रुतके महाधृति महाधृति के कृतिरात, कृतिरात के महारोमा, महा रोमा के स्वर्णरोमा, स्वर्णरोमा के ह्रस्वरोमा, ह्रस्व रोमा के सीरध्वज, नामक पुत्र हुआ. जिसके यज्ञ के लिये पृथ्वी खोदते समय हल के अग्र भाग से श्रीसीताजी प्रकट हुईं, इसलिये उसका नाम सीरध्वज हुआ ॥१४॥१५॥१६॥१७॥१८॥

कुशध्वजस्तस्य पुत्रस्ततो धर्मध्वजो नृपः ।
धर्मध्वजस्य द्वौ पुत्रौ कृतध्वजमितध्वजौ ॥१९॥

सीरध्वज के कुशध्वज, कुशध्वज के धर्मध्वज नामक पुत्र हुआ, धर्मध्वजके कृतध्वज और मित-ध्वज-ये दो पुत्र हुए ॥१९॥

कृतध्वजात्केशिध्वजः खांडिक्यस्तु मितध्वजात् ।
कृतध्वजसुतो राजन्नात्मविद्याविशारदः ॥२०॥

उनमें से कृतध्वजके केशिध्वज और मितिध्वज के खाण्डिक्य पुत्र हुआ, हे राजन् ! केशिध्वज ब्रह्म विद्या में निपुण था ॥२०॥

खांडिक्यः कर्म तत्त्वज्ञो भीतः केशिध्वजाद्द्रुतः ।
भानुमांस्तस्य पुत्रोऽभूच्छतद्युम्नस्तु तत्सुतः ॥२१॥
शुचिस्तत्तनयस्तस्मात्सनद्वाजस्ततोऽभवत् ।
ऊर्ध्वकेतुः सनद्वाजादयोऽथपुरुजित्सुतः ॥२२॥
अरिष्टनेमिस्तस्यापि श्रुतायुस्तत्सुपार्श्वकः ।
ततश्चित्ररथो यस्य क्षेमधिर्मिथिलाधिपः ॥२३॥
तस्मात्समरथस्तस्य सुतः सत्यरथस्ततः ।
आसीदुपगुरुस्तस्मादुपगुप्तोऽग्निसंभवः ॥२४॥

खांडिक्य कर्म विद्या में चतुर था, यह केशि-ध्वज से डरकर भाग गया, केशिध्वजके भानुमान, भानुमानके शतद्युम्न, उसके शुचि, शुचिके सनद्वाज सनद्वाज के ऊर्ध्वकेतु, ऊर्ध्वकेतु के अज, अज के पुरुजित्, पुरुजित् के अरिष्टनेमी, अरिष्टनेमी के श्रुतायु, श्रुतायु के सुपार्श्वक, सुपार्श्वकके चित्ररथ चित्ररथ के क्षेमधि, क्षेमधि के समरथ, समरथ के सत्यरथ, सत्यरथ के उपगुरु और उपगुरु के उप-गुप्त नामक पुत्र हुआ, जो अग्नि के अंश से उत्पन्न हुआ था २१॥२२॥२३॥२४॥

वस्वनंतोऽथ तत्पुत्रो युयुधानः सुभाषणः ।
श्रुतस्ततो जयस्तस्माद् विजयोऽस्मादृतः सुतः॥२५
शुनकस्तत्सुतो जज्ञे वीतहव्यो धृतिस्ततः ।
बहुलाश्वो धृतेस्तस्य कृतिरस्य महावशी ॥२६॥

उपगुप्त के वस्वनन्त, उसके युयुधान, उसके सुभाषण, उसके श्रुत, श्रुत के जय, जयके विजय, विजय के ऋतु, ऋतु के शुनक, शुनक के वीतहव्य उसके धृति, धृति के बहुलाश्व और उसके परम इन्द्रियजित् कृत नामक पुत्र हुआ ॥२५॥२६॥

एते वै मिथिला राजन्नात्मविद्याविशारदाः ।
योगेश्वरप्रसादेन द्वंद्वैर्मुक्ता गृहेष्वपि ॥२७॥

हे राजन् ! यह विदेह वंशी राजा याज्ञवल्क्य आदि योगेश्वरों के प्रताप से ब्रह्म विद्या में निपुण और गृहस्थ होकर भी संसार-बंधनसे मुक्त हुए ॥

इति श्रीमद्भागवते नवमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चौदहवां अध्याय

(चन्द्र-वंश)

श्रीशुक उवाच

अथातः श्रूयतां राजन् वंशः सोमस्य पावनः ।
यस्मिन्नैलादयो भूपाः कीर्त्यंते पुण्यकीर्तयः॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-अब चंद्र वंश सुनो जिस में पुरुरुवा आदि पवित्र कीर्त्ति वाले राजाओं का यश गाया जाता है ॥१॥

सहस्रशिरसः पुंसो नाभिह्रदसरोरुहात् ।
जातस्यासीत्सुतो धातुरत्रिः पित्रसमो गुणैः॥ २ ॥

श्रीनारायण की नाभि-कमल से ब्रह्माजी प्रकट हुए, ब्रह्माजी के अत्रि नामक पुत्र हुए जो ब्रह्माजी के समान ही गुणवान् थे ॥२॥

तस्य दृग्भ्योऽभवत्पुत्रः सोमोऽमृतमयः किल ।
विप्रौषध्युडुगणानां ब्रह्मणा कल्पितः पतिः॥ ३ ॥

अत्रि के नेत्र में से चन्द्रनामक पुत्र हुआ; उस अमृतमय चन्द्र को ब्रह्माजी ने ब्राह्मण, औषधि और नक्षत्रों का स्वामी बनाया ॥३॥

सोऽयजद्द राजसूयेन विजित्य भुवनत्रयम् ।
पत्नीं बृहस्पतेर्दर्पात् तारां नामाहरद्द बलात्॥ ४ ॥

इसने त्रिभुवनों को जीतकर "राजसूय" यज्ञ किया और उस अभिमान ने बृहस्पति की स्त्री तारा को हर लेगया ॥४॥

यदा स देवगुरुणा याचितोऽभीक्ष्णशो मदात् ।
नात्यजत् तत्कृते जज्ञे सुरदानवविग्रहः ॥ ५ ॥

बृहस्पतिजी ने कई बार उसको चंद्रमासे मांगा पर जब अभिमान वशात् चन्द्रमा ने तारा को न छोड़ा, तब उसके लिये घोर देवासुर-संग्रामहुआ।

शुक्रो बृहस्पतेर्द्वेषादग्रहीत्सासुरोडुपम् ।
हरो गुरुसुतं स्नेहात् सर्वभूतगणावृतः ॥ ६ ॥

बृहस्पति से वैर होने के कारण शुक्राचार्यजी चन्द्रमा के पक्ष में होगये और महादेवजी प्रेम-पूर्वक अपने पार्षदोंसहित अपने गुरु-पुत्र बृहस्पति के पक्ष में होगये ॥६॥

सर्वदेवगणोपेतो महेंद्रो गुरुमन्वयात् ।
सुरासुरविनाशोऽभूत्समरस्तारकामयः ॥ ७ ॥

सब देवताओंके साथ इन्द्रभी बृहस्पतिके पक्ष में गये, तब तारा के लिये घोर संग्राम हुआ कि जिसमें दोनों का विशेष नाश हुआ ॥७॥

निवेदितोऽथांगिरसा सोमं निर्भर्त्स्य विश्वकृत् ।
तारां स्वभर्त्रे प्रायच्छदंतर्वत्नीमवैत्पतिः ॥ ८ ॥

फिर बृहस्पतिजी की विनय पर ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को झिड़की देकर उन्हें तारा दिलादी पर बृहस्पतिने यह जानलिया कि वह गर्भवती है ॥८॥

त्यजत्यजाशु दुष्प्रज्ञे मत्क्षेत्रादाहितं परैः ।
नाहं त्वां भस्मसात्कुर्यां स्त्रियं सांतानिकः सति ९॥

इसलिये उन्होंने कहा कि हे दुर्मते ! दूसरे के द्वारा धारण किया हुआ यह गर्भ मेरे क्षेत्रमें शीघ्र ही डालदे, हे सति ! मुझे दूसरी सन्तानकी इच्छा है इसलिये मैं तुझ स्त्री को भस्म न करूँगा ॥९॥

तत्याज व्रीडिता तारा कुमारं कनकप्रभम् ।
स्पृहामांगिरसश्चक्रे कुमारे सोम एव च ॥१०॥

पति की बात सुनकर लज्जावती तारा ने स्वर्ण के समान कान्ति वाले कुमार को त्याग दिया,उसे देखकर बृहस्पति और चन्द्रमा दोनों उसे लेने की इच्छा करने लगे ॥१०॥

ममायं न तवेत्युच्चैस्तस्मिन् विवदमानयोः ।
पप्रच्छुर्ऋषयो देवा नैवोचे व्रीडिता तु सा ॥११॥

दोनों में इस विषय पर विवाद छिड़ गया, कि यह बालक मेरा है तेरा नहीं, तब देवताओं तथा ऋषियों ने तारा ही से पूछा, परन्तु उसने लज्जाके मारे कुछ भी उत्तर न दिया ॥११॥

कुमारो मातरं प्राह कुपितोऽलीकलज्जया ।
किं नावोचस्यऽसद्वृत्ते आत्मावद्यं वदाऽऽशु मे ॥

तब खोटे कर्मसे लज्जित हो कुमार ने क्रोधित होकर अपनी मातासे कहा कि-हे कुचरित्रे ! अपना दोष क्यों नहीं कहती कि मैं किससे उत्पन्न हूँ ? ॥

ब्रह्मा तां रह आहूय समप्राक्षीच्च सांत्वयन् ।
सोमस्येत्याह शनकैः सोमस्तं तावदग्रहीत् ॥१२॥

फिर ब्रह्माजी ने तारा को एकान्त बुलाकर सावधानी के साथ तारा से धीरे-धीरे पूछा, तब तारा नें कहा कि यह चन्द्रमा का पुत्र है, अस्तु उसे चन्द्रमा ने ग्रहण किया ॥१२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्यात्मयोनिरकृत बुध इत्यभिधां नृप ।
बुद्ध्या गंभीरया येन पुत्रेणापोडुराण्मुदम् ॥१४॥

ब्रह्माजी ने उस पुत्र का नाम 'बुध' रक्खा, उस की गंभीर बुद्धि देखकर चन्द्रमा को बड़ा ही आनन्द मिला ॥१४॥

ततः पुरूरवा जज्ञे इलायां य उदाहृतः ।
तस्य रूपगुणौदार्यशीलद्रविणविक्रमान् ॥१५॥
श्रुत्वोर्वशींद्रभवने गीयमानान् सुरर्षिणा ।
तदंतिकमुपेयाय देवी स्मरशरार्दिता ॥१६॥
मित्रावरुणयोः शापादापन्ना नरलोकताम् ।
निशम्य पुरुष श्रेष्ठं कंदर्पमिव रूपिणम् ॥१७॥
धृतिं विष्टभ्य ललना उपतस्थे तदंतिके ।
स तां विलोक्य नृपतिर्हर्षेणोत्फुल्ललोचनः ।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा देवीं हृष्टतनूरुहः ॥१८॥

बुध के इला पत्नी से पुरुरुवा नामक पुत्रहुआ जिसका वर्णन हम पहले कर चुके हैं, नारदजी ने इन्द्र की सभा में जाकर इसके रूप, गुण, उदारता शील, धन, पराक्रम को गाया, उसे सुनकर काम-देव के बाणों से पीड़ित होकर उर्वशी नाम की अप्सरा जो कि मित्रावरुण के शाप से मनुष्य देह में आई थी, वह ललना पुरुरवा राजा को पुरुषों में श्रेष्ठ और कामदेव के समान रूपवान देखकर, मनमें धीरज धरकर उस राजा के पास आपहुंची, उसे देखकर आनन्दसे प्रफुल्लित नेत्र तथा पुलकित शरीर होकर पुरूरवाने मीठी वाणीसे कहा१५-१८॥

राजोवाच

स्वागतं ते वरारोहे आस्यतां करवाम किम् ।
संरमस्व मया साकं रतिर्नौ शाश्वतीःसमाः ॥१९॥

राजा बोला-हे वरारोहे ! अच्छी आई, आओ बैठो, मुझे क्या आज्ञाहै ? तुम मेरे साथ रमणकरो मैं यह चाहता हूँ कि मेरी तुम्हारी प्रीति चिरकाल तक बनी रहे ॥१९॥

उर्वश्युवाच

कस्यास्त्वयि न सज्जेत मनो दृष्टिश्च सुंदर ।
यदंगांतरमासाद्य च्यवते ह रिरंसया ॥२०॥

उर्वशी बोली-हे सुन्दर! आपको देखकर किस स्त्री की दृष्टि तथा मन मोहित न होगा ? क्योंकि आपके अङ्ग के मध्य में आने के पश्चात् रमण की इच्छा करते हुए आपको छोड़ा नहीं जा सकता ॥

एतावुरणकौ राजन् न्यासौ रक्षस्वमानद ।
संरंस्ये भवता साकं श्लाघ्यः स्त्रीणां वरः स्मृतः॥२१
घृतं मे वीर भक्ष्यं स्यान्नेक्षे त्वाऽन्यत्र मैथुनात् ।
विवाससं तत्तथेति प्रतिपेदे महामनाः ॥२२॥

पर हे सन्मान करने वाले राजन् ! मैं पहले ही से आपके साथ शपथ करती हूँ कि यह मेरे दो भेड़ी के बालक हैं, इन्हें आप थाती रूप से रखिये, मैं घी के सिवा और कुछ न खाऊँगी और मैथुन काल के सिवा किसी दूसरे समय में वस्त्र-हीन न देखूंगी, इस बात के पालन करते समय तक मैं आपके साथ रमण करूँगी, यह नियम ही है कि उत्तम पुरुष को स्त्रियाँ वर बनाती हैं, अस्तु उदार चित्त राजा ने उसे अङ्गीकार कर लिया ॥२१॥२२॥

अहो रूपमहो भावो नरलोकविमोहनम् ।
को न सेवेत मनुजो देवीं त्वां स्वयमागताम्॥२३

वह बोला कि-अहो तेरा रूप और भाव कैसा आश्चर्य करने वाला है कि जिसे देखकर मनुष्य मोहित होजाते हैं, भला ऐसी अपने आप आई हुई देवी को कौन सेवन न करेगा ? ॥२३॥

तया स पुरुषश्रेष्ठो रमयंत्या यथार्हतः ।
रेमे सुरविहारेषु कामं चैत्ररथादिषु ॥२४॥

रमण करातीहुई उस उर्वशी के साथ वह पुरुष श्रेष्ठ पुरूरवा यथायोग देवताओं के विहार करने के स्थान चैत्ररथ आदि वागोंमें विहार करनेलगा ॥

रममाणस्तया देव्या पद्मकिंजल्कगंधया ।
तन्मुखामोदमुषितो मुमुदेऽहर्गणान्बहून् ॥२५॥

कमल पराग के समान सुगन्धि वाली रमणी के साथ रमण करता हुआ उसके मुख की सुगंधि से राजा इतना आनन्द-मग्न होगया कि बहुत सा समय बीतनेपर भी उसे कुछ ध्यान न आया॥२५॥

अपश्यन्नुर्वशीमिंद्रो गंधर्वान्समनोदयत् ।
उर्वशीरहितं मह्यमास्थानं नातिशोभते ॥२६॥
त उपेत्य महारात्रे तमसि प्रत्युपस्थिते ।
उर्वश्या उरणौ जह्रुर्न्यस्तौ राजनि जायया॥२७॥

इन्द्र ने स्वर्ग में उर्वशी को न देखकर गन्धर्वों से कहा कि विना उर्वशीके मेरा यह स्थान अधिक शोभा नहीं पाता, तुम उसकी खोज करो, इन्द्र की यह आज्ञा पाकर गन्धर्व आधी रात में अंधेरा फैल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाने पर उर्वशी के उन भेड़ी के बच्चों को कि जो राजा के पास थाती-रूप थे, चुराकर चल दिये ॥

निशम्याक्रंदितं देवी पुत्रयोर्नीयमानयोः ।
हतास्म्यहं कुनाथेन न पुंसा वीरमानिना ॥२८॥
यद्विश्रंभादहं नष्टा हृतापत्या च दस्युभिः ।
यः शेते निशि संत्रस्तो यथा नारी दिवा पुमान् २९

हरण करके ले जाते हुए अपने बच्चों की पुकार सुनकर उर्वशी ने कहा कि निपुंसक होते हुए भी अपने आपको वीर मानने वाले इस राजा ने मेरी दुर्गति कर डाली, मैं इसके विश्वास में विगड़ गई और मेरे बच्चे भी चोर लेगये, यह दिनमें पुरुष सा जान पड़ता है परन्तु रात में स्त्री की नाईं भयभीत होकर सोता है ॥२८॥२९॥

इति वाक्सायकैर्विद्धः प्रतोत्रैरिव कुंजरः ।
निशि निस्त्रिंशमादाय विवस्त्रोऽभ्यद्रवद्द्रुषा॥३०॥

इस प्रकार उर्वशीके वाणरूपी वचनोंके अंकुश से हाथी के समान राजा वेधित होकर रातमें तलवार लेकर क्रोध-पूर्वक नंगाही दौड़ पड़ा ॥३०॥

ते विसृज्योरणौ तत्र व्यद्योतंत स्म विद्युतः ।
आदाय मेषावायांतं नग्नमैक्षत सा पतिम् ॥३१॥

तब गन्धर्व राजाको देखतेही मेढ़ोंको छोड़कर बिजली रूपमें चमकनेलगे, तब पुरूरवा बच्चों को लेकर लौटा और उसे उर्वशी ने नंगा देख लिया ॥

ऐलोऽपि शयने जायामपश्यन्विमना इव ।
तच्चित्तो विह्वलः शोचन्बभ्रामोन्मत्तवन्महीम्॥३२॥

प्रतिज्ञा टूटने पर उर्वशी चली गई; उसे शैया पर न पाकर पुरूरवा उदास होगया और केवल उसीमें चित्त लगाकर विह्वल राजा उन्मत्तकी नाईं पृथ्वी पर फिरने लगा ॥३२॥

स तां वीक्ष्य कुरुक्षेत्रे सरस्वत्यां च तत्सखीः ।
पंच प्रहृष्टवदनाः प्राह सूक्तं पुरूरवाः ॥३३॥

एक दिन कुरुक्षेत्र में सरस्वती के किनारे उस हँसमुख उर्वशी को उसकी पाँच सखियों के साथ देखकर पुरूरवा ने यह सुन्दर वचन कहे ॥ ३३ ॥

अहो जाये तिष्ठ तिष्ठ घोरे न त्यक्तुमर्हसि ।
मां त्वमद्याप्यनिर्वृत्य वचांसि कृणवावहै ॥३४॥

हे कठोर हृदय नारी ! खड़ी रह, खड़ी रह, मुझे सुख दिये बिना छोड़ देना तुझे उचित नहीं है, आ, मैं और तू बात-चीत करें ॥३४॥

सुदेहोऽयं पतत्यत्र देवि दूरं हृतस्त्वया ।
खादंत्येनं वृका गृध्रास्त्वत्प्रसादस्य नास्पदम्३५॥

हे देवी ! यह मेरा सुन्दर शरीर कि जो तेरे लिये इतनी दूर तक भटकता आया है; तेरी कृपा न होनेपर यहीं मर जायगा और इसे भेड़िये तथा गिद्ध खा जाँयगे ॥३५॥

उर्वश्युवाच

मा मृथाः पुरुषोसि त्वं मा स्म त्वाद्युर्वृका इमे ।
क्वापि सख्यं न वै स्त्रीणां वृकाणां हृदयं यथा३६॥

उर्वशी बोली-तू पुरुष है इसलिये धीरज रख, प्राण न दे, इन्द्रियों के वशीभूत होकर अपना विगाड़ करना उचित नहींहै, स्त्रियोंका हृदय भेड़िये की भांति होता है, इनकी मित्रता कभी भी स्थिर नहीं होती ॥३६॥

स्त्रियो ह्यकरुणाः क्रूरा दुर्मर्षाः प्रियसाहसाः ।
घ्नंत्यल्पार्थेऽपि विश्रब्धं पतिं भ्रातरमप्युत ॥३७॥

निर्दय, क्रूर, सहन-शीलता हीन स्वभाव वाली, साहस ही प्रिय मानने वाली स्त्रियां अपने थोड़े से स्वार्थ के लिये भी अपने ऊपर विश्वास रखने वाले पति या भाई तक को मार डालती हैं ॥३७॥

विधायालीकविश्रंभमज्ञेषु त्यक्तसौहृदाः ।
नवं नवमभीप्संत्यः पुंश्चल्यः स्वैरवृत्तयः ॥३८॥

स्नेह-हीन, व्यभिचारणी तथा अपने मनमानी रीति पर चलने वाली स्त्रियां मूर्ख पुरुषों को बुरी तरहसे धोखेमें डालकर नये पतिकी इच्छा करतीहैं।

संवत्सरांते हि भवानेकरात्रं मयेश्वर ।
वत्स्यत्यपत्यानि च ते भविष्यंत्यपराणि भोः॥३९॥

हे राजा ! एक वर्ष के पश्चात् फिर तू एक रात मेरा सहवास पायेगा और तेरे श्रेष्ट पुत्र पैदाहोगा॥

अंतर्वत्नीमुपालभ्य देवीं स प्रययौ पुरम् ।
पुनस्तत्र गतोऽब्दांते उर्वशीं वीरमातरम् ॥४०॥
उपलभ्य मुदा युक्तः समुवास तया निशाम् ।
अथैनमुर्वशी प्राह कृपणं विरहातुरम् ॥४१॥

इस बातसे पुरूरवा ने उर्वशीको गर्भणी समझ कर घर की राह ली, वर्ष भर पीछे फिर उर्वशी के पास राजागया और पुत्रोंकी माता उर्वशी से मिल कर वहाँ एकरात उसके साथरहा, राजाको विरहातुर तथा दीन देखकर उर्वशी ने कहा ॥४०॥४१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गंधर्वानुपधावेमांस्तुभ्यं दास्यंति मामिति ।
तस्य संस्तुवतस्तुष्टा अग्निस्थालीं ददुर्नृप ।
उर्वशीं मन्यमानस्तां सोऽबुध्यत चरन् वने ॥४२॥
स्थालीं न्यस्य वने गत्वा गृहानाध्यायतो निशि ।
त्रेतायां संप्रवृत्तायां मनसि त्रय्यवर्तत ॥४३॥

तू इन गन्धर्वों की स्तुति कर तो यह तेरे लिये मुझको दे देंगे, हे राजन् ! तब पुरूरवा ने गन्धर्वों की स्तुति की, तब गन्धर्वों ने प्रसन्न होकर उसे एक अग्नि की कुण्डी दी; वह उसे ही उर्वशी मान कर वनमें फिरने लगा, परन्तु अन्त में उसका भेद खुलने पर उस कुण्डी को वनमें रखकर वह अपने घर चला गया, परन्तु वहाँ भी रात में उसस्थाली का ध्यान किया करता था, तब त्रेता युगके प्रवृत्त होने पर उसके मनमें कर्म-कांड का उपदेश करने वाले तीन वेद प्रकट हुए ॥४२॥४३॥

स्थालीस्थानं गतोऽश्वत्थं शमीगर्भं विलक्ष्य सः ।
तेन द्वे अरणी कृत्वा उर्वशीलोककाम्यया ॥४४॥

फिर जहाँ उसने उस कुण्डीको रक्खाथा वहां जाकर शमी के गर्भ में पीपल को उगा हुआ देखा, उस पीपल से दो अरणियां बनाकर उर्वशीके लोक में जाने की इच्छासे अग्निको मथने लगा ॥४४॥

उर्वशी मंत्रतो ध्यायन्नधरारणिमुत्तराम् ।
आत्मानमुभयोर्मध्ये यत् तत् प्रजननं प्रभुः ॥४५॥

उसने नीचे की अरणी को उर्वशी, ऊपर की अरणी को अपने तथा दोनों के बीच में मन्थन-दण्ड को उपस्थरूप ध्यान करते हुए मथनकिया ॥

तस्य निर्मंथनाज्जातो जातवेदा त्रिभावसुः ।
त्रय्या स विद्यया राज्ञा पुत्रत्वे कल्पितस्त्रिवृत् ॥४६॥

इस मन्थन के कारण समस्त भोगने योग्य पदार्थ देने वाला अग्नि उत्पन्न हुआ, उस वेदोक्त संस्कार से आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि रूप से प्रकट होने वाले अग्नि को पुरूरवाने अपना पुत्र माना ॥ ४६ ॥

तेनायजत यज्ञेशं भगवंतमधोक्षजम् ।
उर्वशीलोकमन्विच्छन् सर्वदेवमयं हरिम् ॥४७॥

उर्वशी के लोक की प्राप्ति के लिये पुरूरवा ने सर्वदेव मय परमात्मा यज्ञेश्वर भगवान् का उस अग्नि से यजन किया ॥४७॥

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः ।
देवो नारायणो नान्य एकोऽग्निर्वर्ण एव च ॥४८॥

पहले सर्व वाणी का बीज रूप एक ओंकार ही वेद रूप था, एक नारायण ही देव माने जाते थे, उनके सिवा कोई दूसरा देवता न माना जाता था, आहवनीय आदि विभाग न होने से जो लौकिक अग्नि है, वही एक अग्नि माना जाता था और एक ही वर्ण था, चार वर्ण नहीं थे ॥४८॥

पुरूरवस एवासीत् त्रयी त्रेतामुखे नृप ।
अग्निना प्रजया राजा लोकं गांधर्वमेयिवान् ॥४९॥

हे राजन् ! त्रेता युग के आरंभ में पुरूरवा से ही तीन वेद प्रकट हुए, अग्निको पुत्ररूप मान कर उसके द्वारा राजा गंधर्व लोक में पहुंचा ॥४९॥

इति श्रीमद्भागवते नवमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पन्द्रहवां अध्याय

(सहस्रार्जुन-परशुराम-संग्राम)

श्रीशुक उवाच

ऐलस्य चोर्वशीगर्भात् षडासन्नात्मजा नृप ।
आयुः श्रुतायुः सत्यायू रयोऽथ विजयो जयः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे महाराज ! पुरूरवा के उर्वशी द्वारा छः पुत्र हुए-आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय और जय ॥१॥

श्रुतायोर्वसुमान पुत्रः सत्यायोश्च श्रुतंजयः ।
रयस्य सुत एकश्च जयस्य तनयोऽमितः ॥ २ ॥
भीमस्तु विजयस्याथ कांचनो होत्रकस्ततः ।
तस्य जन्हुः सुतो गंगां गंडूषीकृत्य योऽपिबत् ।
जह्नोस्तु पूरुस्तत्पुत्रो बलाकश्चात्मजोऽजकः ॥ ३ ॥
ततः कुशः कुशस्यापि कुशांबुर्मूर्तयो वसुः ।
कुशनाभश्च चत्वारो गाधिरासीत् कुशांबुजः ॥ ४ ॥

श्रुतायु के वसुमान, सत्यायुके श्रुतञ्जय, रय के एक, जयके अमित, विजयके भीम, भीमके कांचन, कांचन के होत्रक, उसके जन्हु नामक पुत्र हुआ जो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गङ्गाजीको एक चुल्लूभर पानी बनाकर पीगया, जन्हु के पुरु, पुरु के बालक, बालक के अजक, अजक के कुश, कुसके कुशांबु, मूर्त्तय, वसु और कुधानामि ये चार पुत्र हुए, कुशांबु के गाधि नामक पुत्र हुआ ॥२॥॥३॥॥४॥

तस्य सत्यवतीं कन्यामृचीकोऽयाचत द्विजः ।
वरं विसदृशं मत्वा गाधिर्भार्गवमब्रवीत् ॥ ५ ॥

उस गाधि के यहाँ सत्यवती नाम की कन्या हुई; उसे ऋचीक ऋषि ने माँगा, परन्तु उनको अयोग्य वर समझकर राजा गाधिने उनसे कहा ॥

एकतः श्यामकर्णा नां हयानां चंद्रवर्चसाम् ।
सहस्रं दीयतां शुल्कं कन्यायाः कुशिका वयम्॥६॥

यदि आप हमें चन्द्रमा के समान उज्ज्वलवर्ण तथा एक ओर से श्याम वर्ण वाले एकहज़ार घोड़े भी दें तो उनका मूल्य हमारी कन्याके समानहोगा क्योंकि हम कुशिक वंश के हैं, अर्थात् हमारे यहाँ कन्या मोल देने की प्रथा है ॥६॥

इत्युक्तस्तन्मतं ज्ञात्वा गतः स वरुणांतिकम् ।
आनीय दत्वा तानश्वानुपयेमे वराननाम् ॥ ७ ॥

ऐसा कहने पर ऋचीक राजा का अभिप्राय जानकर वरुणके पास गये और उनसे हज़ार घोड़े लाकर राजाको दिये तथा उन्होंने उस कन्या के साथ विवाह किया ॥ ७ ॥

स ऋषिः प्रार्थितः पत्न्या श्वश्त्रा चापत्यकाम्यया।
श्रपयित्वोभयैर्मंत्रैश्चरुं स्नातुं गतो मुनिः ॥ ८ ॥

ऋचीक ऋषि से उनकी पत्नी तथा सास ने सन्तान के लिये प्रार्थना की, तब ऋषि एक चरु तो ब्राह्मण मंत्रसे और दूसरा क्षत्रिय मंत्रसे तैयार करके स्नान करने चले गये ॥८॥

तावत् सत्यवती मात्रा स्वचरुं याचिता सती ।
श्रेष्ठं मत्वा तयाऽयच्छन्मात्रे मातुरदात्स्वयम्॥९॥

इतने में सत्यवती की माता ने उसके चरु को श्रेष्ठ समझकर उससे माँगा, सत्यवती ने अपना चरु तो उसे देदिया और उसका चरु स्वयं खालिया।

तद् विज्ञाय मुनिः प्राह पत्नी कष्टमकारषीः ।
घोरो दंडधरः पुत्रो भ्राता ते ब्रह्मवित्तमः ॥१०॥

यह बात जानकर ऋषिने सत्यवती से कहा कि तूने यह बहुत बुरा काम कियाहै, अब तेरा पुत्र तो घोर दण्ड धारण करने वाला होगा और तेरी माता का पुत्र उत्तम ब्रह्मज्ञानी होगा ॥१०॥

प्रसादितः सत्यवत्या मैवं भूदिति भार्गवः ।
अथ तर्हि भवेत्पौत्रो जमदग्निस्ततोऽभवत् ॥११॥

तब सत्यवती ने विनय की कि ऐसा न होना चाहिये, तब ऋषि ने कहा कि अच्छा पुत्र नहीं तो पौत्र ऐसे गुण वाला होगा, सत्यवती से जमदग्नि नामक पुत्र हुआ ॥ ११ ॥

सा चाभूत्सुमहापुण्या कौशिकी लोकपावनी ।
रेणोः सुतां रेणुकां वै जमदग्निरुवाह याम् ॥१२॥

वह जमदग्नि की माता सत्यवती पवित्र लोकों को भी पवित्र करने वाली कौशिकी नाम की नदी हुई, जमदग्नि ने रेणु की कन्या रेणुका के साथ विवाह किया ॥१२॥

तस्यां वै भार्गवऋषेः सुता वसुमदादयः ।
यवीयाञ्जज्ञ एतेषां राम इत्यभिविश्रुतः ॥१३॥

उससे जमदग्नि के द्वारा वसुमान् आदि पुत्र हुए, जिनमें परशुरामजी सबसे छोटे थे ॥१३॥

यमाहुर्वासुदेवांशं हैहयानां कुलांतकम् ।
त्रिःसप्तकृत्वो य इमां चक्रे निःक्षत्रियां महीम्॥१४॥

हैहय वंशीय क्षत्रियों के कालरूप यह परशुरामजी भगवान्के अंश कहलातेहैं, जिन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय-हीन कर दिया ॥१४॥

दुष्टं क्षत्रं भुवो भारमब्रह्मण्यमनीनशत् ।
रजस्त मोवृतमहन्फल्गुन्यपि कृतेंऽहसि ॥१५॥

ब्राह्मणों की भक्ति न करने वाले और पृथ्वीपर भाररूप दुष्ट क्षत्रियों को रजोगुण तथा तमोगुण से ढका हुआ देखकर उन्हें थोड़े से अपराध पर भी परशुरामजी ने संहार दिया ॥१५॥

राजोवाच

किं तदंहो भगवतो राजन्यैरजितात्मभिः ।
कृतं येन कुलं नष्टं क्षत्रियाणामभीक्ष्णशः ॥१६॥

परीक्षित बोले–अजितेंद्रिय राजाओं ने परशुरामजीका ऐसा कौनसा अपराध कियाथा कि जिस के कारण क्षत्रिय-वंशका बार २ नाश हुआ ॥१६॥

श्रीशुक उवाच

हैहयानामधिपतिरर्जुनः क्षत्रियर्षभः ।
दत्तं नारायणस्यांशमाराध्य परिकर्मभिः ॥१७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीशुकदेवजी बोले–हैहय-वंशीय क्षत्रियों के नायक तथा क्षत्रियों में श्रेष्ठ अर्जुन ने श्रीनारायण के अंश-रूप दत्तात्रेयजी की टहल करते हुए उन का आराधन किया ॥१७॥

बाहून्दशशतं लेभे दुर्धर्षत्वमरातिषु ।
अव्याहतेंद्रियौजःश्रीस्तेजो वीर्यं यशो बलम्॥१८॥
योगेश्वरत्वमैश्वर्यं गुणा यत्राणिमादयः ।
चचाराव्याहतगतिर्लोकेषु पवनो यथा ॥१९॥

जिससे उसे एक हज़ार भुजायें मिलीं, उसे शत्रु पराजित न कर सकते थे और इन्द्रियों की शक्ति, तेज, वीर्य, लक्ष्मी यश और बल अखंडनीय मिला था, योगेश्वरपन तथा अणिमादिक सिद्धियों के गुणयुक्त ऐश्वर्य भी दत्तात्रेयजी की कृपा से उसे मिला था, उसकी गति किसी जगह भी न रुकती थी, इसलिये लोकों में पवन के समान विचरता रहता था ॥१८॥१९॥

स्त्रीरत्नैरावृतः क्रीडन्नेवांभसि मदोत्कटः ।
वैजयंतीं स्रजं बिभ्रद् रुरोध सरितं भुजैः ॥२०॥

एक दिन नर्मदा नदी के जलमें वह स्त्रियों में रत्न-रूप स्त्रियों के साथ विहार कर रहा था, वहाँ उस मदोन्मत्त सहस्रार्जुनने वैजयन्ती माला धारण किये हुए अपनी हज़ार भुजाओं से नदी की चाल रोक दी ॥२०॥

विप्लावितं स्वशिबिरं प्रतिस्रोतः सरिज्जलैः ।
नामृष्यत् तस्य तद्वीर्यं वीरमानी दशाननः॥२१॥

तब उलटा प्रवाह होने के कारण नदी का जल बढ़ जाने से रावण का डेरा बह गया, तब वीरता का अभिमान रखनेवाला रावण उस राजाके पराक्रमको सहन न करके उससे युद्ध करनेलगा ॥२१॥

गृहीतो लीलया स्त्रीणां समक्षं कृतकिल्बिषः ।
माहिष्मत्यां सन्निरुद्धो मुक्तो येन कपिर्यथा॥२२॥

वहाँ स्त्रियों के सामने उस अपराधी रावणको खिलवाड़ की भांति पकड़कर सहस्रार्जुन ने माहिष्मती नामकी अपनी पुरी में बन्दर की तरह पहले तो क़ैद कर लिया और फिर छोड़ दिया ॥२२॥

स एकदा तु मृगयां विचरन्विपिने वने ।
यदृच्छयाऽऽश्रमपदं जमदग्नेरुपाविशत् ॥२३॥

वह सहस्रार्जुन एक बार घने वनमें आखेट खेलता और विचरता हुआ दैवयोग से जमदग्नि के आश्रम में पहुंचा ॥२३॥

तस्मै स नरदेवाय मुनिरर्हणमाहरत् ।
ससैन्यामात्यवाहाय हविष्मत्यास्तपोधनः ॥२४॥

ऋषि ने कामधेनु के प्रभाव से उस राजा का सेना, मन्त्री और सवारियोंसहित अतिथि-सत्कार किया ॥२४॥

स वीरस्तत्र तद् दृष्ट्वा आत्मैश्वर्यातिशायनम् ।
तन्नाद्रियताग्निहोत्र्यां साभिलाषः स हैहयः॥२५॥

अपने से भी अधिक ऋषि का प्रभाव देखकर राजाको मनमें बहुत बुरालगा और उसने ऋषिकी कामधेनु लेने का विचार किया ॥२५॥

हविर्धानीमृषेर्दर्पान्नरान्हर्तुमचोदयत् ।
ते च माहिष्मतीं निन्युः सवत्सां क्रंदतीं बलात्२६॥

उसने अभिमान पूर्वक ऋषिकी कामधेनु को हरण करने के लिये अपने लोगों को आज्ञा देदी, वे लोग ज़बरदस्ती उस पुकारती हुई गौको बछड़े सहित पकड़कर माहिष्मती पुरी में ले गये ॥२६॥

अथ राजनि निर्याते राम आश्रम आगतः ।
श्रुत्वा तत् तस्य दौरात्म्यं चुक्रोधाहिरिवाहतः २७

राजाके जानेपर परशुरामजी आश्रम में आये, उसकी दुष्टता का समाचार सुनकर उनको ऐसा हुआ जैसे काले सांपको चोट लगनेपर होताहै ॥

घोरमादाय परशुं सतूणं चर्म कार्मुकम् ।
अन्वधावत दुर्धर्षो मृगेंद्र इव यूथपम् ॥२८॥

घोर फरसा, तरकस, धनुष और ढाल लेकर वह परम तेजस्वी परशुरामजी उसके पीछे इस प्रकारदौड़े जैसे सिंह हाथियोंके नायकपर दौड़ताहै॥

तमापतंतं भृगुवर्यमोजसा धनुर्धरं बाणपरश्वधायुधम् । ऐणेयचर्माबरकर्मधामभिर्युतं जटाभिर्ददृशे पुरीं विशन् ॥२९॥

अचोदयद् हस्तिरथाश्वपत्तिभिर्गदासिबाणर्ष्टिशतघ्नशक्तिभिः । अक्षौहिणीः सप्तदशातिभीषणास्ता राम एको भगवानसूदयत् ॥३०॥

धनुष, बाण, फरसा यह शस्त्र धारण किये हुए मृग-चर्म पहिने हुए, सूर्यके समान कान्तिमय,सिर पर जटा बाँधे हुए, वेग के साथ आते तथा पुरी में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रवेश करते हुए परशुरामजी को देखकर राजा ने हाथी, घोड़ा, रथ और प्यादों वाली गदा, तलवार बाण, ऋष्टि, शतघ्नी और शक्ति आदि शस्त्रोंसहित अत्यन्त भयंकर सत्रह अक्षौहणी सेना भेजी, उसे भगवान् परशुरामजी ने अकेले ही काट गिराया ॥

यतो यतोऽसौ प्रहरत्परश्वधो मनोनिलौजाः पर चक्रसूदनः। ततस्ततश्छिन्नभुजोरुकंधरा निपेतु रुर्व्यां हतसूतवाहनाः॥३१॥

मन और पवन के समान वेगवाले शत्रु-दलको संहार करने वाले परशुरामजी ने जहाँ २ फ़रसेका प्रहार किया, वहीं २ योधाओं के हाथ, जंघा और गले कटकर गिरने लगे, सारथी और वाहन भर २ कर पृथ्वी पर पड़ने लगे ॥३१॥

दृष्ट्वा ससैन्यं रुधिरौघकर्दमे रणाजिरे रामकुठार सायकैः। विवृक्णचर्मध्वजचापविग्रहं निपातितं हैहय आपतद्रुषा ॥३२॥

रक्त-समूहसे कीच-युक्त रण-क्षेत्रमें परशुरामजी के कुठार और बाणों से ढाल, ध्वजा, धनुष और शरीर-भंग होने से अपने गिरे हुए दलको देखकर सहस्रार्जुन भी क्रोध पूर्वक युद्ध को आया ॥३२॥

अथार्जुनः पंचशतेषुबाहुभिर्धनुःषु बाणान्युगपत्स संदधे। रामाय रामोऽस्त्रभृतां समग्रणीस्तान्येक धन्वेषुभिराच्छिनत्समम् ॥३३॥

सहस्रार्जुन एक साथ पाँचसौ धनुषोंपर पाँच सौ बाण चढ़ाकर परशुरामजी पर चलाने लगा, तब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ और केवल एक धनुषधारी परशुरामजी ने अपने बाणोंसे उसके समस्त धनुष काट डाले ॥ ३३ ॥

पुनः स्वहस्तैरचलान्मृधेऽघ्रिपानुत्क्षिप्य वेगाद भिधावतो युधि। भुजान्कुठारेण कठोरनेमिना चिच्छेद रामः प्रसभं त्वहेरिव ॥३४॥

फिर अपने हाथों से पर्वत और वृक्ष उठाकर युद्ध में वेग-पूर्वक सामने दौड़कर आतेहुए सहस्रार्जुन को देखकर तीक्ष्ण धार वाले अपने कुठार से परशुरामजी उसकी भुजाओं को सर्प के फणों की भांति बल-पूर्वक काटने लगे ॥३४॥

कृत्तबाहोः शिरस्तस्य गिरेः शृंगमिवाहरत्। हते पितरि तत्पुत्रा अयुतं दुद्रुवुर्भयात् ॥३५॥

हाथ कट जाने पर उन्होंने उसके सिर को भी पर्वत की शिखर की भांति काट डाला, अपने पिता सहस्रार्जुन के मरने पर उसके दस हज़ार पुत्र भय के मारे भाग निकले ॥३५॥

अग्निहोत्रीमुपावर्त्य सवत्सां परवीरहा। समुपेत्याश्रमं पित्रे परिक्लिष्टां समर्पयत् ॥३६॥

शत्रुओं को मारने वाले परशुरामजी ने बछड़े सहित पीड़ित गौ को ले आश्रम में आकर अपने पिता को दिया ॥३६॥

स्वकर्म तत्कृतं रामः पित्रे भ्रातृभ्य एव च। वर्णयामास तच्छ्रुत्वा जमदग्निरभाषत ॥३७॥

और अपने किये हुए चरित्र को पिता तथा भाइयोंसे कहा, यह सुनकर जमदग्नि बोले कि॥३७॥

राम-राम महाबाहो भावान्पापमकारषीत्। अवधीन्नरदेवं यत्सर्वदेवमयं वृथा ॥३८॥

हे राम! हे राम! हे महाबाहु! तूने बड़ा पाप कियाहै जो सर्वदेवमय राजा को मार डाला ॥३८॥

वयं हि ब्राह्मणास्तात क्षमयार्हणतां गताः। यया लोकगुरुर्देवः पारमेष्ठ्यमियात्पदम् ॥३९॥

हे पुत्र! हम ब्राह्मण क्षमा रखने ही के कारण पूज्य बने हैं, इसी क्षमा के कारण ब्रह्माजी भी ब्रह्म पद को पागये हैं ॥३९॥

क्षमया रोचते लक्ष्मीर्ब्राह्मी सौरी यथा प्रभा। क्षमिणामाशु भगवांस्तुष्यते हरिरीश्वरः ॥४०॥

क्षमा के कारण ही ब्राह्मणों की लक्ष्मी सूर्य की कान्ति के समान शोभा देती है, क्षमा करने वालों पर भगवान् हरि शीघ्र ही प्रसन्न होजाते हैं ॥४०॥

राज्ञो मूर्धाऽवसिक्तस्य वधो ब्रह्मवधाद्गुरुः। तीर्थसंसेवया चांहो जह्यंगाच्युतचेतनः ॥४१॥

चक्रवर्त्ती राजा का वध ब्रह्म-हत्या से भी बढ़ कर है, इसलिये हे पुत्र! तीर्थ-यात्रा करके अपने पाप का नाश करो ॥४१॥

इति श्रीमद्भागवते नवमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सोलहवां अध्याय

(परशुरामजी द्वारा क्षत्रिय-वध-वर्णन)

श्रीशुक उवाच

पित्रोपशिक्षितो रामस्तथेति कुरुनंदन ।
संवत्सरं तीर्थयात्रां चरित्वाश्रममाव्रजत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! पिताकी आज्ञा को सिरपर धारण करके परशुरामजी एक वर्ष तक तीर्थ-यात्रा करके फिर आश्रम में आये ॥१॥

कदाचिद्रेणुका याता गंगायां पद्ममालिनम् ।
गंधर्वराजं क्रीडंतमप्सरोभिरपश्यत ॥ २ ॥

एक वार रेणुका गङ्गाजल लेने के लिये श्रीगङ्गा जी के किनारे पर गई, वहाँ उसने कमलोंकी माला पहने हुए गन्धर्वराज चित्ररथ को अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करते हुए देखा ॥२॥

विलोकयंती क्रीडंतमुदकार्थं नदीं गता ।
होमवेलां न सस्मार किंचिच्चित्ररथस्पृहा ॥ ३ ॥

जलके लिये नदीपर गईहुई रेणुका को उसकी क्रीड़ा देखकर होमके समयका स्मरण न रहा और उसके हृदयमें कुछ चित्ररथकी इच्छा सी हुई ॥३॥

कालात्ययं तं विलोक्य मुनेः शापविशंकिता ।
आगत्य कलशं तस्थौ पुरोधाय कृतांजलिः॥ ४ ॥

फिर विलम्ब होने से कालका अति क्रम देख कर मुनि के शाप से डरती हुई रेणुका शीघ्रही आ कर उनके आगे कलश रखकर और हाथ जोड़ कर खड़ी रही ॥४॥

व्यभिचारं मुनिर्ज्ञात्वा पत्न्याः प्रकुपितोऽब्रवीत् ।
घ्नतैनां पुत्रकाः पापामित्युक्तास्ते न चक्रिरे ॥ ५ ॥

अपनी पत्नी का मानसिक व्यभिचार जानकर क्रोधसे मुनिने कहा कि हे पुत्रो ! इस पापनी को मारडालो, पर उनकी यह आज्ञा किसीने न मानी॥

रामः संबोधितः पित्रा भ्रातॄन् मात्रा सहावधीत् ।
प्रभावज्ञो मुनेः सम्यक् समाधेस्तपसश्च यः ॥ ६ ॥

तब जमदग्नि की प्रेरणा से श्रीपरशुरामजी ने माता सहित अपने सब भाइयों को मार डाला, क्योंकि वह अपने पिताके तप तथा समाधि के प्रभाव को भली भांति जानते थे ॥६॥

वरेण छंदयामास प्रीतः सत्यवतीसुतः ।
वव्रे हतानां रामोऽपि जीवितं चास्मृतिं वधे॥ ७ ॥

फिर जमदग्नि ने प्रसन्न होकर परशुरामजी से वर मांगने के लिये कहा तो उन्होंने यह वर माँगा कि यह सब मरे हुए जीवित होजाँय और इन्हें अपने मरने का स्मरण भी न हो ॥ ७ ॥

उत्तस्थुस्ते कुशलिनो निद्रापाय इवांजसा ।
पितुर्विद्वांस्तपोवीर्यं रामश्चक्रे सुहृद्वधम् ॥ ८ ॥

जैसे सोता हुआ मनुष्य निद्रा भंग होने पर कुशल पूर्वक उठता है, वैसे ही परशुरामजी की माता और भाई भी उठ बैठे, वे अपने पिता के तप के पराक्रम को जानते थे, इसलिये उन्होंने अपने बन्धुओं का वध कर डाला ॥८॥

येऽर्जुनस्य सुता राजन् स्मरंतः स्वपितुर्वधम् ।
रामवीर्यपराभूता लेभिरे शर्म न क्वचित् ॥ ९ ॥

हे राजन् ! सहस्रार्जुन के पुत्र अपने पिता के वध का स्मरण करते रहे, परन्तु परशुरामजी के पराक्रमसे पराभव पाकर वे कभी सुखी न रहे ॥९॥

एकदाऽऽश्रमतो रामे सभ्रातरि वनं गते ।
वैरं सिसाधयिषवो लब्धच्छिद्रा उपागमन् ॥१०॥

एक वार परशुरामजी जब भाइयों सहित बन को चलेगये तब अपना वैर चुकानेके लिये सहस्रार्जुन के बेटे अवसर पाकर वहाँ आये ॥१० ॥

दृष्ट्वाग्न्यगार आसीनमावेशितधियं मुनिम् ।
भगवत्युत्तमश्लोके जघ्नुस्ते पापनिश्चयाः ॥११॥

उत्तम कीर्त्ति वाले भगवान् में मन लगाये हुए अग्निहोत्र-शाला में बैठे हुए जमदग्नि को देखकर उन पापिष्ठ क्षत्रियों ने उनको मार डाला ॥११॥

याच्यमानाः कृपणया राममात्राऽतिदारुणाः ।
प्रसह्य शिर उत्कृत्य निन्युस्ते क्षत्रबंधवः ॥१२॥

परशुरामजी की माता की दीनता पूर्वक प्रार्थना करने पर भी वे भयंकर क्षत्रियाधम बल पूर्वक उन का सिर काट कर लेगये ॥१२॥

रेणुका दुःखशोकार्ता निघ्नंत्यात्मानमात्मना ।
राम रामेहि तातेति विचुक्रोशोच्चकैः सती ॥१३॥

दुःख और शोकसे आर्त्त होकर अपने हाथोंसे छाती और सिर कूटती हुई रेणुका ऊँचे स्वर से– 'हे राम ! हे राम ! हे तात ! आओ " इस प्रकार पुकारने लगी ॥१३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तदुपश्रुत्य दूरस्थो हा रामेत्यार्तवत् स्वनम् ।
त्वरयाऽऽश्रममासाद्य ददृशे पितरं हतम् ॥१४॥
तद्दुःखरोषामर्षार्तिशोकवेगविमोहितः ।
हा तात साधो धर्मिष्ठ त्यक्त्वाऽस्मान् स्वर्गतो भवान्
विलप्यैवं पितुर्देहं निधाय भ्रातृषु स्वयम् ।
प्रगृह्य परशुं रामः क्षत्रांताय मनो दधे ॥१६॥

वहाँ से दूरी पर स्थित परशुरामजी 'हा राम' ऐसी आर्त्त-वाणी सुनकर शीघ्रही आश्रम में आये और अपने पिताको मरा हुआ देखकर दुःख, क्रोध अमर्ष, आर्त्ति और शोक के वेगसे मोहित होकर हा तात ! हे साधो ! हा धर्म-प्रिय ! हाय ! हाय ! हमें छोड़कर आप स्वर्ग को सिधार गये" इस प्रकार विलाप करने के पश्चात् पिताकी देह भाइयों को सौंपकर अपने हाथ में कुठार लेकर उन्होंने क्षत्रियोंका अन्त करनेके लिये निश्चयकिया १४-१६

गत्वा माहिष्मतीं रामो ब्रह्मघ्नं विहतश्रियम् ।
तेषां स शीर्षभी राजन् मध्ये चक्रे महागिरिम् १७

हे राजन् ! ब्रह्म-हत्यासे श्रीहीन माहिष्मतीपुरी में प्रवेश करके परशुरामजी ने उन लोगों के सिर काट २ कर बीचमें एक बड़ाभारी पर्वत बनादिया॥

तद्रक्तेन नदीं घोरामब्रह्मण्यभयावहाम् ।
हेतुं कृत्वा पितृवधं क्षत्रेऽमंगलकारिणि ॥१८॥

और ब्राह्मणों की भक्ति न करने वाले क्षत्रियों को त्रास देने वाली उन्हीं के रक्त से महा भयंकर नदी प्रकटकी और पिताके वध को निमित्त मानकर सब अन्यायी क्षत्रियों को मार डाला ॥१८॥

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ।
स्यमंतपंचके चक्रे शोणितोदान् ह्रदान् नव ॥१९॥

(रेणुका ने दुःखके आवेश में इक्कीसवार छाती पीटी थी इसलिये) परशुरामजी ने इक्कीस वार पृथ्वी को निःक्षत्र करके कुरुक्षेत्र में रक्त के नौ कुण्ड बनाये ॥१९॥

पितुःकायेन संधाय शिर आदाय बर्हिषि ।
सर्वदेवमयं देवमात्मानमयजन्मखैः ॥२०॥

पिता का सिर लाकर और उसे धड़ से जोड़ कर सर्वदेवमय आत्मरूप भगवान् का यज्ञ द्वारा पूजन किया ॥२०॥

ददौ प्राचीं दिशं होत्रे ब्रह्मणे दक्षिणां दिशम् ।
अध्वर्यवे प्रतीचीं वै उद्गात्रे उत्तरां दिशम्॥२१॥

उन्होंने होता को पूर्व दिशा; ब्रह्मा को दक्षिण दिशा; अध्वर्यु को पश्चिम और उद्गाता को उत्तर दिशा दी ॥ २१ ॥

अन्येभ्योऽवांतरदिशः कश्यपाय च मध्यमाम् ।
आर्यवर्तमुपद्रष्ट्रे सदस्येभ्यस्ततः परम् ॥२२॥

दूसरे ऋषियों को दिशाओं के कोण दिये, कश्यपजी को पृथ्वी का मध्य भाग दिया, उपद्रष्टा को आर्यावर्त्त और सभासदों को शेष पृथ्वी का भाग दिया ॥ २२ ॥

ततश्चावभृथस्नानविधूताशेषकिल्बिषः ।
सरस्वत्यां ब्रह्मनद्यां रेजेऽभ्रघ्न इवांशुमान् ॥२३॥

फिर ब्रह्मनदी सरस्वतीमें यज्ञके अन्त में स्नान करके सब पापों से मुक्त होकर बादलमें से निकले हुए सूर्यके समान प्रकाशमान् दीखने लगे ॥२३॥

स्वदेहं जमदग्निस्तु लब्ध्वा संज्ञानलक्षणम् ।
ऋषीणां मंडले सोऽभूत् सप्तमो रामपूजितः॥२४॥

परशुरामजीके पिता जमदग्नि स्मृतिरूप चिह्न वाला शरीर पाकर सप्तर्षि-मण्डल* में रामजी से पूजित एक ऋषि हुए ॥२४॥

जामदग्न्योऽपि भगवान् रामः कमललोचनः ।
आगामिन्यंतरे राजन् वर्तयिष्यति वै बृहत् ॥२५॥

हे राजन् ! कमलनयन भगवान् परशुरामजी अगले मन्वन्तर में सप्तर्षि होंगे ॥२४॥

आस्तेऽद्यापि महेंद्राद्रौ न्यस्तदंडः प्रशांतधीः ।
उपगीयमानचरितः सिद्धगंधर्वचारणैः ॥२६॥

यह परशरामजी अब तक शान्त चित्त होकर क्षत्रियों को मारने का विचार छोड़कर, महेन्द्र पर्वत पर विराजे हैं, जहाँ पर गन्धर्व, सिद्ध और चारण आपका यश गाया करते हैं ॥२६॥

एवं भृगुषु विश्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः ।
अवतीर्य परं भारं भुवोऽहन् बहुशो नृपान्॥२७॥

जगदात्मा ईश्वर भगवान् हरि ने इस प्रकार भृगु-कुल में अवतार लेकर अगणित राजाओं को मार कर पृथ्वी का महान् भार उतारा ॥२७॥

---

*-कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज-ये सप्तर्षि हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गाधेरभून्महातेजाः समिद्ध इव पावकः ।
तपसा क्षात्रमुत्सृज्य यो लेभे ब्रह्मवर्चसम् ॥२८॥

राजा गाधिके विश्वामित्रजी हुए जो प्रज्वलित अग्नि के समान महान् तेजस्वी थे, इन्होंने तप के द्वारा क्षत्रियता छोड़कर ब्रह्म-तेज प्राप्तकिया ।२८॥

विश्वामित्रस्य चैवासन् पुत्रा एकशतं नृप ।
मध्यमस्तु मधुच्छंदा मधुच्छंदस एव ते ॥२९॥

हे राजन् ! विश्वामित्रजी के सौ पुत्र हुए, उन में से मध्यम पुत्रका नाम मधुच्छन्दा था, इसलिये सभी पुत्र मधुच्छन्दा ही कहलाये ॥२९॥

पुत्रं कृत्वा शुनःशेपं देवरातं च भार्गवम् ।
आजीगर्तं सुतानाह ज्येष्ठ एष प्रकल्प्यताम्॥३०॥
यो वै हरिश्चंद्रमखे विक्रीतः पुरुषः पशुः ।
स्तुत्वा देवान् प्रजेशादीन् मुमुचे पाशबंधनात्३१॥
यो रातो देवयजने देवैर्गाधिषु तापसः ।
देवरात इति ख्यातः शुनःशेपः स भार्गवः ॥३२॥

भृगुवंशी अजीगर्त का पुत्र शुनःशेप कि जो राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ में पशु रूप से बेचा गया था और जो प्रजापति आदि देवताओं की स्तुति कर यज्ञ में वध होने से मुक्त हुआ था और देवताओं के द्वारा बचने से जिसका नाम गाधि-कुल में "देवरात" पड़ा था, उसे अपना पुत्र मानकर विश्वामित्रजी अपने बेटों से बोले कि तुम इसे अपना बड़ा भाई मानो ॥३०॥३१॥३२॥

ये मधुच्छंदसो ज्येष्ठाः कुशलं मेनिरे न तत् ।
अशपत् तान् मुनिः क्रुद्धो म्लेच्छा भवत दुर्जनाः३३

मधुच्छन्दा जो विश्वामित्र जी के बड़े पुत्र थे उन्होंने इस बातको अनुचित समझकर न माना, तब विश्वामित्रजी ने क्रोधित होकर उन्हें शाप दिया कि हे दुष्टो ! तुम म्लेच्छ होजाओ ॥ ३३ ॥

स होवाच मधुच्छंदाः सार्धं पंचाशता ततः ।
यन्नो भवान् संजानीते तस्मिंस्तिष्ठामहे वयम्॥३४

फिर मधुच्छन्दादि पचास बेटों ने कहा कि हम आपकी आज्ञानुसार चलेंगे ॥३४॥

ज्येष्ठं मंत्रदृशं चक्रुस्त्वा मन्वंचो वयं स्म हि ।
विश्वामित्रः सुतानाह वीरवंतो भविष्यथ ।
ये मानं मेऽनुगृह्णंतो वीरवंतमकर्त मां ॥३५॥

ऐसा कहकर उन सबने वेदके अनेक मन्त्रों के द्रष्टा शुनःशेप को ज्येष्ठ मानकर कहा कि हम आप से छोटे हैं, तब विश्वामित्रजीने प्रसन्न होकर उन से कहा कि तुमने मेरा मन रखकर मुझे पुत्रवान् किया है, इसलिये तुमभी पुत्रवान् होगे ॥३५॥

एष वः कुशिका वीरो देवरातस्तमन्वित ।
अन्ये चाष्टकहारीतजयक्रतुमदादयः ॥३६॥

हे पुत्रो ! इस देवरात को तुम अपनेही समान कुशिक-वंशीही समझो, क्योंकि यह मेरा पुत्र बना है, तुम सब इसका अनुसरण करो, विश्वामित्रजी के अष्टक, हारीत, जय और क्रतुमान् आदि और भी अनेक पुत्र हुए ॥३६॥

एवं कौशिकगोत्रं तु वैश्वामित्रैः पृथग्विधम् ।
प्रवरांतरमापन्नं तद्धि चैवं प्रकल्पितम् ॥३७॥

इस प्रकार विश्वामित्रजी के अनेक बेटे हुए, इसलिये कौशिक-गोत्र भी अनेक प्रकार का हुआ और उनमें देवरात सबसे बड़ा माना गया, यद्यपि यह भृगुवंशी था फिर भी इससे कौशिक वंश का प्रवरान्तर माना गया ॥३७॥

इति श्रीमद्भागवते नवमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

सत्रहवां अध्याय

(पुरुरवा वंश वर्णन)

श्रीशुक उवाच

यः पुरूरवसः पुत्र आयुस्तस्याभवन्सुताः ।
नहुषः क्षत्रवृद्धश्च रजी रंभश्च वीर्यवान् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-पुरूरवाके ज्येष्ठपुत्र 'आयु' के नहुष, क्षत्रवृद्ध, रजी, रंभ, और अनेना-यह पाँच पुत्र हुए ॥१॥

अनेना इति राजेन्द्र शृणु क्षत्रवृधोऽन्वयम् ।
क्षत्रवृद्धसुतस्यासन्सुहोत्रस्यात्मजास्त्रयः ॥ २ ॥
काश्यः कुशो गृत्समद इति गृत्समदादभूत् ।
शुनकः शौनको यस्य बह्वृचप्रवरो मुनिः ॥ ३ ॥

हे राजेन्द्र ! क्षत्रवृद्ध का वंश सुनो, उसके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुत्र हुआ, सुहोत्र के काश्य, कुश और गृत्समद-ये तीन पुत्र हुए, गृत्समद के शुनक और शुनक के ब्रह्मवादियों में श्रेष्ठ शौनक नामक पुत्रहुआ ॥२॥३॥

काश्यस्य काशिस्तत्पुत्रो राष्ट्रो दीर्घतमः पिता ।
धन्वंतरिर्दैर्घ्यतम आयुर्वेदप्रवर्तकः ॥ ४॥

काश्य के काशि, काशि के राष्ट्र, राष्ट्र के दीर्घतमा, दीर्घतमाके धन्वन्तरि नामक पुत्र हुए जिन्हों ने आयुर्वेद का प्रचार किया ॥ ४ ॥

यज्ञभुग्वासुदेवांशः स्मृतमात्रार्तिनाशनः ।
तत्पुत्रः केतुमानस्य जज्ञे भीमरथस्ततः ॥ ५ ॥
दिवोदासो द्युमांस्तस्मात्प्रतर्दन इति स्मृतः ।
स एव शत्रुजिद्वत्स ऋतध्वज इतीरितः ।
तथा कुवलयाश्वेति प्रोक्तोऽलर्कादयस्ततः ॥ ६ ॥

यह भगवान् के अवतार, केवल स्मरण करने से रोगों की पीड़ा को शान्त करने वाले और यज्ञ भाग के भोगने वाले हुए, धन्वन्तर के केतुमान, उसके भीमरथ, भीमरथ के दिवोदास, दिवोदास के द्युमान् नामक पुत्र हुआ जो प्रतर्दन, शत्रुजित् कुवलयाश्व और कृतध्वज-इन नामोंसे भी प्रसिद्ध है, इसके अलर्क आदि पुत्र हुए ॥५॥॥६॥

षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ।
नालर्कादपरो राजन्मेदिनीं बुभुजे युवा ॥ ७ ॥

छ्यासठ हज़ार वर्ष तक तरुण रहकर अलर्क के सिवा किसी दूसरे राजाने राज्य नहीं किया॥७॥

अलर्कात्संततिस्तस्मात्सुनीथोऽथ सुकेतनः ।
धर्मकेतुः सुतस्तस्मात्सत्यकेतुरजायत ॥ ८ ॥
धृष्टकेतुः सुतस्तस्मात्सुकुमारः क्षितीश्वरः ।
वीतिहोत्रस्य भर्गोऽतो भार्गभूमिरभून्नृपः ॥ ९ ॥

अलर्क के सन्तति, सन्तति के सुनीथ, सुनीथ के सुकेतन, सुकेतन के धर्मकेतु, धर्मकेतु के सत्यकेतु, सत्यकेतु के धृष्टकेतु, उसके सुकुमार, उसके वीतिहोत्र, उसके भर्ग और भर्ग के भार्गभूमि नामक पुत्र हुए ॥ ८ ॥॥९॥

इतीमे काशयो भूपाःक्षत्रवृद्धान्वयायिनः ।
रंभस्य रभसः पुत्रो गंभीरश्चाक्रियस्ततः ॥१०॥

ये काशिराजाके वंशज अपने परदादा क्षत्रवृद्ध के वंश में मिलते हैं, आयु के रंभ पुत्र से रभस, रभसके गभीर और गभीरके अक्रियनामक पुत्रहुआ।

तस्य क्षेत्रे ब्रह्म जज्ञे शृणु वंशमनेनसः ।
शुद्धस्ततः शुचिस्तस्मात् त्रिककुद्धर्मसारथिः॥११॥
ततःशांतरयो जज्ञे कृतकृत्यः स आत्मवान् ।
रजेः पंच शतान्यासन्पुत्राणाममितौजसाम्॥१२॥

इस अक्रिय के क्षेत्र में ब्राह्मण हुए, अब अनेना का वंश सुनो, आयु के पुत्र अनेनाः के शुद्ध, शुद्धके शुचि, शुचि के त्रिककुद, त्रिककुद के धर्मसारथि उसके शान्तरय नामक पुत्र हुआ, वह आत्मज्ञानी था इसलिये स्वयं कृतार्थ होनेसे उसने पुत्र उत्पन्न नहीं किया, आयु के पुत्र रजी के परम पराक्रमी पाँच सौ पुत्र उत्पन्न हुए ॥११॥१२॥

देवैरभ्यर्थितो दैत्यान्हत्वेंद्रायाददाद्दिवम् ।
इंद्रस्तस्मै पुनर्दत्वा गृहीत्वा चरणौ रजेः ॥१३॥
आत्मानमर्पयामास प्रहादाद्यरिशंकितः ।
पितर्युपरते पुत्रा याचमानाय नो ददुः ॥१४॥
त्रिविष्टपं महेंद्राय यज्ञभागान्समाददुः ।
गुरुणा हूयमानेऽग्नौ बलभित्तनयान्रजेः ॥१५॥
अवधीद्भ्रंशितान्मार्गान्न कश्चिदवशेषितः ।
कुशात्प्रतिः क्षात्रवृद्धात्संजयस्तत्सुतो जयः ॥१६॥
ततः कृतः कृतस्यापि जज्ञे हर्यवनो नृपः ।
सहदेवस्ततोऽहीनो जयसेनस्तु तत्सुतः ॥१७॥
संस्कृतिस्तस्य च जयःक्षत्रधर्मा महारथः ।
क्षत्रवृद्धान्वया भूपाः शृणु वंशं च नाहुषात्॥१८॥

देवताओं ने रजि से दैत्यों को मारने के लिये प्रार्थना की, तब उसने दैत्यों को वध करके इन्द्र को स्वर्ग का राज्य दिया, फिर प्रह्लाद आदि दैत्यों के भय से इन्द्रने रजि के चरणों में गिर कर उसी को स्वर्ग का राज्य दे दिया और अपना शरीर भी उसे अर्पण कर दिया, रजि के मरने पर इन्द्र ने अपना राज्यमाँगा, परन्तु रजिके पुत्रोंने नहीं दिया और यज्ञ का भाग भी लेना प्रारंभ कर दिया, तब बृहस्पति जी द्वारा अभिचार विधि से अग्नि में होम करवा कर उसके प्रभाव से उनकी बुद्धि भ्रष्ट करके इन्द्र ने सबको मार डाला, इसलिये उनमें से एक भी न बचा, आयुका पुत्र जो क्षत्रवृद्धथा उस के पौत्र कुश के प्रति, प्रति के सञ्जय, सञ्जयके जय जय के कृत, कृत के हर्यवन, हर्यवन के सहदेव, उसके हीन, उसके जयसेन, उसके संस्कृति, उसके जय और उसके महारथी क्षत्रधर्मा नामक पुत्रहुआ यह क्षत्रवृद्ध के वंशज राजा कहे गये हैं, अब आयु के पुत्र नहुषका वंश सुनो ॥१३॥१४॥१५॥१६॥१७॥१८॥

इति श्रीमद्भागवते नवमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अठारहवां अध्याय

(ययाति चरित)

श्रीशुक उवाच

यतिर्ययातिः संयातिरायतिर्वियतिः कृतिः ।
षडिमे नहुषस्यासन्निन्द्रियाणीव देहिनाम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—राजा नहुष के यहाँ जीव की छः इन्द्रियों के समान यति, ययाति, संयाति आयति, वियति और कृति—ये छः पुत्र हुए ॥१॥

राज्यं नैच्छद्यतिः पित्रा दत्तं तत्परिणामवित् ।
यत्र प्रविष्टः पुरुष आत्मानं नावबुध्यते ॥ २ ॥

यति ने पिता के दिये हुए राज्य को स्वीकार न किया, क्योंकि वह राज्य के परिणाम को अनर्थ कारी जानता था, अर्थात् वह यह समझता था कि राज्य का मोह करने वाले मनुष्य को आत्म-स्वरूप का बोध नहीं होता ॥२॥

पितरि भ्रंशिते स्थानादिंद्राण्या धर्षणाद्द्विजैः ।
प्रापितेऽजगरत्वं वै ययातिरभवन्नृपः ॥ ३ ॥

जब पिता नहुष को इन्द्राणी का अपराधकरने के कारण अगस्त्य आदि ब्राह्मणों ने स्वर्ग से गिरा कर अजगर योनि दे दी तब ययाति राजा हुआ ॥

चतसृष्वादिशद्दिक्षु भ्रातॄन् भ्राता यवीयसः ।
कृतदारो जुगोपोर्वीं काव्यस्य वृषपर्वणः ॥ ४ ॥

उसने अपने चारों भाइयों को चारों दिशायें देदीं और स्वयं शुक्राचार्यजी तथा वृषपर्वाकी बेटी से ब्याह कर पृथ्वी का पालन करने लगा ॥४॥

राजोवाच

ब्रह्मर्षिर्भगवान् काव्यः क्षत्रबंधुश्च नाहुषः ।
राजन्यविप्रयोः कस्माद्विवाहः प्रतिलोमकः ॥ ५ ॥

परीक्षित बोले—शुक्राचार्य तो ब्राह्मण थे और ययाति क्षत्रिय, फिर यह उल्टा ब्याह क्यों हुआ ?

श्रीशुक उवाच

एकदा दानवेंद्रस्य शर्मिष्ठा नाम कन्यका ।
सखीसहस्रसंयुक्ता गुरुपुत्र्या च भामिनी ॥ ६ ॥
देवयान्या पुरोद्याने पुष्पितद्रुमसंकुले ।
व्यचरत् कलगीतालीनलिनीपुलिनेऽबला ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—एक बार दानवराज वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा अपनी एक हज़ार सखियों और गुरु-कन्या देवयानी को साथ लेकर नगर से बाहर बाग़ में विचर रही थी, जहाँ पर फूले हुए वृक्षों का झुण्ड शोभा देरहा था और तालाब के किनारे भौंरे मीठे २ गायन कर रहे थे ॥६॥७॥

ता जलाशयमासाद्य कन्याः कमललोचनाः ।
तीरे न्यस्य दुकूलानि विजह्रुः सिंचतीर्मिथः ॥ ८ ॥

कमलके समान नेत्रों वाली वे कन्यायें तालाब पर पहुंचीं और किनारे पर वस्त्र उतार कर एक दूसरे पर जल उछालती हुई क्रीड़ा करनेलगीं ॥८॥

वीक्ष्य व्रजंतं गिरिशं सह देव्या वृषस्थितम् ।
सहसोत्तीर्य वासांसि पर्यधुर्व्रीडिताः स्त्रियः ॥ ९ ॥

पार्वतीजी सहित नन्दी पर सवार जाते हुए महादेवजी को देखकर उन सब कन्याओंने लज्जाके मारे तालाबसे निकल कर वस्त्र पहिन लिये ॥९॥

शर्मिष्ठाऽजानती वासो गुरुपुत्र्याः समव्ययत् ।
स्वीयं मत्वा प्रकुपिता देवयानीदमब्रवीत् ॥ १० ॥

शर्मिष्ठा ने अनजाने देवयानीके वस्त्रोंको अपना समझकर पहिन लिया, तब देवयानी ने क्रोध पूर्वक यह कहा कि ॥१०॥

अहो निरीक्ष्यतामस्या दास्याः कर्म ह्यसांप्रतम् ।
अस्मद्धार्यं धृतवती शुनीव हविरध्वरे ॥ ११ ॥

अहो ! इस दासी का अन्याय-कर्म तो देखो, इसने मेरे पहिननेके कपड़े इस प्रकारसे पहन लिये हैं, कि जैसे कुतिया यज्ञ में घीको ले लेती है ॥११॥

यैरिदं तपसा सृष्टं पुंसः परस्य ये ।
धार्यते यैरिह ज्योतिः शिवः पंथाश्च दर्शितः ॥ १२ ॥

जिन ब्राह्मणों ने तप द्वारा इस सृष्टिको रचाहै जो परम पुरुष भगवान् के मुखरूपहैं, जो परमात्मा को जानते हैं, जिन्होंने अत्यन्त सुख देनेवाला वेद का मार्ग दिखलाया है ॥ १२ ॥

यान् वदंत्युपतिष्ठंते लोकनाथाः सुरेश्वराः ।
भगवानपि विश्वात्मा पावनः श्रीनिकेतनः ॥ १३ ॥

जिनको लोकपाल, देवता और पवित्र करने वाले श्रीनिवास, जगदात्मा भगवान्भी वन्दन कर के प्रणाम करते हैं ॥१३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वयं तत्रापि भृगवः शिष्योऽस्या नः पिताऽसुरः।
अस्मद्धार्यं धृतवती शूद्रो वेदमिवासती ॥१४॥

उन ऐसे ब्राह्मणों में भी हम भृगु-वंशी हैं और इसका पिता दैत्य हमारा शिष्य है, ऐसी दैत्य-पुत्री इस असती ने हमारे वस्त्रों को इस प्रकार धारण कर लिया है कि जैसे शूद्र वेदको धारण करताहै॥

एवं शपंतीं शर्मिष्ठा गुरुपुत्रीमभाषत।
रुषा श्वसंत्युरंगीव धर्षिता दष्टदच्छदा ॥१५॥

इस प्रकार तिरस्कार पाई हुई शर्मिष्ठा ने दबी हुई सर्पिणी के समान क्रोधसे श्वांस लेतेहुए और होंठ चबाते हुए कहा कि ॥१५॥

आत्मवृत्तमविज्ञाय कत्थसे बहु भिक्षुकि।
किं न प्रतीक्षसेऽस्माकं गृहान् बलिभुजो यथा१६॥

अरी भिखारिनी! अपनी स्थिति को न जान कर तू बहुत बकवाद कररहीहै, क्या तू हमारे घरों में कुत्तीके समान टुकड़ों की इच्छा नहीं करती है?

एवंविधैः सुपरुषैः क्षिप्त्वाचार्यसुतां सतीम्।
शर्मिष्ठा प्राक्षिपत् कूपे वास आदाय मन्युना॥१७॥

शर्मिष्ठाने इस प्रकार के कितनेही कठोर वचन कहे और शुक्राचार्यजी की कन्या देवयानी का अपमान किया और क्रोध-पूर्वक वस्त्र-हीन करके उसे कुए में पटक दिया ॥१७॥

तस्यां गतायां स्वगृहं ययातिर्मृगयां चरन्।
प्राप्तो यदृच्छया कूपे जलार्थी तां ददर्श ह ॥१८॥

वह शर्मिष्ठा अपने घर चली गई और राजा ययाति आखेट के लिये फिरता-फिरता देवयोगसे वहाँ आकर कुऐं पर पानी पीने के लिये गया, उस कुऐं में उसने देवयानी को देखा ॥१८॥

दत्त्वा स्वमुत्तरं वासस्तस्यै राजा विवाससे।
गृहीत्वा पाणिना पाणिमुज्जहार दयापरः ॥१९॥

उस नग्न देवयानीको पहिनने के लिये दयामय राजा ने अपना उत्तरीय वस्त्र दिया और हाथ से हाथ पकड़ कर उसे बाहर निकाल लिया ॥१९॥

तं वीरमाहौशनसी प्रेमनिर्भरया गिरा।
राजंस्त्वया गृहीतो मे पाणिः परपुरंजय ॥२०॥

हे राजन्! तब शुक्राचार्यकी कन्या देवयानीने प्रेममय वाणीके साथ उस राजासे कहा कि हे पर पुरंजय महाराज! आपने मेरा हाथ पकड़ लियाहै॥

हस्तग्राहोऽपरो मा भूद् गृहीतायास्त्वया हि मे।
एष ईशकृतो वीर संबंधो नौ न पौरुषः ॥२१॥

इसलिये आप जिसका पाणिग्रहण कर चुके हैं उसका पाणिग्रहण दूसरे के साथ न होना चाहिये हे वीर! यह मेरा और आपका समागम पुरुष-कृत नहीं, वरन् दैव-कृत है ॥२१॥

यदिदं कूपलग्नाया भवतो दर्शनं मम।
न ब्राह्मणो मे भविता हस्तग्राहो महाभुज।
कचस्य बार्हस्पत्यस्य शापाद् यमशपं पुरा ॥२२॥

क्योंकि मेरा कुऐं में गिरना और आपका अचानक ही दर्शन होना, यह दैव-कृत ही है, हे महाबाहु! मेरा पाणिग्रहण ब्राह्मणके साथ न होगा क्योंकि बृहस्पति के पुत्र 'कच'ने मेरे द्वारा शापित होकर मुझे ऐसा ही शाप दिया था* ॥२२॥

ययातिरनभिप्रेतं दैवोपहतमात्मनः।
मनस्तु तद्गतं बुद्ध्वा प्रतिजग्राह तद् वचः॥२३॥

राजा ययाति यह बात कदापि न चाहता था परन्तु दैव-गति से प्राप्त समझकर तथा उसकी ओर अपने मनको लगा देखकर उसने उसकी बात मान ली ॥२३॥

गते राजनिसा वीरे तत्र स्म रुदती पितुः।
न्यवेदयत् ततः सर्वमुक्तं शर्मिष्ठया कृतम् ॥२४॥

देवयानी की बात स्वीकार करके जब राजा ययाति चला गया, तब देवयानी रोती हुई अपने पिता के पास आई और उसने शर्मिष्ठाके कहे हुए तथा किये हुए हाल को पिता से कहा ॥२४॥

दुर्मना भगवान् काव्यः पौरोहित्यं विगर्हयन्।
स्तुवन् वृत्तिं च कापोतीं दुहित्रा स ययौ पुरात् ॥

तब महात्मा शुक्राचार्य उदास होकर पुरोहित

---

*-कच बृहस्पतिजी का पुत्रथा, उसने शुक्राचार्यजी से संजीवनी विद्या सीखी, उसके ऊपर मोहित होकर देवयानी ने उससे कहा कि "मेरे साथ विवाह करो" परन्तु कच ने उत्तर दिया कि तुम मेरे गुरु की कन्याहो, इसलिये मुझे ऐसे कर्म से क्षमा करो।" इच्छा पूर्ण न होने से देवयानी ने शाप दिया कि "तुम्हारी विद्या निष्फल होजाय' तब कच ने भी शाप दिया कि "तुम्हें ब्राह्मण पति न मिले।"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर्मकी निन्दा करतेहुए और भिक्षा वृत्तिकी प्रशंसा करतेहुए अपनी कन्या सहित पुरसे बाहर निकले ॥

वृषपर्वा तमाज्ञाय प्रत्यनीकविवक्षितम् ।
गुरुं प्रसादयन् मूर्ध्ना पादयोः पतितः पथि ॥२६॥

वृषपर्वा यह जानकर कि शुक्राचार्यजी रुष्ट हो कर देवताओं के पक्ष में जारहे हैं, मार्ग में उनके चरणों पर पड़ गया ॥२६॥

क्षणार्धमन्युर्भगवान् शिष्यं व्याचष्ट भार्गवः ।
कामोऽस्याः क्रियतां राजन् नैनां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥

तब आधे क्षणमात्र क्रोध करने वाले भगवान् शुक्राचार्य ने अपने शिष्य से कहा कि हे राजा ! देवयानी की इच्छा पूरी कर, क्योंकि मैं इसे यहाँ नहीं छोड़ सकता ॥२७॥

तथेत्यवस्थिते प्राह देवयानी मनोगतम् ।
पित्रा दत्ता यतो यास्ये सानुगा यातु मामनु २८॥

हे महाराज ! वृषपर्वा ने शुक्राचार्य का कहना मान लिया, तब देवयानी ने अपना प्रयोजन कहा कि मेरे पिता जहाँ मुझे दें और मैं जहाँ भी जाऊँ वहाँ शर्मिष्ठा अपनी दासियों के सहित मेरी दासी बनकर यदि मेरे पीछे चलेगी, तो मैं यहाँ रहूँगी अन्यथा नहीं ॥२८॥

स्वानां तत् संकटं वीक्ष्य तदर्थस्य च गौरवम् ।
देवयानीं पर्यचरत् स्त्रीसहस्रेण दासवत् ॥२९॥

शुकदेवजी बोले–हे राजन् ! शर्मिष्ठाने यह विचार किया कि मेरे कुटुम्ब वालों का कष्ट शुक्राचार्यजी के न रहने से निवृत्त न होगा, इसलिये वह अपनी हज़ार दासियों सहित देवयानी की सेवा करने लगी ॥२९॥

नाहुषाय सुतां दत्त्वा सह शर्मिष्ठयोशनाः ।
तमाह राजन् शर्मिष्ठामाऽऽधास्तल्पे न कर्हिचित् ३०

शुक्राचार्यजी ने शर्मिष्ठा के सहित अपनीकन्या ययातिको देकर यह कहा कि हे राजन् ! शर्मिष्ठा के साथ कभी संभोग न करना ॥३०॥

विलोक्यौशनसीं राजन् शर्मिष्ठा सप्रजां क्वचित् ।
तमेव वव्रे रहसि सख्याः पतिमृतौ सती ॥३१॥

एक समय देवयानी को पुत्र सहित देखकर शर्मिष्ठा ने अपने ऋतुकाल में एकान्त पाकर इसी अपनी सखीके पति ययाति से विनय की ॥३१॥

राजपुत्र्यार्थितोऽपत्ये धर्मं चावेक्ष्य धर्मवित् ।
स्मरन् शुक्रवचः काले दिष्टमेवाभ्यपद्यत ॥३२॥

यद्यपि राजा ययाति को शुक्राचार्यजीका वचन स्मरण था, फिर भी ऋतुकालमें स्त्रीकी इच्छा पूर्ण करना पुरुष का परम धर्म है, ऐसा विचार कर राजा ने उसे दैव-प्राप्त संभोग मानकर उसके साथ समागम किया ॥३२॥

यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ।
द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥३३॥

देवयानी के यदु और तुर्वसु नाम के दो पुत्र हुए और वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा के द्रुह्यु, अनु और पुरु–यह तीन पुत्र हुए ॥३३॥

गर्भसंभवमासुर्या भर्तुर्विज्ञाय मानिनी ।
देवयानी पितुर्गेहं ययौ क्रोधविमूर्छिता ॥३४॥

वृषपर्वा की कन्या में अपने पति के द्वारा गर्भ रहा जानकर माननी देवयानी क्रोधित होकर अपने पिता के घर चली आई ॥३४॥

प्रियामनुगतः कामी वचोभिरुपमंत्रयन् ।
न प्रसादयितुं शेके पादसंवाहनादिभिः ॥३५॥

कामी राजा ययाति बातों के द्वारा उसे मनाता हुआ उसके पीछे २ चला आया, परन्तु उसकेचरण चाँपने आदिके उपाय करके भी न मना सका ॥३५॥

शुक्रस्तमाह कुपितः स्त्रीकामानृत पूरुष ।
त्वां जरा विशतां मंद विरूपकरणी नृणाम् ॥३६॥

शुक्राचार्यजी ने क्रोधित होकर कहा कि हे स्त्री के चाहनेवाले असत्य पौरुषी ! हे मन्द! तू लोगों को विरूप बनाने वाले वृद्धापन में प्रवेश कर ॥३६॥

ययातिरुवाच

अतृप्तोऽस्म्यद्य कामानां ब्रह्मन् दुहितरि स्म ते ।
व्यत्यस्यतां यथाकामं वयसा योभिधास्यति ३७॥

ययाति बोले–हे ब्रह्मन् ! मैं आपकी कन्या से सुख भोग करके अब तक तृप्त नहीं हुआ हूँ, इस लिये ऐसी व्यवस्था कर दीजिये कि जिससे मैं किसी की तरुण अवस्था लेकर उसे अपनी वृद्धावस्था दे सकूँ ॥३७॥

इति लब्धव्यवस्थानः पुत्रं ज्येष्ठमवोचत ।
यदो तात प्रतीच्छेमां जरां देहि निजं वयः ॥३८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मातामहकृतां वत्स न तृप्तो विषयेष्वहम् ।
वयसा भवदीयेन रंस्ये कतिपयाः समाः ॥३९॥

शुक्राचार्यजी की स्वीकृति पर ययाति ने अपने ज्येष्ठपुत्र यदुसे कहा कि हे तात यदु ! अपने नाना के द्वारा दी हुई इस मेरी जरावस्थाको तू ग्रहणकर और मुझे अपनी तरुण अवस्थादे, हे पुत्र ! मैंअब तक विषयों से तृप्त नहीं हुआ हूँ, इसलिये तेरी अवस्था में कुछ वर्ष तक रमण करूँगा ॥३८॥३९॥

यदुरुवाच

नोत्सहे जरसा स्थातुमंतरा प्राप्तया तव ।
अविदित्वा सुखं ग्राम्यं वैतृष्ण्यं नैति पूरुषः॥४०॥

यदु बोला–मैं बीचमें ही जरावस्था को प्राप्त करके रहना नहीं चाहता, क्योंकि विषय-सुख को पूर्ण रूपसे जानेविना विषय-तृष्णा शान्तनहीं होती॥

तुर्वसुश्चोदितः पित्रा द्रुह्युश्चानुश्च भारत ।
प्रत्याचख्युरधर्मज्ञा ह्यनित्ये नित्यबुद्धयः ॥४१॥

श्रीशुकदेवजी बोले–इसी भांति पिताकी आज्ञा को तुर्वसु, द्रुह्यु और अनुने भी न माना क्योंकि वे धर्मको न जानकर यौवनको नित्य समझतेथे ॥४१॥

अपृच्छत् तनयं पूरुं वयसोनं गुणाधिकम् ।
न त्वमग्रजवद्वत्समां प्रत्याख्यातुमर्हसि ॥४२॥

तब ययाति ने अपने पुत्र पुरु से कि जो आयु में तो छोटा परन्तु बुद्धि में सबसे बड़ा था, कहा कि हे पुत्र ! तू अपने बड़े भाइयों की भांति इनकार न कर देना ॥४२॥

पुरुरुवाच

को नु लोके मनुष्येंद्र पितुरात्मकृतः पुमान् ।
प्रतिकर्तुं क्षमो यस्य प्रसादाद्विंदते परम् ॥४३॥

पुरु बोला–हे नरेंद्र ! जन्म देने वाले पिता के उपकार का बदला कौन पुरुष चुका सकता है ? उसकी कृपा से तो मोक्ष तक मिल सकती है ॥४३॥

उत्तमश्चिंतितं कुर्यात्प्रोक्तकारी तु मध्यमः ।
अधमोऽश्रद्धया कुर्यादकर्तोच्चरितं पितुः ॥४४॥

पिता के विचार पर ही काम कर देने वाला उत्तम पुत्र कहलाता है, आज्ञापर काम करने वाला मध्यम, विना श्रद्धा के आज्ञा मानने वाला अधम और कहने पर भी आज्ञा का पालन न करने वाला पिता का मलरूप कहलाता है ॥४४॥

इति प्रमुदितः पूरुः प्रत्यगृह्णाज्जरां पितुः ।
सोऽपि तद्वयसा कामान्यथावज्जुजुषे नृप ॥४५॥

हे राजन् ! इस प्रकार प्रसन्न होकर पुरु ने अपने पिताकी वृद्धावस्था लेली और राजा भी उस की तरुण अवस्था पाकर यथा रूप विषय भोग करने लगा ॥४५॥

सप्तद्वीपपतिः सम्यक् पितृवत्पालयन्प्रजाः ।
यथोपजोषं विषयाञ्जुजुषेऽव्याहतेंद्रियः ॥४६॥

सप्त द्वीपपति राजा ययाति पिताके समान प्रजा का पालन करता हुआ इन्द्रियों की शक्ति क्षीण न होने से विषय भोग करने लगा ॥४६॥

देवयान्यप्यनुदिनं मनोवाग्देहवस्तुभिः ।
प्रेयसः परमां प्रीतिमुवाह प्रेयसी रहः ॥४७॥

प्रियतमा देवयानी भी मन, वचन, देह और पदार्थों से अपने पति के लिये एकान्त में प्रतिदिन परम प्रेम प्राप्त किया करती थी ॥४७॥

अयजद्यज्ञपुरुषं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ।
सर्वदेवमयं देवं सर्ववेदमयं हरिम् ॥४८॥
यस्मिन्निदं विरचितं व्योम्नीव जलदावलिः ।
नानेव भाति नाभाति स्वप्नमायामनोरथः ॥४९॥
तमेव हृदि विन्यस्य वासुदेवं गुहाशयम् ।
नारायणमणीयांसं निराशीरयजत् प्रभुम् ॥५०॥

जिनके स्वरूप में आकाश में बादल के समान रचा हुआ और स्वप्न, माया तथा मनोरथके समान यह जगत् अलग जान पड़ता है और इन्द्रियों के शान्त होने पर नहीं भासता, उन अन्तर्यामी, नारायण, सूक्ष्म रूप वासुदेव को हृदय में धारण कर के राजा ययातिने निष्काम भाव से उनका पूजन किया, और बहुल दक्षिणा वाले यज्ञों द्वारा उन सर्व देवमय तथा सर्व वेदमय यज्ञ-पुरुष का यजन किया ॥४८॥४९॥५०॥

एवं वर्षसहस्राणि मनःषष्ठैर्मनःसुखम् ।
विदधानोऽपि नातृप्यत् सार्वभौमः कदिंद्रियैः५१॥

इस प्रकार एक हज़ार वर्ष तक राजा ययाति इन्द्रियों और मनके द्वारा भोग-विलास करते २ भी तृप्त न हुआ ॥५१॥

इति श्रीमद्भागवते नवमस्कन्धे अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन्नीसवां अध्याय

(वैराग्योत्पादक इतिहास)

श्रीशुक उवाच

स इत्थमाचरन् कामान् स्त्रैणोपह्नवमात्मनः ।
बुद्ध्वा प्रियायै निर्विण्णो गाथामेतामगायत ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-इस प्रकार विषय-भोग करते हुए स्त्री के आधीन राजा ययाति ने अपना पतन समझकर वैराग्य-युक्त होकर देवयानी से यह इतिहास कहा ॥१॥

शृणु भार्गव्यमूं गाथां मद्विधाचरितां भुवि ।
धीरा यस्यानुशोचंति वने ग्रामनिवासिनः ॥ २ ॥

ययाति बोले-हे भृगुतनये ! मुझ ऐसा आचरण करने वाले, कामी ग्रामीण का वनमें रहने वाले धीर पुरुष सोच किया करते हैं, उसके विषय में यह कथा सुन ॥ २ ॥

वस्त एको वने कश्चिद् विचिन्वन् प्रियमात्मनः ।
ददर्श कूपे पतितां स्वकर्मवशगामजाम् ॥ ३ ॥

कोई एक बकरा वनमें फिरता हुआ अपनी प्रियाको ढूंढरहा था कि उसे कर्मों के आधीन कुए में पड़ी हुई एक बकरी दिखाई दी ॥ ३ ॥

तस्या उद्धरणोपायं वस्तः कामी विचिंतयन् ।
व्यधत्त तीर्थमुद्धृत्य विषाणाग्रेण रोधसी ॥ ४ ॥

वह कामी बकरा उसे बाहर निकालने का उपाय सोचनेलगा, अन्तमें उसने अपने सींगोंकी नोकोंसे कुएँ का घाट खोद कर रास्ता बनाया ॥४॥

सोत्तीर्य कूपात् सुश्रोणी तमेव चकमे किल ।
तया वृतं समुद्वीक्ष्य बह्व्योऽजाः कांतकामिनीः ।
पीवानं श्मश्रुलं श्रेष्ठं मीढ्वांसं याभकोविदम् ॥ ५ ॥

उस रूपवती बकरी ने कुएँसे निकलकर उसी बकरे से प्रेम करलिया, हृष्ट-पुष्ट, दाढ़ी-मूंछ वाले, मैथुन में चतुर और वीर्य सिंचन करने वाले इस बकरे का बकरी के साथ वरण देखकर उसे दूसरी बकरियां भी चाहने लगीं ॥५॥

स एकोऽजवृषस्तासां बह्वीनां रतिवर्धनः ।
रेमे कामग्रहग्रस्त आत्मानं नावबुध्यत ॥ ६ ॥

इस प्रकार बहुतसी बकरियों का रति-सुख बढ़ाने वाला, कामरूप ग्राह से ग्रस्त वह मोटा बकरा अनेक बकरियों के साथ रमण करता हुआ अपने स्वरूप को भूलगया ॥ ६ ॥

तमेव प्रेष्ठतमया रममाणमजाऽन्यया ।
विलोक्य कूपसंलग्ना नामृष्यद् वस्तकर्म तत् ॥ ७ ॥

कुएँ से निकलीहुई बकरी उस बकरेको दूसरी प्यारी बकरियोंके साथ रमण करता हुआ देखकर उसके उस काम को सहन न कर सकी ॥७॥

तं दुर्हृदं सुहृद्रूपं कामिनं क्षणसौहृदम् ।
इंद्रियारामभुत्सृज्य स्वामिनं दुःखिता ययौ ॥ ८ ॥

दुष्टहृदय, सुहृदरूप, कामी, क्षणमात्रही सौहार्द रखने वाले और विषयासक्त उस बकरे को छोड़ कर वह बकरी दुःखी होती हुई अपने रक्षक के पास गई ॥ ८ ॥

सोऽपि चानुगतः स्त्रैणः कृपणस्तां प्रसादितुम् ।
कुर्वन्निडविडाकारं नाशक्नोत्पथि संधितुम् ॥ ९ ॥

वह स्त्रीलंपट और कृपण बकराभी उसे प्रसन्न करने के लिये उसके पीछे-पीछे गया और अपनी बोली में 'वो-वो' करता रहा, परन्तु वह न मानी ॥

तस्यास्तत्र द्विजः कश्चिदजास्वाम्यच्छिनद् रुषा ।
लंबंतं वृषणं भूयः संदधेऽर्थाय योगवित् ॥ १० ॥

उस बकरी का रक्षक एक ब्राह्मण था, उसने क्रोध करके बकरे के लटकते हुए वृषण काट डाले और काम-भोग का उपाय जानने वाले उस ब्राह्मण ने फिर उन्हें जोड़ भी दिया ॥१०॥

संबद्धवृषणः सोऽपि ह्यजया कूपलब्धया ।
कालं बहुतिथं भद्रे कामैर्नाद्यापि तुष्यति ॥ ११ ॥

अण्डकोश प्राप्त होने से वह बकरा कुएँ में से मिली हुई बकरी के साथ बहुत दिनों तक रमण करता हुआ भी काम-भोगसे संतुष्ट न हुआ ॥११॥

तथाहं कृपणः सुभ्रु भवत्याः प्रेमयंत्रितः ।
आत्मानं नाभिजानामि मोहितस्तव मायया ॥ १२ ॥

हे शुक्रतनये ! वैसे ही तेरे प्रेम से बँधा हुआ तेरी माया से मोहित और कृपण मैं भी अपने स्वरूप को भूल गया हूँ ॥१२॥

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न दुह्यंति मनः प्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते ॥१३॥

इस पृथ्वी पर जितना धान्य, स्वर्ण, पशु और स्त्रियां हैं, वे सब भी यदि एक को मिल जायें तो भी जो पुरुष तृष्णा द्वारा नष्ट हो चुका है, उसके मनको वे प्रसन्न नहीं कर सकतीं ॥१३॥

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥१४॥

विषय-भोग के द्वारा तृष्णा कभी शान्त नहीं होसकती, वरन जैसे घृत से अग्नि बढ़ती है वैसे ही उसकी भी वृद्धि होती है ॥१४॥

यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेष्वमंगलम् ।
समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥१५॥

जब पुरुष किसी प्राणी पर कुभाव न रखकर सर्वत्र समान दृष्टि रखता है तभी उसको सब दिशायें सुख मय होती हैं ॥१५॥

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्जीर्यतो या न जीर्यते ।
तां तृष्णां दुःखनिवहां शर्मकामो द्रुतं त्यजेत् ॥१६॥

जिसे सुख की इच्छा हो उसे उसे दुष्ट मनुष्य से न छूटने योग्य और जीर्ण होने पर भी जीर्ण न होने वाली दुःख देने वाली तृष्णा को शीघ्र ही छोड़ देना चाहिये ॥१६॥

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ।
बलवानिंद्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥१७॥

माता, बहिन या बेटी के साथ भी कभी एकन्त न बैठना चाहिये, क्योंकि इन्द्रियोंका समूह बड़ा ही बलवान है, वह विद्वान्को भी खींच लेता है ॥१७॥

पूर्णं वर्ष सहस्रं मे विषयान् सेवतोऽसकृत् ।
तथाऽपि चानुवसनं तृष्णा तेषूपजायते ॥१८॥

मैंने पूरे हज़ार वर्ष तक लगातार विषय-भोग किये, फिरभी उनमें नित्यप्रति तृष्णाही बढ़रही है॥

तस्मादेतामहं त्यक्त्वा ब्रह्मण्याधाय मानसम् ।
निर्द्वंद्वो निरहंकारश्चरिष्यामि मृगैः सह ॥१९॥

इसलिये अब मैं इसे छोड़कर परब्रह्म में मन लगाकर और निर्द्वन्द्व तथा निरहङ्कार होकर हिरणों के साथ विचरूँगा ॥१९॥

दृष्टं श्रुतमसद् बुद्ध्वा नानुध्यायेन्न संविशेत् ।
संसृतिं चात्मनाशं च तत्र विद्वान् स आत्मदृक् २०

जो कुछ भी देखने या सुनने में आता है वह सभी झूठ समझकर न तो उसका चिन्तवन ही करना चाहिये और न सेवन, वरन् उसे संसारके आवागमन और अपने स्वरूप के नाश का कारण समझकर विद्वान् को केवल आत्म विचार करना चाहिये ॥ २० ॥

इत्युक्त्वा नाहुषो जायां तदीयं पूरवे वयः ।
दत्त्वा स्वां जरसं तस्मादाददे विगतस्पृहः ॥२१॥

ययाति ने इस प्रकार अपनी स्त्री से कहकर पुरु की तरुण अवस्था उसे लौटादी तथा उससे अपनी जरावस्था ले ली ॥२१॥

दिशि दक्षिणपूर्वस्यांद्रुह्यं दक्षिणतो यदुम् ।
प्रतीच्यां तुर्वसुं चक्र उदीच्यामनुमीश्वरम् ॥२२॥
भूमंडलस्य सर्वस्य पूरुमर्हत्तमं विशाम् ।
अभिषिच्याग्रजांस्तस्य वशे स्थाप्य वनं ययौ॥२३॥

फिर द्रुह्य को आग्नेय का, यदु को दक्षिणका, तुर्वसु को पश्चिम का, अनु को उत्तर का और अत्यन्त योग्य पुरु को समस्त भू-मंडल का राज्य देते हुए, उसका राज्याभिषेक करके तथा उसके अधिकार में सब बड़े भाइयों को रखकर वह वन में चला गया ॥२२॥२३॥

आसेवितं वर्षपूगान् षड्वर्गं विषयेषु सः ।
क्षणेन मुमुचे नीडं जातपक्ष इव द्विजः ॥२४॥

जैसे पंख आने पर पक्षी अपने घोंसले को छोड़ देता है, वैसे ही राजा ने छहों इन्द्रियों के सुख को छोड़ दिया ॥२४॥

स तत्र निर्मुक्तसमस्तसंग आत्मानुभूत्या विधुतत्रिलिंगः । परेऽमले ब्रह्मणि वासुदेवे लेभे गतिं भागवतीं प्रतीतः ॥२५॥

वनमें जाकर समस्त संग छोड़कर और अपने स्वरूप के अनुभव द्वारा लिंग-शरीर को त्याग कर वह प्रसिद्ध राजा ययाति शुद्ध परब्रह्म भगवत स्वरूप को प्राप्त होगया ॥२५॥

श्रुत्वा गाथां देवयानी मेने प्रस्तोभमात्मनः ।
स्त्रीपुंसोः स्नेहवैक्लव्यात् परिहासमिवेरितम् ॥२६॥

स्त्री-पुरुष सम्बन्धी स्नेह के कारण दीनता के वचन समझकर देवयानी इस कथाको केवल हँसी ही मानती रही,परन्तु पीछे उसका भाव समझकर उसे ज्ञान प्राप्त होगया ; २६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मा सन्निवासं सुहृदां प्रपायामिव गच्छताम् ।
विज्ञायेश्वरतंत्राणां मायाविरचितं प्रभोः ॥२७॥
सर्वत्र संगमुत्सृज्य स्वप्नौपम्येन भार्गवी ।
कृष्णे मनःसमावेश्य व्यधुनोल्लिंगमात्मनः ॥२८॥

और जैसे प्याऊ पर पथिक जन इकट्ठे होते हैं, इसी प्रकार सम्बन्धी तथा कुटुम्बी जन ईश्वर के आधीन होकर माया की रचना से एकत्र होते हैं, ऐसा निश्चय करके, इस माया जाल को स्वप्न के समान जानकर, सबसे ममता छोड़कर, देवयानी ने भी अपना लिंग-शरीर छोड़ दिया ॥२७॥२८॥

नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ।
सर्वभूताधिवासाय शांताय बृहते नमः ॥२९॥

जिनमें मन लगाकर देवयानी ने लिंग-शरीर का त्याग किया, उन सब पदार्थों के निवास-रूप सबके रचयिता, अन्तर्यामी शान्त और सर्वव्यापक प्रभु को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२९॥

इति श्रीमद्भागवते नवमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

बीसवां अध्याय

(दुष्यन्त और शकुन्तला का आख्यान)

श्रीशुक उवाच
पूरोर्वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातोऽसि भारत ।
यत्र राजर्षयो वंश्या ब्रह्मवंश्याश्च जज्ञिरे ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे भारत ! अब मैं पुरुराजा का वंश कहता हूँ कि जिसमें तुम उत्पन्न हुए हो और राजर्षि तथा ब्राह्मण उत्पन्न हुए हैं ॥१॥

जन्मेजयो ह्यभूत् पूरोः प्रचिन्वांस्तत्सुतस्ततः ।
प्रवीरोऽथ नमस्युर्वै तस्माच्चारुपदोऽभवत् ॥ २ ॥
तस्य सुद्युरभूत् पुत्रस्तस्माद् बहुगवस्ततः ।
संयातिस्तस्याहंयाती रौद्राश्वस्तत्सुतः स्मृतः॥ ३ ॥

पूरु के जन्मेजय, जन्मेजय के प्रचित्वान्, उस के प्रवीर, उसके नमस्यु, उसके चारुपद, उसके सुद्यु, उसके बहुगव, उसके संयाति, उसके अहंयाति और उसके रौद्राश्व नामक पुत्र हुआ ॥२॥३॥

ऋतेयुस्तस्य कुक्षेयुः स्थंडिलेयुः कृतेयुकः ।
जलेयुः संततेयुश्च धर्मसत्यव्रतेयवः ॥ ४ ॥
दशैतेऽप्सरसः पुत्रा वनेयुश्चावमः स्मृतः ।
घृताच्यामिंद्रियाणीव मुख्यस्य जगदात्मनः॥ ५ ॥

रौद्राश्व के घृताची नामकी अप्सरासे ऋतेयु, कुक्षेयु, स्थंडिलेयु, कृतेयु, जलेयु, सन्ततेयु, धर्मेयु, सत्येयु, व्रतेयु और वनेयु नामके दस पुत्र हुए, ये सभी रौद्राश्व के आधीन रहते थे, जैसे प्राणों के आधीन दसों इन्द्रियां रहती हैं ॥४॥५॥

ऋतेयो रंतिभारोऽभूत् त्रयस्तस्यात्मजा नृप ।
सुमतिर्ध्रुवोऽप्रतिरथः कण्वोऽप्रतिरथात्मजः ॥ ६ ॥
तस्य मेधातिथिस्तस्मात् प्रस्कण्वाद्या द्विजातयः ।
पुत्रोऽभूत्सुमते रैभ्यो दुष्यंतस्तत्सुतो मतः ॥ ७ ॥

हे राजन् ! ऋतेयु के रंतिभार और रंतिभारके सुमति, ध्रुव और अप्रतिरथ यह तीन पुत्र हुए, अप्रतिरथ के कन्व, कन्व के मेधातिथि, उसके प्रस्कन्व आदि ब्राह्मण-पुत्र हुए, सुमति के रैभ्य और रैभ्य के दुष्यन्त नामक पुत्र हुआ ॥६॥॥ ७ ॥

दुष्यंतो मृगयां यातः कण्वाश्रमपदं गतः ।
तत्रासीनां स्वप्रभया मंडयंतीं रमामिव ॥ ८ ॥

दुष्यन्त आखेट खेलने गयाथा, वह कन्व ऋषि के आश्रम में जा पहुंचा, वहाँ उसे लक्ष्मीके समान अपनी कान्ति से आश्रमको शोभायमान करतीहुई शकुन्तला नामकी एक कन्या बैठीहुई दिखाई दी ॥

विलोक्य सद्यो मुमुहे देवमायामिव स्त्रियम् ।
बभाषे तां वरारोहां भटैः कतिपयैर्वृतः ॥ ९ ॥
तद्दर्शनप्रमुदितः सन्निवृत्तपरिश्रमः ।
पप्रच्छ कामसंतप्तः प्रहसन् श्लक्ष्णया गिरा॥१०॥

उस देवमायाके समान स्त्रीको देखकर दुष्यंत तत्कालही मोहित होगया और कितनेही योधाओं सहित उसके दर्शनोंही से गत-श्रम होकर, आनंद-सहित काम-विवश होकर उस सुन्दरी से हंसकर मीठे वचनों द्वारा पूछने लगा कि ॥९॥॥१०॥

का त्वं कमलपत्राक्षि कस्यासि हृदयंगमे ।
किं वा चिकीर्षितं त्वत्र भवत्या निर्जने वने॥११॥

हे कमलपत्र के समान नेत्र वाली ! हे हृदय में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थान पाने वाली ! तू कौन है और किसकी कन्या है ? इस निर्जन बनमें तू क्या करना चाहती है ?

व्यक्तं राजन्यतनयां वेद्मचहं त्वां सुमध्यमे ।
न हि चेतः पौरवाणामधर्मे रमते क्वचित् ॥१२॥

हे सुन्दर कटिधारणी ! मैं समझता हूँ कि तू अवश्य ही क्षत्रिय की कन्याहै, क्योंकि पुरुवंशियों का चित्त कभी अधर्म में नहीं जाता है ॥१२॥

शकुंतलोवाच

विश्वामित्रात्मजैवाहं त्यक्ता मेनकया वने ।
वेदैतद्ध भगवान् कण्वो वीर किं करवाम ते॥१३॥

शकुन्तला बोली-मैं विश्वामित्र की पुत्री हूँ; मेनका नाम की स्त्री से उत्पन्न हुई हूँ, जब मेरी माता स्वर्ग को जाने लगी तब मुझे यहीं छोड़ गई, इस बात को यह कन्व ऋषि जानते हैं, हे वीर ! आपकी मुझे क्या आज्ञा है ? ॥१३॥

आस्यतां ह्यरविंदाक्ष गृह्यतामर्हणं च नः ।
भुज्यतां संति नीवारा उष्यतां यदिरोचते ॥१४॥

हे कमल नयन ! बैठिये और मेरी पूजा को स्वीकार कीजिये, यही वन का अन्न मेरे यहाँ पर उपस्थित है, इसलिये यदि आपकी रुचि हो तो भोजन कीजिये और यहाँ रहिये ॥१४॥

दुष्यंत उवाच

उपपन्नमिदं सुभ्रु जातायाः कुशिकान्वये ।
स्वयं हि वृणुते राज्ञां कन्यकाः सदृशं वरम्॥१५॥

दुष्यन्त बोले-हे सुन्दर भृकुटि वाली ! तू कुशिक वंश में उत्पन्न हुई है, इसलिये मुझे यह बात योग्य ही है क्योंकि राज-कन्यायें अपना वर आपही चुनती हैं ॥१५॥

ओमित्युक्ते यथाधर्ममुपयेमे शकुंतलाम् ।
गांधर्वविधिना राजा देशकालविभागवित् ॥१६॥

शकुन्तला के स्वीकार करने पर देश-काल के जाननेवाले उस दुष्यन्तने इस भांति कहकर गंधर्व विवाह के नियम से उसके साथ व्याह किया ॥

अमोघवीर्यो राजर्षिर्महिष्यां वीर्यमादधे ।
श्वोभूते स्वपुरं यातः कालेनासूत सा सुतम् ॥१७॥

अमोघ वीर्य राजर्षि ने शकुन्तलामें गर्भ धारण किया और दूसरे दिन प्रातःकाल ही वह अपने नगर को चल दिया, शकुन्तला के समय पर पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१७॥

कण्वः कुमारस्य वने चक्रे समुदिताः क्रियाः ।
बद्ध्वा मृगेंद्रांस्तरसा क्रीडति स्म स बालकः॥१८॥

कण्व ऋषि ने वनमें उस कुमार के जात-कर्म आदि संस्कारकिये और वह बालक अपने पराक्रम से सिंहों को पकड़ २ कर उनके साथ खेलने लगा॥

तं दुरत्ययविक्रांतमादाय प्रमदोत्तमा ।
हरेरंशांशसंभूतं भर्तुरंतिकमागमत् ॥१९॥

भगवान् के लघुतम अंश से उत्पन्न हुए उस परम पराक्रमी बालकको साथ लेकर स्त्रियोंमें उत्तम शकुन्तला अपने पति के पास आई ॥१९॥

यदा न जगृहे राजा भार्यापुत्रावनिंदितौ ।
शृण्वतां सर्वभूतानां खेवागाहाशरीरिणी ॥२०॥

परन्तु जब राजाने अपनी निर्दोष स्त्री तथा पुत्र को अङ्गीकार न किया, तब सब लोगोंके सुनते हुए आकाशवाणी ने कहा कि ॥२०॥

माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः ।
भरस्व पुत्रं दुष्यंत माऽवमंस्थाः शकुंतलाम्॥२१॥

माता तो एक आधार मात्र है, वास्तव में पुत्र तो पिताही का होताहै, क्योंकि जो जिससे उत्पन्न होता है वह उसी का रूप है, इसलिये हे दुष्यंत ! तू पुत्र का पोषण कर और शकुन्तला का अपमान न कर ॥ २१ ॥

रेतोधाः पुत्रो नयति नरदेव यमक्षयात् ।
त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुंतला॥२२॥

वंश को बढ़ाने वाला पुत्र पिता को पुत् नामक नरक से उद्धार कर देताहै, इसलिये वह पुत्र कहलाता है और शकुन्तला के गर्भ धारण कर्त्ता तूही है, यह बात वह सत्य कह रही है ॥२२॥

पितर्युपरते सोऽपि चक्रवर्ती महायशाः ।
महिमा गीयते तस्य हरेरंशभुवो भुवि ॥२३॥

तब राजा ने स्त्री और पुत्रको ग्रहण करलिया दुष्यन्त के मरने पर वह पुत्र भरत महान् चक्रवर्त्ती राजा हुआ, भगवान् के अंश के प्रकट हुए इस राजा भरत की कीर्त्ति पृथ्वीपर गाई जातीहै ॥

चक्रं दक्षिणहस्तेऽस्य पद्मकोशोऽस्य पादयोः ।
ईजे महाभिषेकेण सोऽभिषिक्तोऽधिराड् विभुः२४॥

पंचपंचाशता मेध्यैर्गंगायामनु वाजिभिः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मामतेयं पुरोधाय यमुनायामनु प्रभुः ॥२५॥

इस भरत के दायें हाथमें चक्रका और चरणों में कमल का चिह्न था, महाभिषेक की रीति से अभिषेक किये हुए इस चक्रवर्त्ती राजा ने मामतेय पुत्र दीर्घ तामस नामक मुनि को पुरोहित बनाकर गङ्गा-तटपर पचपन अश्वमेध यज्ञ किये और महान् द्रव्य देने वाले इस राजा ने यमुनाजी के तट पर अठहत्तर यज्ञके लिये पवित्र घोड़े बाँधे ॥

अष्टसप्ततिमेध्याश्वान् बबंध प्रददद्वसु ।
भरतस्य हि दौष्यंतेरग्निः साचीगुणे चितः ।
सहस्रं बद्धशो यस्मिन् ब्राह्मणा गा विभेजिरे२६॥

दुष्यन्त के पुत्र भरत ने सुन्दर गुणयुक्त देशमें अग्नि-चयन करके हज़ार ब्राह्मणों में से प्रत्येक को एक-एक बद्ध* गायें दान कीं ॥२६॥

त्रयस्त्रिंशच्छतं ह्यश्वान् बद्ध्वा विस्मापयन् नृपान् ।
दौष्यंतिरत्यगान्मायां देवानां गुरुमाययौ ॥२७॥

वह एकसौ तेंतीस घोड़े बाँधकर राजाओं को चकित करता हुआ वैभवमें देवताओं से भी आगे बढ़ गया, क्योंकि वह भगवान् हरि को प्राप्त हो गया था ॥ २७ ॥

मृगान् शुक्लदतः कृष्णान् हिरण्येन परीवृतान् ।
अदात् कर्मणि मघवारे नियुतानि चतुर्दश ॥२८॥

इसने सफ़ेद दाँत वाले काले रंग के सोने से शृङ्गार किये हुए चौदह लाख मृग जाति के हाथी दान किये ॥ २८ ॥

भरतस्य महत् कर्म न पूर्वे नापरे नृपाः ।
नैवापुर्नैव प्राप्स्यंति बाहुभ्यां त्रिदिवं यथा ॥२९॥

जैसे कोई पुरुष हाथ बढ़ाकर स्वर्ग को नहीं पा सकता है, वैसे ही राजा भरत के महान् कर्म को न तो कोई पूर्वज पहुंचे हैं और न आगे होने वाले पहुंचेंगे ॥२९॥

किरातहूणान् यवनानंध्रान् कंकान् कशाञ्छकान् । अब्रह्मण्यान् नृपाश्चाहन् म्लेच्छानदिग्वि जयेऽखिलान् ॥३०॥

इस राजा ने किरात, हूण, यवन, अन्ध्र, कङ्क, खश और शक जातिके सब अधर्मी राजाओं तथा म्लेच्छों का दिग्विजय में संहार किया ॥३०॥

जित्वा पुराऽसुरा देवान् ये रसौकांसि भेजिरे ।
देवस्त्रियो रसां नीताः प्राणिभिः पुनराहरत् ॥३१॥

पहले बलवान् दैत्य देवताओं को जीतकर उन की जिन स्त्रियों को पातालमें लेगये थे, उन देवाङ्गनाओं को राजा भरत फिर से ले आया ॥३१॥

सर्वकामान् दुदुहतुः प्रजानां तस्य रोदसी ।
समास्त्रिणवसाहस्रीर्दिक्षु चक्रमवर्तयत् ॥३२॥

आकाश और पृथ्वी उसकी प्रजा के समस्त मनोरथ सिद्ध करती थीं, उस चक्रवर्त्ती राजा ने सत्ताईस हज़ार वर्ष तक चारों दिशाओं में अखंड राज्य किया ॥ ३२॥

स सम्राट् लोकपालाख्यमैश्वर्यमधिराट्श्रियम् ।
चक्रं चास्खलितं प्राणान् मृषेत्युपरराम ह ॥३३॥

वह चक्रवर्ती होता हुआ भी लोकपालों के ऐश्वर्य, राजाधिराज की सम्पत्ति, अटल आज्ञा और प्राण-इन सबको असत्य समझ कर उनसे विरक्त रहता था ॥ ३३ ॥

तस्यासन् नृप वैदर्भ्यः पत्न्यस्तिस्रः सुसंमताः ।
जघ्नुस्त्यागभयात् पुत्रान् नानुरूपा इतीरिते॥३४॥

हे राजन् ! उसके विदर्भ वंशकी तीन रानियां थीं, उनके जो पुत्र होतेथे उन्हें राजा यह कहदिया करता था कि यह मेरे समान नहीं, तब रानियां यह सोचकर कि कहीं राजा हमें व्यभिचारणी न समझें, उन पुत्रों को मार डालती थीं ॥३४॥

तस्यैवं वितथे वंशे तदर्थं यजतः सुतम् ।
मरुत्स्तोमेन मरुतो भरद्वाजमुपाददुः ॥३५॥

इस प्रकार जब वंश नष्ट होनेलगा तब राजा ने मरुत् सोम यज्ञ द्वारा मरुत देवताओं का पूजन किया, तब मरुत् देवताओं की कृपा से उसके भरद्वाज नामक पुत्र हुआ ॥३५॥

अंतर्वत्न्यां भ्रातृपत्न्यां मैथुनाय बृहस्पतिः ।
प्रवृत्तो वारितो गर्भं शप्त्वा वीर्यमवासृजत् ॥३६॥

एक बार बृहस्पतिजी अपने भाई उतथ्य की गर्भिणी स्त्री के साथ चोरी से मैथुन करने लगे तब गर्भ के बालकने उन्हें गाली देकर रोका कि दूसरे गर्भ के लिये स्थान नहीं है, परन्तु बृहस्पति ने उसका कहना न मानकर क्रोध पूर्वक उसे शाप दे दिया कि तू अन्धा हो और फिर उसमें अपना वीर्य स्थापित कर दिया ॥३६॥

*-१३०८४ का एक बद्ध होता है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तं त्यक्तुकामां ममतां भर्तृत्यागविशंकिताम् ।
नामनिर्वचनं तस्य श्लोकमेनं सुरा जगुः ॥३७॥

तब उसने बृहस्पति के वीर्य को एड़ी मारकर बाहर निकाल दिया वह पृथ्वीपर गिरतेही बालक होगया, तब ममता अपने पति के त्यागने के भयसे उसे छोड़ने लगी, उसी समय देवता बालक के नाम करण सम्बन्धी यश को गाने लगे ॥३७॥

मूढे भर द्वाजमिमं भर द्वाजं बृहस्पते ।
यातौ यदुक्त्वा पितरौ भरद्वाजस्ततस्त्वयम्॥३८॥

पुत्रको छोड़कर जाती हुई ममता से बृहस्पति ने कहा कि हे मूर्खा ! इस पुत्रको (भर) पोषणकर, क्योंकि यह द्वाज (मुझसे और तुझ से उत्पन्न) है, इसपर ममता ने उत्तर दिया कि यह मुझसे व तुमसे अन्याय द्वारा हुआ है, इसलिये तुम्हीं इस का पोषण करो, इतना कहकर दोनोंही उस बालक को छोड़ कर चलदिये इसलिये 'भर—द्वाज' से उसका नाम भरद्वाज पड़ा ॥३८॥

चोद्यमाना सुरैरेवं मत्वा वितथमात्मजम् ।
व्यसृजन्मरुतोऽबिभ्रन् दत्तोऽयं वितथेऽन्वये ॥३९॥

देवताओं ने ममता को समझाया, फिरभी वह उसे व्यर्थ जानकर छोड़गई, तब मरुत् देवताओंने उसे पाल-पोषकर बड़ा किया और भरत-वंश को नष्ट होता देखकर वह पुत्र भरतको दे दिया ॥३९॥

इति श्रीमद्भागवते नवमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

इक्कीसवां अध्याय

(रन्तिदेव का आख्यान)

श्रीशुक उवाच

वितथस्य सुतो मन्युर्बृहत्क्षत्रो जयस्ततः ।
महावीर्यो नरो गर्गःसंकृतिस्तु नरात्मजः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–वह पुत्र वंश व्यर्थ होने पर दिया गया था, इसलिये उसका दूसरा नाम 'वितथ' भी हुआ, वितथके मन्यु, मन्युके बृहत्क्षत्र जय, महावीर्य, नर और गर्ग–ये पाँच पुत्रहुए, नर के संकृति नाम का पुत्र हुआ ॥१॥

गुरुश्च रंतिदेवश्च संकृतेः पांडुनंदन ।
रंतिदेवस्य हि यश इहामुत्र च गीयते ॥ २ ॥

हे पाण्डु-नन्दन ! संकृतिके गुरु और रन्तिदेव दो पुत्र हुए, रन्तिदेव का यश तो इस लोकमें भी गाया जाता है और परलोक में भी ॥२॥

वियद्वित्तस्य ददतो लब्धं लब्धं बुभुक्षतः ।
निष्किंचनस्य धीरस्य सकुटुंबस्य सीदतः ॥ ३ ॥

वह राजा अक्समात् मिले हुए धन से ही निर्वाह करता था, अपने पासका सर्वस्व दान कर देता था और धीरज को कभी न छोड़ता था, एक समय वह कुटुम्ब सहित अत्यंत दुखी होगया ॥

व्यतीयुरष्टचत्वारिंशदहान्यपि गतः किल ।
घृतपायससंयावं तोयं प्रातरुपस्थितम् ॥ ४ ॥

क्योंकि राजा को अड़तालीस दिन बिना जल के बीतगये, परन्तु उनंचासवें दिन उसे घी, खीर, लपसी और जल अचानक ही मिलगये ॥४॥

कृच्छ्रप्राप्तकुटुंबस्य क्षुत्तृड्भ्यां जातवेपथोः ।
अतिथिर्ब्राह्मणः काले भोक्तुकामस्य चागमत् ॥५॥

उसका कुटुम्ब उस समय भूख-प्यास से व्याकुल होकर महान् कष्ट भोगता हुआ काँप रहा था, तब रंतिदेवने भोजनकी तैयारी की कि उसीसमय एक ब्राह्मण अतिथि बनकर आ पहुंचा ॥५॥

तस्मै संव्यभजत् सोऽन्नमादृत्य श्रद्धयान्वितः ।
हरिं सर्वत्र संपश्यन् स भुक्त्वा प्रययौ द्विजः॥ ६ ॥
अथान्यो भोक्ष्यमाणस्य विभक्तस्य महीपते ।
विभक्तं व्यभजत् तस्मै वृषलाय हरिं स्मरन्॥ ७॥

सबमें भगवान् को देखने वाले राजा ने श्रद्धा तथा आदर के साथ अपने अन्न में से उस ब्राह्मण को भोजन दिया, जब वह ब्राह्मण चला गया तब राजा भोजन की इच्छा करके परस्पर अन्न बांटने लगा कि उसी समय एक शूद्र अतिथि बनकर आ पहुंचा, राजा ने भगवान् का स्मरण करके अपने अन्न में से उसे भी भाग दे दिया ॥ ६॥॥७॥

याते शूद्रे तमन्योऽगादतिथिः श्वभिरावृतः ।
राजन् मे दीयतामन्नं सगणाय बुभुक्षिते ॥ ८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शूद्र के जानेपर कुत्तोंको लियेहुए एक अतिथि और भी आ पहुंचा और बोला कि–हे राजन्! मैं और मेरे कुत्ते भूखे हैं, इसलिये मुझे अन्न दो ॥८॥

स आदृत्यावशिष्टं यद् बहुमानपुरस्कृतम् ।
तच्च दत्त्वा नमश्चक्रे श्वभ्यः श्वपतये विभुः ॥ ९ ॥

उस राजा ने बचे हुए अन्न को बड़े ही आदर के साथ कुत्तों और उनके स्वामी को देकर प्रणाम किया ॥ ९ ॥

पानीयमात्रमुच्छेषं तच्चैकपरितर्पणम् ।
पास्यतः पुल्कसोऽभ्यागादपो देह्यशुभस्य मे॥१०॥

अब राजा के पास केवल जल रह गया कि जिससे केवल एकही मनुष्य तृप्त हो सकता था, राजा ने उसी को पीना चाहा, परन्तु उसी समय एक चाण्डाल ने आकर कहा कि–'मुझ नीच को जल दीजिये' ॥१०॥

तस्य तां करुणां वाचं निशम्य विपुलश्रमाम् ।
कृपया भृशसंतप्त इदमाहामृतं वचः ॥११॥

हे राजन्! उसकी अत्यन्त थकान से भरी हुई करुणामय वाणी सुनकर राजा ने दया से सन्तप्त होकर यह अमृतके समान वचन कहा ॥११॥

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परामष्टर्द्धियुक्ताम
पुनर्भवं वा । आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजामंतः
स्थितो येन भवंत्यदुःखाः ॥१२॥

कि मैं ईश्वर से न तो अष्ट सिद्धियों सहित वैभव माँगता हूँ और न मोक्ष चाहता हूँ, वरन् मेरी तो प्रभु से यही प्रार्थनाहै कि मैं सब प्राणियों में रहकर उनके दुःख भोग करूँ जिससे सब सुखी होजाँय, सब जीवों का दुःख दूर होना मैं अपनाही दुःख दूर होना मानता हूँ ॥१२॥

क्षुत्तृट्श्रमो गात्रपरिश्रमश्च दैन्यं क्लमः शोक
विषादमोहाः । सर्वे निवृत्ताः कृपणस्य जंतोर्जि
जीविषोर्जीवजलार्पणान्मे ॥१३॥

मैं इस दीन प्राणीको उसका जीवन-दाता जल दूँगा, जिससे उसकी भूख, प्यास, शरीर का श्रम, दीनता, थकान, ग्लानि, शोक, विषाद और मोह सब नष्ट होजायेंगे ॥१३॥

एवं प्रभाष्य पानीयं म्रियमाणः पिपासया ।
पुल्कसायाददाद्धीरो विसर्गकरुणो नृपः ॥१४॥

इस प्रकार कहकर स्वयं प्यास के मारे मरते हुए भी स्वभावसे करुणामय तथा धीरज धरनेवाले राजा ने चाण्डाल को जल दिया ॥१४॥

तस्य त्रिभुवनाधीशाः फलदाः फलमिच्छताम् ।
आत्मानं दर्शयांचक्रुर्मायाविष्णुविनिर्मिताः ॥१५॥

फल चाहनेवालों को फल देनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रजी ने कि जिन्होंने माया से ब्राह्मण आदि के रूप धारण किये थे, अपने-अपने स्वरूप धरकर राजा को दर्शन दिये ॥१५॥

स वै तेभ्यो यमस्कृत्य निःसंगो विगतस्पृहः ।
वासुदेवे भगवति भक्त्या चक्रे मनः परम् ॥१६॥

आसक्ति-रहित और विरक्त राजाने उन्हेंकेवल प्रणाम करके भगवान् वासुदेव में मन लगा लिया और उसी भावसे दूसरी बार भी केवल नमस्कार किया ॥ १६ ॥

ईश्वरालंबनं चित्तं कुर्वतोऽनन्यराधसः ।
माया गुणमयी राजन् स्वप्नवत् प्रत्यलीयत ॥१७॥

हे राजन्! उस अनन्य भक्त राजा ने अपना चित्त केवल ईश्वर ही में लगा दिया था, इसलिये उसकी गुणमयी माया स्वप्नकी भांति खोगई ॥१७॥

तत्प्रसंगानुभावेन रंतिदेवानुवर्तिनः ।
अभवन् योगिनः सर्वे नारायणपरायणाः ॥१८॥

इस रन्तिदेव के प्रसंग-प्रभावके कारण कितने ही उसके अनुसरण करने वाले मनुष्य योगी और नारायण के परम भक्त होगये ॥१८॥

गर्गाच्छिनिस्ततो गार्ग्यः क्षत्राद् ब्रह्म ह्यवर्तत ।
दुरितक्षयो महावीर्यात् तस्य त्रय्यारुणिः कविः १९
पुष्करारुणिरित्यत्र ये ब्राह्मणगतिं गताः ।
बृहत्क्षत्रस्य पुत्रोऽभूद्धस्ती यद्धस्तिनापुरम् ॥२०॥

मन्यु के गर्ग नामक पुत्र हुआ, गर्ग के शिनि और शिनि के गार्ग्य नामक पुत्र हुआ, यह क्षत्रिय वंश में होकर भी ब्राह्मण थे, मन्युके पुत्र महावीर्य के दुरतिक्षय नामक पुत्र हुआ, उसके त्रय्यारुणि, कवि और पुष्करारुणि–ये तीन पुत्र हुए, जिन्होंने ब्राह्मण गति पाई, मन्यु के पुत्र बृहत्क्षत्र के हस्ती नामक पुत्र हुआ, जिसने हस्तिनापुर बसाया१९॥२०

अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च हस्तिनः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अजमीढस्य वंश्याः स्युः प्रियमेधादयो द्विजाः २१

हस्ती के अजीमढ, द्विमीढ और पुरुमीढ–ये तीन पुत्र हुए, अजमीढ के वंशज प्रियमेध आदि ब्राह्मण हुए ॥ २१ ॥

अजमीढाद् बृहदिषुस्तस्य पुत्रो बृहद्धनुः ।
बृहत्कायस्ततस्तस्य पुत्र आसीज्जयद्रथः ॥२२॥

अजमीढ के दूसरा पुत्र बृहदिषु हुआ, उसके बृहद्धनु हुआ, बृहद्धनु के बृहत्काय और बृहत्काय के जयद्रथ नामक पुत्र हुआ ॥ २२ ॥

तत्सुतो विशदस्तस्य सेनजित् समजायत ।
रुचिराश्वो दृढहनुः काश्यो वत्सश्च तत्सुताः ॥२३॥

उसके विशद, विशद के सेनजित्, सेनजित्के रुचिराश्व, दृढ़हनु और काश्यवत्स-ये तीन पुत्रहुए॥

रुचिराश्वसुतः पारः पृथुसेनस्तदात्मजः ।
पारस्य तनयो नीपस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ॥२४॥

रुचिराश्व का पुत्र पार हुआ, पारका पुत्र पृथुसेन हुआ और दूसरा पुत्र नीप हुआ, नीप के सौ पुत्र हुए ॥२४॥

स कृत्व्यां शुककन्यायां ब्रह्मदत्तमजीजनत् ।
स योगी गवि भार्यायां विष्वक्सेनमधात् सुतं॥२५

इस नीपके यहाँ शुकदेवजी की कन्या कृतु से ब्रह्मदत्त नामक पुत्र हुआ, ब्रह्मदत्तके सरस्वती नाम की स्त्री से विष्वक्सेन नामक पुत्र हुआ ॥२५॥

जैगीषव्योपदेशेन योगतंत्रं चकार ह ।
उदक्स्वनस्ततस्तस्माद् भल्लादो वार्हदीपवः ॥२६॥

ब्रह्मदत्त ने जैगीषव्य के उपदेश से एक योग ग्रन्थ बनाया, विष्वक्सेन के उदक्स्वन नामक पुत्र हुआ, उसके भल्लाद नामक पुत्र हुआ, ये बृहदिषु के वंशज राजा कहे गये हैं ॥२६॥

यवीनरो द्विमीढस्य कृतिमांस्तत्सुतः स्मृतः ।
नाम्ना सत्यधृतिर्यस्य दृढनेमिः सुपार्श्वकृत् ॥२७॥

सुपार्श्वात् सुमतिस्तस्य पुत्रः सन्नतिमांस्ततः ।
कृती हिरण्यनाभाद् यो योगं प्राप्य जगौ स्म षट्॥

बृहदिषु के पुत्र द्विमीढ के यवीनर, उसके कृतमान, उसके सत्यधृति, उसके दृढ़नेम, उसके सुपार्श्व, सुपार्श्व के सुमति, सुमति के सन्नतिमान और उसके कृति नामक पुत्र हुआ, इस राजा कृति ने हिरण्यनाभसे योग-विद्या सीखकर अपने शिष्यों को प्राच्य साम्यकी छः संहितायें पढ़ाईं ॥२७।२८॥

संहिताः प्राच्यसाम्नां वै नीपो ह्युग्रायुधस्ततः ।
तस्य क्षेम्यः सुवीरोऽथ सुवीरस्य रिपुंजयः ॥२९॥

ततो बहुरथो नाम पुरुमीढोऽप्रजोऽभवत् ।
नलिन्यामजमीढस्य नीलः शांतिसुतस्ततः ॥३०॥

शांतेः सुशांतिस्तत्पुत्रः पुरुजोऽर्कस्ततोऽभवत् ।
भर्म्याश्वस्तनयस्तस्य पंचासन्मुद्गलादयः ॥३१॥

यवीनरो बृहदिषुः कांपिल्यः संजयः सुताः ।
भर्म्याश्वः प्राह पुत्रा मे पंचानां रक्षणाय हि॥३२॥

विषयाणामलमिमे इति पंचालसंज्ञिताः ।
मुद्गलाद्ब्रह्म निर्वृत्तं गोत्रं मौद्गल्यसंज्ञितं॥३३॥

कृति के नीप, नीप के उग्रायुध, उसके क्षेमा, उसके सुवीर, उसके रिपुंजय; उसके बहुरथनामक पुत्र हुआ, पुरुमीढ के पुत्र न था, हस्ती के बड़े बेटे अजमीढ की स्त्री नलनी से नील नामक पुत्र हुआ, नील के शान्ति, शान्ति के सुशान्ति, उसके पुरुज, उसके अर्क, उसके भर्म्याश्व नामका पुत्र हुआ,उस के मुद्गल, यवीनर,बृहदिषु, काम्पिल और संजय नामक पाँच पुत्र हुए, भर्म्याश्व ने कहा कि मेरे यह पाँच पुत्र पाँच देशों की रक्षा करने में समर्थ हैं, इसलिये वे पांचाल नामसे प्रसिद्धहुए, मुद्गल से मौद्गल गोत्रीय ब्राह्मण-वंश हुआ ॥२९–३३॥

मिथुनं मुद्गलाद् भार्म्याद् दिवोदासः पुमानभूत् ।
अहल्या कन्यका यस्यां शतानंदस्तु गौतमात्३४॥

भर्म्याश्व के पुत्र मुद्गल से एक जोड़ा उत्पन्न हुआ, उसमें पुत्रका नाम दिवोदासथा और कन्या का नाम अहल्या था, अहिल्या के गौतमजी द्वारा शतानन्द नामक पुत्र हुआ ॥ ३४ ॥

तस्य सत्यधृतिः पुत्रो धनुर्वेदविशारदः ।
शरद्वांस्तत्सुतो यस्मादुर्वशीदर्शनात् किल ।
शरस्तंबेपतद्रेतो मिथुनं तदभूच्छुभम् ॥३५॥

शतानन्द के धनुर्वेदका जाननेवाला सत्यधृति नामक पुत्र हुआ, उसके शरद्वान हुआ, उर्वशी अप्सरा के देखनेसे शरद्वानका वीर्य कासके गुच्छे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में पड़ा, उससे एक सुन्दर जोड़ा उत्पन्न हुआ ३५॥

तद् दृष्ट्वा कृपयाऽगृह्णाच्छंतनुर्मृगयां चरन् ।
कृपः कुमारः कन्या च द्रोणपत्न्य भवत्कृपी॥३६॥

शान्तनु राजा आखेट के लिये वनमें गया, तो उसे यह जोड़ा दिखाई दिया, उसे कृपा करके वह अपने घर ले आया, उसमें बालक का नाम कृपाचार्य और कन्याका नाम द्रोण-पत्नी कृपी था॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते नवमस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

बाईसवां अध्याय

(ऋक्ष-वंश-वर्णन)

श्रीशुक उवाच

मित्रेयुश्च दिवोदासाच्च्यवनस्तत्सुतो नृप ।
सुदासः सहदेवोऽथ सोमको जंतुजन्मकृत् ॥ १ ॥
तस्य पुत्रशतं तेषां यवीयान् पृषतः सुतः ।
द्रुपदो द्रौपदी तस्य धृष्टद्युम्नादयः सुताः ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! दिवोदास के मित्रेय, उसके च्यवन, उसके सुदास, उसके सहदेव, उसके सोमक और उसके जन्तु, जन्तु के सौ पुत्र थे, जिनमें सबसे छोटा पृषत था, पृषत के द्रुपद और द्रुपदके द्रौपदी नामकी कन्या हुई और धृष्टद्युम्न आदि पुत्र हुए ॥१॥२॥

धृष्टद्युम्नाद् धृष्टकेतुर्भार्म्याः पंचालका इमे ।
योऽजमीढसुतो ह्यन्य ऋक्षः संवरणस्ततः ॥ ३ ॥

धृष्टद्युम्नके धृष्टकेतु हुआ, ये भर्म्याश्वके वंशज राजा कहे गयेहैं, यह पाञ्चालके राजाथे जो अजामीढ का पुत्र ऋक्ष कहा गया है, उसके संवरण नाम का पुत्र हुआ ॥३॥

तपत्यां सूर्यकन्यायां कुरुक्षेत्रपतिः कुरुः ।
परीक्षित्सुधनुर्जन्हुर्निषधाश्चः कुरोः सुताः ॥ ४ ॥

उसके सूर्य की कन्या तपती से कुरु नामक पुत्र हुआ जो कुरुक्षेत्रका स्वामीथा, कुरुके परीक्षित सुधनु, जन्हु और निषध-चार पुत्रहुए ॥४॥

सुहोत्रोऽभूत् सुधनुषश्च्यवनोऽथ ततः कृती ।
वसुस्तस्योपरिचरो बृहद्रथमुखास्ततः ॥ ५ ॥
कुशांवमत्स्यप्रत्यग्रचेदिपाद्याश्च चेदिपाः ।
बृहद्रथाद् कुशाग्रोऽभूदृषभस्तस्य तत्सुतः ॥ ६ ॥
जज्ञे सत्यहितोऽपत्यं पुष्पवांस्तत्सुतो जहुः ।
अन्यस्यां चापि भार्यायां शकले द्वे बृहद्रथात्॥ ७ ॥

सुधनु के सुहोत्र नामक पुत्र हुआ, उसके च्यवन, च्यवन के कृती, कृती के उपरिचर नामक वसु हुआ, उपरिचर के बृहद्रथ, कुशांव, मत्स्य, प्रत्यग्र और चेदिप आदि पुत्र हुए जो चेदि देशके राजा थे, बृहद्रथ के कुशाग्र, उसके ऋषभ, उसके सत्यहित; उसके पुष्पवान् और उसके जहु नामक पुत्र हुआ, इसी बृहद्रथ के दूसरी स्त्री से एक ही शरीर के दो भाग अलग २ उत्पन्न हुए ॥५॥६॥७॥

ते मात्रा बहिरुत्सृष्टे जरया चाभिसंधिते ।
जीव जीवेति क्रीडंत्या जरासंधोऽभवत् सुतः॥ ८ ॥

उन भागों को बृहद्रथ की स्त्री ने बाहर फेंक दिया, उन खण्डों को मिलाकर जरा नाम की स्त्री ने 'जीव-जीव' कहा, इसलिये उसकानाम जरासंध (जरा के द्वारा जोड़ा हुआ) ॥८॥

ततश्च सहदेवोऽभूत् सोमापिर्यच्छ्रुतश्रवाः ।
परीक्षिदनपत्योऽभूत् सुरथो नाम जान्हवः ॥ ९ ॥
ततो विदूरथस्तस्मात् सार्वभौमस्ततोऽभवत् ।
जनसेनस्तत्तनयो राधिकोऽतोऽयुतो ह्यभूत् ॥१०॥
ततश्च क्रोधनस्तस्मादेवातिथिरमुष्य च ।
ऋष्यस्तस्य दिलीपोऽभूत्प्रतीपस्तस्य चात्मजः११॥

जरासन्ध के सहदेव, उसके सोमापि और उसके श्रुतश्रवा नामक पुत्र हुआ, कुरु के पुत्र परीक्षितके कोई पुत्र न था, उसके दूसरे पुत्र जन्हु के सुरथ, सुरथ के विदूरथ, विदूरथ के सार्वभौम; उसके जयसेन, उसके राधिक, उसके अयुत, उसके क्रोधन, उसके देवातिथि, उसके ऋष्य, उसके दिलीप और दिलीप के प्रतीप नाम का पुत्र हुआ ॥

देवापिःशंतनुस्तस्य बाह्लीक इति चात्मजाः ।
पितृराज्यं परित्यज्य देवापिस्तु वनं गतः ॥१२॥

प्रतीप के देवापि, शन्तनु और बाल्हीक-यह तीन पुत्रहुए, उनमें से देवापि अपने पिताके राज्य को छोड़कर वनमें चला गया ॥१२॥

अभवच्छंतनू राजा प्राङ्महाभिषसंज्ञितः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं यौवनमेति सः १३॥

तब शन्तनु राजा हुआ, इसका नाम पूर्व जन्म में महाभिष था, यह जिसे अपने हाथ से छू लेता था वह वृद्ध भी हो तो तरुण होजाता था ।१३॥

शांतिमाप्नोति चैवाग्र्यां कर्मणा तेन शंतनुः ।
समा द्वादश तद्राज्ये न ववर्ष यदा विभुः ॥१४॥
शंतनुर्ब्राह्मणैरुक्तः परिवेत्ता त्वमग्रभुक् ।
राज्यं देह्यग्रजायाशु पुरराष्ट्रविवृद्धये ॥१५॥

उसे परम शान्ति मिलती थी इसलिये इसका नाम शन्तनु पड़ा था, जब इसके राज्य में बारह वर्ष तक जल न बरसा तब ब्राह्मणों ने शन्तनु से कहा कि तू अपने बड़े भाईके जीवित रहते उसके अधिकार का राज्य करता है इसलिये वर्षा नहीं होती, अब तू अपने बड़े भाई को राज्य दे तो पुर और देश की वृद्धि हो ॥१४॥॥१५॥

एवमुक्तो द्विजैर्ज्येष्ठं छंदयामास सोऽब्रवीत् ।
तन्मंत्रिप्रहितैर्विप्रैर्वेदाद्विभ्रंशितो गिरा ॥१६॥

ब्राह्मणों की यह बात सुनकर शन्तनु ने अपने बड़े भाईको राज्य देनाचाहा, परन्तु उसके मंत्रियों ने उसे ठीक न समझकर उससे पहले ही कुछ ब्राह्मणों को देवापि के पास पहुँचाया और उनके द्वारा पाखंडमत का उपदेश दिलाकर उसेनास्तिक बना डाला ॥१६॥

वेदवादातिवादान्वै तदा देवो ववर्ष ह ।
देवापिर्योगमास्थाय कलापग्राममाश्रितः ॥१७॥

देवापि ने वेद की निन्दा की, तब शन्तनु का दोष चला गया और उसके राज्य में इन्द्र ने जल बरसाया, यह देवापि अब तक योग धारण करके कलाप ग्राम में रहता है ॥१७॥

सोमवंशे कलौ नष्टे कृतादौ स्थापयिष्यति ।
बाह्लीकात्सौमदत्तोऽभूद्भूरिर्भूरिश्रवास्ततः ॥१८॥
शलश्च शंतनोरासीद्गंगायां भीष्म आत्मवान् ।
सर्वधर्मविदां श्रेष्ठो महाभागवतः कविः ॥१९॥

जब कलियुग में चन्द्र वंश नष्ट होजायगा तब सतयुग लगते ही यह फिर से चन्द्र वंश को स्थापित करेगा, बाल्हीक के सोमदत्त, उसके भूरि, भूरिश्रवा और शल-ये तीन पुत्र हुए, शान्तनु के गङ्गासे ज्ञानवान् भीष्महुए जो समस्त धर्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ, परम भक्त और पण्डित थे ॥१८॥१९॥

वीरयूथाग्रणीर्येन रामोऽपि युधि तोषितः ।
शंतनोर्दाशकन्यायां जज्ञे चित्रांगदः सुतः ॥२०॥
विचित्रवीर्यश्चावरजो नाम्ना चित्रांगदो हतः ।
यस्यां पराशरात्साक्षाद्अवतीर्णो हरेः कला ॥२१॥
वेदगुप्तो मुनिःकृष्णो यतोऽहमिदमध्यगाम् ।
हित्वा स्वशिष्यान्पैलादीन्भगवान्बादरायणः२२॥
मह्यं पुत्राय शांताय परं गुह्यमिदं जगौ ।
विचित्रवीर्योऽथोवाह काशिराजसुते बलात् ॥२३॥
स्वयंवरादुपानीते अंबिकांऽबालिके उभे ।
तयोरासक्तहृदयो गृहीतो यक्ष्मणा मृतः ॥२४॥

जिन वीर-दल के अग्रणीने युद्धमें परशुरामजी को प्रसन्न किया, शन्तनु के केवट कन्या सत्यवती से चित्रांगद नामका पुत्रहुआ और दूसरा विचित्र वीर्य हुआ, चित्रांगद को चित्रांगद नामक गन्धर्वने मार डाला; जिस सत्यवती से कांरे पन में पराशर ऋषि के द्वारा साक्षात् भगवान् की कला-रूप वेद व्यासजी प्रकट हुए जिन्होंने वेदकी रक्षा की,उन्हीं से मैं उत्पन्न होकर भागवत पढ़ाहूँ, उन वेदव्यासजी ने अपने शिष्य पैला आदि ऋषियों को इस परम गोप्य भागवत का उपदेश न करके मुझ शान्ति स्वभाव वाले अंगजको ही उसे सिखाया; विचित्र वीर्य ने भीष्मजी के द्वारा स्वयंवर में से बलपूर्वक लाई हुई काशी नरेश की पुत्रियां अंबिका और अंबालिका व्याह लीं, वह उनमें ऐसा आसक्त हो गया कि क्षय रोग होने से निस्संतान ही मर गया ॥२०॥॥२१॥२२॥२३॥२४॥

क्षेत्रेऽप्रजस्य वै भ्रातुर्मात्रोक्तो बादरायणः ।
धृतराष्ट्रं च पांडुं च विदुरं चाप्यजीजनत् ॥२५॥

फिर वेदव्यासजी ने अपनी माता सत्यवतीकी आज्ञा से अपने निःसंतान भाई विचित्र वीर्य की स्त्रियों से (योग-द्वारा) धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर-यह तीन पुत्र उत्पन्न किये ॥२५॥

गांधार्यां धृतराष्ट्रस्य जज्ञे पुत्रशतं नृप ।
तत्र दुर्योधनो ज्येष्ठो दुःशला चापि कन्यका॥२६॥

हे राजन् ! धृतराष्ट्र के गान्धारी नामक स्त्रीसे सौ पुत्र हुए, जिनमें दुर्योधन सबसे बड़ा था और दुःशला नाम की एक कन्या हुई ॥२६॥

शापान्मैथुनरुद्धस्य पांडोः कुंत्यां महारथाः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाता धर्मानिलेंद्रेभ्यो युधिष्ठिरमुखास्त्रयः ॥२७॥

बनमें मृग रूप से रमण करते हुए ऋषि और ऋषि-पत्नी के शाप से राजा पांडु संभोग करने से वंचित रहगये, तब उनकी स्त्री कुन्ती से धर्म और वायु और इन्द्र के अंश से युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन,-यह तीन महारथी पुत्र हुए ॥२७॥

नकुलः सहदेवश्च माद्र्यां नासत्यदस्रयोः ।
द्रौपद्यां पंच पंचभ्यः पुत्रास्ते पितरोऽभवन्॥२८॥

और दूसरी स्त्री माद्री से अश्विनीकुमारों के अंश नकुल और सहदेव हुए, इन पाँचों पांडवों के द्वारा द्रौपदीसे पाँच पुत्रहुए जो तुम्हारे चाचाथे।

युधिष्ठिरात् प्रतिविंध्यः श्रुतसेनो वृकोदरात् ।
अर्जुनाच्छ्रुतकीर्तिस्तु शतानीकस्तु नाकुलिः॥२९॥
सहदेवसुतो राजन् श्रुतकर्मा तथाऽपरे ।
युधिष्ठिरात्तु पौरव्यां देवकोऽथ घटोत्कचः ॥३०॥
भीमसेनाद्धिडिंबायां काल्यां सर्वगतस्ततः ।
सहदेवात्सुहोत्रं तु विजयाऽसूत पार्वती ॥३१॥

युधिष्ठिरसे प्रतिविंध्य, भीमसे श्रुतसेन अर्जुन से श्रुतकीर्त्ति, नकुल से शतानीक और सहदेव से श्रुतकर्मा नामक पुत्र हुआ,हे राजन् ! युधिष्ठिर की दूसरी स्त्री पौरवी से देवक नाम का पुत्र हुआ, भीम की दूसरी स्त्री हिडंबनी से घटोत्कच पुत्र हुआ और काली नाम की तीसरी स्त्री से सर्वगत नामका पुत्र हुआ, सहदेव के पर्वत राजाकी कन्या विजया से सुहोत्र नामका पुत्र हुआ ॥२९॥३०॥३१॥

करेणुमत्यां नकुलो निरमित्रं तथार्जुनः ।
इरावंतमुलूप्यां वै सुतायां बभ्रुवाहनम् ।
मणिपूरपतेः सोऽपि तत्पुत्रः पुत्रिकासुतः ॥३२॥
तव तातः सुभद्रायामभिमन्युरजायत ।
सर्वातिरथजिद्वीर उत्तरायां ततो भवान् ॥३३॥

नकुल के करेणुमती नाम्नी स्त्री से निरमित्र हुआ, अर्जुन के उलूपी नाम्नी नाग-कन्यासे इरावन् मणिपुर नरेश की कन्या चित्रांगदा से बभ्रुवाहन और सुभद्रा से तुम्हारा पिता अभिमन्यु हुआ, बभ्रुवाहन को उसके नाना ने गोद ले लिया था, इसलिये वह मणिपुर नरेशका पुत्र कहलाया,अभिमन्यु के उत्तरा नाम्नी स्त्री से महावीर और सब महारथियों को जीतने वाले तुम (परीक्षित) हुए ॥

परिक्षीणेषु कुरुषु द्रौणेर्ब्रह्मास्त्रतेजसा ।
त्वं च कृष्णानुभावेन सजीवो मोचितोऽन्तकात् ३४

महाभारत में कौरव वंशका नाश हो चुकने पर अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से तुम्हारा भी नाश हुआ चाहता था, परन्तु श्रीकृष्ण भगवान् के प्रभाव से तुम जीवित बच गये ॥३४॥

तवेमे तनयास्तात जनमेजयपूर्वकाः ।
श्रुतसेनो भीमसेन उग्रसेनश्च वीर्यवान् ॥३५॥

हे राजन् ! तुम्हारे जन्मेजय,श्रुतसेन, भीमसेन और उग्रसेन ये चार पुत्रहैं ॥३५॥

जनमेजयस्त्वां विदित्वा तक्षकान्निधनं गतम् ।
सर्पान् वै सर्पयागाग्नौ स होष्यति रुषाऽन्वितः॥३६॥

इनमें से जन्मेजय तक्षकके द्वारा तुम्हारी मृत्यु समझकर क्रोध-वशात् सर्प-यज्ञ को प्रारंभ करके उसकी अग्नि में सर्पों को होम देगा ॥३६॥

कावषेयं पुरोधाय तुरं तुरगमेधयाट् ।
समंतात्पृथिवीं सर्वां जित्वा यक्ष्यति चाध्वरैः॥३७॥

वह सब पृथ्वीको जीतकर कावषेय-वंशी 'तुर' नामक ब्राह्मण को पुरोहित बनाकर अश्वमेध तथा दूसरे प्रकार के यज्ञ करेगा ॥३७॥

तस्य पुत्रः शतानीको याज्ञवल्क्यात्त्रयीं पठन् ।
अस्त्रज्ञानं क्रियाज्ञानं शौनकात्परमेष्यति ॥३८॥

इसके शतानीक नामका पुत्र होगा जो याज्ञवल्क्यसे तीनों वेद पढ़ेगा और कृपाचार्य व शौनक से अस्त्र तथा क्रिया-ज्ञान सीखेगा ॥३८॥

सहस्रानीकस्तत्पुत्रस्ततश्चैवाश्वमेधजः ।
असीमकृष्णस्तस्यापि नेमिचक्रस्तु तत्सुतः ॥३९॥

शतानीक के सहस्रानीक, उसके अश्वमेधक, उसके असीम कृष्ण और उसके निमिचक्र नाम का पुत्र होगा॥३९॥

गजाह्वये हृते नद्या कौशाम्ब्यां साधु वत्स्यति ।
उक्तस्ततश्चित्ररथस्तस्मात्कविरथः सुतः ॥४०॥
तस्माच्च वृष्टिमांस्तस्य सुषेणोऽथ महीपतिः ।
सुनीथस्तस्य भविता नृचक्षुर्यत्सुखीनलः ॥४१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिप्लवः सुतस्तस्मान्मेधावी सुनयात्मजः ।
नृपंजयस्ततो दुर्वस्तिमिस्तस्माज्जनिष्यति ॥४२॥
तिमेर्बृहद्रथस्तस्माच्छतानीकः सुदासजः ।
शतानीकाद्दुर्दमनस्तस्यापत्यं वहीनरः ॥४३॥
दण्डपाणिर्निमिस्तस्य क्षेमको भविता नृपः ।
ब्रह्मक्षत्रस्य वै प्रोक्तो वंशो देवर्षिसत्कृतः ॥४४॥

हस्तिनापुर जब गङ्गा के प्रवाह से बह जायगा तब वह निमिचक्र कौशाम्बी नगरी में भली भांति निवास करेगा, निमिचक्र के उक्त, उक्त के चित्ररथ, उसके कविरथ, उसके वृष्टिमान, उसके सुषेण, उस के सुनीथ, उसके नृचक्षु, उसके सुखीनल, उसके परिप्लव, उसके सुनय, उसके मेधावी, उसके नृपंजय, उसके दूर्व, उसके तिमि, उसके बृहद्रथ, उसके सुदास, उसके शतानीक, उसके दुर्दमन, उसके वहीनर, उसके दण्डपाणि, उसके निमि और उस के क्षेमक नाम पुत्र होगा, यह भरद्वाज के पुत्र बृहत्क्षत्र का वंश कहा गया है, कि जिसका देवता और ऋषि लोग सत्कार करते हैं ॥ ४०—४४ ॥

क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्था प्राप्स्यति वै कलौ ।
अथ मागधराजानो भवितारो वदामि ते ॥४५॥

यह वंश क्षेमक राजा से कलियुग में नाश हो जायगा, अब जरासंध के वंश में जो राजा आगे होंगे उनके नाम कहता हूँ ॥ ४५ ॥

भविता सहदेवस्य मार्जारिर्यच्छ्रुतश्रवाः ।
ततो युतायुस्तस्यापि निरमित्रोऽथ तत्सुतः ॥४६॥
सुनक्षत्रः सुनक्षत्राद्बृहत्सेनोऽथ कर्मजित् ।
ततः सृतंजयाद्विप्रः शुचिस्तस्य भविष्यति ॥४७॥

जरासंध के पुत्र सहदेव के यहाँ मार्जरि, उस के श्रुतश्रवा होगा, श्रुतश्रवा के अयुतायु, उसके निरभित्र उसके सुनक्षत्र, उसके बृहत्सेन, उसके कर्मजित, उसके सृतञ्जय, उसके विप्र और उसके शुचि होगा ॥ ४६॥४७ ॥

क्षेमोऽथ सुव्रतस्तस्माद्धर्मसूत्रः शमस्ततः ।
द्युमत्सेनोऽथ सुमतिः सुबलोऽजनिता ततः ॥४८॥

उसके क्षेम, उसके सुव्रत, उसके धर्मसूत्र, उस के शम, उसके द्युमत्सेन, उसके सुमति और उस के सुबल होगा ॥४८॥

सुनीथः सत्यजिदथ विश्वजिद्यद्रिपुंजयः ।
बार्हद्रथाश्च भूपाला भाव्याः साहस्रवत्सरम् ॥४९॥

उसके सुनीथ, उसके सत्यजित्, उसके विश्व-जित् और उसके रिपुंजय नामक पुत्र होगा, ये बृहद्रथ के वंशज राजा आगे हज़ार वर्ष तक राज्य करेंगे ॥४९॥

इति श्रीमद्भागवते नवमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

तेईसवां अध्याय

(अन्वादि का वंश-विवरण)

श्रीशुक उवाच

अनोः सभानरश्चक्षुः परोक्षश्च त्रयः सुताः ।
सभानरात्कालनरः सृञ्जयस्तत्सुतस्ततः ॥ १ ॥
जनमेजयस्तस्य पुत्रो महाशीलो महामनाः ।
उशीनरस्तितिक्षुश्च महामनस आत्मजौ ।
शिबिर्वनः शमिर्दक्षश्चत्वारोशीनरात्मजाः ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—ययाति के चौथे पुत्र अनु के सभानर, चक्षु और परोक्ष—ये तीन पुत्र हुए, उनमें से सभानर के कालनर, कालनर के सृञ्जय, उसके जनमेजय, उसके महाशील, उसके महामना नामक पुत्र हुआ, महामनाके उशीनर और तितिक्ष ये दो पुत्र हुए, उशीनर के शिबि, वन, शम और दक्ष—ये चार पुत्र हुए ॥१॥२॥

वृषा दर्भः सुवीरश्च मद्रः कैकेय आत्मजाः ।
शिवेश्चत्वार एवासंस्तितिक्षोश्च रुशद्रथः ॥ ३ ॥
ततो हेमोऽथ सुतपा बलिः सुतपसोऽभवत् ।
अङ्गवङ्गकलिङ्गाद्याः सुह्मपुण्ड्रान्ध्रसंज्ञिताः ॥ ४ ॥
जज्ञिरे दीर्घतमसो बलेः क्षेत्रे महिक्षितः ।
चक्रुः स्वनाम्ना विषयान्षडिमान्प्राच्यकांश्च ते ॥५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शिवि के वृषदर्भ, सुवीर, भद्र और कैकय-ये चार पुत्र हुए, तितिक्षु के रुशद्रथ, उसके हेम, उस के सुतपा, उसके बलिनामक पुत्र हुआ, बलि की स्त्री से दीर्घतमा नामक ऋषि के वीर्य द्वारा अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, सुह्म, पुण्ड्र और अन्ध नामके छः पुत्र हुए, जिन्होंने अपने-अपने नाम पर भारत के पूर्व में छः देश बसाये ॥३॥४॥५॥

खनपानोऽङ्गतो जज्ञे तस्माद्दिविरथस्ततः ।
सुतो धर्मरथो यस्य जज्ञे चित्ररथोऽप्रजाः ॥ ६ ॥

अङ्ग के खनपान, उसके दिविरथ उसके धर्म-रथ और उसके चित्ररथ नामका पुत्र हुआ ॥६॥

रोमपाद इति ख्यातस्तस्मै दशरथः सखा ।
शान्तां स्वकन्यां प्रायच्छदृष्यशृङ्ग उवाह ताम्॥७॥

चित्ररथ का दूसरा नाम रोमपाद था, उसके कोई सन्तान न थी, श्रीरामचन्द्रजी के पिता दशरथजी ने अपनी कन्या शान्ता अपने मित्र रोम पाद को कन्या की भांति ही रखने को दी थी; उस का पाणिग्रहण ऋष्यशृङ्ग ने किया था ॥७॥

देवेऽवर्षति यं रामा आनिन्युर्हरिणीसुतम् ।
नाट्यसंगीतवादित्रैर्विभ्रमालिङ्गनार्हणैः ॥ ८ ॥

एक बार जब रोमपाद के देश में वर्षा न हुई, तब कितनी ही वेश्यायें नाच, गान, बादन, विलास आलिंगन, पूजा और भेंटों से मोहित करके उन हरिणीके पुत्र ऋष्यशृङ्ग को उसके देशमें ले आईं॥

स तु राज्ञोऽनपत्यस्य निरूप्येष्टिं मरुत्वतः ।
प्रजामदादशरथो येन लेभेऽप्रजाः प्रजाः ॥ ९ ॥

ऋष्यशृङ्गने राजा दशरथ को पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया जिससे उनके चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥९॥

चतुरङ्गो रोमपादात्पृथुलाक्षस्तु तत्सुतः ।
बृहद्रथो बृहत्कर्मा बृहद्भानुश्च तत्सुताः ॥१०॥

इस रोमपाद के चतुरङ्ग और पृथुलाक्ष नामक पुत्र हुआ, पृथुलाक्ष के बृहद्रथ, बृहत्कर्मा और बृहद्भानु-ये तीन पुत्र हुए ॥१०॥

आद्याद्बृहन्मनास्तस्माज्जयद्रथ उदाहृतः ।
विजयस्तस्य संभूत्यां ततो धृतिरजायत ॥११॥

बृहद्रथ के बृहन्मना, उसके जयद्रथ, उसके विजय और विजय के संभूति नाम की स्त्री से धृति नामक पुत्र हुआ ॥११॥

ततो धृतव्रतस्तस्य सत्कर्माऽधिरथस्ततः ।
योऽसौ गङ्गातटे क्रीडन्मञ्जूषान्तर्गतं शिशुम्॥१२॥

धृतके धृतव्रत, उसके सत्कर्मा और उसके अधिरथ नामक पुत्र हुआ, यह अधिरथ एक बार गङ्गा-तट पर विहार कर रहा था कि उसे जलमें बहती हुई एकपेटी दिखाई दी, उसने उसे निकाल कर खोला तो उसमें से एक बालक निकला जिसे इस राजाने अपुत्र होनेके कारण पुत्र रूपसे रक्खा॥

कुन्यापविद्धं कानीनमनपत्योकरोत्सुतम् ।
वृषसेनः सुतस्तस्य कर्णस्य जगतीपतेः ॥१३॥

पांडवों की माता जब क्वांरी थी तब उससे सूर्यदेव के प्रभाव से एक पुत्र उत्पन्न हुआ था. कुन्ती ने उसे सन्दूक में बन्द करके गङ्गाजीमें बहा दिया था, वही सन्दूक राजा अधिरथ को मिला, उसमें निकले हुए बालक का नाम कर्ण था, कर्णके वृषसेन नाम का पुत्र हुआ ॥१३॥

द्रुह्योश्च तनयो बभ्रुः सेतुस्तस्यात्मजस्ततः ।
आरब्धस्तस्य गान्धारस्तस्य धर्मसुतो धृतः ॥१४॥
धृतस्य दुर्मनास्तस्मात्प्रचेताः प्राचेतसं शतम् ।
म्लेच्छाधिपतयोऽभूवन्नुदीचीं दिशमाश्रिताः॥१५॥

ययाति के पुत्र द्रुह्यु के बभ्रु, उसके सेतु, उस के आरब्ध, उसके गान्धार, उसके धर्म, उसके धृत उसके दुर्मना, उसके प्रचेता और प्रचेता के सौ पुत्र हुए, वे सब उत्तर दिशा के म्लेच्छों पर शासन करते हैं ॥१४॥१५॥

तुर्वसोश्च सुतो वह्निर्वह्नेर्भर्गोऽथ भानुमान् ।
त्रिभानुस्तत्सुतोऽस्यापि करन्धम उदाधीः॥१६॥
मरुतस्तत्सुतोपुत्रः पुत्रं पौरवमन्वभूत् ।
दुष्यन्तः स पुनर्भेजे स्वं वंशं राज्यकामुकः॥१७॥

ययातिके पुत्र तुर्वसु के वह्नि, उसके भर्ग उसके भानुमान, उसके त्रिभानु, उसके उदार बुद्धि वाला करन्धम, उसके मरुत नाम का पुत्र हुआ, वह निःसन्तान था, इसलिये उसने पुरु-वंशी राजा दुष्यन्त को अपना पुत्र माना, कुछ दिन बाद राजा दुष्यन्त अपनी इच्छासे ही फिर पुरु-वंशी होगया॥

ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशं नरर्षभ ।
वर्णयामि महापुण्यं सर्वपापहरं नृणाम् ॥१८॥

हे महाराज ! अब मैं ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का वंश कहताहूँ जो कि परम पवित्र और मनुष्यों के सब पाप हरने वाला है ॥१८॥

यदोर्वंशं नरः श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
यत्रावतीर्णो भगवान्परमात्मा नराकृतिः ॥१९॥

जो मनुष्य यदु का वंश सुने, वह सब पापोंसे छूट जाय, क्योंकि उसमें परमात्मा भगवान् हरि ने मनुष्य का रूप धारण करके अवतार लियाहै॥१९॥

यदोः सहस्रजित्क्रोष्टा नलो रिपुरिति श्रुताः ।
चत्वारः सूनवस्तत्र शतजित्प्रथमात्मजः ॥२०॥
महाहयो वेणुहयो हैहयश्चेति तत्सुताः ।
धर्मस्तु हैहयसुतो नेत्रः कुन्तेः पिता ततः ।
सोहंजिरभवत्कुन्तेर्महिष्मान्भद्रसेनकः ॥२१॥
दुर्मदो भद्रसेनस्य धनकः कृतवीर्यसूः ।
कृताग्निः कृतवर्मा च कृतौजा धनकात्मजाः॥२२॥

यदु के सहस्रजित, क्रोष्टा, नल और रिपु–यह चार पुत्र हुए, सहस्रजित् के शतजित्, शतजित् के महाहय, वेणुहय और हैहय–ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए, हैहय के धर्म, धर्म के नेत्र, नेत्रके कुन्ती,कुन्ती के सोहंजि, उसके महिष्मान, उसके भद्रसेनक, उसके दुर्मद और धनक दो पुत्र हुए, धनक के कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और कृतौजा–यह चार पुत्र हुए॥ २०॥२१॥२२॥

अर्जुनः कृतवीर्यस्य सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत् ।
दत्तात्रयाद्धरेरंशात्प्राप्तयोगमहागुणः ॥२३॥

कृतवीर्य के सहस्रार्जुन नामक पुत्र हुआ, यह सातों द्वीपों का राजा था, इसे भगवान् के अंशावतार गुरु दत्तात्रेयजी से योग की सिद्धियां प्राप्त हुई थीं ॥२३॥

न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः ।
यज्ञदानतपोयोगश्रुतवीर्यजयादिभिः ॥२४॥

कोई भी राजा यज्ञ, दान, तप, योग शास्त्र के अभ्यास, पराक्रम और जय आदि के द्वारा इसकी समता न कर सकता था ॥२४॥

पञ्चाशीतिसहस्राणि ह्यव्याहतबलः समाः ।
अनष्टवित्तस्मरणो बुभुजेऽक्षय्यषड्वसु ॥२५॥

इसने पचासी हज़ार वर्ष तक किसी प्रकारकी इन्द्रिय-बल में कमी आये बिना उसने छः इन्द्रियों के अखण्ड विषयों का भोग किया, इसका स्मरण करने से ही मनुष्यका नाश नहीं होता है ॥२५॥

तस्य पुत्रसहस्रेषु पञ्चैवोर्वरिता मृधे ।
जयध्वजः शूरसेनो वृषभो मधुरूर्जितः ॥२६॥

उस के हज़ारों पुत्र थे, परन्तु श्रीपरशुरामजी के युद्ध में से केवल जयध्वज, शूरसेन; वृषभ, मधु और ऊर्जित–ये पाँच पुत्र बचे थे ॥२६॥

जयध्वजात्तालजङ्घस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ।
क्षत्रं यत्तालजङ्घाख्यमौर्वतेजोपसंहृतम् ॥२७॥

जयध्वज के तालजंघ और तालजंघ के सौ पुत्र हुए, यह तालजंघी क्षत्रिय-वंश और्व ऋषि के प्रताप से सगर द्वारा मारा गया ॥२७॥

तेषां ज्येष्ठो वीतिहोत्रो वृष्णिः पुत्रो मधोः स्मृतः ।
तस्य पुत्रशतं त्वासीद्वृष्णिज्येष्ठं यतः कुलम्॥२८॥
माधवा वृष्णयो राजन्यादवाश्चेति संज्ञिताः ।
यदुपुत्रस्य च क्रोष्टोः पुत्रो वृजिनवांस्ततः ॥२९॥

उनमें बड़ा वीतिहोत्रथा, सहस्रार्जुन के पुत्र मधु के सौ पुत्र थे, उनमें वृष्णि सबसे बड़ा था, इन वृष्णि, मधु और यदु के नाम से उनके वंश वाले वृष्णि, माधव और यादव कहलाये, यदु के पुत्र क्रोष्टा के वृजिनवान् नाम का पुत्र हुआ ॥२८॥२९॥

श्वाहिस्ततो रुशेकुर्वै तस्य चित्ररथस्ततः ।
शशबिन्दुर्महायोगी महाभोजो महानभूत् ॥३०॥

उसके श्वाहि, उसके रुशेकु, उसके चित्ररथ, उसके शशिविन्दु परम योगी पुत्र हुआ जो महान् वैभवों का भोक्ता भी था ॥३०॥

चतुर्दशमहारत्नश्चक्रवर्त्यपराजितः ।
तस्य पत्नीसहस्राणां दशानां सुमहायशाः ॥३१॥

इसके पास चौदह रत्न थे, वह किसीसे पराजित न हुआ था और चक्रवर्त्ति था, उसके दस हज़ार स्त्रियां थीं ॥३१॥

दशलक्षसहस्राणि पुत्राणां तास्वजीजनत् ।
तेषां तु षट् प्रधानानां पृथुश्रवस आत्मजः॥३२॥

उन स्त्रियों से एक अरब पुत्र हुए, उनमें से छः पुत्र मुख्य थे, उन छः में से पृथुश्रवा के धर्म नामक पुत्र हुआ ॥३२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धर्मो नामोशना तस्य हयमेधशतस्य याट् ।
तत्सुतो रुचकस्तस्य पञ्चासन्नात्मजाः शृणु ॥३३॥

उस के उशना नामक पुत्र हुआ जिसने सौ अश्वमेध यज्ञ किये, उशना के रुचक और रुचक के पाँच पुत्र हुए सो सुनो, पुरुजित, रुक्म, रुक्मेषु पृथु और ज्यामघ ॥ ३३ ॥

पुरुजिद्रुक्मरुक्मेषुपृथुज्यामघसंज्ञिताः ।
ज्यामघस्त्वप्रजोऽप्यन्यां भार्यां शैब्यापतिर्भयात् ३४
नाविन्दच्छत्रुभवनाद्भोज्यां कन्यामहारषीत् ।
रथस्थां तांनिरीक्ष्याह शैब्या पतिममर्षिता ॥३५॥

यद्यपि ज्यामघ निःसंतान था, फिर भी वह पहली स्त्री शैब्या के डर से दूसरा व्याह न कर सका, एक समय वह शत्रु के यहाँ से भोज्या नाम की कन्या को हरण कर के रथमें बिठाये हुए आ रहा था, उसे देखकर शैब्या ने क्रोधपूर्वक कहा कि रे कपटी ! मेरे बैठने के रथमें तू इसे बिठालाया है।

केयं कुहक मत्स्थानं रथमारोपितेति वै ।
स्नुषा तवेत्यभिहिते स्मयन्ती पतिमब्रवीत् ॥३६॥

राजा ज्यामघ ने भयभीत होकर कहा कि यह तेरे पुत्र की वहू है, तव शैव्या ने हँसते हुए कहा कि मैं स्वयं वाँझ हूँ, दूसरे मेरे सौत भी नहीं है, फिर यह मेरे पुत्र की वहू कैसे होसकती है? ॥३६॥

अहं वन्ध्याऽसपत्नी च स्नुषा मे युज्यते कथम् ।
जनयिष्यसि यं राज्ञि तस्येयमुपयुज्यते ॥३७॥

ज्यामघ वोला–हे रानी ! तेरे जो पुत्र होगा यह उसकी वहू होगी, उस समय देवताओं और पितरों ने दया पूर्वक 'तथास्तु' कह दिया, क्योंकि ज्यामघ ने वहुत दिनों तक उनका आराधन किया था ॥ ३७ ॥

अन्वमोदन्त तद्विश्वेदेवाः पितर एव च ।
शैब्या गर्भमधात्काले कुमारं सुषुवे शुभम् ।
स विदर्भ इति प्रोक्त उपयेमे उषां सतीम् ॥३८॥

इसलिये शैव्या के गर्भ रहगया और उसके समय पाकर एक पुत्र हुआ, जिसका नाम विदर्भ था, उसने उस सती भोज्या के साथ व्याह किया॥

इति श्रीमद्भागवते नवमस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

चौबीसवां अध्याय

(राजा विदर्भ से राम-कृष्ण तक का वंश वर्णन)

श्रीशुक उवाच

तस्यां विदर्भोऽजनयत्पुत्रौ नाम्ना कुशक्रथौ ।
तृतीयं रोमपादं च विदर्भकुलनन्दनम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी वोले–विदर्भ राजा के भोज्या नाम की स्त्री से कुश, क्रथ और रोमपाद–ये तीन पुत्र हुए, उनमें से रोमपाद वंश को आनन्द देने वाला था ॥१॥

रोमपादसुतो बभ्रुर्बभ्रोः कृतिरजायत ।
उशिकस्तत्सुतस्तस्माच्चेदिश्चैद्यादयो नृप ॥ २ ॥
क्रथस्य कुन्तिः पुत्रोऽभूद्धृष्टिस्तस्याथ निर्वृतिः ।
ततो दशार्हो नाम्नाऽभूत्तस्य व्योमः सुतस्तत ॥३॥
जीमूतो विकृतिस्तस्य यस्य भीमरथः सुतः ।
ततो नवरथः पुत्रो जातो दशरथस्ततः ॥ ४ ॥
करम्भिः शकुनेः पुत्रो देवरातस्तदात्मजः ।
देवक्षत्रस्ततस्तस्य मधुः कुरुवशादनुः ॥ ५ ॥
पुरुहोत्रस्त्वनोः पुत्रस्तस्यायुः सात्वतस्ततः ।
भजमानो भजिर्दिव्यो वृष्णिर्देवावृधोऽन्धकः ॥ ६ ॥
सात्वतस्य सुताः सप्त महाभोजश्च मारिष ।
भजमानस्य निम्लोचिः किंकिणो धृष्टिरेव च ॥ ७ ॥

हे राजन् ! रोमपाद के वभ्रु, वभ्रु के कृति, उसके उशिक, उसके चेदि और उसके दमघोष आदि पुत्र हुए, क्रथ के कुन्ति, उसके धृष्टि, उसके निर्वृत्ति, उसके दशार्ह, उसके व्योम, उसके जीमूत, उसके विकृति, उसके भीमरथ, उसके नवरथ, उसके दशरथ, उसके शकुनि, उसके करंभि, उसके देवरात, उसके देवक्षत्र, उसके मधु उसके कुरुवश, उसके अनु, हे आर्य ! उसके पुत्र होत्र, उसके आयु, उसके सात्वत, सात्वत के भजमान्, भजि, दिव्य, वृष्णि, देवावृध, अंधक और महाभोज–यह सात पुत्र हुए, हे राजन् ! भजमान के एक स्त्री से निम्लोचि, किंकिण और वृष्णि–ये तीन पुत्र हुए २॥३॥४॥५॥६॥७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एकस्यामात्मजाः पत्न्यामन्यस्यां च त्रयः सुताः।
शताजिच्च सहस्राजिदयुताजिदिति प्रभो ॥८॥

दूसरी स्त्री से शतजित्, सहस्रजित् और अयुतचित–नाम के तीन पुत्र हुए ॥८॥

वभ्रुर्देवावृधसुतस्तयोः श्लोकौ पठन्त्यमू।
यथैव शृणुमो दूरात्संपश्यामस्तथान्तिकात् ॥९॥

सात्वत के पाँचवें पुत्र देवावृध के वभ्रु नाम का पुत्र हुआ, इन दोनों के विषय में दो श्लोक कहे जाते हैं कि–देवावृध और वभ्रु को जैसा दूर से सुनते थे, वैसे ही पास से पास आने पर देखने में आये ॥ ९ ॥

वभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः।
पुरुषाः पञ्चषष्टिश्च षट् सहस्राणि चाष्ट च ॥१०॥
येऽमृत्वमनुप्राप्ता वभ्रोर्देवावृधादपि।
महाभोजोऽपि धर्मात्मा भोजा आसंस्तदन्वये ॥११॥

वभ्रु मनुष्यों में श्रेष्ठ है, देवावृध देवताओं के समान है, छः हज़ार तिहत्तर पुरुष वभ्रु और देवावृध के उपदेश से मोक्ष पा गये हैं, सात्वत का सातवां पुत्र महाभोज बड़ा धर्मात्मा हुआ, उस के वंश में भोज नाम का कुल उत्पन्न हुआ १०॥११

वृष्णेः सुमित्रः पुत्रोऽभूद्युधाजिच्च परंतप।
शिनिस्तस्यानमित्रश्च निघ्नोऽभूदनमित्रतः ॥१२॥
सत्राजितः प्रसेनश्च निघ्नस्याप्यासतुः सुतौ।
अनमित्रसुतो योऽन्यः शिनिस्तस्याथ सत्यकः१३॥
युयुधानः सात्यकिर्वै जयस्तस्य कुणिस्ततः।
युगंधरोऽनमित्रस्य वृष्णिः पुत्रोऽपरस्ततः ॥१४॥
श्वफल्कश्चित्ररथश्च गांदिन्यां च श्वफल्कतः।
अक्रूरप्रमुखा आसन्पुत्रा द्वादश विश्रुताः ॥१५॥
आसङ्गः सारमेयश्च मृदुरो मृदुविद्गिरिः।
धर्मवृद्धः सुवर्मा च क्षेत्रोपेक्षोऽरिमर्दनः ॥१६॥
शत्रुघ्नो गन्धमादश्च प्रतिबाहुश्च द्वादश।
तेषां स्वसा सुचीराख्या द्वावक्रूरसुतावपि ॥१७॥

हे परंतप! सात्वत के चौथे पुत्र वृष्णि के सुमित्र, उसके युधाजित, उसके शिनि और अनमित्र– यह दो पुत्र हुए, अनमित्र के निघ्न, निघ्न के सत्राजित और प्रसेन–यह दो पुत्र हुए, अनमित्र के दूसरे पुत्र शिनि के सत्यक, सत्यक के युयुधान, उसके जय, जयके कुणि, कुणिके युगंधर हुआ, अनमित्र के तीसरे पुत्र वृष्णि के श्वफल्क और चित्ररथ–ये दो पुत्र हुए, श्वफल्क के गांदिनी नामकी स्त्रीसे अक्रूर तो प्रधान पुत्र हुए और उनके सिवा बारह और भी हुए, उनके नाम यह हैं– आसंग; सारमेय, मृदुर, मृदवित्, गिरि, धर्मवृद्ध, सुकर्मा, क्षेमोपेक्ष, अरिमर्दन, शत्रघ्न; गन्धमाद और प्रतिबाहु–उसके सुचीरा नाम की एक कन्या हुई, अक्रूर के दो पुत्र हुए ॥१२।१३।१४।१५।१६।१७॥

देववानुपदेवश्च तथा चित्ररथात्मजाः।
पृथुर्विदूरथाद्याश्च बहवो वृष्णिनन्दनाः ॥१८॥

उनके नाम देववान् और उपदेव हैं, अक्रूर के काका चित्ररथ के पृथु और विदूरथ आदि अनेक यदुनन्दन हुए ॥१८॥

कुकुरो भजमानश्च शुचिः कम्बलबर्हिषः।
कुकुरस्त सुतो वह्निर्विलोमा तनयस्ततः ॥१९॥

सात्वत के छठवें पुत्र अन्धक के कुकुरु, भजमान शुचि और कम्बल बर्हिष–ये पुत्र हुए, ककुर के वह्नि और वह्नि के विलोमा पुत्र हुआ ॥१९॥

कपोतरोमा तस्यानुः सखा यस्य च तुम्बुरुः।
अन्धको दुन्दुभिस्तस्य दरिद्योतः पुनर्वसुः ॥२०॥
तस्याहुकश्चाहुकी च कन्या चैवाहुकात्मजौ।
देवकश्चोग्रसेनश्च चत्वारो देवकात्मजाः ॥२१॥
देववानुपदेवश्च सुदेवो देववर्धनः।
तेषां स्वसारः सप्तासन्धृतदेवादयो नृप ॥२२॥
शान्तिदेवोपदेवा च श्रीदेवा देवरक्षिता।
सहदेवा देवकी च वसुदेव उवाह ताः ॥२३॥

उसके कपोतरोमा; उसके अनु हुआ जिसका सखा तुंबरु नाम का गन्धर्व था, अन्धकके दुन्दुभि उसके अरिद्योत, उसके पुनर्वसु, उसके आहुकपुत्र और आहु की कन्या हुई, आहु के देवक और उग्रसेन नाम के दो पुत्र हुए, हे राजन्! देवक के देववान्, उपदेव, सुदेव और देववर्द्धन–ये चार पुत्र हुए और धृतदेवा, शान्तिदेव, उपदेवा श्रीदेवा, देवरक्षिता सहदेवा और देवकी–ये सात कन्यायें हुईं जिनको वसुदेवने विवाह लिया ॥२०।२१॥२२॥२३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कंसः सुनामा न्यग्रोधः कङ्कः शंकुः सुहूस्तथा ।
राष्ट्रपालोऽथ सृष्टिश्च तुष्टिमानौग्रसेनयः ॥२४॥

उग्रसेन के कंस, सुनामा, न्यग्रोध, कंक, शंकु, सुहु, राष्ट्रपाल, सृष्टि और तुष्टिमान्–ये नौ पुत्र हुए ॥ २४ ॥

कंसा कंसवती कङ्का शूरभू राष्ट्रपालिका ।
उग्रसेनदुहितरो वसुदेवानुजस्त्रियः ॥२५॥

और कंसा, कंसवती, कङ्का, शूरभू और राष्ट्रपालिका–ये पाँच कन्यायें हुईं जो वसुदेवजी के छोटे भाइयों को व्याही गईं ॥२५॥

शूरो विदूरथादासीद्भजमानः सुतस्ततः ।
शिनिस्तस्मात्स्वयंभोजो हृदीकस्तत्सुतो मतः॥२६॥

चित्ररथ के पुत्र विदूरथ के शूर, शूर के भजमान, उसके शिनि और शिनि के स्वयंभोज उसके हृदीक नामक पुत्र हुआ ॥२६॥

देवबाहुः शतधनुः कृतवर्मेति तत्सुताः ।
देवमीढस्य शूरस्य मारिषा नाम पत्न्यभूत्॥२७॥

हृदीक के देवबाहु, शतधनु, कृतवर्मा और देवमीढ–ये चार पुत्र हुए, देवमीढ के शूर हुआ, उसके मारिषा नाम की स्त्री थी ॥२७॥

तस्यां स जनयामास दश पुत्रनकल्मषान् ।
वसुदेवं देवभागं देवश्रवसमानकम् ॥२८॥
सृञ्जयं श्यामकं कङ्कं शामीकं वत्सकं वृकम् ।
देवदुन्दुभयो नेदुरानकायस्य जन्मनि ॥२९॥
वसुदेवं हरेः स्थानं वदन्त्यानकदुन्दुभिम् ।
पृथा च श्रुतदेवा च श्रुतिकीर्तिः श्रुतश्रवाः ॥३०॥
राजाधिदेवी चैतेषां भगिन्यः पञ्च कन्यकाः ।
कुन्तेः सख्युः पिता शूरो ह्यपुत्रस्य पृथामदात्३१॥

उसके वसुदेव, देवभाग, देवश्रवा, आनक, सृञ्जय, श्यामक, कङ्क, शमीक, वत्सक और वृक–ये दस पुत्र हुए, जिन वसुदेवजी के जन्म समय देवताओं ने दुन्दुभि बजाई थी, इसलिये भगवान् के प्रकट होने के आधार रूप वसुदेवजीको आनक दुन्दुभि भी कहते हैं और शूर के पृथा (कुन्ती) श्रुतदेवा, श्रुतकीर्त्ति, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी–ये पाँच कन्यायें हुईं, पृथा के पिता शूर ने अपनी पृथा (कुन्ती) को अपने मित्र कुन्तिभोज को कि जो निःसन्तान था, कन्या के रूप में रखने को दी, इसलिये इसे कुन्ती भी कहते हैं ॥२८॥२९॥३०॥३१॥

साऽऽप दुर्वाससो विद्यां देवहूतीं प्रतोषितात् ।
तस्या वीर्यपरीक्षार्थमाजुहाव रविं शुचिम् ॥३२॥

इस कुन्ती ने दुर्वासा ऋषि को प्रसन्न किया, तब दुर्वासा ने देवहूती नाम की विद्या दी, उस विद्या के चमत्कार की परीक्षा करनेके लिये उसने परम पवित्र सूर्यदेव का आह्वान किया ॥३२॥

तदैवोपागतं देवं वीक्ष्य विस्मितमानसा ।
प्रत्ययार्थं प्रयुक्ता मे याहि देव क्षमस्व मे ॥३३॥

परन्तु ज्यों ही सूर्यदेव उसके पास आये त्यों ही उन्हें देखकर कुन्ती ने चकित होकर कहा कि–मैंने तो केवल चमत्कार देखने के लिये यह प्रयोग किया था, इसलिये आप मेरा अपराध क्षमा करो और अपने स्थान को जाओ ॥३३॥

अमोघं दर्शनं देवि आधत्से त्वयि चात्मजम् ।
योनिर्यथा न दुष्येत कर्ताऽहं ते सुमध्यमे ॥३४॥

तब सूर्यदेव ने उत्तर दिया कि मेरा दर्शन तो अमोघ है, इसलिये मैं तुझमें गर्भ धारण करूँगा, हाँ तू कांरी है, इसलिये मैं ऐसा ही उपाय करूँगा कि जिसमें तेरी योनि दूषित न हो सके ॥ ३४ ॥

इति तस्यां स आधाय गर्भं सूर्यो दिवं गतः ।
सद्यः कुमारः संजज्ञे द्वितीय इव भास्करः ॥३५॥

ऐसा कह कर सूर्य देव उसमें गर्भ स्थापित करके स्वर्ग को चले गये, तब कुन्ती के उसी समय दूसरे सूर्य के समान कुमार उत्पन्नहुआ ॥

तं साऽत्यजन्नदीतोये कृच्छ्राल्लोकस्य बिभ्यती ।
प्रपितामहस्तामुवाह पाण्डुर्वै सत्यविक्रमः ॥३६॥

लोक निन्दा से डरती हुई कुन्तीने उस बालक को एक पेटी में बन्द करके गङ्गाजल में डाल दिया, उस कुन्ती का तुम्हारे परदादा सत्यपराक्रमी पांडु ने पाणिग्रहण किया ॥३६॥

श्रुतदेवां तु कारूषो वृद्धशर्मा समग्रहीत् ।
यस्यामभूद्दन्तवक्र ऋषिशप्तो दितेः सुतः ॥३७॥

कुरूष देश के राजा वृद्धशर्मा ने श्रुतदेवा के साथ विवाह किया, जिससे सनकादिक के शापके कारण दन्तवक्र नामक दैत्य हुआ ॥३७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कैकेयो धृष्टकेतुश्च श्रुतकीर्तिमविन्दत ।
संतर्दनादयस्तस्यां पञ्चासन्कैकयाः सुताः ॥३८॥

कैकय देश के राजा धृष्टकेतु ने श्रुतकीर्त्ति के साथ विवाह किया, उसके सन्तर्दन आदि पाँच पुत्र हुए ॥३८॥

राजाधिदेव्यामावन्त्यौ जयसेनोऽजनिष्ट ह ।
दमघोषश्चेदिराजः श्रुतश्रवसमग्रहीत् ॥३९॥

उज्जैन के राजा जयसेन के यहाँ अधिदेवी से विन्द, अनुविन्द नाम के दो पुत्र हुए, चेदि के राजा दमघोष ने श्रुतश्रवा के साथ विवाह किया॥

शिशुपालः सुतस्तस्याः कथितस्तस्य संभवः ।
देवभागस्य कंसायां चित्रकेतुबृहद्बलौ ॥४०॥

उसके शिशुपाल हुआ, जिसके जन्म के विषय में पहले कह चुका हूँ, देवभाग की कंसा स्त्री से चित्रकेतु और बृहद्बल नामक दो पुत्र हुए ॥४०॥

कंसवत्यां देवश्रवसः सुवीर इषुमांस्तथा ।
कङ्कायामानकाज्जातः सत्यजित्पुरुजित्तथा ॥४१॥

देवश्रवा के कंसावती स्त्री से सुवीर और इषुमान् नाम के दो पुत्र हुए, आनक के कङ्का नाम की स्त्री से सत्यजित् और पुरुजित नाम के दो पुत्र हुए ॥ ४१ ॥

सृञ्जयो राष्ट्रपाल्यां च वृषदुर्मर्षणादिकान् ।
हरिकेशहिरण्याक्षौ श्यामकः शूरभूम्यां च ॥४२॥

सृञ्जय के राहुपाली स्त्री से वृष और दुर्मर्षण आदि पुत्र हुए, श्यामक के शूरभूमि स्त्री से हरिकेश और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र हुए ॥ ४२ ॥

मिश्रकेश्यामप्सरसि वृकादीन्वत्सकस्तथा ।
तक्षपुष्करशालादीन्दुर्वाक्ष्यां वृक आदधे ॥४३॥

वत्सक के मिश्रकेशी अप्सरा से वृक आदि पुत्र हुए, वृक के दुर्वाक्षी नामकी स्त्री से तक्ष, पुष्कर और शाल आदि पुत्र हुए ॥४३॥

सुमित्रार्जुनपालादीन् शमीकात्तु सुदामिनी ।
कङ्कश्च कर्णिकायां वै ऋतधामजयावपि ॥४४॥

शमीक के सुदामिनी स्त्री से सुमित्र, अर्जुन व पाल आदि पुत्र हुए, कङ्क के कर्णिका स्त्री से ऋतधामा और जय–ये दो पुत्र हुए ॥४४॥

पौरवी रोहिणी भद्रा मदिरा रोचना इला ।
देवकीप्रमुखा आसन्पत्न्यय आनकदुन्दुभेः ॥४५॥

वसुदेवजी के पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला और देवकी आदि अन्य स्त्रियां भी थीं ॥ ४५ ॥

बलं गदं सारणं च दुर्मदं विपुलं ध्रुवम् ।
वसुदेवस्तु रोहिण्यां कृतादीनुदपादयत् ॥४६॥

उनमें रोहिणी से बल, गद, सारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव और कृत आदि पुत्र उत्पन्न हुए ॥४६॥

सुभद्रो भद्रबाहश्च दुर्मदो भद्र एव च ।
पौरव्यास्तनया ह्येते भूताद्या द्वादशाभवन् ॥४७॥

पौरवी नाम की स्त्री से सुभद्र, भद्रबाहु, दुर्मद भद्र आदि बारह पुत्र हुए ॥४७॥

नन्दोपनन्दकृतकशूराद्या मदिरात्मजाः ।
कौसल्या केशिनं त्वेकमसूत कुलनन्दनम् ॥४८॥

मदिरा के नन्द, उपनन्द, कृतक और शूर आदि पुत्र हुए, केशी वंश को आनन्द देने वाला पुत्र कौशिल्या से हुआ ॥४८॥

रोचनायामतो जाता हस्तहेमाङ्गदादयः ।
इलायामुरुवल्कादीन्यदुमुख्यानजीजनत् ॥४९॥

रोचना से हस्त, हेमांगद आदि पुत्रहुए, इला से यदु, उरुवल्क आदि पुत्र हुए ॥४९॥

विपृष्ठो धृतदेवायामेक आनकदुन्दुभेः ।
शान्तिदेवात्मजा राजन् श्रमप्रतिश्रुतादयः ॥५०॥

आनक दुन्दुभि वसुदेवजी के धृतदेवा से विपृष्ठ नाम का एक पुत्र हुआ, हे राजन् ! शान्तदेवा से श्रम प्रतिश्रुति आदि पुत्र हुए ॥५०॥

राजानः कल्पवर्षाद्या उपदेवासुता दश ।
वसुहंससुवंशाद्याः श्रीदेवायास्तु षट् सुताः ॥५१॥

उपदेवा नाम की स्त्री से कल्प व वर्ष आदि दस पुत्र उत्पन्न हुए, श्रीदेवासे से वसु, हंस और सुवंश आदि छः पुत्र हुए ॥५१॥

देवरक्षितया लब्धा नव चात्र गदादयः ।
वसुदेवः सुतानष्टावादधे सहदेवया ॥५२॥

देवरक्षिता से गद आदि नौ पत्र हुए, जैसे धर्म

पुरुविश्रुतमुख्यांस्तु साक्षाद्धर्मो वसूनिव ।
वसुदेवस्तु देवक्यामष्ट पुत्रानजीजनत् ॥५३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के वसु नाम के आठ पुत्र हुए वैसे ही वसुदेव जी के सहदेवा नाम की स्त्री से पूरु व विश्रुत आदि आठ पुत्र हुए, उन्हीं उदार चित्त वसुदेवजी के देवकी से आठ पुत्र हुए ॥५२॥॥५३॥

कीर्तिमन्तं सुषेणं च भद्रसेनमुदारधीः ।
ऋजुं संमर्दनं भद्रं संकर्षणमहीश्वरम् ॥५४॥
अष्टमस्तु तयोरासीत्स्वयमेव हरिः किल ।
सुभद्रा च महाभागा तव राजन्पितामही ॥५५॥

कीर्त्तिमान. सुषेण, भद्रसेन; ऋजु, संमर्दन, भद्र, शेषावतार संकर्षण–ये सात पुत्र हुए और आठवें साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम स्वयं ही प्रकट हुए, और हे राजन् ! तुम्हारी दादी महाभागा सुभद्रा नाम की एक कन्या हुई ॥५४॥॥५५॥

यदा यदेह धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः ।
तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरिः ॥५६॥

जब-जब इस संसार में धर्म की क्षय और पाप की वृद्धि होती है, तब-तब सर्वेश्वर भगवान् स्वयं अवतार धारण करते हैं ॥ ५६ ॥

नह्यस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते ।
आत्ममायां विनेशस्य परस्य द्रष्टुरात्मनः ॥५७॥

हे राजन् ! असंग, ईश्वर, साक्षी और सर्व-व्यापक इन भगवान् के अपनी माया के सिवा कोई भी दूसरा जन्म व कर्म का कारण नहीं है ॥

यन्मायाचेष्टितं पुंसः स्थित्युत्पत्त्याप्ययाय हि ।
अनुग्रहस्तन्निवृत्तेरात्मलाभाय चेष्यते ॥५८॥

जिन भगवान् की माया की चेष्टा पुरुषके जन्म पालन और संहार के लिये होती है, उनकी कृपा माया को दूर करके मोक्ष के लिये होती है ॥५८॥

अक्षौहिणीनां पतिभिरसुरैर्नृपलाञ्छनैः ।
भुव आक्रम्यमाणाया अभाराय कृतोद्यमः ॥५९॥
कर्माण्यपरिमेयानि मनसापि सुरेश्वरैः ।
सहसंकर्षणश्चक्रे भगवान्मधुसूदनः ॥६०॥

केवल राजसी चिह्न धारण करने वाले, अक्षौहणियों के पति, दैत्यों के भार से दबी हुई पृथ्वी का भार उतारने के लिये जिन्होंने बलदेवजी के साथ अवतार लिया है, उन श्रीकृष्ण भगवान् ने ऐसे-ऐसे कार्य किये हैं, जिन पर देवता भी तर्क नहीं कर सकते ॥५९॥६०॥

कलौ जनिष्यमाणानां दुःखशोकतमोनुदम् ।
अनुग्रहाय भक्तानां सुपुण्यं व्यतनोद्यशः ॥६१॥

उन्होंने कलियुग में उत्पन्न होने वाले अपने भक्तों पर दया करने के लिये परम पवित्र और दुःख, शोक व अज्ञान को दूर करने वाली अपनी कीर्त्ति का विस्तार किया है ॥६१॥

यस्मिन्सत्कर्णपीयूषे यशस्तीर्थवरे सकृत् ।
श्रोत्राञ्जलिरुपस्पृश्य धुनुते कर्मवासनाम् ॥६२॥

साधुओं के कानों को अमृत रूप भगवान् के इस यश रूपी श्रेष्ठ तीर्थ में जो मनुष्य एक बार भी काल रूपी अञ्जलि से आचमन करे, वह कर्म-वासना से छूट जाय ॥ ६२ ॥

भोजवृष्ण्यन्धकमधुशूरसेनदशार्हकैः ।
श्लाघनीयेहितः शश्वत्कुरुसृञ्जयपाण्डुभिः ॥६३॥
स्निग्धस्मितेक्षितोदारैर्वाक्यैर्विक्रमलीलया ।
नृलोकं रमयामास मूर्त्या सर्वाङ्गरम्यया ॥६४॥

भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन, दशार्ह वंशीय यादव और कुरु, सृञ्जय पाण्डु वंश के राजागण जिनके चरित्र की निरन्तर बड़ाई करते हैं, ऐसे श्रीकृष्ण भगवान् ने स्नेह मय मन्द हास्य युक्त चितवन से अपने अति उदार वाक्य और पराक्रम मयी लीलासे तथा सर्वाङ्ग अत्यन्त सुन्दर मूर्त्ति से समस्त जगत् को रमण कराया ॥६३॥६४॥

तस्याननं मकरकुण्डलचारुकर्णभ्राजत्कपोल सुभगं सविलासहासम् । नित्योत्सवं न ततृपुर्दृ शिभिः पिबन्त्यो नार्यो नराश्च मुदिताः कुपिता निमेश्च ॥६५॥

जिनके मुखारविन्द पर मकराकृत और सुन्दर कुण्डलों की शोभा हो रही है, उनकी कान्ति से कपोलों की छवि छा रही है, सुन्दर विलास सहित हास्य प्रकट हो रहा है, तथा नित्य का उत्सव सा बन रहा है, उन श्रीकृष्णचन्द्रके मुखार विन्द का आनन्द पूर्वक नेत्रों से दर्शन करते हुए नगर के स्त्री पुरुष तृप्त न होकर, दर्शन में विघ्न करने वाले पलकों पर बड़ा ही क्रोध करतेथे ॥६४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जातो गतः पितृगृहाद्व्रजमेधितार्थो हत्वा रिपून्सुतशतानि कृतोरुदारः। उत्पाद्य तेषु पुरुषः क्रतुभिः समीजे आत्मानमात्मनिगमं प्रथयञ्जनेषु॥

ये श्रीकृष्ण भगवान् पहले अपने पुरुषोत्तम रूप से प्रकट हुए, फिर मनुष्य का रूप धारण कर पिता के घर से व्रज में पधारे, वहाँ व्रजवासियों के उन्होंने मनोरथ पूर्ण किये, शत्रुओंका बध किया हज़ारों स्त्रियों से विवाह किया, उन स्त्रियों से हज़ारों पुत्र उत्पन्न किये और लोकों में वेद मार्ग का प्रचार करने के लिये अनेक यज्ञों के द्वारा अपने ही स्वरूप का यजन किया ॥६६॥

पृथ्व्याः स वै गुरुभरं क्षपयन्कुरूणामन्तः समुत्थकलिना युधि भूपचम्वः। दृष्ट्या विधूय विजये जयमुद्घोष्य प्रोच्योद्धवाय च परं समगात्स्वधाम ॥६७॥

इन प्रभु ने पृथ्वी का महान् भार उतारने के लिये पाण्डव-कौरवों में कलह कराके, उनके द्वारा संग्राम में सब राजाओंकी सेना एकत्र करके और अपनी दृष्टि मात्रही से सबका संहार करके अर्जुन को जय का भागी प्रसिद्ध किया तथा अन्त को वह द्वारका में उद्धवजी को ब्रह्म-विद्या का उपदेश करके अपने स्वरूप ही से अपने धाम पधारे ॥६७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे गोविन्ददास व्यास "विनीत" विरचितायां बाल-बोधनी नाम भाषा टीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

नवमस्कन्ध समाप्त

जो रस लहि नवरस तजत, रसिकन रसना झार।
सो रस देहु "विनीत" कहँ, गोरस चाखन हार॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

* श्रीगणेशायनमः *

श्रीमद्भागवत

बाल बोधिनी भाषा टीका सहित ।

दशम स्कन्ध

जे पद-पंकज हीय धर, भे परिपूर्ण महेस ।
सो पद-कंज 'विनीत'-उर, धारे रहिय व्रजेस ॥
त्रिभुवन-सुख, वैभव, सुजस, मुक्ति, युक्ति भरपूर ।
इक प्रभु-पद की धूर लहि, डारिय सब पहँ धूर ॥

पहिला अध्याय

(वसुदेव देवकी विवाह-वर्णन)

राजोवाच

कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः ।
राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥ १ ॥

परीक्षित बोले-आपने चन्द्रवंश और सूर्यवंश का विस्तार कहा तथा उन वंशों में उत्पन्न होने वाले राजाओंका महान् अद्भुत चरित्रवर्णनकिया ॥

यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम ।
तत्रांऽशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः॥२॥

हे मुनिवर ! उनमें से धर्मशील राजा यदु का वंश आपने विशेष विस्तारसे कहा है,अब इस कुल में बलरामजीके साथ अवतारधारी भगवान् विष्णु की लीलायें मुझसे कहिये ॥२॥

अवतीर्य यदोर्वंशे भगवान्भूतभावनः ।
कृतवान्यानि विश्वात्मा तानि नो वद विस्तरात् ३॥

जगत्पालक जगदात्मा भगवान् ने यदु-कुल में अवतार लेकर जो पराक्रम किये हैं, वे विस्तार पूर्वक मुझसे कहिये ॥३॥

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात् । क उत्तमश्लोकगुणानुवादात्पुमान्विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥ ४ ॥

इस संसार में मुक्त, मुमुक्ष और विषयी-तीन प्रकार के मनुष्य हैं, उनमें से प्रत्येक को उत्तम श्लोक भगवान् के चरित्र प्रिय हैं, क्योंकि ज्ञानियों की तृष्णा इन्हीं के गाने से दूर हुई है, इसे संसार की औषधि रूप समझ कर मुमुक्ष-जन भी गाया करते हैं और विषयी जनों के कानों तथा मनको आनन्द देने वाला भी सर्वोत्तम यही विषय है,इस लिये ऐसा कौनसा आत्म-घाती मनुष्य होगा कि जिसे इस भगवान् की कथा में रुचि न होगी* ?

पितामहा मे समरेऽमरञ्जयैर्देवव्रताद्यातिरथैस्तिमिङ्गिलैः । दुरत्ययं कौरवसैन्यसागरं कृत्वाऽतरन्वत्सपदं स्म यत्प्लवाः ॥ ५ ॥

युद्ध में देवताओं को भी जीतने वाले भीष्मके समान महारथी रूपी ग्राहोंके होनेसे दुस्तर कौरव दल रूपी महा सागर को मेरे दादा युधिष्ठिर आदि श्रीकृष्णचन्द्र के आश्रयरूपी जलयानके द्वारा बछड़े के खुर के जल की भांति पार कर गये ॥५॥

द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदङ्गं संतानबीजं कुरुपाण्ड

---

*-तजि भगवत गाथा रसिक, जिन्हें कु-गाथ सुहात । ते निर्मल जल त्याग कै, जानत हू मल खात ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वानाम् । जुगोप कुक्षिं गत आत्तचक्रो मातुश्च मे यः शरणं गतायाः ॥ ६ ॥

कौरव और पांडवों की सन्तान का बीजरूप यह मेरा शरीर अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से जलता हुआ देखकर मेरी माता उत्तरा अत्यन्त दुःखी हो कर श्रीकृष्णजीकी शरणागत हुई, तब उन्होंने चक्र धारण कर मेरी माता की कुक्षि में प्रवेश करके मेरी रक्षा की ॥६॥

वीर्याणि तस्याखिलदेहभाजामन्तर्बहिः पूरुष कालरूपैः । प्रयच्छतो मृत्युमुतामृतं च माया मनुष्यस्य वदस्व विद्वन् ॥ ७ ॥

हे विद्वन् ! समस्त प्राणियों के कालरूप और मोक्षदाता श्रीकृष्ण भगवान् कि जो अत्यन्त दया पूर्वक मायामय मनुष्य देहधारी हैं–की लीला मुझसे कहिये ॥७॥

रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तो रामः संकर्षणस्त्वया । देवक्या गर्भसंबन्धः कुतो देहान्तरं विना ॥ ८ ॥

शेषावतार श्रीबलरामजी को पहिले तो आपने रोहिणी का पुत्र कहा है, फिर उन्हीं को देवकी का पुत्र बतलाया है, भला देह को बदले बिना एक ही पुरुष दो का पुत्र कैसे हो सकता है ? ॥८॥

कस्मान्मुकुन्दो भगवान्पितुर्गेहाद्व्रजं गतः । क्व वासं ज्ञातिभिः सार्धं कृतवान्सात्वतांपतिः॥ ९॥

मोक्ष-दाता भगवान् अपने पिता के यहाँ से व्रजमें क्यों गये तथा भक्त-रक्षक श्रीकृष्णजी अपनी जाति वालों को साथ लेकर कहाँ बसे ? ॥९॥

व्रजे वसन्किमकरोन्मधुपुर्यां च केशवः । भ्रामरं चावधीत्कंसं मातुरद्धाऽतदर्हणम् ॥१०॥

व्रजमें निवास करके श्रीकृष्ण भगवान् ने क्या किया और मथुरा में क्या किया ? उन्होंने अपने मामा कंसके सन्मुख खड़े होकर उसे कैसे मारा ? देहं मानुषमाश्रित्य कति वर्षाणि वृष्णिभिः । यदुपुर्यां सहावात्सीत्पत्न्यः कत्यभवन्प्रभोः ॥११॥

हे प्रभो ! नर देह धारण करके श्रीकृष्ण भगवान् ने यादवों सहित मथुरापुरी में कितने वर्षतक निवास किया ? उनकी कितनी स्त्रियां थीं ? सो मुझसे कहिये ॥११॥

एतदन्यच्च सर्वं मे मुने कृष्णविचेष्टितम् । वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ श्रद्दधानाय विस्तृतम् ॥१२॥

हे सर्वज्ञमुनि ! यह और इसके अतिरिक्त और भी जो भगवान् के चरित्रहों वे सब मुझसे कहिये क्योंकि इसमें मेरी श्रद्धा है ॥ १२ ॥

नैषातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते । पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम् ॥१३॥

आपके मुखारविन्द से झरते हुए भगवान् की कथा रूपी अमृत को पान करने से मेरे अन्न-जल छूटने पर मुझे असह्य भूख-प्यास से भी कोई बाधा नहीं पहुंचती है ॥१३॥

सूत उवाच

एवं निशम्य भृगुनन्दन साधुवादं वैयासकिः स भगवानथ विष्णुरातम् । प्रत्यर्च्य कृष्णचरितं कलिकल्मषघ्नं व्याहर्तुमारभत भागवतप्रधानः १४

श्रीसूतजी बोले–हे शौनक ! वैष्णवों में श्रेष्ठ भगवान् श्रीशुकदेवजी ने यह उत्तम प्रश्न सुनकर राजा परीक्षित की प्रशंसा करते हुए कलियुग के दोषों को नाश करने वाला भगवान् का चरित्र कहना प्रारम्भ किया ॥१४॥

श्रीशुक उवाच

सम्यग्व्यवसिता बुद्धिस्तव राजर्षिसत्तम । वासुदेवकथायां ते यज्जाता नैष्ठिकी रतिः ॥१५॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजर्षियों में श्रेष्ठ ! तुम्हारी बुद्धि ने बड़ाही अच्छा निश्चय किया है, कि जिसके कारण तुम्हारी भगवान्में सर्वोत्कृष्ट प्रीति हुई है ॥१५॥

वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन्पुनाति हि । वक्तारं प्रच्छकं श्रोतृंस्तत्पादसलिलं यथा ॥१६॥

जैसे गङ्गाजल* सबको पवित्र करदेता है वैसे ही भगवान्की कथा-सम्बन्धी प्रश्नवक्ता, प्रश्न करने वाले और सुनने वाले, इन तीनों को पवित्र कर देता है ॥ १६ ॥

भूमिर्दृप्तनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः । आक्रान्ता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥१७॥

*–श्रुताभिलषिता ध्याता पीता दृष्टा वगाहिता । गङ्गा तारयते पुंसांमुभौ वंशौ भवार्णवात् ॥ अर्थात्–सुनने, अभिलाषा करने, ध्यान, पान, दर्शन स्नान आदि करने से श्रीगङ्गाजी पुरुषों के दोनों कुलों को तार देती है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभिमानी दैत्य राजाओं की सेना के सैकड़ों हज़ारों झुण्डों के भार से दुःखी होकर पृथ्वी ब्रह्मा जी की शरण में गई ॥१७॥

गौर्भूत्वाऽश्रुमुखी खिन्ना क्रन्दन्ती करुणं विभोः।
उपस्थिताऽन्तिके तस्मै व्यसनं स्वमवोचत ॥१८॥

वह पृथ्वी गौ का रूप धरकर करुणा उत्पन्न करने वाले वचनोंको कहती तथा रोतीहुई ब्रह्माजी के पास जाकर अपना दुःख कहने लगी ॥१८॥

ब्रह्मा तदुपधार्याथ सह देवैस्तया सह।
जगाम सन्त्रिनयनस्तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥१९॥

तब ब्रह्माजी पृथ्वी का दुःख सुनकर उसे देवताओं और शंकरजीको साथ लेकर क्षीरसागर के तट पर गये ॥१९॥

तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम्।
पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः ॥२०॥

देवतागण क्षीर-सिन्धु पर जाकर ध्यान पूर्वक समस्त कामना वालों की कामना पूर्ण करने वाले देवताओं के देव श्रीविष्णु भगवान् की पुरुष सूक्त के "सहस्र शीर्षापुरुषः" आदि सोलह मन्त्रों से स्तुति करने लगे ॥२०॥

गिरं समाधौ गगने समीरितां निशम्य वेधास्त्रि दशानुवाच ह। गां पौरुषीं मे शृणुताऽमराः पुन र्विधीयतामाशु तथैव मा चिरम् ॥२१॥

तब ब्रह्माजी की ध्यानावस्थाही में आकाशवाणी हुई, उसे सुनकर उन्होंने देवताओं से कहा कि हे देवो! मुझको जो भगवान् की आज्ञा हुई है उसे तुम लोग सुनो और सुनकर विलम्ब न करके, शीघ्र ही वाणी के अनुसार काम करो ॥२१॥

पुरैव पुंसाऽवधृतो धराज्वरो भवद्भिरंशैर्यदुषूप जन्यताम्। स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः स्वकाल शक्त्या क्षपयंश्चरेद्भुवि ॥२२॥

हम लोगों की विनय से पहले ही ईश्वर ने पृथ्वी के दुःख दूर करने का निश्चय कर लिया है, इसलिये उन देवेश के काल शक्ति सहित अवतार लेने से पृथ्वी के भार उतारने के समय तक तुम लोग अपने अंशों सहित यदुकुल में जन्म लेकर भू-लोक में रहो ॥२२॥

वसुदेवगृहे साक्षाद्भगवान्पुरुषः परः।
जनिष्यते तत्प्रियार्थं संभवन्तु सुरस्त्रियः ॥२३॥

इस पृथ्वी पर साक्षात् परम ब्रह्म परमेश्वर वसुदेव के घर में अवतार लेंगे, उनके साथ विहार करने के लिये देवताओं की स्त्रियों को व्रजमें जन्म धारण करना चाहिये ॥२३॥

वासुदेवकलानन्तः सहस्रवदनः स्वराट्।
अग्रतो भविता देवो हरेः प्रियचिकीर्षया ॥२४॥

श्रीभगवान् की अनन्त कलाओं वाले स्वयं प्रकाशरूप, हज़ार मुखधारी शेषनागजी श्रीकृष्णजी के साथ लीला करने के लिये बलरामजी के नाम से प्रथम ही वहाँ प्रकट हो जायेंगे ॥ २४ ॥

विष्णोर्माया भगवती यया संमोहितं जगत्।
आदिष्टा प्रभुणांऽशेन कार्यार्थे संभविष्यति॥२५॥

फिर परमेश्वर की आज्ञा मानकर देवकी का गर्भ खींचने के लिये तथा यशोदाजी को मोह में डालनेके लिये, संसारके मनको मोहित करनेवाली माया अपने अंशों सहित यशोदा के भवन में प्रकट होगी ॥२५॥

श्रीशुक उवाच

इत्यादिश्याऽमरगणान्प्रजापतिपतिर्विभुः।
आश्वास्य च महीं गीर्भिः स्वधाम परमं ययौ॥२६॥

श्रीशुकदेवजी बोले-प्रजापतियों के स्वामी श्री ब्रह्माजी देवताओं को इस प्रकार आज्ञा देकर तथा पृथ्वीको समझा-बुझाकर ब्रह्मलोक को चले गये ॥

शूरसेनो यदुपतिर्मथुरामावसन्पुरीम्।
माथुराञ्छूरसेनांश्च विषयान्बुभुजे पुरा ॥२७॥

पहले यादवों के राजा शूरसेन मथुरा में बसते थे और माथुर तथा शूरसेन आदि देशों पर राज्य करते थे ॥२७॥

राजधानी ततः साऽभूत्सर्वयादवभूभुजाम्।
मथुरा भगवान्यत्र नित्यं संनिहितो हरिः ॥२८॥

यह मथुरापुरी* सदा से ही यदुवंशियों की राजधानी थी और यहाँ पर सदा ही श्रीकृष्ण भगवान् विराजमान् रहते थे ॥ २८ ॥

*-मथ्यते जगत्सर्वं ब्रह्मज्ञानन येन वा। तत्सार भूतं यद्यस्यां मथुरा सा निगद्यते ॥-जिस ब्रह्मज्ञान या भक्ति-योग से जगत् मिथ्या जान पड़ता है, उस ज्ञान-भक्ति के सार रूप श्रीकृष्णजी जहाँ नित्य विराजमान् रहते हैं, वही मथुरापुरी कहाती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्यां तु कर्हिचिच्छौरिर्वसुदेवः कृतोद्वहः ।
देवक्या सूर्यया सार्धं प्रयाणे रथमारुहत् ॥२९॥

एक वार शूरसेन के पुत्र वसुदेवजी मथुरा में अपनी नई पत्नी (देवक की बेटी) देवकी के साथ घर जाने के लिये रथ पर बैठे ॥२९॥

उग्रसेनसुतः कंसः स्वसुः प्रियचिकीर्षया ।
रश्मीन्हयानां जग्राह रौक्मै रथशतैर्वृतः ॥३०॥

उग्रसेन का पुत्र कंस अपनी बहिन देवकी से प्यार करने के लिये सैकड़ों स्वर्ण-जटित रथों को साथ लेकर, देवकीके रथ के घोड़ों की डोरी पकड़ कर हाँकने के लिये उसके रथ में बैठ गया ॥३०॥

चतुःशतं पारिबर्हं गजानां हेममालिनाम् ।
अश्वानामयुतं सार्धं रथानां च त्रिषट्शतम् ॥३१॥
दासीनां सुकुमारीणां द्वे शते समलंकृते ।
दुहित्रे देवकः प्रादाद्याने दुहितृवत्सलः ॥३२॥

अपनी कन्या पर अधिक स्नेह करने वाले देवक ने बिदा के समय सोने की मालायें पहिने हुए, चारसौ हाथी, दस हज़ार घोड़े और अठारह सौ रथ दहेज़ में दिये और सुकुमार अङ्ग वाले दो सौ दास तथा दासियां भी शृङ्गार करके दान कीं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

शंखतूर्यमृदङ्गाश्च नेदुर्दुन्दुभयः समम् ।
प्रयाणप्रक्रमे तावद्वरवध्वोः सुमङ्गलम् ॥३३॥

वर-वधू के मंगल-हेतु यात्रा के समय बारात के साथ में शंख, भेरी नक्कारे आदि सब बाजे बजने लगे ॥ ३३ ॥

पथि प्रग्रहिणं कंसमाभाष्याऽऽहाऽशरीरवाक् ।
अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेऽबुध ॥३४॥

रास्ते में कंस को-जो कि देवकी के घोड़ों की डोरी पकड़े हुए जा रहा था, आकाश-वाणी हुई कि-रे मूर्ख ! जिसे तू पहुंचाने के लिये जा रहा है, इसी तेरी बहिन देवकी का आठवाँ बालक तुझे मारेगा ॥३४॥

इत्युक्तः स खलः पापो भोजानां कुलपांसनः ।
भगिनीं हन्तुमारब्धः खड्गपाणिः कचेऽग्रहीत् ॥३५॥

यह सुनते ही भोज-वंश के कलंक-रूप पापी कंस ने मारने के लिये तलवार हाथमें लेकर देवकी के केश पकड़ लिये ॥३५॥

तं जुगुप्सितकर्माणं नृशंसं निरपत्रपम् ।
वसुदेवो महाभाग उवाच परिसान्त्वयन् ॥३६॥

तब निन्दनीय कर्म करने वाले, मूर्ख और निर्लज्ज कंसको ऐश्वर्यवान् वसुदेवजी समझाने लगे॥

वसुदेव उवाच

श्लाघनीयगुणः शूरैर्भवान्भोजयशस्करः ।
स कथं भगिनीं हन्यात्स्त्रियमुद्वाहपर्वणि ॥३७॥

वसुदेव जी बोले कि-हे कंस ! तुम गुणवान्, शूरवीर और भोज-वंश के यश करने वाले हो, भला स्त्री-जाति और अपनी ही बहिन को विवाह के आनन्द-काल में किस प्रकार मारते हो ?॥३७॥

मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते ।
अद्य वाऽब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ॥३८॥

और जो तुम इसे मृत्यु के डर से मारते हो, सो जन्म लेने के साथ ही मृत्यु का भी जन्म होता है, चाहे आज; चाहे सौ वर्ष पीछे, परन्तु देह-धारी को अवश्य* मरना होगा ॥३८॥

देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः ।
देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनंत्यजते वपुः ॥३९॥

जिस समय इस शरीर का अन्त-काल आता है, उस समय जीवात्मा अपने कर्मानुसार विवश होकर दूसरी देह को पाता है और इस (वर्तमान) शरीर को त्याग देता है ॥३९॥

व्रजंस्तिष्ठन्पदैकेन यथैवैकेन गच्छति ।
यथा तृणजलूकैवं देही कर्मगतिं गतः ॥४०॥

जिस प्रकार मनुष्य अगला पैर जमाकर पिछला पैर उठाता है, या जोंक अगला तिनका पकड़ कर पिछला तिनका त्यागती है, उसी प्रकार जीव कर्मानुसार दूसरी देह को प्राप्त करने पर ही पहले शरीर को छोड़ता है ॥ ४०॥

स्वप्ने यथा पश्यति देहमीदृशं मनोरथेनाऽभिनिविष्टचेतनः । दृष्टं श्रुताभ्यां मनसाऽनुचिन्तयन्प्रपद्यते तत्किमपि ह्यपस्मृतिः ॥४१॥

*-मन मूरख ! माधव नाम बिना, सिगरो जग-जीवन जानि रितै है । अज की वय लौं यमके बल लौं, सबु लै तउ कौनिहु रोज अथै है ॥ करि कोटि उपाय सहाय सही, नहिं एकहु पै छिन आइ पुजै है । सत लाख करोर जिये वरु पै तऊ, अन्त काल के गाल में जै है ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिस प्रकार मनुष्य देखे हुए, या सुने हुए विषयों को मनमें सोचते रहने के कारण, स्वप्न में अपनी सोती हुई देह को भूलकर, राजा या इन्द्र आदि के रूप में अपने को समझता हुआ अभिमान में फँसा लेता है, वैसे ही मनुष्यकी इच्छा,वर्तमान देह को भूलकर दूसरी देह में बाँध देती है ॥४१॥

यतो यतो धावति दैवचोदितं मनो विकारात्मकमाप पञ्चसु । गुणेषु मायारचितेषु देह्यसौ प्रपद्यमानः सह तेन जायते ॥४२॥

फल देनेवाले कर्मोंसे उत्पन्न हुए, दोषों से भरा हुआ मन, माया-द्वारा रचे हुए, पंचभूतों से निर्मित शरीरोंमें से जिस-जिस शरीरमें दौड़ता है,(अर्थात् जिस शरीर की इच्छा करता है) वह अहंकार के कारण जीव के साथ उसी शरीर में जन्म पाता है॥

ज्योतिर्यथैवोदकपार्थिवेष्वदः समीरवेगानुगतं विभाव्यते । एवं स्वमायारचितेष्वसौ पुमान्गुणेषु रागानुगतो विमुह्यति ॥४३॥

जैसे ज्योति जल के पात्रोंमें प्रतिबिंब-रूप होकर वायु के वेग से काँपती हुई सी जान पड़तीहै, इसी प्रकार यह पुरुष अपने अज्ञान-द्वारा रचे हुए शरीर में अभिमान करके मोह को प्राप्त होता है ॥४३॥

तस्मान्न कस्यचिद्द्रोहमाचरेत्स तथाविधः । आत्मनः क्षेममन्विच्छन्द्रोग्धुर्वै परतो भयम्॥४४॥

इसलिये अपने आत्मा का कल्याण चाहनेवाले पुरुष को किसी से द्रोह न करना चाहिये, क्योंकि वैर-भाव करने वाले प्राणी को सदैव दूसरेका भय बना रहता है ॥४४॥

एषा तवानुजा बाला कृपणा पुत्रिकोपमा । हन्तुं नार्हसि कल्याणीमिमां त्वं दीनवत्सलः॥४५॥

हे राजन् ! यह तेरी छोटी बहिन, अभी बालक ही है और काठ की पुतली की भाँति परतन्त्र तथा दीन होकर तेरे सामने खड़ी है, तू दीन-हितकारी है, इसलिये इस मंगल-रूप अबला का मारना तुझे उचित नहीं ॥४५॥

श्रीशुक उवाच

एवं स सामभिर्भेदैर्बोध्यमानोऽपि दारुणः । न न्यवर्तत कौरव्य पुरुषादाननुव्रतः ॥४६॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि-हे कुरुवंशी ! यद्यपि वसुदेव जी ने इस प्रकार साम और भेद से समझाया, फिर भी अपनी राक्षसी वृत्ति तथा असुरों के संग के प्रभाव से वह देवकी को वध के विचार से न टला ॥४६॥

निर्बन्धं तस्य तं ज्ञात्वा विचिन्त्यानकदुन्दुभिः । प्राप्तं कालं प्रतिव्योढुमिदं तत्रान्वपद्यत ॥४७॥

देवकी के वध का हठ देखकर, कुछ सोच विचार करके तत्क्षण आई हुई मृत्यु का अवसर चुकाने के लिये, वसुदेवजी ने यह विचार किया ॥

मृत्युर्बुद्धिमताऽपोह्यो यावद्बुद्धिबलोदयम् । यद्यसौ न निवर्तेत नापराधोऽस्ति देहिनः ॥४८॥

कि-बुद्धिमान् मनुष्य को अपनी बुद्धिकी पहुँच के अनुसार मृत्यु को दूर करने का उपाय करना चाहिये, और यदि इस पर भी मृत्यु दूर न हो, तो फिर पुरुष का दोष नहीं ॥ ४८ ॥

प्रदाय मृत्यवे पुत्रान्मोचये कृपणामिमाम् । सुता मे यदि जायेरन्मृत्युर्वा न म्रियेत चेत्॥४९॥ विपर्ययो वा किं न स्याद्गतिर्धातुर्दुरत्यया । उपस्थितो निवर्तेत निवृत्तः पुनरापतेत् ॥५०॥

इस लिये इस समय कंस को देवकी के पुत्र देने का वचन देकर इस बेचारी के प्राण बचाऊँगा, फिर आगे जो होनहार होगी, वह हो लेगी, परन्तु अभी तो इसके प्राण बच जायँगे, संभव है कि देवकी के पुत्र होने से पहले यही कंस मर जाय, तो फिर पुत्रोंके मरनेका दुःख ही न होगा,कदाचित् पुत्र हो और कंस भी जीवित रहे तो उसीके हाथ से उसकी मृत्यु होजाय, ऐसा उलटा भी हो सकता है, क्योंकि ईश्वर की गति तो अपार है, क्या पता कि-मेरे पुत्र के हाथ से होने वाली कंस की मृत्यु देवकी का वध होने से रुक जाय, और देवकी को बचाने के विचार से वह सिद्ध हो जाय, क्योंकि जीवों की गति समझ में आना कठिन है इसलिये अभी आई हुई मृत्यु के टल जाने पर समयान्तर में यदि वह आ भी जाय, तो फिर मेरा अपराध नहीं ॥४९॥॥५०॥

अग्नेर्यथा दारुवियोग योगयोरदृष्टतोऽन्यन्न निमित्तमस्ति । एवं हि जन्तोरपि दुर्विभाव्यः शरीरसंयोगवियोगहेतुः ॥५१॥

जैसे बन या गाँव में लगी हुई आग वृक्षों या घरों को जलाती हुई अपने पास के वृक्ष या घर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छोड़कर दूर के पदार्थों को जला देता है, तब वहाँ दैव-गति ही प्रधान मान ली जाती है, वह अदृष्ट-गति पहले से समझ में नहीं आती, इसी प्रकारसे जीवों के जन्म-मरण का अदृष्ट भी समझ में नहीं आता ॥५१॥

एवं विमृश्य तं पापं यावदात्मनिदर्शनम् ।
पूजयामास वै शौरिर्बहुमानपुरःसरम् ॥५२॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि-इस प्रकार जहाँ तक उनकी बुद्धि पहुंच सकी, उतना विचार करके, वसुदेव जी ने बड़े भाव-पूर्वक पापी कंस का सत्कार किया ॥५२॥

प्रसन्नवदनाम्भोजो नृशंसं निरपत्रपम् ।
मनसा दूयमानेन विहसन्निदमब्रवीत् ॥५३॥

फिर मनमें कम्पितसे होते हुए भी उस निर्लज्ज और क्रूर कंस को विश्वास दिलाने के लिये ऊपर से प्रसन्न सा मुख करके हँसते-हँसते कहा ॥५३॥

वसुदेव उवाच

न ह्यस्यास्ते भयं सौम्य यद्धि साहाशरीरवाक् ।
पुत्रान्समर्पयिष्येऽस्या यतस्ते भयमुत्थितम् ॥५४॥

वसुदेवजी बोले कि-हे सौम्य ! जो भय तुमको आकाश-वाणी के द्वारा हुआ है, उसे तुम भय न मानो, क्योंकि यह भय तुमको देवकीसे नहीं, वरन् इसके पुत्रोंसे है, सो उन्हें मैं तुम्हारे अर्पण करदूंगा॥

श्रीशुक उवाच

स्वसुर्वधान्निवृत्ते कंसस्तद्वाक्यसारवित् ।
वसुदेवोऽपि तं प्रीतः प्रशस्य प्राविशद्गृहम् ॥५५॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि-हे राजन् ! वसुदेवजी के इन वचनों को सत्य मानकर कंस अपनी बहिन को मारने से रुक गया और वसुदेव जी भी कंस की प्रशंसा करके अपने घरको चले गये ॥५५॥

अथ काल उपावृत्ते देवकी सर्वदेवता ।
पुत्रान्प्रसुषुवे चाष्टौ कन्यां चैवानुवत्सरम् ॥५६॥

सर्व भूतात्मा भगवान् को ही देवता मानने वाली देवकी का जब से प्रसव-काल प्रारंभ हुआ तब से प्रति वर्ष-एक पुत्र के हिसाब से आठ वर्ष में आठ बालक और एक कन्या-इस प्रकार कुल नौ सन्तान उसने उत्पन्न किये ॥५६॥

कीर्तिमन्तं प्रथमजं कंसायानकदुन्दुभिः ।
अर्पयामास कृच्छ्रेण सोऽनृतादतिविह्वलः ॥५७॥

पहले कीर्त्तिमान् नामक पुत्र हुआ, उसे वसुदेव जी असत्य वचन से डरकर महान् दुःख के साथ कंस के पास ले गये ॥५७॥

किं दुःसहं नु साधूनां विदुषां किमपेक्षितम् ।
किमकार्यं कदर्याणां दुस्त्यजं किं धृतात्मनाम् ॥५८

सत्यपुरुष किस बातको सहन नहीं कर सकते और विद्वानों को किस बात की अपेक्षा रह सकती है ? कदर्य* (दुष्ट) जन कौनसी अनीति नहीं कर सकते ? और धीर पुरुषों को किसका त्याग करना असंभव है ? ॥५८॥

दृष्ट्वा समत्वं तच्छौरेः सत्ये चैव व्यवस्थितिम् ।
कंसस्तुष्टमना राजन्प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥५९॥

हे राजन् ! वसुदेव जी का ऐसा समान भाव देखकर कंस ने सन्तोष पूर्वक मुसकाते हुए यह वचन कहा ॥५९॥

प्रतियातु कुमारोऽयं न ह्यस्मादरित मे भयम् ।
अष्टमाद्युवयोर्गर्भान्मृत्युर्मे विहितः किल ॥६०॥

कि-इस पुत्रको घर ले जाओ, इससे मुझे कोई भय नहीं है, मेरी मृत्यु तो आठवें पुत्र के द्वारा निश्चित हो चुकी है ॥६०॥

तथेति सुतमादाय ययावानकदुन्दुभिः ।
नाभ्यनन्दत तद्वाक्यमसतो विजितात्मनः ॥६१॥

वसुदेव जी "तथास्तु" कहकर अपने पुत्र को लिये हुए घर लौट आये, परन्तु उन्हें इसके वाक्य से कुछ आनन्द न मिला, क्योंकि वे यह जानते थे कि-कंस दुष्ट चंचल चित्त† का है, उसकी बात का कोई ठिकाना नहीं ॥ ६१ ॥

नन्दाद्या ये व्रजे गोपा याश्चामीषां च योषितः ।
वृष्णयो वसुदेवाद्या देवक्याद्या यदुस्त्रियः ॥६२॥
सर्वे वै देवताप्राया उभयोरपि भारत ।
ज्ञातयो बन्धुसुहृदो ये च कंसमनुव्रताः ॥६३॥

*'आत्मानं धर्मं कृत्यं च पुत्रान्दारांश्च पीडयेत् । पीडयेत् भृत्यवर्गांश्च स कदर्य इति स्मृतः '-जो आप अपने आत्मा, धर्म-कार्य, पुत्र, स्त्री और पोषण करने योग्य लोगोंको पीड़ित करताहै वही कदर्यहै।

†छिन महिं रिस छिन महं खुसी, बदलत छिन-छिन भाव । ऐसे चंचल चितन के, होत न साँचे चाव ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एतत्कंसाय भगवाञ्छशंसाभ्येत्य नारदः ।
भूमेर्भारायमाणानां दैत्यानां च वधोद्यमम् ॥६४॥

कंस की इस शान्ति को देवताओं के अनुकूल न समझ कर श्रीनारद जी ने कंस के पास आकर कहा कि-व्रज में नन्द आदि जितने गोप तथा यशोदा आदि गोपियाँ जितनी उनकी स्त्रियाँ और वसुदेव आदि जितने यदुवंशी तथा देवकी आदि जितनी उनकी स्त्रियाँ एवं उनके भाई-बन्धु, सुहृद व जातिवाले तेरे जो समीप रहतेहुए तेरा अनुसरण कर रहे हैं, वे सभी हे कंस ! नन्द तथा वसुदेव के वंश में देवता प्रकट हुए हैं, पृथिवी पर दैत्योंके बढ़े हुए भार को उतारने के लिये भगवान् ने यह उपाय रचा है ॥६२॥॥६३॥॥६४॥

ऋषेर्विनिर्गमे कंसो यदून्मत्वा सुरानिति ।
देवक्या गर्भसंभूतं विष्णुं च स्ववधं प्रति ॥६५॥
देवकीं वसुदेवं च निगृह्य निगडैर्गृहे ।
जातं जातमहन्पुत्रं तयोरजनशङ्कया ॥६६॥

ऐसा कहकर नारदजी के जाने पर कंस ने यादवों को देवता मानकर इस आशंका से कि विष्णु भगवान् ही देवकी के गर्भ से प्रकट होकर मुझे मारेंगे, वसुदेव और देवकी को बेडियाँ डाल कर कारागार में बन्द कर दिया और उनके ज्यों ज्यों पुत्र होते गये, त्यों-त्यों उन्हें विष्णु का सन्देह करके वह वध करता गया ॥६५॥॥६६॥

मातरं पितरं भ्रातृन्सर्वांश्च सुहृदस्तथा ।
घ्नन्ति ह्यसुतृपो लुब्धा राजानः प्रायशो भुवि ॥६७॥

अपने प्राणों के लोभी राजा लोग पृथ्वी पर माता, पिता, भाई और समस्त मित्रों को भी मार डालते हैं ॥६७॥

आत्मानमिह संजातं जानन्प्राग्विष्णुना हतम् ।
महासुरं कालनेमिं यदुभिः स व्यरुध्यत ॥६८॥

पहले जन्म में मैं कालनेमि दैत्य था, वहाँ मुझे विष्णु ने मारा था, अब मैं कंस हुआ हूँ, यह सब समझकर उसने यादवों से शत्रुता करली ॥६८॥

उग्रसेनं च पितरं यदुभोजान्धकाधिपम् ।
स्वयं निगृह्य बुभुजे शूरसेनान्महाबलः ॥६९॥

यदु, भोज और अंधक वंशियों के राजा उग्रसेन अर्थात् अपने पिता के पैरों में बेड़ियाँ डालकर महान् प्रतापी कंस स्वयं ही शूरसेन आदि देशों पर शासन करने लगा ॥६९॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

दूसरा अध्याय

(श्रीकृष्ण जन्म)

श्रीशुक उवाच

प्रलम्बबकचाणूरतृणावर्तमहाशनैः ।
मुष्टिकारिष्टद्विविदपूतनाकेशिधेनुकैः ॥ १ ॥
अन्यैश्चासुरभूपालैर्बाणभौमादिभिर्युतः ।
यदूनां कदनं चक्रे बली मागधसंश्रयः ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि-प्रलम्ब,बकासुर, चाणूर मल्ल, तृणावर्त्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्ट, द्विविद वानर, पूतना, केशी, धेनुकासुर तथा दूसरे भी बाणासुर, नरकासुर आदि प्रमुख दैत्य राजाओंको साथ लेकर जरासन्ध के आश्रय से बलवान् कंस यादवों को पीड़ित करने लगा ॥१॥॥२॥

ते पीडिता निविविशुः कुरुपाञ्चालकेकयान् ।
शाल्वान्विदर्भान्निषधान्विदेहान्कोसलानपि ॥ ३ ॥

कंस से पीड़ा पाये हुए यदुवंशी कुरु, पाञ्चाल, केकय, शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह, काशी और कौशल देशों को चले गये ॥३॥

एके तमनुरुन्धाना ज्ञातयः पर्युपासत ।
हतेषु षट्सु बालेषु देवक्या औग्रसेनिना ॥ ४ ॥
सप्तमो वैष्णवं धाम यमनन्तं प्रचक्षते ।
गर्भो बभूव देवक्या हर्षशोकविवर्धनः ॥ ५ ॥

कितने ही यादव कंस की आज्ञा में रहकर उसी की सेवा में रहने लगे, कंस ने देवकी के छः पुत्र मार डाले, फिर विष्णु भगवान् की कला-रूप अनन्त श्रीशेषनाग जी देवकीजी के सातवें गर्भ में आये, इस गर्भ से देवकी को हर्ष तथा शोक दोनों हुए ॥४॥५॥

भगवानपि विश्वात्मा विदित्वाकंसजं भयम् ।
यदूनां निजनाथानां योगमायां समादिशत् ॥ ६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विश्व के आत्म-रूप भगवान्ने यादवोंके स्वामी होने के नाते, उनको कंस-द्वारा भय समझ कर अपनी योग-माया को आज्ञा दी ॥६॥

गच्छ देवि व्रजं भद्रे गोपगोभिरलंकृतम् ।
रोहिणी वसुदेवस्य भार्याऽऽस्ते नन्दगोकुले ।
अन्याश्च कंससंविग्ना विवरेषु वसन्ति हि ॥ ७॥

कि-हे भद्रे ! हे देवि ! तू ग्वाल और गौओंसे शोभायमान् व्रज में जा, वहाँ वसुदेवजी की पत्नी रोहिणी, नन्दराय जी के गोकुल में है और उनकी दूसरी स्त्रियाँ भी कंस के भय से वहीं गुप्त स्थानों में रहती हैं ॥ ७ ॥

देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम् ।
तत्संनिकृष्य रोहिण्या उदरे सन्निवेशय ॥.८ ॥

इस समय मेरे अंश-रूप शेषनाग जी देवकी के गर्भ में आये हैं, तू उनको वहाँ से निकाल कर रोहिणी के उदर में स्थापित करदे ॥८॥

अथाऽऽहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे ।
प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि ९॥

हे मंगल रूपिणी ! फिर मैं परिपूर्ण रूप से देवकी का पुत्र होऊँगा और तू नन्दराय की पत्नी यशोदा से प्रकट होगी ॥ ९ ॥

अर्चिष्यन्ति मनुष्यास्त्वां सर्वकामवरेश्वरीम् ।
धूपोपहारबलिभिः सर्वकामवरप्रदाम् ॥१०॥

तू कामनावान् पुरुषों की श्रेष्ठ स्वामिनी और समस्त वाञ्छित फल दायनी है, मनुष्य धूप,नैवेद्य और बलिदानों से तेरा पूजन करेंगे ॥१०॥

नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि ।
दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च ॥११॥

कुमुदा चण्डिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च ।
माया नारायणीशानी शारदेत्यम्बिकेति च॥१२॥

वे तेरे लिये पृथिवी पर मन्दिर बनवायेंगे और तुझे दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी,कन्यका, माया, नारायणी ईशानी, शारदा और अंबिका आदि नामों से पुकारेंगे ॥११॥१२॥

गर्भसंकर्षणात्तं वै प्राहुः संकर्षणं भुवि ।
रामेति लोकरमणाद्बलं बलवदुच्छ्रयात् ॥१३॥

गर्भ के खींचनेके कारण भू-तलपर उस बालक का नाम "संकर्षण" कहा जायगा, वह लोकों को रमायेगा, इसलिये "राम" और महान् बली होगा, इसलिये "बल" भी कह लायगा ॥१३॥

संदिष्टैवं भगवता तथेत्योमिति तद्वचः ।
प्रतिगृह्य परिक्रम्य गां गता तत्तथाऽकरोत् ॥१४॥

जब भगवान् ने इस प्रकार आज्ञा दी, तब योग-माया ने बड़े ही आदर से उनके वचन को मानकर, उनकी परिक्रमा करके और पृथ्वी पर जाकर वैसा ही किया ॥१४॥

गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणीं योगनिद्रया ।
अहो विस्रंसितो गर्भ इति पौरा विचुक्रुशुः॥१५॥

जब देवमाया ने देवकी के गर्भ को रोहिणी में स्थापित कर दिया,तब लोकोंमें इस प्रकार आक्षेप किया गया कि-अहो देवकी का गर्भ गिर गया॥१५॥

भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयंकरः ।
आविवेशांशभागेन मन आनकदुन्दुभेः ॥१६॥

भक्तों को अभय देने वाले, विश्वके आत्म-रूप भगवान् ने भी पूर्ण रूप से वसुदेव के मन में निवास किया ॥१६॥

स बिभ्रत्पौरुषं धाम भ्राजमानो यथा रविः ।
दुरासदोऽतिदुर्धर्षो भूतानां संबभूव ह ॥१७॥

भगवान की मूर्त्ति वसुदेवजी के हृदय में आने से वे सूर्य के समान तेजोमय होगये जिसके कारण उनके सामने जानेकी भी किसीमें सामर्थ्य न रही॥

ततो जगन्मङ्गलमच्युतांशं समाहितं शूरसुतेन देवी । दधार सर्वात्मकमात्मभूतं काष्ठा यथाऽनन्दकरं मनस्तः ॥१८॥

तत्पश्चात् विश्वरूप मङ्गलकारी भगवान् के स्वरूप को वसुदेवजी ने मानस-शक्ति ही से देवकी में धारण किया, उस स्वरूप को देवकीजी ने उसी प्रकार भली बिधि से धारण किया, जैसे पूर्व दिशा चन्द्रमा को धारण करती है ॥१८॥

सा देवकी सर्वजगन्निवासनिवासभूता नितरां न रेजे । भोजेन्द्रगेहेऽग्निशिखेव रुद्धा सरस्वती ज्ञानखले यथा सती ॥१९॥

यद्यपि देवकी जगन्निवास भगवान्की निवास रूपा थीं अर्थात् उनके उदर में श्रीभगवान् का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाश था, तथापि जिस प्रकार से ढके हुए दीपक का प्रकाश नहीं होता या ज्ञान-वंचक पुरुषोंमें विद्या की शोभा नहीं होनेपाती, उसी प्रकार देवकी कंस के घर में क़ैद में रहने के कारण अपनी शोभा को न दिखला सकी ॥१९॥

तां वीक्ष्य कंसः प्रभया जितान्तरां विरोचयन्तीं भवनं शुचिस्मिताम् । आहैष मे प्राणहरो हरि र्गुहां ध्रुवं श्रितो यन्न पुरेयमीदृशी ॥२०॥

उदर में भगवान् के प्रविष्ट होने के कारण उन की कान्ति से समस्त घर (बन्दीगृह) को सुशोभित करतीहुई तथा सुन्दर मधुर भावसे मुसकाती हुई देवकी को देखकर कंस ने कहा कि–मेरा प्राण हरण करने वाला विष्णु-रूपी सिंह इसके उदर रूपी गुफा में अवश्यही आ चुका है, क्योंकि पहले देवकी का इतना तेज न था ॥२०॥

किमद्य तस्मिन्करणीयमाशु मे यदर्थतन्त्रो न विहन्ति विक्रमम् । स्त्रियाः स्वसुर्गुरुमत्या वधोऽयं यशः श्रियं हन्त्यनुकालमायुः ॥२१॥

कंस ने अपने मनमें विचार किया कि अब मैं जल्दी ही से इसके लिये क्या यत्न करूँ ? यह तो देवताओंका कार्य करने के लिये आया है, इसलिये मुझे अवश्य ही मारेगा, परन्तु अब यदि देवकीको मारता हूँ तो यह स्त्री जाति है, दूसरे मेरी बहिनहै और फिर गर्भणीभी है, इसलिये ऐसी दशामें इस के मारने से मेरी कीर्त्ति, लक्ष्मी और आयु तीनों का नाश हो जायगा ॥२१॥

स एष जीवन्खलु संपरेतो वर्तेत योऽत्यन्त नृशंसितेन । देहे मृते तं मनुजाः शपन्ति गन्ता तमोऽन्धं तनुमानिनो ध्रुवम् ॥२२॥

जो मनुष्य अत्यंत दुष्टता करताहै; वह जीवित रहते हुए भी मृतक तुल्य है, उस दुष्ट को जीवन रहते हुए भी लोग धिक्कार देते हुए कहा करते हैं कि यह देह का अहङ्कार करने वाला पुरुष मरने पर अवश्य ही नरक में जायगा ॥२२॥

इति घोरतमाद्भावात्स निवृत्तः स्वयं प्रभुः । आस्ते प्रतीक्षंस्तज्जन्म हरेर्वैरानुबन्धकृत् ॥२३॥

भगवान्के साथ वैर-सम्बन्ध पालन करनेवाला कंस बध करने की शक्ति रखता हुआ भी इस घोर तम विचार को छोड़कर प्रभु के जन्म की प्रतीक्षा करने लगा ॥२३॥

आसीनः संविशंस्तिष्ठन् भुञ्जानः पर्यटन्महीम् । चिन्तयानो हृषीकेशमपश्यत्तन्मयं जगत् ॥२४॥

वह बैठते, सोते, उठते, भोजनकरते और पृथ्वी पर विचरतेहुए इन्द्रिय-पति भगवान्का ही चिंतवन करता हुआ सब संसार भगवत् रूप देखने लगा ॥

ब्रह्मा भवश्च तत्रैत्य मुनिभिर्नारदादिभिः । देवैः सानुचरैः साकं गीर्भिर्गृणमैडयन् ॥२५॥

इसी समय ब्रह्मा, शिव, नारद आदि मुनि और अनुचरों सहित देवता-वृन्द वहाँ आकर मनोरथ पूर्ण करने वाले गर्भ-स्थित भगवान् की स्तुति करने लगे ॥२५॥

देवा ऊचुः

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये । सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥२६॥

हे नाथ ! आप सत्य-सङ्कल्प, सत्य-परायण, त्रिकाल में सद्रूप, पंचभूतों के उत्पन्न करने वाले और उनमें स्थित रहते हुए भी उनके नष्ट होजाने पर शेष रहने वाले, सम दृष्टि और सुन्दर वाणी के प्रवर्त्तक सब प्रकार से सत्य-मूर्त्ति हो; हम आप की शरण आये हैं ॥२६॥

एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूलश्चतूरसः पञ्चविधः षडात्मा । सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः ॥२७॥

जिस ब्रह्मांडरूपी आदि वृक्ष को एक (प्रकृति) का आधार है, दो (सुख और दुःख) फल हैं, तीन (सत, रज और तम) मूल हैं, चार (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) रस हैं, पाँच (इन्द्रियां) जानने के भेद हैं, छः (राग, द्वेष, भूख, प्यास, लोभ और मोह) स्वभाव हैं, सात (धातुएँ) त्वचा हैं, आठ (पंच भूत, मन, बुद्धि और अहङ्कार) शाखायें हैं, नव (द्वार) छिद्र हैं, दस प्राण (पत्ते) हैं और दो (जीव तथा अन्तर्यामी) पक्षी हैं ॥२७॥

त्वमेक एवास्य सतःप्रसूतिस्त्वं सन्निधानं त्वमनुग्रहश्च । त्वन्माययासंवृतचेतसस्त्वां पश्यन्ति नाना न विपश्चितो ये ॥२८॥

इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति तथा संहारकर्ता तुम्हीं हो, तुम्हारी माया में भ्रमित चित्त वाले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुरुष तुम्हें अनेक रूपका जानते हैं, परन्तु विवेकी पुरुष एक ही रूप देखते हैं ॥२८॥

बिभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य । सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि सतामभद्राणि मुहुःखलानाम् ॥२९॥

केवल ज्ञान-स्वरूप आपही समस्त लोकों के पालन करने के लिये सतोगुण मय धर्मवानों को सुख देने वाले और दुष्टोंको नाश करनेवाले स्वरूप बार-बार धारण करते हों ॥२९॥

त्वय्यम्बुजाक्षाखिलसत्त्वधाम्नि समाधिनावेशित चेतसैके । त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन कुर्वन्ति गो वत्सपदं भवाब्धिम् ॥३०॥

हे कमलनयन ! आपही सब जीवों के निवास हो, इसलिये आपके प्रति अनेक महात्मा पुरुष समाधि-द्वारा चित्त स्थित करके, महान् पुरुषों की सिद्ध की हुई आपके चरणारविन्द रूपी नाव के आश्रय से जगत् रूपी समुद्र को गौ के बछड़े के खुर की भांति पार कर जाते हैं ॥३०॥

स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन्भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः । भवत्पदाम्भोरुहनावमत्रते निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् ॥३१॥

हे स्वयं प्रकाश ! ये परम दयालु (मोक्ष प्राप्त पुरुष) इस भयंकर और दुस्तर भवसागरको आप के चरणारविन्द रूपी नावके आसरेसे पार उतरने के पश्चात् उस नाव को यहीं छोड़ गये हैं (अर्थात् भक्ति-भाव आदि साधन बतला गये हैं कि जिनके द्वारा दूसरे पुरुष भी मुक्त होसकें) हे नाथ ! आप ही भक्तों पर कृपा करने वाले हो ॥३१॥

येन्येरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावाद विशुद्धबुद्धयः । आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधो नादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥३२॥

हे कमल-लोचन ! जो ज्ञानी पुरुष अपने को मुक्त मानकर आपकी भक्ति नहीं करते, उनकी बुद्धि अपवित्र होजाती है और अनेक जन्मोंके तप के प्रभावसे श्रेष्ठ-कुल तथा शास्त्र-श्रवण आदि के द्वारा उच्च पद पाकर भी आपके चरणारविन्द का अनादर करने वाले लोग विघ्नों से कष्ट को पातेहैं और तिर्यक योनि में पड़ जाते हैं ॥३२॥

तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः । त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो ॥३३॥

हे माधव ! जैसी बाधायें इन (शुष्क) ज्ञानियों को आया करती हैं वैसी आपके भक्तों को नहीं आतीं, क्योंकि जो लोग आपके स्नेह में बँधेहैं उन की आपही रक्षा करते हैं, इसलिये हे नाथ ! आप के भक्तजन निर्भय होकर विघ्नोंके सिर पर पैर रख कर आनन्द पूर्वक विचरण करते हैं ॥३३॥

सत्त्वं विशुद्धं श्रयते भवान् स्थितौ शरीरिणां श्रेय उपायनं वपुः । वेदक्रियायोगतपःसमाधिभिस्तवार्हणं येन जनः समीहते ॥३४॥

हे प्रभो ! आप जगत् के पालन समय में जीवों को शुभ कर्मों का फल देने के लिये शुद्ध सतोगुणी स्वरूप धारण करते हो, जिस स्वरूप का लक्ष्य रखतेहुए ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वाणप्रस्थ और सन्यासी वेद, कर्म तप तथा समाधिद्वारा आपका ही पूजन करते हैं ॥ ३४ ॥

सत्त्वं न चेद्धातरिदं निजं भवेद्विज्ञानमज्ञान भिदापमार्जनम् । गुणप्रकाशैरनुमीयते भवान्प्रकाशते यस्य च येन वा गुणः ॥३५॥

यदि आपका सतोगुणमय शरीर न हो तो अज्ञान को नाश करने वाले विज्ञान का भी नाशहो जाय, क्योंकि यह बुद्धि आदि पदार्थ जिसके हैं और जिसके द्वारा प्रकाशित हैं, वे परिपूर्ण साक्षी रूप भगवान् आपही हैं, इस प्रकार इन्द्रियादि के प्रकाश से आपका अनुमान होजाता है ॥३५॥

न नामरूपे गुणजन्मकर्मभिर्निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः । मनोवचोभ्यामनुमेयवर्त्मनो देव क्रियायां प्रतियन्त्यथापि हि ॥३६॥

हे प्रकाशमान् ! इस जगत् के साक्षी रूप आप ही हैं, आपके नाम, रूप, गुण, कर्म और जन्मों का निरूपण नहीं हो सकता, जो स्वरूप मन और वाणी द्वारा अनुमान में नहीं आता उस स्वरूप का तुम्हारे भक्तजन ध्यान और उपासना से साक्षात् दर्शन करते हैं ॥३६॥

शृण्वन्गृणन्संस्मरयंश्च चिन्तयन्नामानि रूपाणि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

च मङ्गलानि ते। क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्द योराविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥३७॥

हे ईश्वर! तुम्हारे परम मङ्गलमय नाम और रूपों का स्मरण करता, सुनता, कहता और चिंत, वन करता हुआ जो पुरुष देव-पूजन आदि कर्मों में आपके ही चरणारविन्द का ध्यान रखते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता ॥३७॥

दिष्ट्या हरे स्याद्भवतः पदो भुवो भारोपनीत स्तव जन्मनेशितुः। दिष्ट्याङ्कितां त्वत्पदकैः सुशोभनैर्द्रक्ष्याम गां द्यां च तवानुकम्पिताम्॥३८॥

हे प्रभु! यह बड़ा ही अच्छा हुआ कि आपके अवतार लेने से आपके चरणारविन्द द्वारा पृथ्वी का भार दूर होगा और उसपर उन चरणोंके चिह्न बनेंगे, हम लोग उन चिह्नों तथा आपके दया पात्र स्वर्ग का दर्शन कर सकेंगे, यह महा मङ्गल हुआ॥

न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं विना विनोदं बत तर्कयामहे। भवो निरोधः स्थितिरप्यविद्यया कृता यतस्त्वय्यभवाश्रयात्मनि ॥३९॥

हे नित्यमुक्त परमेश्वर! आप जन्म-रहित के जन्म का कारण केवल क्रीड़ा मात्र के सिवा और कुछ समझ में नहीं आता, क्योंकि जव जीव के जन्म, मरण और स्थिति भी केवल आपके स्वरूप को न जानने के कारण हुआ करते हैं, परन्तु वे वास्तव में हैं नहीं, फिर आपके जन्मादि न होना तो निश्चय ही है ॥३९॥

मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंसराजन्यविप्रविषु धेषु कृतावतारः। त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाधुनेश भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते ॥४०॥

हे यदुवंश वालों में श्रेष्ठ प्रभु! आपने मत्स्य, कच्छप, नृसिंह, वाराह, हंस, राजा, ब्राह्मण और देवताओं में अवतार धारण करके जैसे दूसरे समयों में हम लोगों तथा त्रिलोकों की रक्षा की है वैसेही अवभी कीजिये और पृथ्वीका भार उतारिये, हम लोग आपको प्रणाम करते हैं ॥४०॥

दिष्ट्याम्ब ते कुक्षिगतः परः पुमानंशेन साक्षा द्भगवान्भवाय नः। मा भूद्भयं भोजपतेर्मुमूर्षोर्गोप्ता यदूनां भविता तवात्मजः ॥४१॥

हे माता देवकी! हम लोगों का कल्याण करने के लिये, तेरे उदर में समस्त कलाओंसे पूर्ण परम पुरुष भगवान् स्वयं पधारे हैं, यह बड़ाही अच्छा हुआ है, अव तू कंस से न डर, क्योंकि उसकी मृत्यु निकट आचुकी है, तेरे पुत्र श्रीकृष्ण भगवान् यादवों की रक्षा करेंगे ॥ ४१ ॥

श्रीशुक उवाच

इत्यभिष्टूय पुरुषं यद्रूपमनिदं यथा। ब्रह्मेशानौ पुरोधाय देवाः प्रतिययुर्दिवम् ॥४२॥

श्रीशुकदेवजी बोले-जिनका स्वरूप दिखाई नहीं देता, ऐसे परम पुरुष परमेश्वर की इसप्रकार यथा योग्य स्तुति करके ब्रह्मा और महादेवजी को आगे करके देवतागण स्वर्ग को चले गये ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तीसरा अध्याय

(श्रीकृष्णावतार)

श्रीशुक उवाच

अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः। यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षं शान्तर्क्षग्रहतारकम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-जिस समय सब प्रकारसे शुभ तथा सुन्दर काल आया, चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र पर पहुँच गया, नक्षत्र, ग्रह और तारागण सभी अनुकूल होगये ॥१॥

दिशः प्रसेदुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम्। महीमङ्गलभूयिष्ठपुरग्रामव्रजाकरा ॥ २ ॥

दिशायें स्वच्छहोगईं निर्मल आकाशमें निर्मल ही नक्षत्रों का समूह उदित होगया, पृथ्वीपर राज धानियां, गांव, व्रज और खानें मङ्गलरूप होगईं ॥

नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुहश्रियः। द्विजालिकुलसन्नादस्तबका वनराजयः ॥ ३ ॥

नदियों का जल स्वच्छ होगया, जलाशयों में कमलों की शोभा बढ़ गई, बन की पंक्तियोंके फूलों के गुच्छों पर पक्षी और भौंरे गुञ्जारने लगे ॥३॥

ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अग्नयश्च द्विजातीनां शान्तास्तत्र समिन्धत ॥ ४ ॥

शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु चलने लगी, द्विजों की अग्नि शान्तिके साथ दीप्तिमान हो उठी।

मनांस्यासन्प्रसन्नानि साधूनामसुरद्रुहाम् ।
जायमानेऽजने तस्मिन्नेदुर्दुन्दुभयो दिवि ॥ ५ ॥

और कंस आदि (दुष्टों) के सिवा अन्य सभी प्राणी तथा देवताओं के मन प्रसन्न हो उठे, स्वर्ग में भगवान् के अवतार-सूचक दुन्दुभि बाजे बजने लगे ॥५॥

जगुः किन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः ।
विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभिः समं तदा ॥ ६ ॥

किन्नर और गन्धर्व गानेलगे, सिद्ध और चारण स्तुति करने लगे, विद्याधरोंकी स्त्रियां तथा अप्सरायें नाचने लगीं ॥६॥

मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः ।
मन्दं मन्दं जलधरा जगर्जुरनुसागरम् ॥ ७ ॥

मुनि तथा देवता आनन्द पूर्वक फूल बरसाने लगे, समुद्रके पीछे धीरे २ मेघ गरजने लगे ॥७॥

निशीथे तम उद्भूते जायमाने जनार्दने ।
देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः ।
आविरासीद्यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः ८॥

तब अर्द्ध रात्रि के समय गाढ़ अन्धकारमें देव रूपिणी देवकीसे सर्वान्तर्यामी भगवान् ईश्वर स्वरूप में ही इस प्रकार प्रकट हुए, जैसे पूर्व दिशा में चन्द्रमा उदय होता है ॥८॥*

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शंखगदार्युदायुधम् । श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम् ॥ ९ ॥

महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डलत्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम् । उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभिर्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥१०॥

सविस्मयोत्फुल्लविलोचनो हरिं सुतं विलोक्यानकदुन्दुभिस्तदा । कृष्णावतारोत्सवसंभ्रमोऽस्पृशन्मुदा द्विजेभ्योऽयुतमाप्लुतो गवाम् ॥११॥

वसुदेव ने उस अद्भुत बालकको देखा जिसके कमल समान नेत्र, चार भुजायें और उन भुजाओं में शंख, चक्र, गदा पद्म शस्त्र, हृदय पर भृगुलता का चिह्न, कण्ठ में कौस्तुभ मणि, पीतांबर, सघन मेघ के समान श्यामवर्ण, अमूल्य वैडूर्य मणि से जड़े हुए किरीट व कुण्डलों की कान्ति से झलकते हुए केश, अत्युत्तम कटि मेखला, बाजूबन्द और कङ्कण आदि सुशोभित थे, इस प्रकार पुत्र रूप में अवतीर्ण भगवान् को देखकर आश्चर्य तथा आनंद के कारण वसुदेवजी के नेत्र प्रफुल्लित होगये तथा उन्होंने उसी संभ्रम दशा में श्रीकृष्णावतारके उपलक्ष में पवित्रता पूर्वक दस हज़ार गौओं का दान ब्राह्मणों को करने का मानसिक संकल्प किया ॥

अथैनमस्तौदवधार्य पूरुषं परं नताङ्गः कृतधीः कृताञ्जलिः । स्वरोचिषा भारत सूतिकागृहं विरोचयन्तं गतधीः प्रभाववित् ॥१२॥

हे भारत ! अपनी कान्ति से प्रसूतिका के घर को प्रकाशमान् करते हुए अपने पुत्र को परम पुरुष जानकर, उनके प्रभाव के जानने वाले शुद्ध बुद्धि वाले वसुदेवजी अपना शरीर झुकाकर, हाथ जोड़ कर और निर्भय होकर उनकी स्तुति करनेलगे १२

वसुदेव उवाच

विदितोऽसि भवान्साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः ।
केवलानुभवानन्दस्वरूपः सर्वबुद्धिदृक् ॥१३॥

श्रीवसुदेवजी बोले-केवल अनुभव तथा आनंद ही जिनका स्वरूप है, वे सब पुरुषों की बुद्धि के साक्षी और प्रकृति से परे पुरुष आप प्रत्यक्ष रूप से मेरे जानने में आरहे हैं ॥१३॥

स एव स्वप्रकृत्येदं सृष्ट्वाग्रे त्रिगुणात्मकम् ।
तदनु त्वं ह्यप्रविष्टः प्रविष्ट इव भाव्यसे ॥१४॥

आप अपनी माया से त्रिगुणात्मक जगत् की रचना करके उसमें प्रविष्ट न होते हुए भी सत्रूप से प्रविष्ट के समान प्रतीत होने वाले हो ॥१४॥

यथेमे विकृता भावास्तथा ते विकृतैः सह ।
नानावीर्याः पृथग्भूता विराजं जनयन्ति हि ॥१५॥

जैसे महत्तत्व, अहङ्कार, पंचतन्मात्रा यदि अलग २ बने रहें तो वे किसी कार्य विशेषके करने में समर्थ नहीं होसकते, परन्तु सोलह विकारों के साथ मिलकर समस्त ब्रह्मांडको रच सकते हैं।१५॥

*—जहां जगत की विपति पर, प्रकटेथे घनश्याम ।
ऐसी प्यारी जेल को, बारम्बार प्रणाम ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संनिपत्य समुत्पाद्य दृश्यन्तेनुगता इव ।
प्रागेव विद्यमानत्वान्न तेषामिह संभवः ॥१६॥

और ब्रह्मांडको रचनेके पश्चात् उसमें प्रविष्टसे जान पड़ते हैं, परन्तु जब वे पहले ही कारण रूप से यथार्थ विधि से उसमें प्रविष्ट हैं तब रचना के पश्चात् उनका प्रवेश असंभव है, इसी प्रकार जब आपका प्रवेश कारण रूप से इस जगत्में पहले ही से है, रचना होने पर प्रवेश होना असंभवहै ॥१६॥

एवं भवान्बुद्ध्यनुमेयलक्षणैर्ग्राह्यैर्गुणैः सन्नपि तद्गुणाग्रहः । अनावृततत्वाद्बहिरन्तरं न ते सर्वस्य सर्वात्मन आत्मवस्तुनः ॥१७॥

जिनके स्वरूप का अनुमान रूप आदि के ज्ञान होने पर होता है, उन इन्द्रियों से ग्रहण होने वाले कार्य और पदार्थोंमें जब आप कारण रूपसे प्रविष्ट हैं तब आपको भी ग्रहण कर लेना संभव होजाना चाहिये, परन्तु उन पदार्थ आदि के साथ आपको कोई इन्द्रिय ग्रहण नहीं कर सकती, फिर जब आप सर्व रूप, सर्वात्मा, व्यापक और परमार्थ वस्तु रूप तथा सीमा-रहितहो, तब आपके स्वरूप में बाहर या भीतर का भेद नहीं हो सकता, इस लिये भी आपका कार्यों में प्रवेश करना घटित नहीं होता ॥१७॥

य आत्मनो दृश्यगुणेषु संनिति व्यवस्यते स्वव्यतिरेकतोबुधः । विनानुवादं न च तन्मनीषितं सम्यग्यतस्त्यक्तमुपाददत्पुमान् ॥१८॥

जो मनुष्य देह आदि आत्मा के दिखाई देने वाले गुणों को आत्मासे भिन्न समझता हुआ सत्य मानता है वह अज्ञानी है, क्योंकि विचार करने से बिना कथन मात्र के देह आदि सब असत्यहैं, इसी प्रकार आत्मा के विना देहादि दृश्य पदार्थों को सत्य मानने वाला अज्ञानी है ॥१८॥

त्वत्तोस्य जन्मस्थितिसंयमान्विभो वदन्त्यनीहादगुणादविक्रियात् । त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः ॥१९॥

हे प्रभो ! आप निरीह, निर्गुण तथा निर्विकार हो और आपही से इस संसारकी उत्पत्ति, स्थिति तथा लय होती है, फिर आपही ईश्वर और ब्रह्म रूप हो, इसलिये आपमें कुछ विरोध नहीं है, आप का आश्रय लेकर गुण ही सृष्टि को रचते हैं; इस लिये जैसे सेवक का कार्य राजा का ही काम कहलाता है, वैसे ही गुणों का कार्य आपका ही माना जाता है ॥१९॥

सत्त्वं त्रिलोकस्थितये स्वमायया बिभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः । सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये ॥२०॥

आप जो अपनी माया के योगसे त्रिलोकों की रक्षा के लिये सतोगुणी शुक्ल वर्ण (विष्णु रूप) धारण करते हो, सृष्टि-रचना के समय रजोगुणी रक्त-वर्ण (ब्रह्मा रूप) और प्रलय-काल में तमोगुण से कृष्ण-वर्ण (रुद्र रूप) धारण करते हो ॥२०॥

त्वमस्य लोकस्य विभो रिरक्षिषुर्गृहेवतीर्णोऽसि ममाखिलेश्वर । राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपैर्निर्व्यूह्य माना निहनिष्यसे चमूः ॥२१॥

हे अखिलेश्वर ! आप वही इस जगत् की रक्षा के लिये मेरे घर में प्रकट हुए हो, हे नाथ ! आप क्षत्रिय नाम धारी करोड़ों दैत्यों के यूथपतियों की आज्ञा पर चलने वाली सेनाओं का संहार करोगे ॥

अयं त्वसभ्यस्तव जन्म नौ गृहे श्रुत्वाऽग्रजांस्ते न्यवधीत्सुरेश्वर । स तेऽवतारं पुरुषैः समर्पितं श्रुत्वाऽधुनैवाभिसरत्युदायुधः ॥२२॥

हे देवेश ! इस दुष्ट कंस ने मेरे घर में आपके जन्म होने की भविष्य-वाणी सुनकर आपसे अग्रज मेरे पुत्रों का बध कर डाला है और वह अब भी अपने कर्मचारियों द्वारा आपके अवतारका संवाद पाकर हाथमें हथियार उठाये हुए आयगा ॥२२॥

श्रीशुक उवाच

अथैनमात्मजं वीक्ष्य महापुरुषलक्षणम् ।
देवकी तमुपाधावत्कंसाद्भीता शुचिस्मिता ॥२३॥

श्रीशुकदेवजी बोले-महान् पुरुषों के समान लक्षणों से युक्त पुत्र को देखकर कंस से डरती हुई देवकी ने भगवान् की स्तुति की ॥२३॥

देवक्युवाच

रूपं यत्तत्प्राहुरव्यक्तमाद्यं ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम् । सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं स त्वं साक्षाद्विष्णुरध्यात्मदीपः ॥२४॥

देवकी बोली-हे प्रभो ! आपका जो अप्रत्यक्ष, कारणरूप, ब्रह्म, चैतन्यमय, निर्गुण, निर्विकार,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सत्तात्मक, विशेषरहित और निष्क्रिय-स्वरूप कहा जाता है, आप वही बुद्धि आदि के प्रकाश कर्त्ता साक्षात् विष्णु हो ॥२४॥

नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु । व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते भवानेकः शिष्यतेऽशेषसंज्ञः ॥२५॥

जिस समय ब्रह्माजी की सौ वर्ष आयु पूर्ण होने पर प्रलय काल में समस्त लोक नष्ट होजाते हैं और पंचतत्व क्रम पूर्वक अपने कारण में लीन होजाते हैं अर्थात् पृथ्वी जल में, जल तेज में, तेज वायुमें और वायु आकाशमें लीन होतेहुए समस्त तत्व नाम-हीन होजाते हैं, उस समय केवल आप ही प्रधानके जाननेवाले जन्म-रहित शेष रहजाते हैं।

योयं कालस्तस्य तेव्यक्तबन्धो चेष्टामाहुश्चेष्टते येन विश्वम् । निमेषादिर्वत्सरान्तो महीयांस्तं त्वेशानं क्षेमधाम प्रपद्ये ॥२६॥

हे प्रकृति प्रेरक ! पल से लेकर वर्ष तक की गिनती में आनेवाला और अपने परिवर्त्तनके साथ विश्व को बदल देने वाला यह काल आपही की लीला रूप है, इसलिये अभय के स्थान रूप आप के मैं शरण आई हूँ ।२६॥

मर्त्यो मृत्युर्व्यालभीतः पलायँल्लोकान्सर्वान्निर्भयं नाध्यगच्छत् त्वत्पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाद्य स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति ॥२७॥

हे आदि पुरुष ! मृत्युरूप सर्पसे भयभीत पुरुष सब लोकों में दौड़ता है, पर उसे कहीं भय रहित स्थान नहीं मिलता, परन्तु जब किसी भांति भाग्य उदय होनेपर वह आपके चरणारविन्दमें आजाता है तब वह निश्चिन्त होकर सो रहता है और उसे देखकर मृत्यु भी भाग जाती है ॥२७॥

सत्वं घोरादुग्रसेनात्मजान्नस्त्राहि त्रस्तान् भृत्य वित्रासहाऽसि । रूपं चेदं पौरुषं ध्यानधिष्ण्यं मा प्रत्यक्षं मांसदृशां कृषीष्ठाः ॥२८॥

हे प्रभो ! हम उग्रसेन के पुत्र महा भयंकर वेष वाले कंस से भयभीत हैं, आप हमारी रक्षा करें और यह भक्तों के भय को दूर करने वाला ध्यान धरने योग्य अपना श्याम सुन्दर स्वरूप चर्म चक्षु-धारियों को न दिखाइये ॥२८॥

जन्म ते मय्यसौ पापो मा विद्यान्मधुसूदन । समुद्विजे भवद्धेतोः कंसादहमधीरधीः ॥२९॥

हे मधुसूदन ! कंस को यह विदित न होने पाये कि आपने मेरे यहाँ अवतार लिया है, क्यों कि आपके लिये अधीर चित्तवाली मैं अबला उस के भय से चिन्तित रहती हूँ ॥२९॥

उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम् । शंखचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम् ॥३०॥

हे विश्वात्मन् ! आप यह शंख, चक्र, गदा और पद्मसे शोभायमान, चतुर्भुजी और अलौकिक रूप अन्तर्धान कर लीजिये ॥३०॥

विश्वं यदेतत्स्वतनौ निशान्ते यथावकाशं पुरुषः परो भवान् । बिभर्ति सोयं मम गर्भगो भूदहो नृलोकस्य विडम्बनं हि तत् ॥३१॥

सृष्टि समय में दिखाई देने वाले इस समस्त संसार को प्रलय काल में जो विना ही परिश्रम के अपने उदर में रख लेते हैं, ऐसे आप मेरे गर्भ में रहें, यह बात लोगों में हँसीका कारण होगी ॥३१॥

श्रीभगवानुवाच

त्वमेव पूर्वसर्गेऽभूः पृश्निः स्वायंभुवे सति । तदायं सुतपा नाम प्रजापतिरकल्मषः ॥३२॥

श्रीकृष्ण भगवान् बोले-हे सति ! स्वायंभुव मन्वन्तर में तुम्हारा नाम प्रश्निथा और उससमय ये वसुदेवजी सुतपा नामक शुद्ध प्रजापतिथे ॥३२॥

युवां वै ब्रह्मणादिष्टौ प्रजासर्गे यदा ततः । सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तेपाथे परमं तपः ॥३३॥

जब ब्रह्माजी ने तुम दोनों को सृष्टि रचने की की आज्ञा दी, तब तुम दोनों इन्द्रियों को वश में करके महान् तप करने लगे ॥ ३३ ॥

वर्षवातातपहिमघर्मकालगुणाननु । सहमानौ श्वासरोधविनिर्धूतमनोमलौ ॥३४॥

वर्षा, वायु, धूप, शीत और ग्रीष्म कालके गुणों को तुमने सहन किया और प्राणायाम करके मन का मैल दूर किया ॥३४॥

शीर्णपर्णानिलाहारावुपशान्तेन चेतसा । मत्तः कामानभीप्सन्तौ मदाराधनमीहतुः ॥३५॥

सूखे पत्ते और वायु का आहार करके, मुझसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वर पाने के लिये शान्त चित्त से मेरा आराधन किया ॥ ३५ ॥

एवं वां तप्यतोस्तीव्रं तपः परमदुष्करम् ।
दिव्यवर्ष सहस्राणि द्वादशेयुर्मदात्मनोः ॥३६॥

हे माता ! मुझसे मन लगाकर तुम दोनों ने तीव्र और दुष्कर तप करते हुए; देवताओं के बारह हज़ार वर्ष व्यतीत कर दिये ॥ ३६ ॥

तदा वां परितुष्टोहममुना वपुषानघे ।
तपसा श्रद्धया नित्यं भक्त्या च हृदि भावितः॥३७
प्रादुरासं वरदराड् युवयोः कामदित्सया ।
ब्रियतां वर इत्युक्ते मादृशो वां वृतः सुतः ॥३८॥

हे निष्पाप ! तब तुम्हारे तप, श्रद्धा और निरन्तर भक्तिसे हृदयमें ध्यान किये जानेके कारण मैं वरदानियों का नायक प्रसन्न होकर वर देने के लिये इसी देह से तुम्हारे सामने प्रकट होकर यह बोला था कि वर मांगो, तब तुमने मेरे ही समान पुत्र मांगा था[1] ॥ ३७ ॥॥३८॥

अजुष्टग्राम्यविषयावनपत्यौ च दम्पती ।
न वव्राथेपवर्गं मे मोहितौ देवमायया ॥३९॥

क्योंकि तुमने संसार के विषय-सुख भोगमान न करने पाये थे और तुम्हारे कोई सन्तान भी न हुई थी, इसलिये तुमने मेरी मायासे मोहित होकर मोक्ष के लिये प्रार्थना न की ॥३९॥

गते मयि युवां लब्ध्वा वरं मत्सदृशं सुतम् ।
ग्राम्यान् भोगानभुञ्जाथां युवां प्राप्तमनोरथौ॥४०॥

जब मैं तुम दोनों को अपने समान पुत्र होने का वरदान देकर चला गया, तब तुम दोनों पूर्ण काम संसार सम्बन्धी सुखों को भोगने लगे ॥४०॥

अदृष्ट्वान्यतमं लोके शीलौदार्यगुणैः समम् ।
अहं सुतो वामभवं पृश्निगर्भ इति श्रुतः ॥४१॥

शील, उदारता और गुणों में किसी को अपने समान न पाकर मैंही 'प्रश्निगर्भ' नाम से तुम्हारा पुत्र हुआ था[2] ॥४१॥

तयोर्वां पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात् ।
उपेन्द्र इति विख्यातो वामनत्वाच्च वामनः ॥४२॥

फिर दूसरे जन्म में तुम दोनों कश्यप और अदिति हुए, वहाँ भी मैंने 'उपेन्द्र' नाम से तुम्हारे यहाँ अवतार धारण किया था, उस समय छोटा रूप धारण करने के कारण मैं 'वामन' नाम से प्रसिद्ध हुआ था ॥४२॥

तृतीयेऽस्मिन भवेऽहं वै तेनैव वपुषाऽथ वाम् ।
जातो भूयस्तयोरेव सत्यं मे व्याहृतं सति ॥४३॥

अब तुम्हारे तीसरे जन्म में भी इसी शरीर से प्रकट हुआहूँ, हे सती ! मेरी यह बात सत्यमानो।

एतद्वांदर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे ।
नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्यलिङ्गेन जायते ॥४४॥

अपने पूर्व जन्म का स्मरण कराने के लिये मैंने यह स्वरूप तुम्हें दिखायाहै, क्योंकि यदि मैं मनुष्य शरीर से प्रकट होता तो तुम्हें मेरा ज्ञान न हो सकता था ॥४४॥

युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन चासकृत् ।
चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्गतिं पराम्॥४५

अब तुम चाहे पुत्र भाव करके या चाहे पर-ब्रह्म करके चिन्तवन करते हुए मुझसे स्नेहरक्खो, दोनों ही दशाओं में परम गति पाओगे ॥ ४५॥

इत्युक्त्वासीद्धरिस्तूष्णीं भगवानात्ममायया ।
पित्रोः संपश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः॥४६॥

शुकदेवजी बोले–हे राजन्! इतनी बात कहकर भगवान् चुप होगये और अपनी माया के द्वारा तत्काल ही माता-पिता के देखते २ प्राकृतिक बालक से बन गये ॥ ४६॥

ततश्च शौरिर्भगवत्प्रचोदितः सुतं समादाय स सूतिकागृहात् । यदा बहिर्गन्तुमियेष तर्ह्यजा या योगमायाऽजनि नन्दजायया ॥४७॥

फिर भगवान् की प्रेरणा[3] से वसुदेवजी ने

१–दान सिरोमनि कृपानिधि. कहहुं नाथ ! सत भाव । चाहत तुमहि समान सुत, प्रभु सन कवन दुराव ॥

२–निज समान जग कोउ न पायउ । भगति विवस सुत बनि गृह आयउ ॥

३–"यदि कंसाद्विभेषित्वं तर्हि मां गोकुलंनय। मन्माया मानयाशुत्वं यशोदा गर्भ संभवाम् ॥"–भगवान् की ओर से वसुदेवजी के हृदय में यह प्रेरणा हुई थी कि "जो तुमको कंसकी ओरसे मेरे बध का डर है, तो तुम मुझे गोकुल में नन्दजी के यहाँ पहुँचादो और यशोदाजी के गर्भ से उत्पन्न हुई मेरी माया को अपने घर ले आओ।"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रसूति गृह में से पुत्र को लेकर जब बाहर जाने की इच्छा की, तभी श्रीनन्दराय की स्त्री यशोदाके यहाँ जन्म लेने वाली योग-माया प्रकट हुई ॥४७॥

तया हृतप्रत्ययसर्ववृत्तिषु द्वाःस्थेषु पौरेष्वपि शायितेष्वथ । द्वारस्तु सर्वाः पिहिता दुरत्यया बृहत्कपाटायसकीलशृङ्खलैः ॥४८॥

ताः कृष्णवाहे वसुदेव आगते स्वयं व्यवर्तन्त यथा तमो रवेः । ववर्ष पर्जन्य उपांशुगर्जितः शेषोन्वगाद्वारि निवारयन्फणैः ॥४९॥

इस योग-माया ने द्वारपालोंका सब ज्ञान और वृत्तियां हरलीं, तथा पुरवासियों को भी निद्रा के वशीभूत कर दिया, जब वसुदेवजी भगवान् को अपने हाथ में लेकर चले, तब मथुरा के द्वारों के लोहे की कीलों वाली साँकलों से बन्द किये हुए महान् दृढ़ बड़े-बड़े किवाड़, उनके आते ही इस प्रकार खुल गये जैसे सूर्योदय से अन्धकार दूर हो जाता है, मेघ मन्द-मन्द गर्जन करते हुए बरसने लगे और शेषनागजी अपने फणरूपी छत्र से जल का बचाव करते हुए चलने लगे ॥४८॥४९

मघोनि वर्षत्यसकृद्यमानुजा गम्भीरतोयौघ जवोर्मिफेनिला । भयानकावर्तशताकुला नदी मार्गं ददौ सिन्धुरिव श्रियः पतेः ॥५०॥

यद्यपि इस समय बार २ वर्षा होने से यमुना जी पूर्णतया भरीहुई थीं, उसमें गंभीर जलके बहने के वेग से हिलोरें आरहीं थीं, इस कारण फेन उठ रहा था और जलमें सैकड़ों भयंकर बड़ी २ भंवरें पड़रहीं थीं, फिर भी उसने वसुदेवजी को मार्ग[1] दे दिया, कि जिस भांति समुद्र ने श्रीरामचन्द्रजी को मार्ग दे दिया था ॥५०॥

नन्दव्रजं शौरिरुपेत्य तत्र तान्गोपान्प्रसुप्तानुपलभ्य निद्रया । सुतं यशोदाशयने निधाय तत्सुतामुपादाय पुनर्गृहानगात् ॥५१॥

जब वसुदेवजी नन्दराय के व्रज में पहुंचे, तब वे वहाँ पर ग्वालों को माया के मोह से सोता हुआ देखकर बालक यशोदाजीकी शैयापर सुलाकर औरउनकी कन्या को लेकर मथुरा को लौट आये॥

देवक्याः शयने न्यस्य वसुदेवोऽथ दारिकाम् । प्रतिमुच्य पदोर्लोहमास्ते पूर्ववदावृतः ॥५२॥

इस कन्या को देवकी की शैया पर रखकर, फिर अपने पैरों में बेड़ी पहिन कर वे पहले की भांति बैठ गये ॥५२॥

यशोदा नन्दपत्नी च जातं परमबुद्ध्यत । न तल्लिङ्गं परिश्रान्ता निद्रयाऽपगतस्मृतिः ॥५३॥

नन्दराय की पत्नी यशोदाजी को केवल इतना ही ज्ञान हुआ कि मेरे कोई पुत्र उत्पन्न हुआ है, परन्तु श्रम और योगमाया के कारण स्मृति हरण होजाने से वे यह निश्चय न कर सकीं कि वह पुत्र है या कि कन्या ॥५३॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चौथा अध्याय

(योगमाया का कंसके हाथ से छूटकर आकाश में जाना)

श्रीशुक उवाच

बहिरन्तः पुरद्वारः सर्वाः पूर्ववदावृताः । ततो बालध्वनिं श्रुत्वा गृहपालाः समुत्थिताः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-(वसुदेवजी के लौट आने पर) बाहर तथा भीतर के द्वार पहलेकी भांति बन्द होगये, फिर बालकका शब्द सुनकर द्वारपालउठे॥

ते तु तूर्णमुपव्रज्य देवक्या गर्भजन्म तत् । आचख्युर्भोजराजाय यदुद्विग्नः प्रतीक्षते ॥ २ ॥

और उन्होंने उसी समय जाकर देवकीके प्रसव का समाचार कंस को सुनाया कि जिसकी कंस बड़े ही उद्वेग के साथ प्रतीक्षा कर रहा था ॥२॥

स तल्पात्तूर्णमुत्थाय कालोऽयमिति विह्वलः । सूतीगृहमगात्तूर्णं प्रस्खलन्मुक्तमूर्धजः ॥ ३ ॥

"यह तो मृत्यु" इस प्रकार विह्वल कंस तत्-काल ही शैया से उठकर खुले केश ठोकरें खाता हुआ प्रसूति-गृह में पहुंचा ॥३॥

१-जब तैं लहि गोविन्द पद, गही भव-हरन छांहि । तब तैं कहि "गोविन्द" जन, जमुना तट जम नाहिं ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तमाह भ्रातरं देवी कृपणा करुणं सती ।
स्नुषेयं तव कल्याण स्त्रियं मा हन्तुमर्हसि ॥ ४ ॥

सती और दीन देवकी ने करुणोत्पादक शब्दों में भाई से कहा कि हे कल्याणरूप ! इस कन्या को न मार, यदि यह जीवित बनी रहेगी तो मैं इसे तेरे पुत्र को व्याह दूँगी ॥४॥

बहवो हिंसिता भ्रातः शिशवः पावकोपमाः ।
त्वया दैवनिसृष्टेन पुत्रिकैका प्रदीयताम् ॥ ५ ॥

हे भाई ! तूने दैवी प्रेरणासे मेरे अग्निके समान तेजधारी कई पुत्र मार डाले, अब यह एक कन्या मुझे दे दो ॥५॥

नन्वहं ते ह्यवरजा दीना हतसुता प्रभो ।
दातुमर्हसि मन्दाया अङ्गेमां चरमां प्रजाम् ॥ ६ ॥

हे राजन् ! मैं दीन मन्दभाग्यनी तेरी बहिन हूँ, मेरे पुत्र मारे गयेहैं, इसलिये हे भाई ! यह अन्तिम सन्तान तू मुझे देने योग्य है ॥६॥

श्रीशुक उवाच

उपगुह्यात्मजामेवं रुदन्त्या दीनदीनवत् ।
याचितस्तां विनिर्भर्त्स्य हस्तादाचिच्छिदे खलः ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–इस प्रकार पुत्री को छाती से लिपटा कर निपट दीन की भांति रुदन करते हुए देवकी ने प्रार्थना की, फिर भी दुष्ट कंसने तिरस्कार करके उस कन्या को छीन लिया ॥७॥

तां गृहीत्वा चरणयोर्जातमात्रां स्वसुः सुताम् ।
अपोथयच्छिलापृष्ठे स्वार्थोन्मूलितसौहृदः ॥ ८ ॥

स्वार्थ के वशीभूत होकर स्नेहको उखाड़नेवाले कंसने अपनी बहिनकी नव-प्रसूता कन्या को पकड़ कर शिला पर पछाड़ा ॥८॥

सा तद्धस्तात्समुत्पत्य सद्यो देव्यम्बरं गता ।
अदृश्यतानुजा विष्णोः सायुधाष्टमहाभुजा ॥ ९ ॥
दिव्यस्रगम्बरालेपरत्नाभरणभूषिता ।
धनुःशूलेषुचर्मासिशंखचक्रगदाधरा ॥ १० ॥

वह विष्णु की छोटी बहिन देवी कंस के हाथ से निकल कर तत्काल ही आकाश में जा पहुँची और वहाँ साक्षात् योग-माया के रूप में दिखाई देने लगी, जो विशाल आठ भुजाओं में धनुष, शूल, बाण, ढाल, तलवार, शंख, चक्र और गदा यह आठ आयुध धारण किये थी और दिव्य पुष्पों की माला, वस्त्र, अरगजा, रत्न-जटित आभूषणों से शोभायमान थी ॥९॥१०॥

सिद्धचारणगन्धर्वैरप्सरःकिन्नरोरगैः ।
उपाहृतोरुबलिभिः स्तूयमानेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥

सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर और नागवृन्द उसे बड़ी-बड़ी भेंट देरहे थे, और स्तुति कर रहे थे उस समय उसने कहा कि ॥११॥

किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृत् ।
यत्र क्व वा पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान् वृथा ॥ १२ ॥

रे मूर्ख ! मेरे मारनेसे तुझे क्या लाभ होसकता है ? तेरे प्राणों का लेने वाला, तेरा पूर्व जन्म वाला शत्रु तो कहीं दूसरी ही जगह उत्पन्न हो चुका है; इसलिये तू बेचारे दीन प्राणियों का व्यर्थ ही संहार न कर* ॥ १२ ॥

इति प्रभाष्य तं देवी माया भगवती भुवि ।
बहुनामनिकेतेषु बहुनामा बभूव ह ॥ १३ ॥

इस प्रकार भगवती देवी योग माया ने कंससे कहा और वह बहु नामधारी स्थानों में अनेकनामों से प्रसिद्ध हुई ॥१३॥

तयाऽभिहितमाकर्ण्य कंसः परमविस्मितः ।
देवकीं वसुदेवं च विमुच्य प्रश्रितोऽब्रवीत् ॥ १४ ॥

योगमाया का इस प्रकार वचन सुनकर कंस को बड़ा विस्मय हुआ, उसने देवकी और वसुदेव के पैरों से बेड़ियां खुलवा दीं और हाथ जोड़ कर यह वचन कहा कि ॥१४॥

अहो भगिन्यहो भाम मया वां बत पाप्मना ।
पुरुषाद इवापत्यं बहवो हिंसिताः सुताः ॥ १५ ॥

अहो बहिन ! अहो बहनोईजी ! हाय ! मुझ पापी ने तुम्हारे कई बालक इसी भांति मार डाले जैसे कोई राक्षस अपनेही पुत्रोंको मार डालताहै ॥

स त्वहं त्यक्तकारुण्यस्त्यक्तज्ञातिसुहृत्खलः ।
काँल्लोकान्वै गमिष्यामि ब्रह्महेव मृतः श्वसन् ॥ १६ ॥

*–जब काल के हाथ कमान चढ़ै, तब बूढ़, जवान समान गिनै है । जनि भूम उमानौ गुमानन में, इक आन सबै सर आन अचै है ॥ उपचार करै, प्रतिकारकरै, हथियार तितै कछु काम न ऐहै। मन मूरख ! लाख उपाय करे, पर काल के जाल सों छूट न पै है ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हाय मैं निर्दय, जाति और हितकारी लोगोंको छोड़ने वाला, दुष्ट ब्रह्मघाती के समान जीवित भी मृतक-तुल्य हूं, अब मैं किस लोक में जाऊँगा ? ॥

दैवमप्यनृतं वक्ति न मर्त्या एव केवलम् ।
यद्विश्रम्भादहं पापः स्वसुर्निहतवाञ्छिशून् ॥१७॥

केवल मनुष्य ही झूठ बोलते हों सो बात नहीं है, परन्तु देवता भी झूठ बोलनेलगे हैं, कि जिनके बिश्वास में आकर मुझ पापी ने अपनी बहिन के पुत्र मार डाले हैं ॥१७॥

मा शोचतं महाभागौ स्वात्मजान्स्वकृतं भुजः ।
जन्तवो न सदैकत्र दैवाधीनाः सहाऽऽसते ॥१८॥

हे भाग्यशालियो ! तुम अपने पुत्रोंका शोक न करो, क्योंकि उन्होंने अपने कर्मों का भोग कियाहै, जीव दैव के आधीन हैं और सर्वदा एकत्र नहीं रह सकते ॥१८॥

भुवि भौमानि भूतानि यथा यान्त्यपयान्ति च ।
नायमात्मा तथैतेषु विपर्येति यथैव भूः ॥१९॥

जैसे पृथ्वीके विकार घट आदि उसीसे होकर उसीमें लीन होजातेहैं, परन्तु पृथ्वीमें कुछ विकार नहीं आता, वैसे ही देह के जन्म लेने या मरने से आत्मा में कोई विकार न आकर वह एक रस ही रहता है ॥ १९ ॥

यथाऽनेवंविदो भेदो यत आत्मविपर्ययः ।
देहयोगवियोगौ च संसृतिर्न निवर्तते ॥२०॥

जो इस प्रकार ज्ञान नहीं रखता वह देहको ही आत्मा मानता है, इसी कारण 'मैं-तू' आदि अनेक प्रकार की भेद-बुद्धि होजाती है, इसी भेदके कारण पुत्रादिकों के शरीरोंसे संयोग-वियोग होताहै और इससे उनका अज्ञान नहीं छूटने पाता ॥२०॥

तस्माद्भद्रे स्वतनयान्मया व्यापादितानपि ।
माऽनुशोच यतः सर्वः स्वकृतं विन्दतेऽवशः॥२१॥

हे कल्याण-रूपिणी ! यद्यपि मैंने तेरे पुत्र मार डाले हैं, फिर भी तू उनका शोच न कर, क्योंकि जीवमात्र विवश होकर अपने कर्मों का फल भोगा करते हैं ॥२१॥

यावद्धतोस्मि हन्तास्मीत्यात्मानं मन्यते स्वदृक् ।
तावत्तदभिमान्यज्ञो बाध्यबाधकतामियात् ॥२२॥

जब तक यह देह का अभिमान करने वाला अज्ञानी पुरुष अपने स्वरूप को न जानकर ऐसा मानता है कि "मैं मरता हूँ, मैं मारता हूँ" तब तक वह प्रायश्चित भोगने (मरने-जीने) का अधिकारीहै॥

क्षमध्वं मम दौरात्म्यं साधवो दीनवत्सलाः ।
इत्युक्त्वाश्रुमुखः पादौ श्यालस्वस्रोरथाग्रहीत्२३॥

अब तुम दोनों साधुओं और दीनों पर दया करने वालो ! मुझ दुष्टको क्षमा करो । इस प्रकार कहते तथा रोते हुए कंसने बहिन तथा बहनोई के चरण पकड़ लिये ॥२३॥

मोचयामास निगडाद्विस्रब्धः कन्यकागिरा ।
देवकीं वसुदेवं च दर्शयन्नात्मसौहृदम् ॥२४॥

और आकाश-वाणी के उस वचन पर (कि तेरा मारनेवाला कहीं दूसरी जगह उत्पन्न होचुकाहै) विश्वास करके स्नेह जतलाने के लिये उन दोनों को बन्धन से छोड़ दिया ॥ २४ ॥

भ्रातुः समनुतप्तस्य क्षान्तरोषा च देवकी ।
व्यसृजद्वसुदेवश्च प्रहस्य तमुवाच ह ॥२५॥

इस प्रकार पश्चात्ताप करते हुए भाईको देवकी ने क्षमा करदिया और बसुदेवजीने भी बैर भुलाकर हँसतेहुए कहा कि॥२५॥

एवमेतन्महाभाग यथा वदसि देहिनाम् ।
अज्ञानप्रभवाहंधीः स्वपरेति भिदा यतः ॥२६॥

हे महात्मा कंस ! जैसा तू कहता है वैसी ही बात है, देहधारियों को देहाभिमान अज्ञान से ही होताहै कि जिसके कारण 'मेरा-तेरा' माननेका भेद हो जाता है ॥२६॥

शोकहर्षभयद्वेषलोभमोहमदान्विताः ।
मिथो घ्नन्तं न पश्यंति भावैर्भावं पृथग्दृशः॥२७॥

शोक, हर्ष, भय, द्वेष, लोभ और मोह वाले तथा मदोन्मत्त देहाभिमानी पुरुष इसबातको नहीं जानते कि ईश्वर ही पदार्थों से पदार्थों का नाश करता है, वे अपने ही को मरने वाला और मारने वाला जानते हैं ॥२७॥

श्रीशुक उवाच

कंस एवं प्रसन्नाभ्यां विशुद्धं प्रतिभाषितः ।
देवकीवसुदेवाभ्यामनुज्ञातोविशद्गृहम् ॥२८॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! इसप्रकार शुद्ध हृदय से प्रसन्न हुए वसुदेव तथा देवकी की आज्ञा लेकर कंस अपने घरको लौट आया ॥ २८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां कंस आहूय मन्त्रिणः ।
तेभ्य आचष्ट तत्सर्वं यदुक्तं योगनिद्रया ॥२९॥

रात बीतनेपर कंसने मन्त्रियों को बुलाकर उन से यह सब समाचार कहा कि जो उससे योग-माया ने कहा था ॥२९॥

आकर्ण्य भर्तुर्गदितं तमूचुर्देवशत्रवः ।
देवान्प्रति कृतामर्षा दैतेयानातिकोविदाः ॥३०॥

अपने स्वामी के वचन सुनकर देवताओंके शत्रु देवताओं पर क्रोध करने वाले और क्षुद्र बुद्धिवाले दैत्य-मंत्रियों ने कंस से कहा कि ॥३०॥

एवं चेत्तर्हि भोजेन्द्र पुरग्रामव्रजादिषु ।
अनिर्दशान्निर्दशांश्च हनिष्यामोद्य वै शिशून्॥३१॥

हे भोजेन्द्र ! यदि आपका मारने वाला कहीं उत्पन्न होचुका है तो इसकी क्या चिन्ता है ? पुर ग्राम और व्रज आदि में आजकल जितने भी दस दिन से कम या अधिक के बालक हैं, उनको हम मार डालेंगे ॥ ३१ ॥

किमुद्यमैः करिष्यन्ति देवाः समरभीरवः ।
नित्यमुद्विग्नमनसो ज्याघोषैर्धनुषस्तव ॥३२॥

युद्ध में डरने वाले ये देवतागण क्या पराक्रम दिखला सकते हैं कि जिनके हृदय आपके धनुषकी टंकार मात्र सुनकर काँप उठते हैं ॥ ३२ ॥

अस्यतस्ते शरव्रातैर्हन्यमानाः समन्ततः ।
जिजीविषव उत्सृज्य पलायनपरा ययुः ॥३३॥

जिस समय आप धनुष पर बाणोंको चढ़ाकर उनकी चारों ओर से मार करते हो; उस समय देवता लोग अपने प्राण ले-लेकर मार्ग छोड़कर निकल भागतेहैं,वे लोग भागनेही को श्रेष्ठ मानतेहैं ॥

केचित्प्राञ्जलयो दीना न्यस्तशस्त्रा दिवौकसः ।
मुक्तकच्छशिखाः केचिद्भीताः स्म इति वादिनः३४

कई एक देवता युद्धमें शस्त्र डालकर, दीन हो कर और हाथ जोड़कर खड़े होजातेहैं और कितने ही देवता काँछ तथा चोटी खोलकर-'हम डरते हैं, हम डरते हैं' ऐसा कहने लगते हैं ॥३४॥

न त्वं विस्मृतशस्त्रास्त्रान्विरथान्भयसंवृतान ।
हंस्यन्यासक्तविमुखान्भग्नचापानयुद्धयतः ॥३५॥

जिनके शस्त्रास्त्र भूलगये हैं, रथ टूट गये हैं, जो भय से घिरे हुए दूसरों के साथ युद्ध कररहे हैं जिनके धनुष टूट गये हैं, या जो युद्ध छोड़कर बैठ रहे हैं, उनको आप नहीं मारते ॥३५॥

किं क्षेमशूरैर्विबुधैरसंयुगविकत्थनैः ।
रहोजुषा किं हरिणा शंभुना वा वनौकसा॥३६॥
किमिन्द्रेणाल्पवीर्येण ब्रह्मणा वा तपस्यता ।
तथापि देवाः सापत्न्यान्नोपेक्ष्या इति मन्महे ।
ततस्तन्मूलखनने नियुङ्क्ष्वास्माननुव्रतान् ॥३७॥

जहाँ युद्ध या शूरवीर का सामना न हो, ऐसे निर्भय स्थान में डींग मारने वाले विष्णु, बनवासी शिव, तुच्छ पराक्रमी इन्द्र या तप-मग्न ब्रह्मा से अपना क्या बिगड़ सकता है ? कुछ नहीं, फिर भी हमारा विचारहै कि शत्रुताके कारण हमें देवताओं की ओर से निश्चिन्त न रहना चाहिये. इसलिये आप हम सेवकों को देवताओं की जड़ (विष्णु) को नष्ट करने की आज्ञा दीजिये ॥३६॥३७॥

यथाऽऽमयोऽङ्गे समुपेक्षितो नृभिर्न शक्यते रूढ पदश्चिकित्सितुम् । यथेन्द्रियग्राम उपेक्षितस्तथा रिपुर्महान्बद्धबलो न चाल्यते ॥३८॥

जैसे शरीर में रोग बिना उपचार जड़ पकड़ जाता है तो फिर मनुष्य उसका उपाय नहीं कर सकता या जैसे इन्द्रियां पहले स्वतन्त्र छोड़दी जाँय तो फिर उनका दमन नहीं हो सकता, वैसेही शत्रु की उपेक्षा करने से जब वह बल पकड़ जाता है तो जीता नहीं जा सकता ॥३८॥

मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः सनातनः ।
तस्य च ब्रह्मगोविप्रास्तपोयज्ञाः सदक्षिणाः॥३९॥

समस्त देवताओं की जड़ विष्णु है, विष्णु की जड़ सनातन धर्म है और धर्म की जड़ वेद, गौ, ब्राह्मण, तप तथा दक्षिणा वाले यज्ञ हैं ॥३९॥

तस्मात्सर्वात्मना राजन्ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः ।
तपस्विनो यज्ञशीलान्गाश्च हन्मो हविर्दुघाः॥४०॥

हे राजन् ! सब प्रकार के वेद-पाठी, तपस्वी तथा यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों और यज्ञकी सामग्री (दूध-घी आदि) को पूर्ण करने वाली गौओं को हम मारेंगे ॥ ४०॥

विप्रा गावश्च वेदाश्च तपः सत्यं दमः शमः ।
श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनूः ॥४१॥

ब्राह्मण, गौ, वेद, तप, सत्य, दम, शम, श्रद्धा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दया, सहन-शक्ति और यज्ञ-ये सब विष्णु के शरीर रूप हैं ॥४१॥

स हि सर्वसुराध्यक्षो ह्यसुरद्विड् गुहाशयः ।
तन्मूला देवताः सर्वाः सेश्वराः सचतुर्मुखाः ।
अयं चैतद्वधोपायो यद्दृषीणां विहिंसनम् ॥४२॥

यह विष्णु ही देवताओं का नायक दैत्यों का शत्रु और गुप्त रहनेवाला है, ब्रह्मा तथा शिवआदि समस्त देवताओं का मूल भी यही है, इसलिये ऋषियों का मारनाही विष्णुके मारनेका उपायहै ॥

श्रीशुक उवाच

एवं दुर्मन्त्रिभिः कंसः सह संमन्त्र्य दुर्मतिः ।
ब्रह्महिंसां हि तं मेने कालपाशावृतोऽसुरः ॥४३॥

श्रीशुकदेवजी बोले-काल-पाश से बँधे हुए, दुष्ट बुद्धि असुर कंस ने इस प्रकार दुष्ट मन्त्रियों सहित विचार करके ब्रह्म-हत्या करने में अपना कल्याण माना ॥४३॥

संदिश्य साधुलोकस्य कदने कदनप्रियान् ।
कामरूपधरान्दिक्षु दानवान्गृहमाविशत् ॥४४॥

इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले और दूसरों के नाश को ही प्रिय मानने वाले दैत्यों को सब दिशाओं में साधु लोगों को नाश करने की आज्ञा देकर कंस घरको चला गया ॥४४॥

ते वै रजःप्रकृतयस्तमसा मूढचेतसः ।
सतां विद्वेषमाचेरुरारादागतमृत्यवः ॥४५॥

जिनकी मृत्यु निकट आपहुंची है,ऐसे राजसी स्वभाव वाले और तमोगुणसे मन्द बुद्धिवाले दैत्य सत्पुरुषों से शत्रुता करने लगे ॥४५॥

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च ।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥४६॥

साधुओं से द्वेष करने में पुरुष की आयु, बल धन, धर्म, यश, शुभ लोक, सुख और समस्त कल्याण नष्ट हो जाते हैं ॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पाचवां अध्याय

(श्रीकृष्ण जन्मोत्सव वर्णन)

श्रीशुक उवाच

नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः ।
आहूय विप्रान्दैवज्ञान्स्नातः शुचिरलंकृतः ॥ १ ॥
वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै ।
कारयामास विधिवत्पितृदेवार्चनं तथा ॥ २ ॥

शुकदेवजी बोले-पुत्रका जन्म होनेसे आनंदित उदार चित्त नन्दराय* ने स्नान करके, पवित्र हो कर, शृङ्गार धारण कर, ज्योतिषी ब्राह्मणोंको बुला कर, स्वस्ति-वाचन कराके जात कर्म संस्कार करवाया और पितृ तथा देवताओंका पूजन करवाया॥

धेनूनां नियुते प्रादाद्विप्रेभ्यः समलंकृते ।
तिलाद्रीन्सप्त रत्नौघशातकौम्भाम्बरावृतान् ॥ ३ ॥

शृङ्गार करके दो लाख गौऐं और रत्नों के ढेर सहित स्वर्ण-जटित वस्त्रों से मढ़े हुए सात तिलों के पर्वत ब्राह्मणों को दान किये ॥३॥

कालेन स्नानशौचाभ्यां संस्कारैस्तपसेज्यया ।
शुद्ध्यन्ति दानैःसंतुष्ट्या द्रव्याण्यात्मात्मविद्यया ४

पृथ्वी आदि पदार्थ काल से, देह आदि स्नान से, अपवित्र वस्तु से लिपटा हुआ पदार्थ धोनेसे, गर्भ आदि संस्कारों से, इन्द्रिय आदि तप से, ब्राह्मण आदि यज्ञ से, धन दान से, मन सन्तोषसे और आत्मा ब्रह्म-विद्या से शुद्ध होते हैं ॥४॥

सौमङ्गल्यगिरो विप्राः सूतमागधबन्दिनः ।
गायकाश्च जगुर्नेदुर्भेर्यो दुन्दुभयो मुहुः ॥ ५ ॥

ब्राह्मण, सूत (पुराण कहनेवाले) मागध (भाट) बन्दी-सभी मङ्गलाचार करने लगे, गायक गानेलगे और भेरी, नक़ारे बार-बार बाजने लगे ॥५॥

व्रजः संमृष्टसंसिक्तद्वाराजिरगृहान्तरः ।
चित्रध्वजपताकास्त्रक्चैलपल्लवतोरणैः ॥ ६ ॥

*-पूत सपूत जन्यौ जसुदा, इतनी सुनि कै वसुधा सब दौरी । देवन के मन हर्ष भयौ, सुनि धावत गावत मङ्गल गौरी ॥ नन्द कछू जो दियौ इतनौ, घनश्याम कुबेरहु की मति बौरी । मोहिं देखत एतो लुटायदियौ, न बची बछिया, छछिया न पिछौरी ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्रज में द्वार, आँगन और घरों के भीतरी भाग झाड़ बुहार कर छिड़काये गये, अनोखी ध्वजाओं में पताकाओं की माला लगाई गईं और वस्त्र तथा पत्रावलि के बन्दनवारों से द्वार सजाये गये ॥६॥

गावो वृषा वत्सतरा हरिद्रातैलरूषिताः ।
विचित्रधातुबर्हस्रग्वस्त्रकाञ्चनमालिनः ॥ ७ ॥

गाय, बैल और बछड़ों को हल्दी और तैल से रंगकर उनपर विचित्र धातु गेरू, खड़िया आदि का लेप किया गया, मोरछल बाँधी गईं, झूलें डाली गईं और स्वर्ण की मालायें पहिनाई गईं ॥७॥

महार्हवस्त्राभरणकञ्चुकोष्णीषभूषिताः ।
गोपाः समाययू राजन्नानोपायनपाणयः ॥ ८ ॥

हे राजन् ! सब ग्वाल सुन्दर वस्त्र आभूषण, अंगरखा, पगड़ी पहिन कर और भेंटें लेकर आये॥

गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम् ।
आत्मानं भूषयांचक्रुर्वस्त्रकल्पाञ्जनादिभिः ॥ ९ ॥

यशोदाजी के पुत्र का जन्म सुनकर गोपियों ने प्रसन्न मन से वस्त्र, आभूषण तथा अञ्जन आदिसे अपनी देह का शृङ्गार किया ॥९॥

नवकुंकुमकिञ्जल्कमुखपङ्कजभूतयः ।
बलिभिस्त्वरितं जग्मुः पृथु श्रोण्यश्चलत्कुचाः॥१०॥

नवीन केसर के लेपसे शोभायमान मुखारविंद पुष्ट नितम्ब और चलायमान स्तन वाली गोपियां भेंटें लेकर शीघ्र ही नन्दजी के घर पहुँचीं* ॥१०॥

गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्यश्चित्राम्बराः
पथि शिखाच्युतमाल्यवर्षाः । नन्दालयं सवलया
व्रजतीर्विरेजुर्व्यालोलकुण्डलपयोधरहारशोभाः ११

उज्ज्वल मणियों के जड़ाऊ कुण्डल पहिने हुए, पदक का हार पहिने हुए, हाथों में कङ्कण धारण किये हुए, विचित्र मालायें पहिने हुए, गोपियां नन्दजी के घर को जाती हुई शोभा देती थीं, जिन की चोटियों से मार्ग में फूल बरस रहे हैं, स्तन डोल रहे हैं, कुण्डल झलकते हैं, हार हिलरहे हैं, वह शोभा देखते ही बनती है ॥ ११ ॥

ता आशिषः प्रयुञ्जानाश्चिरं पाहीति बालके ।
हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिञ्चन्त्यो जनमुज्जगुः ॥१२॥

वे गोपियां बालरूप श्रीकृष्ण भगवान्को चिरजीव होने का आशीर्वाद† देती हुई और तैल तथा पानीमें हल्दीका चूर्ण मिलाकर उससे लोगों को भिगोती हुई आरही हैं ॥ १२ ॥

अवाद्यन्त विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे ।
कृष्णे विश्वेश्वरेऽनन्ते नन्दस्य व्रजमागते ॥१३॥

जगत्पति श्रीकृष्णचन्द्रजी के व्रज में पधारतेही इस महोत्सव में विचित्र बाजे बजने लगे ॥ १३ ॥

गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभिः ।
आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः१४॥

और ग्वाल वृन्द प्रसन्न मन से परस्पर घी, दूध और जल उलीचते या लेपन करतेहुए माखन फेंकने लगे ॥१४॥

नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोलंकारगोधनम् ।
सूतमागधबन्दिभ्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः ॥१५॥

उदार चित्त वाले नन्दरायजी ने सूत, मागध, बन्दीजन तथा और भी ऐसे लोगोंको कि जो अपनी विद्या ही से जीविका कमाते थे, वस्त्र, आभूषण, गौ और धन दान दिया ॥१५॥

तैस्तैः कामैरदीनात्मा यथोचितमपूजयत् ।
विष्णोराराधनार्थाय स्वपुत्रस्योदयाय च ॥१६॥

उदार हृदय नन्दजी ने अपने पुत्र के कल्याण के लिये श्रीविष्णुदेव की आराधना की और जो लोग भी जिस इच्छासे आयेथे, उनको वही वस्तु देकर उनका यथा योग्य पूजन किया ॥१६॥

रोहिणी च महाभागा नन्दगोपाभिनन्दिता ।

---

*-फूल गये गोप गृह गोपिन को भूल गये, हूल सी मचाई माते प्रेम सरसाई में । कीच मची दधि की अधिक गैल गैलन में, रंग रस अङ्ग पागे आनन्द बधाई में ॥ छोटी सी चोटी कछोटी कटि मोटी भई, गोपी सबै चोपी रूप सागर कन्हाईमें । राजी दिल मोहन विनोदन जो विहंस नन्द, नाचे आज आंगन कन्हाई की बधाई में ॥

†-भादौं बदि आठैं बुध रोहिणीको अर्द्धरैन, उगी चन्द कोर कृष्णचन्द्र अवतारे हैं । व्रज रखवारे बारे सुघर सलौने श्याम, काम मद हारे तीन धाम उजियारे हैं ॥ जगत अधारे धारे धरन की लाज आज, सुरभी सुरन काज सोहन सिधारे हैं । व्रज के सितारे प्यारे गोप और गोपिन के, यशुदा दुलारे सोई साहब हमारे हैं ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्यचरद्दिव्यवासः स्रक्कण्ठाभरणभूषिता ॥१७॥

नन्दजी द्वारा सम्मानित महा भाग्यशालनी रोहिणी दिव्य वस्त्र, माला और कण्ठाभरण आदि से सजी हुई इस महोत्सव में बिचर रही थीं॥१७॥

तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान् ।
हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप ॥१८॥

हे राजन् ! श्रीभगवान् जबसे वहाँ विराजमान् हुए, तबसे उनके प्रभाव के कारण गुणों से नंदजी का गोकुल समस्त सम्पदाओं तथा लक्ष्मी के रमंण करने योग्य होगया ॥ १८ ॥

गोपान् गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः ।
नन्दः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह ॥१९॥

हे कुरुकुल दीपक ! एक बार गोकुल की रक्षा के लिये गोपों को आज्ञा देकर श्रीनन्दजी कंस को कर देने के लिये मथुरा में गये ॥१९॥

वसुदेव उपश्रुत्य भ्रातरं नन्दमागतम् ।
ज्ञात्वा दत्तकरं राज्ञे ययौ तदवमोचनम् ॥२०॥

अपने परम मित्र नन्दजी को आया हुआ देख कर उनका कर चुकता होजाने के पश्चात् श्रीवसुदेवजी उनके डेरे पर गये ॥२०॥

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय देहः प्राणमिवागतम् ।
प्रीतः प्रियतमं दोर्भ्यां सस्वजे प्रेमविह्वलः ॥२१॥

जैसे प्राण को आता हुआ देखकर, शरीरखड़ा होजाता है, वैसेही परम प्रिय मित्र वसुदेवजी को आया हुआ देखकर श्रीनन्दजी जल्दी में प्रेमातुर होकर उठे और प्रेम पूर्वक बाहें पसार कर उनसे भेंट करने लगे ॥२१॥

पूजितः सुखमासीनः दृष्ट्वाऽनामयमादृतः ।
प्रसक्तधीः स्वात्मजयोरिदमाह विशांपते ॥२२॥

दिष्ट्या भ्रातः प्रवयस इदानीमप्रजस्य ते ।
प्रजाशाया निवृत्तस्य प्रजा यत्समपद्यत ॥२३॥

हे राजन् ! स्वागत सत्कार पाकर सुख से बैठे हुए वसुदेवजी ने कि जिनका मन अपने पुत्रही में लग रहा था, आदर पूर्वक नन्दजी से कुशल-प्रश्न किया और कहा कि-हे भाई ! यह बड़ा ही अच्छा हुआ है कि आप निःसंतान तथा सन्तान की ओर से निराश के यहाँ बुढ़ापे में पुत्र उत्पन्न होगया ॥

दिष्ट्या संसारचक्रेऽस्मिन्वर्तमानः पुनर्भवः ।
उपलब्धो भवानद्य दुर्लभं प्रियदर्शनम् ॥२४॥

आज तुम मुझे इस प्रकार देखने में आरहे हो मानो तुमने इस संसार-चक्रमें फिरते हुए पुनर्जन्म पा लिया हो, यह बड़ा ही मङ्गल हुआ है, क्योंकि अपने प्यारे का दर्शन होना अतीव दुर्लभ है ॥२४॥

नैकत्र प्रियसंवासः सुहृदां चित्रकर्मणाम् ।
ओघेन व्यूह्यमानानां प्लवानां स्रोतसो यथा॥२५॥

जैसे जल-प्रवाह के साथ बहते हुए तृण और काष्ठ आदि एक स्थान पर स्थिर नहीं रहते, वैसे ही विचित्र प्रारब्ध वाले सम्बन्धियों का भी एक स्थान पर निवास नहीं रहता ॥२५॥

कच्चित्पशव्यं निरुजं भूर्यम्बुतृणवीरुधम् ।
बृहद्वनं तदधुना यत्रास्ते त्वं सुहृद्वृतः ॥२६॥

विशेष जल, तृण और लताओं से भरा पूरा पशुओं का हितकारी महावन कि जहाँ तुम अपने सुहृदों के साथ रहते हो-निरोग तो है ? ॥२६॥

भ्रातर्मम सुतः कच्चिन्मात्रा सह भवद्व्रजे ।
तातं भवन्तं मन्वानो भवद्भ्यामुपलालितः ॥२७॥

हे बन्धु ! मेरा पुत्र (बलरामजी) अपनी माता के साथ तुम्हारे व्रज में रहता है और तुम्हीं को पिता रूप मानता है, उसका पालन तुम्हीं करतेहो वह प्रसन्न तो है ? ॥२७॥

पुंसस्त्रिवर्गो विहितः सुहृदो ह्यनुभावितः ।
न तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गोऽर्थाय कल्पते ॥२८॥

जो पुरुष के धर्म, अर्थ और काम अपने संबंधियोंके लिये भी उपयोगीहों, वही सफल कहलाते हैं और जिनसे सम्बन्धी क्लेश पावें वह धर्म आदि किसी काम के नहीं ॥२८॥

नन्द उवाच

अहो ते देवकीपुत्राः कंसेन बहवो हताः ।
एकाऽवशिष्टाऽवरजा कन्या साऽपि दिवं गता॥२९

नन्दजी बोले-हाय ! तुम्हारे देवकी से उत्पन्न हुए बहुत से पुत्र कंसने मार डाले और एक छोटी सी कन्या हुई थी वह भी स्वर्ग में जा पहुंची॥२९॥

नूनं ह्यदृष्टनिष्ठोऽयमदृष्टपरमो जनः ।
अदृष्टमात्मनस्तत्त्वं यो वेद न स मुह्यति ॥३०॥

इस जीव की प्रारब्धही सीमा है और प्रारब्ध ही सर्वोपरि है, जो मनुष्य ऐसा ज्ञान रखताहै उसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मोह नहीं होता (अर्थात् प्रारब्ध ही सर्वस्व देने या हरने वाला है) ॥३०॥

वसुदेव उवाच

करो वै वार्षिको दत्तो राज्ञे दृष्टा वयं च वः ।
नेह स्थेयं बहुतिथं सन्त्युत्पाताश्च गोकुले ॥३१॥

वसुदेवजी बोले–तुम राजा कंस का वार्षिक कर दे चुके और मुझसे भी मिल चुके, अब यहां अधिक ठहरना उचित नहीं है, क्योंकि गोकुल में उत्पात होने की आशंका है ॥३१॥

श्रीशुक उवाच

इति नन्दादयो गोपाः प्रोक्तास्ते शौरिणा ययुः ।
अनोभिरनडुद्युक्तैस्तमनुज्ञाप्य गोकुलम् ॥३२॥

श्रीशुकदेवजी बोले–श्रीनन्दरायजी आदि गोप इस प्रकार वसुदेवजी के वचन सुनकर बैलों की गाड़ियां तैयार करके, उनसे विदा माँगकर गोकुल को गये ॥३२॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

छठा अध्याय

(पूतना-वध)

श्रीशुक उवाच

नन्दः पथि वचः शौरेर्न मृषेति विचिन्तयन् ।
हरिं जगाम शरणमुत्पातागमशङ्कितः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–नन्दजी मार्गमें यह विचार करते हुए कि वसुदेवजी का वचन मिथ्या नहीं हो सकता–उत्पात होने की संभावना से भगवान् का ध्यान करने लगे ॥१॥

कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बालघातिनी ।
शिशूंश्चचार निघ्नन्ती पुरग्रामव्रजादिषु ॥ २ ॥

उन्हीं दिनों में कंसकी पहुंचाई हुई और बच्चों को मारने वाली पूतना पुर, गाँव तथा व्रज आदि में बालकों को मारती फिरती थी ॥२॥

न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि स्वकर्मसु ।
कुर्वन्ति सात्वतां भर्तुर्यातुधान्यश्च तत्र हि ॥ ३ ॥

जिस जगह पर राक्षसों के नाश करने वाले भगवान् के चरित्र कहे या सुने नहीं जाते, वहाँ राक्षसियां अपना काम कर सकती हैं ॥३॥

सा खेचर्येकदोपेत्य पूतना नन्दगोकुलम् ।
योषित्त्वा मायया ऽऽत्मानं प्राविशत्कामचारिणी ॥४॥

आकाश-मार्ग में विचरने वाली और इच्छानुसार वेष बनाने वाली वह पूतना माया से स्त्री का रूप बनाकर श्रीनन्दरायजीके गोकुलमें जापहुँची ॥

तां केशबन्धव्यतिषक्तमल्लिकां बृहन्नितम्बस्तन कृच्छ्रमध्यमाम् । सुवाससं कम्पितकर्णभूषणत्विषोल्लसत्कुन्तलमण्डिताननाम् ॥ ५ ॥

उसकी वेणी में चमेली के फूल गुंधे हुए थे, बड़े नितम्ब तथा कुचोंके भारसे कमर लचक रही थी और सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए, हिलते हुए कुण्डलों के प्रकाश तथा चमकते हुए बालों से मुख मण्डल शोभा पा रहा था ॥५॥

वल्गुस्मितापाङ्गविसर्गवीक्षितैर्मनो हरन्तीं वनितां व्रजौकसाम् । अमंसताम्भोजकरेण रूपिणी गोप्यः श्रियं द्रष्टुमिवागतां पतिम् ॥ ६ ॥

मधुर मुसकान तथा कटाक्ष मयी चितवन से मन मोहित होजानेके कारण किसीने उसे न रोका, उसके हाथ में कमल था, इसलिये गोपियोंको ऐसे जान पड़ा मानो लक्ष्मी अपने पति श्रीविष्णु भगवान् के दर्शनों को आई है ॥६॥

बालग्रहस्तत्र विचिन्वती शिशून्यदृच्छया नन्द गृहेऽसदन्तकम् । बालं प्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसं ददर्श तल्पेऽग्निमिवाहितं भसि ॥ ७ ॥

बालकोंके लिये ग्रहरूपिणी उस पूतनाने बालकों की खोज करते हुए दैवेच्छा से नन्दरायजी के घर में उन शिशुरूप श्रीकृष्ण भगवान् को देखा, जो कि अपना स्वाभाविक तेज छिपानेके लिये भस्मसे ढके हुए अङ्गारे की भांति और दुष्ट जीवों के लिये काल रूप थे ॥ ७ ॥

विबुध्य तां बालकमारिकां ग्रहं चराचरात्मा स निमीलितेक्षणः । अनन्तमारोपयदङ्कमन्तकं यथोरगं सुप्तमबुद्धिरज्जुधीः ॥ ८ ॥

सचराचर के आत्म-रूप श्रीकृष्ण भगवान् ने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उस बाल-हत्यारी पूतना को जानकर अपने नेत्र मूंद लिये, तब पूतना ने उन काल-रूप भगवान् को अपनी गोद में उठा लिया, जैसे मूर्ख मनुष्य सोते हुए सांप को रस्सी समझ कर उठा लेता है ॥८॥

तां तीक्ष्णचित्तामतिवामचेष्टितां वीक्ष्यान्तरा कोशपरिच्छदासिवत् ।वरस्त्रियं तत्प्रभया च धर्षिते निरीक्षमाणे जननी ह्यतिष्ठताम् ॥ ९ ॥

म्यान में छिपी हुई तलवार के समान तीव्र स्वभाव वाली, किन्तु बाहरी वेष-भूषा में सुन्दर लगने वाली पूतना की कान्ति से मोहित होकर तथा रोहिणी उसे उत्तम स्त्री समझकर बिना कुछ कहे, केवल उसे खड़ी-खड़ी देखती ही रहीं ॥९॥

तस्मिन्स्तनं दुर्जरवीर्यमुल्बणं घोराङ्कमादाय शिशोर्ददावथ । गाढं कराभ्यां भगवान्प्रपीड्य तत्प्राणैः समं रोषसमन्वितोऽपिबत् ॥१०॥

वहाँ पर दुष्टा पूतना ने बालरूप श्रीकृष्ण भगवान् को अपनी गोद में ले लिया और उनके मुख कमल में भयंकर तथा दुर्धर विष से भरा हुआ अपना स्तन दे दिया, तब श्रीकृष्ण ने क्रोधित हो कर उस स्तन को दोनों हाथों से बल-पूर्वक दबा कर उसे प्राणों के साथ पान किया ॥१०॥

सा मुञ्च मुञ्चालमिति प्रभाषिणी निष्पीड्य मानाखिलजीवमर्मणि । निष्टृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः प्रस्विन्नगात्रा क्षिपती रुरोद ह ॥११॥

समस्त मर्म-स्थानों में पीड़िता पूतना-"छोड़दे छोड़ दे, अब रहने दे" इस प्रकार कहनेलगी और फटी हुई आँखों वाली उस राक्षसी के शरीर से पसीना छूटपड़ा, तथा वह बार-बार हाथ-पैर पटक पटक कर रोने लगी* ॥११॥

तस्याः स्वनेनातिगभीररंहसा सादिर्महीद्यौश्च चचाल सग्रहा । रसा दिशश्च प्रतिनेदिरे जनाः पेतुः क्षितौ वज्रनिपातशङ्कया ॥१२॥

उस पूतनाके रुदन-नादसे पर्वतों सहित पृथ्वी काँपने लगी, ग्रह, तारागण और रसातल हिलने लगे और दिशाओं में गर्जना हो उठी, मानों इन्द्र का बज्र गिरने की शंका से मनुष्य पृथ्वी पर गिर पड़े हों ॥१२॥

निशाचरीत्थं व्यथितस्तना व्यसुर्व्यादाय केशां श्चरणौ भुजावपि। प्रसार्य गोष्ठे निजरूपमास्थिता वज्राहतो वृत्र इवापतन्नृप ॥१३॥

इस प्रकार स्तनों की पीड़ा से मरती हुई वह राक्षसी मरते समय अपना पहला रूप पाकर बज्र से मरे हुए वृत्रासुर के समान व्रज में गिर पड़ी, उसका मुंह फट गया, बाल बिखर गये और हाथ पैर लम्बे फैल गये ॥१३॥

पतमानोऽपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान् । चूर्णयामास राजेन्द्र महदासीत्तदद्भुतम् ॥१४॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! इस पूतना के शरीरने गिरते २ छः कोस तकके वृक्षोंको चूर्ण कर डाला, यह बड़े ही आश्चर्य की बात हुई ॥१४॥

ईषामात्रोग्रदंष्ट्रास्यं गिरिकन्दरनासिकम् । गण्डशैलस्तनं रौद्रं प्रकीर्णारुणमूर्धजम् ॥१५॥
अन्धकूपगभीराक्षं पुलिनारोहभीषणम् । बद्धसेतुभुजोर्वङ्घ्रि शून्यतोयह्रदोदरम् ॥१६॥

इस भयावनी पूतना के मुंह में हल के समान लम्बी और भयकारणी दाढ़ें, पर्वत की गुफा के समान नाक, पर्वत के गण्डस्थल के समान स्तन, बिखरे हुए लाल केश, अन्धकूप के समान गहरे नेत्र, तट के समान भयकारी नितम्ब, बंधी हुई सड़क के समान भुजायें, साथल और पैर, सूखे तालाब के समान पेट था ॥१५॥॥१६॥

संतत्रसुः स्म तद्वीक्ष्य गोपा गोप्यः कलेवरम् । पूर्वं तु तन्निःस्वनितभिन्नहृत्कर्णमस्तकाः ॥१७॥

गोप और गोपियों के हृदय, कान औरमस्तक तो पहले ही से पूतना के शब्दसे फूट गये थे, अब उसके भयंकर शरीरको देखकर वे और भी अधिक व्याकुल हो उठे ॥१७॥

बालं च तस्या उरसि क्रीडन्तमकुतोभयम् । गोप्यस्तूर्णं समभ्येत्य जगृहुर्जातसंभ्रमाः ॥१८॥

गोपियों ने बड़े ही संभ्रम पूर्वक तत्काल ही

*-परी यशोमति ! तेरी कूँख में परेरी छाल, जायौ है न बाल यह आयो जग-जाल है । दूध का पिलायौ, मैंने नाग को खिलायौ हाय ! प्रान हू गँवायौ सब भूल गई चाल है ॥ चूस लियौ रक्त सबै, तोर दई शक्ति सबै; खैंचत ही जाय खाय मानो नस-जाल है । माय री ! कन्हैयालाल काल-दूत है कराल, पूत ना तिहारो यह पूतनाको कालहै॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आकर उसकी छाती पर खेलते हुए श्रीबालकृष्ण को उठा लिया ॥१८॥

यशोदारोहिणीभ्यां ताः समं बालस्य सर्वतः ।
रक्षां विदधिरे सम्यग्गोपुच्छभ्रमणादिभिः ॥१९॥

यशोदा और रोहिणीसहित उन सब गोपियों ने भगवान् बालकृष्ण पर गौकी पूंछ फिराने आदि की कई तन्त्र-क्रियाओं द्वारा भली भांति उनकी रक्षा की ॥ १९ ॥

गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनर्गोरजसार्भकम् ।
रक्षां चक्रुश्च शकृता द्वादशाङ्गेषु नामभिः ॥२०॥

फिर गौ-मूत्र, गो-रज और गोबर से उन्हें नहलाकर, उनके बारह अङ्गों पर भगवान्के नामों से रक्षा-प्रयोग किया ॥२०॥

गोप्यः संस्पृष्टसलिला अङ्गेषु करयोः पृथक् ।
न्यस्यात्मन्यथ बालस्य बीजन्यासमकुर्वत ॥२१॥

फिर गोपियों ने (सावधान होनेपर) आचमन करके अपने शरीरके पहले अलग-अलग अङ्गन्यास तथा करन्यास करने के पश्चात् बालकृष्ण के अङ्गों में विजयन्यास प्रयोग किया ॥२१॥

अव्यादजोऽङ्घ्रिमणिमांस्तव जान्वथोरू यज्ञो
ऽच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः । हृत्केशवस्तदुर
ईश इनस्तु कण्ठं विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम् ॥

भगवान् अज तुम्हारे चरणों की, मणिमान् भगवान् घुटनों की; यज्ञ भगवान् साथलों की, अच्युत कमर की, हयग्रीव पेट की, केशव हृदय की, ईश वक्षःस्थल की, इन्द्र कण्ठकी विष्णु भुजाकी, उरुक्रम मुख की और ईश्वर मस्तक की रक्षा करें॥

चक्र्यग्रतः सहगदो हरिरस्तु पश्चात्त्वत्पार्श्वयोर्ध
नुरसी मधुहा जनश्च । कोणेषु शङ्ख उरुगाय उपर्यु
पेन्द्रस्तार्क्ष्यः क्षितौ हलधरः पुरुषः समन्तात् २३॥

भगवान् चक्रधारी तुम्हारे अग्र भाग की, गदा धर पिछले भागकी, धनुषधारी मधुसूदन भगवान् और खड्गधारी अज भगवान् दोनों बगल की, शंखधर उरुगाय भगवान् कोनोंसे, उपेन्द्र भगवान् ऊपर से, तार्क्ष्य भगवान् नीचे से और हलधर भगवान् चारों ओर से रक्षा करें ॥२३॥

इन्द्रियाणि हृषीकेशः प्राणान्नारायणोऽवतु ।
श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनो योगेश्वरोवतु ॥२४॥

पृश्निगर्भस्तु ते बुद्धिमात्मानं भगवान्परः ।
क्रीडन्तं पातु गोविन्दः शयानं पातु माधवः ॥२५॥

हृषीकेश इन्द्रियोंकी, नारायण प्राणों की, श्वेत द्वीप के स्वामी चित्त की, योगेश्वर भगवान् मनकी प्रश्नि गर्भ भगवान् बुद्धि की और पर भगवान् तुम्हारे अहङ्कार की रक्षा करें, खेलते हुए भगवान् गोविन्द, सोते हुए माधव भगवान् तुम्हारी रक्षा करें ॥२४॥२५॥

व्रजन्तमव्याद्वैकुण्ठ आसीनं त्वां श्रियः पतिः ।
भुञ्जानं यज्ञभुक्पातु सर्वग्रहभयङ्करः ॥२६॥

चलते हुए वैकुंठ भगवान्, बैठते हुए लक्ष्मी-पति और भोजन करते हुए सब ग्रहों को भय देने वाले यज्ञ भगवान् तुम्हारी रक्षा करें ॥२६॥

डाकिन्यो यातुधान्यश्च कूष्माण्डा येऽर्भकग्रहाः ।
भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षरक्षोविनायकाः ॥२७॥
कोटरा रेवती ज्येष्ठा पूतना मातृकादयः ।
उन्मादा ये ह्यपस्मारा देहप्राणेन्द्रियग्रहः ॥२८॥
स्वप्नदृष्टा महोत्पाता वृद्धबालग्रहाश्च ये ।
सर्वे नश्यन्तु ते विष्णोर्नामग्रहणभीरवः ॥२९॥

डाकनी, राक्षसियां, कूष्मांड, बालग्रह, भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, विनायक, कोठरा, रेवती, अलक्ष्मी, पूतना, मातृका प्रभृति, उन्माद, अपस्मार तथा और भी जो देह, प्राण एवं इन्द्रियों के द्रोही हैं, स्वप्न में दिखाई देने वाले उत्पात, वृद्ध तथा बालकों के ग्रह कि जो विष्णुका नाम लेने से डरते हैं, वे सब नष्ट हो जावें ॥२७॥२८॥२९॥

श्रीशुकवाच

इति प्रणयबद्धभिर्गोपीभिः कृतरक्षणम् ।
पाययित्वा स्तनं माता संन्यवेशयतात्मजम् ॥३०॥

इस प्रकार स्नेह में बँधी हुई गोपियों द्वारा रक्षित श्रीबालकृष्ण को यशोदाजी ने दूध पिला कर सुला दिया ॥३०॥

तावन्नन्दादयो गोपा मथुराया व्रजं गताः ।
विलोक्य पूतनादेहं बभूवुरतिविस्मिताः ॥३१॥

उसी समय मथुरासे लौटकर नन्द आदि गोप व्रजमें आये, उन्होंने मार्ग में पड़ी हुई पूतना की देह को देखकर बड़ा आश्चर्य माना ॥३१॥

नूनं बतर्षिः संजातो योगेशो वासमास सः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स एव दृष्टो ह्युत्पातो यदाहानकदुन्दुभिः ॥३२॥

और कहा कि वसुदेवजी तो ऋषि या योगेश्वर ही जान पड़ते हैं, क्यों उन्होंने जैसा कहा था यह वैसा ही उत्पात ज्ञात होरहा है॥३२॥

कलेवरं परशुभिश्छित्त्वा तत्ते व्रजौकसः ।
दूरे क्षिप्त्वावयवशो न्यदहन्काष्ठवेष्टितम् ॥३३॥

फिर ग्वालोंने पूतनाके शरीरको कुल्हाड़ियोंसे काट २ कर उसके सब अङ्ग दूर-दूर फेंक दियेऔर शेष भाग को लकड़ों में रखकर जला दिया ॥३३॥

दह्यमानस्य देहस्य धूमश्चागुरुसौरभः ।
उत्थितः कृष्णनिर्भुक्तसपद्याहतपाप्मनः ॥३४॥

जिस समय पूतना के शरीर को जलाया गया उससमय उसमें से अगर चन्दनके समान सुगंधि फैली, क्योंकि श्रीकृष्ण भगवान् ने उसके स्तन को पान किया था, इसलिये उसके समस्त पाप तत्काल ही क्षय होगये थे ॥ ३४ ॥

पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना ।
जिघांसयापि हरये स्तनं दत्त्वाऽप सद्गतिम् ३५॥

मनुष्यों के बालकों को मारने वाली और रक्त पान करने वाली पूतना ने यद्यपि मारने की इच्छा से भगवान् को स्तन पान कराया था, फिर भी वह मुक्त होगई ॥३५॥

किं पुनः श्रद्धया भक्त्या कृष्णाय परमात्मने ।
यच्छन्प्रियतमं किं नु रक्तास्तन्मातरो यथा॥३६॥

फिर भगवान् से प्रेम करने वाली माताओं के मोक्ष होने में तो आश्चर्य ही क्या है और श्रद्धा भक्ति से प्रिय वस्तु अर्पण करने वालों का मोक्ष हो जाना क्या बड़ी बात है ? ॥३६॥

पद्भ्यां भक्तहृदिस्थाभ्यां वन्द्याभ्यां लोकवन्दितैः।
अङ्गं यस्याः समाक्रम्य भगवानपिबत्स्तनम्॥३७॥

भक्तों के हृदय में निवास करने वाले. लोकोंसे वन्दित और देवताओं से भी वन्दनीय भगवान् ने चरणोंसे जिसके अङ्गोंको दबाकर स्तन पानकिया॥

यातुधान्यपि सा स्वर्गमवाप जननीगतिम् ।
कृष्णभुक्तस्तनक्षीराः किमुगावो नु मातरः॥३८॥

वह पूतना राक्षसी भी जब माता के योग्य पद स्वर्ग को प्राप्त होगई तब जिन गौओं या गोपियों के दूध को भगवान् ने स्वयं पान किया है, उनके मोक्ष होने में बात ही क्या है ? ॥३८॥

पयांसि यासामपिबत्पुत्रस्नेहस्नुतान्यलम् ।
भगवान्देवकीपुत्रः कैवल्याद्यखिलप्रदः ॥३९॥

क्योंकि वात्सल्य से टपकता हुआ उनका दूध मोक्ष आदि समस्त पुरुषार्थ देनेवाले देवकी नंदन श्रीकृष्ण भगवान् ने पिया है ॥३९॥

तासामविरतं कृष्णे कुर्वन्तीनां सुतेक्षणम् ।
न पुनः कल्पते राजन् संसारोऽज्ञानसंभवः ॥४०॥

हे राजन् ! जो मातायें निरन्तर भगवान् में पुत्र भाव रखती थीं, उनके अज्ञान से संसार का होना (जन्म-मरण) संभव नहीं है ॥४०॥

कटधूमस्य सौरभ्यमवघ्राय व्रजौकसः ।
किमिदं कुत एवेति वदन्तो व्रजमाययुः ॥४१॥

उस "शव" के धुएँ की सुगन्धि सूंघकर नन्द राय आदि व्रजवासी यों कहते हुए कि "यह क्या है और कहाँ से हुआ है" व्रज में आये ॥ ४१ ॥

ते तत्र वर्णितं गोपैः पूतनागमनादिकम् ।
श्रुत्वा तन्निधनं स्वस्ति शिशोश्चासन्सुविस्मितः ४२

उन्होंने ग्वालों के द्वारा पूतना के आने, उसके मरने और बालकृष्ण के कुशल-पूर्वक बचने का हाल सुनकर बड़ा ही अचरज माना ॥ ४२ ॥

नन्दः स्वपुत्रमादाय प्रेत्यागतमुदारधीः ।
मूर्ध्न्युपाघ्राय परमां मुदं लेभे कुरूद्वह ॥४३॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! उदार बुद्धि नन्दरायजी अपने पुत्रको लेकर, उसका सिर सूंघ कर इस प्रकार परमानन्द को प्राप्त हुए जैसे कोई अपने मरे हुए सम्बन्धी के जीवित होने पर आनन्दित होता है ॥४३॥

य एतत्पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम् ।
शृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविन्दे लभते रतिम्॥४४॥

जो पूतना-मोक्ष रूपी श्रीकृष्णचन्द्र की इस अद्भुत बाल-लीला को श्रद्धा पूर्वक श्रवण करेगा, वह परमेश्वर की प्रीति पायगा ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सातवां अध्याय

(तृणावर्त-मोक्ष)

राजोवाच

येन येनावतारेण भगवान् हरिरीश्वरः ।
करोति कर्णरम्याणि मनोज्ञानि च नः प्रभो ॥ १ ॥

परीक्षित बोले—हे प्रभो ! भगवान् ईश्वर श्री कृष्ण जिस-जिस अवतार से जो-जो लीला करतेहैं वह सब मेरे कानों और मनको प्रिय लगती हैं॥१॥

यच्छृण्वतोऽपैत्यरतिर्वितृष्णा सत्त्वं च शुद्ध्य त्यचिरेण पुंसः । भक्तिर्हरौ तत्पुरुषे च सख्यं तदेव हारं वद मन्यसे चेत् ॥ २ ॥

फिर भी जो आप मुझपर दयालु हैं तो जिस के सुनने से पुरुषों के मनकी ग्लानि दूर होजातीहै अनेक प्रकार की तृष्णा छूट जाती है, अल्प काल ही में अन्तःकरण शुद्ध होजाता है, भगवान्में प्रीति तथा वैष्णवों से मित्रता हो जाती है, वही मनोहर चरित् मुझसे कहिये ॥२॥

अथान्यदपि कृष्णस्य लोकाचरितमद्भुतम् ।
मानुषं लोकमासाद्य तज्जातिमनुरुन्धतः ॥ ३ ॥

इससे आगे मनुष्य-देह धारण करके मनुष्य-जाति के समान आचरण करनेवाले श्रीकृष्ण भगवान् के और भी बाल-चरित्र कहिये ॥३॥

श्रीशुक उवाच

कदाचिदौत्थानिककौतुकाप्लवे जन्मर्क्षयोगे सम वेतयोषिताम् । वादित्रगीतद्विजमन्त्रवाचकैश्चकार सूनोरभिषेचनं सती ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—कुछ दिन पीछे भगवान्के उत्थान तथा जन्म-नक्षत्र का योग आ पड़ा, इस दिनके उत्सव में एकत्र हुई स्त्रियोंके साथ यशोदा जी ने बाजे, गायन और ब्राह्मणों के मंत्र सहित स्वस्ति-वाचन पूर्वक उनका अभिषेक किया ॥४॥

नन्दस्य पत्नी कृतमज्जनादिकं विप्रैः कृतस्वस्त्य यनं सुपूजितैः । अन्नाद्यवासः स्रगभीष्टधेनुभिः संजातनिद्राक्षमशीशयच्छनैः ॥ ५ ॥

भगवान् को स्नान कराके, अन्नादि वस्त्र, माला प्रिय पदार्थ तथा गौएँ दान करके पूजन किये हुए ब्राह्मणों से स्वस्ति-वाचन करवा के, उनकी निद्रा वश अलसाई हुई आँखें देखकर, यशोदाजी ने धीरे से एक शकट के तले पालनेमें उनको लिटादिया ॥

औत्थानिकौत्सुक्यमना मनस्विनी समागतान् पूजयती व्रजौकसः । नैवाशृणोद्रुदितं सुतस्य सारुदन्स्तनार्थी चरणावुदक्षिपत् ॥ ६ ॥

कुछ देर में दूध पीने की इच्छा से भगवान् बालकृष्ण रोने और अपने चरण उछालने लगे, परन्तु उत्सव के उत्साहमें चित्त लगने और आये हुए व्रजवासियों के स्वागत सत्कार की उलझन में यशोदाजी उनका रोना सुन न सकीं ॥६॥

अधःशयानस्य शिशोरनोऽल्पकप्रवालमृद्वङ्घ्रि हतं व्यवर्तत । विध्वस्तनानारसकुप्यभाजनं व्यत्यस्तचक्राक्षविभिन्नकूबरम् ॥ ७ ॥

शकट के नीचे सोते हुए छोटे से बालकृष्ण भगवान् के चरण चलानेसे ही वह शकट टूटगया और उसमें रक्खे हुए अनेक प्रकारके रसों से पूर्ण काँसे आदि के बर्तन टूट गये तथा उसके पहिये, धुरी और जुवाँड़ा भी छिन्न-भिन्न होगये ॥७॥

दृष्ट्वा यशोदाप्रमुखा व्रजस्त्रिय औत्थानिके कर्मणि याः समागताः । नन्दादयश्चाद्भुतदर्शनाकुलाःकथं स्वयं वै शकटं विपर्यगात् ॥ ८ ॥

करवट लेनेके उत्सवमें आई हुई यशोदा आदि स्त्रियां और नन्द आदि गोप इस विचित्र घटना को देखकर व्याकुल हो उठे और कहने लगे कि—यह अपने आप कैसे उलट गया ? ॥८॥

(इति ब्रुवन्तोतिविवादमोहिता जनाः समन्ता त्परिवब्रुरार्तवत्)ऊचुरव्यवसितमतीन्गोपान्गोपीश्च बालकाः । रुदतानेन पादेन क्षिप्तमेतन्न संशयः॥९॥

वे लोग किसी निश्चय पर न पहुँच सके, तब गोपों के बालकों ने कहा कि इस बालक ही ने रोते रोते अपने चरण से इसे फेंक दिया है, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ९ ॥

न ते श्रद्दधिरे गोपा बालभाषितमित्युत । अप्रमेयं बलं तस्य बालकस्य न ते विदुः ॥१०॥

परन्तु व्रजवासियों ने बालकों के कहने पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विश्वास न किया और कहने लगे कि-"यह तो बालक है, इनके कहनेका क्या विश्वास?" क्योंकि उन्हें भगवान् बालकृष्णके अनंत बलका पता न था॥

रुदन्तं सुतमादाय यशोदा ग्रहशङ्किता ।
कृतस्वस्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तनमपाययत् ॥११॥

श्रीयशोदाजी ने उन रुदन करतेहुए बाल भगवान् को लेकर, ग्रह का भ्रम करके ब्राह्मणों से मङ्गल मंत्र पढ़ाकर दूध पिलाया ॥११॥

पूर्ववत्स्थापितं गोपैर्बलिभिः सपरिच्छदम् ।
विप्राहुत्वाऽर्चयांचक्रुर्दध्यक्षतकुशाम्बुभिः ॥१२॥

बलवान् ग्वालों ने समस्त सामग्रीसहित उस गाड़ी को पहले की भांति रख दिया और ब्राह्मणों ने ग्रहादिकों का होम करके दही, अक्षत, कुश तथा जल से पूजन किया ॥१२॥

येसूयानृतदम्भेर्ष्याहिंसामानविवर्जिताः ।
न तेषां सत्यशीलानामाशिषो विफलाः कृताः१३॥

जो लोग असूया (गुण में भी दोष बतलाना) झूठ, दंभ, ईर्ष्या, हिंसा और अभिमान रहित तथा सत्य स्वभाव वाले होते हैं, उनके दिये हुए आशीर्वाद व्यर्थ नहीं होते ॥१३॥

इति बालकमादाय सामर्ग्यजुरुपाकृतैः ।
जलैः पवित्रौषधिभिरभिषिच्य द्विजोत्तमैः ॥१४॥
वाचयित्वा स्वस्त्ययनं नन्दगोपः समाहितः ।
हुत्वा चाग्निं द्विजातिभ्यः प्रादादन्नं महागुणम्१५

इस विचार से श्रीनन्दरायजी ने श्रीबालकृष्ण को अपनी गोद में लेकर सावधान मनसे उत्तम ब्राह्मणों द्वारा सामवेद, ऋग्वेद तथा यजुर्वेद के मन्त्रों सहित संस्कार किये और शुद्ध औषधियों वाले जल से अभिषेक तथा स्वस्ति-वाचन कराया फिर अग्नि में होम कराके श्रेष्ठ गुणकारी अन्न ब्राह्मणों को दिया ॥१४॥१५॥

गावः सर्वगुणोपेता वासःस्रग्रुक्ममालिनीः ।
आत्मजाभ्युदयार्थाय प्रादात् ते चान्वयुञ्जत॥१६॥

फिर समस्त गुणवाली, वस्त्र, फूल, माला तथा स्वर्ण माला वाली गौएं अपने पुत्र के कल्याण के लिये दान कीं और ब्राह्मणों ने आशीर्वाद दिया ॥

विप्रा मन्त्रविदो युक्तास्तैर्याः प्रोक्तास्तथाशिषः ।
ता निष्फला भविष्यन्ति न कदाचिदपि स्फुटम्॥१७

मन्त्रवेत्ता ब्राह्मणों ने जो-जो आशीर्वाद दिये, वे वैसे ही होते हैं, कभी व्यर्थ नहीं जाते-यह बात प्रसिद्ध है ॥१७॥

एकदाऽऽरोहमारूढं लालयन्ती सुतं सती ।
गरिमाणं शिशोर्वोढुं न सेहे गिरिकूटवत् ॥१८॥

एक दिन यशोदाजी पुत्र को गोद में लेकर खिलाती हुई उनके पहाड़की शिखरके समान भार को कि जो भगवान् ने गोद से उतरने के लिये ही बढ़ाया था-सहन न कर सकीं ॥१८॥

भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता ।
महापुरुषमादध्यौ जगतामास कर्मसु ॥१९॥

श्रीकृष्ण भगवान् के उदर-स्थित ब्रह्माण्ड के भार से पीड़ित तथा चकित होकर यशोदाजी उन्हें पृथ्वी पर रखकर परमेश्वर का ध्यान करती हुईं लौकिक काम-काज में लग गईं ॥१९॥

दैत्यो नाम्ना तृणावर्तः कंसभृत्यः प्रणोदितः ।
चक्रवातस्वरूपेण जहारासीनमर्भकम् ॥२०॥

उसी समय कंसका भेजा हुआ उसका सेवक तृणावर्त वायु के बगूले स्वरूपमें आकर पृथ्वी पर बैठे हुए भगवान् बालकृष्णको उड़ा लेगया ॥२०॥

गोकुलं सर्वमावृण्वन् मुष्णंश्चक्षूंषि रेणुभिः ।
ईरयन्सुमहाघोरशब्देन प्रदिशो दिशः ॥२१॥

उस वायु के बगूले से सब गोकुल घिर गया और धूलसे सबकी आँखें बन्द होगईं, एवं भयंकर शब्द से दिशायें व कोने गर्जने लगे ॥२१॥

मुहूर्त्तमभवद्गोष्ठं रजसा तमसावृतम् ।
सुतं यशोदा नापश्यत्तस्मिन्न्यस्तवती यतः ॥२२॥

दो घड़ी तक गोकुल धूल और अंधेरे से घिरा रहा, अब यशोदा ने आकर देखा तो उन्होंने अपने लाल को उस पूर्व स्थान पर न पाया ॥२२॥

नापश्यत्कञ्चनात्मानं परं चापि विमोहितः ।
तृणावर्तनिसृष्टाभिः शर्कराभिरुपद्रुतः ॥२३॥

तृणावर्त्त के फेंके हुए कंकड़ों के उत्पात तथा मोह-वश मनुष्य एक-दूसरेके शरीरको न देखसके।

इति खरपवनचक्रपांसुवर्षे सुतपदवीमबलाऽविलक्ष्य माता । अतिकरुणमनुस्मरन्त्यशोचद्भुवि पतिता मृतवत्सका यथा गौः ॥२४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकार घोर वायु के बगूले से धूलकी वर्षा के मारे जब पुत्र का पता न चला तब पृथ्वी पर गिर कर अबला यशोदा माता पुत्र का स्मरण कर के मरे हुए बछड़े वाली गौ के समान अत्यन्त करुणा-जनक रूप में शोच करने लगीं ॥२४॥

रुदितमनुनिशम्य तत्र गोप्यो भृशमनुतप्तधियोऽश्रुपूर्णमुख्यः । रुरुदुरनुपलभ्य नन्दसूनुं पवन उपारतपांसुवर्षवेगे ॥२५॥

पवन-प्रेरणा से होने वाली धूल की वर्षा का वेग रुकने पर यशोदाजी का रुदन सुनकर अत्यन्त खेदमयी आँसुओंसे मुख भरे हुए गोपियां भी वहाँपर आकर भगवान्को न देखकर रोनेलगीं॥

तृणावर्तः शान्तरयो वात्यारूपधरो हरन् ।
कृष्णं नभोगतो गन्तुं नाशक्नोद्भूरिभारभृत् २६॥

बगूले का रूप धारण करनेवाले दैत्य तृणावर्त्त का भगवान् को हरण करके आकाश में जाते हुए उनके भार से वेग मन्द पड़गया और वह स्वयंही अधिक ऊँचा न जा सका ! २६॥

तमश्मन्तं मन्यमान आत्मनो गुरुमत्तया ।
गले गृहीत उत्स्रष्टुं नाशक्नोदद्भुतार्भकम् ॥२७॥

उस बोझ के मारे तृणावर्त्त को ऐसे जान पड़ा जैसे कोई बड़ा पत्थर उठा लाया हो, इसलिये वह उन अद्भुत बाल-भगवान् को अपने से छुड़ाने की चेष्टा करने लगा, फिर भी श्रीकृष्ण ने उसका कंठ इस ढंग से पकड़ लिया कि वह किसी प्रकार भी अपने को न छुड़ा सका ॥२७॥

गलग्रहणनिश्चेष्टो दैत्यो निर्गतलोचनः ।
अव्यक्तरावो न्यपतत्सहबालो व्यसुर्व्रजे ॥२८॥

कंठ जकड़े जाने से राक्षस चेष्टा-रहित होगया उसके नेत्र बाहर को निकल पड़े, गला घुटजाने से वह चिल्ला भी न सका और निष्प्राण होकर बाल-कृष्ण सहित गोकुल में गिर पड़ा ॥२८॥

तमन्तरिक्षात्पतितं शिलायां विशीर्णसर्वावयवं करालम् । पुरं यथा रुद्रशरेण विद्धं स्त्रियो रुदन्त्यो ददृशुः समेताः ॥२९॥

वह भयंकर दैत्य आकाश से एक शिला पर गिरपड़ा, उसे उन रोती हुई स्त्रियोंके समूहने देखा कि जिसके सब अङ्ग रुद्र-बाणद्वारा बिंधेहुए त्रिपुर की नाईं छिन्न-भिन्न होगये थे ॥२९॥

आदाय मात्रे प्रतिहृत्य विस्मिताः कृष्णं च तस्योरसि लम्बमानम् । तं स्वस्तिमन्तं पुरुषाद नीतं विहायसा मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् । गोप्यश्च गोपाः किल नन्दमुख्या लब्ध्वा पुनः प्रापुरतीव मोदम् ॥३०॥

यद्यपि वह दैत्य भगवान् बालकृष्णको आकाश मार्ग से ले गया था फिर भी वे मृत्यु के मुख से बचकर कुशलपूर्वक उस राक्षसकी छाती से लपटे रहे, सब गोपियों ने उन्हें उठाकर माता यशोदाको देते हुए बड़ा ही आश्चर्य माना ॥३०॥

अहो बतात्यद्भुतमेष रक्षसा बालो निवृत्तिं गमितोऽभ्यगात्पुनः । हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते ॥३१॥

पूर्ण मनोरथ वाले नन्द आदि गोप तथा गोपियां महान् आश्चर्यमें पड़कर कहनेलगे कि राक्षस द्वारा मारा हुआ यह बालक लौट आया—यह बड़ी विचित्र बात हुई, यह निश्चय है कि हिंसक और दुष्ट पुरुष अपने पाप से स्वयं ही मरजाते हैं और साधुजन अपने सम्यक भाव के कारण भय से निवृत्त होजाते हैं ॥३१॥

किं नस्तपश्चीर्णमधोक्षजार्चनं पूर्त्तेष्टदत्तमुत भूत सौहृदम् । यत्संपरेतः पुनरेव बालको दिष्ट्या स्वबन्धून्प्रणयन्नुपस्थितः ॥३२॥

हम लोगों ने तप, ईश्वर-पूजन, बावड़ी-कुआं आदि बनवाना, इष्ट (पंच यज्ञ आदि करना) दान और जीवों पर दया आदिमें से ऐसा कौनसा धर्म किया होगा जिसके प्रभावसे यह मरा हुआ बालक अपने बन्धुओं को प्रसन्न करता हुआ फिर आ पहुंचा है, यह बड़ा ही अच्छा हुआ है ॥३२॥

दृष्ट्वाद्भुतानि बहुशो नन्दगोपो बृहद्वने ।
वसुदेववचो भूयो मानयामास विस्मितः ॥३३॥

गोकुल में इस प्रकार के अनेक कौतुक देखते हुए नन्दजी विस्मित होकर वसुदेवजी के वचनों पर पूर्ण विश्वास मान गये ॥३३॥

एकदार्भकमादाय स्वाङ्कमारोप्य भामिनी ।
प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ॥३४॥

एक दिन स्नेह-पूर्वक आईहुई यशोदाजी बालकृष्ण को लेकर, गोद में बिठला कर, टपकते हुए दूध वाले स्तन का पान कराने लगीं ॥३४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पीतप्रायस्य जननी सा तस्य रुचिरस्मितम् ।
मुखं लालयती राजन् जृम्भतो ददृशे इदम् ॥३५॥

हे राजन् ! जब भगवान् बालकृष्ण अधिकतर दूध पी चुके तो यशोदाजी उनके मन्द मुसकान वाले सुन्दर मुखको दुलार करनेलगीं, उसी समय बाल-रूप भगवान् को जँभाई आई, तो यशोदाजी ने उनके मुख में समस्त संसार को देखा ॥३५॥

खं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः सूर्येन्दुवह्निश्च सनाम्बुधींश्च । द्वीपान्नगांस्तद्दुहितॄर्वनानि भूतानि यानि स्थिरजंगमानि ॥३६॥

आकाश, स्वर्ग, पृथ्वी, तारामंडल, दिशा, सूर्य चन्द्र, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदियां वन और चराचर जीवों को देखा ॥३६॥

सा वीक्ष्य विश्वं सहसा राजन्संजातवेपथुः ।
संमील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत्सुविस्मिता॥३७॥

हे राजन् ! मृगके समान नेत्र वाली यशोदाजी इस ब्रह्मांडको देखकर उसी समय कांपनेलगीं और उन्होंने चकित होकर अपनी आँखें मूंद लीं ॥३७॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

आठवां अध्याय

(नामकरण)

श्रीशुक उवाच

गर्गः पुरोहितो राजन्यदूनां सुमहातपाः ।
व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेवप्रचोदितः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! वसुदेवजी की प्रेरणा से परम तपस्वी और यदुवंश वालोंके पुरोहित श्रीगर्गाचार्य वहाँ व्रज में आ पहुँचे ॥१॥

तं दृष्ट्वा परमप्रीतः प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ।
आनर्चाधोक्षजधिया प्रणिपातपुरःसरम् ॥ २ ॥

उनको देखकर अत्यन्त प्रसन्न नन्दरायजी ने सामने खड़े होकर, हाथ जोड़कर, परमेश्वर मानते हुए उनका पूजन किया ॥२॥

सूपविष्टं कृतातिथ्यं गिरा सूनृतया मुनिम् ।
नन्दयित्वाऽब्रवीद्ब्रह्मन्पूर्णस्य करवाम किम्॥ ३ ॥

अतिथि-सत्कार के पीछे सुख पूर्वक बैठे हुए मुनि से नन्दरायजी ने मीठे शब्दों में सम्मानपूर्वक कहा कि–"हे ब्रह्मन् ! आप स्वयं ही परिपूर्णरूपहो मैं आपके लिये क्या करूँ ?" ॥३॥

महद्विचलनं नॄणां गृहिणां दीनचेतसाम् ।
निःश्रेयसाय भगवन्कल्पते नान्यथा क्वचित् ॥ ४ ॥

हे भगवन् ! महात्मा पुरुष का विचार स्वार्थके लिये नहीं होता, वरन् दीन चित्त वाले ग्रहस्थोंके निरन्तर कल्याण के लिये होता है ।४॥

ज्योतिषामयनं साक्षाद्यत्तज्ज्ञानमतीन्द्रियम् ।
प्रणीतं भवता येन पुमान्वेद परावरम् ॥ ५ ॥

जो इन्द्रियों द्वारा समझ में न आने वाले ज्ञान का साधनरूप ज्योतिष-शास्त्र है, जिससे मनुष्य भूत और वर्त्तमान जन्म-सम्बन्धी भूत-भविष्यत फल को जान सकता है, उस शास्त्र को आप ने बनाया है ॥५॥

त्वं हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठः संस्कारान्कर्तुमर्हसि ।
बालयोरनयोर्नॄणां जन्मना ब्राह्मणो गुरुः॥ ६ ॥

आप ज्योतिष-शास्त्र के रचयिता और वेद ज्ञानियों में श्रेष्ठहैं, इसलिये आप इन दोनों बालकों का नाम संस्कर आदि कीजिये, क्योंकि ब्राह्मण तो जन्म ही से मनुष्य का गुरु है ॥६॥

गर्ग उवाच

यदूनामहमाचार्यः ख्यातश्च भुवि सर्वदा ।
सुतं मया संस्कृतं ते मन्यते देवकीसुतम् ॥ ७ ॥

गर्गाचार्यजी बोले–मैं यादव-कुल का आचार्य और भू-लोक में प्रसिद्ध हूँ, इसलिये यदि मैं आप के पुत्रों का संस्कार करूँगा, तो पापिष्ठ कंस यह जान लेगा कि ये देवकी के पुत्रहैं ॥७॥

कंसः पापमतिः सख्यं तव चानकदुन्दुभेः ।
देवक्या अष्टमो गर्भो न स्त्री भवितुमर्हति ॥ ८ ॥
इति संचिन्तयञ्छ्रुत्वा देवक्या दारिकावचः ।
अपि हन्ता गताशङ्कस्तर्हि तन्नोऽन्नयो भवेत्॥ ९ ॥

कंसको यह भी विदित है कि तुम्हारी वसुदेव से मित्रता है और देवकी की कन्या का वचन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुनकर वह इस सोच-विचार में भी पड़ा रहता है कि देवकी के आठवें गर्भसे कन्या न होनी चाहिये इसलिये ऐसी शंका में यदि वह तुम्हारे पुत्रों को मार डालेगा तो यह मेरा बड़ा अन्याय होगा ॥

नन्द उवाच

अलक्षितोऽस्मिन्रहसि मामकैरपि गोव्रजे ।
कुरु द्विजातिसंस्कारं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥१०॥

श्रीनन्दरायजी बोले-इस गो व्रज में आप हम लोगों से भी छिपकर, एकान्त स्थान पर स्वस्ति वाचन के साथ इनका संस्कार कीजिये, जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य द्विजातियोंमें होनेचाहिये।

श्रीशुक उवाच

एवं संप्रार्थितो विप्रः स्वचिकीर्षितमेव तत् ।
चकार नामकरणं गूढो रहसि बालयोः ॥११॥

श्रीशुकदेवजी बोले-इस प्रकार नन्दरायजी के प्रार्थना करने पर गर्गाचार्यने एकान्त स्थानमें छिप कर इन दोनों बालकोंका नाम करणकिया कि जिस के लिये ही आप वहाँ पधारे थे ॥११॥

गर्ग उवाच

अयं हि रोहिणीपुत्रो रमयन्सुहृदो गुणैः ।
आख्यास्यते राम इति बलाधिक्याद्बलं विदुः ।
यदूनामपृथग्भावात्संकर्षणमुशन्त्युत ॥१२॥

गर्गाचार्यजी बोले-यह रोहिणीजीके पुत्र अपने गुणों से सुहृदजनों को रमण करायेंगे, इसलिये "राम" कहलायेंगे और इनमें अधिक बल रहेगा इसलिये यह "बल" भी कहे जायेंगे तथा यादवों में संगठन रखने के कारण इनका नाम "संकर्षण" भी होगा ॥१२॥

आसन्वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः॥१३॥

यह जो तुम्हारे पुत्र हैं सो युग-युगमें अवतार लेते हैं और इनका श्वेत, रक्त तथा पीत वर्ण मिश्रित कृष्ण रंग हुआ है, इसलिये इनका नाम "श्रीकृष्ण"* कहा जायगा ॥१३॥

प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः ।
वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः संप्रचक्षते ॥१४॥

पहले किसी समय में यह तुम्हारे श्रीमान् पुत्र वसुदेव के पुत्र हुए थे, इसलिये ज्ञानी पुरुष इनको "वासुदेव"† नाम से भी पुकारते हैं ॥१४॥

बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ।
गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥१५॥

गुण तथा कर्मानुसार तुम्हारे पुत्र के अनेक नाम और रूप हैं, उन सबको स्वयं मैं भी नहीं जानता और इसीप्रकार दूसरे लोगभी नहींजानते॥

एष वः श्रेय आधास्यद्गोपगोकुलनन्दनः ।
अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥१६॥

ग्वाल और गौओं को आनन्दित करने वाले यह तुम्हारे पुत्र तुम सबका कल्याण करेंगे और तुम लोग इनके प्रभाव से सब दुःखों को सहजही में पार कर सकोगे ॥१६॥

पुरानेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिता ।

श्रीकृष्ण जन्म-कुण्डली

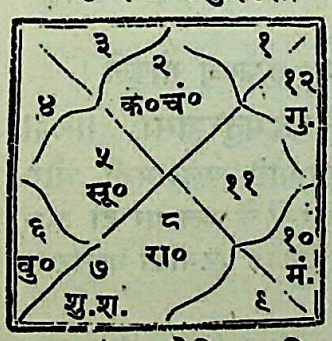

श्रीशुभ संवत्सरेऽस्मिन् भगवत्पूजन विशिष्ट धर्मयुक्ते श्रीद्वापराख्ये युगे गमिताब्दाः । ८६३८८० तदनन्तर गत संध्यांश समये भोजवंशावतंसस्य राज्ये दक्षिणायने रवौ वर्षा संज्ञकर्तौ भाद्रमासे कृष्णपक्षे शुभ तिथावष्टम्यां बुधवासरेऽरोहिणीमे, आयुष्मान् योगे कौलवकरणे एवं पंचांग शुद्धौ सिंहार्क गतांशाः ७।३ दिनम् ३२ तत्रेष्टम् ४६ तत्समये वृषलग्नोदये शुक्रक्षेत्रे सूर्य होरायां बुधद्रेष्काणे शुक्र नवांशे भौम द्वादशांशे गुरु त्रिंशांशे षड्वर्ग लोप पन्ने लग्ने शुभ ग्रहांकित वेलायां यदुकुलावतंसस्य वरीयसो गोपस्य पंच प्राण तुल्येषु पंच सुतेषु मुख्य तमस्य नन्दरायभिधस्योढा इन्द्र नीलमणि मरकत इव मौक्तिक मणि शुक्र पुट इव परमानन्द जनक व्रजजन नयन चन्द्रचकोर समं पुत्रं स्वकुक्षे र्जनया मास ।

*-"श्रीकृष्ण" नाम के 'ककार' से लक्ष्मी कान्त, ऋकार से राम, वकार से षट् गुण सम्पन्न, णकार से नृसिंह और अकार से अजन्म रूप का भाव निकलता है, अर्थात् जिसके अंश से सब अवतार होते हैं, वही कृष्ण है। † आठों वसु या समस्त देवता या चित्तमें जो वास करता है वही "वासुदेव" है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून्समेधिताः ॥१७॥

हे व्रजपति ! पहले जब कोई राजा न था, तब इन्हीं तुम्हारे पुत्र ने चोरों से दुःखित सज्जनों की रक्षा और वृद्धि की थी; जिससे वे चोरों को जीत सके थे ॥१७॥

य एतस्मिन्महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः ।
नारयोऽभिभवन्त्येतान्विष्णुपक्षानिवासुराः ॥१८॥

जो भाग्यवान् मनुष्य इन तुम्हारे पुत्रसे प्रीति करेंगे उनका दैत्य तिरस्कार न कर सकेंगे, जैसे कि विष्णु के भक्तों का वे नहीं करने पाते ॥१८॥

तस्मान्नन्दात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः ।
श्रिया कीर्त्याऽनुभावेन गोपायस्व समाहितः॥१९॥

हे नन्दजी ! यह तुम्हारे कुंवर गुण, कीर्त्ति लक्ष्मी और महिमा के कारण नारायण के समानहैं इसलिये सावधानी के साथ इनकी रक्षा करना ॥

श्रीशुक उवाच

इत्यात्मानं समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ।
नन्दः प्रमुदितो मेने आत्मानं पूर्णमाशिषाम्॥२०॥

श्रीशुकदेवजी बोले–इस प्रकार आज्ञा देकर श्रीगर्गाचार्यजी अपने घर चले गये और नन्दजी ने अपने समस्त मनोरथ पूर्ण समझे ॥२०॥

कालेन व्रजताऽल्पेन गोकुले रामकेशवौ ।
जानुभ्यां सहपाणिभ्यां रिङ्गमाणौ विजह्रतुः॥२१॥

कुछ समय बीतने पर बलरामजी और श्रीकृष्णचन्द्रजी घुटनों तथा हाथों के बल चलकर खेलने लगे ॥ २१ ॥

तावङ्घ्रियुग्ममनुकृष्य सरीसृपन्तौ घोषप्रघोष रुचिरं व्रजकर्दमेषु । तन्नादहृष्टमनसावनुसृत्य लोकं मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरन्ति मात्रोः ॥२२॥

ये दोनों कुमार जब व्रजके बीचमें दोनों चरणों को घसीटते हुए विचरते हैं, तब पाँवों की पैजनी तथा कमर की किंकणी की झनकार के मधुर बोल सुनकर स्वयं मनमें प्रसन्न होतेहैं और मार्गमें जाते हुए लोगों को देखकर दो-चार डग तक उनकेपीछे चले जाते हैं, फिर भोले बालक की नाईं डरकर अपनी माताओं के पास भाग आते हैं ॥२२॥

तन्मातरौ निजसुतौ घृणया स्नुवन्त्यौ पङ्काङ्ग रागरुचिरावुपगुह्य दोर्भ्याम्। दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य मुग्धस्मिताल्पदशनं ययतुःप्रमोदम्

माता यशोदा और रोहिणी अपने पुत्र श्रीकृष्ण और बलरामजी को हाथों से उठाकर छाती से लगा लेती हैं, जिन दोनों कुमारों के अङ्गों में कहीं तो व्रज की कीचड़ लगी है और कहीं केसर, उस से शोभायमान पुत्रों को देखते ही उमड़े हुए स्तनों का माताओं ने दूध पिलाया और उस समय उन की छोटी सी दन्तावलि वाले मुख में भोली सी मुसकान देखकर आनन्द माना ॥२३॥

यर्ह्यङ्गनादर्शनीयकुमारलीलावन्तर्व्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः । वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ प्रेक्षन्त्य उज्झितगृहा जहृषुर्हसन्त्यः ॥२४॥

जब वे दोनों स्त्रियोंके देखने योग्य लीला करने लगे, तब उन्हें घुटनों के बल चलकर बछड़ों की पूंछ पकड़ कर व्रज में चारों ओर खिचते हुए देख कर गोपियां घरके काम-काज भूल जाती थीं और हँस-हँसकर आनन्द पाती थीं ॥ २४ ॥

शृङ्ग्यग्निदंष्ट्र्यसिजलद्विजकण्टकेभ्यः क्रीडापरावतिचलौ स्वसुतौ निषेद्धुम् । गृह्याणि कर्तुमपि यत्र न तज्ञनन्यौ शेकात आपतुरलं मनसोऽनवस्थाम् ॥२५॥

जब रोहिणी और यशोदाजी क्रीड़ा में लगेहुए अत्यन्त चञ्चल अपने पुत्रों को सींग वाले पशु, दाढ़ों वाले जीव, अग्नि, जल, सांप, पक्षी और काँटों से रोकने और घर के काम-काज करने में समर्थ न हुईं, तब उन दोनों माताओं के चित्त डोल उठे ॥ २५ ॥

कालेनाल्पेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोकुले ।
अघृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरञ्जसा ॥२६॥

हे राजर्षि ! कुछ दिन पीछे बलरामजी और श्रीकृष्णचन्द्रजी अपने चरणों के बल पर ही आसानीसे चलनेलगे और उनका घुटनोंका घसीटना छूट गया ॥२६॥

ततस्तु भगवान्कृष्णो वयस्यैर्व्रजबालकैः ।
सहरामो व्रजस्त्रीणां चिक्रीडे जनयन्मुदम् ॥२७॥

तदनन्तर श्रीबलरामजी और कृष्णजी अपने समान आयु वाले बाल-मित्रों के साथ गोपियों को आनन्दित करते हुए क्रीड़ा करने लगे ॥२७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृष्णस्य गोप्यो रुचिरं वीक्ष्य कौमारचापलम्।
शृण्वन्त्याः किल तन्मातुरिति होचुःसमागताः २८

श्रीकृष्ण भगवान् की प्रिय बाल-लीला देखकर घर-घर से गोपियां मिलजुल कर आईं और यशोदाजी से यों कहने लगीं[1] ॥ २८ ॥

वत्सान्मुञ्चन्क्वचिदसमये क्रोशसंजातहासः स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधि पयः कल्पितैः स्तेययोगैः।
भर्कान्भोक्ष्यन्विभजति स चेन्नात्ति भाण्डं भिनत्ति द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान् ॥

हे यशोदे! जब हम घर के काम-काजमें उलझी हुआ करती हैं, तब किसी समय यह तुम्हारा पुत्र दोहन-काल से पहले ही हमारे बछड़ोंको छोड़देता है, जब हम उलहना देती हैं तब यह हँस देता है चोरी के ढंग करके मीठे पदार्थ दूध-दही खा लेता है, यही नहीं, वरन् जो अपने खाने से बच रहता है उसे बन्दरों को खिला देता है, यदि बन्दर नहीं खाते तो यह बर्तन तोड़-ताड़ डालताहै, यदि किसी दिन हमारे घरों में कुछ भी नहीं मिलता तो हम पर क्रोध करके पालने में सोते हुए हमारे बालकों को ही रुला कर भाग जाता है ॥२९॥

हस्ताग्राह्ये रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यैश्छिद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनः शिक्यभाण्डेषु तद्वित्।
ध्वान्ता गारे धृतमणिगणं स्वाङ्गमर्थप्रदीपं काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ताः ॥३०॥

यदि इसका छींके आदिपर रक्खी हुई दोहनी तक हाथ नहीं पहुँचता तो चौकी, ऊखल आदि को ऊपर-नीचे रखकर चोरी का उपाय लड़ाता है, उसमें रक्खी हुई वस्तु को ताड़कर छेद कर देता है, यह छेद करनेमें बड़ाही प्रवीण है, जिस पदार्थ के लिये जितनी आवश्यकता होती है उतना ही छेद करता है, यदि हम बर्तनों को अंधेरे घर में रखती हैं तो यह अपने अङ्गों पर मणियां पहिनकर आता है और वहाँ प्रकाश कर देता है ॥३०॥

एवं धार्ष्ट्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथास्ते। इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभिर्व्याख्या तार्था प्रहसितमुखी नह्युपालब्धुमैच्छत् ॥३१॥

यदि इसे हम कभी 'चोर' कहकर पुकारती हैं तो यह उत्तर देता है कि चोर तुम्हीं हो. मैं तो इस घरका मालिक हूँ, ऐसी बातें बनाता है, लिपे-पुते घरोंमें मल-मूत्र करदेता है; यह ऐसे तो चोरी के ढंग किया करता है और अब देखो तो तुम्हारे सामने कैसा ग़रीब सा खड़ा है' इस प्रकार गोपियों ने श्री बाल-कृष्ण को धमकाया और उस समय उनके भय से भरे हुए नेत्रों वाले मुख की शोभा देखने के लिये उन्होंने सब बातें कह डालीं, परन्तु यशोदाजी अपने पुत्र को धमकाने के बदले हँस पड़ीं ॥ ३१ ॥

एकदा क्रीडमानास्ते रामाद्या गोपदारकाः।
कृष्णो मृदं भक्षितवानिति मात्रे न्यवेदयन् ॥३२॥

एक दिन खेलते हुए बलरामजी आदि बालकों ने यशोदाजीसे कहा कि श्रीकृष्णने मिट्टी खाईहै*।

सा गृहीत्वा करे कृष्णमुपालभ्य हितैषिणी।
यशोदा भयसंभ्रान्तप्रेक्षणाक्षमभाषत ॥३३॥
कस्मान्मृदमदान्तात्मन्भवान्भक्षितवान्रहः।
वदन्ति तावका ह्येते कुमारास्तेऽग्रजोऽप्ययम् ॥३४॥

हित की इच्छा रखने वाली यशोदाजी ने भय से चकित नेत्र वाले श्रीकृष्ण का हाथ पकड़ कर उलहना देते हुए कहा कि हे चञ्चल! तूने छिपकर

१–महरि! तुम मानहु मेरी बात। ढूंढ़ सब घरको गोरस हरेउ तुम्हारे तात। कैसे लयौ छींके ते, ग्वाल कन्ध दै लात॥ घर नहिं पियत दूधधीरी को, कैसो तेरो खात। असंभाव बोलत है आई ढीठ ग्वालनी प्रात। ऐसो नहीं अचगरो मेरो कहा बनावत बात॥ कहा कहौं मैं कह सकुचत हौं कहा दिखाऊँ गात। है गुन बड़े सूर प्रभु केरे ह्याँ लरिका ह्वै जात॥

* मो देखत जसुमत तब ढोटा अब ही माटी खाई। यह सुनके रिस कर उठ धाईं, बाँह पकरि ले आईं। इक कर सों भुज गहि ठाड़ी भईं, इक कर लीन्हें सांटी। मारत हौं तोहि अबहिं कन्हैया वेग उबल नहिं माटी॥ ब्रज लरिका सब तेरे आगे झूठी कहत बनाई। मेरे कहे नहीं तू माने दिखरावों मुख माई॥ अखिल ब्रह्मांड खंड की महिमा दिखरायउ यदुराई। सिंधु सुमेर नदी बन पर्वत चकितभई नंदरानी॥ कर ते सांटी गिरत न जानी भुजाछांड़ि अकुलानी। सूरदास कह मुदित यशोमति बलि गई सारंग पानी॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मिट्टी क्यों खाई ? यह तेरे बाल सखा कह रहे हैं और बलदाऊ भी कहते हैं ॥३३॥३४॥

नाहं भक्षितवानम्ब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः ।
यदि सत्यगिरस्तर्हि समक्षं पश्यमे मुखम् ॥३५॥

श्रीकृष्ण बोले–"हे माता ! यह सब झूंठ-मूंठ बक रहे हैं, मैंने मिट्टी नहीं खाई है, यदि तुझे इन की कहना सत्य जान पड़ताहै तो मेरा मुंह देखले ।

यद्येवं तर्हि व्यादेहीत्युक्तः स भगवान्हरिः ।
व्यादत्ताव्याहतैश्वर्यः क्रीडामनुजबालकः ॥३६॥

यशोदा बोलीं–'यदि ऐसा है तो मुख खोलो' यह सुनते ही अखंड ऐश्वर्यवान् और लीला से बाल स्वरूप धारी श्रीकृष्ण भगवान् ने अपना मुख फैला दिया ॥ ३६ ॥

सा तत्र ददृशे विश्वं जगत्स्थास्नु च खं दिशः ।
साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नीन्दुतारकम् ॥३७॥
ज्योतिश्चक्रं जलं तेजो नभस्वान्वियदेव च ।
वैकारिकाणीन्द्रियाणि मनोमात्रा गुणास्त्रयः॥३८॥
एतद्विचित्रं सहजीवकालस्वभावकर्माशयलिङ्ग-
भेदम् । सूनोस्तनौ वीक्ष्य विदारितास्ये व्रजं
सहात्मानमवाप शङ्काम् ॥३९॥

उस मुख में यशोदाजीने स्थावर, जंगम-जगत, अन्तरिक्ष, दिशा, पर्वत, द्वीप, समुद्र, भूगोल, प्रवाह, पवन, अग्नि, चन्द्र, तारे, स्वर्ग; जल, तेज, वायु, आकाश, इन्द्रियों के देवता, इन्द्रिय, मन, शब्द आदि पंच विषय, तीनों गुण, जीव, काल, स्वभाव, कर्म, कर्म के संस्कार और संस्कारों से होने वाले चराचर की योनियों के भेद को देखा, इस प्रकार पुत्र के छोटे से मुखमें समस्त विचित्र संसार के साथ व्रज और व्रज में भी अपने शरीर को देखकर उन्हें संदेह हुआ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

किं स्वप्न एतदुत देवमाया किंवा मदीयो बत बुद्धिमोहः । अथो अमुष्यैव ममार्भकस्य यः कश्चनौत्पत्तिक आत्मयोगः ॥४०॥

वे सोचने लगीं कि क्या यह मैं स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ, या यह दैवी-माया तो नहीं है अथवा मेरी बुद्धि मोहित होगई है किंवा यह मेरे पुत्र का स्वाभाविक ही ऐश्वर्य है ? ॥४०॥

अथो यथावन्नवितर्कगोचरं चेतोमनःकर्मवचो-
भिरञ्जसा । यदाश्रयं येन यतः प्रतीयते सुदुर्वि-
भाव्यं प्रणताऽस्मि तत्पदम् ॥४१॥

चित, मन, कर्म और वचन से सहज ही में ठीक २ जो समझमें नहीं आता, ऐसा यह जगत जिसके आधीन है और जिसके द्वारा जाना जा सकता है, उन भावना में न आने वाले परमेश्वर को मैं प्रणाम करती हूँ ॥४१॥

अहं ममासौ पतिरेष मे सुतो व्रजेश्वरस्याखिल
वित्तपा सती । गोप्यश्च गोपाः सह गोधनाश्च मे
यन्माययेत्थं कुमतिः स मे गतिः ॥४२॥

मैं यशोदा हूँ, यह व्रजनाथ नन्दजी मेरे पतिहैं यह कृष्ण मेरे पुत्र हैं और इस पुत्र तथा राज्य की मैं स्वामिनी हूँ तथा यह गोप, गोपियां भी मेरे हैं' ऐसी दुर्बुद्धि जिनकी माया के कारण मुझे व्याप रही है, मैं उन्हीं भगवान् की शरण हूँ ॥४२॥

इत्थं विदिततत्त्वायां गोपिकायां स ईश्वरः ।
वैष्णवी व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः ॥४३॥

इस प्रकार जब यशोदाजी को तत्व-ज्ञान पैदा हुआ, तभी भगवान्ने उनपर अपनी वात्सल्य मयी माया फैला दी ॥४३॥

सद्यो नष्टस्मृतिर्गोपी साऽऽरोप्यारोहमात्मजम् ।
प्रवृद्धस्नेहकलिलहृदयाऽऽसीद्यथा पुरा ॥४४॥

माया के कारण उन्हें तत्काल ही वह स्मरण न रहा, तब वह गोपी यशोदाजी अपने पुत्र को गोद में बिठा कर, पहले की भांति बढ़ते हुए स्नेह से गद्गद हो उठीं ॥४४॥

त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः ।
उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं साऽमन्यतात्मजम्४५॥

जिनके स्वरूप को कर्म-कांडरूपी तीनों वेद इन्द्र आदि का रूप कहते हैं, उपनिषद् ब्रह्म-रूप कहते हैं, सांख्य पुरुष-रूप कहते हैं, योग परमात्मा तथा भक्तजन भगवान्-रूप बतलातेहैं, उन श्रीकृष्ण भगवान् को यशोदाजी ने अपना पुत्र समझा॥४५॥

राजोवाच

नन्दः किमकरोद्ब्रह्मञ्छ्रेय एवं महोदयम् ।
यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः४६॥

परीक्षित बोले–हे ब्रह्मन् ! नन्दरायजी ने ऐसा कौनसा महान् श्रेष्ठ कर्म कियाथा कि(जिसके कारण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन्हें भगवान् की बाल-लीला देखनेका इस वात्सल्य भाव के साथ अवसर मिला) और यशोदा जी ने ऐसा कौनसा पुण्य किया था कि जिनका श्रीकृष्ण भगवान् ने स्वयं स्तन पान किया ? ॥४६॥

पितरौ नान्वविन्देतां कृष्णोदारार्भकेहितम् ।
गायन्त्यद्यापि कवयो यल्लोकशमलापहम् ॥४७॥

भगवान् की जिस बाल लीला को कवि गण अब तक गाया करते हैं, उस लोकों के पाप-नाश करने वाली लीला का अनुभव-सुख उन माता-पिता (वसुदेव तथा देवकी) को कि जिनपर कृपा करके भगवान् वहाँ प्रकट हुए थे, न मिल कर यशोदाजी को क्यों मिला ? ॥४७॥

श्रीशुक उवाच

द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया सह भार्यया ।
करिष्यमाण आदेशान्ब्रह्मणस्तमुवाच ह ॥४८॥

श्रीशुकदेवजी बोले–ब्रह्माजी ने अष्ट वसुओं में से उत्तम द्रोण वसु और उसकी स्त्री धरा को गौ पालन आदि की आज्ञा दी, उस आज्ञाको स्वीकार करके उन दोनों ने वर मांगा कि ॥४८॥

जातयोर्नौ महादेवे भुवि विश्वेश्वरे हरौ ।
भक्तिः स्यात्परमा लोके ययाञ्जो दुर्गतिं तरेत् ॥४९॥

हम दोनों जहाँ भी भू-तल पर जन्म पायें वहाँ हमारी श्रीजगत्पति भगवान् विष्णु में परम भक्ति रहे, कि जिसके द्वारा हमारा दुर्गति से सहज ही में उद्धार हो सके ॥४९॥

अस्त्वित्युक्तः स भगवान्व्रजे द्रोणो महायशाः ।
जज्ञे नन्द इति ख्यातो यशोदा सा धराऽभवत् ॥५०॥

ब्रह्माजी के 'एवमस्तु' कहने पर वह द्रोण वसु व्रज में नन्द रूप हुआ और उसकी स्त्री धरा-यशोदा रूप हुई ॥५०॥

ततो भक्तिर्भगवति पुत्रीभूते जनार्दने ।
दम्पत्योर्नितरामासीद्गोपगोपीषु भारत ॥५१॥

हे राजन् ! यों तो सभी गोपी-गोपभी भगवान् में भक्ति रखते थे, परन्तु नन्द यशोदा की तो ब्रह्मा जी के वरदान से पुत्र रूप प्रकट हुए भगवान् में विशेष तर ही भक्ति थी ॥५१॥

कृष्णो ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तुं व्रजे विभुः ।
सहरामो वसंश्चक्रे तेषां प्रीतिं स्वलीलया ॥५२॥

परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रजी ब्रह्माजी की आज्ञा को सत्य बनाने के लिये बलरामजी के साथ व्रजमें निवास करते हुए अपनी लीलासे उन व्रजवासियों को प्रसन्न करते थे ॥५२॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नौवां अध्याय

(ऊखल-बन्धन लीला)

श्रीशुक उवाच

एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी ।
कर्मान्तरनियुक्तासु निर्ममन्थ स्वयं दधि ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–एक दिन घर की दासियाँ दूसरे कामों में लगी थीं, उस समय नन्दजी की रानी यशोदाजी स्वयं दही मंथन करने लगीं ॥१॥

यानि यानीह गीतानि तद्बालचरितानि च ।
दधिनिर्मन्थने काले स्मरन्ती तान्यगायत ॥ २ ॥

भगवान्के जिन २ बाल-चरित्रोंको मैं यहाँ कह चुकाहूँ, उन सबका स्मरण करके यशोदाजी दधि-मंथन के समय गीत गारहीं थीं ॥२॥

क्षौमं वासः पृथुकटितटे बिभ्रती सूत्रनद्धं पुत्र स्नेहस्नुतकुचयुगं जातकम्पं च सुभ्रूः । रज्वाकर्ष श्रमभुजचलत्कङ्कणौ कुण्डले च स्विन्नं वक्त्रं कबर-विगलन्मालती निर्ममन्थ ॥ ३ ॥

इस समय सुन्दर भौंहों को चलायमान करती हुई यशोदाजी ने अपने पुष्ट नितंबों पर पहिने हुए रेशमी वस्त्र को कटि मेखला से बाँध लिया था, वात्सल्य प्रेम के कारण उनके स्तनों से दूध बह रहा था, देह हिल रही थी, नेती खींचनेके परिश्रम से हाथों के कङ्कण तथा कानों के कुण्डल हिल रहे थे, मुख कमल पर पसीना छलक रहा था और गुंधी हुई वेणी में से मालती के फूल निकल-निकल कर गिर रहे थे ॥३॥

तां स्तन्यकाम आसाद्य मथ्नन्तीं जननीं हरिः ।
गृहीत्वा दधिमन्थानं न्यषेधत्प्रीतिमावहन् ॥ ४ ॥

दही मंथन करते समय दूध पीने की इच्छा से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

माता के पास आकर श्रीकृष्णजी ने प्रीति बढ़ाते हुए नेती पकड़कर उन्हें दही मथनेसे रोक दिया ॥

तमङ्कमारूढमपाययत्स्तनं स्नेहस्नुतं सस्मित-मीक्षती मुखम् । अतृप्तमुत्सृज्य जवेन सा यया-वुत्सिच्यमाने पयसि त्वधिश्रिते ॥ ५ ॥

भगवान् को गोद में लेकर स्नेह से झरते हुए स्तन का पान कराती हुई श्रीयशोदाजी उनके मन्द मुसकान मय मुख को देखरहीं थीं कि उसी समय चूल्हे पर चढ़े हुए दूध में उफान आया हुआ देख कर, बालकृष्ण को पूर्ण दूध पिलाये बिना ही छोड़ कर, जल्दी से दौड़ती हुई वहाँ पहुंची ॥५॥

संजातकोपः स्फुरितारुणाधरं संदश्य दद्भिर्दधि मण्डभाजनम् । भित्त्वा मृषाश्रुर्दृषदश्मना रहो जघास हैय्यङ्गवमन्तरं गतः ॥ ६ ॥

इससे भगवान बालकृष्ण को क्रोध आगया, उनके अरुण होठ फड़क उठे और आँखों में झूंठ-मूंठ आँसू भर आये; उन्होंने दांतोंके तले होंठ दबा कर मठेका एक बर्तन पत्थरसे फोड़ डाला और वे घरमें एकान्तमें जाकर माखन खाने लगे॥६॥

उत्तार्य गोपी सुश्रृतं पयः पुनः प्रविश्य संदृश्य च दध्यमत्रकम् । भग्नं विलोक्य स्वसुतस्य कर्म तज्जहास तं चापि न तत्र पश्यत ॥७॥

यशोदाजी बहुत औंटाये हुए दूध को चूल्हे से नीचे उतार कर फिर मंथनके स्थानपर आईं, वहाँ उन्होंने मट्ठे का बर्तन टूटा हुआ पाया, परन्तु भगवान् को वहाँ न पाकर वह समझगईं कि यह मेरे पुत्र का काम है, इसलिये वे हँस पड़ीं ॥७॥

उलूखलाङ्घ्रेरुपरि व्यवस्थितं मर्काय कामं ददतं शिचि स्थितम् । हैयङ्गवं चौर्यविशङ्कितेक्षणं निरीक्ष्य पश्चात्सुतमागमच्छनैः ॥ ८ ॥

फिर औंधे ऊखल पर बैठे हुए छींके पर रक्खे हुए माखन को लेकर बन्दरों को देते और चोरी करते हुए चकित नेत्र पुत्र को देखकर, पकड़ने के लिये धीरे-धीरे पीछे से आईं ॥८॥

तामात्तयष्टिं प्रसमीक्ष्य सत्वरस्ततोऽवरुह्यापससार भीतवत् । गोप्यन्वधावन्न यमेन योगिनां क्षमं प्रवेष्टुं तपसेरितं मनः ॥ ९ ॥

लकड़ी लिये हुए माता को आता देखकर भगवान् जल्दी से भयभीत की नाईं होकर ऊखल पर से उठकर दौड़े, यशोदाजी उनके पीछे-पीछे दौड़ीं, परन्तु उनतक पहुँच न सकीं, क्योंकि तप के द्वारा उन्हीं के समान बना हुआ और प्रवेश के योग्य योगियों का मन भी उन तक नहीं पहुंच सकताहै॥

अन्वञ्चमाना जननी बृहच्चलच्छ्रोणीभराक्रान्त गतिः सुमध्यमा । जवेन विस्रंसितकेशबन्धनच्युत प्रसूनानुगतिः परामृशत् ॥१०॥

दौड़ने से उनके केशों की वेणी ढीली पड़गई, इसलिये उनके आगे २ शिखा में से गुंधे हुए फूल झड़ते जाते हैं और उन फूलों पर से यशोदाजी दौड़ी जाती हैं, परन्तु पुष्ट और चञ्चल नितंबों के भार से दौड़ न सकती थीं, ऐसे सुन्दर मध्य भाग वाली यशोदाजी ने कठिनाई से पहुंचकर श्रीकृष्ण जी को पकड़ लिया ॥१०॥

कृतागसं तं प्ररुदन्तमक्षिणी कर्षन्तमञ्जन्मषिणी स्वपाणिना । उद्वीक्षमाणं भयविह्वलेक्षणं हस्ते गृहीत्वा भिषयन्त्यवागुरत् ॥११॥

अंजन फैले हुए नेत्रों को हाथों से मलते हुए, भय से विह्वल नेत्र वाले, अपराधी और रोते हुए तथा ऊंची दृष्टि कियेहुए श्रीकृष्णजीका हाथ पकड़ कर यशोदाजी उन्हें धमकी देने लगीं ॥ ११ ॥

त्यक्त्वा यष्टिं सुतं भीतं विज्ञायार्भकवत्सला । इयेष किल तं बद्धुं दाम्नाऽतद्वीर्यकोविदा ॥१२॥

पुत्र की हितकारिणी और भगवान् की महिमा को न जानने वाली यशोदाजी ने अपने पुत्रको भय भीत समझकर लकड़ी डाल दी और उन्हें रस्सी से बांधना चाहा ॥ १२ ॥

न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम् । पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः ॥१३॥

जिसके भीतर-बाहर, आगे या पीछे कुछ भी भी नहीं है तथा जो जगत् के भीतर-बाहर, आगे और पीछे रहने वाला एवं जगत्रूप है ॥ १३॥

तं मत्वाऽऽत्मजमव्यक्तं मर्त्यलिङ्गमधोक्षजम् । गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा ॥१४॥

उस अव्यक्त मनुष्य-तनधारी भगवान्को पुत्र मानकर यशोदाजी ने प्राकृतिक बालक की भांति रस्सी के द्वारा ऊखल में बाँध दिया ॥१४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तद्दामबद्ध्यमानस्य स्वार्भकस्य कृतागसः ।
द्व्यङ्गुलोनमभूत्तेन संदधेऽन्यच्च गोपिका ॥१५॥

उन अपराधी बालकृष्ण को बाँधते हुए रस्सी दो अंगुल छोटी पड़ गई, तब यशोदाजी ने उसमें दूसरी रस्सी जोड़ दी ॥१५॥

यदासीत्तदपि न्यूनं तेनान्यदपि संदधे ।
तदपि द्व्यङ्गुलं न्यूनं यद्यदादत्त बन्धनम् ॥१६॥

जब वह भी छोटी पड़गई तब तीसरी रस्सी बाँध दी, किन्तु वह भी दो अंगुल कम होगई, इस प्रकार से उन्होंने जितनी भी रस्सियां लीं उनसब से भी काम पूरा न हो सका ॥१६॥

एवं स्वगेहदामानि यशोदा संदधत्यपि ।
गोपीनामुस्मयन्तीनां स्मयन्ती विस्मिताऽभवत् १७

और भी घरकी सब रस्सियां बाँधदीं फिरभी वह छोटीही पड़ीं, इससे दूसरी गोपियां तथा स्वयं यशोदाजी हंसने और अचरज करने लगीं ॥१७॥

स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः ।
दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत्स्ववन्धने ॥१८॥

तत्पश्चात् जब श्रीकृष्णजी ने यह देखा कि उन की माता को श्रम के मारे पसीना आगया है और उनकी बेणी में से फूल-माल खिसक पड़ी है; तब वह कृपा करके आपही रस्सी से बँध गये ॥ १८ ॥

एवं संदर्शिता ह्यङ्ग हरिणा भक्तवश्यता ।
स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे ॥१९॥

हे राजन् ! लोकपाल तथा देवताओं सहित यह जगत जिनके आधीन है, उन भगवान्ने स्वयं स्वतन्त्र होने पर भी इस प्रकार से भक्त-वश्यता का परिचय दिया ॥१९॥

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया ।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्तिदात् ॥२०॥

यद्यपि मोक्ष-प्रद भगवान् की कृपा ब्रह्मा, शिव और उनके वक्षःस्थलमें निवास करनेवाली लक्ष्मी पर भी हुई है; परन्तु जैसी कृपा उन्होंने यशोदाजी के प्रति की ऐसी किसी पर भी न की ॥२०॥

नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिकासुतः ।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥२१॥

यशोदाजी के पुत्र श्रीकृष्ण भगवान् जिसतरह से भक्तजनों को सहज में मिलते हैं वैसे देहाभिमानी तपस्वी या देहाभिमान-रहित ज्ञानी लोगों को भी आसानी से नहीं मिलते ॥२१॥

कृष्णस्तु गृहकृत्येषु व्यग्रायां मातरि प्रभुः ।
अद्राक्षीदर्जुनौ पूर्वं गुह्यकौ धनदात्मजौ ॥२२॥

यशोदा माता उन्हें बाँधकर घरके काम-काजमें लग गईं, तब बंधे हुए श्रीकृष्ण भगवान् ने यमलार्जुन वृक्षोंको देखा कि जो पूर्व जन्ममें कुबेर-पुत्रथे।

पुरा नारदशापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात् ।
नलकूबरमणिग्रीवाविति ख्यातौ श्रियान्वितौ २३॥

वे पहले नलकूबर और मणिग्रीव नामसे प्रसिद्ध बड़े ही लक्ष्मीवान् थे, लक्ष्मी के मद से उन्हें नारद का शाप हुआ था जिससे उन्हें वृक्ष-योनि मिली ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥९॥

दसवां अध्याय

(यमलार्जुन-मोक्ष-वर्णन)

राजोवाच

कथ्यतां भगवन्नेतत्तयोः शापस्य कारणम् ।
यत्तद्विगर्हितं कर्म येन वा देवर्षेस्तमः ॥ १ ॥

परीक्षित बोले-हे भगवन् ! नलकूबर और मणिग्रीव के शाप का कारण कहिये, उन्होंने ऐसा कौनसा निन्दनीय कर्म कियाथा कि जिसके कारण नारदजी को क्रोध आ गया ॥१॥

श्रीशुक उवाच

रुद्रस्यानुचरौ भूत्वा सुदृप्तौ धनदात्मजौ ।
कैलासोपवने रम्ये मन्दाकिन्यां मदोत्कटौ ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-यह दोनों कुबेर के पुत्र शिवजी के अनुचर होने के कारण महाभिमान के साथ मदिरा में उन्मत्त होकर कैलास पर्वत के सुन्दर उपवनमें गङ्गाके किनारे फिर रहे थे ॥२॥

वारुणीं मदिरां पीत्वा मदाघूर्णितलोचनौ ।
स्त्रीजनैरनुगायद्भिश्चेरतुः पुष्पिते वने ॥ ३ ॥

वारुणी नाम मदिरा पीने से जिनके नेत्र मदसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घूमरहे थे और जो पुष्प-बाटिका में विचर रहे थे. वहाँ उनके पीछे स्त्रियां भी गाती फिर रहीं थीं॥३॥

अन्तः प्रविश्य गङ्गायामम्भोजवनराजिनि ।
चिक्रीडतुर्युवतिभिर्गजाविव करेणुभिः ॥ ४ ॥

कमल-बन की पंक्ति से शोभायमान गङ्गाजी* के प्रवाह में प्रवेश करके वे तरुण स्त्रियों के साथ इस प्रकार विहार कर रहे थे जैसे हथिनियों के साथ गजराज विहार करता है॥४॥

यदृच्छया च देवर्षिर्भगवांस्तत्र कौरव ।
अपश्यन्नारदो देव क्षीबाणौ समबुध्यत ॥ ५ ॥

हे राजन् ! दैवेच्छा से वहाँ नारदजी आपहुंचे उन्होंने उन सबको देखकर यह समझ लिया कि यह मतवाले हैं॥५॥

तं दृष्ट्वा व्रीडिता देव्यो विवस्त्राः शापशङ्किताः ।
वासांसि पर्यधुः शीघ्रं विवस्त्रौ नैव गुह्यकौ॥ ६ ॥

नग्न स्त्रियों ने नारदजी को देखते ही लज्जित होकर उनके शाप से डरकर तुरन्त ही कपड़े पहन लिये, परन्तु वे गुह्यक वैसे ही खड़े रहे॥६॥

तौ दृष्ट्वा मदिरामत्तौ श्रीमदान्धौ सुरात्मजौ ।
तयोरनुग्रहार्थाय शापं दास्यन्निदं जगौ ॥ ७ ॥

मदिरा के मद से मतवाले और लक्ष्मी के मद से अन्धे उन दोनों देव-कुमारों को देखकर उनपर कृपा करनेके लिये शाप देते हुए यहवचन कहने लगे॥

नारद उवाच

न ह्यन्यो जुषतो जोष्यान्बुद्धिभ्रंशो रजोगुणः ।
श्रीमदादाभिजात्यादिर्यत्र स्त्रीद्यूतमासवः ॥ ८ ॥

श्रीनारदजी बोले–प्रिय विषय भोगने वालोंकी बुद्धि को हास्य, हर्ष आदि, कुलीनता, विद्वता आदि से होने वाला मद या रजोगुण नाश नहीं करता वरन् धन-मद नष्ट कर देता है, क्योंकि धन मद ही से मनुष्य को जुआ या मदिरा का व्यसन लगता है॥ ८॥

हन्यन्ते पशवो यत्र निर्दयैरजितात्मभिः ।
मन्यमानैरिमं देहमजरामृत्यु नश्वरम् ॥ ९ ॥

इस क्षण-भंगुर शरीर को धन-मद से अजर-अमर मानने वाले अजितेन्द्रिय पुरुष निर्दय होकर पशु-बध करते हैं॥९॥

देवसंज्ञितमप्यन्ते कृमिविट्भस्मसंज्ञितम् ।
भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थ किं वेद निरयो यतः॥१०॥

नर-देव या भू-देव कहलाने पर भी यह देह यदि अन्त में सड़जाय तो कृमि रूप हो जाती है, खाई जाय तो विष्ठा रूप होजाती है और जलाई जाय तो भस्म रूप हो जाती है, ऐसी देह के लिये जीवों से द्रोह करने वाला पुरुष क्या अपने स्वार्थ को जानता है ? प्राणियों से बैर-भाव करने पर तो नरक ही मिलता है॥ १०॥

देहः किमन्नदातुः स्व निषेक्तुर्मातुरेव च ।
मातुः पितुर्वा बलिनः क्रेतुरग्नेः शुनोऽपि वा॥११॥

इस देह को अन्न देकर पालन करता है, वह अपना बतलाताहै, माता-पिता (जन्म देनेके कारण) अपना कहते हैं, नाना अपना कहता है, मोल लेने वाला अपना कहता है, बलवान् दास अपना कहते हैं, अग्नि (जलाते समय) अपना कहताहै या कुत्ता खाते समय अपना कहता है॥११॥

एवं साधारणं देहमव्यक्तप्रभवाप्ययम् ।
को विद्वानात्मसात्कृत्वा हन्ति जन्तूनृतेऽसतः १२॥

इस प्रकार यह देह माया से होकर माया ही में लीन होजाती है, भला जिस देह के पांच-सात अधिकारी बनते हैं, उसे पाकर सिवा अज्ञानी के कौनसा विवेकी पुरुष जीवोंका बध करेगा ?॥१२॥

असतः श्रीमदान्धस्य दारिद्र्यं परमाञ्जनम् ।
आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते ॥१३॥

जो लक्ष्मी के मद से अन्धा हो रहा हो, ऐसे मूर्ख पुरुष को सुधार के लिये दरिद्रता ही अञ्जन का काम करती है, क्योंकि दरिद्री मनुष्य सब प्राणियों को अपने ही समान देखता है, इसलिये वह किसी से द्रोह नहीं करता॥१३॥

यथा कण्टकविद्धाङ्गो जन्तोर्नेच्छति तां व्यथाम् ।
जीवसाम्यं गतो लिङ्गैर्न तथाऽविद्धकण्टकः॥१४॥

जिस मनुष्य को कांटा लग जाताहै वह दूसरे को कांटा लगने की इच्छा नहीं करता, क्योंकि वह यह जानता है कि जैसा मुझ को दुःख हुआ है वैसा ही दूसरे को भी होगा, परन्तु जिसे कभी

*–गङ्गां पुण्य जलां प्राप्य त्रयोदश विवर्जयत्। शौचमाचमनं चैव निर्माल्यं मल कर्षणम्॥ तैल संमर्दनं क्रीड़ां प्रति ग्रहमथो रतिम्। अन्य तीर्थाभिलाषश्च अन्य तीर्थ प्रशंसनम्॥ (पद्म पुराण)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कांटा न लगा हो वह क्या समझ सकता है कि कांटे का दुःख कैसा होता है ? ॥१४॥

दरिद्रो निरहंस्तम्भो मुक्तः सर्वमदैरिह ।
कृच्छ्रं यदृच्छयाऽऽप्नोति तद्धि तस्य परंतपः ॥१५॥

सब प्रकार के मद से बचा हुआ निरभिमान दरिद्री पुरुष दैवेच्छा से कष्ट भोगता है तो वह कष्ट ही उसे महान् तप-रूप होजाता है ॥१५॥

नित्यं क्षुत्क्षामदेहस्य दरिद्रस्यान्नकाक्षिणः ।
इन्द्रियाण्यनुशुष्यन्ति हिंसाऽपि विनिवर्तते ॥१६॥

सदैव भूख से दुर्बल शरीर होने से अन्न की इच्छा करते हुए दरिद्री मनुष्य की इन्द्रियां शक्ति हीन पड़ जाती हैं और फिर उसकी हिंसा भी छूट जाती है ॥१६॥

दरिद्रस्यैव युज्यन्ते साधवः समदर्शिनः ।
सद्भिः क्षिणोति तं वर्षं तत आराद्विशुध्यति ॥१७॥

समदृष्टि वाले साधुजनोंका समागमभी दरिद्री को होता है, उनके सत्संग के प्रभाव से उसकी तृष्णा छूट जातीहै और वह शीघ्र शुद्ध होजाताहै।

साधूनां समचित्तानां मुकुन्दचरणैषिणाम् ।
उपेक्ष्यैः किं धनस्तम्भैरसद्भिरसदाश्रये ॥१८॥

समान भाव वाले और भगवान् के चरणों की इच्छा रखने वालों को दरिद्री ही प्रिय लगता है, क्योंकि वे धनके अभिमानी और नीचों के आश्रय में रहने वाले नीच पुरुषों को तिरस्कार के योग्य ही मानते हैं ॥ १८ ॥

तदहं मत्तयोर्माध्व्या वारुण्या श्रीमदान्धयोः ।
तमोमदं हरिष्यामि स्त्रैणयोरजितात्मनोः ॥१९॥

इसलिये मैं इन दोनों वारुणी मदिरा से मत्त, लक्ष्मी-मद से अन्ध, स्त्री-लम्पट और अजितेन्द्रियों के अज्ञान से उत्पन्न हुए मद को दूर करूँगा ॥१९॥

यदिमौ लोकपालस्य पुत्रौ भूत्वा तमःप्लुतौ ।
न विवाससमात्मानं विजानीतः सुदुर्मदौ ॥२०॥

ये अज्ञान से भरे हुए और मदोन्मत्त दोनों लोकपाल के पुत्र होकर भी अपने नग्न शरीर का ज्ञान नहीं रखते ॥२०॥

अतोऽर्हतः स्थावरतां स्यातां नैवं यथा पुनः ।
स्मृतिः स्यान्मत्प्रसादेन तत्रापि मदनुग्रहात् ॥२१॥

इसलिये ये स्थावर ही होने योग्य हैं, जिससे कि फिर ऐसे ही अज्ञान न बने रहें और मेरी कृपा से उन जन्मों में भी इनको स्मरण बना रहे ॥२१॥

वासुदेवस्य सान्निध्यं लब्ध्वा दिव्यशरच्छते ।
वृत्ते स्वर्लोकितां भूयो लब्धभक्ती भविष्यतः ॥२२॥

सौ दिव्य वर्ष बीतने पर मेरी कृपासे भगवान् के दर्शन पाकर ये फिर से देवरूप पा जाँयगे और उस रूपमें भी फिर उन्हें भक्ति मिलेगी ॥२२॥

श्रीशुक उवाच

एवमुक्त्वा स देवर्षिर्गतो नारायणाश्रमम् ।
नलकूवरमणिग्रीवावासतुर्यमलार्जुनौ ॥२३॥

श्रीशुकदेवजी बोले-नारदजी इसप्रकार कहकर श्रीनारायण के आश्रम को चले गये और वे नलकूवर तथा मणिग्रीव दोनों यमलार्जुन वृक्ष होगये॥

ऋषेर्भागवतमुख्यस्य सत्यं कर्तुं वचो हरिः ।
जगाम शनकैस्तत्र यत्रास्तां यमलार्जुनौ ॥२४॥

वैष्णवों में श्रेष्ठ नारदजी का वचन सत्य करने के लिये श्रीबाल-कृष्ण भगवान् धीरे २ वहीं पहुँचे कि जहाँ यमलार्जुन वृक्ष खड़ेथे॥२४॥

देवर्षिर्मे प्रियतमो यदिमौ धनदात्मजौ ।
तत्तथा साधयिष्यामि यद्गीतं तन्महात्मना ॥२५॥

(श्रीभगवान् ने मनमें विचार किया कि) नारद जी मुझे परम प्रिय हैं, इसलिये उन महात्माजी ने इन दोनों कुबेर के पुत्रों के विषय में जो कुछ भी कहा है, मैं उसे उसी प्रकार सत्य करूँगा ॥२५॥

इत्यन्तरेणार्जुनयोः कृष्णस्तु यमयोर्ययौ ।
आत्मनिर्वेशमात्रेण तिर्यग्गतमुलूखलम् ॥२६॥

बालेन निष्कर्षयताऽन्वगुलूखलं तद्दामोदरेण तरसोत्कलिताङ्घ्रिबन्धौ । निष्पेततुः परमविक्रमिता तिवेपस्कन्धप्रवालविटपौ कृतचण्डशब्दौ ॥२७॥

ऐसा सोचकर श्रीकृष्ण भगवान् उन दोनों यमलार्जुन वृक्षों के बीच से निकले, इसलिये उदर तट में बँधे हुए तिरछे ऊखल को प्रवेश करके उन बालरूप भगवान् के खींचते ही वे दोनों वृक्ष जड़ से उखड़ पड़े, भगवान्के पराक्रम से उनके स्कन्ध शाखें और पत्ते काँपनेलगे, भारी भयंकर शब्दहुआ और वे दोनों वृक्ष पृथ्वी पर गिर गये ॥२६॥२७॥

तत्र श्रिया परमया ककुभः स्फुरन्तौ सिद्धावपेत्य कुजयोरिव जातवेदाः । कृष्णं प्रणम्य शिरसाऽ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खिललोकनाथं बद्धाञ्जली विरजसाविदमूचतुःस्म॥

इन दोनों वृक्षों में से प्रत्यक्ष अग्नि के समान दो देवता निकले, इनकी कान्ति से दसों दिशायें शोभायमान होने लगीं, वे दोनों निरभिमान देवता हाथ जोड़कर, सर्व लोकपति श्रीकृष्ण भगवान् के पास आकर और प्रणाम करके स्तुति करने लगे॥

कृष्ण कृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः।
व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः २६

नलकूबर और मणिग्रीव बोले-हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे परमयोगिन! आप आदि पुरुष हैं, यह स्थूल और सूक्ष्म जगत् आपकाही रूपहै,ऐसा ब्रह्म ज्ञानी लोग जानते हैं॥२६॥

त्वमेकः सर्वभूतानां देहस्वात्मेन्द्रियेश्वरः।
त्वमेव कालो भगवान्विष्णुरव्यय ईश्वरः॥३०॥

जीवमात्र के देह, प्राण, अहङ्कार और इन्द्रियों के शासक आपही हैं, आपही नाश रहित, ईश्वर, विष्णु भगवान्हैं, इसलिये 'काल' आपकी लीलाहै॥

त्वं महान्प्रकृतिः साक्षाद्रजः सत्त्वतमोमयी।
त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित्॥३१॥

महत्तत्व तथा सत, रज और तमोगुण मयी साक्षात् प्रकृति ये दोनों आपही के रूप हैं, आपही सबके स्वामी और सब शरीरों के विकारों को जानने वाले हैं॥३१॥

गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः।
को न्विहार्हति विज्ञातुं प्राक्सिद्धं गुणसंवृतः॥३२॥

इन्द्रियों से ग्रहण होने वाले पदार्थों के द्वारा आपका ग्रहण नहीं होता, क्योंकि आप तो जीव आदि के उत्पन्न होने से पूर्व ही स्वयं सिद्धहैं, फिर आपको देह आदि प्राकृतिक पदार्थों से घिरा हुआ मनुष्य कैसे जान सकता है?॥३२॥

तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे।
आत्मद्योतगुणैश्छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः॥३३॥

जो वासुदेव सबके कर्त्ता और स्वयं प्रकाशित गुणों के द्वारा अपना प्रभाव फैलाये हैं, उन ऐसे परब्रह्म आपको हम नमस्कार कहते हैं॥३३॥

यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशरीरिणः।
तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसंवृतैः॥३४॥

आप समस्त देहों में व्याप्त रहकर भी उनके सम्बन्ध से अलग हैं, आपके अवतार का परिचय ऐसे पराक्रमों द्वारा मिलता है, जो दूसरे प्राणियों में नहीं हो सकते या जिनके समान अथवा जिनसे अधिक कोई नहीं हो सकता॥३४॥

स भवान्सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च।
अवतीर्णोऽशभागेन साम्प्रतं पतिराशिषाम्॥३५॥

सब लोगों के कल्याण तथा मोक्षके लिये आप सर्व सुखों के स्वामी ने अभी अपने अंश के साथ अवतार धारण किया है॥३५॥

नमः परमकल्याण नमः परममङ्गल।
वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः॥३६॥

हे परम कल्याणरूप! हे परम मङ्गलरूप! हे वासुदेव! हे शान्त! हे यदुपते! हम आपको बार बार प्रणाम करते हैं॥३६॥

अनुजानीहि नौ भूमंस्तवानुचरकिंकरौ।
दर्शनं नौ भगवत ऋषेरासीदनुग्रहात्॥३७॥

हे भूमन्! हे भगवान्! हम आपके दासानुदास हैं; हमें आज्ञा दीजिये, हमें श्रीनारदजी की कृपासे आपका दर्शन हुआ है॥३७॥

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः। स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्॥३८॥

हमारी वाणी आपके गुणानुवाद में, कान आपकी कथा सुनने में, हाथ आपकी सेवा करने में, मन आपके चरणोंके स्मरणमें, सिर आपके निवास रूप विश्व को प्रणाम करने में और दृष्टि आपके स्वरूप-भूत साधुजनों के दर्शनों में तत्पर रहा करे॥

श्रीशुक उवाच

इत्थं संकीर्तितस्ताभ्यां भगवान्गोकुलेश्वरः।
दाम्ना चोलूखले बद्धः प्रहसन्नाह गुह्यकौ॥३९॥

ऊखलमें रस्सीके द्वारा जिनकी कमर बँधी हुई है, ऐसे गोकुलपति भगवान् ने उनकी इस प्रकार स्तुति सुनकर, हँसते हुए उन दोनों यक्षोंसे कहा॥

श्रीभगवानुवाच

ज्ञातं मम पुरैवैतदृषिणा करुणात्मना।
यच्छ्रीमदान्धयोर्वाग्भिर्विभ्रंशोऽनुग्रहः कृतः॥४०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीभगवान् बोले-दयालु नारदजी ने तुम दोनों लक्ष्मी के मदांधों पर अपनी वाणी द्वारा धन-मद हरण करके पद से गिरा देने का अनुग्रह किया है, इसे मैं पहले ही से जानता था ॥४०॥

साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम् ।
दर्शनान्नो भवेद्बन्धः पुंसोऽक्ष्णोःसवितुर्यथा॥४१॥

स्वधर्म पर चलने वाले, ब्रह्मज्ञानी और ऐसे पुरुषों में से विशेष कर मुझमें चित्त लगाने वाले महात्माओं के दर्शन से पुरुष के बन्धन इस प्रकार कट जाते हैं, जैसे सूर्य के दर्शन से नेत्रों के बन्धन कट जाते हैं ॥ ४१ ॥

तद्गच्छतं मत्परमौ नलकूबरसादनम् ।
संजातो मयि भावो वामीप्सितः परमो भवः॥४२॥

इसलिये हे नल कूबर ! अब तुम मुझमें चित्त लगाकर अपने स्थान को जाओ, तुम्हारा इच्छानुसार और संसार को काटने वाला परम प्रेम मुझ में हो चुका है ॥ ४२ ॥

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तौ तौ परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः ।
बद्धोलूखलमामन्त्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तराम् ॥४३॥

श्रीशुकदेवजी बोले-जब ऊखलमें बँधेहुए भगवान् ने इस प्रकार कहा, तब वे दोनों परिक्रमा कर के, बारम्बार प्रणाम करते हुए आज्ञा पाकर उत्तर दिशा को चले गये ॥४३॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

ग्यारहवां अध्याय

(वृन्दावन-गमन लीला)

श्रीशुक उवाच

गोपा नन्दादयः श्रुत्वा द्रुमयोः पततो रवम् ।
तत्राजग्मुः कुरुश्रेष्ठ निर्घातभयशङ्किताः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे कुरुश्रेष्ठ ! वृक्षोंके गिरने का शब्द सुनकर, वज्रपात की आशंका से भयभीत होते हुए नन्द आदि गोप वहाँ आये ॥१॥

भूम्यां निपतितौ तत्र ददृशुर्यमलार्जुनौ ।
बभ्रमुस्तदविज्ञाय लक्ष्यं पतनकारणम् ॥ २ ॥

और पृथ्वी पर पड़े हुए यमलार्जुन को देखकर उनके गिरनेका कारण प्रत्यक्ष होतेहुए भी वे समझ न सके और भयसे चकित होगये ॥२॥

उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं च बालकम् ।
कस्येदं कुत आश्चर्यमुत्पात इति कातराः ॥ ३ ॥

यद्यपि उन्होंने बालकृष्ण को कमरमें बँधाहुआ ऊखल खींचते हुए देखलिया, फिरभी वे इस प्रकार (सोचते हुए) भयभीत होगये कि अरे यह किस का काम है ? कहाँसे हुआ ? ओहो ! बड़ा आश्चर्य मय उत्पात है ॥३॥

बाला ऊचुरनेनेति तिर्यग्गतमुलूखलम् ।
विकर्षता मध्यगेन पुरुषावप्यचक्ष्महि ॥ ४ ॥

बालक बोले-इन कृष्णके बीच में पहुंचने और तिरछे पड़े हुए ऊखल को खींचनेसे यह वृक्ष गिर गये हैं, यही नहीं वरन् हमने इनमें से दो पुरुषोंको भी निकला हुआ देखा है ॥४॥

न ते तदुक्तं जगृहुर्न घटेतेति तस्य तत् ।
बालस्योत्पाटनं तर्वोः केचित्संदिग्धचेतसः ॥ ५ ॥

उन गोपों में से कितनोंही ने तो यह सोचकर कि बालक का वृक्ष उखाड़ देना असंभव है, उन बच्चों की बात को न माना, परन्तु कुछ ग्वालों के मनमें स्नेह होगया ॥५॥

उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं स्वमात्मजम् ।
विलोक्य नन्दः प्रहसद्वदनो विमुमोच ह ॥ ६ ॥

रस्सी से बँधे हुए और ऊखलको घसीटते हुए अपने पुत्र को देखकर नन्दरायजीने कुछ मुसकाते हुए उन्हें छोड़ दिया ॥६॥

गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यद्भगवान्बालवत्क्वचित् ।
उद्गायति क्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयन्त्रवत् ॥ ७ ॥

गोपियों के उत्तेजित करने पर किसी समय बाल-भगवान् नृत्य करने लगते, कभी गाने लगते और कभी कठपुतलीकी नाईं उनके आधीन होजाते*

*-शंकर से सुर जाहि जपैं चतुरानन ध्यानन धर्म बढ़ावें। नेकु हिये बिच आवत ही रसखान महाजड़ मूढ़ कहावें ॥ जापर सुन्दर देव वधू नहिं बारत प्रान विलम्ब लगावें। ताहि अहीर की छोहरियां छछिया भर छाछ पै नाच नचावें ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विभर्ति क्वचिदाज्ञप्तः पीठकोन्मानपादुकम् ।
बाहुक्षेपं च कुरुते स्वानां च प्रीतिमावहन् ॥ ८ ॥

कभी गोपियों की आज्ञा से पट्टे, पायली या पादुका उठाते और इसी प्रकार अपने भक्त ग्वाल-वालों को प्रसन्न करनेके लिये भुजायें ठोंकाकरते ॥

दर्शयंस्तद्विदां लोक आत्मनो भृत्यवश्यताम् ।
व्रजस्योवाह वै हर्षं भगवान्बालचेष्टितैः ॥ ९ ॥

संसार में पंडितजनों को यह दिखाने के लिये कि "मैं भक्तोंके वशहूँ" भगवान् ने अपनी बाल-लीलाओं से व्रजको आनंदित किया ॥९॥

[गृह्णीहि भोः फलानीति श्रुत्वा सत्वरमच्युतः ।
फलार्थी धान्यमादाय ययौ सर्वफलप्रदः ॥ १ ॥

(एक समय मालिन आई और 'फल ले लो' इस प्रकार से पुकारने लगी, उसकी यह बोली सुनकर समस्त फलों के दाता श्रीकृष्ण भगवान् कुछ लेकर उसके पास फल लेनेको गये ॥१॥

फलविक्रयिणी तस्य च्युतधान्यकरद्वयम् ।
फलैरपूरयद्रत्नैः फलभाण्डमपूरि च ॥ २ ॥]

मालिन ने अनाज लेकर श्रीकृष्णजी के दोनों हाथ फलों से भर दिये, तब भगवान् ने उसकी डलिया रत्नों से परिपूर्ण करदी ॥२॥)

सरित्तीरगतं कृष्णं भग्नार्जुनमथाह्वयत् ।
रामं च रोहिणी देवी क्रीडन्तं बालकैर्भृशम् ॥ १० ॥

यमलार्जुन वृक्षों को उखाड़ कर श्रीकृष्णजी यमुना के तटपर जाकर बालकों के साथ बल्देवजी सहित खेलने लगे, उन दोनों को रोहिणीजी बुलाने लगीं ॥१०॥

नोपेयातां यदाहूतौ क्रीडासङ्गेन पुत्रकौ ।
यशोदां प्रेषयामास रोहिणी पुत्रवत्सलाम् ॥ ११ ॥

परन्तु वे खेलने में अत्यन्त निमग्न थे इसलिये उन्हें आता हुआ न देख रोहिणीजी ने पुत्र-वत्सला यशोदाजी को उनके बुलाने के लिये पहुँचाया॥११॥

क्रीडन्तं सा सुतं बालैरतिवेलं सहाग्रजम् ।
यशोदाऽजोहवीत्कृष्णं पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी ॥ १२ ॥
कृष्ण कृष्णारविन्दाक्ष तात एहि स्तनं पिब ।
अलं विहारैः क्षुत्क्षान्तः क्रीडाश्रान्तोऽसि पुत्रक १३

जिनके पयस्तन पुत्र-स्नेह से झर रहे हैं, ऐसी यशोदाजी बालकों के साथ खेलतेहुए श्रीबाल कृष्ण और उनके ज्येष्ठ बन्धु बलरामजी को बुलाने लगीं कि हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे कमलनयन ! हे तात ! खेलते २ थक गये होगे और तुम्हें भूख लग आई होगी; इसलिये अब खेलना बन्द करदो और आ कर दूध पीलो ॥१२॥१३॥

हे राम गच्छ ताताशु सानुजः कुलनन्दन ।
प्रातरेव कृताहारस्तद्भवान् भोक्तुमर्हति ॥ १४ ॥

हे राम ! हे प्यारे ! हे कुलनन्दन ! अपने छोटे भाई के साथ जल्द आओ, तुमने प्रातःकाल जल्दी ही भोजन कर लिया था, इसलिये अब तुमको भोजन करना उचित है ॥१४॥

प्रतीक्षते त्वां दाशार्ह भोक्ष्यमाणो व्रजाधिपः ।
एह्यावयोः प्रियं धेहि स्वगृहान्यात बालकाः ॥ १५ ॥

हे दशार्ह ! व्रजराज नन्दरायजी भोजन करने के लिये बैठे हैं और वह तुम्हारी राह देखरहे हैं, तुम आओ और हम दोनों को प्रसन्न करो, जब इतना कहनेपर भी श्रीकृष्णजी न आये, तब यशोदाजी ने बालकों से कहा कि 'हे बालको ! तुम अपने-अपने घर जाओ' ॥१५॥

धूलिधूसरिताङ्गस्त्वं पुत्र मज्जनमावह ।
जन्मर्क्षं तेऽद्य भवति विप्रेभ्यो देहि गाः शुचिः ॥ १६ ॥

(उन्होंने फिर श्रीकृष्णजीसे कहा कि) हे लाल! तुम्हारे अङ्ग धूल से भर रहे हैं इसलिये तुम स्नान करो और आजही तुम्हारी जन्म-गाँठ है, इसलिये ब्राह्मणों को गौ दान दो ॥१६॥

पश्य पश्य वयस्यांस्ते मातृमृष्टान्स्वलंकृतान् ।
त्वं च स्नातःकृताहारो विहरस्व स्वलंकृतः ॥ १७ ॥

तुम अपनी बराबरी वाले बालकों को तो देखो कि उनकी माताओं ने उन्हें नहला धुलाकर आभूषण पहनाये हैं, इसलिये तुम भी स्नान करके भोजन करने के पीछे खेलो ॥१७॥

श्रीशुक उवाच

इत्थं यशोदा तमशेषशेखरं मत्वा सुतं स्नेहनिबद्धधीर्नृप ।
हस्ते गृहीत्वा सहराममच्युतं नीत्वा स्ववाटं कृतवत्यथोदयम् ॥ १८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन् ! स्नेह में बँधी हुई बुद्धिवाली यशोदाजी ब्रह्मादि समस्त देवताओं से श्रेष्ठ भगवान् बालकृष्ण को अपना पुत्र मानकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बल्देवजी सहित उन दोनों के हाथ पकड़ कर घर ले आईं और उनको नहला-धुलाकर तथा आभूषण आदि पहिनाकर उन्होंने मंगलकार्य किये।

गोपवृद्धा महोत्पाताननुभूय बृहद्वने ।
नन्दादयः समागम्य व्रजकार्यममन्त्रयन् ॥१६॥

नन्द आदि वृद्ध गोपों ने व्रजमें बड़े २ उत्पातों को होते देखकर एक होकर गोकुल के हित के लिये उपाय सोचा ॥ १६ ॥

तत्रोपनन्दनामाह गोपो ज्ञानवयोधिकः ।
देशकालार्थतत्त्वज्ञः प्रियकृद् रामकृष्णयोः ॥२०॥

वहाँ देश, काल के तत्व का जानने वाला, ज्ञान तथा आयु में बड़ा और बलरामजी तथा श्रीकृष्ण का हितैषी उपनन्द नायक गोप कहनेलगा कि।२०।

उत्थातव्यमितोऽस्माभिर्गोकुलस्य हितैषिभिः ।
आयन्त्यत्र महोत्पाता बालानां नाशहेतवः॥२१॥

यदि हम लोगों को गोकुल के हित की इच्छा हो तो यहाँ से चला ही जाना चाहिये, क्योंकि यहाँ बालकों को नाश करने के लिये बड़े-बड़े उपद्रव होरहे हैं ॥२१॥

मुक्तः कथंचित् राक्षस्या बालघ्न्या बालको ह्यसौ ।
हरेरनुग्रहान्नूनमनश्चोपरि नापतत् ॥२२॥

बालकों को मारने वाली (पूतना) राक्षसी के हाथ से ये बालक ज्यों-त्यों करके बचने पाया है और शकट इसके सिरपर न गिरा, यह भी ईश्वर की कृपा ही है ॥२२॥

चक्रवातेन नीतोऽयं दैत्येन विपदं वियत् ।
शिलायां पतितस्तत्र परित्रातः सुरेश्वरैः ॥२३॥

एक दैत्य बवूले के वेषमें इसको निरवलम्ब आकाश में उड़ा ले गया और फिर शिलापर गिर पड़ा, वहाँभी इसकी देवताओं ने रक्षा की ॥२३॥

यन्न म्रियेत द्वयोरन्तरं प्राप्य बालकः ।
असावन्यतमो वापि तदप्यच्युतरक्षणम् ॥२४॥

वृक्षों के बीच में आने पर भी यह या कोई दूसरा बालक न मरा, यहभी ईश्वरने ही रक्षा की है॥

यावदौत्पातिकोऽरिष्टो व्रजं नाभिभवेदितः ।
तावद्बालानुपादाय यास्यामोऽन्यत्र सानुगाः २५

इसलिये किसी अनर्थकारी उत्पात के आने से पहले ही हम लोगों को बालकों को लेकर कुटुंब-सहित किसी दूसरी जगह चल देना चाहिये २५॥

नवं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम् ।
गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम् ॥२६॥

वृन्दावन नामक वन गोप, गोपियों और गौवों के सेवन करने योग्य है, पशुओं के अनुकूल भी है और उसमें पर्वत, तृण तथा लतायें उत्तम हैं ।२६।

तत्तत्राद्यैव यास्यामः शकटान्युङ्क्त मा चिरम् ।
गोधनान्यग्रतो यान्तु भवतां यदि रोचते ॥२७॥

इसलिये वहाँ आजही चलदेना उचितहै, यदि इसमें आप लोगों की भी एक मति हो तो गाड़ियां जोतो, देर न करो और पहले गौ-धन को आगे चलने दो ॥ २७ ॥

तच्छ्रुत्वैकधियो गोपाः साधु साध्विति वादिनः ।
व्रजान्स्वान्स्वान्समायुज्य ययू रूढपरिच्छदाः॥२८॥

यह बात सुनकर सब गोप एक मत होकर 'वाह-वाह' कहकर अपनी २ गाड़ियां जोतकरऔर उन पर सब सामान लादकर चल दिये ॥२८॥

वृद्धान्बालान्स्त्रियो राजन्सर्वोपकरणानि च ।
अनस्स्वारोप्य गोपाला यत्ता आत्तशरासनाः२९॥
गोधनानि पुरस्कृत्य शृङ्गाण्यापूर्य सर्वतः ।
तूर्यघोषेण महता ययुः सहपुरोहिताः ॥३०॥

हे राजन् ! बूढ़े, बालक और स्त्रियों को गाड़ों में बिठलाकर, उनमें सब सामान भरकर, सावधानी के साथ हाथमें धनुष-बाण लिये हुए, गौ-धन को आगे करके, चारों ओर से शृङ्गी बजाते तथा तुरई का महान् शब्द करते हुए, पुरोहितको साथ लेकर गोप-वृन्द वृन्दावन को गये ॥२९॥३०॥

गोप्यो रूढरथा नूत्नं कुचकुङ्कुमकान्तयः ।
कृष्णलीला जगुः प्रीता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः३१

गाड़ियों में बैठी हुई, स्तनों पर लेप की हुई नवीन केसर से शोभायमान, सुन्दर वस्त्र पहिने हुए कण्ठ में पदकका कठला धारण किये हुए सब गोपियां आनन्दपूर्वक भगवान्की लीला गानेलगीं।

तथा यशोदारोहिण्यावेकं शकटमास्थिते ।
रेजतुः कृष्णरामाभ्यां तत्कथाश्रवणोत्सुके ॥३२॥

तथा रोहिणी और यशोदाजीभी भगवान् और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बलदेवजी के साथ एक गाड़ी में बैठी हुई शोभायमान् होरही थीं और उनकी बातें सुन रहीं थीं॥३२॥

वृन्दावनं संप्रविश्य सर्वकालसुखावहम् ।
तत्र चक्रुर्व्रजावासं शकटैरर्धचन्द्रवत् ॥३३॥

सभी काल में सुख देने वाले वृन्दावनमें प्रवेश करके ग्वालों ने गाड़ियों से अर्द्धचन्द्राकार गोकुल का निवास-स्थान बनाया ॥३३॥

वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च ।
वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप ॥३४॥

हे राजन्! वृन्दावन, गोवर्धन पर्वत और यमुना जी का तट देखकर श्रीराम कृष्ण को अत्यन्त आनन्द हुआ ॥३४॥

एवं व्रजौकसां प्रीतिं यच्छन्तौ बालचेष्टितैः ।
कलवाक्यैः स्वकालेन वत्सपालौ बभूवतुः ॥३५॥

इस प्रकार बाल लीला करके और मनोहर वचनों से व्रजवासियों को आनन्द देते हुए उचित समय आने पर श्रीराम कृष्ण बछड़ों के पालने वाले बन गये ॥३५॥

अतिदूरे व्रजभुवः सह गोपालदारकैः ।
चारयामासतुर्वत्सान्नानाक्रीडापरिच्छदौ ॥३६॥

अनेक प्रकार के खेलों का साधन इकट्ठा करके दोनों भाई ग्वालबालों के साथ व्रज-भूमि के पास ही बछड़ों को चराने लगे ॥३६॥

क्वचिद्वादयतो वेणुं क्षेपणैः क्षिपतः क्वचित् ।
क्वचित्पादैः किङ्किणीभिः क्वचित्कृत्रिमगोवृषैः॥३७

वे कभी वंशी बजाते हैं, कभी आँवले आदि पदार्थों के गोफन चलाते हैं, कभी घुंघरू बाँधे हुए चरणों से प्रहार करते हैं, कभी कम्बल उढ़ाकर बालकों को बैल बनाने का खेल करते हैं ॥३७॥

वृषायमाणौ नर्दन्तौ युयुधाते परस्परम् ।
अनुकृत्य रुतैर्जन्तूंश्चेरतुः प्राकृतौ यथा ॥३८॥

कभी उनके साथ आपभी बैल बनकर परस्पर नाद करते हुए भिड़ते हैं, कभी पक्षियों की बोली का अनुकरण करते हुए प्राकृतिक बालकोंके समान फिरा करते हैं ॥३८॥

कदाचिद्यमुनातीरे वत्सांश्चारयतोः स्वकैः ।
वयस्यैः कृष्णबलयोर्जिघांसुर्दैत्य आगमत् ॥३९॥

एक बार यमुना तट पर अपने बराबर वाले बालकों के साथ बछड़े चराते हुए श्रीराम कृष्ण को मारने के लिये एक राक्षस आया ॥३९॥

तं वत्सरूपिणं वीक्ष्य वत्सयूथगतं हरिः ।
दर्शयन्बलदेवाय शनैर्मुग्ध इवासदत् ॥४०॥

उस दैत्य को वत्सरूप से बछड़ोंमें मिला हुआ देखकर भगवान् ने उसे बलरामजी को बतलाया और फिर वह अनजान की भांति धीरे-धीरे उस के पास पहुँचे ॥४०॥

गृहीत्वाऽपरपादाभ्यां सहलाङ्गूलमच्युतः ।
भ्रामयित्वा कपित्थाग्रेप्राहिणोद्गतजीवितम् ।
स कपित्थैर्महाकायः पात्यमानैः पपात ह ॥४१॥

भगवान् कृष्ण ने पूंछ के साथ उसके पिछले पैरको पकड़ कर घुमाया और उसे निष्प्राण करके कैथों के वृक्ष के ऊपर पछाड़ दिया जिससे कैथों के वृक्ष गिरपड़े और साथही में वह बड़े डील वाला दैत्य भी गिर पड़ा ॥४१॥

तं वीक्ष्य विस्मिता बालाः शशंसुः साधु साध्विति।
देवाश्च परिसंतुष्टा बभूवुः पुष्पवर्षिणः ॥४२॥

उस दैत्य को देखकर आश्चर्य के साथ बालक 'वाह-वाह' कहने लगे और देवताओं ने अत्यन्त प्रसन्न होकर फूल बरसाये ॥४२॥

तौ वत्सपालकौ भूत्वा सर्वलोकैकपालकौ ।
सप्रातराशौ गोवत्सांश्चारयन्तौ विचेरतुः ॥४३॥

समस्त लोकों के प्रधान पालने वाले वे दोनों बन्धु वत्स-पाल बनकर कलेवा साथ में लिये हुए बछड़ों को चराते हुए फिरा करते थे ॥४३॥

स्वं स्वं वत्सकुलं सर्वं पाययिष्यन्त एकदा ।
गत्वा जलाशयाभ्याशं पाययित्वा पपुर्जलम्॥४४॥

एक दिन सब बालक बछड़ों को घेरकर पानी पिलाने के लिये जल-स्थान पर पहुंचे और उन्होंने बछड़ों को जल पिलाकर स्वयं भी जल पिया ॥४४॥

ते तत्र ददृशुर्बाला महासत्त्वमवस्थितम् ।
तत्रसुर्वज्रनिर्भिन्नं गिरेः शृङ्गमिव च्युतम् ॥४५॥

वहाँ उन्होंने वज्र से टूटे हुए पर्वत के शिखर के समान बैठे हुए एक जीव को देखा कि जिससे वे घबरा उठे ॥४५॥

स वै बको नाम महानसुरो बकरूपधृक् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आगत्य सहसा कृष्णं तीक्ष्णतुण्डोऽग्रसद्बली॥४६

वह बड़े बगुले का रूप धारण किये हुए बकासुर नामक दैत्यथा, वह तीक्ष्ण चोंचधारी बकासुर जल्दी से आकर श्रीकृष्णजी को निगल गया ॥४६॥

कृष्णं महाबकग्रस्तं दृष्ट्वा रामादयोऽर्भकाः।
बभूवुरिन्द्रियाणीव विना प्राणं विचेतसः ॥४७॥

जब बलराम आदि बालकों ने यह देखा कि श्रीकृष्णजी को बगुले ने निगल लिया है तो वेसब ऐसे अचेत होगये जैसे प्राण रहित इन्द्रियां हो जाती हैं ॥४७॥

तं तालुमूलं प्रदहन्तमग्निवद्गोपालसूनुं पितरं जगद्गुरोः। चच्छर्द सद्योऽतिरुषाक्षतं बकस्तुण्डेन हन्तुं पुनरभ्यपद्यत ॥४८॥

गौओं के पालन करने वाले, नन्दरायजीके पुत्र और जगद्गुरु ब्रह्माजी के पिता श्रीकृष्णचन्द्रजी अङ्गारे की भांति गरम होकर उस बगुले के तालु को जलाने लगे, तब उसने तत्काल ही भगवान्को अक्षत उगलदिया और फिर उन्हें अत्यन्त क्रोधित होकर चोंचें मारने के लिये बढ़ा ॥४८॥

तमापतन्तं स निगृह्य तुण्डयोर्दोर्भ्यां बकं कंससखं सतां पतिः। पश्यत्सु बालेषु ददार लीलया मुदावहो वीरणवद्दिवौकसाम् ॥४९॥

साधुओं के पालन-कर्त्ता, देवताओं के आनन्द दाता श्रीकृष्णजी ने उस दौड़ते हुए कंस के सखा बकासुर की चोंच दोनों हाथ से पकड़कर बालकों के देखते २ ही उसे तृणके समान चीर डाला ॥

तदा बकारिं सुरलोकवासिनः समाकिरंश्चन्दन मल्लिकादिभिः। समीडिरे चानकशङ्खसंस्तवैस्तद्वीक्ष्य गोपालसुता विसिस्मिरे ॥५०॥

उस समय स्वर्गमें निवास करनेवाले देवताओं ने बकासुर के वध करने वाले श्रीकृष्ण भगवान् के ऊपर नन्दन बन के चमेली आदि पुष्पों की वृष्टि की, दुन्दुभि तथा शंख-ध्वनि की और स्तोत्रोंद्वारा स्तुति भी की, जिसे देख कर ग्वाल बाल चकित से रह गये ॥ ५० ॥

मुक्तं बकास्यादुपलभ्य बालका रामादयः प्राणमिवेन्द्रियो गणः। स्थानागतं तं परिरभ्य निर्वृताः प्रणीय वत्सान्व्रजमेत्य तज्जगुः ॥५१॥

बकासुर के मुंह से छूटे हुए श्रीकृष्ण भगवान् को पाकर बलरामजी आदि सभी ग्वाल ऐसे सुखी हुए जैसे प्राणों को पाकर इन्द्रियां सुखी होती हैं, वे सब अपने स्थान पर आये हुए भगवान् से भेंट करके, बछड़ों को जोड़कर व्रजमें आये और उन्हों ने वह हाल सबको सुनाया ॥५१॥

श्रुत्वा तद्विस्मिता गोपा गोप्यश्चातिप्रियादृताः। प्रेत्यागतमिवौत्सुक्यादैक्षन्त तृषितेक्षणाः ॥५२॥

यह हाल सुनकर विस्मयसे भरेहुए गोप और गोपियां श्रीकृष्ण भगवान् को ऐसी सम्मान पूर्ण दृष्टि से देखने लगे जैसे कोई परलोक से लौटे हुए पुरुष को तृष्णा मयी दृष्टि से देखता है ॥५२॥

अहो बतास्य बालस्य बहवो मृत्यवोऽभवन्।
अप्यासीद्विप्रियं तेषां कृतं पूर्वं यतो भयम् ॥५३॥

वे आपस में कहने लगे कि अहो! इस बालक पर बड़े-बड़े घात हुए, परन्तु जो भी इसे मारनेको आया उसी का बुरा हुआ, क्योंकि उन्होंने पहले दूसरों को भय दिया था ॥५३॥

अथाप्यभिभवन्त्येनं नैवैते घोरदर्शनाः।
जिघांसयैनमासाद्य नश्यन्त्यग्नौ पतङ्गवत् ॥५४॥

यह लोग भयंकर रूप होकर बालक का कुछ अनिष्ट नहीं कर सकते और मारने की इच्छा से उनके पास आकर स्वयंही ऐसे नष्ट होजातेहैं जैसे अग्नि में पड़कर पतिंगा जल जाता है ॥५४॥

अहो ब्रह्मविदां वाचो नासत्याः सन्ति कर्हिचित्।
गर्गो यदाह भगवानन्वभावि तथैव तत् ॥५५॥

अहो! वेद जानने वालों के वचन भी कभी झूठ नहीं होते, जैसा महात्मा गर्गाचार्यजी ने कहा था ठीक वैसाही अनुभव होरहा है ॥५५॥

इति नन्दादयो गोपाः कृष्णरामकथां मुदा।
कुर्वन्तो रममाणाश्च नाविन्दन्भववेदनाम् ॥५६॥

इस प्रकार आनन्द-पूर्वक श्रीकृष्ण बलरामजी की बातें करते और आनन्द पाते हुए नन्द आदि गोपों को संसार की वेदना न जान पड़ी ॥५६॥

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे।
निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥५७॥

इस भांति से आंख मिचौनी, सड़क बांधना, बानर की तरह कूदना आदि कुमार अवस्था के खेल खेलते हुए श्रीराम कृष्ण ने अपनी कुमार-अवस्था व्रज में बिताई ॥५७॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बारहवां अध्याय

(अघासुर का वर्णन)

श्रीशुक उवाच

कचिद्वनाशाय मनो दधद्व्रजात्प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान्। प्रबोधयन् शृङ्गरवेण चारुणा विनिर्गतो वत्सपुरःसरो हरिः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–किसी दिन वनहीमें भोजन करने के विचार से, प्रातःकाल उठकर सिंगी के शब्दसे अपने सखा ग्वालवालोंको जगाकर बछड़ों के झुंड को आगे करके भगवान् कृष्ण व्रजसे चले॥

तेनैव साकं पृथुकाः सहस्रशः स्निग्धाः सुशिग्वेत्रविषाणवेणवः। स्वान्स्वान्सहस्रोपरिसंख्यया ऽन्वितान्वत्सान्पुरस्कृत्य विनिर्ययुर्मुदा ॥ २ ॥

उनके साथ उनपर स्नेह रखने वाले हज़ारों ग्वाल-बाल अच्छे २ छींके, बेत, सींग और बांसुरी लिये हुए, हज़ार से भी अधिक बछड़ों के झुंड को आगे करके आनन्दके साथ निकले ॥२॥

कृष्णवत्सैरसंख्यातैर्यूथीकृत्य स्ववत्सकान्। चारयन्तोऽर्भलीलाभिर्विजहुस्तत्र तत्र ह ॥ ३ ॥

श्रीकृष्ण भगवान् के अगणित बछड़ों के साथ अपने बछड़ों के झुंड को आगे करके उनको चराते हुए यह बालक जहाँ तहां खेल करते जाते थे ॥३॥

फलप्रवालस्तबकसुमनःपिच्छधातुभिः। काचगुञ्जामणिस्वर्णभूषिता अप्यभूषयन् ॥ ४ ॥

यद्यपि वे ग्वाल-बाल कांच, घुंघची, मणि और स्वर्ण के शृङ्गार किये थे, फिर भी फल, कोंपल, गुच्छा, फूल, मोर पंख और दूसरी धातुओं से शृङ्गार बनाते थे ॥४॥

मुष्णन्तोऽन्योन्यशिक्यादीञ्ज्ञातानाराच्च चिक्षिपुः। तत्रत्याश्च पुनर्दूराद्धसन्तश्च पुनर्ददुः ॥ ५ ॥

वे आपस में छींका आदि पदार्थ चुरा लेते थे और पता लग जाने पर तुरन्त ही दूर से फेंक देते थे, उस जगह जो बालक खड़े होते थे, वे हँसकर फिर दूर से दे देते थे ॥५॥

यदि दूरं गतः कृष्णो वनशोभेक्षणाय तम्। अहं पूर्वमहं पूर्वमिति संस्पृश्य रेमिरे ॥ ६ ॥

यदि श्रीकृष्ण भगवान् वनकी शोभा देखने के लिये दूर निकल जाते थे तो ग्वाल-बाल आपस में यह कहते हुए कि 'मैं पहले छुऊँगा' उन प्रभुको (दौड़कर) छूते थे और खेला करते थे ॥६॥

केचिद्वेणून्वादयन्तो ध्मान्तः शृङ्गाणि केचन। केचिद्भृङ्गैः प्रगायन्तः कूजन्तः कोकिलैः परे॥ ७ ॥

कोई बांसुरी बजारहे हैं, कोई सींग का शब्द कररहे हैं, कोई भौंरों के साथ गाते हैं और कोई कोयल के साथ बोली पर बोली मिलाते हैं ॥७॥

विच्छायाभिः प्रधावन्तो गच्छन्तः साधुहंसकैः। बकैरुपविशन्तश्च नृत्यन्तश्च कलापिभिः ॥ ८ ॥

उड़ते हुए पक्षियों की छाया के साथ दौड़तेहैं हंसों के साथ भले प्रकार से चलते हैं, बगुलों की पंक्ति में बैठते हैं, मोरोंके साथ नाचते हैं ॥८॥

विकर्षन्तः कीशबालानारोहन्तश्च तैर्द्रुमान्। विकुर्वन्तश्च तैः साकं प्लवन्तश्च पलाशिषु ॥ ९ ॥

वानरों की पूंछ खींचते हैं और पूंछ को पकड़े हुए ही उनके साथ वृक्षों पर चढ़ते, मुंह मोड़ते और वृक्षों पर ही कूदते हैं ॥९॥

साकं भेकैर्विलङ्घतः सरित्प्रस्रवसंप्लुताः। विहसन्तः प्रतिच्छायाः शपन्तश्च प्रतिस्वनान्॥ १० ॥

मेढकों के साथ ठेका लगाते हैं, नदी झरनों में नहाते हैं, अपनी छाया को देखकर हँसते हैं और प्रति ध्वनि को गालियां देते हैं ॥१०॥

इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या दास्यं गतानां परदैवतेन। मायाश्रितानां नरदारकेण साकं विजहुः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥ ११ ॥

जो ब्रह्म-ज्ञानियों को ब्रह्म-सुख तथा अनुभव-रूप हैं, भक्तों को परम देवता रूप हैं और माया मोहित पुरुषों के लिये मनुष्य के बालकरूप हैं, उन श्रीकृष्णचन्द्रजी के साथ महान् पुण्य करने वाले ग्वाल-बाल क्रीड़ा करते हैं ॥११॥

यत्पादपांसुर्बहुजन्मकृच्छ्रतो धृतात्मभिर्योगिभिरप्यगम्यः। स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः किं वर्ण्यते दिष्टमतो व्रजौकसाम् ॥ १२ ॥

अनेक जन्मों तक कष्टसहन करने, मनको वश

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में करने वाले योगी पुरुषों को भी जिनके चरणों की धूल दुर्लभ है, वही भगवान् जिनके सन्मुख प्रत्यक्ष विराजमान् हों, उन व्रजवासियों के भाग्य का अब कहाँ तक वर्णन किया जाय ? ॥१२॥

अथाघनामाऽभ्यपतन्महासुरस्तेषां सुखक्रीडन वीक्षणाक्षमः । नित्यं यदन्तर्निजजीवितेप्सुभिः पीतामृतैरप्यमरैः प्रतीक्ष्यते ॥१३॥

दृष्ट्वार्भकान्कृष्णमुखानघासुरः कंसानुशिष्टः स बकीबकानुजः । अयं तु मे सोदरनाशकृत्तयोर्द्वयोर्ममैनं सबलं हनिष्ये ॥१४॥

तत्पश्चात् इन सबके खेल को सहन न करके अघासुर नाम का दैत्य आया, अमृत पीने वाले देवता भी अपने जीवन की इच्छा से जिसके अन्त होने की सदैव प्रतीक्षा किया करते हैं, उस कंसके पहुंचाये हुए बकासुर तथा पूतना के छोटे भाई अघासुर ने श्रीकृष्ण आदि बालकोंको खेलता हुआ देखकर सोचा कि इस कृष्ण ने मेरे दो सहोदर मार डाले हैं, इसलिये उनके बदले में मैं भी इसके ग्वाल-बालों के दल सहित इसका संहार करूँगा ॥

एते यदा मत्सुहृदस्तिलापः कृतास्तदा नष्टसमा व्रजौकसः ।प्राणे गते वर्ष्मसु काऽनुचिन्ता प्रजासवः प्राणभृतो हि ये ते ॥१५॥

जब यह सभी मेरे सहोदरों के नाम पर तिलोदक रूप हो जायेंगे (मारे जायेंगे) तब व्रजवासी स्वयं ही मरण-तुल्य होजायेंगे, प्राण निकल जाने पर देह की क्या चिन्ता है ? देहधारियों के प्राण तो बालक ही कहलाते हैं ॥१५॥

इति व्यवस्याजगरं बृहद्वपुः स योजनायाममहाद्रिपीवरम् । धृत्वाऽद्भुतं व्यात्तगुहाननं तदा पथि व्यशेत ग्रसनाशया खलः ॥१६॥

इस प्रकार निश्चय करके वह दुष्ट अघासुर सबको निगल जाने का विचार करके अजगर का महान अद्भुत रूप बनाकर मार्ग में सो रहा. वह एक योजन लम्बा, बड़े पहाड़ की नाईं मोटा और गुफाकी भांति मुंह फैलाये हुए पड़ा था ॥१६॥

धराधरोष्ठो जलदोत्तरोष्ठो दर्याननान्तो गिरिशृङ्गदंष्ट्रः । ध्वान्तान्तरास्यो विततोरुजिह्वः परुषानिलश्वासदवेक्षणोष्णः ॥१७॥

उसका नीचे का होंठ पृथ्वी को और ऊपर का होंठ आकाश को स्पर्श कर रहा था, उसका जबड़ा गुफा के समान, दाढ़ें पर्वत की चोटी के समान घोर वायु के समान श्वांस और आंखें दावाग्नि के समान थीं ॥१७॥

दृष्ट्वा तं तादृशं सर्वे मत्वा वृन्दावनश्रियम् । व्यात्ताजगरतुण्डेन ह्युत्प्रेक्षन्ते स्म लीलया ॥१८॥

इस अजगरको देखकर अनजाने उसे वृन्दावन की विभूति मानकर, सब बालक खेलते हुए उसे विपरीत समझकर, उसके फटे मुख पर अनुमान करने लगे कि ॥१८॥

अहो मित्राणि गदत सत्त्वकूटं पुरः स्थितम् । अस्मत्संग्रसनव्यात्तव्यालतुण्डायते न वा ॥१९॥

हे मित्रो ! यह जो सामने दिखाई दे रहा है, क्या किसी प्राणी के समान है ? या नहीं, और इतने पर भी यह हम सबको निगल जाने के लिये अजगर के फटे हुए मुंह के समान जान पड़ता है या नहीं, सो कहो ॥१९॥

सत्यमर्ककरारक्तमुत्तराहनुवद्घनम् । अधराहनुवद्बोधस्तत्प्रतिच्छाययारुणम् ॥२०॥

वास्तवमें सूर्यकी किरणों से लाल बादल सर्प के ऊपर होंठ के समान प्रतीत होता है और सूर्य की छाया से लाल हुई भूमि उसके नीचे के होंठकी भांति जान पड़ती है ॥२०॥

प्रतिस्पर्धेते सृक्किभ्यां सव्यासव्ये नगोदरे । तुङ्गशृङ्गालयोप्येतास्तदंष्ट्राभिश्च पश्यत ॥२१॥
आस्तृतायाममार्गोऽयं रसनां प्रतिगर्जति । एषामन्तर्गतं ध्वान्तमेतदप्यन्तराननम् ॥२२॥
दावोष्णखरवातोऽयं श्वासवद्वाति पश्यत । तदग्धसत्त्वदुर्गन्धोऽप्यन्तरामिषगन्धवत् ॥२३॥

यह पर्वत की बाईं और दाईं गुफायें अजगर के जबड़ों के समान, यह ऊंचे शिखर की पंक्तियां दाढ़ों के समान, यह लम्बा-चौड़ा मार्ग जीभ के समान, शिखरों के बीच का यह अन्धकार मुख के मध्य भाग के समान, दावाग्नि से गर्म और कठोर वायु श्वांस के समान और उसके द्वारा जले हुए प्राणियों की दुर्गन्ध अजगर के द्वारा खाये हुए माँसकी दुर्गन्धके समान जान पड़ताहै, सो देखो ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अस्मान्किमत्र प्रसिता निविष्टानयं तथा चेद्बकवद्विनङ्क्षयति।क्षणादनेनेति बकार्यशन्मुखं वीक्ष्योद्धसन्तः करताडनैर्ययुः ॥२४॥

जब हम लोग इसमें प्रवेश करेंगे तब क्या यह हम लोगोंको निगल जायगा ? यदि निगलभी गया तो क्या बगुले की नाईं श्रीकृष्णजी के हाथों से तुरन्त ही नष्ट भी होजायगा ? इस प्रकार कहते और भगवान् के सुन्दर मुख की ओर देखते हुए वे बालक ताली बजाकर हंसते २ आगे चले ॥२४॥

इत्थं मिथोतथ्यमतज्ज्ञभाषितं श्रुत्वा विचिन्त्येत्यमृषा मृषायते। रक्षो विदित्वाऽखिलभूतहृस्थितः स्वानां निरोद्धुं भगवान्मनो दधे ॥२५॥

उन अनजान लोगों की परस्पर भूल से होती हुई ऐसी बातें सुनकर उसे राक्षस जानतेहुए जीवों के अन्तर्यामी भगवान्ने यह सोचा कि इन्हें यथार्थ बात भी असत्य प्रतीत होरही है, इसलिये उन्होंने उन मित्रों को रोकना चाहा ॥ २५ ॥

तावत्प्रविष्टास्त्वसुरोदरान्तरं परं न गीर्णाः शिशवः सवत्साः। प्रतीक्षमाणेन बकारिवेशनं हतस्वकान्तस्मरणेन रक्षसा ॥२६॥

परन्तु तब तक बछड़ों को लेकर ग्वाल-बाल उस राक्षस के पेटमें जाही पहुंचे, उन सबके उदर में पहुंचनेपर भी अघासुर अपने भाई-बहिन के बध का स्मरण करके श्रीकृष्णचन्द्रजी के प्रवेश की प्रतीक्षा करता रहा, इसलिये उसने बछड़ों सहित उन ग्वाल-बालों को न निगला ॥२६॥

तान्वीक्ष्य कृष्णःसकलाभयप्रदो ह्यनन्यनाथान्स्वकरादवच्युतान्। दीनांश्च मृत्योर्जठराग्निघासान्घृणार्दितो दिष्टकृतेन विस्मितः ॥२७॥

उन अनाथ और दीन प्राणियों को मृत्यु रूप अघासुर की जठराग्नि में घास या ग्रास रूप अपने हाथ से दिया हुआ जानकर, दैव के कर्मसे चकित होकर तथा दया-भाव से पीड़ित होते हुए, सबको अभय दान देनेवाले भगवान् विचार करनेलगे कि।

कृत्यं किमत्रास्य खलस्य जीवनं न वा अमीषां च सतां विहिंसनम्। द्वयं कथं स्यादिति संविचिन्त्य तज्ज्ञात्वाऽविशत्तुण्डमशेषदृग्घरिः ॥२८॥

अब यहाँ मुझे क्या करना चाहिये कि जिसमें यह दुष्ट अघासुर मर जाय और ये साधु जन बच जाँय, यह दोनों बातें क्योंकर बनेंगी ? इस प्रकार सोच विचार कर, उसका उपाय निश्चय करने के पश्चात् सर्वद्रष्टा भगवान् हरि ने भी उसके मुखमें प्रवेश किया ॥ २८ ॥

तदा घनच्छदा देवा भयाद्धा हेति चुक्रुशुः। जहृषुर्ये च कंसाद्याः कौणपास्त्वघबान्धवाः॥२९॥

उस समय बादलों की आड़ लेकर खड़े हुए देवता हाहाकार करनेलगे और अघासुर के संबंधी कंस आदि राक्षस प्रसन्न हुए ॥२९॥

तच्छ्रुत्वा भगवान्कृष्णस्त्वव्ययः सार्भवत्सकम्। चूर्णीचिकीर्षोरात्मानं तरसा ववृधे गले ॥३०॥

यह हाहाकार सुनकर अविनाशी श्रीकृष्ण भगवान् उस बालक, बछड़ों सहित उनको चूर्ण करने की इच्छा रखने वाले अघासुरके गले में बढ़े ॥३०॥

ततोऽतिकायस्य निरुद्धमार्गिणो ह्युद्गीर्णदृष्टेर्भ्रमतस्त्वितस्ततः। पूर्णोऽन्तरङ्गे पवनो निरुद्धो मूर्द्धन्विनिष्पाट्य विनिर्गतो बहिः ॥३१॥

उनके बढ़ने से उसका गला घुटगया औरवह इधर-उधर तड़पनेलगा, उसकी आंखें बाहर निकल पड़ीं और पवन की राह बन्द होजाने से उसके शरीर में भरा हुआ और रुका हुआ वायु उसके ब्रह्मरन्ध्र को भेदकर बाहर निकल गया ॥३१॥

तेनैव सर्वेषु बहिर्गतेषु प्राणेषु वत्सान्सुहृदः परेतान्। दृष्ट्वा स्वयोत्थाप्य तदन्वितः पुनर्मुखान्मुकुन्दो भगवान्विनिर्ययौ ॥३२॥

श्वांस के साथ ही उसकी सब इन्द्रियां बाहर निकल पड़ीं, तब मरे हुए ग्वाल-बाल और बछड़ों को अपनी अमृत वर्षा करनेवाली दृष्टि से भगवान् ने जीवित किया और उन सबके साथ श्रीकृष्ण भगवान् बाहर निकले ॥३२॥

पीनाहिभोगोत्थितमद्भुतं महज्ज्योतिः स्वधाम्ना ज्वलयदिशो दश। प्रतीक्ष्य खेऽवस्थितमीशनिर्गमं विवेश तस्मिन्मिषतां दिवौकसाम् ॥३३॥

इस अजगर की मोटी देह में से निकला हुआ महा अद्भुत, अपने प्रकाश से दशों दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ शुद्ध तेज कि जो भगवान्के बाहर निकलने की प्रतीक्षा में रुका हुआ था, वह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनके निकलते ही देवताओं के देखते-देखते उन (प्रभु) में प्रविष्ट होगया ॥३३॥

ततोऽतिहृष्टाः स्वकृतो कृतार्हणं पुष्पैः सुरा अप्सरसश्च नर्तनैः। गीतैः सुरा वाद्यधराश्च वाद्यकैः स्तवैश्च विप्रा जयनिःस्वनैर्गणाः ॥३४॥

तब देवताओं ने अत्यन्त प्रसन्न होकर फूल बरसाये, अप्सराओं ने नृत्य किया, गन्धर्व गाने लगे, बाजे वाले बाजे बजाने लगे, पार्षदगण जयकार करने लगे, इस भांति से अपने कार्य करने वाले भगवान् का सभी ने पूजन किया ॥३४॥

तदद्भुतस्तोत्रसुवाद्यगीतिकाजयादिनैकोत्सव मङ्गलस्वनान्। श्रुत्वा स्वधाम्नोऽन्त्यज आगतोचिरादृष्ट्वा महीशस्य जगाम विस्मयम् ॥३५॥

जब ब्रह्माजी ने यह अद्भुत स्तोत्र, सुन्दरबाजे, गायन और जयकार आदि अनेक मांगलिक शब्द अपने धाम के पास सुने, तो ये शीघ्रही वृन्दावन में आये और श्रीकृष्णजी की अनोखी लीला देख कर चकित होगये ॥३५॥

राजन्नाजगरं चर्म शुष्कं वृन्दावनेऽद्भुतम्। व्रजौकसां बहुतिथं बभूवाक्रीडगह्वरम् ॥३६॥

हे राजन्! वृन्दावन में सूखा हुआ यह अजगर का चर्म बहुत दिनोंतक व्रजवासियोंको खेलने के लिये गुफा रूप बना रहा ॥ ३६ ॥

एतत्कौमारजं कर्म हरेरात्मविमोक्षणम्। मृत्योः पौगण्डके बाला दृष्ट्वोचुर्विस्मिता व्रजे ॥३७॥

यद्यपि बालकृष्ण भगवान् ने बालकों सहित अपने को अघासुर के मुख से छुड़ाने तथा उसे मोक्ष देने का काम पाँच वर्ष की आयुमें किया था, परन्तु विस्मित बालकों ने उससे एक वर्ष बीतने पर व्रजवासियों से कहा कि यह काम श्रीकृष्णजी ने आज ही किया है ॥ ३७ ॥

नैतद्विचित्रं मनुजार्भमायिनः परावराणां परमस्य वेधसः। अघोपि यत्स्पर्शनधौतपातकः प्रापात्मसाम्यं त्वसतां सुदुर्लभम् ॥३८॥

माया से मनुष्य-बालक रूप, यथार्थ में सबके आदि कारण भी परमात्मा कृष्ण भगवान् के स्पर्श से पाप धोकर, अघासुर भी यदि दुष्टों को दुर्लभ भगवत रूप को पागया तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है ॥३८॥

सकृद्यदङ्गप्रतिमान्तराहितां मनोमयीं भागवतीं ददौ गतिम्। स एव नित्यात्मसुखानुभूत्यभिव्युदस्तमायोऽन्तर्गतो हि किं पुनः॥३९॥

क्योंकि जिनकी मानसिक मूर्त्तिको प्रह्लाद आदि भक्तों ने एकही बार बल पूर्वक अपने मनमें स्थापित की, तो वे मुक्त होगये, फिर निरन्तर आत्मसुख का अनुभव करते हुए माया का तिरस्कार करनेवाले जब वही भगवान् उस अघासुरके शरीर में प्रवेश कर गये, तब उसके मोक्ष होनेमें आश्चर्य ही क्या है? ॥ ३९ ॥

सूत उवाच

इत्थं द्विजा यादवदेवदत्तः श्रुत्वा स्वरातुश्चरितं विचित्रम्। पप्रच्छ भूयोऽपि तदेव पुण्यं वैयासकिं यन्निगृहीतचेताः ॥४०॥

श्रीसूतजी बोले-हे ब्राह्मणो! इस प्रकार अपने पालन-कर्त्ता भगवान् के चरित्र को सुनकर उसीमें मन लगाये हुए राजा परीक्षित ने व्यासजी के पुत्र श्रीशुकदेवजी से फिर भी उसी कथा से सम्बन्ध रखने वाला प्रश्न किया ॥४०॥

राजोवाच

ब्रह्मन्कालान्तरकृतं तत्कालीनं कथं भवेत्। यत्कौमारे हरिकृतं जगुः पौगण्डकेऽर्भकाः ॥४१॥

परीक्षित बोले-हे ब्रह्मन्! जो लीला भगवान् ने पाँच वर्षकी अवस्थामें की, उसे बालकोंने छठवें वर्ष में कहा, यह किसी समय की हुई बात का किसी समय में हो सकना कैसे संभव है? ॥४१॥

तद्ब्रूहि मे महायोगिन्परं कौतूहलं गुरो। नूनमेतद्धरेरेव माया भवति नान्यथा ॥४२॥

हे गुरुदेव! यह बात मुझसे कहिये, इसे सुनने का मुझे बड़ाही चावहै, विशेष करके यह भगवान् की ही लीला होगी, इसमें कोई संदेह नहीं ॥४२॥

वयं धन्यतमा लोके गुरोऽपि क्षत्रबन्धवः। यत्पिबामो मुहुस्त्वत्तः पुण्यं कृष्णकथामृतम्॥४३॥

हे गुरुदेव! यद्यपि हम क्षत्र बन्धु हैं, तथापि आपसे कथा-रूप पवित्र अमृत का पान करते हैं, इसलिये हम परम भाग्यशाली हैं ॥४३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सूत उवाच

इत्थं स्म पृष्टः स तु बादरायणिस्तत्स्मारितानन्त हृताखिलेन्द्रियः। कृच्छ्रात्पुनर्लब्धबहिर्दृशिः शनैः प्रत्याह तं भागवतोत्तमोत्तमम् ॥४४॥

श्रीसूतजी बोले-हे भगवद्भक्तों में सर्व श्रेष्ठ शौनकजी! इस प्रकार परीक्षित के प्रश्न से भगवान् का स्मरण होते ही श्रीशुकदेवजी की समस्त इन्द्रियां पहले तो भगवान् में लीन होगईं फिर किसी प्रकार बड़ी कठिनाई से वे बाहरी संसार में (चेत) आकर धीरे से उत्तर देने लगे ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

तेरहवां अध्याय

(ब्रह्मदेव द्वारा वत्स-हरण-वर्णन)

श्रीशुक उवाच

साधु पृष्टं महाभाग त्वया भागवतोत्तम। यन्नूतनयसीशस्य शृण्वन्नपि कथां मुहुः ॥ १॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे भक्तोत्तम महाभागी! तुमने अच्छा प्रश्न किया है, तुम भगवान् की कथा को बारम्बार सुनकरभी उसे नया मानकर सुनतेहो॥

सतामयं सारभृतां निसर्गो यदर्थवाणी श्रुतिचेतसामपि। प्रतिक्षणं नव्यवदच्युतस्य यत्स्त्रिया विटानामिव साधु वार्ता ॥ २॥

जैसे विषयी पुरुषों को स्त्री की पुरानी बातेंभी नई की भांति प्रिय जान पड़ती हैं, वैसेही सारको ग्रहण करने वाले सत्पुरुषों की वाणी, कान और चित्त यद्यपि सदैव भगवान् की कथा ही में लगे रहते हैं, फिर भी उनका ऐसा स्वभाव होता है कि वे भगवान् की कथा को क्षण-क्षण सुनकर भी उसे ऐसे प्रिय भाव से सुनते हैं, मानों उन्होंने उसे पहले-पहल ही सुना हो ॥२॥

शृणुष्वावहितो राजन्नपि गुह्यं वदामि ते। ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत॥ ३॥

हे राजन्! मैं यह गोप्य बात तुमसे कहता हूँ, क्योंकि गुरु को अपने स्नेही शिष्य से गुह्य बात भी कह देनी चाहिये, सावधान होकर सुनो ॥३॥

तथाऽघवदनान्मृत्यो रक्षित्वा वत्सपालकान्। सरित्पुलिनमानीय भगवानिदमब्रवीत् ॥ ४॥

अघासुर के मुख में से मरे हुए बछड़ों और बालकों को जीवित करके तथा यमुनाजी की रेत पर लाकर उनसे भगवान् ने यह कहा कि ॥४॥

अहोऽतिरम्यं पुलिनं वयस्याः स्वकेलिसंपन्मृदुलाच्छवालुकम्। स्फुटत्सरोगन्धहृतालिपत्रिक ध्वनिप्रतिध्वानलसद्द्रुमाकुलम् ॥ ५॥

हे मित्रो! यह तट अपने खेलने के योग्य और अत्यन्त रमणीय है, यहाँ की वालू कोमल और स्वच्छ है, जलाशयों में कमल फूल रहे हैं; उनकी सुगन्ध के लोभ से भौंरे गुञ्जार रहे हैं और जलके पक्षियों की प्रति ध्वनि से वृक्ष भी शब्दायमान हो रहे हैं ॥ ५॥

अत्र भोक्तव्यमस्माभिर्दिवा रूढं क्षुधार्दिताः। वत्साः समीपेऽपः पीत्वा चरन्तु शनकैस्तृणम्॥६॥

यहाँ बैठकर हम लोग कलेवा करेंगे, दिन चढ़ आया है, भूख भी लगरही है, तब तक बछड़े भी यहीं जल पीकर आस-पास ही में धीरे २ घास चरते रहेंगे ॥६॥

तथेति पाययित्वाम्भो वत्सानारुद्ध्य शाद्वले। मुक्त्वा शिक्यानि बुभुजुः समं भगवता मुदा॥ ७॥

भगवान् के इन वचनों को मानकर सब ग्वाल बाल बछड़ों को जल पिलाकर हरी घास वाले मैदान में रोककर और छींके खोल कर श्रीकृष्णजी के साथ आनन्द पूर्वक भोजन करने लगे ॥७॥

कृष्णस्य विष्वक्पुरुराजिमण्डलैरभ्याननाः फुल्लदृशो व्रजार्भकाः। सहोपविष्टा विपिने विरेजुश्छदा यथाम्भोरुहकर्णिकायाः ॥ ८॥

वन में बालरूप भगवान्के चारों ओर अनेक पंक्तियों के मण्डल बनाकर, उनके सामने मुखकरके, साथ बैठे हुए प्रफुल्लित दृष्टि वाले ग्वाल बाल कमल की पंखुरियों के समान शोभायमान लगते थे ॥ ८॥

केचित्पुष्पैर्दलैः केचित्पल्लवैरङ्कुरैः फलैः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शिग्भिस्त्वग्भिर्दलैः पद्भिश्च बुभुजुः कृतभाजनाः ॥९॥

कई एक बालकों ने फूल के, कई एकने फूलकी पंखरियों के, कितनों ही ने पत्तों के, कितनों ही ने अंकुरों के, कितनों ने फलों के, कितनोंही ने छींकों के कितनों ही ने वृक्ष की छाल के और कितनों ही ने शिलाओं के वर्तन बनाकर उनमें रख करके भोजन किये ॥९॥

सर्वे मिथो दर्शयन्तः स्वस्वभोज्यरुचिं पृथक् ।
हसन्तो हासयन्तश्चाभ्यवजह्रुः सहेश्वराः ॥१०॥

सब बालक अपने भोज्य-पदार्थों का अलग २ स्वाद दिखलाते और हँसते-हँसाते हुए भगवान्के साथ भोजन कर रहे थे ॥ १०॥

बिभ्रद्वेणुं जठरपटयोः शृङ्गवेत्रे च कक्षे वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यङ्गुलीषु।तिष्ठन्मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन्नर्मभिः स्वैःस्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग्बालकेलिः ॥११॥

इन बालकोंके साथ यज्ञ-भोक्ता भगवान् भोजन पारहे थे, उस समय उनके पेट और फेंटे के मध्य में मुरली शोभा देरही थी, सींग और वेत बाईं बग़ल में थे, वे बायें हाथ में दही-भात से लिपटा हुआ ग्रास और उंगलियों की संधियेां में उसके योग्य फल लियेहुए सबके सामने कर्णिकाके समान विराज रहे थे और अपने हास्य मय वचनोंसे सब सखाओं को हँसा रहे थे, इस प्रकार की बाल-लीला को देवता-गण देख रहे थे ॥११॥

भारतैवं वत्सपेषु भुञ्जानेष्वच्युतात्मसु ।
वत्सास्त्वन्तर्वने दूरं विविशुस्तृणलोभिताः ॥१२॥

हे राजन् ! इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान्में मन लगाये हुए जिस समय ग्वाल-बाल भोजन करने में मग्न थे, उस समय बछड़े घास के लोभ से वन में दूर तक चले गये ॥१२॥

तान्दृष्ट्वा भयसंत्रस्तानूचे कृष्णोऽस्य भीभयम् ।
मित्राण्याशान्मा विरमतेहानेष्ये वत्सकानहम् १३

तब उनको भयभीत देखकर, मृत्युको भी भय भीत करने वाले भगवान् कहने लगे कि "हे मित्रो! भोजन छोड़कर न उठो, मैं अभी बछड़ों को यहाँ लिये आता हूँ ॥१३॥

इत्युक्त्वाऽद्रिदरीकुञ्जगह्वरेष्वात्मवत्सकान् ।
विचिन्वन्भगवान्कृष्णः सपाणिकवलो ययौ॥१४॥

इस प्रकार कहकर हाथ में ग्रास लिये हुए श्री कृष्णजी पर्वत, गुफा, कुंज और गंभीर स्थानों पर अपने बछड़ों को ढूंढते हुए पधारे ॥१४॥

अम्भोजन्मजनिस्तदन्तरगतो मायार्भकस्येशितुर्द्रष्टुं मञ्जु महित्वमन्यदपि तद्वत्सानितो वत्सपान् । नीत्वाऽन्यत्र कुरूद्वहान्तरदधात्खेऽवस्थितौ यः पुरा दृष्ट्वाऽघासुरमोक्षणं प्रभवतः प्राप्तः परं विस्मयम् ॥१५॥

हे कुरुकुल दीपक ! ऐसे अवसर पर जो ब्रह्मा जी पहले माया से बालरूप भगवान्के द्वारा अघासुर का मोक्ष देखकर परम आश्चर्य में पड़कर आकाश में खड़े होकर रहगये थे, वही प्रभु की दूसरी सुन्दर महिमा देखने के विचार से यहाँसे बालकों को और वहाँसे बछड़ोंको हरण करके दूसरे स्थान में लेगये और फिर आप अन्तर्धान होगए ॥१५॥

ततो वत्सानदृष्ट्वैत्य पुलिनेपि च वत्सपान् ।
उभावपि वने कृष्णो विचिकाय समन्ततः ॥१६॥

श्रीकृष्णजीने बछड़ोंको न पाकर जब लौटकर देखा तो उन्हें किनारे पर बालक भी न मिले, तब वे वनमें चारों ओर ढूंढने लगे ॥१६॥

क्वाप्यदृष्ट्वान्तर्विपिने वत्सान्पालांश्च विश्ववित् ।
सर्वं विधिकृतं कृष्णः सहसाऽवजगाम ह ॥१७॥

सर्वज्ञ भगवान् ने वनमें बालकों और बछड़ों को कहीं भी न पाकर तत्काल ही जान लिया कि सब ब्रह्माजी की करतूत है ॥१७॥

ततः कृष्णो मुदं कर्तुं तन्मातॄणां च कस्य च ।
उभयायितमात्मानं चक्रे विश्वकृदीश्वरः ॥१८॥

फिर जगत्कर्ता ईश्वर श्रीकृष्णभगवान् बछड़ों और ग्वालों की माताओं तथा ब्रह्माजी को भी प्रसन्न करने के लिये आपही समस्त बछड़ों तथा बालकों के रूप में होगये ॥१८॥

यावद्वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत्कराङ्घ्र्यादिकं यावद्यष्टिविषाणवेणुदलशिग्यावद्विभूषाम्बरम् ।
यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारादिकं सर्वं विष्णुमयं गिरोऽङ्गवदजः सर्वस्वरूपो बभौ१९

वे जितने भी बालक और बछड़े थे, उनमें से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिसके जैसे छोटे शरीर और छोटे २ अङ्गथे, जिस के पास जितने सींग, वेणु, लकड़ी, पत्ते या छींके तथा गहने और वस्त्र आदि थे, उनमें से जिसका जैसा स्वभाव. गुण, नाम, रूप, अवस्था और विहार आदि थे; श्रीभगवान् ठीक उसी-उसी तरह के उतने ही स्वरूप धारण करके "सर्वजगत् विष्णु मयहै" इस वाणीको सिद्ध करतेहुएशोभा देनेलगे॥

स्वयमात्माऽऽत्मगोवत्सान्प्रतिवार्यात्मवत्सपैः ।
क्रीडन्नात्मविहारैश्च सर्वात्मा प्राविशद्व्रजम्॥२०॥

आपही अपने रूप ग्वालों के द्वारा अपने रूप बछड़ों को घेर कर अपने ही रूप विहारों से क्रीड़ा करते हुए सर्वात्मा श्रीकृष्ण भगवान् व्रजमें पधारे।

तत्तद्वत्सान्पृथङ्नीत्वा तत्तद्गोष्ठे निवेश्य सः ।
तत्तदात्माऽभवद्राजंस्तत्तत्सद्म प्रविष्टवान् ॥२१॥

हे राजन्! उन-उन बछड़ोंको अलग २ ले जाकर उन-उन खिरकों में पहुंचा कर, वे-वे बालक रूप भगवान् उन-उन घरों में प्रविष्ट हुए (कि जो-जो बछड़े या ग्वाल बाल जिन खिरकों या घरों से सम्बन्ध रखते थे) ॥२१॥

तन्मातरो वेणुरवत्वरोत्थिता उत्थाप्य दोर्भिः परिरभ्य निर्भरम् । स्नेहस्नुतस्तन्यपयः सुधासवं मत्वा परं ब्रह्म सुतानपाययन् ॥२२॥

मुरली का शब्द सुनते ही उन ग्वाल वालों की माताओं ने तत्काल उठकर, उन भगवान् के रूपों को ही अपना पुत्र मानकर, परब्रह्म को ही अपने हाथों से उठाकर और उनसे भेंट करके, स्नेह से टपकते हुए स्तन का अमृत के समान मीठा तथा आसव के समान मादक दूध पिलाया ॥२२॥

ततो नृपोन्मर्दनमज्जलेपनालंकाररक्षातिलकाशनादिभिः । संलालितः स्वाचरितैः प्रहर्षयन्सायं गतो यामयमेन माधवः ॥२३॥

हे राजन्! इस प्रकार से उस समयकी क्रीड़ाके अनुसार संध्या में घर पर पहुँचे हुए और अपने सुन्दर व्यवहारों से आनन्द देते हुए श्रीकृष्ण भगवानको माताओं ने उबटन, स्नान, लेपन; अलंकार रक्षा-तिलक तथा भोजन आदि से प्यार किया ॥

गावस्ततो गोष्ठमुपेत्य सत्वरं हुंकारघोषैःपरिहूत संगतान् । स्वकान्स्वकान्वत्सतरानपाययन्मुहुर्लिहन्त्यः स्रवदोधसं पयः ॥२४॥

उसी समय गौओं ने भी व्रज में आकर, अपनी हुंकार मयी वाणी से बुलाकर, अपने-छोटे-छोटे बछड़ों के मिलने पर उनको बार-बार चाटते हुए अपने में से झरता हुआ दूध पिलाया ॥२४॥

गोगोपीनां मातृताऽस्मिन्सर्वा स्नेहर्द्धिकां विना ।
पुरोवदास्वपि हरेस्तोकता मायया विना ॥२५॥

गौओं और गोपियों का मातृ भाव पहले की नाईं ही बना रहा, परन्तु इस समय पहले की अपेक्षा स्नेह अधिक बढ़ गया और उनमें भगवान् का भी बाल-भाव पहली ही की भांति बना रहा, परन्तु 'यह मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूँ' ऐसा मोह न रहा ॥२५॥

व्रजौकसां स्वतोकेषु स्नेहवल्ल्याब्दमन्वहम् ।
शनैर्निःसीम ववृधे यथा कृष्णे त्वपूर्ववत् ॥२६॥

यशोदानन्दन श्रीकृष्णचन्द्रजी से व्रजवासियों का जैसा पुत्रों से भी अधिक और असीम प्रेम पहले था, वैसा ही स्नेह एक वर्ष तक अपने पुत्रों (के रूप श्रीकृष्ण भगवान्) में बढ़ता रहा ॥२६॥

इत्थमात्माऽऽत्मनाऽऽत्मानं वत्सपालमिषेण सः ।
पालयन्वत्सपो वर्षं चिक्रीडे वनगोष्ठयोः ॥२७॥

इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रजी ने वत्स-पालकवन कर बछड़ों और बालकों के बहाने से अपने ही स्वरूप को आपही पालन करते हुए वन और व्रज में लीला की ॥२७॥

एकदा चारयन्वत्सान्सरामो वनमाविशत् ।
पञ्चपासु त्रियामासु हायनापूरणीष्वजः ॥२८॥

जब एक वर्ष पूर्ण होने में पाँच या छः रातें रह गईं तब श्रीकृष्ण भगवान् बलरामजी के साथ बछड़े चराने के लिये बनमें गये ॥ २८ ॥

ततोविदूराच्चरतो गावो वत्सानुपव्रजम् ।
गोवर्धनाद्रिशिरसि चरन्त्यो ददृशुस्तृणम् ॥२९॥

जो गौएँ बहुत दूर गोवर्धन पर्वत के शिखर पर घास चररहीं थीं, उन्होंने व्रज के निकट अपने बछड़ों को चरते हुए देखा ॥२९॥

दृष्ट्वाथ तत्स्नेहवशोस्मृतात्मा स गोव्रजोऽऽत्यात्मपदुर्गमार्गः । द्विपात्ककुद्ग्रीव उदास्यपुच्छोऽऽगाद्धुंकृतैरास्नुपया जवेन ॥३०॥

उन्हें देखते ही सभी गौएँ स्नेह वश होकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपनी देह का ध्यान भूल गईं उनके स्तनोंसे दूध बह निकला, वे ग्वालों या उस कठिन मार्गका कोई ध्यान न करके, इस प्रकार दौड़पड़ीं, मानो दो पैरों ही से चल रही हों और लाठ पर गर्दन लगाकर पूंछ को उठाये हुए, बड़े ही वेग के साथ हुँकार करती हुई बछड़ों के पास पहुंचीं ॥३०॥

समेत्य गावोऽधो वत्सान्वत्सवत्योऽप्यपाययन् ।
गिलन्त्य इव चाङ्गानि लिहन्त्यः स्वौधसं पयः ३१

यद्यपि इन गौओं के (नये उत्पन्न हुए) दूसरे बछड़े भी थे, फिर भी वे गोवर्धन से उतर कर, इन बड़े बछड़ों से मिलकर उन्हें दूध पिलाने लगीं; और ऐसे वात्सल्य में उमड़कर उन्हें चाटने लगीं, मानो उन्हें निगलना ही चाहती हैं ॥३१॥

गोपास्तद्रोधनायासमौध्यलज्जोरुमन्युना ।
दुर्गाध्वकृच्छ्रतोऽभ्येत्य गोवत्सैर्ददृशुः सुतान्॥३२

जब ग्वाल गायोंको न रोक सके तब वे लज्जा और क्रोध से भरे हुए उस विषम मार्ग का कष्ट पाते हुए गोवर्धनसे नीचे आये, तो उन्होंने बछड़ों के साथ में अपने पुत्रों को देखा ॥३२॥

तदीक्षणोत्प्रेमरसाप्लुताशया जातानुरागा गत-
मन्यवोऽर्भकान् । उदुह्य दोर्भिः परिरभ्य मूर्धनि
घ्राणैरवापुः परमां मुदं ते ॥३३॥

उनको देखते ही वे ग्वाल भरे हुए प्रेम-रस से डूब गये तथा उनका स्नेह और भी अधिक बढ़ गया और क्रोध भी शान्त होगया; तब उन्होंने अपने पुत्रों को हाथों से उठाकर छाती से लगाया और उनका मस्तक सूंघकर परम आनंद माना ॥

ततः प्रवयसो गोपास्तोकाश्लेष्मसुनिर्वृताः ।
कृच्छ्राच्छनैरपगतास्तदनुस्मृत्युदश्रवः ॥३४॥

फिर बालकों से भेंट के कारण परम आनन्द पाये हुए बड़े-बड़े ग्वाल बड़ी कठिनता से धीरे २ वहाँ से बिदा हुए, परन्तु बालकों के स्मरण से उनकी आँखों में आँसू भर आये ॥३४॥

व्रजस्य रामः प्रेमर्धेर्वीक्ष्यौत्कण्ठ्यमनुक्षणम् ।
मुक्तस्तनेष्वपत्येष्वप्यहेतुविदचिन्तयत् ॥३५॥

यद्यपि वे बालक इस समय दूध न पीते थे, फिर भी उनपर व्रजवालों की क्षण-क्षण बढ़ती हुई प्रीति को देखकर, परन्तु उसके कारण को न जान कर बलरामजी विचार करने लगे कि ॥३५॥

किमेतदद्भुतमिव वासुदेवेऽखिलात्मनि ।
व्रजस्य सात्मनस्तोकेष्वपूर्वं प्रेम वर्धते ॥३६॥

इन व्रजवासियों का जैसा प्रेम पहले सर्वात्मा श्रीकृष्णपर था, वैसाही अपूर्व प्रेम इन बालकों पर बढ़ाहै, इनका ही नहीं वरन् मेराभी इन बछड़ों और बालकों पर प्रेम बढ़ता जा रहा है, इसका कारण क्या हो सकता है ? ॥३६॥

केयं वा कुत आयाता दैवी वा नार्युतासुरी ।
प्रायो मायास्तु मे भर्तुर्नान्या मेऽपि विमोहिनी३७

क्या यह देवताओं की माया है या मनुष्य व दैत्यों में से किसी की है ? भला यह मायाहै कैसी कहाँ से आई ? जिस माया में मैं तक मोहित हो गया हूँ, वह किसी दूसरे की नहीं होसकती वरन् जहाँ तक संभव है यह मेरे स्वामी श्रीकृष्णजी ही की माया है ॥३७॥

इति संचिन्त्य दाशार्हो वत्सान्सवयसानपि ।
सर्वानाचष्ट वैकुण्ठं चक्षुषा वयुनेन सः ॥३८॥

इस प्रकार सोच-विचार कर जब बलरामजीने ज्ञान दृष्टि से देखा तो उन्हें समस्त बछड़े और अपने मित्र (ग्वालबाल) श्रीकृष्णरूप ही दिखाई दिये।

नैते सुरेश ऋषयो न चैते त्वमेव भासीश
भिदाश्रयेऽपि । सर्वं पृथक्त्वं निगमात्कथं वदेत्यु-
क्तेन वृत्तं प्रभुणा बलोऽवैत् ॥३९॥

तब बलरामजी ने श्रीकृष्ण भगवान् से पूछा कि मैं यह समझता हूँ कि जिन बछड़ोंका हमलोग पालन करते हैं, वे सब ऋषियों का अंश हैं, और ग्वाल बाल देवताओं का अंश हैं, परन्तु अब वैसा देखने में नहीं आता, वरन् पृथक् २ इन सब में आपही प्रतीत होरहे हैं, इसलिये जो बात जैसीहो वैसी स्पष्ट रूप से वर्णन कीजिये, तब भगवान् ने उन्हें संक्षेप में सब वृत्तान्त बतलाया जिससे बलरामजी की समझ में वह सारा रहस्य आ सका ॥

तावदेत्यात्मभूरात्ममानेन व्युष्यनेहसा ।
पुरोवदब्दं क्रीडन्तं ददृशे सकलं हरिम् ॥४०॥

इस प्रकार यहाँ तो एक वर्ष बीत चुका,परन्तु ब्रह्माजी का एक पलही हुआ, तब उन्होंने आकर देखा तो श्रीकृष्णजी उसी प्रकार बालकों और बछड़ों को लिये हुए खेल रहे हैं ॥४०॥

यावन्तो गोकुले बालाः सवत्साः सर्व एव हि ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मायाशये शयाना मे नाद्यापि पुनरुत्थिताः॥४१॥

यह देखकर ब्रह्माजी विचार करने लगे कि गोकुलमें जितने भी बालक तथा बछड़े हैं, वे सभी मेरी माया रूपी निद्रा में पड़े सो रहे हैं और अब तक नहीं उठे हैं ॥ ४१ ॥

इत एतेऽत्र कुत्रत्या मन्मायामोहितेतरे।
तावन्त एव तत्राब्दं क्रीडन्तो विष्णुना समम्॥४२

फिर मेरी माया से मोहित ग्वाल-बाल और बछड़ों से पृथक् यह बालक और बछड़े कहाँ से आये ? अरे यह तो ठीक उतने ही हैं कि जितने मैं ले गया था और यह सभी इसी स्थान पर वर्षभर से क्रीड़ा करते हुए जान पड़ते हैं ॥ ४२ ॥

एवमेतेषु भेदेषु चिरं ध्यात्वा स आत्मभूः।
सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे कथंचन ॥४३॥

वे ब्रह्माजी बहुत देर तक विचार करने पर भी यह न जान सके कि इसमें कौन तो सत्य है और कौन असत्य है ? ॥४३॥

एवं संमोहयन्विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम्।
स्वयैव मायया ऽजोऽपि स्वयमेव विमोहितः ॥४४॥

इस प्रकार जगत् को मोहित करनेवाले, परन्तु स्वयं मोहित न होने वाले भगवान्को मोहित करते हुए ब्रह्माजी आपही मोहित होगये ॥ ४४ ॥

तम्यां तमोवन्नैहारं खद्योतार्चिरिवाहनि।
महतीतरमायैश्यं निहन्त्यात्मनि युञ्जतः ॥४५॥

जैसे अंधेरी रात में कुहरे का अन्धकार जुदा आवरण नहीं बना सकता, या दिनमें जुगनू का प्रकाश अलग से प्रकाश नहीं कर सकता, क्योंकि ये दोनों क्रमशः रात या दिनके अन्धकार या प्रकाश में लीन होजातेहैं, वैसेही किसी श्रेष्ठ पुरुष पर यदि कोई साधारण मनुष्य अपनी माया दिखलाना चाहे, तो उस तुच्छ मनुष्यकी माया महान् पुरुष का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती, वरन् उसी माया करने वाले की शक्ति का नाश कर देती है ॥

तावत्सर्वे वत्सपालाः पश्यतोऽजस्य तत्क्षणात्।
व्यदृश्यन्त घनश्यामाः पीतकौशेयवाससः ॥४६॥
चतुर्भुजाः शंखचक्रगदाराजीवपाणयः।
किरीटिनः कुण्डलिनो हारिणो वनमालिनः॥४७॥
श्रीवत्साङ्गददोरत्नकम्बुकङ्कणपाणयः।
नूपुरैः कटकैर्भाताः कटिसूत्राङ्गुलीयकैः ॥४८॥
अङ्घ्रिमस्तकमापूर्णास्तुलसीनवदामभिः।
कोमलैः सर्वगात्रेषु भूरिपुण्यवदर्पितैः ॥४९॥
चन्द्रिकाविशदस्मेरैः सारुणापाङ्गवीक्षितैः।
स्वकार्थानामिव रजःसत्त्वाभ्यां स्रष्टृपालकः॥५०॥

उसी क्षण में ब्रह्माजी के देखते २ सब बछड़े तथा ग्वाल-बाल मेघके समान श्याम वर्ण, पीतांबर पहिनेहुए, चतुर्भुज, हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए, किरीट, कुण्डल; हार और वनमाला धारे हुए, श्रीवत्स की प्रभा से प्रकाशित भुजाओं में भुजबन्द बांधे हुए, रत्न मय शंख के समान तीन रेखा वाले कङ्कण हाथ में पहने हुए, नूपुर, पहुंची, कटिमेखला और मुंदरियों कोधारण करने से कान्तिमान्, परम पुण्यकर्त्ता पुरुषों द्वारा अर्पण की हुई तुलसी की कोमल और नवीन मालाओं से सिर से पैर तक परिपूर्ण, चन्द्रिका के समान स्वच्छ और मन्द मुसकानों से अपने भक्तों के मनोरथों को मानो सतोगुण से पालन करते हुए और लालिमा मय कटाक्ष सहित दृष्टियों से मानो रजोगुण द्वारा अपने भक्तों के मनोरथों को बनाते हुए जान पड़ते थे ॥४६॥४७॥४८॥४९॥५०॥

आत्मादिस्तम्बपर्यन्तैर्मूर्तिमद्भिश्चराचरैः।
नृत्यगीताद्यनेकार्हैः पृथक्पृथगुपासिताः ॥५१॥

ब्रह्माजी से लेकर तृण तक समस्त स्थावर व जङ्गम प्रत्यक्ष मूर्त्ति धारण करके नृत्य गायनआदि अनेक पूजन विधियों से उनकी अलग-अलग पूजा कर रहे थे ॥५१॥

अणिमाद्यैर्महिमभिरजाद्याभिर्विभूतिभिः।
चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः परीता महदादिभिः ॥५२॥

अणिमा आदि अष्टसिद्धि, मायाआदि विभूति और महत्तत्व आदि चौबीस तत्वों से घिरे हुएथे।

कालस्वभावसंस्कारकामकर्मगुणादिभिः।
स्वमहिध्वस्तमहिभिर्मूर्तिमद्भिरुपासिताः ॥५३॥

काल, स्वभाव, संस्कार, काम, कर्म और गुण आदि पदार्थ मूर्त्ति धारण कर प्रत्येक की सेवा करते थे, इन सबकी स्वतन्त्रता भगवान्के सामने नष्ट होगई थी ॥५३॥

सत्यज्ञानानन्तानन्दमात्रैकरसमूर्तयः।
अस्पृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिषद्दृशाम्॥५४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सत्य, ज्ञान, रूप, अनन्त, आनन्द मात्र, एक रस मूर्त्ति वाले और आत्म-ज्ञान रूपी चक्षु वाले पुरुष भी जिनकी महिमा को नहीं जान सकते, ऐसे रूप वाले वे सब ब्रह्माजी को दिखाई दिये ॥५४॥

एवं सकृद्ददर्शाजः परब्रह्मात्मनोऽखिलान् ।
यस्य भासा सर्वमिदं विभाति सचराचरम् ॥५५॥

इस प्रकार ब्रह्माजी ने एक साथही सबबालकों और बछड़ों को परब्रह्म देखा, कि जिनकी कान्ति से समस्त स्थावर-जङ्गम प्रकाशित हैं ॥५५॥

ततोऽतिकुतुकोद्वृत्तस्तिमितैकादशेन्द्रियः ।
तद्धाम्नाऽऽभूदजस्तूष्णीं पूर्देव्यन्तीव पुत्रिका॥५६॥

तत्पश्चात् महान् आश्चर्य के कारण ब्रह्माजी की सब इन्द्रियां शिथिल पड़ गईं और उनके तेजके मारे ब्रह्माजी चुप होरहे और ऐसे खड़े होकर रह गये, जैसे ग्राम की रक्षा करने वाली पुतली चतुर्मुखी स्वर्ण प्रतिमा के आगे खड़ी रह जाती है॥५६॥

इतीरेशेऽतर्क्ये निजमहिमनि स्वप्रमितिके परत्राजातोऽतन्निरसनमुखब्रह्मकमितौ । अनीशेऽपि द्रष्टुं किमिदमिति वा मुह्यति सति चछादाजो ज्ञात्वा सपदि परमोऽजाजवनिकाम् ॥५७॥

इस प्रकार अतर्क्य, स्वयं प्रकाश, सुखनिधान, प्रकृति से परे और ब्रह्म से भिन्न वस्तु का निषेध करने के द्वारा उपनिषद् से ज्ञानगम्य, असाधारण स्वरूप को देखकर ब्रह्माजी "यह क्या" इतना ही कहकर मोहित होगये, वे उसे देखने की भी शक्ति न रख सके, तब भगवान् श्रीकृष्ण ने तत्काल ही माया का पर्दा हटा लिया ॥५७॥

ततोऽर्वाक्प्रतिलब्धाक्षः कः परेतवदुत्थितः ।
कृच्छ्रादुन्मील्य वै दृष्टीराचष्टेदं सहात्मना ॥५८॥

तत्पश्चात् जैसे कोई मरनेके पीछे उठा हो, वैसे ही ब्रह्माजीकी इन्द्रियोंमें चेतनता आई; तब उन्हों ने बड़े कष्ट के साथ आँखें खोलकर अपने सहित इस संसार को देखा ॥५८॥

सपद्येवाभितः पश्यन्दिशोऽपश्यत्पुरः स्थितम् ।
वृन्दावनं जनाजीव्यद्रुमाकीर्णं समाप्रियम् ॥५९॥

उन्होंने तत्काल ही चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर देखा, तो सामने ही प्रिय पदार्थों से परिपूर्ण और मनुष्यों की जीविका के लिये वृक्षों से भरे हुए वृन्दावन को पाया ॥५९॥

यत्र नैसर्गदुर्वैराः सहासन्नृमृगादयः ।
मित्राणीवाजितावासद्रुतरुट्तर्षकादिकम् ॥६०॥

जहाँ स्वभाव से ही परस्पर वैर रखने वाले मनुष्य, सिंह और मृग आदि मित्र भावसे रहतेहैं, क्योंकि श्रीकृष्ण भगवान् के निवास से वहाँ के समस्त प्राणियों का क्रोध तथा तृष्णा का हरण हो चुका है ॥ ६० ॥

तत्रोद्वहत्पशुपवंशशिशुत्वनाट्यं ब्रह्माद्वयं परमनन्तमगाधबोधम् । वत्सान्सखीनिव पुरः परितो विचिन्वदेकः सपाणिकवलं परमेष्ठ्यचष्ट ॥६१॥

ब्रह्माजी ने वहाँ पहलेही की नाईं श्रीकृष्णजी को ग्वाल-वंश के बालक भाव का नाटक करते हुए देखा, जो अद्वैत, अगाध ज्ञान, अनन्त, सबके कारण रूप और परब्रह्म होकरभी ग्वाल-बाल और बछड़ों को ढूंढते फिरते थे और हाथमें दही भात का ग्रास लिये थे ॥६१॥

दृष्ट्वा त्वरेण निजधोरणतोवतीर्य पृथ्व्यां वपुः कनकदण्डमिवातिपात्य । स्पृष्ट्वा चतुर्मुकुटकोटिभिरङ्घ्रियुग्मं नत्वा मुदश्रुसुजलैरकृताभिषेकम् ६२

ऐसे भगवान् के दर्शन करके ब्रह्माजी ने तत्काल ही अपने वाहन हंस से उतर कर, स्वर्ण-दंड के समान अपने शरीर से साष्टांग प्रणाम करके, चारों मुकुटोंके अग्र भागको चरणोंमें लगाकरऔर दंडवत् करके आनन्द के कारण बहे हुए आँसुओं के द्वारा प्रभुका अभिषेक किया ॥६२॥

उत्थायोत्थाय कृष्णस्य चिरस्य पादयोः पतन् ।
आस्ते महित्वं प्राग्दृष्टं स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः ६३

वे पहले देखी हुई महिमाका जैसे-जैसे बारंबार स्मरण करते रहे, वैसेही कई बार उठ-उठ कर बड़ी देरतक भगवान्के चरणों में पड़ते रहे ॥६३॥

शनैरथोत्थाय विमृज्य लोचने मुकुन्दमुद्वीक्ष्य विनम्रकन्धरः । कृताञ्जलिः प्रश्रयवान्समाहितः सवेपथुर्गद्गदयैलतेलया ॥६४॥

फिर ब्रह्माजी धीरे से उठ कर, नेत्रों को पोंछ कर, भगवान्की ओर देखकर, सिर झुकाकर और हाथ जोड़कर विनय सहित सावधानी के साथ कम्पित होते हुए गद्गद वाणीसे स्तुति करनेलगे ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

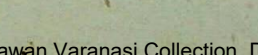

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चौदहवां अध्याय

(ब्रह्म स्तुति वर्णन)

ब्रह्मोवाच

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय।वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाण वेणुलक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ॥ १ ॥

श्रीब्रह्माजी बोले–हे स्तुति करने योग्य! श्याम मेघ के समान शोभित वर्ण वाले, पीतांबर धारी, गुञ्जा के कुण्डल और मोरपंखों से शोभायमान्, बनमाला पहिने हुए, कम्बल, छड़ी, सींग और वंशी के चिह्नों से शोभायुक्त और कोमल चरणारविन्द वाले आप नन्द-नन्दन को मेरा प्रणाम है ॥१॥

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि । नेशे महित्ववसितुंमनसान्तरेण साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः ॥२॥

हे देव ! मुझपर कृपा करने वाली और भक्तों की इच्छानुसार स्वरूप दिखलाने वाली जो यह मूर्त्ति पंचभूत मय नहीं, किन्तु शुद्ध सत्व मय है, जब मैं इस अवतार लिये हुए स्वरूप की भी महिमा नहीं जान सकता, तब केवल आत्म-सुख के अनुभव रूप आपके अवतार लेने वाले स्वरूप की महिमा को यदि मनको रोक कर भी न जान सकूँ तो इसमें कहना ही क्या है ? ॥२॥

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम् । स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभिर्ये प्रायशोऽजितजितोऽप्यसितैस्त्रिलोक्याम् ॥ ३ ॥

हे अजित् ! जो लोग तनिकभी ज्ञान बढ़ाने की चेष्टा नहीं करते, वरन् केवल सत्पुरुषों के द्वारा कही हुई आपकी कथा कि जो उनके कान में पड़ जाती है, उसी को सुनकर अपनी जगह पर बैठेहुए मन, वचन और कर्म से नमस्कार व सत्कार कर के जीवित रहते हैं, आप त्रिलोकी से भी पराजय न होने वाले बहुधा उन लोगोंके वशमें होजाते हैं ॥

श्रेयःस्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये । तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥ ४ ॥

हे प्रभो ! जैसे भूसा कूटने वाले के हाथ फल नहीं लगता, वैसेही मङ्गल धारा प्रकट करने वाली आपकी भक्ति को छोड़कर जो लोग केवल ब्रह्मज्ञान के लिये क्लेश उठाते हैं, उन्हें क्लेश के सिवा और कोई लाभ नहीं होता ॥४॥

पुरेह भूमन्बहवोऽपि योगिनस्त्वदर्पितेहा निजकर्मलब्धया । विबुद्ध्य भक्त्यैव कथोपनीतया प्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युत ते गतिं पराम् ॥ ५ ॥

हे भूमन् ! हे अच्युत !* पहले इस लोक में अनेक योगियों को जब योगके द्वारा ज्ञान प्राप्त न होसका तब वे अपनी क्रिया-कर्म आपको अर्पण करने से तथा कथा के द्वारा अपने को प्राप्त हुई आपकी भक्ति ही से आत्मज्ञान को पाकर सहजही में आपके पद पर पहुंच गये थे ॥५॥

तथापि भूमन्महिमाऽगुणस्य ते विबोद्धमर्हत्यमलान्तरात्मभिः । अविक्रियात्स्वानुभवादरूपतो ह्यनन्यबोध्यात्मतया न चान्यथा ॥ ६ ॥

हे असीम ! इस प्रकार से आपके सगुण और निर्गुण रूपों का ज्ञान होना कठिनहै, फिर भी आप के निर्गुण स्वरूप की महिमा तो इन्द्रियजित् पुरुष आत्माकार, अन्तःकरण के साक्षात्, निर्विकार-भाव, विषय-भाव या स्वयं प्रकाशके भावसे किसी प्रकार जान भी लेते हैं, परन्तु (अवतार दशा में) 'वह (ब्रह्म) यही हैं' यह किसी भी प्रकार भी नहीं जानने पाते ॥ ६ ॥

गुणात्मनस्तेऽपि गुणान्विमातुं हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्य । कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पैर्भूपांसवः खे मिहिकाद्युभासः ॥ ७ ॥

आप गुणों के स्थापक (या प्रधान) हो, आपने संसार के हितार्थ अवतार धारण किया है, जिन धुरन्धर विद्वानों ने अनेक जन्मों से पृथ्वी के रेणु

*–नच्यवन्तेऽथ मद्भक्ता महति प्रलये यदि। अतोच्युतः स्मृतो लोकेऽहमेको विष्णुरव्ययः ॥ अर्थात् जिससे हमारे भक्त प्रलय में भी च्युत नहीं होते, इससे लोक में अविनाशी और सर्व व्यापक हम एक ही 'अच्युत' ऐसे कहलाते हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कण, आकाश में हिम-कण तथा नक्षत्र आदि की किरणों के परमाणु भी गिन डाले हैं, वे भी आपके गुणों का पार नहीं पा सकते, फिर औरों की तो सामर्थ्य ही क्या ? ॥७॥

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम् । हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ॥ ८ ॥

इसलिये जो मनुष्य तप आदि की झंझट में न पड़कर, आसक्ति-रहित होकर, अपने कर्म का फल भोगता हुआ, तन, मन, वचन से आप को प्रणाम करता हुआ, इस प्रतीक्षा में जिया करता है कि आप कब कृपा करेंगे ?-वही मुक्ति पद का अधिकारी होता है ॥८॥

पश्येश मेऽनार्यमनन्त आद्ये परात्मनि त्वय्यपि मायिमायिनि । मायां वितत्येक्षितुमात्मवैभवं ह्ययं कियानैच्छमिवार्चिरग्नौ ॥ ९ ॥

हे ईश्वर ! मेरी नीचता तो देखिये, कि-आप मायावी पुरुषों को भी मोहित करनेवाले परमात्मा हो, परन्तु मैंने आप पर भी माया फैलाकर अपना वैभव देखने की इच्छा की, यद्यपि जैसे अग्नि के सामने उसकी चिनगारी कोई वस्तु नहींहै, वैसेही आपकी समता में मैं क्या वस्तु हूँ ? ॥९॥

अतः क्षमस्वाच्युत मे रजोभुवो ह्यजानतस्त्वत्पृथगीशमानिनः । अजावलेपान्धतमोऽन्धचक्षुष एषोऽनुकम्प्यो मयि नाथवानिति ॥१०॥

हे अच्युत ! आप इसीलिये मुझपर कृपाकरिये मैं रजोगुण से उत्पन्न और अनजान होनेके कारण अपने को जन्म-रहित, जगत्-कर्त्ता होनेके मद रूपी प्रगाढ़ अन्धकार से अन्धा हूँ, इसलिये मैं इसबात का अहंकार रखता हूँ कि मैं आपसे अलग एक दूसरा ही ईश्वर हूँ; परन्तु आपको ऐसा सोच कर मुझपर दया करनी चाहिये कि ब्रह्मा दूसरे स्थानों पर चाहे प्रभुता दिखलाया करे, पर मेरा तो दास ही है ॥ १० ॥

काहं तमोमहदहंखचराग्निवार्भूसंवेष्टिताण्डघट सप्तवितस्तिकायः । क्वेदृग्विधाऽविगणिताण्डपराणुचर्यावाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम् ॥११॥

मैं प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी से घिरे हुए ब्रह्माण्ड में केवल अपने चौरासी अंगुल वाले शरीर काहूँ और आप के रोम-कूपोंमें ऐसे-ऐसे अनगणित ब्रह्मांड विराज रहे हैं, भला मेरी और आपकी समता कैसी ? इसलिये आप मुझे अत्यन्त तुच्छ जान कर मुझ पर कृपा कीजिये ॥११॥

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे । किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितं तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः ॥१२॥

हे अधोक्षज ! गर्भगत बालक जो लात मारे या पैर चलाये तो क्या उसे माता का अपराधी कहा जा सकताहै ? इसी प्रकार स्थूल,सूक्ष्म अथवा कार्य कारण से कहने में आने वाला यह संसार जब आपके उदर से बाहर नहीं है, तब मैंभी आप ही के उदर में स्थित हूँ, ऐसा जानकर गर्भगत बालक की नाईं मेरा अपराध क्षमा कीजिये ॥१२॥

जगत्त्रयान्तादधिसंप्लवोदे नारायणस्योदरनाभिनालात् । विनिर्गतोऽजस्त्विति वाङ्न वै मृषा किं त्वीश्वरात्मन्न विनिर्गतोऽस्मि ॥१३॥

हे ईश्वर ! तीनों लोकों के अन्त समय (प्रलय काल) में मिले हुए समुद्रों के जल में नारायण के उदर की नाभि-नाल से ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं, ऐसा जो कहा जाता है वह कभी असत्य नहीं है, तब क्या मैं आपका पुत्र नहीं हूँ ? अवश्य हूँ, इसलिये आप मुझपर कृपा करें ॥१३॥

नारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिनामात्माऽस्यधीशोऽखिललोकसाक्षी । नारायणोऽङ्गं नरभूजलायनात्तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥१४॥

क्या आप नारायण नहीं हैं ? क्योंकि आपही तो (नार) जीवमात्र के (अयन) आश्रय रूप या प्रवर्त्तक या जानने वाले, या पुरुष से उत्पन्न हुए जलमें निवास करने वाले हैं, इसलिये आपका "नारायण" नाम प्रसिद्ध है, किन्तु विचार किया जाय तो वह जल से परिच्छिन्न तुम्हारी मूर्त्ति भी सत्य नहीं वरन् माया है ॥१४॥

तच्चेज्जलस्थं तव सज्जगद्वपुः किं मे न दृष्टं भगवंस्तदैव । किं वा सुदृष्टं हृदि मे तदैव किन्नो सपद्येव पुनर्व्यदर्शि ॥१५॥

हे प्रभु ! यदि आपकी जगत् को आश्रय देने वाली जल में की मूर्त्ति सत्य है, तो मैंने सो दिव्य

CC-0.,Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वर्ष तक कमल-नाल में प्रवेश कर उसका पता लगाया, फिरभी वह दिखाई क्यों न दी ? इसलिये वह सब आपकी माया ही है, वास्तव में आपकी मूर्त्ति किसी देश की सीमा हो ही नहीं सकती ॥

अत्रैव मायाधमनाऽवतारे ह्यस्य प्रपञ्चस्य बहिः स्फुटस्य ।कृत्स्नस्य चान्तर्जठरे जनन्या मायात्वमेव प्रकटीकृतं ते ॥१६॥

हे माया-हरण ! यदि जल आदि प्रपंच आपसे पृथक् होता, तव उससे आपका परिच्छेद हो भी सकता था, परन्तु यह सब तो मायाही से उत्पन्न है, इस बात को आपने इसी अवतार में यशोदा माता को अपने उदर-स्थित ब्रह्मांड को दिखाकर सत्य सिद्ध कर दिया है, उससे भी मायापन दृष्टि गत होता है ॥१६॥

यस्य कुक्षाविदं सर्वं सात्मं भाति यथा तथा ।
तत्त्वय्यपीह तत् सर्वं किमिदं मायया विना॥१७॥

आपके उदरमें आपके सहित जैसा यह विश्व दिखाई देता है, वैसा ही वाहर भी दृष्टि आता है, भला यह वात विना माया के कैसे हो सकती है ? यदि यह मान लिया जाय कि आपमें इस वाहरी जगत् का प्रतिविंब पड़ रहा है, तब तो इसे उलटा दिखाई देना चाहिये,दूसरे जब आप जगत्के लिये दर्पण हैं तब प्रतिविंब में आपको दिखाई न देना चाहिये, इसलिये सब प्रकार से जगत् का माया-पन ही सिद्ध होता है ॥१७॥

अद्यैव त्वद्दतेऽस्य किं मम न ते मायात्वमाद-र्शितमेकोऽसि प्रथमं ततो व्रजसुहृद्वत्साः समस्ता अपि । तावन्तोऽसि चतुर्भुजास्तदखिलैः साकं मयोपासितास्तावन्त्येव जगन्त्यभूस्तदमितं ब्रह्माद्वयं शिष्यते ॥१८॥

क्या आपने अभी मुझे अपने विना जगत् का मायापन ही नहीं दिखलाया है ? कि आप पहलेतो एक थे, फिर समस्त ग्वाल और वछड़ों के रूप में होगये, कुछ ही देर में वे सभी चतुर्भुज-रूप होगये कि जिनकी मेरे सहित सभी तत्व-सेवा करते हुए दिखाई दिये, फिर उतने ही ब्रह्मांड रूप वनगये, इससे सिद्ध होता है कि असीम, अद्वैत परब्रह्म ही अन्त में शेष रहता है ॥१८॥

अजानतां त्वत्पदवीमनात्मन्यात्मात्मना भासि वितत्य मायाम् । सृष्टाविवाहं जगतो विधान इव त्वमेषोऽन्त इव त्रिनेत्रः ॥१९॥

जो आपके स्वरूप को नहीं जानते उन्हें आप ही प्रकृतिमें स्थित स्वतन्त्रतापूर्वक मायाको फैलाये हुए प्रतीत होते हो, अर्थात् सृष्टि उत्पन्न करने के समय ब्रह्मारूप, पालन के समय विष्णु-रूप और संहार के समय में रुद्ररूप जान पड़ते हो ॥ १९ ॥

सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि तिर्यक्षु यादःस्वपि तेऽजनस्य । जन्माऽसतां दुर्मदनिग्रहाय प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च ॥२०॥

हे ईश्वर ! हे प्रभु ! हे विधाता ! देवता, ऋषि मनुष्य, पशु-पक्षी और जल जन्तुओं में भी आप अजन्मे के जो अवतार होते हैं वे दुष्टों के अहङ्कार को नाश करने तथा सज्जनों पर कृपा करने के लिये होते हैं ॥२०॥

को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन् योगेश्वरो-तीर्भवतस्त्रिलोक्याम् । क्व वा कथं वा कति वा कदेति विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम् ॥२१॥

हे व्यापक ! हे भगवन् ! हे परमात्मन् ! हे यो गेश्वर ! आप योगमाया को फैलाकर जो लीलायें करते हैं, उन्हें तीनों लोकों में कौन जानता है कि वे कहाँ हैं ? कैसी हैं ? कब हैं और कितनी हैं ? ॥

तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं स्वप्नाभमस्त-धिषणं पुरुदुःखदुःखम् । त्वय्येव नित्यसुखबोध-तनावनन्ते मायात उद्यदपि यत् सदिवावभाति २२

इसलिये यह सम्पूर्ण जगत् जो केवल आपके नित्य, सुख मय, चैतन्य तथा अनन्त स्वरूप में माया से उत्पन्न होने तथा उसी में लय होने के कारण ही नित्य सुख तथा चैतन्य रूप प्रतीतहोता है, परन्तु वास्तव में तो यह निरा असत् स्वरूप, स्वप्न समान,प्रकाशहीन और दुःखसे भी दुःखरूपहै।

एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयंज्यो-तिरनन्त आद्यः । नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरञ्जनः पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः ॥२३॥

आपही एक, आत्मा, पुरुष, सनातन, सत्य, स्वयं प्रकाश, अनन्त, आदि, नित्य, अक्षर, अज, सुख मय, निरंजन, पूर्ण, अद्वैत, मुक्त उपाधिरहित और अमृत हो ॥२३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एवंविधं त्वां सकलात्मनामपि स्वात्मानमात्मात्मतया विचक्षते । गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सु चक्षुषा ये ते तरन्तीव भवानृताम्बुधिम् ॥२४॥

इस प्रकार से आपही समस्त जीवों के आत्मा हो, जिन लोगों ने सूर्य रूपी गुरु से उपनिषद के ज्ञानरूप नेत्र पालियेहैं, वे महात्मा आत्मा द्वारा ही आप का दर्शन कर के संसार सागर से मुक्त हो जाते हैं ॥२४॥

आत्मानमेवात्मतयाऽविजानतां तेनैव जातं निखिलं प्रपञ्चितम् । ज्ञानेन भूयोऽपि च तत् प्रलीयते रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा ॥२५॥

आत्म स्वरूप ही को अपना स्वरूप न जानने तक अज्ञान से यह समस्त प्रपंच प्रकट प्रतीत होता है, आत्म स्वरूप का ज्ञान होजाने पर यह उसी में लय होजाता है, जैसे रस्सी का जब तक वास्तविक बोध नहीं होता, तब तक उसका सर्प में आरोप किया जाता है, किन्तु बोध होनेपर उस का लय हो जाता है ॥२५॥

अज्ञानसंज्ञौ भवबंधमोक्षौ द्वौ नाम नान्यौ स्त ऋतज्ञभावात् । अजस्रचिन्त्याऽऽत्मनि केवले परे विचार्यमाणे तरणाविवाहनी ॥२६॥

संसार में बन्धन और मोक्ष दोनों अज्ञान से होते हैं, सत्य ज्ञानरूप आत्मासे पृथक् नहीं है,जैसे सूर्य के निकट रात-दिन कुछ नहीं होते, (सदैव प्रकाश बना रहता है) वैसेही निरन्तर चैतन्यरूप आत्मा परमेश्वर आप हैं, ऐसा विचार करने से आत्मामें बंधन या अज्ञान कुछ भी नहीं रहते ॥२६॥

त्वामात्मानं परं मत्वा परमात्मानमेव च ।
आत्मा पुनर्बहिर्मृग्य अहोऽज्ञजनताऽज्ञता॥२७॥

आप आत्मस्वरूप परब्रह्मको देह मानना और देह को आत्मा मानना-मानो घरमें खोई हुई वस्तु का बाहर बनमें खोजना है, आश्चर्य ! यह कितनी मूर्खों की सी अज्ञानता है ॥ २७ ॥

अन्तर्भवेऽनन्त भवन्तमेव ह्यऽतत्त्यजन्तो मृगयन्ति सन्तः । असन्तमप्यऽन्त्यऽहिमन्तरेण सन्तं गुणं तं किमु यन्ति सन्तः ॥२८॥

हे अनन्त ! सत्पुरुष महात्मा तो प्रत्येक जड़ पदार्थ को यह कहते हुए कि "यह भी आत्मा नहीं है-यह भी आत्मा नहीं है" देह में उन जड़ पदार्थों का निषेध करते हुए आपको खोजते हैं, क्योंकि यद्यपि अपने पास सांप न हो फिर भी जब तक सांप का निषेध न किया जायगा तब तक रस्सी की सत्यता का ज्ञान नहीं हो सकता-भाव यह है कि असत् जड़ पदार्थों का निषेध करनेपर ही सत् रूप चैतन्य आत्माका वास्तविक ज्ञान होसकताहै ।

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वयप्रसादलेशानुगृहीत एव हि । जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ॥२९॥

फिर भी हे देव ! हे भगवन् ! आपके युगल चरणारविन्द की थोड़ी सी कृपा से ही आपकी महिमा का तत्व समझ में आता है, विना आपकी कृपा के चाहे कोई कालान्तर तक विचार करे, पर वह समझ में नहीं आ सकता ॥२९॥

तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो भवेऽत्र वाऽन्यत्र तु वा तिरश्चाम् । येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम् ॥३०॥

इसलिये हे नाथ ! इस या पशु-पक्षी आदि किसी भी जन्म में मेरा ऐसा ही सौभाग्य हो कि मैं कोई न कोई भक्त होकर आपके चरणारविन्द की सेवा किया करूँ ॥३०॥

अहोतिधन्या व्रजगोरमण्यः स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा । या सां विभो वत्सतरात्मजात्मना यत्तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वराः ॥३१॥

अहो ! व्रजकी गौऐं और गोपियाँ परम भाग्यवती हैं, कि जिनको तृप्त करनेके लिये अबतक यज्ञ भी समर्थ नहीं होते, हे प्रभो ! उन आपने स्वयं बछड़ों और पुत्रों का रूप धरकर उनका दूध रूपी अमृत बड़े ही प्रेम से पिया है ॥३१॥

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णब्रह्म सनातनम् ॥३२॥

अहो ! नन्दरायजी के व्रजमें रहने वालों का बड़ा भाग्य है, बड़ा भाग्य है कि परमानन्द, पूर्ण सनातन साक्षात् परब्रह्म जिनके सखा हैं ।३२॥

एषां तु भाग्यमहिमाच्युत तावदास्तामेकादशैव हि वयं बत भूरिभागाः । एतद्धृषीकचषकैरसकृत् पिबामः शर्वादयोऽङ्घ्र्यु दजमध्वमृतासवं ते॥३३

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे अच्युत ! इन व्रजवासियोंके भाग्यकी अपूर्व महिमा तो कोई कहही नहीं सकताहै, परन्तु साथ ही महादेव आदि हम इन्द्रियोंके ग्यारह अधिष्ठाता भी महा भाग्यशाली हैं, क्योंकि इन व्रजवासियों के इन्द्रियरूपी प्यालों के द्वारा आपके चरणारविन्दके मकरन्द रूपी मधुर आसव का बारम्बार पान किया करते हैं ॥३३॥

तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां यद्-
गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोभिषेकम् । यज्जीवितं
तु निखिलं भगवान् मुकुन्दस्त्वद्यापि यत्पदरजः
श्रुतिमृग्यमेव ॥३४॥

फिर मेरा जन्म मनुष्य लोक पानेपर वृन्दावन में और विशेष कर गोकुल में हो, तो वह चाहे किसी भी योनि में क्यों न हो, परम भाग्य ही है, क्योंकि किसी गोकुल-निवासीकी चरण-रज मस्तक पर पड़ने का सौभाग्य प्राप्त होजायगा, कारण यह है कि जिन परमात्मा की चरण-रज को अब तक श्रुति भी देखरही है, वे श्रीकृष्ण भगवान् उन व्रज बासियों के पूर्ण जीवन-रूपहैं, इसलिये उनकी रज का मिलनाही महान् लाभहै॥३४॥

एषां घोषनिवासिनामुत भवान् किं देवरातेति
न श्रेतो विश्वफलात् फलं त्वदपरं कुत्राप्यदन्मुह्यति।
सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवाऽऽर्पिता
यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते ३५

हे देव ! भक्त के समान केवल वेष बनाकर ही आई हुई पूतना अपने परिवार सहित आपके स्वरूप को प्राप्त होगई, तब जिन व्रजवासियों के धन धाम, मित्र, प्रिय, देह, पुत्र, प्राण और अन्तःकरण ये सब आपही के लिये हैं, उन्हें आप सर्व फलरूप अपने स्वरूप से बढ़कर और क्या देंगे ? जब मैं इस बात पर विचार करता हूँ, तब मेरी बुद्धि मोहित होजाती है और मेरी समझ में तो यही आता है कि आप इन व्रजवासियों से तो कदापि उऋण हो ही नहीं सकते, क्योंकि यदि इन्हें भी पूतना ही के समान फल मिला तब तो वह पूरा नहीं कहा जा सकता ॥३५॥

तावद्रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम् ।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः ॥

हे कृष्ण ! जब तक आपकी सच्ची भक्ति न बन सके, तब तक राग द्वेष आदि चोर का काम करते हैं, घर कारागृह के समान रहता है और मोह पैर की बेड़ी बनी रहती है ॥३६॥

प्रपञ्चं निष्प्रपञ्चोऽपि विडम्बयसि भूतले ।
प्रपन्नजनताऽऽनन्दसंदोहं प्रथितुं प्रभो ॥३७॥

हे प्रभु ! यद्यपि आप प्रपंच रहित हैं फिर भी शरणागत लोगों को आनन्द देने के लिये अवतार धारण करते हो ॥३७॥

जानन्त एव जानन्तु किं बहूक्त्या न मे प्रभो ।
मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः ॥३८॥

हे प्रभु ! आपको जो पुरुष जानतेहों वह जानते रहें, परन्तु मैं इससे अधिक कुछ नहीं कह सकता कि मैं मन, वचन और देह से आपकी महिमा को नहीं समझ सकता ॥३८॥

अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक् ।
त्वमेव जगतां नाथो जगदेतत् तवार्पितम् ॥३९॥

हे कृष्ण ! मुझे आज्ञा दीजिये, आप सब कुछ जानते हैं और सबके साक्षी हो, आपही जगन्नाथ हो, ममताका विषय रूप यह जगत् और यह शरीर मैं आपही के अर्पण करता हूं॥३९॥

श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोषदायिन्
क्ष्मानिर्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन् ।
उद्धर्मशार्वरहरक्षितिराक्षसघ्नाकल्पमार्कमर्हन् भगवन् नमस्ते ॥४०॥

हे श्रीकृष्ण ! हे यदुकुल रूपी कमल के प्रीतिदायक ! (सूर्य) ! पृथ्वी, देवता, ब्राह्मण, पशु और समुद्र के बढ़ाने वाले (चन्द्र) ! हे पाखंड रूपी अन्धकार के नाश करने वाले ! हे पृथ्वी पर कंस आदि राक्षसों के मारने वाले ! हे सूर्य पर्यन्त सब के पूज्य ! हे भगवन् ! आपको कल्प कल्पान्तर पर्यन्त प्रणाम है ॥४०॥

श्रीशुक उवाच

इत्यभिष्टूय भूमानं त्रिः परिक्रम्य पादयोः ।
नत्वाऽभीष्टं जगद्धाता स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥४१॥

श्रीशुकदेवजी बोले-ब्रह्माजी इस प्रकार अपने प्रिय श्रीकृष्ण भगवान्की स्तुति करके, तीन परिक्रमायें देकर और चरणोंमें प्रणाम करके अपने लोक को चले गये ॥४१॥

ततोऽनुज्ञाप्य भगवान्स्वभुवं प्रागवस्थितान् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वत्सान्पुलिनमानिन्ये यथापूर्वसखं स्वकम् ॥४२॥

फिर श्रीकृष्ण भगवान् ब्रह्माजी की सम्मति से पहले की भांति खड़े हुए बछड़ों और अपने मित्रों को यमुनाजी के किनारे ले आये ॥४२॥

एकस्मिन्नपि यातेऽब्दे प्राणेशं चान्तरात्मनः ।
कृष्णमायाहता राजन्क्षणार्धं मेनिरेऽर्भकाः॥४३॥

हे राजन् ! यद्यपि उन बालकों और बछड़ोंको अपने प्राणनाथ भगवान् के विना एक वर्ष बीत चुका था, फिर भी प्रभु की माया से मोहित होने के कारण उन्हें वह समय आधे क्षण के समान जान पड़ा ॥४३॥

किं किं न विस्मरन्तीह मायामोहितचेतसः ।
यन्मोहितं जगत्सर्वमभीक्ष्णं विस्मृतात्मकम्॥४४॥

जिस भगवान् की माया से मोहित होने के कारण यह जगत् अपने आत्मा को भी भूला हुआ है, उस माया से मोहित लोग यहाँ क्या-क्या नहीं भूल सकते ? ॥४४॥

ऊचुश्च सुहृदः कृष्णं स्वागतं तेऽतिरंहसा ।
नैकोऽप्यभोजि कवल एहीतः साधु भुज्यताम्४५॥

श्रीकृष्णजी से उनके मित्र बोले-आप बहुत जल्दी आगये, अच्छे आये, हमने तो अबतक एक ग्रास भी नहीं खाया है, अब आओ भोजन करें ॥

ततो हसन्हृषीकेशोऽभ्यवहृत्य सहार्भकैः ।
दर्शयंश्चर्माजगरं न्यवर्तत वनाद्व्रजम् ॥४६॥

फिर भगवान् हँसते हुए भोजन करके और अजगरका चाम दिखलातेहुए, वनसे व्रजमें पधारे।

बर्हप्रसूननवधातुविचित्रिताङ्गः प्रोद्दामवेणुदल
शृङ्गरवोत्सवाढ्यः । वत्सान् गृणन्ननुगगीतपवित्र
कीर्तिर्गोपीदृगुत्सवदृशिः प्रविवेश गोष्ठम् ॥४७॥

जिनकी पवित्र कीर्त्ति ग्वाल-बाल गारहेहैं और जिनका दर्शन गोपियों की दृष्टिके लिये उत्सव रूप है, वे भगवान् मोर पङ्ख, पुष्प बनकी धातु गेरू आदि से शरीर पर चित्रकारी किये हुए, वंशी व सींग का महान् शब्द करते हुए, और प्रेमके साथ बछड़ों को बुलाते हुए व्रजमें पधारे ॥४७॥

अद्यानेन महाव्यालो यशोदानन्दसूनुना ।
हतोऽविता वयं चास्मादिति बाला व्रजे जगुः४८॥

उस समय बालकों ने व्रजमें आकर इसप्रकार कहा कि आज श्रीयशोदा-नन्द के लाल श्रीकृष्णजी ने अजगर को मारकर उससे हमारी रक्षाकी है ॥

राजोवाच

ब्रह्मन् परोद्भवे कृष्णे इयान् प्रेमा कथं भवेत् ।
योऽभूतपूर्वस्तोकेषु स्वोद्भवेष्वपि कथ्यताम् ॥४९॥

परीक्षित बोले-हे ब्रह्मन् ! व्रजवासियों को जितना प्रेम अपने ही से उत्पन्न बालकों से न था, उतना प्रेम पराये पुत्र श्रीकृष्णजी से क्यों हुआ ? सो कहिये ॥४९॥

श्रीशुक उवाच

सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैकवल्लभः ।
इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभतयैव हि ॥५०॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! सब प्राणियों को अपना आत्मा मुख्य प्रिय होता है; सन्तान या धन आदि दूसरे पदार्थों की प्रियता तो आत्मा की प्रियता की एक निमित्त है ॥ ५० ॥

तद्राजेन्द्र यथा स्नेहः स्वस्वकात्मनि देहिनाम् ।
न तथा ममतालम्बिपुत्रवित्तगृहादिषु ॥५१॥

हे राजेन्द्र ! इसलिये देहधारियों को जितना अपने से (आत्मा से) प्रेम होता है उतना ममता-सम्बन्धी अर्थात् अपने पुत्र, धन और घर आदि पदार्थों से नहीं होता ॥५१॥

देहात्मवादिनां पुंसामपि राजन्यसत्तम ।
यथा देहः प्रियतमस्तथा न ह्यनु ये च तम् ॥५२॥

हे क्षत्रियोत्तम राजन् ! जो पुरुष देह को ही आत्मा कहते हैं, उन्हें भी देह अति प्रिय होती है और देह से सम्बन्ध रखने वाले पुत्र धन आदि उतने प्रिय नहीं होते ॥५२॥

देहोऽपि ममताभाक्चेत्तर्ह्यसौ नात्मवत्प्रियः ।
यज्जीर्यत्यपि देहेऽस्मिञ्जीविताशा बलीयसी॥५३॥

यदि देह भी ममता का स्थान होजाय, अर्थात् यह मान लिया जाय कि मैं आत्माहूँ और यह मेरा देह है, तब यह देह भी आत्मा के समान प्रिय नहीं लगता, क्योंकि जब देह के अतीव निर्बल पड़ जाने पर उसके बचने की आशा नहीं रहती, तब भी जीवन की आशा आत्मा के सम्बन्ध से ही प्रबल बनी रहती है ॥५३॥

तस्मात्प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तदर्थमेव सकलं जगदेतच्चराचरम् ॥५४॥

इस प्रकारसे समस्त प्राणियोंको अपना आत्मा ही प्रिय लगताहै, उसके सिवा शेष स्थावर-जङ्गम से जो प्रेम होता है, वह आत्माही के कारण हुआ करता है॥ ५४ ॥

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम् ।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया ॥५५॥

इस प्रकार समस्त प्राणियों को प्रिय लगने वाला जो आत्मा है वह श्रीकृष्ण ही हैं, इसलिये उनपर प्रेम होना संभव है, वे श्रीकृष्ण भगवान् जगत् का कल्याण करने के लिये देह धारियों के समान माया के द्वारा प्रतीत होते हैं। ५५ ॥

वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थास्नु चरिष्णु च ।
भगवद्रूपमखिलं नान्यद्वस्त्विह किंचन ॥५६॥

समस्त विश्व के कारण श्रीकृष्ण ही हैं, ऐसा जानने वाले पुरुषों को समस्त चराचर जगत् भगवत रूप ही प्रतीत होता है, क्योंकि यहाँ कोई पदार्थ भगवान् से भिन्न नहीं है ॥५६॥

सर्वेषामपि वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः ।
तस्यापि भगवान्कृष्णः किमेतद्वस्तु रूप्यताम्॥५७॥

समस्त वस्तुओं का परमार्थ रूप कारणमें रहा करता है और श्रीकृष्ण भगवान् सब कारणोंके भी कारण हैं, तब हे राजन् ! तुम्हीं बतलाओ कि श्री कृष्ण भगवान्से न्यारी कौनसी वस्तु होसकती है?

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः । भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं पदं पदं यद्विपदां न तेषाम् ॥५८॥

पवित्र कीर्त्ति वाले भगवान् के महात्माओं को आश्रय देने वाले चरणारविन्द रूपी नाव का जिन पुरुषों ने आश्रय लियाहै, उन्हें संसार-सागर बछड़े के खुर के समान होता है और वे वैकुंठ में वास करते हैं और विपत्तियों के स्थान पुनर्जन्म आदि में नहीं पड़ते ॥५८॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं यत् पृष्टोऽहमिह त्वया ।
यत् कौमारे हरिकृतं पौगण्डे परिकीर्तितम् ॥५९॥

इस प्रकार से भगवान् ने जो चरित्र पांच वर्ष में किया था, उसे बालकों ने छठवें वर्ष में आकर कहा था, हे राजन् ! इस विषय में तुमने जो कुछ पूछा था वह मैं पूर्णतया तुमसे कह चुका ॥५९॥

एतत् सुहृद्भिश्चरितं मुरारेरघार्दनं शाद्वलजेमनं च । व्यक्तेतरद्रूपमजोर्वभिष्टवं शृण्वन् गृणन्नेति नरोखिलार्थान् ॥६०॥

श्रीकृष्ण भगवान् ने मित्रों के साथ लीला की, अघासुर को मारा, हरित भूमि पर भोजन किया, शुद्ध सत्वमय स्वरूप दिखलाया, ब्रह्माजी ने उनकी बहुत स्तुति की, इन सब विषयों को जो मनुष्य सुने अथवा गायन करे, उसके समस्त पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं ॥६०॥

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ।
निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥६१॥

इसी प्रकार आंखमिचौनी, पुल बांधना, बानरों की नाईं कूद-फांद आदि अनेक कुमार अवस्था की लीलायें करते हुए श्रीकृष्ण और बलरामजी ने व्रजमें आकर कुमार अवस्था व्यतीत की ॥ ६१ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पन्द्रहवां अध्याय

(धेनुकासुर-वध)

श्रीशुक उवाच

ततश्च पौगण्डवयःश्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ पशुपाल संमतौ । गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदैर्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–फिर पौगण्ड अवस्था में वे दोनों भाई व्रज में गौ-पालन करने के योग्य हुए, वहाँ वे गायों को चराते हुए, अपने मित्रों के साथ वृन्दावनको अपने चरणोंसे अत्यंत पवित्र करतेथे।

तन्माधवो वेणुमुदीरयन् वृतो गोपैर्गृणद्भिः स्वयशो बलान्वितः । पशून् पुरस्कृत्य पशव्यमाविशद् विहर्तुकामः कुसुमाकरं वनम् ॥ २ ॥

उन्हीं का गुण गान करते हुए ग्वाल बालों से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घिरे हुए; वंशी बजाते हुए, गायों को आगे करके, विहार करने की इच्छा से, पशुओं के हितकारी श्रीकृष्ण भगवान् पुष्पों से परिपूर्ण वनमें बलरामजी के साथ पधारे ॥२॥

तन्मञ्जुघोषालिमृगद्विजाकुलं महन्मनःस्वच्छपयः सरस्वता । वातेन जुष्टं शतपत्रगन्धिना निरीक्ष्य रन्तुं भगवान् मनो दधे ॥ ३ ॥

सुरीले शब्द करते हुए भौंरे, पशु, पक्षी गणसे पूर्ण, सज्जनों के मनके समान स्वच्छ जलसे भरे हुए तालाबोंमें से आतीहुई कमलकी सुगंधित पवन से सेवित वनको देखकर भगवान् ने क्रीड़ा करने की इच्छा की ॥३॥

स तत्र तत्रारुणपल्लवश्रिया फलप्रसूनोरुभरेण पादयोः । स्पृशच्छिखान् वीक्ष्य वनस्पतीन् मुदा स्मयन्निवाहाग्रजमादिपूरुषः ॥ ४ ॥

जहाँ-तहाँ अरुण पल्लवों के सौन्दर्य के साथ फल-फूलके विशेष भारसे जिनकी टहनियां चरणों में झुकरही हैं, ऐसे वृक्षों को देखकर मानो आनंद से मुसकाते हुए आदि पुरुष भगवान् ने अपने बड़े भाई बलरामजी से कहा ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच

अहो अमी देववरामरार्चितं पादाम्बुजं ते सुमनः फलार्हणम् । नमन्त्युपादाय शिखाभिरात्मनस्तमोऽपहत्यै तरुजन्म यत्कृतम् ॥ ५ ॥

श्रीभगवान् बोले–हे देवोत्तम! यह वृक्ष अपनी शिखाओं से फल-फूल रूपी पूजन सामग्री लेकर आपके देवताओं से भी पूज्य चरणारविन्दों को इसलिये प्रणाम कर रहे हैं कि जिस पाप-वशात् हमारा वृक्ष-जन्म हुआहै, वह नष्ट होजाय ॥ ५ ॥

एतेऽलिनस्तव यशोऽखिललोकतीर्थं गायन्त आदिपुरुषानुपदं भजन्ते । प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम् ६

हे आदि पुरुष ! हे अनघ ! सब लोगोंके लिये तीर्थरूप आपके यशका गायन करते हुए ये भौंरे आपका भजन करते हैं, इसलिये ये आपके सेवकों में से बहुधा मुख्य मुनि जान पड़ते हैं, क्योंकि अपने देवतारूप आपको मनुष्य-देह में इस बनके भीतर छिपा हुआ देखकर वे भी भौंरे का रूप धर छिपे हुए आपकी सेवा करते हैं और आपको इस दशा में भी नहीं छोड़ रहे हैं ॥६॥

नृत्यन्त्यमी शिखिन ईड्य मुदा हरिण्यः कुर्वन्ति गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन । सूक्तैश्च कोकिलगणा गृहमागताय धन्या वनौकस इयान् हि सतां निसर्गः ७

हे स्तुत्य ! आपके समीप ये मयूर नाचरहे हैं, ये हरिणियां गोपियों के समान चितवन द्वारा आनन्द पूर्वक आप पर प्रेम दरशा रही हैं, कोकिलायें मीठे शब्दों से आपकी सेवा कररही हैं, इस लिये यह वनवासी धन्यहैं, क्योंकि अपने पास जो कुछ हो; अपने घर आये हुए को वही अर्पण कर देना–यही साधु पुरुषों का स्वभाव है ॥७॥

धन्येयमद्य धरणी तृणवीरुधस्तत्पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः । नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकैर्गोप्योऽन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः

आज यह पृथ्वी, घास और लतायें आपके चरण स्पर्श करने से धन्य हैं, ये वृक्षावली आपके नख-स्पर्श से धन्य है, यह नदी, पर्वत, पक्षी, पशु आप की कृपा मयी दृष्टि से धन्य हुए हैं और गोपियां लक्ष्मी के भी वाञ्छनीय आपके वक्षःस्थल के स्पर्श से धन्य हुई हैं ॥ ८ ॥

श्रीशुक उवाच

एवं वृन्दावनं श्रीमत् कृष्णः प्रीतमनाः पशून् । रेमे संचारयन्नद्रेः सरिद्रोधस्सु सानुगः ॥ ९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–इस प्रकार वृन्दावन की शोभा को देखकर, प्रसन्न चित्त से, पर्वतके निकट वाली नदियों के किनारे गौओं को चराते हुए श्री कृष्ण भगवान् ग्वालवालों के साथ क्रीड़ा करते थे ॥

क्वचिद् गायति गायत्सु मन्दान्धालिष्वनुव्रतैः । उपगीयमानचरितः स्रग्वी संकर्षणान्वितः ॥१०॥

जिनके चरित्रों को माला धारण किये हुए बलरामजी सहित सब ग्वाल गारहे हैं, ऐसे श्री कृष्ण भगवान् कभी मदमत्त भौंरोंको गाते हुए देख कर स्वयं उनके साथ गाने लगते हैं ॥ १०॥

क्वचिच्च कलहंसानामनुकूजति कूजितम् । अभिनृत्यति नृत्यन्तं बर्हिणं हासयन् क्वचित्॥११॥

कभी हंसोंकी बोली सुनकर उसका अनुकरण करते हैं, कभी बालकों को हंसातेहुए मोरका नाच देखकर स्वयं उनके सामने नाचने लगते हैं ॥११॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मेघगम्भीरया वाचा नामभिर्दूरगान् पशून् ।
क्वचिदाह्वयति प्रीत्या गोगोपालमनोज्ञया ॥१२॥

कभी मेघ के समान गंभीर तथा गोप और गौओं को प्रिय लगने वाली बोलीसे नाम ले-लेकर दूर गये हुए पशुओं को बुलाते हैं ॥१२॥

चकोरक्रौञ्चचक्राह्वभारद्वाजांश्च बर्हिणः ।
अनुरौति स्म सत्त्वानां भीतवद् व्याघ्रसिंहयोः १३

कभी चकोर चकवी या चकवा भारद्वाज और मोर की सी बोली बोलते हैं, कभी बाघ या सिंह को देखकर भागे हुए ग्वाल और गौओं के साथ आप भी भागने की लीला करते हैं ॥१३॥

क्वचित् क्रीडापरिश्रान्तं गोपोत्सङ्गोपबर्हणम् ।
स्वयं विश्रमयत्यार्यं पादसंवाहनादिभिः ॥१४॥

कभी-कभी जब बलरामजी खेलते २ थकानआ जाने से किसी गोप की गोदी का सिराहना बना कर सोजातेहैं, उस समय श्रीभगवान् आपही उन के चरण दबाकर या पंखा झलकर उनका परिश्रम दूर करते हैं ॥१४॥

नृत्यतो गायतः क्वापि वल्गतो युध्यतो मिथः ।
गृहीतहस्तौ गोपालान् हसन्तौ प्रशशंसतुः ॥१५॥

किसी समय जब ग्वाल-बाल नाचते, गाते, दौड़ते या आपस में कुश्ती लड़तेहैं, तब दोनों भाई परस्पर हाथ पकड़ कर, हँसते हुए उनकी बड़ाई करते हैं ॥ १५ ॥

क्वचित् पल्लवतल्पेषु नियुद्धश्रमकर्शितः ।
वृक्षमूलाश्रयः शेते गोपोत्सङ्गोपबर्हणः ॥१६॥

कभी मल्लयुद्ध के परिश्रम से थके हुए श्रीकृष्ण भगवान् स्वयं भी वृक्ष-मूल के आसरे से, ग्वालोंकी गोद का सिराहना बनाकर, कोमल पत्तों की शैया पर लेट जाते हैं ॥१६॥

पादसंवाहनं चक्रुः केचित् तस्य महात्मनः ।
अपरे हतपाप्मानो व्यजनैः समवीजयन् ॥१७॥

कितने ही निष्पाप ग्वाल इन महात्मा श्रीकृष्ण के चरण चाँपते हैं और कितने ही पत्ते आदि के पंखे बनाकर उन्हें हवा करते हैं ॥१७॥

अन्ये तदनुरूपाणि मनोज्ञानि महात्मनः ।
गायन्ति स्म महाराज स्नेहक्लिन्नधियः शनैः॥१८॥

और स्नेह मयी बुद्धि से महात्मा श्रीकृष्णजी को नींद आने के लिये धीरे-धीरे मीठी-मीठी लोरियां सुनाते हैं ॥१८॥

एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया गोपात्मजत्वं चरितैर्विडम्बयन् । रेमे रमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ॥१९॥

इस प्रकार अपनी मायाके द्वारा अपने ईश्वरीय रूप को छिपाये हुए लक्ष्मी से सेवित चरणारविन्द वाले श्रीकृष्ण भगवान् ग्रामीण व्रजवासियोंके साथ उन्हीं के समान क्रीड़ा करते तथा ग्वालबालों का अनुकरण करते हुए कभी-कभी अपनी ईश्वरीय महिमा भी दिखला देते हैं ॥१९॥

श्रीदामा नाम गोपालो रामकेशवयोः सखा ।
सुबलस्तोककृष्णाद्या गोपाः प्रेम्णेदमब्रुवन्॥२०॥

श्रीराम-कृष्ण के सखा श्रीदामा नामक गोप; सुबल, स्तोक और कृष्ण आदि ग्वाल प्रेमपूर्वक यह कहने लगे कि ॥२०॥

राम राम महाबाहो कृष्ण दुष्टनिबर्हण ।
इतोऽविदूरे सुमहद् वनं तालालिसंकुलम् ॥२१॥

हे राम ! हेराम ! हे महाबाहो ! हे दुष्टोंको दंड देनेवाले ! हे कृष्ण ! यहाँसे थोड़ी दूरपर तालवृक्षों की पंक्ति से घिरा हुआ एक महान् वन है ॥२१॥

फलानि तत्र भूरीणि पतितानि पतन्ति च ।
सन्ति किं त्ववरुद्धानि धेनुकेन दुरात्मना ॥२२॥

वहाँ बहुतसे फल पड़े हुए हैं और गिरा भी करते हैं, परन्तु दुष्ट धेनुकासुर के कारण उनका कोई उपयोग नहीं करने पाता ॥२२॥

सोऽतिवीर्योऽसुरो राम हे कृष्ण खररूपधृक् ।
आत्मतुल्यबलैरन्यैर्ज्ञातिभिर्बहुभिर्वृतः ॥२३॥

हे बलरामजी ! हे कृष्णजी ! वह दैत्य बड़ा ही बली है और गधे का रूप किये रहता है, उसके पास उसी के समान बलधारी उसके जाति वाले अनेक दैत्य भी रहते हैं कि जिनसे वह सदैव घिरा रहता है ॥२३॥

तस्मात् कृतनराहाराद् भीतैर्नृभिरमित्रहन् ।
न सेव्यते पशुगणैः पक्षिसंघैर्विवर्जितम् ॥२४॥

हे शत्रुघ्न ! उस मनुष्य-भक्षक दैत्य के भय से कोई मनुष्य उस वनमें नहीं जाता, यहाँ तक कि पशु-पक्षियों ने भी उसे छोड़ दिया है ॥२४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विद्यन्तेऽभुक्तपूर्वाणि फलानि सुरभीणि च।
एष वै सुरभिर्गन्धो विसूचीनोऽवगृह्यते ॥२५॥

वहाँ ऐसे सुगंधित फल हैं, जैसे कभी नहीं खाये, यह सुगन्धि चारों ओर से फैली हुई चली आ रही है ॥२५॥

प्रयच्छ तानि नः कृष्ण गन्धलोभितचेतसाम्।
वाञ्छास्ति महती राम गम्यतां यदि रोचते॥२६॥

हे कृष्ण! हे राम! वह फल हम लोगों को दीजिये, हमारा चित्त उनकी सुगन्धि से मोहित होगया है, इसलिये हमारी बड़ी इच्छा है आपकी भी यदि इच्छा हो तो वहाँ चलिये ॥२६॥

एवं सुहृद्वचः श्रुत्वा सुहृत्प्रियचिकीर्षया।
प्रहस्य जग्मतुर्गोपैर्वृतौ तालवनं प्रभू ॥२७॥

इस प्रकार से मित्रों के वचन सुनकर, उन्हें प्रसन्न करने के लिये दोनों भाई हंसकर गोपों के साथ उस वनमें पधारे ॥२७॥

बलः प्रविश्य बाहुभ्यां तालान् संपरिकम्पयन्।
फलानि पातयामास मतङ्गज इवौजसा ॥२८॥

बलरामजी वनमें जाकर, हाथों से तालवृक्षोंको हिलाकर फल गिराने लगे, जैसे मतवाला हाथी पराक्रम करके उन्हें गिरा रहा हो ॥ २८ ॥

फलानां पततां शब्दं निशम्यासुररासभः।
अभ्यधावत् क्षितितलं सनगं परिकम्पयन् ॥२९॥

फलों के गिरने का शब्द सुनते ही वह गर्दभ रूप दैत्य वृक्षों सहित भूतलको कंपित करता हुआ दौड़ कर आया ॥२९॥

समेत्य तरसा प्रत्यक् द्वाभ्यां पद्भ्यां बलं बली।
निहत्योरसि काशब्दं मुञ्चन्पर्यसरत्खलः ॥३०॥

उस बलवान् दुष्ट दैत्य ने आते ही बलरामजी के वक्षःस्थल पर पिछली दोनों लातों से प्रहार किया और वह रेंकता हुआ उनके चारों ओर फिरने लगा ॥३०॥

पुनरासाद्य संरब्ध उपक्रोष्टा पराक् स्थितः।
चरणावपरौ राजन्बलाय प्राक्षिपद्रुषा ॥३१॥

हे राजन्! इस क्रोधातुर गधे ने फिर आकर उलटे मंह खड़े होकर क्रोध-पूर्वक बलरामजी पर पिछले पैरों से प्रहार किया ॥३१॥

स तं गृहीत्वा प्रपदोर्भ्रामयित्वैकपाणिना।
चिक्षेप तृणराजाग्रे भ्रामणत्यक्तजीवितम् ॥३२॥

श्रीबलरामजी ने एक हाथसे उसे पिछले पैर पकड़ कर घुमा-घुमाकर उसके प्राण निकाल कर उसे तालवृक्षों में पछाड़ दिया ॥३२॥

तेनाहतो महातालो वेपमानो बृहच्छिराः।
पार्श्वस्थं कम्पयन्भग्नः स चान्यं सोऽपि चापरम् ३३

उस दैत्य के शरीर के पछाड़ने से कंपायमान होकर, पासके तालवृक्षोंको भी कंपित करता हुआ वह बड़े सिर वाला ताड़का महान् वृक्ष गिर पड़ा, उससे दूसरा गिर पड़ा और उससे तीसरा ॥३३॥

बलस्य लीलयोत्सृष्टखरदेहहताहताः।
तालाश्चकम्पिरे सर्वे महावातेरिता इव ॥३४॥

अब श्रीबलरामजीने जो लीलामात्र ही से सब गधोंको चलाया, तो उनके शरीरोंसे समस्त ताड़-वृक्ष ऐसे काँपने लगे मानो वे प्रबल वायु से ही कम्पायमान किये गये हैं ॥३४॥

नैतच्चित्रं भगवति ह्यनन्ते जगदीश्वरे।
ओतप्रोतमिदं यस्मिंस्तन्तुष्वङ्ग यथा पटः ॥३५॥

उन अनन्त और जगत्पति श्रीबलरामजी के पराक्रममें यह कोई आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि समस्त संसार उनमें इसी प्रकार से ओत-प्रोत है जैसे तन्तुओं में वस्त्र ॥३५॥

ततः कृष्णं च रामं च ज्ञातयो धेनुकस्य ये।
क्रोष्टारोऽभ्यद्रवन्सर्वे संरब्धा हतबान्धवाः ॥३६॥

अपने प्रधान धेनुकासुर के मरने पर उसके जाति-बन्धु गर्दभ-वृन्द क्रोधित होकर श्रीराम कृष्ण पर दौड़ पड़े ॥३६॥

तांस्तानापततः कृष्णो रामश्च नृप लीलया।
गृहीतपश्चाच्चरणान्प्राहिणोत्तृणराजसु ॥३७॥

हे राजन्! उस समय जितनेभी गधे आये, उन सबको श्रीराम कृष्ण ने खेलही खेलमें पैर पकड़कर ताड़के वृक्षों पर फेंक दिया ॥३७॥

फलप्रकरसंकीर्णा दैत्यदेहैर्गतासुभिः।
रराज भूः सतालाग्रैर्घनैरिव नभस्तलम् ॥३८॥

उस समय पृथ्वी फलों के ढेर से, भरे हुए गधों की लाशों से और ताल-वृक्षकी शाखाओं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से ऐसी शोभा देने लगी, जैसे बादलों से आकाश शोभा देता है ॥३८॥

तयोस्तत् सुमहत् कर्म निशम्य विबुधादयः ।
मुमुचुः पुष्पवर्षाणि चक्रुर्वाद्यानि तुष्टुवुः ॥३९॥

श्रीराम कृष्ण का यह महान् चरित देखकर देवता आदि फूल बरसानेलगे, उन्होंने बाजे बजाये और स्तुति की ॥३९॥

अथ तालफलान्यादन् मनुष्या गतसाध्वसाः ।
तृणं च पंशवश्चेरुर्हतधेनुककानने ॥४०॥

फिर तो मनुष्य निर्भय होकर फल खाने लगे और उस धेनुक के मरने पर पशु भी निडर होकर घास चरने लगे ॥४०॥

कृष्णः कमलपत्राक्षः पुण्य श्रवणकीर्तनः ।
स्तूयमानोऽनुगैर्गोपैः साग्रजो व्रजमाव्रजत् ॥४१॥

जिनके चरित्र का श्रवण तथा कीर्त्तन पवित्रहै अनुचर गोप जिनकी स्तुति कररहेहैं, वे कमल दल के समान नेत्र वाले श्रीकृष्ण भगवान् बलरामजी सहित व्रजमें पधारे ॥ ४१ ॥

तं गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धबर्हवन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम् । वेणुं क्वणन्तमनुगैरनुगीतकीर्तिं गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन् समेताः ॥४२॥

उन श्रीकृष्णचन्द्रजी के दर्शनों की अभिलाषा से एकत्र होकर गोपियां उनके सामने आ पहुँचीं कि जिनके काकुलों में गौओं के खुरों की रेणु लगी हुई है; मोर-पक्ष और वन-पुष्प गुंधे हुए हैं, सुन्दर नेत्र और सुन्दर हास्य हैं, जो मुरली बजा रहे हैं और जिनके अनुचर यश गारहे हैं ॥ ४२ ॥

पीत्वा मुकुन्दमुखसारघमक्षिभृङ्गैस्तापं जहुर्विरहजं व्रजयोषितोऽह्नि । तत्सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं सव्रीडहासविनयं यदपाङ्गमोक्षम् ४३॥

भगवान् के मुखरूपी मधु का, नेत्र रूपी भौंरों के द्वारा पान करके व्रजांगनाओं ने दिनके विरहका ताप मिटाया, उस समय गोपियों के लज्जा सहित हास्य और विनय पूर्वक कटाक्ष के द्वारा किये हुए सत्कार को स्वीकृत करते हुए श्रीकृष्ण भगवान् व्रज में पधारे ॥४३॥

तयोर्यशोदारोहिण्यौ पुत्रयोः पुत्रवत्सले ।
यथाकामं यथाकालं व्यधत्तां परमाशिषः ॥४४॥

पुत्रों पर प्रेम करने वाली श्रीयशोदा और रोहिणीजी अपने बेटों को समयानुसार आशीर्वाद दिया करती थीं और उनकी रुचि के अनुसार सामग्री उपस्थित रक्खा करती थीं ॥४४॥

गताध्वानश्रमौ तत्र मज्जनोन्मर्दनादिभिः ।
नीवीं वसित्वा रुचिरां दिव्यस्रग्गन्धमण्डितौ ४५॥

जनन्युपहृतं प्राश्य स्वाद्वन्नमुपलालितौ ।
संविश्य वरशय्यायां सुखं सुषुपतुर्व्रजे ॥४६॥

वहाँ आने पर स्नान, उबटन आदिसे परिश्रम को खोकर, दोनों भाई सुन्दर वस्त्र और दिव्यपुष्पों की माला पहिनकर, चन्दन लगाकर, अत्यन्त प्रेम पूर्वक माताओं के लाये हुए सुन्दर भोजन करके सुन्दर शेया पर सुख के साथ शयन करने लगे ॥

एवं स भगवान् कृष्णो वृन्दावनचरः क्वचित् ।
ययौ राममृते राजन् कालिन्दीं सखिभिर्वृतः॥४७

ऐसे वे श्रीकृष्ण भगवान् वृन्दावन में विहार किया करते थे, हे राजन् ! एक दिन बलरामजीको छोड़कर शेष सखाओं के साथ श्री कृष्ण भगवान् यमुनाजी पर पधारे ॥४७॥

अथ गावश्च गोपाश्च निदाघातपपीडिताः ।
दुष्टं जलं पपुस्तस्यास्तृषार्ता विषदूषितम् ॥४८॥

वहाँ ग्रीष्म की धूप से पीड़ित होकर प्यास के मारे गौओं और ग्वालों ने विषसे दोष-युक्त यमुना जी का बुरा जल पी लिया ॥४८॥

विषाम्भस्तदुपस्पृश्य दैवोपहतचेतसः ।
निपेतुर्व्यसवः सर्वे सलिलान्ते कुरूद्वह ॥४९॥

हे राजन् ! जलके स्पर्श करते ही वे सभी दैव गति से मूर्छित होकर जलके निकट ही मर कर गिर गये ॥४९॥

वीक्ष्य तान् वै तथाभूतान् कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ।
ईक्षयाऽमृतवर्षिण्या स्वनाथान् समजीवयत्॥५०॥

उनको इस दशा पर पहुंचा हुआ देखकर योगेश्वरों के ईश्वर श्रीकृष्ण भगवान् ने अपनी अमृत बरसाने वाले दृष्टि के द्वारा उन सबको फिर से जीवित कर दिया, क्योंकि उनके स्वामी वे स्वयं हैं॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ते संप्रतीतस्मृतयः समुत्थाय जलान्तिकात् ।
आसन् सुविस्मिताः सर्वे वीक्षमाणाः परस्परम् ५१

वे सब चैतन्य होकर, जलके पास से उठकर एक दूसरेका मुंह देख २ कर आश्चर्य करनेलगे५१॥

अन्वमंसत तद् राजन् गोविन्दानुग्रहेक्षितम् ।
पीत्वा विषं परेतस्य पुनरुत्थानमात्मनः ॥५२॥

विषको पीकर प्राण निकल जानेपर भी वे फिर से जीवित होकर उठ बैठे, उसे उन ग्वालों ने भगवान् की कृपा दृष्टि माना ॥५२॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

सोलहवां अध्याय

(काली दमन लीला वर्णन)

श्रीशुक उवाच

विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णःकृष्णाहिना विभुः ।
तस्या विशुद्धिमन्विच्छन् सर्पं तमुदवासयत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! यमुनाजी को काली नागसे दूषित देखकर प्रभु श्रीकृष्णजीने उसे शुद्ध करनेके लिये उस सर्पको वहांसे निकालदिया।

राजोवाच

कथमन्तर्जलेऽगाधे न्यगृह्णद् भगवानहिम् ।
स वै बहुयुगावासं यथाऽसीद् विप्र कथ्यताम् ॥२॥

परीक्षित बोले-भगवान्ने गहरे जलमें उस नाग को कैसे दंड दिया और वह कितने ही युगों से यमुनाजी में क्यों रहता था ? सो कहिये ॥२॥

ब्रह्मन् भगवतस्तस्य भूम्नः स्वच्छन्दवर्तिनः ।
गोपालोदारचरितं कस्तृप्येतामृतं जुषन् ॥ ३ ॥

हे ब्रह्मन् ! उन स्वेच्छाचारी व्यापक भगवान्के गौ पालन आदि के उदार चरित् रूपी अमृत को पान करता हुआ कौनसा मनुष्य तृप्त होसकताहै ?

श्रीशुकउवाच

कालिन्द्यां कालियस्यासीद् ह्रदःकश्चिद् विषाग्निना
श्रप्यमाणपया यस्मिन् पतन्त्युपरिगाः खगाः॥ ४॥

श्रीशुकदेवजी बोले-यमुनाजी में एक काली नाग का कुण्ड था, जिसमें उसके विषके कारण जल खौला करता था और ऊपरसे उड़ते हुए पक्षी उसमें गिर जाते थे ॥४॥

विप्रुष्मता विषोदोर्मिमारुतेनाभिमर्शिताः ।
म्रियन्ते तीरगा यस्य प्राणिनः स्थिरजङ्गमाः ॥५॥

उस कालीदह के निकट जाते ही विषैले जल की तरंगों के छींटों से मिले हुए पवन के स्पर्श मात्र से स्थावर-जङ्गम मर जाते थे ॥५॥

तं चण्डवेगविषवीर्यमवेक्ष्य तेन दुष्टां नदीं च
खलसंयमनावतारः । कृष्णः कदम्बमधिरुह्य
ततोऽतितुङ्गमास्फोट्य गाढरशनो न्यपतद्विषोदे ६॥

महान् बली विप्र-रूप पराक्रम के अभिमानी उस नाग तथा उससे दूषित यमुनाजी को देखकर दुष्टों को दण्ड देनेही के लिये अवतार धारणकरने वाले श्रीकृष्णचन्द्रजी लंगोट कसकर और ताल ठोककर एक कदंव*के वृक्षपर चढ़कर उस विषैले जल में कूद पड़े ॥६॥

सर्पह्रदः पुरुषसारनिपातवेगसंक्षोभितोरगविषो-
च्छ्वसिताम्बुराशिः । पर्यक् प्लुतो विषकषाय-
विभीषणोर्मिर्धावन् धनुःशतमनन्तबलस्य किं तत्७

जब पुरुष श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्र उस कालीदह में कूदे, उस समय उनके वेग से क्षुब्ध हुए नाग के विष से जल बहुत ऊँचा उछल गया और विष-प्रभाव से कषाय तथा भयंकर लहरें आने लगीं और वह जल चारोंओर ※सौ-सौ धनुषतक फैल गया, अनन्त बलधारी भगवान्के इस कार्यमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है ॥७॥

तस्य ह्रदे विहरतो भुजदण्डघूर्णवार्घोषमङ्ग
वरवारणविक्रमस्य । आश्रुत्य तत् स्वसदनाभिभवं

*-कहा जाता है कि एक बार गरुड़जी ने इस वृक्ष पर स्वर्ग से आकर अमृतका कलश रख दिया था इसलिये सब वृक्षों के सूखने पर भी यह वृक्ष न सूखा था ।

※ जौ के आठ मध्यभाग मिलकर एक अंगुल होता है, तीन अंगुल का एक ताल, तीन ताल का एक हाथ, दो हाथ का एक किष्कु और दो किष्कु का एक धनुष होता है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निरीक्ष्य चक्षुःश्रवाः समभरत् तदमृष्यमाणः ॥८॥

हे अङ्ग ! श्रेष्ठ हाथी के समान पराक्रमी, कुण्ड में विहार करते हुए श्रीकृष्ण भगवान् के भुजदंड से ताड़ित जलका शब्द सुनते ही अपने घर को नष्ट होता हुआ देखकर, उसे सहन न करके वह काली नाग आया ॥८॥

तं प्रेक्षणीयसुकुमारघनावदातं श्रीवत्सपीतवसनं स्मितसुन्दरास्यम् । क्रीडन्तमप्रतिभयं कमलोदराङ्घ्रिं संदश्य मर्मसु रुषा भुजया चछाद ॥ ९ ॥

दर्शन करने योग्य, सुकुमार; मेघवर्ण, श्रीवत्स का चिह्न धारण किये हुए, पीतांवर ओढ़े हुए, मन्द मुसकान सहित सुन्दर मुख तथा कमल गर्भ के समान चरण वाले भगवान् को निर्भय विहारकरते हुए देखकर उस काली नाग ने उन्हें मर्म-स्थानों में काट लिया और उनके अङ्गसे लिपट गया ॥९॥

तन्नागभोगपरिवीतमदृष्टचेष्टमालोक्य तत्प्रिय सखाः पशुपा भृशार्ताः । कृष्णेऽर्पितात्मसुहृदर्थ-कलत्रकामा दुःखानुशोकभयमूढधियो निपेतुः १०

श्रीकृष्णजी को नाग से वेष्टित तथा निश्चेष्ट देखकर उनके प्रिय सखा गोपगण अत्यन्त दुःखी हुए और भय से मूर्छित होकर गिर पड़े, क्योंकि उनके आत्मा, मित्र, धन, स्त्री और भोग सभी कृष्णजी के अर्पण थे ॥१०॥

गावो वृषा वत्सतर्यः क्रन्दमानाः सुदुःखिताः । कृष्णे न्यस्तेक्षणा भीता रुदन्त्य इव तस्थिरे॥ ११॥

गौऐं, बैल, और छोटे बछड़े सभी दुःखी हो कर रंभानेलगे और डरते हुए श्रीकृष्णजी की ओर दृष्टि जमाकर रोते हुए से खड़े होगये ॥११॥

अथ व्रजे महोत्पातास्त्रिविधा ह्यतिदारुणाः । उत्पेतुर्भुवि दिव्यात्मन्यासन्नभयशंसिनः ॥१२॥

फिर तत्कालही व्रजमें अत्यन्त दारुण भय दिखलानेवाले उत्पात, वहाँ की पृथ्वी, आकाश तथा शरीरों आदि सभी में होने लगे ॥१२॥

तानालक्ष्य भयोद्विग्ना गोपा नन्दपुरोगमाः । विना रामेण गाः कृष्णं ज्ञात्वा चारयितुं गतम् १३

उन उत्पातों को देखकर नन्द आदि गोप भय से चिन्तातुर होगये, क्योंकि उन्होंने यह समझ लिया कि आज श्रीकृष्णजी बलरामजी को छोड़ कर गौओं को चराने के लिये गये हैं ॥१३॥

तैर्दुर्निमित्तैर्निधनं मत्वा प्राप्तमतद्विदः । तत्प्राणास्तन्मनस्कास्ते दुःखशोकभयातुराः॥१४॥

अज्ञान गोपों ने उन उत्पातों से यह समझाकि श्रीकृष्णजी कहीं मृत्यु को प्राप्त होगये हैं, इसलिये वे दुःख शोच और भयसे आतुर हो उठे क्योंकि उनके प्राण और मनतो उन्हीं श्रीकृष्णके आधीनहैं।

आबालवृद्धवनिताः सर्वेऽङ्ग पशुवृत्तयः । निर्जग्मुर्गोकुलाद्दीनाः कृष्णदर्शनलालसाः ॥१५॥

हे अङ्ग ! समस्त पशुके समान महा मोह में पड़े हुए बाल, वृद्ध और स्त्रियां आदि श्रीकृष्णजी के दर्शनों की उत्कण्ठा से दीन होकर गोकुल से बाहर निकल पड़े ॥१५॥

तांस्तथा कातरान् वीक्ष्य भगवान् माधवो बलः । प्रहस्य किंचिन्नोवाच प्रभावज्ञोऽनुजस्य सः ॥१६॥

मधु-वंश में उत्पन्न हुए भगवान् बलरामजी उन्हें ऐसा व्याकुल देखकर हँसे, परन्तु उन्होंने कुछ न कहा, क्योंकि वे अपने छोटे भाई श्रीकृष्णजी का प्रभाव जानते थे ॥१६॥

तेऽन्वेषमाणा दयितं कृष्णं सूचितया पदैः । भगवल्लक्षणैर्जग्मुः पदव्या यमुनातटम् ॥१७॥

वे सभी अपने प्रिय श्रीकृष्णको ढूंढते हुए उन के चरण-चिह्नों के आसरेसे मार्ग पर चलते-चलते यमुनाजी के किनारे पहुंचे ॥१७॥

ते तत्र तत्राब्जयवाङ्कुशाऽशनिध्वजोपपन्नानि पदानि विश्पतेः । मार्गे गवामन्यपदान्तरान्तरे निरीक्षमाणा ययुरङ्ग सत्वराः ॥१८॥

हे अङ्ग ! वे व्रजवासी गोप वहाँ-वहाँ गौओं के मार्गमें कमल, यव, अंकुश, वज्र और ध्वजा-चिह्नों वाले भगवान् के चरणों को दूसरों के पैरों के बीच बीचमें देखते हुए शीघ्रतासे वहाँ पहुंचे, जैसेयोगी जन वेद-मार्ग में परम तत्व को ढूंढा करते हैं॥१८॥

अन्तर्ह्रदे भुजगभोगपरीतमारात् कृष्णं निरीहमुपलभ्य जलाशयान्ते । गोपांश्च मूढधिषणान् परितः पशूंश्च संक्रन्दतः परमकश्मलमापुरार्ताः१९

जब उन सबने दूरसे यह देखा कि दह में श्रीकृष्णजी के अङ्ग से नाग लिपटा हुआ है और वह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निश्चेष्टसे पड़े हैं तथा उसी कुण्ड के पासमें ग्वाल मूर्छित पड़े हैं तथा पशु रँभा रहे हैं, तब वे आर्त्त होकर महा मोह को प्राप्त हुए ॥१६॥

गोप्योऽनुरक्तमनसो भगवत्यनन्ते तत्सौहृद-स्मितविलोकगिरः स्मरन्त्यः। ग्रस्तेऽहिना प्रियतमे भृशदुःखतप्ताः शून्यं प्रियव्यतिहृतं ददृशुस्त्रिलोकम्॥

जिनका मन अनन्त भगवान् में लगा हुआ है, ऐसी गोपियां भगवान् की मन्द मुसकान, स्नेह, कटाक्ष और वचनों का स्मरण करती हुई अपने प्रियतम को सर्प-ग्रस्त देखकर, दुःखसे सन्तप्त हो कर अपने परम प्रिय (कृष्ण) विना तीनों लोकोंको सूना सा देखने लगीं ॥२०॥

ताः कृष्णमातरमपत्यमनुप्रविष्टां तुल्यव्यथाः समनुगृह्य शुचः स्रवन्त्यः। तास्ताः प्रियव्रजकथाः कथयन्त्य आसन् कृष्णाननेऽर्पितदृशो मृतकप्रतीकाः

जब यशोदाजी पुत्र के पीछे यमुनाजी में गिरने लगी, तब गोपियां उन्हें पकड़ कर, अत्यन्त दुखी होकर, आँखों से आँसू बहाती हुई यशोदाजी की भांति ही शोक मनाती और भगवान् की व्रजमें की हुई लीलाओं को वर्णन करती हुई, भगवान्के मुख की ओर दृष्टि दिये हुए मृतकके समान होगईं २१।

कृष्णप्राणान् निर्विशतो नन्दादीन् वीक्ष्य तं ह्रदम्। प्रत्यषेधत् स भगवान् रामः कृष्णानुभाववित्२२॥

श्रीकृष्ण भगवान्में मन लगाये हुए नन्द आदि गोपों को कालीदह में गिरने से बलरामजी ने रोक लिया, क्योंकि वे श्रीकृष्णकी महिमा जानते थे ॥

इत्थं स्वगोकुलमनन्यगतिं निरीक्ष्य सस्त्रीकुमार मतिदुःखितमात्महेतोः। अज्ञाय मर्त्यपदवीमनु-वर्तमानः स्थित्वा मुहूर्तमुदतिष्ठदुरङ्गबन्धात् ॥२३॥

इस प्रकार अपने गोकुल को केवल अपने ही शरण देखकर और अपने लिये स्त्री बालकों सहित सबको अत्यन्त दुखित जानकर मनुष्यों के समान लीला करने वाले श्रीकृष्ण भगवान् दो घड़ी तक उसी स्थिति में रहकर फिर उस सर्प के बन्धन से छूट गये ॥ २३ ॥

तत्प्रथ्यमानवपुषा व्यथितात्मभोगस्त्यक्त्वोन्नमय्य कुपितः स्वफणान् भुजङ्गः। तस्थौ श्वसन् श्वसनरन्ध्रविषाम्बरीषस्तब्धेक्षणोल्मुकमुखो हरि मीक्षमाणः ॥२४॥

जो श्रीकृष्णजी ने अपने शरीर को बढ़ाया तो उस नाग के शरीरमें महान् कष्ट होनेलगा,इसलिये वह अपना बंधन खींचकर क्रोध सहित फनों को को उठाकर फुंकार मारता हुआ, केवल श्रीकृष्णकी ओर देखता हुआ, खड़ा रहा, उसकी नाक में से विष निकल रहा था, आवा के समान चमकते हुए खुले नेत्रथे और मुंहसे अग्नि निकल रही थी ॥२४॥

तं जिह्वया द्विशिखया परिलेलिहानं द्वे सृक्किणी ह्यतिकरालविषाग्निदृष्टिम्। क्रीडन्नमुं परिससार यथा खगेन्द्रो बभ्राम सोऽप्यवसरं प्रसमीक्षमाणः॥

दो शिखा वाली जीभ से दोनों होठों को चाट रहा था, ऐसे अत्यन्त भयंकर विष की अग्नि से भरी हुई दृष्टिवाले इस नागके चारों ओर श्रीकृष्ण भगवान् क्रीड़ा करते हुए गरुड़की भांति फिरनेलगे और वह भी अवसर की प्रतीक्षा करता हुआ श्री कृष्णजी के चारों ओर फिरने लगा ॥ २५ ॥

एवं परिभ्रमहतौजसमुन्नतांसमानम्य तत्पृथु शिरस्वधिरूढ आद्यः। तन्मूर्धरत्ननिकरस्पर्शाति-ताम्रपादांबुजोऽखिलकलादिगुरुर्ननर्त ॥२६॥

इस प्रकार फिरते-फिरते जब उसका पराक्रम नष्ट हो चुका तब श्रीकृष्णजी उसके ऊँचे फनों को झुकाकर, उसके मोटे सिरों पर चढ़ गये और उस के मस्तक चञ्चल होने पर भी उनपर नृत्य करने लगे, क्योंकि वे आदि पुरुष तो समस्त कलाओंके आदि गुरु हैं, उस समय उनके चरणारविन्द उस के मस्तक के रत्नों के स्पर्श करने से विशेष अरुण हो रहे थे ॥ २६ ॥

तं नर्तुमुद्यतमवेक्ष्य तदा तदीयगन्धर्वसिद्धसुर-चारणदेववध्वः। प्रीत्या मृदङ्गपणवानकवाद्यगीत पुष्पोपहारनुतिभिः सहसोपसेदुः ॥२७॥

जब श्रीकृष्णचन्द्र नृत्य करने के लिये तैयार हुए उस समय भगवान् के पार्षद गन्धर्व, सिद्ध, देव, चारण और अप्सरायें-ये सभी मृदङ्ग, पणव आनक आदि अनेक प्रकार के बाजे, गीत, पुष्प, भेंट और स्तुति द्वारा सेवा करने के लिये तत्काल ही आनन्द पूर्वक आ पहुंचे ॥२७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यद्यच्छिरो न नमतेऽङ्ग शतैकशीर्ष्णस्तत् तन्ममर्द खलदण्डधरोऽङ्घ्रिपातैः । क्षीणायुषो भ्रमत उल्बणमास्यतोऽसृङ् नस्तो वमन् परमकश्मलमाप नागः ॥२८॥

हे अङ्ग ! सौ प्रधान मस्तकों वाला वह कालीनाग अपनी आयुष्य क्षीण होने पर भी घूमतारहा परन्तु वह जिस मस्तक को भी ऊँचा उठाता था, दुष्टदमन भगवान् उसीको कुचल देते, तब तो वह नाग मुख और नाकसे लोहू बहाता हुआ महान् दुःखी हुआ ॥ २८ ॥

तस्याक्षिभिर्गरलमुद्वमतः शिरस्सु यद्यत्समुन्नमति निःश्वसतो रुषोच्चैः । नृत्यत् पदाऽनुनमयन् दमयाम्बभूव पुष्पैः प्रपूजित इवेह पुमान् पुराणः ॥

क्रोध से ऊँचा श्वांस लेता और नेत्रों में से विष को उगलता हुआ वह नाग अपने मस्तकों में से जिस-जिस मस्तक को ऊपर उठाता है, उसी २ मस्तक को नृत्य करते हुए भगवान् ने अपने चरणारविन्द से झुकाकर उस नाग का दमन किया, उस समय गन्धर्व आदि देवताओं के पुष्प-वर्षा करने से गोपों को भी भगवान् पुराण पुरुष के रूप में दिखलाई दिये ॥२९॥

तच्चित्रताण्डवविरुग्णफणात्पत्रो रक्तं मुखैरुरु वमन् नृप भग्नगात्रः । स्मृत्वा चराचरगुरुं पुरुषं पुराणं नारायणं तमरणं मनसा जगाम ॥३०॥

हे राजन् ! भगवान् के विचित्र तांडव से टूटे हुए फन रूपी छत्र वाला वह नाग अपने मुखोंमें से रक्त उगलता हुआ; भग्न शरीर होकर, श्रीकृष्णजी को चराचर के गुरु, पुराण पुरुष और नारायण समझ कर हृदयसे उनके शरण हुआ ॥ ३० ॥

कृष्णस्य गर्भजगतोऽतिभरावसन्नं पार्ष्णिप्रहार परिरुग्णफणातपत्रम् । दृष्ट्वाऽहिमाद्यमुपसेदुरमुष्य पत्न्य आर्ताः श्लथद्वसनभूषणकेशबन्धाः ३१

समस्त विश्व को अपने उदर में रखने वाले भगवान् के महान् भारसे पीड़ित और उनकी एड़ी के प्रहार से टूटे हुए फनरूपी छत्र वाले कालीनाग को देखकर शिथिल वस्त्र, आभूषण तथा केशवेणी वाली अत्यन्त आर्त्त नागकी पत्नियां भगवान् के शरण आईं ॥३१॥

तास्तं सुविग्नमनसोऽथ पुरस्कृतार्भाः कायं निधाय भुवि भूतपतिं प्रणेमुः । साध्व्यः कृतांजलिपुटाः शमलस्य भर्तुर्मोक्षेप्सवः शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥३२॥

अत्यन्त उद्विग्न चित्त वाली, पतिव्रता और अपने पति को दुःखसे छुड़ानेकी इच्छा रखनेवाली उन नागनियों ने अपने बच्चोंको आगे करके; शरण देने वाले भगवान् की शरण में आकर, हाथ जोड़ कर, अपनी देहको पृथ्वी पर पटक कर (दण्डवत् प्रणाम करके) प्रभु की शरण ली ॥३२॥

नागपत्न्य ऊचुः

न्याय्यो हि दण्डः कृतकिल्बिषेऽस्मिंस्तवावतारः खलनिग्रहाय । रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टेर्धत्से दमं फलमेवानुशंसन् ॥३३॥

नाग-पत्नियां बोलीं—आपने जो इस अपराधी को दण्ड दिया है, वह न्याय मय ही है, क्योंकि अवतार तो दुष्टों को दण्ड देनेके लिये ही है, आप जो भी दण्ड देते हैं उसके फलका विचार करके ही देते हैं, क्योंकि आप तो शत्रु और पुत्र पर समान दृष्टि रखते हैं ॥३३॥

अनुग्रहोऽयं भवता कृतो हि नो दण्डोऽसतां ते खलु कल्मषापहः यदन्दशूकत्वममुष्य देहिनः क्रोधोऽपि तेऽनुग्रह एव संमतः ॥३४॥

यह आपने हमपर अनुग्रह ही किया है; क्यों कि आपके दण्ड से अपराधीका पाप दूर होजाता है, जिस पाप के कारण इसे सर्प शरीर मिला है वह पाप आपके क्रोध से दूर हो चुकाहै, इसलिये आपका क्रोध देया-रूपही मानना चाहिये ॥३४॥

तपः सुतप्तं किमनेन पूर्वं निरस्तमानेन च मानदेन । धर्मोऽथ वा सर्वजनानुकम्पया यतो भवांस्तुष्यति सर्वजीवः ॥३५॥

इसने पूर्व जन्म में ऐसा कौनसा तप या धर्म किया है कि जिसके कारण सबको जीवित रखने वाले आप प्रसन्न हुए हैं, इसने अभिमान छोड़कर दूसरों को सन्मान दिया है या सब लोगों पर दया की है ? ॥३५॥

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे तवांघ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः । यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत् तपो विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता ॥३६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे प्रकाशमान् ! इसे हम नहीं जानतीं कि यह इसकी कौनसी तपस्या का फल है ? जो यह आप के चरणारविन्द की रजको स्पर्श करने का अधिकारी हुआहै कि जिस चरण-रजके लिये लक्ष्मीजी ने भी व्रत धारण करके, समस्त कामनायें छोड़ कर अधिक कालतक तप किया है ॥ ३६ ॥

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् । न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा वाञ्छन्ति यत्पादरजः प्रपन्नाः ॥३७॥

जो आपके चरण-रज की शरण हैं, वे स्वर्ग, चक्रवर्त्ति राज्य, ब्रह्मलोक,पाताल,योगकी सिद्धियां या मोक्ष कुछ भी नहीं चाहते ॥३७॥

तद्देष नाथाऽऽप दुरापमन्यैस्तमोजनिः क्रोधवशोऽप्यहीशः । संसारचक्रे भ्रमतः शरीरिणो यदिच्छतः स्याद्विभवः समक्षः ॥३८॥

हे नाथ ! जो चरण-रज अन्य पुरुषोंको अत्यंत दुर्लभ है, उस चरण-रजको यह तमोगुणसे उत्पन्न तथा क्रोधके वशमें रहने वाला नाग अनायास ही प्राप्त होगया, कि जिस चरण-रज की इच्छा करते ही संसार-चक्रमें भ्रमण करता हुआ प्राणी मनोवाञ्छित सम्पदा पा जाता है ॥३८॥

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ।
भूतावासाय भूताय पराय परमात्मने ॥३९॥

उन भगवान, महात्मा,आकाश आदि पंचभूतों के आश्रयरूप, अन्तर्यामी, सबके आदि कारण और परम कारण परमात्मा को हम प्रणाम करती हैं ॥

ज्ञानविज्ञाननिधये ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
अगुणायाविकाराय नमस्ते प्राकृताय च ॥४०॥

ज्ञान-विज्ञान के भंडार, ब्रह्म, अनन्त शक्ति, निर्गुण, निर्विकार और प्रकृति के प्रवर्त्तक आपको हम प्रणाम करती हैं ॥४०॥

कालाय कालनाभाय कालावयवसाक्षिणे ।
विश्वाय तदुपद्रष्ट्रे तत्कर्त्रे विश्वहेतवे ॥४१॥

काल रूप, काल-शक्ति के आश्रय रूप, काल के अंशों के साक्षी, विश्व रूप, विश्व के साक्षी, कर्त्ता और कारण-रूप ! आपको प्रणाम है ॥४१॥

भूतमात्रेन्द्रियप्राणमनोबुद्ध्याशयात्मने ।
त्रिगुणेनाभिमानेन गूढस्वात्मानुभूतये ॥४२॥

पंच महाभूत, उनकी मात्रायें,इन्द्रिय,प्राण, मन बुद्धि और चित्त के आत्मा, त्रिगुणात्मक अहंकार से अपने अंशरूप जीवों के स्वरूप को आच्छादन करने वाले ! आपको प्रणाम है ॥४२॥

नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते ।
नानावादानुरोधाय वाच्यवाचकशक्तये ॥४३॥

अनन्त, सूक्ष्म, कूटस्थ, सर्वज्ञ, अनेक प्रकारके वाद-विवाद से कहे जानेवाले, वाच्य और वाचक की शक्ति-भेद के अनुसार विविध रूपों से प्रतीत होने वाले आपको प्रणाम है ॥४३॥

नमः प्रमाणमूलाय कवये शास्त्रयोनये ।
प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमो नमः ॥४४॥

चक्षु आदि इन्द्रियों के भी इन्द्रिय-रूप, स्वयं सिद्ध, ज्ञान, मान, वेद के कारण, प्रवृत्ति और निवृत्ति के प्रतिपादन कर्त्ता, ऐसे वेद-रूप आपको प्रणाम है ॥४४॥

नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्त्वतां पतये नमः ॥४५॥

राम-कृष्ण रूप वसुदेव के पुत्र, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध रूप, भक्तों के पतिरूप आपको प्रणामहै ॥४५॥

नमो गुणप्रदीपाय गुणात्मच्छेदनाय च ।
गुणवृत्त्युपलक्ष्याय गुणद्रष्ट्रे स्वसंविदे ॥४६॥
अव्याकृतविहाराय सर्वव्याकृतसिद्धये ।
हृषीकेश नमस्तेऽस्तु मुनये मौनशीलिने ॥४७॥

अन्तःकरण के प्रकाशक, गुणों के द्वारा अपने स्वरूप को आच्छादन करने वाले, चित्त आदि की वृत्तियों से उपलक्ष्य, चित्त आदि के साक्षी अगोचर, अतर्क्य, महिमाधारी, समस्त कार्यों की उत्पत्ति और प्रकाश के द्वारा विचारणीय,इन्द्रियों के प्रवर्त्तक, आत्मामें रमण करनेकी ही बान रखने वाले आत्मा राम आपको प्रणाम है ॥४६॥४७॥

परावरगतिज्ञाय सर्वाध्यक्षाय ते नमः ।
अविश्वाय च विश्वाय तद्द्रष्ट्रेऽस्य च हेतवे॥४८॥

स्थूल और सूक्ष्म सबकी गति के जानने वाले समस्त विश्व के साक्षी, सर्वत्र अनासक्त, सबके अधिष्ठाता, निषेध के सीमारूप, जगत्-रूप; विवर्त के अधिष्ठान, अध्यास और अपवाद के साक्षी, विद्या और अविद्या के अपवाद तथा अध्यास के कारण आपको प्रणाम है ॥४८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्वं ह्यस्य जन्मस्थितिसंयमान् प्रभो गुणैरनीहोऽकृतकालशक्तिधृक्। तत्तत्स्वभावान् प्रतिबोधयन् सतः समीक्षयाऽमोघविहार ईहसे ॥४९॥

हे प्रभु! काल-शक्ति के धारण करनेवाले, प्रायः निष्क्रिय आप इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय करतेहो, हे अमोघ चरित्रकर्त्ता! आप अपनी इच्छा से उन-उन संस्कार से होने वाले स्वभावों को प्रतिबोधन करते हुए क्रीड़ा करते हो ॥४९॥

तस्यैव तेऽमूस्तनवस्त्रिलोक्यां शान्ता अशान्ता उत मूढयोनयः। शान्ताः प्रियास्ते ह्यधुनाऽवितुं सतां स्थातुश्च ते धर्मपरीप्सयेहतः ॥५०॥

त्रिलोक में शान्त, अशान्त और मूढ़ अर्थात् सात्विकी, राजसी और तामसी जितने शरीर हैं वे सब आपही के खेलने के खिलौने हैं, फिर भी इस समय आपको शान्त स्वरूप हीं प्रिय है; क्यों कि साधुजनों की रक्षा के लिये ही आपने अवतार धारण किया है ॥ ५० ॥

अनुगृह्णीष्व भगवन् प्राणांस्त्यजति पन्नगः। स्त्रीणां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम् ॥

हे शान्तमूर्त्ति! इस अज्ञान मूर्खको आप क्षमा कीजिये, क्योंकि स्वामी को एक वार अपनी प्रजा का अपराध अवश्य ही क्षमा करना चाहिये ॥५१॥

अपराधः सकृद्भर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः। क्षन्तुमर्हसि शान्तात्मन् मूढस्य त्वमजानतः॥५२॥

हे भगवन्! कृपा कीजिये, यह नाग मर रहाहै सज्जनों के द्वारा शोचनीय हम स्त्रियों पर कृपाकर के हमको पतिरूप प्राण दीजिये ॥५२॥

विधेहि ते किंकरीणामनुष्ठेयं तवाशया। यच्छ्रद्धयाऽनुतिष्ठन् वै मुच्यते सर्वतो भयात्॥५३॥

हम आपकी दासियां हैं, इसलिये जो आज्ञा करनी हो वह हमसे कीजिये, जो श्रद्धा-पूर्वक आप की आज्ञा का पालन करता है, वह सब प्रकार के भय से मुक्त हो जाता है ॥५३॥

श्रीशुक उवाच

इत्थं स नागपत्नीभिर्भगवान् समभिष्टुतः। मूर्छितं भग्नशिरसं विससर्जाघ्रिकुट्टनैः ॥५४॥

श्रीशुकदेवजी बोले—जब नाग-पत्नियों ने इस प्रकार से भगवान्की स्तुतिकी, तब उन्होंने चरण प्रहार से कुचले हुए सिर वाले मूर्छित नाग को छोड़ दिया ॥ ५४ ॥

प्रतिलब्धेन्द्रियप्राणः कालियः शनकैर्हरिम्। कृच्छ्रात् समुच्छ्वसन् कृष्णं दीनः प्राह कृताञ्जलिः॥

वह कालीनाग धीरे २ चैतन्य होकर हाथ जोड़ कर, कष्टके साथ श्वांस लेता हुआ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी की स्तुति करने लगा ! ५५ ॥

वयं खलाः सहोत्पत्त्या तामसा दीर्घमन्यवः। स्वभावो दुस्त्यजो नाथ लोकानां यदसद्ग्रहः ५६॥

हे नाथ! हम तो जन्म ही से दुष्ट, तमोगुणी और महान् क्रोधी हैं, किसी का स्वभाव तो मिट ही नहीं सकता है, इसी स्वभाव के कारण तो मनुष्यों को मिथ्या आग्रह बंध रहा है ॥५६॥

त्वया सृष्टमिदं विश्वं धातुर्गुणविसर्जनम्। नानास्वभाववीर्योजोयोनिबीजाशयाकृति ॥५७॥

हे विधाता! आपही ने गुणों से अनेक प्रकार की रचनामय, भिन्न-भिन्न स्वभाव, शक्ति, बल, योनि, बीज, संस्कार और आकृतियों वाला संसार रचा है ॥५७॥

वयं च तत्र भगवन् सर्पा जात्युरुमन्यवः। कथं त्यजामस्त्वन्मायां दुस्त्यजां मोहिताः स्वयम्॥

हे भगवन्! उसमें हम तो जन्म ही से महान् क्रोधी सर्प हैं और आपही के द्वारा मोहित हुए हैं, भला हम आपकी मायाको कैसे छोड़ सकते हैं ?॥

भवान् हि कारणं तत्र सर्वज्ञो जगदीश्वरः। अनुग्रहं निग्रहं वा मन्यसे तद् विधेहि नः॥५९॥

अपनी माया से छुड़ाने में आपही कारण हैं, क्योंकि आपही सर्वज्ञ और जगदीश्वरहैं, इसलिये हमें दण्ड दीजिये या हमपर कृपा कीजिये, यह दोनों बातें आपको उचित हैं ॥५९॥

श्रीशुक उवाच

इत्याकर्ण्य वचः प्राह भगवान् कार्यमानुषः। नात्र स्थेयं त्वया सर्प समुद्रं याहि मा चिरम्॥६०॥

श्रीशुकदेवजी बोले—लौकिक कर्म साधन के लिये मनुष्य-तनधारी भगवान् यह वचन सुनकर बोले कि हे नाग! तू यहाँ न रह, शीघ्र ही समुद्र को चला जा ॥६०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वज्ञात्यपत्यदाराढ्यो गोनृभिर्भुज्यतां नदी ।
य एतत् संस्मरेन्मर्त्यस्तुभ्यं मदनुशासनम् ॥६१॥

और अपने साथ अपने बन्धुओं, पुत्रों तथा स्त्रियों को भी लेता जा, इस नदी को गौऐं और मनुष्य उपयोग करेंगे, जो मनुष्य तुझसे कही हुई मेरी इस आज्ञा का प्रातः तथा संध्या के समय स्मरण व कीर्त्तन करेंगे, उन्हें तुम्हारा (सर्प मात्र का) भय न होगा ॥ ६१॥

कीर्तयन्नुभयोः संध्योर्न युष्मद्भयमाप्नुयात् ।
योऽस्मिन् स्नात्वा मदाक्रीडे देवादींस्तर्पयेज्जलैः ।
उपोष्य मां स्मरन्नर्चेत् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६२॥

जो मनुष्य मेरे क्रीड़ा-स्थल इस दह में स्नान करके देवादिकों को जलाञ्जलि देगा और उपवास करके मेरा पूजन व स्मरण करेगा, वह सब पापों से मुक्त होजायगा ॥६२॥

द्वीपं रमणकं हित्वा ह्रदमेतमुपाश्रितः ।
यद्भयात् स सुपर्णस्त्वां नाद्यान्मत्पादलाञ्छितम् ६३

जिस गरुड़ के भय से तूने रमणक-द्वीप छोड़ कर इस दह का आश्रय लिया है वह अब तुझे न खायगा, क्योंकि तेरे सिर पर मेरे चरणों का चिह्न (बन गया) है ॥६३॥

श्रीशुक उवाच

एवमुक्तो भगवता कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ।
तं पूजयामास मुदा नागपत्न्यश्च सादरम् ॥६४॥

श्रीशुकदेवजी बोले–अपूर्व चरित्रकर्त्ता भगवान् श्रीकृष्णजी ने जब इस प्रकार कहा, तब नाग तथा नाग-पत्नियों ने सादर सानंद उनका पूजन किया ॥

दिव्याम्बरस्रङ्मणिभिः पराध्यैरपि भूषणैः ।
दिव्यगन्धानुलेपैश्च महत्योत्पलमालया ॥६५॥
पूजयित्वा जगन्नाथं प्रसाद्य गरुडध्वजम् ।
ततः प्रीतोऽभ्यनुज्ञातः परिक्रम्याभिवाद्य तम् ।
सकलत्रसुहृत्पुत्रो द्वीपमध्ये जगाम ह ॥६६॥

वह दिव्य वस्त्र, माला, रत्न, अमूल्य आभूषण दिव्य चन्दन के लेपन और विशाल कमल माल से गरुड़ध्वज जगत्पति भगवान्का पूजनकर, प्रसन्न होकर आज्ञा मांगकर, परिक्रमादेकर, वंदनाकरकेऔर स्त्री-पुत्रोंको साथ लेकर समुद्रके द्वीपमें चलागया॥

तदैव साऽमृतजला यमुना निर्विषाऽभवत् ।
अनुग्रहाद् भगवतः क्रीडामानुषरूपिणः ॥६७॥

उसी क्षण यमुनाजीका जल नर-तनधारी भगवान् की कृपा से क्रीड़ा के लिये विष रहित और अमृत तुल्य होगया ॥६७॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

सत्रहवां अध्याय

(ब्रजवासियों की दावाग्निसे रक्षा)

राजोवाच

नागालयं रमणकं कस्मात् तत्याज कालियः ।
कृतं किं वा सुपर्णस्य तेनैकेनासमञ्जसम् ॥ १ ॥

परीक्षित बोले–काली नाग ने सर्पों के स्थान अपने रमणक द्वीप को क्यों छोड़ा था और गरुड़ का केवल काली नागने ही क्या अपराध कियाथा।

श्रीशुक उवाच

उपहार्यैः सर्पजनैर्मासि मासीह यो बलिः ।
वानस्पत्यो महाबाहो नागानां प्राङ्निरूपितः ॥२॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन्! गरुड़के आहार रूप नागों ने पहले गरुड़ की भूख-सम्बन्धी पीड़ा दूर करनेके लिये बारी-बारी से प्रति मास वृक्षकी जड़में बलिदान रखने का ठहरावा कर दिया ॥२॥

स्वं स्वं भागं प्रयच्छन्ति नागाः पर्वणिपर्वणि ।
गोपीथायात्मनः सर्वे सुपर्णाय महात्मने ॥ ३ ॥

वे नाग लोग प्रति अमावस्या को अपनी रक्षा के लिये महात्मा गरुड़ के लिये अपना-अपना बलि भाग दिया करते थे ॥३॥

विषवीर्यमदाविष्टः काद्रवेयस्तु कालियः ।
कदर्थीकृत्य गरुडं स्वयं तं बुभुजे बलिम् ॥ ४ ॥

परन्तु यह कद्रू का पुत्र काली नाग विष और वीर्यके अभिमानमें पड़कर, गरुड़को तुच्छ समझता हुआ उनके बलि-भाग को स्वयं खा गया ॥४॥

तच्छ्रुत्वा कुपितो राजन् भगवान् भगवत्प्रियः ।
विजिघांसुर्महावेगः कालियं समुपाद्रवत् ॥ ५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे राजन्! यह बात सुनकर भगवान् का प्रिय गरुड़ क्रोध करके इसे मारने के लिये बड़े वेग के साथ इसके पीछे दौड़ा ॥५॥

तमापतन्तं तरसा विषायुधः प्रत्यभ्ययादुच्छ्रितनैकमस्तकः। दद्भिः सुपर्णं व्यदशद् ददायुधः करालजिह्वोच्छ्वसितोग्रलोचनः ॥६॥

विष रूपी शस्त्रधारी काली नाग भी दौड़ कर आये हुए गरुड़ के सामने अपने फनों को ऊँचा उठाकर दौड़ा और वह दन्तरूपी आयुध, भयंकर जीभ और स्तंभित तथा उग्र वाला नाग गरुड़ को दांतों से काटने लगा ॥ ६ ॥

तं तार्क्ष्यपुत्रः स निरस्य मन्युमान् प्रचंडवेगो मधुसूदनासनः। पक्षेण सव्येन हिरण्यरोचिषा जघान कद्रूसुतमुग्रविक्रमः ॥ ७ ॥

तब तो उग्र पराक्रमी भगवान् के वाहन उस गरुड़ ने भी महान् क्रोध में आकर उसे पीछे हटा कर, बड़े वेग के साथ स्वर्णके समान चमकते हुए अपने बायें पंख से उसपर प्रहार किया ॥७॥

सुपर्णपक्षाभिहतः कालियोऽतीव विह्वलः। ह्रदं विवेश कालिन्द्यास्तदगम्यं दुरासदम् ॥ ८ ॥

वह काली नाग गरुड़के पंख प्रहारसे व्याकुल होकर यमुनाजी के दह में आकर निवास करने लगा क्योंकि सौभरि ऋषि के शाप से गरुड़ वहाँ जा न सकता था और अगाध जल होने से वहाँ उसका पराक्रम भी न चल सकता था ॥८॥

तत्रैकदा जलचरं गरुडो भक्ष्यमीप्सितम्। निवारितः सौभरिणा प्रसह्य क्षुधितोऽहरत् ॥ ९ ॥

उस दह में एक बार गरुड़ मछलियों को खाने के लिये आया, उसे सौभरि ऋषि ने रोका, किन्तु वह भूख के मारे उन मछलियोंको बलात्कार-पूर्वक खा गया ॥ ९ ॥

मीनान् सुदुःखितान् दृष्ट्वा दीनान् मीनपतौ हते। कृपया सौभरिः प्राह तत्रत्यं क्षेममाचरन् ॥१०॥

जब मछलियोंका राजा मरगया, तब मछलियां दुःखी होगईं, उन्हें दीन देखकर उनकी कुशल के लिये सौभरि ऋषि ने कहा कि ॥ १० ॥

अत्र प्रविश्य गरुडो यदि मत्स्यान् स खादति। सद्यः प्राणैर्वियुज्येत सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम् ॥११॥

"यदि गरुड़ यहाँ आकर मछलियोंको खायगा तो वह तत्काल ही प्राण-हीन होजायगा" यह मैं सत्य कहता हूँ ॥११॥

तं कालियः परं वेद नान्यः कश्चन लेलिहः। अवासीद् गरुडाद् भीतः कृष्णेन च विवासितः १२

इस बात को केवल काली नाग ही जानता था दूसरा कोई सर्प नहीं जानता था इसलिये वह गरुड़ से डरकर वहाँ रहता था, उसे श्रीकृष्ण जी ने निकाल दिया ॥१२॥

कृष्णं ह्रदाद्विनिष्क्रान्तं दिव्यस्रग्गन्धवाससम्। महामणिगणाकीर्णं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ॥१३॥

जब श्रीकृष्णचन्द्रजी दिव्य माला व वस्त्रपहने हुए, चन्दनादि का लेप किये हुए और अमूल्य मणियों से जटित सोने के गहने धारण किये हुए उस ह्रद से बाहर निकले ॥१३॥

उपलभ्योत्थिताः सर्वे लब्धप्राणा इवासवः। प्रमोदनिभृतात्मानो गोपाः प्रीत्याऽभिरेमिरे॥१४

तब भगवान्को पाकर समस्त व्रजवासी इस प्रकार से सचेत तथा आनंदित होकर प्रीति पूर्वक उनसे मिले, जैसे प्राण को पाकर इन्द्रियां सचेत होती हैं ॥ १४ ॥

यशोदा रोहिणी नन्दो गोप्यो गोपाश्च कौरव। कृष्णं समेत्य लब्धेहा आसन् लब्धमनोरथाः १५॥

हे कौरव! श्रीकृष्णजी को पाकर यशोदा, रोहिणी, नन्दजी, गोपियां और गोप सचेष्ट होगये और उनका मनोरथ पूर्ण होगया ॥१५॥

रामश्चाच्युतमालिङ्ग्य जहासास्यानुभाववित्। नगा गावो वृषा वत्सा लेभिरे परमां मुदम् ॥१६॥

बलरामजी श्रीकृष्णजी से मिलकर हँसे, क्यों कि वह उनका प्रभाव जानते थे, गौएँ, बैल और बछड़े सभी परमानन्द को प्राप्त हुए, तथा जो वृक्ष (काली नाग के प्रभाव से) सूख गये थे, वे फिर से हरे हो गये ॥ १६ ॥

नन्दं विप्राः समागत्य गुरवः सकलत्रकाः। ऊचुस्ते कालियग्रस्तो दिष्ट्या मुक्तस्तवात्मजः १७

उस समय ब्राह्मणों तथा गुरु ने स्त्री सहित आकर नन्दरायजी से कहा कि आपका पुत्र काली नागके ग्रसनेपर भी बच गया-यह बड़ा अच्छा हुआ॥

देहि दानं द्विजातीनां कृष्णनिर्मुक्तिहेतवे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नन्दः प्रीतमना राजन् गाः सुवर्णं तदाऽदिशत् १८

'श्रीकृष्णजीके बचनेके उपलक्षमें आप ब्राह्मणों को दान दीजिये' हे राजन्! तब श्रीनन्दरायजी ने प्रसन्नता-पूर्वक गौ तथा स्वर्णका दान किया ॥१८॥

यशोदापि महाभागा नष्टलब्धप्रजा सती ।
परिष्वज्याङ्कमारोप्य मुमोचाश्रुकलां मुहुः ॥१९॥

सती यशोदाजीभी परम भाग्यवती हैं कि जिन का पुत्र मरकर फिरसे मिलगया, उन्होंने श्रीकृष्ण जी को गोदमें लेकर बार-बार आँसू बहाये ॥१९॥

तां रात्रिं तत्र राजेन्द्र क्षुत्तृड्भ्यां श्रमकर्षिताः ।
ऊषुर्व्रजौकसो गावः कालिन्द्या उपकूलतः ॥२०॥

हे राजन्! व्रजवासी और गौऐं भूख, प्यास और श्रम से थक चुके थे, इसलिये वे उस रातको वहीं यमुना के तट पर ठहरे रहे ॥२०॥

तदा शुचिवनोद्भूतो दवाग्निः सर्वतो व्रजम् ।
सुप्तं निशीथ आवृत्य प्रदग्धुमुपचक्रमे ॥२१॥

तब ग्रीष्म ऋतु के कारण वनमें उत्पन्न हुए दावानल ने सोते हुए व्रजवासियों को आधी रात में चारों ओर से घेरकर जलाना आरंभ करदिया॥

तत उत्थाय संभ्रान्ता दह्यमाना व्रजौकसः ।
कृष्णं ययुस्ते शरणं मायामनुजमीश्वरम् ॥२२॥

तब व्रजवासी अकुला कर उठे और जलतीहुई दशा में माया से नर-तनधारी परमेश्वर श्रीकृष्ण के शरण गये ॥ २२ ॥

कृष्ण कृष्ण महाभाग हे रामामितविक्रम ।
एष घोरतमो वह्निस्तावकान् ग्रसते हि नः ॥२३॥

(और बोले कि) हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महा भाग! हे राम! हे परम पराक्रमी! हम जो आप के व्रजवासी हैं, उन्हें यह महा घोर अग्नि भस्म किये देता है ॥ २३ ॥

सुदुस्तरान्नः स्वान् पाहि कालाग्नेः सुहृदः प्रभो ।
न शक्नुमस्त्वच्चरणं संत्यक्तुमकुतोभयम् ॥२४॥

हे प्रभु! इस घोर दुस्तर कालरूप अग्निसे हम मित्रों की रक्षा कीजिये, हम आपके भय रहित चरण नहीं छोड़ सकते ॥२४॥

इत्थं स्वजनवैक्लव्यं निरीक्ष्य जगदीश्वरः ।
तमग्निमविषत् तीव्रमनन्तोऽनन्तशक्तिधृक् ॥२५॥

विश्व के स्वामी और अनन्त शक्ति के धारण करनेवाले श्रीकृष्णजी इसप्रकार अपने व्रजवासियों की व्याकुलता देखकर उस भयानक अग्नि को पान कर गये ॥ २५ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अठारहवां अध्याय

(प्रलम्बासुर-वध)

श्रीशुक उवाच

अथ कृष्णः परिवृतो ज्ञातिभिर्मुदितात्मभिः ।
अनुगीयमानो न्यविशद्व्रजं गोकुलमण्डितम् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी बोले—फिर श्रीकृष्णजी अपने प्रसन्न चित्त बन्धुओं के साथ उनके द्वारा गाये जाने वाले अपने चरित्र सुनते हुए गौ-समूह से शोभायमान् होते हुए सबके साथ मिल-जुल कर व्रज में पधारे ॥१॥

व्रजे विक्रीडतोरेवं गोपालच्छद्ममायया ।
ग्रीष्मो नामर्तुरभवन्नातिप्रेयान् शरीरिणाम् ॥ २ ॥

इस प्रकार गौ-पालनके बहाने से मायाके द्वारा व्रज में दोनों भाइयों के क्रीड़ा करते-करते ग्रीष्म ऋतु आ पहुंची जो देह धारियों को अधिक प्रिय नहीं लगता ॥ २ ॥

स च वृन्दावनगुणैर्वसन्त इव लक्षितः ।
यत्रास्ते भगवान साक्षाद्रामेण सह केशवः ॥ ३ ॥

परन्तु जहाँ बलरामजी के साथ साक्षात् श्री कृष्णजी विराजमान् हैं, ऐसे वृन्दावन के गुणों से वह ग्रीष्म भी बसन्तके समान जान पड़ता था ॥३॥

यत्र निर्झरनिर्हादनिवृत्तस्वनझिल्लिकम् ।
शश्वत्तच्छीकरर्जीषं द्रुममण्डलमण्डितम् ॥ ४ ॥

जहाँ झरनों की झनकार के आगे झिल्ली का शब्द सुनाई नहीं देता था और लगातार झरनोंकी बूंदों से लहराते हुए वृक्षों का झुंड शोभा देताथा।

सरित्सरःप्रस्रवणोर्मिवायुना कह्लारकञ्जोत्पलरेणुहारिणा । न विद्यते यत्र वनौकसां दवो निदाघवह्न्यर्कभवोतिशाद्वले ॥ ५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जहाँ नदी और तालाबों के झरने और लहरों से मिला हुआ, शीतल, कल्हार, कमल और उत्पल की रज को हरने वाला सुगंध, मन्द पवन चलता था, इसलिये अत्यन्त हरी-हरी घासवाले उस बन में व्रजवासियों को कहीं ग्रीष्मकी अग्नि तथा सूर्य की ताप न जान पड़ती थी ॥५॥

अगाधतोयह्रदिनीतटोर्मिभिर्द्रवत्पुरीष्याःपुलिनैः समन्ततः । न यत्र चण्डांशुकरा विषोल्बणा भुवो रसं शाद्वलितं च गृह्णते ॥ ६ ॥

जहाँ किनारे से लगने वाली बड़े जलाशयोंकी लहरों के कारण तट की मिट्टीके साथ-साथ दूसरी मिट्टी भी गीली रहती थी, ऐसी पृथ्वीके रस तथा हरियाली को सूर्य की विष तुल्य भयानक किरणें नहीं सुखा सकतीं थीं ॥६॥

वनं कुसुमितं श्रीमन्नदच्चित्रमृगद्विजम् । गायन्मयूरभ्रमरं कूजत्कोकिलसारसम् ॥ ७ ॥

जो पुष्पों से हरा-भरा होरहा है, जहाँ विचित्र पशु-पक्षी नाद कररहे हैं, मोर तथा भौंरे गारहे हैं और कोयल तथा सारस बोल रहे हैं ॥७॥

क्रीडिष्यमाणस्तत् कृष्णो भगवान् बलसंयुतः । वेणुंविरणयन् गोपैर्गोधनैः संवृतोऽविशत् ॥ ८ ॥

ऐसे वनमें श्रीकृष्णचन्द्रजी क्रीड़ा करने की इच्छा से, बलरामजी के साथ गो-धन वाले गोपों से मिले-जुले वंशी बजाते हुए पधारे ॥८॥

प्रवालबर्हस्तबकस्रग्धातुकृतभूषणाः । रामकृष्णादयो गोपा ननृतुर्युयुधुर्जगुः ॥ ९ ॥

राम-कृष्ण आदि सभी ग्वाल मोर पंख, गुच्छे माला धातु के गहने बनाकर कभी नाच करते हैं, कभी कुश्ती लड़ते हैं और कभी गाते हैं ॥९॥

कृष्णस्य नृत्यतः केचिज्जगुः केचिदवादयन् । वेणुपाणितलैः शृङ्गैः प्रशशंसुरथापरे ॥१०॥

जब श्रीकृष्णजी नृत्य करते हैं तब कई एक ग्वाल तो गाते हैं, कई एक बाँसुरी, करताल और सींगको बजातेहैं तथा दूसरे गोप प्रशंसा करतेहैं।

गोपजातिप्रतिच्छन्ना देवा गोपालरूपिणः । ईडिरे कृष्णरामौ च नटा इव नटं नृप ॥११॥

हे राजन् ! गोप-रूपमें छिपे हुए देवता-गण गोपाल-रूप श्रीराम-कृष्ण की स्तुति करते हैं, जैसे एक नट दूसरे नट की प्रशंसा करता है ॥११॥

भ्रामणैर्लङ्घनैः क्षेपैरास्फोटनविकर्षणैः । चिक्रीडतुर्नियुद्धेन काकपक्षधरौ क्वचित् ॥१२॥

कभी-कभी ये दोनों भाई काकपक्ष धारण किये हुए चक्कर लगाना, कूदना, फेंकना, खम ठोकना, खींचना, बाहु युद्ध आदि अनोखे खेल खेलते हैं ॥

क्वचिन्नृत्यत्सु चान्येषु गायकौ वादकौ स्वयम् । शशंसतुर्महाराज साधु साध्विति वादिनौ ॥१३॥

हे राजन् ! जबकभी दूसरे ग्वाल नाचतेहैं तब श्रीकृष्णजी गाते और बजाते हैं और वाह-वाह ! कहके उसकी प्रशंसा करते हैं ॥१३॥

क्वचिद् विल्वैः क्वचित् कुम्भैःक्व चामलकमुष्टिभिः । अस्पृश्यनेत्रबन्धाद्यैः क्वचिन्मृगखगेहया ॥१४॥

क्वचिच्च दर्दुरप्लावैर्विविधैरुपहासकैः । कदाचित् स्पन्दोलिकया कर्हिचिन्नृपचेष्टया॥१५॥

एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वने । नद्यद्रिद्रोणिकुञ्जेषु काननेषु सरस्सु च ॥१६॥

कभी बेलों से, कभी कुंभी फलों से, कभी आमलों से, कभी मुट्ठियों से, कभी एक दूसरे को छूने की चेष्टा करने से, कभी आँख मिचौनी से, कभी पशु-पक्षियों के अनुकरण से, कभी मेंढक की भांति फुदकने से, कभी अनेक प्रकार के हास्योंसे, कभी झूलों से, कभी राजाओं की लीलाओं से, वे दोनों भाई लोक प्रसिद्ध अनेक प्रकार की क्रीड़ायें करते हुए बन, नदी, पर्वत की गुफा, कुंज, कानन, और सरोवरों में विचरण करते हैं ॥१४।१५॥१६॥

पशूंश्चारयतोर्गोपैस्तद्वने रामकृष्णयोः । गोपरूपी प्रलम्बोऽगादसुरस्तज्जिहीर्षया ॥१७॥

उस बनमें गोपों के साथ पशुओं को चराते हुए श्रीराम-कृष्ण का हरण करने के लिये प्रलम्ब नामक असुर गोप का वेष बनाकर वहाँ आया ॥

तं विद्वानपि दाशार्हो भगवान् सर्वदर्शनः । अन्वमोदत तत्सख्यं वधं तस्य विचिन्तयन् ॥१८॥

यद्यपि सर्वज्ञ भगवान् उसको जानते थे, फिर भी उन्होंने उसे बध करनेका विचार करके उसके साथ मित्रता करनी स्वीकार की ॥१८॥

तत्रोपहूय गोपालान् कृष्णः प्राह विहारवित् । हे गोपा विहरिष्यामो द्वन्द्वीभूय यथायथम्॥१९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सब खेलों के जाननेवाले श्रीकृष्णजी ने सब ग्वालोंको वहाँ बुलाकर कहा कि "हे गोपो ! हम तो ठीक २ दो टोलियां बनाकर खेलेंगे ॥१९॥

तत्र चक्रुः परिवृढौ गोपा रामजनार्दनौ ।
कृष्णसंघट्टिनः केचिदासन् रामस्य चापरे ॥२०॥

वहाँ गोपों ने श्रीराम और कृष्ण को मुखिया बनाया, कुछ ग्वाल श्रीबल्देवजी के पक्ष में होगये और कुछ श्रीकृष्णजी के पक्ष में हुए ॥२०॥

आचेरुर्विविधाः क्रीडा वाह्यवाहकलक्षणाः ।
यत्रारोहन्ति जेतारो वहन्ति च पराजिताः ॥२१॥

वे एक दूसरे के कन्धोंपर चढ़ने-चढ़ाने आदि के अनेक खेल खेलने लगे, जिसमें जो हारते थे वे दूसरों को अपने कन्धोंपर चढ़ाकर ले जाते थे और और जो जीतते थे वे हारने वालों के कन्धों पर चढ़ते थे ॥ २१ ॥

वहन्तो वाह्यमानाश्च चारयन्तश्च गोधनम् ।
भाण्डीरकं वटं नाम जग्मुः कृष्णपुरोगमाः॥२२॥

इस प्रकार चढ़ते चढ़ाते हुए तथा गायों को चरातेहुए श्रीकृष्णजी आदि ग्वाल भांडरीक नामक बट के पास जा पहुँचे ॥२२॥

रामसंघट्टिनो यर्हि श्रीदामवृषभादयः ।
क्रीडायां जयिनस्तांस्तान् हुःकृष्णादयो नृप॥२३॥

हे राजन् ! जब बलरामजी की ओर वाले श्रीदामा, वृषभ आदि गोप जीत गये तब श्रीकृष्ण आदि उनको चढ़ाकर ले गये ॥२३॥

उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः ।
वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलम्बो रोहिणीसुतम् ॥२४॥

श्रीकृष्ण भगवान् ने हार कर श्रीदामा को उठाया, भद्रसेन ने वृषभ को और प्रलम्ब ने बलरामजी को उठाया ॥२४॥

अविषह्यं मन्यमानः कृष्णं दानवपुङ्गवः ।
वहन् द्रुततरं प्रागादवरोहणतः परम् ॥२५॥

वह दानवों में श्रेष्ठ प्रलम्बासुर श्रीकृष्णजी को बलवान् मानकर बल्देवजी को पीठ पर चढ़ाकर शीघ्रता के साथ दौड़ता हुआ नियत स्थान से भी आगे निकल गया ॥२५॥

तमुद्वहन् धरणिधरेन्द्रगौरवं महासुरो विगतरयो निजं वपुः । स आस्थितः पुरटपरिच्छदो बभौ तडिद्द्युमानुडुपतिवाडिवाम्बुदः ॥२६॥

पर्वत के समान भार करने वाले बलरामजीके भार से उस महादैत्य का वेग मन्द पड़ गया, तब उसने तत्काल ही अपना दैत्य-रूप धारण किया, उस समय वह स्वर्णके गहने धारण किये हुए ऐसा शोभायमान् होरहा था, जैसे चंद्रमा को धारण किये हुए बिजली की चमक से बादल शोभायमान् होता है ॥२६॥

निरीक्ष्य तद्वपुरलमम्बरे चरत् प्रदीप्तदृग् भ्रुकुटितटोग्रदंष्ट्रकम् । ज्वलच्छिखं कटककिरीटकुण्डलत्विषाऽद्भुतं हलधर ईषदत्रसत् ॥२७॥

आकाश पर्यन्त पहुंचनेवाले दीर्घकाय, अत्यंत वेग से प्रदीप्त दृष्टिवान् भौंहतक जिसकी उग्र दाढ़ों का विस्तार है तथा जिसके केश जल रहे हैं, ऐसे किरीट, कुंडल और कंकणों की कान्ति से उस अद्भुत रूप वाले दैत्य की देह को देखकर बलराम जी कुछ डर से गये ॥ २७ ॥

अथाऽऽगतस्मृतिरभयो रिपुं बलो विहायसा-ऽर्थमिव हरन्तमात्मनः । रुषाऽहनच्छिरसि दृढेन मुष्टिना सुराधिपो गिरिमिव वज्ररंहसा ॥२८॥

फिर स्मरण आते ही श्रीबल्देवजी ने निर्भय होकर अपने साथियों में से बल-पूर्वक छुड़ायेलिये जाते हुए उस दैत्य पर क्रोध पूर्वक अपनी दृढ़ मुष्टि से इस प्रकार प्रहार किया, जैसे इन्द्र पर्वत पर वज्र-प्रहार करते हैं ॥२८॥

स आहतः सपदि विशीर्णमस्तको मुखाद् वमन् रुधिरमपस्मृतोऽसुरः । महारवं व्यसुरपतत् समीरयन् गिरिर्यथा मघवत आयुधाहतः ॥२९॥

प्रहार होते ही उसका सिर फट गया, मुंह से लोहू बहने लगा और वह घोर शब्द करता हुआ अचेत होकर तथा निष्प्राण होकर गिर गया, जैसे इन्द्र के वज्र-प्रहार से पर्वत गिर जाता है ॥२९॥

दृष्ट्वा प्रलम्बं निहतं बलेन बलशालिना ।
गोपाः सुविस्मिता आसन् साधु साध्विति वादिनः॥
आशिषोऽभिगृणन्तस्तं प्रशशंसुस्तदर्हणम् ।
प्रेत्यागतमिवालिङ्ग्य प्रेमविह्वलचेतसः ॥३१॥

पराक्रमी बलरामजी के हाथ से प्रलम्बासुरको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मरा हुआ देख-देखकर गोपोंने महान् आश्चर्यकिया और वे 'साधु-साधु' कहते हुए आशीर्वाद देकर प्रेम से विकल चित्त गोप प्रशंसनीय बलदेवजी की प्रशंसा करके ऐसे भेंट करनेलगे; मानो कोई मृतक पुरुषके जीवित होजाने पर उससे भेंट करता है॥

पापे प्रलम्बे निहते देवाः परमनिर्वृताः।
अभ्यवर्षन् बलं माल्यैः शशंसुः साधु साध्विति ३२

पापी प्रलम्ब के मरनेसे देवता परम आनंदित हुए, उन्होंने बलरामजी पर पुष्प बरसाये और वाह-वाह! कहकर प्रशंसा करने लगे॥३२॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे अष्टदशोऽध्यायः॥१८॥

उन्नीसवां अध्याय

(दावाग्नि-पान वर्णन)

श्रीशुक उवाच

क्रीडासक्तेषु गोपेषु तद्गावो दूरचारिणीः।
स्वैरं चरन्त्यो विविशुस्तृणलोभेन गह्वरम्॥ १॥

श्रीशुकदेवजी बोले-जब गोप खेलनेमें लगगये तब उनकी गौऐं स्वेच्छा पूर्वक चरती हुई घास के लोभसे दूर निकल कर दूसरे बनमें चली गईं॥१॥

अजा गावो महिष्यश्च निर्विशन्त्यो वनाद्वनम्।
इषीकाटवीं विविशुः क्रन्दन्त्यो दावतर्षिताः॥ २॥

अजा, गौऐं और भैंसें एक बनसे दूसरे में प्रवेश करतीहुई, दावानलसे प्यासी होकर रँभाती हुई मुञ्ज बनमें जा पहुंचीं॥२॥

तेऽपश्यन्तः पशून् गोपाः कृष्णरामादयस्तदा।
जातानुतापा न विदुर्विचिन्वन्तो गवां गतिम्॥ ३॥

राम-कृष्ण आदि वे सभी गोप पशुओं को न देखकर दुःखी हो उठे, उन्होंने उनकी बहुत कुछ खोज की, परन्तु कोई पता न चला॥३॥

तृणैस्तत्खुरदच्छिन्नैर्गोष्पदैरङ्कितैर्गवाम्।
मार्गमन्वगमन् सर्वे नष्टाऽऽजीव्या विचेतसः॥ ४॥

तब जीविका का द्वारा नष्ट होजाने से उनके चित्त अनस्थिर होउठे और वे गौ-खुर तथा दांतों से काटी हुई घास के चिह्नों के सहारे पर मार्ग की खोज लगाते हुए चले॥४॥

मुञ्जाटव्यां भ्रष्टमार्गं क्रन्दमानं स्वगोधनम्।
संप्राप्य तृषिताः श्रान्तास्ततस्ते संन्यवर्तयन्॥ ५॥

मुञ्ज-बन में मार्ग भूलकर पुकारते हुए अपने गौ-धन को पाकर प्यासे तथा थके हुए गोपों ने उसे फिर घेरा॥५॥

ता आहूता भगवता मेघगम्भीरया गिरा।
स्वनाम्नां निनदं श्रुत्वा प्रतिनेदुः प्रहर्षिताः॥ ६॥

जब श्रीकृष्ण भगवान् ने मेघ के समान गंभीर वाणी से उन्हें पुकारा, तब वे गौऐं अपने नाम का शब्द सुनकर आनन्दित होकर स्वयं पुकारनेलगीं॥

ततः समन्ताद्वनधूमकेतुर्यदृच्छयाभूत् भयकृद्वनौकसाम्। समीरितः सारथिनोल्बणोल्मुकैर्विलेलिहानः स्थिरजङ्गमान् महान्॥ ७॥

दैवेच्छा से वहाँ चारों ओर बनवासियों का नाश करने वाली घोर दावाग्नि लगी, जो वायु के चलने से भवकती हुई बढ़ रहीथी और जलतीहुई लकड़ियोंसे स्थावर-जङ्गम को जला रही थी॥७॥

तमापतन्तं परितो दवाग्निं गोपाश्च गावः प्रसमीक्ष्य भीताः। ऊचुश्च कृष्णं सबलं प्रपन्ना यथा हरिं मृत्युभयार्दितो जनः॥८॥

चारों ओर से बढ़ते हुए उस दावानलको देख कर गौऐं और ग्वाल डरे और बलरामजी सहित श्रीकृष्णजी के शरण में आकर इस प्रकार प्रार्थना करने लगे, जैसे मनुष्य मृत्यु से भयभीत होकर, भगवान् के शरण जाकर प्रार्थना करता है॥८॥

कृष्ण कृष्ण महावीर्य हे रामामितविक्रम।
दवाग्निना दह्यमानान् प्रपन्नांस्त्रातुमर्हथः॥९॥

हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महावीर! हे राम! हे परम पराक्रमी! इस दावानल से जलते हुए हम शरणागत लोगों की रक्षा कीजिये॥९॥

नूनं त्वद्बान्धवाः कृष्ण नचार्हन्त्यवसीदितुम्।
वयं हि सर्वधर्मज्ञ त्वन्नाथास्त्वत्परायणाः॥१०॥

हे कृष्ण! हम आपके बन्धु हैं, हमको दुःख होना उचित नहीं, हे समस्त धर्मों के जाननेवाले! हमारे तो नाथ तथा शरण-दाता आपही हैं॥१०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीशुक उवाच

वचो निशम्य कृपणं बन्धूनां भगवान् हरिः ।
निमीलयत मा भैष्ट लोचनानीत्यभाषत ॥११॥

श्रीशुकदेवजी बोले-भगवान् श्रीकृष्णजी बंधुओं के ऐसे दीन वचन सुनकर बोले कि-हे गोपो ! डरो मत, आँखें बन्द करलो ॥११॥

तथेति मीलिताक्षेषु भगवानग्निमुल्बणम् ।
पीत्वा मुखेन तान् कृच्छ्राद् योगाधीशो व्यमोचयत् ॥

उसी प्रकार आँखें बन्द करनेपर योगेश्वर श्री कृष्ण भगवान्ने मुखसे उस भयानक अग्निको पान करके उन गोपों को उस कष्टसे छुड़ाया ॥ १२ ॥

ततश्च तेऽक्षीण्युन्मील्य पुनर्भाण्डीरमापिताः ।
निशम्य विस्मिता आसन्नात्मानं गाश्च मोचिताः ॥

फिर जैसे ही उन्होंने आँखें खोलीं तो उन्होंने अपने को भांडीर बनमें पहुँचा हुआ पाया, वे लोग अपने को तथा गौओं को दावाग्नि से मुक्त देखकर अचरज करने लगे ॥१३॥

कृष्णस्य योगवीर्यं तद् योगमायानुभावितम् ।
दवाग्नेरात्मनः क्षेमं वीक्ष्य ते मेनिरेऽमरम् ॥१४॥

जिसमें योगमाया का प्रभाव प्रकट होरहा है, ऐसा अपनेको दावाग्नि से छुड़ानेवाला श्रीकृष्णजी के योग-प्रभाव को देखकर गोपोंने यह समझलिया कि यह मनुष्य नहीं-देवता हैं ॥१४॥

गाः सन्निवर्त्य सायाह्ने सहरामो जनार्दनः ।
वेणुं विरणयन् गोष्ठमगाद् गोपैरभिष्टुतः ॥१५॥

संध्याके समय बलरामजी के साथ श्रीकृष्णजी गौओं को घेर कर, ग्वालों से स्तुति कराते और वंशी बजाते हुए गोकुल में पधारे ॥१५॥

गोपीनां परमानन्द आसीद् गोविन्ददर्शने ।
क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाऽभवत् ॥१६॥

श्रीकृष्ण भगवान् के दर्शन पाते ही गोपियों को परमानन्द प्राप्त हुआ कि जिनका एक-एक क्षण श्रीभगवान् के विरह में सौ युग के समान बीत रहा था ॥ १६ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

बीसवां अध्याय

(वर्षाऋतु-वर्णन)

श्रीशुक उवाच

तयोस्तदद्भुतं कर्म दावाग्नेर्मोक्षमात्मनः ।
गोपाः स्त्रीभ्यः समाचख्युः प्रलम्बवधमेव च ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-गोपोंने अपनेको दावानल से बचाने तथा प्रलम्बासुरके वध करनेका श्रीकृष्ण राम चरित अपनी स्त्रियों को सुनाया ॥१॥

गोपवृद्धाश्च गोप्यश्च तदुपाकर्ण्य विस्मिताः ।
मेनिरे देवप्रवरौ कृष्णरामौ व्रजं गतौ ॥ २ ॥

वृद्ध ग्वाल और गोपियों ने यह बात सुनकर अचरज किया और व्रजमें आये हुए श्रीराम-कृष्ण को देवोत्तम माना ॥२॥

ततः प्रावर्तत प्राट्ट सर्वसत्त्वसमुद्भवा ।
विद्योतमानपरिधिर्विस्फूर्जितनभस्तला ॥ ३ ॥

इसके पीछे सब जीवों को उत्पन्न करने वाली तथा जीवन देने वाली वर्षा ऋतु आई, सूर्य-चन्द्र के मण्डल बनने लगे और आकाश में हलचल मचने लगी ॥ ३ ॥

सान्द्रनीलाम्बुदैर्व्योम सविद्युत्स्तनयित्नुभिः ।
अस्पष्टज्योतिराच्छन्नं ब्रह्मैव सगुणं बभौ ॥ ४ ॥

आकाशमें सांवली घटा छागई, जिसमें बिजली चमकने लगी, कड़कड़ाहट होने लगी, उस समय आकाश-मण्डल तीन गुणों से ढके हुए जीव के स्वरूप की भांति शोभा देता था ॥४॥

अष्टौ मासान् निपीतं यत् भूम्याश्चोदमयं वसु ।
स्वगोभिर्मोक्तुमारेभे पर्जन्यः काल आगते ॥ ५ ॥

जैसे राजा प्रजा से धन लेकर पीछे प्रजाही को दे देता है, वैसे ही सूर्य भगवान् आठ मास तक पृथ्वी का जलरूपी धन अपनी किरणों के द्वारा खींचकर समय आने पर फिर उसीको देने लगे ॥

तडित्वन्तो महामेघाश्चण्डश्वसनवेपिताः ।
प्रीणनं जीवनं ह्यस्य मुमुचुः करुणा इव ॥ ६ ॥

जैसे दयावान् पुरुष दुःखी को देखकर उसे सुखी करने के लिये दया से कम्पित होकर अपना जीवन तक त्याग देते हैं, वैसे ही बड़े-बड़े मेघ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बिजली रूपी आँखों से इस जगत् को तप्त देखकर वेगवान् वायु से कम्पित होकर अपना जीवन (जल) छोड़ने लगे ॥ ६ ॥

तपःकृशा देवमीढा आसीत् वर्षीयसी मही ।
यथैव काम्यतपसस्तनुः संप्राप्य तत्फलम् ॥ ७ ॥

जैसे फल की इच्छा रखनेवाले पुरुषका शरीर तप करने से पहले दुर्बल पड़कर फिर तपका फल पाने पर पुष्ट होजाता है, वैसे ही ग्रीष्म रूपी तपसे दुर्बल हुई पृथ्वी मेघ-जलरूपी फल को पाकर पुष्ट हो गई ॥ ७ ॥

निशामुखेषु खद्योतास्तमसा भान्ति न ग्रहाः ।
यथा पापेन पाखण्डा न हि वेदाः कलौ युगे ॥ ८ ॥

जैसे कलियुग में पाप के प्रभाव से वेद गुप्त होकर पाखंड का प्रकाश होजाता है, वैसेही प्रदोष के समय अन्धकार से ग्रह छिपगये हैं और जुगनू प्रकाश करने लगे हैं ॥८॥

श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मण्डूका व्यसृजन् गिरः ।
तूष्णीं शयानाः प्राग् यद्वत् ब्राह्मणा नियमात्यये ९

जैसे मौन धारण किये हुए शिष्य नित्य-कर्मसे अवकाश पाने पर गुरु की वाणी सुनकर पढ़ना आरम्भ करते हैं, वैसे ही मेघ का शब्द सुनकर मेंढक बोलने लगे हैं ॥ ९ ॥

आसन्नुत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यतीः ।
पुंसो यथाऽस्वतन्त्रस्य देहद्रविणसंपदः ॥ १० ॥

जैसे अजितेन्द्रिय पुरुष का शरीर, धन तथा सम्पत्ति मर्यादा छोड़कर उलटे पथ को जाते हैं, वैसे ही तत्काल सूख जाने वाली क्षुद्र नदियों का जल मर्यादा छोड़कर उलटे मार्गको वह निकलाहै ।

हरिता हरिभिः शष्पैरिन्द्रगोपाश्च लोहिताः ।
उच्छिलीन्ध्रकृतच्छाया नृणां श्रीरिव भूरभूत् ॥ ११

जैसे राजा की सेना विचित्र वर्ण तथा छत्रों की छाया वाली दीख पड़ती है, वैसे ही हरी घास वीर बहूटी और छत्रक से पृथ्वी हरी, लाल तथा छत्र-छाया वाली प्रतीत होने लगी है ॥११॥

क्षेत्राणि सस्यसंपद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः ।
धनिनामुपतापं च दैवाधीनमजानताम् ॥ १२ ॥

खेतों में अनाज की बढ़ती देखकर किसान आनन्द में मग्न होरहे हैं, परन्तु धान्य को संग्रह करने वाले व्यापारी लोग यह सोच कर कि लाभ का होना दैवाधीन है' दुःखी होरहे हैं ॥१२॥

जलस्थलौकसः सर्वे नववारिनिषेवया ।
अबिभ्रद्रुचिरं रूपं यथा हरिनिषेवया ॥ १३ ॥

जैसे भगवद्भक्त भगवान्की सेवा करके सुंदर स्वरूप को पाते हैं, वैसे ही जल-स्थल के रहनेवाले सभी प्राणी नवीन जलको सेवन करके सुन्दर स्वरूप को प्राप्त हुए हैं ॥१३॥

सरिद्भिः संगतः सिन्धुश्चुक्षुभे श्वसनोर्मिमान् ।
अपक्वयोगिनश्चित्तं कामाक्तं गुणयुग्यथा ॥ १४ ॥

जैसे अदृढ़ चित्त योगी तथा विषयी मनुष्य का चित्त विषयों में चलायमान हुआ करता है, वैसे ही नदियों से मिलने तथा पवन की लहरें लगने से समुद्र भी क्षुब्ध हो उठा है ॥१४॥

गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः ।
अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाऽधोक्षजचेतसः ॥ १५ ॥

जैसे भगवान् में चित्त लगाने वाले भक्त पुरुष दुःख पड़ने से व्यथा नहीं मानते, वैसे ही पर्वत वर्षा की धारा पड़ने से व्यथित नहीं होते ॥१५॥

मार्गा बभूवुः संदिग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यसंस्कृताः ।
नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः कालहता इव ॥ १६ ॥

जैसे अभ्यास न करने तथा समय बीत जाने पर ब्राह्मणों का पढ़ा हुआ वेद भ्रमपूर्ण होजाता है, वैसे ही लोगों का आवागमन रुक जाने से तथा घास से ढक जाने के कारण रस्ते भी भ्रम-पूर्ण हो गये हैं ॥१६॥

लोकबन्धुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः ।
स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिष्विव ॥ १७ ॥

जैसे क्षणिक स्नेह रखने वाली कुलटायें गुणवान् पुरुषों से स्थिरता नहीं रखतीं, वैसेही लोकहितकारी मेघों में बिजली स्थिर नहीं रहती ॥१७॥

धनुर्वियति माहेन्द्रं निर्गुणं च गुणिन्यभात् ।
व्यक्ते गुणव्यतिकरेऽगुणवान् पुरुषो यथा ॥ १८ ॥

जैसे गुणमय प्रपंच में निर्गुण आत्मा शोभा पाता है, वैसे ही गर्जन शब्दवाले आकाशमें निर्गुण (निः+गुण=विना रस्सी का) इन्द्र धनुष शोभा पा रहा है ॥१८॥

न रराजोडुपश्छन्नः स्वज्योत्स्नाराजितैर्घनैः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अहंमत्या भासितया स्वभासा पुरुषो यथा ॥१९॥
जैसे आत्मा ही से प्रकाश पाये हुए अहंकार से ढका हुआ आत्मा दीप्तमान् नहीं होता, वैसे ही अपनी चन्द्रिकासे प्रकाश पायेहुए मेघसे ढका हुआ चन्द्रमा दीप्तमान् नहीं होता ॥१९॥

मेघागमोत्सवाह्रष्टाः प्रत्यनन्दन् शिखण्डिनः ।
गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाऽच्युतजनागमे॥२०॥
जैसे घरमें दुःख पायेहुए वैरागी पुरुष वैष्णवों के मिलने से प्रसन्न होकर उनका वाणी के द्वारा स्वागत करते हैं, वैसेही गरमीसे सन्तप्त मोर मेघों के आने के उत्सव से प्रसन्न होकर उनका वाणी द्वारा स्वागत करते हैं ॥२०॥

पीत्वाऽपः पादपाः पद्भिरासन् नानात्ममूर्तयः ।
प्राक् क्षामास्तपसा श्रान्ता यथा कामानुसेवया २१
जैसे पहले तप से दुर्बल तथा थके हुए पुरुष संसार के विषय-सुख भोगने से प्रसन्न होते हैं; वैसे ही गरमी से दुर्बल हुए बहु प्रकारके देहधारी वृक्ष अपनी जड़ से पानी पीकर प्रफुल्लित होरहे हैं॥

सरस्स्वशान्तरोधस्सु न्यूषुरङ्गापि सारसाः ।
गृहेष्वशान्तकृत्येषु ग्राम्या इव दुराशयाः ॥२२॥
हे राजन्! जैसे अनेक प्रकार के कर्त्तव्य-कर्मों के क्लेश से भरे हुए घरों में सांसारिक पामर पुरुष रहा करते हैं, वैसे ही कीचड़ और काँटों से भरे हुए तटों वाले तालाबों में सारस निवास करतेहैं॥

जलौघैर्निरभिद्यन्त सेतवो वर्षतीश्वरे ।
पाखण्डिनामसद्वादैर्वेदमार्गाः कलौ यथा ॥२३॥
जैसे कलियुग में पाखंडियों के मिथ्यावाद से वेद-मार्ग नष्ट होजाता है, वैसेही इन्द्रके वर्षाकरने से पुल नष्ट होगये हैं ॥२३॥

व्यमुञ्चन् वायुभिर्नुन्ना भूतेभ्योथामृतं घनाः ।
यथाऽऽशिषो विश्पतयः काले काले द्विजेरिताः२४
जैसे पुरोहित के प्रेरणा करने पर समय २ पर राजा लोग प्रजाको सुख देतेहैं, वैसे ही वायु की प्रेरणासे मेघवृन्द जीवों को अमृत के समान जल देते हैं ॥२४॥

एवं वनं तद्वर्षिष्ठं पक्वखर्जूरजम्बुमत् ।
गोगोपालैर्वृतो रन्तुं सबलः प्राविशद्धरिः ॥२५॥
इस प्रकार उस पके हुए खजूर और जामुनों के समृद्ध वनमें गौओं और गोपों से मिले-जुले श्रीकृष्णचन्द्रजी बलरामजी सहित पधारे ॥२५॥

धेनवो मन्दगामिन्य ऊधोभारेण भूयसा ।
ययुर्भगवताऽऽहूता द्रुतं प्रीत्या स्नुतस्तनीः ॥२६॥
यद्यपि भारी अयन के भार से गौएँ धीरे-धीरे चल सकतीथीं, परन्तु जब भगवान्ने उन्हें बुलाया तो स्तनों से झरते हुए दूध वाली वे गौएँ प्रीति के कारण जल्दी-जल्दी चलीं ॥२६॥

वनौकसः प्रमुदिता वनराजीर्मधुच्युतः ।
जलधारा गिरेर्नादानासन्ना ददृशे गृहाः ॥२७॥
कचिद्वनस्पतिक्रोडे गुहायां चाभिवर्षति ।
निर्विश्य भगवान् रेमे कन्दमूलफलाशनः ॥२८॥
वनके रहने वाले आनन्द-मग्न थे, बन-पंक्तियों में से रस टपक रहा था, पर्वत से जलकी धारायें बह रहीं थीं और उनका शब्द होरहा था, उनके निकट ही गुफायें थीं, श्रीकृष्णचन्द्रजी उन सबको देखते हुए, कहीं वृक्षों की कुञ्ज या कहीं गुफा में प्रवेश करके खेलतेथे और कन्द-मूल-फल खाते थे॥

दध्योदनं समानीतं शिलायां सलिलान्तिके ।
संभोजनीयैर्बुभुजे गोपैः संकर्षणान्वितः ॥२९॥
कभी जलके पास शिलापर बैठकर अपने साथ भोजन करने वाले ग्वालों के साथ घरसे लाया हुआ दही-भात खाते थे ॥२९॥

शाद्वलोपरि संविश्य चर्वतो मीलितेक्षणान् ।
तृप्तान् वृषान् वत्सतरान्गाश्च स्वोधोभरश्रमाः॥३०
उस भोजन से अघा कर बैल और बछड़े हरी घास पर बैठे हुए आँखें बन्द करके पागुर करते थे और गौएँ अयन के भार से थक कर बैठी हुई पागुर कर रहीं हैं ॥३०॥

प्रावृट्श्रियं च तां वीक्ष्य सर्वभूतमुदावहाम् ।
भगवान् पूजयाञ्चक्रे आत्मशक्त्युपबृंहिताम् ॥३१
भगवान् समस्त जीवों को आनन्द देने वाली उस वर्षा की विभूति को अपनी शक्ति से बढ़ाहुआ देखकर (जानकर) भी उसकी प्रशंसा करते थे ॥

एवं निवसतोस्तस्मिन् रामकेशवयोर्व्रजे ।
शरत् समभवत् व्यभ्रा स्वच्छाम्बुपरुषानिला३२॥
इस प्रकार श्रीराम-कृष्ण के व्रज में निवास करते हुए वर्षा ऋतु के पश्चात् शरद् ऋतु आई,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसके आते ही बादल तितर-बितर होगये, जल निर्मल होगया और मन्द पवन चलने लगा ॥३२॥

शरदा नीरजोपत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः ।
भ्रष्टानामिव चेतांसि पुनर्योगनिषेवया ॥३३॥

जैसे पतित पुरुषों के चित्त फिर से योग-साधन द्वारा स्वच्छ होजाते हैं, वैसेही शरद-काल में कमल उत्पन्न होने से जल निर्मल होगया ॥३३॥

व्योम्नोऽब्दं भूतशाबल्यं भुवः पङ्कमपां मलम् ।
शरज्जहाराश्रमिणां कृष्णे भक्तिर्यथाऽशुभम्॥३४॥

जैसे भगवान् की भक्ति चारों आश्रम वालों के दुःख दूर करदेती है; वैसे ही शरद् ऋतुने आकाश के बादल, जीवों की संकीर्ण अवस्था, पृथ्वी की कीचड़ और जलका मैल-ये चारों बातें दूर करदीं॥

सर्वस्वं जलदा हित्वा विरेजुः शुभ्रवर्चसः ।
यथा त्यक्तैषणाः शान्ता मुनयो मुक्तकिल्बिषाः॥३५

जैसे शान्त मुनिजन तृष्णा को त्याग कर; स्वच्छ होकर शोभा पाते हैं, वैसे ही बादल अपना सर्वस्व त्यागकर और श्वेत होकर शोभा देते हैं ॥

गिरयो मुमुचुस्तोयं क्वचिन्न मुमुचुः शिवम् ।
यथा ज्ञानामृतं काले ज्ञानिनो ददते न वा ॥३६॥

जैसे ज्ञानी-जन अपना ज्ञान-रूपी अमृत किसी अधिकारी को देते हैं हर किसी को नहीं, वैसे ही पर्वत कहीं-कहीं ही मङ्गल-रूप जल बहाते हैं, हर कहीं नहीं ॥ ३६ ॥

नैवाविदन् क्षीयमाणं जलं गाधजलेचराः ।
यथायुरन्वहं क्षय्यं नरा मूढाः कुटुम्बिनः ॥३७॥

जैसे मूर्ख कुटुम्बीजन अपनी नित्य क्षय होती हुई आयु को नहीं जानते, वैसे ही उथले जल में रहने वाले जन्तु प्रति दिन घटते हुए जल को नहीं जानते ॥ ३७ ॥

गाधवारिचरास्तापमविन्दन् शरदर्कजम् ।
यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्यविजितेन्द्रियः ॥३८॥

जैसे दरिद्री, कृपण,अजितेन्द्रिय कुटुम्बी पुरुष संताप को प्राप्त होते हैं, वैसेही उथले जलमें रहने वाले जन्तु शरद् ऋतु के सूर्य का ताप पानेलगे ॥

शनैः शनैर्जहुः पङ्कं स्थलान्यामं च वीरुधः ।
यथाहंममतां धीराः शरीरादिष्वनात्मसु ॥३९॥

जैसे धीर पुरुष धीरे-धीरे आत्मा से पृथक् देहादि पदार्थों में से अहंकार छोड़ देते हैं; वैसे ही लतायें धीरे-धीरे कच्चापन छोड़ने लगीं, और जैसे धीरे-धीरे वे अनात्म पदार्थों से ममता छोड़ते हैं, वैसे ही स्थलों ने कीचड़ छोड़ दी है ॥३९॥

निश्चलाम्बुरभूत् तूष्णीं समुद्रः शरदागमे ।
आत्मन्युपरते सम्यङ् मुनिर्व्युपरतागमः ॥४०॥

जैसे अन्तःकरण के शान्त होने पर मुनि लोग वेद-वाणी छोड़ कर मौन होजाते हैं, वैसे शरद् ऋतु आने पर समुद्र का जल स्थिर होजाने से वह भी मौन सा होरहा है ॥४०॥

केदारेभ्यस्त्वपोऽगृह्णन् कर्षका दृढसेतुभिः ।
यथा प्राणैः स्रवज्ज्ञानं तन्निरोधेन योगिनः ॥४१॥

जैसे ज्ञानी पुरुष इन्द्रिय रूपी द्वारसे जाते हुए ज्ञान को उन्हें दमन करके रोक रखते हैं, वैसे ही किसानों ने अनेक मार्गों से जाते हुए जलको दृढ़ मेंड़ों से बाँधकर अपने खेतोंमें रोक रक्खाहै ॥४१॥

शरदर्कांशुजांस्तापान् भूतानामुडुपोऽहरत् ।
देहाभिमानजं बोधो मुकुन्दो व्रजयोषिताम्॥४२॥

जैसे ज्ञान देहाभिमान् का और श्रीकृष्ण भगवान् व्रजाङ्गनाओं का ताप हरण करते हैं, वैसे ही शरद् ऋतु का चन्द्रमा सूर्य की किरणों से पाया हुआ जीवों का ताप हरण करता है ॥४२ ॥

खमशोभत निर्मेघं शरद्विमलतारकम् ।
सत्त्वयुक्तं यथा चित्तं शब्दब्रह्मार्थदर्शनम् ॥४३॥

जैसे रजोगुण, तमोगुण रहित शुद्ध सतोगुण मय वेदार्थ का प्रकाश करने वाला चित्त शोभायमान् होता है, वैसे ही मेघ-रहित शरद् ऋतु के निर्मल तारागणों के प्रकाश-युक्त आकाश शोभायमान हो रहा है ॥ ४३ ॥

अखण्डमण्डलो व्योम्नि रराजोडुगणैः शशी ।
यथा यदुपतिः कृष्णो वृष्णिचक्रावृतो भुवि ॥४४॥

जैसे यदुपति श्रीकृष्णचन्द्रजी भू-तल पर यादव मण्डल के साथ शोभा पाते हैं, वैसे ही समस्त मण्डल से चन्द्रमा तारागणों सहित आकाश में शोभा पा रहा है ॥४४ ॥

आश्लिष्य समशीतोष्णं प्रसूनवनमारुतम् ।
जनास्तापं जहुर्गोप्यो न कृष्णहृतचेतसः ॥४५॥

जैसे श्रीकृष्ण जी का स्पर्श करने से गोपियों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का ताप दूर होजाता है, वैसे ही कुसुमित वनके समान शीत व उष्णता वाले पवन के स्पर्शसे सब लोगों का ताप दूर होगया ॥४५॥

गावो मृगाः खगा नार्यः पुष्पिण्यः शरदाऽभवन् ।
अन्वीयमानाः स्वपतिभिः फलैरीशक्रिया इव ॥४६॥

शरद् ऋतु में गौएँ, हरिणी, चिड़ियां तथा स्त्रियां पुष्पवती होगईं क्योंकि उनके पीछे-पीछे उसी जाति के नर डोलने लगे, जैसे कि ईश्वर के आराधन सम्बन्धी क्रियायें आराधन-कर्त्ता की इच्छा विना भी सफल हो जाती हैं ॥४६॥

उदहृष्यन् वारिजानि सूर्योत्थाने कुमुद्विना ।
राज्ञा तु निर्भया लोका यथा दस्यून् विना नृप ४७

हे राजन् ! जैसे चोर के सिवा शेष समस्त लोक राजा के उदय से प्रसन्न होता है, वैसे ही कुमुद के सिवा शेष सभी कमल सूर्योदय से प्रफुल्लित होने लगे ॥४७॥

पुरग्रामेष्वाग्रयणैरैन्द्रियैश्च महोत्सवैः ।
बभौ भूः पक्वसस्याढ्या कलाभ्यां नितरां हरेः ४८॥

पुर तथा ग्रामोंमें नया अन्न खानेके लिये वैदिक यज्ञों से और इन्द्रियोंके सुखकारी लौकिक उत्सवों से एवं विशेष कर श्रीराम-कृष्ण के विचरने से पृथ्वी अधिक शोभावती होरही थी ॥४८॥

वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्याऽर्थान् प्रपेदिरे ।
वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिण्डान् काल आगते४९

जैसे मन्त्र और योग आदि से सिद्ध पुरुष आयु के बन्धन में रुके रहते हैं, परन्तु समय आने पर देवता आदि का शरीर पा जाते हैं, वैसेही वर्षा के कारण एक ही स्थान पर रुके हुए व्यापारी, सन्यासी, राजा और ब्रह्मचारी शरद् ऋतुमें अपने अपने कामों में लग गये ॥४९॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

इक्कीसवां अध्याय

(गोपीकृत वेणु-गीत वर्णन)

श्रीशुक उवाच

इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना ।
न्यविशद् वायुना वातं सगोगोपालकोऽच्युतः॥१॥

श्रीशुकदेवजी बोले–शरद् ऋतु के कारण जहाँ निर्मल जल भरा हुआ था और कमलों की सुगंधि लिये हुए पवन चल रहा था, ऐसे वृन्दावन में श्री भगवान् गौओं तथा गोपों के सहित पधारे ॥१॥

कुसुमितवनराजिशुष्मिभृङ्गद्विजकुलघुष्टसरः सरिन्महीध्रम् । मधुपतिरवगाह्य चारयन् गाः सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम् ॥ २ ॥

फूली हुई वन-पंक्ति की सुगंधि से मतवाले भौंरे और पक्षियोंके समूह जिसके तालाब,नदिबों तथा पर्वतों पर गूञ्जरहे हैं, ऐसे वृन्दावन में जाकर बलरामजी व ग्वालबालों को लिये हुए और गौओं को चरातेहुए श्रीकृष्ण भगवान्ने वंशीकी ध्वनिकी॥

तद् व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम् ।
काश्चित् परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन्३

काम को उत्तेजित करने वाली उस बांसुरीकी धुनि को सुनकर कई-एक व्रजबालायें श्रीकृष्णचंद्र के पीठ पीछे अपनी सखियों के आगे उस (वंशी) का वर्णन करने लगीं ॥३॥

तद् वर्णयितुमारब्धाः स्मरन्त्यः कृष्णचेष्टितम् ।
नाशकन् स्मरवेगेन विक्षिप्तमनसो नृप ॥ ४ ॥

हे राजन् ! उन्होंने कुछ कहना प्रारम्भ किया ही था कि भगवान् की लीला का स्मरण हो आने के कारण कामदेव के वेग से उनके चित्त चञ्चल हो उठे, इसलिये वे कुछ कह न सकीं ॥ ४ ॥

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् । रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैर्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः ॥ ५ ॥

सिर पर मोर पंखों का मुकुट, कानों में कनेर पुष्प, शरीर पर स्वर्ण समान पीतांबर और गले में वैजयन्ती माला धारण किये हुए, नट के समान सुन्दर रूप बनाये हुए, अपने अधरामृतसे बांसुरी के छिद्रों को पूर्ण करते हुए, भगवान् श्रीकृष्णजी अपने चरण-चिह्नों से रमणीक वृन्दावन में पधारे, जिस समय ग्वाल-वृन्द उनका यश गा रहे थे ॥५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इति वेणुरवं राजन् सर्वभूतमनोहरम् ।
श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयन्त्योऽभिरेमिरे॥ ६ ॥

हे राजन्! समस्त जीवों के मन हरने वाली वाँसुरी* का गीत सुनकर सब व्रजाङ्गनायें उसका वर्णन करती हुई क्षण-क्षण पर चित्त से आनन्द-मूर्त्ति भगवान् का आलिंगन करती थीं ॥६॥

गोप्य ऊचुः

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः । वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनु वेणुजुष्टं यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥ ७ ॥

गोपियां बोलीं–हे सखी! हम उन्हीं नेत्रधारियों के नेत्र सफल समझती हैं कि जिन्होंने ग्वालबालों के साथ पशुओं को वनमें लेजाते, स्नेह-मय कटाक्ष करते हुए श्रीराम-कृष्ण के मुखारविन्द का आदर सहित दर्शन किया है, दूसरों के नहीं ॥७॥

चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्जमालाऽनुपृक्तपार-धनिविचित्रवेषौ । मध्ये विरेजतुरलं पशुपाल-गोष्ठ्यां रङ्गे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ ॥ ८ ॥

दूसरी सखी बोली–आमके कोंपल, मोरपंख, गुच्छे, कमल और उत्पलों की अनोखी मालाओं से शोभायमान् नीले और पीले वस्त्रोंसे विचित्र वेष बनाये हुए, श्रीराम-कृष्ण ग्वालों की मण्डलीमें कभी गायन करते हुए ऐसे शोभा देते हैं, जैसे नाटक घर में नट शोभा देता है ॥ ८ ॥

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणुर्दामोदरा-धरसुधामपि गोपिकानाम् । भुङ्क्ते स्वयं यदव-शिष्टरसं हदिन्यो हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः ॥ ९ ॥

दूसरी ने कहा–हे गोपियो! इस मुर्लीने ऐसा कौनसा पुण्य किया है कि जो केवल गोपियों के ही भोग करने के योग्य श्रीगोपाल के अधरामृत का स्वतन्त्रता पूर्वक यथेष्ट पान कर रही है? वह भी इस ढंग से कि जिसमें थोड़ा सा रस शेष रह जाय, उसे देखकर उसके माता पिता के पद पर रहने वाली नदियां (अर्थात् वे जलाशय कि जिन से वाँसुरी का वाँस सींचा जाता है) कमलों के वहाने से रोमांच होना प्रकट करती हैं और वाँस अपने वंश में उस पुण्यात्मा को उत्पन्न हुआ देख कर रस के वहाने से आँसू वहा रहे हैं; जैसे कुल वृद्ध अपने कुल में भगवद्भक्त को देखकर गद्गद होता हुआ आनन्दसे अश्रु वहातेहैं ॥९॥

वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं यद्देवकी सुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि । गोविन्दवेणुमनु मत्त मयूरनृत्यं प्रेक्षाद्रिसान्वऽपरतान्यसमस्तसत्त्वम् १०

दूसरी बोली–हे आली! यह वृन्दावन स्वर्गसे भी अधिक पृथ्वी की कीर्त्ति वढ़ा रहा है, क्योंकि देवकी-नन्दन श्रीकृष्णजी के चरणारविन्द रखने से उसे अधिक शोभा प्राप्त हुई है, इस वृन्दावन में मुरलीकी ध्वनि सुनकर उसे मन्द गर्जन करनेवाला गम्भीर मेघ समझ कर मोर नाचने लगते हैं, उस नृत्य को देखकर दूसरे समस्त प्राणी अपने कामों को छोड़कर निश्चल से होरहे हैं, ऐसा आनन्द दूसरे किसी लोक में नहीं है ॥ १०॥

धन्याः स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेषम् ।आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः॥

दूसरी सखी बोली–हे सखी! ये मूढ़ मति वाली हरिणियां भी धन्य हैं कि जो वंशीकी ध्वनि सुनकर, प्रेम-दृष्टिसे विचित्र वेष बनाये हुए अपने पति कृष्ण मृगों के सामने ही श्री नन्दलाल का सत्कार करती हैं, हमारे पति तो ऐसा व्यवहार सहन भी नहीं कर सकते ॥११॥

कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपवेषं । श्रुत्वा च तत्कणितवेणुविचित्र गीतम् । देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः ॥

दूसरी सखी बोली–हे गोपियो! एक अचरज की वात तो सुनो कि स्त्रियोंको आह्लाद करनेवाले रूप तथा वेष को धारण किये हुए श्रीभगवान् के दर्शन करके, उनकी वजाई हुई वाँसुरी का गीत सुनकर, विमानों में वैठकर जातीं हुई देवाङ्गनायें यद्यपि अपने-अपने पतियों की गोदमें वैठी हैं फिर

*–बाजी उठ धाईं बाजी देखवे को द्वार आईं, बाजी मुरझाईं सुनि तान गिरधर की । बाजी ना धरत धीर बाजी ना संभारैं चीर, वाजिन की विरह अनल अति भरकी ॥ बाजी हँस बोलें बाजी करत किलोलें, बाजी संग लागि डोलें सुधि भूलीं घर की । बाजी कहें कहाँ बाजी बाजी कहें कहूँ बाजी; बाजी कहें बाजो बंसी सांवरे सुघरको॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भी वे कामदेव से विकल होकर ऐसी मोहित हो गई हैं कि उनकी वेणियों में से फूल गिरे जाते हैं और नीवी खुली जारही है ॥१२॥

गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीतपीयूषमुत्तभित कर्णपुटैः पिबन्त्यः । शावाः स्नुतस्तनपयःकवलाः स्मतस्थुर्गोविन्दमात्मनि दृशाऽश्रुकलाः स्पृशन्त्यः॥

गौवें और बछड़े भगवान् के मुखसे निकलेहुए बाँसुरी के गीत रूपी अमृत को जब अपने ऊँचे किये हुए कानरूपी पात्र से पान करते हैं, तब गौओं के मुख की घास का ग्रास तथा बछड़ों के मुंह का दूध का घूंट मुंह ही में रह जाताहै, अर्थात् उनकी सब चेष्टा भूल जातीहै और आँखोंसे आंसू बहने लगते हैं, क्योंकि वे श्रीकृष्ण का मानसिक आलिंगन करने लगते हैं ॥१३॥

प्रायो बताऽम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन् कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् । आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान् शृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥१४॥

हे माता ! इस वनके पक्षी तो एक प्रकार से मुनि ही हैं, क्योंकि जिस प्रकार मुनि भगवान् के दर्शनार्थ काम्य-कर्म को त्यागकर वेद की शाखाओं के आश्रित होकर उनके पत्र रूपी कर्मों का गुण ग्रहण करके सुखी होकर मौनता-पूर्वक प्रभु के गुणानुवाद सुनतेहैं, वैसेही ये पक्षीगण भी मनोहर पत्ते वाले वृक्षों की शाखाओं पर बैठ कर नेत्रों को मूंद कर और मौन होकर प्यारे कृष्ण का दर्शन करतेहैं तथा उनकी बाँसुरीके मनोहर गीत सुनतेहैं॥

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतमावर्तलक्षित-मनोभवभग्नवेगाः । आलिंगनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारेर्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः ॥१५॥

भगवान्से उस वेणु-नाद को सुनकर ही मानो काम-वेग से नदियों का वेग रुक कर उनमें भँवर पड़ने लगी है और वह अपने तरंग रूपी हाथों से भगवान् के चरणारविन्द में कमल अर्पण करके, आलिंगन के आच्छादन करके उन्हीं को धारण कर लेती हैं ॥ १५ ॥

दृष्ट्वाऽऽतपे व्रजपशून् सह रामगोपैः संचारयन्त मनुवेणुमुदीरयन्तम् । प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमा-वलीभिः सख्युर्व्यधात् स्ववपुषाऽम्बुद आतपत्रम् ॥

धूप में बलदेवजी तथा ग्वालबालोंके साथ व्रज के पशुओं को चराते हुए, वंशी की ध्वनि करतेहुए अपने सखा श्रीकृष्णचन्द्रजी का दर्शन करके, प्रेम से बढ़कर, मेघ उनके ऊपर पुष्प के समान बूंदें बरसाता और अपने शरीरसे छाया करता है॥१६॥

पूर्णाः पुलिन्द्य उरुगायपदाब्जरागश्रीकुङ्कुमेन दयितास्तनमण्डितेन । तद्दर्शनस्मररुजस्तृण-रूषितेन लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम् १७

प्रियाओंके स्तनोंमें लगी हुई केशर रति समय श्रीभगवान् के चरणारविन्द में लग गई और उन की अरुणता में मिलकर अधिक शोभा पाने लगी, जब वे केशर युक्त चरण वनमें विचरतेहैं, तब उन की केशर घास से लग जाती है, उसे देखकर कामातुर शीलनियां घास पर से ले-लेकर अपने मुख और स्तनों पर लेप करके कामाग्निको शान्तकरती हैं, इसलिये वे धन्य हैं-हमारा भाग्य तो ऐसा भी नहीं है ॥ १७ ॥

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो यद् रामकृष्ण चरणस्पर्शप्रमोदः । मानं तनोति सहगोगणयोस्त-योर्यत् पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः ॥१८॥

हे सखियो ! यह गोवर्धन पर्वत अवश्य ही भगवान् के भक्तों में से परम भक्त जान पड़ता है; क्योंकि श्रीराम-कृष्ण के चरण स्पर्श करने से इसे महान् आनन्द होता है और वह गौ, गोप सहित उन दोनों बन्धुओं का जल, उत्तम तृण, कन्दरा तथा कन्द-मूल भेंट करके सत्कार करता है ॥१८॥

गोगोपकैरनुवनं नयतोरुदारवेणुस्वनैः कलपदै-स्तनुभृत्सु सख्यः । आस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्त-रूणां निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥१९॥

हे सखियो ! गौओं के बांधने की रस्सी को सिर पर बांधे या कन्धे पर रक्खे हुए और ग्वाल भाव को दिखलाते हुए, जब ये दोनो भाई गोपोंके साथ वनमें गौएं चरातेहैं, उस समय उनकी मधुर रागमय बाँसुरी की धुनि सुनकर जङ्गम जीव स्थावर की भांति स्थिर होजाते हैं और स्थावरों में लोम हर्षण आदि जङ्गमों के धर्म दीख पड़ते हैं, यह महान् आश्चर्य का विषय है ॥१९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एवंविधा भगवतो या वृन्दावनचारिणः ।
वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः २०

श्रीशुकदेवजी बोले-इस प्रकार विचरण करते हुए भगवान्की क्रीड़ाओं का आपसमें वर्णन करती हुईं गोपियां उन्हीं में तन्मय होगईं ॥२०॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

बाईसवां अध्याय

(कात्यायनि व्रत तथा चीर-हरण)

श्रीशुक उवाच

हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः ।
चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम् ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले-हेमन्त ऋतु के पहले महीने अर्थात् अगहन में नन्दजी के व्रज की कुमारियों ने हविष्य अन्न (मूंग-भात) को खाकर श्रीजगदंबाजी के पूजन का व्रत धारण किया ॥१॥

आप्लुत्याम्भसि कालिन्द्या जलान्ते चोदितेऽरुणे ।
कृत्वा प्रतिकृतिं देवीमानर्चुर्नृप सैकतीम् ॥ २ ॥
गन्धैर्माल्यैः सुरभिर्बलिभिर्धूपदीपकैः ।
उच्चावचैश्चोपहारैः प्रवालफलतण्डुलैः ॥ ३ ॥

हे राजन् ! वे अरुणोदय के समय यमुना जल में स्नान करके, किनारे पर बालू से देवी जी की मूर्त्ति बनाकर चन्दन, सुगंधि, पुष्प, भेंट, धूपदीप, कोंपल, फल, अक्षत और छोटे-बड़े पदार्थोंसे उस का पूजन किया करती थीं ॥२॥॥३॥

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ॥ ४ ॥

और प्रार्थना किया करती थीं कि-हे कात्यायनि ! हे महामाये ! हे महा योगिनी ! हे अधीश्वरी ! हे देवि ! हम प्रणाम करती हैं, हमें नन्दरायजी के पुत्र श्रीकृष्णजी पति मिलें ॥४॥

इति मन्त्रं जपन्त्यस्ताः पूजां चक्रुः कुमारिकाः ।
एवं मासं व्रतं चेरुः कुमार्यः कृष्णचेतसः ॥ ५ ॥

वे कुमारियां इस मन्त्र का जप करके पूजन किया करतीं थीं, इस प्रकार श्रीकृष्णजी में चित्त लगाये हुए उन्होंने एक मास तक व्रत तथा पूजन किया ॥५॥

भद्रकालीं समानर्चुर्भूयान्नन्दसुतः पतिः ।
उषस्युत्थाय गोत्रैः स्वैरन्योन्यावद्धबाहवः ॥ ६ ॥
कृष्णमुच्चैर्जगुर्यान्त्यः कालिन्द्यां स्नातुमन्वहम् ।

"हमें नंदलालजी वर मिलें" इस कामना से प्रति दिन एक दूसरी को बुलाकर परस्पर हाथ पकड़ कर वे उच्च स्वर से श्रीकृष्णजीके गीत गाती हुई प्रति दिन यमुनाजी को स्नान करने के लिये जाया करती थीं ॥६॥७॥

नद्यां कदाचिदागत्य तीरे निक्षिप्य पूर्ववत् ॥ ७ ॥
वासांसि कृष्णं गायन्त्यो विजहुः सलिले मुदा ।
भगवांस्तदभिप्रेत्य कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥ ८ ॥

एक दिन वे पहले की तरह नदीके किनारे आ कर और वस्त्र उतार कर श्रीकृष्णजीका यश गाती हुई आनन्द-सहित जलमें क्रीड़ा करने लगीं ॥८॥

वयस्यैरागतस्तत्र वृतस्तत्कर्मसिद्धये ।
तासां वासांस्युपादाय नीपमारुह्य सत्वरः ॥ ९ ॥

योगेश्वरों के नाथ भगवान् श्रीकृष्णचंद्रजी इस बातको जानकर मित्रों से मिले-जुले उन कुमारियों की इच्छा पूर्ण करने लिये वहाँ पधारे ॥९॥

हसद्भिः प्रहसन् बालैः परिहासमुवाच ह ।
अत्रागत्यावलाः कामं स्वं स्वं वासः प्रगृह्यताम् १०

और तत्काल उनके वस्त्र लेकर कदंब पर चढ़ गये तथा बालकों के साथ हँसने लगे और हास्य मय बचनों में उनसे बोले कि हे अबलाओ ! यहाँ आकर अपनी इच्छानुसार अपने २ चीर लेजाओ।

सत्यं ब्रवाणि नो नर्म यद्यूयं व्रतकर्शिताः ।
न मयोदितपूर्वं वा अनृतं तदिमे विदुः ॥ ११ ॥

मैं सत्य कह रहा हूँ, हँसी नहीं करता हूँ, क्यों कि तुम व्रत करने से दुबली पड़गई हो, मैंने कभी झूठ कहा ही नहीं है, इस बात को मेरे यह सभी सखा जानते हैं, इसलिये चाहे तुम एक-एक करके आकर अपने चीर ले जाओ और चाहे एक साथ ही मिलकर ले जाओ ॥११॥

एकैकशः प्रतीच्छध्वं सहैवोत सुमध्यमाः ।
तस्य तत्स्वेलितं दृष्ट्वा गोप्यः प्रेमपरिप्लुताः ॥ १२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीशुकदेवजी बोले–श्रीकृष्णजी की यह हँसी की बात सुनकर प्रेम-मग्न गोपियाँ आपस में देख कर हँसनेलगीं और लज्जाके मारे बाहर न निकलीं॥

व्रीडिताः प्रेक्ष्य चान्योऽन्यं जातहासा न निर्ययुः।
एवं ब्रुवति गोविन्दे नर्मणाऽऽक्षिप्तचेतसः।
आकण्ठमग्ना शीतोदेवेपमानास्तमब्रुवन् ॥१३॥

श्रीकृष्णचन्द्र जी के ऐसा कहनेसे उनका चित्त हँसी के कारण मोहित होगया, वे कन्धों से ऊपर पानी में खड़ी-खड़ी काँपने लगीं, और श्रीकृष्णजी से कहने लगीं कि ॥१३॥

माऽनयं भोः कृथास्त्वां तु नन्दगोपसुतं प्रियम्।
जानीमोऽङ्ग व्रजश्लाघ्यं देहि वासांसि वेपिताः १४॥

हे प्यारे! आप अन्याय न कीजिये हे नन्दगोप के कुमार! आप हमारे प्रिय और व्रज में प्रशंसा के योग्य हो, हमारे वस्त्र दे दीजिये, क्योंकि हम जाड़े के मारे काँप रही हैं ॥१४॥

श्यामसुन्दर ते दास्याः करवाम तवोदितम्।
देहि वासांसि धर्मज्ञ नो चेद्राज्ञे ब्रुवामहे ॥१५॥

हे श्याम सुन्दर! हम आपकी दासियाँ हैं, जो आप कहें, हम वह करनेको तैयार हैं, या तो हमारे वस्त्र दे दीजिये, या हम राजा से जाकर पुकार करेंगीं ॥१५॥

श्रीभगवानुवाच

भवत्यो यदि मे दास्यो मयोक्तं वा करिष्यथ।
अत्रागत्य स्ववासांसि प्रतीच्छन्तु शुचिस्मिताः १६

भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी बोले–हे मन्द हास्य वाली बालाओ! यदि तुम हमारी दासी हो और तुम्हें मेरा कहना स्वीकार है, तो यहाँ आकर अपने-अपने वस्त्र ले जाओ ॥१६॥

ततो जलाशयात् सर्वा दारिकाः शीतवेपिताः।
पाणिभ्यां योनिमाच्छाद्य प्रोत्तेरुः शीतकर्शिताः १७

तब जाड़े के कारण काँपती और मुरझाई हुई कुमारियाँ अपने दोनों हाथोंसे अपनी अपनी योनि ढक कर जल से बाहर निकल आईं ॥१७॥

भगवानाह ता वीक्ष्य शुद्धभावप्रसादितः।
स्कन्धे निधाय वासांसि प्रीतः प्रोवाच सस्मितम् १८

उनका शुद्ध भाव देखकर, भगवान् प्रसन्न हुए और उनको आहत के समान देखकर, उनके वस्त्र कन्धे पर धर कर मन्द मुस्कान के साथ प्रेम-पूर्वक कहने लगे कि ॥१८॥

यूयं विवस्त्रा यदपो धृतव्रता व्यगाहतैतत्तदु देवहेलनम्। बद्धाञ्जलिं मूर्ध्न्यपनुत्तयेंऽहसः कृत्वा नमोऽधो वसनं प्रगृह्यताम् ॥१९॥

तुमने व्रत धारण करके बिना वस्त्र स्नान किया है, इससे तुम्हारे द्वारा (वरुण) देवता का अपराध बन आया है, इसके प्रायश्चित के लिये तुम माथे से हाथ लगाकर जोड़ो और झुक कर प्रणाम करके वस्त्र ले जाओ ॥१९॥

इत्यच्युतेनाभिहितं व्रजाबला मत्त्वा विवस्त्राऽऽप्लवनं व्रतच्युतिम्। तत्पूर्तिकामास्तदशेषकर्मणां साक्षात्कृतं नेमुरवद्यमृग्यतः ॥२०॥

व्रजबालाओं ने भगवान् का यह वचन सुनकर नग्न-स्नान करने से अपने व्रत को भंग समझ कर, उसे पूर्ण करने की इच्छा से सब कर्मों के फल-रूप भगवान् को प्रणाम किया, क्योंकि पापों से शुद्ध करने वाले वही हैं ॥२०॥

तास्तथावनता दृष्ट्वा भगवान् देवकीसुतः।
वासांसि ताभ्यः प्रायच्छत्करुणस्तेन तोषितः ॥२१

उन गोपियों को इस प्रकार विनम्र देखकर भगवान् देवकी-नन्दन ने प्रसन्नहोकर, करुणाकरके उनको वस्त्र दे दिये ॥२१॥

दृढं प्रलब्धास्त्रपया च हापिताः प्रस्तोभिताः क्रीडनवच्च कारिताः। वस्त्राणि चैवापहृतान्यथाप्यमुं ता नाभ्यसूयन् प्रियसङ्गनिर्वृताः ॥२२॥

यद्यपि भगवान्के द्वारा गोपियों पर छल हुआ उनकी लज्जा गई, हँसी हुई, वे खिलौने के समान बनीं और उनके वस्त्र हरण हुए, फिर भी उन्होंने श्रीकृष्ण पर दोष-दृष्टि न की; क्यों कि वे अपने प्रिय के साथ में आनन्द-मग्न हो गई थीं ॥२२॥

परिधाय स्ववासांसि प्रेष्ठसङ्गमसज्जिताः।
गृहीतचित्ता नो चेलुस्तस्मिँल्लज्जायितेक्षणाः॥२३॥

वे अपने प्यारे श्रीकृष्ण के मिलने से ऐसी वशीभूत हो गईं थीं और उनका चित्त ऐसा हरण हो चुका था कि वस्त्र पहिनने के पीछे भी वे वहाँ से चल न सकीं, वरन् लज्जा सहित उनकी ओर देखती रहीं ॥२३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तासां विज्ञाय भगवान् स्वपादस्पर्शकाम्यया।
धृतव्रतानां संकल्पमाह दामोदरोऽबलाः ॥२४॥

भगवान् दामोदर ने उनके व्रत का संकल्प समझ लिया कि इनकी इच्छा मेरे चरणस्पर्श करने की है, इसलिये उन्होंने उन गोपियों से कहा कि॥२४॥

संकल्पो विदितः साध्व्यो भवतीनां मदर्चनम्।
मयाऽनुमोदितः सोऽसौ सत्यो भवितुमर्हति ॥२५॥

हे सुशीलाओ ! यद्यपि तुमने लज्जावशात् मुझसे कुछ कहा नहीं है, फिर भी मैं तुम्हारे मनोरथ को समझ कर उसका अनुमोदन करता हूँ, जिस लिये तुमने मेरा पूजन किया है, वह तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा, क्योंकि उसमें मेरी भी सम्मति है॥२५॥

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते।
भर्जिताः क्वथिता धानाः प्रायो बीजाय नेष्यते २६

जिन्होंने मुझमें चित्त लगाया है, उनकी इच्छा विषय-भोग के लिये नहीं होती, जैसे भुंजे या रँधे हुए अन्न बहुधा दूसरे अन्न उत्पन्न नहीं कर सकते॥

याताऽबला व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपाः।
यदुद्दिश्य व्रतमिदं चेरुरार्यार्चनं सतीः ॥२७॥

हे अबलाओ ! तुम व्रज को जाओ, तुम्हारा मनोरथ सफल होगा, हे सतियो ! तुम अगली रात में मेरे साथ रास क्रीड़ा करोगी, कि जिसके लिये तुमने देवी का पूजन किया है ॥२७॥

श्रीशुक उवाच

इत्यादिष्टा भगवता लब्धकामाः कुमारिकाः।
ध्यायन्त्यस्तत्पदाम्भोजं कृच्छ्रान्निर्विविशुर्व्रजम् २८

श्री शुकदेवजी बोले—वे सफल मनोरथ कुमारियाँ भगवान् की ऐसी आज्ञा सुनकर, उनके चरणारविन्द का ध्यान धरती हुई, बड़े ही कष्ट के साथ व्रज में आईं ॥ २८ ॥

अथ गोपैः परिवृतो भगवान् देवकीसुतः।
वृन्दावनाद्गतो दूरं चारयन् गाः सहाग्रजः॥२९॥

फिर भगवान् देवकी नन्दन ग्वालों को साथ लेकर गौओं को चराते हुए बलराम जी सहित वृन्दावन से दूर निकल गये ॥२९॥

निदाघार्कातपे तिग्मे छायाभिः स्वाभिरात्मनः।
आतपत्रायितान् वीक्ष्य द्रुमानाह व्रजौकसः॥३०॥

ग्रीष्म के सूर्य की धूप में अपनी छायाके कारण छत्र के समान बने हुए वृक्षों को देखकर श्रीकृष्ण जी व्रजवासियों से कहने लगे कि—॥ ३० ॥

हे स्तोक कृष्ण हे अंशो श्रीदामन् सुबलार्जुन।
विशालर्षभ तेजस्विन् देवप्रस्थ वरूथप ॥३१॥
पश्यतैतान्महाभागान् परार्थैकान्तजीविनः।
वातवर्षातपहिमान् सहन्तो वारयन्ति नः ॥३२॥

हे स्तोक ! हे कृष्ण ! हे अंशु ! हे श्रीदामा ! हे सुबल ! हे अर्जुन ! हे विशाल ! हे ऋषभ ! हे तेजस्वी ! हे देवप्रस्थ ! हे वरूथप ! इन भागी वृक्षों को देखो कि जिनका जीवन केवल दूसरों के हित के लिये है, ये वर्षा, पवन और जाड़ा सहते हैं और हम लोगोंके सब दुःख दूर करते हैं ॥३१॥॥३२॥

अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीवनम्।
सुजनस्येव येषां वै विमुखा यान्ति नार्थिनः॥३३॥

धन्य ! धन्य ! इनका जीवन बड़ा ही उत्तम है, कि जिनके कारण सब लोगों की जीविका चलती है, जिनके द्वार से याचक गण वैसे ही विमुख नहीं जाते हैं, जैसे सज्जनों के द्वार से॥३३॥

पत्रपुष्पफलच्छायामूलवल्कलदारुभिः।
गन्धनिर्यासभस्मास्थितोकमैः कामान् वितन्वते ३४

जो पत्ते, फूल, फल, छाया, जड़, छाल, काठ; गोंद, भस्म, अस्थि, कोंपल आदि से सबकी इच्छा पूर्ण करते हैं ॥३४॥

एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु।
प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय एवाचरेत् सदा ॥३५॥

इस लोक के देह धारियों में उन्हीं देहधारियों का जन्म सफल है, जो प्राण, धन, बुद्धि और वचन से सदैव सबका हित करते हैं ॥३५॥

इति प्रवालस्तबकफलपुष्पदलोत्करैः।
तरूणां नम्रशाखानां मध्येन यमुनां गतः ॥३६॥

कोंपल, गुच्छे, फल, फूल और पत्तोंके समूहों से नम्रीभूत टहनियों वाले वृक्षोंके बीचसे श्रीकृष्ण जी आदि सभी गोप यमुनाजी पर गये ॥३६॥

तत्र गाः पाययित्वाऽपः सुमृष्टाः शीतलाः शिवाः।
ततो नृप स्वयं गोपाः कामं स्वादु पपुर्जलम्॥३७॥

हे राजन् ! वहाँ मीठा ठण्डा और निर्मल जल गौओं को पिलाकर स्वयं गोपों ने इच्छानुसार उसे पिया ॥३७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्या उपवने कामं चारयन्तः पशून्नृप ।
कृष्णरामावुपागम्य क्षुधार्ता इदमब्रुवन् ॥३८॥

हे राजन् ! यमुनाजी के उपवनमें यथेष्ट गौओं को चराते हुए गोप भूखसे व्याकुल होकर राम-कृष्ण के पास आकर यह वचन बोले ॥३८॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥१८॥

तेईसवां अध्याय

(ब्राह्मण-स्त्रियों पर अनुग्रह)

गोपा ऊचुः

राम राम महावीर्य कृष्ण दुष्टनिबर्हण ।
एषा वै बाधते क्षुन्नस्तच्छान्तिं कर्तुमर्हथः ॥१॥

गोपों ने कहा-हे राम ! हे राम ! हे परम वीर्य! हे कृष्ण ! हे दुष्टों के दण्ड-दाता ! यह भूख हमें बाधा पहुंचा रही है, आप इसे शान्त कीजिये ॥१॥

श्रीशुक उवाच

इति विज्ञापितो गोपैर्भगवान् देवकीसुतः ।
भक्तायां विप्रभार्यायां प्रसीदन्निदमब्रवीत् ॥ २ ॥

श्री शुकदेवजी बोले-जब गोपों ने भगवान् से इस प्रकार प्रार्थना की, तब भगवान् देवकी नन्दन ने अपनी भक्ता ब्राह्मण-स्त्रियों पर प्रसन्न होने के लिये यह कहा कि-॥ २ ॥

प्रयात देवयजनं ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ।
सत्त्रमाङ्गिरसं नाम ह्यासते स्वर्गकाम्यया ॥ ३ ॥

(हे गोपो !) तुम वहाँ यज्ञ में जाओ कि जहाँ वेद के जानने वाले ब्राह्मण लोग स्वर्ग की अभिलाषा से आंगिरस नाम का यज्ञ कर रहेहैं॥३॥

तत्र गत्वौदनं गोपा याचतास्मद्विसर्जिताः ।
कीर्तयन्तो भगवत आर्यस्य मम चाभिधाम् ॥ ४ ॥

हे गोपो ! वहाँ जाकर मेरा तथा मेरे बड़े भाई बलराम जी का नाम लेकर कहना कि-उन दोनों ने हमको भेजा है, फिर उनसे भात माँगना ॥४॥

इत्यादिष्टा भगवता गत्वाऽयाचन्त ते तथा ।
कृताञ्जलिपुटा विप्रान् दण्डवत् पतिता भुवि ॥५॥

जब भगवान् ने गोपों से इस प्रकार कहा, तब उन्होंने वहाँ जाकर, हाथ जोड़ और पृथ्वी पर दण्डवत करके ब्राह्मणोंसे उसी प्रकार याचनाकी॥

हे भूमिदेवाः शृणुत कृष्णस्यादेशकारिणः ।
प्राप्तान् जानीत भद्रं वो गोपान् नो रामचोदितान् ॥६॥

हे ब्राह्मणो ! सुनो, आपका कल्याण हो, हम जाति के गोप हैं और श्रीकृष्ण जी की आज्ञा से बलराम जी के भेजे हुए यहाँ आये हैं-इसे आप जान लें ॥६॥

गाश्चारयन्तावविदूर ओदनं रामाच्युतौ वो लषतो बुभुक्षितौ । तयोर्द्विजा ओदनमर्थिनोर्यदि श्रद्धा च वो यच्छत धर्मवित्तमाः॥ ७ ॥

यहाँ पास ही में श्रीराम-कृष्ण दोनों गौओं को चराते चले आये हैं, उन्हें भूख लग आई है, इस लिये वे आप लोगों से भात चाहते हैं, अस्तु हे धर्म जानने वालों में उत्तम ब्राह्मणो ! यदि आपकी श्रद्धा हो तो उन याचना करने वाले दोनों भाइयों को भात दे दीजिये ॥७॥

दीक्षायाः पशुसंस्थायाः सौत्रामण्याश्च सत्तमाः ।
अन्यत्र दीक्षितस्यापि नान्नमश्नन् हि दुष्यति ॥८॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! जब से दीक्षा प्रारम्भ हो, तब से अग्निषोम देव का पशु मरने से पहले तक दीक्षित के अन्न खाने का दोष है, पर पशु मरने के अनन्तर वह दोष नहीं लगता, दूसरे आप लोगों का यह सौत्रामणि नामक यज्ञ नहीं होरहा है ऐसी दशामें आपका अन्न खाने में कोई दोष नहीं है॥८॥

इति ते भगवद्याच्ञां शृण्वन्तोऽपि न शुश्रुवुः ।
क्षुद्राशा भूरिकर्माणो बालिशा वृद्धमानिनः॥ ९ ॥

भगवान् की इस याचना को उन ब्राह्मणों ने अनसुनी सी करदी क्योंकि वे क्षुद्र स्वर्ग आदि के फल की आशा वाले, क्लेश देने वाले कर्मों के करने वाले थे, इसलिये वे मूर्ख अपने को ज्ञानवान् मानते थे ॥ ९ ॥

देशः कालः पृथक् द्रव्यं मन्त्रतन्त्रर्त्विजोऽग्नयः ।
देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥१०॥

देश, काल, पृथक् २ पुरोडाश आदि द्रव्य,मंत्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रयोग, ऋत्विज, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ और धर्म-ये सभी जिसका स्वरूप हैं ॥१०॥

तं ब्रह्म परमं साक्षाद्भगवन्तमधोक्षजम् ।
मनुष्यदृष्ट्या दुष्प्रज्ञा मर्त्यात्मानो न मेनिरे॥११॥

उस इन्द्रियातीत साक्षात् परब्रह्म भगवान् को उन मूर्ख अभिमानियों ने बिल्कुल न पहिचाना, क्योंकि वे लोग उन्हें मनुष्य ही समझते थे ॥११॥

न ते यदोमिति प्रोचुर्न नेति च परन्तप ।
गोपा निराशाः प्रत्येत्य तथोचुः कृष्णरामयोः॥१२

जब उन ब्राह्मणों ने 'हाँ' या 'ना' का कोई उत्तर न दिया, तब गोपों ने निराश होकर श्रीराम कृष्ण के पास आकर वैसा ही हाल कह सुनाया ॥

तदुपाकर्ण्य भगवान् प्रहस्य जगदीश्वरः ।
व्याजहार पुनर्गोपान्दर्शयन् लौकिकीं गतिम्१३॥

जगत्पति भगवान् यह बात सुनकर हँसे और उन्होंने गोपों को यह लौकिक मर्यादा जतलाई कि अपना कार्य सिद्ध करनेके इच्छावान् कभी निराश नहीं होते, दूसरे याचक का तिरस्कार हुआ ही करता है, इस उद्देश्य को समझाते हुए वे कहने लगे कि-॥ १३ ॥

मां ज्ञापयत पत्नीभ्यः ससंकर्षणमागतम् ।
दास्यन्ति काममन्नं वः स्निग्धा मय्युषिता धिया१४

तुम उन ब्राह्मणों की स्त्रियों को यह संदेश दो कि बलरामजी के साथ कृष्ण आये हैं, वे तुमको इच्छित अन्नदेंगी, क्योंकि उनकी बुद्धि मुझमें लगी हुई है और वे मुझसे बड़ा स्नेह रखती हैं ॥१४॥

गत्वाऽथ पत्नीशालायां दृष्ट्वाऽऽसीनाः स्वलंकृताः ।
नत्वा द्विजसतीर्गोपाः प्रश्रिता इदमब्रुवन् ॥१५॥

तब पत्नी-शाला में जाकर गोपों ने ब्राह्मणों की स्त्रियों को बन-ठन कर बैठा हुआ पाया, उन्होंने नमस्कार करके नम्रता-पूर्वक यह वचन कहा कि॥

नमो वो विप्रपत्नीभ्यो निबोधत वचांसि नः ।
इतोऽविदूरे चरता कृष्णेनेहेषिता वयम् ॥१६॥

हे विप्र-पत्नियो ! हम आपको प्रणाम करते हैं हमारे वचन सुनिये, श्रीकृष्णजी यहाँ पास ही में आ पधारे हैं, उन्होंने हम लोगोंको यहाँ भेजाहै १६

गाश्चारयन् सगोपालैः सरामो दूरमागतः ।
बुभुक्षितस्य तस्यान्नं सानुगस्य प्रदीयताम् ॥१७॥

वे ग्वालों और बलरामजी के साथ गौओं को चराते हुए दूर निकल आये हैं, इसलिये वे अपने अनुचरों सहित भोजन करना चाहते हैं, आप उन्हें अन्न दीजिये ॥१७॥

श्रुत्वाऽच्युतमुपायान्तं नित्यं तद्दर्शनोत्सुकाः ।
तत्कथाक्षिप्तमनसो बभूवुर्जातसंभ्रमाः ॥१८॥

"श्रीकृष्णजी यहाँ पधारे हैं" यह बात सुनकर ब्राह्मण-पत्नियों को बड़ा ही संभ्रम हुआ, क्योंकि भगवान् की कथा सुनने से मन हरण हो जाने के कारण वे सदैव श्रीकृष्णजी के दर्शनों के लिये उत्कण्ठित रहा करती थीं ॥१८॥

चतुर्विधं बहुगुणमन्नमादाय भाजनैः ।
अभिसस्रुः प्रियं सर्वाः समुद्रमिव निम्नगाः॥१९॥

वे सभी ब्राह्मण-स्त्रियां उसी समय (भक्ष्य, भोज्य, चोष्य व लेह्य) चार प्रकार के विशेष स्वादिष्ट तथा सुगन्धित अन्न पत्रों में लेकर प्यारे कृष्ण के सामने पहुंचीं, जैसे नदियां उमड़ कर समुद्र में जाती हैं ॥ १९ ॥

निषिध्यमानाः पतिभिर्भ्रातृभिर्बन्धुभिः सुतैः ।
भगवत्युत्तमश्लोके दीर्घश्रुतधृताशयाः ॥२०॥

यद्यपि उनके पति, भाई, बन्धु और पुत्रोंने उन्हें रोका, परन्तु जिनका मन उत्तम कीर्त्ति वाले श्रीकृष्ण भगवान् में उनके गुण सुनने के कारण बहुत दिनों से लगरहा था, वे ब्राह्मण-स्त्रियां (न रुकीं) ॥

यमुनोपवनेऽशोकनवपल्लवमण्डिते ।
विचरन्तं वृतं गोपैः साग्रजं ददृशुः स्त्रियः ॥२१॥

और उन्होंने अशोक वृक्ष के नवीन पत्तों से शोभायमान् यमुना-तट के उपवन में गोपों और बल्देवजी के साथ विचरण करते हुए श्रीकृष्णजी को देखा ॥ २१ ॥

श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्हधातुप्रवाल-
नटवेषमनुव्रतांसे । विन्यस्तहस्तमितरेण धुनान-
मब्जं कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम् ॥२२॥

प्रायः श्रुतप्रियतमोदयकर्णपूरैर्यस्मिन् निमग्न-
मनसस्तमथाक्षिरन्ध्रैः । अन्तः प्रवेश्य सुचिरं
परिरभ्य तापं प्राज्ञं यथाभिमतयो विजहुर्नरेन्द्र२३

हे राजन् ! श्याम वर्ण, पीतांबर पहिने हुए, वनमाला, मोर-पंख, धातु और मूंगा इन पदार्थों से नट के समान वेष बनाये हुए, सखा के गलेमें हाथ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

डाले हुए, दूसरे हाथ से कमल को लीला पूर्वक घुमाते हुए, कानों में कमल लगाये हुए, कपोलोंपर अलकें बिखराये हुए, मुखारविन्द द्वारा मन्द मुस-काते हुए, उन श्रीकृष्ण भगवान् को नेत्ररूपी द्वारों से अपने हृदय में बिठला कर और बड़ी देर तक मानसिक आलिंगन कर उन स्त्रियों ने अपनी तपन शान्त की, जिनके कानों को कृतार्थ करने वाले, अत्यन्त प्रिय गुण अनेक बार सुनने से उनके मन उन प्रभु में लग रहे थे, उनके ताप ऐसे ही दूर हो होगये जैसे अहं वृत्तियां सुषुप्ति के साक्षी प्राज्ञको पाकर सब ताप छोड़ देती हैं ॥२२॥२३॥

तास्तथा त्यक्तसर्वाशाः प्राप्ता आत्मदिदृक्षया ।
विज्ञायाखिलदृग्द्रष्टा प्राह प्रहसिताननः ॥२४॥

सारी आशा छोड़कर अपने दर्शन-मात्र की इच्छा से आई हुई उन स्त्रियों को देखकर सबकी बुद्धि के साक्षी श्रीभगवान् हँसते हुए बोले कि ॥

स्वागतं वो महाभागा आस्यतां करवाम् किम् ।
यन्नो दिदृक्षया प्राप्ता उपपन्नमिदं हि वः ॥२५॥

हे महा भाग्यवन्तियो ! अच्छी आई, आओ बैठो, हमें कुछ आज्ञा दो कि हम क्या करें ? जो तुम मेरे दर्शनों की इच्छा से आई हो, सो यह तुमको उचित है ॥२५॥

नन्वद्धा मयि कुर्वन्ति कुशलाः स्वार्थदर्शनाः ।
अहैतुक्यव्यवहितां भक्तिमात्मप्रिये यथा ॥२६॥

स्वार्थके समझनेवाले विवेकी पुरुष मुझ आत्मा तथा प्रिय रूप से ही फल की इच्छा छोड़ कर निरन्तर भक्ति किया करते हैं ॥२६॥

प्राणबुद्धिमनःस्वात्मदारापत्यधनादयः ।
यत्संपर्कात् प्रिया आसंस्ततः को न्वपरः प्रियः२७॥

प्राण, बुद्धि, मन, जाति, शरीर, स्त्री-पुत्र और धन आदि जिसके सम्बन्ध से प्रिय लगते हैं, उस आत्मा से अधिक प्रिय क्या हो सकता है ? ॥२७॥

तद्याात देवयजनं पतयो वो द्विजातयः ।
स्वसत्त्रं पारयिष्यन्ति युष्माभिर्गृहमेधिनः ॥२८॥

तुम यज्ञमें जाओ, तुम कृतार्थ होचुकीं,तुम्हारे पति गृहस्थ हैं, इसलिये जब तुम जाओगी तब वे तुम्हारे साथ अपना यज्ञ पूर्ण करेंगे ॥२८॥

पत्न्यु ऊचुः

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं सत्यं कुरुष्व निगमं तव पादमूलम् । प्राप्ता वयं तुलसि-दाम पदावसृष्टं केशैर्निवोढुमतिलङ्घ्य समस्तबन्धून्

स्त्रियों ने कहा–हे प्रभु ! आपको ऐसा कठोर वचन न कहना चाहिये, आपकी तो यह प्रतिज्ञा है कि "मेरा भक्त नष्ट नहीं होता" इसलिये आप इस प्रतिज्ञा को पूर्ण कीजिये, हम तो चरणों में फेंकी हुई तुलसी की मालाकी नाईं सब बन्धन तोड़कर आपके पाद-मूल में आई हैं ॥२९॥

गृह्णन्ति नो न पतयः पितरौ सुता वा न भ्रातृ बन्धुसुहृदः कुत एव चान्ये । तस्माद् भवत्पदयोः पतितात्मनां नो नान्या भवेद्गतिररिन्दम तद्विधेहि॥

यदि अब हम घरको जाँय तो हमारे पति भी हमें स्वीकार न करेंगे और न माता-पिता, पुत्र,भाई बन्धु या सुहृद अपनायेंगे, फिर दूसरों की तो बात ही क्या है ? इसलिये हे शत्रुदमन ! आपके चरणाग्र में अपने शरीर को अर्पण करने वाली हम स्त्रियोंको दासी-भावके सिवा दूसरी गति न मिले यह कृपा हम सब पर कीजिये ॥३०॥

श्रीभगवानुवाच

पतयो नाभ्यसूयेरन् पितृभ्रातृसुतादयः ।
लोकाश्च ये मयोपेता देवा अप्यनुमन्वते ॥३१॥

श्रीभगवान् बोले–मेरी आज्ञा है,इसलिये तुम्हारे पति तुम्हारा तिरस्कार न करेंगे और न पिता, भाई, पुत्र आदि दूसरे लोग ही (आकाशमें प्रत्यक्ष देवताओं को दिखलाते हुए-देखो) यह देवता भी मेरी आज्ञा स्वीकार करते हैं ॥३१॥

न प्रीतयेनुरागाय ह्यङ्गसङ्गो नृणामिह ।
तन्मनो मयि युञ्जाना अचिरान्मामवाप्स्यथ॥३२

इस संसार में शरीर का शरीर से स्पर्श होना ही कुछ प्रीति या अनुराग का कारण नहीं होता, इसलिये तुम मुझमें केवल मन लगाओ, शीघ्र ही मुझे पा जाओगी ॥३२॥

स्मरणादर्शनाद्ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात् ।
न तथा सन्निकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥३३॥

मेरा स्मरण, ध्यान,दर्शन और निरन्तर कीर्तन करने से जैसा मुझमें भाव होता है, वैसा पास में रहने से नहीं होता, इसलिये तुम शीघ्र ही घर को जाओ ॥ ३३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीशुक उवाच

इत्युक्ता मुनिपत्न्यस्ता यज्ञवाटं पुनर्गताः ।
ते चानसूयवः स्वाभिः स्त्रीभिः सत्त्रमपारयन् ॥३४

श्रीशुकदेवजी बोले—श्रीकृष्णजी के इस प्रकार कहने पर वे मुनि-पत्नियां अपने यज्ञ-स्थलको लौट आईं और उन ब्राह्मणों ने भी उन्हें निर्दोष मानते हुए उनके साथ अपना यज्ञ पूर्ण किया ॥३४॥

तत्रैका विधृता भर्त्रा भगवन्तं तथा श्रुतम् ।
हृदोपगुह्य विजहौ देहं कर्मानुबन्धनम् ॥३५॥

वहाँ एक स्त्री को उसके पति ने पकड़ रक्खा था, इसलिये उसने जैसा भगवान् का स्वरूप सुना था, वैसा ही ध्यान धरकर हृदय में भगवान्से आलिंगन करके, कर्मोंसे बंधी हुई देहको छोड़दिया॥

भगवानपि गोविन्दस्तेनैवान्नेन गोपकान् ।
चतुर्विधेनाऽऽशयित्वा स्वयं च बुभुजे प्रभुः ॥३६॥

गोविन्द भगवान् ने उसी चार प्रकार के अन्न से गोपों को भोजन कराने के पश्चात् फिर स्वयं भोजन किया ॥ ३६ ॥

एवं लीलानरवपुर्लोकमनुशीलयन् ।
रेमे गोगोपगोपीनां रमयन् रूपवाक्कृतः ॥३७॥

इस प्रकार लीलासे नर-तनधारी भगवान् ने नर-लोक का अनुकरण करते हुए रूप तथा वाणी से किये हुए चरित्रों के द्वारा गौ, गोप तथा गोपियों को आनन्द देते हुए क्रीड़ा की ॥३७॥

अथानुस्मृत्य विप्रास्ते अन्वतप्यन कृतागसः ।
यद्विश्वेश्वरयोर्याच्ञामहन्मनृविडम्बयोः ॥३८॥

इसके पीछे वे अपराधी ब्राह्मणभी पछतानेलगे कि हाय! हमने मनुष्यके समान आचरण करनेवाले जगदीश्वर की विडम्बना की और उनकी याचना को न माना ॥३८॥

दृष्ट्वा स्त्रीणां भगवति कृष्णे भक्तिमलौकिकीम् ।
आत्मानं च तया हीनमनुतप्ता व्यगर्हयन् ॥३९॥

वे स्त्रियों की भगवान्में अलौकिक भक्ति देख कर और अपने को उससे हीन देख कर दुःखी होते हुए अपनी निन्दा करने लगे ॥३९॥

धिग् जन्म नस्त्रिवृद्विद्यां धिग् व्रतं धिग् बहुज्ञताम् ।
धिक् कुले धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे ॥

हमारे शौक्र, सावित्र तथा दैक्ष्य त्रिगुण मय जन्म को धिक्कार है, कुल को धिक्कार है, हमारी विद्या, व्रत, ज्ञान और कर्म-कुशलता को धिक्कारहै, जो हम भगवान् से विमुख हैं ॥४०॥

नूनं भगवतो माया योगिनामपि मोहिनी ।
यद्वयं गुरवो नृणां स्वार्थे मुह्यामहे द्विजाः ॥४१॥

अहो ! भगवान् की माया योगियों को भी मोहित करनेवाली है, कि जिसके वशमें पड़ कर हम ब्राह्मण गुरु होकर भी स्वार्थ में भूल गये ॥४१॥

अहो पश्यत नारीणामपि कृष्णे जगद्गुरौ ।
दुरन्तभावं योऽविध्यन्मृत्युपाशान् गृहाभिधान् ४२

अहो ! जगद्गुरु श्रीकृष्ण भगवान् में स्त्रियों की भी भक्ति देखो कि जिन्होंने गृह रूपी काल-बन्धनों को काट डाला ॥४२॥

नासां द्विजातिसंस्कारो न निवासो गुरावपि ।
न तपो नात्ममीमांसा न शौचं न क्रियाःशुभाः४३

इनका न तो यज्ञोपवीत संस्कारही हुआ है, न ये गुरु के ही पास रहती हैं और न तप, आत्म-विचार, शौच या सन्ध्योपासन आदि उत्तम अनुष्ठान ही करती हैं ॥४३॥

अथापि ह्युत्तमश्लोके कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ।
भक्तिर्दृढा न चास्माकं संस्कारादिमतामपि॥४४॥

फिर भी योगेश्वर उत्तम कीर्त्तिवान् श्रीकृष्ण भगवान् में जैसी इनकी दृढ़ भक्तिहै, वैसी तो हम संस्कार वालों की भी नहीं है ॥४४॥

ननु स्वार्थविमूढानां प्रमत्तानां गृहेहया ।
अहो नः स्मरयामास गोपवाक्यैः सतां गतिः४५॥

अहो ! हम लोग जो स्वार्थको भूलकर गृहस्थी के धन्धों में असावधान से पड़े हैं, उन्हें सत्पुरुषों के गति देने वाले भगवान् ने पूर्ण रूपसे ग्वालों के वचनों द्वारा सचेत कियाहै ॥४५॥

अन्यथा पूर्णकामस्य कैवल्याद्याशिषां पतेः ।
ईशितव्यैः किमस्माभिरीशस्यैतद्विडम्बनम् ॥४६॥

अन्यथा मोक्षआदि समस्त कामनाओंके स्वामी पूर्ण काम भगवान् को हम पामर जीवोंसे प्रयोजन ही क्याथा ? यह केवल उन ईश्वरकी नर-लीलाहै॥

हित्वाऽन्यान् भजते यं श्रीः पादस्पर्शाशयाऽसकृत् ।
आत्मदोषापवर्गेण यद्याच्ञा जनमोहिनी ॥४७॥

जिनके चरण-स्पर्श की आशा से लक्ष्मीजो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूसरों को छोड़कर अपनी चञ्चलता आदिका दोष दूर करके जिनकी सेवा करती हैं, उनका याचना करना केवल लोगों को मोहित करने के लिये है ॥

देशः कालः पृथग्द्रव्यं मन्त्रतन्त्रर्त्विजोऽग्नयः ।
देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥४८॥

देश, काल, भिन्न-भिन्न पदार्थ, मन्त्र, तन्त्र, ऋत्विज, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ, धर्म ये सभी जिनके स्वरूप हैं ॥४८॥

स एष भगवान् साक्षाद्विष्णुर्योगेश्वरेश्वरः ।
जातो यदुष्वित्यश्रृण्म ह्यपि मूढा न विद्महे ॥४९॥

वे योगेश्वरोंके भी ईश्वर विष्णु यदुओंमें प्रकट हुए हैं, ऐसा हमने सुनाहै, फिर भी हम मूर्खों को चेत नहीं हुआ ॥४९॥

अहो वयं धन्यतमा येषां नस्तादृशीः स्त्रियः ।
भक्त्या यासां मतिर्जाता ह्यस्माकं निश्चला हरौ ५०

अहो ! हम लोग भी धन्यहैं, जो हमारीस्त्रियां भक्ति-परायण हुईं और उनके कारण हमारी भी भगवान् हरि में भक्ति होगई ॥५०॥

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।
यन्मायामोहितधियो भ्रमाम कर्मवर्त्मसु ॥५१॥

अकुंठ बुद्धि वाले उन श्रीकृष्ण को हमारा प्रणाम है कि जिनकी माया से मोहित बुद्धि होकर हम कर्मों में भटकते हैं ॥५१॥

स वै न आद्यः पुरुषः स्वमायामोहितात्मनाम् ।
अविज्ञातानुभावानां क्षन्तुमर्हत्यतिक्रमम् ॥५२॥

उन्हीं की माया से मोहित अन्तःकरण वाले और उनके प्रभाव को न जानने वाले हम लोगोंका अपराध वे आदि पुरुष क्षमा करें ॥५२॥

इति स्वाघमनुस्मृत्य कृष्णे ते कृतहेलनाः ।
दिदृक्षवोऽप्यच्युतयोः कंसाद्भीता न चाऽचलन् ५३॥

श्रीकृष्ण भगवान् के अपराधी उन ब्राह्मणों को अपना अपराध स्मरण होने से श्रीराम-कृष्ण के दर्शनों की अभिलाषा हुई, परन्तु वे कंस के भय से न गये ॥५३॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

चौबीसवां अध्याय

(गोवर्द्धन-लीला)

श्रीशुक उवाच

भगवानपि तत्रैव बलदेवेन संयुतः ।
अपश्यन्निवसन् गोपानिन्द्रयागकृतोद्यमान् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-बलरामजी के साथ व्रजमें निवास करते हुए श्रीकृष्णजी ने देखा कि सब गोप इन्द्र-यज्ञ की तैयारी में लगे हुए हैं ॥१॥

तदभिज्ञोऽपि भगवान् सर्वात्मा सर्वदर्शनः ।
प्रश्रयावनतोऽपृच्छत् वृद्धान्नन्दपुरोगमान् ॥ २ ॥

यद्यपि सब जीवों के आत्मा और सर्वज्ञ भगवान् सब कुछ जानते हैं, फिर भी वे नम्र होकर नन्द आदि वृद्ध गोपों से पूछने लगे ॥२॥

श्रीभगवानुवाच

कथ्यतां मे पितः कोऽयं संभ्रमो व उपागतः ।
किं फलं कस्य चोद्देशः केन वा साध्यते मखः ॥ ३ ॥

श्रीभगवान् बोले-हे तात ! मुझे बतलाइये कि आपके यहाँ यह क्या संभ्रम सा आगया है ? इस का क्या फल मिलता है ? किस आशय से किया जाता है ? किस अधिकारी तथा किस साधन के द्वारा यह यज्ञ सिद्ध हो सकता है ? ॥३॥

एतद्ब्रूहि महान् कामो मह्यं शुश्रूषवे पितः ।
नहि गोप्यं हि साधूनां कृत्यं सर्वात्मनामिह ॥ ४ ॥

हे तात ! मुझे सुनने की विशेष इच्छा है, इस लिये आप कहिये, इस लोक में जो साधु पुरुष सर्वत्र आत्मा को देखते हैं उनके कोई भी कर्म गोप्य नहीं होते ॥४॥

अस्त्यस्वपरदृष्टीनामभित्रोदास्तविद्विषाम् ।
उदासीनोरिवद्वर्ज्य आत्मवत् सुहृदुच्यते ॥ ५ ॥

साधु पुरुषोंके मित्र, उदासीन या शत्रु कदापि नहीं होते, इसलिये उनमें "यह अपना है, यह पराया है" ऐसी भेद-दृष्टि नहीं होती, यदि हो भी तो उदासीन को शत्रु की भांति छोड़ देना चाहिये परन्तु जो मित्रहो उसे तो अपने समान समझ कर अपने विचार में अवश्यही साथ लेना चाहिये ॥५॥

ज्ञात्वाऽज्ञात्वा च कर्माणि जनोऽयमनुतिष्ठति ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विदुषः कर्मसिद्धिः स्यात् तथा नाविदुषो भवेत् ६॥

यह मनुष्य जितने भी काम करता है उनमें से कुछ को जानकर करता है और कुछ को अनजाने भी करता है, परन्तु उसमें जैसी सिद्धि जाननेवाले को मिलती है वैसी अनजाने को नहीं मिलती ॥६॥

तत्र तावत् क्रियायोगो भवतां किं विचारितः ।
अथवा लौकिकस्तन्मे पृच्छतः साधु भण्यताम्॥७॥

मैं आपसे यह पूछता हूँ कि आपने जो यह अनुष्ठान करना निश्चित किया है, इसे किसी शास्त्र के आधार पर सोचा है या कि लौकिक व्यवहार के आधार पर ? इसे आप प्रमाण सहित कहिये ॥

नन्द उवाच

पर्जन्यो भगवानिन्द्रो मेघास्तस्यात्ममूर्तयः ।
तेऽभिवर्षन्ति भूतानां प्राणनं जीवनं पयः ॥ ८ ॥

श्रीनन्दरायजी बोले–भगवान् इन्द्र मेघ रूप हैं, यह मेघ उन्हीं की प्यारी मूर्त्तियां हैं, वे जीवों को जीवन तथा तृप्ति देने वाला जल बरसाते हैं ॥८॥

तं तात वयमन्ये च वार्मुचां पतिमीश्वरम् ।
द्रव्यैस्तद्रेतसा सिद्धैर्यजन्ते क्रतुभिर्नराः ॥ ९ ॥

हे तात ! हम और दूसरे मनुष्य भी मेघ-पति इन्द्रका उन्हींके बरसाये हुए जलके द्वारा सिद्धहुए पदार्थों से यज्ञ करके पूजन करते हैं ॥ ९ ॥

तच्छेषेणोपजीवन्ति त्रिवर्गफलहेतवे ।
पुंसां पुरुषकाराणां पर्जन्यः फलभावनः ॥१०॥

पूजन करते हुए जो शेष रह जाताहै, उसे धर्म अर्थ व कामकी सिद्धि के लिये अपनी आजीविका मान लेते हैं, केवल कृषि आदि उद्यम करने से ही कुछ नहीं हो सकता, क्योंकि मनुष्य के उद्यम का फल देने वाले तो मेघ ही हैं ॥ १० ॥

य एवं विसृजेद्धर्मं पारम्पर्यागतं नरः ।
कामाल्लोभाद्भयाद्द्वेषात् स वै नाप्नोति शोभनम्॥११

इस प्रकार परम्परा से प्रचलित धर्म को जो मनुष्य काम, लोभ, भय या द्वेष के कारण छोड़ बैठताहै वह शुभ फल कभी नहीं पाता ॥११॥

श्रीशुक उवाच

वचो निशम्य नन्दस्य तथान्येषां व्रजौकसाम् ।
इन्द्राय मन्युं जनयन् पितरं प्राह केशवः ॥१२॥

श्रीशुकदेवजी बोले–श्रीनन्दराय तथा दूसरे व्रजवासियों के यह वचन सुनकर इन्द्रको क्रोधित करने तथा उसका गर्व गिराने के लिये भगवान् ने पिता से कहा ॥१२॥

श्रीभगवानुवाच

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते ।
सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते ॥१३॥

श्री भगवान् बोले–जीव कर्महीं से उत्पन्नहोता है और कर्म ही से लीन होजाता है, सुख, दुःख, क्षेम और कुशल सब कर्महीं से होते हैं ॥१३॥

अस्ति चेदीश्वरः कश्चित् फलरूप्यन्यकर्मणाम् ।
कर्तारं भजते सोपि न ह्यकर्तुः प्रभुर्हि सः ॥१४॥

यदि यह मान लिया जाय कि ईश्वर कर्म का फल देने वाला है, तो वह कर्मों के आधीन हुआ, क्योंकि जो जैसा कर्म करेगा उसे वह वैसाही फल देगा, यदि कोई कर्म न करे तो उसको वह कुछ फल भी न दे सकता, इससे सिद्ध होता है कि कर्म से ही फल मिला करता है, इसलिये कर्माधीन रहने से ईश्वरकी क्या आवश्यकताहै ?॥१४॥

किमिन्द्रेणेह भूतानां स्वस्वकर्मानुवर्तिनाम् ।
अनीशेनान्यथा कर्तुं स्वभावविहितं नृणाम्॥१५॥

यहाँ इन्द्र की आवश्यकता ही क्या है ? क्यों कि जीव तो अपने-अपने कर्मानुसार वर्तते हैं, उन के पूर्व जन्म के संस्कार से उत्पन्न हुए कर्मों को इन्द्र कदापि नहीं मिटा सकता ॥१५॥

स्वभावतन्त्रो हि जनः स्वभावमनुवर्तते ।
स्वभावस्थमिदं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥१६॥

जीव पूर्व संस्कार के आधीन होने से उसीका अनुसरण करते हैं, देवता, दैत्य और मनुष्य सभी पूर्व संस्कारके वशीभूत हैं, इसलिये कर्मकी प्रवृत्ति भी संस्कार के आधीन है, तब तो ऐसी दशा में अन्तर्यामी की भी आवश्यकता नहीं ॥ १६ ॥

देहानुच्चावचान् जन्तुः प्राप्योत्सृजति कर्मणा ।
शत्रुर्मित्रमुदासीनः कर्मैव गुरुरीश्वरः ॥१७॥

कर्म से ही प्राणी उच्च या नीच योनियों को पाता है और छोड़ता है, कर्म ही शत्रु, मित्र, उदासीन, गुरु तथा ईश्वर है ॥१७॥

तस्मात् संपूजयेत्कर्मस्वभावस्थः स्वकर्मकृत् ।
अञ्जसा येन वर्तेत तदेवास्य हि दैवतम् ॥१८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसलिये मनुष्य का यही कर्त्तव्य है कि वह पूर्व संस्कार के आधीन रहता हुआ अपने कर्म का पूजन तथा अनुष्ठान किया करे, यदि देवताके नाम पर होम करनाही कर्म माना जाय कि उसके विना कर्म सिद्ध नहीं हो सकता, तो भी देवता प्रधान नहीं वरन् कर्म के अङ्गही हैं, यदि ईश्वर को कर्मों का फल देने वाला मान लिया जाय, तो भी वह कर्म का अङ्ग ही होता है, वास्तव में तो जिसकी जिसके द्वारा सहजहीमें जीविका चलतीहै, उसका वही देवता है ॥१८॥

आजीव्यैकतरं भावं यस्त्वन्यमुपजीवति ।
न तस्माद्विन्दते क्षेमं जारं नार्यसती यथा ॥१९॥

जैसे कुलटा स्त्री जार पुरुषकी सेवासे कल्याण को प्राप्त नहीं होती, वैसे ही एक की दी हुई आजीविका खाकर दूसरे की सेवा करने वाला पुरुष भी कल्याण को प्राप्त नहीं होता ॥१९॥

वर्तेत ब्रह्मणा विप्रो राजन्यो रक्षया भुवः ।
वैश्यस्तु वार्तया जीवेच्छूद्रस्तु द्विजसेवया ॥२०॥

ब्राह्मण को वेदाध्ययन करके, क्षत्रियको पृथ्वी की रक्षा करके, वैश्य को व्यापार करके और शूद्र को सेवा करके जीविका कमानी चाहिये ॥२०॥

कृषिवाणिज्यगोरक्षाः कुसीदं तुर्यमुच्यते ।
वार्ता चतुर्विधा तत्र वयं गोवृत्तयोऽनिशम् ॥२१॥

व्यापार चार प्रकार का है–खेती, गौ-रक्षा, वाणिज्य और व्याज लेना–इनमें से हम लोगों की आजीविका सदाही से 'गौ-रक्षा' है ॥२१॥

सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः ।
रजसोत्पद्यते विश्वमन्योन्यं विविधं जगत् ॥२२॥

सतोगुण से जगत् की उत्पत्ति, रजोगुण से पालन और तमोगुण से प्रलय होती है, रजोगुण के द्वारा यह अनेक प्रकार का जगत् स्त्री-पुरुष के संयोग से उत्पन्न होता है ॥ २२ ॥

रजसा चोदिता मेघा वर्षन्त्यम्बूनि सर्वतः ।
प्रजास्तैरेव सिध्यन्ति महेन्द्रः किं करिष्यति ॥२३॥

रजोगुण की प्रेरणा से ही यह मेघ चारों ओर जल बरसाते हैं, उन्हीं से प्रजा जीवित रहती है, इसमें इन्द्र क्या करेगा ? ॥ २३ ॥

न नः पुरो जनपदा न ग्रामा न गृहा वयम् ।
नित्यं वनौकसस्तात वनशैलनिवासिनः ॥२४॥

हमारे रहने के लिये नगर, देश या गांव नहीं है वरन् हमारे तो वनही घरहै, हे तात ! हम वनवासी तो सदैव वन और पहाड़ों में रहते हैं ॥२४॥

तस्माद्गवां ब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतां मखः ।
य इन्द्रयागसंभारास्तैरयं साध्यतां मखः ॥२५॥

इसलिये गौ, ब्राह्मण और पर्वतका यज्ञ आरंभ करो और जो इन्द्र के यज्ञके लिये सामग्री तैयार की है उसी से यह यज्ञ सिद्ध करो ॥ २५ ॥

पच्यन्तां विविधाः पाकाः सूपान्ता पायसादयः ।
संयावापूपशष्कुल्यः सर्वदोहश्च गृह्यताम् ॥२६॥

खीर से दाल तक सभी सामग्री बनवाओ, हलुवा, पूड़ी, लपसी, मालपुवा, कचौड़ी तैयार करो और जो दूध-दही है सो सब ले लो ॥२६॥

हूयन्तामग्नयः सम्यग् ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ।
अन्नं बहुगुणं तेभ्यो देयं वो धेनुदक्षिणाः ॥२७॥

वेद जानने वाले ब्राह्मणों के हाथ से अग्नियों में होम का आरंभ करो और उनको अनेक प्रकारका अन्न-दान, गौ-दान तथा दक्षिणा दो ॥ २७ ॥

अन्येभ्यश्च श्वचाण्डालपतितेभ्यो यथार्हतः ।
यवसं च गवां दत्त्वा गिरये दीयतां बलिः ॥२८॥

और भी जो दीन, कुत्ते, चांडाल आदि हैं उन को भी यथा योग्य भाग दो, गौओं को घास और पर्वत को बलिदान दो ॥२८॥

स्वलंकृता भुक्तवन्तः स्वनुलिप्ताः सुवाससः ।
प्रदक्षिणं च कुरुत गोविप्राऽनलपर्वतान् ॥२९॥

अच्छे २ गहने पहिन कर, भोजन करके और चन्दन लगाकर, गौ, ब्राह्मण, अग्नि तथा पर्वत की परिक्रमा करो ॥२९॥

एतन्मम मतं तात क्रियतां यदि रोचते ।
अयं गोब्राह्मणाद्रीणां मह्यं च दयितो मखः ॥३०॥

हे तात ! मेरा तो यह मत है; यदि आपको अच्छालगे तो कीजिये, यह गौ, ब्राह्मण और पर्वत का यज्ञ मुझे बहुत प्यारा है ॥३०॥

श्रीशुक उवाच

कालात्मना भगवता शक्रदर्पं जिघांसता ।
प्रोक्तं निशम्य नन्दाद्याः साध्वगृह्णन्त तद्वचः ॥३१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीशुकदेवजी बोले-इन्द्रका गर्व खण्डन करने की इच्छा करते हुए काल-मूर्त्ति श्रीकृष्ण भगवान् का यह वचन सुनकर नन्द आदि गोपों ने उसे भली भांति स्वीकार कर लिया ॥३१॥

तथा च व्यदधुः सर्वं यथाह मधुसूदनः ।
वाचयित्वा स्वस्त्ययनं तद्द्रव्येण गिरिद्विजान्३२
उपहृत्य बलीन् सर्वानादृता यवसं गवान् ।
गोधनानि पुरस्कृत्य गिरिं चक्रुः प्रदक्षिणम्॥३३॥

उन सबने भगवान् की आज्ञानुसार सामग्री तैयार की, फिर स्वस्ति पाठ कराके ब्राह्मणों और पर्वत के आगे उन पदार्थों से सब प्रकार की बलि भेंट करके, आदर सहित गौओं को घास डलवा कर और गौओं को आगे करके पर्वत की परिक्रमा की ॥३२॥ ३३ ॥

अनांस्यनड्युक्तानि ते चारुह्य स्वलंकृताः ।
गोप्यश्च कृष्णवीर्याणि गायन्त्यः सद्विजाशिषः ३४

सुन्दर आभूषण सजे हुए गोपियां गड्डों में बैठ कर, ब्राह्मणों के आशीर्वाद लेती हुईं श्रीकृष्णजी के चरित्र गारहीं थीं ॥३४॥

कृष्णस्त्वन्यतमं रूपं गोपविश्रम्भणं गतः ।
शैलोऽस्मीति ब्रुवन् भूरि बलिमादद्द बृहद्वपुः३५॥

गोपों को विश्वास दिलाने के लिये भगवान् श्रीकृष्ण ने दूसरा बड़ा स्वरूप धारण करके-"मैं पर्वत हूँ" ऐसा कहते हुए बहुत सा बलिदान भक्षण कर लिया ॥३५॥

तस्मै नमो व्रजजनैः स चक्रे आत्मनाऽत्मने ।
अहो पश्यत शैलोऽसौ रूपी नोऽनुग्रहं व्यधात्॥३६

व्रजवासियों सहित श्रीकृष्णजीने अपने रूपको आपही प्रणाम किया और सबसे कहा कि देखो इस पर्वत ने अपना प्रत्यक्ष रूप दिखला कर हम लोगों पर दया की है ॥३६॥

एषोऽवजानतो मर्त्यान् कामरूपी वनौकसः ।
हन्ति ह्यस्मै नमस्यामः शर्मणे आत्मने गवाम्॥३७

यह पर्वत अपने अपमान करने वाले वनवासियों को यथेष्ठ रूप धर कर मार डालता है, इस लिये अपने और गौओं के कल्याण के लिये इसे हम लोग प्रणाम करते हैं ॥३७॥

इत्यद्रिगोद्विजमखं वासुदेवप्रणोदिताः ।
यथा विधाय ते गोपाः सहकृष्णा व्रजं ययुः॥३८॥

इस प्रकार भगवान् की प्रेरणा से पर्वत, गौ और ब्राह्मणों का विधि पूर्वक यज्ञ करके वे गोप श्रीकृष्णजी के साथ व्रज में आये ॥३८॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

पच्चीसवां अध्याय

(व्रज-रक्षा वर्णन)

श्रीशुक उवाच

इन्द्रस्तदात्मनः पूजां विज्ञाय विहतां नृप ।
गोपेभ्यः कृष्णनाथेभ्यो नन्दादिभ्यश्चुकोप सः॥१॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन्! इन्द्र ने उस अपनी पूजा का लोप देखकर श्रीकृष्णजी को प्रभु मानने वाले नन्द आदि गोपोंपर क्रोध किया ॥१॥

गणं सांवर्तकं नाम मेघानां चान्तकारिणाम् ।
इन्द्रः प्राचोदयत् क्रुद्धो वाक्यं चाहेशमान्युत ॥२॥

इन्द्रने प्रलयकरने वाले मेघोंके सांवर्तक नामक गण को आज्ञा दी और 'मैं ही ईश्वर हूँ' ऐसा गर्व करने वाले इन्द्रने यह वचन कहा कि ॥२॥

अहो श्रीमदमाहात्म्यं गोपानां काननौकसाम् ।
कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य ये चक्रुर्देवहेलनम् ॥ ३ ॥

अहो! वनवासी गोपों के लक्ष्मी के मद की महिमा देखो कि जिन्होंने मनुष्य श्रीकृष्णकी शरण लेकर देवताओं का अपराध किया ॥३॥

यथा दृढैः कर्ममयैः क्रतुभिर्नामनौभिः ।
विद्यामान्वीक्षिकीं हित्वा तितीर्षन्ति भवार्णवम् ४॥

जैसे ब्रह्म-विद्या को त्यागकर नाम मात्रके नौका समान, अदृढ़ क्रिया द्वारा होनेवाले यज्ञोंसे संसार समुद्र को पार करने की इच्छा की जाय ॥ ४ ॥

वाचालं बालिशं स्तब्धमज्ञं पण्डितमानिनम् ।
कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुरप्रियम्॥ ५ ॥

वैसे ही वाचाल, बालक अपने को पण्डित मानने वाले, अविनीत, अज्ञान, मरणधर्मा कृष्णका आश्रय लेकर गोपों ने मेरी अवज्ञा की है ॥५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एषां श्रियावलिप्तानां कृष्णेनाध्मायितात्मनाम् ।
धुनुत श्रीमदस्तम्भं पशून् नयत संक्षयम् ॥ ६ ॥

लक्ष्मी के मदसे मतवाले श्रीकृष्ण के बहकाये हुए इन गोपों को जो धन का मद होगया है उसे तुम दूर करदो और पशुओं का नाश करदो ॥६॥

अहं चैरावतं नागमारुह्यानुव्रजे व्रजम् ।
मरुद्गणैर्महावीर्यैर्नन्दगोष्ठजिघांसया ॥ ७ ॥

मैं भी ऐरावत हाथी पर सवार होकर परम पराक्रमी मरुत्गणों को साथ लिये हुए नन्दराय के व्रजको नाश करनेके लिये तुम्हारे पीछे आरहाहूँ ॥

श्रीशुक उवाच

इत्थं मघवताऽऽज्ञप्ता मेघा निर्मुक्तबन्धनाः ।
नन्दगोकुलमासारैः पीडयामासुरोजसा ॥८॥

श्रीशुकदेवजी बोले–इन्द्र की ऐसी आज्ञा पाकर मेघने बन्धन से मुक्त होकर बड़े वेगके साथ मूसलाधार पानी बरसा कर नन्दरायजी के गोकुल को पीड़ित कर दिया ॥ ८ ॥

विद्योतमाना विद्युद्भिः स्तनन्तः स्तनयित्नुभिः ।
तीव्रैर्मरुद्गणैर्नुन्ना ववृषुर्जलशर्कराः ॥ ९ ॥

बिजलियां चमकने लगीं, कड़कड़ शब्द होने लगा,तीव्र मरुत् गणोंकी प्रेरणासे ओले गिरनेलगे।

स्थूणास्थूला वर्षधारा मुञ्चत्स्वभ्रेष्वभीक्ष्णशः ।
जलौघैः प्लाव्यमाना भूर्नादृश्यत नतोन्नतम् ॥१०॥

शहतीर से भी मोटी पानी की अखंड धारा बादलों में से गिर रही थी, जिससे समस्त पृथ्वी जल में डूब गई, कहीं भी ऊँची-नीची जगह दिखाई न देती थी ॥१०॥

अत्यासारातिवातेन पशवो जातवेपनाः ।
गोपा गोप्यश्च शीतार्ता गोविन्दं शरणं ययुः ॥११॥

अत्यन्त वर्षा और तीव्र वायुसे सब पशु काँपने लगे, गोपियां और गोप जाड़े से दुखी हो कर श्रीकृष्णजी के शरण आये ॥११॥

शिरः सुतांश्च कायेन प्रच्छाद्यासारपीडिताः ।
वेपमाना भगवता पादमूलमुपाययुः ॥१२॥

वे सब वर्षा से पीड़ित होकर अपने सिर तथा बच्चों को ढके हुए काँपते-काँपते भगवान् के चरण मूल में आये ॥१२॥

कृष्ण कृष्ण महाभाग त्वन्नाथं गोकुलं प्रभो ।
त्रातुमर्हसि देवान्नः कुपिताद्भक्तवत्सल ॥१३॥

(और बोले कि) हे कृष्ण, हे कृष्ण ! हे प्रभु ! हे भक्तवत्सल ! आपही को स्वामी माननेवाले इस गोकुल तथा हम लोगोंकी क्रुद्ध इन्द्रसे रक्षाकरिये॥

शिलावर्षनिपातेन हन्यमानमचेतनम् ।
निरीक्ष्य भगवान् मेने कुपितेन्द्रकृतं हरिः ॥१४॥

जब ओलों के गिरने से पीड़ित तथा अचेत गोकुल को श्रीकृष्णजी ने देखा तो वे सर्व दुःखहरण समझगये कि यह करतूति क्रोधी इन्द्रकी है ॥

अपर्त्वत्युल्बणं वर्षमतिवातं शिलामयम् ।
स्वयागे निहतेऽस्माभिरिन्द्रो नाशाय वर्षति ॥१५॥

हमने इसके यज्ञका विध्वंस किया है, इसलिये यह इन्द्र व्रजका नाश करने के लिये बिना ऋतु ही घोर पवनके साथ भयानक पाषाण-वर्षा कर रहाहै ॥

तत्र प्रतिविधिं सम्यगात्मयोगेन साधये ।
लोकेशमानिनां मौढ्याद्धरिष्ये श्रीमदं तमः ॥१६॥

मैं यहाँ इसके लिये अपनी सामर्थ्य से उपाय करूँगा और मूर्खता के कारण लोकपाल होने का अभिमान करने वालों का लक्ष्मी से उत्पन्न हुआ मद हरण करूँगा ॥१६॥

नहि सद्भावयुक्तानां सुराणामीशविस्मयः ।
मत्तोऽसतां मानभङ्गः प्रशमायोपकल्पते ॥१७॥

सतोगुणी देवताओं को अपने समर्थ होने का अभिमान न करना चाहिये, परन्तु उन्हें वह अभिमान होगया है, इसलिये मैं उन दुष्टों का गर्व भंग करूंगा, तभी उनपर अनुग्रह होगा ॥ १७ ॥

तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम् ।
गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः ॥१८॥

इसलिये मुझे ही नाथ समझने वाले, मेरेद्वारा ग्रहण किये हुए और मेरे ही शरणागत गोकुल की मैं अपने योग-बल से रक्षा करूंगा, क्योंकि शरणागत की रक्षा करना तो मेरा व्रत ही है ॥१८॥

इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम् ।
दधार लीलया कृष्णश्छत्राकमिव बालकः ॥१९॥

इस प्रकार कहकर भगवान्ने लीला-पूर्वक एक हाथ से गोवर्द्धन पर्वतको उखाड़कर ऐसेही धारण कर लिया जैसे बालक छत्राक पौधे को उखाड़कर उठा लेता है ॥१९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथाह भगवान् गोपान् हेऽम्ब तात व्रजौकसः ।
यथोपजोषं विशत गिरिगर्तं सगोधनाः ॥२०॥

फिर भगवान्ने गोपोंसे कहा कि हे माता ! हे तात ! हे व्रजवासियो ! तुम लोग अपनी गौओं सहित सुखसे इस पर्वतके नीचे आ जाओ ॥२०॥

न त्रास इह वः कार्यो मद्धस्ताद्विनिपातने ।
वातवर्षभयेनालं तत्त्राणं विहितं हि नः ॥२१॥

तुम लोग इस बात का भय न मानो कि यह मेरे हाथ से गिर जायगा, अब तुम वर्षा और वायु का भय छोड़दो, मैंने उससे तुम्हारी रक्षा की है ॥

तथा निर्विविशुर्गर्तं कृष्णाश्वासितमानसाः ।
यथावकाशं सधनाः सव्रजाः सोपजीविनः ॥२२॥

सब व्रजवासी कृष्णजी के कहने पर विश्वास करके छकड़ों, गौ-धन तथा अनुजीवियों सहित यथा अवकाश वैसे ही आनन्द पूर्वक उस पर्वतके गढ़े में घुस गये ॥२२॥

क्षुत्तृड्व्यथां सुखापेक्षां हित्वा तैर्व्रजवासिभिः ।
वीक्ष्यमाणो दधावद्रिं सप्ताहं नाचलत् पदात् ॥२३॥

भूख-प्यास का दुःख और सुखकी इच्छा छोड़ कर जिनकी ओर सब व्रजवासी देख रहे थे; ऐसे श्रीकृष्ण भगवान् ने सात दिन तक लगातार पर्वत को धारण किया और वहाँ से एक डग भी कहीं को न खिसके ॥२३॥

कृष्णयोगानुभावं तं निशम्येन्द्रोऽतिविस्मितः ।
निस्तम्भो भ्रष्टसंकल्पः स्वान् मेघान् संन्यवारयत् ॥

श्रीकृष्ण का योग प्रभाव देखकर इन्द्रको बड़ा ही आश्चर्य हुआ, प्रतिज्ञा भंग होने के कारण उस का अभिमान मिट गया और तब उसने मेघों को रोक दिया ॥ २४ ॥

खं व्यभ्रमुदितादित्यं वातवर्षं च दारुणम् ।
निशाम्योपरतं गोपान् गोवर्द्धनधरोऽब्रवीत् ॥२५॥

जब आकाश में बादल तितर-बितर होकर सूर्योदय होगया, भयंकर वायु और वर्षा बन्द हो गई, तब उसे देखकर गोवर्धन धारी श्रीकृष्ण भगवान् ने गोपों से कहा कि ॥२५॥

निर्यात त्यजत त्रासं गोपाः सस्त्रीधनार्भकाः ।
उपारतं वातवर्षं व्युदप्रायाश्च निम्नगाः ॥२६॥

हे गोपो ! अब तुम स्त्री, धन और बालकों सहित बाहर निकल चलो, घबराओ नहीं, पवन और जल-वृष्टि बन्द होगई है और नदियोंका जल भी उतर गया है ॥२६॥

ततस्ते निर्ययुर्गोपाः स्वं स्वमादाय गोधनम् ।
शकटोढोपकरणं स्त्रीबालस्थविराः शनैः ॥२७॥

तब वे स्त्री, बालक और वृद्ध सभी गोप छकड़ों में सामान भरकर अपने-अपने गोधनको लिये हुए बाहर निकले ॥ २७ ॥

भगवानपि तं शैलं स्वस्थाने पूर्ववत् प्रभुः ।
पश्यतां सर्वभूतानां स्थापयामास लीलया ॥२८॥

फिर भगवान् प्रभु ने भी सब लोगों के देखते-देखते उस पर्वत को पहलेकी नाईं उसी स्थानपर रख दिया ॥२८॥

तं प्रेमवेगान्निभृता व्रजौकसो यथा समीयुः परिरम्भणादिभिः । गोप्यश्च सस्नेहमपूजयन्मुदा दध्यक्षताद्भिर्युयुजुः सदाशिषः ॥२९॥

उस समय प्रेम के आवेग में आकर सब व्रजवासियों ने यथा योग्य रीतिसे भेंटकी और गोपियों ने दही, अक्षत और जलसे स्नेह तथा आदर पूर्वक पूजा की तथा आशीर्वाद दिये ॥२९॥

यशोदा रोहिणी नन्दो रामश्च बलिनां वरः ।
कृष्णमालिङ्ग्य युयुजुराशिषः स्नेहकातराः ॥३०॥

यशोदा, रोहिणी, नंदजी और बलवानोंमें श्रेष्ठ बलरामजी आदि सभी स्नेह से कातर होकर श्रीकृष्णजी से मिले तथा उन्होंने आशीर्वाद दिया ॥

दिवि देवगणाः साध्याः सिद्धगन्धर्वचारणाः ।
तुष्टुवुर्मुमुचुस्तुष्टाः पुष्पवर्षाणि पार्थिव ॥३१॥

हे राजन् ! आकाश में देवगण, साध्य, सिद्ध, गन्धर्व और चारणने स्तुति तथा पुष्पवर्षा की ॥३१॥

शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवप्रणोदिताः ।
जगुर्गन्धर्वपतयस्तुम्बुरुप्रमुखा नृप ॥३२॥

हे राजन् ! आकाश में देवताओं द्वारा बाजे बाजनेलगे और तुंबुरु आदि गन्धर्व गीत गानेलगे।

ततोऽनुरक्तैः पशुपैः परिश्रितो राजन् स्वगोष्ठं सबलोऽव्रजद्धरिः । तथाविधान्यस्य कृतानि गोपिका गायन्त्य ईयुर्मुदिता हृदिस्पृशः ॥३३॥

हे राजन् ! फिर श्रीकृष्णचन्द्रजी गोपों से वेष्टित होकर बलरामजी सहित गोकुल में पधारे और गोपियाँ भी इस प्रकार के मनोहर भगवच्चरित्रों को गाती हुई व्रज में आईं ॥३३॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छब्बीसवां अध्याय

(नन्द और गोपगण का कथोपकथन)

श्रीशुक उवाच

एवंविधानि कर्माणि गोपाः कृष्णस्य वीक्ष्य ते ।
अतद्वीर्यविदः प्रोचुः समभ्येत्य सुविस्मिताः॥ १ ॥

बालकस्य यदेतानि कर्माण्यत्यद्भुतानि वै ।
कथमर्हत्यसौ जन्म ग्राम्येष्वात्मजुगुप्सितम्॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–वे गोप ऐसे २ श्रीकृष्णजी के चरित्रों को देखकर परन्तु भगवान् के प्रभावको न जानकर; मनमें आश्चर्य मानकर और श्रीनंदजी पास आकर बोले कि बालक के जो यह अद्भुत चरित्र हैं, इन्हें देखकर हम लोगों को संशय होता है कि अपने स्वरूप के अयोग्य इन ग्रामवासियों में इसका जन्म होना कैसे संभव है ? ॥१॥॥२॥

यः सप्तहायनो बालः करेणैकेन लीलया ।
कथं बिभ्रद्गिरिवरं पुष्करं गजराडिव ॥ ३ ॥

यह बालक सात वर्ष की अवस्था में लीला ही से एक हाथमें महान् पर्वतको लिये हुए कैसे खड़ा रहा ? जैसे गजेन्द्र कमलको उठाता है ॥३॥

तोकेनामीलिताक्षेण पूतनाया महौजसः ।
पीतः स्तनः सह प्राणैः कालेनेव वयस्तनोः ॥४॥

इसने बचपन में आँखें मूंदकर महा बलधारणी पूतना का स्तन उसके प्राणों सहित ऐसे ही पान कर लिया था जैसे काल शरीर की यौवनावस्था को पी जाता है ॥४॥

हिन्वतोऽधः शयानस्य मास्यस्य चरणावुदक् ।
अनोऽपतद्विपर्यस्तं रुदतः प्रपदा हतम् ॥ ५ ॥

तीन भाह की अवस्था में गाढ़े के नीचे सोते हुए इस बालक ने रुदन करके जो ऊपर की ओर पैर उछाले तो उनकी चोट से वह शकट (गाढ़ा) उलटा गिर गया ॥५॥

एकहायन आसीनो ह्रियमाणो विहायसा ।
दैत्येन यस्तृणावर्तमहन् कण्ठग्रहातुरम् ॥ ६ ॥

एक वर्ष की आयु होने पर एक दिन जब यह बालक बैठा हुआ था, तब तृणावर्त्त नामक दैत्य ने आकाश-मार्ग से जो इसका हरण किया तो इसने उसे गला घोंट कर मार डाला ॥६॥

क्वचिद्धैयङ्गवस्तैन्ये मात्रा बद्ध उलूखले ।
गच्छन्नर्जुनयोर्मध्ये बाहुभ्यां तावपातयत् ॥ ७ ॥

किसी समय जब माता ने माखन-चोरी के कारण इसे ऊखल में बांध दिया, तब दोनों यमलार्जुन नामक वृक्षोंके बीचमें होकर जाते हुए इस ने उन दोनों को हाथों से गिरा दिया ॥७॥

वने संचारयन् वत्सान् सरामो बालकैर्वृतः ।
हन्तुकामं बकं दोर्भ्यां मुखतोऽरिमपाटयत्॥ ८ ॥

जब यह बालकों के बीच बलदाऊ के साथ बनमें बछड़े चरा रहा था, उस समय इसे मारने की इच्छा से जो बकासुर नामक दैत्य आया था उस शत्रु की चोंच दोनों हाथों से पकड़ कर उसे इसने चीर डाला था ॥ ८ ॥

वत्सेषु वत्सरूपेण प्रविशन्तं जिघांसया ।
हत्वा न्यपातयत् तेन कपित्थानि च लीलया ॥९॥

बछड़ोंमें बछड़ेका वेष बनाकर जो दैत्य मारने की इच्छा से आया था, उसे उसने लीला ही से मारकर, उसकी लाशके द्वारा कैंथके वृक्ष गिरादिये।

हत्वा रासभदैतेयं तद्बन्धूंश्च बलान्वितः ।
चक्रे तालवनं क्षेमं परिपक्वफलान्वितम् ॥१०॥

बलरामजी को साथ में लेकर धेनुकासुर और उसके बन्धुओं को मारकर, पके हुए फल वाले तालबन को निर्भय कर दिया ॥ १०॥

प्रलम्बं घातयित्वोग्रं बलेन बलशालिना ।
अमोचयद्व्रजपशून् गोपांश्चारण्यवह्नितः ॥११॥

बलवान् बलदेवजी के हाथ क्रूर प्रलम्ब नामक दैत्य का बध करवा के दावाग्नि से व्रज के पशु तथा गोपों की रक्षा की ॥११॥

आशीविषतमाहीन्द्रं दमित्वा विमदं ह्रदात् ।
प्रसह्योद्वास्य यमुनां चक्रेऽसौ निर्विषोदकाम्॥१२

इसने अत्यन्त क्रूर विष धारी नाग राजा का दमन तथा मद हीन करके उसे बल पूर्वक यमुना जी से बाहर निकाल कर यमुनाजी के जलको विष रहित किया ॥ १२ ॥

दुस्त्यजश्चानुरागोऽस्मिन् सर्वेषां नो व्रजौकसाम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नन्द ते तनयेऽस्मासु तस्याप्यौत्पत्तिकः कथम् १३

हे नन्दरायजी ! हम सब व्रजवासियों का भी आपके इस पुत्र से ऐसा स्नेह है कि जिसे छोड़ा नहीं जा सकता और ऐसा ही इसका हम लोगोंसे स्नेह है, भला यह पारस्परिक स्वाभाविक स्नेह कैसा है ? ॥१३॥

क्व सप्तहायनो बालः क्व महाद्रिविधारणम् ।
ततो नो जायते शङ्का व्रजनाथ तवात्मजे ॥१४॥

कहाँ तो सात वर्ष का बालक और कहाँ इतने बड़े पर्वत का उठाना ? हे व्रजपति ! इस कारण से हमको आपके पुत्र के विषय में संशय होता है ॥

नन्द उवाच

श्रूयतां मे वचो गोपा व्येतु शङ्का च वोर्भके ।
एनं कुमारमुद्दिश्य गर्गो मे यदुवाच ह ॥१५॥

नन्दरायजी बोले-हे गोपो ! मेरी बात सुनो और बालक के प्रति जो तुम लोगों को सन्देह है उसे छोड़ दो, इस बालक के गुणों के विषयमें जो गर्गाचार्य ने मुझसे कहाहै वह मैं तुमसे कहताहूँ ॥

वर्णास्त्रयः किलास्यासन् गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः॥१६॥

प्रत्येक युग में शरीर धारण करते हुए इस बालक के शुक्ल, पीत और रक्तवर्ण होचुके हैं, अब से इसने कृष्ण-रूप धारण किया है ॥ १६ ॥

प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः ।
वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः संप्रचक्षते ॥१७॥

कभी यह तुम्हारा पुत्र वसुदेवजी का पुत्रहुआ है, इसलिये ज्ञानी जन इसे श्रीमान् वासुदेव कहते हैं ॥१७॥

बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ।
गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥१८॥

गुण और कर्मों के अनुसार तेरे पुत्र के नाम और रूप अनेकहैं उन्हें मैं जानता हूँ, दूसरे लोग नहीं जानते ॥१८॥

एष वः श्रेय आधास्यद्गोपगोकुलनन्दनः ।
अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥१९॥

यह गोप और गोकुल को आनन्द देने वाला बालक तुम्हारा कल्याण करेगा, इसके द्वारा तुम सहजही में सब दुःखों से छूट जाओगे ॥१९॥

पुराऽनेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ।
अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून् समेधिताः॥२०

हे व्रजपति ! पूर्व काल में जब कोई राजा न था उस समय चोरों से पीड़ित साधुजनों की इस ने रक्षा की, जिससे वे साधुजन उन्नत होकर उन चोरों को जीत सके थे ॥ २० ॥

य एतस्मिन् महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः ।
नारयोऽभिभवन्त्येतान् विष्णुपक्षानिवासुराः २१॥

हे महाभागी ! मनुष्य इस बालकसे प्रीतिकरेंगे चोर गण उनका कभी तिरस्कार न कर सकेंगे, जैसे विष्णु पक्ष वालों का दैत्य तिरस्कार नहीं कर सकते ॥२१॥

तस्मान्नन्दात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः ।
श्रिया कीर्त्यानुभावेन तत्कर्मसु न विस्मयः॥२२॥

हे नन्दरायजी ! इस कारण से यह तुम्हारा पुत्र गुण, लक्ष्मी, कीर्त्ति तथा प्रभाव से नारायणके समान है, इसलिये इसके कर्मों से आश्चर्य न मानना चाहिये ॥२२॥

इत्यद्धा मां समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ।
मन्ये नारायणस्यांशं कृष्णमक्लिष्टकारिणम्॥२३॥

इस प्रकार मुझे आज्ञा देकर गर्गाचार्यजी घर चले गये, तबसे बड़े-बड़े काम करने वाले श्रीकृष्ण को मैं साक्षात् नारायणका अंश मानता हूँ ॥२३॥

इति नन्दवचः श्रुत्वा गर्गगीतं व्रजौकसः ।
दृष्टश्रुतानुभावास्ते कृष्णस्यामिततेजसः ।
मुदिता नन्दमानर्चुः कृष्णं च गतविस्मयाः॥२४॥

व्रजवासी जन नन्दजी के ऐसे वचन सुनकर आश्चर्य छोड़कर और आनन्दित होकर उनकी तथा श्रीकृष्णजी की पूजा करनेलगे,क्योंकि उन्होंने अपरिमित तेजधारी श्रीकृष्णजी का प्रभाव आंखों से देख लिया था तथा कानों से सुन लिया था ॥

देवे वर्षति यज्ञविप्लवरुषा वज्राश्मवर्षानिलैः
सीदत्पालपशुस्त्रि आत्मशरणं दृष्ट्वानुकम्प्युत्स्मयम्
उत्पाट्यैककरेण शैलमबलो लीलोच्छिलीन्ध्रं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यथा बिभ्रद् गोष्ठमपान्महेन्द्रमदभित् प्रीयान्न इन्द्रो गवाम् ॥२५॥

यज्ञ भंग होने के कारण क्रोध पूर्वक इन्द्र के बरसाये हुए वज्र ओले और घोर वायु से पीड़ित ग्वाल, पशु और स्त्रियों वाले गोकुल को अपने शरण देखकर, अपनी महिमा प्रकट करतेहुए जिन दयामय भगवान् ने गोवर्धन पर्वत को उठाकर बालक जैसे छत्राक को उठा लेताहै, वैसे एक हाथ पर धारण करके उसकी रक्षा की और और इन्द्र का गर्व दूर किया, ये गौओं के इन्द्र श्रीकृष्ण भगवान् हम पर प्रसन्न हों ॥२५॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

सत्ताईसवां अध्याय

(इन्द्र कृत श्रीकृष्ण स्तुति)

श्रीशुक उवाच

गोवर्धने धृते शैल आसाराद्रक्षिते व्रजे ।
गोलोकादाव्रजत् कृष्णं सुरभिः शक्र एव च॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–गोवर्धन को उठाकर जब श्रीकृष्णजी ने उस वृष्टिसे व्रज की रक्षा की, तब गोलोक से सुरभि और स्वर्ग से इन्द्र दोनों आये।

विविक्त उपसंगम्य व्रीडितः कृतहेलनः ।
पस्पर्श पादयोरेनं किरीटेनार्कवर्चसा ॥ २ ॥

अपराधी इन्द्र लज्जित होकर एकान्त में श्री कृष्ण भगवान् के पास आकर सूर्यके समान कान्ति वाले मुकुट से उनके चरण स्पर्श करने लगे ॥२॥

दृष्टश्रुतानुभावोऽस्य कृष्णस्यामिततेजसः ।
नष्टत्रिलोकेशमद इन्द्र आह कृताञ्जलिः ॥ ३ ॥

क्योंकि उन्होंने अपार तेजधारी श्रीकृष्ण भगवान् की महिमा देख तथा सुनली थी, इसलिये वे त्रिलोकीनाथ होने का अभिमान छोड़ कर और हाथ जोड़ कर बोले ॥ ३ ॥

इन्द्र उवाच

विशुद्धसत्त्वं तव धाम शान्तं तपोमयं ध्वस्त-
रजस्तमस्कम् । मायामयोऽयं गुणसंप्रवाहो न
विद्यते तेऽग्रहणानुबन्धः ॥ ४ ॥

इन्द्र बोले–आपका शुद्ध सतोगुणी शान्त और सर्वज्ञ स्वरूप रजोगुण तथा तमोगुण से रहित है, यह माया मय अज्ञान से बँधने वाला संसार आपके लिये नहीं है ॥४॥

कुतो नु तद्धेतव ईश तत्कृता लोभादयो येऽबुध
लिङ्गभावाः । तथाऽपि दण्डं भगवान् बिभर्ति
धर्मस्य गुप्त्यै खलनिग्रहाय ॥ ५ ॥

तब संसार के सम्बन्ध से किये हुए अन्य देह के कारण अज्ञान के सूचक लोभ आदि तो आपके लिये हो ही क्या सकते हैं ? फिर भी आप धर्मकी रक्षा तथा दुष्टों का निग्रह करने के लिये देह को धारण करते हैं ॥५॥

पिता गुरुस्त्वं जगतामधीशो दुरत्ययः काल
उपात्तदण्डः । हिताय स्वेच्छातनुभिः समीहसे
मानं विधुन्वन् जगदीशमानिनाम् ॥ ६ ॥

आप जगत् के पिता, गुरु, नियंता और अविनाशी दण्ड के धारणकर्त्ता-काल-मूर्त्ति हो और जो लोग इस बात का अभिमान करतेहैं कि हम जीवों के हितकारी तथा जगदीश्वर हैं, उनके मद खंडन करके दण्ड देकर और अपनी इच्छानुसार शरीर धारण करके लीला करते हो ॥ ६ ॥

ये मद्विधाज्ञा जगदीशमानिनस्त्वां वीक्ष्य काले-
ऽभयमाशु तन्मदम् । हित्वाऽऽर्य्यमार्गं प्रभजन्त्य-
पस्मया ईहा खलानामपि तेऽनुशासनम् ॥ ७ ॥

जो मुझ ऐसे जगदीश्वरपन का अभिमानरखने वाले मूर्ख हैं, वे भय के समय में भी निर्भय आप का दर्शन करके तत्कालही उस अभिमानको छोड़ कर निरहङ्कार भाव से उत्तम २ मार्गों का सेवन करते हैं, इसलिये आपकी लीला भी दुष्टों को दण्ड रूप है ॥ ७ ॥

स त्वं ममैश्वर्यमदप्लुतस्य कृतागसस्तेऽविदुषः
प्रभावम् । क्षन्तुं प्रभोऽर्हसि मूढचेतसो मैवं
पुनर्भून्मतिरीश मेऽस्ती ॥ ८ ॥

हे प्रभु ! आपको मुझ ऐश्वर्य के मद से भरे हुए आपके प्रभाव को न जाननेवाले, अज्ञानी और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपराधी को क्षमा करनी चाहिये, हे नाथ ! अब मेरी ऐसी दुष्ट बुद्धि न हो ॥८॥

तवावतारोऽयमधोक्षजेह स्वयंभराणामुरुभार-जन्मनाम्। चमूपतीनामभवाय देव भवाय युष्मच्च-रणानुवर्तिनाम् ॥ ९ ॥

हे गोतीत ! हे देव ! यह आपका भू-तल पर अवतार स्वयं भाररूप तथा दूसरे अनेक भार उत्पन्न करने वाले सेनापतियोंके संहार तथा अपने चरण-सेवकों के कल्याणके लिये हुआ है ॥ ९ ॥

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ।
वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां पतये नमः ॥१०॥

महात्मा, सबके अन्तर्यामी, वासुदेव, और यादवपति श्रीकृष्ण भगवान् ! आपको मेरा प्रणाम है

स्वच्छन्दोपात्तदेहाय विशुद्धज्ञानमूर्तये ।
सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वभूतात्मने नमः ॥११॥

जिन्होंने भक्तों की इच्छासे शरीर धारणकिया है, ऐसे विशुद्ध, ज्ञान-मूर्त्ति, सबके बीज रूप; सब प्राणियों के आत्म-रूप और सर्व रूप आप को प्रणाम है ॥११॥

मयेदं भगवान् गोष्ठनाशायासारवायुभिः ।
चेष्टितं विहते यज्ञे मानिना तीव्रमन्युना ॥१२॥

हे भगवान् ! वर्षा और वायु के द्वारा गोकुल का नाश करनेके लिये मुझ अभिमानीने यह कुकर्म किया है, क्योंकि यज्ञ भंग होने पर मुझे महान् क्रोध आगया था ॥१२॥

त्वयेशानुगृहीतोऽस्मि ध्वस्तस्तम्भो हतोद्यमः ।
ईश्वरं गुरुमात्मानं त्वामहं शरणं गतः ॥१३॥

हे नाथ ! आपने बड़ा अनुग्रह किया जिससे मेरा उद्यम नष्ट होने के कारण मेरा गर्व जाता रहा अब आप ईश्वर, गुरु और आत्म-रूपके मैं शरणहूँ॥

श्रीशुक उवाच

एवं संकीर्तितः कृष्णो मघोना भगवानमुम् ।
मेघगम्भीरया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥१४॥

श्रीशुकदेवजी बोले–जब इन्द्र ने इस प्रकार भगवान् की स्तुति की, तब हँसकर भगवान् ने मेघके समान गंभीर वाणी से कहा ॥१४॥

श्रीभगवानुवाच

मया तेऽकारि मघवन् मखभङ्गोऽनुगृह्णता ।
मदनुस्मृतये नित्यं मत्तस्येन्द्र श्रिया भृशम् ॥१५॥

श्रीभगवान् बोले–हे इन्द्र ! हमने तुमपर अनुग्रह करने के लिये ही तुम्हारा यज्ञ भंग किया है, तुम देवों का राज्य पाकर बहुत ही असावधान हो रहे थे, इसलिये अपना स्मरण दिलाने के लिये मैं ने ऐसा किया है ॥१५॥

मामैश्वर्य श्रीमदान्धो दण्डपाणिं न पश्यति ।
तं भ्रंशयामि संपद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम्॥१६॥

क्योंकि ऐश्वर्य और लक्ष्मी के मद से अन्धा पुरुष मुझ हाथ में दण्ड लिये हुए (प्रभु) को नहीं देखता. परन्तु मैं जिसपर कृपा करना चाहता हूं, उसकी सम्पदा को नष्ट कर देता हूँ ॥१६॥

गम्यतां शक्र भद्रं वः क्रियतां मेऽनुशासनम् ।
स्थीयतां स्वाधिकारेषु युक्तैर्वः स्तम्भवर्जितैः १७॥

हे इन्द्र ! अब तुम जाओ, तुम्हारा कल्याणहो मेरी आज्ञा मानो और गर्व छोड़ कर अपने अधिकारों में सावधानी पूर्वक रहो ॥१७॥

अथाह सुरभिः कृष्णमभिवाद्य मनस्विनी ।
स्वसंतानैरुपामन्त्र्य गोपरूपिणमीश्वरम् ॥१८॥

फिर उदार चित्त कामधेनु ने अपनी सन्तति सहित श्रीकृष्णजी को प्रणाम करके गोपरूप परमेश्वर को अपने समक्ष कराके कहा ॥१८॥

सुरभिरुवाच

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वसंभव ।
भवता लोकनाथेन सनाथा वयमच्युत ॥१९॥

सुरभि बोली-हे कृष्ण,हे कृष्ण ! हे महायोगी ! हे विश्वात्मा ! हे विश्वके उत्पन्नकर्त्ता ! हे अच्युत हे लोकनाथ ! हम आपसे सनाथ हैं, क्योंकि इन्द्र ने हमको दुःखी किया था, परन्तु आपने हमारी रक्षा की ॥१९॥

त्वं नः परमकं दैवं त्वं न इन्द्रो जगत्पते ।
भवाय भव गोविप्रदेवानां ये च साधवः ॥२०॥

हे जगत्पति ! आप हमारे श्रेष्ठ देवता हैं इस लिये आप गौ, ब्राह्मण, देवता और साधु इन सब के कल्याण के लिये हमारे इन्द्र हों ॥ २० ॥

इन्द्रं नस्त्वाभिषेक्ष्यामो ब्रह्मणा नोदिता वयम् ।
अवतीर्णोऽसि विश्वात्मन् भूमेर्भारापनुत्तये ॥२१॥

हे विश्वात्मा ! आपने पृथ्वी का भार उतारने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के लिये अवतार लिया है, हमें ब्रह्माजी ने आज्ञा दी है; इसलिये हम इन्द्र-पदवी देने के लिये आप का अभिषेक करेंगे ॥२१॥

श्रीशुक उवाच

एवं कृष्णमुपामन्त्र्य सुरभिः पयसात्मनः।
जलैराकाशगङ्गाया ऐरावतकरोद्धृतैः ॥२२॥

श्रीशुकदेवजी बोले—इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान् की आज्ञा लेकर सुरभी ने अपने दूध और ऐरावत हाथी की सूंड़ से लाई हुई आकाश-गङ्गा के जल से उनका अभिषेक किया ॥२२॥

इन्द्रः सुरर्षिभिः साकं नोदितो देवमातृभिः।
अभ्यषिञ्चत दाशार्हं गोविन्द इति चाभ्यधात् २३

इन्द्र ने भी देव-माताओं की प्रेरणा से देवर्षियों के साथ भगवान् का अभिषेक किया और उनका "गोविन्द" नाम रक्खा ॥२३॥

तत्रागतास्तुम्बुरुनारदादयो गन्धर्वविद्याधर-सिद्धचारणाः। जगुर्यशो लोकमलापहं हरेः सुराङ्गनाः संननृतुर्मुदान्विताः ॥२४॥

वहाँ तुम्बुरु, नारद आदि सब गन्धर्व, सिद्ध और चारण आये और जगत् का मल-हारी भगवान् श्रीकृष्ण का यश गाने लगे तथा अप्सरा गण ने आनन्दित होकर नृत्य किया ॥२४॥

तं तुष्टुवुर्देवनिकायकेतवो व्यवाकिरंश्चाद्भुत-पुष्पवृष्टिभिः। लोकाः परां निर्वृतिमाप्नुवंस्त्रयो गावस्तदा गामनयन् पयोदुताम् ॥२५॥

प्रधान २ देवताओंने स्तुति तथा पुष्प-वर्षा की तीनों लोक परम आनन्दित हुए, उस समय गौओं ने अपने झरते हुए दूध से पृथ्वीको भिगो दिया।

नानारसौघाः सरितो वृक्षा आसन् मधुस्रवाः।
अकृष्टपच्यौषधयो गिरयोऽबिभ्रदुन्मणीन् ॥२६॥

नदियों में अनेक प्रकार के रस बहनेलगे, वृक्षों से पराग चू उठा, बिना जोते ही खेत पकगये और पर्वतों में मणियां प्रकट होगईं ॥२६॥

कृष्णेऽभिषिक्त एतानि सत्त्वानि कुरुनन्दन।
निर्वैराण्यभवंस्तात क्रूराण्यपि निसर्गतः ॥२७॥

हे तात! हे कौरव! श्रीकृष्णका अभिषेक होते ही जो जीव क्रूर स्वभाव वाले थे, वे भी वैर-रहित हो गये ॥ २७ ॥

इति गोगोकुलपतिं गोविन्दमभिषिच्य सः।
अनुज्ञातो ययौ शक्रो वृतो देवादिभिर्दिवम्॥२८॥

इस भांति वह इन्द्र गौओं तथा गोकुलके नाथ श्रीगोविन्द का अभिषेक करके और आज्ञा लेकर, देवताओं के साथ स्वर्ग को चले गये ॥२८॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अट्ठाईसवां अध्याय

(वरुण-गृह से नन्दजी का लाना)

श्रीशुक उवाच

एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम्।
स्नातुं नन्दस्तु कालिन्द्या द्वादश्यां जलमाविशत्१॥

श्रीशुकदेवजी बोले—नन्दरायजी ने एकादशी का निराहार व्रत किया था, इसलिये वे भगवान्का पूजन कर, द्वादशी को स्नान करने के वास्ते ज्यों ही यमुनाजी के जलमें घुसे ॥१॥

तं गृहीत्वाऽनयद्भृत्यो वरुणस्यासुरोऽन्तिकम्।
अविज्ञायासुरीं वेलां प्रविष्टमुदकं निशि ॥ २ ॥

त्यों ही एक वरुण का सेवक दैत्य उन्हें पकड़ कर वरुणके पास लेगया, क्योंकि वे आसुरी समय को न जानकर रातके समय जलमें घुसे थे ॥२॥

चुक्रुशुस्तमपश्यन्तः कृष्ण रामेति गोपकाः।
भगवांस्तदुपश्रुत्य पितरं वरुणाहृतम् ॥ ३ ॥

हे राजन्! नन्दरायजी को न देखकर सब गोप "हे राम! हे कृष्ण!" ऐसे पुकारने लगे, ज्यों ही भगवान् ने यह सुना कि पिता को वरुण ले गये, त्यों ही अपने भक्तों के अभय-दाता भगवान् उसी समय उनके पास पहुंचे ॥३॥

तदन्तिकं गतो राजन् स्वानामभयदो विभुः।
प्राप्तं वीक्ष्य हृषीकेशं लोकपालः सपर्यया।
महत्या पूजयित्वाऽथ तद्दर्शनमहोत्सवः ॥ ४ ॥

वरुण ने भगवान् को आया हुआ देखकर बड़े समारोहके साथ उनकी पूजा की और वे उनके दर्शनका बड़ा आनन्द मान कर बोले ॥ ४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वरुण उवाच

अद्य मे निभृतो देह अद्यार्थोऽधिगतः प्रभो।
त्वत्पादभाजो भगवन्नवापुः पारमध्वनः ॥ ५ ॥

वरुणने कहा—हे प्रभु! आज मेरा शरीर सफल हुआ, आज मेरा मनोरथ सिद्ध हुआ, हे भगवन्! आपके चरणों के सेवक मोक्षको प्राप्त हुए हैं ॥५॥

नमस्तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने ।
य यत्र श्रूयते माया लोकसृष्टिविकल्पना ॥ ६ ॥

आप भगवान्, ब्रह्ममूर्त्ति. परमात्मा को हमारा प्रणामहै, कि जहाँ जगत्की सृष्टिकी कल्पना करने वाली माया का नाम तक नहीं सुना जाता है ॥६॥

अजानता मामकेन मूढेनाकार्यवेदिना ।
आनीतोऽयं तव पिता तद्भवान् क्षन्तुमर्हति ॥ ७ ॥

अनजान, कार्य को न समझनेवाला. मूर्ख मेरा सेवक इन आपके पिताजी को ले आया है, सो आप क्षमा कीजिये ॥७॥

ममाप्यनुग्रहं कृष्ण कर्तुमर्हस्यशेषदृक् ।
गोविन्द नीयतामेष पिता ते पितृवत्सल ॥ ८ ॥

हे कृष्ण! आप सबके साक्षीहैं, इसलिये आप को मुझपरभी कृपा करनी चाहिये, हे पितावत्सल! हे गोविंद! आप इन अपने पिता को लेकर पधारें।

श्रीशुक उवाच

एवं प्रसादितः कृष्णो भगवानीश्वरेश्वरः ।
आदायागात् स्वपितरं बन्धूनां चावहन्मुदम् ॥ ९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—जब ईश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की वरुण ने इस तरह प्रार्थना की तब बन्धुओं को आनन्द देते हुए भगवान् अपने पिता को लेकर लौट आये ॥९॥

नन्दस्त्वतीन्द्रियं दृष्ट्वा लोकपालमहोदयम् ।
कृष्णे च सन्नतिं तेषां ज्ञातिभ्यो विस्मितोऽब्रवीत् ॥ १० ॥

इन्द्रियों से समझ में न आने वाले वरुण का ऐश्वर्य तथा श्रीकृष्णजी में उनकी नम्रता देखकर, आश्चर्य करके श्रीनन्दजी ने अपने जाति वालों से वह सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १० ॥

ते त्वौत्सुक्यधियो राजन् मत्वा गोपास्तमीश्वरम् ।
अपि नः स्वगतिं सूक्ष्मामुपाधास्यदधीश्वरः ॥ ११ ॥

हे राजन्! (उस वृत्तान्त को सुनकर) वे गोप गण उन श्रीकृष्णजी को परमेश्वर मान कर मनमें लालसा करनेलगे कि-क्या हमें भी परमेश्वर निज धाम ब्रह्म-पद प्रदान करेंगे? ॥११॥

इति स्वानां स भगवान् विज्ञायाखिलदृक् स्वयम् ।
संकल्पसिद्धये तेषां कृपयैतदचिन्तयत् ॥ १२ ॥

सर्व साक्षी वे भगवान् स्वयं ही उनके सङ्कल्प को जानकर उसे सफल करने के लिये कृपा-पूर्वक विचार करने लगे कि ॥१२॥

जनो वै लोक एतस्मिन्नविद्याकामकर्मभिः ।
उच्चावचासु गतिषु न वेद स्वां गतिं भ्रमन् ॥ १३ ॥

यह जीव इस संसार में देहादि के अहङ्कार तथा काम्य कर्मोंसे उच्च-नीच देवता, पशु या पक्षी आदि की योनियों में भटकता हुआ अपनी गति को नहीं जानता ॥१३॥

इति संचिन्त्य भगवान् महाकारुणिको हरिः ।
दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम् ॥ १४ ॥

परम दयालु भगवान्ने ऐसा विचार कर गोपों को प्रकृति से परे अपना ब्रह्म-स्वरूप और वैकुण्ठ धाम दिखलाया ॥१४॥

सत्यं ज्ञानमनन्तं यद्ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् ।
यद्धि पश्यन्ति मुनयो गुणापाये समाहिताः ॥ १५ ॥

सत्य, ज्ञान, रूप, अनन्त, स्वयं प्रकाश, सनातन, ब्रह्म स्वरूप कि जिसे ज्ञानी जन एक चित्त होकर गुणों के निषेध में देखा करते हैं, उस रूपको भगवान् ने दया से ही दिखला दिया ॥१५॥

ते तु ब्रह्महृदं नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः ।
ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं यत्राऽक्रूरोऽध्यगात् पुरा ॥ १६ ॥

वे ब्रह्मरूपी कुण्डमें मग्न होगये, फिर भगवान् ने उन्हें उठाकर वैकुण्ठ धाम दिखलाया कि जहाँ पहले अक्रूरजी गये थे ॥ १६ ॥

नन्दादयस्तु तद् दृष्ट्वा परमानन्दनिर्वृताः ।
कृष्णं च तत्र च्छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः ॥

और वहाँ पर जिनकी वेद स्तुति करते हैं, ऐसे भगवान् के दर्शन करके, नन्दराय आदि सब गोप यह लीला देखकर परम आनन्द में होकर आश्चर्य करने लगे ॥१७॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन्तीसवां अध्याय

(रास क्रीडारंभ)

श्रीशुक उवाच

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–शरद् ऋतु से कुसुमित चमेली वाली रात्रियों को देखकर, श्रीकृष्ण भगवान् ने योगमायाके आश्रयसे रास-क्रीड़ा करनेका विचार किया ॥ १ ॥

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शंतमैः । स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन् प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ॥ २ ॥

उस समय अपनी सुखदायनी किरणों से पूर्व दिशा के मुख को अरुण करताहुआ चन्द्रमा उदय हुआ, जैसे चिरकाल के पश्चात् आया हुआ पति अपनी प्रियतमा के मुख को केशर लगाकर अरुण बनाता है ॥ २ ॥

दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं रमाननाभं नवकुङ्कुमारुणम् । वनं च तत् कोमलगोभिरञ्जितं जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ॥ ३ ॥

पूर्ण मंडल, लक्ष्मीजीके मुख और नवीन केसर के समान अरुण चन्द्रमा तथा उसकी कोमल किरणों से रञ्जित बनको देखकर भगवान्ने स्त्रियों के मनको हरनेवाला कल-गान (वंशी-नाद) किया॥

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः । आजग्मुरन्योऽन्यमलक्षितोद्यमाः स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः ॥ ४ ॥

जब उस काम-वर्द्धक गीत को व्रजकी स्त्रियों ने सुना तो उनका मन श्रीकृष्णजी में आसक्त होगया वे सभी आपसमें किसी दूसरे को खबर न देकर वहाँ पहुँचीं जहाँ श्रीकृष्णजी थे, उस समय वेगके कारण उनके कुण्डल हिल रहे थे ॥४॥

दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिदोहं हित्वा समुत्सुकाः ।
पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः ॥ ५ ॥

कोई गोपी उत्कंठा के मारे दुहती हुई गाय के दूध को छोड़कर पहुँचीं, कोई चूल्हे पर औंटनेको दूध रखकर उसे बिना उतारे ही चलदीं, कितनी ही गेहूँ की रावड़ी को यों ही चूल्हे पर चढ़ाकर चली आईं ॥५॥

परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः शिशून् पयः ।
शुश्रूषन्त्यः पतीन् काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम् ६

कोई परोस रही थीं, वे उस कामको छोड़कर ही चल दीं, कितनीही छोटे बालकोंको दूध पिला रहीं थीं, कुछ अपने पतियों की सेवा कर रहीथीं, कुछ भोजन कर रहीं थीं ॥६॥

लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने । व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः ॥ ७ ॥

कुछ लीपती थीं, कुछ उबटन करती थीं, कोई आँखों में अंजन लगा रही थी, वे सभी अपने २ काम-काज छोड़कर आ पहुंचीं, कोई एक जल्दीके मारे उलटे-पुलटे आभूषण पहिन कर श्रीकृष्णजी के पास पहुँचीं ॥७॥

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः ।
गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः ॥ ८ ॥

यद्यपि उनके पति, पिता, भाई और बन्धुओंने उन्हें रोका, परन्तु उनके मन श्रीकृष्णजी से हरण होगये थे और वे ऐसी मोहित होगई थीं कि पीछे न लौटीं ॥८॥

अन्तर्गृहगताः काश्चिद् गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः ।
कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः ॥ ९ ॥

कई एक गोपियों को उनके पतियों ने घर में बन्द कर दिया, जब उन्हें निकलने की कोई राह न मिली तब उन्होंने श्रीकृष्णजीकी मानसिक भावना करके आँखें मूंद कर उनका ध्यान किया ॥ ९ ॥

दुःसहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः ।
ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्या क्षीणमङ्गलाः ॥ १० ॥

उस समय उनका पुण्य-पाप सम्बन्धी प्रारब्ध कर्म क्षय होगया, क्योंकि प्यारे श्रीकृष्ण के दुःसह वियोग के तीव्र ताप का दुःख भोगनेसे उनके पाप क्षय होगये और श्रीकृष्ण की मानस-मूर्त्ति के आलिंगन के सुख भोगने से पुण्य क्षय होगये, इस भांति अत्यन्त विरहका दुःख तथा श्रीकृष्णके मिलने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का महान् सुख पाकर एकसाथ प्रारब्ध कर्म क्षीण हो जाने से वे मोक्ष को प्राप्त हुईं ॥१०॥

तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्याऽपि संगताः ।
जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः ॥११॥

यद्यपि वे उन परमात्मा को व्यभिचार-भाव से प्राप्त हुईथीं, तथापि उनके सब बन्धन कटगये और उनका गुण मय शरीर छूट गया ॥११॥

राजोवाच

कृष्णं विदुः परं कान्तं न तु ब्रह्मतया मुने ।
गुणप्रवाहोपरमस्तासां गुणधियां कथम् ॥१२॥

परीक्षित बोले–हे मुनि ! वे गोपियाँ श्रीकृष्ण जीको केवल जार समझती थीं, उनका श्रीकृष्णजी में कदापि ब्रह्म-भाव न था, फिर विषय-लंपटा उन गोपियों की संसारसे मोक्ष क्यों होगई ? ॥१२॥

श्रीशुक उवाच

उक्तं पुरस्तादेतत् ते चैद्यः सिद्धिं यथा गतः ।
द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः ॥१३॥

श्रीशुकदेवजी बोले–मैं तुम से पहले ही कह चुका हूँ कि जब शिशुपाल श्रीकृष्णजी से शत्रु-भाव रखता हुआ भी मोक्ष को प्राप्त होगया, तब जो भगवान्में प्रीति रखतेहैं, उनकी मोक्ष क्यों न हो ?

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥१४॥

हे राजन् ! उन अव्यय, अप्रमेय, निर्गुण और गुणों के नियन्ता भगवान् का प्रकट होना मनुष्य कल्याण के लिये है, इसलिये उन श्रीकृष्णजी को जीव के समान कहना संभव नहीं है ॥१४॥

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते॥१५॥

श्रीकृष्ण भगवान् में काम, क्रोध, भय, स्नेह, सम्बन्ध या भक्ति किसी एकको भी जो लोगकरते हैं, वे पुरुष भगवन्मय होजाते हैं ॥१५॥

न चैवं विस्मयः कार्यो भवता भगवत्यजे ।
योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद् विमुच्यते ॥१६॥

हे राजन् ! उन जन्म-रहित योगेश्वरों के भी भी ईश्वर श्रीकृष्ण भगवान् के प्रति तुम आश्चर्य न करो, क्योंकि उनसे तो स्थावर आदि की भी मोक्ष हो जाती है ॥१६॥

ता दृष्ट्वान्तिकमायाता भगवान् व्रजयोषितः ।
अवदद् वदतां श्रेष्ठो वाचः पेशैर्विमोहयन् ॥१७॥

बात-चीत करने वालोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण उन गोपियों को अपने निकट आया हुआ देखकर वाणीके विलासों द्वारा मोहित करतेहुए कहनेलगे।

श्रीभगवानुवाच

स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः ।
व्रजस्यानामयं कच्चिद् ब्रूतागमनकारणम् ॥१८॥

श्रीभगवान् बोले–हे महाभागनियो ! तुम भली आईं मैं तुम्हारा क्या सत्कार करूँ ? व्रजमें कुशल तो है ? अपने आने का कारण कहो ॥१८॥

रजन्येषा घोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता ।
प्रतियात व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमाः॥१९॥

यह डरावनी रात है, इसमें भयावने जीव फिरते हैं, इसलिये तुम अपने घरतो चली जाओ, हे सुन्दरियो ! स्त्रियों को यहाँ न रहना चाहिये ॥

मातरः पितरः पुत्रा भ्रातरः पतयश्च वः ।
विचिन्वति ह्यपश्यंतो मा कृध्वं बन्धुसाध्वसम्॥२०॥

तुम्हारे माता, पिता, पुत्र, भाई और पति तुम्हें न देखकर ढूंढ रहे हैं, तुम उन बन्धुओं को कष्ट न पहुँचाओ ॥२०॥

दृष्टं वनं कुसुमितं राकेशकररञ्जितम् ।
यमुनाऽनिललीलैजत्तरुपल्लवशोभितम् ॥२१॥

चन्द्रमा की किरणों से रञ्जित कुसुमित वन तुम देखही चुकी हो, जो यमुनाजी के पवन की लीला से कम्पायमान् वृक्षों को पत्तों से शोभा पा रहा है ॥ २१ ॥

तद्यात मा चिरं गोष्ठं शुश्रूषध्वं पतीन् सतीः ।
क्रन्दन्ति वत्सा बालाश्च तान् पाययत दुह्यत॥२२॥

इसलिये हे सतियो ! तुम शीघ्रही व्रज को जाओ, अपने पतियों की सेवाकरो,बालक व बछड़े पुकार रहे हैं, उन्हें दूध पिलाओ और गौओं का दोहन करो ॥२२॥

अथवा मदभिस्नेहाद्भवत्यो यन्त्रिताशयाः ।
आगता ह्युपपन्नं वः प्रीयन्ते मयि जन्तवः ॥२३॥

या मेरे स्नेह से तुम्हारा चित्त वशीभूत हो गया है इसलिये तुम आई हो, यह उचित ही है, क्योंकि सभी प्राणी मुझसे प्रीति करते हैं ॥२३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया ।
तद्बन्धूनां च कल्याण्यः प्रजानां चानुपोषणम् ॥

परन्तु हे मंगल रूपाओ ! स्त्रियों का परम धर्म यही है कि वे निष्कपट भाव से पति की तथा उस के बन्धुओंकी सेवाकरें और बालकका पालनकरें ।

दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोपि वा ।
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥२५॥

चाहे पति दुष्ट स्वभाव, दुर्भाग्य, वृद्ध मूर्ख, रोगी और निर्धन ही क्यों न हो, पर जो स्त्रियां स्वर्ग चाहती हैं, उन्हें उस पतिको यदि वह पतित न हो तो त्याग न करना चाहिये ॥२५॥

अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम् ।
जुगुप्सितं च सर्वत्र औपपत्यं कुलस्त्रियाः ॥२६॥

क्योंकि कुल स्त्री के लिये जार पुरुष का संग, स्वर्ग को नाश करने वाला, यश को मिटाने वाला, तुच्छ कष्ट देनेवाला, भयकारी और सर्वत्र निन्दा कराने वाला है ॥२६॥

श्रवणाद्दर्शनाद्ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात् ।
न तथा संनिकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥२७॥

जैसा भाव मेरे प्रति श्रवण, दर्शन, ध्यान और कीर्त्तन से रहता है, वैसा पास में रहने से नहीं रहता, इसलिये तुम घर चली जाओ ॥२७॥

श्रीशुक उवाच

इति विप्रियमाकर्ण्य गोप्यो गोविन्दभाषितम् ।
विषण्णा भग्नसंकल्पाश्चिन्तामापुर्दुरत्ययाम् ॥२८॥

श्रीशुकदेवजी बोले–श्रीकृष्णजी के ऐसे कठोर वचन सुनकर दुःखी हुईं और सङ्कल्प नष्ट होने से अपार चिन्तामें पड़ गईं ॥२८॥

कृत्वा मुखान्यवशुचः श्वसनेन शुष्यद्बिम्बाधराणि चरणेन भुवं लिखन्त्यः । अस्रैरुपात्तमषिभिः कुचकुंकुमानि तस्थुर्मृजन्त्य उरुदुःखभराः स्म तूष्णीम् ॥२९॥

शोक में निःश्वास के कारण सूखे बिबफल के समान अधर वाली गोपियां, मुख नीचे करके, चरण के अँगूठे से पृथ्वी पर लिखती हुई काजल सहित आँसुओं की धारा से कुचों की केसर को धोती हुई और महान् दुःख से भरी हुईं चुपचाप खड़ी हो गईं ॥ २९ ॥

प्रेष्ठं प्रियेतरमिव प्रतिभाषमाणं कृष्णं तदर्थविनिवर्तितसर्वकामाः । नेत्रे विमृज्य रुदितोपहते स्म किंचित्संरम्भगद्गदगिरोऽब्रुवतानुरक्ताः ३०॥

प्यारे कृष्ण के अप्रिय वचन सुनकर उन्हीं के लिये समस्त सुख छोड़ देने वाली और अनुरागिनी गोपियां रोने से उपहत हुए अपने नेत्रों को पोंछकर कुछ कोप के आवेश में गद्गद कण्ठ हो कर बोलीं कि ॥३०॥

गोप्य ऊचुः

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं संत्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् । भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान् देवो यथादिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥

हे प्रभु ! आपको ऐसे कठोर वचन न कहना चाहिये; हे स्वच्छन्द ! हम आपकी भक्त हैं और सब विषय छोड़कर चरण-मूलमें आईहैं, इसलिये आप हमें अङ्गीकार कीजिये, छोड़िये नहीं, जैसे आदि पुरुष परमेश्वर मुमुक्षु पुरुषों को अङ्गीकार करता है ॥ ३१ ॥

यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् । अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा ३२॥

हे धर्मवेत्ता प्यारे कृष्ण ! आपने कहा है कि पति, संतान, सम्बंधियों का अनुसरण करना ही स्त्रियों का परम धर्म है, परन्तु वह स्वधर्म आपकी सेवा से ही सफल होगा, क्योंकि सभी उपदेश-वचन आपही से सम्बन्ध रखते हैं, आपही सब जीवों के आत्मा होने से ईश्वर, प्रिय और बन्धुहो दूसरे आप धर्म-उपदेशक नहीं हो, वरन् सबकी आत्मा हो, फिर हम उपदेश सुनना नहीं चाहतीं, वरन् धर्म-फल रूप आपकी सेवा करना चाहतीहैं, इसलिये आपको ऐसा कहना उचित नहीं है या आपके कथनानुसार पति आदि की सेवा करने का धर्म भी आपकी सेवा से ही सिद्ध होजायगा, क्यों कि शास्त्रानुसार सबकी आत्मा हैं ॥३२॥

कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्नित्य प्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम् । तन्नः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिन्द्या आशां धृता त्वयि चिरादरविन्दनेत्र ॥३३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विवेकी पुरुष अपने आत्म-रूप और सदाप्रिय आपहीं से प्रीति रखतेहैं, दुःख देनेवाले पति आदि से उन्हें क्या प्रयोजन है ? इसलिये हे परमेश्वर ! हे कमल नयन ! हम पर कृपा करो और चिरकाल से लगी हुई हमारी आशा को न तोड़ो ॥ ३३ ॥

चित्तं सुखेन भवताऽपहृतं गृहेषु यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये । पादौ पदं न चलतस्तव पाद-मूलाद्यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा ॥३४॥

क्योंकि हमारा मन जो आज तक घरके सुख में लगा करता था, उसे आपने हर लिया है और जो हाथ घरके काम में थे उन्हें भी आपने हरलिया है, शेष रहे पाँव, सो वे भी आपके चरण-मूल को छोड़कर एक पग भी पीछे नहीं हटते. ऐसी दशा में आपही कहिये कि हम कैसे व्रज को जाँय और क्या करें ? ॥३४॥

सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृतपूरकेण हासावलोक-कलगीतजहृच्छयाग्निम् । नो चेद्वयं विरहजाग्न्युप युक्तदेहा ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते॥३५॥

हे कृष्ण ! आपके हास्य, दर्शन और मधुर गीत से जो हममें कामाग्नि उत्पन्न हुई है उसे आप अपनी अधरामृत रूपी पिचकारी से शान्त करिये, अन्यथा हे सखा ! हम कामाग्नि और विरहाग्नि दोनों से दग्ध शरीर होकर योगी पुरुषों की नाईं आपके ध्यानद्वारा आपही के चरणोंके पासपहुँचेंगी।

यर्ह्यम्बुजाक्ष तव पादतलं रमाया दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजनप्रियस्य । अस्पाक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमङ्ग स्थातुं त्वयाभिरमिता बत पारयामः

हे कमलाक्ष ! वनवासी पुरुषों को प्रिय लगने वाले तथा जिनकी सेवा कभी २ लक्ष्मीजी को प्राप्त होती है, ऐसे आपके चरणारविन्दों का जबसे हम ने स्पर्श किया है तथा स्पर्शके आनन्द का अनुभव किया है, तब से हम किसी दूसरेके पास खड़ीभी नहीं होना चाहतीं ॥ ३६ ॥

श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या लब्ध्वाऽपि वक्षसि पदं किल भृत्यजुष्टम् । यस्याः स्ववीक्षण कृतेऽन्यसुरप्रयासस्तद्वद्वयं च तव पादरजःप्रपन्नाः ॥

जिनकी दृष्टि अपने ऊपर पड़ने के लिये देवता भी प्रयास किया करते हैं, वह लक्ष्मी स्वयं आपके वक्षःस्थल में सौत-रहित स्थान पाने पर भी आप के चरणारविन्दों की रज की इच्छा करती हैं कि जिसमें तुलसी सौत की नाईं भाग लेनी है और सभी दास वृन्द सेवा करते हैं, अब हमने भी लक्ष्मीजी के समान उस पद-रजको पा लिया है ॥

तन्नः प्रसीद वृजिनार्दन तेंऽघ्रिमूलं प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः । त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षण तीव्रकामतप्तात्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यम्॥३८॥

हे दुःख हरण ! हम पर कृपा कीजिये, क्योंकि योगीजनों की भांति हमभी घर-बार छोड़कर आप की सेवा की आशा से आपके चरण-मूल में आई हैं, हे पुरुष भूषण ! आपके सुन्दर मन्द हास्य से उत्पन्न हुए तीव्र कामदेव से संतप्त हम गोपियोंको दासी-पद दीजिये ॥३८॥

वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डल श्रीगण्डस्थला-धरसुधं हसितावलोकम् । दत्ताभयं च भुजदण्डयुगं विलोक्य वक्षः श्रियैकरमणं च भवाम दास्यः ३९॥

अलकों से ढका हुआ, कपोलों पर चञ्चल कुण्डलों से शोभायमान और अधरामृत से भरा हुआ आपका मुखारविन्द, मन्द हास्य मयी दृष्टि अभय देने वाले आपके दोनों भुज-दंड और लक्ष्मी जी का प्रधान प्रीति-स्थान आपका वक्षःस्थल-इन सबको देखकर हम आपकी दासियां होती हैं॥३९॥

काप्यङ्ग ते कलपदायतवेणुगीतसंमोहिताऽऽर्य चरितान्न चलेत् त्रिलोक्याम् । त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं यद्गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्य-बिभ्रन् ॥४०॥

हे प्यारे ! तीनों लोकों में ऐसी कौनसी स्त्री है जो आपके मन हरण पद वाले महान् बाँसुरी के गीत से मोहित होकर अपने धर्म से चलायमान् न हो जाय ? त्रिलोकी में सुन्दर जिस आपके रूप को देखकर, गौ पक्षी तथा मृग के भी रोम खड़े हो जाते हैं, उसे देखकर हम गोपियों का मोहितहोना कौन से आश्चर्य की बात है ? तुम्हारे द्योतक शब्द सुनकर भी अपना धर्म त्यागना उचितहै, तबआप का अनुभव होने से त्याग हो जाने में कहना ही क्या है ? ॥ ४० ॥

व्यक्तं भवान् व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो देवो यथादिपुरुषः सुरलोकगोप्ता । तन्नो निधेहि कर-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पङ्कजमार्तबन्धो तप्तस्तनेषु च शिरस्सु च किंकरीणाम् ॥४१॥

जैसे आदि पुरुष नारायण देवलोक की पीड़ा दूर करते हैं, वैसे ही आप व्रज की पीड़ा तथा भय को अवश्य दूर करें; क्योंकि आपने इसीलिये अवतार लिया है, अतः हे दीनबन्धु ! हम दासियों के काम-संतप्त स्तनों तथा मस्तकपर कर-कमल रखिये।

श्रीशुक उवाच

इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः।
प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत् ॥४२॥

श्रीशुकदेवजी बोले—योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्ण भगवान् ने उन गोपियों के इस प्रकार दीनता के वचन सुनकर आत्मा राम होते हुए भी हंस कर दया-भाव के साथ उनको रमण कराया ॥४२॥

ताभिः समेताभिरुदारचेष्टितः प्रियेक्षणोत्फुल्ल मुखीभिरच्युतः। उदारहासद्विजकुन्ददीधितिर्व्यरोचतैणाङ्क इवोडुभिर्वृतः ॥४३॥

अपने प्यारे के दर्शनों से प्रफुल्लित मुख वाली उन एकत्र गोपियों से वेष्टित होकर उदार लीला वाले तथा कुन्द के समान उदार हास्य तथा दन्तों वाले श्रीकृष्णजी विशेष शोभायमान हुए, जैसे तारागणों से घिरा हुआ चन्द्रमा शोभा पाताहै ॥

उपगीयमान उद्गायन् वनिताशतयूथपः।
मालां बिभ्रद्वैजयन्तीं व्यचरन्मण्डयन् वनम् ४४॥

सैकड़ों स्त्रियों के समूह-पति श्रीकृष्ण भगवान् स्त्रियों के द्वारा गायन करवाते हुए स्वयं भी गायन करतेहैं, और वैजयन्ती मालाको धारण किये तथा वनको शोभा देते हुए विचर रहे थे ॥४४॥

नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम्।
रेमे तत्तरलानन्दकुमुदामोदवायुना ॥४५॥

फिर गोपियोंके साथ ठण्डी रेणुकावाले यमुना जी के तट पर आकर उसकी तरङ्गों के आनन्द तथा सुगन्धित वायु से वे बड़े प्रसन्न हुए ॥४५॥

बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरुनीवीस्तनाऽऽलभननर्मनखाग्रपातैः। क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणामुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयाञ्चकार ॥४६॥

भुजाओं का फैलाना, आलिंगन करना, हाथ, वेणी, जाँघ, नीवी, स्तन-इनका स्पर्श करना, हास्य के वचन कहना, नखों के अग्र भाग चुमाना; क्रीड़ा करना, देखना और हँसना-इन उपायों से व्रज की स्त्रियों का कामोद्दीपन करते हुए भगवान्ने उनको रमण कराया ॥४६॥

एवं भगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः।
आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्योऽभ्यधिकं भुवि ॥

इस प्रकार महात्मा कृष्ण के द्वारा जब उनको अधिक मान प्राप्त हुआ, तब उन मानवती गोपियों ने अपनी आत्मा को भू-मंडल पर सबसे अधिक मान लिया ॥४७॥

तासां तत्सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥४८॥

उन गोपियों की कुछ स्वतन्त्रता तथा अभिमान देखकर, उनका गर्व खण्डन करने तथा प्रसन्न होने के लिये भगवान् वहीं अन्तर्धान होगये ॥४८॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

तीसवां अध्याय

(विरहसन्तप्ता गोपियों का बन बन श्रीकृष्णान्वेषण)

श्रीशुक उवाच

अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गनाः।
अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—जैसे ही भगवान् अंतर्धान होगये वैसे ही व्रजाङ्गनायें उनको न देखकर यकायक खेद करने लगीं, जैसे यूथ-पति गजराज के विना हथनियां खेद करती हैं ॥१॥

गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितैर्मनोरमालापविहारविभ्रमैः। आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापतेस्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः ॥ २ ॥

भगवान् की गति, अनुराग, मन्द मुसकान, विलास मयी चितवन, मनोहर भाषण, विहार और विलास से मन हरण होने के कारण उन्हीं भगवत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के स्वरूप को प्राप्त हुई गोपियां उन्हीं की लीला का अनुकरण करती हुई क्रीड़ा करने लगीं ॥२॥

गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढमूर्तयः । असावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका न्यवेदिषुः कृष्णविहारविभ्रमाः ॥ ३ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रजीकी गति, मन्द मुसकान, चित वन और भाषण आदि में तन्मय शरीर वाली, भगवत-स्वरूप गोपियां उन्हीं के समान क्रीड़ा और विलास करती हुईं "मैं ही कृष्ण हूँ" इस प्रकार आपस में कहने लगीं ॥३॥

गायन्त्य उच्चैरमुमेव संहता विचिक्युरुन्मत्तकवद्वनाद्वनम् । पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहिर्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन् ॥ ४ ॥

वे सब सम्मिलित होकर ऊँचे स्वरसे भगवान् का ही यश गाती हुई गोपियां उन्मत्त की भांति सब पदार्थों के भीतर तथा बाहर व्याप्त रहने वाले भगवान् को एक बनसे दूसरे बन में ढूंढने लगीं और उनके समाचार वृक्षों से पूछने लगीं ॥४॥

दृष्टो वः कच्चिदश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध नो मनः । नन्दसूनुर्गतो ह्रत्वा प्रेमहासावलोकनैः ॥ ५ ॥

कि–हे पीपल ! हे वट ! प्रेम और हास्य से विलास करती हुई चितवन के द्वारा चोरों की भांति हमारे मनका हरण करके जाने वाले नन्द कुमार को क्या तुमने देखा है ? ॥५॥

कच्चित् कुरबकाशोकनागपुन्नागचम्पकाः । रामानुजो मानिनीनां गतो दर्पहरस्मितः ॥ ६ ॥

हे कुरवक ! हे अशोक ! हे नाग ! हे पुन्नाग ! हे केशर ! मानवतियों का मान हरने वाला मन्द हास्य वाले श्रीबलरामजी के छोटे भाई श्रीकृष्ण को जाते हुए क्या तुमने देखा है ? ॥६॥

कच्चित् तुलसि कल्याणि गोविन्दचरणप्रिये । सहत्वाऽलिकुलैर्बिभ्रद् दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥७॥

हे कल्याणी तुलसी ! हे गोविन्द के चरणों की प्यारी ! भौंरों के साथ तुझे धारण करते हुए अपने प्रिय अच्युत श्रीकृष्ण को क्या तूने कहीं देखा है ?

मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जाति यूथिके । प्रीतिं वो जनयन् यातः करस्पर्शेन माधवः ॥ ८ ॥

हे मालती ! हे मल्लके ! हे जाति ! हे यूथिके ! क्या तुमने कहीं भगवान् को देखा है ? क्या वे अपने हाथ के स्पर्श से तुममें प्रीति उत्पन्न हुए इधर को पधारे हैं ? ॥८॥

चूतप्रियालपनसाऽसनकोविदारजम्ब्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदम्बनीपाः । येऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः शंसन्तु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः ॥ ९ ॥

हे आम ! हे प्रियाल ! हे पनस ! हे असन ! हे कोविदार ! हे जामुन ! हे अर्क ! हे बिल्व ! हे आम्र ! हे कदंब ! हे नीप ! हे परोपकार के लिये यमुना-तट पर विराजमान वृक्षो ! हम शून्य चित्त वाली गोपियों को श्रीकृष्णजीकी पदवी बतलाओ॥

किं ते कृतं क्षिति तपो बत केशवाङ्घ्रिस्पर्शोत्सवोत्पुलकिताङ्गरुहैर्विभासि । अप्यङ्घ्रिसंभव उरुक्रमविक्रमाद्वा आहो वराहवपुषः परिरम्भणेन १०

हे पृथ्वी ! तूने ऐसा कौनसा तप किया है कि जिससे तू भगवान् के चरण-स्पर्श के आनन्द से रोमांचित होकर शोभा देरही है, क्या यह आनंद तुझे भी भगवानके चरण-स्पर्शसे मिलाहै ? या कि वामनावतारमें तीन पग जब भगवान्ने अर्पण किये थे उनके प्रतापसे, या वाराह-मूर्त्ति के आलिङ्गन से ?

अप्येणपत्न्युपगतः प्रिययेह गात्रैस्तन्वन् दृशां सखि सुनिर्वृतिमच्युतो वः । कान्ताङ्गसङ्गकुचकुंकुमरञ्जितायाः कुन्दस्रजःकुलपतेरिह वाति गन्धः

हे हरिणी ! हे सखी ! अपने अङ्गों से तुम्हारी दृष्टि को आनन्द देते हुए भगवान् प्यारी के साथ यहाँ तेरे पास आये (जान पड़ते) हैं, क्योंकि श्रीकृष्णचन्द्र की पहनी हुई कुंद-पुष्प की माला कि जो प्यारी के अङ्ग स्पर्श करते समय उनके स्तनों की केसर से रंगी हुई होगी, उसकी यहाँ सुगन्ध आ रही है ॥११॥

बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदान्धैः । अन्वीयमान इह वस्तरवः प्रणामं किं वाऽभिनन्दति चरन् प्रणयावलोकैः १२

हे वृक्षो!! एक हाथ प्यारीके कन्धे पर धरे हुए और दूसरे हाथमें कमल लियेहुए तथा यहाँ विचरण करते हुए जिन भगवान् के पीछे तुलसी के सम्बन्ध से मतवाले भौंरे उड़ा करते हैं; वे क्या प्रेम दृष्टि द्वारा तुम्हारे प्रेमको स्वीकार करते हैं ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पृच्छतेमा लता बाहूनप्याऽऽश्लिष्टा वनस्पतेः ।
नूनं तत्करजस्पृष्टा बिभ्रत्युत्पुलकान्यहो ॥१३॥

किसी सखी ने कहा कि हे वीर ! यह शाखायें श्रीकृष्णसे अवश्य मिली होंगी, क्योंकि यद्यपि यह अपने पति (वृक्ष)के बाहु (शाखा) से भेंट किये हुए हैं, फिर भी अपने महा भाग्य से भगवान् के नख का स्पर्श पाकर रोमांचित होरही हैं, वृक्षोंके समागम से ऐसे रोमांच नहीं हो सकते ॥१३॥

इत्युन्मत्तवचो गोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः ।
लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः॥१४॥

श्रीशुकदेवजी बोले–इस प्रकार उन्मत्त की भांति वचन कहती, भगवान् को ढूंढनेसे विह्वल हुई गोपियां तद्रूप होकर भगवान् की उन-उन लीलाओं का अनुकरण करने लगीं ॥१४॥

कस्याश्चित् पूतनायन्त्याः कृष्णायन्त्यपिबत् स्तनम्।
तोकायित्वा रुदन्त्यन्या पदाऽहन् शकटायतीम् १५

भगवान् के समान लीला करती हुई एक गोपी पूतनावनी,दूसरी कृष्णका रूप बनकर उसका स्तन पान करनेलगी, एक बालक-रूप बनकर रोने लगी और शकट-रूपी दूसरी गोपीको उसने लात मारी, एक अपने को बालक मानकर बैठी और दूसरी उसे दैत्य बनकर हर लेगई ॥१५॥

दैत्यायित्वा जहारान्यामेका कृष्णार्भभावनाम् ।
रिङ्गयामास काऽप्यङ्घ्री कर्षन्ती घोषनिस्वनैः १६

एक गोपी घुंघरूका शब्द सुनकर अपने चरणों को घसीटती हुई, घुटनोंके बल चलने लगी ॥१६॥

कृष्णरामायिते द्वे तु गोपायन्त्यश्च काश्चन ।
वत्सायन्तीं हन्ति चान्या तत्रैका तु बकायतीम्१७

दो गोपियाँ राम-कृष्ण बनीं, कुछ गोप बनीं, एक वत्सरूप बनी, जिसे एक कृष्णरूप गोपी मारने लगी, एक बगुलारूप गोपीको दूसरी मारने लगी ॥

आहूय दूरगा यद्वत् कृष्णस्तमनुकुर्वतीम् ।
वेणुं क्वणन्तीं क्रीडन्तीमन्याः शंसन्ति साध्विति१८

जिस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान् दूर चरती हुई गायों को बुलाया करते थे, वैसे ही एक गोपी गौओं को बुलाकर, उनका अनुकरण करती तथा बाँसुरी बजाती हुई क्रीड़ा करती थी, दूसरी 'वाह वाह' कहकर उसकी प्रशंसा करती थीं ॥१८॥

कस्यां चित् स्वभुजं न्यस्य चलन्त्याहापरा ननु।
कृष्णोहं पश्यत गतिं ललितामिति तन्मनाः॥१९॥

एक गोपी किसी सखी पर अपनी भुजा रख कर चलती हुई, दूसरी गोपियों से कहने लगी कि "मैं कृष्ण हूँ, मेरी सुन्दर गति देखो" इस प्रकार सब उन्हीं में चित्त लगाये थीं ॥१९॥

मा भैष्ट वातवर्षाभ्यां तत्त्राणं विहतं मया ।
इत्युक्त्वैकेन हस्तेन यतन्त्युन्निदधेऽम्बरम् ॥२०॥

एक गोपी ने "मत डरो, मैंने तुम्हारी पवन और वर्षा से रक्षा की" ऐसा कहकर प्रयत्न पूर्वक एक हाथसे अपने उत्तरीय वस्त्रको ऊँचा उठाया ॥

आरुह्यैका पदाक्रम्य शिरस्याहापरां नृप ।
दुष्टाहे गच्छजातोहं खलानां ननु दण्डधृक् ॥२१॥

हे राजन् ! एक गोपी दूसरी के मस्तकपर चढ़ कर और उसे पाँवसे दबाकर बोली कि हे दुष्ट नाग ! चला जा, मैं दुष्टों को दंड देने वाला प्रकट हो गया हूँ ॥२१॥

तत्रैकोवाच हे गोपा दावाग्निं पश्यतोल्बणम् ।
चक्षूंष्याशु पिदध्वं वो विधास्ये क्षेममञ्जसा ॥२२॥

वहाँ एक गोपी बोली–हे गोप! उल्बण दावाग्नि को देखो, तुम जल्दी ही अपनी आँखें बन्द करलो मैं तुम्हारी सहज ही में रक्षा करूँगा ॥२२॥

बद्धाऽन्यया स्रजा काचित् तन्वी तत्र उलूखले ।
भीता सुदृक् पिधायास्यं भेजे भीतिविडम्बनम्२३

वहाँ एक गोपी ने दूसरी को माला के द्वारा ऊखलसे बाँध दिया, वह गोपी डरती हुई मुंह ढक कर भय का अनुकरण करने लगी ॥ २३ ॥

एवं कृष्णं पृच्छमाना वृन्दावनलतास्तरून् ।
व्यचक्षत वनोद्देशे पदानि परमात्मनः ॥२४॥

इस प्रकार वृन्दावनकी लता और वृक्षों से कृष्ण जी को पूछती हुई गोपियों ने उस बनके प्रान्त में परमात्मा के चरण देखे ॥२४॥

पदानि व्यक्तमेतानि नन्दसूनोर्महात्मनः ।
लक्ष्यन्ते हि ध्वजाम्भोजवज्राङ्कुशयवादिभिः॥२५॥

(गोपियां परस्पर सोचने लगीं कि) यह चरण तो अवश्य ही महात्मा श्रीकृष्णजीके जान पड़ते हैं क्योंकि इनमें ध्वजा, कमल, बज्र, अंकुश और यव आदि के चिह्न दीख पड़ते हैं ॥२५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तैस्तैः पदैस्तत्पदवीमन्विच्छन्तोग्रतोऽबलाः ।
वध्वापदैः सुपृक्तानि विलोक्यार्ताः समब्रुवन् ॥२६

उन-उन चरणों के चिह्नों के पीछे पीछे चलतीं तथा भगवान् के मार्ग को ढूंढती हुईं एक स्त्री के चरणों से मिले हुए भगवान् के चरण देख कर दुःखी होकर बोलीं कि ॥२६॥

कस्याः पदानि चैतानि यातायां नन्दसूनुना ।
अंसन्यस्तप्रकोष्ठायाः करेणोः करिणा यथा॥२७॥

भगवान् के साथ यह कौन गई है ? यह किस के चरण हैं कि जिसने भगवान्के कन्धे पर पहुंचा रक्खा है ? इसका भगवान् के साथ जाना ऐसे जान पड़ता है, जैसे हाथी के साथ हथिनी जाया करती है ॥२७॥

अनयाराधितो नूनं भगवान्हरिरीश्वरः ।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः ॥२८॥

परमेश्वर भगवान् हरि का सच्चा आराधन तो इसने किया है कि हमें छोड़कर और प्रसन्न होकर भगवान् जिसे एकान्त में ले गये हैं ॥ २८ ॥

धन्या अमी अहो आल्यो गोविन्दाङ्घ्र्यब्जरेणवः।
यान् ब्रह्मेशो रमा देवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ॥२९॥

हे सखियो ! यह भगवान् के चरणों के रज के कण बड़े धन्य हैं, कि जिनको ब्रह्मा, महादेव और देवी लक्ष्मी भी अपना पाप छुड़ाने के लिये सिर पर धारण करते हैं, यदि हम गोपियां भी इनको अपने मस्तक पर धारण करेंगी तो उन लोगों की भांति हमें भी भगवान् मिल जायेंगे ॥२९॥

तस्या अमूनि नः क्षोभं कुर्वन्त्युच्चैः पदानि यत् ।
यैकापहृत्य गोपीनां रहो भुङ्क्तेच्युताधरम् ॥३०॥

इसके इन चरणों को देखकर हमें बड़ा दुःख होरहा है, जो भगवान् को गोपियों में से उठाकर एकान्त लेगई और उनके अधरामृत का अकेले ही पान कर रही है ॥ ३० ॥

न लक्ष्यन्ते पदान्यत्र तस्या नूनं तृणाङ्कुरैः ।
खिद्यत्सुजातांघ्रिकलामुन्निन्ये प्रेयसीं प्रियः ॥३१॥

यहाँ तो उस गोपी के चरण नहीं दीखते जान पड़ता है कि जब तृण के अंकुरों से उसका चरण-तल पीड़ित होगया होगा, तब प्यारेने प्यारी को अपने कन्धे पर रख लिया होगा ॥३१॥

(इमान्यधिकमग्नानि पदानि वहतो वधूम् ।
गोप्यः पश्यत कृष्णस्य भाराक्रान्तस्य कामिनः ।
अत्रावरोपिता कान्ता पुष्पहेतोर्महात्मना ॥ १ ॥

(हे गोपियो ! सखी को उठाने के बोझ से पृथ्वी में अधिक धंसे हुए कामी कृष्णके चरण को देखो यहाँ फूलों के लिये उन्होंने अवश्य सखी को उठाया है ॥ १ ॥)

अत्र प्रसूनावचयः प्रियार्थे प्रेयसा कृतः ।
प्रपदाक्रमणे एते पश्यताऽसकले पदे ॥३२॥

यहाँ प्यारे कृष्ण ने अपनी प्यारी के लिये फूल बीने हैं, देखो इसी कारण उन्हें एड़ी ऊंची करनी पड़ी है, इसी से यहाँ चरण के केवल अग्र भागका ही चिह्न दीखता है ॥३२॥

केशप्रसाधनं त्वत्र कामिन्याः कामिना कृतम् ।
तानि चूडयता कान्तामुपविष्टमिह ध्रुवम् ॥३३॥

यहाँ अवश्य ही उन कामी कृष्ण ने कामिनकी चोटी गूंधी है, क्योंकि उसकी चोटी को गूंधते हुए श्रीकृष्ण को यहाँ अवश्य बैठना पड़ा है ॥३३॥

रेमे तया चात्मरत आत्मारामोप्यखण्डितः ।
कामिनां दर्शयन् दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम् ३४

श्रीशुकदेवजी बोले-यद्यपि भगवान् आत्मलीन, आत्माराम और स्त्रियों की क्रीड़ाओंसे अखंडित हैं, फिर भी उन्होंने कामी पुरुषों की दीनता तथा स्त्रियों की दुष्टता दिखलाने के लिये उन्हें साथ लेकर रमण किया ॥३४॥

इत्येवं दर्शयन्त्यस्ताश्चेरुर्गोप्यो विचेतसः ।
यां गोपीमनयत् कृष्णो विहायान्याः स्त्रियो वने३५
सा च मेने तदात्मानं वरिष्ठं सर्वयोषिताम् ।
हित्वा गोपीः कामयाना मामसौ भजते प्रियः३६॥

इस प्रकार वे गोपियां भगवान् को ढूंढती हुई अचेत होकर विचरण कर रही थीं, अब भगवान् सब गोपियों को बनमें छोड़कर किसी स्त्री को अपने साथ ले गये थे, उसके मनमें यह अभिमान उत्पन्न हुआ कि मेरे समान कोई भी स्त्री नहीं है, मैं ही सब स्त्रियों में श्रेष्ठ हूँ, क्योंकि इच्छा करती हुई सब गोपियों को छोड़कर यह प्यारे कृष्ण मेरा ही सेवन करते हैं ॥३५॥३६॥

ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः ॥३७॥

फिर वह वन-प्रदेश में कुछ दूर जाकर सगर्व भगवान्से बोली कि मैं चल नहीं सकती, आपही जहाँ चाहें मुझे ले चलें ॥३७॥

एवमुक्तः प्रियामाह स्कन्धमारुह्यतामिति ।
ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत ॥३८॥

इस प्रकार कहने पर श्रीकृष्णजी बोले कि मेरे कन्धे पर चढ़ जाओ, यह सुनकर जैसेही गोपी उनके कन्धे पर चढ़नेलगी वैसेही वे अन्तर्धान हो गये; तब तो वह स्त्री बहुत ही घबराई ॥३८॥

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज ।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ३९॥

(और विलाप करने लगी कि) हा नाथ ! हा रमण ! हा प्यारे ! हे महा बाहु ! तुम कहाँ हो ? तुम कहां हो ? हे सखे ! मुझ दीन दासी पर कृपा करके दर्शन दीजिये ॥३९॥

श्रीशुक उवाच

अन्विच्छन्त्यो भगवतो मार्गं गोप्यो विदूरतः ।
ददृशुः प्रियविश्लेषमोहितां दुःखितां सखीम् ४०॥

श्रीशुकदेवजी बोले–भगवान् के मार्गको ढूंढती हुई गोपियों ने निकट ही में प्रियतम के विरह से मोहित और दुःखी उस सखी को देखा ॥४०॥

तया कथितमाकर्ण्य मानप्राप्तिं च माधवात् ।
अवमानं च दौरात्म्याद् विस्मयं परमं ययुः॥४१॥

जब गोपियों ने उसके मुख से यह सुना कि पहले तो उसे भगवान् की ओर से मान मिला, परन्तु पीछे उसका तिरस्कार होगया; तो उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ ॥४१॥

ततोऽविशन् वनं चन्द्रज्योत्स्ना यावद्विभाव्यते ।
तमः प्रविष्टमालक्ष्य ततो निवृतुः स्त्रियः ॥४२॥

फिर जहाँ तक चन्द्रमा का प्रकाश था, वहाँ तक गोपियां उस सखी को साथ लेकर आगे बढ़ीं जब आगे अन्धकार दीखपड़ा तब वे पीछे लौटआईं॥

तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ।
तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः४३

वे सब उन श्रीकृष्ण भगवान्में मन लगाये हुए उन्हीं की वार्ता कर रही थीं और उन्हीं की लीला करती हुई उन्हीं में तन्मय होकर उन्हीं के गुण गा रही थीं, इसलिये उन्हें श्रीकृष्णजी के वियोग में अपने घर की भी खबर न आई ॥४३॥

पुनः पुलिनमागत्य कालिन्याः कृष्णभावनाः ।
समवेता जगुः कृष्णं तदागमनकाङ्क्षिताः ॥४४॥

फिर वे सब यमुनाजी के तट पर आकर श्रीकृष्णजी का ध्यान करती हुईं, उनके पधारने की इच्छा से इकट्ठी होकर उन्हींका गायन करनेलगीं।

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

इकतीसवां अध्याय

(गोपियों द्वारा कृष्ण गमन की प्रार्थना)

गोप्य ऊचुः

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि । दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥ १ ॥

गोपियां बोलीं–हे प्यारे ! आपके अवतार धारण करनेसे व्रजकी अधिक उन्नति हुई है, यहाँ निरंतर लक्ष्मीजी विराजमान रहतीहैं, इस प्रकार सब व्रज में आनन्द छारहा है, उसमें आपही के लिये प्राणों को धारण करने वाली गोपियां आपको ढूंढती फिर रही हैं ॥ १ ॥

शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदर श्रीमुषा दृशा । सुरतनाथ ते शुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥ २ ॥

हे सुरत नाथ ! हे मनोरथ पूर्ण करने वाले ! शरद् ऋतु के तालाब में भले प्रकार उत्पन्न हुए विकसित कमल के गर्भ की शोभा को हरण करने वाली अपनी दृष्टिके द्वारा जो आप हम बिना मोल की दासियों को मारतेहैं, तो क्या यह बध नहींहै॥

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद्वर्षमारुताद्वैद्युतानलात् । वृषमयात्मजाद्विश्वतोभयाद्ऋषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥ ३ ॥

हे तात ! आपने विष जल द्वारा मृत्यु होने,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अघासुर, वर्षा पवन और बिजलीके आघात, अरिष्टासुर, व्योमासुर तथा दूसरे काली नाग आदि के भय से सर्वत्र और सदैव ही बार बार हमको बचाया है, फिर आज क्यों छोड़ रहे हो ? ॥ ३ ॥

न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् । विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ॥ ४ ॥

हे सखा ! आप यशोदाके पुत्र नहीं, वरन् सब प्राणियों के अन्तर्यामी हो, जगत की रक्षा के लिये ब्रह्माजीकी प्रार्थना करनेपर यदुकुलमें प्रकट हुएहो।

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् । करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥ ५ ॥

हे यादवोत्तम ! हे कान्त ! संसार के भय से शरणमें आये हुए पुरुषोंको अभय देनेवाले ! मनोरथ पूर्ण करनेवाले ! लक्ष्मीजीका पाणिग्रहण करनेवाले ! अपना कर-कमल हमारे सिरपर रखिये॥५॥

व्रजजनार्तिहन् वीरयोषितां निजजनस्मयध्वंसनस्मित । भज सखे भवत्किङ्करीः स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय ॥६॥

हे सखे ! हे वीर ! हे व्रजवासियों के दुःखहारी ! मन्द हास्य द्वारा अपने भक्तों का गर्व भञ्जन करनेवाले ! हम दासियों का आप सेवन कीजिये और अपने सुन्दर मुख कमल का दर्शन दीजिये ॥ ६ ॥

प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् । फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ॥७॥

प्रणत प्राणियों के पापों को नाश करने वाले, कृपा के कारण गौओं के पीछे फिरनेवाले, सौभाग्य के कारण लक्ष्मी के धाम तथा पराक्रम के कारण सर्प के फण पर विराजमान् रहनेवाले अपने चरण कमल को हमारे कुचों पर रखकर हमारा कामदेव शान्त कीजिये ॥ ७ ॥

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण । विधिकरीरिमा वीर मुह्यतीरधरसीधुनाऽऽप्याययस्वनः ॥ ८ ॥

हे कमलनयन ! हे वीर ! आपकी सुन्दरवचन वाली, गंभीर और मधुर वाणी से मोहित इन हम दासियों को अधरामृत से जीवन-दान दीजिये॥८॥

तव कथाऽमृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम् । श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥ ९ ॥

आपके विरह में हमारी मृत्यु तो आ ही चुकी थी, परन्तु उसे आपके कथामृत पाते हुए सुकृती जनों ने बचा लिया है, आपकी कथा अमृत रूप है, क्यों कि वह संतप्त पुरुषों को जिलाती है, ब्रह्मवेत्ता भी उसकी स्तुति करते हैं, वह काम्य कर्मों का नाश करती है, केवल सुनने ही से मङ्गल करती है, सदा शान्त है, ऐसी आपकी अमृत रूप कथा को जो लोग विस्तार पूर्वक निरूपण करते हैं, वे जीव-दान देने वाले हैं, जब आपकी कथा कहने वाले धन्य हैं तो आपके दर्शन पाने वालोंका तो कहना ही क्या है ? इसलिये अब दया करके दर्शन दीजिये ॥ ९ ॥

प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम् । रहसि संविदो या हृदिस्पृशः कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ॥१०॥

हे सौम्य ! हे कपटी ! आपका हास्य, प्रेमपूर्वक देखना, ध्यान से ही मङ्गलरूप विहार और मनको मोहित करने वाली एकान्त की बातें-यह सभी हमारे मनको क्षोभित करती हैं ॥१०॥

चलसि यद्व्रजाच्चारयन् पशून् नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् । शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति ॥११॥

हे नाथ ! जब आप पशु चराने के लिये व्रजसे जाते हैं, उस समय आपके कमलके समान सुन्दर चरण कङ्कड़ और तृण के अंकुरों से पीड़ित होते होंगे, हे कान्त! यह विचारकर हमारा चित्त चञ्चल हो उठता है, भला हम ऐसी प्रेम-पात्रियों पर भी आप दया नहीं करते ॥११॥

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैर्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम् । घनरजस्वलं दर्शयन् मुहुर्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥ १२ ॥

हे वीर ! संध्या के समय काले बालों से घिरे हुए और गो-रज से व्याप्त कमल के समान मुख धारण किये हुए, बारम्बार दर्शन देकर, हमारे मन में कामोद्दीपन तो करते हो, परन्तु दर्शन नहीं देते, आपका यही तो कपट है ॥१२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येय-
मापदि । चरणपङ्कजं शन्तमं च ते रमण नः
स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥१३॥

हे मनकी पीड़ाको हरने वाले ! हे रमण ! ब्रह्मा जी द्वारा पूजित, पृथ्वी का मंडन रूप, प्रणतपुरुषों के मनोरथ को पर्ण करने वाला, आपत्ति के समय ध्यान से ही उस (विपत्ति) को दूर करने वाला, सेवा में भी सुख देने वाला अपना चरण-कमल हमारे कुचों पर धरिये ॥१३॥

सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु
चुम्बितम् । इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर
नस्तेऽधरामृतम् ॥ १४ ॥

हे वीर ! कामोद्दीपक, शोकहारी, स्वर से भरी हुई बाँसुरी से चुंबित, चक्रवर्त्ति आदि सुखों को भुलाने वाला अपना अधरामृत हमें दीजिये ॥१४॥

अटति यद्भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वाम-
पश्यताम् । कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड
उदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम् ॥१५॥

जब आप दिनके समय बनमें चले जाते हैं, तब हमारा एक क्षण आपके दर्शन विना युग के समान बीतता है, जब संध्या के समय हम आपके घुंघराले बालों वाले श्रीमुख का दर्शन करती हैं तब हमें पलकों का बनाने वाला ब्रह्मा मूर्ख सा जान पड़ता है, क्योंकि इतने लम्बे विरह का हमें इन पलकों के कारण एक क्षण भी उन दर्शनों से सुख नहीं मिलने पाता ॥१५॥

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवानतिविलङ्घ्य तेऽन्त्य-
च्युतागताः । गतिविदस्तवोद्गीतमोहिता कितव
योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥१६॥

हे अच्युत ! देखो पति, पुत्र, सम्बंधी, भाई और बन्धु-इन सबको छोड़ कर और मोहित हो कर हमारे आने को जानने वाले (आप) के पास हम आई हैं, हे कितव ! ऐसी दशा में भी रात के समय स्त्रियोंका त्याग सिवा आपके और कौनकरेगा?

रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसिताननं प्रेम-
वीक्षणम् । बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहु-
रतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥१७॥

कामोद्दीपक एकान्त का संकेत, हास्यमय मुख, प्रेम सहित देखना और लक्ष्मीजी का स्थान वक्षः-स्थल-इन सबको देखकर हमारा मन वारम्बार मोहित हो जाता है ॥१७॥

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं
विश्वमङ्गलम् । त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां
स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥१८॥

हे कृष्ण ! आपका प्रकटहोना जगत्का कल्याण करने वाला है, विशेष कर व्रजवासियों का दुःख हरने वाला है, इसलिये आपकी कामना से व्याप्त चित्त वाली हम गोपियों को, अपने भक्तों की मन की पीड़ा हरनेवाली थोड़ीसी गुप्त औषधि दीजिये।

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीताः शनैः
प्रिय दधीमहि कर्कशेषु । तेनाटवीमटसि तद्व्य-
थते न किं स्वित् कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः॥

हे प्यारे ! आपके जिस सुकुमार चरण कमल को हम डरते-डरते अपने कठोर कुचों पर धीरे से धरती हैं, उसके द्वारा आप बनमें फिरते हैं, भला वे पद कङ्कड़ आदि से कैसे पीड़ित न होते होंगे ? इस प्रकार आपही को जीवन रूप मानने वाली हम गोपियों की बुद्धि मोहित होती है ॥१९॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

बत्तीसवां अध्याय

(गोपियों के प्रति श्रीकृष्णकी सान्त्वना)

श्रीशुक उवाच

इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा ।
रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १ ॥

शुकदेवजी बोले-हे राजन् इस प्रकार गोपियां गाती हुई और विचित्र रीतिसे विलाप करती हुई श्रीकृष्णजी के दर्शनों की लालसा में सुन्दर स्वर के साथ रोने लगीं ॥ १ ॥

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥ २ ॥

तब मन्द हास्यसहित मुखारविंदवाले, साक्षात्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कामदेव को भी मोहित करने वाले श्रीकृष्ण भगवान् पीतांबर पहिने और बनमाला धारण किये हुए गोपियों के बीच में प्रकट हुए ॥२॥

तं विलोक्यागतं प्रेष्ठं प्रीत्युत्फुल्लदृशोऽबलाः।
उत्तस्थुर्युगपत् सर्वास्तन्वः प्राणमिवागतम् ॥ ३ ॥

इन प्रियतमको आया हुआ देखकर सब स्त्रियां प्रीति से प्रफुल्ल दृष्टि होकर एकसाथ उठ खड़ीहुईं, जैसे प्राणों के आने पर हाथ-पांव आदि इन्द्रियां उठ खड़ी होती हैं ॥३॥

काचित् कराम्बुजं शौरेर्जगृहेऽञ्जलिना मुदा।
काचिद्दधार तद्बाहुमंसे चंदनभूषितम् ॥ ४ ॥

किसी गोपी ने आनन्दसे भगवान्के करकमल को अञ्जली में ले लिया, किसीने चन्दनसे शोभायमान् भगवान् के कन्धेको अपने कंधेपर लिया॥४॥

कांचिदञ्जलिनाऽगृह्णात् तन्वी ताम्बूलचर्वितम्।
एका तदङ्घ्रिकमलं संतप्ता स्तनयोरधात् ॥ ५ ॥

किसी गोपी ने भगवान्के चवाये हुए बीड़े को अंजलिमें लेलिया, किसी ने काम-ज्वर से सन्तप्त हो कर उन के चरण-कमल को अपने स्तनों पर धर लिया ॥ ५ ॥

एका भ्रुकुटिमाबध्य प्रेमसंरम्भविह्वला।
ध्नन्तीवैक्षत् कटाक्षेपैः संदष्टदशनच्छदा ॥ ६ ॥

कोई गोपी भृकुटी चढ़ाकर प्रेम मय क्रोध के आवेश में विह्वल होकर, होंठ दबाती तथा कटाक्ष सा मारती हुई देखने लगी ॥६॥

अपराऽनिमिषद्दृग्भ्यां जुषाणा तन्मुखाम्बुजम्।
आपीतमपि नातृप्यत् संतस्तच्चरणं यथा ॥ ७ ॥

दूसरी गोपी निर्निमिष नेत्रों से भगवान्के मुख कमल का भली भांति दर्शन कर चुकने पर और उसका बारम्बार सेवन कर चुकने पर भी तृप्तनहीं हुई, जैसे सन्त जन भगवान् की चरण-सेवा करते हुए तृप्त नहीं होते ॥७॥

तं काचिन्नेत्ररन्ध्रेण हृदि कृत्य निमील्य च।
पुलकाङ्ग्युपगूह्यास्ते योगीवानन्दसंप्लुता ॥ ८ ॥

कोई गोपी नेत्रों के छिद्र द्वारा भगवान् को हृदय में धरकर, आंखें मूंद कर, उनको भेंट कर और पुलकायमान होकर योगीजनकी नाईं आनंद में मग्न होगईं ॥ ८ ॥

सर्वास्ताः केशवालोकपरमोत्सवनिर्वृताः।
जहुर्विरहजं तापं प्राज्ञं प्राप्य यथा जनाः ॥ ९ ॥

वे सब भगवान् के दर्शन के महान् उत्सव से आनन्दित हुईं और उनका विरह-ताप दूर होगया जैसे मुमुक्षजन ईश्वरको पाकर निष्ताप होजातेहैं॥

ताभिर्विधूतशोकाभिर्भगवानच्युतो वृतः।
व्यरोचताधिकं तात पुरुषाः शक्तिभिर्यथा ॥१०॥

हे तात ! उन चिन्ता-रहित गोपियोंसे आवृत भगवान् अत्यन्त शोभा देने लगे, जैसे सत्व आदि शक्तियों के साथ परमात्मा शोभा पाते हैं ॥ १० ॥

तां: समादाय कालिन्द्या निर्विश्य पुलिनं विभुः।
विकसत्कुन्दमन्दारसुरभ्यनिलषट्पदम् ॥११॥

फिर भगवान् उन गोपियों को साथ लेकर कुन्द और मन्दार के सुगन्ध के कारण गुञ्जायमान भौंरों वाले तट पर गये ॥११॥

शरच्चन्द्रांशुसन्दोहध्वस्तदोषातमः शिवम्।
कृष्णाया हस्ततरलाऽऽचितकोमलवालुकम् ॥१२॥

'शरद् ऋतु के चन्द्रमा की किरणों के समूह से रात का अंधकार नष्ट होगया, यमुनाजी ने अपनी भुजाओं के समान तरंगों से कोमल वालू बिछादी।

तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजो मनोरथान्तं श्रुतयो यथा ययुः। स्वैरुत्तरीयैः कुचकुंकुमाङ्कितैरचीकॢपन्नासनमात्मबन्धवे ॥१३॥

उस समय श्रीकृष्णजी के दर्शनों के आनन्दसे उन गोपियों के हृदय-रोग दूर होकर इस प्रकार मनोरथ पूर्ण हुए जैसे ज्ञान-कांड में श्रुतिं परमेश्वर को देखकर आनन्द से पूर्ण होकर काम के संपूर्ण बन्धनों को त्याग देती है; उन गोपियों ने कुचोंकी केशर से युक्त अपनी ओढ़नी उतार-उतार कर भगवान् को आसन दिया ॥१३॥

तत्रोपविष्टो भगवान् स ईश्वरो योगेश्वरान्तर्हृदि कल्पितासनः। चकास गोपीपरिषद्गतोर्चितस्त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदं वपुर्दधत् ॥१४॥

योगेश्वरों के हृदय में सदैव आसन रखनेवाले परमेश्वर श्रीकृष्ण भगवान् गोपियों द्वारा मान पा कर, उनकी मण्डली में विराजते हुए, तीनों लोकों की शोभा को धारण करके छविमान् हुए ॥१४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सभाजयित्वा तमनङ्गदीपनं सहासलीलेक्षण-विभ्रमभ्रुवा। संस्पर्शनेनाङ्ककृताङ्घ्रिहस्तयोः संस्तुत्य ईषत्कुपिता बभाषिरे ॥१५॥

उनके चरण और हाथों को गोदमें लेकर, चपातीहुई गोपियां हास्य तथा लीलासहित देखने और विलास सहित भृकुटी के द्वारा कामोद्दीपन करनेवाले भगवान्का मान तथा भलीभांति प्रशंसा करके कुछ क्रोध पूर्वक कहने लगीं ॥१५॥

गोप्य ऊचुः

भजतोनुभजन्त्येक एक एतद्विपर्ययम्।
नोभयांश्च भजन्त्यन्य एतन्नो ब्रूहि साधु भोः॥१६॥

गोपियां बोलीं–एक तो भजने वालों को भजते हैं, एक ऐसे होते हैं कि न भजने वालों को भजते हैं, एक भजने वाले और न भजने वाले दोनों ही को नहीं भजते, इसका विवेचन हमें भले प्रकार से समझाइये ॥ १६ ॥

श्रीभगवानुवाच

मिथो भजति ये सख्यः स्वार्थैकान्तोद्यमा हि ते।
न तत्र सौहृदं धर्मः स्वार्थार्थं तद्धि नान्यथा ॥१७॥

श्रीभगवान् बोले–हे सखियो ! जो परस्पर भजते हैं वे अपस्वार्थी हैं, उसमें कुछ सुहृदता या धर्म नहीं है, क्योंकि वह भजना (प्रेम) केवल स्वार्थ ही के लिये है ॥१७॥

भजन्त्यभजतो ये वै करुणाः पितरो यथा।
धर्मो निरपवादोऽत्र सौहृदं च सुमध्यमाः ॥१८॥

जो भजन (प्रेम) न करने वालों को भजते हैं वे दयालु और स्नेहीहैं, जैसे माता-पिता; हे सुंदरियो! दयालु होकर भजने में सत्य धर्म है और स्नेह से भजने में सत्य प्रेम है ॥१८॥

भजतोऽपि न वै केचित् भजन्त्यभजतः कुतः।
आत्मारामा ह्याप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः ॥१९॥

कई एक जब भजने वालों ही को नहीं भजते तब न भजने वालों को तो भजेंगेही क्या ? वे चार प्रकारके हैं–आत्मा राम, पूर्ण काम, कृतघ्न और गुरु द्रोही ॥१९॥

नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जन्तून् भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये। यथाऽधनो लब्धधने विनष्टे तच्चिन्तयाऽन्यन्निभृतो न वेद ॥२०॥

परन्तु हे सखियो ! मैं इनमें से किसीभी तरह नहीं हूँ, वरन् परम दयालु और स्नेही हूँ, क्योंकि भजने वालों का ध्यान अपने में निरन्तर रखने के लिये मैं भजने वालों को भी नहीं भजता, जैसे दरिद्री पुरुष अपना धन जाने पर उसकी चिन्ता के मारे भूख-प्यास भी भूल जाता है ॥ २० ॥

एवं मदर्थोज्झितलोकवेदस्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः। मया परोक्षं भजता तिरोहितं माऽसूयितुं मार्हथ तत् प्रियं प्रियाः ॥२१॥

हे अबलाओ ! उसीप्रकार तुम मेरे लिये लोक मर्यादा, वेद-मर्यादा, पति-पुत्र को त्याग बैठी हो, अस्तु तुम्हारा ध्यान अपने में रखने के लिये मैं अंतर्द्धान हुआ और अदृश्य रहकर तुम्हारे प्रेम-वचन सुनता था, इसलिये हे प्यारी स्त्रियो ! तुम को मुझे दोष न लगाना चाहिये ॥२१॥

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः। या माभजन् दुर्जरगेहशृंखलाः संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना ॥२२॥

इसलिये तुम निर्दोष भाव वाली गोपियों के प्रत्युपकार के लिये मैं देवताओं की आयु तक भी समर्थ नहीं हूं, क्योंकि तुम दुस्त्यज घर रूपी बेड़ी को काटकर मेरा सेवन करती हो, अस्तु मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकता ॥२२॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

तेतीसवां अध्याय

(रासक्रीड़ा)

श्रीशुक उवाच

इत्थं भगवतो गोप्यः श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः।
जहुर्विरहजं तापं तदङ्गोपचिताशिषः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! भगवान् श्री कृष्ण के ऐसे वचन सुनकर गोपियों ने पूर्ण काम होकर विरह का संताप त्याग दिया ॥१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः ।
स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥ २ ॥

वहां प्रसन्न चित्त व आज्ञा कारणी, परस्पर जोड़से खड़ी हुई, बालाओंमें रत्न-रूप व्रजाङ्गनाओं के साथ भगवान्ने रास-क्रीड़ा* को प्रारंभ किया ॥

रासोत्सवः संप्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः ।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः ।
प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः ॥ ३ ॥
यं मन्येरन् नभस्तावद्विमानशतसंकुलम् ।
दिवौकसां सदाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम्॥ ४॥

जब गोपियों के मंडल से मंडित रासोत्सव प्रारम्भहुआ, तब श्रीकृष्ण भगवान् अपनी अचिंत्य योगशक्तिके द्वारा दो-दो गोपियोंके बीच में प्रविष्ट हुए और उन्हों ने अपने पास में खड़ी हुई दोनों गोपियों के गले में हाथ डाले, प्रत्येक गोपी यह मानने लगी कि भगवान् मेरे ही पास हैं, इस तरह रासारम्भ होने पर, उत्सुकता से चित्त हरण होने के कारण अपनी २ स्त्रियों के साथ देवता देखने के लिये आये, उनके सैकड़ों विमानों से आकाश में बहुत भीड़ होगई ॥ ३ ॥ ४ ॥

ततो दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः ।
जगुर्गन्धर्वपतयः सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम् ॥ ५ ॥

फिर दुन्दुभी बाज उठी, फूल बरसनेलगे और स्त्रियों सहित गन्धर्व-राज भगवान् का निर्मल यश गाने लगे ॥ ५ ॥

वलयानां नूपुराणां किङ्किणीनां च योषिताम् ।
सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले ॥ ६ ॥

रास-मण्डल के बीच में श्रीकृष्ण सहित स्त्रियों के कङ्कण, नूपुर और घुंघुरुओं का बड़ा ही तुमुल नाद हुआ ॥६॥

तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान् देवकीसुतः ।
मध्ये मणीनां हैमानां महामारकतो यथा ॥ ७ ॥

वहाँ भगवान् देवकी नन्दन उनके साथ इस प्रकार अधिक शोभा देनेलगे, जैसे स्वर्णकी मणियों में नीलम शोभा देता है ॥७॥

पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासैर्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः । स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः ॥ ८ ॥

इसी प्रकार गोपियां भी श्रीकृष्णजी के साथ चरण रखने, भुजाओं को हिलने, मुसकानके साथ भ्रकुटी चढ़ने, कमर लचकने, वस्त्र और कुचों की चञ्चलता और कपोलोंपर कुंडलोंके चलायमान होने इन सब बातों से मेघ-मण्डल में बिजली के समान शोभा देती हुईं गीत गारही थीं, जिनके मुख पर पसीने की बूंदें झलक रहीं थीं और केश व नारे की गाँठ खुल रहीं थीं ॥ ८ ॥

उच्चैर्जगुर्नृत्यमाना रक्तकण्ठ्यो रतिप्रियाः ।
कृष्णाभिमर्शमुदिता यद्गीतेनेदमावृतम् ॥ ९ ॥

रति में प्रीति करने वाली, लाल कण्ठवाली वे गोपियां भगवानके स्पर्शसे आनन्दित होकर नृत्य करती हुई उच्च स्वर से गायन करने लगीं, जिनके गीत से यह सारा जगत् व्याप्त होगया ॥९॥

काचित् समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः ।
उन्निन्ये पूजिता तेन प्रीयता साधु साध्विति ।
तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानं च बह्वदात् ॥१०॥

कोई गोपी भगवान् के साथ स्वर की गतियों को न मिलाकर ध्रुव तालसे उसी क्षण अपने स्वर को ऊँचा लेगई, इस बातसे प्रसन्न होकर भगवान् ने "वाह-वाह" कह आदर करते हुए उसे विशेष महत्व दिया ॥ १० ॥

काचित् रासपरिश्रान्ता पार्श्वस्थस्य गदाभृतः ।
जग्राह बाहुना स्कन्धं श्लथद्वलयमल्लिका ॥११॥

कोई रास-क्रीड़ा से थक कर पास में खड़े हुए भगवान् के कंधे को भुजा से पकड़ कर ठहर गई और उसके वलय तथा मल्लिका के फूल शिथिल पड़ रहे थे ॥११॥

तत्रैकांसगतं बाहुं कृष्णस्योत्पलसौरभम् ।
चन्दनालिप्तमाघ्राय हृष्टरोमा चुचुम्ब ह ॥१२॥

उस समय कोई गोपी कमलके समान सुगंधित चन्दन से चर्चित श्रीकृष्णकी भुजा को अपने

*—साज के साज समाज सबै, सजनी सुखसौं सरसावै लगीं। अंग अंग अनंग उमंग महा सुख, रङ्ग तरङ्ग बढ़ावै लगीं ॥ तिरछी अब नैनन सैन तकैं, झुकि झूमि झुकैं छवि छावै लगीं। दुर जावै लगीं, तरसावै लगीं, दरसायके लाल छकावैलगीं॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कंधे पर रक्खा हुआ देखकर, उसे सूंघ कर और रोमांचित होकर उसे चूमने लगी ॥१२॥

कस्याश्चिन्नाट्यविक्षिप्तं कुण्डलत्विषमण्डितम्।
गण्डे गण्डं संदधत्या अदात् ताम्बूलचर्वितम्॥१३॥

नृत्य से चलायमान कुण्डलों की कान्ति से सुशोभित अपने कपोल को भगवान् के कपोल पर धरकर खड़ी हुई किसी गोपी को उन्होंने अपना जूँठा बीड़ा दे दिया ॥१३॥

नृत्यन्ती गायती काऽपि कूजन्नूपुरमेखला।
पार्श्वस्थाच्युतहस्ताब्जं श्रान्ताऽधात् स्तनयोः शिवम्

जिसके नूपुर और मेखला झनकार रहे हैं, ऐसी किसी एक सखी ने भगवान् के पास खड़ी होकर नृत्य-गान से थक कर भगवान्के कर-कमल को अपने स्तनों पर रख लिया ॥१४॥

गोप्यो लब्ध्वाऽच्युतं कान्तं श्रिय एकान्तवल्लभम्।
गृहीतकण्ठ्यस्तद्दोर्भ्यां गायन्त्यस्तं विजह्निरे॥१५॥

श्रीलक्ष्मीजी के अत्यन्त प्रिय श्रीकृष्णजी को पति पाकर, उनकी भुजाओं को अपने गलेमें डाले हुए उन्हीं का यश गाती हुई क्रीड़ा करनेलगीं ॥

कर्णोत्पलालकविटङ्ककपोलघर्मवत्क्रश्रियो वलय-
नूपुरघोषवाद्यैः। गोप्यः समं भगवता ननृतुः
स्वकेशस्रस्तस्रजो भ्रमरगायकरासगोष्ठ्याम्॥१६॥

उस रास-मंडल में जो स्त्रियों सहित गन्धर्व और किन्नर गायक बनकर गारहे थे अथवा बाजे बजा रहे थे, वे सब रास के रस में मोहित होकर नृत्य करने लगे, उस समय कङ्कण और नूपुर बाजोंका काम कररहे थे तथा भौंरे गायक का काम कर रहे थे, व्रजाङ्गनायें रास-मंडल में श्रीकृष्णजी के साथ नृत्य करती हुई शोभा पारहीं थीं, जिनके कानों पर कमल, अलकों से अलंकृत कपोल तथा पसीने की बूंदोंकी शोभा मुखपर छारही थी, नृत्य करते समय जो फूलों की मालायें गिर रहीं थीं, उनसे ऐसा जान पड़ता था मानों ताल गति से प्रसन्न होकर केश सिर हिलाते हुए, चरणों पर फूल बरसा रहे हैं ॥१६॥

एवं परिष्वङ्गकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामविलास-
हासैः। रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रति-
बिम्ब विभ्रमः ॥१७॥

इस प्रकार लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण भी आलिंगन, कर-स्पर्श, स्नेह मयी चितवन तथा बड़े ही हास-विलास के साथ व्रज की सुन्दरियों के साथ रमण करते थे, मानो बालक अपनी परछाईं के साथ खेलता है ॥ १७ ॥

तदङ्गसङ्गप्रमदाकुलेन्द्रियाः केशान् दुकूलं कुच-
पट्टिकां वा। नाञ्जः प्रतिव्योढुमलं व्रजस्त्रियो
विस्रस्तमालाभरणाः कुरूद्वह ॥१८॥

हे राजन् ! भगवान्के अङ्गों के स्पर्श के आनंद से विवश इन्द्रियों वाली तथा खिसकी हुई माला और आभूषणोंवाली व्रजाङ्गनाओंको अपने शिथिल होते हुए केश, वस्त्र और कंचुकी का संभालना भी कठिन हो रहा था ॥१८॥

कृष्णविक्रीडितं वीक्ष्य मुमुहुः खेचरस्त्रियः।
कामार्दिताः शशाङ्कश्च सगणो विस्मितोऽभवत्१९॥

श्रीकृष्ण की रास-क्रीड़ा देखकर आकाश में देवाङ्गनायें काम से पीड़ित होकर मोहित होगईं, आश्चर्य-चकित होकर तारागण सहित चन्द्रमा भी चलना भूल गया ॥१९॥

कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः।
रेमे स भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया॥२०॥

यद्यपि भगवान् आत्मारामहैं, फिरभी वे जितनी गोपियां थीं, उतने ही रूप धारण कर लीला-पूर्वक उनके साथ विहार करने लगे ॥२०॥

तासामतिविहारेण श्रान्तानां वदनानि सः।
प्रामृजत् करुणः प्रेम्णा शन्तमेनाङ्ग पाणिना २१॥

हे राजन् ! अधिक विहार करते करते जब वे गोपियां थक गईं, तब परम दयालु भगवान्ने प्रेम पूर्वक अपने सुखकारी हाथोंके द्वारा उनके मुंहपोंछे।

गोप्यः स्फुरत्पुरटकुण्डलकुन्तलत्विड्गण्डश्रिया
सुधितहासनिरीक्षणेन। मानं दधत्य ऋषभस्य
जगुः कृतानि पुण्यानि तत्कररुहस्पर्शप्रमोदाः२२॥

झलकते हुए सोने के कुण्डल और केशों की कान्ति से कपोलों पर की शोभा के कारण अमृत के समान आचरण करतेहुए मन्द मुसकानके साथ चितवन के द्वारा भगवान् को सम्मान देती हुईं और भगवान् के नख-स्पर्श से परम सुख पाती हुई गोपियां भगवान् के पवित्र चरित्र गारही थीं ॥२२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ताभिर्युतः श्रममपोहितुमङ्गसङ्गधृष्टस्रजः स कुच कुंकुमरञ्जितायाःगन्धर्वपालिभिरनुद्रुत आविशद्वाः श्रान्तो गजीभिरिभराडिव भिन्नसेतुः ॥२३॥

लोक और वेद की मर्यादाको तोड़नेवाले भगवान् जब रास करते २ थकित होगयेः तब श्रमदूर करने के लिये गोपियों के साथ जल में प्रविष्ट हुए जैसे तट को तोड़ने वाला हाथी हथिनियोंके साथ जलमें धँसता है, उस समय अङ्ग-स्पर्श से मर्दन की हुई और स्तनों की केशर से रंगी हुई माला से सम्बन्ध रखने वाले भौंरे गन्धर्वों की भांति गायन करते हुए उनके पीछे-पीछे जा रहे थे ॥२३॥

सोऽम्भस्यलं युवतिभिः परिषिच्यमानः प्रेम्णेक्षितः प्रहसतीभिरितस्ततोऽङ्ग। वैमानिकैः कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो रेमे स्वयं स्वरतिरत्र गजेन्द्र लीलः ॥२४॥

हे राजन्! अधिक हास्य करती हुई तरुणियों ने चारों ओर से जल उछाल-उछाल कर भगवान् को भिंगो दिया और प्रेम-सहित उनकी ओर देखा उस समय विमानों पर बैठे हुए देवगण पुष्पों की वर्षा करते हुए भगवान् की स्तुति करने लगे, इस भांति भगवान् ने आत्माराम होते हुए भी गजराज की भांति जल-क्रीड़ा की ॥ २४ ॥

ततश्च कृष्णोपवने जलस्थलप्रसूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे। चचार भृङ्गप्रमदागणावृतो यथा मदच्युद्द्विरदः करेणुभिः ॥२५॥

जिसके सब दिशा मण्डलमें जल-स्थलके पुष्पों का सुगन्धित पवन व्याप्त होरहा है, ऐसे यमुनाजी के उपवन में भौंरों तथा स्त्रियों के समूह के साथ भगवान् विचरने लगे, जैसे मद झरता हुआ हाथी हथिनियों के साथ विचरता है ॥२५॥

एवं शशाङ्कांशुविराजिता निशाः स सत्यकामोनुरताबलागणः। सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥२६॥

इस प्रकार उन सत्य निष्ठ भगवान् ने चन्द्रमा की किरणों से शोभायमान रात्रियों में शरदसंबंधी वे सब लीलायें स्नेह मयी स्त्रियों के साथ अपने वीर्य को खण्डित न करते हुए कीं, कि जिनका वर्णन साहित्यिक ग्रन्थोंमें किया गया है ॥२६॥

राजोवाच

संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च। अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥२७॥

परीक्षित बोले–जगदीश्वर भगवान् के अंश के साथ जो श्रीकृष्णका अवतारहै, वह धर्म के स्थापन तथा अधर्म के नाश के लिये है ॥ २७ ॥

स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताऽभिरक्षिता। प्रतीपमाचरद्ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥२८॥

तब हे ब्रह्मन्! धर्म-मर्यादाके कहने वाले करने वाले तथा पालने वाले उन भगवान् ने पर स्त्री-गमन रूपी विरुद्ध कर्म क्यों किया? ॥२८॥

आप्तकामो यदुपतिः कृतवान् वै जुगुप्सितम्। किमभिप्राय एतं नः संशयं छिन्धि सुव्रत ॥२९॥

हे सुव्रत! पूर्ण काम यदुपति ने यह निंद्य कर्म किस प्रयोजनसे किया? मेरा यह संदेह मिटाइये॥

श्रीशुक उवाच

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम्। तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥३०॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन्! समर्थ पुरुषों को धर्म उल्लंघन तथा साहस करते हुए देखा गया है, परन्तु उन्हें उसका दोष नहीं लगता, क्योंकि वे तेजवान् हैं, जैसे कि अग्नि सर्वस्व भक्षण करके भी निर्दोष रहता है ॥३०॥

नैतत्समाचरेज्जातु मनसाऽपि ह्यनीश्वरः। विनश्यत्याचरन्मौढ्याद्यथा रुद्रोऽब्धिजं विषम् ३१॥

परन्तु असमर्थ पुरुषोंको उनकी नाईं आचरण करने का कभी विचार भी न करना चाहिये, क्यों कि जो मूर्खता के साथ आचरण करते हैं, वे शीघ्र ही नष्ट होजाते हैं, जैसे शिवजी ने समुद्रसे उत्पन्न हुए विष का पान किया था, परन्तु दूसरा पुरुष ऐसा करे तो उसी समय मर जाय ॥३१॥

ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित्। तेषां यत् स्ववचो युक्तं बुद्धिमांस्तत् समाचरेत् ३२॥

वास्तव में समर्थ पुरुषों का जैसा कथन सत्य है वैसे ही कहीं-कहीं उनका आचरण भी उचितहै, परन्तु बुद्धिमान् को वही आचरण करना चाहिये जो उन समर्थ पुरुषोंने करनेकी आज्ञा दी हो॥३२॥

कुशलाचरितेनैषामिह स्वार्थो न विद्यते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विपर्ययेण वाऽनर्थो निरहङ्कारिणां प्रभो ॥३३॥

हे राजन्! उन अहङ्कार रहित ईश्वरों को न तो धर्माचरण से प्रयोजन होताहै और न अधर्माचरण से अनर्थ है, वरन् केवल प्रारब्ध-कर्म का पूर्ण करना ही उनका कर्त्तव्य है ॥३३॥

किमुताखिलसत्त्वानां तिर्यङ्मर्त्यदिवौकसाम्।
ईशितुश्चैशितव्यानां कुशलाकुशलान्वयः ॥३४॥

जब दूसरे महात्मा पुरुषों को भी पाप-पुण्यसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता, तब पशु-पक्षी, देवता आदि सब जीवों के नियन्ता भगवान्का पाप-पुण्य से सम्बन्ध कैसे संभव है? ॥३४॥

यत्पादपङ्कजपरागनिषेवतृप्ता योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः। स्वैरं चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमानास्तस्येच्छयाऽऽत्तवपुषः कुत एव बन्धः३५॥

जिनके चरणारविन्दों की रज-सेवन से तृप्त हो कर, योगाभ्यास के प्रभाव से, समस्त बन्धनों को काट कर और आसक्ति छोड़कर, स्वच्छन्द विचरण करते हैं, तब स्वेच्छा-पूर्वक अवतार धारण करने वाले भगवान् को क्या बन्धन होसकता है?

गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम्।
योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक् ॥३६॥

गोपियों, उनके पतियों तथा समस्त देह धारियों को जो अन्तर्यामी तथा बुद्धि के साक्षी हैं, वही लीला पूर्वक देह धारण कर प्रकट हुए हैं,इस लिये उनपर दोष नहीं आ सकता ॥३६॥

अनुग्रहाय भक्तानां मानुषं देहमास्थितः।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परोभवेत्३७

उन्होंने प्राणियों के ऊपर अनुग्रह करनेके लिये मनुष्य-देह धारण करके ऐसी नर-लीला की है, कि जिसे सुनकर मनुष्य कृष्ण-परायण होजाय ॥३७॥

नासूयन् खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया। मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थाम् स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकसः ॥३८॥

श्रीकृष्णजी की माया से मोहित व्रजवासी जनों ने उनको दोष न लगाया और उन्होंने अपनी अपनी स्त्रियोंको अपने ही पास समझा ॥३८॥

ब्रह्मरात्र उपावृत्ते वासुदेवानुमोदिताः।
अनिच्छन्त्यो ययुर्गोप्यः स्वगृहान् भगवत्प्रियाः३९

चार घड़ी रात शेष रहने पर श्रीकृष्णजी की आज्ञा से इच्छा न होते हुए भी प्यारी गोपियां अपने-अपने घर आईं ॥३९॥

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोनुशृणुयादथ वर्णयेद्य यः। भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥

जो पुरुष भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की व्रजाङ्गनाओं के साथ क्रीड़ाको श्रद्धापूर्वक सुने या वर्णन करे, उस धीर पुरुष की भगवान् में दृढ़ भक्ति हो और शीघ्रही हृदरोग कामदेव का पराभव होजाय॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

चौतीसवां अध्याय

(सर्प-ग्रसित नन्द-मुक्ति और शंख चूड़ वध)

श्रीशुक उवाच

एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः।
अनोभिरनडुद्युक्तैः प्रययुस्तेऽम्बिकावनम् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी बोले–एक बार सब ग्वाल देवयात्रा के उत्साह से बैलों के जुड़े हुए गाड़ों में बैठ कर अम्बिका के बनमें गये ॥१॥

तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पशुपतिं विभुम्।
आनर्चुरर्हणैर्भक्त्या देवीं च नृपतेऽम्बिकाम्॥ २ ॥

हे राजन्! वहाँ सरस्वती नदी में स्नान करके पूजन की सामग्री लेकर, गोपों ने भक्ति के साथ महादेवजी तथा देवी जी की पूजा की ॥२॥

गावो हिरण्यं वासांसि मधु मध्वन्नमाद्दताः।
ब्राह्मणेभ्यो ददुः सर्वे देवो नः प्रीयतामिति॥ ३ ॥

उन्होंने ब्राह्मणोंको आदर सहित गौ, स्वर्ण, वस्त्र, शहद और मिष्ठान्न आदि दान दिये और विनय की कि हे देव! हम पर प्रसन्न हो ॥३॥

ऊषुः सरस्वतीतीरे जलं प्राश्य धृतव्रताः।
रजनीं तां महाभागा नन्दसुनन्दकादयः ॥ ४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वे बड़भागी नन्द, उपनन्द आदि सभी गोप व्रत धारण कर, जल पीकर, वहीं सरस्वती के तट पर उस रात के लिये ठहर गये ॥४॥

कश्चिन्महानहिस्तस्मिन् विपिनेऽतिबुभुक्षितः ।
यदृच्छयाऽऽगतो नन्दं शयानमुरगोऽग्रसीत् ॥ ५ ॥

तब वहाँ उस बनमें कितने ही दिनों का भूखा एक सर्प दैवयोग से आ पहुँचा और उसने सोते हुए नन्दजी को ग्रस लिया ॥५॥

स चुक्रोशाहिना ग्रस्तः कृष्ण कृष्ण महानयम् ।
सर्पो मां ग्रसते तात प्रपन्नं परिमोचय ॥ ६ ॥

सर्प के ग्रसते ही नन्दरायजी चिल्ला उठे कि हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे तात ! यह महा नाग मुझे ग्रसे लेताहै, मुझ शरणागत को बचाओ ॥६॥

तस्य चाक्रन्दितं श्रुत्वा गोपालाः सहसोत्थिताः ।
ग्रस्तं च दृष्ट्वा विभ्रान्ताः सर्पं विव्यधुरुल्मुकैः॥७॥

उनका चिल्लाना सुनकर सब गोप जल्दीसे उठे और ग्रस्त नंदजी को देख घबराते हुए जलती हुई लकड़ियों से उस सांप को मारने लगे ॥७॥

अलातैर्हन्यमानोऽपि नामुञ्चत्तमुरङ्गमः ।
तमस्पृशत् पदाऽऽयेत्य भगवान् सात्वतां पतिः ॥८॥

जब जलती हुई लकड़ियों से बहुत मारने पर भी उस सर्पने नंदजीको नछोड़ा तब भक्तपति भगवान्ने आकर उसे अपना चरण छुवा दिया ॥८॥

स वै भगवतः श्रीमत्पादस्पर्शहताशुभः ।
भेजे सर्पवपुर्हित्वा रूपं विद्याधरार्चितम् ॥ ९ ॥

श्रीभगवान्का चरण स्पर्श होते ही उसके सब पाप छूटगये, सर्प-शरीर मिटगया और उसे विद्याधरों से पूजने योग्य स्वरूप मिल गया ॥९॥

तमपृच्छद्ध्रृषीकेशः प्रणतं समुपस्थितम् ।
दीप्यमानेन वपुषा पुरुषं हेममालिनम् ॥१०॥

सोने की माला पहिने हुए; कान्ति मय शरीर धारण किये हुए सामने उपस्थित और नमस्कार करते हुए उस पुरुष से भगवान् ने पूछा कि ॥१०॥

को भवान् परया लक्ष्म्या रोचतेऽद्भुतदर्शनः ।
कथं जुगुप्सितामेतां गतिं वा प्रापितोऽवशः॥ ११॥

तुम कौनहो ? तुम्हारी परम शोभा प्रकाशमान् होने से तुम्हारा दर्शन विचित्र जान पड़ताहै, परन्तु तुम परवश होकर इस निंद्य गतिको कैसे प्राप्त हुएहो?

सर्प उवाच

अहं विद्याधरः कश्चित्सुदर्शन इति श्रुतः ।
श्रिया स्वरूपसम्पत्त्या विमानेनाचरं दिशः ॥१२॥

सर्प बोला-मैं लक्ष्मी तथा रूप की सम्पदा के कारण संसार-प्रसिद्ध सुदर्शन नामक विद्याधर हूँ, मैं विमानमें बैठाहुआ सब दिशाओंमें घूमा करताथा।

ऋषीन विरूपानङ्गिरसः प्राहसं रूपदर्पितः ।
तैरिमां प्रापितो योनिं प्रलब्धैः स्वेन पाप्मना१३॥

एक समय मैंने रूपके घमंड में आकर कुरूप अङ्गिरा गोत्रीय ब्राह्मणोंकी हँसी की, तब उन हँसी किये हुए ऋषियों ने मेरे ही अपराध से मुझे इस योनि में पहुँचाया ॥१३॥

शापो मेऽनुग्रहायैव कृतस्तैः करुणात्मभिः ।
यदहं लोकगुरुणा पदा स्पृष्टो हताशुभः ॥१४॥

उन दयालु महात्माओं ने जो शाप दिया वह मेरे लिये अनुग्रह रूपही हुआ, क्योंकि आप जगत् गुरु के चरण-स्पर्श द्वारा मैं निष्पाप होगया ॥१४॥

तं त्वाऽहं भवभीतानां प्रपन्नानां भयापहम् ।
आपृच्छे शापनिर्मुक्तः पादस्पर्शादमीवहन् ॥१५॥

संसार से भयभीत शरणागत पुरुषों का भय दूर करनेवाले आपसे मैं आज्ञा मांगता हूँ, क्योंकि हे दुःख-नाशक ! मैं आपही के चरण-स्पर्शके प्रभाव से शाप-मुक्त हुआ हूँ ॥१५॥

प्रपन्नोऽस्मि महायोगिन् महापुरुष सत्पते ।
अनुजानीहि मां देव सर्वलोकेश्वरेश्वर ॥१६॥

हे महायोगिन् ! हे महा पुरुष ! हे सत्पुरुषों के पति ! हे समस्त लोकपालों के नाथ ! हे देव ! मैं आपके शरण हूँ, मुझे आज्ञा दीजिये ॥१६॥

ब्रह्मदण्डाद्विमुक्तोऽहं सद्यस्तेऽच्युतदर्शनात् ।
यन्नाम गृह्णन्नखिलान् श्रोतॄनात्मानमेव च ॥१७॥

हे अच्युत ! आपके दर्शन से मैं ब्रह्म-दंड से शीघ्र ही मुक्त होगया हूँ, जो आपका नाम लेता है वह सब श्रोताओं सहित स्वयं पवित्र होजाता है ।

सद्यः पुनाति किं भूयस्तस्य स्पृष्टः पदा हि ते ।
इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं परिक्रम्याभिवन्द्य च ।
सुदर्शनो दिवं यातः कृच्छ्रान्नन्दश्च मोचितः॥१८॥

श्रीशुकदेवजी बोले-इस प्रकार प्रभु की आज्ञा लेकर परिक्रमा देकर और दंडवत् करके सुदर्शन स्वर्गको चलागया और नंदरायजी कष्टसे छूटगये ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निशम्य कृष्णस्य तदात्मवैभवं व्रजौकसो विस्मितचेतसस्ततः। समाप्य तस्मिन् नियमं पुनर्व्रजं नृपाऽऽययुस्तत् कथयन्त आदृताः ॥१९॥

हे राजन्! श्रीकृष्णजीकी इस महिमा को देख कर व्रजवासी अचरज करने लगे और उस वनमें लिये हुए नियमको पूर्ण करके उसी बातको आदर पूर्वक कहते हुए व्रजमें लौट आये ॥१९॥

कदाचिदथ गोविन्दो रामश्चाद्भुतविक्रमः। विजह्रतुर्वने रात्र्यां मध्यगौ व्रजयोषिताम् ॥२०॥

कभी अद्भुत पराक्रम करने वाले श्रीराम-कृष्ण व्रजाङ्गनाओं के साथ रात के समय वनमें क्रीड़ा किया करते थे ॥२०॥

उपगीयमानौ ललितं स्त्रीजनैर्बद्धसौहृदैः। स्वलङ्कृतानुलिप्ताङ्गौ स्रग्विणौ विरजोम्बरौ२१॥
निशामुखं मानयन्ताविदितोडुपतारकम्। मल्लिकागन्धमत्तालिजुष्टं कुमुदवायुना ॥२२॥
जगतुः सर्वभूतानां मनः श्रवणमङ्गलम्। तौ कल्पयन्तौ युगपत् स्वरमण्डलमूर्च्छितम्॥२३॥

प्रेम-पाश में बँधी हुई स्त्रियाँ मनोहर रीति से उनके यश गातीथीं, वे दोनों भाई सुन्दर आभूषण धारण किये, अङ्ग में चन्दन लगाये हुए, वन माला पहिने हुए और निर्मल वस्त्र ओढ़े हुए तारे तथा चन्द्रमासे प्रकाशित, मल्लिकाकी सुगंधि से मदमत्त गुञ्जित भौंरों तथा कुमुदकी सुगंधि लिये संचरित पवन वाली रात के आगमन सराहते तथा सब प्राणियों के मन और कानों के मङ्गलकारी स्वर-मंडल की मूर्छना करते हुए एक साथ गायन करने लगे ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

गोप्यस्तद्गीतमाकर्ण्य मूर्च्छिता नाविदन्नृप। स्रंसद्दुकूलमात्मानं स्रस्तकेशस्रजं ततः ॥२४॥

हे राजन्! उस गीतको सुनकर गोपियां मूर्छित होगईं, उनके शरीरसे चाहे वस्त्र गिरे, चाहे केशों में से फूलों की माला गिरे, परन्तु उन्हें उसकी कुछ सुधि न थी ॥२४॥

एवं विक्रीडतोः स्वैरं गायतोः संप्रमत्तवत्। शङ्खचूड इति ख्यातो धनदानुचरोभ्यगात् ॥२५॥

इस प्रकार इच्छानुसार मदोन्मत्त की भांति उन दोनों भाई के क्रीड़ा तथा गायन करते हुए समय पर शंखचूड़ नामक कुबेर का अनुचर आ पहुँचा ॥ २५ ॥

तयोर्निरीक्षतो राजंस्तन्नाथं प्रमदाजनम्। क्रोशन्तं कालयामास दिश्युदीच्यामशङ्कितः २६॥

हे राजन्! जिस स्त्री-समूह के स्वयं भगवान् ही नाथहैं, उस समूहको पुकारता हुआ वह उत्तर की ओर ले जाने लगा ॥२६॥

क्रोशन्तं कृष्ण रामेति विलोक्य स्वपरिग्रहम्। यथा गा दस्युना ग्रस्ता भ्रातरावन्वधावताम्॥२७

"हे कृष्ण! हे राम!" इस प्रकार पुकारतीहुई उन स्त्रियों को सिंह से पकड़ी हुई गायों के समान देखकर दोनों भाई उसके पीछे दौड़े ॥२७॥

मा भैष्टेत्यभयाऽऽरावौ शालहस्तौ तरस्विनौ। आसेदतुस्तं तरसा त्वरितं गुह्यकाधमम् ॥२८॥

वे महा वेग वाले दोनों भाई हाथों में शाल के वृक्ष लेकर 'मत डरो-मत डरो' ऐसे अभय शब्द कहते हुए शीघ्रता पूर्वक तत्काल ही उस नीच यक्ष के पास पहुँचे ॥२८॥

स वीक्ष्य तावनुप्राप्तौ कालमृत्यू इवोद्विजन्। विसृज्य स्त्रीजनं मूढः प्राद्रवज्जीवितेच्छया ॥२९॥

काल या मृत्यु के समान उन दोनों भाइयों को आया हुआ देखकर वह मूर्ख उद्विग्न होकर और स्त्रीगण को छोड़कर प्राण बचाने के लिये भागा ॥

तमन्वधावद् गोविन्दो यत्र यत्र स धावति। जिहीर्षुस्तच्छिरोरत्नं तस्थौ रक्षन् स्त्रियो बलः॥३०॥

वह जहाँ-२ भी गया, श्रीकृष्णजी वहीं २ उस के पीछे गये, क्योंकि वे उसकी मणि लेना चाहते थे, इधर बलदेवजी स्त्रियों की रक्षा करते रहे ।३०।

अविदूर इवाभ्येत्य शिरस्तस्य दुरात्मनः। जहार मुष्टिनैवाङ्ग सहचूडामणिं विभुः ॥३१॥

हे राजन्! दूर निकल जाने पर भी प्रभु ने तत्काल ही उसके पास पहुंचकर चूड़ामणि सहित उस दुष्ट का सिर एक मुक्के में तोड़ डाला ॥ ३१ ॥

शंखचूडं निहत्यैवं मणिमादाय भास्वरम्। अग्रजायाददात् प्रीत्या पश्यन्तीनां च योषिताम् ॥

इस प्रकार शंखचूड़को मार कर, प्रकाश मयी मणि लेकर, सब स्त्रियोंके देखते हुए प्रसन्न होकर श्रीबलदेवजी को दे दी ॥३२॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पैंतीसवां अध्याय

(गोपिका युगल गीत)

श्रीशुक उवाच

गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः ।
कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–भगवान् के वनमें पधारने पर उनमें आसक्त चित्तवाली गोपियाँ उनकी लीला गाती हुई दुःख से दिन बिताया करती थीं ॥ १ ॥

गोप्य ऊचुः

वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रूरधरार्पित-
वेणुम् । कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति
यत्र मुकुन्दः ॥ २ ॥

व्योमयानवनिताः सह सिद्धैर्विस्मितास्तदुपधार्य
सलज्जाः । काममार्गणसमर्पितचित्ताः कश्मलं
ययुरपस्मृतनीव्यः ॥ ३ ॥

गोपियाँ बोलीं–हे गोपियो ! बायें कन्धे पर बायां कपोल रखकर, चञ्चल भ्रकुटि वाले भगवान् बाँसुरी को अपने अधर पर रखकर, जिस समय उसके स्वर छिद्रों पर कोमल उँगली फिरा २ कर बजाते हैं, उस समय सिद्धों की स्त्रियां अपने पति के पास होते हुए भी, उस गायन को सुनकर; विस्मय में पड़कर और काम-बाणसे परवश होकर लज्जा सहित मोहित होजाती हैं और उन्हें अपने नारा छूटने का भी ध्यान नहीं होता ॥ २॥३ ॥

हन्त चित्रमबलाः शृणुतेदं हारहास उरसि
स्थिरविद्युत् । नन्दसूनुरयमार्तजनानां नर्मदो
यर्हि कूजितवेणुः ॥ ४ ॥

वृन्दशो व्रजवृषा मृगगावो वेणुवाद्यहृतचेतस
आरात् । दन्तदष्टकवला धृतकर्णा निद्रिता लिखित
चित्रमिवासन् ॥ ५ ॥

हे स्त्रियो ! यह अचरज सुनो, हार के समान उज्ज्वल हास्य वाले, दुखी लोगों को सुख देनेवाले जिनके वक्षःस्थल में लक्ष्मीजी बिजली की नाईं चञ्चल होती हुई भी स्थिर नहीं रहती हैं, ऐसे भगवान् जब वंशी बजाते हैं, तब उसके नाद से चित्त हरण होने के कारण व्रज के बैल, मृग और गौओं के झुण्ड दूर ही से दाँतों में ग्रास दबा कर कान ऊँचे करके ऐसे चित्र लिखे से रह जाते हैं जैसे सो रहे हों ॥४॥५॥

बर्हिणस्तबकधातुपलाशैर्बद्धमल्लपरिबर्हविडम्बः ।
कर्हिचित् सबल आलि सगोपैर्गाः समाह्वयति
यत्र मुकुन्दः ॥ ६ ॥

तर्हि भग्नगतयः सरितो वै तत्पदाम्बुजरजो-
ऽनिलनीतम् । स्पृहयतीर्वयमिवाऽब्हुपुण्याः प्रेम-
वेपितभुजास्तिमितापः ॥ ७ ॥

हे सखी ! मोरपंख, गुच्छे, धातु व पत्तों से काछनी कसकर मल्ल का अनुकरण करनेवाले बल-रामजी और ग्वालों के साथ जब श्रीकृष्णजी वंशी बजाकर गौओं को बुलाते हैं, तब नदियाँ अपनी गति बन्द कर देती हैं, मानो पवनसे प्रेरित होकर उनके चरणारविन्द की रज की इच्छा कर रही हों परन्तु वे भी हमारी भांति मन्द पुण्यात्मा वाली हैं. इसलिये वे उस रजको नहीं पातीं, अर्थात् केवल अपने तरंग रूप हाथों को हिलाती हैं और जलको स्तंभित रखती हैं ॥६॥७॥

अनुचरैः समनुवर्णितवीर्य आदिपूरुष इवाचल
भूतिः । वनचरो गिरितटेषु चरन्तीर्वेणुनाऽह्वयति
गाः स यदा हि ॥ ८ ॥

वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं व्यञ्जयन्त्य
इव पुष्पफलाढ्याः । प्रणतभारविटपा मधुधाराः
प्रेमहृष्टतनवः ससृजुः स्म ॥ ९ ॥

नर नारायण के समान अचल लक्ष्मी वाले; गोप तथा देव आदि भी जिनके चरित्र को गाया करते हैं, ऐसे भगवान् जब वनमें विचरते हुए, पर्वत के शिखरों पर चरती हुई गौओं को वंशी की टेर सुनाकर बुलाते हैं. तब भार से झुकी हुई शाखाओं वाली बनकी लतायें, मानों अपने मन में प्रकट हुए विष्णुजी की सूचना देती हों, वैसे प्रेम पुष्ट होकर तथा फूल-फलसे सम्पन्न होकर मकरंद की धारा बरसाने लगती हैं और उनके पति वृक्ष भी वैसेही आनन्दित होते हैं ॥ ८॥९ ॥

दर्शनीयतिलको वनमालादिव्यगन्धतुलसीमधु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मत्तैः । अलिकुलैरलघु गीतमभीष्टमाद्रियन् यर्हि सन्धितवेणुः ॥१०॥

सरसि सारसहंसविहङ्गाश्चारुगीतहृतचेतस एत्य । हरिमुपासत ते यतचित्ता हन्त मीलितदृशो धृतमौनाः

बनमालाओं में दिव्य गंधवाली तुलसीके मकरंद से मतवाले भौंरों के ऊँचे तथा अनुकूल गायन का सन्मान करते हुए, रूपवानों के मुकुट मणि भगवान् जिस समय मुरली की ध्वनि करतेहैं, तब तालाब में सारस, हंस तथा दूसरे पक्षीभी मोहित होकर, वहाँ आकर, आँखें मूंद कर, मौन धर कर और चित्तको रोककर भगवान्के पास बैठजाते हैं॥

सहबलः स्रगवतंसविलासः सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः । हर्षयन् यर्हि वेणुरवेण जातहर्ष उपरम्भति विश्वम् ॥१२॥

महदतिक्रमणशङ्कितचेना मन्दमन्दमनुगर्जति मेघः । सुहृदमभ्यवर्षत्सुमनोभिश्छायया च विदधत्प्रतपत्त्रम् ॥१३॥

हे गोपियो ! मोतियों की माला से बने हुए कानों के आभूषणों से शोभायमान् भगवान् बलरामजी के साथ पर्वत-तटों में विचरते हुए स्वयं आनन्द-मूर्त्ति, जगत्को आनन्दित करते हुए जिस समय विश्व को वेणु-नाद से गुञ्जित कर देते हैं, तब मेघ उन महात्मा के अपराधसे भयभीत होकर न तो आगे बढ़ता है और न ऊँचे स्वरसे गरजता है, वरन् मन्द-मन्द वंशी के नाद के पीछे पीछे गरजताहै और जगत्की पीड़ा निवृत्त होनेके लिये अपने समान मित्र भगवान् के ऊपर छायासे छत्र करके नन्हीं-नन्हीं बूंदों के रूप में मानो पुष्प-वर्षा करता है ॥१२॥ १३ ॥

विविधगोपरसेषु विदग्धो वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः । तव सुतः सति यदाऽधरबिम्बे दत्तवेणुरनयत् स्वरजातीः ॥१४॥

सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः । कवय आनतकन्धरचित्ताः कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥१५॥

हे यशोदे ! ग्वालों की अनेक प्रकार की लीला में प्रवीण तुम्हारा पुत्र बिंबफल के समान अरुण अधर पर बाँसुरी रखकर जब अपनीही नई उत्पन्न की हुई स्वरोंकी जातियाँ प्रकट करताहै, तब इन्द्र, शिव, ब्रह्मा आदि सब देवता उसका गायन सुन कर उसी दिशा में अपनी गर्दन तथा चित्त झुका कर उसे सुनते हैं कि जिस दिशा से मन्द्र, मध्य व तार भेद से उस गायन की झनकार आती है और वे विद्वान् होते हुए भी उस गीत का भेद न समझकर मोहित होजाते हैं ॥१४॥१५॥

निजपदाब्जदलैर्ध्वजवज्रनीरजाङ्कुशविचित्रललामैः । व्रजभुवः शमयन् खुरतोदं वर्ष्मधुर्यगतिरीडितवेणुः ॥१६॥

व्रजति तेन वयं सविलासवीक्षणार्पितमनोभववेगाः । कुजगतिं गमिता न विदामः कश्मलेन कबरं वसनं वा ॥१७॥

ध्वज, बज्र, कमल व अंकुश के विचित्र चिह्न वाले अपने चरण-रूपी कमल पत्रों से व्रजभूमिकी खुर लगने की पीड़ा शान्त करते हुए गजकी भांति गमन करने वाले भगवान् जब वंशी की ध्वनि करते हुए चलते हैं, तब उनकी विलासमयी चित वन से काम-वेग-व्याप्त व वृक्ष की सी गति को पहुंचीं हुई, हम गोपियाँ ऐसी मोह-वश होजाती हैं कि हमें वस्त्र और केशों का भी भान नहीं रहता ॥

मणिधरः क्वचिदागणयन् गा मालया दयितगन्धतुलस्याः । प्रणयिनोऽनुचरस्य कदांसे प्रक्षिपन् भुजमगायत यत्र ॥१८॥

क्वणितवेणुरवञ्चितचित्ताः कृष्णमन्वसत कृष्णगृहिण्यः । गुणगणार्णमनुगत्य हरिण्यो गोपिका इव विमुक्तगृहाशाः ॥१९॥

मणियों की माला धारण किये, कभी उन्हीं मणियों से गौओं को गिनते प्रिय सुगंधि मयी तुलसी की माला पहिने हुए भगवान् जब अपने प्यारे अनुचर के कंधे पर बाँह रखकर गायनकरते हैं, तब बजती हुई बाँसुरी से मोहित चित्त वाले हरिणों की हरिणियां गोपियों की नाईं घर की आशा छोड़कर उन्हीं का अनुसरण करने लगतीहैं और पीछे नहीं हटतीं ॥१८॥१९॥

कुन्ददामकृतकौतुकवेषो गोपगोधनवृतो यमुनायाम् । नन्दसूनुरनघे तव वत्सो नर्मदः प्रणयिनां विजहार ॥२०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मन्दवायुरनुवात्यनुकूलं मानयन् मलयजस्पर्शेन ।
बन्दिनस्तमुपदेवगणा ये वाद्यगीतबलिभिःपरिवव्रुः

हे यशोदे ! उत्सव के लिये कुन्द-माल धारण किये हुए, ग्वालों तथा गौओं से घिरे हुए, प्रिय वर्ग को आनन्द देने वाले तुम्हारे पुत्र नन्दलालजी जिस समय यमुना में विहार करते हैं, तब अपने स्पर्श से भगवान् का सत्कार करता हुआ दक्षिणी पवन अनुकूल रीतिसे चलने लगता है और गंधर्व आदि के समूह वन्दीजन की भांति स्तुति, बाजे, गायन तथा भेंटों द्वारा भगवान् का सेवन करने लगते हैं ॥ २० ॥॥२१॥

वत्सलो व्रजगवां यदग्रो वन्द्यमानचरणः पथि वृद्धैः । कृत्स्नगोधनमुपोह्य दिनान्ते गीतवेणुरनुगेडितकीर्तिः ॥२२॥

उत्सवं श्रमरुचाऽपि दृशीनामुन्नयन् खुररजश्छुरितस्रक् । दित्सयैति सुहृदाशिष एष देवकीजठरभूरुडुराजः ॥२३॥

गोवर्धन धारण आदि कामोंसे व्रज तथा गौओं की रक्षा करने वाले, थकान के समय की कान्ति से भी नेत्रों को आनन्द देने वाले, खुरोंकी रज से भरी हुई माला पहिने हुए; भक्तों के मनोरथ पूर्ण करने के लिये देवकी के उदर से प्रकट होने वाले तथा जिनका अनुचर लोग गीत गाते हैं, ऐसे बाँसुरी बजाते हुए श्रीकृष्ण रूपी चन्द्र का जब सन्ध्या के समय गौओं को घेर कर व्रज में उदय होता है; तब मार्ग में ब्रह्मादि वृद्ध पुरुष उनके चरणों में प्रणाम करने लगतेहैं, इसलिये उन्हें आने में कुछ देर होजाती है ॥२२॥२३॥

मदविघूर्णितलोचन ईषन्मानदःस्वसुहृदां वनमाली । बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डं मण्डयन्कनक कुण्डललक्ष्म्या ॥२४॥

यदुपतिर्द्विरदराजविहारो यामिनीपतिरिवैष दिनान्ते । मुदितवत्क्र उपयाति दुरन्तं मोचन्व्रजगवां दिनतापम् ॥२५॥

कुछ मद से झूमते हुए नेत्रों वाले, अपने प्रिय वर्ग को मान देने वाले, कुछ पके हुए बेरके समान पांडु वर्ण मुख वाले, वनमाला धारण करने वाले, स्वर्ण-कुण्डल की कान्ति से कोमल गण्डस्थल को शोभायमान् करने वाले, गजगामी यह यादवपति श्रीकृष्ण भगवान् सन्ध्या के समय जब प्रफुल्ल मुख किये हुए व्रजमें पधारते हैं, तब वे हम व्रजमें बँधी हुई गौओं के समान गोपियों को चन्द्रमाकी भांति शान्त करते हैं, ऐसे भगवान् का विरह हम सबसे कैसे सहा जा सकता है ? ॥२४॥२५॥

श्रीशुक उवाच

एवं व्रजस्त्रियो राजन् कृष्णलीलानुगायतीः ।
रेमिरेऽहस्सु तच्चित्तास्तन्मनस्का महोदयाः ॥२६॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन्! इस प्रकार जिन का जीवन तथा मन केवल श्रीकृष्णही में था, ऐसी महा भाग्यशालनी गोपियां भगवान् की लीलाओं को गा-गाकर दिनमें भी प्रसन्न रहा करती थीं ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

छत्तीसवां अध्याय

(अरिष्टासुर वध)

श्रीशुक उवाच

अथ तर्ह्यागतो गोष्ठमरिष्टो वृषभासुरः ।
महीं महाककुत्कायः कम्पयन् खुरविक्षताम्॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–फिर अरिष्टासुर बैल का वेष बनाकर व्रजमें आया, जो बड़ी लाठवाले अपने मोटे शरीर सम्बन्धी खुरों से पृथ्वी को विदीर्ण करके कम्पित करने लगा ॥१॥

रम्भमाणः खरतरं पदा च विलिखन् महीम् ।
उद्यम्य पुच्छं वप्राणि विषाणाग्रेण चोद्धरन् ॥२॥
किञ्चित्किञ्चित् शकृन्मुञ्चन् मूत्रयन् स्तब्धलोचनः।
यस्य निर्ह्रादितेनाङ्ग निष्ठुरेण गवां नृणाम् ॥ ३ ॥
पतन्त्यकालतो गर्भाः स्रवन्ति स्म भयेन वै ।
निर्विशन्ति घना यस्य ककुद्यचलशङ्कया ॥ ४ ॥

वह अत्यन्त कर्कश शब्द से रँभाता, पाँव से पृथ्वी को खोदता हुआ, पूंछ को उठाकर सींगों के अगले भाग से तट को तोड़ता हुआ और कुछ २ मल-मूत्र त्यागता हुआ एवं आंखें स्तब्ध किये हुए आया, हे राजन् ! जिसका घोर शब्द सुनते ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गौओं तथा स्त्रियों के गर्भ असमय में ही गिरजाते थे और जिसकी लाठ पर उसे पहाड़ समझ कर बादल बैठ जाते थे ॥ २॥३॥४ ॥

तं तीक्ष्णशृङ्गमुद्वीक्ष्य गोप्यो गोपाश्च तत्रसुः ।
पशवो दुद्रुवुर्भीता राजन् सन्त्यज्य गोकुलम्॥ ५ ॥

उस पैने सींगों वाले बैलको देखकर गोप और गोपियां डरीं और हे राजन् ! पशु भी भयभीत हो कर गोकुल से भाग पड़े ॥५॥

कृष्ण कृष्णेति ते सर्वे गोविन्दं शरणं ययुः ।
भगवानपि तद्वीक्ष्य गोकुलं भयविद्रुतम् ॥ ६ ॥
मा भैष्टेति गिराऽश्वास्य वृषासुरमुपाह्वयत् ।
गोपालैः पशुभिर्मन्दत्रासितैः किमसत्तम ॥ ७ ॥

वे सभी "हे कृष्ण ! हे कृष्ण !" इस प्रकार से पुकारते हुए श्रीकृष्णजी की शरण में आये, तब भगवान् ने भी गोकुल को डरके मारे भागता हुआ देखकर धीरज दिया कि 'डरो मत' और वृषासुरको अपने निकट बुलाकर कहा कि हे मन्द ! हे नीच ! गोप तथा पशुओं को डराने से क्या होगा? ॥६।७॥

बलदर्पहाऽहं दुष्टानां त्वद्विधानां दुरात्मनाम् ।
इत्यास्फोट्याच्युतोऽरिष्टं तलशब्देन कोपयन् ॥८॥
सख्युरंसे भुजाभोगं प्रसार्यावस्थितो हरिः ।
सोऽप्येवं कोपितोऽरिष्टः खुरेणावनिमुल्लिखन् ।
उद्यत्पुच्छभ्रमन्मेघः क्रुद्धः कृष्णमुपाद्रवत् ॥ ९ ॥

तेरे जैसे दुष्ट चित्त वाले दुष्टों का बल तथा गर्व नाश करने वाला तो मैं हूँ, इस प्रकार कहकर भगवान् हरि ताल ठोंक कर और उसके शब्द से अरिष्ट असुर को क्रोधित करके अपने मित्रके गले में बाँह डाले हुए खड़े रहे, वह अरिष्टासुर भी इस प्रकार क्रोधित होकर खुर से पृथ्वी को खोदता तथा पूंछ उठाकर बादलों को बखेरता हुआ क्रोध करके कृष्णजी पर झपटा ॥८॥९॥

अग्रन्यस्तविषाणाग्रः स्तब्धासृग्लोचनोऽच्युतम् ।
कटाक्षिप्याऽद्रवत् तूर्णमिन्द्रमुक्तोऽशनिर्यथा॥१०॥

वह दैत्य सींग की नोंक आगे करके, रुधिर के समान लाल आँखों को स्तब्ध करके, कटाक्ष पूर्वक तिरछा देखकर, इन्द्र के हाथ से छूटे हुए वज्र की नाईं शीघ्रता से भगवान् के सामने दौड़ा ॥ १० ॥

गृहीत्वा शृङ्गयोस्तं च अष्टादश पदानि सः ।
प्रत्यपोवाह भगवान् गजं प्रति गजो यथा ॥११॥

भगवान् उसके सींग पकड़कर उसे अठारह क़दम पीछे हटा ले गये, जैसे हाथी अपने सामने के हाथी को हटा ले जाय ॥११॥

सोऽपविद्धो भगवता पुनरुत्थाय सत्वरः ।
आपतत् स्विन्नसर्वाङ्गो निःश्वसन् क्रोधमूर्छितः १२॥

भगवान् के द्वारा हटाकर पछाड़ा हुआ, सर्वाङ्ग पसीने से चूर वह दैत्य तत्काल ही फिरसे खड़ा होकर क्रोध में आकर हाँपता हुआ भगवान् पर झपटा ॥ १२ ॥

तमापतन्तं स निगृह्य शृङ्गयोः पदा समाक्रम्य निपात्य भूतले । निष्पीडयामास यथार्द्रमम्बरं कृत्वा विषाणेन जघान सोऽपतत् ॥१३॥

उस आते हुए दैत्य के दोनों सींग पकड़ कर पैरों से दबाकर और पृथ्वी पर पटक कर श्रीकृष्ण जी ने भीगे हुए वस्त्र की नाईं उसे निचोड़ डाला, और सींग उखाड़ कर उसी से प्रहार किया जिस से वह दैत्य गिर गया ॥१३॥

असृग्वमन् मूत्रशकृत् समुत्सृजन् क्षिपंश्च पादाननवस्थितेक्षणः । जगाम कृच्छ्रं निर्ऋतेरथ क्षयं पुष्पैः किरन्तो हरिमीडिरे सुराः ॥१४॥

वह दैत्य मुंह से लोहू डालता, मल-मूत्रकरता पाँव पछाड़ता तथा अस्थिर नेत्र होकर कष्ट पाता हुआ मर गया, उस समय देवगण फूल बरसाकर भगवान् की स्तुति करने लगे ॥१४॥

एवं ककुद्मिनं हत्वा स्तूयमानः स्वजातिभिः ।
विवेश गोष्ठं सबलो गोपीनां नयनोत्सवः ॥१५॥

इस प्रकार वृषासुरको मारकर, अपने जाति-बन्धुओं से वन्दित होते हुए गोपियों के नेत्रों को आनन्द-दाता वे श्रीकृष्णचन्द्रजी बलरामजी के साथ बन में पधारे ॥१५ ॥

अरिष्टे निहते दैत्ये कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ।
कंसायाथाह भगवान् नारदो देवदर्शनः ॥१६॥

जब अद्भुत चरित्र वाले श्रीकृष्णजी के हाथ से अरिष्टासुर मारा गया, तब देव दर्शन नारदजी ने कंस के पास आकर कहा कि ॥ १६ ॥

यशोदायाः सुतां कन्यां देवक्याः कृष्णमेव च ।
रामं च रोहिणीपुत्रं वसुदेवेन बिभ्यता ॥१७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न्यस्तौ स्वमित्रे नन्दे वै याभ्यां ते पुरुषा हताः ।
निशम्य तद्भोजपतिः कोपात् प्रचलितेन्द्रियः ॥१८॥

वह कन्या तो यशोदाजीकी पुत्री थी, श्रीकृष्ण देवकी के पुत्र हैं, बलरामजी रोहिणी के पुत्र हैं, वसुदेवजी ने डरकर उन दोनों को नन्दजीके पास रख छोड़ा है, ज्यों ही कंस ने यह बात सुनी, त्यों ही उसकी इन्द्रियाँ क्षोभित हो उठीं ॥१७॥१७॥

निशातमसिमादत्त वसुदेवजिघांसया ।
निवारितो नारदेन तत्सुतौ मृत्युमात्मनः ॥१९॥
ज्ञात्वा लोहमयैः पाशैर्बबन्ध सह भार्यया ।
प्रतियाते तु देवर्षौ कंस आभाष्य केशिनम् ॥२०॥

उसने वसुदेवजी को मारने की इच्छासे तेज़ तलवार हाथ में ली, तब नारदजीने कंस को यह सम्मति देकर मारने से रोका कि जो तू वसुदेव को मार डालेगा तो उसके पुत्र भाग जाँयगे, इस लिये इसे अभी न मारना चाहिये, तब कंस ने वसुदेवजीके पुत्रोंको अपनी मृत्यु समझकर देवकी सहित वसुदेवजी के पैरों में बेड़ियाँ डाल कर उन को क़ैद कर दिया और नारदजीके जाने पर उसने केशीनामक दैत्यको बुलाकर वह हाल बतलाया ॥

प्रेषयामास हन्येतां भवता रामकेशवौ ।
ततो मुष्टिकचाणूरशलतोशलकादिकान् ॥२१॥
अमात्यान् हस्तिपांश्चैव समाहूयाह भोजराट् ।
भो भो निशम्यतामेतद् वीरचाणूरमुष्टिकाः ॥२२॥

और कहा कि तू राम-कृष्णको मारडाल, ऐसी आज्ञा देकर उसे भेजा, फिर मुष्टिक, चाणूर, शल, तोशलक आदि मल्ल मन्त्री व महावतों को बुलाकर कंस ने कहा कि हे वीर ! हे चाणूर ! हे मुष्टिक ! यह बात सुनो ॥२१॥२२॥

नन्दव्रजे किलासाते सुतावानकदुन्दुभेः ।
रामकृष्णौ ततो मह्यं मृत्युः किल निदर्शितः ॥२३॥

नन्दराय के व्रज में वसुदेव के पुत्र राम-कृष्ण हैं, उनके द्वारा मेरी मृत्यु है, ऐसा ब्रह्माजी ने बतलाया है ॥ २३ ॥

भवद्भ्यामिह संप्राप्तौ हन्येतां मल्ललीलया ।
मञ्चाः क्रियन्तां विविधा मल्लरङ्गपरिश्रिताः ॥२४॥

इसलिये जब वे यहाँ आ जाँय तब तुम मल्ल युद्धसे उन्हें मार डालना, मल्ल-स्थल के चारों ओर अनेक प्रकार के मञ्च बनवाओ ॥२४॥

पौरा जानपदाः सर्वे पश्यन्तु स्वैरसंयुगम् ।
महामात्र त्वया भद्र रङ्गद्वार्युपनीयताम् ॥२५॥

पुरवासी तथा देशवासी आकर इस मल्ल-युद्ध को देखें, हे भद्र ! हे महावत ! तू कुवलयापीड़ हाथी को मल्ल-भूमि के द्वार पर ले जाना और उस के द्वारा मेरे शत्रुओं को मार डालना ॥२५॥

द्विपः कुवलयापीडो जहि तेन ममाहितौ ।
आरभ्यतां धनुर्यागश्चतुर्दश्यां यथाविधि ।
विशसन्तु पशून् मेध्यान् भूतराजाय मीढुषे ॥२६॥

चतुर्दशी को विधि-पूर्वक धनुष-यज्ञ प्रारम्भ करो और मनोरथ पूर्ण करने वाले महादेवजी के लिये पवित्र पशु अर्पण करो ॥२६॥

इत्याज्ञाप्यार्थतन्त्रज्ञ आहूय यदुपुङ्गवम् ।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं ततोऽक्रूरमुवाच ह ॥२७॥

केवल अर्थ के तत्व को जानने वाला कंस इस प्रकार आज्ञा देकर, यदु श्रेष्ठ अक्रूरजी को बुलाकर अपने हाथसे उनका हाथ पकड़ कर बोला कि२७॥

भो भो दानपते मह्यं क्रियतां मैत्रमादृतः ।
नान्यस्त्वत्तो हिततमो विद्यते भोजवृष्णिषु ॥२८॥

हे दीनानाथ ! मेरे लिये जैसा कर्त्तव्य मित्र के प्रति उचित हो वैसा कीजिये, क्योंकि भोज और वृष्णि वंशियों में आपके समान मेरा आदर-पात्र तथा हितकारी नहीं है ॥ २८ ॥

अतस्त्वामाश्रितः सौम्य कार्यगौरवसाधनम् ।
यथेन्द्रो विष्णुमाश्रित्य स्वार्थमध्यगमद्विभुः ॥२९॥

इसलिये हे अक्रूरजी ! जैसे प्रभु इन्द्र ने विष्णु की शरण लेकर अपना स्वार्थ सिद्ध किया था, वैसे मैंने भी आप महान् कर्मदर्शी का शरण लिया है ॥

गच्छ नन्दव्रजं तत्र सुतावानकदुन्दुभेः ।
आसाते ताविहानेन रथेनानय मा चिरम् ॥३०॥

आप नन्दरायजी के व्रज में पधारिये, वहाँ वसुदेव के पुत्र रहते हैं, उन्हें इस रथ में बिठाकर जल्दी से ले आइये ॥ ३० ॥

निसृष्टः किल मे मृत्युर्देवैर्वैकुण्ठसंश्रयैः ।
तावानय समं गोपैर्नन्दाद्यैः साभ्युपायनैः ॥३१॥

विष्णु के आश्रय में रहनेवाले देवताओंने उन के हाथसे मेरी मृत्यु बतलायी है, इसलिये भेंट सहित नन्द आदि गोपों के साथ उन्हें ले आइये ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घातयिष्य इहानीतौ कालकल्पेन हस्तिना ।
यदि मुक्तौ ततो मल्लैर्घातये वैद्युतोपमैः ॥३२॥

यहाँ आने पर मैं उन्हें काल के समान हाथी द्वारा मरवा डालूँगा, यदि वे उससे बचभी जाँयगे तो बिजली के समान मल्लों द्वारा मरवा डालूंगा ॥

तयोर्निहतयोस्तप्तान् वसुदेवपुरोगमान् ।
तद्बन्धून् निहनिष्यामि वृष्णिभोजदशार्हकान्३३

उनके मरने के पश्चात वसुदेव आदि उनके बन्धु वृष्णि, भोज दाशार्हों को मारूँगा ॥३३॥

उग्रसेनं च पितरं स्थविरं राज्यकामुकम् ।
तद्भ्रातरं देवकं च ये चान्ये विद्विषो मम ॥३४॥

मेरा पिता उग्रसेन जो कि वृद्ध होने पर भी राज्य की इच्छा करता है, उसे उसके भाई देवक तथा दूसरे जो मेरे शत्रुहैं मैं उन सबको मारूँगा ॥

ततश्चैषा मही मित्र भवित्री नष्टकण्टका ।
जरासन्धो मम गुरुर्द्विविदो दयितः सखा ॥३५॥

हे मित्र ! फिर यह पृथ्वी (मेरे लिये) निष्कंटक होजायगी, जरासंध तो मेरा श्वसुर ही है और द्विविद मेरा प्रिय मित्र है ॥३५॥

शम्बरो नरको बाणो मय्येव कृतसौहृदाः ।
तैरहं सुरपक्षीयान् हत्वा भोक्ष्ये महीं नृपान्॥३६॥

शंबर, नरक और बाण भी मेरे परम मित्र हैं, इनके द्वारा देवताओं के पक्षवाले राजाओंको मार कर पृथ्वी का राज्य करूँगा ॥३६॥

एतज्ज्ञात्वाऽऽनय क्षिप्रं रामकृष्णाविहार्भकौ ।
धनुर्मखनिरीक्षार्थं द्रष्टुं यदुपुरश्रियम् ॥३७॥

यह जानकर बाल राम-कृष्ण को शीघ्र ही यहाँ ले आओ, और उनसे धनुष-यज्ञ तथा मथुरानगरी देखने का बहाना कर देना ॥३७॥

अक्रूर उवाच

राजन मनीषितं सम्यक् तव स्वावद्यमार्जनम् ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समं कुर्याद्दैवं हि फलसाधनम्॥३८

अक्रूरजी बोले–हे राजन् ! आपने ठीक विचार किया है कि जिससे आपकी मृत्यु टलजाय, परन्तु इतना आग्रह न रखकर कार्यकी सिद्धि-असिद्धियों में सम भाव रहना चाहिये, क्योंकि कार्यों की सफलता दैवाधीन है ॥३८॥

मनोरथान् करोत्युच्चैर्जनो दैवहतानपि ।
युज्यते हर्षशोकाभ्यां तथाप्याज्ञां करोमि ते॥३९॥

मनुष्य कई प्रकारके ऊँचे संकल्प किया करता है परन्तु दैव जिनको नाश करना चाहता है उनके लिये हर्ष विषाद अवश्य ही होता है, फिर भी मैं आपकी आज्ञा पालन करूँगा ॥३९॥

एवमादिश्य चाक्रूरं मन्त्रिणश्च विसृज्य सः ।
प्रविवेश गृहं कंसस्तथाक्रूरः स्वमालयम् ॥४०॥

वह कंस अक्रूरजीको ऐसी आज्ञा देकर,मंत्रियों को बिदा करके अपने घरमें चला गया और अक्रूरजी अपने घर चले आये ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

सैंतीसवां अध्याय

(व्योमासुर वध)

श्रीशुक उवाच

केशी तु कंसप्रहितः खुरैर्महीं महाहयो निर्जरयन् मनोजवः । सटावधूताऽभ्रविमानसंकुलं कुर्वन् नभो हेषितभीषिताखिलः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–मनके समान वेग वाला कंस का भेजा हुआ केशी दैत्य गोकुल में आया, वह टाप से पृथ्वी को विदीर्ण करता, बागके बालों द्वारा आकाश में बिखरे हुए बादल तथा विमानों को चलायमान करता और हिनहिनाहट से सब को भयभीत करता था ॥ १ ॥

[विशालनेत्रो विकटास्यकोटरो बृहद्गलो नीलमहाघनोपमः । दुराशयः कंसहितं चिकीर्षुर्व्रजं स नन्दस्य जगाम कम्पयन् ॥१॥]

(जिसकी बड़ी आँखें, गुफा के समान विकराल मुख और बड़ा गला है, ऐसा नील महाघन के समान वह दुष्ट दैत्य कंस का हित करना ठान कर नन्दरायजी के व्रज को कम्पित करता हुआ वहाँ गया ॥ १ ॥)

तं त्रासयन्तं भगवान् स्वगोकुलं तद्धेषितैर्बाल-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विधूर्णिताम्बुदम् । आत्मानमाजौ मृगयन्तम-ग्रणीरुपाह्वयत् सव्यनदन्मृगेन्द्रवत् ॥ २ ॥

हिनहिनाहटसे अपने गोकुलको भयभीत करते हुए, पूंछ से बादलों को छिन्न-भिन्न करतेहुए और युद्ध के लिये अपने (श्रीकृष्ण) को ढूंढते हुए दैत्य को भगवान् ने आगे बढ़कर बुलाया और केशी भी उनके वचन सुनकर सिंहके समान गरजने लगा ॥

स तं निशम्याभिमुखो मुखेन खं पिबन्निवा-भ्यद्रवदत्यमर्षणः । जघान पद्भ्यामरविन्दलोचनं दुरासदश्चण्डजवो दुरत्ययः ॥ ३ ॥

जो दूसरे के मारने से न मर सके, दूसरों के द्वारा हराया न जासके, ऐसा वह बड़ा दौड़नेवाला घोड़ा भगवान् को देखकर, महान् क्रोधित होकर और ऐसा मुंह फाड़ कर उनके सामने आया, जैसे आकाश को पी जायगा और पिछले पैरों से उन्हें दुलत्ती मारने लगा ॥ ३ ॥

तद्वञ्चयित्वा तमधोक्षजो रुषा प्रगृह्य दोर्भ्यां परिविध्य पादयोः । सावज्ञमुत्सृज्य धनुःशतान्तरे यथोरगं तार्क्ष्यसुतो व्यवस्थितः ॥ ४ ॥

उस दुलत्ती को बचाकर भगवान् क्रोध करके उसके दोनों पैर दोनों हाथों से पकड़ कर, उसे घुमाने लगे और अवज्ञा पूर्वक सौ धनुष की दूरी पर फेंक कर इस प्रकार खड़े रहे, जैसे गरुड़ सर्प को फेंक कर खड़ा रहता है ॥४॥

संलब्धसंज्ञः पुनरुत्थितो रुषा व्यादाय केशी तरसाऽपतद्धरिम् । सोऽप्यस्य वक्त्रे भुजमुत्तरं स्मयन् प्रवेशयामास यथोरगं विले ॥ ५ ॥

वह चैतन्य होकर फिर उठ खड़ा हुआ और क्रोधपूर्वक मुंह फाड़कर तत्काल भगवान्के सामने आया, भगवान् ने अपना बायाँ हाथ हँसते-हँसते उसके बांबी रूपी मुंह में घुसा दिया ॥५॥

दन्ता निपेतुर्भगवद्भुजस्पृशस्ते केशिनस्तप्तमय-स्पृशो यथा । बाहुश्च तद्देहगतो महात्मनो यथाऽऽमयः संववृधे उपेक्षितः ॥ ६ ॥

भगवान् की भुजाका स्पर्श होतेही उसके दांत ऐसे गिर गये, जैसे गरम लोहे के स्पर्श से गिर जाते हैं, श्रीकृष्णजी का उसकी देह में प्रविष्ट हाथ इस प्रकार बढ़ने लगा जैसे असावधानी करने से रोग बढ़ता है ॥ ६ ॥

समेधमानेन स कृष्णबाहुना निरुद्धवायुश्चरणांश्च विक्षिपन् । प्रस्विन्नगात्रः परिवृत्तलोचनः पपात लेण्डं व्यसृजत् क्षितौ व्यसुः ॥ ७ ॥

श्रीकृष्णजी की बढ़ती हुई भुजा से उसका श्वांस रुक गया, शरीर में पसीना आगया, आँखें निकल पड़ीं और वह दैत्य पैर छटपटाता तथा लीद करताहुआ निष्प्राण होकर पृथ्वीपर गिरपड़ा।

तद्देहतः कर्कटिकाफलोपमाद् व्यसोरपाकृष्य भुजं महाभुजः । अविस्मितोऽयत्नहतारिरुत्स्मयैः प्रसूनवर्षैर्दिविषद्भिरीडितः ॥ ८ ॥

महा बाहु भगवान् ने उस मृतक दैत्य के पक कर फटी हुई ककड़ी (फूट) के समान शरीर से अपनी बाँह खींचली, यद्यपि भगवान्ने उसे सहज ही में मार डाला, फिर भी उन्हें कुछ गर्व न हुआ, उस समय देवताओंने चकित होकर फूल बरसाये और उनकी स्तुति की ॥८॥

देवर्षिरुपसंगम्य भागवतप्रवरो नृप । कृष्णमक्लिष्टकर्माणं रहस्येतदभाषत ॥ ९ ॥

हे राजन् ! उस समय भगवद्भक्तोंमें परम श्रेष्ठ नारदजीने एकान्तमें आकर क्लेश-रहित कर्म करने वाले भगवान् से कहा कि ॥ ९ ॥

कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन् योगेश जगदीश्वर । वासुदेवाखिलावास सात्त्वतां प्रवर प्रभो ॥१०॥

हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे प्रमाण रहित स्वरूप वाले ! हे योगेश ! हे जगदीश्वर ! हे वासुदेव ! हे अखिल निवास ! हे यदुश्रेष्ठ ! हे प्रभु ! ॥१०॥

त्वमात्मा सर्वभूतानामेको ज्योतिरिवैधसाम् । गूढो गुहाशयः साक्षी महापुरुष ईश्वरः ॥११॥

आप सब जीवों के अन्तर्यामी हैं, जैसे अग्नि काठ में प्राप्त रहता है, वैसे आप भी सबके भीतर गुप्त रहते हैं, आप बुद्धि के साक्षी और महा पुरुष हैं, इसलिये जीव आपके स्वरूप को नहीं जानता, आप ही ईश्वर हैं ॥११॥

आत्मनाऽऽत्माश्रयः पूर्वं मायया ससृजे गुणान् । तैरिदं सत्यसङ्कल्पः सृजस्यत्स्यवसीश्वरः ॥१२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आप स्वतन्त्र हैं, आपको किसी साधन की आवश्यकता नहीं है, आप सत्य संकल्पवाले ईश्वर अपनी माया शक्ति के द्वारा ही गुणों को रचकर उनके द्वारा संसार की रचना करतेहो, उसे पालते तथा संहार करते हो ॥१२॥

त्वंच भूधरभूतानां दैत्यप्रमथरक्षसाम् ।
अवतीर्णो विनाशाय सेतूनां रक्षणाय च ॥१३॥

वही आप राजाओं के रूप से प्रकट हुए दैत्य, प्रमथ और राक्षसों के नाश के लिये, तथा धर्मकी मर्यादा रखनेके लिये अवतार धरकर प्रकट हुएहो॥

दिष्ट्या ते निहतो दैत्यो लीलयायं हयाकृतिः ।
यस्य हेषितसंत्रस्तास्त्यजन्त्यनिमिषा दिवम्॥१४॥

यह बड़ाही अच्छा हुआ कि आपने इस अश्व रूप दैत्यको लीला से मार डाला, जिसकी केवल हिनहिनाहट सुनकर ही देवगण भय के मारे स्वर्ग छोड़कर भाग जाते थे ॥१४॥

चाणूरं मुष्टिकं चैव मल्लानन्यांश्च हस्तिनम् ।
कंसं च निहतं द्रक्ष्ये परश्वोऽहनि ते विभो ॥१५॥

हे विष्णु ! परसों चाणूर; मुष्टिक व दूसरे मल्ल, कुवलयापीड़ हाथी और कंस इन सबको आपके हाथ से मरा हुआ देखूंगा ॥१५॥

तस्यानु शंखयवनमुराणां नरकस्य च ।
पारिजातापहरणमिन्द्रस्य च पराजयम् ॥१६॥

उद्वाहं वीरकन्यानां वीर्यशुल्कादिलक्षणम् ।
नृगस्य मोक्षणं पापाद् द्वारकायां जगत्पते ॥१७॥

स्यमन्तकस्य च मणेरादानं सह भार्यया ।
मृतपुत्रप्रदानं च ब्राह्मणस्य स्वधामतः ॥१८॥

पौण्ड्रकस्य वधं पश्चात् काशिपुर्याश्च दीपनम् ।
दन्तवक्त्रस्य निधनं चैद्यस्य च महाक्रतौ ॥१९॥

यानि चान्यानि वीर्याणि द्वारकामावसन् भवान् ।
कर्ता द्रक्ष्याम्यहं तानि गेयानि कविभिर्भुवि॥२०॥

इसके पीछे शंखासुर, कालयवन, मुर और नरकासुर इन सबका बध, कल्पवृक्ष का हरण,इन्द्र का पराजय, जो पराक्रम रूपी मूल्य ही से ली जा सकती थीं–ऐसी राज-कन्याओं के साथ विवाह और हे जगन्नाथ ! द्वारका में नृगराज का पाप से मोक्ष, फिर जांबवन्ती के सहित स्यमन्तक मणि का लाना, यमराजके लोकसे गुरु-पुत्र लाना, फिर पौंड्रक का बध, काशी-दहन, दन्तवक्र का मरण व राजसूय यज्ञ में शिशुपाल का वध, तथा और भी द्वारकामें बैठे हुए आप जो-जो चरित्र करेंगे मैं उन सबको देखूंगा कि जिनको भूतल पर कवि जन गाया करेंगे ॥१६॥१७॥१८॥१९॥२०॥

अथ ते कालरूपस्य क्षपयिष्णोरमुष्य वै ।
अक्षौहिणीनां निधनं द्रक्ष्याम्यर्जुनसारथेः ॥२१॥

फिर काल-मूर्त्ति, भूमि का भार उतारने वाले आप अर्जुन के सारथी बनकर अनेक अक्षौहिणी संख्या वाली सेना का संहार करायेंगे, मैं उसको भी देखूँगा ॥२१॥

विशुद्धविज्ञानघनं स्वसंस्थया समाप्तसर्वार्थममोघवाञ्छितम् । स्वतेजसा नित्यनिवृत्तमायया गुणप्रवाहं भगवन्तमीमहि ॥२२॥

केवल ज्ञान-मूर्त्ति, अपनी पूर्णानन्द स्थिति से पूर्ण काम सत्य सङ्कल्प और अपनी चैतन्य शक्ति तथा अपने तेज के कारण नित्य माया से निवृत्त छः प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त आपकी मैं शरणहूँ ॥

त्वामीश्वरं स्वाश्रयमात्ममायया विनिर्मिताशेषविशेषकल्पनम् । क्रीडार्थमद्याऽऽत्तमनुष्यविग्रहं नतोऽस्मि धुर्यं यदुवृष्णिसात्वताम् ॥२३॥

ईश्वर, स्वतन्त्र, अपनी माया से सब प्रकार के तत्वों की कल्पना करने वाले, क्रीड़ा के लिये इस समय मनुष्य देह धारण करने वाले और यदु वृष्णि तथा सात्वतों में अग्रणी आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२३॥

श्रीशुक उवाच

एवं यदुपतिं कृष्णं भागवतप्रवरो मुनिः ।
प्रणिपत्याभ्यनुज्ञातो ययौ तद्दर्शनोत्सवः ॥२४॥

श्रीशुकदेवजी बोले–इस प्रकार भगवद्भक्तों में श्रेष्ठ नारदजी श्रीभगवान् के दर्शनों से आनन्दित होकर उन यादव-पति श्रीकृष्णजी को प्रणाम करके आज्ञा लेकर विदा हुए ॥२४॥

भगवानपि गोविन्दो हत्वा केशिनमाहवे ।
पशूनपालयत् पालैः प्रीतैर्व्रजसुखावहः ॥२५॥

भगवान् गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्रजी भी युद्ध में केशी दैत्य को मार कर, व्रज को सुखी करते हुए प्रसन्न ग्वालों के साथ पशुओंको पालने लगे ॥२५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एकदा ते पशून् पालाश्चारयन्तोऽद्रिसानुषु ।
चक्रुर्निलायनक्रीडाश्चोरपालादेशतः ॥२६॥

एक वार वे ग्वाल पहाड़की चोटियोंपर गौओं को चराते हुए, चोर तथा पालक का मिस करके छिपने छिपाने का खेल करने लगे ॥२६॥

तत्रासन् कतिचिच्चौराः पालाश्च कतिचिन्नृप ।
मेषायिताश्च तत्रैके विजहुरकुतोभयाः ॥२७॥

हे राजन् ! उस खेलमें कई एक तो चोर बने, कई एक रखवाले बने और कई एक भेड़ बने, चोर वेषधारी ग्वाल भेड़ वेषधारी ग्वालों को निर्भय हो कर ले जाने लगे ॥ २७ ॥

मयपुत्रो महामायो व्योमो गोपालवेषधृक् ।
मेषायितानपोवाह प्रायश्चोरायितो बहून् ॥२८॥

इतने में महा मायावीमय दैत्यका पुत्र व्योमासुर दैत्य गोपाल का वेष रखकर चोर बनकर; मेष बने हुए बहुतसे गोपों को ले जाने लगा ॥२८॥

गिरिदर्यां विनिक्षिप्य नीतं नीतं महासुरः ।
शिलया पिदधे द्वारं चतुःपञ्चावशेषिताः ॥२९॥

वह महान् दैत्य उनको ले-लेकर एक पर्वत की गुफामें डालकर बन्द कर आता था, इस प्रकार केवल चार-पाँच ग्वाल शेष रह गये ॥ २९ ॥

तस्य तत् कर्म विज्ञाय कृष्णः शरणदः सताम् ।
गोपान् नयन्तं जग्राह वृकं हरिरिवौजसा ॥३०॥

तब सज्जनों के शरण देने वाले भगवान्ने उस की करतूति देखकर गोपों को लेजाते हुए उसे पकड़ लिया, जैसे सिंह पराक्रम करके बाघ को पकड़ लेता है ॥ ३० ॥

स निजं रूपमास्थाय गिरीन्द्रसदृशं बली ।
इच्छन् विमोक्तुमात्मानं नाशक्नोद्ग्रहणातुरः ॥३१॥

उस बलवान् दैत्य ने पहाड़ के समान अपना रूप बनाया और अपने प्राण छुड़ाने के लिये बहुत ही प्रयत्न किया, परन्तु पकड़े जाने से आतुर हो गया और बचनेकी सामर्थ्य न कर सका ॥३१॥

तं निगृह्याच्युतो दोर्भ्यां पातयित्वा महीतले ।
पश्यतां दिवि देवानां पशुमारममारयत् ॥३२॥

भगवान् ने उसे दोनों हाथोंसे पकड़कर पृथ्वी पर पटक दिया और आकाशमें खड़े हुए देवताओं के देखते २ गला घोटकर पशुकी नाईं मार डाला ॥

गुहापिधानं निर्भिद्य गोपान् निःसार्य कृच्छ्रतः ।
स्तूयमानः सुरैर्गोपैः प्रविवेश स्वगोकुलम् ॥३३॥

फिर गुफाकी शिला हटाकर गोपों को कष्ट से बाहर निकाला और देवताओं तथा गोपों से स्तुति करवाते हुए भगवान् अपने गोकुलमें पधारे ॥३३॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

अड़तीसवां अध्याय

(अक्रूरजी को श्रीकृष्ण-दर्शन होना)

श्रीशुक उवाच

अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः ।
उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—परम बुद्धिमान् अक्रूरजी उस रात मथुरा में रहकर, प्रातःकाल होते ही रथ में बैठकर, नन्दरायजी के गोकुल को पधारे ॥१॥

गच्छन् पथि महाभागो भगवत्यम्बुजेक्षणे ।
भक्तिं परामुपगतएव मेतदचिन्तयत् ॥ २ ॥

वे महाभाग मार्ग में जाते हुए कमल नयन भगवान् की परम भक्ति प्राप्त होने के कारण मनमें ऐसा विचार करने लगे ॥२॥

किं मयाचरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः ।
किं वाऽथाऽप्यर्हते दत्तं यद्द्रक्ष्याम्यद्य केशवम् ॥३॥

कि मैंने ऐसा कौनसा मङ्गल कर्म किया है या कौनसा महान् तप किया है ? या सत्पात्र को क्या दान दिया है कि जिसके प्रभाव से आज मुझे श्री कृष्ण भगवान् के दर्शन होंगे ? ॥३॥

ममैतद्दुर्लभं मन्य उत्तमश्लोकदर्शनम् ।
विषयात्मनो यथा ब्रह्मकीर्तनं शूद्रजन्मनः ॥ ४ ॥

मैं यह जानताहूँ कि मुझ विषय-लिप्त को भगवान् के दर्शन होना वैसेही महा दुर्लभहै, जैसे शूद्र को वेद का उच्चारण करना ॥४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नैवं ममाधमस्यापि स्यादेवाच्युतदर्शनम् ।
ह्रियमाणः कालनद्या क्वचित् तरति कश्चन ॥ ५ ॥

परन्तु ऐसा भी नहीं, मुझ नीच को भी भगवान्के दर्शन होसकते हैं, क्योंकि जैसे नदीमें बहते हुए तिनकों में कभी कोई तिनका किनारे पर भी लग जाता है, वैसे ही कर्म-बन्धन के कारण काल के द्वारा ले जाये हुए जीवों में से भी कभी कोई जीव मोक्ष पा जाता है ॥ ५ ॥

ममाद्यामङ्गलं नष्टं फलवांश्चैव मे भवः ।
यन्नमस्ये भगवतो योगिध्येयाङ्घ्रिपङ्कजम् ॥ ६ ॥

आज मेरा अमङ्गल नष्ट होगया, आज मेरा जन्म सफल होगया, जो कि योगेश्वरों के ध्यान करने योग्य भगवान्के चरणारविन्दोंमें नमस्कारकरूँगा।

कंसो बताद्याऽकृत मेऽत्यनुग्रहं द्रक्ष्येऽङ्घ्रिपद्मं प्रहितोऽमुना हरेः । कृतावतारस्य दुरत्ययं तमः पूर्वेऽतरन् यन्नखमण्डलत्विषा ॥ ७ ॥

अहो ! आज कंसने मुझपर बड़ी कृपा की,कि जिसके भेजने से आज मुझे अवतार धारण किये हुए भगवान् हरि के चरणों का दर्शन हो सकेगा, जिन प्रभु के नख-मंडल की कान्ति से अम्बरीष आदि भक्तजन सब दुस्तर संसारसे पार होगये।७।

यदर्चितं ब्रह्मभवादिभिः सुरैः श्रिया च देव्या मुनिभिः ससात्वतैः । गोचारणायानुचरैश्चरद्वने यद्गोपिकानां कुचकुंकुमाङ्कितम् ॥ ८ ॥

जिन चरणों की ब्रह्मा, महादेव आदि देवता, देवी लक्ष्मी तथा भक्तों सहित मुनि जन पूजाकरते हैं, जो अपनी दयालुता के कारण अनुचरोंके साथ गौओं को चराने के लिये बनमें विचरते हैं और जो केवल प्रेम ही से मिल सकते हैं तथा जो गोपियों के कुचों की केशर से रंजित हैं ॥ ८ ॥

द्रक्ष्यामि नूनं सुकपोलनासिकं स्मितावलोकारुणकञ्जलोचनम् । मुखं मुकुन्दस्य गुडालकावृतं प्रदक्षिणं मे प्रचरन्तिवै मृगाः ॥ ९ ॥

हरिण मेरे दायें आरहे हैं, इससे जान पड़ताहै कि मुझे आज अवश्य ही सुन्दर नासिका तथा कपोल वाले, मन्द हास्य सहित चितवन वाले, कमल के समान अरुण नेत्र वाले तथा घुंघराले बालोंसे आच्छादित भगवान्के मुखका दर्शनहोगा।

अप्यद्य विष्णोर्मनुजत्वमीयुषो भारावताराय भुवो निजेच्छया । लावण्यधाम्नो भवितोपलम्भनं मह्यं न नः स्यात् फलमञ्जसा दृशः ॥ १० ॥

यदि अपनी ही इच्छा से भूमिका भार उतारने के लिये नर-तनधारी, सुन्दरता के घर, विष्णु भगवान् का मुझे दर्शन हो, तो सहज ही में मेरे नेत्र सफल हो जाना असंभव नहीं है ॥ १० ॥

य ईक्षिताऽहं रहितोऽप्यसत्सतोः स्वतेजसापास्ततमोभिदाभ्रमः । स्वमायया ऽत्मन् रचितैस्तदीक्षया प्राणाक्षधीभिः सदनेष्वभीयते ॥ ११ ॥

जो प्रभु अपनी दृष्टिमात्र ही से कार्यों तथा कारणों के कर्त्ता होते हुए भी अहङ्कार रहित और अपने नित्य स्वरूप के साक्षात्कारके कारण अज्ञान भेद तथा भ्रम से रहित भी हैं, तथापि स्वाधीन माया से अपनी ही दृष्टिके प्रभाव से प्राण, इन्द्रिय व बुद्धि के साथ अपने ही में रचे हुए जीवों को ऐसे जान पड़ते हैं—जैसे वृन्दावन के वृक्षों और गोपियों के घरों में लीलासे कर्म करते हुए आसक्त होगये हों ॥ ११ ॥

यस्याखिलाऽमीवहभिः सुमङ्गलैर्वाचो विमिश्रा गुणकर्मजन्मभिः । प्राणन्ति शुम्भन्ति पुनन्ति वै जगद् यास्तद्विरक्ताः शवशोभना मताः ॥ १२ ॥

जिन परमात्मा के सम्बन्धी लोगोंके पाप नाशकरने वाले, महामङ्गलरूप गुण, जन्म और कर्मोंको करने वाली वाणी जगत् को जीवित करती; शोभा देती तथा पवित्र करतीहै, तथा उनके गुण न कहनेवाली वाणी अलंकार आदि युक्त होकर भी वस्त्र आदिसे सुसज्जित शवके समान मानी जाती है ॥ १२ ॥

स चावतीर्णः किल सात्वतान्वये स्वसेतुपालामरवर्यशर्मकृत् । यशो वितन्वत् व्रज आस्त ईश्वरो गायन्ति देवा यदशेषमङ्गलम् ॥ १३ ॥

अपनेही द्वारा बांधी हुई वर्णाश्रमकी मर्यादाओं के पालन करने वाले वे भगवान् लोकपालों को सुख देने के लिये यादव-कुल में अवतार धारण कर, यश को फैलाते हुए, व्रजमें विराज रहेहैं,जिन के सर्व कल्याण रूप यश को देवता लोग गाया करते हैं ॥ १३ ॥

तं त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं त्रैलोक्यकान्तं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दृशिमन्महोत्सवम् । रूपं दधानं श्रिय ईप्सितास्पदं द्रक्ष्ये ममाऽऽसन्न् षसः सुदर्शनाः ॥१४॥

महात्मा पुरुषों के गुरु व गति-रूप, त्रैलोक में सर्वोत्तम नयन धारियों को परम आनन्द देनेवाले, लक्ष्मीजी के इच्छित आश्रय रूप ऐसे स्वरूप को धारण किये हुए भगवान्का आज मुझे दर्शन होगा क्योंकि प्रातःकालही से मुझे शुभ शकुन होरहे हैं॥

अथावरूढः सपदीशयो रथात् प्रधानपुंसोश्चरणं स्वलब्धये । धिया धृतं योगिभिरप्यहं ध्रुवं नमस्य आभ्यां च सखीन् वनौकसः ॥१५॥

मैं दर्शन होते ही तत्काल रथसे उतरकर, उन प्रधान पुरुष श्रीराम-कृष्ण के चरणों में प्रणाम करूँगा, कि योगी जन भी अपने स्वरूप की प्राप्ति के लिये जिनका ध्यान किया करते हैं, उनके साथ जो ग्वाल-बाल होंगे मैं उन्हें भी प्रणाम करूँगा ॥

अप्यङ्घ्रिमूले पतितस्यमे विभुः शिरस्यधास्यन्निजहस्तपङ्कजम् । दत्ताभयं कालभुजङ्गरंहसा प्रोद्वेजितानां शरणैषिणां नृणाम् ॥१६॥

जब मैं उनके पाद-मूल में पड़ूंगा तब समर्थ श्री कृष्णचन्द्रजी मेरे शिर पर अपना वह हाथ रक्खेंगे कि जो काल रूप सर्प के वेग से भयभीत शरण चाहने वाले लोगों को अभय करने वाला है ॥१६॥

समर्हणं यत्र निधाय कौशिकस्तथा बलिश्चाप जगत्त्रयेन्द्रताम् । यद्वा विहारे व्रजयोषितां श्रमं स्पर्शेन सौगन्धिकगन्ध्यपानुदत् ॥१७॥

जिस कर-कमल में इन्द्र तथा बलि पूजन रूपी दान अर्पण करके त्रिलोकी के स्वामी होगये और सौगन्धिक नामक कमल के समान सुगन्धि वाले जिस कर कमल ने रास क्रीड़ा में अपने स्पर्श के द्वारा व्रजाङ्गनाओं के श्रम को दूर किया ॥१७॥

न मय्युपैष्यत्यरिबुद्धिमच्युतः कंसस्य दूतः प्रहितोऽपि विश्वदृक् । योऽन्तर्बहिश्चेतस एतदीहितं क्षेत्रज्ञ ईक्षत्यमलेन चक्षुषा ॥१८॥

यद्यपि मैं कंस का भेजा हुआ दूत हूँ, फिर भी सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी और नित्य ज्ञान होनेकेकारण भगवान् मुझे शत्रु का पक्षपाती न जानेंगे, क्योंकि मैं ऊपर से कंस का, परन्तु हृदय से श्रीकृष्ण ही का अनुसरण करताहूँ, इस बातको प्रभु जानतेहैं।

अप्यङ्घ्रिमूलेऽवहितं कृताञ्जलिं मामीक्षिता सस्मितमार्द्रया दृशा । सपद्यपध्वस्तसमस्तकिल्बिषो वोढा मुदं वीतविशङ्क ऊर्जिताम् ॥१९॥

अहो ! जब मैं सावधान होकर और हाथ जोड़ कर उनके चरणोंके निकट पहुंचूंगा तब हँसी करते हुए कृपामृत से भरी हुई आर्द्र दृष्टि से भगवान् मेरी ओर देखेंगे, तब मैं उसी क्षण शीघ्र ही पाप तथा शंकाओं से मुक्त होकर परमानन्द को प्राप्त होऊँगा ॥ १९ ॥

सुहृत्तमं ज्ञातिमनन्यदैवतं दोर्भ्यां बृहद्भ्यां परिरप्स्यतेऽथ माम् । आत्मा हि तीर्थीक्रियते तदैव मे बन्धश्च कर्मात्मक उच्छ्वासत्यतः ॥२०॥

भगवान् के सिवा किसी दूसरे को इष्टदेव न मानने वाला, परम स्नेही, जाति के नाते से चाचा लगने वाला मुझ (अक्रूर) से श्रीकृष्णजी अपने विशाल बाहु पसार कर मिलेंगे, उसी क्षण में मेरा आत्मा पवित्र हो जायगा और कर्म-बन्धन भी ढीला पड़ जायगा ॥ २० ॥

लब्ध्वाङ्गसङ्गं प्रणतं कृताञ्जलिं मां वक्ष्यतेऽक्रूर ततेत्युरुश्रवाः । तदा वयं जन्मभृतो महीयसा नैवाद्दतो यो धिगमुष्य जन्म तत् ॥२१॥

मैं प्रणाम करके, हाथ जोड़कर जब खड़ा होऊँगा तब महा यशस्वी भगवान् मुझे छाती से लगाकर "हे चाचा अक्रूर !" कहकर बोलेंगे, उस समय मेरा जन्म सफल होजायगा, क्योंकि जिसका भगवान् अपमान करें उसके जन्मको धिक्कारहै ॥२१॥

न तस्य कश्चिद्दयितः सुहृत्तमो न चाप्रियो द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा । तथाऽपि भक्तान् भजते यथा तथा सुरद्रुमो यद्वदुपाश्रितोऽर्थदः ॥२२॥

यद्यपि परमात्मा के कोई प्रिय, अतिशय हितकारी, कुप्रिय, बैरी या त्याज्य नहीं है, फिरभी जो भक्त उन्हें जिस प्रकार भजताहै वे उसे उसी प्रकार भजते हैं, जैसे जो कल्प वृक्ष को जिस भाव से सेवन करता है, उसे वह वैसा ही फल देता है ॥

किं वाऽग्रजो माऽवनतं यदूत्तमः स्मयन् परिष्वज्य गृहीतमञ्जलौ । गृहं प्रवेश्याप्तसमस्तसत्कृतं सम्प्रेक्ष्यते कंसकृतं स्वबन्धुषु ॥२३॥

जब मैं हाथ जोड़ कर प्रणाम करूँगा, तब श्री

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृष्णजीके बड़े भाई बलदाऊजी मेरा हाथ पकड़कर हास्य पूर्वक भेंट करके; घर में लेजा कर और सब प्रकार से सत्कार करके अपने बन्धु विषयक कंस का हाल पूछेंगे ॥ २३ ॥

श्रीशुक उवाच

इति सञ्चिन्तयन कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि ।
रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप ॥२४॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! श्वफल्कके पुत्र अक्रूरजी इस प्रकार श्रीकृष्णजी के विषयमें विचार करते हुए इधर गोकुल में पहुंचे और उधर सूर्य अस्ताचल पर जा पहुंचे अर्थात् संध्या होगई॥२४॥

पदानि तस्याखिललोकपालकिरीटजुष्टामल-
पादरेणोः । ददर्श गोष्ठे क्षितिकौतुकानि विल-
क्षितान्यब्जयवाङ्कुशाद्यैः ॥२५॥

समस्त लोकपाल जिनके चरणारविन्दों की रज को मुकुट से धारण करते हैं, ऐसे श्रीकृष्ण भगवान् के चरण-चिह्न अक्रूर ने गोकुलमें देखे, जो पृथ्वी के अलंकार रूप थे तथा जिनमें कमल, यव, अंकुश आदि के चिह्न दीख पड़ते थे ॥ २५ ॥

तद्दर्शनाह्लादविवृद्धसम्भ्रमः प्रेम्णोर्ध्वरोमाऽश्रु-
कलाकुलेक्षणः । रथादवस्कन्द्य स तेष्वचेष्टत
प्रभोरमून्यङ्घ्रिरजांस्यहो इति ॥२६॥

उनके दर्शन होते ही अक्रूर के हृदय में आनंद का एक कौतूहलसा बढ़गया, उनके प्रेमसे रोमाञ्च हो आया, अश्रु-कला से नेत्र विकल हो उठे, तब वे तत्काल ही रथ से उतर कर उन चरण-चिह्नों में लोटने लगे और विचार करने लगे कि अहो ! यह भगवान्की चरण-रजहै,यह कैसादुर्लभ लाभहोगया॥

देहं भृतामियानर्थो हित्वा दम्भं भियं शुचम् ।
सन्देशाद्यो हरेर्लिङ्गदर्शनश्रवणादिभिः ॥२७॥

देहधारियों का यही पुरुषार्थ है, जैसा दंभ, भय और शोक छोड़कर भगवान् के चिह्न देखकर तथा श्रवण आदि के द्वारा संदेश ले जाते हुए अक्रूर ने कर दिखलाया ॥२७॥

ददर्श कृष्णं रामं च व्रजे गोदोहनं गतौ ।
पीतनीलाम्बरधरौ शरदम्बुरुहेक्षणौ ॥२८॥

अक्रूरजी ने व्रज में गौओं को दुहने के लिये जाते हुए, पीतांबर तथा नीलांबर धारण किये हुए शरत् कमल के समान नेत्र वाले श्रीराम-कृष्णजी को देखा ॥ २८ ॥

किशोरौ श्यामलश्वेतौ श्रीनिकेतौ बृहद्भुजौ ।
सुमुखौ सुन्दरवरौ बालद्विरदविक्रमौ ॥२९॥
ध्वजवज्राङ्कुशाम्भोजैश्चिह्नितैरङ्घ्रिभिर्व्रजम् ।
शोभयन्तौ महात्मानौ सानुक्रोशस्मितेक्षणौ ॥३०॥
उदाररुचिरक्रीडौ स्रग्विणौ वनमालिनौ ।
पुण्यगन्धानुलिप्ताङ्गौ स्नातौ विरजवाससौ॥३१॥
प्रधानपुरुषावाद्यौ जगद्धेतू जगत्पती ।
अवतीर्णौ जगत्यर्थे स्वांशेन बलकेशवौ ॥३२॥
दिशो वितिमिरा राजन् कुर्वाणौ प्रभया स्वया ।
यथा मारकतः शैलो रौप्यश्च कनकाचितौ ॥३३॥
रथात् तूर्णमवप्लुत्य सोऽक्रूरः स्नेहविह्वलः ।
पपात चरणोपान्ते दण्डवद्द रामकृष्णयोः ॥३४॥

किशोर अवस्था, श्याम तथा गौर वर्ण, लक्ष्मी जी के आश्रय, विशाल बाहु, सुन्दर मुख, बालरूप हाथी के समान पराक्रमी, सर्वोत्तम सुन्दर, ध्वज, वज्र, अंकुश व कमल के चिह्न वाले चरणों से पृथ्वी को शोभायमान करते हुए, महात्मा, करुणा से उत्पन्न हुई मन्द मुसकान तथा चितवनसे युक्त उदार तथा सुन्दर लीला वाले, वनमाल तथा रत्न हार धारण किये हुए, पवित्र सुगंधि तथा चन्दन लगाये हुए, स्नान किये हुए, निर्मल वस्त्र पहने हुए प्रधान पुरुष, आदि, जगत् के कारण, जगत्पति, पृथ्वी के लिये अपने अंश सहित अवतार धारण किये हुए और हे राजन् ! अपनी प्रभा से दिशाओं के अन्धकार को दूर करते हुए, जैसे मरकत मणि तथा रौप्य पर्वत स्वर्ण से व्याप्त होकर शोभा देते हों, वैसे ही शोभायमान् श्रीराम-कृष्ण को देखकर वे अक्रूरजी तत्काल ही रथ से उतर कर विह्वल होते हुए उनके चरणों में दंडके समान गिर पड़े ॥

भगवद्दर्शनाह्लादबाष्पपर्याकुलेक्षणः ।
पुलकाचिताङ्ग औत्कण्ठ्यात्स्वाख्याने नाशकन्नृप॥

हे राजन् ! भगवान् के दर्शन के आनन्द से अक्रूरजी के नेत्रों में आँसू भर आये, उनका शरीर पुलकायमान् होगया और वे उत्कंठाके मारे अपना नाम भी न ले सके ॥३५॥

भगवांस्तमभिप्रेत्य रथाङ्गाङ्कितपाणिना ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिरेभेऽभ्युपाकृष्य प्रीतः प्रणतवत्सलः ॥३६॥

भक्तवत्सल भगवान् उनका अभिप्राय जानकर प्रसन्न होकर, चक्र चिह्न वाले अपने हाथ से उन्हें अपनी ओर खींचकर, उनसे मिले ॥ ३६ ॥

सङ्कर्षणश्च प्रणतमुपगुह्य महामनाः ।
गृहीत्वा पाणिना पाणी अनयत् सानुजो गृहम् ३७

उदार चित्त बलदेवजी भी नम्र अक्रूरजीसे भेंट करके, अपने हाथसे उनके दोनों हाथ पकड़ कर, अपने छोटे भाई श्रीकृष्णजी के साथ उन्हें घर को ले गये ॥ ३७ ॥

पृष्ट्वाथ स्वागतं तस्मै निवेद्य च वरासनम् ।
प्रक्षाल्य विधिवत् पादौ मधुपर्कार्हणमाहरत्॥३८॥

फिर आगत-स्वागत करके, कुशल-प्रश्न कर के, उत्तम आसन देकर और विधि पूर्वक उनके चरण धुलाकर उन्होंने अक्रूरजीको मधुपर्क अर्पणकिया ॥

निवेद्य गां चातिथये संवाह्य श्रान्तमादृतः ।
अन्नं बहुगुणं मेध्यं श्रद्धयोपाहरद्विभुः ॥३९॥

फिर बलरामजी ने अतिथि अक्रूरजी के नम्र वचन कहते हुए चरण चांपे और उनकी थकान दूर होने पर आदर सहित अधिक गुणयुक्त पवित्र अन्न श्रद्धा पूर्वक उपस्थित किया ॥३९॥

तस्मै भुक्तवते प्रीत्या रामः परमधर्मवित् ।
मुखवासैर्गन्धमाल्यैः परां प्रीतिं व्यधात् पुनः॥४०

भोजन कर चुकने पर धर्मवेत्ता बलरामजी ने प्रीति पूर्वक बीड़ा, चन्दन, पुष्प-माल अर्पण करके विशेष प्रेम दरसाया ॥ ४० ॥

पप्रच्छ सत्कृतं नन्दः कथं स्थ निरनुग्रहे ।
कंसे जीवति दाशार्ह सौनपाला इवावयः ॥४१॥

सत्कार करने के पीछे नन्दरायजी ने अक्रूरजी से पूछा कि-हे अक्रूरजी ! निर्दयी कंस के जीतेजी कसाई के घर में बकरी की नाईं रहते हुए आप लोग किस प्रकार निर्वाह करते हैं ॥४१॥

योऽवधीत् स्वस्वसुस्तोकान् क्रोशन्त्या असुतृपूखलः
किं नु स्वित् तत्प्रजानां वः कुशलं विमृशामहे॥४२॥

प्राणों को पोषण करने वाले जिस दुष्ट कंस ने अपनी विलाप करती हुई बहिन के छोटे-छोटे बालक मार डाले, उस दुष्टकी आप लोग प्रजा हैं, आपकी कुशल का क्या पूछना है ? ॥४२॥

इत्थं सूनृतया वाचा नन्देन सुसभाजितः ।
अक्रूरः परिपृष्टेन जहावध्वपरिश्रमम् ॥४३॥

इस प्रकार मीठे वचनों से नन्दरायजीने अक्रूर का सत्कार किया, अक्रूरजी का भी ऐसे प्रश्न सुन कर मार्ग का खेद जाता रहा ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

उन्तालीसवां अध्याय

(कंस संदेश कथन)

श्रीशुक उवाच

सुखोपविष्टः पर्यङ्के रामकृष्णोरुमानितः ।
लेभे मनोरथान् सर्वान् पथि यान् स चकार ह ॥१॥

श्रीशुकदेवजी बोले-पलंग पर सुख पूर्वक बैठे हुए अक्रूरजीके वे सभी मनोरथ पूर्णहुए, जो उन्हों ने मार्ग में किये थे, क्योंकि श्रीराम-कृष्ण ने उनका विशेष आदर-सत्कार किया ॥१॥

किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने ।
तथाऽपि तत्परा राजन् नहि वाञ्छन्ति किञ्चन॥२॥

हे राजन् ! जब कि लक्ष्मी-निवास भगवान् प्रसन्न होजाते हैं तब क्या दुर्लभ रह जाताहै? फिरभी जो भगवद्भक्तहैं उन्हें कुछ इच्छा नहींरहती।

सायन्तनाशनं कृत्वा भगवान् देवकीसुतः ।
सुहृत्सु वृत्तं कंसस्य पप्रच्छान्यद्विकीर्षितम् ॥ ३ ॥

देवकीनन्दन श्रीकृष्ण भगवान् सन्ध्या समय भोजन करके कंस का यादवों के प्रति व्यवहार तथा उसकी भावी-इच्छा पर प्रश्न करने लगे ॥३॥

श्रीभगवानुवाच

तात सौम्यागतः कच्चित् स्वागतं भद्रमस्तु वः ।
अपि स्वज्ञातिबन्धूनामनमीवमनामयम् ॥ ४ ॥

श्रीकृष्णजी बोले-हे तात ! हे सौम्य ! आप कुशल क्षेम से तो पधारे हैं ? आपका कल्याणहो, अपने जाति भाइयों में आरोग्यता तो है ? किसी को कोई दुःख तो नहीं है ? ॥४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किं नु नः कुशलं पृच्छे एधमाने कुलामये ।
कंसे मातुलनाम्न्यङ्ग स्वानां नस्तत्प्रजासु च ॥५॥

हे अङ्ग ! मामा कंस तो हमारे कुल का बढ़ा हुआ रोग है, जब अपने भाई-बन्धुओं तथा उसकी प्रजा की कुशल का पूछना ही क्या है ? ॥५॥

अहो अस्मदभूद् भूरि पित्रोर्वृजिनमार्ययोः ।
यद्धेतोः पुत्रमरणं यद्धेतोर्बन्धनं तयोः ॥६॥

मेरे लिये मेरे निरपराध माता-पिता को बड़ा दुःख भोगना पड़ाहै, कि जिनके पुत्र मारे गये और उनको बन्धन में पड़ना पड़ा ॥६॥

दिष्ट्याद्य दर्शनं स्वानां मह्यं वःसौम्य काङ्क्षितम् ।
सञ्जातं वर्ण्यतां तात तवागमनकारणम् ॥ ७ ॥

हे साधु ! हे चाचा ! तुम्हारे दर्शनों की बहुत दिन से अभिलाषा लगरही थी, अब अपने संबंधी (तुम्हारा) दर्शन हो सका है, कहिये आपका पधारना किस लिये हुआ ? ॥७॥

श्रीशुक उवाच

पृष्टो भगवता सर्वं वर्णयामास माधवः ।
वैरानुबन्धं यदुषु वसुदेववधोद्यमम् ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-भगवान्के पूछनेपर अक्रूर जी ने सब हाल सुनाया कि वह कंस यादवों से शत्रुता रखता है, तथा उसने वसुदेवजी के मारने का भी उद्योग किया था ॥८॥

यत्सन्देशो यदर्थं वा दूतः संप्रेषितः स्वयम् ।
यदुक्तं नारदेनास्य स्वजन्मानकदुन्दुभेः ॥ ९ ॥

और वे जो संदेशा लाये थे तथा जिस लिये वे दूत बनकर भेजे गये थे एवं जो बातें नारदजीने कंस से कहीं थीं कि 'श्रीकृष्णजी वसुदेव के पुत्रहैं' वह सब कहा ॥९॥

श्रुत्वाऽक्रूरवचः कृष्णो बलश्च परवीरहा ।
प्रहस्य नन्दं पितरं राज्ञाऽऽदिष्टं विजज्ञतुः ॥१०॥

अक्रूरजी के वचन सुनकर शत्रुओं के नाश-कर्त्ता श्रीराम-कृष्ण ने हँसकर पिता नन्दरायजी से कंस की आज्ञा को सुनाया ॥१०॥

गोपान् समादिशत् सोऽपि गृह्यतां सर्वगोरसः ।
उपायनानि गृह्णीध्वं युज्यन्तां शकटानि च ॥११॥

उन्होंने भी गोपों को आज्ञा दी कि सब लोग गोरस और भेंट लेकर गाड़े जोतो ॥११॥

यास्यामः श्वो मधुपुरीं दास्यामो नृपते रसान् ।
द्रक्ष्यामः सुमहत् पर्व यान्ति जानपदाः किल ।
एवमाघोषयत् क्षत्रा नन्दगोपः स्वगोकुले ॥१२॥

कल मथुरा नगरी को चलेंगे, राजा को गोरस देंगे और महान् उत्सव देखेंगे, अन्य देशवासी भी जारहे हैं, इस प्रकार का नन्दरायजी ने ढिंढोरा पिटवा दिया ॥१२॥

गोप्यस्तास्तदुपश्रुत्य बभूवुर्व्यथिता भृशम् ।
रामकृष्णौ पुरीं नेतुमक्रूरं व्रजमागतम् ॥१३॥

जिनका जीवन एकमात्र श्रीकृष्णजीही हैं, ऐसी गोपियों ने जब यह सुना कि श्रीराम-कृष्ण को लेने के लिये अक्रूर आये हैं, तब उन्हें बड़ा दुख हुआ ॥

काश्चित् तत्कृतहृत्तापश्वासम्लानमुखश्रियः ।
स्रंसद्दुकूलवलयकेशग्रन्थ्यश्च काश्चन ॥१४॥

उस समाचार को सुनकर कितनी ही गोपियों के हृदय-ताप के कारण मुख कुम्हला गये, कितनी ही गोपियों के वस्त्र, कङ्कण तथा केशों की गाँठ खुल गई ॥१४॥

अन्याश्च तदनुध्याननिवृत्ताशेषवृत्तयः ।
नाभ्यजानन्निमं लोकमात्मलोकं गता इव ॥१५॥

कई एकोंकी भगवान्के ध्यानके कारण समस्त इन्द्रियोंकी वृत्तियां जाती रहीं और मुक्त अवस्था की नाईं उन्हें देह का भान न रहा ॥१५॥

स्मरन्त्यश्चापराः शौरेरनुरागस्मितेरिताः ।
हृदिस्पृशश्चित्रपदा गिरः संमुमुहुः स्त्रियः ॥१६॥

दूसरी स्त्रियाँ भगवान् के स्नेह तथा मन्द हास्य से प्रेरित मनोहर विचित्र पदयुक्त वाणी का स्मरण करके मूर्छित होगईं ॥१६॥

गतिं सुललितां चेष्टां स्निग्धहासावलोकनम् ।
शोकापहानि नर्माणि प्रोद्दामचरितानि च ॥१७॥
चिन्तयन्त्यो मुकुन्दस्य लीलाविरहकातराः ।
समेताः सङ्घशः प्रोचुरश्रुमुख्योऽच्युताशयाः॥१८॥

भगवान् की सुन्दर गति, चेष्टा, स्नेह-पूर्वक हास्य सहित चितवन, शोकहारी हास्य की वाणी सर्वोत्तम लीला तथा चरित् का चिन्तवन करती हुई, विरह से कातर, भगवान्में चित्त लगाये हुए गोपियां झुण्ड के झुण्ड मिलकर आँसू डालती हुई कहने लगीं ॥ १७ ॥१८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गोप्य ऊचुः

अहो विधातस्तव न क्वचिद्दया संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः । तांश्चाकृतार्थान् वियुनङ्क्ष्यपार्थकं विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा ॥१९॥

गोपियां बोलीं-तुझे कहीं भी दया नहीं है, तू जीवों में परस्पर मित्रता तथा प्रेम बँधवा कर उस का पूर्ण सुख पाये बिना ही वृथा वियोग करादेता है, तेरे काम बालकोंके खेलकी नाईं हैं ॥१९॥

यस्त्वं प्रदर्श्यासितकुन्तलावृतं मुकुन्दवत्क्रं सुकपोलमुन्नसम् । शोकापनोदस्मितलेशसुन्दरं करोषि पारोक्ष्यमसाधु ते कृतम् ॥२०॥

भला हमने तेरा क्या बिगाड़ा है जो तू श्याम केशों से आच्छादित, सुन्दर कपोल व ऊँची नासिका वाले. शोक हरण, क्वचित् मन्द हास्यसे भी सुन्दर भगवान् के मुखारविन्द का एक बार दर्शन कराके फिर उसे अदृश्य किये देता है ॥२०॥

क्रूरस्त्वमक्रूरसमाख्यया स्म नश्चक्षुर्हि दत्तं हरसे बताज्ञवत् । येनैकदेशेऽखिलसर्गसौष्ठवं त्वदीयमद्राक्ष्म वयं मधुद्विषः ॥२१॥

तू क्रूर है, तेरे सिवा दूसरे से ऐसा काम नहीं बन सकता, इसलिये तू ही अक्रूर नाम धर कर आया है, तू ही मूर्खकी भांति अपनी दी हुई आंख को लेता है, कि जिसके द्वारा भगवान्के अङ्ग २ में हम तेरी समस्त सृष्टि की सुन्दरता देखतीहैं ॥२१॥

न नन्दसूनुः क्षणभङ्गसौहृदः समीक्षते नः स्वकृतातुरा बत । विहाय गेहान् स्वजनान् सुतान् पतींस्तदास्यमद्धोपगता नवप्रियः ॥२२॥

हाय, हा ! क्षण भंगुर स्नेह करने वाले नन्दलालजी भी हमारी ओर नहीं देखते कि हम घर; स्वजन, पुत्र, पति सबको छोड़कर साक्षात् दासी बन रही हैं और केवल उनके ही कारण दुःखी हो रहीहैं,परन्तु उनको तो नयाही नया प्यारा लगताहै॥

सुखं प्रभाता रजनीयमाशिषः सत्या बभूवुः पुरयोषितां ध्रुवम् । याः संप्रविष्टस्य मुखं व्रजस्पतेः पास्यन्त्यपाङ्गोत्कलितस्मितासवम् ॥२३॥

मथुरा की स्त्रियों का आज की रात का प्रभात अवश्य शुभ शकुनवाला हुआ होगा, उनके मनोरथ भी सत्य हो गये हैं, क्योंकि वे स्त्रियां मथुरा में पधारे हुए भगवान् का कटाक्ष से वृद्धिगत तथा मुसकान से आसव रूप मुखका पान करेंगी ॥२३॥

तासां मुकुन्दो मधुमञ्जुभाषितैर्गृहीतचित्तः परवान् मनस्व्यपि । कथं पुनर्नः प्रतियास्यतेऽबला ग्राम्याः सलज्जस्मितविभ्रमैर्भ्रमन् ॥२४॥

हे स्त्रियो ! यद्यपि श्रीकृष्णजी माता-पिता के आधीन और धीर हैं, फिर भी उन स्त्रियों के मद के समान मीठे वचनों से उनका चित्त हरण हो जायगा और उनके लज्जा मय मन्द हास्य तथा विलासोंके कारण वे मोहित होजायेंगे, इस कारण हम ग्राम वासिनियों के पास फिर क्यों लौट कर आयेंगे ? ॥ २४ ॥

अद्य ध्रुवं तत्र दृशो भविष्यते दाशार्हभोजान्धकवृष्णिसात्वताम् । महोत्सवः श्रीरमणं गुणास्पदं द्रक्ष्यन्ति ये चाध्वनि देवकीसुतम् ॥२५॥

आज मथुरा में दाशार्ह, भोज, अन्धक, वृष्णि और सात्वत वंश के यादवों की दृष्टि को निश्चय ही विशेष लाभ होगा; कि जो लक्ष्मीजी के प्यारे गुणों के धाम श्रीकृष्णजी का मार्ग में दर्शन करेंगे ॥

मैतद्विधस्याकरुणस्य नाम भूदक्रूर इत्येतदतीव दारुणाः । योसावनाश्वास्य सुदुःखितं जनं प्रियात् प्रियं नेष्यति पारमध्वनः ॥२६॥

ऐसे क्रूर कर्म करने वाले निर्दयी पुरुषका नाम 'अक्रूर' न होना चाहिये, क्योंकि यह अत्यन्त क्रूर स्वभाव वाला हम अत्यन्त दुखियों को धीरज बँधाये बिना ही अपने प्राणों से प्यारे श्रीकृष्ण को ऐसे दूर स्थानपर ले जायगा कि जहाँ हम न देख सकेंगी ॥ २६ ॥

अनार्द्रधीरेष समस्थितो रथं तमन्वमी च त्वरयन्ति दुर्मदाः । गोपा अनोभिः स्थविरैरुपेक्षितं दैवं च नोऽद्य प्रतिकूलमीहते ॥२७॥

हाय ! कठोर चित्त श्रीकृष्ण तो रथमें बैठ गये और ये मदोन्मत्त ग्वालभी इनके पीछे गाड़ोंमें बैठ कर जल्दी मचारहे हैं, इस अनीति को देख कर कोई वृद्ध भी इनको नहीं रोकता, अरे ! इससमय बज्रपात की भांति किसी ग्वाल को कोई अशकुन भी नहीं होता कि जिसके कारण इन सबको रुकना पड़े, हाय ! आज तो दैव ही हमारे विपरीत चेष्टा कर रहा है ॥ २७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निवारयामः समुपेत्य माधवं किं नोऽकरिष्यन् कुलवृद्धबान्धवाः। मुकुन्दसङ्गान्निमिषार्धदुस्त्यजाद् दैवेन विध्वंसितदीनचेतसाम् ॥२८॥

(आओ) हम सभी मिलकर श्रीकृष्ण को रोक दें, कुलवृद्ध तथा बान्धवजन अपना क्या करलेंगे? जिनको आधे क्षण भी नहीं छोड़ा जा सकता, ऐसे भगवान् का वियोग देकर जिनके चित्त को दैव ने दुःखी कर डाला है, ऐसी हम गोपियों को तो अब मृत्यु का भी क्या डर है ? ॥२८॥

यस्यानुरागललितस्मितवल्गुमन्त्रलीलावलोक परिरम्भणरासगोष्ठ्याम् । नीताः स्म नः क्षणमिव क्षणदा विना तं गोप्यः कथं न्वतितरेम तमो दुरन्तम् ॥२९॥

हे गोपियो ! रास-क्रीड़ा के मंडल में भगवान् के स्नेह मय सुन्दर मन्द हास्य, सुन्दर विचार, लीला पूर्वक दर्शन तथा आलिंगनसे जिन्होंने बहुत सी रातें क्षण के समान व्यतीत करदीं, वे हम गोपियां भगवान के विना विरह के अपार दुःख से कैसे पार पा सकेंगी ॥२९॥

योऽह्नः क्षये व्रजमनन्तसखः परीतो गोपैर्विशन् खुररजश्छुरितालकस्रक् । वेणुं क्वणन् स्मितकटाक्ष निरीक्षणेन चित्तं क्षिणोत्यमृते नु कथं भवेम ३०॥

संध्या के समय बलदेवजी के साथ गोपों से घिरे हुए, वंशी बजाते तथा गौओं के खुरों की रज से भरे हुए केश तथा माला वाले जो श्रीकृष्ण भगवान् व्रज में पधारते ही मन्द हास्य मयी कटाक्ष सहित दृष्टिसे चित्त को हर लेते हैं, उनके बिना हम कैसे जीवित रह सकेंगी ? ॥३०॥

श्रीशुक उवाच

एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं व्रजस्त्रियः कृष्ण-विषक्तमानसाः । विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥३१॥

श्रीशुकदेवजी बोले-इस प्रकार कहती हुई, विरहातुर श्रीकृष्णही में आसक्त चित्त वाली गोपियां लज्जाको त्यागकर-हे गोविन्द ! हे दामोदर! हे माधव!' कहतीहुईं उच्च स्वरसे रुदन करनेलगीं ॥

स्त्रीणामेवं रुदन्तीनामुदिते सवितर्यथ । अक्रूरश्चोदयामास कृतमैत्रादिको रथम् ॥३२॥

फिर सूर्योदय होते ही स्त्रियों के रोते-रोते अक्रूरजी ने सन्ध्योपासन करके रथ को चलाया ॥

गोपास्तमन्वसज्जन्त नन्दाद्याः शकटैस्ततः । आदायोपायनं भूरि कुम्भान् गोरससंभृतान्॥३३॥

फिर नन्द आदि सब गोप गोरस से भरे हुए घड़े और बहुतसी भेंटें लेकर, गाड़ों में बैठ उनके पीछे चले ॥ ३३ ॥

गोप्यश्च दयितं कृष्णमनुव्रज्यानुरञ्जिताः । प्रत्यादेशं भगवतः काङ्क्षन्त्यश्चावतस्थिरे ॥३४॥

गोपियां अपने प्यारे श्रीकृष्णके पीछे जा रही थीं, वे प्रभु के देखने आदिसे प्रसन्न होकर उनके प्रत्युत्तर की आशा में खड़ी होकर रहगई ॥३४॥

तास्तथा तप्यतीर्वीक्ष्य स्वप्रस्थाने यदूत्तमः । सान्त्वयामास सप्रेमैरायास्य इति दौत्यकैः॥३५॥

श्रीकृष्णजी ने अपने जाने से उन्हें इस भांति दुःखी देखकर अपने दूत द्वारा यह कहला कर कि 'मैं आऊँगा'-उन्हें धीरज दिया ॥३५॥

यावदालक्ष्यते केतुर्यावद्रेणू रथस्य च । अनुप्रस्थापितात्मानो लेख्यानीवोपलक्षिताः॥३६॥

जब तक रथ की ध्वजा तथा धूल दृष्टि आती रही तब तक भगवान्में चित्त लगाये हुए गोपियां चित्र लिखी सी खड़ी रहीं ॥३६॥

ता निराशा निवृत्तुर्गोविन्दविनिवर्तने । विशोका अहनी निन्युर्गायन्त्यः प्रियचेष्टितम्॥३७

फिर वे भगवान् के लौटने की आशा छोड़कर लौट आईं तथा शोक त्यागकर अपने प्यारे के चरित्रों को गा-गाकर दिन बिताने लगीं* ॥३७॥

भगवानपि संप्राप्तो रामाक्रूरयुतो नृप । रथेन वायुवेगेन कालिन्दीमघनाशिनीम् ॥३८॥

हे राजन्! भगवान् भी बलदेवजी तथा अक्रूरके साथ पवन के समान वेग वाले रथ के द्वारा पापमोचनी यमुनाजी के तट पर पहुँचे ॥३८॥

---

*-कुटिल अक्रूर बैरी एरी काहु जन्मन कौ, चेटक सी डार सर लैकै व्रज मूरिगौ । व्याकुल विहाल बार वंशी घनश्याम बिनु मीन सी तलफ मानो प्रेमरस भूरिगौ ॥ चरन उठाय चकित चितवत चढ़ ऊँचे धाम चिन्तामनि थकित भयौ चैन सब चूरिगौ । बार बार कहत विसूरिजल पूरि नैन धूरि न उड़ात आली अब रथ दूरिगौ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तत्रोपस्पृश्य पानीयं पीत्वा मृष्टं मणिप्रभम् ।
वृक्षखण्डमुपव्रज्य सरामो रथमाविशत् ॥३६॥

वहाँ हाथ-पांव धोकर, आचमन करके, मीठा निर्मल जल पीकर और वगीचेमें आकर बलरामजी सहित रथ में बैठे ॥३६॥

अक्रूरस्ताबुपामन्त्र्य निवेश्य च रथोपरि ।
कालिन्द्या ह्रदमागत्य स्नानं विधिवदाचरत् ॥४०॥

अक्रूरजीने उन दोनों भाइयोंसे आज्ञा मांगकर उन्हें रथ में बिठलाया और यमुनाजी के कुण्ड पर आकर विधि पूर्वक स्नान किया ॥४०॥

निमज्ज्य तस्मिन् सलिले जपन् ब्रह्म सनातनम् ।
तावेव ददृशेऽक्रूरो रामकृष्णौ समन्वितौ ॥४१॥

उस जलमें डुबकी लगाकर अक्रूरजी ने ज्योंही सनातन परब्रह्म का ध्यान किया, त्यों ही श्रीराम कृष्ण को जलमें मिला हुआ देखा ॥ ४१ ॥

तौ रथस्थौ कथमिह सुतावानकदुन्दुभेः ।
तर्हि स्वित् स्यन्दने न स्त इत्युन्मज्ज्य व्यचष्ट सः ॥

तब अक्रूरजी सोचने लगे कि वसुदेवजी के पुत्र तो रथ में बैठे थे, वे यहाँ कैसे आये ? कदाचित रथ में न हों, ऐसा सोचकर और जल से बाहर निकल कर ज्योंही उन्होंने देखा ॥४२॥

तत्रापि च तथापूर्वमासीनौ पुनरेव सः ।
न्यमज्जद् दर्शनं यन्मे मृषा किं सलिले तयोः ॥४३॥
भूयस्तत्रापि सोऽद्राक्षीत् स्तूयमानमहीश्वरम् ।
सिद्धचारणगन्धर्वैरसुरैर्नतकन्धरैः ॥४४॥

त्यों ही उन्होंने श्रीराम-कृष्ण को पूर्ववत् बैठा हुआ पाया, तब यह सोचकर कि क्या जलमें मुझे झूठ-मूठ ही तो दर्शन नहीं हुआ है ? ऐसा सोच कर उन्होंने जैसे ही फिर से डुबकी मारी वैसे ही जलमें फिर से शेषजी के दर्शन हुए, जिनकी रात दिन सिद्ध, चारण, गन्धर्व और असुर सिर झुका कर स्तुति कर रहे थे ॥४३॥४४॥

सहस्रशिरसं देवं सहस्रफणमौलिनम् ।
नीलाम्बरं विसश्वेतं शृङ्गैः श्वेतमिव स्थितम् ॥४५॥

जिनके हज़ार मस्तकों पर मुकुट बँधे हुए हैं, जो नीलाम्बर धारण किये हुए हैं कमल नाल के समान श्वेतवर्ण और कैलासके समान कान्तिवान थे

तस्योत्सङ्गे घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
पुरुषं चतुर्भुजं शान्तं पद्मपत्रारुणेक्षणम् ॥४६॥
प्रसन्नचारुवदनं चारुहासनिरीक्षणम् ।
सुभ्रून्नसं चारुकर्णं सुकपोलारुणाधरम् ॥४७॥
प्रलम्बपीवरभुजं तुङ्गांसोरःस्थलश्रियम् ।
कम्बुकण्ठं निम्ननाभिं वलिमत्पल्लवोदरम् ॥४८॥
बृहत्कटितटश्रोणिकरभोरुद्वयान्वितम् ।
चारुजानुयुगं चारुजङ्घायुगलसंयुतम् ॥४९॥
तुङ्गगुल्फारुणनखव्रातदीधितिभिर्वृतम् ।
नवाङ्गुल्यङ्गुष्ठदलैर्विलसत्पादपङ्कजम् ॥५०॥
सुमहार्हमणिव्रातकिरीटकटकाङ्गदैः ।
कटिसूत्रब्रह्मसूत्रहारनूपुरकुण्डलैः ॥५१॥
भ्राजमानं पद्मकरं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥५२॥
सुनन्दनन्दप्रमुखैः पार्षदैः सनकादिभिः ।
सुरेशैर्ब्रह्मरुद्राद्यैर्नवभिश्च द्विजोत्तमैः ॥५३॥
प्रह्लादनारदवसुप्रमुखैर्भागवतोत्तमैः ।
स्तूयमानं पृथग्भावैर्वचोभिरमलात्मभिः ॥५४॥

श्रिया पुष्ट्या गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्जया । विद्ययाऽविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम् ॥५५॥

विलोक्य सुभृशं प्रीतो भक्त्या परमया युतः ।
हृष्यत्तनूरुहो भावपरिक्लिन्नात्मलोचनः ॥५६॥

उनकी गोदमें मेघके समान श्याम वर्ण पीतांबर पहने हुए, चतुर्भुज, शान्त, कमल-पत्र के समान अरुण नेत्रधारी, प्रसन्न और सुन्दर मुख, सुन्दर हास्य सहित दृष्टि लगाये, सुन्दर भृकुटी, ऊँची नासिका, सुन्दर कान, सुन्दर कपोल, अरुण अधर, लम्बे तथा पुष्टबाहु, ऊंचे कंधे, वक्षःस्थलमें लक्ष्मी जी को धारण किये हुए, शंख के समान तीन रेखाओं वाला कण्ठ, गम्भीर नाभि, पीपल के पत्ते के समान तिरछा तथा रेखाओंसहित उदर, पतली कटि व श्रोणि भाग, हथेलीके दाहने भागके समान दोनों साथल धारण किये हुए, दोनों सुन्दर जंघा तथा जंघाओं से संयुक्त, ऊँचे गुल्फ, अरुण नखों के समूह की कान्ति से घिरे हुए, कोमल उँगलियों तथा अँगूठे रूपी पंखड़ियों से शोभायमान् चरण कमल, अमूल्य मणियोंसे जड़ा हुआ किरीट, कटक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अंगद, कटिसूत्र, यज्ञोपवीत, हार, नूपुर, कुण्डलों से देदीप्यमान् हाथोंमें शंख, चक्र, गदा पद्म धारण किये हुए, वक्षःस्थल में श्रीवत्स का चिह्न धरे हुए कौस्तुभ मणि से सुशोभित बनमाल पहने हुए, सुनन्द, नन्द आदि पार्षद; सनकादि ऋषि, ब्रह्मा जी रुद्र आदि देवता, मरीचि आदि नव ऋषि, प्रह्लाद नारद और वसु आदि भक्त जिनकी निर्मल अन्तःकरण से जुदे-जुदे अभिप्राय रखकर गर्भ वचनों से स्तुति करते हैं तथा जो लक्ष्मी, पुष्टि, वाणी, कान्ति, कीर्त्ति, तुष्टि, पृथ्वी, ऊर्जा, विद्या, अविद्या, माया एवं शक्ति से सेवित हैं, ऐसे प्रभु का दर्शन करके अक्रूरजी अत्यन्त प्रसन्न हुए, उन का शरीर रोमांचित होगया और भाव पूर्वक नेत्र तथा अन्तःकरण द्रवित होगये ॥४६—५६॥

गिरा गद्गदयाऽस्तौषीत् सत्त्वमालम्ब्य सात्त्वतः।
प्रणम्य मूर्धावहितः कृताञ्जलिपुटः शनैः ॥५७॥

उस समय अक्रूरजी धीरज धरकर परमभक्ति के साथ, शिर झुकाकर, हाथ जोड़कर और सावधान होकर गद्गद वाणीसे धीरे २ स्तुति करनेलगे॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३६॥

चालीसवां अध्याय

(अक्रूरजी कृत स्तुति)

अक्रूर उवाच

नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम्। यन्नाभिजातादरविन्दकोशाद् ब्रह्माऽविरासीद्यत एष लोकः ॥१॥

अक्रूरजी बोले—समस्त कारणोंके कारण, आदि पुरुष, अविनाशी, नारायण और जिनकी नाभि से उत्पन्न हुए कमल में से जगत् के उत्पन्नकर्त्ता ब्रह्मा जी प्रकट हुए हैं, उन आप (श्रीकृष्ण) को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

भूस्तोयमग्निः पवनः खमादिर्महानजादिर्मन इन्द्रियाणि। सर्वेन्द्रियार्था विबुधाश्च सर्वे ये हेतवस्ते जगतोऽङ्गभूताः ॥ २ ॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, अहङ्कार, माया, पुरुष, मन, इन्द्रियां, सम्पूर्ण विषय, तथा जगत् के कारण रूप देवता—यह सभी आपके अङ्ग भूत हैं ॥ २ ॥

नैते स्वरूपं विदुरात्मनस्ते ह्यजादयोऽनात्मतया गृहीताः। अजोऽनुबुद्धः स गुणैरजाया गुणात् परं वेद न ते स्वरूपम् ॥ ३ ॥

जड़ और जड़ता के कारण, प्रत्यक्ष आदि के द्वारा जाननेमें आनेवाले ये माया आदि पदार्थ आप सर्वात्मा के स्वरूप को नहीं जानते तथा सबको और आत्मा को जानने वाला जीव भी माया के गुणों में बंधे होने के कारण आप गुणातीत स्वरूप को नहीं जानता ॥ ३ ॥

त्वां योगिनो यजन्त्यद्धा महापुरुषमीश्वरम्।
साध्यात्मं साधिभूतं च साधिदैवं च साधवः॥ ४ ॥

श्रेष्ठ योगी पुरुष आप साक्षात् महापुरुष, अन्तर्यामी और ईश्वर रूप का भजन करते हैं, कि जो आप गोलक, इन्द्रिय तथा देवता इन तीनों के साक्षी रूप हैं ॥४॥

त्रय्या च विद्यया केचित् त्वां वै वैतानिका द्विजाः।
यजन्ते वितते र्यज्ञैर्नानारूपामराख्यया ॥ ५ ॥

कर्म योगी कितने ही द्विज लोग विविध रूप वाले देवताओं के नाम से बड़े-बड़े यज्ञ करके वेद त्रयी रूपी कर्म-कांड की विद्या द्वारा आपका यजन करते हैं ॥ ५ ॥

एके त्वाऽखिलकर्माणि संन्यस्योपशमं गताः।
ज्ञानिनो ज्ञानयज्ञेन यजन्ति ज्ञानविग्रहम् ॥ ६ ॥

कितने ही ज्ञानी पुरुष सब कामोंको छोड़ कर उपशम को धारण किये हुए आप ज्ञान-मूर्त्ति का ज्ञान यज्ञ द्वारा यजन करते हैं ॥६॥

अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाऽभिहितेन ते।
यजन्ति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्तिकम् ॥७॥

कुछ दूसरे पुरुष वैष्णव-दीक्षा धारण करके नारद पंच रात्र में कही हुई विधि से वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध भेद से अनेक मूर्त्ति तथा नारायण रूप से एक मूर्त्ति (मानकर) आप का यजन करते हैं ॥७॥

त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्माचार्यविभेदेन भगवन् समुपासते ॥८॥

हे भगवन्! फिर दूसरे अनेक पुरुष आचार्य रूप शिवजीके कहे हुए पाशुपत आदि मार्गोंसे आप ही शिव मूर्त्तिकी उपासना करते हैं ॥८॥

सर्वे एव यजन्ति त्वां सर्वदेवमयेश्वरम् ।
येऽप्यन्यदेवता भक्ता यद्यप्यन्यधियः प्रभो ॥९॥

हे प्रभु! जो दूसरे देवताओं के भक्त हैं तथा जो दूसरे देवताओं में बुद्धि रखते हैं, वे भी सर्व-देवरूप और ईश्वर आपही का यजन करते हैं॥

यथाऽद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्याऽऽपूरिताः प्रभो।
विशन्ति सर्वतः सिन्धुं तद्वत्त्वां गतयोन्ततः ॥१०॥

हे प्रभु! जैसे-पर्वत से निकली हुई नदियां मेघों के जल से परिपूर्ण होकर अन्त में चारों ओर से समुद्र में जा मिलती हैं, वैसे सभी मार्ग भी अन्तमें आप ही से मिल जाते हैं ॥१०॥

सत्त्वं रजस्तम इति भवतः प्रकृतेर्गुणाः ।
तेषु हि प्राकृताः प्रोक्ता आब्रह्म स्थावरादयः ११॥

सत् रज और तम-ये आपकी प्रकृति के गुणहैं इन गुणोंमें ब्रह्मा आदिसे लेकर स्थावर तक सभी पिरोये हुए हैं, वे गुण प्रकृति में हैं और प्रकृति आप में है ॥ ११ ॥

तुभ्यं नमस्तेऽस्त्वविषक्तदृष्टये सर्वात्मने सर्वधियां च साक्षिणे । गुणप्रवाहोऽयमविद्यया कृतः प्रवर्तते देवनृतिर्यगात्मसु ॥१२॥

गुणोंसे अलिप्त बुद्धि,सर्वात्मा, सबकी बुद्धियों के साक्षी रूप आपको मैं प्रणाम करता हूँ, अविद्या से बना हुआ संसार तो देव, मनुष्य, पशु और पक्षियोंके शरीरों में ही प्रवृत्त होता है, इसलिये आप और संसार में बड़ा अन्तर है ॥१२॥

अग्निर्मुखं तेऽवनिरङ्घ्रिरीक्षणं सूर्यो नभो नाभिरथो दिशः श्रुतिः । द्यौः कं सुरेन्द्रास्तव बाहवोऽर्णवाःकुक्षिर्मरुत्प्राणबलं प्रकल्पितम्॥१३॥

अग्नि आपका मुख, पृथ्वी चरण, सूर्य नेत्र, आकाश नाभि, दिशा कान, स्वर्ग मस्तक, देवता भुजा,समुद्र कुक्षि, वायु प्राण और बल कल्पनाहै॥

रोमाणि वृक्षौषधयः शिरोरुहा मेघाः परस्यास्थिनखानि तेऽद्रयः । निमेषणं रात्र्यहनी प्रजापतिर्मेढ्रस्तु वृष्टिस्तव वीर्यमिष्यते ॥१४॥

वृक्ष और औषधियां रोम हैं, मेघ शिरके बाल पर्वत नख और अस्थियां हैं; रात-दिन पलक,प्रजापति लिंग और वर्षा आपका वीर्य माना जाता है॥

त्वय्यव्ययात्मन् पुरुषे प्रकल्पिता लोकाः सपाला बहुजीवसंकुलाः । यथा जले संजिहते जलौकसोऽप्युदुम्बरे वा मशका मनोमये ॥१५॥

हे अविनाशी! अनेक जीवों से व्याप्त ये सब लोक तथा लोकपाल आपही पुरुषरूपमें जाने जाते हैं, जैसे जलमें जलचर और गूलरके फलमें अनेक जन्तु रहते हैं, त्यों ही मनकी भावना से आप अङ्ग-रहित में समस्त ब्रह्मांड विचरा करते हैं॥१५॥

यानि यानीह रूपाणि क्रीडनार्थं बिभर्षि हि ।
तैरामृष्टशुचो लोका मुदा गायन्ति ते यशः ॥१६॥

आप क्रीड़ा करने के लिये जो-जो रूप धारण करते हैं, उन्हीं के यश को गा-गाकर मनुष्य सोच रहित हो जाते हैं ॥१६॥

नमः कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचराय च ।
हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे ॥१७॥

प्रयोजन सिद्ध करने के लिये मत्स्यरूप धारण कर प्रलय के समुद्र में विचरने वाले आपको मेरा प्रणाम है, मधुकैटभ को मारने वाले हयग्रीव मूर्त्ति आपको मेरा प्रणाम है ॥१७॥

अकूपाराय बृहते नमो मन्दरधारिणे ।
क्षित्युद्धारविहाराय नमः सूकरमूर्तये ॥१८॥

मन्दराचलको धारण करनेवाले व्यापक कच्छप मूर्त्ति आपको मेरा प्रणामहै, पृथ्वीका उद्धार करने की लीला करने वाले वाराह मूर्त्ति आपको मेरा प्रणाम है ॥१८॥

नमस्तेऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह ।
वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च ॥१९॥

हे साधुओं के भय हरण करने वाले अद्भुत नृसिंह मूर्त्ति आपको मेरा प्रणामहै, हे त्रिलोकीको नापने वाले वामन मूर्त्ति! आपको मेरा प्रणामहै ॥

नमो भृगूणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे ।
नमस्ते रघुवर्याय रावणान्तकराय च ॥२०॥

अभिमानी क्षत्रिय-कुल रूपी बनके भेदन करने वाले परशुराम मूर्त्ति! आपको मेरा प्रणामहै,रावण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के संहारकर्त्ता श्रीरामचंद्र मूर्त्ति ! आप को मेरा प्रणाम है ॥ २० ॥

नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च ।
प्रद्युम्नायाऽनिरुद्धाय सात्त्वतां पतये नमः ॥२१॥

वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध चतुर्व्यूह मूर्त्ति भक्तों के नाथ ! आपको मेरा प्रणामहै॥

नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने ।
म्लेच्छप्रायक्षत्रहन्त्रे नमस्ते कल्किरूपिणे ॥२२॥

शुद्ध स्वरूप दैत्योंको मोहित करनेवाले बुद्ध मूर्त्ति! आपको मेरा प्रणामहै, म्लेच्छरूप क्षत्रियोंके संहार कर्त्ता कल्कि मूर्त्ति! आपको मेरा प्रणाम है ॥२२॥

भगवन् जीवलोकोऽयं मोहितस्तव मायया ।
अहं ममेत्यसद्ग्राहो भ्राम्यते कर्मवर्त्मसु ॥२३॥

हे भगवन् ! यह जीव-लोक आपकी माया से मोहित होकर "मैं और मेरा" ऐसा दुराग्रह करके कर्म मार्ग में भटकता है ॥२३॥

अहं चात्मात्मजागारदारार्थस्वजनादिषु ।
भ्रमामि स्वप्नकल्पेषु मूढः सत्यधिया विभो॥२४॥

हे प्रभु ! मैं भी स्वप्न के समान आत्मा, देह, पुत्र घर, स्त्री, धन और स्वजन आदि को सत्य मान कर उनमें भ्रमण किया करता हूं ॥२४॥

अनित्यानात्मदुःखेषु विपर्ययमतिर्ह्यहम् ।
द्वन्द्वारामस्तमोविष्टो न जाने त्वात्मनःप्रियम्२५॥

अनित्य कर्म फलको नित्य माननेवाला, अनात्मा देह को आत्मा मानने वाला, दुःख रूप घर आदिको सुख माननेवाला, सुख-दुःख आदि (द्वंद्वों) में ही रमण करने वाला और अज्ञान से भरा हुआ मैं आत्माके परमप्रिय अर्थात् आपको नहीं जानता॥

यथाऽबुधो जलं हित्वा प्रतिच्छन्नं तदुद्भवैः ।
अभ्येति मृगतृष्णां वै तद्वत् त्वाऽहं पराङ्मुखः २६

जैसे मूर्ख मनुष्य शैवाल से ढके हुए जल को छोड़कर मृग-तृष्णा के लिये दौड़ता है, वैसे मैं भी माया से ढके हुए आपको छोड़कर देह आदि में मन लगाकर दौड़ता हूँ ॥२६॥

नोत्सहेऽहं कृपणधीः कामकर्महतं मनः ।
रोद्धुं प्रमाथिभिश्चाक्षैर्ह्रियमाणमितस्ततः ॥२७॥

मैं कृपण बुद्धि वाला काम्य कर्म से क्षुब्ध मन को नहीं रोक सकता, क्योंकि उसे बलवती इंद्रियां इधर-उधर खींच रही हैं ॥२७॥

सोऽहं तवाङ्घ्र्युपगतोऽस्म्यसतां दुरापं तवाप्यहं भवदनुग्रह ईश मन्ये । पुंसो भवेद्यर्हि संसरणापवर्गस्त्वय्यब्जनाभ सदुपासनया मतिः स्यात्॥२८॥

हे परमेश्वर ! हे पद्मनाभ ! मैं आपके विषयी पुरुषों को दुर्लभ चरणारविन्द की शरण आया हूँ और यह भी आपकी ही कृपा से हुआ है, ऐसा मानता हूँ, जिस समय मनुष्यका संसारसे उद्धार होनेका समय आताहै तभी उसका महात्मा पुरुषों की सेवा के प्रभावसे आपके भजनमें मन लगताहै॥

नमो विज्ञानमात्राय सर्वप्रत्ययहेतवे ।
पुरुषेशप्रधानाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥२९॥

विज्ञान-मूर्त्ति, सबके ज्ञान के कारण, काल, कर्म स्वभाव आदि के नियंता, पूर्ण अनन्त शक्ति और परब्रह्म आपको मेरा प्रणाम है ॥२९॥

नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च ।
हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥३०॥

सबके आश्रय, अधिष्ठाता आपको मेरा प्रणाम है, हे इन्द्रियपति, हे प्रभु ! मैं आपको प्रणामकरता हूँ, मुझ शरणागत की रक्षा कीजिये ॥३०॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४०॥

इकतालीसवां अध्याय

(मथुरा-दर्शन तथा रजक-वध)

श्रीशुक उवाच

स्तुवतस्तस्य भगवान् दर्शयित्वा जले वपुः ।
भूयः समाहरत् कृष्णो नटो नाट्यमिवात्मनः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी बोले-स्तुति करते हुए अक्रूरजी को जलमें दर्शन देकर भगवान् ने अपना स्वरूप अन्तर्धान कर लिया; जैसे नट अपने स्वांग को समेट लेता है ॥१॥

सोऽपि चान्तर्हितं वीक्ष्य जलादुन्मज्य सत्वरः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृत्वा चावश्यकं सर्वं विस्मितो रथमागमत् ॥ २ ॥

अक्रूर भी भगवान् को अन्तर्हित देखकर शीघ्र ही जलसे निकल और आवश्यकीय कर्त्तव्य को पूर्ण करके आश्चर्य मानते हुए रथके पास आये॥२॥

तमपृच्छद् हृषीकेशः किं ते दृष्टमिवाद्भुतम् ।
भूमौ वियति तोये वा तथा त्वां लक्षयामहे ॥ ३ ॥

उनसे श्रीकृष्णजी ने पूछा—क्या आपने पृथ्वी, आकाश या जलमें कोई अद्भुत बात देखीहै ? क्यों कि आपकी आकृति से कुछ विस्मय होने का भाव झलकता है ॥३॥

अक्रूर उवाच

अद्भुतानीह यावन्ति भूमौ वियति वा जले ।
त्वयि विश्वात्मके तानि किं मेऽदृष्टं विपश्यतः ॥४॥

अक्रूरजी बोले—इस संसार, पृथ्वी, जल या आकाश में जितने आश्चर्य हैं, वे सभी आप विश्व रूपमें विद्यमानहैं, जब मैंने आपके दर्शन कर लिये तब मुझे कौन सा आश्चर्य देखना शेष रहगया॥४॥

यत्राद्भुतानि सर्वाणि भूमौ वियति वा जले ।
तं त्वाऽनुपश्यतो ब्रह्मन् किं मे दृष्टमिवाद्भुतम्॥५॥

हे परमेश्वर ! जब मैं आपही का दर्शन करता हूँ कि जिसमें सभी आश्चर्य भरे हुए हैं, तब पृथ्वी, जल या आकाशमें आपके सिवा कौनसा अचरज देखा होगा ? ॥५॥

इत्युक्त्वा नोदयामास स्यन्दनं गान्दिनीसुतः ।
मथुरामनयद् रामं कृष्णं चैव दिनात्यये ॥ ६ ॥

इतना कहकर अक्रूरजी ने रथको हाँका और दिनके तीसरे पहर तक श्रीराम-कृष्ण को मथुरा पुरी में ले पहुंचे ॥६॥

मार्गे ग्रामजना राजंस्तत्र तत्रोपसङ्गताः ।
वसुदेवसुतौ वीक्ष्य प्रीता दृष्टिं न चाऽऽददुः ॥ ७ ॥

हे राजन् ! मार्गमें ग्राम २ के लोग जहाँ-तहाँ इकट्ठे होकर श्रीराम-कृष्णका दर्शन कर बहुत प्रसन्न हुए और अपनी दृष्टिको लगाये हुएही खड़ेरहे ॥७॥

तावद्व व्रजौकसस्तत्र नन्दगोपादयोऽग्रतः ।
पुरोपवनमासाद्य प्रतीक्षन्तोऽवतस्थिरे ॥ ८ ॥

अक्रूरजी का रथ पहुंचने से पहले ही नन्द आदि सब व्रजवासी गथुरा के उपवन के निकट पहुँचकर उनकी प्रतीक्षा करते हुए ठहरे रहे ॥८॥

तान् समेत्याह भगवानक्रूरं जगदीश्वरः ।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रश्रितं प्रहसन्निव॥ ९ ॥

उन सबसे मिलकर जगत्पति श्रीकृष्णभगवान् नम्र अक्रूरजी के हाथ से हाथ मिलाये हुए, हँसी सी करते हुए इस प्रकार कहने लगे कि ॥९॥

भवान् प्रविशतामग्रे सहयानः पुरीं गृहम् ।
वयं त्विहावमुच्याथ ततो द्रक्ष्यामहे पुरीम् ॥१०॥

आप रथ को साथ लेकर, पुरीमें जाकर अपने घरमें प्रवेश कीजिये, हम विश्राम करने के पीछे नगरी को देखेंगे ॥१०॥

अक्रूर उवाच

नाहं भवद्भ्यां रहितः प्रवेक्ष्ये मथुरां प्रभो ।
त्यक्तुं नार्हसि मां नाथ भक्तं ते भक्तवत्सल॥११॥

अक्रूरजी बोले—मैं आपके बिना पुरी में कदापि प्रवेश न करूँगा, हे नाथ ! हे भक्तवत्सल ! आपको मुझ अपने भक्त का त्याग करना उचित नहीं है ॥

आगच्छ याम गेहान्नः सनाथान् कुर्वधोक्षज ।
सहाग्रजः सगोपालैः सुहृद्भिश्च सुहृत्तम ॥१२॥

हे अधोक्षज ! पधारिये, मेरे घर चलिये, मुझे सनाथ कीजिये, क्योंकि आपही मेरे परम स्नेही हैं, बलदेवजी तथा मित्र वर्ग के ग्वालों को भी साथ ले लीजिये : १२॥

पुनीहि पादरजसा गृहान्नो गृहमेधिनाम् ।
यच्छौचेनानुतृप्यन्ति पितरः साग्नयः सुराः ॥१३॥

अपने चरणों की रज से हम गृहस्थों के घर पवित्र कीजिये कि जिनके धोवनके जल से पितर, अग्नि और देवता सभी तृप्त होजाते हैं ॥१३॥

अवनिज्याङ्घ्रियुगलमासीत् श्लोक्यो बलिर्महान् ।
ऐश्वर्यमतुलं लेभे गतिं चैकान्तिनां तु या ॥१४॥

आपके युगल चरणों को धोकर राजा बलि पवित्र यशस्वी, ऐश्वर्यवान् और भक्तों की गति को प्राप्त हो गया ॥१४॥

आपस्तेऽङ्घ्रयवनेजन्यस्त्रींलोकाञ्छुचयोपुनन् ।
शिरसाऽधत्त याः शर्वः स्वर्याताः सगरात्मजाः १५

आपके चरणों का जल अत्यन्त पवित्र है और वह त्रिलोकी को पवित्र करताहै कि जिसे शिवजी शिर पर धारण करते हैं और जिसके प्रभाव से सगर के पुत्रों को स्वर्ग प्राप्त होगया ॥१५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देव देव जगन्नाथ पुण्यश्रवणकीर्तन ।
यदूत्तमोत्तमश्लोक नारायण नमोऽस्तु ते ॥१६॥

हे देव ! हे देव ! हे जगन्नाथ ! हे पुण्य मय श्रवण तथा कीर्त्तन वाले ! हे उत्तम श्लोक ! हे नारायण ! आपको मेरा प्रणाम है ॥ १६ ॥

श्रीभगवानुवाच

आयास्ये भवतो गेहमहमार्यसमन्वितः ।
यदुचक्रद्रुहं हत्वा वितरिष्ये सुहृत्प्रियम् ॥१७॥

श्रीकृष्णजी बोले–मैं बल्देवजी के साथ आपके घर आऊँगा; परन्तु यदुकुल के बैरी कंसको मारने के पश्चात् अपने मित्रों का हित करने का विचारहै अर्थात् कंस को मार कर फिर आप लोगों के घर चलूंगा ॥१७॥

एवमुक्तो भगवता सोऽक्रूरो विमना इव ।
पुरीं प्रविष्टः कंसाय कर्माऽऽवेद्य गृहं ययौ ॥१८॥

भगवान् के इस प्रकार कहने पर अक्रूरजी उदास होकर पुरी में प्रविष्ट हुए और कंस को सूचित करके अपने घर चले गये ॥१८॥

अथापराह्णे भगवान् कृष्णः सङ्कर्षणान्वितः ।
मथुरां प्राविशद् गोपैर्दिदृक्षुः परिवारितः ॥१९॥

फिर दोपहर बीतने पर श्रीकृष्णजी बल्देवजी के साथ गोपों को लिये हुए मथुरा पुरी देखने के लिये उसमें पधारे ॥१९॥

ददर्श तां स्फाटिकतुङ्गगोपुरद्वारां बृहद्धेमकपाटतोरणाम् । ताम्राऽऽरकोष्ठां परिखादुरासदामुद्यानरम्योपवनोपशोभिनाम् ॥२०॥

उन्होंने मथुरापुरीको देखा कि जिसमें स्फटिक मणि के ऊँचे कोट-द्वार तथा गृह-द्वार बने हैं, सोने के बड़े-बड़े किवाड़ हैं और तोरण लगरहे हैं, तांबे और लोहे के अन्न रखने के कोठेहैं, जो चारों ओर खाई होने के कारण अत्यन्त दुर्गम हैं, उद्यानों व सुन्दर उपवनों की शोभा हो रही है ॥२०॥

सौवर्णशृङ्गाटकहर्म्यनिष्कुटैः श्रेणीसभाभिर्भवनैरुपस्कृताम् । वैदूर्यवज्राऽमलनीलविद्रुमैर्मुक्ताहरिद्भिर्वलभीषु वेदिषु ॥२१॥

जुष्टेषु जालामुखरन्ध्रकुट्टिमेष्वाविष्टपारावतबर्हिनादिताम् । संसिक्तरथ्यापणमार्गचत्वरां प्रकीर्णमाल्याङ्कुरलाजतन्दुलाम् ॥२२॥

स्वर्ण के चौराहे, धनियों के घर, घरमें बगीचे, एक उद्यम करने पाले शिल्पकारों के निवास-स्थान और घरोंसे शोभायमान, वैदूर्यमणि, हीरा, स्फटिक मणि; नीलमणि, विद्रुम मोती और हरित मणियों से जड़े हुए झरोखों के छिद्र, छज्जे, वेदी तथा मणि-जटित जगहों में कबूतर और मोर बोल रहे हैं और राज-मार्ग, बाज़ार तथा आँगन में जल का छिड़काव होरहा है एवं फूल, अंकुर और चावल बिखरे हुए हैं ॥२१॥२२॥

आपूर्णकुम्भैर्दधिचन्दनोक्षितैः प्रसूनदीपावलिभिः सपल्लवैः । सवृन्तरम्भाक्रमुकैः सकेतुभिः स्वलंकृतद्वारगृहां सपट्टिकैः ॥२३॥

प्रत्येक घर के दोनों ओर चावलों के ढेर पर धरे हुए जलसे पूर्ण सपल्लव घड़ों से शोभा होरही है, जिनके चारों ओर फूलों की माला लिपटी हुई है, उनके गलों में वस्त्र पड़ा है, उन्हें दही तथा चन्दन लगा हुआहै, ऊपरसे दूसरा वस्त्र डाल कर उसपर दीपक जलाये गये हैं, ध्वजायें लगाई गईहैं और आस-पास में फलों के गुच्छों सहित केले तथा सुपारी के वृक्ष लगाये गये हैं, पट्टियां जुदी ही लगाई गई हैं ॥ २३ ॥

तां सम्प्रविष्टौ वसुदेवनन्दनौ वृतौ वयस्यैर्नरदेववर्त्मना । द्रष्टुं समीयुस्त्वरिताः पुरस्त्रियो हर्म्याणि चैवारुरुहुर्नृपोत्सुकाः ॥२४॥

श्रीराम-कृष्ण ने अपने मित्रों सहित राज-मार्ग से उस पुरीमें प्रवेश किया, हे राजन् ! उस समय पुर की स्त्रियां बड़े ही उत्साह के साथ दर्शनों को आईं और (कुछ) महलों पर चढ़ गईं ॥२४॥

काश्चिद्विपर्यग्धृतवस्त्रभूषणा विस्मृत्य चैकं युगलेष्वथापराः । कृतैकपत्त्रश्रवणैकनूपुरा नाङ्क्त्वा द्वितीयं त्वपराश्च लोचनम् ॥२५॥

शीघ्रता में किसीने उलटे-पुलटे वस्त्र-आभूषण पहिन लिये, किसी ने जोड़े के आभूषणों में से एक ही पहिना, एक भुला दिया, कितनों ही ने कानपर केवल एक-एक ही पत्र लगाया, कितनों ने एक ही नूपुर पहना, दूसरे का ध्यान ही उड़ गया, कईएक ने एक ही आँख में सुरमा लगाया ॥२५॥

अश्नन्त्य एकास्तदपास्य भोजनमभ्यज्यमाना अकृतोपमज्जनाः । स्वपन्त्य उत्थाय निशम्य निःस्वनं प्रपाययन्त्योऽर्भमपोह्य मातरः ॥२६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कई एक भोजन करती थीं, वे भोजन छोड़कर चलदीं, कोई तैल-मर्दन कररही थीं वे बिना स्नान किये ही चलदीं, जो सोरही थीं वे झनक सुनते ही उठ खड़ी हुईं और जो मातायें बच्चों को दूध पिला रही थीं वे बच्चों को छोड़कर चली आईं ॥

मनांसि तासामरविन्दलोचनः प्रगल्भलीलाहसितावलोकनैः । जहार मत्तद्विरदेन्द्रविक्रमो दृशां ददच्छ्रीरमणात्मनोत्सवम् ॥२७॥

मदमाते गजराज के समान चाल वाले, लक्ष्मी जी को प्रीति देने वाले, श्रीअङ्ग से दृष्टिको आनंद देते हुए, कमल नयन श्रीकृष्णचन्द्र प्रौढ़ लीला-सहित अपनी मुसकान तथा चितवन से उनका मन हरण करतेथे ॥२७॥

दृष्ट्वा मुहुः श्रुतमनुद्रुतचेतसस्तं तत्प्रेक्षणोत्स्मित सुधोक्षणलब्धमानाः । आनन्दमूर्तिमुपगुह्य दृशात्म लब्धं हृष्यत्त्वचो जहुरनन्तमरिन्दमाधिम् ॥२८॥

हे कामजित् राजन् ! बारम्बार सुनने से उन्हीं में जिनका चित्त लग रहा था तथा उनके दर्शन हास्य और रूपामृत सिंचन से मान पानेके कारण रोमांच होरहा था, ऐसी स्त्रियों ने नेत्र रूपी द्वार से आनन्द मय भगवान् को हृदय में लाकर,उनसे भेंट करके उनके वियोगकी व्यथाको दूर करदिया॥

प्रासादशिखरारूढाः प्रीत्युत्फुल्लमुखाम्बुजाः । अभ्यवर्षन् सौमनस्यैः प्रमदा बलकेशवौ ॥२९॥

महलों की शिखरों पर चढ़कर प्रीति से प्रफुल्लित मुख होकर स्त्रियोंने राम-कृष्णपर फूलवरसाये॥

दध्यक्षतैः सोदपात्रैः स्रग्गन्धैरभ्युपायनैः । तावानर्चुः प्रमुदितास्तत्र तत्र द्विजातयः ॥३०॥

ब्राह्मण लोग प्रसन्नता-पूर्वक जहाँ-तहाँ जल-पात्र सहित दही, अक्षत, माला, चन्दन और भेंटों से इन दोनों भाइयों का सत्कार करने लगे ॥ ३० ॥

ऊचुः पौरा अहो गोप्यस्तपः किमचरन् महत् । या ह्येतावनुपश्यन्ति नरलोकमहोत्सवौ ॥३१॥

पुरी के मनुष्य कहने लगे कि अहो ! गोपियों ने ऐसा कौनसा बड़ा तप कियाहै जो मनुष्य-लोक को आनन्द देने वाले इन भगवान् का नित्य दर्शन करती हैं ॥३१॥

रजकं कञ्चिदायातं रङ्गकारं गदाग्रजः । दृष्ट्वाऽयाचत वासांसि धौतान्यत्युत्तमानि च॥३२॥

श्रीकृष्णजी ने किसी धोबीको आता हुआ देख कर उससे अत्युत्तम धुले हुए कपड़े मांगे ॥३२॥

देह्यावयोः समुचितान्यङ्ग वासांसि चार्हतोः । भविष्यति परं श्रेयो दातुस्ते नात्र संशयः ॥३३॥

कि हे अङ्ग ! तू हमें हमारे योग्य वस्त्र दे,क्यों कि हम इन वस्त्रों के योग्य हैं, यदि तू हमें ये वस्त्र देगा तो तेरा निश्चय ही कल्याण होगा ॥३३॥

स याचितो भगवता परिपूर्णेन सर्वतः । साक्षेपं रुषितः प्राह भृत्यो राज्ञः सुदुर्मदः ॥३४॥

सब प्रकार से पूर्ण काम भगवान् की याचना सुनकर, वह धोबी क्रोधित होकर तिरस्कार करता हुआ बोला, क्योंकि वह राजा का नौकर होने के कारण मदोन्मत्त था ॥३४॥

ईदृशान्येव वासांसि नित्यं गिरिवनेचराः । परिधत्त किमुद्वृत्ता राजद्रव्याण्यभीप्सत ॥३५॥

रे उद्धतो ! नित्य जङ्गल और पहाड़ों में रहकर ऐसे ही वस्त्र पहिनते हो न ? भला तुम राजा के माल पर क्यों मन चला रहे हो ? ॥३५॥

याताशु बालिशा मैवं प्रार्थ्यं यदि जिजीविषा । बध्नन्ति घ्नन्ति लुम्पन्ति दृप्तं राजकुलानि वै ॥३६॥

हे मूर्खो ! जल्दी चले जाओ, यदि तुम अपना जीवन चाहते हो तो अब ऐसी माँग मत करना, क्योंकि गर्ववाले मनुष्यको राजाके कर्मचारी बांध देते हैं, मारते हैं और लूट लेते हैं ॥३६॥

एवं विकत्थमानस्य कुपितो देवकीसुतः । रजकस्य कराग्रेण शिरः कायादपातयत् ॥३७॥

इस प्रकार बकवाद सुनकर श्रीकृष्ण भगवान् ने क्रोधित होकर उस धोबी का शिर अपने हाथके अगले भाग द्वारा धड़ से नीचे गिरा दिया ॥३७॥

तस्यानुजीविनः सर्वे वासःकोशान् विसृज्य वै । दुद्रुवुः सर्वतो मार्गं वासांसि जगृहेऽच्युतः ॥३८॥

उस धोबी के सब अनुचर वैसे ही कपड़ों की पोटलियां छोड़कर राह में चारों ओर निकलभागे और भगवान् ने वस्त्र ले लिये ॥३८॥

वसित्वात्मप्रिये वस्त्रे कृष्णः सङ्कर्षणस्तथा । शेषाण्यदत्त गोपेभ्यो विसृज्य भुवि कानिचित्॥३९

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीराम-कृष्ण ने अपने मन माने वस्त्र पहन कर कुछ तो गोपों को दे दिये और कुछ पृथ्वी पर डाल दिये ॥३९॥

ततस्तु वायकः प्रीतस्तयोर्वेषमकल्पयत् ।
विचित्रवर्णैश्चैलेयैराकल्पैरनुरूपतः ॥४०॥

फिर दर्ज़ी ने बड़े ही आनन्द के साथ उनके लिये पोशाक बनाई और उसमें भाँति २ के यथा योग्य रंगीन वस्त्र तथा आभूषण लगाये ॥४०॥

नानालक्षणवेषाभ्यां कृष्णरामौ विरेजतुः ।
स्वलङ्कृतौ बालगजौ पर्वणीव सितेतरौ ॥४१॥

विविध लक्षणों वाले वेष से श्रीराम-कृष्ण ऐसे शोभायमान लगते थे. जैसे उत्सव में शृङ्गार किये हुए बाल गज शोभा देते हैं ॥४१॥

तस्य प्रसन्नो भगवान् प्रादात् सारूप्यमात्मनः ।
श्रियं च परमां लोके बलैश्वर्यस्मृतीन्द्रियम् ॥४२॥

भगवान्ने उसपर प्रसन्न हो इस लोकमें लक्ष्मी, बल, ऐश्वर्य, स्मृति और इन्द्रियोंकी चतुरता उसे प्रदानकी तथा परलोकमें सारूप्य मुक्ति दी ॥४२॥

ततः सुदाम्नो भवनं मालाकारस्य जग्मतुः ।
तौ दृष्ट्वा स समुत्थाय ननाम शिरसा भुवि ॥४३॥

फिर वे सुदामा नामक माली के यहाँ पधारे, उनका दर्शन पाते ही माली ने तत्काल ही उठकर पृथ्वीपर शिर रखकर उन्हें प्रणाम किया ॥ ४३॥

तयोरासनमानीय पाद्यं चाथार्हणादिभिः ।
पूजां सानुगयोश्चक्रे स्रक्ताम्बूलानुलेपनैः ॥४४॥

उनके लिये आसन लाकर और पाद्य अर्पण करके माला बीड़ा तथा चन्दनादि से गोपों सहित प्रभु का पूजन किया ॥४४॥

प्राह नः सार्थकं जन्म पावितं च कुलं प्रभो ।
पितृदेवर्षयो मह्यं तुष्टा ह्यागमनेन वाम् ॥४५॥

और बोला कि हे प्रभु ! हमारा जन्म आज सफल तथा पवित्र होगया, आपके पधारने से मेरे पितर, देवता और ऋषि सभी मुझपर प्रसन्न हुएहैं।

भवन्तौ किल विश्वस्य जगतः कारणं परम् ।
अवतीर्णाविहांशेन क्षेमाय च भवाय च ॥४६॥

आप जगत्के परम कारणहैं और आपने यहाँ जगत् के कुशल-क्षेम के लिये अंश के साथ अवतार धारण कियाहै ॥ ४६ ॥

न हि वां विषमा दृष्टिः सुहृदोर्जगदात्मनोः ।
समयोः सर्वभूतेषु भजन्तं भजतोरपि ॥४७॥

आप जगदात्मा सबके सुहृद सब प्राणियों में समदृष्टि रखनेवालेहैं, आप कहींभी विषम दृष्टि नहीं करते, जो आपको भजताहै उसे आपभी भजतेहैं ॥

तावाज्ञापयतं भृत्यं किमहं करवाणि वाम् ।
पुंसोऽत्यनुग्रहो ह्येष भवद्भिर्यन्नियुज्यते ॥४८॥

ऐसे आप मुझ दासको आज्ञा दीजिये कि मैं क्या सेवाकरूँ ? आप जिस मनुष्यको आज्ञा देते हैं उसपर आपकी बड़ी ही कृपा मानी जाती है ॥४८॥

इत्यभिप्रेत्य राजेन्द्र सुदामा प्रीतमानसः ।
शस्तैः सुगन्धैः कुसुमैर्मालां विरचितां ददौ ॥४९॥

हे राजन् ! सुदामाने प्रसन्न होकर इस प्रकार विनयकी और भगवान्की इच्छाको समझकर श्रेष्ठ सुगंधवाले फूलोंकी माला बनाकर उन्हें अर्पणकी ॥

ताभिः स्वलङ्कृतौ प्रीतौ कृष्णरामौ सहानुगौ ।
प्रणताय प्रपन्नाय ददतुर्वरदौ वरान् ॥५०॥

उन मालाओं से ग्वालों के साथ शृङ्गार किये हुए श्रीराम-कृष्ण ने प्रणत तथा शरणागत सुदामा को वरदान दिया ॥५०॥

सोऽपि वव्रेऽचलां भक्तिं तस्मिन्नेवाखिलात्मनि ।
तद्भक्तेषु च सौहार्दं भूतेषु च दयां पराम् ॥५१॥

उसने भी सर्वात्मा भगवान् की निश्चल भक्ति भगवद्भक्तों से मित्रता और प्राणी मात्र के साथ परम दया करने के भावका वरदान माँगा ॥५१॥

इति तस्मै वरान् दत्त्वा श्रियं चान्वयवर्धिनीम् ।
बलमायुर्यशः कान्तिं निर्जगाम सहाग्रजः ॥५२॥

श्रीकृष्ण भगवान् उसे वैसा ही वरदान तथा वंशको बढ़ानेवाली लक्ष्मी, बल, आयु, यश और कान्ति देकर बल्देवजी के साथ वहाँ से चले ॥५२॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बयालीसवां अध्याय

(कुब्जा को वरदान तथा धनुर्भंग)

श्रीशुक उवाच

अथ व्रजन् राजपथेन माधवः स्त्रियं गृहीताङ्ग-
विलेपभाजनाम् । विलोक्य कुब्जां युवतीं वराननां
पप्रच्छ यान्तीं प्रहसन् रसप्रदः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी बोले–फिर राज-मार्गसे जातेहुए सुखदाता भगवान् ने हाथमें चंदनका प्याला लिये जाती हुई तरुणी सुन्दर मुखी कुब्जा को देखकर हास्य पूर्वक पूंछा कि ॥१॥

का त्वं वरोर्वेतदु हानुलेपनं कस्याङ्गने वा
कथयस्व साधु नः । देह्यावयोरङ्गविलेपमुत्तमं
श्रेयस्ततस्तेन चिराद् भविष्यति ॥ २ ॥

हे वरोरु ! हे अङ्गने ! तू कौनहै ? यह चन्दन किसे लिये जाती है ? हम से ठीक २ कह, यदि तू हमें यह चन्दन लगा देगी, तो तेरा इसी समय कल्याण होगा ॥२॥

सैरन्ध्र्युवाच

दास्यस्म्यहं सुन्दर कंससंमता त्रिवक्रनामा
ह्यनुलेपकर्मणि । मद्भावितं भोजपतेरतिप्रियं विना
युवां कोऽन्यतमस्तदर्हति ॥ ३ ॥

कुब्जा बोली–हे सुन्दर ! मैं त्रिवक्रा नाम की कंसकी दासी हूँ, लेपन को बनाने में कंस के यहाँ विशेष मान्य हूँ, मेरे हाथ का घिसा हुआ चन्दन कंस को अधिक प्रिय लगता है, परतु उस चन्दन लगाने के लिये आपके सिवा दूसरा कौन योग्यहै?

रूपपेशलमाधुर्यहसितालापवीक्षितैः ।
धर्षितात्मा ददौ सान्द्रमुभयोरनुलेपनम् ॥ ४ ॥

रूप, कोमलता, मधुरता, हास्य, भाषण और चितवनसे मोहित होकर कुब्जाने उन दोनों भाइयों को गहरा चन्दन भेंट किया ॥४॥

ततस्तावङ्गरागेण स्ववर्णेतरशोभिना ।
संप्राप्तपरभागेन शुशुभातेऽनुरञ्जितौ ॥ ५ ॥

और उनके वर्णसे पृथक् पीत चन्दन आदि भगवान्की नाभिसे ऊपर उनके सब शरीरमें लेपन किया, जिससे उनकी विशेष शोभा बढ़ गई ॥५॥

प्रसन्नौ भगवान् कुब्जां त्रिवक्रां रुचिराननाम् ।
ऋज्वीं कर्तुं मनश्चक्रे दर्शयन् दर्शने फलम् ॥ ६ ॥

अपने दर्शनका फल दिखलाते हुए भगवान् ने प्रसन्न होकर तीन स्थानोंसे टेढ़ी कुब्जा को सीधी करने का विचार किया ॥६॥

पद्भ्यामाक्रम्य प्रपदे द्व्यङ्गुल्युत्तानपाणिना ।
प्रगृह्य चुबुकेऽध्यात्ममुदनीनमदच्युतः ॥ ७ ॥
सा तदर्जुसमानाङ्गी बृहच्छ्रोणिपयोधरा ।
मुकुन्दस्पर्शनात् सद्यो बभूव प्रमदोत्तमा ॥ ८ ॥

भगवान्ने अपने चरणोंसे उसके पाँवके अगले भागको दबाकर दो अँगुलियाँ उठाकर हाथसे उस की ठोड़ी पकड़कर जैसे ही उसकी देह को ऊँचा किया त्योंही बड़े कटिभाग तथा स्तनोंवाली कुब्जा भगवान् के चरण स्पर्श से सीधे और समान अङ्गों युक्त उत्तम स्त्री बन गई ॥ ७॥८ ॥

ततो रूपगुणौदार्यसंपन्ना प्राह केशवम् ।
उत्तरीयान्तमाकृष्य स्मयन्ती जातहृच्छया ॥ ९ ॥

फिर रूप, गुण और उदारता मय कामदेव से व्याप्त कुब्जा ने भगवान्के दुपट्टेकी किनार खींचते हुए हँस कर कहा कि ॥९॥

एहि वीर गृहं यामो न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे ।
त्वयोन्मथितचित्तायाः प्रसीद पुरुषर्षभ ॥१०॥

हे वीर ! आइये, घर चलें, मैं आप को नहीं छोड़ सकती, हे पुरुषोत्तम ! आपके कारण क्षोभित चित्त वाली मुझ (दासी) पर आप कृपा करिये ॥

एवं स्त्रिया याच्यमानः कृष्णो रामस्य पश्यतः ।
मुखं वीक्ष्यानुगानां च प्रहसंस्तामुवाच ह ॥११॥

इस प्रकार कुब्जाके प्रार्थना करनेपर श्रीकृष्णजी ने बलरामजी के सम्मुख ही सब ग्वालों की ओर देखकर हँसते हुए कहा ॥११॥

एष्यामि ते गृहं सुभ्रूः पुंसामाधिविकर्शनम् ।
साधितार्थो गृहाणां नः पान्थानां त्वं परायणम् १२

हे सुन्दर भृकुटिधारी ! कार्य सिद्ध होजाने पर पुरुषोंके संताप हरनेवाले तेरे घर आऊँगा, क्योंकि हम स्त्रीहीन यात्रियोंको तो तेराही मुख्य आसराहै।

विसृज्य माध्व्या वाण्या तां व्रजन् मार्गे वणिक्पथैः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नानोपायनताम्बूलस्रग्गंधैः साग्रजोऽर्चितः ॥१३॥

ऐसे मीठे वचनों द्वारा उसे छोड़ कर श्रीकृष्ण जी आगेबढ़े,तब महाजनोंने अनेक भेंटें,बीड़ा माला आदि से बल्देवजी सहित उनका सत्कार किया ॥

तद्दर्शनस्मरक्षोभादात्मानं नाविदन् स्त्रियः ।
विस्रस्तवासःकबरवलयालेख्यमूर्तयः ॥१४॥

उनके दर्शनों से उत्पन्न हुए कामदेव के क्षोभ से स्त्रियाँ अपने को भी भूलगईं उन्हें अपने वस्त्र वेणी और वलय खुलने का भी पता न चल सका और वे चित्र लिखी सी खड़ी रहगईं ॥१४॥

ततः पौरान् पृच्छमानो धनुषः स्थानमच्युतः ।
तस्मिन् प्रविष्टो ददृशे धनुरैन्द्रमिवाद्भुतम् ॥१५॥

फिर भगवान् पुरवासियों से धनुष का स्थान पूछते हुए वहाँ पहुंचे और उन्होंने इन्द्र-धनुष के समान एक धनुष देखा ॥१५॥

पुरुषैर्बहुभिर्गुप्तमर्चितं परमर्द्धिमत् ।
वार्यमाणो नृभिः कृष्णः प्रसह्य धनुराददे ॥१६॥

जिसकी अनेक पहरेदार रखवाली करते थे, पूजा होती थी, विशेष समृद्धि होरही थी, श्रीकृष्ण भगवान् ने लोगों के रोकने पर भी उस धनुष को उठा लिया ॥१६॥

करेण वामेन सलीलमुद्धृतं सज्यं च कृत्वा निमिषेण पश्यताम् । नृणां विकृष्य प्रबभञ्ज मध्यतो यथेक्षुदण्डं मदकर्युरुक्रमः ॥१७॥

और जिस प्रकार मतवाला हाथी ऊखको तोड़ डालताहै, वैसे ही भगवान् ने उसे लीला पूर्वक ही बायें हाथसे उठाकर उसकी प्रत्यंचा चढ़ाकर और सब लोगों के देखते-देखते ही खींचकर एक क्षण में बीच से तोड़डाला ॥१७॥

धनुषो भज्यमानस्य शब्दः खं रोदसी दिशः ।
पूरयामास यं श्रुत्वा कंसस्त्रासमुपागमत् ॥१८॥

जिस समय धनुषटूटा उस समय उसके शब्द से आकाश, पृथ्वी, स्वर्ग और दिशायें गूञ्ज उठीं, और कंस भयभीत होगया ॥१८॥

तद्रक्षिणः सानुचराः कुपिता आततायिनः ।
गृहीतुकामा आवव्रुर्हन्यतां बध्यतामिति ॥१९॥

उसके रखवाली करने वालोंने अपने अनुचरों सहित हाथों में शस्त्र लेकर पकड़ने की इच्छा से भगवान् को घेर लिया और वे परस्पर कहने लगे कि पकड़ो-पकड़ो, मारो-मारो ॥ १९ ॥

अथ तान् दुरभिप्रायान् विलोक्य बलकेशवौ ।
क्रुद्धौ धन्वन आदाय शकलैस्तांश्च जघ्नतुः ॥२०॥

उनका बुरा विचार देखकर श्रीराम-कृष्ण ने क्रोधित होकर उसी धनुष के टुकड़े लेकर उन सबको मार डाला ॥ २० ॥

बलं च कंसप्रहितं हत्वा शालामुखात्ततः ।
निष्क्रम्य चेरतुर्हृष्टौ निरीक्ष्य पुरसम्पदः ॥२१॥

और कंस की भेजी हुई सेना का संहार करके उस धनुष-शाला से बाहर निकल कर मथुरा की संपदाको देखतेहुए वे स्वच्छन्द विचरनेलगे ॥२१॥

तयोस्तदद्भुतं वीर्यं निशम्य पुरवासिनः ।
तेजः प्रागल्भ्यरूपं च मेनिरे विबुधोत्तमौ ॥२२॥

उनका वह अद्भुत पराक्रम, प्रभाव,दृढ़ता और रूप देखकर पुरवासियों ने समझ लिया कि यह कोई उत्तम देव हैं ॥२२॥

तयोर्विचरतोः स्वैरमादित्योऽस्तमुपेयिवान् ।
कृष्णरामौ वृतौ गोपैः पुराच्छकटमीयतुः ॥२३॥

उनके स्वच्छन्द फिरते २ सूर्य अस्त होगया, तब श्रीराम-कृष्ण भी ग्वालों के साथ पुरी से डेरों पर लौट आये ॥२३॥

गोप्यो मुकुन्दविगमे विरहातुरा या आशासताशिष ऋतामधुपुर्यभूवन् । संपश्यतां पुरुषभूषणगात्रलक्ष्मीं हित्वेतरान्नु भजतश्चकमेऽयनं श्रीः२४॥

भगवान् के बिछुड़ते समय जो-जो आशायें विरहातुर दशा में पूर्ण होनेके लिये गोपियोंने कहा था, वे सभी कामनायें मथुरा में पूर्ण हुईं, क्योंकि लक्ष्मीजी ने अपने भक्त ब्रह्मा आदि को छोड़ कर जिसका आश्रय लिया है, ऐसे पुरुषभूषण श्रीकृष्ण जी के शरीर की शोभा उन लोगोंके देखनेमें आई॥

अवनिक्ताङ्घ्रियुगलौ भुक्त्वा क्षीरोपसेचनम् ।
ऊषतुस्तां सुखं रात्रिं ज्ञात्वा कंसचिकीर्षितम् ॥२५

हाथ-पाँव धोकर, दूध में पूड़ी मींजकर,भोजन कर और कंस का कर्त्तव्य समझ कर उस रात में वहीं सुख-पूर्वक ठहरे रहे ॥२५॥

कंसस्तु धनुषो भङ्गं रक्षिणां स्वबलस्य च ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वधं निशम्य गोविन्दरामविक्रीडितं परम् ॥२६॥
दीर्घप्रजागरो भीतो दुर्निमित्तानि दुर्मतिः ।
बहून्याचष्टोभयथा मृत्योर्दौत्यकराणि च ॥२७॥

जब कंसने यह सुना कि श्रीराम-कृष्ण ने धनुष तोड़ डाला और पहरेदार तथा उसकी सेना को मार डाला है और वह उनका केवल खेल ही था, पराक्रम नहीं, तब तो वह डर गया, उस दुष्ट बुद्धि को रातमें निद्रा न आई और वह स्वप्न तथा जाग्रत अवस्थामें बहुतसे मृत्यु-सूचक दृश्य देखनेलगा ॥

अदर्शनं स्वशिरसः प्रतिरूपे च सत्यपि ।
असत्यपि द्वितीये च द्वैरूप्यं ज्योतिषां तथा॥२८॥

प्रतिबिंबमें अपना शिर दिखाई न देना, चंद्रमा और सूर्य आदि प्रकाश वाले पदार्थोंका निष्कारण ही दो रूपों में दिखाई देना ॥२८॥

छिद्रप्रतीतिश्छायायां प्राणघोषानुपश्रुतिः ।
स्वर्णप्रतीतिर्वृक्षेषु स्वपदानामदर्शनम् ॥२९॥

अपने प्रतिबिंबमें छिद्र दीखना, उँगलीसे कान मूंदने पर प्राणों की ध्वनि सुनाई न पड़ना, वृक्षोंमें पीलापन देखना, अपने पैर दृष्टि न पड़ना ॥२९॥

स्वप्ने प्रेतपरिष्वंगः खरयानं विषादनम् ।
यायान्नलदमाल्यैकस्तैलाभ्यक्तो दिगम्बरः ॥३०॥

स्वप्नमें प्रेत से मिलना, गधे पर चढ़ना, विष खाना, जपा के लाल फूल पहिनना, तैल लगाकर नंगा और अकेला जाना ॥ ३० ॥

अन्यानि चेत्थंभूतानि स्वप्नजागरितानि च ।
पश्यन् मरणसंत्रस्तो निद्रां लेभे न चिन्तया॥३१॥

औरभी इसी तरहके स्वप्न तथा जाग्रत संबंधी ऐसे शकुन देखे कि जिनसे मृत्युकी चिन्ताके कारण भय के मारे उसकी नींद जाती रही ॥३१॥

व्युष्टायां निशि कौरव्य सूर्ये चाद्रयःसमुत्थिते ।
कारयामास वै कंसो मल्लक्रीडामहोत्सवम् ॥३२॥

हे राजन् ! ज्योंही रात बीतने पर सूर्य जल से बाहर निकला त्यों ही कंस ने मल्ल युद्ध का बड़ा उत्सव करवाया ॥ ३२ ॥

आनर्चुः पुरुषा रङ्गं तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ।
मञ्चाश्चालङ्कृताः स्रग्भिः पताकाचैलतोरणैः३३॥

मनुष्य रंगभूमि में सजने लगे, तुरी और भेरी बजनेलगी और मंच भी माला, पताका, वस्त्र तथा तोरण से सुशोभित किये गये ॥ ३३ ॥

तेषु पौरा जानपदा ब्रह्मक्षत्रपुरोगमाः ।
यथोपजोषं विविशू राजानश्च कृतासनाः ॥३४॥

उनपर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सब पुरवासी तथा देशवासी सुख-पूर्वक बैठगये और राजा भी अपने अपने आसनों पर बैठ गये ॥३४॥

कंसस्तु संवृतोऽमात्यैः राजमञ्च उपाविशत् ।
मण्डलेश्वरमध्यस्थो हृदयेन विदूयता ॥३५॥

यद्यपि कंस अपने मन्त्रियों के साथ मंडलेश्वर राजाओं के बीच में राज-मञ्च पर बैठा हुआ था, फिर भी हृदय से काँप रहाथा ॥३५॥

वाद्यमानेषु तूर्येषु मल्लतालोत्तरेषु च ।
मल्लाः स्वलंकृता दृप्ताः सोपाध्यायाः समागताः३६

मल्ल तालको उच्च ध्वनिमें बोधित करते हुए बाजे बजाने लगे और मल्ल लोग अपने गुरुओं के साथ सज-धजकर बड़े गर्व पूर्वक आने लगे ॥३६॥

चाणूरो मुष्टिकः कूटः शलस्तोशल एव च ।
त आसेदुरुपस्थानं वल्गुवाद्यप्रहर्षिताः ॥३७॥

चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल आदि सभी सुन्दर बाजों की ध्वनि सुनकर मल्ल-भूमि में आ पहुंचे ॥३७॥

नन्दगोपादयो गोपा भोजराजसमाहुताः ।
निवेदितोपायनास्ते एकस्मिन् मञ्च आविशन् ३८

कंसके बुलाये हुए नंद आदि सभी गोप भेंटें देकर एकही मञ्च पर बैठ गये ॥३८॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

तेतालीसवां अध्याय

(कुवलयापीड़ हाथी का वध)

श्रीशुक उवाच

अथ कृष्णश्च रामश्च कृतशौचौ परन्तप ।
मल्लदुन्दुभिनिर्घोषं श्रुत्वा द्रष्टुमुपेयतुः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परंतप ! पहले ही से पवित्र कृत किये हुए श्रीराम-कृष्ण मल्लों के नक़ारे की ध्वनि सुनकर देखने को आये ॥१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रङ्गद्वारं समासाद्य तस्मिन्नागमवस्थितम् ।
अपश्यत् कुवलयापीडं कृष्णोम्बष्ठप्रचोदितम् ॥ २॥

श्रीकृष्णजी ने रंगभूमिके द्वार पर आकर देखा कि कुवलयापीड़ हाथी खड़ा है और महावत उसे प्रेरणा करता है ॥२॥

बद्ध्वा परिकरं शौरिः समुह्य कुटिलालकान् ।
उवाच हस्तिपं वाचा मेघनादगभीरया ॥३॥

भगवान् ने उसे देखते ही अपनी कमर कस तथा घुंघराले बाल सँभालकर महावतसे कहा कि।

अम्बष्ठाम्बष्ठ मार्गं नौ देह्यपक्रम मा चिरम् ।
नो चेत् सकुञ्जरं त्वाद्य नयामि यमसादनम्॥ ४ ॥

हे महावत ! हे महावत ! हमें मार्ग दे, हाथी को जल्दी ही हटाले, अन्यथा हम हाथी के सहित तुझे यमलोक में पहुंचा देंगे ॥४॥

एवं निर्भर्त्सितोऽम्बष्ठः कुपितः कोपितं गजम् ।
चोदयामास कृष्णाय कालान्तकयमोपमम्॥ ५ ॥

इस प्रकार डाँट दिखलाने पर उस महावत ने हाथीका क्रोध बढ़ाकर उसे श्रीकृष्णजीपर चलाया॥

करीन्द्रस्तमभिद्रुत्य करेण तरसाऽग्रहीत् ।
कराद्विगलितः सोऽमुं निहत्याङ्घ्रिष्वलीयत॥ ६ ॥

हाथीने दौड़कर जल्दीसे श्रीकृष्णजीको अपनी सूंड़में दबा लिया, तब श्रीकृष्णजी सूंड़ से खिसक कर मुष्टि का प्रहार करके उसके पैरोंमें छिपगये।६॥

संक्रुद्धस्तमचक्षाणो घ्राणदृष्टिः स केशवम् ।
परामृशत् पुष्करेण स प्रसह्य विनिर्गतः ॥ ७ ॥

हाथी उनको न देखकर बड़ा क्रोधित हुआ और नाक से सूंघते-सूंघते उसने फिर भगवान्को पकड़ लिया, परन्तु वे बल पूर्वक सूंड़ से छूटकर बाहर निकल आये ॥ ७ ॥

पुच्छे प्रगृह्याऽतिबलं धनुषः पञ्चविंशतिम् ।
विचकर्ष यथा नागं सुपर्णः इव लीलया ॥ ८ ॥

फिर उस महान् बली हाथी की पूंछ पकड़कर पच्चीस धनुष के अन्तर तक पीछे की ओर इस प्रकार घसीट लेगये जैसे गरुड़ लीला पूर्वक सर्प को ले जाता है ॥८॥

स पर्यावर्तमानेन सव्यदक्षिणतोऽच्युतः ।
बभ्राम भ्राम्यमाणेन गोवत्सेनेव बालकः ॥ ९ ॥

उस हाथी के चारों ओर पूंछ पकड़कर चक्कर लगाते हुए भगवान् ऐसी शोभा देतेथे, जैसे बछड़े की पूंछ पकड़े हुए बालक भ्रमण करता हो ॥ ९ ॥

ततोऽभिमुखमभ्येत्य पाणिनाऽऽहत्य वारणम् ।
प्राद्रवन् पातयामास स्पृश्यमानः पदे पदे ॥१०॥

फिर भगवान् ने उसके सामने आकर हाथ से प्रहार किया और पद-पद पर दौड़ते हुए ठोकर मार-मार कर उसे गिरा दिया ॥ १० ॥

स धावन् क्रीडया भूमौ पतित्वा सहसोत्थितः ।
तं मत्वा पतितं क्रुद्धो दन्ताभ्यां सोऽहनत् क्षितिम्॥११

दौड़ते हुए भगवान् भी लीला-पूर्वक पृथ्वी पर गिर पड़े और तत्काल ही उठ खड़े हुए, हाथी ने उन्हें पृथ्वी पर ही पड़ा हुआ जान कर क्रोध पूर्वक दांतों से भूमि पर प्रहार किया ॥११॥

स्वविक्रमे प्रतिहते कुञ्जरेन्द्रोऽत्यमर्षितः ।
चोद्यमानो महामात्रैः कृष्णमभ्यद्रवद्रुषा ॥१२॥

अपना पराक्रम व्यर्थ जानेपर वह हाथी अत्यंत क्रोधित हुआ और महावतों की ललकार पर फिर से सक्रोध श्रीकृष्णजी की ओर दौड़ा ॥१२॥

तमापतन्तमासाद्य भगवान् मधुसूदनः ।
निगृह्य पाणिना हस्तं पातयामास भूतले ॥१३॥

मधुसूदन भगवान्ने उसे आता हुआ देखकर हाथ से सूंड़ पकड़कर पृथ्वीपर पटक दिया ॥१३॥

पतितस्य पदाक्रम्य मृगेन्द्र इव लीलया ।
दन्तमुत्पाट्य तेनेभं हस्तिपांश्चाहनद् हरिः ॥१४॥

उस पड़े हुए हाथी पर भगवान्ने अपना सिंह के समान चरण रखकर और लीला पूर्वक उसका दाँत उखाड़कर उसी के द्वारा उस हाथी तथा महावत को मार डाला ॥१४॥

मृतकं द्विपमुत्सृज्य दन्तपाणिः समाविशत् ।
अंसन्यस्तविषाणोऽसृङ्मदबिन्दुभिरङ्कितः ॥१५॥

भगवान् मरे हुए हाथी को छोड़कर, उसका दाँत हाथमें पकड़कर कन्धे पर धरे हुए रंगभूमि में पधारे, उस समय मद के छींटे शरीरपर झलक रहे थे और पसीने के छोटे-छोटे विन्दु मुखारविन्द पर शोभा दे रहे थे ॥१५॥

विरूढस्वेदकणिकावदनाम्बुरुहो बभौ ।
वृतौ गोपैः कतिपयैर्बलदेवजनार्दनौ ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रङ्गं विविशतू राजन् गजदन्तवरायुधौ ॥१६॥

हे राजन्! वे दोनों भाई श्रीराम-कृष्ण हाथी के दाँतरूपी श्रेष्ठ आयुध को लिये हुए कितने एक गोपों के साथ रंगभूमि में पहुँचे ॥१६॥

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान् गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः। मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः ॥१७॥

उस समय प्रत्येक मनुष्य को अपनी भावनाके अनुसार ही भगवान् का स्वरूप दिखाई दिया* मल्लों को वज्ररूप, मनुष्यों को उत्तम मनुष्य, स्त्रियों को मूर्त्तिमान् कामदेव; गोपों को स्वजन, दुष्ट राजाओं को दण्ड देने वाला, अपने माता-पिताको बालक, कंस को मृत्यु, अज्ञानियों को रक्त लगे होने के कारण वीभत्स, योगियों को परम तत्व, यादवों को पर देवता, (रूप प्रतीत हुए) ॥१७॥

हतं कुवलयापीडं दृष्ट्वा तावपि दुर्जयौ।
कंसो मनस्व्यपि तदा भृशमुद्विविजे नृप ॥१८॥

हे राजन्! यद्यपि कंस स्वयं शूरवीर था, परंतु हाथी को मरा हुआ जान कर उनको भी दुर्जय समझते हुए वह बहुत भयभीत हुआ ॥१८॥

तौ रेजतू रङ्गगतौ महाभुजौ विचित्रवेषाकरण-स्रगम्बरौ। यथा नटावुत्तमवेषधारिणौ मनः क्षिपन्तौ प्रभया निरीक्षताम् ॥१९॥

विशाल बाहु, विचित्रवेष, आभूषण, माला और वस्त्रोंको धारण किये हुए श्रीराम-कृष्ण रंगभूमि में जाकर उत्तम रूपधारी नटकी नाईं शोभा देने लगे॥

निरीक्ष्य ता उत्तमपूरुषौ जना मञ्चस्थिता नागरराष्ट्रका नृप। प्रहर्षवेगोत्कलितेक्षणाननाः पपुर्न तृप्ता नयनैस्तदाननम् ॥२०॥

हे राजन्! मंचोंपर बैठेहुए पुर तथा देशवासी और राजागण आनन्दके वेग से प्रसन्न मुख तथा नेत्र होकर, अपने नयनों के द्वारा उनके मुख का पान (दर्शन) करनेलगे परन्तु वे तृप्त नहीं होते।२०।

*-जिनके रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी॥

पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां लिहन्त इव जिह्वया।
जिघ्रन्त इव नासाभ्यां श्लिष्यन्त इव बाहुभिः २१

ऐसे जान पड़ता था मानो वे लोग नेत्रों से पी रहे हों, जीभ से चाट रहे हों, नाक से सूंघ रहे हों और भुजाओं से मिल रहे हों ॥२१॥

ऊचुः परस्परं ते वै यथादृष्टं यथा श्रुतम्।
तद्रूपगुणमाधुर्यप्रागल्भ्यस्मारिता इव ॥२२॥

और जैसे भगवान् के रूप, गुण, माधुर्य तथा प्रौढ़ताने स्मरण दिलायाहो, वैसेही वे लोग देखने और सुनने के अनुसार आपसमें कहने लगे कि॥

एतौ भगवतः साक्षाद्धरेर्नारायणस्य हि।
अवतीर्णाविहांशेन वसुदेवस्य वेश्मनि ॥२३॥

ये दोनों साक्षात् विष्णु भगवान् नारायण के अंश, अपने अंश सहित यहीं वसुदेवजी के यहाँ प्रकट हुए हैं ॥२३॥

एष वै किल देवक्यां जातो नीतश्च गोकुलम्।
कालमेतं वसन् गूढौ ववृधे नन्दवेश्मनि ॥२४॥

यह तो देवकी के यहाँ उत्पन्न हुए थे, फिर गोकुलमें पहुँचाये गये थे, इनने समयतक नंदराय जी के घरमें छिपकर बड़े हुए हैं ॥२४॥

पूतनानेन नीतान्तं चक्रवातश्च दानवः।
अर्जुनौ गुह्यकः केशी धेनुकोन्ये च तद्विधाः॥२५॥
गावः सपाला एतेन दावाग्नेः परिमोचिताः।
कालियो दमितः सर्प इन्द्रश्च विमदः कृतः ॥२६॥

इन्होंने पूतना को मारा; बगूले का रूप धरने वाला दैत्य, यमलार्जुन वृक्ष, शंखचूड़, केशी, धेनुक तथा और भी इसी प्रकार के दैत्यों को मार कर, ग्वालों सहित गौओं को दावानल से बचाया, कालीय नागका मर्दन तथा इन्द्रका मान भंगकिया॥

सप्ताहमेकहस्तेन धृतोद्रिप्रवरोमुना।
वर्षवाताशनिभ्यश्च परित्रातं च गोकुलम् ॥२७॥

इन्होंने सात दिन तक हाथ पर गोवर्धन पर्वत रक्खा वर्षा, वायु तथा बिजलियों से व्रज को बचाया॥ २७॥

गोप्योस्य नित्यमुदितहसितप्रेक्षणं मुखम्।
पश्यन्त्यो विविधांस्तापांस्तरन्ति स्माश्रमं मुदा२८

इनके आनंदित, हास्ययुक्त चितवन वाले मुख

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का दर्शन करते २ गोपियां आनन्दसे विना श्रम ही अनेक प्रकार के तापों से छूट गई हैं ॥२८॥

वदन्त्यनेन वंशोऽयं यदोः सुबहुविश्रुतः।
श्रियं यशो महत्त्वं च लप्स्यते परिरक्षितः ॥२९॥

इनके द्वारा रक्षित यह यदुवंश विशेष प्रसिद्ध होकर लक्ष्मी, यश और बड़प्पन को प्राप्त होगा, ऐसा कहा जाता है ॥२९॥

अयं चास्याग्रजः श्रीमान् रामः कमललोचनः।
प्रलम्बो निहतो येन वत्सको ये बकादयः ॥३०॥

और यह कमलके समान नेत्र वाले श्रीमान् बलरामजी इनके बड़े भाई हैं, इन्होंने प्रलंब, वत्सासुर और बकासुर आदि का वध किया है ॥३०॥

जनेष्वेवं ब्रुवाणेषु तूर्येषु निनदत्सु च।
कृष्णरामौ समाभाष्य चाणूरो वाक्यमब्रवीत् ३१॥

श्रीशुकदेवजी बोले—लोग परस्पर इस प्रकार कहरहे थे और बाजे बजरहे थे, उसीसमय चाणूर नामक मल्ल श्रीराम-कृष्ण को बुलाकर इस प्रकार कहने लगा ॥३१॥

हे नन्दसूनो हे राम भवन्तौ वीरसंमतौ।
नियुद्धकुशलौ श्रुत्वा राज्ञाऽऽहूतौ दिदृक्षुणा ॥३२॥

हे नंदलाल ! हे राम ! तुम दोनोंको वीरपुरुषों में मान्य और मल्ल-युद्ध में कुशल सुनकर राजाजी ने मल्ल-युद्ध देखने के लिये यहाँ बुलाया है ॥३२॥

प्रियं राज्ञः प्रकुर्वन्त्यः श्रेयो विन्दन्ति वै प्रजाः।
मनसा कर्मणा वाचा विपरीतमतोऽन्यथा ॥३३॥

जो प्रजा मन, वचन और कर्म से राजा को प्रसन्न रखती है वह सुखी रहती है, अन्यथा उसे उलटा फल भोगना पड़ता है ॥ ३३॥

नित्यं प्रमुदिता गोपा वत्सपाला यथा स्फुटम्।
वनेषु मल्लयुद्धेन क्रीडन्तश्चारयन्ति गाः ॥३४॥

गौओं और बछड़ों को पालने वाले लोग बन में निरन्तर आनन्द करते हैं और मल्ल-युद्ध की क्रीड़ा करते हुए गौओं को चराया करते हैं, यह बात प्रकट है ॥३४॥

तस्माद् राज्ञः प्रियं यूयं वयं च करवामहे।
भूतानि नः प्रसीदन्ति सर्वभूतमयो नृपः ॥३५॥

इसलिये हमें और तुम्हें मिल कर राजा को प्रसन करना चाहिये, क्योंकि राजा जिसपर प्रसन्न होताहै, उसपर सभी प्राणी प्रसन्न होते हैं ॥३५॥

तन्निशम्याब्रवीत् कृष्णो देशकालोचितं वचः।
नियुद्धमात्मनोऽभीष्टं मन्यमानोऽभिनन्द्य च ॥३६॥

यह बात सुनकर श्रीकृष्णजीने उसका सत्कार कर युद्ध को ही अपना अभीष्ट मान कर देश-काल के अनुसार यह वचन कहे ॥ ३६ ॥

प्रजा भोजपतेरस्य वयं चापि वनेचराः।
करवाम प्रियं नित्यं तन्नः परमनुग्रहः ॥३७॥

तुम और हम वनमें रहने वाले दोनों ही राजा कंस की प्रजा हैं, इसे मैं भी मानता हूँ कि राजाको प्रसन्न रखना चाहिये तथा उसकी आज्ञा को बड़ा अनुग्रह समझना चाहिये ॥ ३७ ॥

बाला वयं तुल्यबलैः क्रीडिष्यामो यथोचितम्।
भवेन्नियुद्धं मा धर्मः स्पृशेन्मल्लसभासदः ॥३८॥

परन्तु हम बालकहैं, इसलिये अपने समान बल वालों के साथ यथोचित रूप से खेलेंगे, क्योंकि योग्य रीति से मल्ल-युद्ध होनेपर मल्ल-समाज वालों को अधर्म नहीं लगता ॥३८॥

चाणूर उवाच

न बालो न किशोरस्त्वं बलश्च बलिनां वरः।
लीलयेभो हतो येन सहस्रद्विषसत्त्वभृत् ॥३९॥

चाणूर बोला—तुम न तो बालक हो और न किशोर हो और बलराम भी बलवानों में श्रेष्ठ हैं, जिसने हज़ार हाथियों के समान बलधारी कुवलयापीड़ को मार गिराया ॥३९॥

तस्माद् भवद्भ्यां बलिभिर्योद्धव्यं नाऽनयोऽत्र वै।
मयि विक्रम वार्ष्णेय बलेन सह मुष्टिकः ॥४०॥

इसलिये तुम बलवानों के साथ युद्ध करो, इस में कोई अधर्म नहीं है, हे कृष्ण ! तुम मुझसे भिड़ो और बलराम मुष्टिक से भिड़ें ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

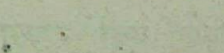

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चवालीसवां अध्याय

(मल्लों तथा कंस का वध)

श्रीशुक उवाच

एवं चर्चितसङ्कल्पो भगवान् मधुसूदनः ।
आससादाथ चाणूरं मुष्टिकं रोहिणीसुतः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-इस प्रकार निश्चय सङ्कल्प किये हुए श्रीकृष्ण भगवान् चाणूर से भिड़े और बलरामजी मुष्टिक से ॥१॥

हस्ताभ्यां हस्तयोर्बद्ध्वा पद्भ्यामेव च पादयोः ।
विचकर्षतुरन्योन्यं प्रसह्य विजिगीषया ॥ २ ॥

परस्पर हाथों से हाथ और पैरों से पैर मिला कर जीतने की इच्छासे एक दूसरेको खींचनेलगे॥

अरत्नी द्वे अरत्निभ्यां जानुभ्यां चैव जानुनी ।
शिरः शीर्ष्णोरसोरस्तावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ ३ ॥

एक दूसरे की अरत्नि में अरत्नि (कोहनी के नीचे से अंगुली तक का हाथ) घुटनों में घुटना, शिर में शिर और छाती में छाती भिड़ने लगे ॥३॥

परिभ्रामणविक्षेपपरिरम्भावपातनैः ।
उत्सर्पणापसर्पणैश्च अन्योन्यं प्रत्यरुन्धताम् ॥ ४ ॥

चारों ओर घुमाना, धक्का देना; हाथ में पकड़ कर दबाना, नीचे पटकना, छोड़कर आगे बढ़ना, पीछे हटना-ऐसी क्रियाओं द्वारा एक दूसरे को रोक रहे थे ॥४॥

उत्थापनैरुन्नयनैश्चालनैः स्थापनैरपि ।
परस्परं जिगीषन्तावपचक्रतुरात्मनः ॥ ५ ॥

घुटने और पाँव समेट कर पड़े हुए को सरकाना, हाथों से उठाकर ले जाना, गला आदि दबा कर चिपटे हुए को दूर करना, पैर आदि समेटना ऐसी क्रियाओं के द्वारा एक दूसरे को जय की इच्छा से पीड़ित करते थे ॥५॥

तद्बलावलवद्युद्धं समेताः सर्वयोषितः ।
ऊचुः परस्परं राजन् सानुकम्पा वरूथशः ॥ ६ ॥

हे राजन् ! इस (प्रकट) बलवान् (चाणूर और मुष्टिक) तथा निर्बल (श्रीराम-कृष्ण) के (असंगत) युद्ध को देखकर एकत्र हुई स्त्रियों के समूह करुणा पूर्वक परस्पर कहने लगे कि ॥६॥

महानयं बताऽधर्म एषां राजसभासदाम् ।
ये बलाबलवद्युद्धं राज्ञोऽन्विच्छन्ति पश्यतः ॥ ७ ॥

ये राजा के सभासद बड़ा अन्याय कर रहेहैं जो राजा के देखते हुए भी बलवान् और निर्बल का मल्ल-युद्ध को स्वयं करा रहे हैं ॥७॥

क्व वज्रसारसर्वाङ्गौ मल्लौ शैलेन्द्रसन्निभौ ।
क्व चातिसुकुमाराङ्गौ किशोरौ नाप्तयौवनौ ॥ ८ ॥

भला कहाँ तो वज्र के समान कठोर अङ्गवाले मल्ल और कहाँ अति सुकुमार किशोर अवस्था वाले यह बालक ? कि जिनकी अभी यौवनावस्था भी प्रारम्भ नहीं हुई ॥८॥

धर्मव्यतिक्रमो ह्यस्य समाजस्य ध्रुवं भवेत् ।
यत्राधर्मः समुत्तिष्ठेन्न स्थेयं तत्र कर्हिचित् ॥ ९ ॥

इस सभा में अवश्य ही अधर्म होगा, जहाँ अधर्म हो वहाँ कदापि न बैठना चाहिये ॥९॥

न सभां प्रविशेत् प्राज्ञः सभ्यदोषाननुस्मरन् ।
अब्रुवन्विब्रुवन्नज्ञो नरः किल्बिषमश्नुते ॥ १० ॥

सभासदों पर आने वाले लाञ्छनों के जानने वाले पुरुष को सभा में भी न जाना चाहिये, क्यों कि यदि वह विपरीत बोले तो बुरा और-मैं कुछ नहीं जानता-ऐसा कहकर चुप हो जाय तो भी पाप का भागी ॥१०॥

वल्गतः शत्रुमभितः कृष्णस्य वदनाम्बुजम् ।
वीक्ष्यतां श्रमवार्युप्तं पद्मकोशमिवाम्बुभिः ॥ ११ ॥

शत्रु के चारों ओर दौड़ते हुए श्रीकृष्णजी का मुखारविन्द पसीने की बूंदों से भरा हुआ होने के कारण देखो तो कैसा जान पड़ताहै जैसे जल-विंदु से पूर्ण कमल दीखता है ॥११॥

किं न पश्यत रामस्य मुखमाताम्रलोचनम् ।
मुष्टिकं प्रति सामर्षं हाससंरम्भशोभितम् ॥ १२ ॥

दूसरी स्त्री ने कहा कि क्या रामकी ओर नहीं देखतीं, देखो, यद्यपि उनके नेत्र अरुण हो रहे हैं और मुष्टिक की ओर क्रोध पूर्ण दृष्टि आतेहैं फिर भी हास्य के आवेश से उनका मुख शोभायमान् लगता है ॥ १२ ॥

पुण्या बत व्रजभुवो यदयं नृलिङ्गगूढः पुराण-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुरुषो वनचित्रमाल्यः गाः पालयन् सहबलःक्वण-
यंश्च वेणुं विक्रीडयाऽञ्चति गिरित्ररमार्चिताङ्घ्रिः॥

व्रज-भूमि धन्य है, जहाँ नर-तन में छिपे हुए साक्षात् सनातन पुरुष, वनके विचित्र पुष्पों को धारण किये हुए, बलदेवजीके साथ गौओंको चराते वंशी बजाते और क्रीड़ा करते हुए विराजते हैं, कि जिनके चरणों का महादेवजी तथा लक्ष्मीजी पूजन करती हैं ॥१३॥

गोप्यस्तपः किमचरन् यदमुष्य रूपं लावण्य-
सारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम् । दृग्भिः पिबन्त्यनु-
सवाभिनवं दुरापमेकान्तधाम यशसः श्रिय
ऐश्वरस्य ॥१४॥

भला गोपियों ने ऐसा कौनसा पुण्य किया है कि जो श्रीकृष्ण के लावण्य से श्रेष्ठ, नित्य नये, दुर्लभ, यश, लक्ष्मी और वैभव के अटल स्थान, स्वयं सिद्ध और ऐसे रूप को पान किया करती हैं कि जिसकी समता या अधिकता करने वाला कोई नहीं है ॥१४॥

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेपप्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितो
क्षणमार्जनादौ । गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रु-
कण्ठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः॥१५॥

व्रजवालाओंको धन्यहै, कि जो गौ-दोहनकरती हुईं, मन्थन करती हुईं, लीपतीं,झलतीं छिड़कतीं और सीचती हुईं तथा बालकों को रोते समय बहलाती एवं झाड़ती हुईं आदि अनेक कर्मों में लगी रहने पर भी अनुरक्त चित्तसे इन्हीं भगवान् के चरित्रोंको गाया करती हैं और उस समय उन का चित्त भगवान् में लग जाता है और प्रेमानन्द से नेत्रों में आँसू भर आते हैं ॥१५॥

प्रातर्व्रजाद् व्रजत आविशतश्च सायं गोभिः
समं क्वणयतोऽस्य निशम्य वेणुम् । निर्गम्य
तूर्णमबलाः पथि भूरिपुण्याः पश्यन्ति सस्मितमुखं
सदयावलोकम् ॥१६॥

जब गौओं के साथ प्रातःकाल व्रजसे जाते हुए तथा सन्ध्या समय लौटकर आते हुए ये भगवान् वंशी बजाते हैं, तब वंशी की ध्वनि सुनकर जल्दी घर से बाहर निकल कर, भाग्यवती गोपियां मार्ग में इनके दया दृष्टि पूर्ण तथा मन्द हास्य मय सुख का दर्शन करती हैं ॥१६॥

एवं प्रभाषमाणासु स्त्रीषु योगेश्वरो हरिः ।
शत्रुं हन्तुं मनश्चक्रे भगवान् भरतर्षभ ॥१७॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! जब स्त्रियां इस प्रकार कह रहीं थीं, तब योगेश्वर भगवान् हरि ने शत्रु को मारने का विचार किया ॥ १७ ॥

सभयाः स्त्रीगिरः श्रुत्वा पुत्रस्नेहशुचातुरौ ।
पितरावन्वतप्येतां पुत्रयोरबुधौ बलम् ॥१८॥

भयसे भरी हुई स्त्रियोंके वचन सुनकर, पुत्र-स्नेह के कारण आतुर माता-पिता शोक करने लगे क्योंकि वे पुत्र के बल को न जानते थे १८॥

तैस्तैर्नियुद्धविधिभिर्विविधैरच्युतेतरौ ।
युयुधाते यथान्यायं तथैव बलमुष्टिकौ ॥१९॥

उन अनेक प्रकारके मल्ल-युद्ध सम्बन्धी नियमों के अनुसार न्याय पूर्वक श्रीकृष्ण, चाणूर, बलराम और मुष्टिक लड़ रहे थे ॥१९॥

भगवद्गात्रनिष्पातैर्वज्रनिष्पेषनिष्ठुरैः ।
चाणूरो भज्यमानाङ्गो मुहुर्ग्लानिमवाप ह ॥२०॥

भगवान् के वज्र तुल्य शरीर के कठोर प्रहारों से चाणूर के सब अङ्ग टूट गये और वह बार-बार ग्लानि करने लगा ॥२०॥

स श्येनवेग उत्पत्य मुष्टीकृत्य करावुभौ ।
भगवन्तं वासुदेवं क्रुद्धो वक्ष्यस्यबाधत ॥२१॥

उसने शिकरे के वेग की नाईं उछल कर और दोनों हाथों की मुट्ठी बाँधकर श्रीकृष्णके वक्षःस्थल पर प्रहार किया ॥२१॥

नाचलत् तत्प्रहारेण मालाहत इव द्विपः ।
बाह्वोर्निगृह्य चाणूरं बहुशो भ्रामयन् हरिः॥२२॥
भूपृष्ठे पोथयामास तरसा क्षीणजीवितम् ।
विस्रस्ताऽऽकल्पकेशस्रगिन्द्रध्वज इवापतत् ॥२३॥

परन्तु जैसे मालाके प्रहारसे हाथी चलायमान् नहीं होता, वैसेही उस प्रहारसे श्रीकृष्ण बिल्कुल ही विचलित न हुए और उन्होंने चाणूर की दोनों भुजायें पकड़कर उसे खूब घुमातेहुए पृथ्वीपर पछाड़ दिया, उसके तत्कालही प्राण निकलगये और गहने बाल तथा माला सब बिखरगये, गिरतेसमय ऐसा जान पड़ा मानो इन्द्र-ध्वज गिरा हो ॥२२॥२३॥

तथैव मुष्टिकः पूर्वं स्वमुष्ट्याभिहतेन वै ।
बलभद्रेण बलिना तलेनाभिहतो भृशम् ॥२४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसीप्रकार मुष्टिक कि जिसने पहले बल्देवजी पर प्रहार किया था, उसे बल्देवजी ने तल प्रहार से मार गिराया ॥ २४ ॥

प्रवेपितः स रुधिरमुद्वमन्मुखतोऽर्दितः ।
व्यसुः पपातोर्व्युपस्थे वाताहत इवाङ्घ्रपः ॥२५॥

उसके मुंहसे लोहू बहनेलगा और वह काँपता हुआ निष्प्राण होकर इस प्रकार पृथ्वी तलपर गिर पड़ा जैसे पवन-वेग से उखड़ा हुआ वृक्ष ॥ २५ ॥

ततः कूटमनुप्राप्तो रामः प्रहरतां वरः ।
अवधील्लीलया राजन् सावज्ञं वाममुष्टिना ॥२६॥

हे राजन् ! फिर कूटनामक मल्लको आता हुआ देखकर प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ श्रीबल्देवजी ने लीला पूर्वक उसका अपमान करते हुए बाँई मुष्टि से प्रहार करके उसे मार डाला ॥ २६॥

तावेव हि शलः कृष्णपदापहतशीर्षकः ।
द्विधा विदीर्णस्तोशलक उभावपि निपेततः॥२७॥

उसी समय 'शल' श्रीकृष्णजी के चरण-प्रहार से शिर फट जाने के कारण मरगया और तोशल को चीर कर दो टुकड़े कर दिये, इस भांति से वे दोनों ही गिर गये ॥ २७ ॥

चाणूरे मुष्टिके कूटे शले तोशलके हते ।
शेषाः प्रदुद्रुवुर्मल्लाः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥२८॥

चाणूर, मुष्टिक, कूट,शल और तोशल के मरने पर बचे हुए मल्ल अपने प्राण बचा-बचा कर भाग निकले ॥ २८ ॥

गोपान् वयस्यानाकृष्य तैः संसृज्य विजह्रतुः ।
वाद्यमानेषु तूर्येषु वल्गन्तौ नूपुरौ ॥२९॥

तब श्रीकृष्ण भगवान् अपने मित्र गोपों को खींचकर अखाड़े में लेगये और उनके साथ खेलने लगे, उस समय बाजे बाजते थे और उनके नृत्य करने से नूपुर झनकार कर रहे थे ॥ २९ ॥

जनाः प्रजहृषुः सर्वे कर्मणा रामकृष्णयोः ।
ऋते कंसं विप्रमुख्याः साधवः साधु साध्विति ३०॥

श्रीराम-कृष्णका यह चरित् देखकर कंसके सिवा शेष सभी लोगों को प्रसन्नता हुई, प्रमुख ब्राह्मण और सत्पुरुष 'साधु-साधु' कहने लगे ॥३०॥

हतेषु मल्लवर्येषु विद्रुतेषु च भोजराट् ।
न्यवारयत् स्वतूर्याणि वाक्यं चेदमुवाच ह ॥३१॥

जब कितने ही मल्ल मारे गये और कितने ही भाग गये तब कंस ने बाजे बन्द करवा के यह वचन कहा कि ॥३१॥

निःसारयत दुर्वृत्तौ वसुदेवात्मजौ पुरात् ।
धनं हरत गोपानां नन्दं बध्नीत दुर्मतिम् ॥३२॥

इन दुराचारी वसुदेव के पुत्रों को नगर से बाहर निकाल दो, गोपों का धन छीन लो और दुर्बुद्धि नन्द को बाँध लो ॥३२॥

वसुदेवस्तु दुर्मेधा हन्यतामाश्वसत्तमः ।
उग्रसेनः पिता चापि सानुगः परपक्षगः ॥३३॥

अत्यन्त दुर्बुद्धि और नीच वसुदेवको जल्द ही मारडालो और शत्रुओं के पक्षमें रहने वाले पिता उग्रसेनको भी उसके अनुचरोंसहित क़ैद करलो ॥

एवं विकत्थमाने वै कंसे प्रकुपितोऽव्ययः ।
लघिम्नोत्पत्य तरसा मञ्चमुत्तुङ्गमारुहत् ॥३४॥

जब कंस इस प्रकार बक-झक करने लगा तब भगवान् क्रोधित होकर सहज ही में स्फूर्त्तिके साथ उछाल मारकर ऊँचे मञ्च पर चढ़ गये ॥३४ ॥

तमाविशन्तमालोक्य मृत्युमात्मन आसनात् ।
मनस्वी सहसोत्थाय जगृहे सोऽसिचर्मणी ॥३५॥

अपनी मृत्युको आता हुआ देखकर धीर्यवान कंस ने झट आसन से उठकर हाथमें ढाल और तलवार ले ली ॥३५॥

तं खड्गपाणिं विचरन्तमाशु श्येनं यथा दक्षिण सव्यमम्बरे । समग्रहीद् दुर्विषहोग्रतेजा यथोरगं तार्क्ष्यसुतः प्रसह्य ॥३६॥

हाथ में तलवार लिये हुए, आकाश में शिकरे के समान बायें-दायें चेत करतेहुए कंस को असह्य तथा उग्र तेजधारी भगवान् ने तत्काल ही इस भांति पकड़ लिया, जैसे गरुड़ बल पूर्वक सांप को पकड़ लेता है ॥३६॥

प्रगृह्य केशेषु चलत्किरीटं निपात्य रङ्गोपरि तुङ्गमञ्चात् । तस्योपरिष्टात् स्वयमब्जनाभः पपात विश्वाश्रय आत्मतन्त्रः ॥३७॥

फिर केश पकड़ कर उसका मुकुट उड़ाते हुए उसे ऊँचे मञ्च पर से अखाड़े में पटक दिया और सकल संसार के आधार तथा स्वतन्त्र भगवान् उसके ऊपर सवार होगये ॥३७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तं संपरेतं विचकर्ष भूमौ हरिर्यथेभं जगतो विपश्यतः । हा हेति शब्दः स महांस्तदाऽभूदुदीरितः सर्वजनैर्नरेन्द्र ॥३८॥

हे राजन् ! उस मरे हुए कंस को भगवान् ने जगत्के देखते २ ही पृथ्वी पर इस प्रकार घसीटा जैसे मरे हुएहाथीको सिंह घसीटताहै, उस समय सब लोगोंके मुंहसे भारी हाहाकार होनेलगा ॥३८॥

स नित्यदोद्विग्नधिया तमीश्वरं पिबन् वदन्वा विचरन् स्वपन् श्वसन् । ददर्श चक्रायुधमग्रतो यथा तदेव रूपं दुरवापमाप ॥३९॥

वह कंस पीता, बोलता, फिरता, सोता और सांस लेता हुआ आठों पहर सुदर्शन चक्र धारण किये हुए, उन परमेश्वर ही को आँखों के आगे देखा करताथा; इसी लिये उस दुर्लभ भगवत् रूप को प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥

तस्याऽनुजा भ्रातरोऽष्टौ कङ्कन्यग्रोधकादयः । अभ्यधावन्नभिक्रुद्धा भ्रातुर्निर्वेशकारिणः ॥४०॥

उसके आठ छोटे भाई कङ्क, न्यग्रोध आदि क्रोध करके भाईका वैर चुकानेके लिये दौड़ आये॥

तथाऽतिरभसांस्तांस्तु संयतान् रोहिणीसुतः । अहन् परिघमुद्यम्य पशूनिव मृगाधिपः ॥४१॥

उन अत्यन्त वेग से आते हुए और सजे हुए कंस के भाइयों को देखकर बलरामजी ने परिघ उठाकर इस भांति मार डाला, जैसे सिंह पशुओं को मारता है ॥ ४१ ॥

नेदुर्दुन्दुभयो व्योम्नि ब्रह्मेशाद्या विभूतयः । पुष्पैः किरन्तस्तं प्रीत्या शशंसुर्ननृतुः स्त्रियः ॥४२॥

उस समय आकाशमें दुन्दुभि बजनेलगी और ब्रह्मा, महादेव आदि भगवान् की विभूति रूप सब देवता प्रीति पूर्वक फूल बरसा २ कर स्तुति करने लगे तथा अप्सरायें नृत्य करने लगीं ॥४२॥

तेषां स्त्रियो महाराज सुहृन्मरणदुःखिताः । तत्राभीयुर्विनिघ्नन्त्यः शीर्षाण्यश्रुविलोचनाः ॥४३॥

हे राजन् ! उनकी स्त्रियाँ अपने २ पतिके मरने से दुखी होकर, शिर पीटतीं और नेत्रों से आँसू बहाती हुई वहां आईं ॥४३॥

शयानान् वीरशय्यायां पतीनालिङ्ग्य शोचतीः । विलेपुः सुस्वरं नार्यो विसृजन्त्यो मुहुः शुचः॥४४॥

वे शोकातुर स्त्रियाँ वीर-शैयापर सोतेहुए पति को आलिंगन करके, सोचकरती और बार बार आँसू डालतीहुईं सु-स्वर पूर्वक विलाप करनेलगीं।

हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ करुणानाथ वत्सल । त्वया हतेन निहता वयं ते सगृहप्रजाः ॥४५॥

हा नाथ ! हा प्रिय ! हा धर्मज्ञ ! हा करुण! हा अनाथ वत्सल ! आपके मरने से प्रजा और घर बार के साथ हम भी मर चुकीं ॥४५॥

त्वया विरहिता पत्या पुरीयं पुरुषर्षभ । न शोभते वयमिव निवृत्तोत्सवमङ्गला ॥४६॥

हे पुरुषों में श्रेष्ठ ! जैसे आपके विना हम सब विधवा होकर शोभा नहीं पातीं, वैसे ही यह पुरी भी शोभा नहीं पाती, क्योंकि इसके सब उत्सव और मङ्गल नष्ट हो चुके हैं ॥४६॥

अनागसां त्वं भूतानां कृतवान् द्रोहमुल्बणम् । तेनेमां भो दशां नीतो भूतध्रुक् को लभेत शम्॥४७॥

आप निरपराध प्राणियोंके साथ घोर बैरराखते थे इसी से आपकी यह दशा हुई है, क्योंकि प्राणी मात्रसे बैर रखनेवाले को सुख कैसे मिल सकताहै?

सर्वेषामिह भूतानामेष हि प्रभवाप्ययः । गोप्ता च तदवध्यायी न क्वचित् सुखमेधते ॥४८॥

यह श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंको उत्पन्न, संहार तथा रक्षा करने वाले हैं, इनसे बैर करके फिर सुख की वृद्धि कहाँ है ? ॥४८॥

श्रीशुक उवाच

राजयोषित आश्वास्य भगवाँल्लोकभावनः । यामाहुर्लौकिकीं संस्थां हतानां समकारयत्॥४९॥

श्रीशुकदेवजी बोले-लोकों के पालने वाले भगवान् ने राजा की स्त्रियों को धीरज बँधाकर लोक रीत्यानुसार उन मरेहुए लोगों की क्रिया करवाई ॥

मातरं पितरं चैव मोचयित्वाऽथ बन्धनात् । कृष्णरामौ ववन्दाते शिरसास्पृश्य पादयोः॥५०॥

फिर माता-पिता को बन्धन से छुड़ाकर, श्री राम-कृष्ण ने उनके चरणों में मस्तक रख कर और स्पर्श करके उनकी वन्दना की ॥५०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देवकी वसुदेवश्च विज्ञाय जगदीश्वरौ ।
कृतसंवन्दनौ पुत्रौ सस्वजाते न शङ्कितौ ॥५१॥

देवकी और वसुदेवजी उनको अपने पुत्रों से उन्हें जगदीश्वर जानकर शंकामें पड़कर नमस्कार करते हुए नहीं मिले वरन् हाथ जोड़ कर सामने खड़े रहे ॥५१॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पैंतालीसवां अध्याय

(उग्रसेन का राज्याभिषेक)

श्रीशुक उवाच

पितरावुपलब्धार्थौ विदित्वा पुरुषोत्तमः ।
माभूदिति निजां मायां ततान जनमोहिनीम् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी वोले–पुरुषोत्तम भगवान्ने माता पिता को ज्ञान प्राप्त हुए जानकर, "यह ज्ञान अभी ठीक नहीं है' ऐसा विचार करके लोगोंको मोहित करने वाली अपनी माया फैलाई ॥ १ ॥

उवाच पितरावेत्य साग्रजः सात्वतर्षभः ।
प्रश्रयावनतः प्रीणन्नम्ब तातेति सादरम् ॥ २ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण बल्देवजीके साथ माता-पिता के पास आकर विनयके साथ झुककर, उन्हें प्रसन्न करते हुए "हे तात ! हे अंब !" आदि शब्दों से सम्बोधित करके आदरपूर्वक वोले कि ॥ २ ॥

नास्मत्तो युवयोस्तात नित्योत्कण्ठितयोरपि ।
बाल्यपौगण्डकैशोराः पुत्राभ्यामभवन् क्वचित् ॥३॥

हे तात ! आप दोनों हम पुत्रों के लिये निरंतर लालसा रखतेथे, परन्तु हमारी बाल्य, पौगंड तथा किशोर अवस्था का सुख आपको न मिल सका ॥

न लब्धौ दैवहतयोर्वासो नौ भवदन्तिके ।
यां बालाः पितृगेहस्था विन्दन्ते लालिता मुदम् ॥४॥

हम दैव की गति से मारे हुए (अभागे) आप के पास रहने भी न पाये और माता-पिता के पास रहने से जो आनन्द बालकों को मिला करता है, वह भी हमें प्राप्त न हो सका ॥४॥

सर्वार्थसंभवो देहो जनितः पोषितो यतः ।
न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा ॥ ५ ॥

जिन माता-पिता ने धर्म अर्थ आदि चारों पुरुषार्थोंका देनेवाला शरीर दिया और उसे पालन करके बड़ा बनाया, उनसे मनुष्य सौ वर्षकी आयु पाकर और उतने समय तक निरन्तर सेवा करके भी उऋण नहीं हो सकता ॥ ५ ॥

यस्तयोरात्मजः कल्प आत्मना च धनेन च ।
वृत्तिं न दद्यात् तं प्रेत्य स्वमांसं खादयन्ति हि ॥६॥

जो पुत्र शरीर और धन से समर्थ होकर भी उन माता-पिता को जीविका नहीं देता, उसे परलोकमें यमराज उसी का मांस खिलाते हैं ॥६॥

मातरं पितरं वृद्धं भार्यां साध्वीं सुतं शिशुम् ।
गुरुं विप्रं प्रपन्नं च कल्पोऽबिभ्रत् श्वसन् मृतः ॥७॥

वृद्ध माता-पिता, पतिव्रता स्त्री, बालक पुत्र, गुरु ब्राह्मण और शरणागत का पोषण जो मनुष्य समर्थ होकर भी नहीं करता, वह जीवित रहकर भी मृतक के समान है ॥७॥

तन्नावकल्पयोः कंसान्नित्यमुद्विग्नचेतसोः ।
मोघमेते व्यतिक्रान्ता दिवसा वामनर्चतोः ॥ ८ ॥

हम लोगों के असमर्थ होने तथा कंससे उद्वेग पाते रहने के कारण आपकी सेवा न करनेसे इतने दिन व्यर्थ ही गये ॥८॥

तत् क्षन्तुमर्हथस्तात मातर्नौ परतन्त्रयोः ।
अकुर्वतोर्वां शुश्रूषां क्लिष्टयोर्दुर्हृदा भृशम् ॥ ९ ॥

हे तात ! हे माता ! हम दुष्ट कंस से महा क्लेश पाये हुए और पराधीन पुत्रों से जो आपकी सेना न बन सकी, उसके लिये आपको हमें क्षमा करनी ही उचित है ॥९॥

श्रीशुक उवाच

इति मायामनुष्यस्य हरेर्विश्वात्मनो गिरा ।
मोहितावङ्कमारोप्य परिष्वज्यापतुर्मुदम् ॥१०॥

श्रीशुकदेवजी बोले–इस प्रकार प्रकार मायासे मनुष्य रूप, जगत् के अन्तर्यामी भगवान्की माया से मोहित होकर वे दोनों वसुदेव तथा देवकी उन्हें गोद में बिठलाकर और आलिङ्गन करके परमानंद को प्राप्त हुए ॥१०॥

सिञ्चन्तावश्रुधाराभिः स्नेहपाशेन चावृतौ ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न किञ्चिदूचतू राजन् बाष्पकण्ठौ विमोहितौ ११

हे राजन् ! अश्रु धाराओं से सींचते हुए और स्नेह की पाश में बँधे हुए वे दोनों वसुदेव और देवकी कि जिनके कण्ठ तक आँसू पहुंच चुके थे, ऐसे मुग्ध होगये और वे कुछ बोल भी न सके ॥

एवमाश्वास्य पितरौ भगवान् देवकीसुतः ।
मातामहं तूग्रसेनं यदूनामकरोन्नृपम् ॥१२॥

भगवान् श्रीकृष्णजी ने इस प्रकार माता-पिता को धीरज देकर अपने नाना उग्रसेन को यदुवंशियों का राजा बनाया ॥१२॥

आह चास्मान् महाराज प्रजाश्चाज्ञप्तुमर्हसि ।
ययातिशापाद्यदुभिर्नासितव्यं नृपासने ॥१३॥

और कहा कि हे महाराज ! हम आपकी प्रजा हैं, हमें आप आज्ञा दें. यदुवंश वालों को राजा ययाति का शाप है- इसलिये हम लोगों को राजसिंहासन पर न बैठना चाहिये ॥१३॥

मयि भृत्य उपासीने भवतो विबुधादयः ।
बलिं हरन्त्यवनताः किमुतान्ये नराधिपाः ॥१४॥

मुझ सेवक के रहते हुए देवगण भी भेंटें लाकर आपको अर्पण करेंगे, तब दूसरे राजाओं का तो कहना ही क्या है ? ॥१४॥

सर्वान् स्वज्ञातिसंबन्धान् दिग्भ्यः कंसभयाकुलान् ।
यदुवृष्ण्यन्धकमधुदाशार्हकुकुरादिकान् ॥१५॥
सभाजितान् समाश्वास्य विदेशावासकर्शितान् ।
न्यवासयत् स्वगेहेषु वित्तैः सन्तर्प्य विश्वकृत् ॥१६॥

विश्व-कर्त्ता भगवान् ने सब जाति वाले और सम्बन्धी यदु, वृष्णि, अन्धक, मधु, दाशार्ह और ककुर आदि जो कंसके डर से भाग गये थे, उन्हें दिशाओं से बुलाकर और विदेशमें रहने के कारण दुखी हुए उन लोगों को धन द्वारा प्रसन्न करके आदर पूर्वक सान्त्वना देते हुए अपने-अपने घरों में टिकाया ॥१५॥१६॥

कृष्णसंकर्षणभुजैर्गुप्ता लब्धमनोरथाः ।
गृहेषु रेमिरे सिद्धाः कृष्णरामगतज्वराः ॥१७॥

श्रीराम-कृष्ण की भुजाओं द्वारा रक्षित, उनके परिपूर्ण प्रताप से निस्ताप यादव सारे मनोरथ सिद्ध होने से अपने घरों में आनन्द पूर्वक रमण करने लगे ॥१७॥

वीक्षन्तोऽहरहः प्रीता मुकुन्दवदनाम्बुजम् ।
नित्यं प्रमुदितं श्रीमत् सदयस्मितवीक्षणम् ॥१८॥
तत्र प्रवयसोऽप्यासन् युवानोऽतिबलौजसः ।
पिबन्तोऽक्षैर्मुकुन्दस्य मुखाम्बुजसुधां मुहुः ॥१९॥

नित्य आनन्द पूर्ण, शोभामय, दया युक्त और मन्द हास्य सहित चितवन वाले श्रीकृष्णचन्द्र के मुखारविन्द का प्रति दिन दर्शन करने से आनन्द पाये हुए और वृद्ध पुरुष भी युवक तथा अत्यन्त बलिष्ठ एवं पराक्रमी होगये, क्योंकि वे लोग नेत्रों द्वारा बार-बार भगवान् के मुखारविन्द रूपी अमृत का पान किया करते थे ॥१८॥१९॥

अथ नन्दं समासाद्य भगवान् देवकीसुतः ।
सङ्कर्षणश्च राजेन्द्र परिष्वज्येदमूचतुः ॥२०॥

हे राजन् ! फिर श्रीकृष्ण भगवान् और बलरामजी नन्दरायजी के पास आकर यह वचन बोले कि ॥ २० ॥

पितर्युवाभ्यां स्निग्धाभ्यां पोषितौ लालितौ भृशम्
पित्रोरभ्यधिका प्रीतिरात्मजेष्वात्मनोऽपि हि ॥२१

हे तात ! आपने चिरकाल तक हम दोनों का पालन-पोषण किया और जैसी प्रीति माता-पिता अपने पुत्रों पर रखते हैं, उससे भी अधिक प्रीति आपने रक्खी ॥२१॥

स पिता सा च जननी यौ पुष्णीतां स्वपुत्रवत् ।
शिशून् बन्धुभिरुत्सृष्टानकल्पैः पोषरक्षणे ॥२२॥

(वास्तविक) माता-पिता वही हैं जो अपने औरस पुत्र के समान पालन-पोषण से असमर्थ बन्धुओं द्वारा छोड़े हुए बालकोंका पोषण करतेहैं॥

यात यूयं व्रजं तात वयं च स्नेहदुःखितान् ।
जातीन् वो द्रष्टुमेष्यामो विहाय सुहृदां सुखम् २३

हे तात ! आप व्रजको पधारिये, हमभी बंधुओं को सुख देकर, स्नेह से दुःखित जाति वालों तथा आपके दर्शनार्थ आयेंगे ॥ २३ ॥

एवं सान्त्वय्य भगवान् नन्दं सव्रजमच्युतः ।
वासोऽलङ्कारकुप्याद्यैरर्हयामास सादरम् ॥२४॥

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने व्रजवासियों सहित नन्दरायजी को धीरज देकर वस्त्र आभूषण, कांसा, पीतल आदि के बर्तन भेंट करके आदर पूर्वक उनका सत्कारकिया ॥२४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इत्युक्तास्तौ परिष्वज्य नन्दः प्रणयविह्वलः ।
पूरयन्नश्रुभिर्नेत्रे सह गोपैर्व्रजं ययौ ॥२५॥

नन्दरायजी ऐसे वचन सुनकर प्रेम से विह्वल होकर और उन दोनों भाइयोंसे मिलकर आँसुओं से नेत्र डबडबातेहुए ग्वालोंके साथ व्रजको लौटे ॥

अथ शूरसुतो राजन् पुत्रयोः समकारयत् ।
पुरोधसा ब्राह्मणैश्च यथावद् द्विजसंस्कृतिम्॥२६॥

हे राजन् ! फिर वसुदेवजी ने पुरोहित और ब्राह्मणों को बुलाकर पुत्रोंका विधि पूर्वक उपनयन संस्कार करवाया ॥२६॥

तेभ्योऽदादक्षिणा गावो रुक्ममाल्याः स्वलंकृताः ।
स्वलंकृतेभ्यः संपूज्य सवत्साः क्षौममालिनीः॥२७॥

उन ब्राह्मणों को वस्त्राभूषण से अलंकृत करके और भले प्रकार पूजकर, भली भांति शृङ्गार करा के, सोने की माला पहिना कर, रेशमी वस्त्र उढ़ा कर बछड़ों सहित गौओं का दान किया और उसके साथ दक्षिणा भी दी ॥२७॥

याः कृष्णरामजन्मर्क्षे मनोदत्ता महामतिः ।
ताश्चाददद्दनुस्मृत्य कंसेनाधर्मतो हृताः ॥२८॥

महामति वाले वसुदेवजी ने श्रीकृष्ण जन्म के समय जितनी गौओंके दान करनेका संकल्प किया था तथा जिन्हें कंसने छीन लिया था, उतनी गौएँ स्मरण करके दान कीं ॥ २८ ॥

ततश्च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ ।
गर्गाद्व यदुकुलाचार्याद्व गायत्रं व्रतमास्थितौ २९॥

फिर उपनयन संस्कार से द्विजत्व प्राप्त करके उन दोनों भाइयों ने यदुकुल के आचार्य गर्गजी से ब्रह्मचर्य धारण किया ॥२९॥

प्रभवौ सर्वविद्यानां सर्वज्ञौ जगदीश्वरौ ।
नान्यसिद्धामलज्ञानं गूहमानौ नरेहितैः ॥३०॥

यद्यपि वे दोनों भाई विद्याओंके कारण; सर्वज्ञ और जगदीश्वर थे, फिरभी मनुष्य-लीलाके कारण उस स्वयं-सिद्ध निर्मल ज्ञानको छिपाये रहते थे।३०।

अथो गुरुकुले वासमिच्छन्तावुपजग्मतुः ।
काश्यं सान्दीपनिं नाम ह्यवन्तिपुरवासिनम्॥३१॥

फिर गुरुकुल में निवास करनेकी इच्छा रखते हुए वे उज्जैन-निवासी सांदीपन नामक गुरुके पास गये जो काश्य नाम से विख्यात थे ॥३१॥

अथोपसाद्य तौ दान्तौ गुरौ वृत्तिमनिन्दिताम् ।
ग्राहयन्तावुपेतौ स्म भक्त्या देवमिवादृतौ ॥३२॥

वे दूसरे लोगोंको सर्वोत्तम गुरुकी सेवा करने की शिक्षा देते हुए जितेन्द्रिय होकर, योग्यरीति तथा प्रीति पूर्वक उनके पास जाकर परमेश्वर के समान गुरु-भक्ति करने लगे ॥३२॥

तयोर्द्विजवरस्तुष्टः शुद्धभावानुवृत्तिभिः ।
प्रोवाच वेदानखिलान् साङ्गोपनिषदो गुरुः॥३३॥

ब्राह्मणों में उत्तम गुरु ने उनकी शुद्ध भाव मय सेवा से प्रसन्न होकर छः अङ्ग तथा उपनिषदों सहित उन्हें सम्पूर्ण वेद पढ़ाये ॥३३॥

सरहस्यं धनुर्वेदं धर्मान्न्यायपथांस्तथा ।
तथा चान्वीक्षिकीं विद्यां राजनीतिं च षड्विधाम्॥

सर्वं नरवर श्रेष्ठौ सर्वविद्याप्रवर्तकौ ।
सकृन्निगदमात्रेण तौ संजगृहतुर्नृप ॥३५॥

हे राजन् ! मन्त्र, देवताओं के ज्ञान सहित धनुर्वेद, धर्मशास्त्र; मीमांसाआदि शास्त्र,तर्कविद्या सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध, आश्रय रूप और छः प्रकारकी राजनीति, ये सभी सब मनुष्यों में श्रेष्ठ और विद्याओं के प्रवर्त्तक उन दोनोंभाइयों ने गुरुके एकही बार कहनेपर सीख लिया॥३४।३५॥

अहोरात्रेश्चतुःषष्ट्या संयतौ तावतीः कलाः ।
गुरुदक्षिणयाऽऽचार्यं छन्दयामासतुर्नृप ॥३६॥

हे राजन् ! उन दोनों जितेन्द्रिय भाइयों ने ६४ दिनमें चौंसठ कलायें सीख लीं और फिर उन से मनवांछित गुरु-दक्षिणा मांगनेके लिये प्रार्थनाकी ॥

द्विजस्तयोस्तं महिमानमद्भुतं संलक्ष्य राजन्नति-
मानुषीं मतिम् । संमन्त्र्य पत्न्या स महार्णवे
मृतं बालं प्रभासे वरयाम्बभूव ह ॥३७॥

हे राजन् ! सांदीपन ने उनका ऐसा प्रभाव और मनुष्यों से परे अति चमत्कारी बुद्धि देखकर अपनी स्त्री से सम्मति करके प्रभास क्षेत्रके निकट समुद्र में मरे हुए पुत्र की वरदान रूप गुरु-दक्षिणा मांगी ॥३७॥

तथेत्यथारुह्य महारथौ रथं प्रभासमासाद्य
दुरन्तविक्रमौ । वेलामुपव्रज्य निषीदतुः क्षणं
सिन्धुर्विदित्वार्हणमाहरत्तयोः ॥३८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वे दोनों असीम पराक्रम वाले महारथी "जो आज्ञा" कहकर रथ पर चढ़ कर प्रभास क्षेत्रमें आ कर और समुद्र के पास जाकर क्षण भर के लिये बैठ गये; समुद्र यह समाचार पाते ही भेंट लेकर उनके निकट आ पहुंचा ॥३८॥

तमाह भगवानाशु गुरुपुत्रः प्रदीयताम् ।
योऽसाविह त्वया ग्रस्तो बालको महतोर्मिणा ॥३९

तब भगवान् श्रीकृष्णजी ने उस समुद्रसे कहा कि तूने जो बड़ी लहरों द्वारा मेरे गुरु के पुत्र को डुबा दिया है, उसे ला दे ॥३९॥

समुद्र उवाच

नैवाहार्षमहं देव दैत्यः पञ्चजनो महान् ।
अन्तर्जलचरः कृष्ण शङ्खरूपधरोऽसुरः ॥४०॥

तब समुद्रने कहा–हे देव ! हे कृष्ण ! मैंने आप के गुरु-पुत्र को नहीं लिया है वरन् मेरे भीतर जो शंखरूप धारण कियेहुए एक महान् दैत्य रहताहै ।

आस्ते तेनाहृतो नूनं तच्छ्रुत्वा सत्वरं प्रभुः ।
जलमाविश्य तं हत्वा नापश्यदुदरेऽर्भकम् ॥४१॥

वही अवश्य हरण कर लेगया होगा, यह सुन कर समर्थ श्रीकृष्णजीने शीघ्रता-पूर्वक जलमें प्रवेश करके उस पंचजन्य दैत्यको मारडाला,परन्तु उसके पेट में भी उस बालक को न देखा ॥४१॥

तदङ्गप्रभवं शंखमादाय रथमागमत् ।
ततः संयमनीं नाम यमस्य दयितां पुरीम् ॥४२॥

गत्वा जनार्दनः शंख प्रदध्मौ सहलायुधः ।
शंखनिह्रादमाकर्ण्य प्रजासंयमनो यमः ।४३॥

तयोः सपर्यां महतीं चक्रे भक्त्युपबृंहिताम् ।
उवाचावनतः कृष्णं सर्वभूताशयालयम् ।
लीलामनुष्य हे विष्णो युवयोः करवाम किम्॥४४॥

तब भगवान् ने बल्देवजीके साथ उसके शरीर का शंख लेकर रथ पर आकर और यमराज की प्यारी पुरी संयमिनी में जाकर शंख नाद किया, उसे सुनते ही प्रजा को दण्ड देने वाले यमराज ने भक्ति से महान् बढ़ी हुई उनकी श्रेष्ठ पूजा की और नम्र होकर सब जीवों के अन्तर्यामी श्रीकृष्णजी से कहा कि हे लीला से नर-रूपधारी ! हे विष्णु ! मुझे क्या आज्ञा है ? मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?

श्रीभगवानुवाच

गुरुपुत्रमिहानीतं निकर्मनिबन्धनम् ।
आनयस्व महाराज मच्छासनपुरस्कृतः ॥४५॥

श्रीभगवान् बोले-हे महाराज! अपने कर्म-बंधन में बँधे हुए मेरे गुरु के पुत्र को यहाँ ले आये हैं; उसे मेरी आज्ञा मानकर आप ला दीजिये ॥४५॥

तथेति तेनोपानीतं गुरुपुत्रं यदूत्तमौ ।
दत्त्वा स्वगुरवे भूयो वृणीष्वेति तमूचतुः ॥४६॥

यमराज ने–'जो आज्ञा' ऐसा कहकर उसे ला कर उपस्थित कर दिया, तब उन दोनों यदु श्रेष्ठों श्रीराम-कृष्ण ने उसे लाकर गुरुजी को सौंप दिया और फिर विनय की कि वर माँगिये ॥ ४६ ॥

सम्यक् संपादितौ वत्स भवद्भ्यां गुरुनिष्क्रयः ।
को नु युष्मद्विधगुरोः कामो नामावशिष्यते॥४७॥

गुरु बोले–हे वत्स ! आपने अत्युत्तम गुरु-दक्षिणा दी है, आपके समान जिसके शिष्य हों, उसके सभी मनोरथ सिद्ध होने में क्या संशयहै ? उसे फिर क्या शेष रह जाता है ? ॥ ४७ ॥

गच्छतं स्वगृहं वीरौ कीर्तिर्वामस्तु पावनी ।
छन्दांस्ययातयामानि भवन्त्विह परत्र च ॥४८॥

हे वीरो ! अब तुम अपने घर जाओ, तुम्हारी पवित्र कीर्त्ति हो और इस लोक तथा परलोक में तुम्हारे वेद सफल हों ॥४८॥

गुरुणैवमनुज्ञातौ रथेनानिलरंहसा ।
आयातौ स्वपुरं तात पर्जन्यनिनदेन वै ॥४९॥

हे तात ! इस प्रकार गुरु की आज्ञा लेकर मेघ के समान शब्द करते तथा पवन के समान रथ पर बैठकर श्रीराम-कृष्ण अपनी पुरीको लौट आये ॥

समनन्दन् प्रजाः सर्वा दृष्ट्वा रामजनार्दनौ ।
अपश्यन्त्यो बहूनि नष्टलब्धधना इव ॥५०॥

श्रीराम-कृष्ण के दर्शन बहुत दिनों से नहीं हुए थे,अब उनके दर्शन होनेसे प्रजा वैसीही आनंदित हुई, जैसे खोयाहुआ धन मिलनेसे आनंद होताहै ।

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे पंचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छियालीसवां अध्याय

(उद्धव का व्रज-गमन)

श्रीशुक उवाच

वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा।
शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–वृष्णि वंशियों में उत्तम, साक्षात् बृहस्पतिजीके शिष्य और बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ उद्धवजी श्रीकृष्णजी के प्रिय सखा और मंत्री थे ॥

तमाह भगवान् प्रेष्ठं भक्तमेकान्तिनं क्वचित्।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्नार्तिहरो हरिः॥ २ ॥

शरणागतों के दुःख हरने वाले भगवान् श्रीकृष्णजी ने एक बार अपने प्यारे तथा एकान्त भक्त उद्धवजी को हाथसे हाथ पकड़ कर कहा कि ॥२॥

गच्छोद्धव व्रजं सौम्य पित्रोर्नौ प्रीतिमावह।
गोपीनां मद्वियोगार्धिं मत्सन्देशैर्विमोचय ॥ ३ ॥

हे उद्धवजी ! हे सौम्य ! आप व्रज में जाकर ऐसा उपाय करो कि जिसमें हमारे माता-पिता प्रसन्न हों और गोपियों को मेरे वियोग का जो संताप होरहा है उसे भी आप मेरा संदेश देकर दूर करें* ॥३॥

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।
ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम्॥ ४ ॥

उन्होंने सब पति-पुत्र आदि छोड़ कर केवल मुझ में ही मन लगा रक्खा है और उनका जीवन प्राण मैं ही हूँ, जो मेरे लिये इस लोक तथा परलोक के साधन छोड़ बैठे हैं, उनका भरण-पोषण मैं ही करता हूँ ॥४॥

मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रियः।
स्मरन्त्योऽङ्ग विमुह्यन्ति विरहौत्कण्ठ्यविह्वलाः॥ ५ ॥

हे सखे! उन गोकुलकी स्त्रियोंका प्यारेसे प्यारा मैं दूर आगया हूँ, इसलिये वे विरहके मारे उत्कंठा से विह्वल होकर मोहित होरही हैं ॥५॥

धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्रायः प्राणान् कथंचन।
प्रत्यागमनसन्देशैर्बल्लव्यो मे मदात्मिकाः ॥ ६ ॥

और मैंने बहुधा आते समय लौटने का संदेश भी कहला दिया था, इसलिये वे गोपियां किसी प्रकार बड़े कष्ट के साथ प्राण धारण भी किये हैं, क्योंकि वे मुझ में ही हैं ॥६॥

श्रीशुक उवाच

इत्युक्त उद्धवो राजन् संदेशं भर्तुरादृतः।
आदाय रथमारुह्य प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–जब श्रीकृष्णजी ने उद्धव से यह बात कही तब वे तत्काल ही अपने स्वामी के सन्देश को शिरोधार्य करके और रथ पर चढ़ कर नन्दरायजी के गोकुल को चल दिये ॥ ७॥

प्राप्तो नन्दव्रजं श्रीमान् निम्लोचति विभावसौ।
छन्नयानः प्रविशतां पशूनां खुररेणुभिः ॥ ८ ॥

श्रीमान् उद्धवजी सूर्यास्त होते समय श्रीनंद जी के व्रजमें पहुंचे, उस समय लौटते हुए पशुओं के खुरों की रज से उनका रथ ढक गया ॥८॥

वासिताऽर्थेऽभियुध्यद्भिर्नादितं शुष्मिभिर्वृषैः।
धावन्तीभिश्च वासाभिरूधोभारैः स्ववत्सकान्॥ ९॥

वहाँ रजस्वला गौओं के लिये मदोन्मत्त बैल परस्पर लड़ते हुए नाद कर रहे थे और थनों का भार होतेहुए भी गौएँ अपने बछड़ोंके सामने दौड़ी जा रहीं थीं ॥९॥

इतस्ततोऽविलङ्घद्भिर्गोवत्सैर्मण्डितं सितैः।
गोदोहशब्दाभिरवैर्वेणूनां निःस्वनेन च ॥ १० ॥

इधर-उधर सफ़ेद गौओंके बछड़े कूदते-फांदते शोभा देरहे थे और गौओं को दुहने के लिये (ग्वालों के बछड़ों को) 'छोड़-ला पकड़' ऐसे शब्द चारों ओर सुनाई देरहे थे और बाँसुरियां बाज रहीं थीं ॥१०॥

गायन्तीभिश्च कर्माणि शुभानि बलकृष्णयोः।

---

*–कामरी लकुटि मोहिं भूलत न एकु पल, घुंघची ना बिसरै जो पै लाल उर धारे हैं। जादिन तें छाकें छूटगईं ग्वालन की, ता दिन तें भोजन न पावत सकारे हैं॥ भनत यदुवंस यह नेह नंद वंस सों, वंसी ना बिसारे जोपै वंस बिस्तारेहैं। ऊधव व्रज जैयो मेरी लैयो चौवान गेंद, मैया से कहियो हम रिनियाँ तुम्हारे हैं॥ कहा कहूँ जा दिवस तें, जननी बिछुरयौ तोय। ता दिन ते कोऊ नहीं, कहत कन्हैया मोय॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वलंकृताभिर्गोपीभिर्गोपैश्च सुविराजितम् ॥११॥

सुन्दर वस्त्राभूषण पहने हुए गोप और गोपियां श्रीराम-कृष्ण के मङ्गलमय चरित्र गाती हुईं शोभा पाती थीं ॥११॥

अग्न्यर्कातिथिगोविप्रपितृदेवार्चनान्वितैः ।
धूपदीपैश्च माल्यैश्च गोपावासैर्मनोरमम् ॥१२॥

गोपों के घरोंमें अग्नि, सूर्य, अतिथि, गौ, ब्राह्मण पितर और देवताओं की धूप, दीप पुष्पों से पूजा होने के कारण विशेष सुन्दरता छारही थी ॥१२॥

सर्वतः पुष्पितवनं द्विजालिकुलनादितम् ।
हंसकारण्डवाकीर्णैः पद्मखण्डैश्च मण्डितम् ॥१३॥

चारों ओर फूले हुए वनकी अद्भुत शोभा हो रही थी कि जिसमें पक्षी कूँज रहे थे और भौंरे गुञ्जार रहे थे तथा और कमल-वन में हंस तथा जल-मुर्गे व्याप्त हो रहे थे ॥१३॥

तमागतं समागम्य कृष्णस्यानुचरं प्रियम् ।
नन्दः प्रीतः परिष्वज्य वासुदेवधियार्चयत् ॥१४॥

श्रीकृष्णजीके प्रिय अनुगामी उद्धवजीको आता हुआ देखकर नन्दरायजी ने उनके पास आकर, प्रसन्नता के साथ मिलकर और कृष्ण ही मान कर उनकी पूजा की ॥१४॥

भोजितं परमान्नेन संविष्टं कशिपौ सुखम् ।
गतश्रमं पर्यपृच्छत् पादसंवाहनादिभिः ॥१५॥

उनको खीर का भोजन करवा के, सुख पूर्वक पलंग पर बिठला कर और चरण चापने आदि क्रियाओं के द्वारा उनकी थकान दूर होने पर नन्द रायजी ने पूछा कि ॥१५॥

कच्चिदङ्ग महाभाग सखा नः शूरनन्दनः ।
आस्ते कुशल्यपत्याद्यैर्युक्तो मुक्तः सुहृद्व्रतः ॥१६॥

हे मित्र ! हे महाभाग ! हमारे मित्र शूरके पुत्र वसुदेवजी कष्ट से छूटकर पुत्र आदि अपने बंधुओं से हिलमिलकर सकुटुम्ब कुशल से तो हैं ? ॥१६॥

दिष्ट्या कंसो हतः पापः सानुगः स्वेन पाप्मना ।
साधूनां धर्मशीलानां यदूनां द्वेष्टि यः सदा ॥१७॥

यह बड़ा ही अच्छा हुआ कि पापी कंस अपने छोटे भाइयों के साथ अपनेही पापके कारण मारा गया, जो सदैव धर्मशील और सत्पुरुष यादवों से शत्रुता रखता था ॥१७॥

अपि स्मरति नः कृष्णो मातरं सुहृदः सखीन् ।
गोपान् व्रजं चात्मनाथं गावो वृन्दावनं गिरिम् १८

क्या श्रीकृष्ण कभी हमारी याद करते हैं और क्या कभी उन्हें इन माता, सुहृद सखा और गोपों की भी सुधि आती है कि जिनके वही स्वयं नाथहैं?

अप्यायास्यति गोविन्दः स्वजनान् सकृदीक्षितुम् ।
तर्हि द्रक्ष्याम तद्वक्त्रं सुनसं सुस्मितेक्षणम् ॥१९॥

क्या श्रीकृष्ण स्वजनों से मिलने के लिये एक बार भी आयेंगे ? कि तब हम सुन्दर नासिकायुक्त और मनोहर मन्द हास्य तथा नेत्रोंवाले उनके मुख का दर्शन कर सकेंगे ? ॥ १९ ॥

दावाग्नेर्वातवर्षाच्च विषसर्पाच्च रक्षिताः ।
दुरत्ययेभ्यो मृत्युभ्यः कृष्णेन सुमहात्मना ॥२०॥

महात्मा श्रीकृष्णने दावाग्नि, वायु सहित वर्षा, अरिष्टासुर, अघासुर तथा दूसरी महान् मृत्युओं से हमारी रक्षा की ॥ २० ॥

स्मरतां कृष्णवीर्याणि लीलापाङ्गनिरीक्षितम् ।
हसितं भाषितं चाङ्ग सर्वा नः शिथिलाः क्रियाः २१॥

हे मित्र ! जब हम श्रीकृष्ण के पराक्रम, लीला पूर्वक कटाक्ष मयी चितवन, हास्य और भाषण का स्मरण करते हैं तब सभी काम भूल जाते हैं ॥

सरिच्छैलवनोद्देशान् मुकुन्दपदभूषितान् ।
आक्रीडानीक्षमाणानां मनो याति तदात्मताम् २२॥

जब श्रीकृष्णजी के चरण-चिह्नों से अलंकृत नदी पर्वत और उनके क्रीड़ा-स्थल वाले वन-प्रदेशों को देखते हैं, तब हमारा मन उन्हीं के रूप में मिल जाता है ॥ २२ ॥

मन्ये कृष्णं च रामं च प्राप्ताविह सुरोत्तमौ ।
सुराणां महदर्थाय गर्गस्य वचनं यथा ॥२३॥

गर्गाचार्यके कहनेसे मैं यह मानताहूँ कि श्रीराम कृष्ण उत्तम देवहैं और वे यहाँ देवताओं के बड़े कार्य सिद्ध करने के लिये प्रकट हुए हैं ॥२३॥

कंसं नागायुतप्राणं मल्लौ गजपतिं तथा ।
अवधीष्टां लीलयैव पशूनिव मृगाधिपः ॥२४॥

उन्होंने दस हज़ार हाथियोंके समान बलधारी कंस, दोनों मल्ल और कुवलयापीड़ हाथी ऐसे खेल ही खेलमें मारडाले, जैसे सिंह पशुओंको मारताहै।

तालत्रयं महासारं धनुर्यष्टिमिवेभराट् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बभञ्जैकेन हस्तेन सप्ताहमदधाद्गिरिम् ॥२५॥

तीन ताल लम्बा विशाल धनुष एकही हाथसे इस प्रकार तोड़डाला, जैसे हाथी लकड़ीको तोड़ता है और सात दिनतक गोवर्धन पर्वत धारणकिया।

प्रलम्बो धेनुकोऽरिष्टस्तृणावर्तबकादयः ।
दैत्याः सुरासुरजितो हता येनेह लीलया ॥२६॥

प्रलम्ब, धेनुक, अरिष्टासुर, तृणावर्त्त और बकासुर आदि दैत्य कि जो देवताओं को जीतने वाले थे, उन्हें जिन्होंने यहाँ पर लीला ही से मार गिराया था ॥२६॥

श्रीशुक उवाच

इति संस्मृत्य संस्मृत्य नन्दः कृष्णानुरक्तधीः ।
अत्युत्कण्ठोऽभवत् तूष्णीं प्रेमप्रसरविह्वलः ॥२७॥

श्रीशुकदेवजी बोले-श्रीकृष्णजी में प्रेम-भाव रखने वाले श्रीनन्दरायजी इस प्रकार स्मरण कर-करके अत्यन्त उत्कंठा के मारे प्रेम के आवेग में व्याकुल होकर मौन होगये ॥२७॥

यशोदा वर्ण्यमानानि पुत्रस्य चरितानि च ।
शृण्वन्त्यश्रूण्यवास्राक्षीत् स्नेहस्नुतपयोधरा॥२८॥

नन्दजी के मुख से वर्णन किये हुए चरित्रोंको सुनकर यशोदा की आँखों से आँसू बहनेलगे और स्नेह से उनके स्तनों से दूध टपकने लगा ॥२८॥

तयोरित्थं भगवति कृष्णे नन्दयशोदयोः ।
वीक्ष्यानुरागं परमं नन्दमाहोद्धवो मुदा ॥२९॥

नन्दराय और यशोदाजी का इस प्रकार भगवान् में परम प्रेम देखकर उद्धवजी ने आनन्द पूर्वक उनसे कहा ॥२९॥

उद्धव उवाच

युवां श्लाघ्यतमौ नूनं देहिनामिह मानद ।
नारायणेऽखिलगुरौ यत्कृता मतिरीदृशी ॥३०॥

उद्धवजी बोले-हे मान देने वाले ! आप दोनों निश्चय ही सब प्राणियों में सराहने योग्य हैं, क्यों कि समस्त संसार के गुरु नारायणमें आपने ऐसा भाव कर रक्खा है ॥ ३० ॥

एतौ हि विश्वस्य च बीजयोनी रामो मुकुन्दः पुरुषः प्रधानम् । अन्वीय भूतेषु विलक्षणस्य ज्ञानस्य चेशात इमौ पुराणौ ॥३१॥

श्रीराम-कृष्ण ये दोनों जगत् के बीज, कारण, प्रधान और पुरुष रूप हैं, वे सब शरीरों में प्रवेश करके उन-उन उपाधियों के कारण भिन्न-भिन्न जान पड़तेहैं, यही सनातन पुरुष जीवोंके नियंताभी हैं॥

यस्मिन् जनः प्राणवियोगकाले क्षणं समावेश्य मनो विशुद्धम् । निर्हृत्य कर्माशयमाशु याति परांगतिं ब्रह्ममयोऽर्कवर्णः ॥३२॥

हे महात्मन् ! प्राण निकलने के समय एक क्षण भी यदि मनुष्य जिनमें अपना शुद्ध मन लगाये तो वह तत्काल ही कर्म-वासना त्याग कर, ज्ञानी और शुद्ध सत्वमय होकर परम गतिको प्राप्त होजाताहै।

तस्मिन् भवन्तावखिलात्महेतौ नारायणे कारणमर्त्यमूर्तौ । भावं विधत्तां नितरां महात्मन् किं वाऽवशिष्टं युवयोः सुकृत्यम् ॥३३॥

जिन्होंने कारण-वशात् मनुष्य-शरीर धारण किया है, उन सर्वात्मा और कारणरूप भगवान् में आप दोनों निरन्तर बुद्धि लगाये रहतेहैं, भला अब आपको कौनसी दूसरी करणी करना शेषहै? ॥३३॥

आगमिष्यत्यदीर्घेण कालेन व्रजमच्युतः ।
प्रियं विधास्यते पित्रोर्भगवान् सात्वतां पतिः॥३४॥

श्रीकृष्णचन्द्र थोड़े दिनों में यहाँ आयेंगे और वे भक्तपति भगवान् यहाँ आकर आप माता-पिता को प्रसन्न करेंगे ॥३४॥

हत्वा कंसं रङ्गमध्ये प्रतीपं सर्वसात्वताम् ।
यदाह वः समागत्य कृष्णः सत्यं करोति तत्॥३५

समस्त यादवों के शत्रु कंस को मार कर रंग भूमि में श्रीकृष्णचन्द्र ने आकर जो कुछ भी कहा था, वे उस प्रतिज्ञा को सत्य करेंगे ॥३५॥

मा खिद्यतं महाभागौ द्रक्ष्यथः कृष्णमन्तिके ।
अन्तर्हृदि स भूतानामास्ते ज्योतिरिवैधसि ॥३६॥

हे महा भाग्यवानो ! आप दोनों खेद न करें, आप शीघ्रही श्रीकृष्णके दर्शनकरेंगे, क्योंकि वे काष्ठ की अग्निके समान सब जीवों में विराजमान् हैं ॥

न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियो वाऽस्त्यमानिनः।
नोत्तमो नाधमो वाऽपि समानस्य समोऽपि वा॥३७

अहङ्कार-रहित और समदर्शी उन परमेश्वर के न तो कोई अति प्रिय है, न अप्रिय है; न उत्तमहै, न मध्यम है और न विषम है ॥३७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न माता न पिता तस्य न भार्या न सुतादयः ।
नात्मीयो न परश्चापि न देहो जन्म एव च ॥३८॥

उनके न माताहै न भार्या, और न पिता, पुत्र आदि न अपना, न पराया, न देह और न जन्महै।

न चास्य कर्म वा लोके सदसन्मिश्रयोनिषु ।
क्रीडार्थं सोऽपि साधूनां परित्राणाय कल्पते॥३९॥

यद्यपि वह कर्म-रहितहै फिरभी लोक में केवल भक्तोंकी रक्षाके लिये और क्रीड़ाके लिये ऊँच-नीच या मिश्रित योनियों में प्रकट होते हैं ॥३९॥

सत्त्वं रजस्तम इति भजते निर्गुणो गुणान् ।
क्रीडन्नतीतोऽत्र गुणैः सृजत्यवति हन्त्यजः ॥४०॥

यद्यपि वे स्वयं निर्गुण हैं, फिर भी सत् रज तथा तमोगुण को धारण करतेहैं और क्रीड़ारहित होकर भी क्रीड़ा करते हुए गुणों के द्वारा जगत्को उत्पन्न, पालन तथा संहार करते हैं ॥४०॥

यथा भ्रमरिका दृष्ट्या भ्राम्यतीव महीयते ।
चित्ते कर्तरि तत्रात्मा कर्तेवाहंधिया स्मृतः ॥४१॥

जैसे घूमते हुए मनुष्य को अपनी चकराई हुई दृष्टि के कारण पृथ्वी घूमती हुई जान पड़ती है, या चित्त के किये हुए कर्मों में अहङ्कार के कारण आत्मा कर्त्ता जान पड़ता है, वैसे ही अकर्त्ता भगवान् कर्त्ता से जान पड़ते हैं ॥४१॥

युवयोरेव नैवायमात्मजो भगवान् हरिः ।
सर्वेषामात्मजो ह्यात्मा पिता माता स ईश्वरः॥४२॥

यह भगवान् श्रीकृष्ण केवल आपहीके पुत्र नहीं हैं, वरन् यह ईश्वर सब के आत्मा, पुत्र, माता और पिता हैं ॥४२॥

दृष्टं श्रुतं भूतभवद्भविष्यत्स्थास्नुश्चरिष्णुर्महदल्पकं च । विनाऽच्युताद्वस्तुतरां न वाच्यं स एव सर्वं परमार्थभूतः ॥४३॥

जो कुछ देखने और सुनने में आता है, भूत, वर्त्तमान् या भविष्यत् में होने वाले स्थावर, जङ्गम बड़े या छोटे पदार्थ जो कहनेमें आते हैं, वह भगवान् विना कोई अस्तित्व नहीं रखते, वही सर्वरूप और सबके परमार्थ रूप हैं ॥ ४३॥

एवं निशा सा ब्रुवतोर्व्यतीता नन्दस्य कृष्णानुचरस्य राजन् । गोप्यः समुत्थाय निरूप्य दीपान् बास्तून् समभ्यर्च्य दधीन्यमन्थन् ॥४४॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! इस प्रकार बात-चीत करते २ नन्दजी और श्रीकृष्णजीके अनुचर उद्धवजी की वह रात व्यतीत होगई, और गोपियां उठकर दीपक जलाकर तथा देहरियों का पूजन करके दही मथने लगीं ॥४४॥

ता दीपदीप्तैर्मणिभिर्विरेजू रज्जूर्विकर्षद्भुजकङ्कणस्रजः। चलन्नितम्बस्तनहारकुण्डलत्विषत्कपोलारुणकुंकुमाननाः ॥४५॥

उस समय वे गोपियां अनेक कङ्कणों से युक्त हाथों के द्वारा रस्सी को खींच रही थीं, उनके नितंब, स्तन और हार हिलरहे थे, कपोल कुंडलों से शोभा पा रहे थे, मुख पर लाल केसर का लेपन था और आभूषणों की मणियां दीपक की ज्योति से चमक रही थीं ॥ ४५ ॥

उद्गायतीनामरविन्दलोचनं व्रजाङ्गनानां दिवमस्पृशद्ध्वनिः । दध्नश्च निर्मन्थनशब्दमिश्रितो निरस्यते येन दिशाममंगलम् ॥४६॥

व्रजांगनाओं ने जो कमल-दल के समान नेत्र वाले भगवान् श्रीकृष्णजी का यश गाया, तब उस की ध्वनि स्वर्ग तक जा पहुंची, उस गीत में दधि मन्थनका शब्दभी मिला हुआथा, कि जिसके द्वारा सब दिशाओं के अमङ्गल नष्ट होते थे ॥४६॥

भगवत्युदिते सूर्ये नन्दद्वारि व्रजौकसः ।
दृष्ट्वा रथं शातकौम्भं कस्यायमिति चाब्रुवन्॥४७॥

भगवान् सूर्य के उदय होते ही व्रजवासी नंदरायजी के द्वार पर सुनहरी साज का रथ देखकर आपस में कहनेलगे कि यह किसका रथहै ? ॥४७॥

अक्रूर आगतः किं वा यः कंसस्यार्थसाधकः ।
येन नीतो मधुपुरीं कृष्णः कमललोचनः ॥४८॥

क्या कंस के कार्य को साधने वाला अक्रूर तो नहीं आया है जो कमल नयन भगवान् श्रीकृष्ण को मथुरापुरी ले गया था ॥४८॥

किं साधयिष्यत्यस्माभिर्भर्तुः प्रेतस्य निष्कृतिम् ।
इति स्त्रीणां वदन्तीनामुद्धवोऽगात् कृताह्निकः॥४९॥

इसका स्वामी जो कंस मरगयाहै तो क्या उसे हमारे मांस के पिंड देने आया है ? ऐसे गोपियोंमें परस्पर बात-चीत होही रही थी कि इतने में नित्य कर्म करके उद्धवजी आ पहुँचे ॥४९॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सैंतालीसवां अध्याय

(गोपियों का भ्रमर-गीत)

श्रीशुक उवाच

तं वीक्ष्य कृष्णानुचरं व्रजस्त्रियः प्रलम्बबाहुं नवकञ्जलोचनम् । पीताम्बरं पुष्करमालिनं लसन्मुखारविन्दं परिमृष्टकुण्डलम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–विशाल बाहु,नवीन कमल के समान नेत्र, शोभायमान् मुखारविन्द वाले श्री कृष्णजी के अनुचर उद्धवजी को पीतांवर पहने; कमल-माल धारणकिये और उज्ज्वल कुण्डल झलकाये हुए देखकर सब व्रजबालायें आपस में कहने लगीं कि–॥१॥

शुचिस्मितः कोऽयमपीच्यदर्शनः कुतश्च कस्याच्युतवेषभूषणः । इति स्म सर्वाः परिवव्रुरुत्सुकास्तमुत्तमश्लोकपदाम्बुजाश्रयम् ॥ २ ॥

यह कौन है ? यह सुन्दर रूपवान् पुरुष भगवान्के समान वेष बनायेहुए और अलंकार धारण किये हुए कहाँ से आया है और किसका है ? इस प्रकार उन्हें भगवान् के चरणारविन्द का अनुचर समझकर, मन्द-मन्द हँसतीहुई गोपियों ने उत्कंठा पूर्वक आकर उन्हें घेर लिया ॥२॥

तं प्रश्रयेणावनताः सुसत्कृतं सव्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः । रहस्यपृच्छन्नुपविष्टमासने विज्ञाय संदेशहरं रमापतेः ॥ ३ ॥

वे सब गोपियां विनीत भाव से लज्जा मयी हास्य, चितवन और मीठे वचनों द्वारा भले प्रकार सत्कार करके. उन्हें श्रीकृष्ण का संदेश लाने वाला समझ कर एकान्त में आसन पर विठला कर पूछने लगीं ॥ ३ ॥

जानीमस्त्वां यदुपतेः पार्षदं समुपागतम् । भर्त्रेह प्रेषितः पित्रोर्भवान् प्रियचिकीर्षया ॥ ४ ॥

कि हम आपको श्रीकृष्ण के पार्षद आये हुए जानती हैं, उन्होंने अपने माता-पिता को प्रसन्न रखने के लिये आपको यहाँ भेजा है ॥ ४ ॥

अन्यथा गोव्रजे तस्य स्मरणीयं न चक्ष्महे । स्नेहानुबन्धो बन्धूनां मुनेरपि सुदुस्त्यजः ॥ ५ ॥

क्योंकि बन्धुओंका स्नेह संबन्ध तोड़ना मुनि जनों के लिये भी कठिन है, इस व्रजमें ऐसा कोई नहीं दीखता है कि जिसे वे एक माता-पिता के सिवा स्मरण करें ॥५॥

अन्येष्वर्थकृता मैत्री यावदर्थविडम्बनम् । पुम्भिः स्त्रीषु कृता यद्वत् सुमनस्स्विव षट्पदैः ॥६॥

दूसरों के साथ जो मित्रता की जाती है, वह स्वार्थ सिद्ध होने तकही रहतीहै, जैसे पुरुष स्त्रियों के या भौंरे फूलों के साथ रखते हैं ॥६॥

निःस्वं त्यजन्ति गणिका अकल्पं नृपतिं प्रजाः । अधीतविद्या आचार्यमृत्विजो दत्तदक्षिणम् ॥ ७ ॥

खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा चातिथयो गृहम् । दग्धं मृगास्तथारण्यं जारो भुक्त्वा रतां स्त्रियम् ८॥

जैसे वेश्या निर्धन को, प्रजा असमर्थ राजाको विद्या पढ़ चुकने पर शिष्य गुरुको, दक्षिणा मिलने पर ऋत्विज यजमान को, पक्षी फलहीन वृक्ष को भोजन कर चुकने पर अतिथि घर को और हरिण जले हुए वनको छोड़ देते हैं, वैसेही भोग करने के पश्चात् जार पुरुष प्रीतिमयी स्त्रीको छोड़ देताहै ॥

इति गोप्यो हि गोविन्दे गतवाक्कायमानसाः । कृष्णदूते व्रजं याते उद्धवे त्यक्तलौकिकाः ॥ ९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–इस प्रकार श्रीकृष्णजी के दूत उद्धवजी के व्रजमें आने पर गोपियों ने लोक व्यवहार छोड़दिया, क्योंकि उनका तन, मन और वचन सब उन्हीं में लगे थे ॥९॥

गायन्त्यः प्रियकर्माणि रुदन्त्यश्च गतह्रियः । तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोरबाल्ययोः॥१०

श्रीकृष्णजीने जो २ चरित्र बाल्य तथा किशोर अवस्था में किये थे, उनका स्मरण कर-कर के उन के प्यारे कर्मों का वर्णन करती हुई गोपियां लज्जा छोड़कर रुदन करने लगीं ॥१०॥

काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायन्ती कृष्णसंगमम् । प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत् ॥११॥

कोई एक गोपी भगवान् के मिलन का ध्यान करके, भौंरे को देखकर, उसे अपने प्यारे का भेजा हुआ दूत मान कर यह वचन कहने लगीं ॥११॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गोप्य ऊचुः

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः कुचविलुलितमालाकुंकुमश्मश्रुभिर्नः। वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥१२॥

गोपी बोली–हे भ्रमर! हे कपटी के हे मित्र! मेरे चरणों का स्पर्श न कर, क्योंकि तेरे दाढ़ी-मूंछ सवत के कुचों से मर्दन की हुई भगवान् की वनमाला की केशर से रंगे हुए हैं, भगवान् उन्हीं को प्रसन्न रक्खें, पर यादवों की सभा में इस बात पर अवश्य हँसी होती होगी कि तुझसा निर्लज्ज उन का दूत है ॥१२॥

सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान् भवादृक्। परिचरति कथं तत्पादपद्मं तु पद्मा ह्यपि बत हृतचेता उत्तम श्लोकजल्पैः ॥१३॥

जैसा तू है वैसा ही तेरा स्वामी भी है, जैसे तू फूलों की सुगन्धि लेकर तत्कालही उन्हें छोड़ देता है, वैसे ही श्रीकृष्ण ने एक बार अपना मोहित करने वाला अधरामृत पिलाकर हमें छोड़ दियाहै, भला लक्ष्मीजी इनके चरण-कमल की कैसे सेवा करती होंगी? जान पड़ता है कि इनकी झूठी बातों से ही उनका भी मन हरण होगया होगा ॥१३॥

किमिह बहु षडङ्घ्रे गायसि त्वं यदूनामधिपतिमगृहाणामग्रतो नः पुराणम्। विजयसखसखीनां गीयतां तत्प्रसङ्गक्षपितकुचरुजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टाः ॥१४॥

हे षट्पद! हमारे सामने तू बार-बार श्रीकृष्ण का सनातन गुण क्यों गाता है? हम तो घर-बार छोड़ चुकी हैं, अब तो जो उनकी नई स्त्रियां हों, उनके आगे जाकर श्रीकृष्णकी चरचाकर, कि जिन के काम-ज्वर को भगवान् शान्त करते हैं, वे प्यारी सखियाँ तुझे अपेक्षित देंगी॥१४॥

दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियस्तदुरापाः कपटरुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य याः स्युः। चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्दः ॥१५॥

रे कपटी! स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल की कोई भी ऐसी स्त्री नहीं है जो उन्हें न मिल सकती हो, क्योंकि उनका सुन्दर हास्य तथा भृकुटि-विलास ऐसा ही है, जब लक्ष्मीजी तक उनकी सेवा करती हैं, तब उनके सामने हमारी क्या गिनती है, फिर भी उनसे इतना कह देना कि जो पुरुष दीन पर दया करता है, वही महात्मा और बड़ा यशस्वी कहलाता है ॥१५॥

विसृज शिरसि पादं वेद्म्यहं चाटुकारैरनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात्। स्वकृत इह विसृष्टापत्यपत्यन्यलोका व्यसृजदकृतचेताः किं नु सन्धेयमस्मिन् ॥१६॥

मेरे पैरों पर सिर न रख, मैं तेरी सब चालें जानती हूँ, तू भगवान् से सीखकर दूतपन और मीठे वचन बनाने में बड़ा चतुर होगयाहै, जब उन चञ्चल चित्त भगवान् ने हम ऐसी गोपियों को भी त्याग दिया है कि जिन्होंने उनके लिये सन्तान, पति और परलोक तक को छोड़ बैठी हैं, तब हमें उनसे क्या मेल-मिलाप करना है?॥ १६॥

मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानाम्। बलिमपि बलिमत्त्वाऽऽबेष्टयद्ध्वाङ्क्षवद्यस्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः ॥१७॥

इन्होंने रामावतार में शिकारीकी भांति क्रूरता पूर्वक वानर-राज बालि को मारा, स्त्री के वशीभूत होकर इच्छा करतीहुई शूर्पनखाको नाक कान काट कर विरूप बना दिया; इसी प्रकार वामनावतार में काक की भांति चेष्टा करके राजा बलिसे भेंट पूजा लेकर उसीको बाँधदिया, इसी कारण हम गोपियां उन काले की मित्रता से अघा चुकीहैं, परन्तु क्या करें उनके कथारूपी अर्थका छोड़ना तो कठिन है॥

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः। सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति ॥१८॥

कि जिनके चरित् रूपी कर्णामृत के एक कण का भी जो एक बार स्वाद पाचुके हैं वे राग-द्वेष छोड़कर भीख माँगते फिरते हैं, फिर भी उनकी बातों का प्रसंग तो हमसे छोड़ा नहीं जाता ॥१८॥

वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं श्रद्दधानाः कुलिकरुत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मिवाज्ञाः कृष्णवध्वो हरिण्यः । दद्दशुरसकृदेतत् तन्नखस्पर्शतीव्रस्मररुज उपमन्त्रिन् भण्यता-मन्यवार्ता ॥१९॥

जैसे काले हरिण की भोली भाली हरिणियां व्याधके गायनको निष्कपट मानकर बाणसे घायल होने पर केवल पीड़ा ही देखती हैं, वैसेही हे दूत! हमभी इन कपटी कृष्ण की बातोंको सत्य मान कर उनके नख चुभाने आदि से घायल होकर, नख-स्पर्श से अत्यन्त बढ़े हुए कामदेव सम्बन्धी पीड़ा को देखती हैं, इसलिये इस चरचा को छोड़ कर दूसरी बात कह ॥ १९ ॥

प्रियसख पुनरागाः प्रेयसा प्रेषितः किं वरय किमनुरुन्धे माननीयोऽसि मेऽङ्ग । नयसि कथ-मिहास्मान् दुस्त्यजद्वन्द्वपार्श्वं सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः साकमास्ते ॥२०॥

हे प्रियतम के सखा ! क्या तू फिर लौटआया है, ? क्या प्यारे ने तुझे लौटाकर पहुंचाया है ? तू क्या चाहता है ? जो इच्छा हो सो माँग, क्योंकि तू मेरे सन्मान के योग्यहै, हे मित्र ! जिनका समा-गम छोड़ना अत्यन्त कठिनहै, उन भगवान्के पास तू हमें कैसे ले जायगा ? हे सौम्य ! उनके हृदय में तो लक्ष्मी नाम्नी स्त्री साथ ही रहा करती हैं, फिर हमसे उन्हें प्रयोजन ही क्या है ? ॥२०॥

अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोधुनाऽऽस्ते स्मरति स पितृगेहान् सौम्य बन्धूंश्च गोपान् । क्वचिदपि स कथा नः किङ्करीणां गृणीते भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत् कदा नु ॥२१॥

हे सौम्य ! अभी तो श्रीकृष्ण मथुरा ही में विराजमान हैं, भला वे कभी पिता के घर, बन्धु और गोपों का भी स्मरण करते हैं ? कभी हम दासियों की भी चरचा करते हैं ? (कहो तो कि) अगर चन्दनके समान सुगन्धित भुजाको वे हमारे मस्तक पर कब धरेंगे ? ॥२१॥

श्रीशुक उवाच

अथोद्धवो निशम्यैवं कृष्णदर्शनलालसाः ।
सान्त्वयन् प्रियसन्देशैर्गोपीरिदमभाषत ॥२२॥

श्रीशुकदेवजी बोले-उद्धवजी यह सब बातें सुनकर श्रीकृष्ण के दर्शनों की लालसा रखने वाली गोपियों को उनके संदेशों द्वारा धैर्य बँधाते हुए यह वचन कहने लगे ॥२२॥

उद्धव उवाच

अहो यूयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिताः ।
वासुदेवे भगवति यासामित्यर्पितं मनः ॥२३॥

उद्धवजी बोले-तुम सब कृतार्थहो और जगत् के द्वारा पूजने योग्य हो, क्योंकि श्रीकृष्ण भगवान् में जिनका (तुम्हारा) चित्त इस प्रकार लगा हुआहै।

दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः ।
श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते २४॥

दान, व्रत, तप, होम, वेद-पाठ, संयम और अनेक प्रकार के कल्याणकारी साधनों का अन्तिम फल श्रीकृष्ण की भक्ति ही है ॥२४॥

भगवत्युत्तमश्लोके भवतीभिरनुत्तमा ।
भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा२५॥

उत्तम कीर्त्ति वाले भगवान्में जो तुमने सर्वोत्तम भक्तिका भाव रक्खाहै यह परम उत्तम कामहै,क्यों कि भक्ति मुनियों को भी दुर्लभ है ॥२५॥

दिष्ट्या पुत्रान् पतीन् देहान्स्वजनान् भवनानि च।
हित्वाऽऽर्तिणुत यूयं यत् कृष्णाख्यं पुरुषं परम्॥२६॥

अपने पति, पुत्र, देह, स्वजन, घरवार सब को छोड़कर परम पुरुष भगवान् श्रीकृष्णही को तुमने सर्वस्व मान लियाहै, यह बड़ा अच्छा कियाहै॥२६॥

सर्वात्मभावोऽधिकृतो भवतीनामधोक्षजे ।
विरहेण महाभागा महान् मेऽनुग्रहः कृतः ॥२७॥

हे महा भाग्य शीलाओ ! तुम्हें इस वियोग के कारण भगवान्की एकान्त भक्ति प्राप्त होगईहै तुमने इस भक्तिको दिखलाकर मुझपर बड़ी कृपा की है ॥

श्रूयतां प्रियसन्देशो भवतीनां सुखावहः ।
यमादायागतो भद्रा अहं भर्तुः रहस्करः ॥२८॥

हे कल्याणियो ! अब अपनेको सुख देने वाला प्यारे कृष्णका संदेश सुनो, कि जिसे लेकर मैं भग-वान्के गूढ़-कार्य करने वाला आया हूँ ॥२८॥

श्रीभगवानुवाच

भवतीनां वियोगो मे न हि सर्वात्मना क्वचित् ।
यथा भूतानि भूतेषु खं वाय्वग्निर्जलं मही ॥२९॥
तथाहं च मनःप्राणभूतेन्द्रियगुणात्मना ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आत्मन्येवात्मनात्मानं सृजे हन्म्यनुपालये ॥३०॥
आत्ममायानुभावेन भूतेन्द्रियगुणात्मना ॥३१॥

श्रीभगवान् ने कहा है कि-मेरा और तुम्हारा वियोग किसी प्रकार का भी संभव नहीं. क्योंकि जैसे आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी ये पंच तत्व स्थावर, जङ्गम सभी पदार्थों में रहते हैं, वैसे ही मैं भी मन, प्राण, भूत, इन्द्रिय और गुणों के अधिष्ठाता रूपसे सबमें व्याप्तहूँ और अपनी माया के प्रभाव से अपने ही स्वरूप में भूत, इंद्रिय तथा गुण रूपसे आत्मा के द्वारा आत्मा को रचता हूँ. पालन करताहूँ और संहार करताहूँ ॥२९॥३०॥३१॥

आत्मा ज्ञानमयः शुद्धो व्यतिरिक्तोऽगुणान्वयः।
सुषुप्तिस्वप्नजाग्रद्भिर्मायावृत्तिभिरीयते ॥३२॥

आत्मा गुणों में बँधा हुआ नहीं, वरन् उनसे अलग ज्ञानरूप एवं शुद्धहै सुषुप्ति, जाग्रत् और स्वप्न-ये मनकी मायाजन्य वृत्तियां हैं, इनके कारण विश्व तैजस तथा प्राज्ञरूप जान पड़ता है ॥ ३२ ॥

येनेन्द्रियार्थान् ध्यायेत मृषा स्वप्नवदुत्थितः।
तन्निरुन्ध्यादिन्द्रियाणि विनिद्रः प्रत्यपद्यत ॥३३॥

जैसे जाग्रत् पुरुष स्वप्नको मिथ्या जानता है, वैसे ही विद्वानों द्वारा मिथ्या माने हुए विषयों का जिसके द्वारा चिन्तवन किया जाता है तथा चिंतवन करने से इन्द्रियों पर प्रभाव पड़ताहै, उस मन को आलस्य छोड़कर रोकना चाहिये ॥३३॥

एतदन्तः समाम्नायो योगः सांख्यं मनीषिणाम्।
त्यागस्तपो दमः सत्यं समुद्रान्ता इवापगाः ॥३४॥

वेद, अष्टांग योग, सांख्य, सन्यास, स्वधर्म, इन्द्रिय निग्रह और सत्य इन सबका फल मनोनिग्रहही है,जैसे नदियां अन्ततः समुद्रमें जा मिलती हैं, वैसे ही इन सब साधनों के द्वारा मन वश में होना है ॥ ३४ ॥

यत् त्वहं भवतीनां वै दूरे वर्ते प्रियो दृशाम्।
मनसः सन्निकर्षार्थं मदनुध्यानकाम्यया ॥३५॥

तुम्हारा प्यारा मैं तुम्हारी दृष्टि से इसी लिये दूर रहताहूँ कि तुम्हारा मन मुझ में लगा रहे और तुम मेरा ध्यान करती रहो ॥३५॥

यथा दूरचरे प्रेष्ठे मन आविश्य वर्तते।
स्त्रीणां च न तथा चेतः सन्निकृष्टेऽक्षगोचरे ॥३६॥

कि जैसे दूर रहने वाले पति में स्त्री का मन लगा रहता है, परन्तु समक्ष रहने वाले में उतना नहीं लगता ॥३६॥

मय्यावेश्य मनः कृत्स्नं विमुक्ताशेषवृत्ति यत्।
अनुस्मरन्त्यो मां नित्यमचिरान्मामुपैष्यथ ॥३७॥

यदि तुम समस्त वृत्ति छोड़कर मुझ कृष्ण में ही मन लगाये रहोगी, तो मैं शीघ्र ही तुम्हें प्राप्त हो जाऊँगा ॥३७॥

या मया क्रीडता रात्र्यां वनेऽस्मिन् व्रज आस्थिताः। अलब्धरासाः कल्याण्यो माऽऽपुर्मद्वीर्यचिन्तया ॥३८॥

हे मङ्गल रूपिणियो ! जब मैंने रात के समय वृन्दावन में रास-क्रीड़ा की थी तब अपने पतियों के द्वारा रोकी हुई जो गोपियां उनमें न आ सकीं थीं, वे मेरी लीलाओं का ध्यान करके मुझे ही प्राप्त हो गईं थीं ॥३८॥

श्रीशुक उवाच

एवं प्रियतमादिष्टमाकर्ण्य व्रजयोषितः।
ता ऊचुरुद्धवं प्रीतास्तत्सन्देशाऽऽगतस्मृतीः ॥३९॥

श्रीशुकदेवजी बोले-इस प्रकार प्रियतम का संदेश सुनकर वे व्रजबालायें प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण का स्मरण करके उद्धवजी से कहने लगीं ॥ ३९ ॥

गोप्य ऊचुः

दिष्ट्याऽहितो हतः कंसो यदूनां सानुगोऽघकृत्।
दिष्ट्याऽऽप्तैर्लब्धसर्वार्थैः कुशल्यास्तेऽच्युतोऽधुना ॥

गोपियां बोलीं-यह बड़ा मङ्गलहुआ जो यादवों को दुःख देने वाला कंस अपने अनुचरों सहित मारा गया और यह भी बड़ा अच्छा हुआ जो पूर्ण मनोरथ बंधुओंकेसाथ भगवान् अभी विराजमानहैं।

कच्चिद्गदाग्रजः सौम्य करोति पुरयोषिताम्।
प्रीतिं नः स्निग्धसव्रीडहासोदारेक्षणार्चितः ॥४१॥

हे सौम्य ! हमारे स्नेह और लज्जा मयी मुसकान तथा उदार चितवनसे सत्कार पाये हुए भगवान् को जो प्रीति हमपर करनी चाहिये क्या वही प्रीति वे मथुरा की स्त्रियों पर भी करते हैं ? ॥४१॥

कथं रतिविशेषज्ञः स्त्रियश्च वरयोषिताम्।
नानुबध्येत तद्वाक्यैर्विभ्रमैश्चानुपूजितः ॥४२॥

भला वे रति के सभी नियमों को जानने वाले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्यारे कृष्ण उन मथुरावासनी उत्तम स्त्रियोंके वचन तथा विलासों में कैसे मोहित न होंगे ? ॥४२॥

अपि स्मरति नः साधो गोविन्दः प्रस्तुते क्वचित् ।
गोष्ठीमध्ये पुरस्त्रीणां ग्राम्याः स्वैरकथान्तरे॥४३॥

हे साधु ! क्या वे कभी नगरकी स्त्रियोंमें यथा रूप चरचा करते हुए प्रसंग में हम गाँव वाली स्त्रियों का भी स्मरण करते हैं ? ॥४३॥

ताः किं निशाः स्मरति यासु सदा प्रियाभिर्वृन्दा-
वने कुमुदकुन्दशशाङ्करम्ये । रेमे क्वणच्चरणनूपुर-
रासगोष्ठ्यामस्माभिरीडितमनोज्ञकथाः कदाचित् ॥

कुमुद, कुन्द के फूल और चन्द्रमासे शोभायमान वृन्दावन में नूपुरों की झनकार वाली रासमण्डली में भगवान् ने जिन रातों में हमारे साथ रमण किया था और हमने उनकी मनोहर स्तुति कीथी, क्या वे कभी उन रातोंकी भी याद करतेहैं ?

अप्येष्यतीह दाशार्हस्तप्ताः स्वकृतया शुचा ।
संजीवयन्नु नो गात्रैर्यथेन्द्रो वनमम्बुदैः ॥४५॥

उन्हीं के शोकसे सन्तप्त हम गोपियोंको अपने शरीर का स्पर्श रूपी संजीवन देने के लिये क्या वे कभी यहाँ पधारेंगे ? कि जिस प्रकार इन्द्र मेघ द्वारा वनको संजीवन देता है ॥४५॥

कस्मात् कृष्ण इहायाति प्राप्तराज्यो हताहितः ।
नरेन्द्रकन्या उद्वाह्य प्रीतः सर्वसुहृद्वृतः ॥४६॥

उन्हें तो राज्य मिल चुका है, शत्रु मारे गये हैं सब सम्बन्धियों का समागम होगया है और उन का राज-कन्याओं के साथ विवाह होचुका है, तब भला वे यहाँ क्यों आयेंगे ? ॥४६॥

किमस्माभिर्वनौकोभिरन्याभिर्वा महात्मनः ।
श्रीपतेराप्तकामस्य क्रियेतार्थः कृतात्मनः ॥४७॥

लक्ष्मीनाथ, पूर्ण काम और सदैव पूर्ण स्वरूप महात्मा भगवान् का हम वनवासनी या दूसरी स्त्रियों से क्या प्रयोजन है ? ॥४७॥

परं सौख्यं हि नैराश्यं स्वैरिण्यप्याह पिंगला ।
तज्जानतीनां नः कृष्णे तथाऽप्याशा दुरत्यया॥४८॥

पिंगला नाम की वेश्या ने भी कहाहै कि आशा का छोड़ देना ही परम सुखहै, हम यद्यपि इसबात को जानती हैं फिरभी आशाका छूटना कठिन है ॥

क्व उत्सहेत संत्यक्तुमुत्तमश्लोकसंविदम् ।
अनिच्छतोऽपि यस्य श्रीरंगान्न च्यवते क्वचित् ४९

भला उत्तम श्लोक भगवान् की एकान्त वार्त्ता को कौन छोड़ सकता है ? जब कि लक्ष्मीजी तक उनकी इच्छा न रहते हुए भी उनके अङ्ग से न्यारी नहीं होतीं ॥४९॥

सरिच्छैलवनोद्देशा गावो वेणुरवा इमे ।
सङ्कर्षणसहायेन कृष्णेनाऽऽचरिताः प्रभोः॥५०॥
पुनः पुनः स्मारयन्ति नन्दगोपसुतं बत ।
श्रीनिकेतैस्तत्पदकैर्विस्मर्तुं नैव शक्नुमः ॥५१॥

हे प्रभु ! बलरामजी के साथ श्रीकृष्ण ने जिन में रमण किया था वे नदियाँ, पर्वत, बन, प्रदेश, गौ और वेणु-नाद ये सभी बार-बार उन नंदलाल की याद दिलाते हैं और श्रीआस्पद उनके चरण-चिह्न देखकर हमभी उन्हें नहीं भूल सकतीं ५०।५१

गत्या ललितयोदारहासलीलावलोकनैः ।
माध्व्या गिरा हृतधियः कथं तद् विस्मरामहे॥५२

सुन्दर चाल, उदारहास्य, लीलामयी चितवन और मधुर वाणी से हमारे चित्त हरण किये गये हैं, अब हम उन्हें कैसे भूलें ? ॥५२॥

हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन ।
मग्नमुद्धर गोविन्द गोकुलं वृजिनार्णवे ॥५३॥

हे नाथ ! हे रमानाथ ! हे व्रजनाथ ! हे दुःख-हरण ! हे गोविन्द ! दुःख सागर में डूबते हुए गोकुल का उद्धार कीजिये ॥५३॥

श्रीशुक उवाच

ततस्ताः कृष्णसन्देशैर्व्यपेतविरहज्वराः ।
उद्धवं पूजयाञ्चक्रुर्ज्ञात्वात्मानमधोक्षजम् ॥५४॥

श्रीशुकदेवजी बोले—जब भगवान् के संदेशों से उनके विरह का ताप दूर होगया, तब उन गोपियों ने श्रीकृष्णजी को परमात्मा समझकर तथा अपनी आत्मा मानकर उद्धवजी का पूजन किया ॥ ५४ ॥

उवास कतिचिन्मासान् गोपीनां विनुदन् शुचः ।
कृष्णलीलाकथां गायन् रमयामास गोकुलम्॥५५॥

गोपियों का ताप मिटाने के लिये उद्धवजी भी कुछ माह तक श्रीभगवान की लीलाओं की कथायें कहते हुए वहाँ ठहरे रहे और गोकुल को आनन्द देते रहे ॥ ५५ ॥

यावन्त्यहानि नन्दस्य व्रजेऽवात्सीत् स उद्धवः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्रजौकसां क्षणप्रायाण्यासन् कृष्णस्य वार्तया ५६॥

जितने दिन तक उद्धवजी नन्दरायजीके व्रजमें ठहरे, उतने दिन भगवान् की कथायें होनेके कारण व्रजवासियों को क्षणके समान बीत गये ॥ ५६॥

सरिद्वनगिरिद्रोणीर्वीक्षन् कुसुमितान् द्रुमान।
कृष्णं संस्मारयन रेमे हरिदासो व्रजौकसाम्॥५७

वे हरि-भक्त उद्धवजी नदी, बन, पर्वत की गुफाओं और फूले हुए वृक्षों को देखकर उनके विषय में पूछ-ताँछ करके भगवान् का स्मरण करवाते हुए व्रजवासियोंको आनन्द देते रहे ॥ ५७ ॥

दृष्ट्वैवमादि गोपीनां कृष्णाऽऽवेशात्मविक्लवम्।
उद्धवः परमप्रीतस्ता नमस्यन्निदं जगौ ॥५८॥

इस प्रकार श्रीकृष्णमें चित्त लीन होनेके कारण गोपियों की विह्वलता देखकर, परम प्रसन्न होकर और उन्हें प्रणाम करके उद्धवजी मनमें कहनेलगे।

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः।वाञ्छन्ति यद्भवभियो मुनयो वयं च किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य ॥

कि भूतल पर इन गोपियों का ही जन्म सफल है, क्योंकि जो भाव संसार से भयभीत मुनि तथा हम (भक्तजन) उन सर्वात्मा भगवान् में रखना चाहते हैं, वह भाव दृढ़ रूप में इन गोपियों को प्राप्त हो चुका है, जिसका मन भगवान् की कथा में मग्न होजाय, फिर उसे ब्राह्मण-जन्म या कर्मों से क्या प्रयोजन है ? ॥ ५९ ॥

क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः। नन्वीश्वरोऽनुभजतो विदुषोऽपि साक्षाच्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः॥

कहाँ तो यह व्यभिचार दोष से दूषित बन में रहने वाली स्त्रियाँ और कहाँ परमात्मा श्रीकृष्णमें ऐसे दृढ़ भाव की भक्ति (सच है) निरन्तर भगवान् को स्मरण करके अज्ञानी भी उसी प्रकार कल्याण को प्राप्त होते हैं कि जैसे अमृत के सेवन करने वाले अमरता को प्राप्त होजाते हैं ॥६०॥

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः। रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठलब्धाशिषां य उदगाद् व्रजबल्लवीनाम् ॥६१॥

रासोत्सवके समय गलेमें बाँह डालकर जैसी कृपा भगवान् ने व्रज की गोपियों पर की है, वैसी कृपा तो सदैव उन्हीं के अङ्ग वास करने वाली न तो लक्ष्मीजीपर हुई और न कमलके समान सुगंधि वाली कान्तिमयी अप्सराओं पर हुई ॥६१॥

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्। या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्।

इनके चरण-रज को सेवन करने वाले व्रज के गुच्छे, लता या औषधियों में से किसी एक का मैं ही जन्म पा जाऊँ तो अच्छा हो, क्योंकि इन्हों ने अपने दुस्त्यज कुटुम्ब और धर्म को त्याग कर भगवान् की वह पदवी धारण करली है जिसको श्रुतियाँ भी ढूंढा करती हैं ॥६२॥

या वै श्रियाऽर्चितमजादिभिराप्तकामैर्योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम्। कृष्णस्य तद्भगवतश्चरणारविन्दं न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम् ॥६३॥

जिन गोपियों ने लक्ष्मीजी द्वारा पूजे हुये और पूर्णकाम ब्रह्मा आदि देवता तथा योगेश्वरोंके हृदय में चिन्तवन किये हुए भगवान् के चरणारविन्दों को अपने स्तनों पर धरकर आलिंगन करके अपनी तपनको बुझाया, उन गोपियोंके चरणोंकी रज मेरे मस्तक पर पड़े, मैं यही चाहता हूँ ॥६३ ॥

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥६४॥

जिनका श्रीभगवान् की कथाओं सम्बन्धी गायन त्रिलोक को पवित्र करता है, उन नन्दराय जी के व्रज की स्त्रियों के चरणों की रजकी मैं बार बार वन्दना करता हूँ ॥६४॥

श्रीशुक उवाच

अथ गोपीरनुज्ञाप्य यशोदां नन्दमेव च।
गोपानामन्त्र्य दाशार्हो यास्यन्नारुरुहे रथम्॥६५॥

श्रीशुकदेवजी बोले-फिर उद्धवजी गोपियों, गोप, नन्द और यशोदाजी से आज्ञा लेकर मथुरा जाने के लिये रथ पर सवार हुए ॥६५॥

तं निर्गतं समासाद्य नानोपायनपाणयः।
नन्दादयोऽनुरागेण प्रावोचन्नश्रुलोचनाः ॥६६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनके जाते समय नन्द आदि समस्त गोप हाथों में अनेक भांतिकी भेंटें लेकर आँखोंसे आँसू डालते हुए कहने लगे कि ॥१६॥

मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्णपादाम्बुजाश्रयाः ।
वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नां कायस्तत्प्रह्वणादिषु॥६७॥

हमारे मनकी भावनायें श्रीकृष्णजी के चरणोंके आश्रितहैं, हमारी वाणी उनका नाम लियाकरे और काया उनको प्रणाम आदि सेवा-कार्योंमें लगीरहे ॥

कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया ।
मङ्गलाचरितैर्दानैर्मतिर्नः कृष्ण ईश्वरे ॥६८॥

हम अपने कर्म-वशात् ईश्वर-इच्छा से चाहे जहाँ भटकाकरें परन्तु सदाचार और दानके प्रभाव से हमारी बुद्धि सदैव भगवान श्रीकृष्णही में लगीरहे।

एवं सभाजितो गोपैः कृष्णभक्त्या नराधिप ।
उद्धवः पुनरागच्छन्मथुरां कृष्णपालिताम् ॥६९॥

हे राजन्! इस प्रकार गोपोंने श्रीकृष्णकी भक्ति के द्वारा उद्धवजीका सत्कार किया फिर उद्धवजी श्रीकृष्ण द्वारा पालन की हुई मथुरा नगरी को लौट आये ॥६९॥

कृष्णाय प्रणिपत्याह भक्त्युद्रेकं व्रजौकसाम् ।
वसुदेवाय रामाय राज्ञे चोपायनान्यदात् ॥७०॥

उन्होंने श्रीकृष्णजी को प्रणाम करके व्रजवासियों की भक्तिकी अधिकताका वर्णन किया और वसुदेव, बल्देवजी तथा श्री उग्रसेन को भेंटें अर्पण कीं ॥७०॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अड़तालीसवां अध्याय

(अक्रूर गृह-गमन)

श्रीशुक उवाच

अथ विज्ञाय भगवान् सर्वात्मा सर्वदर्शनः ।
सैरन्ध्र्याः कामतप्ताया प्रियमिच्छन् गृहं ययौ १॥

श्रीशुकदेवजी बोले–सर्वात्मा सर्वदर्शी भगवान् कुब्जा को कामदेवसे सन्तप्त जानकर उसका प्रिय करने की इच्छा से उसके घर पधारे ॥ १ ॥

महार्होपस्करैराढ्यं कामोपायोपबृंहितम् ।
मुक्तादामपताकाभिर्वितानशयनादिभिः ।
धूपैः सुरभिभिर्दीपैः स्रग्गन्धैरपि मण्डितम् ॥ २ ॥

जिसमें अमूल्य सामग्री सुसज्जित है, कामदेव को बढ़ाने वाले पदार्थ रक्खे हुए हैं, मोतियों की माला, पताका वितान और शैया आदि सजे हुएहैं और सुगन्धि, धूप, दीप, फूलों की मालायें और चन्दन की शोभा हो रही है ॥ २ ॥

गृहं तमायान्तमवेक्ष्य साऽऽसनात् सद्यः समुत्थाय हि जातसंभ्रमा । यथोपसंगम्य सखीभिरच्युतं सभाजयामास सदासनादिभिः ॥ ३ ॥

घर आये हुए श्रीकृष्णजीको देखकर वह कुब्जा तत्काल ही आसन से उठकर, संभ्रमित होकर, यथोचित रूप से भगवान् से मिलकर सखियों के साथ सुन्दर आसन आदि के द्वारा भगवान् का सत्कार करने लगी ॥३ ॥

तथोद्धवः साधुतयाऽभिपूजितो न्यषीददुर्व्यामभिमृश्य चासनम् । कृष्णोऽपि तूर्णं शयनं महाधनं विवेश लोकाचरितान्यनुव्रतः ॥ ४ ॥

उसने उसी प्रकार उद्धवजीका भी भली भांति सत्कार किया, वे आसन को स्पर्श करके पृथ्वीपर बैठ गये, फिर भगवान् लोक-रीति दिखलाते हुए तत्काल ही कुब्जा के शयन-स्थल पर गये ॥४॥

सा मज्जनालेपदुकूलभूषणस्रग्गन्धताम्बूलसुधासवादिभिः । प्रसाधितात्मोपससार माधवं सव्रीड लीलोत्स्मितविभ्रमेक्षितैः ॥ ५ ॥

वह भी स्नान, लेपन, वस्त्र, आभूषण, फूलों की माला, सुगन्धि,तांबूल और अमृतके समान मादक वस्तुओं द्वारा अपना साज बनाकर लज्जा मयी लीला पूर्वक हँसती और विलास सहित देखती हुई श्रीकृष्णजी के पास आई ॥ ५ ॥

आहूय कान्तां नवसंगमह्रिया विशङ्कितां कङ्कण भूषिते करे । प्रगृह्य शय्यामधिवेश्य रामया रेमेऽनुलेपार्पणपुण्यलेशया ॥ ६ ॥

नवीन समागम की शंका में फँसी हुई उस सुन्दरी को अपने पास बुलाकर, उसके कंकण से शोभायमान् हाथको पकड़कर और शैया पर लिटा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर प्रभु ने उसके साथ रमण किया, केवल चंदन अर्पण करने का उसे यह फल प्राप्त हुआ ॥६॥

साऽनङ्गतप्तकुचयोरुरसस्तथाक्ष्णोर्जिघ्रन्त्यनन्त-
चरणेन रुजो मृजन्ती । दोर्भ्यां स्तनान्तरगतं
परिरभ्य कान्तमानन्दमूर्तिमजहादतिदीर्घतापम् ७

कामदेव से सन्तप्त कुब्जा, वक्षःस्थल और नेत्रों पर उनके सन्ताप दूर करने के लिये श्रीकृष्णजी के चरणारविन्द सूंघकर उसने रखतेहुए स्तनोंके मध्य में प्राप्त हुए आनन्दमूर्त्ति भगवान्को दोनों भुजाओं द्वारा आलिंगन करके बहुत दिनों के बढ़े हुए ताप को शान्त किया ॥७॥

सैवं कैवल्यनाथं तं प्राप्य दुष्प्रापमीश्वरम् ।
अङ्गरागार्पणेनाहो दुर्भगेदमयाचत ॥ ८ ॥

यद्यपि केवल चन्दन अर्पण करने से उसने मोक्षपति अत्यन्त दुर्लभ परमेश्वर को पा लिया, फिर भी उस मन्द भागनी कुब्जा ने अपनी वाणी से यह माँगा कि ॥८॥

आहोष्यतामिह प्रेष्ठ दिनानि कतिचिन्मया ।
रमस्व नोत्सहे त्यक्तुं सङ्गं तेऽम्बुरुहेक्षण ॥ ९ ॥

हे प्रियतम ! आप कुछदिन यहाँ रह कर मुझे रमण कराइये, क्योंकि हे कमलनयन ! मैं आपका साथ नहीं छोड़ सकती ॥९॥

तस्या कामवरं दत्त्वा मानयित्वा च मानद ।
सहोद्धवेन सर्वेश स्वधामागमदर्चितः ॥१०॥

मान देने वाले. सर्वेश्वर भगवान् उसे वांछित वर देकर, उसका सत्कार करके तथा स्वयं सत्कार पाकर उद्धवजी के साथ समस्त सम्पदायुक्त अपने भवन में आये ॥१०॥

दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ।
यो वृणीते मनोग्राह्यमसत्त्वात् कुमनीष्यसौ ॥११॥

समस्त ईश्वरोंके भी ईश्वर, दुराराध्य भगवान् की आराधना करके जो पुरुष तुच्छ विषय-सुख मांगता है, वह मूर्ख है ॥११॥

अक्रूरभवनं कृष्णः सहरामोद्धवः प्रभुः ।
किञ्चिच्चिकीर्षयन् प्रागादक्रूरप्रियकाम्यया ॥१२॥

फिर बलरामजी और उद्धवजीको साथ लेकर भगवान् कुछ अपने काम से तथा अक्रूरजी को प्रसन्न करने के लिये उनके घर पधारे ॥१२॥

स तान् नरवर श्रेष्ठानाराद्वीक्ष्य स्वबान्धवान् ।
प्रत्युत्थाय प्रमुदितः परिष्वज्याभिनन्द्य च ॥१३॥

अक्रूरजी उन मनुष्यों में श्रेष्ठ अपने बन्धुओं (श्रीराम-कृष्ण तथा उद्धवजी) को दूर से देखकर प्रसन्नता पूर्वक शीघ्रही उठ खड़े हुए और भेंट कर के अभिवन्दना करने लगे ॥१३॥

ननाम कृष्णं रामं च स तैरप्यभिवादितः ।
पूजयामास विधिवत् कृतासनपरिग्रहान् ॥१४॥

और उन्होंने श्रीराम-कृष्णको प्रणाम किया, तब उन्होंने भी अक्रूरको प्रणाम किया, फिर अक्रूरजीने आसनपर बिठाकर उनकी विधिपूर्वक पूजा की१४॥

पादावनेजनीरापो धारयञ्छिरसा नृप ।
अर्हणेनाम्बरैर्दिव्यैर्गन्धस्रग्भूषणोत्तमैः ॥१५॥
अर्चित्वा शिरसाऽनम्य पादावङ्कगतौ मृजन् ।
प्रश्रयावनतोऽक्रूरः कृष्णरामावभाषत ॥१६॥

हे राजन् ! अक्रूरजी ने श्रीकृष्णजी के चरण पखारकर उस जलको अपने सिर पर धारण किया और भेंट, दिव्य वस्त्र, गन्ध, माला, श्रेष्ठ आभूषणों के द्वारा उनका पूजन तथा मस्तक झुकाकर वंदना करके अपनी गोद में चरण रखकर, धीरे २ चांपते हुए अक्रूरजी ने विनीत भाव से झुक कर श्रीराम-कृष्ण से कहा कि ॥१५॥१६॥

दिष्ट्या पापो हतः कंसः सानुगो वामिदं कुलम् ।
भवद्भ्यामुद्धृतं कृच्छ्रादुरन्ताच्च समेधितम्॥१७॥

यह बहुतही अच्छा हुआ जो पापी कंस अपने अनुचरोंके साथ मारागया और आपका वंश आप ही के प्रताप द्वारा इस कठिन कष्ट से छूट कर उन्नति को प्राप्त हुआ है ॥१७॥

युवां प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ ।
भवद्भ्यां न विना किञ्चित् परमस्ति न चापरम्१८

आप जगत् के कारण, जगत्रूप, प्रधान पुरुष हैं, आपके विना कार्य-कारण कुछ भी नहीं है॥१८॥

आत्मसृष्टमिदं विश्वमन्वाविश्य स्वशक्तिभिः ।
ईयते बहुधा ब्रह्मन् श्रुतप्रत्यक्षगोचरम् ॥१९॥

हे ब्रह्मन् ! अपनेही रचेहुए इस जगत् में आप अपनी शक्तियोंसे प्रविष्ट होकर देखने तथा सुननेमें आते हुए पदार्थरूप अनेक प्रकारसे प्रतीत होतेहो।

यथा हि भूतेषु चराचरेषु महादयो योनिषु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भान्ति नाना। एवं भवान् केवल आत्मयोनि-ष्वात्मात्मतन्त्रो बहुधा विभाति ॥२०॥

जैसे स्थावर जङ्गम के शरीरों में पृथ्वी आदि पंच तत्व अनेक प्रकार से भासते हैं, वैसे ही आप स्वाधीन और अकेले ही अपने कार्य-रूप पंच भूत तथा पंचभूतों से बने हुए शरीरों में अनेक रूप से प्रकाश करते हो ॥२०॥

सृजस्यथो लुम्पसि पासि विश्वं रजस्तमः सत्त्वगुणैः स्वशक्तिभिः। न बध्यसे तद्गुणकर्म-भिर्वा ज्ञानात्मनस्ते क्व च बन्धहेतुः ॥२१॥

आपही अपनी शक्ति रूप सत, रज और तम इन तीन गुणोंके द्वारा जगत्को रचते, पालते तथा संहार करते हो, फिर भी आप उन गुणों तथा कर्मों में नहीं बँधते, क्योंकि आप ज्ञान रूप हैं,आप को बंधन का कारण ही क्या हो सकता है? ॥२१॥

देहाद्युपाधेरनिरूपितत्वाद्भावो न साक्षान्न भिदाऽऽत्मनः स्यात्। अतो न बन्धस्तव नैव मोक्षः स्यातां निकामस्त्वयि नोऽविवेकः ॥२२॥

देह आदि उपाधि का किसी प्रकार निरूपण नहीं हो सकता, इसलिये आत्माका जन्म या जन्म का कारण भेद नहीं है, दूसरे अविद्या का अभाव होने के कारण न तो आपका बन्धन होता है और न मोक्ष, हमें जो आपके प्रति बन्ध-मोक्ष प्रतीत होता है वह हमारे अज्ञान का ही कारण है ॥२२॥

त्वयोदितोऽयं जगतो हिताय यदा यदा वेदपथः पुराणः। बाध्येत पाखण्डपथैरसद्भिस्तदा भवान् सत्त्वगुणं बिभर्ति ॥२३॥

जगत् के कल्याण के लिये आपका कहा हुआ यह सनातन वेद-मार्ग जब-जब झूठे पाखंडों से बाधित होता है, तब-तब आप सत्-गुण रूप से अवतार लेते हो ॥२३॥

स त्वं प्रभोऽद्य वसुदेवगृहेऽवतीर्णः स्वांशेन भारमपनेतुमिहासि भूमेः। अक्षौहिणीशतवधेन सुरेतरांशराज्ञामुष्य च कुलस्य यशो वितन्वन् २४

हे प्रभो! आप इस संसार में पृथ्वी का भार उतारने के लिये अपने अंश बलरामजी सहित वसुदेव के घर में प्रकटेहो, कि जिसके द्वारा दैत्यों के अंश रूप राजाओं की सैकड़ों अक्षौहिणी सेना का वध होसके और यदुकुल का यश फैले ॥२४॥

अद्येश नो वसतयः खलु भूरिभागा यः सर्वदेव पितृभूतनृदेवमूर्तिः। यत्पादशौचसलिलं त्रिजगत् पुनानि स त्वं जगद्गुरुरधोक्षज याः प्रविष्टः॥२५॥

हे ईश! हे अधोक्षज! आज हमारा घर निश्चय परम भाग्यशाली है, क्योंकि सब देवता, पितर भूत और राजाओं की एकमात्र मूर्त्ति तथा जिनके चरणों की धोवन रूप गङ्गाजीका जल तीनों लोकों को पवित्र करताहै, वे जगद्गुरु आप इसमें पधारेहैं।

कः पण्डितस्त्वदपरं शरणं समीयाद्भक्तप्रियाद्दृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात्। सर्वान् ददाति सुहृदो भजतोऽभिकामानात्मानमप्युपचयापचयौ न यस्य॥

हे प्रभु! आप भक्त-प्रिय, सत्यवक्ता, सबके हितकारी और कृतज्ञ हैं, आपही भक्तों की समस्त कामनायें पूर्ण करते हैं, आपके नीच-ऊँच भेद भी नहीं है और आपही आत्म-स्वरूप भी देते हैं, तब कौनसा बुद्धिमान् आपको छोड़ कर दूसरे की शरण लेगा? ॥ २६ ॥

दिष्ट्या जनार्दन भवानिह नः प्रतीतो योगेश्वरैरपि दुरापगतिः सुरेशैः। छिन्ध्याशु नः सुतकलत्रधनाप्तगेहदेहादिमोहरशनां भवदीयमायाम्॥ २७॥

हे जनार्दन! आपने घरमें आकर दर्शन दिया; यह बड़ा मङ्गल हुआ है, योगेश्वर और देवता भी आपके स्वरूपको नहीं जानते, पुत्र, स्त्री, धन,हितकारी, घर और देह आदि में मोह की रस्सी रूप आपकी माया हमें लगरही है, उसे शीघ्र ही काट दीजिये। २७ ॥

इत्यर्चितः संस्तुतश्च भक्तेन भगवान् हरिः। अक्रूरं सस्मितं प्राह गीर्भिः संमोहयन्निवः ॥२८॥

जब भक्त अक्रूरने इस प्रकार पूजन तथा स्तुति की, तब भगवान् मन्द मुसकान के साथ वाणी से मोहित सा करते हुए अक्रूरसे कहने लगे ॥२८॥

श्रीभगवानुवाच

त्वं नो गुरुः पितृव्यश्च श्लाघ्यो बन्धुश्च नित्यदा। वयं तु रक्ष्याः पोष्याश्च अनुकम्प्याः प्रजा हि व २९

श्रीभगवान् बोले–आप तो हमारे गुरु, चाचा तथा सदैव सराहनीय योग्य बन्धु हैं, हम आपकी दया चाहने वाली प्रजा हैं, आपको हमारा पालन पोषण करना चाहिये ॥२९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भवद्विधा महाभागा निषेव्या अर्हसत्तमाः ।
श्रेयस्कामैर्नृभिर्नित्यं देवाः स्वार्था न साधवः ३०

आप जैसे परम भाग्यशाली अत्युत्तम पुरुषों की उन मनुष्यों को अवश्य सेवा करना चाहिये, जो अपना कल्याण चाहते हों; देवता भी स्वार्थी होते हैं, पर साधुजन दूसरों पर कृपाही करते हैं॥

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥३१॥

जलमय तीर्थ या मृत्तिका व पाषाणमय देवता नहीं हैं-यह कहना ठीक नहीं, परन्तु वे सब बहुत दिनों तक सेवा करने पर पवित्र करते हैं और साधुजन दर्शनों से ही पवित्र कर देते हैं ॥३१॥

स भवान् सुहृदां वै नः श्रेयान् श्रेयश्चिकीर्षया ।
जिज्ञासार्थं पाण्डवानां गच्छस्व त्वं मजाह्वयम्॥३२

ऐसे साधु हम आप बन्धुओंमें अत्यन्त श्रेष्ठ हैं इसलिये पाण्डवोंके हितार्थ उनका वृत्तान्त जानने के लिये आप हस्तिनापुर पधारें ॥३२॥

पितर्युपरते बालाः सह मात्रा सुदुःखिताः ।
आनीताः स्वपुरं राज्ञा वसन्त इति शुश्रुम ॥३३॥

पिता पांडु के मरने पर वे बालक माताके साथ अत्यन्त दुःखी होरहे हैं और यह भी सुना है कि धृतराष्ट्रके बुलाने से वे अपने पुरमें रहते हैं ॥ ३३॥

तेषु राजाऽम्बिकापुत्रो भ्रातृपुत्रेषु दीनधीः ।
समो न वर्तते नूनं दुष्पुत्रवशगोन्धदृक् ॥३४॥

परन्तु कृपण बुद्धि अन्ध धृतराष्ट्र अपने कुपूतों के आधीन होने से अपने भाई के पुत्रों के साथ समान व्यवहार नहीं करता ॥३४॥

गच्छ जानीहि तद्वृत्तमधुना साध्वसाधु वा ।
विज्ञाय तद् विधास्यामो यथा शं सुहृदां भवेत्३५॥

इसलिये आप जाइये और उनकी अच्छी या बुरी दशा का पता लेकर आइये, हम उस दशाको जानकर वही उपायकरेंगे जिसमें पांडवोंको सुखहो॥

इत्यक्रूरं समादिश्य भगवान् हरिरीश्वरः ।
संकर्षणोद्धवाभ्यां वै ततः स्वभवनं ययौ ॥३६॥

इस प्रकार अक्रूरजी से कहकर भगवान् ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र, बलरामजी तथा उद्धवजी के साथ अपने घर को आये ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८॥

उञ्चासवां अध्याय

(अक्रूर द्वारा धृतराष्ट्र को श्रीकृष्ण सन्देश)

श्रीशुक उवाच

स गत्वा हास्तिनपुरं पौरवेन्द्रयशोऽङ्कितम् ।
ददर्श तत्राम्बिकेयं सभीष्मं विदुरं पृथाम् ॥ १ ॥
सहपुत्रं च बाह्लीकं भारद्वाजं सगौतमम् ।
कर्णं सुयोधनं द्रौणिं पाण्डवान् सुहृदोऽपरान्॥२॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! वे अक्रूरजी हस्तिनापुरगये, जो पुरवंशी राजाओंके द्वारा बनाये मन्दिर आदि से शोभायमान था, वहाँ धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर, कुन्ती, बाल्हीक, सोमदत्त, द्रोणाचार्य; कृपाचार्य, कर्ण,दुर्योधन; अश्वत्थामा,पांड़वों तथा दूसरे सुहृद जनों को उन्होंने देखा ॥ १॥२ ॥

यथावदुपसंगम्य बन्धुभिर्गान्दिनीसुतः ।
संपृष्टस्तैः सुहृद्वार्त्तां स्वयं चापृच्छदव्ययम् ॥ ३ ॥

अक्रूरजी सब बन्धुओं से यथायोग्य रीति से मिले, उन लोगों ने बन्धुओं की कुशल अक्रूरजीसे पूछी और अक्रूरजीने भी उनसे कुशल-प्रश्नकिया ।

उवास कतिचिन्मासान् राज्ञो वृत्तविवित्सया ।
दुष्प्रजस्याल्पसारस्य खलच्छन्दानुवर्तिनः ॥ ४ ॥

राज्य का हाल जानने के लिये वे कुछ दिनों तक वहाँ रहे, कारण कि पहले तो धृतराष्ट्रके पुत्र दुष्ट थे, दूसरे वह भी धैर्यहीन और दुष्ट कर्णआदि के कहने में चलता था ॥४॥

तेज ओजो बलं वीर्यं प्रश्रयादींश्च सद्गुणान् ।
प्रजानुरागं पार्थेषु न सहद्भिश्चिकीर्षितम् ॥ ५ ॥

पाण्डवों के तेज, बल, पराक्रम, शस्त्रादि की निपुणता और विनय आदि श्रेष्ठ गुणों को तथा उनके प्रति प्रजाकी प्रसन्नता को दुष्ट दुर्योधन आदि सहन न कर सकते थे ॥५॥

कृतं च धार्तराष्ट्रैर्यद्गरदानाद्यपेशलम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आचख्यौ सर्वमेवास्मै पृथा विदुर एव च ॥ ६ ॥

इसीलिये कौरवों ने विष देने आदि के जो अन्याय पांडवों के साथ किये थे, वे सब कुन्ती और विदुरजी ने उन्हें सुनाये ॥६॥

पृथा तु भ्रातरं प्राप्तमक्रूरमुपसृत्य तम् ।
उवाच जन्मनिलयं स्मरन्त्यश्रुकुलेक्षणा ॥ ७ ॥

कुन्ती ने अपने भाई अक्रूरजी को आया हुआ देखकर अपनी जन्म-भूमि का स्मरण करते तथा आँसू बहाते हुए इस प्रकार कहा कि ॥ ७॥

अपि स्मरन्ति नः सौम्य पितरौ भ्रातरश्च मे ।
भगिन्यो भ्रातृपुत्राश्च जामयः सख्य एव च ॥ ८ ॥
भ्रात्रेयो भगवान् कृष्णः शरण्यो भक्तवत्सलः ।
पैतृष्वसेयान् स्मरति रामश्चाम्बुरुहेक्षणः ॥ ९ ॥

हे सौम्य ! मेरे माता,पिता,भाई, बहिनें,भतीजे कुल की स्त्रियाँ, सखियां, भक्तवत्सल शरणदाता श्रीकृष्ण और कमलनयन श्रीबलरामजी कभी मेरे पुत्रों की भी सुधि करते हैं ? ॥८॥९ ॥

सपत्नमध्ये शोचन्तीं वृकाणां हरिणीमिव ।
सान्त्वयिष्यति मां वाक्यैः पितृहीनांश्च बालकान्१०

जिस प्रकार व्याघ्रों में हरिणी फंस जाती है, उसी प्रकार मैं शत्रुओं में फंसी हुई चिन्ता किया करती हूँ, भला क्या श्रीकृष्णचन्द्र मुझे तथा पिता हीन मेरे बालकोंको अपने वचनोंद्वारा धैर्य बंधायेंगे?

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन ।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द शिशुभिश्चावसीदतीम्॥११।

हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महा योगिन् ! हे विश्वात्मन् ! हे विश्वपालक ! हे गोविन्द ! बालकों सहित दुःख पाती हुई मुझ शरणागत की रक्षा कीजिये ॥ ११ ॥

नान्यत्तव पदाम्भोजात्पश्यामि शरणं नृणाम् ।
विभ्यतां मृत्युसंसारादीश्वरस्याऽपवर्गिकात्॥१२॥

आपके मोक्षदाता चरणारविंदों के सिवा मनुष्य मात्र में मुझे कोई दूसरा शरण देने वाला दिखाई नहीं देता, क्योंकि मनुष्य तो स्वयं ही मृत्यु रूपी संसार से भय खाता है ॥१२॥

नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने ।
योगेश्वराय योगाय त्वामहं शरणं गता ॥१३॥

शुद्ध स्वरूप, ब्रह्म, परमात्मा, योगेश्वर, योग-मूर्त्ति, श्रीकृष्ण को मैं प्रणाम करती हूँ, हे प्रभु ! मैं आपके शरण आई हूँ ॥१३॥

श्रीशुक उवाच

इत्यनुस्मृत्य स्वजनं कृष्णं च जगदीश्वरम् ।
प्रारुदद्दुःखिता राजन् भवतां प्रपितामही ॥१४॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! इस प्रकार अपने कुटुम्ब और श्रीकृष्णजी का स्मरण करके तुम्हारी परदादी (कुन्ती) दुःखी होकर रोने लगी ॥१४॥

समदुःखसुखोऽक्रूरो विदूरश्च महायशाः ।
सान्त्वयामासतुः कुन्तीं तत्पुत्रोत्पत्तिहेतुभिः॥१५॥

अक्रूरजी तथा परम यशस्वी विदुरजी कुन्ती के साथ सहानुभूति प्रकट करते हुए, उन पांडवों के पिता रूप धर्म, इन्द्र आदि का प्रभाव कह-कह कर उन्हें सान्त्वना देते थे ॥१५॥

यास्यन् राजानमभ्येत्य विषमं पुत्रलालसम् ।
अवदत् सुहृदां मध्ये बन्धुभिः सौहृदोदितम्॥१६॥

अक्रूरजी ने विदा होते समय बन्धुओं के बीच में कुपूतों के कहने पर चलने वाले और विषम व्यवहार करने वाले राजा धृतराष्ट्र के पास आकर वह संदेशा सुनाया, जो श्रीराम-कृष्ण आदि ने दिया था ॥१६॥

अक्रूर उवाच

भो भो वैचित्रवीर्य त्वं कुरूणां कीर्तिवर्धने ।
भ्रातर्युपरते पाण्डावधुनाऽऽसनमास्थितः ॥१७॥

अक्रूरजी बोले-हे विचित्र वीर्य के पुत्र ! हे कौरवों की कीर्त्ति बढ़ाने वाले ! जब तुम्हारा भाई पांडु मरा,तब अभी तुमको राज-सिंहासन मिलाहै।

धर्मेण पालयन्नुर्वीं प्रजाः शीलेन रञ्जयन् ।
वर्तमानः समः स्वेषु श्रेयः कीर्तिमवाप्स्यसि॥१८॥

यदि तुम धर्म पूर्वक पृथ्वी का पालन करोगे तो अपने स्वभाव से प्रजाको प्रसन्न कर लोगे यदि तुम अपने बन्धुओं पर सम दृष्टि रक्खोगे तो तुम्हारा भला होगा और यश बढ़ेगा ॥१८॥

अन्यथा त्वाचरँल्लोके गर्हितो यास्यसे तमः ।
तस्मात् समत्वे वर्तस्व पाण्डवेष्वात्मजेषु च॥१९॥

अन्यथा यहाँ दुःख और परलोकमें नर्क भोगना पड़ेगा, इसलिये तुम पाण्डवों तथा अपने पुत्रों के साथ एकसा भाव रक्खो ॥ १९ ॥

नेह चात्यन्तसंवासः कर्हिचित्केनचित्सह ।
राजन् स्वेनापि देहेन किमु जायात्मजादिभिः॥२०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे राजन्! यहाँ किसीका सत्संग सदैव स्थिर नहीं रहता, स्त्री और पुत्र आदि तो क्या? अपना देह भी सदा साथ नहीं रहता ॥ २० ॥

एकः प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एको नु भुंक्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥२१॥

जीव अकेला ही तो जन्म लेताहै और अकेला ही मरता है, वह अकेले ही पाप और पुण्य के फल को भी भोगता है ॥२१॥

अधर्मोपचितं वित्तं हरन्त्यन्येऽल्पमेधसः ।
संभोजनीयापदेशैर्जलानीव जलौकसः ॥२२॥

मूर्ख का अधर्म से जोड़ा हुआ धन दूसरेलोग पुत्र आदि के बहाने से हरण कर लेते हैं, जैसे कि मछलियों को जीवन देने वाले जलको उनके बच्चे पी लेते हैं ॥ २२ ॥

पुष्णाति यानधर्मेण स्वबुद्ध्या तमपण्डितम् ।
तेऽकृतार्थं प्रहिण्वन्ति प्राणा रायः सुतादयः२३॥

जिन्हें दीन और करुणा का पात्र समझ कर आप अधर्म पूर्वक पोषण करता है, वे प्राण, धन और पुत्र आदि उस मूर्ख पोषण-कर्त्ता को भोग-सुख मिलने से पहले ही छोड़ देते हैं ॥२३॥

स्वयं किल्बिषमादाय तैस्त्यक्तो नार्थकोविदः ।
असिद्धार्थो विशत्यन्धं स्वधर्मविमुखस्तमः ॥२४॥

स्त्री पुत्र आदि के छोड़ देने पर अपने वास्तविक स्वार्थ को न जानने वाला वह मूर्ख प्रयोजन सिद्ध न होने के कारण स्वधर्म से विमुख होकर अपने किये हुए पापों को साथ लेकर घोर नरक में पड़ता है ॥२४॥

तस्माल्लोकमिमं राजन् स्वप्नमायामनोरथम् ।
वीक्ष्यायम्यात्मनात्मानं समः शान्तो भव प्रभो २५

इसलिये हे राजन्! हे प्रभु! इस संसार को स्वप्न, माया व मनोरथ की भांति (अनिस्थर) समझ कर बुद्धि के द्वारा चित्त को वश में करके शान्त और समदर्शी बनो ॥२५॥

धृतराष्ट्र उवाच

यथा वदति कल्याणी वाचं दानपते भवान् ।
तथाऽनया न तृप्यामि मर्त्यः प्राप्य यथाऽमृतम् २६

धृतराष्ट्र बोले-हे अक्रूरजी! आप तो कल्याण करने वाले वचन कह रहे हैं, उनसे हम तृप्त नहीं होते, जैसे मरणधर्मा मनुष्य अमृत पाकर भी तृप्त नहीं होता ॥२६॥

तथाऽपि सूनृता सौम्य हृदि न स्थीयते चले ।
पुत्रानुरागविषमे विद्युत् सौदामनी यथा ॥२७॥

हे साधु! फिर भी आपकी प्रिय और सत्य वाणी अपने पुत्रों की प्रीति के कारण मेरे विषम और चंचल चित्त पर प्रभाव नहीं डालती, जैसे स्फटिक मणि वाले सुदामा पर्वत पर बिजली चमकतेही लीन होजातीहै और स्थिर नहीं रहती॥

ईश्वरस्य विधिं को नु विधुनोत्यन्यथा पुमान् ।
भूमेर्भारावताराय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥२८॥

उन ईश्वरकी इच्छा को कौन मिटा सकताहै! (या उसके विरुद्ध कर सकताहै) कि जिन्होंने अभी पृथ्वी का भार उतारने के लिये यदुकुल में अवतार लिया है ॥२८॥

यो दुर्विभर्शपथया निजमाययेदं दृष्ट्वा गुणान् विभजते तदनुप्रविष्टः । तस्मै नमो दुरवबोध-विहारतन्त्रसंसारचक्रगतये परमेश्वराय॥२९॥

जो अपनी अतर्क्य माया के द्वारा इस जगत् को रचकर, उसमें अन्तर्यामी रूप से प्रवेश करके कर्म तथा कर्म-फल का विभाग करतेहैं और समझ में न आने वाली लीला के द्वारा संसार चक्र को घुमाते हैं, उन परमेश्वरको मैं प्रणाम करताहूँ ॥२९॥

श्रीशुक उवाच

इत्यभिप्रेत्य नृपतेरभिप्रायं स यादवः ।
सुहृद्भिः समनुज्ञातः पुनर्यदुपुरीमगात् ॥३०॥

श्रीशुकदेवजी बोले-वे अक्रूरजी राजाका ऐसा भाव समझकर और बन्धुओं से बिदा लेकर, मथुरापुरी में लौट आये ॥ ३० ॥

शशंस रामकृष्णाभ्यां धृतराष्ट्रविचेष्टितम् ।
पाण्डवान् प्रति कौरव्य यदर्थं प्रेषितः स्वयम्॥३१॥

हे राजन्! उन्होंने श्रीराम-कृष्ण से पांडवों से सम्बन्ध रखने वाले धृतराष्ट्रके वे सभी समाचार कहे कि जिनके लिये वे भेजे गये थे ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पं० गोविन्ददास व्यास "विनीत" बाल-बोधनी नाम्नी भाषा टीकायां एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

समाप्तोऽयं दशमस्कन्ध पूर्वार्द्धः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

* श्रीगणेशायनमः *

श्रीमद्भागवत

बाल बोधिनी भाषा टीका सहित ।

दशम स्कन्ध उत्तरार्द्ध

मोर मुकुट मुरली लसत, गर सोहत बन माल ।
जम 'विनीत' इहि छबि सहित, रहहिं हृदय नँदलाल ॥

पचासवां अध्याय

(जरासंध के कारण द्वारका-वास)

श्रीशुक उवाच

अस्तिः प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ ।
मृते भर्तरि दुःखार्ते ईयतुः स्म पितुर्गृहान् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे भरत श्रेष्ठ ! अस्ति और प्राप्ति नाम की कंस की दो दासियां थीं, वे पतिके मरने से दुःखी होकर अपने पिता जरासंध के घर चली गईं ॥१॥

पित्रे मगधराजाय जरासन्धाय दुःखिते ।
वेदयाञ्चक्रतुः सर्वमात्मवैधव्यकारणम् ॥ २ ॥

उन दोनों दुखियारियों ने जाकर अपने पिता मगध-राज (जरासंध) से अपने विधवा होने का सारा हाल कहा ॥२॥

स तदप्रियमाकर्ण्य शोकामर्षयुतो नृप ।
अयादवीं महीं कर्तुं चक्रे परममुद्यमम् ॥ ३ ॥

हे राजन् ! यह अप्रिय वचन सुनकर चिन्ता तथा क्रोध-युक्त होकर उसने पृथ्वीके समस्त यदु-वंशियों को जड़से नष्ट करनेका विचार किया और इसके लिये महान् उद्योग किया ॥ ३ ॥

अक्षौहिणीभिर्विंशत्या तिसृभिश्चापि संवृतः ।
यदुराजधानीं मथुरा न्यरुणत् सर्वतो दिशम् ॥ ४ ॥

उसने तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर यादवोंकी राजधानी मथुरा नगरीको चारों ओरसे घेरलिया।

निरीक्ष्य तद्बलं कृष्ण उद्वेलमिव सागरम् ।
स्वपुरं तेन संरुद्धं स्वजनं च भयाकुलम् ॥ ५ ॥
चिन्तयामास भगवान् हरिः कारणमानुषः ।
तद्देशकालानुगुणं स्वावतारप्रयोजनम् ॥ ६ ॥

सकारण मनुष्य देह धारण किये हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी मर्यादा भंग कर समुद्र की नाईं आती हुई उसकी सेना तथा उससे घिरी हुई नगरी एवं भयातुर स्वजनों को देखकर, देश-काल के अनुसार अपने अवतार लेने के उद्देश्य पर विचार करने लगे कि ॥५॥६॥

हनिष्यामि बलं ह्येतद्भुवि भारं समाहितम् ।
मागधेन समानीतं वश्यानां सर्वभूभुजाम् ॥ ७ ॥

क्या अभी केवल सेना का मारना ही उचित है ? अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि अभी केवल जरासंध की वशवर्ती भू-तल की भाररूप सेना का ही बध करना चाहिये ॥७॥

अक्षौहिणीभिः सङ्ख्यातं भटाश्वरथकुञ्जरैः ।
मागधस्तु न हन्तव्यो भूयः कर्ता बलोद्यमम् ॥ ८ ॥

(इकीस हज़ार आठसौ सत्तर रथ, इतने ही गजपति, पैंसठ हज़ार छःसौ दस अश्वपति और एक लाख नौ हज़ार तीन सौ पचास पैदल मिल कर एक अक्षौहिणी दल कहलाता है) अभी ऐसी-ऐसी अनेक अक्षौहिणी सेनाओं का बध करना ही उचित है, जरासन्ध का नहीं, क्योंकि यदि वह जीतारहेगा तो फिर उद्योग करके सेना इकट्ठीकरेगा॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एतदर्थोऽवतारोऽयं भूभारहरणाय मे ।
संरक्षणाय साधूनां कृतोऽन्येषां वधाय च ॥ ९ ॥

मेरा यह जो अवतार है सो भूमि का भार उतारने, साधुओं की रक्षा करने और दुष्टों को दण्ड देने के लिये है ॥९॥

अन्योऽपि धर्मरक्षायै देहः सम्भ्रियते मया ।
विरामायाप्यधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित् ॥१०॥

मैं और भी जो देह धारण करता हूँ सो समय पर बढ़ते हुए अधर्म को नाश करने के लिये ही धारण करता हूँ ॥१०॥

एवं ध्यायति गोविन्द आकाशात् सूर्यवर्चसौ ।
रथावुपस्थितौ सद्यः ससूतौ सपरिच्छदौ ॥११॥

भगवान् के इस प्रकार विचार करते ही आकाश से सूर्य के समान प्रकाशित सारथी सहित और युद्ध की सामग्री से सुसज्जित होकर दो रथ तत्काल ही उतरे ॥ ११ ॥

आयुधानि च दिव्यानि पुराणानि यदृच्छया ।
दृष्ट्वा तानि हृषीकेशः सङ्कर्षणमथाब्रवीत् ॥१२॥

उनके साथ प्राचीन दिव्य आयुध भी आये, उनको देखकर भगवान्ने बलरामजीसे कहा कि ॥

पश्यार्य व्यसनं प्राप्तं यदूनां त्वावतां प्रभो ।
एष ते रथ आयाति दयितान्यायुधानि च ॥१३॥

हे आर्य ! हे प्रभु ! आप जिन यादवोंकी रक्षा करते हैं, उनके संकटको देखिये, आपके लिये यह रथ और प्रिय शस्त्र आगये हैं ॥१३॥

यानमास्थाय जह्येतद्व्यसनात् स्वान् समुद्धर ।
एतदर्थं हि नौ जन्म साधूनामीश शर्मकृत् ॥१४॥

इस रथपर चढ़कर सेनाका संहार करके स्वजनों का कष्ट दूर कीजिये, हे ईश ! अपना जन्म केवल इसीलिये है कि साधुओं का कल्याण हो ॥

त्रयोविंशत्यनीकाख्यं भूमेर्भारमपाकुरु ।
एवं संमन्त्र्य दाशार्हौ दंशितौ रथिनौ पुरात् ॥१५॥
निर्जग्मतुः स्वायुधाढ्यौ बलेनाल्पीयसाऽऽवृतौ ।
शङ्खं दध्मौ विनिर्गत्य हरिर्दारुकसारथिः ॥१६॥

इसलिये तेईस अक्षौहिणी सेना रूपी भूमिका भार दूर कीजिये, इस प्रकार दोनों भाई सम्मति करके, कवच आदि पहन कर, रथमें बैठकर अपने शस्त्र और थोड़ीसी सेना साथ लेकर पुरीसे बाहर निकले और दारुक जिनके सारथीहैं, ऐसे श्रीकृष्ण भगवान् ने शंख नाद किया ॥१५॥१६॥

ततोऽभूत् परसैन्यानां हृदि वित्रासवेपथुः ।
तावाह मागधो वीक्ष्य हे कृष्ण पुरुषाधम ॥१७॥
न त्वया योद्धुमिच्छामि बालेनैकेन लज्जया ।
गुप्तेन हि त्वया मन्द न योत्स्ये याहि बन्धुहन् १८॥

उससे भय के मारे शत्रु-दलके हृदय काँप उठे उनको देखकर जरासंध ने कहा कि हे कृष्ण ! हे नराधम ! मैं केवल तुझ बालक के साथ युद्ध नहीं करना चाहता, क्योंकि इसमें मुझे लज्जा आती है, हे मन्द ! हे बन्धु-वधिक ! मैं तुझसे न लड़ूंगा, क्योंकि तू छद्म वेष वाला है ॥१७॥१८॥

तव राम यदि श्रद्धा युद्धचस्व धैर्यमुद्वह ।
हित्वा वा मच्छरैश्छिन्नं देहं स्वर्याहि मा जहि १९॥

हाँ, हे राम ! यदि तेरा साहस हो तो तू धैर्य रखकर मुझसे युद्ध कर और या तो मेरे बाणों से विदीर्ण होकर अपना शरीर छोड़कर स्वर्गको जा, या मुझे मार डाल ॥१९॥

श्रीभगवानुवाच

न वै शूरा विकत्थंते दर्शयन्त्येव पौरुषम् ।
न गृह्णीमो वचोराजन्नातुरस्य मुमूर्षतः ॥२०॥

श्रीभगवान् बोले–हे राजन् ! वीर पुरुष बकझक नहीं करते, वरन् उनमें जो पुरुषार्थ होता है उसे करके दिखलाते हैं; तू आतुर है और तेरी मृत्यु भी निकट आ पहुंची है, इसलिये हम तेरी बातों पर ध्यान नहीं देते ॥ २० ॥

श्रीशुक उवाच

जरासुतस्तावभिसृत्य माधवौ महाबलौघेन बलीयसाऽऽवृणोत् ।
ससैन्ययानध्वजवाजिसारथी सूर्यानलौ वायुरिवाभ्ररेणुभिः ॥२१॥

श्रीशुकदेवजी बोले–जरासन्ध ने उनके पास आकर अपने बड़े दल के द्वारा सेना, रथ, ध्वजा, घोड़े और सारथीसहित श्रीराम-कृष्णको घेर लिया जैसे वायु: बादल और रेणु के द्वारा सूर्य व अग्नि को घेर लेता है ।२१॥

सुपर्णतालध्वजचिह्नितौ रथावलक्षयन्त्यो हरिरामयोर्मृधे । स्त्रियः पुराट्टालकहर्म्यगोपुरं समाश्रिताः संमुमुहुः शुचार्दिताः ॥२२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गरुड़ तथा ताल-ध्वज वाले श्रीराम-कृष्ण के रथों को युद्ध में न देखकर अटारियों, महलों और दरवाज़ों पर चढ़ी हुई नगर की नारियां शोकातुर होकर मूर्छित होगईं ॥२२॥

हरिः परानीकपयोमुचां मुहुः शिलीमुखात्युल्बणवर्षपीडितम् । स्वसैन्यमालोक्य सुरासुरार्चितं व्यस्फूर्जयच्छार्ङ्गशरासनोत्तमम् ॥२३॥

शत्रु-दलरूपी बादल से बरसती हुई बाण रूपी तीक्ष्ण वृष्टि से अपनी अत्यन्त पीड़ित सेना को देखकर भगवान् ने देवता तथा दैत्यों के द्वारा पूजे हुए अपने शार्ङ्ग धनुष का टंकार-नाद किया ॥२३॥

गृह्णन्निषङ्गादथ संदधच्छरान्विकृष्य मुञ्चन् शितबाणपूगान् । निघ्नन् रथान् कुञ्जरवाजिपत्तीन निरन्तरं यद्वदलातचक्रम् ॥२४॥

और तरकश में से बाण निकाल कर, धनुष पर जोड़ कर तथा उसे खींच कर जब उन्होंने बाण समूह चलाये और रथ, हाथी, घोड़े तथा पैदल संहारकिये, तब धनुष निरन्तर घूमती हुई मशाल के समान दीखने लगा ॥२४॥

निर्भिन्नकुम्भाः करिणो निपेतुरनेकशोऽश्वाः शरवृक्णकन्धराः । रथा हताश्वध्वजसूतनायकाः पदातयश्छिन्नभुजोरुकन्धराः ॥२५॥

मस्तक कटने से हज़ारों हाथी गिरगये अनेक घोड़ों की गरदनें बाणों से कट गईं, रथों के घोड़े मारेगये, ध्वजायें टूटगईं, सारथी तथा रथी संहार होने लगे और प्यादोंकी भुजायें, जंघा तथा गरदनें कटने लगीं ॥२५॥

संछिद्यमानद्विपदेभवाजिनामङ्गप्रसूताः शतशोऽसृगापगाः । भुजाऽहयः पूरुषशीर्षकच्छपा हतद्विपद्वीपहयग्रहाकुलाः ॥२६॥

हे राजन् ! जो हाथी, घोड़े या पैदल कट रहे थे, उनके शरीरों से सैकड़ों लोहूकी नदियां बहने लगीं, जिनमें भुजायें सर्पों के समान, नर मस्तक कछुओंके समान और घोड़े मगरके समान दीखतेथे।

करोरुमीना नरकेशशैवला धनुस्तरङ्गायुधगुल्म संकुलाः । अच्छूरिकावर्तभयानका महामणिप्रवेकाभरणाश्मशर्कराः ॥२७॥

हाथ व ऊरु मछली के समान, मनुष्यों के केश शेवालके समान, धनुष तरंगके समान, शस्त्र घास के समान, ढालें भँवरके समान और अमूल्य मणियों के आभूषण पत्थर तथा कङ्कड़ों के समान दृष्टि पड़ते थे ॥ २७ ॥

प्रवर्तिता भीरुभयावहा मृधे मनस्विनां हर्षकरीः परस्परम् । विनिघ्नताऽरीन् मुसलेन दुर्मदान् संकर्षणेनापरिमेयतेजसा ॥२८॥

बलं तदङ्गार्णवदुर्गभैरवं दुरन्तपारं मगधेन्द्रपालितम् । क्षयं प्रणीतं वसुदेवपुत्रयोर्विक्रीडितं तज्जगदीशयोः परम् ॥२९॥

युद्ध में बहती हुई उन लोहूकी नदियोंको देख देखकर कायर घबरा रहेथे और वीर पुरुष परस्पर प्रसन्न होरहे थे, हे राजन् ! अपार तेजधारी बलरामजी ने दुर्मद शत्रुओं को मूसल से मार कर, समुद्रके समान दुर्गम और भयानक जरासंधद्वारा पालित उस अथाह तथा अपार सेना का संहार किया, यह श्रीराम-कृष्ण का चरित्र केवल उनकी क्रीड़ा है, पराक्रम नहीं, क्योंकि वे जगदीश्वर हैं ॥

स्थित्युद्भवान्तं भुवनत्रयस्य यः समीहतेऽनन्तगुणः स्वलीलया । न तस्य चित्रं परपक्षनिग्रहस्तथापि मर्त्यानुविधस्य वर्ण्यते ॥३०॥

जो अनन्त गुण वाले भगवान् अपनी लीलामात्र से त्रिलोकी की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार करते हैं, उनका शत्रु-दल को दण्डदेना कोई अचरज की बात नहीं, फिर भी नर-तन धारण करने के कारण उसका मैं वर्णन कर रहा हूँ ॥३०॥

जग्राह विरथं रामो जरासन्धं महाबलम् । हतानीकावशिष्टासुं सिंहः सिंहमिवौजसा ॥३१॥

सेना मर जाने के कारण केवल अवशिष्ट प्राण वाले के समान रथहीन जरासंध को बलरामजी ने ऐसे पकड़ लिया, जैसे सिंह बल पूर्वकक हाथी को पकड़ लेता है ॥३१॥

बध्यमानं हतारातिं पाशैर्वारुणमानुषैः । वारयामास गोविन्दस्तेन कार्यचिकीर्षया ॥३२॥

जब वे शत्रुओंके मारनेवाले जरासंधको वरुण तथा मनुष्यों के पाश द्वारा बाँधने लगे, तब उन्हें देखकर श्रीकृष्णजी ने रोकदिया, क्योंकि वे उससे और भी काम निकालना चाहते थे ॥३२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स मुक्तो लोकनाथाभ्यां व्रीडितो वीरसंमतः।
तपसे कृतसङ्कल्पो वारितः पथि राजभिः ॥३३॥
वाक्यैः पवित्रार्थपदैर्नयनैः प्राकृतैरपि ।
स्वकर्मबन्धप्राप्तोऽयं यदुभिस्ते पराभवः ॥३४॥

वीरपुरुषोंके मान्य उस जरासंधको जब जगत् पति श्रीराम-कृष्ण ने छोड़ दिया, तब उसने तप करने का विचार किया, परन्तु मार्ग में राजा लोगों ने धर्म-नीति तथा लोक-रीतिके अनुसार समझाया कि आपकी यादवों द्वारा जो हार हुई है, वह कर्म बन्धन से हुई है इसमें लाजकी क्या बात है ? ॥

हतेषु सर्वानीकेषु नृपो बार्हद्रथस्तदा ।
उपेक्षितो भगवता मगधान् दुर्मना ययौ ॥३५॥

जब समस्त सेना के मरने पर भगवान् ने उसे छोड़ दिया तब वह राजा जरासंध उदास होकर मगध देश को गया ॥३५॥

मुकुन्दोप्यक्षतबलो निस्तीर्णारिबलार्णवः ।
विकीर्यमाणः कुसुमैश्चिदृशैरनुमोदितः ॥३६॥

भगवान् श्रीकृष्ण शत्रु-सैन्य रूपी समुद्र पार उतर कर अपनी अक्षत सेना को लिये हुए मथुरा पुरीमें प्रविष्ट हुए, उस समय देवता फूल बरसाते हुए प्रशंसा पूर्वक स्तुति करने लगे ॥३६॥

माथुरैरुपसंगम्य विज्वरैर्मुदितात्मभिः ।
उपगीयमानविजयः सूतमागधबन्दिभिः ॥३७॥

दुःख दूर होने से आनन्दित मथुरा वालों से मिले हुए सूत, मागध तथा बन्दीजन आपकी विजय गा रहे थे ॥३७॥

शंखदुन्दुभयो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः ।
वीणावेणुमृदङ्गानि पुरं प्रविशति प्रभौ ॥३८॥

शंख, दुन्दुभि, भेरी, तुरी, वीणा, वेणु और मृदङ्ग–ऐसे अनेक बाजे बजा रहे थे ॥३८॥

सिक्तमार्गां हृष्टजनां पताकाभिरलंकृताम् ।
निर्घुष्टां ब्रह्मघोषेण कौतुकाबद्धतोरणाम् ॥३९॥

उस समय मथुरापुरी में छिड़काव होगया, पताकायें लगाई गईं, वेद-ध्वनि होने लगी. आनंद के कारण चारोंओर बन्दनवार बाँधेगये और लोगों में आनन्द छा गया ॥३९॥

निचीयमानौ नारीभिर्माल्यदध्यक्षताङ्कुरैः ।
निरीक्ष्यमाणः सस्नेहं प्रीत्युत्कलितलोचनैः॥४०॥

स्त्रियाँ भगवान् पर फूल, दही, अक्षत और अंकुर बरसाने लगीं तथा प्रेम से प्रफुल्लित नयन होकर स्नेह सहित दर्शन करने लगीं ॥४०॥

आयोधनगतं वित्तमनन्तं वीरभूषणम् ।
यदुराजाय तत् सर्वमाहृतं प्रादिशत् प्रभुः ॥४१॥

भगवान्ने वीर पुरुषों के पहनने का युद्ध-भूमि में पड़ाहुआ अनन्त धन लाकर यादवराज उग्रसेन को अर्पण कर दिया ॥४१॥

एवं सप्तदशकृत्वस्तावत्यक्षौहिणीबलः ।
युयुधे मागधो राजा यदुभिः कृष्णपालितैः॥४२॥

फिर राजा जरासंध इसी प्रकार उतनी ही अक्षौहिणी सेना साथ लेकर सत्रह बार चढ़ा और उसने श्रीकृष्ण द्वारा पालन किये हुए यदुवंशियों से युद्ध किया ॥४२॥

अक्षिण्वंस्तद्बलं सर्वं वृष्णयः कृष्णतेजसा ।
हतेषु स्वेष्वनीकेषु त्यक्तोऽयादरिभिर्नृपः ॥४३॥

परन्तु यादवों ने श्रीकृष्ण के प्रभाव से उसे सत्रह बार ही मार-मारकर भगा दिया, हे राजन् ! जब उसकी सारी सेना कट गई तब वह यादवोंके छोड़ देने पर अपने देशको लौट आया ॥४३॥

अष्टादशमसंग्रामे आगामिनि तदन्तरा ।
नारदप्रेषितो वीरो यवनः प्रत्यदृश्यत ॥४४॥

अटारहवीं बार जरासंध फिर चढ़ाई करनेको था कि उसे रास्ते ही में नारदजी का भेजा हुआ काल-यवन वीर दीख पड़ा ॥४४॥

रुरोध मथुरामेत्य तिसृभिर्म्लेच्छकोटिभिः ।
नृलोके चाप्रतिद्वन्द्वो वृष्णीन् श्रुत्वात्मसंमितान् ४५

वह मनुष्य लोक में अद्वितीय था, परन्तु जब उससे नारदजीने यह कहा कि तुम्हारी समता के यादवगण हैं, इसलिये उनसे संग्रामकरो, तब उस ने तीन करोड़ म्लेच्छों को साथ लिये हुए आकर मथुरापुरी को घेर लिया ॥४५॥

तं दृष्ट्वाऽचिन्तयत् कृष्णः सङ्कर्षणसहायवान् ।
अहो यदूनां वृजिनं प्राप्तं ह्युभयतो महत् ॥४६॥

उसे देखकर श्रीबलरामजी की सहायता लेते हुए श्रीकृष्णजी विचार करने लगे कि अहो यादवों को दोनों ओर से कैसा दुःख होरहा है ॥ ४६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यवनोऽयं निरुन्धेऽस्मानद्य तावन्महाबलः ।
मागधोऽप्यद्य वा श्वो वा परश्वो वाऽऽगमिष्यति ४७

आज इस महाबली कालयवन ने हम लोगोंको आ घेराहै और जरासंध भी आज-कल या परसों तक आने वाला ही है ॥ ४७ ॥

आवयोर्युध्यतोरस्य यद्यागन्ता जरासुतः ।
बन्धून् वधिष्यत्यथ वा नेष्यते स्वपुरं बली ॥४८॥

हम लोगों के युद्ध करते समय में यदि वह भी आजाय तो या तो वह बलवान् अपने बन्धु गणों को मार डालेगा, या पकड़ कर अपने नगर को ले जायगा ॥४८॥

तस्मादद्य विधास्यामो दुर्गं द्विपददुर्गमम् ।
तत्र ज्ञातीन समाधाय यवनं घातयामहे ॥४९॥

इसलिये ऐसा दुर्ग बनाना उचित है कि जिस में मनुष्य प्रवेश न करसके, अपने बन्धुओं को उस में पहुँचाकर फिर काल यवनको मरवा डालेंगे ॥

इति संमन्त्र्य भगवान् दुर्गं द्वादशयोजनम् ।
अन्तःसमुद्रे नगरं कृत्स्नाद्भुतमचीकरत् ॥५०॥

ऐसी सम्मति करके भगवान ने समुद्रके बीच में बारह योजन विस्तारका दुर्गरूपी अत्यन्त अद्भुत एक नगर बनवाया ॥५०॥

दृश्यते यत्र हि त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्पनैपुणम् ।
रथ्याचत्वरवीथीभिर्यथा वास्तु विनिर्मितम् ॥५१॥

इस नगरी (द्वारका) में विश्वकर्मा की सारी कारीगरी तथा चतुरता दिखाई देती थी, जिसमें राज-मार्ग, चौहट्टे और गलियां सुविधात्मक रूप से बनाई गईं ॥५१॥

सुरद्रुमलतोद्यानविचित्रोपवनान्वितम् ।
हेमशृङ्गैर्दिविस्पृग्भिः स्फाटिकाट्टालगोपुरैः ॥५२॥

देववृक्ष, लताओंके तथा (अन्य) विचित्र बाग शोभा देरहे थे, अत्यन्त ऊँची स्फटिक मणि की अटारियां और द्वारों पर स्वर्ण के गगन-स्पर्शी शिखर शोभायमान थे ॥५२॥

राजताऽऽरकुटैः कोष्ठैर्हेमकुम्भैरलंकृतैः ।
रत्नकूटैर्गृहैर्हैमैर्महामरकतस्थलैः ॥५३॥

लोहे तथा पीतलके घुड़साल और अन्नके कोठे बने थे, जिनपर कंचन के कलश चढ़े हुए शोभा दे रहे थे, अमूल्य मरकत मणि के फ़र्श वाले सोने के घरोंके शिखर माणिक आदि रत्नोंसे बनाये गयेथे॥

वास्तोष्पतीनां च गृहैर्वलभीभिश्च निर्मितम् ।
चातुर्वर्ण्यजनाकीर्णं यदुदेवगृहोल्लसत् ॥५४॥

देव मन्दिर और चित्रसारियोंकी सुन्दर रचना थी, चारों वर्णके लोग व्याप्त होरहे थे और राज महलों से वह अत्यंत शोभा दे रही थी ॥५४॥

सुधर्मा पारिजातं च महेन्द्रः प्राहिणोद्धरेः ।
यत्र चावस्थितो मर्त्यो मर्त्यधर्मैर्न युज्यते ॥५५॥

इन्द्रने भगवान्के लिये सुधर्मासभा तथा कल्प वृक्ष पहुंचाये, जिसमें बैठेहुए मनुष्यको भूख-प्यास आदि देह के धर्म व्याप्त नहीं होते ॥ ५५ ॥

श्यामैककर्णान् वरुणो हयाञ्छुक्लान् मनोजवान् ।
अष्टौ निधिपतिः कोशान् लोकपालो निजोदयान् ॥

वरुणने एक श्याम कानवाले और मनके तुल्य वेगवान् सफ़ेद घोड़े भेजे, कुबेर ने आठ निधि* रूप अपनी विभूति भेजी ॥५६॥

यद्यद्भगवता दत्तमाधिपत्यं स्वसिद्धये ।
सर्वं प्रत्यर्पयामासुर्हरौ भूमिगते नृप ॥५७॥

हे राजन् ! भगवान् ने उन देवताओं को अपने अपने अधिकार की सिद्धि के लिये जो-जो ऐश्वर्य दियेथे, वह सब भगवान्के भूमिपर पधारतेही उन देवताओं ने उन्हें लौटा कर अर्पण करदिये ॥५७॥

तत्र योगप्रभावेण नीत्वा सर्वजनं हरिः ।
प्रजापालेन रामेण कृष्णः समनुमन्त्रितः ।
निर्जगाम पुरद्वारात् पद्ममाली निरायुधः ॥५८॥

भगवान् श्रीकृष्ण अपने सब परिवार को वहाँ पर योग-माया के बल से पहुंचाकर, बलरामजी से सम्मति करके प्रजा की रक्षाके लिये केवल कमलों की माला पहने हुए बिना शस्त्र ही नगरी से बाहर निकले ॥ ५८ ॥

*—पद्म, महापद्म, मत्स्य, कूर्म, औदक, नील, मुकुंद और शंख-यह आठ निधियां हैं ।

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे पंचशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

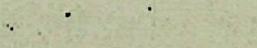

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इक्यावनवां अध्याय

(कालयवन-वध)

श्रीशुक उवाच

तं विलोक्य विनिष्क्रान्तमुज्जिहानमिवोडुपम् ।
दर्शनीयतमं श्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ १ ॥
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ।
पृथुदीर्घचतुर्बाहुं नवकञ्जारुणेक्षणम् ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-काल यवन ने अत्यन्त सुन्दर, श्याम वर्ण, पीताम्बर पहने, श्रीवत्स का चिह्न वक्षःस्थल में धारण किये हुए, कान्तिमयी कौस्तुभ मणि कण्ठ में बाँधे हुए, हृष्ट-पुष्ट चार विशाल बाहु और नवीन कमल के समान अरुण नेत्र वाले भगवान् को चन्द्रोदय की भांति पुर से बाहर निकलते हुए देखा ॥१॥२॥

नित्यप्रमुदितं श्रीमत्सुकपोलं शुचिस्मितम् ।
मुखारविन्दं बिभ्राणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३ ॥
वासुदेवो ह्ययमिति पुमान् श्रीवत्सलाञ्छनः ।
चतुर्भुजोऽरविन्दाक्षो वनमाल्यतिसुन्दरः ॥ ४ ॥
लक्षणैर्नारदप्रोक्तैर्नान्यो भवितुमर्हति ।
निरायुधश्चलन् पद्भ्यां योत्स्येऽनेन निरायुधः ॥ ५ ॥

सदैव आनन्दयुक्त, शोभासहित सुन्दर कपोल तथा सुहावनी मन्द मुसकान मय झलकते हुए मकराकृत वाले मुखारविन्द को धारण किये हुए उन श्रीकृष्ण को देखकर वह यवन मनमें विचार करने लगा कि जो लक्षण नारदजी ने कहे थे, वे सब इसमें पाये जाते हैं, इसके श्रीवत्स का चिह्न चार भुजायें, कमल से नेत्र हैं, यह बन-माल पहने हुए और अधिक सुन्दरभी है, इसलिये 'वासुदेव' नाम से प्रसिद्ध यही पुरुष है, परन्तु जब यह शस्त्र हीन होकर नंगे पैर जारहा है, तब मैं भी इसके साथ बिना शस्त्र के युद्ध करूँगा ॥३॥४॥५॥

इति निश्चित्य यवनः प्राद्रवन्तं पराङ्मुखम् ।
अन्वधावज्जिघृक्षुस्तं दुरापमपि योगिनाम् ॥ ६ ॥

जिन्हें योगीजन भी नहीं पहुंच सकते-ऐसे श्री कृष्ण भगवान् को युद्ध से विमुख जाता हुआ देख कर काल यवन इस प्रकार निश्चय करके उनके पकड़ने के लिये पीछे २ दौड़ा ॥६॥

हस्तप्राप्तमिवात्मानं हरिणा स पदे पदे ।
नीतो दर्शयता दूरं यवनेशोऽद्रिकन्दरम् ॥ ७ ॥

भगवान् की लीला से काल यवन को यही आशा बढ़ती गई कि बस इस क़दमपर पकड़लूंगा, इस पर नहीं तो इस पर पकड़ लूंगा, इस प्रकारसे पद-पद पर पकड़े जाने की आशा देते हुए भगवान् उसे बड़ी दूरतक पर्वत की गुफा में ले गये ॥७॥

पलायनं यदुकुले जातस्य तव नोचितम् ।
इति क्षिपन्ननुगतो नैनं प्रापाहताशुभः ॥ ८ ॥

आगे २ श्रीकृष्ण दौड़े जारहे थे और पीछे २ काल यवन इस प्रकार के तिरस्कार मय वचन कहता हुआ दौड़ा जाता था कि "अरे तू यदुवंश में प्रकट हुआ है, तुझे भागना उचित नहीं है" पर काल यवन उन्हें पकड़ न सका, क्योंकि उसकी कर्म-वासना अभी क्षीण न हुई थी ॥८॥

एवं क्षिप्तोऽपि भगवान् प्राविशद्गिरिकन्दरम् ।
सोऽपि प्रविष्टस्तत्रान्यं शयानं ददृशे नरम् ॥ ९ ॥

इस प्रकार तिरस्कार करने पर भी भगवान् ने पर्वत की गुफा में प्रवेश किया और कालयवन भी भीतर गया, वहाँ उसने एक दूसरे पुरुष को (पीतांबर ओढ़े और) सोते हुए देखा* ॥९॥

नन्वसौ दूरमानीय शेते मामिह साधुवत् ।
इति मत्वाऽच्युतं मूढस्तं पदा समताडयत् ॥ १० ॥

काल यवन ने भूल से ऐसा सोचा कि यह अवश्यही मुझे दूरलाकर अब यहाँ साधुकी भांति सोरहाहै, इस प्रकार उसे कृष्ण मानकर उस मूर्ख ने लात मारी ॥१०॥

स उत्थाय चिरं सुप्तः शनैरुन्मील्य लोचने ।
दिशो विलोकयन् पार्श्वे तमद्राक्षीदवस्थितम् ११ ॥

वह बहुत दिनों से सोरहा था सो उठा और धीरे २ आँखें खोलकर चारों ओर देखने लगा तो उसने पासही में खड़ेहुए काल यवनको देखा॥११॥

स तावत्तस्य रुष्टस्य दृष्टिपातेन भारत ।

---

*-श्रीकृष्ण उस सोते हुए मुचुकुन्द को पीतांबर ओढ़ाकर एक ओर छिप रहे थे ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देहजेनाऽग्निना दग्धो भस्मसादभवत् क्षणात्॥१२॥

हे राजन्! उस क्रोधित पुरुषकी दृष्टि पड़तेही उसकी देहसे तत्कालही अग्नि प्रकटहुई कि जिसके द्वारा वह काल यवन जल भुनकर भस्म होगया॥

राजोवाच

को नाम स पुमान् ब्रह्मन् कस्य किंवीर्य एव च।
कस्माद्गुहां गतः शिश्ये किंतेजा यवनार्दनः१३॥

परीक्षित बोले-हे ब्रह्मन्! उस पुरुष का क्या नाम था? वह किस वंश का था? उसका पराक्रम कैसा था? वह किसका पुत्र था कि जिसने काल-यवन को भस्म कर डाला; वह गुफा में क्यों सो रहा था?॥ १३॥

श्रीशुक उवाच

स इक्ष्वाकुकुले जातो मान्धातृतनयो महान्।
मुचुकुन्द इति ख्यातो ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः॥१४॥

श्रीशुकदेवजी बोले-वह इक्ष्वाकु वंशी राजा मांधाताका पुत्र, ब्राह्मणोंका परम भक्त, सत्य प्रतिज्ञ मुचुकुन्द नामका बड़ाही प्रसिद्ध राजा था॥१४॥

स याचितः सुरगणैरिन्द्राद्यैरात्मरक्षणे।
असुरेभ्यः परित्रस्तैस्तद्रक्षां सोऽकरोच्चिरम्॥१५॥

दैत्यों से भयभीत इन्द्रादि देवताओं ने अपनी रक्षा के लिये उसके पास आकर प्रार्थना की, तब उसने कितने ही बरसों तक उनकी रक्षा की॥१५॥

लब्ध्वा गुहं ते स्वः पालं मुचुकुन्दमथाब्रुवन्।
राजन् विरमतां कृच्छ्राद्भवान् नः परिपालनात्१६

जब देवताओं को स्वर्ग-रक्षक स्वामि कार्त्तिक सेनापति मिलगये, तब वे मुचुकुंदसे कहनेलगे कि हे राजन्! अब हमारे पालनसे तू अवकाश ग्रहणकर॥

नरलोके परित्यज्य राजं निहतकण्टकम्।
अस्मान् पालयतो वीर कामास्ते सर्व उज्झिताः १७

हे वीर! पृथ्वी के अकंटक राज्य को छोड़कर तूने मेरा पालन किया इसलिये तेरे समस्त भोग नष्ट होगये हैं॥ १७॥

सुता महिष्यो भवतो ज्ञातयोऽमात्यमन्त्रिणः।
प्रजाश्च तुल्यकालीया नाऽधुना सन्ति कालिताः१८

क्योंकि पुत्र, रानियां, बन्धु, हाथी और मंत्री तथा उस समय की जो तेरी प्रजा थी, वह सब आज कल काल के बलसे नष्ट होचुके हैं, उनमें से अब कोई भी शेष नहीं है॥१८॥

कालो बलीयान् बलिनां भगवानीश्वरोऽव्ययः।
प्रजाः कालयते क्रीडन् पशुपालो यथा पशून्॥१९॥

जैसे ग्वाल पशुओं को प्रेरणा करता है वैसेही बलवानोंमें बलवान् भगवान् अविनाशी ईश्वर काल क्रीड़ा करता हुआ प्रजाको प्रेरणा करता है॥१९॥

वरं वृणीष्व भद्रं ते ऋते कैवल्यमद्य नः।
एक एवेश्वरस्तस्य भगवान् विष्णुरव्ययः॥२०॥

तेरा कल्याण हो, तू एक मोक्ष के सिवा और जो भी चाहे सो हमसे वर माँग, क्योंकि मोक्ष-दाता तो एक अविनाशी भगवान् विष्णुही हैं॥२०॥

एवमुक्तः स वै देवानभिवन्द्य महायशाः।
निद्रामेव ततो वव्रे स राजा श्रमकर्शितः॥२१॥

इस प्रकार कहने पर उस महा यशस्वी राजा देवताओं को नमस्कार करके उनसे निद्राही मांगी क्योंकि वह परिश्रम से थक गया था॥२१॥

यः कश्चिन्मम निद्राया भङ्गं कुर्यात्सुरोत्तमाः।
स हि भस्मीभवेदाशु तथोक्तश्च सुरैस्तदा॥२२॥
अशयिष्ट गुहाविष्टो निद्रया देवदत्तया।
स्वापं यातं यस्तु मध्ये बोधयेत् त्वामचेतनः।
स त्वया दृष्टमात्रस्तु भस्मीभवतु तत्क्षणात्॥२३॥

मुचुकुन्द बोला-हे देवोत्तम! जो कोई आकर मेरी निद्रामें बाधा डाले वह शीघ्रही भस्म होजाय ऐसा वर माँगने पर देवताओं ने 'एवमस्तु' कहा और यह वर दिया कि "जो मूर्ख तेरी निद्रामें विघ्न करेगा, वह तेरी दृष्टि पड़ते ही तत्काल भस्म हो जायगा" तब वह देवताओं की दी हुई निद्रा से गुफा में जाकर सोगया॥२२॥२३॥

यवने भस्मसान्नीते भगवान् सात्वतर्षभः।
आत्मानं दर्शयामास मुचुकुन्दाय धीमते॥२४॥

काल यवनके भस्म होने पर यदु श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णने बुद्धिमान् राजा मुचुकुन्दको दर्शनदिया॥

तमालोक्य घनश्यामं पीतकौशेयवाससम्।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम्॥२५॥
चतुर्भुजं रोचमानं वैजयन्त्या च मालया।
चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम्॥२६॥
प्रेक्षणीयं नृलोकस्य सानुरागस्मितेक्षणम्।
अपीच्यवयसं मत्तमृगेन्द्रोदारविक्रमम्॥२७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर्यपृच्छन्महाबुद्धिस्तेजसा तस्य धर्षितः ।
शङ्कितः शनकै राजा दुर्धर्षमिव तेजसा ॥२८॥

मेघके समान श्याम वर्ण, पीतांबर पहने हुए, श्रीवत्स का चिह्न वक्षःस्थल में धारण किये हुए, देदीप्यमान् कौस्तुभ मणि से सुशोभित; चतुर्भुज वैजयन्ती मालासे कान्तिमय, सुन्दर प्रसन्न मुखारविन्द धारणकिये, मकराकृत कुण्डल झिलमिलाते हुए, मनुष्य लोक के देखने योग्य, स्नेह मय मन्द हास्य सहित देखते हुए, सुन्दर अवस्थावाले और मतवाले सिंह के समान श्रेष्ठ पराक्रम वाले तथा तेजके प्रभावसे जिसके सामने देखा नहीं जाता, उस स्वरूप का दर्शन करके यद्यपि वह राजा भगवान् के तेजके मारे भयभीत तथा शंकित होगया था, फिर भी धीरे २ उस बुद्धिमान् मुचुकुन्द ने भगवान् से पूछा ॥२५॥२६॥२७॥२८॥

मुचुकुन्द उवाच

को भवानिह संप्राप्तो विपिने गिरिगह्वरे ।
पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां विचरस्युरुकण्टके ॥२९॥

मुचुकुन्द बोला—आप कौन हैं और पर्वत के अगम वनमें कैसे आयेहैं और कमल पत्रके समान नंगे चरणोंसे इन बहुतसे काँटोंमें क्यों विचररहेहो?

किं स्वित्तेजस्विनां तेजो भगवान् वा विभावसुः ।
सूर्यः सोमो महेन्द्रो वा लोकपालोऽपरोऽपि वा ३०

क्या आप तेजमूर्त्ति भगवान् अग्निहो? अथवा सूर्य, चन्द्र, इन्द्र या कोई दूसरे लोकपाल हो ?

मन्ये त्वां देवदेवानां त्रयाणां पुरुषर्षभम् ।
यद्बाधसे गुहाध्वान्तं प्रदीपः प्रभया यथा ॥३१॥

आप अपने तेजसे गुफाके अन्धकारको दीपक की भांति दूर कर रहे हो, इस कारण तीनों देवोंमें से आपको मैं देवाधिदेव विष्णु मानताहूँ ॥३१॥

शुश्रूषतामव्यलीकमस्माकं नरपुङ्गव ।
स्वजन्म कर्म गोत्रं वा कथ्यतां यदि रोचते ॥३२॥

हे नरोत्तम ! मुझे आपके जन्म,कर्म तथा गोत्र जानने की इच्छा है, अस्तु यदि आप चाहें तो निष्कपट रीति से मुझे बतलाइये ॥३२॥

वयं तु पुरुषव्याघ्र ऐक्ष्वाकाः क्षत्रबन्धवः ।
मुचुकुन्द इति प्रोक्तो यौवनाश्वात्मजः प्रभो ॥३३॥

हे पुरुष सिंह ! मैं इक्ष्वाकु वंशी जाति का क्षत्रिय हूँ, हे प्रभु ! मेरा नाम 'मुचुकुन्द' है और मैं मांधाता का पुत्र हूँ ॥३३॥

चिरप्रजागरश्रान्तो निद्रयोपहतेन्द्रियः ।
शयेऽस्मिन् विजने कामं केनाप्युत्थापितोऽधुना ३४

मुझे बहुत जागरण करना पड़ा है, इसलिये जब मेरी इन्द्रियां निद्रा-वश होगईं, तब मैं इस निर्जन वनमें आकर इच्छानुसार सो रहा था, पर अभी किसी ने मुझे जगा दिया है ॥३४॥

सोपि भस्मीकृतो नूनमात्मीयेनैव पाप्मना ।
अनन्तरं भवान् श्रीमाँल्लक्षितोऽमित्रशातनः ॥३५॥

और वह अपने ही पाप से भस्म होगया है, इसके पीछे आप शत्रु-नाशक तथा श्रीमान का दर्शन हुआ है ॥३५॥

तेजसा तेऽविषह्येण भूरि द्रष्टुं न शक्नुमः ।
हतौजसो महाभाग माननीयोऽसि देहिनाम्॥३६॥

आपके असह्य तेजके मारे मैं बहुत देरतक देख नहीं सकता क्योंकि वह सहा नहीं जाता. हे महा भाग ! आप देहधारियों के मान्य हैं ॥३६॥

एवं संभाषितो राज्ञा भगवान् भूतभावनः ।
प्रत्याह प्रहसन् वाण्या मेघनादगभीरया ॥३७॥

श्रीशुकदेवजी बोले—जब जगत्-पालक भगवान् से राजा ने इस प्रकार प्रश्न किया, तब भगवान् ने हँसकर मेघके समान गंभीर वाणी से कहा ॥३७॥

श्रीभगवानुवाच

जन्मकर्माभिधानानि सन्ति मेऽङ्ग सहस्रशः ।
न शक्यन्तेऽनुसंख्यातुमनन्तत्वान्मयापि हि॥३८॥

श्रीभगवान् बोले—हे अङ्ग ! मेरे जन्म-कर्म और नाम अनन्तहैं,कि जिनको मैं भी नहीं गिनसकता॥

क्वचिद् रजांसि विममे पार्थिवान्युरुजन्मभिः ।
गुणकर्माभिधानानि न मे जन्मानि कर्हिचित्॥३९

अनेक जन्मों में कदाचित् पृथ्वी के कण गिने जाँय पर मेरे गुण, कर्म, नाम और जन्म नहीं गिने जा सकते ॥ ३९ ॥

कालत्रयोपपन्नानि जन्मकर्माणि मे नृप ।
अनुक्रमन्तो नैवान्तं गच्छन्ति परमर्षयः ॥४०॥

हे राजन् ! मेरे भूत, भविष्य तथा वर्त्तमान के जन्म तथा कर्म गिनते २ बड़े-बड़े मुनि लोग भी पार नहीं पा सके हैं ॥४०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथाप्यद्यतनान्यङ्ग शृणुष्व गदतो मम ।
विज्ञापितो विरिञ्चेन पुराऽहं धर्मगुप्तये ।
भूमेर्भारायमाणानामसुराणां क्षयाय च ॥४१॥

फिर भी हे अङ्ग ! मेरे आज कल के नाम तथा कर्म सुन मैं तुझसे कहता हूँ, धर्म की रक्षा तथा पृथ्वी पर भार रूप दैत्यों का नाश करने के लिये तुझसे पहले ब्रह्माजी ने विनय की ॥४१॥

अवतीर्णो यदुकुले गृह आनकदुन्दुभेः ।
वदन्ति वासुदेवेति वसुदेवसुतं हि माम् ॥४२॥

तब मैंने यदुवंश में वसुदेव के यहाँ अवतार लिया, इसी लिये लोग मुझे वसुदेव का पुत्र "वासुदेव" कहते हैं ॥४२॥

कालनेमिर्हतः कंसः प्रलम्बाद्याश्च सद्द्विषः ।
अयं च यवनो दग्धो राजंस्ते तिग्मचक्षुषा ॥४३॥

पूर्व काल में जो कालनेमि नामक दैत्य था वह यहाँ कंस के नामसे प्रकट हुआ था, जिस (मैं) ने उसका तथा साधुओं के वैरी प्रलम्ब आदि दैत्यों का अभी वध किया है और हे राजन् ! इस यवन को आपकी तीक्ष्ण दृष्टि द्वारा भस्म करवा डालाहै।

सोऽहं तवानुग्रहार्थं गुहामेतामुपागतः ।
प्रार्चितः प्रचुरं पूर्वं त्वयाऽहं भक्तवत्सलः ॥४४॥

वही मैं आप पर कृपा करने के लिये यहाँ इस गुफामें आयाहूँ, क्योंकि मुझ भक्तवत्सलकी आपने पहले बहुत प्रार्थना की थी ॥४४॥

वरान् वृणीष्व राजर्षे सर्वान् कामान् ददामि ते ।
मां प्रपन्नो जनः कश्चिन्न भूयोर्हति शोचितुम् ॥४५॥

हे राजर्षि ! वर मांगो, मैं आपके सभी मनोर्थ पूर्ण करूँगा, जो मेरे शरण आ जाता है वह फिर सोच करने योग्य नहीं रहता ॥४५॥

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तस्तं प्रणम्याह मुचुकुन्दो मुदान्वितः ।
ज्ञात्वा नारायणं देवं गर्गवाक्यमनुस्मरन् ॥४६॥

श्रीशुकदेवजी बोले—यह वचन सुनकर मुचुकुंद आनन्दित होकर गर्गाचार्य के वचनों का स्मरण करके उन्हें श्रीमन्नारायण जानकर और प्रणामकर के कहने लगा ॥४६॥

मुचुकुन्द उवाच

विमोहितोऽयं जन ईशमायया त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक् । सुखाय दुःखप्रभवेषु सज्जते गृहेषु योषित् पुरुषश्च वञ्चितः ॥४७॥

मुचुकुन्द बोला—यह मनुष्य आपकी माया से मोहित होकर अनर्थ की ओर दृष्टि लगाकर सुख की आशा में दुःखके प्रधान मूल घरमें आसक्त हो जाता है, क्या स्त्री, क्या पुरुष-सभी ठगाये गये हैं।

लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं कथञ्चिदव्यङ्गमयत्नतोऽनघ । पादारविन्दं न भजत्यसन्मतिर्गृहान्धकूपे पतितो यथा पशुः ॥४८॥

हे निर्दोष ! जो यहाँ सब प्रकारसे सुन्दर अङ्गों वाली दुर्लभ मनुष्य देह को सहज में पाकर भी आपके चरणारविन्दका भजन नहीं करता, प्रत्युत् विषयासक्त होकर घर रूपी अन्धकूपमें पड़ा रहता है, उसे पशु के समान समझना चाहिये ॥४८॥

ममैष कालोऽजित निष्फलो गतो राज्यश्रियोन्नद्धमदस्य भूपतेः । मर्त्यात्मबुद्धेः सुतदारकोशभूष्वासज्जमानस्य दुरन्तचिन्तया ॥४९॥

हे अजित् ! मेरा इतना समय व्यर्थही व्यतीत होगया, क्योंकि मैं अपने को राजा समझता हुआ राज-लक्ष्मी के मद से उन्मत्त हूँ और इस नश्वर शरीरको आत्मा मानताहूँ, इसलिये पुत्र,स्त्री, कोष और पृथ्वी में अपार चिन्ता के साथ आसक्त हूँ ॥

कलेवरेऽस्मिन् घटकुड्यसन्निभे निरूढमानो नरदेव इत्यहम् । वृतो रथेभाश्वपदात्यनीकपैर्गां पर्यटंस्त्वागणयन् सुदुर्मदः ॥५०॥

इस घट या दीवार के समान (कभी न कभी नष्ट होने वाले) शरीर में अपने को राजा मानकर अभिमान के साथ रथ. हाथी, घोड़े और पैदलोंकी चतुरंगिणी सेना साथ लेकर आपका स्मरण न करता हुआ पृथ्वी पर अत्यन्त मदोन्मत्त होकर फिरतारहा, इससे मेरा इतना समय व्यर्थही गया॥

प्रमत्तमुच्चैरिति कृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् । त्वमप्रमत्तः सहसाऽभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥५१॥

मुझे आज अमुक कार्य करना है-कल अमुक काम करूँगा, ऐसी चिन्ता में मतवाले रहने वाले, मनोरथों का भोग तथा प्राप्ति होने पर भी विषयों की लालसा तथा बढ़ते हुए लोभ वाले मनुष्य को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आप काल रूप इस भांति से तुरन्त ही ग्रस लेते हो; जैसे क्षुधार्त्त सर्प जबड़ोंको चाटता हुआ चूहे को ग्रस लेता है ॥५१॥

पुरा रथैर्हेमपरिष्कृतैश्चरन्मतङ्गजैर्वा नरदेवसंज्ञितः । स एव कालेन दुरत्ययेन ते कलेवरो विट्कृमिभस्मसंज्ञितः ॥५२॥

जो शरीर पहले 'राजा' नाम धारण करके सोने से मढ़े हुए रथ व हाथियों पर चढ़ा हुआ फिरा करता है, वही शरीर अटल कालके आने पर यदि खाया जाय तो विष्ठा, रहजाय तो कीड़ा और जल जाय तो भस्म-नाम पाता है ॥५२॥

निर्जित्य दिक्चक्रमभूतविग्रहो वरासनस्थः समराजवन्दितः । गृहेषु मैथुन्यसुखेषु योषितां क्रीडामृगः पूरुष ईश नीयते ॥५३॥

हे भगवन् ! जिसने समस्त दिशा-मंडल जीत लिये, जिसे संग्राम करने के लिये एक भी शत्रु शेष न रहा और जिसे सब बराबरीवाले राजागण प्रणाम करते हैं, ऐसा श्रेष्ठ सिंहासन पर विराजमान् चक्रवर्त्ति राजा भी मैथुन-सुख के लिये घरोंमें क्रीड़ा मृग की नाईं स्त्रियों द्वारा नचाया जाता है, जैसे बाजीगर बन्दर को नचाता है ॥५३॥

करोति कर्माणि तपस्सु निष्ठितो निवृत्तभोगस्तदपेक्षयाददत् । पुनश्च भूयेयमहं स्वराडिति प्रवृद्धतर्षो न सुखाय कल्पते ॥५४॥

यह मनुष्य तपमें श्रद्धा रखकर, भोगोंको त्याग कर, राज्य प्राप्त करने के लिये अनेक कर्म करता है और उसके लोभमें अपने पासका सर्वस्व देडालता है, इसके पश्चात् यदि उसे राज्य मिल गया तो "अब मैं जन्म-जन्मान्तर चक्रवर्त्ति राजा ही हुआ करूँ" ऐसी तृष्णा बढ़नेसे वह क्लेशही पाया करता है और सुख का अवसर नहीं पाता ॥ ५४ ॥

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः । सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ परावरेशे त्वयि जायते मतिः ॥५५॥

हे भगवन् ! जब आपकी कृपा से संसार में भटकते हुए मनुष्यके बन्धनका अन्त होना चाहता है, तब उसे सत्संग मिलता है कि जिससे उसकी समस्त ममतायें छूट जाती हैं और आप कार्य-कारण के नियन्ता में भक्ति हो जाती है ॥ ५५॥

मन्ये ममानुग्रह ईश ते कृतो राज्यानुबन्धापगमो यदृच्छया । यः प्रार्थ्यते साधुभिरेकचर्यया वनं विविक्षद्भिरखण्डभूमिपैः ॥५६॥

परन्तु मेरा सत्संग के बिना दैवेच्छाही से जो राज्य आदि का सम्बन्ध टूट गया है, यह मुझ पर आपही ने महान् कृपा की है–मैं ऐसा मानता हूँ, क्योंकि सबसे विरक्त होकर, वनकी इच्छा रखते हुए चक्रवर्त्ति राजाभी अपने आप इस सम्बन्धको नहीं तोड़ सकते, वरन् उसे छोड़ने के लिये केवल प्रार्थना ही किया करते हैं ॥ ५६॥

न कामयेऽन्यं तव पादसेवनादकिञ्चनप्रार्थ्यतमाद्वरं विभो । आराध्य कस्त्वां ह्यपवर्गदं हरे वृणीत आर्यो वरमात्मबन्धनम् ॥५७॥

हे प्रभु ! आपके जिन चरण कमल की सेवाके लिये अकिंचन पुरुष बारम्बार प्रार्थना किया करते हैं–मैं भी उन चरणों की सेवा के अतिरिक्त और कुछ वर नहीं चाहता, हे हरि !' भला ऐसा कौन सा ज्ञानी पुरुष होगा जो कि आपको प्रसन्न करके आत्म-बन्धनरूपी (लौकिक संपदाका) वर मांगेगा?

तस्माद्विसृज्याशिष ईश सर्वतो रजस्तमःसत्त्वगुणानुबन्धनाः । निरञ्जनं निर्गुणमद्वयं परं त्वां ज्ञप्तिमात्रं पुरुषं व्रजाम्यहम् ॥५८॥

इसलिये हे नाथ ! सत, रज तथा तम–इन तीन गुणोंसे बँधी हुई समस्त कामनाओं को त्याग कर आप ज्ञानघन, निरंजन, निर्गुण, अद्वैत, अक्षर और ईश्वर के मैं शरण आया हूँ ॥५८॥

चिरमिह वृजिनार्तस्तप्यमानोऽनुतापैरवितृषडमित्रोऽलब्धशान्तिः कथञ्चित् । शरणद समुपेत स्त्वत्पदाब्जं परात्मन्नभयमृतमशोकं पाहि माऽऽपन्नमीश ॥५९॥

हे परमात्मन् ! हे नाथ ! मैं यहाँ अधिक काल से कर्म-फलों के कारण दुःखी हूँ और कर्म-वासनाओं से अत्यन्त सन्तप्त हूँ तथा तृष्णा सहित छः इन्द्रिय रूपी शत्रु मेरे पीछे लगे हुए हैं, ऐसी दशा में मुझे किसी भी तरह से शान्ति मिलने का द्वारा नहीं रहाहै, हे शरणदाता ! इसलिये मैं अब अभय सत्य तथा शोक रहित आपके चरणारविन्द की शरण आया हूँ, आप मुझ आपदा-ग्रस्त की रक्षा कीजिये ॥ ५९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीभगवानुवाच

सार्वभौम महाराज मतिस्ते विमलोर्जिता ।
वरैः प्रलोभितस्यापि न कामैर्विहता यतः ॥६०॥

श्रीभगवान् बोले-हे चक्रवर्त्ति महाराज ! आप की बुद्धि बड़ी निर्मल तथा उदार है, क्योंकि मैंने आपको वरदानों का प्रलोभन दिया परन्तु कामनाओं से तुम्हारी बुद्धि चलायमान् नहीं हुई ॥६०॥

प्रलोभितो वरैर्यस्त्वमप्रमादाय विद्धि तत् ।
न धीर्मय्येकभक्तानामाशीर्भिर्भिद्यते क्वचित् ॥६१॥

मैंने जो आपको वर देने के लिये कहकर लोभ दिखलाया है, वह केवल सावधान करने के लिये किया है, यह निश्चय जानिये, क्योंकि मेरे एकान्त भक्तों की बुद्धि कभी भी कामनाओं में आसक्त नहीं होती ॥६१॥

युञ्जानामात्मभक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः ।
अक्षीणवासनं राजन् दृश्यते पुनरुत्थितम् ॥६२॥

हे राजन् ! जो मेरे भक्त नहीं हैं वे चाहे प्राणायाम आदि साधनों के द्वारा मनको वशमें करें भी परन्तु फिर भी उनका मन विषयोंके लोभमें आता हुआ दीखता है, क्योंकि उनकी वासना क्षीण नहीं हुई है ॥ ६२ ॥

विचरस्व महीं कामं मय्यावेशितमानसः ।
अस्त्वेव नित्यदा तुभ्यं भक्तिर्मय्यनपायिनी॥६३॥

तुम अब मुझमें मन लगाकर पृथ्वी पर इच्छानुसार विचरण करो, तुम्हारी सदैव मुझमें अविचल भक्ति बनी रहे ॥६३॥

क्षात्रधर्मे स्थितो जन्तून्यवधीर्मृगयादिभिः ।
समाहितस्तत्तपसा जह्यघं मदुपाश्रितः ॥६४॥

तुमने क्षत्रिय धर्म में रहकर जो मृगया आदि में जीव-हिंसा की है उस पाप को मेरी शरण लेकर एकाग्र चित्त से तप करके निवृत्त करो ॥६४॥

जन्मन्यनन्तरे राजन्सर्वभूतसुहृत्तमः ।
भूत्वा द्विजवरस्त्वं वै मामुपैष्यसि केवलम् ॥६५॥

हे राजन् ! अब तुम दूसरे जन्म में सब जीवों के मित्र श्रेष्ठ ब्राह्मण होगे और मेरे शुद्ध स्वरूपको प्राप्त होगे ॥ ६५ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

बावनवां अध्याय

(श्रीरुक्मणी-सन्देश)

श्रीशुक उवाच

इत्थं सोनुगृहीतोऽङ्ग कृष्णेनेक्ष्वाकुनन्दनः ।
तं परिक्रम्य संनम्य निश्चक्राम गुहामुखात् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने मुचुकुन्द पर इस प्रकारसे कृपाकी तब वह उन्हें प्रणाम करके और परिक्रमा देकर गुफा से बाहर निकला ॥ १ ॥

संवीक्ष्य क्षुल्लकान्मर्त्यान्पशून्वीरुद्वनस्पतीन् ।
मत्वा कलियुगं प्राप्तं जगाम दिशमुत्तराम् ॥ २ ॥

जब उसने छोटे २ मनुष्य,पशु, लता और वनस्पतियों को देखा, तो वह समझ गया कि कलियुग आगयाहै, इसलिये उत्तर दिशाको चलागया॥

तपःश्रद्धायुतो धीरो निःसङ्गो मुक्तसंशयः ।
समाधाय मनः कृष्णे प्राविशद्गन्धमादनम्॥ ३ ॥

वह तप तथा श्रद्धा को धारण करके आसक्ति छोड़कर संशयों से मुक्त होकर, धीरज धर कर और श्रीकृष्ण में चित्त लगाकर गन्धमादन पर्वत में प्रविष्ट हुआ ॥ ३ ॥

बदर्याश्रममासाद्य नरनारायणालयम् ।
सर्वद्वन्द्वसहः शान्तस्तपसाऽऽराधयद्धरिम् ॥ ४ ॥

और बदरिकाश्रम के नर नारायण स्थान पर जाकर दुःख-सुख आदि समस्त द्वन्द्वों को सहन करता हुआ, शान्त चित्त होकर तपस्या द्वारा भगवान् का आराधन करने लगा ॥४॥

भगवान्पुनराव्रज्य पुरीं यवनवेष्टिताम् ।
हत्वा म्लेच्छबलं निन्ये तदीयं द्वारकां धनम् ॥५॥

फिर भगवान् ने यवनों से घिरी हुई अपनी मथुरा पुरी में लौटकर और म्लेच्छ दल को मार कर उसका धन द्वारका को पहुँचाया ॥ ५ ॥

नीयमाने धने गोभिर्नृभिश्चाच्युतचोदितैः ।
आजगाम जरासन्धस्त्रयोविंशत्यनीकपः ॥ ६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवान्की आज्ञासे जब मनुष्य बैलों पर माल लाद २ कर लिये जारहे थे, उसी समय जरासंध तेईस अक्षौहिणी सेना लिये फिर आगया ॥ ६ ॥

विलोक्य वेगरभसं रिपुसैन्यस्य माधवौ ।
मनुष्यचेष्टामापन्नौ राजन्दुद्रुवतुर्द्रुतम् ॥ ७ ॥

हे राजन् ! श्रीराम-कृष्ण उस शत्रु-दल को वेग से आया हुआ देखकर मनुष्य-लीला का अनुसरण करते हुए शीघ्रता से भाग निकले ॥७॥

विहाय वित्तं प्रचुरमभीतो भीरुभीतवत् ।
पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां चेलतुर्बहुयोजनम् ॥ ८ ॥

यद्यपि उन्हें किसी का भय नहीं, फिरभी भय भीत की भाँति बहुत से पड़े हुए धन को छोड़कर कमल-पत्र के समान कोमल चरणों से पैदल ही कई योजन तक निकल गये ॥८॥

पलायमानौ तौ दृष्ट्वा मागधः प्रहसन्बली ।
अन्वधावद्रथानीकैरीशयोरप्रमाणवित् ॥ ९ ॥

उनको भागता हुआ देखकर, बलवान् जरासंध हँस कर, रथों का दल साथ लिये हुए उनके पीछे दौड़ा, क्यं.कि वह उनकी ईश्वरताको न जानताथा॥

प्रद्रुत्य दूरं संश्रान्तौ तुङ्गमारुहतां गिरिम् ।
प्रवर्षणाख्यं भगवान्नित्यदा यत्र वर्षति ॥१०॥

जब बहुत दूर तक दौड़ते-दौड़ते श्रीराम-कृष्ण थक गये, तब वे प्रवर्षण नामक पर्वत पर चढ़गये कि जिसपर इन्द्र प्रति दिन वर्षा करते हैं ॥१०॥

गिरौ निलीनावाज्ञाय नाधिगम्यपदं नृप ।
ददाह गिरिमेधोभिः समन्तादग्निमुत्सृजन् ॥११॥

हे राजन् ! उन्हें पर्वत में छिपा हुआ जानकर, जब जरासंधको ढूंढ़नेपर भी उनका पता न मिला, तब उसने चारों ओर से आग लगाकर ईंधन के द्वारा पर्वत को जला दिया ॥११॥

तत उत्पत्य तरसा दह्यमानतटादुभौ ।
दशैकयोजनोत्तुङ्गान्निपेततुरधो भुवि ॥१२॥

जब उस पहाड़ की चोटियाँ जलने लगीं तथा वहाँ तक ज्वाला लपकने लगी, तब उस ग्यारह योजन ऊँचे पर्वत से वे दोनों भाई तत्काल ही ऐसे स्थान पर कूद पड़े कि जहाँ जरासंधके साथी उन्हें न देख सकें ॥१२॥

अलक्ष्यमाणौ रिपुणा सानुगेन यदूत्तमौ ।
स्वपुरं पुनरायातौ समुद्रपरिखां नृप ॥१३॥

हे राजन् ! अनुचरों सहित शत्रु की दृष्टिबचा कर वे दोनों यादव-राज समुद्र की खाई वाली अपनी द्वारकापुरी में लौट आये ॥१३॥

सोपि दग्धाविति मृषा मन्वानो बलकेशवौ ।
बलमाकृष्य सुमहान्मगधान्मागधो ययौ ॥१४॥

जरासंध भी उन्हें झूठ-मूठ जला हुआ जानकर अपने बड़े दल को साथ लेकर मगध देश के लिये लौट गया ॥१४॥

आनर्ताधिपतिः श्रीमान्रैवतो रेवतीं सुताम् ।
ब्रह्मणा चोदितः प्रादाद्बलायेति पुरोदितम्॥१५

आनर्त देशका राजा रैवत अपनी कन्या रेवती को साथ लेकर ब्रह्माजी के पास उसके लिये वर पूंछने गया, तब उसने ब्रह्माजी के कहने से अपनी कन्या बलराम जी को ब्याह दी थी-यह पहले कहा जा चुका है ॥१५॥

भगवानपि गोविन्द उपयेमे कुरूद्वह ।
वैदर्भीं भीष्मकसुतां श्रियो मात्रां स्वयंवरे ॥१६॥

हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण ने भी श्रीलक्ष्मी जी के अंश, भीष्मक राजा की कन्या रुक्मिणीजी के साथ स्वयंवर में विवाह किया ॥१६॥

प्रमथ्य तरसा राज्ञः शाल्वादींश्चैद्यपक्षगान् ।
पश्यतां सर्वलोकानां तार्क्ष्यपुत्रः सुधामिव ॥१७॥

जैसे देवताओं का मथन करके गरुड़ ने अमृत का हरण किया था, वैसे ही शिशुपाल के पक्ष वाले शाल्व आदि राजाओं का मथन करके सब लोगों के देखते-देखते ही भगवान् ने श्री रुक्मिणीजी का हरण किया ॥१७॥

राजोवाच

भगवान्भीष्मकसुतां रुक्मिणीं रुचिराननाम् ।
राक्षसेन विधानेन उपयेम इति श्रुतम् ॥१८॥

परीक्षित बोले-भगवान् ने भीष्मक की कन्या सुमुखी रुक्मिणी के साथ राक्षसों की विधि से ब्याह किया-यह मैंने सुना ॥१८॥

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामः कृष्णस्यामिततेजसः ।
यथा मागधशाल्वादीञ्जित्वा कन्यामुपाहरत्॥१९॥

परन्तु हे भगवन् ! अपरिमित तेजवान् श्रीकृष्ण भगवान् का यह चरित्र मैं विस्तार-पूर्वक सुनना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चाहता हूँ, इसलिये जिस प्रकार वे जरासंध शाल्व आदि राजागण को जीत कर श्रीरुक्मिणी को लाये हों, वह चरित्र मुझसे कहिये ॥१६॥

ब्रह्मन्कृष्णकथाः पुण्या माध्वीर्लोकमलापहाः ।
को नु तृप्येत शृण्वानः श्रुतज्ञो नित्यनूतनाः॥२०॥

हे ब्रह्मन् ! श्रीकृष्ण जी कथायें पवित्र, मनोहर, संसार के पाप को दूर करने वाली तथा नित्य नवीन हैं, उनके तत्व को जानने वाला कौन पुरुष उन्हें सुनकर तृप्त होगा ? ॥२०॥

श्रीशुक उवाच

राजासीद्भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान् ।
तस्य पञ्चाभवन्पुत्राः कन्यैका च वरानना ॥२१॥

श्री शुकदेवजी बोले–विदर्भ देश का संरक्षक भीष्मक नाम का एक बड़ा राजा था, उसके पाँच पुत्र और एक सुन्दर मुखवाली कन्या थी ॥२१॥

रुक्म्यग्रजो रुक्मरथो रुक्मबाहुरनन्तरः ।
रुक्मकेशो रुक्ममाली रुक्मिण्येषां स्वसा सती२२

ज्येष्ठ पुत्र रुक्मी से आदि लेकर रुक्मरथ, रुक्म बाहु, रुक्मकेश और रुक्ममाली यह पाँच पुत्र थे तथा इनकी बहिन सती रुक्मिणी थी ॥२२॥

सोपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूपवीर्यगुणश्रियः ।
गृहागतैर्गीयमानास्तं मेने सदृशं पतिम् ॥२३॥

उन्होंने घर पर आने-जाने वाले नारद आदि महात्मा जनों के मुख से भगवान् का रूप, पराक्रम गुण और लक्ष्मी का वैभव सुनकर अपने मनमें उन्हीं को अपना पति मान लिया ॥२३॥

तां बुद्धिलक्षणौदार्यरूपशीलगुणाश्रयाम् ।
कृष्णश्च सदृशीं भार्यां समुद्वोढुं मनो दधे ॥२४॥

यहाँ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने भी श्रीरुक्मिणी को बुद्धि, लक्षण उदारता, रूप शील और गुणोंसे सम्पन्न सुनकर,अपने समान पत्नी मानकर विवाह लेने का विचार कर लिया ॥२४॥

बन्धूनामिच्छतां दातुं कृष्णाय भगिनीं नृप ।
ततो निवार्य कृष्णद्विड् रुक्मी चैद्यममन्यत॥२५॥

हे राजन् ! सब भाई तो श्रीकृष्ण ही के साथ रुक्मिणी का ब्याह करना चाहते थे, पर कृष्ण के शत्रु रुक्मी ने उसे टाल कर शिशुपाल के साथ उनका ब्याह करना निश्चय किया ॥२५॥

तदवेत्यासितापाङ्गी वैदर्भी दुर्मना भृशम् ।
विचिन्त्याऽऽप्तं द्विजं कंचित्कृष्णाय प्राहिणोद्द्रुतम्

जब रुक्मिणी जी को इस बात का पता लगा, तब उन सुन्दर श्याम कटाक्ष वाली देवीने अत्यन्त उदास होकर किसी विश्वास-पात्र ब्राह्मण को शीघ्र ही श्रीकृष्ण के पास भेजा ॥ २६ ॥

द्वारकां स समभ्येत्य प्रतीहारैः प्रवेशितः ।
अपश्यदाद्यं पुरुषमासीनं काञ्चनासने ॥२७॥

वह ब्राह्मण द्वारका पहुंचा और द्वारपालों की आज्ञा मिलने पर राज-भवन में प्रवेश करके उसने स्वर्ण-सिंहासनपर विराजमान् आदि पुरुष भगवान् का दर्शन किया २७ ॥

दृष्ट्वा ब्रह्मण्यदेवस्तमवरुह्य निजासनम् ।
उपवेशार्हयाञ्चक्रे यथात्मानं दिवौकसः ॥२८॥

ब्राह्मणों के परम भक्त भगवान् उसे देखते ही तत्काल सिंहासन से उतर कर, उसे आसन पर बैठाकर पूजने लगे, जैसे देव-गण उनकी पूजा करते हैं ॥२८॥

तं भुक्तवन्तं विश्रान्तमुपगम्य सतां गतिः ।
पाणिनाऽभिमृशन्पादावव्यग्रस्तमपृच्छत ॥२९॥

जब वह भोजन कर चुका तथा उसकी थकान दूर होगई, तब सत्पुरुषों के शरण-दाता भगवान् ने उसके पास जाकर अपने हाथों से चरण चाँपते हुए धीरज के साथ पूंछा कि–॥२९॥

कच्चिद्द्विजवर श्रेष्ठ धर्मस्ते वृद्धसंमतः ।
वर्तते नातिकृच्छ्रेण संतुष्टमनसः सदा ॥३०॥

हे ब्राह्मणोत्तम ! हे वृद्ध पुरुषों के माननीय ! आपका धर्म तो आसानी से निर्बाह हो रहा है न? आपका मन तो सदैव सन्तुष्ट रहता है ?॥३०॥

संतुष्टो यर्हि वर्तेत ब्राह्मणो येन केनचित् ।
अहीयमानाः स्वाद्धर्मात्स ह्यस्याखिलकामधुक्३१

जब ब्राह्मण हर वस्तु से सन्तुष्ट रहता है, तब वह अपने धर्म से विचलित नहीं होता और उसी धर्म से उसके सब मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं ॥३१॥

असंतुष्टोऽसकृल्लोकानाप्नोत्यपि सुरेश्वरः ।
अकिञ्चनोऽपि संतुष्टः शेते सर्वाङ्गविज्वरः ॥३२॥

जो सन्तोष नहीं रखता, वह चाहे इन्द्र ही क्यों न हो, परन्तु सदैव उस लोक से इस लोक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में और इस लोक से उस लोक में भटका करताहै, इसके विपरीत सन्तोषी निर्धन भी किसी प्रकार का सन्ताप न होने के कारण सदैव सुख की नींद लेता है ॥ ३२ ॥

विप्रान्स्वलाभसंतुष्टान्साधून्भूतसुहृत्तमान् ।
निरहङ्कारिणः शान्तान्नमस्ये शिरसाऽसकृत्॥३३॥

जो ब्राह्मण स्वयं मिले हुए पदार्थों पर सन्तोष करते हैं, अपने धर्म पर आरूढ़ रहते हैं, जीव मात्र का कल्याण करते हैं और अहंकार-रहित तथा शान्त-मूर्त्ति हैं,उन्हें मैं भी बारम्बार सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥३३॥

कच्चिद्वः कुशलं ब्रह्मन्राजतो यस्य हि प्रजाः ।
सुखं वसन्ति विषये पाल्यमानाः स मे प्रियः॥३४॥

हे ब्रह्मन् ! आपको राजा की ओर से तो आनन्द है, जिस राजा के राज्य में प्रजा का भली भाँति पालन होता है और लोग आनन्द से रहते हैं, वह राजा मुझे अधिक प्रिय है ॥३४॥

यतस्त्वमागतो दुर्गं निस्तीर्येह यदिच्छया ।
सर्वं नो ब्रूह्यऽगुह्यं चेत्किं कार्यं करवाम ते ॥३५॥

आप जिस इच्छा से इस दुर्ग को पार करके यहाँ आये हैं, वह काम यदि कहने योग्य हो तो हमसे कहिये, हम आपका क्या कार्य करें ?॥३५॥

एवं संपृष्टसंप्रश्नो ब्राह्मणः परमेष्ठिना ।
लीलागृहीतदेहेन तस्मै सर्वमवर्णयत् ॥३६॥

जब भगवान् ने इस प्रकार ब्राह्मण से पूछा, तब ब्राह्मण ने लीला से नर-तन-धारी श्रीकृष्ण जी से वहाँ का सब वृत्तान्त कहा ॥३६॥

रुक्मिण्युवाच

श्रुत्वा गुणान्भुवनसुन्दर शृण्वतां ते निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम् । रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं त्वय्यच्युताऽविशति चित्तमपत्रपं मे॥

(और श्री रुक्मिणी जी ने जो एकान्त में प्रेम से भरी हुई पत्रिका लिखकर दी थी, उसे खोलकर श्रीकृष्ण को दिखलाया और फिर उनकी आज्ञा से वह पढ़ कर सुनाने लगा) श्रीरुक्मिणी जी ने कहा है कि-हे त्रिलोकमें सुन्दर ! हे अच्युत ! हे अखण्ड रूप ! जब से-सुनने वाले पुरुषों के कानों के छिद्रों द्वारा हृदयमें प्रवेश करके सन्ताप हरण करनेवाले आपके गुण और दर्शकों की दृष्टि के समस्त मनोरथों को देने वाला आपका रूप सुना है, तब से मेरा मन लज्जा छोड़कर आपही में लग रहाहै ॥

का त्वा मुकुन्द महती कुलशीलरूपविद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम् । धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या काले नृसिंह नरलोकमनोऽभिरामम्॥

हे मुकुन्द ! हे पुरुष सिंह ! कौन बलवान् तथा उदार गुण और धीरज वाली कन्या-आप मनुष्य लोक के अति प्रिय, कुल,शील, रूप,विद्या,अवस्था धन और घर में अपने ही समान को विवाह के समय में पति स्वीकार न करेगी ? ॥३८॥

तन्मे भवान्खलु वृतः पतिरङ्ग जायामात्मार्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि । मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद्गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमम्बुजाक्ष॥३९॥

इसीलिये हे प्रभु ! मैंने आपको अपना पति स्वीकार किया है और मैंने अपना तन तथा आत्मा आपको अर्पण कर दिया है, इस कारण आप यहाँ आकर मुझे वरण कीजिये, हे कमलाक्ष ! मैं कि जो आप वीर वर की पत्नी हूँ, उसे कहीं आपसे पहले आकर शिशुपाल स्पर्श न करले, जैसे-सिंह के भाग को गीदड़ स्पर्श नहीं कर सकता ॥३९॥

पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्रगुर्वर्चनादिभिरलं भगवान्परेशः । आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये ॥४०॥

यदि मैंने कुवें, बावली बनवा कर, यज्ञ, दान, नियम, व्रत धारण करके, देवता, ब्राह्मण और गुरु का पूजन करके-इन समस्त साधनों के द्वारा परमेश्वर का पूर्ण आराधन किया हो तो भगवान् श्री कृष्ण ही आकर मेरा पाणि ग्रहण करें, दमघोष के पुत्र शिशुपाल आदि नहीं ॥४०॥

श्वो भाविनि त्वमजितोद्वहने विदर्भान्गुप्तः समेत्य पृतनापतिभिः परीतः । निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य मां राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम्॥४१॥

हे अजित ! कल मेरा विवाह होने वाला है, इसलिये आप सेना पतियों सहित यहाँ गुप्त-रूप से आकर शिशुपाल तथा जरासंध की सेना का बल-पूर्वक मथन करके मुझ पराक्रम के मूल्यवाली रुक्मिणी को आसुरी-विधि से व्याह लीजिये॥४१॥

अन्तःपुरान्तरचरीमनिहत्य बन्धूंस्त्वामुद्वहे कथ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मिति प्रवदाम्युपायम् । पूर्वेद्युरस्ति महती कुल-देवियात्रा यस्यां बहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात्॥४२॥

कदाचित् आप यह कहें कि-तू तो राज-महल के भीतर रहती है, तेरे बन्धुओं का वध किये बिना हम तुझे क्योंकर विवाह लें? इसके लिये मैं एक उपाय बतलाती हूँ कि-मेरे कुल में विवाह के पहले दिन कुल-देवी अम्बिका की बड़ी यात्रा होती है, जिसमें नव बधू को पार्वती जी के दर्शनों के लिये बाहर जाना पड़ता है ॥४२॥

यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजःस्नपनं महान्तो वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै । यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं जह्यामसून्व्रतकृशाञ्छतजन्मभिःस्यात्॥

हे कमल नयन! महादेव जी के समान दूसरे महात्मा गण भी अपने अज्ञान को दूर करनेके लिये जिसके चरण-कमल की रजमें स्नान करना चाहते हैं, ऐसे आप (श्रीकृष्ण) का यदि मुझे प्रसाद न मिला, तो मैं व्रतों द्वारा शरीर को जीर्ण करके अपने प्राण त्याग दूंगी, फिर ऐसा ही करते-करते चाहे सैकड़ों जन्म हो जाँय, परन्तु आपकी कृपा अवश्य ही प्राप्त करूँगी*॥४३॥

ब्राह्मण उवाच

इत्येते गुह्यसंदेशा यदुदेव मयाऽऽहृताः ।
विमृश्य कर्तु यच्चात्र क्रियतां तदनन्तरम् ॥४४॥

ब्राह्मण बोला-हे यदुदेव! यह गुप्त सन्देश मैं लाया हूँ, सो आप विचार कर जैसा चाहें, वैसा करें ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

तिरेपनवां अध्याय

(श्रीकृष्ण का कुण्डनपुर में आना)

श्रीशुक उवाच

वैदर्भ्याः स तु संदेशं निशम्य यदुनन्दनः ।
प्रगृह्य पाणिना पाणिं प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेव जी बोले-श्रीकृष्ण जी रुक्मिणी का सन्देश सुनकर ब्राह्मणका हाथ अपने हाथसे पकड़ कर और हँसकर कहने लगे ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

तथाहमपि तच्चित्तो निद्रां च न लभे निशि ।
वेदाहं रुक्मिणा द्वेषान्ममोद्वाहो निवारितः॥ २ ॥

भगवान् बोले-मेरा मन भी उसी प्रकार रुक्मिणी में लग रहा है और चिन्ता के मारे रात भर नींद भी नहीं आती है, मैं जानता हूँ कि-रुक्म ने बैर के कारण मेरे ब्याह में बाधा डाली है ॥२॥

तामानयिष्य उन्मथ्य राजन्यापसदान्मृधे ।
मत्परामनवद्याङ्गीमेधसोऽग्निशिखामिव ॥ ३ ॥

मैं उस निर्दूषित अंगों वाली अनन्य गति धारणी रुक्मिणी को दुष्ट राजाओं का वध करके वैसे ही ले आऊँगा, जैसे काठको काठ से घिसकर आग निकाल लेते हैं ॥३॥

श्रीशुक उवाच

उद्वाहर्क्षं च विज्ञाय रुक्मिण्या मधुसूदनः ।
रथः संयुज्यतामाशु दारुकेत्याह सारथिम्॥ ४ ॥

श्रीशुकदेव जी बोले-भगवान् ने रुक्मिणी जी के ब्याह का नक्षत्र जानकर सारथी को आज्ञा दी कि-हे दारुक! शीघ्र ही रथ तैयार करो ॥४॥

स चाश्वैः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः ।
युक्तं रथमुपानीय तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः ॥ ५ ॥

वह सारथी भी रथ में शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नाम के चार घोड़े जोत कर, रथ लाकर और हाथ जोड़कर सामने आखड़ाहुआ॥५॥

आरुह्य स्यन्दनं शौरिर्द्विजमारोप्यतूर्णगैः ।
आनर्तादेकरात्रेण विदर्भानगमद्धयैः ॥ ६ ॥

भगवान् उस ब्राह्मण को रथ पर चढ़ाकर और स्वयं चढ़कर उन वेगवान् घोड़ों के द्वारा एक ही रात में आनर्त देश से विदर्भ नगरमें जा पहुँचे॥६॥

---

* हौं पद चेरि सो हेर रही, प्रभु मारग में अँखियाँ हठठानी। इहि तोर निहोर न दीन-सखे!, परसिद्ध हमेस सों दीन कहानी। हौं अपनो मन वारि चुकी, अपनी अपनाहु नहीं हित हानी। का खर लै सकु सो लछिमी, जो कै द्वारकानाथ के हाथ बिकानी॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा स कुण्डिनपतिः पुत्रस्नेहवशं गतः ।
शिशुपालाय स्वां कन्यां दास्यन्कर्माण्यकारयत् ७

कुण्डनपुर-नरेश भीष्मक अपने पुत्र रुक्म के स्नेह में बँधकर, शिशुपालको कन्या देनेका विचार करके पितरों तथा देवताओं का पूजन आदि-कर्म करवाता था ॥७॥

पुरं संमृष्टसंसिक्तमार्गरथ्याचतुष्पथम् ।
चित्रध्वजपताकाभिस्तोरणैः समलंकृतम् ॥ ८ ॥

नगर के राज-मार्ग, गलियाँ और चौहट्टों को झाड़-बुहारकर उनमें छिड़काव कराया गया और विचित्र ध्वजा, पताका, और तोरण बंधवा कर नगर को सुसज्जित किया गया ॥८॥

स्रग्गन्धमाल्याभरणैर्विरजोम्बरभूषितैः ।
जुष्टं स्त्रीपुरुषैः श्रीमद्गृहैरगुरुधूपितैः ॥ ९ ॥

नगर के स्त्री-पुरुष माला, सुगन्ध, फूल, आभूषण और स्वच्छ वस्त्रों से शृङ्गार किये हुए फिर रहे थे और घर-घर में अगर के धूप की सुगन्धि आ रही थी ॥९॥

पितॄन्देवान्समभ्यर्च्य विप्रांश्च विधिवन्नृप ।
भोजयित्वा यथान्यायं वाचयामास मङ्गलम् ॥ १० ॥

हे राजन् ! भीष्मकने पितृ देवता और ब्राह्मणों का विधि पूर्वक पूजन करके, उन्हें भोजन करवा के और दीन जनों को यथोचित भोजन देकर, कन्या के लिये स्वस्ति वाचन करवाया ॥१०॥

सुस्नातां सुदतीं कन्यां कृतकौतुकमङ्गलाम् ।
अहतांशुकयुग्मेन भूषितां भूषणोत्तमैः ॥ ११ ॥
चक्रुः सामर्ग्यजुर्मन्त्रैर्बद्ध्वा रक्षां द्विजोत्तमाः ।
पुरोहितोऽथर्वविद्वै जुहाव ग्रहशान्तये ॥ १२ ॥

सुन्दर कन्या को भली भांति स्नान कराके, कौतुक पूर्वक उसके हाथमें विवाहका कंगन बांधने का मङ्गल कृत्य करके दो अहत वस्त्र पहिना कर और श्रेष्ठआभूषणोंसे सुसज्जित करके, श्रेष्ठ ब्राह्मण साम, ऋक् तथा यजुः वेदके मन्त्रों द्वारा रक्षाकरने लगे और अथर्व वेद का ज्ञाता पुरोहित ग्रह-शांति के लिये होम करने लगा ॥ ११ ॥१२॥

हिरण्यरूप्यवासांसि तिलांश्च गुडमिश्रितान् ।
प्रादाद्धेनूश्च विप्रेभ्यो राजा विधिविदां वरः ॥ १३ ॥

विधि जानने वालों में उत्तम राजा भीष्मक ने ब्राह्मणों को स्वर्ण, चाँदी, वस्त्र, गुड़ मिले हुए तिल तथा गौओं का दान किया ॥१३॥

एवं चेदिपती राजा दमघोषः सुताय वै ।
कारयामास मन्त्रज्ञैः सर्वमभ्युदयोचितम् ॥ १४ ॥

इसी प्रकार चेदि देशके राजा दमघोषने अपने पुत्र शिशुपाल के लिये मंत्र ज्ञाता ब्राह्मणों के द्वारा समस्त उचित मांगलिक कर्म कराये ॥१४॥

मदच्युद्भिर्गजानीकैः स्यन्दनैर्हेममालिभिः ।
पत्त्यश्वसंकुलैः सैन्यैः परीतः कुण्डिनं ययौ ॥ १५ ॥

फिर झरते हुए हाथी, स्वर्ण-माल वाले रथ, पैदल तथा घोड़ों के समूह वाली सेना साथ लेकर बारात सजा करके कुण्डनपुर में आया ॥१५॥

तं वै विदर्भाधिपतिः समभ्येत्याभिपूज्य च ।
निवेशयामास मुदा कल्पितान्यनिवेशने ॥ १६ ॥

विदर्भ-नरेश भीष्मक स्वागत के लिये आया और उसने सम्मान-पूर्वक दूसरे सुसज्जित स्थानमें डेरा दिया ॥१६॥

तत्र शाल्वो जरासन्धो दन्तवक्रो विदूरथः ।
आजग्मुश्चैद्यपक्षीयाः पौण्ड्रकाद्याः सहस्रशः ॥ १७ ॥

वहाँ जरासंध, शाल्व, दन्तवक्र, विदूरथ और पौंड्रक आदि हज़ारों शिशुपाल के पक्ष वाले राजा आये ॥ १७ ॥

कृष्णरामद्विषो यत्ताः कन्या चैद्याय सादितुम् ।
यद्यागत्य हरेत्कृष्णो रामाद्यैर्यदुभिर्वृतः ॥ १८ ॥
योत्स्यामः संहतास्तेन इति निश्चितमानसाः ।
आजग्मुर्भूभुजः सर्वे समग्रबलवाहनाः ॥ १९ ॥

ये सभी राम-कृष्ण के शत्रु शिशुपाल को कन्या दिलाने के लिये सजकर आये थे और उनका दृढ़ निश्चय था कि यदि बलभद्र आदि यादवों के साथ श्रीकृष्ण यहाँ आकर कन्या का हरण करेंगे तो हम एक होकर उनसे युद्ध करेंगे.इसलिये वे सब अपनी समस्त सेना तथा सवारियांभी ले आये थे १८।१९

श्रुत्वैतद्भगवान्रामो विपक्षीयनृपोद्यमम् ।
कृष्णं चैकं गतं हर्तुं कन्यां कलहशङ्कितः ॥ २० ॥
बलेन महता सार्धं भ्रातृस्नेहपरिप्लुतः ।
त्वरितः कुण्डिनं प्रागाद्गजाश्वरथपत्तिभिः ॥ २१ ॥

जब भगवान् बलदेवजीने राजाओंका यह उद्योग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथा कन्या-हरण के लिये श्रीकृष्णजी के अकेले ही जाने का समाचार सुना, तो कलह की आशंका तथा भाईके स्नेहसे आर्द्र चित्त होकर वे भी एक बड़ी सेना, हाथी, घोड़े और पैदलों के साथ शीघ्र ही कुंडनपुर में आ पहुंचे ॥ २० ॥॥ २१॥

भीष्मकन्या वरारोहा काङ्क्षत्यागमनं हरेः ।
प्रत्यापत्तिमपश्यन्ती द्विजस्याचिन्तयत्तदा ॥२२॥

श्रेष्ठ जंघाओं वाली राजा भीष्मक की कन्या (रुक्मिणी) श्रीकृष्ण के आने की राह देख रही थी परन्तु अपने भेजेहुए ब्राह्मण को लौटा हुआ न देख कर वे चिन्ता करने लगीं ॥ २२ ॥

अहो त्रियामान्तरित उद्वाहो मेऽपराधसः ।
नागच्छत्यरविन्दाक्षो नाहं वेद्मयत्र कारणम्॥२३॥

कि हाय ! मुझ अभागनी के विवाह में केवल एक रात शेष है, परन्तु भगवान् कमल नयन अब तक नहीं पधारे हैं, इसका कारण मैं नहीं जानती, मेरा संदेश लेकर जो ब्राह्मण गया था वह भी नहीं आया है ॥२३॥

सोपि नावर्ततेऽद्यापि मत्संदेशहरो द्विजः ।
अपि मय्यनवद्यात्मा दृष्ट्वा किञ्चिज्जुगुप्सितम् ।
मत्पाणिग्रहणे नूनं नायाति हि कृतोद्यमः ॥२४॥

मेरे साथ विवाह करने के लिये उद्यत होते हुए भी भगवान् क्यों न आये कदाचित् वे निर्दोष मुझ में कुछ दोष देखकर तो नहीं रुक रहे हैं ? ॥२४॥

दुर्भगाया न मे धाता नानुकूलो महेश्वरः ।
देवी वा विमुखा गौरी रुद्राणी गिरिजा सती॥२५

कहीं मुझ मन्दभागनी पर ब्रह्मा, महादेव या गिरिजा सती रुद्राणी देवी पार्वती-यह प्रतिकूल तो नहीं हैं ? ॥२५॥

एवं चिन्तयती बाला गोविन्दहृतमानसा ।
न्यमीलयत कालज्ञा नेत्रे चाश्रुकलाकुले ॥२६॥

भगवान्ने जिनकी विचार-शक्ति तथा बुद्धि हर ली है ऐसी समयकी जानने वाली रुक्मिणीजी आँसुओं से विकल नेत्रों को मूंदकर बैठगईं॥२६॥

एवं वध्वाः प्रतीक्षन्त्या गोविन्दागमनं नृप ।
वाम ऊरुर्भुजो नेत्रमस्फुरन्प्रियभाषिणः ॥२७॥

हे राजन् ! इस प्रकार रुक्मिणीजी भगवान् के आनेकी बाट देखरही थीं, उसी समय मङ्गलसूचक उनके बायें अङ्ग, ऊरु, भुजा और नेत्र फड़कनेलगे ॥

अथ कृष्णविनिर्दिष्टः स एव द्विजसत्तमः ।
अन्तःपुरचरीं देवीं राजपुत्रीं ददर्श ह ॥२८॥

इतने ही में श्रीकृष्णका पहुँचाया हुआ वही ब्राह्मण भी आपहुंचा और उसने अन्तःपुरमें विचरने वाली उन राजकुमारी जी को देखा ॥२८॥

सा तं प्रहृष्टवदनमव्यग्रात्मगतिं सती ।
आलक्ष्य लक्षणाभिज्ञा समपृच्छच्छुचिस्मिता॥२९

स्वस्थ रीतिसे आतेहुए प्रसन्न मुख उस ब्राह्मण को देखकर उसके लक्षणों के द्वारा ही यह जानने वाली श्रीरुक्मिणीजी कि "यह दूत कार्य करके आया है" हंसकर श्रीकृष्ण-संदेश पूछनेलगीं ॥२९॥

तस्या आवेदयत्प्राप्तं शशंस यदुनन्दनम् ।
उक्तं च सत्यवचनमात्मोपनयनं प्रति ॥३०॥

तब ब्राह्मणने रुक्मिणीजी से यह कहा कि श्रीकृष्णजी आये हैं और उन्होंने यह भी कहा है कि मैं राजाओं को जीतकर रुक्मिणी को ले जाऊँगा ॥

तमागतं समाज्ञाय वैदर्भी हृष्टमानसा ।
न पश्यन्ती ब्राह्मणाय प्रियमन्यन्ननाम सा॥३१॥

भगवान्को आया हुआ जानकर रुक्मिणीजीने प्रसन्न चित्त होकर जब ब्राह्मणको देने योग्य कुछ भी न देखा तो केवल प्रणामकिया और फिर बहुत सा धन भी दिया ॥३१॥

प्राप्तौ श्रुत्वा स्वदुहितुरुद्वाहप्रेक्षणौत्सुकौ ।
अभ्ययात्तूर्यघोषेण रामकृष्णौ समर्हणैः ॥३२॥

राजा भीष्मक ने जब यह समाचार पाया कि मेरी कन्या के विवाहोत्सव को देखने की लालसा से श्रीराम-कृष्ण आये हैं, तो वह पूजनकी सामग्री लेकर बाजे-गाजे के साथ उनके सन्मुख आया ॥

मधुपर्कमुपानीय वासांसि विरजांसि च ।
उपायनान्यभीष्टानि विधिवत्समपूजयत् ॥३३॥

मधुपर्क लाकर स्वच्छ वस्त्र और इच्छित भेंट अर्पण करके उसने नियमानुसार सत्कारकिया ॥

तयोर्निवेशनं श्रीमदुपकल्प्य महामतिः ।
ससैन्ययोः सानुगयोरातिथ्यं विदधे यथा ॥३४॥

परम बुद्धिमान् राजा भीष्मक ने सेना तथा अनुचरोंको डेरा दिलाकर, उन दोनों बन्धुओं के लिये अत्युत्तम डेरा तैयार कराया और यथोचित रूप से अतिथि-सत्कार किया ॥३४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एवं राज्ञां समेतानां यथावीर्यं यथा वयः ।
यथाबलं यथावित्तं सर्वैः कामैः समर्हयत् ॥३५॥

इस भांति जो राजा एकत्र हुए थे उन सबका उनके पराक्रम, आयु, बल और धनके अनुसार समस्त इच्छायें पूर्ण करके सत्कार किया ॥३५॥

कृष्णमागतमाकर्ण्य विदर्भपुरवासिनः ।
आगत्य नेत्राञ्जलिभिः पपुस्तन्मुखपङ्कजम् ॥३६॥

विदर्भ देश तथा नगर के रहने वाले लोग श्री कृष्णजीका आना सुनकर और आ-आकर नेत्र रूपी अंजलियों द्वारा भगवान् के मुखारविन्द का पान करने लगे ॥३६॥

अस्यैव भार्या भवितुं रुक्मिण्यर्हति नापरा ।
असावप्यनवद्यात्मा भैष्म्याः समुचितः पतिः ३७॥

और कहनेलगे कि इनके योग्य तो श्रीरुक्मिणी ही पत्नी हैं, दूसरी नहीं और रुक्मिणी के योग्य भी यही निर्दोष वर हैं ॥३७॥

किञ्चित्सुचरितं यन्नस्तेन तुष्टस्त्रिलोककृत् ।
अनुगृह्णातु गृह्णातु वैदर्भ्याः पाणिमच्युतः ॥३८॥

यदि अपना कुछ पुण्यहो और उससे त्रिभुवन कर्त्ता प्रसन्न होकर कृपा करें, तो श्रीकृष्ण ही रुक्मिणी का पाणिग्रहण करें ॥३८॥

एवं प्रेमकला बद्धा वदन्ति स्म पुरौकसः ।
कन्या चान्तःपुरात्प्रागाद्भटैर्गुप्ताऽम्बिकालयम्॥३९

इस प्रकार प्रेम से बँधे हुए नगर-निवासी कह रहेथे कि उसी समय अनेक योधाओं द्वारा रक्षित श्रीरुक्मिणीजी अम्बिका के दर्शन करने के लिये अन्तःपुर से चलीं ॥३९॥

पद्भ्यां विनिर्ययौ द्रष्टुं भवान्याः पादपल्लवम् ।
सा चाऽनुध्यायती सम्यङ्मुकुन्दचरणाम्बुजम् ४०

वह यद्यपि पैरों से अम्बिका के चरणारविन्द के दर्शन के लिये जा रहीं थीं फिर भी भली भांति भगवान्के चरणकमलों के ध्यानमें मग्न थीं ॥४०॥

यतवाङ्मातृभिः सार्धं सखीभिः परिवारिता ।
गुप्ता राजभटैः शूरैः सन्नद्धैरुद्यतायुधैः ।
मृदङ्गशंखपणवास्तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ॥४१॥

मौनता धारण किये हुए, माताओं को साथ लिये हुए और सखियों से घिरीहुई वह जारही थीं उस समय कवच पहने हुए और शस्त्र उठाये हुए राजा के वीर योधा रक्षा कर रहे थे और मृदङ्ग, शंख; ढोल, तुरी तथा भेरी-ये सब बाजे बजरहे थे॥

नानोपहारबलिभिर्वारमुख्याः सहस्रशः ।
स्रग्गन्धवस्त्राभरणैर्द्विजपत्न्यः स्वलंकृताः ॥४२॥

हज़ारों श्रेष्ठ वेश्यायें साथमें नाचतीहुई जारही थीं और माला, वस्त्र तथा आभूषणोंसे शृङ्गार कर के अनेक भांति की भेंट-सामग्री लिये हुए द्विज-स्त्रियाँ भी साथ जारही थीं ॥४२॥

गायन्तश्च स्तुवन्तश्च गायका वाद्यवादकाः ।
परिवार्य वधूं जग्मुः सूतमागधवन्दिनः ॥४३॥

गायक तथा बाजेवाले गाते बजाते हुए तथा सूत मागध और वन्दीजन (यश उच्चारण करते हुए) श्रीरुक्मिणीजीके चारों ओर जारहे थे ॥४३॥

आसाद्य देवीसदनं धौतपादकराम्बुजा ।
उपस्पृश्य शुचिः शान्ता प्रविवेशाम्बिकाऽन्तिकम् ॥

वह कन्या श्रीरुक्मिणीजी मन्दिरमें पहुँच कर कमलके समान हाथ-पैर धोकर आचमन करके और पवित्र होकर अम्बिकाजी के पास गईं ॥४४॥

तां वै प्रवयसो बालां विधिज्ञा विप्रयोषितः ।
भवानीं वन्दयाञ्चक्रुर्भवपत्नीं भवान्विताम् ॥४५॥

तब विधिकी जाननेवाली वृद्धा द्विज-पत्नियोंने उन रुक्मिणीजी से महादेवजी सहित पार्वतीजी को प्रणाम करवाया ॥४५॥

नमस्ये त्वाम्बिकेऽभीक्ष्णं स्वसन्तानयुतां शिवाम् ।
भूयात्पतिर्मे भगवान्कृष्णस्तदनुमोदताम् ॥४६॥

"हे अंबिके ! अपनी सन्तान सहित आप परम मङ्गल-रूपणी को मैं बार-बार प्रणाम करती हूँ मुझ पर ऐसी कृपा करो कि जिसमें श्रीकृष्ण भगवान् मेरे पति हों" ॥४६॥

अद्भिर्गन्धाक्षतैर्धूपैर्वासः स्रङ्माल्यभूषणैः ।
नानोपहारबलिभिः प्रदीपावलिभिः पृथक् ॥४७॥

श्रीरुक्मिणीजी ने इस प्रकार (मनमें) प्रार्थना करके जल, गन्ध, अक्षत, धूप, माला, पुष्प, आभूषण, विविध उपहार, बलिदान और दीप मालाओं द्वारा देवीजी का पृथक् २ पूजन किया ॥४७॥

विप्रस्त्रियः पतिमतीस्तथा तैः समपूजयत् ।
लवणापूपताम्बूलकण्ठसूत्रफलेक्षुभिः ॥४८॥

उन्होंने सुहागिनी ब्राह्मणियोंकी भी उन पदार्थों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वारा तथा मान, पूजा, पान, कण्ठ सूत्र, फल और ऊख से पूजाकी ॥४८॥

तस्यै स्त्रियस्ताः प्रददुः शेषां युयुजुराशिषः ।
ताभ्यो देव्यै नमश्चक्रे शेषां च जगृहे वधूः ॥४९॥

रुक्मिणीजीने द्विज-पत्नियों और देवीजी को प्रणाम किया और उनका प्रसाद लिया, तब उन ब्राह्मणियों ने उनको आशीर्वाद दिया ॥४९॥

मुनिव्रतमथ त्यक्त्वा निश्चक्रामाम्बिकागृहात् ।
प्रगृह्य पाणिना भृत्यां रत्नमुद्रोपशोभिना ॥५०॥

तत्पश्चात् मौनव्रत त्यागकर रत्न-जटित अंगूठी से शोभायमान हाथ से दासी का हाथ पकड़ कर, रुक्मिणीजी मन्दिरसे बाहर निकलीं ॥५०॥

तां देवमायामिव वीरमोहिनीं सुमध्यमां कुण्डल मण्डिताननाम् । श्यामां नितम्बार्पितरत्नमेखलां व्यञ्जत्स्तनीं कुन्तलशङ्कितेक्षणाम् ॥५१॥

शुचिस्मितां बिम्बफलाधरद्युतिशोणायमानद्विज-कुन्दकुड्मलाम् । पदा चलन्तीं कलहंसगामिनीं सिञ्जत्कलानूपुरधामशोभिना ॥५२॥

विलोक्य वीरा मुमुहुः समागता यशस्विनस्त-त्कृतहृच्छयार्दिताः ॥५३॥

जिनका कटिभाग ईश्वरकी मायाके समान वीर पुरुषों को मोहित करने वाला है, मुख कुंडलों से शोभायमान है, रजोदर्शन नहीं हुआ है, जिनके नितंब में रत्नों की मेखला बँधी हुई है, कुच प्रकट होने लगे हैं, कुन्तलों की शंका से चंचल नेत्र हैं, सुन्दर मन्द हास है, बिंबफल के समान अधर की कान्ति,कुन्द-कली के समान दाँतोंपर लालिमा छा रही है, राज-हंस के समान गतिके कारण झनकार करते हुए नूपुरों की कान्ति से शोभायमान् चरणों से चलती हुई उन रुक्मिणीजी को देखकर आये हुए सब बड़े-बड़े वीर पुरुष, उनके दर्शनसे उत्पन्न हुए कामदेव द्वारा मोहित होगये ॥५१॥५२॥५३॥

यां वीक्ष्य ते नृपतयस्तदुदारहासव्रीडावलोक-हृतचेतस उज्झितास्त्राः।पेतुः क्षितौ गजरथाश्वगता विमूढा यात्राच्छलेन हरयेऽर्पयतीं स्वशोभाम् ५४

चलने का बहाना करके जो रुक्मिणीजी अपनी शोभा भगवान्को दिखला रहीथीं,उन्हें देखकरउनके सुन्दर हास्य तथा लज्जा मयी चितवनसे राजालोग मोहित चित्त होगये और उनके हाथोंसे शस्त्र छूट पड़े, यहाँतक कि वे ऐसे मूढ़ होगये कि वे अपनेरथ व घोड़ों से पृथ्वी पर गिर पड़े ॥५४॥

सैवं शनैश्चलयती चलपद्मकोशौ प्राप्तिं तदा भगवतः प्रसमीक्षमाणा । उत्सार्य वामकरजैरल-कानपाङ्गैः प्राप्तान्हियैक्षत नृपान्ददृशेऽच्युतं सा ५५

इस प्रकार चलते हुए कमल कोश के समान चरणों को धीरे २ रखती हुई और उस समय श्री कृष्ण के आगमन की राह देखती हुई, रुक्मिणीजी अपने बायें हाथके नखों से अलकों को उठाकर आये हुए राजाओं को देखनेलगीं, वहाँ उन्हें तत्-काल ही भगवान् दीख पड़े ॥ ५५ ॥

तां राजकन्यां रथमारुरुक्षतीं जहार कृष्णो द्विषतां समीक्षताम् । रथं समारोप्य सुपर्णलक्ष-णं राजन्यचक्रं परिभूय माधवः ।ततो ययौ राम पुरोगमैः शनैः मृगालमध्यादिव भागहृद्धरिः५६॥

ज्यों ही उन राजकुमारी जी ने रथ पर चढ़ना चाहा त्योंही भगवान् शत्रुओं के देखतेदेखते गरुड़-चिह्नवाले अपने रथपर बिठलाकर राजागणोंका ति-रस्कार करके रुक्मिणीजीको इस भांति हर ले गये जैसे गीदड़ों में से सिंह अपना भाग ले जाता है, फिर वे बलरामजी आदि यादवों के साथ धीरे २ चलने लगे ॥५६॥

तं मानिनः स्वाभिभवं यशःक्षयं परे जरासंध-वशा न सेहिरे । अहो धिगस्मान्यश आत्तधन्वनां गोपैर्हृतं केसरिणां मृगैरिव ॥५७॥

जरासंध के आश्रित रहने वाले दूसरे राजा अपने यश-नाशक इस अपमान को सहन न करके कहने लगे कि अहो ! हम लोगों को धिक्कार है कि एक ग्वाल हम चतुर्धारियों के यशको हर कर इस प्रकार लेगया है जैसे सिंहके यशको मृग हर ले गया हो ॥ ५७ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चौवनवां अध्याय

(रुक्म-मान भंग तथा श्रीकृष्ण-रुक्मिणी विवाह)

श्रीशुक उवाच

इति सर्वे सुसंरब्धा वाहानारुह्य दंशिताः ।
स्वैः स्वैर्बलैः परिक्रान्ता अन्वीयुर्धृतकार्मुकाः॥१॥

श्रीशुकदेवजी बोले–वे सब राजागण अत्यन्त क्रोधित होकर, कवच-सनाह पहिन कर, अपने २ वाहनों पर चढ़कर और दलों से घिरकर, धनुष लिये हुए दौड़े ॥ १॥

तानापतत आलोक्य यादवानीकयूथपाः ।
तस्थुस्तत्संमुखा राजन्विस्फूर्ज्य स्वधनूंषि ते ॥२॥

हे राजन् ! यादवों के सेनापति भी उन्हें पीछे से आता हुआ देखकर अपने धनुषों की टंकारकर के उनके सामने डट गये ॥२॥

अश्वपृष्ठे गजस्कन्धे रथोपस्थे त्वकोविदाः ।
मुमुचुः शरवर्षाणि मेघा अद्रिष्वपो यथा ॥ ३ ॥

वे निपुण राजा घोड़ों की पीठ, हाथियोंके कंधे और रथोंके मंचोंपर बैठेहुए इस तरह बाण बरसाने लगे जैसे बादल पहाड़ों पर पानी बरसाते हैं ॥४॥

पत्युर्बलं शरासारैश्छन्नं वीक्ष्य सुमध्यमा ।
सव्रीडमैक्षत्तद्वक्त्रं भयविह्वललोचना ॥ ४ ॥

सुन्दर कटि भाग वाली बाला रुक्मिणीजी अपने स्वामी की सेनाको बाणोंसे ढकी हुई देखकर विह्वल नेत्रों से लज्जा पूर्वक श्रीभगवान्के मुख की ओर देखने लगीं ॥४॥

प्रहस्य भगवानाह मा स्म भैर्वामलोचने ।
विनङ्क्ष्यत्यधुनैवैतत्तावकैः शात्रवंबलम् ॥ ५ ॥

तब भगवान् ने हँसकर कहा कि हे सुवदने ! तुम डरो मत, तुम्हारे यह यादवगण अभी शत्रुओं की सेना का संहार कर डालेंगे ॥५॥

तेषां तद्विक्रमं वीरा गदसंकर्षणादयः ।
अमृष्यमाणा नाराचैर्जह्रुर्हयगजान्रथान् ॥ ६ ॥

उन राजाओं के पराक्रमको सहन न करते हुए वीर गद और बलराम आदि यादव (शत्रुओं के) हाथी, घोड़ों और रथों का नाश करने लगे ॥६॥

पेतुः शिरांसि रथिनामश्विनां गजिनां भुवि ।
सकुण्डलकिरीटानि सोष्णीषाणि च कोटिशः॥७॥

रथी, घुड़सवार और हाथियों पर बैठे हुए योधाओं के करोड़ों मस्तक-कुंडल किरीट और पगड़ियों के साथ पृथ्वी पर गिरने लगे ॥ ७॥

हस्ताः सासिगदेष्वासाः करभा उरवोऽङ्घ्रयः ।
अश्वाश्वतरनागोष्ट्रखरमर्त्यशिरांसि च ॥ ८॥

तलवार, गदा और धनुषके सहित हाथ,करभ की नाईं जँघा और पाँव एवं घोड़े, खच्चर, हाथी, ऊँट,गधे तथा मनुष्योंके मस्तक कट२कर गिरनेलगे।

हन्यमानबलानीका वृष्णिभिर्जयकाङ्क्षिभिः ।
राजानो विमुखा जग्मुर्जरासन्धपुरःसराः ॥ ९ ॥

जब जयकी इच्छा करनेवाले यादवोंने (शत्रुओं की) सेनाका संहार करना प्रारंभ किया, तब जरासंध आदि समस्त राजा युद्ध से विमुख होकर भाग पड़े ॥ ९ ॥

शिशुपालं समभ्येत्य हृतदारमिवातुरम् ।
नष्टत्विषं गतोत्साहं शुष्यद्वदनमब्रुवन् ॥१०॥
भो भोः पुरुषशार्दूल दौर्मनस्यमिदं त्यज ।
न प्रियाप्रिययो राजन्निष्ठा देहिषु दृश्यते ॥११॥

जैसे स्त्री का ही हरण होगया हो, ऐसे दुखसे दुःखी,तेजहीन,उत्साहरहित तथा मलिन मुख वाले शिशुपाल के पास आकर सब राजागण कहने लगे कि हे पुरुष सिंह ! इस उदासी को छोड़ दीजिये, हे राजन् ! जीवधारियों के सुख या दुःख सदैव स्थिर नहीं रहते ॥॥१०॥११ ॥

यथा दारुमयी योषिन्नृत्यते कुहकेच्छया ।
एवमीश्वरतन्त्रोऽयमीहते सुखदुःखयोः ॥१२॥

जिस प्रकार कठ पुतली नट की इच्छा पर नाचती है, वैसे ही यह जीव सुख-दुःख भोगने में परमेश्वर के आधीन है ॥१२॥

शौरेः सप्तदशाहं वै संयुगानि पराजितः ।
त्रयोविंशतिभिः सैन्यैर्जिग्य एकमहं परम् ॥१३॥
तथाऽप्यहं न शोचामि न हृष्यामि कर्हिचित् ।
कालेन दैवयुक्तेन जानन्विद्रावितं जगत् ॥१४॥

श्रीकृष्ण से मैं सत्रह बार तेईस २ अक्षौहिणी सेनाके साथ हारगया और फिर मैंने अकेलेहीवैरी को जीतलिया,फिर भी न(अपनी हारपर)शोच या

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(जीत पर) हर्ष नहीं करता, क्योंकि मैं जानता हूँ कि यह जगत् दैवकी प्रेरणासे कालके वशमें है ॥

अधुनापि वयं सर्वे वीर यूथपयूथपाः ।
पराजिताः फल्गुतन्त्रैर्यदुभिः कृष्णपालितैः ॥१५॥

इस समय भी हम वीर यूथ पतियों के पति होकर भी थोड़ी सी सेना वाले कृष्ण से संरक्षित यादवों के द्वारा हार गये ॥१५॥

रिपवो जिग्युरधुना काल आत्मानुसारिणि ।
तदा वयं विजेष्यामो यदा कालः प्रदक्षिणः॥१६॥

(कारण कि) अभी उनका दैव अनुकूल है,इस लिये उनकी विजय होगई है, अब जब अपना दैव अनुकूल होगा, तब अपनी भी जीत होगी ॥१६॥

एवं प्रबोधितो मित्रैश्चैद्योऽगात्सानुगः पुरम् ।
हतशेषाः पुनस्तेपि ययुः स्वं स्वं पुरं नृपाः ॥१७॥

इस प्रकार जब उसके मित्रों ने समझाया तब वह शिशुपाल अपने अनुचरों सहित घर को लौट गया और जीवित बचे हुए राजा भी अपने-अपने नगरों को गये ॥१७॥

रुक्मी तु राक्षसोद्वाहं कृष्णद्विडसहन्स्वसुः ।
पृष्ठतोऽन्वगमत्कृष्णमक्षौहिण्या वृतो बली ॥१८॥

परन्तु श्रीकृष्ण का शत्रु रुक्म अपनी बहन के आसुरी विवाह को सहन न करके एक अक्षौहिणी सेना लेकर श्रीभगवान् के पीछे दौड़ा ॥१८॥

रुक्म्यमर्षी सुसंरब्धः शृण्वतां सर्वभूभुजाम् ।
प्रतिजज्ञे महाबाहुर्दंशितः सशरासनः ॥१९॥
अहत्वा समरे कृष्णमप्रत्यूह्य च रुक्मिणीम् ।
कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि वः॥२०॥

महाबाहु रुक्मने क्रोधमें आकर बहिनके हरण को सहन न कर सब राजाओंके सुनते हुए कवच धारण कर और हाथमें धनुष लेकर प्रण किया कि मैं संग्राम में श्रीकृष्ण को मारे विना तथा रुक्मिणी को लौटाये विना कुंडनपुर में प्रवेश न करूँगा यह मैं तुम लोगों से सत्य कहता हूँ ॥१९॥२०॥

इत्युक्त्वा रथमारुह्य सारथिं प्राह सत्वरम् ।
नोदयाश्वान्यतः कृष्णस्तस्य मे संयुगं भवेत्॥२१॥

इस तरह कहकर रथपर चढ़ उसने शीघ्र ही सारथी से कहा कि जिस ओर कृष्ण है उस ओर मेरा रथ चलाओ कि मेरा उसका संग्राम होसके ॥

अद्याहं निशितैर्बाणैर्गोपालस्य सुदुर्मतेः ।
नेष्ये वीर्यमदं येन स्वसा मे प्रसभं हृता ॥२२॥

आज मैं उस दुर्बुद्धि ग्वालके पराक्रमका अभिमान अपने तीक्ष्ण बाणोंके द्वारा भंग करूँगा कि जो मेरी बहिनको बलात्कार से ले गया है ॥२२॥

विकत्थमानः कुमतिरीश्वरस्याप्रमाणवित् ।
रथेनैकेन गोविन्दं तिष्ठ तिष्ठेत्यथाह्वयत् ॥२३॥

वह दुर्बुद्धि वाला रुक्म श्रीपरमेश्वर के प्रमाण को न समझ कर इस प्रकार बकवाद करता हुआ अकेला ही आगे बढ़कर रथ पर से 'ठहर-ठहर' करता हुआ श्रीकृष्णको पुकारने लगा ॥ २३ ॥

धनुर्विकृष्य सुदृढं जघ्ने कृष्णं त्रिभिः शरैः ।
आह चात्र क्षणं तिष्ठ यदूनां कुलपांसन ॥२४॥

और धनुष को दृढ़ता पूर्वक खींच कर उसने श्रीकृष्ण को तीन बाण मारे और वह कहने लगा कि हे यदुकुल में कलंक लगाने वाले ! क्षण भर के लिये खड़ा रह ॥२४॥

क्व यासि स्वसारं मे मुषित्वा ध्वाङ्क्षवद्धविः ।
हरिष्येऽद्य मदं मन्द मायिनः कूटयोधिनः ॥२५॥

जैसे काग होम की सामग्री को लेकर निकल भागता है, वैसे ही तू मेरी बहिनको चुराकर कहाँ जारहा है ? रे मन्दबुद्धि ! मैं आज तुझ छली और कपट-युद्ध करने वाले का मद हरण करूँगा ॥२५॥

यावन्न मे हतो बाणैः शयीथा मुञ्च दारिकाम् ।
स्मयन्कृष्णो धनुश्छित्त्वा षड्भिर्विव्याध रुक्मिणम्

(अन्यथा) जब तक मैं अपने बाण चला कर, तुझे पृथ्वी पर नहीं सुलाताहूँ तब तक तू कन्याको छोड़ दे' यह वचन सुनकर श्रीकृष्णजीने मुसकाते हुए उसके धनुष को काटकर छः बाणों द्वारा रुक्म को बांध दिया ॥२६॥

अष्टभिश्चतुरो वाहान्द्वाभ्यां सूतं ध्वजं त्रिभिः ।
स चान्यद्धनुरादाय कृष्णं विव्याध पञ्चभिः॥२७॥

और आठ बाण घोड़ोंको, दो सारथी को और एक ध्वजापर मारा,तब उसने दूसरा धनुष उठाया और पाँच बाण श्रीकृष्णको मारे ॥२७॥

तैस्ताडितः शरौघैस्तच्चिच्छेद धनुरच्युतः ।
पुनरन्यदुपादत्त तदप्यच्छिनदव्ययः ॥२८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन बाणों की चोट खाये हुए भगवान् ने उस दूसरे धनुष को भी काट गिराया, रुक्मने तीसरा धनुषलिया, तो भगवान् ने उसेभी काट डाला॥२८॥

परिघं पट्टिशं शूलं चर्मासी शक्तितोमरौ ।
यद्यदायुधमादत्त तत्सर्वं सोऽच्छिनद्धरिः ॥२९॥

उसने जो-जो परिघ, पट्टिश,त्रिशूल, ढाल,तलवार, बरछी और भाला आदि शस्त्र हाथ में लिये वे सब काटकर भगवान् ने गिरा दिये ॥२९॥

ततो रथादवप्लुत्य खड्गपाणिर्जिघांसया ।
कृष्णमभ्यद्रवत्क्रुद्धः पतङ्ग इव पावकम् ॥३०॥

तब वह रथ से कूदकर तलवार हाथ में लिये हुए मारने का विचार करके, क्रोध-पूर्वक भगवान् के सामने दौड़ा.जैसे पतिंगा आगके सामने जाताहै॥

तस्य चापततः खड्गं तिलशश्चर्म चेषुभिः ।
छित्त्वासिमाददे तिग्मं रुक्मिणं हन्तुमुद्यतः॥३१॥

भगवान्ने आतेहुए रुक्मकी ढाल और तलवार के बाणों द्वारा तिलके बराबर टुकड़े करडाले और उसे मारने के लिये तीक्ष्ण खड्ग उठाया ॥३१॥

दृष्ट्वा भ्रातृवधोद्योगं रुक्मिणी भयविह्वला ।
पतित्वा पादयोर्भर्तुरुवाच करुणं सती ॥३२॥

भाईके मारने का उद्योग देखकर रुक्मिणी भय के मारे घबरा उठी और वह सती अपने स्वामी के चरणोंमें गिरकर यह करुणामय वचन कहनेलगी कि।

योगेश्वराप्रमेयात्मन्देवदेव जगत्पते ।
हन्तुं नार्हसि कल्याण भ्रातरं मे महाभुज ॥३३॥

हे योगेश्वर ! हे अप्रमेयस्वरूप ! हे देवाधिदेव! हे जगत्पति ! हे कल्याण ! हे महाबाहु ! यह मेरा भाई है, इसलिये मारने योग्य नहीं है ॥ ३३ ॥

श्रीशुक उवाच

तया परित्रासविकम्पिताङ्गया शुचाऽवशुष्यन्मुखरुद्धकण्ठया। कातर्यविस्रंसितहेममालया गृहीतपादः करुणो न्यवर्तत ॥३४॥

श्रीशुकदेवजी बोले—जब त्रास के मारे कम्पित अङ्गों, सोच के कारण सूखे हुए मुख, रुँधे हुए कंठ और कातरता से गिरती हुई स्वर्ण माला वाली श्रीरुक्मिणीजी ने जब श्रीभगवान् के चरण पकड़ लिये तब उन्होंने रुक्मको बध करनेसे बचादिया ॥

वैलेन बद्ध्वा तमसाधुकारिणं सश्मश्रुकेशं प्रवपन्व्यरूपयत् । तावन्ममर्दुः परसैन्यमद्भुतं यदुप्रवीरा नलिनीं यथा गजाः ॥३५॥

उस दुष्ट कर्मा को वस्त्र से बाँधकर और उस का मूछों सहित सिर मुंडन करके कुरूप करदिया उधर उतने ही समय में यदुवीरों ने अद्भुत शत्रु-सैन्यको इस प्रकार मर्दन कर डाला, जैसे हाथी कमलनी को मर्दन कर देता है ॥३५॥

कृष्णान्तिकमुपव्रज्य ददृशुस्तत्र रुक्मिणम् ।
तथाभूतं हतप्रायं दृष्ट्वा संकर्षणो विभुः ।
विमुच्य बद्धं करुणो भगवान्कृष्णमब्रवीत् ॥३६॥

जब बलदेवजी ने श्रीकृष्णके पास आकर रुक्म की यह दशा देखी तो उन प्रभुने उसे इस भांतिसे मृत-प्राय: देखकर दया के साथ बन्धनसे छोड़कर श्रीकृष्णसे कहा कि ॥ ३६ ॥

असाध्विदं त्वया कृष्ण कृतमस्मज्जुगुप्सितम् ।
वपनं श्मश्रुकेशानां वैरूप्यं सुहृदो वधः ॥३७॥

हे कृष्ण! तुमने बड़ा बुरा कियाहै;इसमें हमारी निन्दा होगी, क्योंकि दाढ़ी-मूंछ मूंड़कर कुरूपकर देना अपने सम्बन्धीको मारनेके समानही है ॥३७॥

मैवास्मान्साध्व्यसूयेथा भ्रातुर्वैरूप्यचिन्तया ।
सुखदुःखदो न चान्योऽस्ति यतः स्वकृतभुक् पुमान्

फिर उन्होंने रुक्मिणीजीसे कहा कि हे साध्वी अपने भाई के विरूप होने की चिन्ता से इसका दोष हमको न देना, क्योंकि यह अपने किये हुए कर्मों का फल भोग रहा है, सुख-दुःखका देनेवाला (अपने कर्मके सिवा) कोई दूसरा नहीं है ॥ ३८॥

बन्धुर्वधार्हदोषोऽपि न बन्धोर्वधमर्हति ।
त्याज्यः स्वेनैव दोषेण हतः किं हन्यते पुनः॥३९॥

फिर श्रीकृष्णसे कहा कि यदि सम्बन्धी मारने योग्य अपराध करे तो भी दूसरे सम्बन्धीको उसे मारना न चाहिये, वरन् छोड़ देना चाहिये, क्यों कि जो स्वयं ही अपने अपराध से मरा हुआ है, उसे मारना ही क्या ? ॥३९॥

क्षत्रियाणामयं धर्मः प्रजापतिविनिर्मितः ।
भ्राताऽपि भ्रातरं हन्याद्येन घोरतमस्ततः ॥४०॥

रुक्मिणीजी से कहा कि—क्षत्रियों का यह धर्म ही ब्रह्मा ने बनाया है कि भाई-भाई को मार डाले; इसी से यह बड़ा ही घोर कहलाता है ॥ ४० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राज्यस्य भूमेर्वित्तस्य स्त्रियो मानस्य तेजसः ।
मानिनोऽन्यस्य वा हेतोः श्रीमदान्धाः क्षिपन्ति हि॥

श्रीकृष्ण से कहा कि-राज्य, पृथ्वी, धन, स्त्री, प्रतिष्ठा, तेज तथा और भी किसी प्रयोजनके लिये जो लक्ष्मी के मद से अन्धे एवं अभिमानी हैं, वे ही अपने सम्बन्धियों का अपमान करते हैं, हमलोगों को ऐसा न करना चाहिये। ४१॥

तवेयं विषमा बुद्धिः सर्वभूतेषु दुर्हृदाम् ।
यन्मन्यसे सदाऽभद्रं सुहृदां भद्रमज्ञवत् ॥४२॥

फिर रुक्मिणीजी से कहा कि तुम जो सब जीवों के शत्रुरूप अपने भाई का अज्ञानी की भांति से भला चाहती हो, यह तुम्हारी भूल है, क्योंकि इसके हित चाहने से दूसरे सम्बन्धी लोगों का अहित होगा॥ ४२ ॥

आत्ममोहो नृणामेष कल्पते देवमायया ।
सुहृद्दुर्हृदुदासीन इति देहात्ममानिनाम् ।४३॥

यह हमारा मित्र है यह शत्रु है और यह उदासीन, इस प्रकार देहाभिमानियों की बुद्धि केवल ईश्वर की माया द्वारा कल्पित अज्ञान है ॥४३॥

एक एव परो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ।
नानेव गृह्यते मूढैर्यथा ज्योतिर्यथा नभः ॥४४॥

यद्यपि सब प्राणियोंमें एकही शुद्धात्मा है फिर भी अज्ञानी पुरुष उसे अनेक रूपसे मानते हैं, जैसे जल-घट आदि में चन्द्र आदि की ज्योति या आकाश एक होकर भी अनेक रूपमें प्रतीत होताहै ॥

देह आद्यन्तवानेष द्रव्यप्राणगुणात्मकः ।
आत्मन्यविद्यया क्लृप्तः संसारयति देहिनम्॥४५॥

अध्यात्म, अधिदैवत्, अधिभूत स्वरूप, आदि अन्त वाला यह शरीर अविद्या के कारण आत्मामें कल्पित है, वही जीवोंको संसारमें भटकाताहै॥४५॥

नात्मनोऽन्येन संयोगो वियोगश्चासतः सति ।
तद्धेतुत्वात्तत्प्रसिद्धेर्दृग्रूपाभ्यां यथा रवेः ॥४६॥

हे सती ! कारण रूप आत्मा का न तो दूसरे असत् शरीर आदि के साथ संयोग है और न वियोगहै, जैसे चक्षु इन्द्रिय तथा रूप का प्रकाशक सूर्य है, वैसेही आत्मा देहका प्रकाशक है ॥४६॥

जन्मादयस्तु देहस्य विक्रिया नात्मनः क्वचित् ।
कलानामिव नैवेन्दोर्मतिर्ह्यस्य कुहूरिव ॥४७॥

जन्म-मरण आदि छः विकार देह के लिये हैं, आत्मा के लिये कभी नहीं हैं, जैसे घटने बढ़ने का विकार चन्द्रमामें नहीं उसकी कलाओं में है, चंद्रमा तो सदैव पूर्ण रूप है परन्तु जैसे अमावस के दिन कलाओं के नष्ट होजाने पर चन्द्रमा का नाश माना जाता है वैसे ही देह के नष्ट होने पर आत्मा का नाश कहा जाता है ॥ ४७ ॥

यथा शयान आत्मानं विषयान्फलमेव च ।
अनुभुङ्क्तेऽप्यसत्यर्थे तथाप्नोत्यबुधो भवम् ॥४८॥

जैसे सोया हुआ पुरुष स्वप्नमें झूठे पदार्थों का विषय-सुख अनुभव करता है, उसी प्रकार यह अज्ञानी पुरुष संसार को प्राप्त होता है ॥४८॥

तस्मादज्ञानजं शोकमात्मशोषविमोहनम् ।
तत्त्वज्ञानेन निर्हृत्य स्वस्था भव शुचिस्मिते॥४९॥

हे सुन्दर और मन्द हास्य वाली रुक्मिणी ! इसलिये अज्ञान से उत्पन्न हुए आत्मा को सुखाने वाले और मोह देने वाले, इस सोच को तत्वज्ञान द्वारा त्याग कर सावधान हो ॥४९॥

श्रीशुक उवाच

एवं भगवता तन्वी रामेण प्रतिबोधिता ।
वैमनस्यं परित्यज्य मनो बुद्ध्या समादधे ॥५०॥

श्रीशुकदेवजी बोले-भगवान् बलदेवजी ने इस प्रकार रुक्मिणीको समझाया तब उन्होंने उदासी छोड़कर बुद्धिके द्वारा मनको स्थिर किया ॥५०॥

प्राणावशेष उत्सृष्टो द्विड्भिर्हृतबलप्रभः ।
स्मरन्विरूपकरणं वितथात्ममनोरथः ।
चक्रे भोजकटं नाम निवासाय महत्पुरम् ॥५१॥
अहत्वा दुर्मतिं कृष्णमप्रत्यूह्य यवीयसीम् ।
कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामीत्युक्त्वा तत्रावसद्रुषा॥५२॥

केवल प्राण ही शेष रखने वाला, शत्रुओं द्वारा हृत-सैन्य, अभाव-हीन, विफल मनोरथ, मुंड़े हुए शिर वाला, कुबुद्धि रुक्म अपनी प्रतिज्ञा तथा कुरूपता का स्मरण करके "कि मैं विना रुक्मिणी को लौटाये और कृष्ण को मारे कुण्डनपुर न आऊँगा' वहाँ "भोजकट" नाम का पुर बसाकर रहनेलगा ॥

भगवान्भीष्मकसुतामेवं निर्जित्य भूमिपान् ।
पुरमानीय विधिवदुपयेमे कुरूद्वह ॥५३॥

हे कौरवों को आनन्द दाता राजन् ! भगवान्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीकृष्णने इस प्रकार शत्रुओं को जीतकर भीष्मक की कन्या रुक्मिणी को द्वारकापुरी में लाकर उन के साथ विधि पूर्वक विवाह किया ॥५३॥

तदा महोत्सवो नृणां यदुपुर्यां गृहे गृहे ।
अभूदनन्यभावानां कृष्णे यदुपतौ नृप ॥५४॥

हे राजन् ! उस समय द्वारका-वासियों के घर घरमें बड़ा ही उत्सव होनेलगा, क्योंकि यादवपति श्रीकृष्णमें उन लोगोंकी परम भक्ति थी ॥ ५४॥

नरा नार्यश्च मुदिताः प्रमृष्टमणिकुण्डलाः ।
पारिबर्हमुपाजह्रुर्वरयोश्चित्रवाससोः ॥५५॥

नगर के स्त्री-पुरुष उज्ज्वल मणियोंके कुण्डल पहने हुए, आनन्दित होकर, सुन्दर वस्त्र धारण कियेहुए, दूलह तथा दूलहिनके लिये सुन्दर वस्तुयें ला-ला कर भेंट करते थे ॥ ५५॥

सा वृष्णिपुर्युत्तभितेन्द्रकेतुभिर्विचित्रमाल्याम्बर रत्नतोरणैः । बभौ प्रतिद्वार्युपकल्पितमङ्गलैरापूर्ण-कुम्भाऽगुरुधूपदीपकैः ॥५६॥

उस समय वह द्वारकापुरी ऊंचे इन्द्रध्वज, विचित्र मालाओं, वस्त्र, रत्नों और तोरणों से शोभायमान थी, द्वारों पर मांगलिक सामग्री रक्खी हुई थी और जलसे भरे हुए घट, अगर, धूप और दीपों की शोभा बन रही थी ॥ ५६॥

सिक्तमार्गा मदच्युद्भिराहूतप्रेष्ठभूभुजाम् ।
गजैर्द्वार्षु परामृष्टरम्भापूगोपशोभिता ॥५७॥

मार्गों में छिड़काव होगया था और बुलायेहुए प्रिय राजाओं के मद झरते हुए हाथियोंने द्वार पर जो केले तथा सुपारी के वृक्ष ऊँचे किये थे उनकी शोभा छारही थी ॥५७॥

कुरुसृञ्जयकैकेयविदर्भयदुकुन्तयः ।
मिथो मुमुदिरे तस्मिन्संभ्रमात्परिधावताम् ॥५८॥

आनन्दमें फूलकर विचरते हुए द्वारकावासियों के बीचमें कुरु, सृञ्जय, कैकेय, विदर्भ, यदु और कुन्ति देश के राजा परस्पर आनन्द मनाते हुए फिर रहे थे ॥५८॥

रुक्मिण्या हरणं श्रुत्वा गीयमानं ततस्ततः ।
राजानो राजकन्याश्च बभूवुर्भृशविस्मिताः ॥५९॥

जहाँ-तहाँ रुक्मिणी-हरण के चरित्र सम्बन्धी गीत सुन कर राजा तथा राज-कन्यायें महान् आश्चर्य मान रही थीं ॥ ५९ ॥

द्वारकायामभूद्राजन्महामोदः पुरौकसाम् ।
रुक्मिण्या रमयोपेतं दृष्ट्वा कृष्णं श्रियः पतिम् ॥६०॥

हे राजन् ! लक्ष्मी-पति श्रीकृष्ण को श्री लक्ष्मी-रुक्मिणीजी के साथ देखकर द्वारकामें पुरवासियों को परम आनन्द हुआ ॥६०॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५४॥

पचपनवां अध्याय

(प्रद्युम्न-जन्म तथा शंबरासुर-वध)

श्रीशुक उवाच

कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग्रुद्रमन्युना ।
देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—वासुदेव भगवान् का अंश कामदेव पहले महादेवजीके क्रोधसे भस्म होगया था, वह फिरसे देह पानेके लिये उनके यहाँ आया॥

स एव जातो वैदर्भ्यां कृष्णवीर्यसमुद्भवः ।
प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतोऽनवमः पितुः ॥ २ ॥

वही कामदेव श्रीकृष्ण के वीर्य द्वारा रुक्मिणी से जन्म लेकर प्रद्युम्न नामसे विख्यात हुआ, जो अपने पिता श्रीकृष्ण से किसी बातमें कम न था ॥

तं शम्बरः कामरूपी हृत्वा तोकमनिर्दशम् ।
स विदित्वात्मनः शत्रुं प्रास्योदन्वत्यगाद्गृहम् ॥३॥

इच्छा पूर्वक रूपको धारण करनेवाला 'शंबर' नाम का दैत्य उसे अपना शत्रु जानकर उसे दस दिनकी आयुमें ही हरण करके और समुद्र में फेंक कर घर को चला गया ॥ ३ ॥

तं निर्जगार बलवान्मीनः सोऽप्यपरैः सह ।
वृतो जालेन महता गृहीतो मत्स्यजीविभिः ॥ ४ ॥

उस बालक को एक बलवान् मच्छ ने निगल लिया, सब मछलियोंके साथ उसे भी एक मछुलहारे धींवर ने जाल डालकर पकड़ लिया ॥४॥

तं शम्बराय कैवर्ता उपाजह्रुरुपायनम् ।
सूदा महानसं नीत्वाऽवध्यन्स्वधितिनाऽद्भुतम् ॥५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और उस बड़े मच्छ को लाकर धीवर ने शंबर के भेंट करदिया, रसोइये रसोई-घर में ले जाकर उस महान् मच्छ को चीरने लगे ॥ ५ ॥

दृष्ट्वा तदुदरे बालं मायावत्यै न्यवेदयन् ।
नारदोऽकथयत्सर्वं तस्याः शङ्कितचेतसः ।
बालस्य तत्वमुत्पत्तिं मत्स्योदरनिवेशनम् ॥ ६ ॥

उस मच्छ के पेट में बालक को देखकर, उसे मायावती को सौंप दिया, नारदजी ने उस शंकित चित्त वाली मायावती को सब वृत्तान्त बतलाकर समझाया कि यह बालरूप में तेरा पति कामदेव ही है, श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी के उदर से उत्पन्न हुआहै, इसे शंबर समुद्र में डाल आया था, वहाँ इसे मत्स्य ने निगल लिया था···आदि ॥६॥

सा च कामस्य वै पत्नी रतिर्नाम यशस्विनी ।
पत्युर्निदग्धदेहस्य देहोत्पत्तिं प्रतीक्षती ॥ ७॥

वह परम यशमती कामदेवकी स्त्री कि जिसका नाम 'रति' है, अपने भस्मीभूत देह वाले पति के पुनर्जन्म की प्रतीक्षा करती हुई वहाँ रहती थी॥७॥

निरूपिता शम्बरेण सा सूपौदनसाधने ।
कामदेवं शिशुं बुद्ध्वा चक्रे स्नेहं तदार्भके ॥ ८ ॥

उसे शंबरने दाल-भात पकाने के लिये अपने यहाँ रक्खाथा, वह उस बालकको कामदेव समझ कर बड़ा स्नेह करने लगी ॥८॥

नातिदीर्घेन कालेन स काष्णिं रूढयौवनः ।
जनयामास नारीणां वीक्षन्तीनां च विभ्रमम् ॥९॥

थोड़े ही दिनोंमें वह प्रद्युम्न तरुण होगये और अपनी दृष्टि मात्र ही से स्त्रियों के मनको मोहित करने लगे ॥९॥

सा तं पतिं पद्मदलायतेक्षणं प्रलम्बबाहुं नरलोकसुन्दरम् । सव्रीडहासोत्तभितभ्रुवेक्षती प्रीत्योपतस्थे रतिरङ्ग सौरतैः ॥१०॥

कमल-दल के समान नेत्र, विशाल बाहु और मनुष्य-लोक में सुन्दर पति प्रद्युम्न को लाज भरी मुसकान के साथ कटाक्ष पूर्वक देखकर वह मायावती प्रीति करके प्रसंग संबन्धी भाव रखकर सेवन करने लगी ॥१०॥

तामाह भगवान्काष्णिर्मातस्ते मतिरन्यथा ।
मातृभावमतिक्रम्य वर्तसे कामिनी यथा ॥११॥

तब भगवान् प्रद्युम्नने रतिसे कहा कि हे माता! आपका भाव बदल गया है, तुम मातृ-भाव को छोड़कर पत्नीकैसा आचरण करने लगी हो ॥११॥

रतिरुवाच

भवान्नारायणसुतः शम्बरेणाहृतो गृहात् ।
अहं तेऽधिकृता पत्नी रतिः कामो भवान्प्रभो॥१२॥

रति बोली–आप श्रीकृष्ण के पुत्र हैं, शंबरासुर आपको सूतिका के घरसे उठा लाया था, मैं आप की स्त्रीहूँ, मेरा नाम 'रति' है और आप कामदेवहैं।

एष त्वाऽनिर्दशं सिन्धावक्षिपच्छम्बरोऽसुरः ।
मत्स्योऽग्रसीत्तदुदरादिह प्राप्तो भवान्प्रभो॥१३॥

आप के जन्म से दस दिन के भीतर ही यह शंबर आपको लेकर समुद्र में फेंक कर अपने घर आगया था, वहाँ आपको मच्छने निगल लिया था हे प्रभु ! उसके पेट में से आप यहाँ आये हैं ॥१३॥

तमिमं जहि दुर्धर्षं दुर्जयं शत्रुमात्मनः ।
मायाशतविदं त्वं च मायाभिर्मोहनादिभिः॥१४॥

यह आपका शत्रु सैकड़ों प्रकारकी मायाजानता है इसलिये यह असह्य और दुर्जय है, इसे आप मोहन आदि माया करके मारिये ॥१४॥

परिशोचति ते माता कुररीव गतप्रजा ।
पुत्रस्नेहाकुला दीना विवत्सा गौरिवातुरा ॥१५॥

जैसे टिटहरी के बच्चे चले जाने पर वह शोच करती है और बिना बछड़े के गौ आतुर होजाती है, वैसे ही तुम्हारी माता पुत्र-स्नेह से आतुर तथा दीन होकर सोच कर रही है ॥१५॥

प्रभाष्यैवं ददौ विद्यां प्रद्युम्नाय महात्मने ।
मायावती महामायां सर्वमायाविनाशिनीम्॥१६॥

श्रीशुकदेवजी बोले–इस प्रकार कहकर मायावती ने महात्मा प्रद्युम्न को समस्त मायाओं को विनाश करनेवाली महामाया नामकी विद्या सिखाई।

स च शम्बरमभ्येत्य संयुगाय समाह्वयत् ।
अविषह्यैस्तमाक्षेपैः क्षिपन्सञ्जनयन्कलिम् ॥१७॥

प्रद्युम्न ने शंबरासुर के पास आकर असह्य तिरस्कारके वचनों द्वारा परस्पर कलह उत्पन्न कर के संग्राम करने के लिये उसे उत्साहित किया॥१७॥

सोऽधिक्षिप्तो दुर्वचोभिः पदाहत इवोरगः ।
निश्चक्राम गदापाणिरमर्षात्ताम्रलोचनः ॥१८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दुर्वचनों द्वारा तिरस्कृत वह शंबरासुर ठोकर खाये हुए काले नागकी भांति क्रोधित दशामें गदा लेकर बाहर निकला, उस समय उसके नेत्र क्रोध के कारण तांबे की नाईं लाल होरहे थे ॥१८॥

गदामाविध्य तरसा प्रद्युम्नाय महात्मने ।
प्रक्षिप्य व्यनदन्नादं वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ॥१९॥

उस दैत्य ने गदा घुमाते हुए प्रद्युम्न पर प्रहार करके बज्रपातके समान घोर नाद किया ॥१९॥

तामापतन्तीं भगवान्प्रद्युम्नो गदया गदाम् ।
अपास्य शत्रवे क्रुद्धः प्राहिणोत्स्वगदां नृप॥२०॥

हे राजन् ! भगवान् प्रद्युम्न ने उस आती हुई गदा को अपनी गदा से रोक कर, क्रोध पूर्वक अपनी गदा शत्रु पर चलाई ॥२०॥

स च मायां समाश्रित्य दैतेयीं मयदर्शिताम् ।
मुमुचेऽस्त्रमयं वर्ष काष्णौं वैहायसोऽसुरः ॥२१॥

तब शंबरासुर 'मय' दैत्य की बतलाई हुई आसुरी माया का आश्रय लेकर आकाशमें जाकर प्रद्युम्न पर अस्त्र-वर्षा करने लगा ॥२१॥

बाध्यमानोऽस्त्रवर्षेण रौक्मिणेयो महारथः ।
सत्त्वात्मिकां महाविद्यां सर्वमायोपमर्दिनीम्॥२२॥

महारथी प्रद्युम्न ने अस्त्र-वर्षा से पीड़ित होकर सब मायाओं का नाश करने वाली सत्वमयी महा माया का प्रयोग किया ॥२२॥

ततो गौह्यकगान्धर्व पैशाचोरगराक्षसीः ।
प्रायुङ्क्त शतशो दैत्यः कार्ष्णिवर्ध्यमयत्स ताः २३

तब उस दैत्य ने गुह्यकों, गन्धर्वों, पिशाचों, उरगों और राक्षसों की अनेक मायाओं का प्रयोग किया, परन्तु प्रद्युम्नने उन सबको नष्ट कर दिया ॥

निशातमसिमुद्यम्य सकिरीटं सकुण्डलम् ।
शम्बरस्य शिरः कायात्ताम्रश्मश्वोजसाऽहरत्॥२४॥

फिर तीक्ष्ण तलवार उठाकर पराक्रम के साथ शंबरासुर के बाल-दाढ़ी मूंछ वाले सिर को किरीट और कुण्डलों सहित धड़से अलग करदिया॥२४॥

आकीर्यमाणो दिविजैः स्तुवद्भिः कुसुमोत्करैः ।
भार्ययाम्बरचारिण्या पुरीं नीतो विहायसा॥२५॥

तब देवताओं ने स्तुति की और फूल बरसाये और आकाश मार्ग में चलने वाली स्त्री (रति) ने प्रद्युम्नजी को आकाश-मार्ग ही से द्वारका पुरी में पहुंचा दिया ॥२५॥

अन्तःपुरवरं राजँल्ललनाशतसंकुलम् ।
विवेश पत्न्या गगनाद्विद्युतेव बलाहकः ॥२६॥

हे राजन् ! अनेक स्त्रियों से भरे-पूरे उस श्रेष्ठ अन्तःपुरमें आकाश-मार्गसे स्त्रीके साथ उन प्रद्युम्न ने इस प्रकार प्रवेश किया जैसे बिजली के साथ बादल प्रवेश करता है ॥ २६ ॥

तं दृष्ट्वा जलदश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।
प्रलम्बबाहुं ताम्राक्षं सुस्मितं रुचिराननम् ॥२७॥
स्वलंकृतमुखाम्भोजं नीलवक्रालकालिभिः ।
कृष्णं मत्वा स्त्रियो हीता निलिल्युस्तत्र ह॥२८॥

जिनका मेघ के समान श्याम वर्ण, पीतांबर पहने, विशाल बाहु, अरुण नेत्र, सुन्दर हास्य और मनोहर मुख कमल नीली और घुंघुराली अलकावली रूपी भौंरों से शोभायमान है-ऐसे उन प्रद्युम्न को देखकर अन्तःपुर की स्त्रियाँ यह समझीं कि श्रीकृष्णहैं, अस्तु वे लज्जा करके जहाँ-तहाँ छिपगईं।

अवधार्य शनैरीषद्वैलक्षण्येन योषितः ।
उपजग्मुः प्रमुदिताः सस्त्रीरत्नं सुविस्मिताः॥२९॥

परन्तु उनमें कुछ विलक्षणता देखकर उन स्त्रियों को धीरे-धीरे यह निश्चय होगया कि यह श्रीकृष्ण नहीं हैं, इसलिये वे प्रसन्न होकर आश्चर्य मानती हुईं स्त्रियोंमें शिरोमणि रति सहित प्रद्युम्न के पास आईं ॥२९॥

अथ तत्रासितापाङ्गी वैदर्भी वल्गुभाषिणी ।
अस्मरत्स्वसुतं नष्टं स्नेहस्नुतपयोधरा ॥३०॥

तदनन्तर जिनके स्नेह के कारण स्तनोंसे दूध झड़ रहाहै, वे मीठे वचन बोलने वाली तथा श्याम कटाक्ष वाली उन रुक्मिणीजीको अपने नष्टहुए पुत्र की याद आ गई ॥३०॥

को न्वयं नरवैदूर्यः कस्य वा कमलेक्षणः ।
धृतः कया वा जठरे केयं लब्धा त्वनेन वा ॥३१॥

(वे अपने मनमें विचार करने लगीं कि) यह कमल के समान नेत्रों वाला पुरुष श्रेष्ठ कौन है ? किसकाहै. इसे किसने गर्भमें धारण कियाहै ? इसे यह कौनसी स्त्री मिली है ? ॥३१॥

मम चाप्यात्मजो नष्टो नीतो यः सूतिकागृहात् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एतत्तुल्यवयोरूपो यदि जीवति कुत्रचित् ॥३२॥

मेरा भी पुत्र नष्ट होगयाहै, जिसे कोई सूतिका गृह में से हर लेगया था, यदि वह कहीं जीवित होगा तो उसकी भी इतनीही अवस्था होगी और ऐसा ही रूप होगा ॥ ३२ ॥

कथं त्वनेन संप्राप्तं सारूप्यं शार्ङ्गधन्वनः ।
आकृत्यावयवैर्गत्या स्वरहासावलोकनैः ॥३३॥

इसने आकृति, अङ्ग, चाल, स्वर, हास्य और चितवनमें श्रीकृष्णही के समान रूप कैसे पालिया?

स एव वा भवेन्नूनं यो मे गर्भे धृतोऽर्भकः ।
अमुष्मिन्प्रीतिरधिका वामः स्फुरति मे भुजः॥३४॥

कदाचित् यह वही बालक तो नहीं है कि जिसे मैंने गर्भमें धारण किया था, क्योंकि इसके प्रति मेरी विशेष प्रीति बढ़ रही है और मेरी बाईं बाँह भी फड़क रही है ॥३३॥

एवं मीमांसमानायां वैदर्भ्यां देवकीसुतः ।
देवक्याऽऽनकदुन्दुभ्यामुत्तमश्लोक आगमत् ॥३५॥

रुक्मिणी इस प्रकार विचार कर रही थीं कि देवकी और वसुदेवजीके साथ उत्तम यशस्वी भगवान् श्रीकृष्णजी आ पहुंचे ॥३५॥

विज्ञातार्थोऽपि भगवांस्तूष्णीमासीज्जनार्दनः ।
नारदोऽकथयत्सर्वं शम्बराहरणादिकम् ॥३६॥

यद्यपि भगवान् को सब विदित था, फिर भी उन्होंने कुछ न कहा, तब नारदजी ने उनका शंबर द्वारा हरण आदि का सब हाल कह सुनाया ॥३६॥

तच्छ्रुत्वा महदाश्चर्यं कृष्णान्तःपुरयोषितः ।
अभ्यनन्दन्बहून्शब्दान्नष्टं मृतमिवागतम् ॥३७॥

यह महान् अद्भुत बात सुनकर भगवान् के अन्तःपुर वाली स्त्रियों ने उन प्रद्युम्नजीका सत्कार किया जो बहुत वर्षों से नष्ट हुए इस प्रकार लौट कर आये थे, जैसे कोई मृतक पुरुष लौट कर आया हो ॥३७॥

देवकी वसुदेवश्च कृष्णरामौ तथा स्त्रियः ।
दम्पती तौ परिष्वज्य रुक्मिणी च ययुर्मुदम्॥३८॥

देवकी, वसुदेव, श्रीराम-कृष्ण स्त्रियाँ और रुक्मिणीजी उन दम्पतिसे मिलकर आनंदितहुए ॥

नष्टं प्रद्युम्नमायातमाकर्ण्य द्वारकौकसः ।
अहो मृत इवायातो बालो दिष्ट्येति हाऽब्रुवन३९॥

खोये हुए प्रद्युम्नको लौटकर आया हुआ सुन कर द्वारकावासी कहनेलगे कि यह बड़ाही अच्छा हुआ जो मृतक पुरुष की भांति यह बालक लौट कर आगया है ॥ ३९ ॥

यं वै मुहुः पितृसरूपनिजेशभावास्तन्मातरो यदभजन्नहरूढभावाः । चित्रं न तत्खलु रमास्पद-बिम्बबिम्बे कामे स्मरेऽक्षिविषये किमुतान्यनार्यः॥

श्रीकृष्ण के समान प्रद्युम्न का रूप देखकर उनमें बार-बार अपने पति (श्रीकृष्ण स्वरूप) की भावना होने से उनकी मातायें रुक्मिणी आदि भी एकान्त में विशेष प्रेम लड़ाकर भ्रम वशात् उनका सेवन करने लगीं, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि लक्ष्मी-निवास श्रीकृष्ण के पुत्र कामदेव का स्मरण करने से ही जब मन चञ्चल हो उठताहै तब साक्षात् कामदेव के दर्शन होनेपर ऐसा होना कोई बड़ी बात नहीं, फिर जब मातायें तक भ्रान्त होगईं तब दूसरी स्त्रियोंकी तो बातही क्या है ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः॥५५॥

छप्पनवां अध्याय

(स्यमन्तक-हरण)

श्रीशुक उवाच

सत्राजितः स्वतनयां कृष्णाय कृतकिल्बिषः ।
स्यमन्तकेन मणिना स्वयमुद्यम्य दत्तवान् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-सत्राजित् ने भगवान् का अपराध किया था इसलिये उसे स्यमन्तक मणि सहित अपनी कन्या स्वयं ही उद्योग करके श्रीकृष्ण जी को देनी पड़ी ॥१॥

राजोवाच

सत्राजितः किमकरोद्ब्रह्मन्कृष्णस्य किल्बिषम् ।
स्यमन्तकः कुतस्तस्य कस्मादत्ता सुता हरेः ॥ २ ॥

परीक्षित बोले-हे ब्रह्मन्! सत्राजित्ने भगवान् का क्या अपराध कियाथा? उसके पास स्यमंतक मणि कहाँ से आई थी और उसने श्रीकृष्ण को कन्या क्यों दी? ॥२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीशुक उवाच

आसीत्सत्राजितः सूर्यो भक्तस्य परमः सखा।
प्रीतस्तस्मै मणिं प्रादात्सूर्यस्तुष्टः स्यमन्तकम् ॥३॥

श्रीशुकदेवजी बोले-सत्राजित् सूर्य नारायण का परम भक्त था, यद्यपि सूर्यदेव उसके स्वामीथे फिरभी वे उसे मित्र मानते थे, उन्होंने स्नेहवशात् उसे स्यमन्तक मणि दी थी ॥३

स तं बिभ्रन्मणिं कण्ठे भ्राजमानो यथा रविः।
प्रविष्टो द्वारकां राजंस्तेजसा नोपलक्षितः ॥ ४ ॥

हे राजन्! वह सत्राजित् कंठ में उस मणिको धारण किये हुए सूर्य के समान प्रकाश करताहुआ द्वारका में प्रविष्ट हुआ, उस तेज के कारण उसे किसी ने पहिचान न पाया ॥४॥

तं विलोक्य जना दूरात्तेजसा मुष्टदृष्टयः।
दीव्यतेऽक्षैर्भगवते शशंसुः सूर्यशङ्किताः ॥५॥

लोग उसे दूर से देखकर तेजके कारण चकाचौंध होकर चौपड़ खेलतेहुए भगवान के पास आ कर सूर्यके आगमनकी ही शंका करके कहनेलगे कि।

नारायण नमस्तेऽस्तु शङ्खचक्रगदाधर।
दामोदराराविन्दाक्ष गोविन्द यदुनन्दन ॥ ६ ॥

हे शंख,चक्र और गदा धारण-कर्त्ता नारायण! हे दामोदर! हे कमल नयन! हे गोविंद! हे यदुनन्दन! हम आपको नमस्कार करते हैं ॥६॥

एष आया ति सविता त्वां दिदृक्षुर्जगत्पते।
मुष्णन्नभस्तिचक्रेण नृणां चक्षूंषि तिग्मगुः॥ ७॥

हे जगन्नाथ! यह प्रचंड किरणों वाले सूर्य किरण-समूह के द्वारा मनुष्य के नेत्रों को हरण करते हुए आपके दर्शनों की अभिलाषा से इधर आ रहे हैं ॥७॥

नन्वन्विच्छन्ति ते मार्गं त्रिलोक्यां विबुधर्षभाः।
ज्ञात्वाद्य गूढं यदुषु द्रष्टुं त्वां यात्यजः प्रभो ॥ ८ ॥

हे प्रभु! त्रिलोकी में जो श्रेष्ठ देवता हैं वे भी आपके मार्गको ढूंढते हैं, (देखिये) अभी आपको यादवोंमें गुप्त रीतिसे रहता हुआ जानकर सूर्यदेव भी आपके दर्शनों के लिये आरहे हैं ॥८॥

श्रीशुक उवाच

निशम्य बालवचनं प्रहस्याम्बुज लोचनः।
प्राह नासौरविर्देवः सत्राजिन्मणिना ज्वलन्॥ ९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-कमल नयन भगवान् ने उन अज्ञानी पुरुषोंके वचन सुनकर हँसतेहुए कहा कि यह सूर्य नहीं वरन सत्राजित यादव है, मणि के कारण ऐसा प्रकाश हो रहा है ॥९॥

सत्राजित्स्वगृहं श्रीमत्कृतकौतुकमङ्गलम्।
प्रविश्य देवसदने मणिं विप्रैर्न्यवेशयत् ॥१०॥

फिर सत्राजित ने अपने घरमें उत्सव के लिये मांगलिक कर्म करवाकर प्रवेश किया और ब्राह्मणों द्वारा उस मणिको देव-मंदिरमें स्थापित करवाया॥

दिने दिने स्वर्णभारानष्टौ स सृजति प्रभो।
दुर्भिक्षमार्यरिष्टानि सर्पाधिव्याधयोऽशुभाः।
न सन्ति मायिनस्तत्र यत्रास्तेऽभ्यर्चितो मणिः११

हे राजन्! वह मणि प्रतिदिन आठ भार सोना देतीथी और जहाँ वह मणि रहतीथी वहाँ अकाल महामारी, अकल्याण, सर्प, आधि-व्याधि, अन्य अशुभ तथा मायावी लोग न रह सकते थे ॥११॥

स याचितो मणिः क्वापि यदुराजाय शौरिणा।
नैवार्थकामुकः प्रादाद्याच्ञाभङ्गमतर्कयन् ॥१२॥

एक बार यादवों के राजा उग्रसेन के लिये श्री कृष्ण ने सत्राजित से यह मणि मांगी, परन्तु धनके लोभी सत्राजित ने भगवान् की याचना भंग होने का विचार न करके वह मणि न दी ॥१२॥

तमेकदा मणिं कण्ठे प्रतिमुच्य महाप्रभम्।
प्रसेनो हयमारुह्य मृगयां व्यचरद्वने ॥१३॥

एकबार सत्राजित का छोटा भाई प्रसेन उस परम प्रकाशमयी मणि को कंठमें बाँधकर शिकार खेलनेके लिये घोड़ेपर चढ़कर बनमें गया ॥ १३ ॥

प्रसेनं सहयं हत्वा मणिमाच्छिद्य केसरी।
गिरिं विशञ्जाम्बवता निहतो मणिमिच्छता॥१४॥

वहाँ एक सिंह घोड़े सहित प्रसेनको मार कर उस मणिको लिये हुए पहाड़ में जाने लगा, इतने में मणि की लालसा करते हुए जाम्बवन्त नामक रीछ ने उसे भी मार डाला ॥१४॥

सोऽपि चक्रे कुमारस्य मणिं क्रीडनकं बिले।
अपश्यन्भ्रातरं भ्राता सत्राजित्पर्यतप्यत ॥१५॥

जांबवन्तने भी अपनी गुफामें जाकर उस मणि को अपने बालक के लिये खिलौना बनाडाला, यहाँ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाई को आया हुआ न देखकर सत्राजित शोच करने लगा ॥१५॥

प्रायः कृष्णेन निहतो मणिग्रीवो वनं गतः ।
भ्राता ममेति तच्छ्रुत्वा कर्णे कर्णेऽजपञ्जनाः१६॥

कि जहाँ तक संभव है वहाँ तक मेरे भाई को कृष्ण ही ने मारा होगा, क्योंकि वह मणि पहिन कर बनमें गया था, यह बात सुनकर लोग आपस में काना-फूंसी करने लगे ॥१६॥

भगवांस्तदुपश्रुत्य दुर्यशो लिप्तमात्मनि ।
मार्ष्टुं प्रसेनपदवीमन्वपद्यत नागरैः ॥१७॥

भगवान् अपने को वह कलंक लगा हुआ सुन कर नगर के लोगों को साथ लेकर, प्रसेन का पता लगाने के लिये चले ॥१७॥

हतं प्रसेनमश्वं च वीक्ष्य केसरिणा वने ।
तं चाद्रिपृष्ठे निहतमृक्षेण ददृशुर्जनाः ॥१८॥

उन्होंने बनमें सिंहके द्वारा मरे हुए प्रसेन तथा उसके घोड़े को देखा और उस सिंह को भी पर्वत के ऊपर रीछके द्वारा मरा हुआ देखा ॥१८॥

ऋक्षराजबिलं भीममन्धेन तमसा वृतम् ।
एको विवेश भगवानवस्थाप्य बहिः प्रजाः ॥१९॥

उस रीछोंके राजाकी गुफा बड़ी ही भयावनी और घोर अन्धकारमयी थी, उसे देखकर भगवान् प्रजावर्ग को बाहर ही खड़ा रखकर आप अकेले ही अन्दर धँसे ॥१९॥

तत्र दृष्ट्वा मणिं श्रेष्ठं बालक्रीडनकं कृतम् ।
हर्तुं कृतमतिस्तस्मिन्नवतस्थेऽर्भकान्तिके ॥२०॥

वहाँ बालक के लिये खिलौना बनी हुई मणि को देखकर उसे हरण करने का विचार करके वे बालक के पास खड़े होगये ॥२०॥

तमपूर्वं नरं दृष्ट्वा धात्री चुक्रोश भीतवत् ।
तच्छ्रुत्वाऽभ्यद्रवत्क्रुद्धो जाम्बवान्बलिनां वरः॥२१

उस अपूर्व पुरुष को देखकर उस बालक की दाई भयभीत की भांति चिल्ला उठी, तब बलवानों में श्रेष्ठ जांववन्त वह पुकार सुनकर क्रोध पूर्वक भगवान् के सामने दौड़ता हुआ आया ॥२१॥

स वै भगवता तेन युयुधे स्वामिनात्मनः ।
पुरुषं प्राकृतं मत्वा कुपितो नानुभाववित् ॥२२॥

वह अपने स्वामी भगवान्का प्रभाव न जानता था, इसलिये उन्हें साधारण मनुष्य समझ कर, क्रोध पूर्वक उनसे युद्ध करने लगा ॥२२॥

द्वन्द्वयुद्धं सुतुमुलमुभयोर्विजिगीषतोः ।
आयुधाश्मद्रुमैर्दोर्भिः क्रव्यार्थे श्येनयोरिव ॥२३॥

उन दोनों विजय की इच्छा वालों में आयुध, पाषाण, वृक्ष और भुजाओंसे महान घोर द्वंद्व-युद्ध इस प्रकार हुआ, जैसे माँसके लोथड़े के लिये दो बाज पक्षी लड़ते हैं ॥२३॥

आसीत्तदष्टाविंशाहमितरेतरमुष्टिभिः ।
वज्रनिष्पेषपरुषैरविश्रममहर्निशम् ॥२४॥

उन दोनों में अट्ठाईस दिन तक वज्रघात के समान कठोर मुट्ठियों द्वारा खेद-रहित रात-दिन लगातार युद्ध होता रहा ॥२४॥

कृष्णमुष्टिविनिष्पातनिष्पिष्टाङ्गोरुबन्धनः ।
क्षीणसत्त्वः स्विन्नगात्रस्तमाहातीव विस्मितः २५॥

जब श्रीकृष्णके मुष्टि प्रहारसे रिक्षपतिके अङ्गों के सब बन्धन ढीले पड़गये और वह पराक्रमरहित होगया तथा उसकी देह से पसीना छूट गया, तब उसने अत्यन्त आश्चर्य के साथ उनसे कहा कि ॥

जाने त्वां सर्वभूतानां प्राण ओजः सहोबलम् ।
विष्णुं पुराणपुरुषं प्रभविष्णुमधीश्वरम् ॥२६॥

मैं आपको जानताहूँ, आप जीव-मात्रके प्राणों में इन्द्रिय, हृदय तथा देह के बलरूप, पुराण पुरुष सर्वेश्वर और सबको वशमें करने वाले विष्णु रूप हो ॥ २६ ॥

त्वं हि विश्वसृजां स्रष्टा सृज्यानामपि यच्च सत् ।
कालः कलयतामीशः पर आत्मा तथात्मनाम् २७

जगत् के उत्पन्न करने वाले ब्रह्मा आदि के भी आप निमित्त कारण हैं और उत्पन्न होने के योग्य कार्यों के उपादान कारण हैं, सबको प्रेरणा करने वालों के भी ईश्वर, काल रूप तथा जीवों के शुद्ध आत्म रूप आप ही हैं ॥२७॥

यस्येषदुत्कलितरोषकटाक्षमोक्षैर्वर्त्मादिशत्क्षुभितनक्रतिमिङ्गिलोऽब्धिः । सेतुः कृतः स्वयश उज्ज्वलिता च लङ्का रक्षःशिरांसि भुविपेतुरिषुक्षतानि ॥२८॥

जिनके किंचित् उद्दीपित क्रोध भरे कटाक्षपात

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से समुद्र के नक्र और मकर क्षोभित होगये, तब समुद्र ने मार्ग दे दिया, जिन्होंने समुद्र में अपने यश रूपी सेतुको बाँधा, जिन्होंने लंकाको जलाकर बाणों के द्वारा राक्षस रावण के मस्तक काट कर पृथ्वी पर गिराये, वे मेरे इष्टदेव श्रीरामचन्द्रजी आप हैं ॥ २८ ॥

इति विज्ञातविज्ञानमृक्षराजानमच्युतः ।
व्याजहार महाराज भगवान् देवकीसुतः ॥२९॥
अभिमृश्यारविन्दाक्षः पाणिना शंकरेण तम् ।
कृपया परया भक्तं प्रेमगम्भीरया गिरा ॥३०॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! जब रिक्ष-पति को इस प्रकार ज्ञान प्राप्त होगया, तब कमल नयन देवकीनन्दन भगवान् ने परम दया के साथ अपना सुखकारी हाथ उस भक्त के शरीर पर फेरा और प्रेम-सहित गंभीर वाणी से कहा कि ॥२९॥३०॥

मणिहेतोरिह प्राप्ता वयमृक्षपते बिलम् ।
मिथ्याऽभिशापं प्रमृजन्नात्मनो मणिनामुना॥३१॥

हे रिक्षनायक ! हम यहाँ गुफामें मणिके लिये आये हैं, क्योंकि हमपर जो मिथ्या कलंक आया है वह इसके द्वारा दूर किया जायगा ॥३१॥

इत्युक्तः स्वां दुहितरं कन्यां जाम्बवतीं मुदा ।
अर्हणार्थं स मणिना कृष्णायोपजहार ह ॥३२॥

यह वचन सुनते ही जांववान् ने अपनी कन्या मणि सहित आनन्द पर्वक पूजा करने के लिये श्रीकृष्ण को भेंट की ॥ ३२ ॥

अदृष्ट्वा निर्गमं शौरेः प्रविष्टस्य बिलं जनाः ।
प्रतीक्ष्य द्वादशाहानि दुःखिताः स्वपुरं ययुः॥३३॥

जो लोग साथ गयेथे वे भगवान्को गुफामें से निकलता हुआ न देखकर, बारह दिन तक प्रतीक्षा कर चुकनेपर दुःखी होते हुए द्वारका को लौटआये ॥

निशम्य देवकी देवी रुक्मिण्यानकदुन्दुभिः ।
सुहृदो ज्ञातयोऽशोचन्बिलात्कृष्णमनिर्गतम्॥३४॥

रुक्मिणी देवी. देवकी, वसुदेवजी, बंधु और जाति वाले लोग श्रीकृष्ण को गुफा में से बाहर न आया हुआ सुनकर शोच करने लगे ॥३४॥

सत्राजितं शपन्तस्ते दुःखिता द्वारकौकसः ।
उपतस्थुर्महामायां दुर्गां कृष्णोपलब्धये ॥३५॥

वे द्वारकावासी दुःखी होकर, सत्राजित को गालियां देते हुए श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिए महामाया चंद्रभागा नामकी देवीका अनुष्ठान करनेलगे ।

तेषां तु देव्युपस्थानात्प्रत्यादिष्टाशिषा सह ।
प्रादुर्बभूव सिद्धार्थः सदारो हर्षयन्हरिः ॥३६॥

पूजन करने से ज्योंही देवी ने वरदान दिया, कि तुम लोग श्रीकृष्ण को देखोगे, त्योंही अपना अभीष्ट सिद्ध करके पत्नी को साथ लिये हुए प्रभु श्रीकृष्ण आनन्द देते हुए प्रकट हुए ॥३६॥

उपलभ्य हृषीकेशं मृत्वा पुनरिवागतम् ।
सह पत्न्या मणिग्रीवं सर्वे जातमहोत्सवाः ॥३७॥

मरने के पश्चात् लौटकर आये हुए की नाईं मणि धारण किये तथा स्त्रीको साथ लिये हुए श्री कृष्णजीको पाकर सब लोग बड़े आनन्दित हुए३७॥

सत्राजितं समाहूय सभायां राजसन्निधौ ।
प्राप्तिं चाख्याय भगवान्मणिं तस्मै न्यवेदयत्३८॥

श्रीकृष्णजी ने सत्राजितको राजाके पास सभा में बुलाकर मणि मिलने के समाचार सुनाकर उसे वह मणि दे दी ॥३८॥

स चातिव्रीडितो रत्नं गृहीत्वाऽवाङ्मुखस्ततः ।
अनुतप्यमानो भवनमगमत्स्वेन पाप्मना ॥३९॥

तब वह सत्राजित अत्यन्त लज्जित होकर मणि ले, नीचा मुख करके अपने अपराध पर पश्चाताप करता हुआ घर आया ॥३९॥

सोऽनुध्यायंस्तदेवाघं बलवद्विग्रहाकुलः ।
कथं मृजाम्यात्मरजः प्रसीदेद्वाऽच्युतः कथम्॥४०॥

बलवान् श्रीकृष्णके साथ विरोध होनेके कारण वह विकल सत्राजित अपने उसी अपराधका चिंतवन करने लगा कि-अब मैं अपने अपराध को कैसे दूर करूँ ? भगवान् मुझपर कैसे प्रसन्न हों ? ॥४०॥

किं कृत्वा साधु मह्यं स्यान्न शपेद्वा जनोयथा ।
अदीर्घदर्शनं क्षुद्रं मूढं द्रविणलोलुपम् ॥४१॥

क्या उपाय करने पर मेरा कल्याण होगा कि जिससे मुझ अदूरदर्शी, नीच, मूर्ख और धन के लोभी को लोग गालियाँ न दें ? ॥४१॥

दास्ये दुहितरं तस्मै स्त्रीरत्नं रत्नमेव च ।
उपायोऽयं समीचीनस्तस्य शान्तिर्न चान्यथा॥४२॥

मैं उन्हें स्त्री रत्नरूप अपनी कन्या और मणि ये दोनों दे दूँगा, यही सबसे अच्छा उपाय है, अन्यथा मुझे शान्ति न होगी ॥४२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एवं व्यवसितो बुद्ध्या सत्राजित्स्वसुतां शुभाम्।
मणिं च स्वयमुद्यम्य कृष्णायोपजहार ह ॥४३॥

इस प्रकार सत्राजित ने अपनी बुद्धिसे निश्चय करके अपनी सुन्दर कन्या और मणि ये दोनों स्वयं ही उपाय करके श्रीकृष्ण को अर्पण करदीं ॥४३॥

तां सत्यभामां भगवानुपयेमे यथाविधि।
बहुभिर्याचितां शीलरूपौदार्यगुणान्विताम् ॥४४॥

रूप, उदारता आदि गुणमयी उस सत्यभामा का भगवान् ने विधि-पूर्वक पाणिग्रहण किया जिस को कृतवर्मा आदि कई पुरुष पहलेही मांगचुके थे॥

भगवानाह न मणिं प्रतीच्छामो वयं नृप।
तवास्तां देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः ॥४५॥

हे राजन्! फिर भगवान्ने सत्राजित से कहा कि हम मणि न लेंगे, तुम सूर्यके भक्तहो, इसलिये यह तुम्हारे ही पास रहनी चाहिये ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

सत्तावनवां अध्याय

(स्यमन्तकोपाख्यान)

श्रीशुक उवाच

विज्ञातार्थोऽपि गोविन्दो दग्धानाकर्ण्य पाण्डवान्।
कुन्तीं च कुल्यकरणे सहरामो ययौ कुरून् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-(कौरवों ने पाण्डवों को लाक्षागृहमें जलानेका यत्न किया था परन्तु) पांडव एक सुरङ्ग के द्वारा उस लाक्षा गृह से निकल गये यद्यपि इस बातको श्रीकृष्णजी जानते थे, फिर भी कुन्ती तथा पाण्डवों के जलने की खबर सुनकर कुलोचित व्यवहार करने के लिये वे बलदेवजी को साथ लेकर कुरु देश गये॥ १ ॥

भीष्मं कृपं सविदुरं गान्धारीं द्रोणमेव च।
तुल्यदुःखौ च संगम्य हा कष्टमिति होचतुः ॥ २ ॥

भीष्म, कृपाचार्य, विदुर, गान्धारी और द्रोण से मिलकर, सहानुभूति प्रकट करतेहुए दोनों भाई कहने लगे कि हाय! बड़ा ही खेद है ॥२॥

लब्ध्वैतदन्तरं राजन् शतधन्वानमूचतुः।
अक्रूरकृतवर्माणौ मणिः कस्मान्न गृह्यते ॥ ३ ॥

हे राजन्! इस अन्तर को पाकर अक्रूर और कृतवर्मा ने शतधन्वा से कहा कि तुम मणि क्यों नहीं ले लेते? ॥३॥

योऽस्मभ्यं सम्मतिं श्रुत्य कन्यारत्नं विगर्ह्य नः।
कृष्णायादान्न सत्राजित्कस्माद् भ्रातरमन्वियात् ४

जिस सत्राजित ने अपनी कन्या-रत्न देने का वचन करके फिर अनादर करते हुए उसे श्रीकृष्ण के साथ विवाह दिया, वह अपने भाई के साथ ही क्यों न जाय? ॥४॥

एवं भिन्नमतिस्ताभ्यां सत्राजितमसत्तमः।
शयानमवधील्लोभात्स पापः क्षीणजीवितः ॥ ५ ॥

जब उसे उन दोनों ने इस प्रकार बहकाया, तब उस नीच पापीने कि जिसकी मृत्यु निकट आ चुकी थी-लोभ में आकर सोते हुए सत्राजित को मार डाला ॥५॥

स्त्रीणां विक्रोशमानानां क्रन्दन्तीनामनाथवत्।
हत्वा पशून् सौनिकवन्मणिमादाय जग्मिवान्॥६॥

यद्यपि सत्राजित के घर की स्त्रियाँ अनाथ की तरह से विलाप कररही थीं, परन्तु जैसे क़साई पशुओं को मारता है, वैसे ही शतधन्वा सत्राजित को मारकर और मणि लेकर चला गया ॥६॥

सत्यभामा च पितरं हतं वीक्ष्य शुचार्पिता।
व्यलपत्तात तातेति हा हतास्मीति मुह्यती ॥ ७ ॥

अपने पिता को मरा हुआ देखकर सत्यभामा सोच करती हुई-"हाय! मैं मरी" इस भांति कह कर मूर्छित होतीहुई-'हा तात! हा तात!' चिल्लाती हुई विलाप करने लगी ॥७॥

तैलद्रोण्यां मृतं प्रास्य जगाम गजसाह्वयम्।
कृष्णाय विदितार्थाय तप्ताऽऽचख्यौ पितुर्वधम्॥८॥

मृतक सत्राजित को तैल के कड़ाहे में रखकर सत्यभामा हस्तिनापुर को गई, यद्यपि भगवान् ने पहलेही वह बात जान ली थी फिरभी उन्होंने दुखी होकर अपने पिताके मरने के समाचार कहे ॥८॥

तदाकर्ण्येश्वरौ राजन्ननुसृत्य नृलोकताम्।
अहो नः परमं कष्टमित्यस्राक्षौ विलेपतुः ॥ ९ ॥

हे राजन्! ये बात सुनकर वे दोनों भाई ईश्वर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होकर भी मनुष्य लोक का अनुसरण करते हुए आँखों में आँसू भरकर विलाप करने लगे कि हाय हमें बड़ा दुःख है ॥९॥

आगत्य भगवांस्तस्मात्सभार्यः साग्रजः पुरम् ।
शतधन्वानमारेभे हन्तुं हर्तुं मणिं ततः ॥१०॥

भगवान् ने वहाँ से बड़े भाई तथा सत्यभामा के साथ द्वारका में आकर शतधन्वा को मार कर मणि लेने का उद्योग किया ॥१०॥

सोऽपि कृष्णोद्यमं ज्ञात्वा भीतः प्राणपरीप्सया ।
साहाय्ये कृतवर्माणमयाचत स चाब्रवीत् ॥११॥

उसने भी श्रीकृष्ण के उद्योग का समाचार पा कर, भयभीत होकर, प्राण बचानेके लिये कृतवर्मा से सहायता माँगी, तब वह बोला कि ॥११॥

नाहमीश्वरयोः कुर्यां हेलनं रामकृष्णयोः ।
को नु क्षेमाय कल्पेत तयोर्वृजिनमाचरन् ॥१२॥

मैं ईश्वर श्रीराम-कृष्ण का अपराध नहीं कर सकता, क्योंकि उनका अपराध करके कौन पुरुष सकुशल रह सकता है ? ॥१२॥

कंसः सहानुगोऽपीतो यद्द्वेषात्त्याजितः श्रिया ।
जरासन्धः सप्तदश संयुगान् विरथो गतः ॥१३॥

जिनके साथ वैर करने के कारण कंस राज्य-लक्ष्मी से भ्रष्ट होकर छोटे भाईयों के साथ मारा गया और जरासंध सत्रह बार युद्ध में रथ-हीन हो कर पराजय पाकर लौटा॥१३॥

प्रत्याख्यातः स चाक्रूरं पार्ष्णिग्राहमयाचत ।
सोऽप्याह को विरुध्येत विद्वानीश्वरयोर्बलम्॥१४॥

जब कृतवर्मा ने इनकार कर दिया, तब शतधन्वा ने अक्रूर से जाकर सहायता माँगी, परन्तु उसने भी उत्तर दिया कि इन ईश्वरों के प्रभावको जानकर कौनसा पुरुष उनके साथ विरोध करेगा ?

य इदं लीलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च ।
चेष्टा विश्वसृजो यस्य न विदुर्मोहिताऽजया॥१५॥

जो लीला पूर्वक इस सृष्टि की उत्पत्ति तथा संहार करता है और जिसकी माया से मोहित हो कर उस जगत्-रचयिता की चेष्टा को कोई नहीं जान सकता ॥१५॥

यः सप्तहायनः शैलमुत्पाट्यैकेन पाणिना ।
दधार लीलया बाल उच्छिलीन्ध्रमिवार्भकः॥१६॥

जिसने सात वर्ष की बाल्यावस्था में पर्वत को उठाकर एक हाथ से लीला पूर्वक ऐसे धारण कर लिया जैसे बालक छत्राक को उठा लेता है ॥१६॥

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाद्भुतकर्मणे ।
अनन्तायादिभूताय कूटस्थायात्मने नमः ॥१७॥

उन अद्भुत चरित्-कर्त्ता, अनन्त, सबके आदि कारण, निर्विकार स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण को मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ ॥ १७ ॥

प्रत्याख्यातः स तेनापि शतधन्वा महामणिम् ।
तस्मिन्न्यस्याश्वमारुह्य शतयोजनगं ययौ ॥१८॥

जब अक्रूर ने भी इनकार कर दिया तब शतधन्वा वह बड़ी मणि अक्रूर ही को देकर सौ योजन चलने वाले घोड़े पर चढ़कर चला ॥१८॥

गरुडध्वजमारुह्य रथं रामजनार्दनौ ।
अन्वयातां महावेगैरश्वैः राजन् गुरुद्रुहम् ॥१९॥

हे राजन् ! श्रीराम-कृष्ण भी गरुड़ ध्वजा वाले रथ पर बैठे और बड़े वेगवाले घोड़ों के द्वारा उस गुरु-द्रोही के पीछे दौड़े ॥१९॥

मिथिलायां उपवने विसृज्य पतितं हयम् ।
पद्भ्यामधावत्संत्रस्तः कृष्णोऽप्यन्वद्रवद्रुषा ॥२०॥

वह मिथिला के उपवन में पड़े हुए उस घोड़े को छोड़कर, उतरता हुआ पैदल ही भागा, भगवान् श्रीकृष्ण भी उसके पीछे दौड़े ॥ २० ॥

पदातेर्भगवांस्तस्य पदातिस्तिग्मनेमिना ।
चक्रेण शिर उत्कृत्य वाससोर्व्यचिनोन्मणिम्॥२१॥

पैदल चलते हुए श्रीकृष्ण ने उस पैदल शतधन्वा का मस्तक तीक्ष्ण धार वाले चक्र से काट कर उसके कपड़ों में मणि को ढूंढा ॥ २१॥

अलब्धमणिरागत्य कृष्ण आहाग्रजान्तिकम् ।
वृथा हतः शतधनुर्मणिस्तत्र न विद्यते ॥२२॥

परन्तु जब मणि न मिली, तब श्रीकृष्णजी ने बल्देवजी के पास आकर कहा कि-शतधन्वा तो वृथा ही मारा गया है, क्योंकि उसके पास मणि नहीं है ॥ २२ ॥

तत आह बलो नूनं स मणिः शतधन्वना ।
कस्मिंश्चित्पुरुषे न्यस्तस्तमन्वेष पुरं व्रज ॥२३॥

बल्देवजी बोले-वह मणि शतधन्वा ने किसी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को दे दी होगी, इसलिये आप द्वारका में जाकर उसका पता लगाओ ॥२३॥

अहं विदेहमिच्छामि द्रष्टुं प्रियतमं मम ।
इत्युक्त्वा मिथिलां राजन्विवेश यदुनन्दनः ॥२४॥

मैं अपने परम प्रिय विदेह-राजसे मिलने जाता हूँ। हे राजन् ! यादवोंको आनन्द देनेवाले बल्देवजी ऐसा कहकर मिथिलापुरी को चल दिये ॥२४॥

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय मैथिलः प्रीतमानसः ।
अर्हयामास विधिवदर्हणीयं समर्हणैः ।
उवास तस्यां कतिचिन्मिथिलायां समा विभुः२५॥

उनको देखकर मिथिला-नरेश प्रसन्न चित्त से जल्दी उठ खडे हुए और पूजनीय बलरामजी की पूजन-सामग्री से विधि-पूर्वक पूजा की, बल्देवजी कई वर्ष तक मिथिलामें रहे ॥२५॥

ततोऽशिक्षद्गदां काले धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ।
मानितः प्रीतियुक्तेन जनकेन महात्मना ॥२६॥

वहाँ धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधन ने अवसर पाकर बलरामजी से गदा युद्ध की विद्या सीखी और महात्मा जनक ने भी प्रीति पूर्वक दुर्योधन का बड़ा सत्कार किया ॥२६॥

केशवो द्वारकामेत्य निधनं शतधन्वनः ।
अप्राप्तिं च मणेः प्राह प्रियायाः प्रियकृद्विभुः॥२७॥

सत्यभामाको प्रसन्न रखनेवाले भगवान् समर्थ श्रीकृष्ण ने द्वारका में आकर शतधन्वा के नाश तथा मणि न मिलनेका हाल अपनी प्रियासे कहा।

ततः स कारयामास क्रिया बन्धोर्हतस्य वै ।
साकं सुहृद्भिर्भगवान्या याः स्युः साम्परायिकाः२८

फिर उन्होंने अपने सुहृदोंको साथ लेकर मृतक सत्राजितकी पारलौकिक क्रिया करवाई ॥२८॥

अक्रूरः कृतवर्मा च श्रुत्वा शतधनोर्वधम् ।
व्यूषतुर्भयवित्रस्तौ द्वारकायाः प्रयोजकौ ॥२९॥

शतधन्वा को प्रेरणा करने वाले कृतवर्मा और अक्रूर उसका बध सुनकर भयके मारे द्वारका से निकल भागे ॥२९॥

अक्रूरे प्रोषितेऽरिष्टान्यासन्वै द्वारकौकसाम् ।
शारीरा मानसास्तापा मुहुर्दैविकभौतिकाः॥३०॥

जब अक्रूरजी चले गये तब द्वारका वालों के अनिष्ट होने लगे और उन्हें दैहिक, दैविक तथा भौतिक ताप व्यापने लगे ॥३०॥

इत्यङ्गोपदिशन्त्येके विस्मृत्य प्रागुदाहृतम् ।
मुनिवासनिवासे किं घटेतारिष्टदर्शनम् ॥३१॥

हे राजन् ! कई एक मुनिजन अपने ही कहे हुए श्रीकृष्ण के माहात्म्य को भूलकर ऐसा कहते हैं क्योंकि मुनियों के निवास-भूत श्रीकृष्ण के होते हुए अरिष्ट का दीखना कैसे संभव है ? ॥३१॥

देवेऽवर्षति काशीशः श्वफल्कायागताय वै ।
स्वसुतां गान्दिनीं प्रादात्ततोऽवर्षत्स्म काशिषु ३२॥

कितने ही मुनिजन कहते हैं कि-अक्रूरजी के जाने पर द्वारका के श्रेष्ठ पुरुष कहने लगे कि जब इन्द्रने वर्षा न की तब काशी-नरेश ने अपनी पुरीमें आये हुए श्वफल्क को गादनी नामकी कन्या दी थी, तब काशी में वर्षा हो सकी थी ॥३२॥

तत्सुतस्तत्प्रभावोसावक्रूरो यत्र यत्र ह ।
देवोऽभिवर्षते तत्र नोपतापा न मारिकाः ॥३३॥

अक्रूरजी उन्हीं के पुत्र हैं, इसलिये वह जहाँ जाते हैं वहीं वर्षा होती है और ताप या महामारी आदि नहीं व्यापते, क्योंकि इनका भी अपने पिता की नाईं ही प्रभाव है ॥३३॥

इति वृद्धवचः श्रुत्वा नैतावदिह कारणम् ।
इति मत्वा समानाय्य प्राहाक्रूरं जनार्दनः ॥३४॥
पूजयित्वाभिभाष्यैनं कथयित्वा प्रियाः कथाः ।
विज्ञाताखिलचित्तज्ञः स्मयमान उवाच ह ॥३५॥

ऐसे वृद्ध पुरुषोंके वचन सुनकर केवल अक्रूर का जाना ही नहीं, वरन् मणि का जाना भी ऐसे अरिष्टों का कारण है; यह मानकर श्रीकृष्णजी ने अक्रूरजी को बुलाकर उनका पूजन करके, सचेत करते हुए, प्यारी बातें करके, सर्वज्ञ तथा मन की बात जानने वाले श्रीकृष्णजीने हँसतेहुए कहा कि॥

ननु दानपते न्यस्तस्त्वय्यास्ते शतधन्वना ।
स्यमन्तको मणिः श्रीमान्विदिताः पूर्वमेव नः ३६

हे दानियों के पति ! लक्ष्मीवन्ती स्यमन्तक मणि शतधन्वा आपको दे गया था यह मैं पहलेही से जानता था ॥३६॥

सत्राजितोऽनपत्यत्वाद्गृह्णीयुर्दुहितुः सुताः ।
दायं निनीयाऽपः पिण्डान्विमुच्यर्णं च शेषितम्३७

CC-0: Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सत्राजित के पुत्र नहीं है, इसलिये उसकोजल तथा पिंड देकर और ऋण चुकाकर, शेष धन उस की पुत्री की सन्तानोंको लेना चाहिये-ऐसी शास्त्र की आज्ञा है ॥ ३७ ॥

तथापि दुर्धरस्त्वन्यैस्त्वय्यास्तां सुव्रते मणिः ।
किं तु मामग्रजः सम्यङ्न प्रत्येति मणिं प्रति ३८

तो भी वह मणि आप अपने ही पास रक्खें, क्योंकि वह दूसरों के पास नहीं रह सकती, आप सुन्दर व्रत धारण करते हैं, इसलिये आपके पास उसका रहना संभव है, परन्तु बड़े भाई बलदेवजी उस मणि के पीछे मेरा विश्वास नहीं करते ॥३८॥

दर्शयस्व महाभाग बन्धूनां शान्तिमावह ।
अव्युच्छिन्ना मखास्तेऽद्य वर्तन्ते रुक्मवेदयः॥३९॥

इसलिये हे महाभाग ! आप मणि दिखला कर बन्धुओं को शान्त कर दीजिये, आपने उसी के प्रभाव से स्वर्ण की वेदी बनाकर अखंड यज्ञ किया है, (अर्थात् मणि के विषयमें बहाना न करो)॥३९॥

एवं सामभिरालब्धः श्वफल्कतनयो मणिम् ।
आदाय वाससा छन्नं ददौ सूर्यसमप्रभम् ॥४०॥

इस प्रकार जब साम वचनों द्वारा अक्रूरजीको समझाया, तब उन्होंने सूर्य के समान प्रकाशमान् मणि वस्त्र से ढके हुए घर से लाकर श्रीकृष्ण जी को दे दी ॥४०॥

स्यमन्तकं दर्शयित्वा ज्ञातिभ्यो रज आत्मनः ।
विमृज्य मणिना भूयस्तस्मै प्रत्यर्पयत्प्रभुः ॥४१॥

तब भगवान् ने वह स्यमन्तक मणि अपने बन्धुओंको दिखला कर उसके द्वारा लगेहुए कलंक को उतारकर फिर अक्रूरही को लौटा दी ॥४१॥

यस्त्वेतद्भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्वीर्याढ्यं वृजिनहरं सुमङ्गलं च । आख्यानं पठति शृणोत्यनुस्मरेद्वा दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शान्तिम्॥४२॥

जगदीश्वर भगवान् विष्णुका यह पराक्रम युक्त दुःखहरण और अत्यन्त मङ्गलकारी चरित जो पढ़े सुने या स्मरण करे, उसका कलंक दूर होजाय तथा कलंक का उत्पन्न करने वाला पाप भी नाश होजाय और उसे शान्ति प्राप्त हो ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

अट्ठावनवां अध्याय

(श्रीकृष्ण के कालिन्दी आदि से विवाह)

श्रीशुक उवाच

एकदा पाण्डवान् द्रष्टुं प्रतीतान् पुरुषोत्तमः ।
इन्द्रप्रस्थं गतः श्रीमान्युयुधानादिभिर्वृतः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-पांडव लोगों का लाक्षागृह में जलनेका समाचार सुननेके पीछे जब यह सुनने में आया कि वे द्रुपदके यहाँ सब लोगोंको दिखाई दियेहैं-तब श्रीकृष्णजी पुरुषोत्तम भगवान् सात्यकि आदि यादवों को साथ लेकर एक बार इन्द्रप्रस्थ पधारे ॥ १ ॥

दृष्ट्वा तमागतं पार्था मुकुन्दमखिलेश्वरम् ।
उत्तस्थुर्युगपद्वीराः प्राणा मुख्यमिवागतम् ॥ २ ॥

सर्वेश्वर श्रीकृष्ण के आने से वे पांडवगण एक साथ इस प्रकार उठ खड़े हुए जैसे प्राणोंको पाकर इन्द्रियां सचेत होजाती हैं ॥२॥

परिष्वज्याच्युतं वीरा अङ्गसङ्गहतैनसः ।
सानुरागस्मितं वक्त्रं वीक्ष्य तस्य मुदं ययुः॥ ३ ॥

श्रीभगवान् के अङ्ग-स्पर्श से पाप-रहित हुए वीर पांडव भगवान् से मिल मुसकानमय मुखारविन्द का दर्शन करके आनन्दको प्राप्त हुए ॥ ३ ॥

युधिष्ठिरस्य भीमस्य कृत्वा पादाभिवन्दनम् ।
फाल्गुनं परिरभ्याथ यमाभ्यां चाभिवन्दितः ॥४॥

युधिष्ठिर और भीम के चरणों को प्रणाम कर के श्रीकृष्ण ने अर्जुन से भेंट की, फिर नकुल, सहदेव ने उन्हें प्रणाम किया ॥४॥

परमासन आसीनं कृष्णा कृष्णमनिन्दिता ।
नवोढा व्रीडिता किञ्चिच्छनैरेत्याभ्यवन्दत ॥ ५ ॥

नव विवाहिता, निन्दा-रहित द्रौपदी ने लज्जा के मारे धीरे २ कुछ पास आकर उत्तम आसनपर विराजमान् श्रीकृष्णजी को प्रणाम किया ॥५॥

तथैव सात्यकिः पार्थैः पूजितश्चाभिवन्दितः ।
निषसादासनेऽन्ये च पूजिताः पर्युपासिताः ॥ ६ ॥

उसी प्रकार सात्यकि को भी पाण्डवोंने आदर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करके वन्दना की और आसन पर विठलाया तथा दूसरे लोगोंका भी आदर करके आगत-स्वागतकिया।

पृथां समागत्य कृताभिवादनस्तयातिहार्दार्द्र-
दृशाऽभिरम्भितः। आपृष्टवांस्तां कुशलं सहस्नुषां
पितृष्वसारं परिपृष्टबान्धवः ॥ ७ ॥

जब कुन्ती के पास आकर कृष्णजी ने उनको प्रणाम किया, तब अत्यन्त स्नेह से नेत्रों में भरे हुए जल वाली कुन्तीने उन्हें आलिंगन किया और बन्धुओं की कुशल पूछी, फिर भगवान् ने भी बहुओं सहित उनके कुटुम्ब के विषय में फूफी से कुशल प्रश्न किया। ७॥

तमाह प्रेमवैक्लव्यरुद्धकण्ठाश्रुलोचना।
स्मरन्ती तान्बहून्क्लेशान्क्लेशापायात्मदर्शनम्॥ ८ ॥

तब प्रेम और विह्वलता से आँसुओं के कारण रुँधे हुए कण्ठ और नेत्रों वाली कुन्ती अनेक क्लेशों का स्मरण करती हुई, दर्शन मात्रसे क्लेश दूर करने वाले भगवान् से कहने लगी कि ॥८॥

तदैव कुशलं नोऽभूत् सनाथास्ते कृता वयम्।
ज्ञातीन्नः स्मरता कृष्ण भ्राता मे प्रेषितस्त्वया॥ ९॥

हे कृष्ण! हमारा कुशलतो उसी समय होचुका तथा हम तभी सनाथ होचुके जब हम बन्धुओं के स्मरण करने वाले आपने मेरे भाई अक्रूर को पहुँचाया था॥ ९ ॥

न तेऽस्ति स्वपरभ्रान्तिर्विश्वस्य सुहृदात्मनः।
तथापि स्मरतां शश्वत्क्लेशान्हंसि हृदि स्थितः॥१०

आप जगतबन्धु और आत्मरूप हैं, इसलिये आपके ऐसा भ्रम नहीं है कि यह अपना है और यह पराया, तो भी स्मरण करने वालों के हृदय में निवास करके आप निरंतर क्लेशोंका नाश करतेहैं॥

युधिष्ठिर उवाच

किं न आचरितं श्रेयो न वेदाहमधीश्वर।
योगेश्वराणां दुर्दर्शो यन्नो दृष्टः कुमेधसाम्॥११॥

युधिष्ठिर बोले-हे अधीश्वर! मैं नहीं जानता कि हम लोगों ने कौनसा कल्याण-कारी कार्यकिया है कि जिनके दर्शन योगेश्वरों को भी दुर्लभहैं, उन के दर्शन हम दुर्बुद्धि वालों को हुए हैं ॥११॥

इति वै वार्षिकान्मासान्राज्ञा सोऽभ्यर्थितःसुखम्।
जनयन्नयनानन्दमिन्द्रप्रस्थौकसो विभुः ॥१२॥

श्रीशुकदेवजी बोले-इस प्रकार राजाने प्रार्थना की, तब बरसात के चार महीने तक इन्द्रप्रस्थ के निवासियों को आनन्द देते हुए भगवान् सुख-पूर्वक वहीं विराजे रहे॥१२॥

एकदा रथमारुह्य विजयो वानरध्वजम्।
गाण्डीवं धनुरादाय तूणौ चाक्षयसायकौ॥१३॥
साकं कृष्णेन संनद्धो विहर्तुं गहनं वनम्।
बहुव्यालमृगाकीर्णं प्राविशत्परवीरहा ॥१४॥

एक बार शत्रुओं के वीरोंको मारनेवाले अर्जुन श्रीकृष्णजीको साथ लेकर बानरी ध्वजावाले अपने रथ पर चढ़कर गांडीव धनुष हाथमें लेकर अक्षय बाणों से भरे हुए तरकस बाँधकर और तैयार हो कर अनेक हिंसक जानवरों और मृगों से भरे हुए वनमें शिकार खेलने गये॥१३॥१४॥

तत्राविध्यच्छरैर्व्याघ्रान्सूकरान्महिषान्रुरून्।
शरभान्गवयान्खड्गान्हरिणाञ्छशशल्लकान्॥१५॥

वहाँ बाणों से व्याघ्र, शूकर, भैंसे, रुरु जाति का हिरन, रोज, शरभ, गेंडे, हिरन शश, खरगोश और सेही आदि को बींधने लगे॥१५॥

तान्निन्युः किङ्करा राज्ञे मेध्यान्पर्वण्युपागते।
तृट्परीतः परिश्रान्तो बीभत्सुर्यमुनामगात्॥१६॥

पवित्र कर्मों में आने के योग्य उन पशुओं को राजा के नौकर पर्वणी आने के कारण राजा को को लाकर भेंट करते थे, जब अर्जुनको प्यास लगी तब वे थके हुए यमुना-तट पर आये॥१६॥

तत्रोपस्पृश्य विशदं पीत्वा वारि महारथौ।
कृष्णौ ददृशतुः कन्यां चरन्तीं चारुदर्शनाम्॥१७॥

वहाँ आकर हाथ-पाँव धोकर और स्वच्छ जल पीकर दोनों महारथी बैठ गये, वहाँ फिरती हुई एक सुन्दर कन्या दिखलाई दी॥१७॥

तामासाद्य वरारोहां सुद्विजां रुचिराननाम्।
पप्रच्छ प्रेषितः सख्या फाल्गुनः प्रमदोत्तमाम्॥१८॥

तब भगवान् ने अपने सखा अर्जुनको यह कह कर पहुंचाया कि-हे अर्जुन! तुम जाकर पूछो कि वह कौन है? तब अर्जुन ने उस सुन्दर जंघा, श्रेष्ठ दाँत तथा मनोहर मुख वाली प्रमदा कन्या से आ कर पूछा कि॥१८॥

का त्वं कस्यासि सुश्रोणि कुतोऽसि किं चिकीर्षसि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मन्ये त्वां पतिमिच्छन्तीं सर्वं कथय शोभने ॥१६॥

हे सुन्दर कटिवाली ! तू कौनहै ? किसकी है? कहाँ से आई है और क्या चाहती है ? हे सुन्दरी! मेरी समझ में तो तू पति की इच्छा रखती है, मुझसे सब वर्णन कर ॥१६॥

कालिन्द्युवाच

अहं देवस्य सवितुर्दुहिता पतिमिच्छती ।
विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परममास्थिता ॥२०॥

कालिन्दी बोली–मैं सूर्यदेव की कन्या हूँ और वर देने वाले विष्णु मुझे पति प्राप्त हों, इस इच्छा से श्रेष्ठ तप करती हूँ ॥२०॥

नान्यं पतिं वृणे वीर तमृते श्रीनिकेतनम् ।
तुष्यतां मे स भगवान्मुकुन्दोऽनाथसंश्रयः ॥२१॥

हे वीर ! मैं श्रीलक्ष्मी-निवास भगवान्के सिवा किसी दूसरे के साथ विवाह न करूँगी,वह अनाथों के शरण-दाता मुझपर प्रसन्न हों ॥२१॥

कालिन्दीति समाख्याता वसामि यमुनाजले ।
निर्मिते भवने पित्रा यावदच्युतदर्शनम् ॥२२॥

मेरा नाम कालिन्दी है, जब तक भगवान् के दर्शन न होंगे तब तक मैं अपने पिता के रचे हुए इसी यमुना-जलरूपी घरमें निवास करूँगी ॥२२॥

तथाऽवदद्गुडाकेशो वासुदेवाय सोऽपि ताम् ।
रथमारोप्य तद्विद्वान्धर्मराजमुपागमत् ॥२३॥

अर्जुन ने आकर भगवान् से वहसब समाचार कहा, तब उस सारी घटना को पहलेही से जानने वाले भगवान् कालिन्दी को रथ में बिठला कर, धर्मराज युधिष्ठिर के पास आये ॥ २३॥

यदैव कृष्णः संदिष्टः पार्थानां परमाद्भुतम् ।
कारयामास नगरं विचित्रं विश्वकर्मणा ॥२४॥

जब पांडवोंने अपने रहने के लिये नगर बसाने की भगवान् से प्रार्थना की, तब उन्होंने विश्वकर्मा के द्वारा एक विचित्र नगर बनवाया ॥२४॥

भगवांस्तत्र निवसन्स्वानां प्रियचिकीर्षया ।
अग्नये खाण्डवं दातुमर्जुनस्यास सारथिः ॥२५॥

बंधुओंको प्रसन्न रखनेके लिये भगवान् वहाँ विराजमान् रहे, फिर वे अग्निके लिये खाण्डव-बन जलाने के लिये अर्जुनके सारथी बने ॥२५॥

सोऽग्निस्तुष्टो धनुरदाद्धयाञ्छ्वेतान्रथं नृप ।
अर्जुनायाक्षयौ तूणौ वर्म चाभेद्यमस्त्रिभिः ॥२६॥

हे राजन् ! (खांडव-वनको भक्षण करके) अग्नि ने प्रसन्न होकर अर्जुनको धनुष, श्वेत घोड़े,अक्षय तरकस और शस्त्र धारियों से न कटने वाला कवच दिया ॥२६॥

मयश्च मोचितो वह्नेः सभां सख्य उपाहरत् ।
यस्मिन्दुर्योधनस्यासीज्जलस्थलदृशिभ्रमः ॥२७॥

और वहाँ अग्नि से 'मय' दैत्यकी रक्षा भी की थी, इसलिये उसने अर्जुन को एक सभा दी कि जिसमें दुर्योधन को जलसे थल का और थल से जल का भ्रम हुआ था ॥२७॥

स तेन समनुज्ञातः सुहृद्भिश्चानुमोदितः ।
आययौ द्वारकां भूयः सात्यकिप्रमुखैर्वृतः ॥२८॥

श्रीकृष्णचन्द्र युधिष्ठिरसे आज्ञा पाकर बंधुओं की सम्मति लेकर तथा सात्यकि आदि यादवोंको साथ लेकर द्वारका लौट आये ॥२८॥

अथोपयेमे कालिन्दीं सुपुण्यर्त्तर्क्ष ऊर्जिते ।
वितन्वन्परमानन्दं स्वानां परममङ्गलम् ॥२९॥

शुभ, पवित्र तथा बलवान् ऋतु एवं नक्षत्रदेख कर अपने बन्धुओं को परम आनन्द-मङ्गल देतेहुए भगवान्ने कालिन्दीके साथ विवाह किया ॥२९॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ दुर्योधनवशानुगौ ।
स्वयंवरे स्वभगिनीं कृष्णे सक्तां न्यषेधताम् ॥३०॥

मित्रविन्दा नामकी कन्या विन्द और अनुविंद की बहन थीं, उसने स्वयंवर में श्रीकृष्ण को वरण करना चाहा, परन्तु उन दोनों भाइयोंने रोका,क्यों कि वे दुर्योधनके आधीन होने से लाचार थे ॥३०॥

राजाधिदेव्यास्तनयां मित्रविन्दां पितृष्वसुः ।
प्रसह्य हृतवान्कृष्णो राजन्राज्ञां प्रपश्यताम् ॥३१॥

हे राजन् ! उस अपनी फूफी राजाधि देवी की कन्या मित्रविन्दाको भगवान् सब राजाओंके देखते देखते बलात्कार-पूर्वक हरण कर लेगये ॥३१॥

नग्नजिन्नाम कौसल्य आसीद्राजातिधार्मिकः ।
तस्य सत्याऽभवत्कन्या देवी नाग्नजिती नृप ॥३२॥

हे राजन् ! नग्नजित नामका कौशल-नरेश बड़ा धर्मात्मा था, उसके सत्या नामकी एक कान्तिमयी कन्या थी, उसे नाग्नजिती भी कहते थे ॥ ३२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न तां शेकुर्नृपा वोढुमजित्वा सप्त गोवृषान्।
तीक्ष्णशृङ्गान्सुदुर्धर्षान्वीरगन्धासहान्खलान्॥३३॥

राजा ने यह प्रण किया था कि जो वीर-पुरुष की गन्धको भी सहन न करे, ऐसे दुष्ट,तीक्ष्ण सींगों वाले अत्यन्त भयंकर सात साँड़ों को एक साथ जीतले उसको कन्या वरण करेगी, सब राजा वहाँ हार मानकर लौट आये और उसे कोई भी न विवाह सका ॥३३॥

तां श्रुत्वा वृषजिल्लभ्यां भगवान्सात्वतां पतिः।
जगाम कौसल्यपुरं सैन्येन महतावृतः ॥३४॥

यादवपति भगवान्ने सुना कि सांड़ोंको जीतने वालेके साथ कन्याका विवाह होगा, तब वे बड़ी सेना साथ लेकर अयोध्यापुरी को पधारे ॥३४॥

स कोसलपतिः प्रीतः प्रत्युत्थानासनादिभिः।
अर्हणेनापि गुरुणाऽपूजयत्प्रतिनन्दितः ॥३५॥

वह कौशल-नरेश भगवान्का आगमन सुनकर आसनसे उठने तथा आसन देनेआदि अनेक तरह से सत्कार करके पूजन की बड़ी सामग्री द्वारा उन की पूजा करने लगा और सराहना करनेलगा ॥

वरं विलोक्याभिमतं समागतं नरेन्द्रकन्या चकमे रमापतिम्। भूयादयं मे पतिराशिषोमलाः करोतु सत्या यदि मे धृतो व्रतैः ॥३६॥

राजकुमारीने लक्ष्मीनाथको इच्छित वर आया देखकर अभिलाषा प्रकट करते हुए यह प्रार्थना की कि मुझे यही वर मिलें, यदि मैंने व्रत धारणकिया हो तो मेरी निर्मल कामनाको वे सत्य करें ॥३६॥

यत्पादपङ्कजरजः शिरसा बिभर्ति श्रीरब्जजः सगिरिशः सह लोकपालैः। लीलातनूः स्वकृत-सेतुपरीप्सयेशःकालेदधत्स भगवान्मम केन तुष्येत्॥

जिनके चरणारविन्द की रज को लक्ष्मी, ब्रह्मा महादेव तथा लोकपाल सिर से धारण करते हैं और जो अपनी बांधी हुई मर्यादा पालन करने के लिये समय २ पर लीला पूर्वक शरीर धारण करते हैं वे परमेश्वर भगवान् मुझ पर किस बात से प्रसन्न हो सकेंगे ॥३७॥

अर्चितं पुनरित्याह नारायण जगत्पते।
आत्मानन्देन पूर्णस्य करवाणि किमल्पकः॥३८॥

राजा ने पूजन करके फिर भगवान्से कहा कि हे नारायण ! हे जगत्पति ! आप आत्मानन्द से परिपूर्ण प्रभुका मैं तुच्छ जन क्या सत्कार करूँ ?

श्रीशुक उवाच

तमाह भगवान्हृष्टः कृतासनपरिग्रहः।
मेघगम्भीरया वाचा सस्मितं कुरुनन्दन ॥३९॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन ! भगवान्ने आसनपर बैठकर प्रसन्नता पूर्वक हँसते हुए मेघ के समान गंभीर वाणी द्वारा उससे कहा ॥३९॥

श्रीभगवानुवाच

नरेन्द्र याच्ञा कविभिर्विगर्हिता राजन्यबन्धोर्निजधर्मवर्तिनः। तथापि याचे तव सौहृदेच्छया कन्यां त्वदीयां नहि शुल्कदा वयम् ॥४०॥

श्रीभगवान् बोले–हे राजन् ! अपने धर्म पर चलने वाले क्षत्रियों को याचना करने का पंडितों ने निषेध किया है, फिर भी हम स्नेहके साथ आप की कन्याको चाहते हैं, कुछ मोल देकर नहीं लेना चाहते हैं ॥ ४० ॥

राजोवाच

कोऽन्यस्तेऽभ्यधिको नाथ कन्यावर इहेप्सितः।
गुणैकधाम्नो यस्याङ्गे श्रीर्वसत्यनपायिनी ॥४१॥

राजा बोला–हे नाथ ! जिनमें समस्त गुण विद्यमान हों तथा जिनके अङ्गमें लक्ष्मी का वासहो ऐसे आपकी समतामें संसारमें कौनसा वर कन्या देने के योग्य है ? ॥४१॥

किं त्वस्माभिः कृतः पूर्वं समयः सात्वतर्षभ।
पुंसां वीर्यपरीक्षार्थं कन्यावरपरीप्सया ॥४२॥

हे यादवोत्तम ! पुरुषों के पराक्रम तथा कन्या के योग्य वर की परीक्षा लेने के लिये मैं पहले एक प्रतिज्ञा कर चुका हूँ ॥४२॥

सप्तैते गोवृषा वीर दुर्दान्ता दुरवग्रहाः।
एतैर्भग्नाः सुबहवो भिन्नगात्रा नृपात्मजाः ॥४३॥

हे वीर ! जो इन असभ्य तथा पकड़नेमें न आने योग्य बैलों को जीत लेगा वही कन्या को वरण करेगा, यह बात सुनकर यहाँ बहुतसे राज-पुत्र आ चुके हैं, पर वे इनसे अङ्ग तुड़वा कर और हारकर लौट गये हैं ॥४३॥

यदीमे निगृहीताः स्युस्त्वयैव यदुनन्दन।
वरो भवानभिमतो दुहितुर्मे श्रियः पते ॥४४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे यदुनन्दन ! हे लक्ष्मीनाथ ! यदि आप ही इनको पकड़ लें तो मैं अपनी कन्या के लिये आप को वर स्वीकार कर लूँ ॥४४॥

एवं समयमाकर्ण्य बद्ध्वा परिकरं प्रभुः ।
आत्मानं सप्तधा कृत्वा न्यगृह्णाल्लीलयैव तान्॥४५

श्रीशुकदेवजी बोले–भगवान्ने ऐसा प्रण सुन कर कमर बाँधकर और सात रूप धारण करके लीला ही से उन सातों साँड़ोंको पकड़लिया ॥४५॥

बद्ध्वा तान्दामभिः शौरिर्हतदर्पान्हतौजसः ।
व्यकर्षल्लीलया बद्धान्बालो दारुमयान्यथा ॥४६॥

फिर उन नष्ट गर्व तथा क्षीण शक्ति बैलों को रस्सीसे बाँधकर भगवान् ऐसे लीलापूर्वक खींचने लगे जैसे बालक काठके घोड़ोंको खींचताहै ॥४६॥

ततः प्रीतः सुतां राजा ददौ कृष्णाय विस्मितः ।
तां प्रत्यगृह्णाद्भगवान्विधिवत्सदृशीं प्रभुः ॥४७॥

राजाको इस बातसे आश्चर्य हुआ और उसने प्रसन्न होकर अपनी कन्या प्रभु को दे दी, श्रीभगवान् ने अपने अनुरूप उस कन्या का विधि-पूर्वक पाणि-ग्रहण किया ॥४७॥

राजपत्न्यश्च दुहितुः कृष्णं लब्ध्वा प्रियं पतिम् ।
लेभिरे परमानन्दं जातश्च परमोत्सवः ॥४८॥

राजा की रानियां भी अपनी कन्या के प्रिय पति श्रीकृष्ण को वर पाकर परम आनन्दित हुईं और वहाँ बड़ा उत्सव हुआ ॥४८॥

शङ्खभेर्यानका नेदुर्गीतवाद्यद्विजाशिषः ।
नरा नार्यः प्रमुदिताः सुवासःस्रगलंकृताः ॥४९॥

शंख, भेरी, नक्कारे बाजने लगे, मङ्गल-गीतगाये जारहे थे, बाजे बाजते थे तथा ब्राह्मण आशीर्वाद देते थे, नगर के स्त्री-पुरुष सभी सुन्दर वस्त्र,माला और आभूषण धारण कियेहुए आनंदमें मग्न थे ॥

दश धेनुसहस्राणि पारिबर्हमदाद्विभुः ।
युवतीनां त्रिसाहस्रं निष्कग्रीवसुवाससाम् ॥५०॥
नव नागसहस्राणि नागाच्छतगुणान्रथान् ।
रथाच्छतगुणानश्वानश्वाच्छतगुणान्नरान् ॥५१॥

राजा ने दस हज़ार गौएँ, कंठ में स्वर्ण के आभूषण तथा सुन्दर वस्त्र पहने हुए तीन हज़ार दासियाँ, नौ हज़ार हाथी, नौ लाख रथ, नौकरोड़ घोड़े और नौ पद्म पैदल दहेज़में दिये ॥५०॥५१॥

दम्पती रथमारोप्य महत्या सेनया वृतौ ।
स्नेहप्रक्लिन्नहृदयो यापयामास कोसलः ॥५२॥

फिर दूलह-दुलहिन को रथमें बिठला कर बड़ी सेना साथ में देकर, स्नेह से द्रवित चित्त वाले राजा ने विदा किया ॥५२॥

श्रुत्वैतद्रुरुधुर्भूपा नयन्तं पथि कन्याम् ।
भग्नवीर्याः सुदुर्मर्षा यदुभिर्गोवृषैः पुरा ॥५३॥

जिन राजाओंका पहले उन बैलों तथा यादवों के द्वारा मान भंग होचुका था, उन्होंने कन्याको ले जातेहुए भगवान् को राह में घेर लिया ॥५३॥

तानस्यतः शरव्रातान्बन्धुप्रियकृदर्जुनः ।
गाण्डीवी कालयामास सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥५४॥

बन्धुओं का हित करने वाले अर्जुन ने बाण-समूह चलाते हुए उन राजाओं को गाण्डीव हाथ में लेकर ऐसे मार भगाया जैसे सिंह तुच्छ हिरनों को मार भगाता है ॥५४॥

पारिबर्हमुपागृह्य द्वारकामेत्य सत्यया ।
रेमे यदूनामृषभो भगवान्देवकीसुतः ॥५५॥

यादवों में श्रेष्ठ देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र दहेज़ लेकर और द्वारका में आकर सत्याके साथ रमण करने लगे ॥ ५५ ॥

श्रुतकीर्तेः सुतां भद्रामुपयेमे पितृष्वसुः ।
कैकेयीं भ्रातृभिर्दत्तां कृष्णः संतर्दनादिभिः ॥५६॥

फूफी श्रुतकीर्त्ति की भद्रा नाम कन्या कि जो कैकय देशमें प्रकट हुई थी, उसे भगवान् ने उसके सन्तर्दन आदि भाइयों के देने पर व्याह लिया ॥

सुतां च मद्राधिपतेर्लक्ष्मणां लक्षणैर्युताम् ।
स्वयंवरे जहारैकः स सुपर्णः सुधामिव ॥५७॥

भद्र देशके राजा की समस्त लक्षणों से युक्त लक्ष्मणा नाम की कन्या को भगवान् अकेले ही स्वयंवर में से इस प्रकार हर ले गये, जैसे गरुड़ अकेले ही अमृत को ले आया था ॥ ५७ ॥

अन्याश्चैवंविधा भार्याः कृष्णस्यासन्सहस्रशः ।
भौमं हत्वा तन्निरोधादाहृताश्चारुदर्शनाः ॥५८॥

भगवान् श्रीकृष्ण के यहाँ और भी ऐसी ही हज़ारों सुन्दर स्त्रियां थी, जिन्हें वे भौमासुर को मार कर उसके अन्तःपुर से ले आये थे ॥५८॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे अष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः॥५८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनसठवां अध्याय

(भौमासुर-वध)

राजोवाच

यथा हतो भगवता भौमो येन च ताः स्त्रियः ।
निरुद्धा एतदाचक्ष्व विक्रमं शार्ङ्गधन्वनः ॥१॥

परीक्षित बोले—स्त्रियों को रोक रखने वाले भौमासुरका भगवान्ने जिस प्रकार और जिस कारणसे बध कियाहै वह चरित् मुझसे कहिये॥१॥

श्रीशुक उवाच

इन्द्रेण हृतच्छत्रेण हृतकुण्डलबन्धुना ।
हृतामराद्रिस्थानेन ज्ञापितो भौमचेष्टितम् ॥२॥

श्रीशुकदेवजी बोले—जब इन्द्र ने सत्यभामा के महल में आकर विनय की कि भौमासुर वरुण का छत्र लेगया है और मेरी माताके कुंडल तथा अमराद्रि का मेरा मणि पर्वत नामक स्थान भी उसने छीन लियाहै, इन्द्रके द्वारा भौमासुरका यह चरित् सुनकर श्रीभगवान् सत्यभामा को साथ लेकर, गरुड़ पर बैठ प्राग्ज्योतिष नामक नगरको पधारे।

सभार्यो गरुडारूढः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ ।
गिरिदुर्गैः शस्त्रदुर्गैर्जलाग्न्यनिलदुर्गमम् ।
मुरपाशायुतैर्घोरैर्दृढैः सर्वत आवृतम् ॥ ३ ॥

जो गिरि, शस्त्र, जल, अग्नि और वायुके क़िलों से अत्यन्त दुर्गम घोर और दृढ़था तथा दसहज़ार मुर दैत्यके बन्धनोंसे चारों ओर घिरा हुआ था ॥

गदया निर्विभेदाद्रीञ्छस्त्रदुर्गाणि सायकैः ।
चक्रेणाग्निं जलं वायुं मुरपाशांस्तथासिना ॥ ४ ॥

भगवान् ने गदा से गिरि दुर्ग, बाणों से शस्त्र-दुर्ग और चक्रसे अग्नि, जल तथा पवनके दुर्ग तोड़ डाले तथा खड्ग से मुर-पाश काट डाले ॥४॥

शङ्खनादेन यन्त्राणि हृदयानिमनस्विनाम् ।
प्राकारं गदया गुर्व्या निर्बिभेद गदाधरः ॥ ५ ॥

उन गदाधर भगवान् ने शंख-नादसे यंत्र तथा शूरवीरों के मन खंडित कर दिये और विशाल गदा से कोट तोड़ डाला ॥५॥

पाञ्चजन्यध्वनिं श्रुत्वा युगान्ताशनिभीषणम् ।
मुरः शयान उत्तस्थौ दैत्यः पञ्चशिरा जलात् ॥ ६ ॥

प्रलय-काल के वज्रपातके समान भयानक पाञ्चजन्य शंख की ध्वनि सुनकर जलमें सोता हुआ पाँच सिरों वाला मुर दैत्य उठ खड़ा हुआ ॥६॥

त्रिशूलमुद्यम्य सुदुर्निरीक्षणो युगान्तसूर्यानल-रोचिरुल्बणः । ग्रसंस्त्रिलोकीमिव पञ्चभिर्मुखैरभ्यद्रवत्तार्क्ष्यसुतं यथोरगः ॥७॥

प्रलयकाल के सूर्य तथा अग्नि के समान तेजधारी होनेके कारण जिसके सामने देखनाभी कठिन है—ऐसा वह उल्बण दैत्य अपने पाँचों मुखों से त्रिलोकी को निगलता हुआ सा, त्रिशूल हाथ में उठाये हुए भगवान् के सामने इस प्रकार दौड़ा, जैसे सांप गरुड़के सामने दौड़ता है ॥७॥

आविध्य शूलं तरसा गरुत्मते निरस्य वक्त्रैर्व्यनदत्स पञ्चभिः । स रोदसी सर्वदिशोम्बरं महानापूरयन्नण्डकटाहमावृणोत् ॥ ८ ॥

उसने वेगके साथ त्रिशूल को घुमाकर और गरुड़ पर चलाकर पाँचों मुखोंसे गर्जना किया कि जिसका महानाद आकाश, पृथ्वी, समस्तदिशाओं तथा अन्तरिक्ष में गुञ्जित होकर ब्रह्माण्ड भर में व्याप्त होगया ॥८॥

तदापतद्वै त्रिशिखं गरुत्मते हरिः शराभ्यामभिनत्त्रिधौजसा । मुखेषु तं चापि शरैरताडयत्तस्मै गदां सोपि रुषा व्यमुञ्चत ॥ ९ ॥

उस आते हुए त्रिशूल को देखकर दो बाणों द्वारा भगवान् ने उसके तीन खंड कर दिये, तथा और बाणों के द्वारा उसके मुंह भरदिये, तब उस दैत्य ने भी क्रोधित होकर गदा चलाई ॥९॥

तामापतन्तीं गदया गदां मृधे गदाग्रजो निर्विभिदे सहस्रधा । उद्यम्य बाहूनभिधावतोऽजितः शिरांसि चक्रेण जहार लीलया ॥१०॥

संग्राम में उस आती हुई गदा के भगवान् ने अपनी गदा से हज़ारों टुकड़े कर डाले, तब वह दैत्य दोनों हाथ उठाकर, दौड़ता हुआ सामनेबढ़ा, उसी समय भगवान् ने अपने चक्र द्वारा लीलापूर्वक उसके सिर काट कर गिरा दिये ॥१०॥

व्यसुः पपाताम्भसि कृत्तशीर्षो निकृत्तशृङ्गोऽद्रि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रिवेन्द्रतेजसा । तस्यात्मजाः सप्त पितुर्वधातुराः प्रतिक्रियामर्षजुषः समुद्यताः ॥११॥

इन्द्र के वज्र से कटकर गिरे हुए पर्वत-शृङ्गकी नाईं सिर कटने पर प्राण मुक्त होकर वह दैत्य जलमें गिर पड़ा, उसके जो सात पुत्र थे वे पिताके बध से दुःखी होकर बदला लेने के लिये क्रोध सहित भली भांति तैयार होकर आये ॥११॥

ताम्रोऽन्तरिक्षः श्रवणो विभावसुर्वसुर्नभस्वान-रुणश्च सप्तमः । पीठं पुरस्कृत्य चमूपतिं मृधे भौमप्रयुक्ता निरगन्नृतायुधाः ॥१२॥

ताम्र, अन्तरिक्ष, श्रवण, विभावसु, वसु, नभस्वान् और अरुण-यह सातों पीठ नामक सेनापति को प्रधान बनाकर भौमासुर की प्रेरणा से शस्त्र धारण करके रण-भूमि में आये ॥१२॥

प्रायुञ्जतासाद्य शरानसीन् गदाः शक्त्यृष्टिशूलान्यजिते रुषोल्बणाः । तच्छस्त्रकूटं भगवान्स्वमार्गणैरमोघवीर्यस्तिलशश्चकर्त ह ॥१३॥

वे महान् भयंकर दैत्य भगवान्के पास आकर बाण, खड्ग, गदा, वर्छी, गुर्ज और त्रिशूल चलाने लगे, अमोघ पराक्रम वाले भगवान् ने उस शस्त्र-जालको तिल२के समान टुकड़े करके काट गिराया।

तान्पीठमुख्याननयद्यमालयं निकृत्तशीर्षोरुभुजाङ्घ्रिवर्मणः । स्वानीकपानच्युतचक्रसायकैस्तथा निरस्तान्नरको धरासुतः ॥१४॥

निरीक्ष्य दुर्मर्षण आस्रवन्मदैर्गजैः पयोधिप्रभवैर्निराक्रमत् । दृष्ट्वा सभार्यं गरुडोपरि स्थितं सूर्योपरिष्टात्सतडिद्घनं यथा । कृष्णं स तस्मै व्यसृजच्छतघ्नीं योधाश्च सर्वे युगपत्स्म विव्यधुः १५

और उन पीठ आदि दैत्यों को उनके सिर, जंघा, भुजा, पाँव और कवच काट कर यमलोक को पहुँचाया, भगवान् के बाण और चक्र द्वारा नाश हुए अपने सेनापतियों को देखकर पृथ्वी-पुत्र नरकासुर महान् क्रोध करके समुद्र से प्रकट किये हुए मद झरते हुए हाथियों का दल लेकर बाहर निकला और उसने सत्यभामा सहित भगवान्को गरुड़ पर विराजमान् देखा, जैसे सूर्य पर बिजली के सहित बादल हो, उसने आते ही भगवान् पर वर्छी का प्रहार किया और उसके सैनिक गण भी एक साथ प्रहार करने लगे ॥१४॥१५॥

तद्भौमसैन्यं भगवान्गदाग्रजो विचित्रवाजैर्निशितैः शिलीमुखैः । निकृत्तबाहूरुशिरोङ्घ्रिविग्रहं चकार तर्ह्येव हताश्वकुञ्जरम् ॥१६॥

भगवान्ने उसी क्षण विचित्र पंखोंवाले तीक्ष्ण बाणों द्वारा उस भौमासुर की सेनाको भुजा,जंघा, गर्दन और अङ्ग काटकर तथा हाथी व घोड़ों को मारकर छिन्न-भिन्न कर डाला ॥१६॥

यानि योधैः प्रयुक्तानि शस्त्रास्त्राणि कुरूद्वह । हरिस्तान्यच्छिनत्तीक्ष्णैः शरैरेकैकशस्त्रिभिः॥१७॥

हे राजन् ! योधाओंके चलाये हुए शस्त्र अपने पास आने से पहले ही भगवान् ने तीक्ष्ण बाणों के द्वारा उस सेना को तथा उसके शस्त्रों को काट गिराया, गरुड़ पर बैठे हुए श्रीकृष्णचन्द्र उसके पंखों द्वारा हाथियों को मारते हुए भगवान् एक २ शस्त्रको तीन-तीन तीरोंसे काट रहे थे ॥१७॥

उह्यमानः सुपर्णेन पक्षाभ्यां निघ्नता गजान् । गरुत्मता हन्यमानास्तुण्डपक्षनखैर्गजाः ॥१८॥

और हाथी भी चोंच, पंख तथा नखोंसे मारते हुए गरुड़से दुखी होकर फिर नगरहीमें घुसआये॥

पुरमेवाविशन्नार्ता नरको युध्ययुध्यत । दृष्ट्वा विद्रावितं सैन्यं गरुडेनार्दितं स्वकम् ॥१९॥

तं भौमः प्राहरच्छक्त्या वज्रः प्रतिहतो यतः । नाकम्पत तया विद्धो मालाहत इव द्विपः ॥२०॥

अकेला भौमासुर ही रण-भूमि में युद्ध करने लगा और गरुड़ से भागी हुई अपनी सेनाको देख कर, उसने गरुड़ पर उस वर्छी का प्रहार किया कि जिससे वज्र की गति रुक गई थी, परन्तु गरुड़ उससे इसी प्रकार विचलित न हुआ जैसे हाथी माला के प्रहार से विचलित नहीं होता ॥१९॥२०॥

शूलं भौमोऽच्युतं हन्तुमाददे वितथोद्यमः । तद्विसर्गात्पूर्वमेव नरकस्य शिरो हरिः । अपाहरद्गजस्थस्य चक्रेण क्षुरनेमिना ॥२१॥

जब भौमासुर का उद्यम व्यर्थ होगया तब उस ने श्रीकृष्ण के मारने के लिये त्रिशूल हाथमें लिया, परन्तु उसके चलाने से पहले ही श्रीकृष्ण ने उस हाथी पर बैठे हुए दैत्य का मस्तक अपने चक्र से काट डाला ॥२१॥

सकुण्डलं चारुकिरीटभूषणं बभौ पृथिव्यां

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पतितं समुज्ज्वलत् । हा हेति साध्वित्यृषयः सुरेश्वरा माल्यैर्मुकुन्दं विकिरन्त ईडिरे ॥२२॥

जब वह कानों में कुण्डलों तथा सुन्दर बंधे हुए मुकुट से कान्तिमय मस्तक कटकर पृथ्वी पर गिरा, तब दैत्य हाहाकार और ऋषि गण 'धन्य-धन्य' करने लगे और देवताओं के अधिपति फूल बरसाकर भगवान् की स्तुति करने लगे ॥२२॥

ततश्च भूः कृष्णमुपेत्य कुण्डले प्रतप्तजाम्बूनद-रत्नभास्वरे। स वैजयन्त्या वनमालयाऽर्पयत्प्राचेतसं छत्रमथो महामणिम् ॥२३॥

अस्तौषीदथ विश्वेशं देवी देववरार्चितम् ।
प्राञ्जलिः प्रणता राजन्भक्तिप्रवणया धिया॥२४॥

फिर देवी पृथ्वी श्रीकृष्ण के पास आकर तपे हुए सोने में जड़े हुए रत्नों से प्रकाशित, कुण्डल, वैजयन्ती वरमाला, वरुण का छत्र और विशाल मणि अर्पण करके और हाथ जोड़कर जगदीश्वर और देवताओं में श्रेष्ठ ब्रह्मा आदि से पूजित भगवान् की भक्ति-पूर्वक एकाग्र बुद्धि करके स्तुति करने लगी ॥२३॥२४॥

भूमिरुवाच

नमस्ते देवदेवेश शंखचक्रगदाधर ।
भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥२५॥

पृथ्वी बोली—हे देव देवेश ! हे शंख चक्र गदाधारी ! हे परमात्मा ! और हे भक्तों की इच्छा से अवतार धारण करनेवाले ! आपको मेरा प्रणामहै॥

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ।
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥२६॥

हे कमलनाभि ! हे कमल चरण ! हे कमलमाल धारण कर्त्ता ! हे कमल नयन ! मैं आपको प्रणाम करती हूँ ॥ २६ ॥

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय विष्णवे ।
पुरुषायादिबीजाय पूर्णबोधाय ते नमः ॥२७॥

वसुदेवजी के पुत्र, सबके आदि कारण, पूर्ण ज्ञानमय, जगत् के अन्तर्यामी और विष्णु भगवान् को मैं प्रणाम करती हूँ ॥२७॥

अजाय जनयित्रेऽस्य ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
परावरात्मन्भूतात्मन्परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥२८॥

आप जो जन्म-रहित; इस जगत्के उत्पन्नकर्ता और अनन्त शक्ति ब्रह्म हो, उन्हें मेरा प्रणाम है, कार्य तथा कारण के आत्मा और जीवों के स्वरूप भूत आपको मेरा प्रणाम है ॥२८॥

त्वं वै सिसृक्षू रज उत्कटं प्रभो तमोनिरोधाय बिभर्ष्यसंवृतः । स्थानाय सत्त्वं जगतो जगत्पते कालः प्रधानं पुरुषो भवान् परः ॥२९॥

हे प्रभु ! जिस समय आप सृष्टि-रचना किया चाहते हैं, उस समय श्रेष्ठ रजोगुण धारण करते हैं संहार के लिये तमोगुण और पालनके लिये सतोगुण धारण करते हैं, फिर भी इन गुणों से आप आच्छादित नहीं होते, हे जगत्पति ! काल प्रधान, और पुरुष आपसे भिन्न नहीं हैं, परन्तु आप इन सबसे परे हो ॥२९॥

अहं पयो ज्योतिरथानिलो नभो मात्राणि देवा मन इन्द्रियाणि । कर्ता महानित्यखिलं चराचरं त्वय्यद्वितीये भगवन्नयं भ्रमः ॥३०॥

मैं (पृथ्वी) जल, अग्नि, वायु, आकाश, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, दस देवता, मन, इन्द्रियां, अहंकार, महत्तत्व यह सब चराचर जगत् आपके अद्वितीय स्वरूप में भ्रम-रूप प्रतीत होते हैं ॥३०॥

तस्यात्मजोऽयं तव पादपङ्कजं भीतः प्रपन्नार्तिहरोपसादितः । तत्पालयैनं कुरु हस्तपङ्कजं शिरस्यमुष्याखिलकल्मषापहम् ॥३१॥

हे शरणागतों के दुःख-हरण ! उस भौमासुर का यह भगदत्त नामक पुत्र भयभीत होकर आप के चरणारविन्द की शरण आया है, इसलिये आप इसकी रक्षा कीजिये और समस्त पापों का नाश करनेवाला अपना करकमल इसके सिरपर धरिये॥

श्रीशुक उवाच

इति भूम्याऽर्थितो वाग्भिर्भगवान्भक्तिनम्रया ।
दत्त्वाऽभयं भौमगृहं प्राविशत्सकलर्द्धिमत् ॥३२॥

श्रीशुकदेवजी बोले—जब भक्ति से नम्र होकर भूमि ने इस प्रकार प्रार्थना की, तब भगवान् भगदत्त को अभय देकर समस्त सम्पदाओं से पूर्ण भौमासुर के घर में पधारे ॥ ३२ ॥

तत्र राजन्यकन्यानां षट्सहस्राधिकायुतम् ।
भौमाहृतानां विक्रम्य राजभ्यो ददृशे हरिः॥३३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण ने सोलह हज़ार एक सौ राज-कन्यायें देखीं कि जिनको भौमासुर राजाओं से छीन लाया था ॥३३॥

तं प्रविष्टं स्त्रियो वीक्ष्य नरवीरं विमोहिताः ।
मनसा वव्रिरेऽभीष्टं पतिं दैवोपसादितम् ॥३४॥

उन नर-वीर भगवान् के प्रवेश करतेही उनका दर्शन करके मोहित होकर उन दैवयोग से प्राप्त हुए प्रिय पति को उन स्त्रियोंने मनसे वरणकिया॥

भूयात्पतिरयं मह्यं धाता तदनुमोदताम् ।
इति सर्वाः पृथक् कृष्णे भावेन हृदयं दधुः ॥३५॥

यह हमारे पति हों और ब्रह्माजी इसका अनुमोदन करें, इस प्रकार सब स्त्रियों ने प्रेम के साथ श्रीकृष्णजी में जुदा २ मन लगाया ॥३५॥

ताः प्राहिणोद्द्वारवतीं सुमृष्टविरजोऽम्बराः ।
सरयानैर्महाकोशान्रथाश्वान्द्रविणं महत् ॥३६॥

भगवान् ने उनको सुन्दर और स्वच्छ वस्त्र पहिना कर, पालकियों में बिठला कर द्वारकापुरी में पहुँचाया ॥ ३६ ॥

ऐरावतकुलेभांश्च चतुर्दन्तांस्तरस्विनः ।
पाण्डुरांश्च चतुःषष्टिं प्रेषयामास केशवः ॥३७॥

और चार-चार दाँत वाले सफ़ेद रंग के शीघ्र चलनेवाले ऐरावतके वंश वाले चौंसठ हाथी भेजे॥

गत्वा सुरेन्द्रभवनं दत्त्वाऽदित्यै च कुण्डले ।
पूजितस्त्रिदशेन्द्रेण सहेन्द्राण्या च सप्रियः ॥३८॥

फिर भगवान् ने इन्द्र-लोकमें सत्यभामासहित जाकर अदिति को कुण्डल दिये, वहाँ इन्द्राणी के सहित इन्द्र ने भगवान्का पूजन किया ॥३८॥

नोदितो भार्ययोत्पाट्य पारिजातं गरुत्मति ।
आरोप्य सेन्द्रान्विबुधान्निर्जित्योपानयत्पुरम् ३९॥

सत्यभामा के कहने से कल्प वृक्ष को उखाड़ कर गरुड़ पर रखकर और इन्द्र आदि देवताओं को जीतकर वे द्वारकापुरी में आये ॥ ३९ ॥

स्थापितः सत्यभामाया गृहोद्यानोपशोभनः ।
अन्वगुर्भ्रमराः स्वर्गात्तद्गन्धासवलम्पटाः ॥४०॥

और सत्यभामा के बगीचे की शोभा बढ़ाने के लिये उसे वहीं स्थापित कर दिया, उसकी सुगंध के मदसे लोभी भौंरे स्वर्गसे पीछे २ लगे चले आये।

ययाच आनम्य किरीटकोटिभिः पादौ स्पृशन्नच्युतमर्थसाधनम् ।सिद्धार्थ एतेन विगृह्यते महानहो सुराणां च तमो धिगाढ्यताम् ॥४१॥

पहले तो इन्द्रने अपने कार्य-सिद्धि के लिये अपने मुकुट के अग्र भागसे भगवान्के चरण स्पर्श करते हुए प्रणाम करके उनसे प्रार्थना की और कार्य बन जाने पर उन्हीं का विरोध किया, अहो! देवताओं को बड़ा क्रोध आताहै, ऐसे धन-पद पर ही धिक्कार है ॥४१॥

अथो मुहूर्त एकस्मिन्नानागारेषु ताः स्त्रियः ।
यथोपयेमे भगवांस्तावद्रूपधरोऽव्ययः ॥४२॥

फिर वे जितनी स्त्रियाँ थीं उतने ही स्वरूप धारण करके, भगवान् ने अलग २ घरों में एक ही समय उन सबका एक ही साथ नियम पूर्वक पाणिग्रहण किया ॥४२॥

गृहेषु तासामनपाय्यतर्क्यकृन्निरस्तसाम्यातिशयेष्ववस्थितः । रेमे रमाभिर्निजकामसंप्लुतो यथेतरो गार्हकमेधिकांश्चरन् ॥४३॥

जिनके घरों की समता या अधिकता कोई भी घर नहीं कर सकता; इस प्रकार के उन रानियों के घरों में सदा रहते तथा पूर्णानन्द स्वरूप होते हुए भी साधारण गृहस्थों की भांति धर्म करते हुए अचिन्त्य कार्य-कर्त्ता, अविनाशी भगवान् लक्ष्मीजी की अंश-रूपा उन स्त्रियों के साथ रमण करते थे ॥

इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम् । भेजुर्मुदाऽविरतमेधितयाऽनुरागहासावलोकनवसङ्गमजल्पलज्जाः॥४४॥

ब्रह्मादिक भी जिनकी पदवी को नहीं जानते, ऐसे लक्ष्मीजी के पति भगवान् को अपने पति रूप से पाकर, वे स्त्रियां निरन्तर बढ़तीहुई प्रीति और स्नेहमयी हास्य पूर्वक चितवन करती थीं और आनन्द पूर्वक नित्य नवीन संगम, भाषण तथा लज्जा का सेवन करती थीं ॥४४॥

प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः । केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैर्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥४५॥

यद्यपि प्रत्येक रानी के सैकड़ों दासियां थीं, फिर भी स्वागत करना, आसन देना, सुन्दर पूजन करना, चरण धोना, बीड़ा देना, चरण चापना, पंखा झलना, चन्दन,पुष्प अर्पण करना, केश सुलझाना, शैया संभालना, स्नान और भोजन कराना आदि उपचारों के द्वारा वे भगवान् की सेवा स्वयं ही करती थीं ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साठवां अध्याय

(श्रीरुक्मिणी जी का रुष्ट होना)

श्रीशुक उवाच

कर्हिचित्सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुम् ।
पतिं पर्यचरद्भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–एक समय जगद्गुरु भगवान् सुख-पूर्वक शैया पर विराजमान् थे, रुक्मिणी जी सखियों के साथ पंखा झलती हुई उनकी सेवा कर रहीं थीं ॥ १ ॥

यस्त्वेतल्लीलया विश्वं सृजत्यत्त्यवतीश्वरः ।
स हि जातः स्वसेतूनां गोपीथाय यदुध्वजः ॥ २ ॥

जो ईश्वर लीला ही से इस जगत् को रचते, पालते तथा संहार करते हैं, वही जन्म-रहित प्रभु अपनी मर्यादा की रक्षा करने के लिये यादवों में प्रकट हुए हैं ॥२॥

तस्मिन्नन्तर्गृहे भ्राजन्मुक्तादामविलम्बिना ।
विराजितवितानेन दीपैर्मणिमयैरपि ॥३॥

वहाँ घर के भीतर प्रकाशमान् मोतियों की मालायें लटकाई गई थीं, शोभामयी छत बंधी थी मणियों के दीपक जगमगाते थे ॥३

मल्लिकादामभिः पुष्पैर्द्विरेफकुलनादिते ।
जालरन्ध्रप्रविष्टैश्च गोभिश्चन्द्रमसोऽमलैः ॥ ४ ॥

चमेली के फूलों की माला पर भौंरों का झुंड गूञ्ज रहा था, झरोखोंमें होकर चन्द्रमाकी निर्मल किरणें दीखती थीं ॥४॥

पारिजातवनामोदवायुनोद्यानशालिना ।
धूपैरगुरुजै राजञ्जालरन्ध्रविनिर्गतैः ॥ ५ ॥

कल्पवृक्ष के वन की सुगन्ध लिये हुए बाग में पवन आरही थी,हे राजन् ! झरोखों में से अगर के धूपका धुआँ निकल रहा था ॥५॥

पयःफेननिभे शुभ्रे पर्यङ्के कशिपूत्तमे ।
उपतस्थे सुखासीनं जगतामीश्वरं पतिम् ॥ ६ ॥

दूधके फेनके समान सफ़ेद,कोमल और उत्तम बिछौने वाले पलंगपर सुखपूर्वक विराजमान अपने पति जगदीश्वर श्रीकृष्णचन्द्र जी की रुक्मिणीजी सेवा कर रही थीं ॥ ६ ॥

बालव्यजनमादाय रत्नदण्डं सखीकरात् ।
तेन वीजयती देवी उपासाञ्चक्र ईश्वरम् ॥ ७॥

रत्नों की डंडी वाली छोटी चमरी को अपने हाथमें लेकर, उससे पवन करती हुई रुक्मिणीजी भगवान् की सेवा कर रहीं थीं ॥७॥

सोपाच्युतं क्वणयती मणिनूपुराभ्यां रेजेऽङ्गुलीयवलयव्यजनाग्रहस्ता। वस्त्रान्तगूढकुचकुंकुमशोण हारभासा नितम्बधृतया च परार्ध्यकाञ्च्या॥ ८ ॥

वे श्रीकृष्णजी के पास जड़ाऊ नूपुरों का शब्द करती हुई शोभा देरही थीं, वे अंगुलियों में अंगूठी पहने, पहुंचे में चूड़ी और कङ्कण धारण किये,हाथ में पंखा लिये, साड़ी के छोरसे ढके हुए स्तनों की केसरसे रँगेहुए अरुण मोतियोंके हार तथा कमर में पहने हुए कटिमेखला से शोभायमान् हैं ॥ ८ ॥

तां रूपिणीं श्रियमनन्यगतिं निरीक्ष्य या लीलया धृततनोरनुरूपरूपा । प्रीतः स्मयन्नलककुण्डल-निष्ककण्ठवत्क्रोलसत्स्मितसुधां हरिराबभाषे॥९॥

श्रीभगवान् के लीलासे धारण किये हुए अवतारके अनुरूप ही जिनका रूप है, जिन्हें एक मात्र भगवान् का ही आश्रय है, जिनके अलकें, कुण्डल और कंठाभरण युक्त कंठसे सुशोभित मुखमें मन्द मुसकान रूपी अमृत झलक रहा है, उन साक्षात् लक्ष्मीरूप श्रीरुक्मिणीजीको देखकर प्रसन्नतापूर्वक मुसकराते हुए श्रीकृष्णजी कहने लगे ॥९॥

श्रीभगवानुवाच

राजपुत्रीप्सिता भूपैर्लोकपालविभूतिभिः ।
महानुभावैः श्रीमद्भी रूपौदार्यबलोर्जितैः ॥१०॥

श्रीभगवान् बोले–हे राजकुमारीजी ! लोकपालोंके समान ऐश्वर्यवान्, महानुभाव, लक्ष्मीवान् रूप, उदारता और बल से समृद्धशाली राजागण तुम्हारी अभिलाषा करते थे ॥१०॥

तान्प्राप्तानर्थिनो हित्वा चैद्यादीन्स्मरदुर्मदान् ।
दत्ता भ्रात्रा स्वपित्रा च कस्मान्नो वृतवेऽसमान् ११

और तुम्हारा भाई तथा पिता भी उन्हें देनेको तैयार था, फिर कामदेव के मद से मतवाले और प्रार्थना करतेहुए आनेवाले शिशुपाल आदि राजाओं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को छोड़कर तुमने मुझे क्यों वरण किया ? मैं तो तुम्हारी समता का नहीं हूँ ॥११॥

राजभ्यो बिभ्यतः सुभ्रूः समुद्रं शरणं गतान् ।
बलवद्भिः कृतद्वेषान्प्रायस्त्यक्तनृपासनान् ॥१२॥

हे सुन्दर भृकुटि वाली ! बहुधा राजाओं से डरता हुआ मैं समुद्रकी शरण आया हूँ, दूसरे बलवानों से मेरी शत्रुता बढ़ रही है, इसलिये मैंने राज-सिंहासन भी छोड़ दिया है ॥१२॥

अस्पष्टवर्त्मनां पुंसामलोकपथमीयुषाम् ।
आस्थिताः पदवीं सुभ्रूः प्रायः सीदन्ति योषितः१३

हे सुभ्रू ! जिनके आचरण का पता न हो, जो स्त्रियों का कहना न माने और जिनका मार्ग लोक-विरुद्ध हो, ऐसे पुरुषों का अनुसरण करने वाली स्त्रियाँ बहुधा दुःख पाती हैं ॥ १३ ॥

निष्किञ्चना वयं शश्वन्निष्किञ्चनजनप्रियाः ।
तस्मात्प्रायेण न ह्याढ्या मां भजन्ति सुमध्यमे १४

मैं स्वयं अकिंचन हूँ, फिर मुझे अकिंचन जन ही प्यारे लगते हैं, इसलिये हे सुमध्यमे ! बहुधा धनी पुरुष मेरा भजन नहीं करते ॥१४॥

ययोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः ।
तयोर्विवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित्॥१५॥

जिनके धन, जन्म, वैभव, स्वरूप या जाति और भावी समय की स्थिति समान हो, उन्हीं दोनों में विवाह या मित्रता होनी उचित है, उत्तम और अधमके बीचमें ऐसा संबंध होना ठीक नहींहै।

वैदर्भ्येतदविज्ञाय त्वयाऽदीर्घसमीक्षया ।
वृता वयं गुणैर्हीना भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा॥१६॥

हे रुक्मिणी ! न तो तुम इस बात को समझ सकीं और न तुमने दूरन्देशी से काम ही लिया, केवल भिखारियों के द्वारा मेरी प्रशंसा सुनकर ही तुमने मुझ गुणहीन के साथ विवाह कर लिया है ॥

अथात्मनोऽनुरूपं वै भजस्व क्षत्रियर्षभम् ।
येन त्वमाशिषः सत्या इहामुत्र च लप्स्यसे ॥१७॥

अबभी तुम्हारे योग्य जो श्रेष्ठ क्षत्रिय हो उस के साथ विवाह करलो जिससे तुम्हें लोक तथा परलोककी कामनायें प्राप्त हो सकेंगी ॥१७॥

चैद्यशाल्वजरासन्धदन्तवक्रादयो नृपाः ।
मम द्विषन्ति वामोरु रुक्मी चापि तवाग्रजः॥१८॥

हे वामोरु ! शिशुपाल, शाल्व जरासंध दंतवक्र आदि राजा और तुम्हारा भाई रुक्म यह सब मुझसे वैर रखते हैं ॥१८॥

तेषां वीर्यमदान्धानां दृप्तानां स्मयनुत्तये ।
आनीतासि मया भद्रे तेजोऽपहरताऽसताम् ॥१९॥

हे भद्रे ! मैं तुम्हें केवल पराक्रम से मदान्ध और अभिमानी उन राजाओं का गर्व तथा दुष्टोंका तेज हरण करने के लिये ही ले आया हूँ ॥१९॥

उदासीना वयं नूनं न स्त्र्यपत्यार्थकामुकाः ।
आत्मलब्ध्याऽऽस्महे पूर्णा गेहयोर्ज्योतिरक्रियाः२०

मैं उदासीनहूँ, मुझे स्त्री, पुत्र या धनकी इच्छा नहीं और न घर या देह की परवाहहै, वरन् मैं तो आत्मानन्दसे पूर्ण दीपक की भांति साक्षी और क्रिया रहित हूँ ॥२०॥

श्रीशुक उवाच

एतावदुक्त्वा भगवानात्मानं वल्लभामिव ।
मन्यमानामविश्लेषात्तद्दर्पघ्न उपारमत् ॥२१॥

श्रीशुकदेवजी बोले-मनको हरण करने वाले भगवान् श्रीकृष्णचंद्रजी-अपने से कभी अलग न न होने वाली और अपने को विशेष वल्लभा (श्रीकृष्ण भगवान् की परम प्रियतमा) मानने वाली रुक्मिणी के गर्व भंग करने के लिये यह वचन कह कर चुप हो गये ॥२१॥

इति त्रिलोकेशपतेस्तदात्मनः प्रियस्य देव्यश्रुतपूर्वमप्रियम् । आश्रुत्य भीता हृदि जातवेपथुश्चिन्तां दुरन्तां रुदती जगाम ह ॥२२॥

तीनों लोकों के स्वामियों के भी स्वामी तथा अपने प्यारे भगवान् के जैसे वचन कभी न सुने थे वैसे अप्रिय वचन सुनकर रुक्मिणी हृदय में भय भीत होकर काँपने लगीं और रोती हुई अपार चिन्ता में डूब गईं ॥२३॥

पदा सुजातेन नखारुणश्रिया भुवं लिखन्त्यश्रुभिरञ्जनासितैः।आसिञ्चती कुङ्कुमरूषितौ स्तनौ तस्थावधोमुख्यतिदुःखरुद्धवाक् ॥२३॥

नखकी अरुण कान्ति वाले कोमल चरण से पृथ्वीको कुचरतीहुईं और अंजन मिलेहुए आंसुओं के द्वारा केसर से रँगे हुए स्तनों को सींचती हुई अतीव दुःख से रुँधे हुए कंठ वाली रुक्मिणीजी नीचा मुख करके बैठ गईं ॥२३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्याः सुदुःखभयशोकविनष्टबुद्धेर्हस्ताच्छ्लथद्वलयतो व्यजनं पपात । देहश्च विक्लवधियः सहसैव मुह्यन्नम्भेव वायुविहता प्रविकीर्य केशान् ॥

अप्रिय वचन सुननेसे अत्यंत दुःख और त्यागने की शंका से भय और पश्चाताप के मारे जिनकी बुद्धि विह्वल होगई है, ऐसी रुक्मिणीजीके हाथ से पंखा गिरगया और कंकण भी गिरने लगे तथा उन विवश बुद्धि वाली रुक्मिणी का शरीर भी इस प्रकार मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर गया, जैसे वायु के झोंके से कदली का वृक्ष गिर जाता है, एवं उनके केश-बंद भी बिखर गये ॥२४॥

तद्दृष्ट्वा भगवान्कृष्णः प्रियायाः प्रेमबन्धनम् ।
हास्यप्रौढिमजानन्त्याः करुणः सोऽन्वकम्पत २५॥

हास्यकी गूढ़ता को न जानने वाली प्यारी रुक्मिणीका प्रेम-बंधन देखकर करुणाकर श्रीकृष्णचन्द्रजी द्रवीभूत होगये ॥२५॥

पर्यङ्कादवरुह्याशु तामुत्थाप्य चतुर्भुजः ।
केशान्समुह्य तद्वक्त्रं प्रामृजत्पद्मपाणिना ॥२६॥

वे तत्काल ही चार भुजायें धारण करके पलंग पर से नीचे उतर कर श्रीरुक्मिणीजी को उठाकर उनके केशों को संभाल कर मुखको अपने कमल के समान कोमल हाथों से पोंछने लगे ॥२६॥

प्रमृज्याश्रुकले नेत्रे स्तनौ चोपहतौ शुचा ।
आश्लिषद्बाहुना राजन्ननन्यविषयां सतीम् ॥२७॥
सान्त्वयामास सान्त्वज्ञः कृपया कृपणां प्रभुः ।
हास्यप्रौढिभ्रमच्चित्तामतद्दहां सतां गतिः ॥२८॥

हे राजन् ! आँसुओं से भरे हुए नेत्र तथा ताड़ित स्तनोंको पोंछकर अनन्य आश्रय पतिव्रता रुक्मिणी को भुजाओं से आलिंगन करके, हँसी से अनस्थिर चित्त वाली तथा कठोर हास्य सहन करने के अयोग्य उन दीन रुक्मिणी को साधुओं की गति देनेवाले श्रीकृष्णजी समझाने लगे २७।२८

श्रीभगवानुवाच

मा मां वैदर्भ्यसूयेथा जाने त्वां मत्परायणाम् ।
त्वद्वचः श्रोतुकामेन क्ष्वेल्याचरितमङ्गने ॥२९॥

श्रीभगवान् बोले–हे रुक्मिणी ! तुम मुझ पर दोष-दृष्टि न करो, मैं यह जानता हूँ कि तुम मुझे छोड़कर किसी और को नहीं जानतीं, मैंने तो केवल इसलिये हँसी की है कि देखूं तुम इसका क्या उत्तर देतीहो ? ॥२९॥

मुखं च प्रेमसंरम्भस्फुरिताधरमीक्षितुम् ।
कटाक्षेपारुणापाङ्गसुन्दरभ्रुकुटीतटम् ॥३०॥

मैंने प्रेममय कोप से फड़कते हुए अधर युक्त और चञ्चल अरुण कटाक्ष से तिरछी भौंह वाले तुम्हारे मुख की शोभा देखनेको हँसी की थी॥३०॥

अयं हि परमो लाभो गृहेषु गृहमेधिनाम् ।
यन्नर्मैर्नीयते यामः प्रियया भीरु भामिनि ॥३१॥

हे भामिनी ! हे भीरु ! अपनी प्रिया के साथ हास-विलास में समय काटना ही तो गृहस्थों के यहाँ परम सुख है ॥३१॥

श्रीशुक उवाच

सैवं भगवता राजन्वैदर्भी परिसान्त्विता ।
ज्ञात्वा तत्परिहासोक्तिं प्रियत्यागभयं जहौ ॥३२॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! जब इस तरह से श्रीकृष्ण भगवान्ने धीरज बंधाया, तब अपने प्रियतम के हँसी के वचन समझ कर रुक्मिणी ने अपने हृदय से यह भय छोड़ दिया कि प्यारे मुझे छोड़ देंगे ॥३२॥

बभाषे ऋषभं पुंसां वीक्षन्ती भगवन्मुखम् ।
सव्रीडहासरुचिरस्निग्धापाङ्गेन भारत ॥३३॥

हे भारत ! वह लज्जामय हास्य और सुन्दर स्नेह मय कटाक्षों से पुरुष-श्रेष्ठ भगवान् के मुखकमल को देखती हुई कहने लगीं ॥ ३३ ॥

रुक्मिण्युवाच

नन्वेवमेतदरविन्दविलोचनाऽहं यद्वै भवान्भगवतोऽसदृशी विभूम्नः । क्व स्वे महिम्न्यभिरतो भगवांस्त्र्यधीशः क्वाहं गुणप्रकृतिरज्ञगृहीतपादा ३४

रुक्मिणी बोलीं–हे कमल नयन ! आपके कथनानुसार मैं सचमुच ही आपके समान नहीं हूँ, क्योंकि अपने स्वरूपानन्द ही में मग्न रहने वाले और ब्रह्मादिकों के भी स्वामी आप कहाँ ? और पामर तथा अज्ञानी जन जिसके चरणों की सेवा करते हैं, वह लक्ष्मीरूप त्रिगुणात्मक स्वभाव वाली मैं (रुक्मिणी) कहाँ ? ॥३४॥

सत्यं भयादिव गुणेभ्य उरुक्रमान्तः शेते समुद्र उपलम्भनमात्र आत्मा । नित्यं कदिन्द्रियगणैः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृतविग्रहस्त्वं त्वत्सेवकैर्नृपपदं विधुतं तमोऽन्धम्॥

आपका यह कहनाभी सत्यहै कि हम राजाओं के भयसे समुद्रकी शरण आये हैं, क्योंकि त्रिगुण रूपी राजाओं से बचकर समुद्रके समान अगाध हृदयमें आप चैतन्य धन आत्म-स्वरूप प्रकाशमान् हैं, आपका बलवानों से बैर करना भी सत्य है, क्योंकि विषय-लिप्त इन्द्रिय वाले पुरुषों ने आपका विरोध किया है, आपका राज्यासन छोड़ देना भी सत्य है; क्योंकि वह तो महा अज्ञान का स्थान है, उसे तुम्हारे सेवक तक छोड़ बैठते हैं, तब आपका छोड़ देना कौनसी बड़ी बात है ? ॥३५॥

त्वत्पादपद्ममकरन्दजुषां मुनीनां वर्त्मास्फुटं नृपशुभिर्ननु दुर्विभाव्यम् । यस्मादलौकिकमिवेहितमीश्वरस्य भूमंस्तवेहितमथो अनु ये भवन्तम् ॥

आपने जो यह कहाहै कि हमारा मार्ग समझने में नहीं आता, सो यहभी सत्य है, क्योंकि हे प्रभु! जब आपके चरणारविन्द के पराग का सेवन करने वाले मुनियों का ही आचरण पामर पुरुषों की समझ में नहीं आता, तब आपका आचरण क्या समझ में आ सकता है ? आपने कहा है कि हम स्त्रियों के वश में नहीं हैं, हमारा मार्ग ही अलगहै, यह भी सत्य है, क्योंकि आपका अनुसरण करने वाले लोगों तक का जब मार्ग और लोगोंसे जुदाहै तब आप ईश्वर का जुदा मार्ग होना कौनसी विचित्र बात है ॥ ३६ ॥

निष्किञ्चनो ननु भवान्न यतोस्ति किञ्चिद्यस्मै बलिं बलिभुजोऽपि हरन्त्यजाद्याः । न त्वा विदन्त्य सुतृपोऽन्तकमाढ्यतान्धाः प्रेष्ठो भवान्बलिभुजामपि तेऽपि तुभ्यम् ॥३७॥

आपका यह कहना भी सत्यहै कि 'हम अकिंचन हैं' क्योंकि आपसे भिन्न कुछ है ही नहीं, जब केवल आप ही आप सब कुछ हैं, तो आपके पास किसी वस्तु का होना कैसे संभव हो सकता है ? हाँ, आप 'अकिंचन' पद लेकर अपने को दरिद्र नहीं कहसकते, क्योंकि दूसरोंकी पूजा ग्रहणकरने वाले ब्रह्मा आदि भी आपकी पूजा किया करते हैं, आपने कहा है कि हमें अकिंचन जन प्रिय हैं और मैं उनको प्रिय हूँ-सो भी सत्य है, क्योंकि ब्रह्मा आदि ब्रह्मवेत्ताओं को आप तथा आपको वे प्रियहैं आपने जो यह कहा है कि मुझे समृद्ध वाले लोग नहीं भजते-सो यह भी सत्य है, क्योंकि धनी होने के मदमें अन्धे लोग आप काल रूपको नहीं जानते इसलिये वे इन्द्रियों को ही तृप्त किया करते हैं, आपका भजन नहीं करते ॥३७॥

त्वं वै समस्तपुरुषार्थमयः फलात्मा यद्वाञ्छया सुमतयो विसृजन्ति कृत्स्नम् । तेषां विभो समुचितो भवतः समाजः पुंसः स्त्रियाश्च रतयोः सुख दुःखिनोर्नः ॥३८॥

आपने कहा है कि उत्तम और अधम के बीच में विवाह या मित्रता होना उचित नहीं है-सो भी ठीक है, क्योंकि जो विद्वान् पुरुष आपको सब पुरुषार्थ मय और आनन्द-स्वरूप जानकर परमानन्द पाने के लिये सर्वस्व छोड़ देते हैं, हे प्रभु ! आपका उन्हीं से सम्बन्ध होना उचित है, परन्तु सुख-दुःख से व्याकुल और परस्पर प्रीतिकी ग्रंथि बांधे हुए पामर स्त्री-पुरुषों के योग्य नहीं ॥ ३८ ॥

त्वं न्यस्तदण्डमुनिभिर्गदितानुभाव आत्मात्मदश्च जगतामिति मे वृतोऽसि । हित्वा भवद्भ्रुव उदीरितकालवेगध्वस्ताशिषोऽब्जभवनाकपतीन्कुतोऽन्ये

आपका यह भी कथन सत्य है कि हमें भिक्षुक लोग बड़ाई देतेहैं,क्योंकि सबको त्यागकर भिक्षुक (सन्यासी) जन ही तो आपकी प्रशंसा करते हैं, परन्तु आपका यह कहना सत्य नहीं है कि तुमने मुझे भूलकर वरण कर लिया है, क्योंकि जिसके लिये सब कुछ अच्छा लगता है, उस जगत् के आत्म-रूप तथा स्वरूप देने वाले आपही हैं, इसी लिये मैंने आपकी भृकुटि मात्र की प्रेरणा से काल के वेग द्वारा नश्वर सुख वाले ब्रह्मा, इन्द्र आदि तक को छोड़कर आपको वरण किया है, मैंने दूर दर्शिता से काम नहीं लिया-मुझ पर आपका यह दोषारूपण झूंठ है ॥३९॥

जाड्यं वचस्तव गदाग्रज यस्तु भूपान्विद्राव्य शार्ङ्गनिनदेन जहर्थ मां त्वम् । सिंहो यथा स्वबलिमीश पशून्स्वभागं तेभ्यो भयाद्यदुदधिं शरणं प्रपन्नः ॥४०॥

हे कृष्ण ! हे ईश ! जैसे सिंह पशुओं को भगा कर अपना भक्ष्य ले जाता है, वैसे ही आप शार्ङ्ग धनुष की टंकार द्वारा जरासंध आदि राजाओंको भगाकर अपने भागरूपी मुझे लेआये हो, इसलिये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आपका यह कहना भी अज्ञान मूलक है कि हम राजाओं के भय से समुद्र की शरण आये हैं ॥४०॥

यद्वाञ्छया नृपशिखामणयोऽङ्गवैन्यजायन्तनाहुष गयादय ऐकपत्यम् । राज्यं विसृज्य विविशुर्वनमम्बुजाक्ष सीदन्ति तेऽनु पदवीं त इहास्थिताःकिम्॥

आपका यह कहना भी असत्य है कि हमारी पदवी का आश्रय लेने वाले दुःख पाते हैं, क्योंकि अन्य राजाओंके शिरोमणि अङ्ग,पृथु,भरत, ययाति और गय आदि राजा जो हुए हैं, वे भी आपका भजन करने की इच्छासे चक्रवर्त्ति राज्य छोड़कर बनमें चले गये, हे कमलाक्ष ! इससे सिद्ध होताहै कि आपकी पदवी का आश्रय लेने वाले दुःखीनहीं सुखीही होते हैं और आपके स्वरूपको पाजातेहैं ॥

काऽन्यं श्रयेत तव पादसरोजगन्धमाघ्राय सन्मुखरितं जनताऽपवर्गम् । लक्ष्म्यालयं त्वविगणय्य गुणालयस्य मर्त्या सदोरुभयमर्थविविक्तदृष्टिः ४२

आपने जो यह कहा है कि अपने योग्य किसी दूसरे क्षत्रियको वर ढूंढलो' सो ऐसी कौनसी स्त्री होगी जो गुणों के आश्रय रूप आपके चरणारविंद की लक्ष्मी का स्थान तथा लोगोंकी मोक्ष-रूप और सत्पुरुषों द्वारा वर्णन की जाने वाली सुगन्धि को सूंघने के पश्चात् उसका तिरस्कार करके सदैव अत्यन्त भयसे दबे हुए किसी दूसरे पतिको वरण करेगी, मरण धर्मा तथा अपने वास्तविक स्वार्थ को जानने वाली तो कभी ऐसा न करेगी ॥४२॥

तं त्वानुरूपमभजं जगतामधीशमात्मानमत्र च परत्र च कामपूरम्। स्यान्मे तवाङ्घ्रिशरणं सृतिभिर्भ्रमन्त्या यो वै भजन्तमुपयात्यनृतापवर्गः ।४३॥

इसलिये सब प्रकार से योग्य, जगत्पति, उभय लोक के मनोरथ पूर्ण करनेवाले और आत्म रूप आपको ही मैंने वरण किया है, चाहे मैं अनेक योनियों में भटकती रहूँ पर मेरी यही विनय है कि वहाँ भी समस्त जन्मों में मिथ्या जगत्के अन्त कर्त्ता और भक्तों को अपना बनाने वाले आपके चरणारविन्दों की मुझे शरण प्राप्त हो ॥४३॥

तस्याः स्युरच्युत नृपा भवतोपदिष्टाः स्त्रीणां गृहेषु खरगोश्वविडालभृत्याः । यत्कर्णमूलमरिकर्षण नोपयायाद्युष्मत्कथा मृडविरिञ्चसभासु गीता ॥४४॥

हे शत्रुघ्न ! हे अच्युत ! आपने कहाहै कि बड़े बड़े वैभवी राजा तुम्हें चाहते थे, सो तुमने उन्हें क्यों छोड़ दिया ? इसका कारण यह है कि आपके बतलाये हुए राजागण स्त्रियों के घरों में गधे की नाईं केवल भार उठाने वाले, बैल की भांति सदैव क्लेश भोगने वाले, श्वान की भांति अपमान सहने वाले, बिडालकी भांति कृपण और क्रूर और सेवक की तरह पराधीनहैं, ऐसे पति तो उस मन्दभागिनी को मिलना चाहिये कि जिसके कानों में शिव तथा ब्रह्माजी की सभाओं में गाई जाने वाली आपकी कथा न पहुंची हो, अर्थात् जिसने आपकी कथा न सुनी हो, संभव है कि ऐसी स्त्री भी भूल जाय, परन्तु मैंतो आपके गुणोंको पहलेही सुन चुकीथी॥

त्वक्श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमन्तर्मांसास्थिरक्तकृमिविट्कफपित्तवातम् । जीवच्छवं भजति कान्त मतिर्विमूढा या ते पदाब्जमकरन्दमजिघ्रती स्त्री ४५

जिस स्त्री ने आपके चरणारविन्द का पराग नहीं सूंघाहै तथा जो मूर्खहै, वही कदाचित जीवित रहते हुए मृतक तुल्य मनुष्यको पति मानकर उसे भजेगी, परन्तु जो यह जानती है कि यह मनुष्य ऊपर से तो खाल, दाढ़ी, मूंछ, रोम, नख और केशों से मढ़ा हुआहै और भीतर मांस, हाड़,लोहू, कीड़े, मल, कफ पित्त और वात से भरा है, वह कदापि उसे सेवन न करेगी ॥४५॥

अस्त्वम्बुजाक्ष मम ते चरणानुराग आत्मन्नतस्य मयि चानतिरिक्तदृष्टेः । यर्ह्यस्य वृद्धय उपात्तरजोऽतिमात्रो मामीक्षसे तदु ह नः परमाऽनुकम्पा ॥४६॥

आपने जो यह कहाहै कि 'हम तो उदासीनहैं' हमें किसी की अपेक्षा नहीं है' सो भी ठीक है; पर हे कमल नयन ! आप किसी की अपेक्षा नहीं करें और मुझे भी श्रेष्ठ नहीं समझें फिर भी आपके चरणारविन्द में मेरा प्रेम रहे, क्योंकि वही मेरे लिये बड़ा लाभ है, इस जगत् की वृद्धि के लिये रजोगुणकी बड़ी मात्रा लिये हुए मुझ मायारूपिणी की ओर जब कभी देखते हो, तो वही मुझे बड़ा अनुग्रह रूप होता है ॥४६॥

नैवालीकमहं मन्ये वचस्ते मधुसूदन । अम्बाया इव हि प्रायः कन्यायाः स्याद्रतिः क्वचित् ॥४७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे मधुसूदन ! आपने मुझे अब किसी दूसरे पर प्रेम करने को कहाहै, सो मैं इसे सत्य नहीं मानती। क्योंकि जैसे काशीराज की कन्या "अंबा" की कुमारावस्था में ही दूसरे राजासे प्रीति होगई थी, वैसेही कुमार-अवस्था में किसी दूसरेके साथ प्रीति होना संभव है ॥ ४७ ॥

श्रीभगवानुवाच

व्यूढायाश्चापि पुंश्चल्या मनोऽभ्येति नवं नवम् ।
बुधोऽसतीं न बिभृयात्तां बिभ्रदुभयच्युतः ॥४८॥

और कभी विवाहिता व्यभिचारिणी स्त्री का मन भी नये-नये पति पर जाताहै, इसके कई उदाहरण हैं, परन्तु विद्वान् पुरुष को ऐसी स्त्री कदापि घर में न रखनी चाहिये, क्योंकि उस कुलटा को रखने वाला पुरुष दोनों लोकसे नष्ट होजाता है ॥

साध्व्येतच्छ्रोतुकामैस्त्वं राजपुत्रि प्रलम्भिता ।
मयोदितं यदन्वात्थ सर्वं तत्सत्यमेव हि ॥४९॥

श्रीभगवान् बोले–हे पतिव्रता राजकुमारी ! तुम्हारे मुख से ऐसे वचन सुनने के लिये ही मैंने हँसी की थी, तुमने जो मेरे वचनों का उत्तर दिया है, वह सभी यथार्थ है ॥४९॥

यान्यान्कामयसे कामान्मय्यकामाय भामिनि ।
सन्ति ह्येकान्तभक्तायास्तव कल्याणि नित्यदा ५०

हे भामिनी ! तुम जो-जो इच्छाएँ करती हो, वे सब मेरी एकान्त भक्ति के कारण तुम्हें स्वयं प्राप्त हैं, फिर भी हे कल्याणि ! वे अन्तमें मोक्षदायनी होंगी ॥५०॥

उपलब्धं पतिप्रेम पातिव्रत्यं च तेऽनघे ।
यद्वाक्यैश्चाल्यमानाया न धीर्मय्यपकर्षिता ॥५१॥

हे अनघे ! तुम्हारा पति-प्रेम तथा पतिव्रत मैंने भलीभांति जान लियाहै, क्योंकि मेरे द्वारा चलायमान करने पर भी तुम्हारी बुद्धि किसी दूसरे विषयमें न जाकर मुझमें ही दृढ़ता पूर्वक लगीरही॥

ये मां भजन्ति दाम्पत्ये तपसा व्रतचर्यया ।
कामात्मानोऽपवर्गेशं मोहिता मम मायया ॥५२॥

मुझ मोक्षपति का जो लोग स्त्री-पुरुष संबंधी सुख-भोगके लिये तप और व्रत धारण करके यजन करते हैं वे विषयी जन मेरी माया से मोहित समझने चाहियें ॥५२॥

मां प्राप्य मानिन्यपवर्गसंपदं वाञ्छन्ति ये संपद एव तत्पतिम् । ते मन्दभाग्या निरयेऽपि ये नृणां मात्रात्मकत्वान्निरयः सुसंगमः ॥५३॥

हे मानिनी ! मुझ सम्पदा तथा तथा मोक्ष-सम्पन्न को प्रसन्न करके जो लोग केवल सम्पदा रूपी विषय सुख की ही इच्छा करते हैं और मुझ संपदाओं के स्वामी को नहीं जानते, उन लोगों को मन्दभागी ही समझना चाहिये, क्योंकि विषय-सुख तो नरक में भी मिल सकता है, वरन् विषय सुख में चित्त रहने से नरक ही मिलता है ॥५३॥

दिष्ट्या गृहैश्वर्यसकृन्मयि त्वया कृतानुवृत्तिर्भव मोचनी खलैः । सुदुष्करोऽसौ सुतरां दुराशिषो ह्यसम्भराया निकृतिं जुषः स्त्रियाः ॥५४॥

हे गृह-स्वामिन् ! संसार से मुक्ति देने वाली और निष्काम मनकी भावना जो तुमने बार-बार मुझमें लगाई है यह बहुत ही अच्छा हुआहै. क्योंकि दुष्ट पुरुषों एवं दुष्ट प्रयोजन वाली अपने ही प्राणों का पोषण करने वाली और ठगी करनेवाली की चित्त-वृत्ति कभी मुझमें नहीं लगती ॥ ५४॥

न त्वादृशीं प्रणयिनीं गृहिणीं गृहेषु पश्यामि मानिनि यया स्वविवाहकाले । प्राप्तान्नृपान-विगणय्य रहोहरो मे प्रस्थापितो द्विज उपश्रुत-सत्कथस्य ॥५५॥

हे मानिनी ! यद्यपि निष्काम होकर मेरी सेवा करने वाली बहुतसी स्त्रियाँ मेरे घरमें हैं, फिर भी तुम्हारी भांति प्रेमिका मुझे दूसरी नहीं दिखलाती क्योंकि तुमने अपने विवाहके समय आये हुए राजाओं को तुच्छ मानकर, केवल मेरा यश सुनकर ही उत्पन्न हुए प्रेम के कारण ब्राह्मणको गुप्त संदेश देकर मेरे पास भेजा था ॥ ५५॥

भ्रातुर्विरूपकरणं युधि निर्जितस्य प्रोद्वाहपर्वणि च तद्वधमक्षगोष्ठ्याम् । दुःखं समुत्थमसहोऽस्मद-योगभीत्या नैवाब्रवीः किमपि तेन वयं जितास्ते५६

तुम्हारे भाई को युद्धमें जीतकर हमने विरूप कर दिया और अनिरुद्ध के विवाह समय उसे जुआरियों की सभा में मार भी डाला, परन्तु तुम इस बातको इसके कारण समय २ पर उमड़ आने वाले दुःख को केवल मेरे वियोग के भय से सहन कर रहीहो और इस विषयमें कुछभी नहीं कहतीं इसलिये तुमने मुझे वशमें कर रक्खा है॥ ५६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूतस्त्वयाऽऽत्मलभने सुविविक्तमन्त्रः प्रस्थापितो मयि चिरायति शून्यमेतत् । मत्वा जिहास इदमङ्गमनन्ययोग्यं तिष्ठेत तत्त्वयि वयं प्रतिनन्दयामः ॥५७॥

मेरे पाने के लिये गुप्त सम्मति देकर तुमने दूतको भेजा, फिर मेरे आने में देर हुई तो तुमने इस संसार को शून्य मानकर और अपने शरीर को दूसरे के योग्य न समझ कर इसे छोड़ देनेका विचार किया, इसलिये हम तुमसे उऋण नहीं हो सकते, वरन् केवल तुम्हारी प्रशंसा करके तुम्हें प्रसन्न किया करते हैं ॥५७॥

श्रीशुक उवाच

एवं सौरतसंलापैर्भगवाञ्जगदीश्वरः । स्वरतो रमया रेमे नरलोकं विडम्बयन् ॥५८॥

श्रीशुकदेवजी बोले–जगदीश्वर भगवान् यद्यपि आत्माराम हैं फिर भी नर-लोककी लीला का अनुकरण करते हुए वे इस प्रकार की हास्यमय बातें करके श्रीरुक्मिणी से रमण किया करते थे ॥५८॥

तथान्यासामपि विभुर्गृहेषु गृहवानिव । आस्थितो गृहमेधीयान्धर्मान्लोकगुरुर्हरिः ॥५९॥

इसी तरह जगद्गुरु हरि श्रीकृष्ण भगवान् दूसरी रानियों के घरों में भी गृहस्थ लोगों की भांति गार्हस्थ सम्बन्धी आचरण करते हुए विचरते थे ॥ ५९ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे षष्टित्तमोऽध्यायः ॥६०॥

इकसठवां अध्याय

(श्रीकृष्ण-सन्तति वर्णन)

एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान्दश दशाबलाः । अजीजनन्ननवमान्पितुः सर्वात्मसंपदा ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–श्रीकृष्णजी के यहाँ प्रत्येक रानी से दस-दस पुत्र हुए, जो किसी बात में उन से कम न थे ॥१॥

ग्रहादनपगं वीक्ष्य राजपुत्र्योऽच्युतं स्थितम् । प्रेष्ठं न्यमंसत स्वं स्वं न तत्तत्त्वविदः स्त्रियः ॥ २ ॥

श्रीकृष्ण घर छोड़कर बाहर न जाते थे और वहीं रहते थे, यह देखकर वे राज-कन्यायें उनको अपना ही प्यारा जानती थीं, क्योंकि वे यह न जानती थीं कि भगवान् तो सभी आत्माओं में रमण करते हैं ॥२॥

चार्वब्जकोशवदनायतबाहुनेत्रसप्रेमहासरसवीक्षितवल्गुजल्पैः। संमोहिता भगवतो न मनो विजेतुं स्वैर्विभ्रमैः समशकन्वनिता विभूम्नः ॥३॥

सुन्दर कमल-कोश के समान मुख, विशाल बाहु, विस्तीर्ण नयन और प्रेम मय हास-रस के साथ भगवान् की चितवन तथा मन हरण वाणी से मोहित हुईं वे स्त्रियाँ अपने अनेक प्रकार के विलास करके भी भगवान्को मोहित न करसकीं॥

स्मायावलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमण्डलप्रहित सौरतमन्त्रशौण्डैः । पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्गबाणैर्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न शेकुः ॥ ४ ॥

गूढ़ हास्य युक्त कटाक्ष द्वारा जतलाये हुए अभिप्राय से और मन हरने वाले भृकुटि मण्डल द्वारा प्रेरित सुरत सम्बन्धी विचारों में ढीढ़ कामदेव के बाणों तथा दूसरे भी काम शास्त्र के प्रसिद्ध उपायोंसे वे सोलह हज़ार एकसौ आठ स्त्रियाँ श्री भगवान्के मनको वशमें न कर सकीं ॥४॥

इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम् । भेजुर्मुदाऽविरतमेधितयाऽनुरागहासावलोकनवसंगमलालसाद्यम् ॥५॥

जिनकी पदवीको ब्रह्मा आदि भी नहीं जानते उन लक्ष्मीपति भगवान् को पति पाकर, वे स्त्रियाँ निरन्तर बढ़ती हुई प्रीति से इस प्रकार स्नेह मयी हास्य, कटाक्ष और नवीन संगम में उत्पन्न होने वाली उमंग आदि विलासों का सेवन किया करती थीं ॥ ५ ॥

प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः । केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैर्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥ ६ ॥

यद्यपि प्रत्येक रानी के पास सैकड़ों दासियाँ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

थीं, फिर भी स्वागत, आसन, श्रेष्ठ पूजन, चरण धोना, बीड़ा देना, पंखा झलना, चन्दन लगाना, चरण चाँपना, पुष्प-माल पहिनाना, केश संभालना स्नान और भोजन करवाना आदि...यह उपचार स्वयं करके वे दासी भाव निभाती थीं ॥६॥

तासां या दशपुत्राणां कृष्णस्त्रीणां पुरोदिताः ।
अष्टौ महिष्यस्तत्पुत्रान्प्रद्युम्नादीन्गृणामि ते॥ ७॥

भगवान्की प्रत्येक रानी से दस-दस पुत्र हुए, उनसे पहले कही हुई आठ पटरानियों के प्रद्युम्न आदि पुत्रों के नाम मैं तुमसे कहता हूँ ॥७॥

चारुदेष्णः सुदेष्णश्च चारुदेहश्च वीर्यवान् ।
सुचारुश्चारुगुप्तश्च भद्रचारुस्तथापरः ॥ ८ ॥
चारुचन्द्रो विचारुश्च चारुश्च दशमो हरेः ।
प्रद्युम्नप्रमुखा जाता रुक्मिण्यां नावमाः पितुः॥९॥

श्रीकृष्णजी के यहाँ रुक्मिणी से प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, पराक्रमी चारुदेश, सुचारु, चारुगुप्त भद्रचारु, विचारु और चारु-यह दस पुत्र हुए, जो अपने पिता के समान ही थे ॥ ८॥९ ॥

भानुः सुभानुः स्वर्भानुः प्रभानुर्भानुमांस्तथा ।
चन्द्रभानुर्बृहद्भानू रतिभानुस्तथाष्टमः ॥१०॥

भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान, चंद्रभानु, वृहद्भानु, आठवां अतिभानु, श्रीभानु और प्रतिभानु-यह पुत्र सत्यभामाजी से हुए ॥१०॥

श्रीभानुः प्रतिभानुश्च सत्यभामात्मजा दश ।
साम्बः सुमित्रः पुरुजिच्छतजिच्च सहस्रजित्॥११॥
विजयश्चित्रकेतुश्च वसुमान्द्रविडः क्रतुः ।
जाम्बवत्याः सुता ह्येते साम्बाद्याः पितृसंमताः१२॥

सांब, सुमित्र, पुरुजित्, शतजित्, सहस्रजित् विजय, चित्रकेतु, वसुमान, द्रविड़ और क्रतु-यह सांब से आदि लेकर श्रीकृष्ण के समान ही गुण वाले दस पुत्र जांबवन्तीजी से हुए ॥११॥१२॥

वीरश्चन्द्रोऽश्वसेनश्च चित्रगुर्वेगवान वृषः ।
आमः शंकुर्वसुः श्रीमान्कुन्तिर्नाग्नजितेः सुताः॥१३॥

वीरचन्द्र, अश्वसेन, चित्र, वेगवान्, वृष, आम, शंकु, शोभायमान, वसु और कुन्ति-ये दस नाग्नजिती के पुत्र हुए ॥१३॥

श्रुतः कविर्वृषो वीरः सुबाहुर्भद्र एकलः ।
शान्तिर्दर्शः पूर्णमासः कालिन्द्याः सोमकोऽवरः ॥

श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, एकमेद्र, शान्ति दर्श, पूर्णमास और सबसे छोटा सोमक-यह पुत्र कालिन्दीजी से हुए ॥१४॥

प्रघोषो गात्रवान्सिंहो बलः प्रबल ऊर्ध्वगः ।
माद्र्याः पुत्रा महाशक्तिः सह ओजोऽपराजितः ॥

प्रघोष, गात्रवान, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, ओज और अपराजित्-यह पुत्र माद्री के हुए ॥१५॥

वृको हर्षोऽनिलो गृध्रो वर्धनोऽन्नाद एव च ।
महाशः पावनो वह्निर्मित्रविन्दात्मजाः क्षुधिः १६॥

वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्द्धन, अन्नाद, महश पावन, वह्नि और क्षुधि-ये पुत्र मित्रविंदाके हुए ॥

संग्रामजिद्बृहत्सेनः शूरः प्रहरणोऽरिजित् ।
जयः सुभद्रो भद्राया वाम आयुश्च सत्यकः ।
दीप्तिमांस्ताम्रतप्ताद्या रोहिण्यास्तनया हरेः ॥१७॥
प्रद्युम्नाच्चानिरुद्धोऽभू द्रुक्मवत्यां महाबलः ।
पुत्र्यां तु रुक्मिणो राजन्नाम्ना भोजकटे पुरे॥१८॥
एतेषां पुत्रपौत्राश्च बभूवुः कोटिशो नृप ।
मातरः कृष्णजातानां सहस्राणि च षोडश ॥१९॥

संग्रामजित्, वृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित जय, सुभद्र, वाम, आयु और सत्यक-ये पुत्र भद्रा के हुए, भगवान् बल्देवजीकी रोहिणी नामकी पत्नी से दीप्तमान, ताम्रतप्त आदि पुत्र हुए, प्रद्युम्न के रुक्मवती नाम स्त्री से अनिरुद्ध नामक बलवान् पुत्र हुआ, हे राजन् ! यह रुक्मवती रुक्मकी कन्या थी और भोजकट नगर में प्रद्युम्न से व्याही गईथी इनके पुत्र और पौत्र मिलाकर करोड़ों थे, श्रीकृष्ण के पुत्रों की मातायें सोलह हज़ार एक सौ आठ थीं ॥१७॥१८॥१९॥

राजोवाच

कथं रुक्म्यरिपुत्राय प्रादाद्दुहितरं युधि ।
कृष्णेन परिभूतस्तं हन्तुं रन्ध्रं प्रतीक्षते ॥२०॥

परीक्षित बोले-हे ब्रह्मन् ! रुक्मने अपने शत्रु के पुत्र को अपनी कन्या कैसे दी ? इन दो शत्रुओं में विवाह सम्बन्ध कैसे होगया ? क्योंकि रुक्मतो श्रीकृष्ण से हार कर उनके मारने की घात लगा रहा था, इस चरित्को आप मुझसे कहिये ॥२०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एतदाख्याहि मे विद्वन्द्विषोर्वैवाहिकं मिथः ।
अनागतमतीतं च वर्तमानमतीन्द्रियम् ।
विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक्पश्यन्ति योगिनः ॥२१॥

श्रीरुक्मिणीजीका भाव आपसे छिपा न होगा. क्योंकि योगी पुरुष तो भूत, भविष्य, इन्द्रिय से अगम, दूर या छिपी हुई बात को भी भले प्रकार जानते हैं ॥२१॥

श्रीशुक उवाच

वृतः स्वयंवरे साक्षादनङ्गोऽङ्गयुतस्तया ।
राज्ञः समेतान्निर्जित्य जहारैकरथो युधि ॥२२॥

श्रीशुकदेवजी बोले—उस रुक्मवती ने आपही साक्षात् कामदेव की मूर्त्ति प्रद्युम्न को स्वयंवर में वरण कर लिया था, तब प्रद्युम्नजी अकेले ही एक रथ रखते हुए भी युद्ध में एकत्र हुए राजाओं को जीत कर उसे हर लाये थे ॥२२॥

यद्यप्यनुस्मरन्वैरं रुक्मी कृष्णावमानितः ।
व्यतरद्भागिनेयाय सुतां कुर्वन्स्वसुः प्रियम् ॥२३॥

यद्यपि भगवान्ने जो रुक्मीका अपमान किया था वह उसे याद था, फिर भी अपनी बहिन को प्रसन्न करनेके लिये उसने अपने भानजे प्रद्युम्न को अपनी कन्या दे दी ॥ २३॥

रुक्मिण्यास्तनयां राजन्कृतवर्मसुतो बली ।
उपयेमे विशालाक्षीं कन्यां चारुमतीं किल ॥२४॥

हे राजन् ! विशाल नयनी तथा सुन्दर बुद्धिमती रुक्मिणी की चारुमती नामकी कन्याके साथ बलवान् कृतवर्मा के पुत्र के साथ विवाह हुआ ॥

दौहित्रायानिरुद्धाय पौत्रीं रुक्म्यददाद्धरेः ।
रोचनां बद्धवैरोऽपि स्वसुः प्रियचिकीर्षया ।
जानन्नधर्मं तद्यौनं स्नेहपाशानुबन्धनः ॥२५॥

यद्यपि रुक्मि बैर रखताथा और यहभी जानता था कि शत्रुके साथ विवाह-सम्बन्ध करना अयोग्य है, फिर भी स्नेह बन्धन में बँधकर अपनी बहिन को प्रसन्न रखने के लिये श्रीकृष्ण के पौत्र अपने दौहित्र अनिरुद्ध को अपनी पौत्री रोचना नाम की कन्या व्याह दी ॥२५॥

तस्मिन्नभ्युदये राजन्रुक्मिणी रामकेशवौ ।
पुरं भोजकटं जग्मुः साम्बप्रद्युम्नकादयः ॥२६॥

हे राजन् ! उन अनिरुद्ध के विवाहोत्सव में रुक्मिणी, बल्देवजी, श्रीकृष्ण, सांब और प्रद्युम्न आदि सभी यादव भोजकट नगरमें बाराती बन कर गये थे ॥२६॥

तस्मिन्निवृत्त उद्वाहे कालिङ्गप्रमुखा नृपाः ।
दृप्तास्ते रुक्मिणं प्रोचुर्बलमक्षैर्विनिर्जय ॥२७॥

जब विवाह होचुका तब कलिंग आदि देशोंके अभिमानी राजाओं ने रुक्मसे कहा कि हे रुक्म ! तुम बलदेव को द्यूत में जीत लो ॥२७॥

अनक्षज्ञो ह्ययं राजन्नपि तद्व्यसनं महत् ।
इत्युक्तो बलमाहूय तेनाक्षै रुक्म्यदीव्यत ॥२८॥

हे राजन् ! यद्यपि यह जुआ खेलना जानते नहीं फिर भी इनको उसका बड़ा व्यसन है, इस तरह कहने पर रुक्मि बल्देवजी को बुलाकर उनके साथ जुआ खेलने लगा ॥२८॥

शतं सहस्रमयुतं रामस्तत्राददे पणम् ।
तं तु रुक्म्यजयत्तत्र कालिङ्गः प्राहसद्बलम् ।
दन्तान् संदर्शयन्नुच्चैर्नाभृष्यत्तद्बलायुधः ॥२९॥

बल्देवजी ने वहाँ क्रम पूर्वक सौ, हज़ार और दस हज़ार तक का दाँव लगाया, परन्तु रुक्म ने उसे जीत लिया, तब कलिंग-राज ने दाँत दिखाते हुए बल्देवजी की बहुत हँसी उड़ाई, वह हँसी बल्देवजी को सहन न हुई ॥२९॥

ततो लक्षं रुक्म्यगृह्णाद्द्यूतं तत्राजयद्बलः ।
जितवानहमित्याह रुक्मी कैतवमाश्रितः ॥३०॥

फिर रुक्म ने लाख मुहरों का दाँव लगाया, उसे बल्देवजी ने जीत लिया, परन्तु रुक्मी ने छल करके कहा कि मैं जीता हूँ ॥३०॥

मन्युना क्षुभितः श्रीमान्समुद्र इव पर्वणि ।
जात्यारुणाक्षोऽतिरुषा न्यर्बुदं ग्लहमाददे ॥३१॥

तब तो स्वभाव ही से रक्त नेत्रवाले बल्देवजी पूर्णमासी के समुद्र की भांति क्षोभित होकर दस करोड़ का दाँव लगा बैठे ॥३१॥

तं चापि जितवान्रामो धर्मेण च्छलमाश्रितः ।
रुक्मी जितं मयाऽत्रेमे वदन्तु प्राश्निका इति ॥३२॥

यद्यपि धर्मसे उसे बल्देवजी ही जीतेथे परन्तु रुक्म ने फिर कपट के साथ कहा कि यहाँभी मैंही जीताहूँ, इस विषयमें ये सभासदभी कह सकते हैं ॥

तदाऽब्रवीन्नभोवाणी बलेनैव जितो ग्लहः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धर्मतो वचनेनैव रुक्मी वदति वै मृषा ॥३३॥

तब आकाश वाणी हुई कि धर्म-पूर्वक तो यह दाँव बल्देवजी जीतेहैं, पर रुक्मी झूठ बोल रहाहै॥

तामनादृत्य वैदर्भो दुष्टराजन्यचोदितः ।
सङ्कर्षणं परिहसन्वभाषे कालनोदितः ॥३४॥

दुष्ट राजाओं द्वारा सिखाया हुआ वह रुक्मी आकाश-वाणी का भी अपमान करके और बल्देव जी की हँसी उड़ाता हुआ काल की प्रेरणा से इस प्रकार कहने लगा कि ॥३४॥

नैवाक्षकोविदा यूयं गोपाला वनगोचराः ।
अक्षैर्दीव्यन्ति राजानो बाणैश्च न भवादृशः ॥३५॥

तुम पाँसा खेलना जानते ही नहीं, क्योंकि तुम तो वनवासीहो गायें चराना जानतेहो. पाँसों और बाणों से खेलना तो राजाओं का काम है, तुम जैसों का नहीं ॥३५॥

रुक्मिणैवमधिक्षिप्तो राजभिश्चोपहासितः ।
क्रुद्धः परिघमुद्यम्य जघ्ने तं नृम्णसंसदि ॥३६॥

जब रुक्मने इस प्रकार तिरस्कार किया और दूसरे राजाओंने उनकी हँसी उड़ाई, तब बल्देवजी ने क्रोध-पूर्वक परिघ उठाकर उस मङ्गल सभा में रुक्म को मार डाला ॥३६॥

कलिङ्गराजं तरसा गृहीत्वा दशमे पदे ।
दन्तानपातयत्क्रुद्धो योऽहसद्विवृतैर्द्विजैः ॥३७॥

और कलिंगके राजाको तत्कालही दसवें क़दम पर पकड़कर क्रोध-पूर्वक उसके दाँत तोड़ दिये, क्योंकि वह दाँत दिखाकर हँसा था ॥३७॥

अन्ये निर्भिन्नबाहूरुशिरसो रुधिरोक्षिताः ।
राजानो दुद्रुवुर्भीता बलेन परिघार्दिताः ॥३८॥

अन्य राजागण बल्देवजी के परिघ से पीड़ित होकर डरतेहुए भागनिकले, उनके भुज, जंघा और मस्तक टूटगये थे और देह रक्तसे लथपथ थी ; ३८॥

निहते रुक्मिणि श्याले नाब्रवीत्साध्वसाधु वा ।
रुक्मिणीबलयो राजन् स्नेहभङ्गभयाद्धरिः ॥३९॥

हे राजन् ? जब श्रीकृष्ण का साला रुक्म मारा गया, तब उन्होंने न तो अच्छा ही कहा और न बुरा, क्योंकि अच्छा कहने में रुक्मिणीजी और बुरा कहने में बल्देवजी के अप्रसन्न होने की आशंका थी ॥३९॥

ततोऽनिरुद्धं सह सूर्यया वरं रथं समारोप्य
ययुः कुशस्थलीम् । रामादयो भोजकटादशार्हाः
सिद्धाखिलार्था मधुसूदनाश्रयाः ॥४०॥

फिर दुलहिन के साथ दूल्हे अनिरुद्ध को रथ में बिठलाकर बलराम आदि सब यादव भगवान् का आश्रय पाकर सब कार्य सिद्ध करके, भोजकट से द्वारका को लौट आये ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकषष्ठोऽध्यायः ॥६१॥

बासठवां अध्याय

(उषाऽनिरुद्ध-स्वयम्वर)

राजोवाच

बाणस्य तनयामूषामुपयेमे यदूत्तमः ।
तत्र युद्धमभूद् घोरं हरिशङ्करयोर्महत् ।
एतत्सर्वं महायोगिन्समाख्यातुं त्वमर्हसि ॥ १ ॥

परीक्षित बोले-हे ब्रह्मन्! अनिरुद्धने बाणासुर की कन्या उषा के साथ विवाह किया और उस विवाह में भगवान् और महादेवजी का घोर युद्ध हुआ;यह कथा आप मुझसे कहनेके योग्य हैं ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच

बाणः पुत्रशतज्येष्ठो बलेरासीन्महात्मनः ।
येन वामनरूपाय हरयेऽदायि मेदिनी ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-महात्मा बलिराज के सौ पुत्रथे, उनमें से यह बाणासुर सबसे बड़ाथा; जिस बलिने वामन भगवान् को पृथ्वी दी थी ॥२॥

तस्यौरसः सुतो बाणः शिवभक्तिरतः सदा ।
मान्यो वदान्यो धीमांश्च सत्यसन्धो दृढव्रतः॥ ३ ॥

यह बाणासुर उसका औसर पुत्रथा तथा शिव जी का निरन्तर परम भक्त, मान्य, उदार,बुद्धिमान सत्यप्रतिज्ञ और दृढ़ नियमों वाला था ॥३॥

शोणिताख्यपुरे रम्ये स राज्यमकरोत्पुरा ।
तस्य शम्भोः प्रसादेन किङ्करा इव तेऽमराः ।
सहस्रबाहुर्वाद्येन ताण्डवेऽतोषयन्मृडम् ॥ ४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवान्सर्वभूतेशः शरण्यो भक्तवत्सलः ।
वरेण च्छन्दयामास स तं वव्रे पुराधिपम् ॥ ५ ॥

वह पहले शोणितपुर में राज्य करता था और महादेवजी की कृपा से देवतागण सेवक की भांति उसके पास रहा करते थे, एक समय तांडव-नृत्य में हज़ार हाथों से बाजे बजाकर इसने महादेवजी को प्रसन्नकिया, तब सब प्राणियों के स्वामी शरण दाता, भक्तवत्सल भगवान् महादेवजी ने उसे वर मांगने को कहा, तब उसने उत्तर दिया कि आप हमारे पुर के संरक्षक बनिये ॥४॥५॥

स एकदाह गिरिशं पार्श्वस्थं वीर्यदुर्मदः ।
किरीटेनार्कवर्णेन संस्पृशंस्तत्पदाम्बुजम् ॥६॥

एक समय पराक्रम के मदसे उन्मत्त वाणासुर ने अपने पासमें रहते हुए शिवजी के चरणारविंद का अपने सूर्य के समान प्रकाशमान् मुकुट द्वारा स्पर्श करके कहा कि ॥६॥

नमस्ये त्वां महादेव लोकानां गुरुमीश्वरम् ।
पुंसामपूर्णकामानां कामपूरामराङ्घ्रिपम् ॥ ७ ॥

हे लोकों के गुरु ! हे ईश्वर ! जिनका मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ है, उनकी इच्छा पूर्ण करने के लिये आप कल्पवृक्षके समानहैं,मैं आपको प्रणाम करताहूँ।

दोःसहस्रं त्वया दत्तं परं भाराय मेऽभवत् ।
त्रिलोक्यां प्रतियोद्धारं न लभे त्वदृते समम् ॥ ८ ॥

आपने जो मुझे हज़ार हाथ दियेहैं,वे मेरे लिए भाररूप होरहे हैं, क्योंकि त्रैलोक में आपके सिवा कोई भी मेरी समता करके युद्ध करने वाला नहीं मिलता ॥८॥

कण्डूत्या निर्भृतैर्दोर्भिर्युयुत्सुर्दिग्गजानहम् ।
आद्याऽयां चूर्णयन्नद्रीन्भीतास्तेऽपि प्रदुद्रुवुः ॥९॥

हे आदि पुरुष ! मेरी भुजाओं में खुजलाहट होने लगी है, मैं दिग्गजों से युद्ध करने गया था, परन्तु वे भी पर्वतोंको चूर्ण करते हुए भाग गयेहैं॥

तच्छ्रुत्वा भगवान्क्रुद्धः केतुस्ते भज्यते यदा ।
त्वदर्पघ्नं भवेन्मूढ संयुगं मत्समेन ते ॥१०॥

यह बात सुनकर भगवान् ने क्रोध-पूर्वक कहा कि हे मूर्ख ! जब तेरी ध्वजा टूट जायगी, तब मेरी समता वाले के साथ तेरा युद्ध होगा और उसमें तेरा गर्व खण्डन हो जायगा ॥१०॥

इत्युक्तः कुमतिर्हृष्टः स्वगृहं प्राविशन्नृप ।
प्रतीक्षन्गिरिशादेशं स्ववीर्यनशनं धीः ॥११॥

हे राजन् ! जब महादेवजी ने इस प्रकार कहा तब वह दुर्बुद्धि प्रसन्न होकर अपने घर गया और अपनी कुमति के कारण अपने पराक्रम को नाश करने वाली शिवजी की आज्ञा के सफल होने की प्रतीक्षा करने लगा ॥११॥

तस्योषा नाम दुहिता स्वप्ने प्राद्युम्निना रतिम् ।
कन्याऽलभत कान्तेन प्रागदृष्टश्रुतेन च ॥१२॥

वाणासुरके उषा नामकी कन्याथी, उसका उन सुन्दर अनिरुद्ध के साथ स्वप्न में समागम हुआ, जिनको उसने न तो कभी देखाथा और न सुनाथा॥

सा तत्र तमपश्यन्ती क्वासि कान्तेतिवादिनी ।
सखीनां मध्य उत्तस्थौ विह्वला व्रीडिता भृशम् १३॥

परन्तु निद्रा जाने पर जब उसने उनको वहाँ न देखा, तो वह बहुतही लज्जित तथा विह्वल होकर 'हे कान्त ! तुम कहाँ हो ?' इस प्रकार कहती हुई सखियों के बीच उठ खड़ी हुई॥१३ ॥

बाणस्य मन्त्री कुम्भाण्डश्चित्रलेखा च तत्सुता ।
सख्यपृच्छत्सखीमूषां कौतूहलसमन्विता ॥१४॥

बाणासुरका मंत्री कुंभांड था, उसकी कन्याका नाम चित्रलेखा था, वह उषा की सखी थी, उसने कौतुक-पूर्वक उषा से पूछा कि–॥१४॥

कं त्वं मृगयसे सुभ्रूः कीदृशस्ते मनोरथः ।
हस्तग्राहं न तेऽद्यापि राजपुत्र्युपलक्षये ॥१५॥

हे सुन्दर भृकुटि वाली ! तू किसे ढूंढती है ? तेरा क्या मनोरथ है ? हे राजपुत्री ! अब तक तो तेरा पाणिग्रहण भी नहीं हुआ है ॥१५॥

ऊषोवाच

दृष्टः कश्चिन्नरः स्वप्ने श्यामः कमललोचनः ।
पीतवासा बृहद्बाहुर्योषितां हृदयङ्गमः ॥१६॥

उषा बोली–मैंने स्वप्नमें किसी पुरुषको देखाहै जो श्यामवर्ण, कमलनयन, पीतांबर ओढ़े, विशाल बाहु और स्त्रियोंके मनको हरने वाला था ॥१६॥

तमहं मृगये कान्तं पाययित्वाऽधरं मधु ।
क्वापि यातः स्पृहयतीं क्षिप्त्वा मां वृजिनार्णवे १७

वह मुझे अपने अधरोंका अमृत पिलाकर मुझ अपूर्ण इच्छा वालीको दुःख-सिंधुमें डालकर कहीं चला गया है मैं उसीको ढूंढरही हूँ ॥ १७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चित्रलेखोवाच

व्यसनं तेऽपकर्षामि त्रिलोक्यां यदि भाव्यते ।
तमानेष्ये नरं यस्ते मनोहर्ता तमादिश ॥१८॥

चित्ररेखा बोली–यदि वह पुरुष त्रिलोक में होगा तो मैं तेरा दुःख दूर करदूँगी, तू अपने मन हरण करनेवाले पुरुषको बतादे मैं उसे ले आऊँगी।

इत्युक्त्वा देवगन्धर्वसिद्धचारणपन्नगान् ।
दैत्यविद्याधरान्यक्षान्मनुजांश्च तथाऽलिखत्॥१९॥

श्रीशुकदेवजी बोले–इस प्रकार कहकर चित्रलेखाने पटपर चित्र बनाने प्रारंभकिये और देवता, गन्धर्व, सिद्ध; चारण, पन्नग, दैत्य, विद्याधर, यक्ष तथा मनुष्यों के चित्र बनाये ॥१९॥

मनुजेषु च सा वृष्णीञ्छूरमानकदुन्दुभिम् ।
व्यलिखद्रामकृष्णौ च प्रद्युम्नं वीक्ष्य लज्जिता २०॥

तब मनुष्यों; वृष्णि और वृष्णियों में क्रमशः शूरसेन, वसुदेव. राम, कृष्ण और प्रद्युम्न का चित्र लिखा हुआ देखकर उषा (प्रद्युम्नको) अपना श्वसुर मानकर लज्जित होगई ॥ २० ॥

अनिरुद्धं विलिखितं वीक्ष्योषाऽवाङ्मुखी ह्रिया ।
सोऽसावसाविति प्राह स्मयमाना महीपते ॥२१॥

हे राजन्! फिर जो अनिरुद्धका चित्र बनाया गया तो उसे देखकर लज्जा सहित सिर झुका कर और मुसकाकर उषाने कहा कि हाँ, यही हैं ॥२१॥

चित्रलेखा तमाज्ञाय पौत्रं कृष्णस्य योगिनी ।
ययौ विहायसा राजन्द्वारकां कृष्णपालिताम् २२॥

योग जानने वाली चित्रलेखा उनको श्रीकृष्ण का पौत्र जानकर उन्हीं महाराज श्रीकृष्णसे संरक्षित द्वारका में गई ॥ २२ ॥

तत्र सुप्तं सुपर्यङ्के प्राद्युम्निं योगमास्थिता ।
गृहीत्वा शोणितपुरं सख्यै प्रियमदर्शयत् ॥२३॥

वहाँ वह अनिरुद्ध पलंग पर सोरहे थे, चित्रलेखा योग धारण करके उन्हें शोणितपुर में उठा लाई और सखीको उसके प्रियतमका दर्शनकराया।

सा च तं सुन्दरवरं विलोक्य मुदिताननाः ।
दुष्प्रेक्षे स्वगृहे पुम्भी रेमे प्राद्युम्निना समम् ॥२४॥

ऊषा भी उन अत्यन्त सुन्दर अनिरुद्ध को देख कर प्रसन्न मुख होगई और पुरुषों की दृष्टि न पड़ सकनेवाले अपने घरमें उनके साथ रमण करनेलगी।

परार्ध्यवासःस्रग्गन्धधूपदीपासनादिभिः ।
पानभोजनभक्ष्यैश्च वाक्यैः शुश्रूषयार्चितः ॥२५॥

वह अमूल्य वस्त्र, माला,सुगन्धित पदार्थ,धूप, दीप, आसन आदि और भोजन, पान, भक्ष्य मधुर वचन तथा सेवाद्वारा उनका पूजन करनेलगी।

गूढः कन्यापुरे शश्वत्प्रवृद्धस्नेहया तया ।
नाहर्गणान्स बुबुधे ऊषयाऽऽपहृतेन्द्रियः ॥२६॥

स्नेह वाली उषा के द्वारा जिनकी इन्द्रियां हरण होचुकी हैं, ऐसे अनिरुद्ध कन्या के अंतःपुर में छिप कर रहने लगे और अधिक समय बीत जाने का भी उन्हें भास न हुआ ॥२६॥

तां तथा यदुवीरेण भुज्यमानां हतव्रताम् ।
हेतुभिर्लक्षयाञ्चक्रुरामीतां दुरवच्छदैः ॥२७॥

अनिरुद्धके साथ संभोग होने से कन्या व्रत जिसका हरण हो चुका है. उस अधिक प्रसन्न कन्या को न छिपने वाले लक्षणों द्वारा पहरेदारों ने ताड़ लिया ॥२७॥

भटा आवेदयाञ्चक्रू राजंस्ते दुहितुर्वयम् ।
विचेष्टितं लक्षयामः कन्यायाः कुलदूषणम् ॥२८॥

और उन्होंने आकर बाणासुर से कहा कि–हमने आपकी कन्या का वह दुराचरण दीख पड़ता कि जिससे राजवंशको कलंक लगनेकी संभावनाहै॥

अनपायिभिरस्माभिर्गुप्तायाश्च गृहे प्रभो ।
कन्याया दूषणं पुम्भिर्दुष्प्रेक्षाया न विद्महे ॥२९॥

हे प्रभु! हमतो घरका अखंड रूपसे पहरा देते हैं और आपकी कन्या की ऐसी देख-भाल रखते हैं कि उसे कोई पुरुष देख भी नहीं सकता, फिर यह समझ में नहीं आता कि उसे यह कलंक कहाँ से लग गया ? ॥२९॥

ततः प्रव्यथितो बाणो दुहितुः श्रुतदूषणः ।
त्वरितः कन्यकागारं प्राप्तोऽद्राक्षीद्यदूद्वहम् ॥३०॥

बाणासुरने जब कन्याको कलंक लगाहुआ देखा तब वह तत्काल ही दुःखी होकर कन्या के घर आया और उसने अनिरुद्ध को देखा ॥३०॥

कामात्मजं तं भुवनैकसुन्दरं श्यामं पिशङ्गाम्बरमम्बुजेक्षणम् । बृहद्भुजं कुण्डलकुन्तलत्विषा स्मितावलोकेन च मण्डिताननम् ॥३१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो कामदेव के पुत्र, संसार भर में सुन्दर, श्यामवर्ण, कमल नयन, पीतांबर पहने तथा लम्बी भुजायें धारण किये हैं और जिनका मुख, कुंडल तथा केशोंकीकान्ति एवं मन्द मुसकान मयी चितवन से शोभायमान् है ॥३१॥

दीव्यन्तमक्षैः प्रिययाऽभिनृम्णया तदङ्गसङ्गस्तनकुंकुमस्रजम् । बाह्वोर्दधानं मधुमल्लिकाश्रितां तस्याग्र आसीनमवेक्ष्य विस्मितः ॥३२॥

और जो सर्व मङ्गल रूप प्रियतमा के साथ पाँसोंसे खेलतेहुए उसके अङ्ग-स्पर्शके कारण स्तनों की छुटी हुई केसर से रँगे हुए बसन्त ऋतु वाले चमेली के फूलों की माला को वक्षःस्थलपर धारण किये हुए कामदेव के पुत्र अनिरुद्ध को अपनी कन्याके आगे देखकर वाणासुर अचरज करनेलगा।

स तं प्रविष्टं वृतमाततायिभिर्भटैरनेकैरवलोक्य माधवः । उद्यम्य मौर्वं परिघं व्यवस्थितो यथाऽन्तको दण्डधरो जिघांसया ॥३३॥

अनेक योधाओं के साथ शस्त्र लिये हुए उस वाणासुर को घरमें आया देखकर अनिरुद्ध भी दण्डधारी यमराज की तरह लोहे का परिघ उठा कर उसे मारने की इच्छा से उठ खड़े हुए ॥३३॥

जिघृक्षया तान्परितः प्रसर्पतः शुनो यथा सूकरयूथपोऽहनत् । ते हन्यमाना भवनाद्विनिर्गता निर्भिन्नमूर्धोरुभुजाः प्रदुद्रुवुः ॥३४॥

और पकड़ने की इच्छा करके चारों ओर से आते हुए उन योधाओं को इस प्रकार से मारने लगा जैसे बड़ा शूकर कुत्तों को मारता है, तब वे मार खाये हुए योधागण अपने सिर फूट जाने तथा हाथ-पैर टूट जानेसे घर छोड़कर भागनेलगे।

तं नागपाशैर्बलिनन्दनो बली घ्नन्तं स्वसैन्यं कुपितो बबन्ध ह । ऊषा भृशं शोकविषादविह्वला बद्धं निशम्याश्रुकलाक्ष्यरोदिषीत् ॥३५॥

अपनी सेना का संहार करते हुए उन अनिरुद्ध को वाणासुर ने क्रोध पूर्वक नाग-पाश डाल कर पकड़लिया; उनको बँधा हुआ देखकर शोक तथा क्रोध से विह्वल होकर ऊषा आँखों से आँसू डालती हुई अत्यन्त रुदन करनेलगी ॥३५॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे द्विषष्ठितमोऽध्यायः ॥६२॥

तिरेसठवां अध्याय

(यादव-वाणासुर संग्राम)

श्रीशुक उवाच

अपश्यतां चानिरुद्धं तद्बन्धूनां च भारत ।
चत्वारो वार्षिका मासा व्यतीयुरनुशोचताम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! चातुर्मास के चार महीने बीत गये पर अनिरुद्ध का कहीं भी पता न चला, तब उनके बन्धुगण अत्यन्त चिन्ता करने लगे ॥ १ ॥

नारदात्तदुपाकर्ण्य वार्तां बद्धस्य कर्म च ।
प्रययुः शोणितपुरं वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ २ ॥

तब नारदजीने आकर उनका सब चरित् तथा कारागार में बन्द होने के समाचार आकर सुनाये, यह सुनते ही यादवों ने श्रीकृष्णजीको साथ लेकर शोणितपुर पर चढ़ाई कर दी ॥२॥

प्रद्युम्नो युयुधानश्च गदः साम्बोऽथ सारणः ।
नन्दोपनन्दभद्राद्या रामकृष्णानुवर्तिनः ॥ ३ ॥

प्रद्युम्न, सात्यकि, गद, सांब, सारण, नंद, उपनन्द और भद्र आदि सभी यादव श्रीराम-कृष्ण के पीछे-पीछे चल दिये ॥३॥

अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिः समेताः सर्वतो दिशम् ।
रुरुधुर्बाणनगरं समन्तात्सात्वतर्षभाः ॥ ४ ॥

उन यादव वीरोंने बारह अक्षौहिणी दल लेकर और इकट्ठे होकर वाणासुर के पुर को चारों ओर से घेर लिया ॥४॥

भज्यमानपुरोद्यानप्राकाराट्टालगोपुरम् ।
प्रेक्षमाणो रुषाविष्टस्तुल्यसैन्योऽभिनिर्ययौ ॥ ५ ॥

सब ओर से पुर, बगीचे, गढ़, कोठे और दरवाज़ों को टूटता हुआ देखकर वाणासुर क्रोध कर के बारह अक्षौहिणी सेना साथ लेकर युद्ध करने के लिये पुर से बाहर निकला ॥५॥

बाणार्थे भगवान्रुद्रः ससुतैः प्रमथैर्वृतः ।
आरुह्य नन्दिवृषभं युयुधे रामकृष्णयोः ॥ ६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीभगवान् शंकरजी बाणासुरकी रक्षाके लिये अपने पुत्र तथा पार्षदों को साथ लेकर और नंदी पर सवार होकर श्रीराम-कृष्ण से युद्ध करने के लिये आये ॥ ६ ॥

आसीत्सुतुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् ।
कृष्णशङ्करयो राजन्प्रद्युम्नगुहयोरपि ॥७॥
कुम्भाण्डकूपकर्णाभ्यां बलेन सह संयुगः ।
साम्बस्य बाणपुत्रेण बाणेन सह सात्यकेः ॥८॥

अब उन सबमें बड़ा ही अद्भुत भयंकर और रोमांचकारी युद्ध होने लगा, हे राजन् ! श्रीकृष्ण और महादेवजी का, प्रद्युम्न और स्वामि कार्त्तिक का, बल्देवजी और कुंभांड व कुर्पकर्ण का, सांब और बाणासुरके पुत्रका, सात्यकि और बाणासुर का परस्पर द्वंद्व युद्ध होने लगा ॥७॥८॥

ब्रह्मादयः सुराधीशा मुनयः सिद्धचारणाः ।
गन्धर्वाप्सरसो यक्षा विमानैर्द्रष्टुमागमन् ॥९॥

उस ब्रह्मा आदि देवताओं के नायक, मुनि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा और यक्ष वृन्द विमानों पर बैठ-बैठकर उस युद्ध को देखने के लिये आये ॥९॥

शङ्करानुचराञ्छौरिर्भूतप्रमथगुह्यकान् ।
डाकिनीर्यातुधानांश्च वेतालान्त्सविनायकान्॥१०॥
प्रेतमातृपिशाचांश्च कूष्माण्डान्ब्रह्मराक्षसान् ।
द्रावयामास तीक्ष्णाग्रैः शरैः शार्ङ्गधनुश्च्युतैः॥११॥

श्रीकृष्ण भगवान् ने महादेवजी के अनुचर भूत, प्रमथ, गुह्यक, डाकिनी, यातुधान, वेताल, विनायक, प्रेत, मातृगण, पिशाच, कूष्मांड और ब्रह्म राक्षसों को शार्ङ्ग धनुष पर तीक्ष्ण अनी वाले बाणों को चढ़ाकर मार भगाया ॥१०॥११॥

पृथग्विधानि प्रायुङ्क्त पिनाक्यस्त्राणि शार्ङ्गिणे।
प्रत्यस्त्रैः शमयामास शार्ङ्गपाणिरविस्मितः॥१२॥

शंकरजी ने अपने पिनाक धनुष पर चढ़ा २ कर श्रीकृष्णजी पर अनेक प्रकार के अस्त्र चलाये, पर शार्ङ्गधारी भगवान् ने कोई विस्मय न मानकर वे अस्त्र प्रत्यस्त्रों द्वारा शान्त कर दिये ॥१२॥

ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतम् ।
आग्नेयस्य च पार्जन्यं नैजं पाशुपतस्य च ॥१३॥
मोहयित्वा तु गिरिशं जृम्भणास्त्रेण जृम्भितम् ।
बाणस्य पृतनां शौरिर्जघानासिगदेषुभिः ॥१४॥

ब्रह्मास्त्र को ब्रह्मास्त्र से, वायव्य को पर्वतास्त्र से, अग्नि अस्त्र को पर्जन्य अस्त्र से, पाशुपात् को नारायण अस्त्र से शान्त करके, भगवान्ने जृम्भण अस्त्र द्वारा महादेवको मोहित करदिया, तब शिव जी तो जंभाई लेने लगे और भगवान् खड्ग, गदा तथा बाणोंसे बाणासुरकी सेनाका संहार करनेलगे।

स्कन्दः प्रद्युम्नबाणौघैरर्द्यमानः समन्ततः ।
असृग्विमुञ्चन्गात्रेभ्यः सिखिनाऽपाक्रमद्रणात्१५॥

स्वामि कार्तिक प्रद्युम्न के बाण-जालसे पीड़ित होगये और उनके शरीर से चारों ओर रक्त बहने लगा, तब वे मोर पर बैठकर युद्ध-स्थल से भाग निकले ॥ १५ ॥

कुम्भाण्डः कूपकर्णश्च पेततुर्मुसलार्दितौ ।
दुद्रुवुस्तदनीकानि हतनाथानि सर्वतः ॥१६॥

कूष्मांड और कूर्पकर्ण दोनों मूसल के प्रहार से गिर गये और नायक मारे जानेसे उनकी सेना भी तितर-बितर होगई ॥१६॥

विशीर्यमाणं स्वबलं दृष्ट्वा बाणोऽत्यमर्षणः ।
कृष्णमभ्यद्रवत्संख्ये रथी हित्वैव सात्यकिम्॥१७॥

अपनी सेनाको तितर-बितर देखकर बाणासुर अत्यन्त क्रोध करके संग्राम में सात्यकि को छोड़ कर और रथपर चढ़कर श्रीकृष्णके सन्मुख दौड़ा।

धनूंष्याकृष्य युगपद्बाणः पञ्च शतानि वै ।
एकैकस्मिञ्छरौ द्वौ द्वौ सन्दधे रणदुर्मदः ॥१८॥

रण में मदोन्मत्त बाणासुर ने एक साथ पांच सौ धनुष खींचकर एक-एक धनुष पर दो-दो बाण चढ़ाये ॥१८॥

तानि चिच्छेद भगवान्धनूंषि युगपद्धरिः ।
सारथिं रथमश्वांश्च हत्वा शङ्खमपूरयत् ॥१९॥

भगवान् ने वे पाँच सौ धनुष एक ही साथ काट डाले और सारथी तथा घोड़ों को मार कर एवं रथ को तोड़ कर शंख नाद किया ॥१९॥

तन्माता कोटरा नाम नग्ना मुक्तशिरोरुहा ।
पुरोऽवतस्थे कृष्णस्य पुत्रप्राणरिरक्षया ॥२०॥

तब बाणासुर की कोटरा नाम्नी माता अपने पुत्र के प्राण बचाने के लिये केश खोल और नग्न होकर श्रीकृष्ण के आगे आ खड़ी हुई ॥२०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ततस्तिर्यङ्मुखो नग्नामनिरीक्षन्गदाग्रजः ।
बाणश्च तावद्विरथश्छिन्नधन्वाऽविशत्पुरम् ॥२१॥

तब भगवान् ने उस वस्त्र-हीन स्त्री को न देख कर मुंह फेर लिया और इतने ही समय में वह कटे हुए धनुष तथा टूटे हुए रथ वाला बाणासुर अपने पुर में गया ॥२१॥

विद्राविते भूतगणे ज्वरस्तु त्रिशिरास्त्रिपात् ।
अभ्यपद्यत दाशार्हं दहन्निव दिशो दश ॥२२॥

जब भूतगण भाग गये, तब तीन शिर और तीन पैरों वाला ज्वर दसों दिशाओं को जलाता हुआ सा श्रीकृष्ण पर चढ़ दौड़ा ॥२२॥

अथ नारायणो देवस्तं दृष्ट्वा व्यसृजज्ज्वरम् ।
माहेश्वरो वैष्णवश्च युयुधाते ज्वरावुभौ ॥२३॥

श्रीमन्नारायण देव श्रीकृष्णजी ने उसे देखकर शीतज्वरको पहुँचाया, अब माहेश्वर (शिवजीका) और वैष्णव दोनों ज्वर आपसमें लड़ने लगे ॥२३॥

माहेश्वरः समाक्रन्दन्वैष्णवेन बलार्दितः ।
अलब्ध्वाऽभयमन्यत्र भीतो माहेश्वरो ज्वरः ।
शरणार्थी हृषीकेशं तुष्टाव प्रयताञ्जलिः ॥२४॥

जब शीतज्वर ने अपने बल से माहेश्वर ज्वर को दबा लिया, तब वह पीड़ित होकर चिल्लाने लगा और भयभीत होकर शरण की इच्छा करता हुआ दूसरी जगह अभय न पाकर, हाथ जोड़े हुए भगवान् की स्तुति करने लगा ॥२४॥

ज्वर उवाच

नमामि त्वाऽनन्तशक्तिं परेशं सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम् । विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं यत्तद्ब्रह्म ब्रह्मलिंगं प्रशान्तम् ॥२५॥

ज्वर बोला—आप जो अनन्त शक्ति, ब्रह्मादि के भी स्वामी, शुद्ध चैतन्यघन, जगत् की उत्पत्ति स्थिति तथा संहार के कारण, वेद से गम्य तथा शान्त-मूर्त्ति ब्रह्म हैं, उन्हें मैं प्रणाम करता हूँ ॥२५॥

कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः । तत्सङ्घातो बीजरोहप्रवाह स्त्वन्मायैषा तं निषेधं प्रपद्ये ॥२६॥

काल, कर्म, दैव जीव, स्वभाव, द्रव्य (पञ्च विषय) शरीर, प्राण, अहंकार, विकार (अर्थात् दस इन्द्रियां, मन, पञ्चभूत, लिंग देह और देह से कर्म होना तथा कर्मों से देह मिलना, ऐसा चलता हुआ सृष्टि-चक्र) यह सब आपकी माया है इस लिये माया के निषेध के जो अवधि (सीमा) रूप आप हैं, उनकी मैं शरण आया हूँ ॥२६॥

नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नैर्देवान्साधूंल्लोकसेतून्बिभर्षि । हंस्युन्मार्गान्हिंसया वर्तमानाञ्जन्मैतत्ते भारहाराय भूमेः ॥२७॥

आप समस्त उपाधियोंसे अलग होकर लीला पूर्वक स्वीकार किये हुए अनेक अवतारों द्वारा देवता, साधु तथा वर्णाश्रमों की मर्यादा की रक्षा करते हैं और जगत् को दुःख देने वाले कुमार्गियों का नाश करते हैं, आपका यह अवतार पृथ्वी का भार उतारने के लिये हुआ है ॥२७॥

तप्तोऽहं ते तेजसा दुःसहेन शान्तोग्रेणात्युल्बणेन ज्वरेण । तावत्तापो देहिनां तेऽङ्घ्रिमूलं नो सेवेरन्यावदाशानुबद्धाः ॥२८॥

आपके उत्पन्न किये हुए इस दुःसह, भयंकर और उग्र शीत ज्वर से मैं जला जारहा हूँ, देहधारियों को तभी तक सन्ताप रहता है जब तक वे सब आशा छोड़कर आपके चरण-मूल की शरण नहीं आते ॥२८॥

श्रीभगवानुवाच

त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मज्ज्वराद्भयम् । यो नौ स्मरति संवादं तस्य त्वन्न भवेद्भयम् ॥२९॥

श्रीभगवान् बोले—हे तीन सिर वाले ज्वर ! मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ, मेरे ज्वर से जो तुझे भय हुआ है वह तेरा निवृत्त हो जाय, पर जो मनुष्य अपने इस संवाद को स्मरण करे उसे तू भय न देना ॥

इत्युक्तोऽच्युतमानम्य गतो माहेश्वरो ज्वरः । बाणस्तु रथमारूढः प्रागाद्योत्स्यञ्जनार्दनम् ॥३०॥

जब भगवान् ने इस प्रकार कहा, तब माहेश्वर ज्वर भगवान् को प्रणाम करके चला गया, इतनेमें रथ पर चढ़कर बाणासुर युद्ध करने के लिये भगवान् के सामने आया ॥३०॥

ततो बाहुसहस्रेण नानायुधधरोऽसुरः । मुमोच परमक्रुद्धो बाणांश्चक्रायुधे नृप ॥३१॥

हे राजन् ! तब वह असुर हज़ार हाथोंमें अनेक प्रकारके शस्त्र लिये हुए वहाँ आकर बड़े ही क्रोध के साथ चक्रधारी भगवान् पर बाण चलाने लगा ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्याऽऽस्यतोऽस्त्राण्यसकृच्चक्रेण क्षुरनेमिना ।
चिच्छेद भगवान्बाहून्शाखा इव वनस्पतेः ॥३२॥

बारम्बार अस्त्र चलाते हुए उस बाणासुर की भुजायें तीक्ष्ण धार वाले चक्र से भगवान् वृक्ष की शाखाओं की भांति काटने लगे ॥ ३२ ॥

बाहुषु च्छिद्यमानेषु बाणस्य भगवान्भवः ।
भक्तानुकम्प्युपव्रज्य चक्रायुधमभाषत ॥३३॥

जब बाणासुरकी भुजायें कटगईं तब उस भक्त पर कृपा करनेवाले भगवान् शिवजीने आकर चक्र धारी भगवान् से कहा ॥३३॥

श्रीरुद्र उवाच

त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये ।
यं पश्यन्त्यमलात्मानः आकाशमिव केवलम्३४॥

श्रीरुद्र बोले–आप वेदमें भी गुप्त रहने वाले, परम प्रकाश तथा परब्रह्म रूप हैं, निर्मल बुद्धिवाले पुरुष आपको आकाशके समान निरंजन देखतेहैं ॥

नाभिर्नभोऽग्निर्मुखमम्बु रेतो द्यौः शीर्षमाशाः श्रुतिरङ्घ्रिरुर्वी । चन्द्रो मनो यस्य दृगर्क आत्मा अहं समुद्रो जठरं भुजेन्द्रः ॥३५॥

रोमाणि यस्यौषधयोम्बुवाहाः केशा विरिञ्चो धिषणा विसर्गः । प्रजापतिर्हृदयं यस्य धर्मः स वै भगवान्पुरुषो लोककल्पः ॥३६॥

जिनकी नाभि आकाश, मुख अग्नि, वीर्य जल, मस्तक स्वर्ग, कान दिशायें, चरण पृथ्वी, मन चन्द्रमा, नेत्र सूर्य, अहंकार मैं (शिव), उदर समुद्र भुजा इन्द्र, रोम औषधियां, केश बादल, बुद्धि ब्रह्मा शिश्न प्रजापति और हृदय धर्म है-ऐसे जगत्रूप से कल्पित विराट् रूप आप हैं ॥३५॥ ३६ ॥

तवावतारोऽयमकुण्ठधामन्धर्मस्य गुप्त्यै जगतो भवाय । वयं च सर्वे भवतानुभाविता विभावयामो भुवनानि सप्त ॥३७॥

हे अखंड स्वरूप ! आपका यह अवतार धर्म की रक्षा तथा जगत् के कल्याण के लिये हुआ है, हम सब लोकपाल आपही के द्वारा रक्षित रहते हुए सातों लोकों की रक्षा करते हैं ॥३७॥

त्वमेक आद्यः पुरुषोऽद्वितीयस्तुर्यः स्वदृग्घेतुरहेतुरीश । प्रतीयसेऽथापि यथाविकारं स्वमायया सर्वगुणप्रसिद्ध्यै ॥३८॥

आप परब्रह्म, सजातीय या विजातीय के भेद से रहित, आदि पुरुष, शुद्ध, स्वयं प्रकाश, सबके कारण होते हुए भी स्वयं कारण रहित हो, फिरभी सब विषयों को प्रकट करने के लिये अपनी माया द्वारा प्रत्येक देह में जीव रूप से भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हो ॥३८॥

यथैव सूर्यः पिहितः स्वछायया छायां च रूपाणि च संचकास्ति । एवं गुणेनापिहितो गुणांस्त्वमात्मप्रदीपो गुणिनश्च भूमन् ॥३९॥

हे ईश्वर ! जैसे सूर्य अपनी मेघ रूपी छायासे ढका हुआ होने पर भी उन मेघों तथा मेघों से बाहरी पदार्थों को प्रकाशित करताहै, वैसे ही आप जीवों की दृष्टि में अपने कार्यरूपी अहंकार से ढके हुए प्रतीत होते हुए भी सत्वगुण आदि उपाधियों और उनके व्यवहित जीवोंको भी प्रकाशित करतेहैं।

यन्मायामोहितधियः पुत्रदारगृहादिषु ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति प्रसक्ता वृजिनार्णवे ॥४०॥

आपकी मायासे मोहित होकर पुत्र, स्त्री तथा घर आदिमें फँसे हुए लोग दुःखमय संसार-सागर में ऊँच-नीच योनियाँ पाते हैं ॥४०॥

देवदत्तमिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः ।
यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवञ्चकः४१

आपके दियेहुए इस नर-तनको पाकर जो लोग आपके चरणोंका भजन नहीं करते उसे शोचनीय तथा अपनेही को धोखा देनेवाला समझनाचाहिए ॥

यस्त्वां विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियदर्शनम् ।
विपर्ययेन्द्रियार्थार्थं विषमत्त्यमृतं त्यजन् ॥४२॥

जो लोग जड़,अप्रिय और अनीश्वर पुत्रआदि के लिये आप चैतन्य, प्रिय तथा ईश्वरको छोड़देते हैं वे मानो अमृत छोड़कर विष खाते हैं ॥४२॥

अहं ब्रह्माऽथ विबुधा मुनयश्चामलाशयाः ।
सर्वात्मना प्रपन्नास्त्वामात्मानं प्रेष्ठमीश्वरम् ॥४३॥

मैं (शिव) ब्रह्मा, देवता, निर्मल अन्तःकरण वाले मुनिजन भी आप प्रिय; ईश्वर तथा आत्मरूप का ही भजन करते हैं ॥४३॥

तं त्वा जगत्स्थित्युदयान्तहेतुं समं प्रशान्तं सुहृदात्मदैवम् । अनन्यमेकं जगदात्मकेतं भवापवर्गाय भजाम देवम् ॥४४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण सम, शान्त, मित्र, आत्म रूप, इष्टदेव, सजातीय या विजातीय भेद से रहित, जगत् तथा जीवों के अधिष्ठान रूप देव जो आप हैं, उनको हम संसार से पार उतरने के लिये भजन करते हैं ॥४४॥

अयं ममेष्टो दयितोऽनुवर्ती मयाऽभयं दत्तम-मुष्य देव । सम्पाद्यतां तद्भवतः प्रसादो यथा हि ते दैत्यपतौ प्रसादः ॥४५॥

हे देव ! यह मेरा प्यारा तथा इष्ट भक्त है, इसे मैंने अभय-दान दे रक्खा है, इसलिये आप प्रह्लाद की भांति इसपर भी कृपा करें ॥ ४५ ॥

श्रीभगवानुवाच

यदात्थ भगवंस्त्वं नः करवाम प्रियं तव ।
भवतो यद्व्यवसितं तन्मे साध्वनुमोदितम् ॥४६॥

श्रीभगवान् बोले-हे भगवन् ! आपने जैसा कहाहै मैं वैसे ही आपको प्रसन्न रक्खूंगा, आप जिस बात का विचार करते हैं, मैं उसमें भले प्रकार सहमत हूँ ॥४६॥

अवध्योऽयं ममाप्येष वैरोचनसुताऽसुरः ।
प्रह्लादाय वरो दत्तो न वध्यो मे तवान्वयः॥४७॥

यह राजा बलिका पुत्र बाणासुर मेरे भी मारने योग्य नहीं है, क्योंकि मैं प्रह्लाद को वर दे चुकाहूँ कि मैं तेरे वंशवालों को न मारूँगा ॥४७॥

दर्पोपशमनायास्य प्रवृक्णा बाहवो मया ।
सूदितं च बलं भूरि यच्च भारायितं भुवः ॥४८॥

मैंने गर्व दूर करनेके लिये इसकी हज़ार भुजायें काट डालीं और पृथ्वी पर जो भार रूप सेना थी, उसे मारकर पृथ्वी का बोझ कम करदिया है ॥

चत्वारोऽस्य भुजाः शिष्टा भविष्यन्त्यजरामराः ।
पार्षदमुख्यो भवतो न कुतश्चिद्भयोऽसुरः ॥४९॥

इसकी जो चार भुजायें शेष रहगई हैं वे अजर और अमर होंगी, यह दैत्य आपका मुख्य पार्षद है इसे किसी का भय न रहेगा ॥४९॥

इति लब्ध्वाऽभयं कृष्णं प्रणम्य शिरसाऽसुरः ।
प्राद्युम्निं रथमारोप्य स वध्वा समुपानयत् ॥५०॥

श्रीशुकदेवजी बोले-बाणासुर ने इस प्रकार अभय दान पाकर श्रीकृष्णजी को मस्तक झुकाते हुए प्रणाम करके दुलहिन के साथ अनिरुद्ध को रथ में बिठला कर उपस्थित किया ॥५०॥

अक्षौहिण्या परिवृतं सुवासःसमलंकृतम् ।
सपत्नीकं पुरस्कृत्य ययौ रुद्रानुमोदितः ॥५१॥

बाणासुर की दी हुई एक अक्षौहिणी सेना से घिरे हुए सुन्दर वस्त्र तथा आभूषणों से सुसज्जित पत्नी सहित अनिरुद्धको आगे करके शिवजी की सम्मति लेकर श्रीकृष्ण भगवान् ने वहाँ से प्रस्थान किया ॥५१॥

स्वराजधानीं समलंकृतां ध्वजैः सतोरणैरुक्षित-मार्गचत्वराम् । विवेश शंखानकदुन्दुभिस्वनैर-भ्युद्यतः पौरसुहृद् द्विजातिभिः ॥५२॥

नगर निवासियों, संबन्धियों और ब्राह्मणों से स्वागत किये हुए भगवान् ने शंख, आनक और नक्कारों के बजते हुए, तोरण और ध्वजाओं से शोभायमान तथा जिसके मार्गों और चौहट्टों पर छिड़काव किया गया है-ऐसी अपनी राजधानी द्वारका में प्रवेश किया ॥५२॥

य एवं कृष्णविजयं शंकरेण च संयुगम् ।
संस्मरेत्प्रातरुत्थाय न तस्य स्यात्पराजयः ॥५३॥

जो मनुष्य श्रीकृष्णजीका शिवजीके साथ युद्ध और उसमें श्रीकृष्णजी की विजय-इन दोनों का इस भांति से प्रातःकाल में स्मरण करेगा, उसकी कभी हार न होगी ॥५३॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

चौंसठवां अध्याय

(नृगोद्धार तथा ब्रह्मस्व हरण का परिणाम)

श्रीशुक उवाच

एकदोपवनं राजन्जग्मुर्यदुकुमारकाः ।
विहर्तुं साम्बप्रद्युम्नचारुभानुगदादयः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! एक बार सांब चारु, प्रद्युम्न, भानु और गद आदि यदु-कुमार विहार करने के लिये बाग़ में गये ॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्रीडित्वा सुचिरं तत्र विचिन्वन्तः पिपासिताः।
जलं निरुदके कूपे ददृशुः सत्त्वमद्भुतम् ॥ २ ॥

वे लोग वहाँ बहुत देरतक खेलतेरहे,अब उन्हें प्यास लगी तब वे पानी ढूंढने गये, तो उन्हें एक सूखे कुएं में एक विचित्र जीव दीख पड़ा ॥२॥

कृकलासं गिरिनिभं वीक्ष्य विस्मितमानसाः।
तस्य चोद्धरणे यत्नं चक्रुस्ते कृपयान्विताः ॥ ३ ॥

वे लोग पहाड़ के समान एक गिरगिटको देख कर अचरज करने लगे और उन्होंने दया करके उसे निकालने का उपाय किया ॥३॥

चर्मजैस्तान्तवैः पाशैर्बध्वा पतितमर्भकाः।
नाशक्नुवन्समुद्धर्तुं कृष्णायाचख्युरुत्सुकाः॥ ४ ॥

उन कुमारों ने चमड़े तथा सूत की पांसें डाल कर उस पड़े हुए जीवको निकालने के लिये बहुत सा उपाय किया पर वे उसे निकाल न सके, तब उन्होंने उत्सुकताके साथ आकर कृष्णजीसे कहा ॥

तत्रागत्यारविन्दाक्षो भगवान्विश्वभावनः।
वीक्ष्योज्जहार वामेन तं करेण स लीलया ॥ ५ ॥

कमल नयन, जगत्पालक भगवान् ने वहाँ आ कर ऐसे देखकर लीला पूर्वक ही बायें हाथ से बाहर निकाल लिया ॥५॥

स उत्तमश्लोककराभिमृष्टो विहाय सद्यः कृकलासरूपम्।
संतप्तचामीकरचारुवर्णः स्वर्ग्यद्भुतालंकरणाम्बरस्रक् ॥ ६ ॥

उत्तम कीर्त्ति वाले भगवान्के हाथ का स्पर्श होते ही उसका गिरगिट रूप तत्काल दूर होगया और वह तपे हुए स्वर्ण की नाईं सुन्दर वर्णयुक्त, अद्भुत अलङ्कार, वस्त्र और माला धारण किये हुए देव-मूर्त्ति होगया ॥ ६॥

पप्रच्छ विद्वानपि तन्निदानं जनेषु विख्यापयितुं मुकुन्दः। कस्त्वं महाभाग वरेण्यरूपो देवोत्तमं त्वां गणयामि नूनम् ॥७॥

यद्यपि भगवान् उसके गिरगिट होने के कारण को जानते थे, तो भी लोगों में इस बात को प्रसिद्ध करनेके लिये उन्होंने पूछा कि हे महाभाग! तुम सुन्दर रूप वाले कौन हो? मैं तो तुम्हें श्रेष्ठ देवता समझता हूँ ॥७॥

दशामिमां वा कतमेन कर्मणा संप्रापितोऽस्यतदर्हः सुभद्र। आत्मानमाख्याहि विवित्सतां नो यन्मन्यसे नः क्षममत्र वक्तुम् ॥ ८ ॥

हे मङ्गल रूप! तुम इस योनिके योग्य तो नहीं हो फिर तुमने ऐसा कौनसा कर्म कियाहै कि जिस के कारण तुम्हारी यह दशा हुई, मैं इस बात को जानना चाहता हूँ, इसलिये यदि तुम यहाँ उसे कहना उचित समझो तो अपना भेद प्रकट करो ॥

श्रीशुक उवाच

इति स्म राजा संपृष्टः कृष्णेनानन्तमूर्तिना।
माधवं प्रणिपत्याह किरीटेनार्कवर्चसा ॥ ९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-जब अनन्त मूर्त्ति श्रीकृष्ण जी ने यह प्रश्न किया, तब वह सूर्य के समान तेज वाले मुकुट से प्रणाम करके कहने लगा ॥९॥

नृग उवाच

नृगो नाम नरेंद्रोऽहमिक्ष्वाकुतनयः प्रभो।
दानिष्वाख्यायमानेषु यदि ते कर्णमस्पृशम्॥१०॥

नृग बोला–हे प्रभु! मैं इक्ष्वाकु का पुत्र राजा नृग हूँ, दानी पुरुषों की बात चलते समय मेरा नाम भी आपके कानों में पड़ा होगा ॥१०॥

किं नु तेऽविदितं नाथ सर्वभूतात्मसाक्षिणः।
कालेनाव्याहतदृशो वक्ष्येऽथापि तवाज्ञया ॥११॥

हे नाथ! जो सब जीवों की बुद्धिके साक्षी हैं और जिनके ज्ञान का काल से भी नाश नहीं होता ऐसे आपसे कौनसी बात छिपी हुई है? फिर भी जब आपने आज्ञा दी है तो मैं कहूँगा ॥११॥

यावन्त्यः सिकता भूमेर्यावन्त्यो दिवि तारकाः।
यावन्त्यो वर्षधाराश्च तावतीरददां स्म गाः॥१२॥

जितने पृथ्वी के रज कण हैं, जितने आकाशमें तारे हैं और जितनी वर्षा की धारायेंहैं, मैंने उतनी गौऐं दान की हैं ॥१२॥

पयस्विनीस्तरुणीः शीलरूपगुणोपपन्नाःकपिलाहेमशृङ्गीः। न्यायार्जिता रूप्यखुराः सवत्सा दुकूलमालाभरणा ददावहम् ॥१३॥

दूध देने वाली, तरुण, अच्छे स्वभाव की,रूपवान् गुणवान्, कपिलवर्ण, न्याय से मिली हुई, बछड़ों सहित सोने के मढ़े हुए सींगों तथा चाँदी से मढ़े हुए खुर वाली गौओं को मैंने वस्त्र तथा मालाओं से शृङ्गार कराके दान किया है ॥ १३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वलंकृतेभ्यो गुणशीलवद्भ्यः सीदत्कुटुम्बेभ्य ऋतव्रतेभ्यः । तपःश्रुतब्रह्मवदान्यसद्भ्यः प्रादां युवभ्यो द्विजपुङ्गवेभ्यः ॥१४॥

और वे भी भलेप्रकार शृङ्गार किये हुए, अच्छे गुणवान, सद् स्वभाव तथा निष्कपट व्यवहारवाले तप में प्रख्यात, वेदपाठी, तरुण तथा दरिद्रता के कारण पीड़ित कुटुम्ब वाले सुपात्र श्रेष्ठ ब्राह्मणों को दान की हैं ॥१४॥

गोभूहिरण्यायतनाश्वहस्तिनः कन्यादासीस्तिल रूप्यशय्याः । वासांसि रत्नानि परिच्छदान्रथानिष्टं च यज्ञैश्चरितं च पूर्तम् ॥१५॥

गौ, स्वर्ण, पृथ्वी, गृह; घोड़ा, हाथी, दासी सहित कन्या, तिल, रूपा, शैया, वस्त्र, रत्न और सब प्रकार का सामान तथा रथ ये भी मैंने दान किये हैं. यज्ञ कराये हैं एवं कुआँ, बावड़ी आदि जलाशय भी बनवाये हैं ॥१५॥

कस्यचिद्द्विजमुख्यस्य भ्रष्टा गौर्मम गोधने । संपृक्ताऽविदुषा सा च मया दत्ता द्विजातये ॥१६॥

एक बार किसी उत्तम ब्राह्मण की गौ भूलकर मेरी गौओं के झुंडमें आ मिली, मुझे इसका पता न था, इसलिये मैंने उसे दूसरे ब्राह्मणको देदिया।

तां नीयमानां यत्स्वामी दृष्ट्वोवाच ममेति तम् । ममेति प्रतिग्राह्याह नृगो मे दत्तवानिति ॥१७॥

उस गौ को ले जाते हुए देखकर उसके स्वामी ने कहा कि यह गौ तो मेरी है, तब उस ले जाने वाले ब्राह्मणने उत्तर दिया कि नहीं, यह तेरी नहीं वरन् मेरी है, मुझे राजा नृग ने दी है ॥१७॥

विप्रौ विवदमानौ मामूचतुः स्वार्थसाधकौ । भवान्दाताऽर्हतेति तच्छ्रुत्वा मेऽभवद्भ्रमः॥१८॥

अपना प्रयोजन सिद्ध करने वाले वे दोनों ब्राह्मण मेरे पास आकर कहने लगे, एक बोला कि आपने मुझे गौ दी है, दूसरा बोला कि आपने मेरी गौ लेली है, यह बात सुनकर मैं व्याकुल होगया।

अनुनीतावुभौ विप्रौ धर्मकृच्छ्रगतेन वै । गवां लक्षं प्रकृष्टानां दास्याम्येषा प्रदीयताम्॥१९॥

जब मुझपर धर्म संकट आपड़ा तब मैंने दोनों ब्राह्मणों से प्रार्थना की कि आपमें से कोई एक इस गौ को छोड़ दें, मैं छोड़ने वालेको एकलाख उत्तम गौएँ दूँगा ॥१९॥

भवन्तावनुगृह्णीतां किङ्करस्याविजानतः । समुद्धरत मां कृच्छ्रात्पतन्तं निरयेऽशुचौ ॥२०॥

आपको मुझ अपने अनजान किंकर पर दया करना चाहिये,मैं अपवित्र नरकमें पड़नेवाला हूँ इस लिये आपको मेरा उद्धार करना उचित है ॥२०॥

नाहं प्रतीच्छे वै राजन्नित्युक्त्वा स्वाम्यपाक्रमत् । नान्यद्गवामप्ययुतमिच्छामीत्यपरो ययौ ॥२१॥

हे राजन् ! मुझे दान नहीं चाहिये,यह कहकर गौ का स्वामी चला गया और एक लाखके ऊपर दस हज़ार भी दे तोभी मैं इसके सिवा उन्हें नहीं चाहता; ऐसा कहकर दूसरा ब्राह्मणभी चलागया॥

एतस्मिन्नन्तरे याम्यैर्दूतैर्नीतो यमक्षयम् । यमेन पृष्टस्तत्राहं देवदेव जगत्पते ॥२२॥

हे देवाधिदेव ! हे जगन्नाथ ! उसी समय यमराज के दूत मुझे यमपुरी में लेगये, वहाँ यमराज ने मुझसे पूछा कि ॥२२॥

पूर्वं त्वमशुभं भुङ्क्षे उताहो नृपते शुभम् । नांतं दानस्य धर्मस्य पश्य लोकस्य भास्वतः२३॥

हे राजन् ! तू पहले पाप भोगना चाहता है या कि पुण्य? तेरे दान और धर्म तथा उससे प्राप्तहोने वाले उत्तम लोक का मुझे अन्त नहीं दीखता, अर्थात् तेरा पुण्य अत्यधिक है ॥२३॥

पूर्वं देवाशुभं भुञ्जे इति प्राह पतेति सः । तावदद्राक्षमात्मानं कृकलासं पतन्प्रभो ॥२४॥

मैंने कहा कि हे देव ! मैं पहले पाप भोगूंगा, यमराज बोले कि तब नीच योनिमें पड़. हे प्रभो ! इतने ही में मैंने वहाँसे गिरकर अपने को गिरगिट रूप में देखा ॥२४॥

ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव । स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता भवत्संदर्शनार्थिनः॥२५॥

हे केशव ! मैं ब्राह्मणों का भक्त उदार और आपका दासहूँ, मुझे आपके दर्शनों की अभिलाषा लगी है इसलिये मेरी स्मृति नष्ट नहीं हुई ॥२५॥

स त्वं कथं मम विभोऽक्षिपथः परात्मा योगेश्वरैः श्रुतिदृशाऽमलहृद्विभाव्यः । साक्षादधोक्षज उरुव्यसनान्धबुद्धेःस्यान्मेऽनुदृश्य इह यस्य भवापवर्गः॥

हे प्रभु ! आप केवल उपनिषद रूपी नेत्रों से योगेश्वरों के हृदय में चिन्तवन करने योग्य और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गोतीत परमात्मा हो, फिर आप मेरे समक्ष कैसे हुए ? (नियम तो यह है कि) जिसके संसार का अन्त हुआ चाहताहै उसीको आपका दर्शन होता है, पर मैं तो गिरगिट की योनि सम्बन्धी अनेक कष्टों के कारण अन्ध बुद्धिहूँ, इसलिये मुझे आप का दर्शन होना आश्चर्य की बात है ॥२६॥

देवदेव जगन्नाथ गोविन्द पुरुषोत्तम ।
नारायण हृषीकेश पुण्यश्लोकाच्युताव्यय ॥२७॥
अनुजानीहि मां कृष्ण यान्तं देवगतिं प्रभो ।
यत्र क्वापि सतश्चेतो भूयान्मे त्वत्पदास्पदम् ॥२८॥

हे देव देव ! हे जगन्नाथ! हेगोविंद!हे पुरुषोत्तम! हे नारायण! हे हृषीकेश! हे पुण्यश्लोक! हे अच्युत! हे अव्यय ! हे कृष्ण ! हे प्रभु ! मैं देव-गति को जा रहा हूँ, आप मुझे आज्ञा दें, मैं कहीं भी रहूँ पर मेरा चित्त आपके चरणारविंदमें लगारहे ।२७।२८॥

नमस्ते सर्वभावाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
कृष्णाय वासुदेवाय योगानां पतये नमः ॥२९॥

सबके उत्पन्न कर्त्ता, परब्रह्म, अनन्त शक्ति, जीव मात्रके आश्रय, सदा आनन्दरूप, कर्मोंके फल दाता आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२९॥

इत्युक्त्वा तं परिक्रम्य पादौ स्पृष्ट्वा स्वमौलिना ।
अनुज्ञातो विमानाग्र्यमारुहत्पश्यतां नृणाम् ॥३०॥

इस प्रकार कहकर वह भगवान् की परिक्रमा करके, अपने मुकुट से उनके चरण स्पर्श कर और आज्ञा लेकर सब लोगोंके देखते-देखते विमान पर सवार हुआ ॥३०॥

कृष्णः परिजनं प्राह भगवान्देवकीसुतः ।
ब्रह्मण्यदेवो धर्मात्मा राजन्याननुशिक्षयन् ॥३१॥

तब ब्राह्मणों के भक्त धर्मात्मा देवकीनन्दन श्री कृष्णचन्द्रजी राजाओं को शिक्षा देते हुए अपने कुटुम्ब से कहने लगे कि ॥३१॥

दुर्जरं बत ब्रह्मस्वं भुक्तमग्नेर्मनागपि ।
तेजीयसोऽपि किमुत राज्ञामीश्वरमानिनाम् ॥३२॥

यदि ब्राह्मण का थोड़ा भी धन खाया जाय तो अग्निके समान तेजवान पुरुषको भी उसका पचाना कठिन पड़ जाता है, तब शक्तिमान् होने का अभिमान करने वाले राजाओं को तो वह पच ही कैसे सकता है ? ॥३२॥

नाहं हालाहलं मन्ये विषं यस्य प्रतिक्रिया ।
ब्रह्मस्वं हि विषं प्रोक्तं नास्य प्रतिविधिर्भुवि ॥३३॥

मैं विष को विष नहीं मानता, क्योंकि उसके लिये उपाय है, सच्चा विष तो ब्राह्मणका धनहै कि जिसके लिये पृथ्वी पर कोई उपाय नहीं है ॥३३॥

हिनस्ति विषमत्तारं वह्निरद्भिः प्रशाम्यति ।
कुलं समूलं दहति ब्रह्मस्वारणिपावकः ॥३४॥

विष तो केवल उसके ग्रास लेने वाले को ही मारता है, फिर वह अग्नि या जल से शान्त भी हो जाता है, पर ब्राह्मण के धन रूपी अरणी से प्रकट हुआ अग्नि वंश को जड़ से भस्म कर देताहै ।३४॥

ब्रह्मस्वं दुरनुज्ञातं भुक्तं हन्ति त्रिपूरुषम् ।
प्रसह्य तु बलाद्भुक्तं दश पूर्वान् दशापरान् ॥३५॥

यदि ब्राह्मण की पूर्ण स्वीकृति विना उसका धन खाया जाय, तो वह तीन पुरुषों को पतित करता है और यदि हठ या राजा आदि का बल दिखला कर खाया जाय तो दस अगले और दस पिछले पुरुषों को पतित कर देता है ॥३५॥

राजानो राजलक्ष्म्याऽन्धा नात्मपातं विचक्षते ।
निरयं येऽभिमन्यन्ते ब्रह्मस्वं साधु बालिशाः ॥३६॥

जो राज-लक्ष्मी से अंध राजा लोग ब्राह्मण के धन की इच्छा करते हैं वे मानो नरककी ही इच्छा करते हैं और अपनी हानि को नहीं देखते ॥३६॥

गृह्णन्ति यावतः पांसून्क्रन्दतामश्रुबिन्दवः ।
विप्राणां हृतवृत्तीनां वदान्यानां कुटुम्बिनाम् ॥३७
राजानो राजकुल्याश्च तावतोऽब्दान्निरंकुशाः ।
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते ब्रह्मदायापहारिणः ॥३८॥

जब किसी उदार कुटुम्बी ब्राह्मणकी जीविका हरण की जाती है तब उन विलखते हुए ब्राह्मणों की आँखों से गिरे हुए आँसुओं से जितने रज-कण भीगते हैं, उतने वर्ष तक वह राजा तथा उसके आश्रित लोग नरकमें पकाये जातेहैं कि जो निरंकुश होकर ब्राह्मणों का धन हर लेते हैं ॥३७॥३८॥

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः ।
षष्टिं वर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥३९॥

जो अपने द्वारा या किसी दूसरे से दी हुई ब्राह्मण की जीविका छीन लेताहै, वह साठ हज़ार वर्ष तक विष्ठा का कीड़ा होता है ॥३९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न मे ब्रह्मधनं भूयाद्यद्गृद्ध्वाऽल्पायुषो नृपाः।
पराजिताश्च्युता राज्याद्भवन्त्युद्वेजिनोऽहयः॥४०॥

मेरे घरमें ब्राह्मणका धन न आवे; क्योंकि उस के लालच से राजा लोग अल्प आयुवाले, पराभव प्राप्त, राज्य-भ्रष्ट और सर्प की नाईं उद्वेग करने वाले होते हैं ॥ ४० ॥

विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामकाः।
घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः ॥४१॥

हे मेरे सम्बन्धियो ! यदि ब्राह्मण तुम्हारा अपराध भी करै तो भी तुम उनसे बैर न करो, चाहे वह तुम्हें मारें, चाहे गालियाँ दें, तुम फिर भी उन्हें प्रणाम ही करो ॥४१॥

यथाहं प्रणमे विप्राननुकालं समाहितः।
तथा नमत यूयं च योऽन्यथा मे स दण्डभाक्॥४२

जैसे मैं सावधान रहकर समय २ पर ब्राह्मणों को प्रणाम करता हूँ, वैसे तुम भी किया करो, जो इस नियमके अनुसार न चलेगा, वह दंड पायगा॥

ब्राह्मणार्थो ह्यपहृतो हर्तारं पातयत्यधः।
अजानन्तमपि ह्येनं नृगं ब्राह्मणगौरिव ॥४३॥

जैसे अनजाने अपराध से भी इस राजा नृग को ब्राह्मण की गौ ने नीच योनि में गिरा दिया, वैसे ही ब्राह्मण का धन हरने वाले दूसरे लोगों को भी यह ब्रह्म-धन नीच योनिमें गिरा देता है ॥४३॥

एवं विश्राव्य भगवान्मुकुन्दो द्वारकौकसः।
पावनः सर्वलोकानां विवेश निजमन्दिरम् ॥४४॥

श्रीशुकदेवजी बोले–सब लोगों को पवित्रकर्ता भगवान् मुकुन्द द्वारकावासियों से इस प्रकार कह कर अपने घरको पधारे ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे चतुःषष्टित्तमोऽध्यायः ॥६४॥

पैंसठवां अध्याय

(बलरामजी का गोकुल-गमन)

श्रीशुक उवाच

बलभद्रः कुरुश्रेष्ठ भगवान् रथमास्थितः।
सुहृद्दिदृक्षुरुत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! भगवान् बल रामजी रथमें बैठकर उत्कंठित सुहृदों से मिलने के लिये नन्दरायजी के गोकुल में पधारे ।१॥

परिष्वक्तश्चिरोत्कण्ठैर्गोपैर्गोपीभिरेव च।
रामोऽभिवाद्य पितरावाशीर्भिरभिनन्दितः ॥ २ ॥

वे बहुत दिनोंसे उत्कंठावाले गोप और गोपियों से मिले, फिर उन्होंने माता-पिता को प्रणाम किया तो माता-पिता ने उन्हें आशीष दी ॥२॥

चिरं नः पाहि दाशार्ह सानुजो जगदीश्वरः।
इत्यारोप्याङ्कमालिङ्ग्य नेत्रैः सिषिचतुर्जलैः ॥३॥

और कहा कि हे दशार्ह ! हे जगदीश्वर ! तुम अपने छोटे भाई (श्रीकृष्ण) सहित हमारी बहुत काल तक रक्षा करते रहो, इसप्रकार कहकरगोदी में बिठलाकर और भेंट करके वे नेत्रोंके जलसे उन्हें सींचने लगे ॥ ३ ॥

गोपवृद्धांश्च विधिवद्यविष्टैरभिवन्दितः।
यथावयो यथासख्यं यथासम्बन्धमात्मनः ॥ ४ ॥

श्रीबलरामजी ने वृद्ध गोपों को प्रणाम किया और अवस्था, मित्रता तथा सम्बन्ध के अनुसार छोटे गोपों ने उन्हें प्रणाम किया ॥४॥

समुपेत्याथ गोपालान्हास्यहस्तग्रहादिभिः।
विश्रान्तं सुखमासीनं पप्रच्छुः पर्युपागताः ॥ ५ ॥
पृष्टाश्चानामयं स्वेषु प्रेमगद्गदया गिरा।
कृष्णे कमलपत्राक्षे संन्यस्ताखिलराधसः ॥ ६ ॥

फ़िर हास्य तथा हाथ मिलाने आदि के द्वारा गोपों से मिलकर उन्होंने विश्राम किया, जब वे विश्राम करके सुख पूर्वक बैठे और उन्होंने कुशल प्रश्नकिया, तब कमल नयन भगवान्के लिये जिन्हों ने अपने सब भोग त्याग दिये थे, वे बलरामजी के पास आकर चारों ओर बैठ गये और प्रेम मय गद् गद् वाणी से अपने बन्धु यादवों की कुशल पूछने लगे ॥५॥६॥

कच्चिन्नो बान्धवा राम सर्वे कुशलमासते।
कच्चित्स्मरथ नो राम यूयं दारसुतान्विताः॥ ७॥

कि हे राम ! हमारे सब बन्धु तो सकुशल हैं? हे राम ! तुम अपने स्त्री-पुत्रों सहित कभी हम लोगों को भी याद करते हो ? ॥७॥

दिष्ट्या कंसो हतः पापो दिष्ट्या मुक्ताः सुहृज्जनाः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निहत्य निर्जित्य रिपून्दिष्ट्या दुर्गं समाश्रिताः॥८॥

पापी कंस मारा गया यह अच्छा हुआ, हमारे सुहृदजन बन्दीगृह से छूट गये, यह अच्छा हुआ और शत्रुओं को मारकर तुम द्वारकापुरी में गढ़ बनाकर रहने लगे यह भी अच्छा हुआ ॥८॥

गोप्यो हसन्त्यो पप्रच्छू रामसंदर्शनादृताः।
कच्चिदास्ते सुखं कृष्णः पुरस्त्रीजनवल्लभः ॥९॥

श्रीबलरामजी के दर्शनों से प्रसन्न होकर गोपियों ने हँसकर पूछा कि पुरकी स्त्रियोंको प्यार करने वाले श्रीकृष्ण तो सुखी हैं ? ॥९॥

कच्चित्स्मरति वा बन्धून्पितरं मातरं च सः।
अप्यसौ मातरं द्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति।
अपि वा स्मरतेऽस्माकमनुसेवां महाभुजः ॥१०॥

वे कृष्णजी कभी अपने बन्धुओं, माता-पिता की भी याद करते हैं ? क्या वे अपनी माता के दर्शनों के लिये एक बार भी यहाँ पधारेंगे ? क्या वे विशाल बाहु कभी हमारी सेवा को भी याद करते हैं ? ॥१०॥

मातरं पितरं भ्रातॄन्पतीन्पुत्रान्स्वसॄरपि।
यदर्थेजहिम दाशार्ह दुस्त्यजान्स्वजनान्प्रभो ११॥
ता नः सद्यः परित्यज्य गतः संछिन्नसौहृदः।
कथं नु तादृशं स्त्रीभिर्न श्रद्धीयेत भाषितम्॥१२॥

हे दाशार्ह! हे प्रभु! जिसके लिये हमने दुस्त्यज माता, पिता, भाई, पति, पुत्र, बहिन तथा स्वजनों को त्याग दिया है, ऐसी हम गोपियों को छोड़कर वे तत्कालही चलेगये और हमसे स्नेह तोड़ दिया, पर उनके वैसे मन-हरण वचनों पर किस स्त्री को विश्वास न होगा ? ॥११॥१२॥

कथं नु गृह्णन्त्यनवस्थितात्मनो वचः कृतघ्नस्य बुधाः पुरस्त्रियः। गृह्णन्ति वै चित्रकथस्य सुन्दर-स्मितावलोकोच्छ्वसितस्मरातुराः ॥१३॥

हमको आश्चर्य होता है कि कृतघ्न तथा अनस्थिर चित्त वाले श्रीकृष्ण के वचनों को द्वारकाकी चतुर स्त्रियाँ कैसे स्वीकार करती होंगी ? पर हम यह मानतीहैं कि विचित्र बातें बनानेवाले श्रीकृष्ण के सुन्दर मन्द हास्य मय कटाक्षके कारण बढ़े हुए कामदेव से आतुर होकर वे उपकार करती होंगी ॥

किं नस्तत्कथया गोप्यः कथाः कथयतापराः।
यात्यस्माभिर्विना कालो यदि तस्य तथैव नः १४॥

दूसरी गोपियों ने कहा कि-हे गोपियो ! हम को उनकी बातों से क्या प्रयोजन है ? कुछ और बातें करो, यदि अपना समय उनके विना कट रहा है तो उनका समयभी हमारे विना कटताहै, अंतर यही है कि उनका समय सुखसे और अपना दुःख से व्यतीत होता है ॥१४॥

इति प्रहसितं शौरेर्जल्पितं चारु वीक्षितम्।
गतिं प्रेमपरिष्वङ्गं स्मरन्त्यो रुरुदुः स्त्रियः ॥१५॥

हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्का हास्य, बात चीत, सुन्दर कटाक्ष, गति, प्रेम और आलिंगनको स्मरण करती हुई गोपियां रोने लगीं ॥१५॥

सङ्कर्षणस्ताः कृष्णस्य संदेशैर्हृदयङ्गमैः।
सान्त्वयामास भगवान्नानाऽनुनयकोविदः ॥१६॥

अनेक प्रकार से समझाने में चतुर भगवान् बलरामने मनको प्रिय लगनेवाले श्रीकृष्णकेसंदेशों द्वारा उनको धीरज बंधाया ॥१६॥

द्वौ मासौ तत्र चावात्सीन्मधुं माधवमेव च।
रामः क्षपासु भगवान्गोपीनां रतिमावहन् ॥१७॥

उस व्रजमें भगवान् बलरामजी रात्रियों में गोपियों को आनन्द देते हुए चैत्र और वैशाख दो महीने तक रहे ॥ १७ ॥

पूर्णचन्द्रकलामृष्टे कौमुदीगन्धवायुना।
यमुनोपवने रेमे सेविते स्त्रीगणैर्वृतः ॥१८॥

पूर्ण चन्द्रमाकी किरणोंसे समुज्ज्वल,कुमोदनी की सुगन्धित वायु से सेवित यमुनाजी के उपवन में उन्होंने स्त्रीवृन्दको साथ लेकर रमण किया॥१८

वरुणप्रेषिता देवी वारुणी वृक्षकोटरात्।
पतन्ती तद्वनं सर्वं स्वगन्धेनाध्यवासयत् ॥१९॥

उस समय वरुण की भेजी हुई वारुणी नाम मदिरा वृक्ष के खेतों से गिरकर अपनी सुगन्धि से समस्त वनको सुगन्धित करने लगी ॥१९॥

तं गन्धं मधुधारायां वायुनोपहृतं बलः।
आघ्रायोपगतस्तत्र ललनाभिः समं पपौ ॥२०॥

पवन द्वारा प्राप्त उस वारुणी की धारा की सुगन्धि को सूंघकर बल्देवजी स्त्रियों को साथ लेकर वहाँ गये और उनके साथ उन्होंने मदिरा पान किया ॥२०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपगीयमानचरितो वनिताभिर्हलायुधः ।
वनेषु व्यचरत्क्षीबो मदविह्वललोचनः ॥२१॥

जिनके चरित्र स्त्रियां गारही हैं और मद से जिनके नेत्र घूम रहे हैं, ऐसे बलरामजी मदमत्त हो कर वनमें विचरण करने लगे ॥२१॥

स्रग्व्येककुण्डलो मत्तो वैजयन्त्या च मालया ।
बिभ्रत्स्मितमुखाम्भोजं स्वेदप्रालेयभूषितम् ॥२२॥
स आजुहाव यमुनां जलक्रीडार्थमीश्वरः ।
निजं वाक्यमनादृत्य मत्त इत्यापगां बलः ।
अनागतां हलाग्रेण कुपितो विचकर्ष ह ॥२३॥

वैजयन्ती माला पहने,एक कुण्डल धारण किये हुए मदमत्त, पसीने के विन्दुरूपी हिमकण से शोभायमान, मन्द हास्यमय, मुख कमल धारण किये हुए, समर्थ बलदेवजी ने जल-क्रीड़ाके लिये यमुना जी को अपने पास बुलाया, पर मदमत्त समझकर उनके वचनों का तिरस्कार करके यमुनाजी वहाँ न आईं, तब भगवान् ने उनको हल के अग्र भाग से खींचा और कहा कि ॥२२॥ २३॥

पापे त्वं मामवज्ञाय यन्नायासि मयाऽहुता ।
नेष्ये त्वां लाङ्गलाग्रेण शतधा कामचारिणीम्२४॥

हे पापिनी ! मैंने तुझे बुलाया पर तू मेरा निरादर करके मेरे पास न आई, इसलिये मैं तुझ स्वतन्त्र चलने वाली के हलके अग्र भाग द्वारा सैकड़ों खण्ड कर दूँगा ॥२४॥

एवं निर्भर्त्सिता भीता यमुना यदुनन्दनम् ।
उवाच चकिता वाचं पतिता पादयोर्नृप ॥२५॥

हे राजन् ! इस प्रकार तिरस्कार होनेपर यमुनाजी भयभीत होकर काँपती हुई श्रीबलरामजी के चरणोंमें गिरकर यह वचन बोलीं ॥२५॥

राम राम महाबाहो न जाने तव विक्रमम् ।
यस्यैकांशेन विधृता जगती जगतः पते ॥२६॥

हे राम ! हे राम ! हे महाबाहु ! हे जगत्पति ! जो एक अंश से पृथ्वी को धारण करने वाले हैं, मैं उन आपके पराक्रम को नहीं जानती ॥२६॥

परं भावं भगवतो भगवान्मामजानतीम् ।
मोक्तुमर्हसि विश्वात्मन्प्रपन्नां भक्तवत्सल ॥२७॥

हे विश्वात्मा ! हे भक्तवत्सल ! मैं आपके परम प्रभाव को नहीं जानती परन्तु शरणमें आईहूँ, इस लिये आप मुझे छोड़ने के योग्य हैं ॥२७॥

ततो व्यमुञ्चद्यमुनां याचितो भगवान्बलः ।
विजगाह जलं स्त्रीभिः करेणुभिरिवेभराट् ॥२८॥

जब यमुनाजी ने इस प्रकार प्रार्थना की तब भगवान् बलदेवजी ने उनको छोड़दिया और हथिनियों सहित गजराजकी भांति उन गोपियोंके साथ जलमें प्रवेश किया ॥२८॥

कामं विहृत्य सलिलादुत्तीर्णायासिताम्बरे ।
भूषणानि महार्हाणि ददौ कान्तिःशुभां स्रजम् २९

जब वह भले प्रकार जल-क्रीड़ा करके जल से बाहर निकले तब लक्ष्मीजीने उनको दो नील वस्त्र अमूल्य आभूषण और श्रेष्ठ माला दी ॥२९॥

वसित्वा वाससी नीले मालामामुच्य काञ्चनीम् ।
रेजे स्वलंकृतो लिप्तो माहेन्द्र इव वारणः ॥३०॥

श्रीबलरामजी नीलांबर पहन कर, स्वर्ण की माला धारण करके, चन्दन लगाये तथा सुन्दर शृङ्गार कियेहुए ऐरावतके समान शोभा दे रहेथे ॥

अद्यापि दृश्यते राजन्यमुना कृष्टवर्त्मना ।
बलस्यानन्तवीर्यस्य वीर्यं सूचयतीव हि ॥३१॥

हे राजन् ! बलदेवजी ने यमुनाजी को खींचाथा इसलिये वह उस जगह पर आज भी उनके पराक्रम की सूचना सी देती हुई वैसी ही देखने में आती हैं ॥३१॥

एवं सर्वा निशा याता एकेव चरतो व्रजे ।
रामस्याक्षिप्तचित्तस्य माधुर्यैर्व्रजयोषिताम् ॥३२॥

जिनका चित्त गोपियों के विलासोंसे हरण हो चुकाहै,उन बलदेवजीको इस प्रकार क्रीड़ा करते २ समस्त रातें एक रातकी भांति बीत गईं ॥३२॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पंचषष्ठितमोऽध्यायः ॥६५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छियासठवां अध्याय

(पौण्ड्रक-वध वर्णन)

श्रीशुक उवाच

नन्दव्रजं गते रामे करूषाधिपतिर्नृप ।
वासुदेवोऽहमित्यज्ञो दूतं कृष्णाय प्राहिणोत्॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन्! बल्देवजी तो नन्दरायजी के व्रजमें गये हुए थे और इधर उन्हीं दिनों में करूष देश के राजा पौंड्रक ने श्रीकृष्ण के पास यह संदेश देकर दूत पहुंचाया कि मैं वासुदेव हूँ ॥ १ ॥

त्वं वासुदेवो भगवानवतीर्णो जगत्पतिः ।
इति प्रस्तोभितो बालैर्मेन आत्मानमच्युतम्॥ २ ॥

जब मूर्ख लोगों ने उसे यह कहकर उत्साह दिलाया कि आप तो जगत्पति वासुदेव प्रकट हुए हो, तब वह अपनेको वासुदेव मानने लगा ॥ २ ॥

दूतं च प्राहिणोन्मन्दः कृष्णायाव्यक्तवर्त्मने ।
द्वारकायां यथा बालो नृपो बालकृतोऽबुधः॥ ३ ॥

और उस मूर्ख मन्दभाग ने अचिन्तनीय मार्ग वाले श्रीकृष्ण के पास द्वारका में दूतभी भेज दिया जैसे खेल में बालक एक बालक को राजा बना देते हैं, वैसा ही उसने भी किया ॥३॥

दूतस्तु द्वारकामेत्य सभायामास्थितं प्रभुम् ।
कृष्णं कमलपत्राक्षं राजसन्देशमब्रवीत् ॥ ४ ॥

वह दूत द्वारका में आकर सभा में विराजमान कमल नयन श्रीकृष्ण भगवान् से राजा का संदेश कहने लगा कि ॥४॥

वासुदेवोऽवतीर्णोऽहमेक एव न चापरः ।
भूतानामनुकम्पार्थं त्वं तु मिथ्याऽभिधां त्यज॥५॥

जीवोंपर दया करनेके लिये तो वासुदेव केवल मैं ही प्रकट हुआ हूँ दूसरा कोई है ही नहीं, इस लिये तूने जो अपना झूठा नाम "वासुदेव" रख लिया है, उसे छोड़ दे ॥५॥

यानि त्वमस्मच्चिह्नानि मौढ्याद्बिभर्षि सात्वत ।
त्यक्त्वैहि मां त्वं शरणं नो चेद्देहि ममाहवम् ॥६॥

हे यादव! तू मूर्खता के कारण जो मेरे चिह्न मोर-मुकुट आदि धारण करताहै उन्हें या तो छोड़ दे या मेरे शरण जा, अन्यथा मुझसे संग्राम कर ॥

श्रीशुक उवाच

कत्थनं तदुपाकर्ण्य पौण्ड्रकस्याल्पमेधसः ।
उग्रसेनादयः सभ्या उच्चकैर्जहसुस्तदा ॥ ७॥

श्रीशुकदेवजी बोले-तुच्छ बुद्धि पौंड्रक की यह बक-झक सुनकर उग्रसेन आदि सब सभापति उच्च स्वर से हँसने लगे ॥७॥

उवाच दूतं भगवान्परिहासकथामनु ।
उत्स्रक्ष्ये मूढ चिह्नानि यैस्त्वमेवं विकत्थसे ॥ ८ ॥

हँसी की बात समाप्त होने पर भगवान् ने दूत से कहा कि (उससे कहदेना कि) जिन चिह्नों के कारण तू इस प्रकार बक रहा है, मैं उन चिह्नों को तुझ से छीन लूँगा ॥ ८॥

मुखं तदापिधायाज्ञ कङ्कगृध्रवटैर्वृतः ।
शयिष्यसे हतस्तत्र भविता शरणं शुनाम् ॥ ९ ॥

हे मूर्ख! उस समय तू मुंह ढककर काग गिद्ध और बकोंसे घिरा हुआ मरकर सोयेगा और वहाँ तू कुत्तोंका आश्रय होगा अर्थात् तुझे कुत्ते खायेंगे॥

इति दूतस्तदाक्षेपं स्वामिने सर्वमाहरत् ।
कृष्णोऽपि रथमास्थाय काशीमुपजगाम ह ॥१०॥

दूतने इस प्रकार भगवान्के कहे हुए तिरस्कार सूचक सब वचन पौण्ड्रक से आकर कह सुनाये और श्रीकृष्णजी रथपर बैठकर काशीको चलदिये॥

पौण्ड्रकोपि तदुद्योगमुपलभ्य महारथः ।
अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तो निश्चक्राम पुराद्द्रुतम् ११

महारथी पौंड्रक भी उनका उद्योग देखकर दो अक्षौहिणी सेना के साथ पुर से बाहर निकला ॥

तस्य काशिपतिर्मित्रं पार्ष्णिग्राहोऽन्वयान्नृप ।
अक्षौहिणीभिस्तिसृभिरपश्यत्पौण्ड्रकं हरिः॥१२॥

शङ्खार्यसिगदाशार्ङ्ग श्रीवत्साद्युपलक्षितम् ।
बिभ्राणं कौस्तुभमणिं वनमालाविभूषितम्॥१३॥

कौशेयवाससी पीते वसानं गरुडध्वजम् ।
अमूल्यमौल्याभरणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥१४॥

दृष्ट्वा तामात्मनस्तुल्यवेषं कृत्रिममास्थितम् ।
यथा नटं रङ्गगतं विजहास भृशं हरिः ॥१५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे राजन् ! उसका मित्र काशी-नरेश भी तीन अक्षौहिणी दल लेकर पीछे से आया, भगवान् ने पौण्ड्रक को देखा कि वह शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग श्रीवत्स आदि चिह्नों और कौस्तुभ मणि धारण किये हुए, बनमाला से शोभायमान, पीतांबर पहने गरुड़ध्वज, अमूल्य मुकुट, आभूषण धारे हुए और मकराकृत कुंडल झलकाता हुआ खड़ा था, मानो नट स्वांग बनाकर रंगभूमि में आया हो, अपने समान वेष बनाये हुए उस बनावटी वासुदेव को देखकर भगवान् हरि बहुत हंसे ॥१२॥१३॥१४॥१५॥

शूलैर्गदाभिः परिघैः शक्त्यृष्टिप्रासतोमरैः ।
असिभिः पट्टिशैर्बाणैः प्राहरन्नरयो हरिम् ॥१६॥

तब शत्रुगण भगवान् पर त्रिशूल, गदा. परिघ, बरछी, ऋष्टि, पास, भाला, खड्ग, पट्टिश और बाणों के द्वारा प्रहार करने लगे ॥१६॥

कृष्णस्तु तत्पौण्ड्रककाशिराजयोर्बलं गजस्यन्दन-
वाजिपत्तिमत् । गदासिचक्रेषुभिरार्दयद्भृशं यथा
युगान्ते हुतभुक्पृथक्प्रजाः ॥१७॥

श्रीकृष्णजी ने भी पौंड्रक तथा काशिराज की हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों संयुक्त चतुरंगिणी सेना का अपने गदा, खड्ग, चक्र और बाणों से इस प्रकार संहार किया जैसे प्रलयके समय अग्नि सब प्रजा का संहार करता है ॥१७॥

आयोधनं तद्रथवाजिकुञ्जरद्विपत्खरोष्ट्रैररिणा-
ऽवखण्डितैः । बभौ चितं मोदवहं मनस्विनामा-
क्रीडनं भूतपतेरिवोल्बणम् ॥१८॥

चक्रके द्वारा टुकड़े किये हुए रथ, घोड़े, हाथी प्यादे गधे और ऊंटों से भरी हुई वह संग्राम भूमि रुद्रजी की क्रीड़ा भूमि के समान भयंकर जान पड़ती थी, फिर भी शूरवीर उसे देखकर आनंदित हो रहे थे । १८॥

अथाह पौंड्रकं शौरिर्भो भोः पौंड्रक यद्भवान् ।
दूतवाक्येन मामाह तान्यस्त्राण्युत्सृजामि ते॥१९॥

फिर भगवानने पौंड्रकसे कहा कि रे-रे पौंड्रक! जो सन्देश तूने दूत के द्वारा मुझसे कहलाया था वे शस्त्र अब मैं तुझपर चलाता हूँ ॥१९॥

त्याजयिष्येऽभिधानं मे यत्त्वयाज्ञ मृषा धृतम् ।
व्रजामि शरणं तेऽद्य यदि नेच्छामि संयुगम्॥२०॥

हे मूर्ख ! जो तूने मेरा नाम झूठ-मूठ ही अपने प्रति रख लिया है, उसे मैं अभी छुड़ा दूँगा,यदि मैं लड़ना न चाहूँगा तो तेरी शरण ले लूंगा ॥ २०॥

इति क्षिप्त्वा शितैर्बाणैर्विरथीकृत्य पौण्ड्रकम् ।
शिरोऽहरद्रथाङ्गेन वज्रेणेंद्रो यथा गिरेः ॥२१॥

इस भांति तिरस्कार करके, तीक्ष्ण बाणों के द्वारा पौंड्रक को रथहीन करके भगवान् ने चक्र के द्वारा उसका मस्तक इस प्रकार काट डाला, जैसे इन्द्र वज्रसे पर्वतके शिखर काट देता है ॥२१॥

तथा काशिपतेः कायाच्छिर उत्कृत्य पत्त्रिभिः ।
न्यपातयत्काशिपुर्यां पद्मकोशमिवानिलः ॥२२॥

और वैसे ही बाणों से काशिराज का धड़ से सिर काट कर काशी में गिरा दिया, जैसे पवन, कमल-कोश को गिराता है ॥२२॥

एवं मत्सरिणं हत्वा पौंड्रकं ससखं हरिः ।
द्वारकामाविशत्सिद्धैर्गीयमानकथामृतः ॥२३॥

इस प्रकार मत्सर भाव वाले पौंड्रक को उस के मित्र सहित मार कर सिद्ध पुरुषों द्वारा अपना कथामृत सुनतेहुए भगवान्ने द्वारकामें प्रवेशकिया।

स नित्यं भगवद्ध्यानप्रध्वस्ताखिलबन्धनः ।
बिभ्राणश्च हरे राजन्स्वरूपं तन्मयोऽभवत् ॥२४॥

हे राजन् ! सदैव भगवान्का ध्यान करते रहने से बन्धन-मुक्त वह पौंड्रक भगवान् हरि का वेष धारण करके उन्हीं के रूप में लीन होगया ॥२४॥

शिरः पतितमालोक्य राजद्वारे सकुण्डलम् ।
किमिदं कस्य वा वक्त्रमिति संशयिरे जनाः॥२५॥

काशीके राजद्वार पर कुंडल सहित मस्तकको पड़ा हुआ देखकर मनुष्य सन्देह करनेलगे कि यह क्या (घटना) है और यह किसका मुखहै ? ॥२५॥

राज्ञः काशिपतेर्ज्ञात्वा महिष्यः पुत्रबान्धवाः ।
पौराश्च हा हता राजन्नाथ नाथेति प्रारुदन् ॥२६॥

फिर काशिराज का सिर जान लेने पर रानी पुत्र, भाई, बन्धु तथा पुरवासी 'हे नाथ ! हे नाथ! हम मरगये' इस प्रकार कह-कहकर रोनेलगे ॥२६॥

सुदक्षिणस्तस्य सुतः कृत्वा संस्थाविधिं पितुः ।
निहत्य पितृहन्तारं यास्याम्यपचितिं पितुः ॥२७॥
इत्यात्मनाऽभिसंधाय सोपाध्यायो महेश्वरम् ।
सुदक्षिणोऽर्चयामास परमेण समाधिना ॥२८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसका पुत्र सुदक्षिण अपने पिता का अन्तिम संस्कार करनेके पश्चात्, इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय करके कि मैं जब अपने पिताके मारने वाले (कृष्ण) को मार डालूंगा तब पितासे उऋण होऊँगा, चित्त को विशेष रूप से स्थिर करके, उपाध्याय लोगोंके साथ महादेवजी का पूजन करने लगा ॥२७॥२८॥

प्रीतो विमुक्तो भगवांस्तस्मै वरमदाद्भवः ।
पितृहन्तृवधोपायं स वव्रे वरमीप्सितम् ॥२९॥

विशेष मुक्त भगवान् शिवजी ने प्रसन्न होकर कहा कि 'वर माँग' तब उसने अपना अभीष्ट वर माँगा कि मुझे मेरे पिता के मारने वाले के मारने का उपाय बतलाइये ॥ २९ ॥

दक्षिणाग्निं परिचर ब्राह्मणैः सममृत्विजम् ।
अभिचारविधानेन स चाग्निः प्रमथैर्वृतैः ॥३०॥

तब शिवजीने कहा कि–तू ब्राह्मणोंके ऋत्विक के समान आज्ञाकारी दक्षिणाग्नि का मारण-विधि से पूजनकर, वह अग्नि प्रमथोंके साथ तेरे मनोरथ को पूर्ण करेगा ॥३०॥

साधयिष्यति सङ्कल्पमब्रह्मण्ये प्रयोजितः ।
इत्यादिष्टस्तथा चक्रे कृष्णायाभिचरन्व्रती ॥३१॥

पर ये प्रयोग केवल उसपर चलेगा जो ब्राह्मणों का भक्त न होगा, इस भांति महादेवजी की आज्ञा पाकर वह नियम धारण करके श्रीकृष्ण जी पर मारण-प्रयोग करने का उद्योग करने लगा ॥३१॥

ततोऽग्निरुत्थितः कुण्डान्मूर्तिमानतिभीषणः ।
तप्ताम्रशिखाश्मश्रुरङ्गारोद्गारिलोचनः ॥३२॥

तब कुण्ड में से अत्यन्त भयानक मूर्त्ति वाला अग्नि प्रकट हुआ, जिसके तपे हुए तांबे की तरह केश तथा दाढ़ी-मूछ हैं, जिसके नेत्रों में से अङ्गारे बरस रहे हैं ॥३२॥

दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीदण्डकठोरास्यः स्वजिह्वया ।
आलिहन्सृक्किणी नग्नो विधुन्वंस्त्रिशिखं ज्वलन् ३३
पद्भ्यां तालप्रमाणाभ्यां कम्पयन्नवनीतलम् ।
सोऽभ्यधावद्वृतो भूतैर्द्वारकां प्रदहन्दिशः ॥३४॥

दाढ़ें और ऊँची भृकुटि-दण्डसे जिसका विकराल मुख है, ऐसा वह अग्नि अपनी जिह्वा से होठों को चाटता हुआ, नग्न, देदीप्यमान् त्रिशूल को घुमाता हुआ, ताल के समान लम्बे पैरों से भू-तल को कम्पित करता हुआ, भूतगण को साथ लिये हुए और दिशाओं को जलाता हुआ द्वारका की ओर दौड़ा ३३॥३४॥

तमाभिचारदहनमायान्तं द्वारकौकसः ।
विलोक्य तत्रसुः सर्वे वनदाहे मृगा यथा ॥३५॥

जैसे वन में आग लगने से मृग त्रास पाते हैं, वैसे ही उस कृत्याग्नि को देखकर समस्त द्वारका वासी भयभीत होगये ॥३५॥

अक्षैः सभायां क्रीडतं भगवन्तं भयातुराः ।
त्राहि त्राहि त्रिलोकेश वह्नेः प्रदहतः पुरम् ॥३६॥

वे सभी भयभीत होतेहुए सभामें चौपड़ खेलते हुए श्रीकृष्णके पास जाकर कहतेलगे कि-हे त्रिलोकी नाथ! पुरीको जलातेहुए इस अग्निसे रक्षाकरिये ॥

श्रुत्वा तज्जनवैक्लव्यं दृष्ट्वा स्वानां च साध्वसम् ।
शरण्यः संप्रहस्याह मा भैष्टेत्यवितास्म्यहम् ॥३७॥

शरण देने वाले भगवान् ने लोगों के विह्वलता पूर्ण वचन सुनकर और अपने बंधुओं का भय देख कर हँसतेहुए कहा कि 'डरो मत, मैं रक्षा करूँगा ।

सर्वस्यान्तर्बहिः साक्षी कृत्यां माहेश्वरीं विभुः ।
विज्ञाय तद्विघातार्थं पार्श्वस्थं चक्रमादिशत् ॥३८॥

भीतर और बाहर सबके साक्षी समर्थ श्री कृष्ण भगवान् ने महादेवजी की कृत्याग्नि को जान कर, उसके नाश करने के लिये अपने पास रहने वाले सुदर्शन चक्र को आज्ञा दी ॥ ३८ ॥

तत्सूर्यकोटिप्रतिमं सुदर्शनं जाज्वल्यमानं प्रलयानलप्रभम् । स्वतेजसा खं ककुभोऽथ रोदसी चक्रं मुकुन्दास्त्रमथाग्निमार्दयत् ॥३९॥

वह करोड़ों सूर्य के समान, प्रलय की अग्नि तुल्य कान्ति वाला और अतिशय देदीप्यमान् भगवान् का अस्त्र सुदर्शन अपने तेज से आकाश, दिशा, स्वर्ग और पृथ्वी को प्रकाशित करता हुआ अग्नि को पीड़ित करने लगा ॥३९॥

कृत्यानलः प्रतिहतः स रथाङ्गपाणेरस्त्रौजसा स नृप भग्नमुखो निवृत्तः । वाराणसीं परिसमेत्य सुदक्षिणं तं सर्त्विग्जनं समदहत्स्वकृतोऽभिचारः ॥

हे राजन्! श्रीकृष्णजीके अस्त्रसे प्रतिहत तथा भग्नमुख होकर उस कृत्य अग्नि ने काशी में लौट

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर ऋत्विज सहित सुदक्षिण को जलाकर भस्म कर दिया, क्योंकि वह उन्हीं का किया हुआ अभिचार था ॥ ४० ॥

चक्रं च विष्णोस्तदनु प्रविष्टं वाराणसीं साट्ट-
सभालयापनाम् । सगोपुराट्टालककोष्ठसंकुलां
सकोशहस्त्यश्वरथान्नशालाम् ॥४१॥

तदनन्तर चक्र सुदर्शनने काशी में जाकर वहाँ के मञ्च, सभा, गृह, हाट, द्वार, अटारियां, भंडार, गजशाला, रथशाला, अन्न के कोठे तथा अन्न कोठों सहित काशीको जलाकर भस्म कर दिया ॥४१॥

दग्ध्वा वाराणसीं सर्वां विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम् ।
भूयः पार्श्वमुपातिष्ठत्कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ॥४२॥

सरल कर्म करनेवाले श्रीकृष्णका सुदर्शन चक्र समस्त काशी को जलाकर फिर उनके पास आ खड़ा हुआ ॥४२॥

य एनं श्रावयेन्मर्त्य उत्तमश्लोकविक्रमम् ।
समाहितो वा शृणुयात्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४३॥

श्रेष्ठ कीर्त्ति वाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका यह पराक्रम जो मनुष्य सावधानी से सुने या सुनाये वह सब पापों से छूट जाय ॥४३॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

सड़सठवां अध्याय

(द्विविध-वध)

राजोवाच

भूयोऽहं श्रोतुमिच्छामि रामस्याद्भुतकर्मणः ।
अनन्तस्याप्रमेयस्य यदन्यत्कृतवान्प्रभुः ॥ १ ॥

परीक्षित बोले–मैं अद्भुत चरित्र वाले, अनन्त और अप्रमेय, बलरामजी के चरित् फिरभी सुनना चाहता हूँ, इसलिये उन्होंने दूसरा कौनसा चरित किया सो मुझसे कहिये ॥१॥

श्रीशुक उवाच

नरकस्य सखा कश्चिद्द्विविदो नाम वानरः ।
सुग्रीवसचिवः सोऽथ भ्राता मैन्दस्य वीर्यवान् ॥२॥

श्रीशुकदेवजी बोले–भौमासुरका मित्र द्विविद नामी एक पराक्रमी बानर था जो सुग्रीव का मन्त्री तथा मयंद का भाई था ॥२॥

सख्युः सोऽपचितिं कुर्वन्वानरो राष्ट्रविप्लवम् ।
पुरग्रामाकरान्घोषानदहद्वह्निमुत्सृजन् ॥ ३ ॥
क्वचित्स शैलानुत्पाट्य तैर्देशान्समचूर्णयत् ।
आनर्तान्सुतरामेव यत्रास्ते मित्रहा हरिः ॥ ४ ॥

वह बानर अपने मित्रका बदला चुकानेके लिए देश में उपद्रव करता रहता था, वह कहीं तो पुर गाँव, खान या घोष में आग लगा देता था, कहीं पहाड़ उठाकर उनसे देशोंको कुचल देताथा, परंतु आनर्त देशमें तो वह बहुतही उपद्रव किया करता था, क्योंकि शत्रु को मारने वाले श्रीकृष्णजी वहीं विराजते थे ॥ ३ ॥ ४ ॥

क्वचित् समुद्रमध्यस्थो दोर्भ्यामुत्क्षिप्य तज्जलम् ।
देशान्नागायुतप्राणो वेलाकूलानमज्जयत् ॥ ५ ॥

कहीं समुद्र में जाकर दोनों हाथों से उसके जल को उलीचकर तट वाले देशोंको डुबा देता था क्योंकि उसमें दसहज़ार हाथियोंके समान बलथा।

आश्रमान्ऋषिमुख्यानां कृत्वा भग्नवनस्पतीन् ।
अदूषयच्छकृन्मूत्रैरग्नीन्वैतानिकान्खलः ॥ ६ ॥

वह दुष्ट प्रमुख मुनियों के आश्रमों में जाकर वृक्ष तोड़कर, मल-मूत्र से यज्ञ की अग्नियों को दूषित कर देता था ॥ ६ ॥

पुरुषान्योषितो दृप्तः क्ष्माभृद्द्रोणीगुहासुसः ।
निक्षिप्य चाप्यधाच्छैलैः पेशस्कारीव कीटकम् ॥७॥

फिर स्त्री और पुरुषों को ले जाकर पर्वत की गुफाओं या कन्दराओं में डाल कर वह गर्वीला बानर शिलाओं से इस प्रकार बन्द कर देता था जैसे भृङ्गी कीड़ों को मूंद देता है ॥ ७ ॥

एवं देशान्विप्रकुर्वन्दूषयंश्च कुलस्त्रियः ।
श्रुत्वा सुललितं गीतं गिरिं रैवतकं ययौ ॥ ८ ॥

इस भांति देशों में उपद्रव मचाता और कुल-वन्ती स्त्रियों को दूषित करता हुआ वह बानर सुन्दर गीत सुनकर रैवतक पर्वत पर जा पहुँचा ॥

तत्रापश्यद्यदुपतिं रामं पुष्करमालिनम् ।
सुदर्शनीयसर्वाङ्गं ललनायूथमध्यगम् ॥ ९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गायन्तं वारुणीं पीत्वा मदविह्वललोचनम् ।
विभ्राजमानं वपुषा प्रभिन्नमिव वारणम् ॥१०॥
दुष्टः शाखामृगः शाखामारूढः कम्पयन्द्रुमान् ।
चक्रे किलकिलाशब्दमात्मानं संप्रदर्शयन् ॥११॥

वह कमलों की माला धारण किये हुए, सुन्दर अङ्गों वाले, यदुपति बल्देवजी को स्त्रियों के समूह में विराजते, वारुणीनाम की मदिरा पीकर गाते हुए, मद से घूमते हुए नेत्र किये और मद झरते हुए, गजेन्द्र के समान शरीर से शोभायमान् देखकर, वह दुष्ट वानर वृक्षकी डालपर चढ़कर उसे कंपित करता हुआ अपना शरीर दिखला कर किलकारी मारने लगा ॥९॥१०॥ ११॥

तस्य धाष्टर्यं कपेर्वीक्ष्य तरुण्यो जातिचापलाः ।
ह्रास्यप्रिया विजयसुर्बलदेवपरिग्रहाः ॥१२॥

वे ह्रास्य-प्रिय बल्देवजी की स्वीकार की हुई और चपल स्वभाव वाली स्त्रियां उस वानर की ढिठाई देखकर हँसने लगीं ॥१२॥

ता हेलयामास कपिभ्रूक्षेपैः सम्मुखादिभिः ।
दर्शयन्स्वगुदं तासां रामस्य च निरीक्षताः ॥१३॥

वह वानर बल्देवजीके देखते हुएही उन स्त्रियों को अपनी गुदा दिखाकर भौंह चढ़ाने और सामने आकर घुड़की दिखाने आदि की चेष्टाओं द्वारा अवज्ञा करने लगा ॥१३॥

तं ग्राव्णा प्राहरत्क्रुद्धो बलः प्रहरतां वरः ।
स वञ्चयित्वा ग्रावाणं मदिराकलशं कपिः ॥१४॥
गृहीत्वा हेलयामास धूर्तस्तं कोपयन्हसन् ।
निर्भिद्य कलशं धृष्टो वासांस्यास्फालयद्बलम् १५॥

प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ बल्देवजी ने क्रोध करके उसे पत्थर मारा, परन्तु वह धूर्त्त बानर पत्थर बचाकर और मदिरा-घट लेकर उनको क्रुद्ध करता हुआ हंसने लगा, तथा वह ढीठ कलशको फोड़कर श्रीबलरामजी को कुछ न गिनकर, मदोन्मत्त होता हुआ स्त्रियोंके वस्त्र फाड़ने लगा ॥१४॥१५॥

कदर्थीकृत्य बलवान्विप्रचक्रे मदोद्धतः ।
तं तस्याविनयं दृष्ट्वा देशांश्च तदुपद्रुतान् ।
क्रुद्धो मुशलमादत्त हलं चारिजिघांसया ॥१६॥

उसकी यह ढिठाई और देशों में उपद्रव देख बल्देवजी ने उस बैरी को मारनेके लिये क्रोधपूर्वक हल-मूसल धारण किये ॥१६॥

द्विविदोपि महावीर्यः शालमुद्यम्य पाणिना ।
अभ्येत्य तरसा तेन बलं मूर्धन्यताडयत् ॥१७॥

महा पराक्रमी द्विविद ने भी हाथ में शाल का वृक्ष उठाकर, जल्दी से सामने आकर, बलरामजी के मस्तक पर उसका प्रहार किया ॥ १७ ॥

तं तु सङ्कर्षणो मूर्ध्नि पतन्तमचलो यथा ।
प्रतिजग्राह भगवान्सुनन्देनाहनच्च तम् ॥१८॥

पर्वत के समान बलधारी बलरामजी ने सिर पर पड़ते हुए उस वृक्ष को रोक लिया और उस बानर पर मूसल का प्रहार किया ॥१८॥

मुशलाहतमस्तिष्को विरेजे रक्तधारया ।
गिरिर्यथा गैरिकया प्रहारं नानुचिन्तयन् ॥१९॥
पुनरन्यं समुत्क्षिप्य कृत्वा निष्पत्त्रमोजसा ।
तेनाहनत्सुसंक्रुद्धस्तं बलः शतधाऽच्छिनत् ॥२०॥

मूसल लगने से उसका सिर फट गया और रक्त की धारा बहने लगी, उस समय वह गेरू की धारा सहित पर्वत की भांति शोभा देने लगा, पर उसने उस चोट का कुछ विचार न करके फिर दूसरा शाल-वृक्ष उखाड़कर पराक्रम के साथ उसके पत्ते तोड़कर क्रोधपूर्वक बल्देवजी पर प्रहार किया, श्रीबलरामजीने उसके भी सैकड़ों टुकड़े करडाले॥

ततोऽन्येन रुषा जघ्ने तं चापि शतधाऽच्छिनत् ।
एवं युध्यन्भगवता भग्ने भग्ने पुनः पुनः ॥२१॥

तब उसने क्रोध करके दूसरा वृक्ष चलाया, बलरामजीने उसके भी सैकड़ों टुकड़े कर डाले, इस प्रकार श्रीबलभद्रजी से युद्ध करते हुए उस बानर ने एक वृक्ष के टूटनेपर चारों ओर से दूसरे वृक्षोंको उखाड़ २ कर बनको वृक्ष-रहित करदिया॥

आकृष्य सर्वतो वृक्षान्निर्वृक्षमकरोद्वनम् ।
ततोऽमुञ्चच्छिलावर्षं बलस्योपर्यमर्षितः ।
तत्सर्वं चूर्णयामास लीलया मुशलायुधः ॥२२॥

फिर वह क्रोध करके बलरामजी पर पत्थर बरसाने लगा, परन्तु मूसलधर भगवान्ने उन सब को चूर्ण कर दिया ॥ २२ ॥

स बाहू तालसंकाशौ मुष्टीकृत्य कपीश्वरः ।
आसाद्य रोहिणीपुत्रं ताभ्यां वक्षस्यरूरुजत् ॥२३॥

तब उस बानर राज ने ताल-वृक्ष के समान अपने दोनों हाथों की मुट्ठी बाँधकर, बलरामजी के पास आकर उनके वक्षःस्थल पर घूंसा मारा ॥२३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यादवेन्द्रोऽपि तं दोर्भ्यां त्यक्त्वा मुशललाङ्गले ।
जत्रावभ्यर्दयत्क्रुद्धः सोऽपतद्भुधिरं वमन् ॥२४॥

श्रीबलदेवजीने हल-मूसल छोड़कर दोनों हाथों से उसकी हंसलियों को तोड़ डाला जिससे वह रक्त उगलता हुआ गिर पड़ा ॥२४॥

चकम्पे तेन पतता सटङ्कः सवनस्पतिः ।
पर्वतः कुरुशार्दूल वायुना नौरिवाम्भसि ॥२५॥

हे कुरु शार्दूल ! जब वह गिरने लगा तब टंक तथा वृक्षोंसहित वह रैवत पर्वत ऐसा काँपने लगा जैसे वायुसे जलमें नाव काँपती है ॥२५॥

जयशब्दो नमःशब्दः साधु साध्विति चाम्बरे ।
सुरसिद्धमुनीन्द्राणामासीत्कुसुमवर्षिणाम् ॥२६॥

उस समय आकाशमें देवता, सिद्ध तथा मुनीश्वर वृन्द 'जय-जय नमोनमः तथा साधु-साधु' कहते हुए पुष्प बरसाने लगे ॥२६॥

एवं निहत्य द्विविदं जगद्व्यतिकरावहम् ।
संस्तूयमानो भगवाञ्जनैः स्वपुरमाविशत् ॥२७॥

जगत् को दुःख देनेवाले द्विविदको इस प्रकार मार कर भगवान् बलरामजी अपनी पुरीको पधारे, उस समय लोग उनकी स्तुति कर रहे थे ॥२७॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे सप्तषष्टित्तमोऽध्यायः ॥६७॥

अड़सठवां अध्याय

(हस्तिनापुर कर्षण)

श्रीशुक उवाच

दुर्योधनसुतां राजँल्लक्ष्मणां समितिञ्जयः ।
स्वयंवरस्थामहरत्साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! रण में जीतने वाला जांबवन्ती का पुत्र सांब दुर्योधन की कन्या लक्ष्मणा को स्वयंवर में से हर लाया ॥ १ ॥

कौरवाः कुपिता ऊचुर्दुर्विनीतोऽयमर्भकः ।
कदर्थीकृत्य नः कन्यामकामामहरद्बलात् ॥ २ ॥

तब कौरवों ने क्रोधित होकर कहा कि–यह बालक बड़ा ढीठहै, जो हम लोगोंको कुछ न समझ कर कन्या की इच्छा विना ही उसे बलात्कार से लिये जाता है ॥२॥

बध्नीतेमं दुर्विनीतं किं करिष्यन्ति वृष्णयः ।
येऽस्मत्प्रसादोपचितां दत्तां नो भुञ्जते महीम् ॥३॥

इसबुरेढीठको बाँधदेना चाहिये,भला वेयादव हमारा क्या करेंगे जो कि हमारी ही दी हुई पृथ्वी को हमारी ही कृपासे उर्वरा बनाकर भोगते हैं॥३॥

निगृहीतं सुतं श्रुत्वा यद्येष्यन्तीह वृष्णयः ।
भग्नदर्पाः शमं यन्ति प्राणा इव सुसंयताः ॥ ४ ॥

यदि इसको क़ैद किया हुआ सुनकर यादव गण लड़ने भी आयेंगे तो प्राणायाम आदि प्रयोगों के द्वारा दमन की हुई इन्द्रियों की नाईं अभिमान भंग होने पर शान्त हो जाँयगे ॥४॥

इति कर्णः शलो भूरिर्यज्ञकेतुः सुयोधनः ।
साम्बमारेभिरे बद्धुं कुरुवृद्धानुमोदिताः ॥ ५ ॥

ऐसा विचार कर कर्ण, शल, भूरि, यज्ञकेतु और दुर्योधन-यह सभी कुरुवृद्ध भीष्मजी की सम्मति से सांबको पकड़ने के लिये आये ॥५॥

दृष्ट्वानुधावतः साम्बो धार्तराष्ट्रान्महारथः ।
प्रगृह्य रुचिरं चापं तस्थौ सिंह इवैकलः ॥ ६ ॥

महारथी सांबभी अपने पीछे से दौड़कर आते हुए धृतराष्ट्रके योधाओं को देखकर, सुन्दर धनुष हाथमें लेकर अकेले सिंहकी भांति खड़ा रहा ॥ ६ ॥

तं ते जिघृक्षवः क्रुद्धास्तिष्ठ तिष्ठेति भाषिणः ।
आसाद्य धन्विनो बाणैः कर्णाग्रण्यः समाकिरन् ॥७॥

उसे पकड़ने की इच्छा किये हुए कर्ण आदि कौरवगण धनुष लिये हुए और 'ठहर-ठहर' इस प्रकार पुकारते हुए, उसके पास आकर क्रोधपूर्वक बाण चलाने लगे ॥७॥

सोऽपविद्धः कुरुश्रेष्ठ कुरुभिर्यदुनन्दनः ।
नामृष्यत्तदचिन्त्यार्भः सिंहः क्षुद्रमृगैरिव ॥ ८ ॥

हे राजन् ! कौरवों के द्वारा विंधा हुआ वह भगवान् कृष्ण का बालक यदुनन्दन सांब (उनके प्रहार को) इस प्रकार सहन न कर सका, जैसे सिंह तुच्छ हिरनोंके प्रहारको सहन न करे ॥८॥

विस्फूर्ज्य रुचिरं चापं सर्वान्विव्याध सायकैः ।
कर्णादीन्षड्यथान्वीरस्तावद्भिर्युगपत्पृथक् ॥ ९ ॥

हे राजन् ! अपने सुन्दर धनुष की टङ्कार कर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसने कर्ण आदि छः महारथियों को एक ही साथ छः छः बाणों से अलग-अलग बींध डाला ॥९॥

चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकैकेन च सारथीन् ।
रथिनश्च महेष्वासांस्तस्य तत्तेऽभ्यपूजयन् ॥१०॥

उसने चार-चार बाण घोड़ोंको मारे और एक एक सारथी तथा विशाल धनुर्धारी रथियोंकोमारा, सांबके इस काम की कौरवों ने भी प्रशंसा की॥१०॥

तं तु ते विरथं चक्रुश्चत्वारश्चतुरो हयान् ।
एकस्तु सारथिं जघ्ने चिच्छेदान्यः शरासनम्॥११॥

और सबने मिलकर उसको विरथ कर डाला, चारने चार घोड़े मारे, एकने सारथी मारा और एक ने धनुष काट डाला ॥११॥

तं बद्ध्वा विरथीकृत्य कृच्छ्रेण कुरवो युधि ।
कुमारं स्वस्य कन्यां च स्वपुरं जयिनोऽविशन्॥१२॥

कौरव लोग उसे संग्राममें बड़े कष्टके साथ रथ हीन करके, बांधकर जीतकर उस कुमार तथा कन्या को लेकर अपने नगर में आये ॥१२॥

तच्छ्रुत्वा नारदोक्तेन राजन्संजातमन्यवः ।
कुरून्प्रत्युद्यमं चक्रुरुग्रसेनप्रचोदिताः ॥१३॥

हे राजन्! यादवों ने जब नारदजी के मुंह से यह बात सुनी, तो उन्होंने क्रोधित होकर उग्रसेन की प्रेरणासे कौरवोंपर चढ़ाई करनेका उद्योगकिया॥

सान्त्वयित्वा तु रामस्तान्सन्नद्धान्वृष्णिपुङ्गवान्।
नैच्छत्कुरूणां वृष्णीनां कलिं कलिमलापहः ॥१४॥

उन यदु-पुंगवोंको कमर कसे हुए देखकर बल-भद्रजीने धीरज बँधाया, क्योंकि वे कलि-मल-हारी चाहते थे कि यदि कौरवों और यादवोंमें कलह न हो तो अच्छा है ॥ १४ ॥

जगाम हास्तिनपुरं रथेनादित्यवर्चसा ।
ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च वृतश्चन्द्र इव ग्रहैः ॥१५॥

और वे ग्रहोंयुक्त चन्द्रमाकी नाईं ब्राह्मणों तथा कुलवृद्धोंको साथ लिये हुए सूर्यके समान तेजमय रथ पर चढ़कर हस्तिनापुर पधारे ॥ १५ ॥

गत्वा गजाह्वयं रामो बाह्योपवनमास्थितः ।
उद्धवं प्रेषयामास धृतराष्ट्रं बुभुत्सया ॥१६॥

बलरामजी हस्तिनापुर में जाकर बाहर बागमें ठहर गये और कौरवों का विचार जानने के लिये उन्होंने उद्धवजीको धृतराष्ट्रके पास भेजा ॥ १६ ॥

सोऽभिवन्द्याम्बिकापुत्रं भीष्मं द्रोणं च बाह्लिकम्।
दुर्योधनं च विधिवद्राममागतमब्रवीत् ॥१७॥

उन उद्धवजी ने वहाँ जाकर धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोणाचार्य, बाह्लिक और दुर्योधन को विधि-पूर्वक प्रणाम करके कहा कि बलरामजी पधारे हैं ॥१७॥

तेऽतिप्रीतास्तमाकर्ण्य प्राप्तं रामं सुहृत्तमम् ।
तमर्चयित्वाभिययुः सर्वे मङ्गलपाणयः ॥१८॥

वे लोग अपने परम मित्र श्रीबलरामजी का आगमन सुनकर परम प्रसन्न हुए और उद्धवजी का सत्कार करके कल्याण के लिये भेंट हाथ में लेकर उनके सामने आये ॥१८॥

तं संगम्य यथान्यायं गामर्घ्यं च न्यवेदयन् ।
तेषां ये तत्प्रभावज्ञाः प्रणेमुः शिरसा बलम्॥१९॥

उनसे यथायोग्य मिलकर गौ अर्पण कर अर्घ्य दिया तथा जो उनके प्रभाव को जानते थे, उन्होंने सिर झुकाकर उनको प्रणाम किया ॥१९॥

बन्धून्कुशलिनः श्रुत्वा दृष्ट्वा शिवमनामयम् ।
परस्परमथो रामो बभाषेऽविक्लवं वचः ॥२०॥

परस्पर मङ्गल तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी प्रश्न करके तथा सम्बन्धियों की कुशल सुनकर फिर बलरामजी ने यह तेज पूर्ण वचन कहा ॥२०॥

उग्रसेनः क्षितीशेशो यद्व आज्ञापयत्प्रभुः ।
तदव्यग्रधियः श्रुत्वा कुरुध्वं मा विलम्बितम्॥२१॥

कि महाराजाधिराज उग्रसेनने जो तुम्हें आज्ञा दी है उसे सावधान होकर सुनो और शीघ्र ही उसके अनुसार काम करो ॥२१॥

यद्यूयं बहवस्त्वेकं जित्वाऽधर्मेण धार्मिकम् ।
अबध्नीताथ तन्मृष्ये बन्धूनामैक्यकाम्यया ॥२२॥

उग्रसेनजी का कहनाहै कि-तुम बहुत से लोगों ने इकट्ठे होकर अधर्म के साथ जो हमारे धर्मनिष्ठ अकेले बालक को जीतकर क़ैद कर लिया है, सो सम्बन्धियों में सन्धि बनाये रखने के लिये मैं उसे सहन करता हूँ, परन्तु अब उसे शीघ्र छोड़ दो ॥

वीर्यशौर्यबलोन्नद्धमात्मशक्तिसमं वचः ।
कुरवो बलदेवस्य निशम्योचुः प्रकोपिताः ॥२३॥

पराक्रम, वीरता, बल, युक्ति अपनी शक्ति के समान बलदेवजीका वचन सुनकर कौरवगण क्रोध पूर्वक कहने लगे कि ॥२३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अहो महच्चित्रमिदं कालगत्या दुरत्यया ।
आरुरुक्षत्युपानद्वै शिरो मुकुटसेवितम् ॥२४॥

अहो ! काल की गति बड़ी ही दुरन्त है, यह बड़े ही आश्चर्यकी बात हुई कि जो मुकुटके सेवन योग्य सिर पर जूती चढ़नी चाहती है ॥२४॥

एते यौनेन संबद्धाः सहशय्यासनाशनाः ।
वृष्णयस्तुल्यतां नीता अस्मद्दत्तनृपासनाः ॥२५॥

इन यादवों के साथ हम लोगों ने व्याह-संबंध खाना, सोना, बैठना करके तथा उनको राज्यासन देकर अपने बराबर का बनाया है ॥२५॥

चामरव्यजने शङ्खमातपत्त्रं च पाण्डुरम् ।
किरीटमासनं शय्यां भुञ्जन्त्यस्मदुपेक्षया ॥२६॥

हम लोगों के उपेक्षा न करने से ही यह यादव लोग चमर, पंखा, शंख, श्वेत छत्र, आसन और शैया-इन वस्तुओं का भोग करते हैं ॥२६॥

अलं यदूनां नरदेवलाञ्छनैर्दातुः प्रतीपैः फणिनामिवामृतम् । येस्मत्प्रसादोपचिता हि यादवा आज्ञापयन्त्यद्य गतत्रपा बत ॥२७॥

जैसे जो सर्प को दूध पिलाता है उसीको सर्प काटता है, वैसे ही अपनी कृपा से बढ़े हुए यादव आज निर्लज्ज होकर हम लोगों को उलटी आज्ञा देते हैं और हमारे द्वारा पाये हुए राज-चिह्नों को पाकर हमारा ही अहित करने के लिये तैयार हो गये हैं, यह बड़े खेद की बात है, इसलिये इनसे ये राज-चिह्न छीन लेना चाहिये ॥२७॥

कथमिन्द्रोऽपि कुरुभिर्भीष्मद्रोणार्जुनादिभिः ।
अदत्तमवरुन्धीत सिंहग्रस्तमिवोरणः ॥२८॥

भीष्म, द्रोणाचार्य, अर्जुन आदि कौरवों की वस्तु को उनके विना दिये क्या इन्द्रभी ले सकता है ? कदापि नहीं, जैसे सिंहकी वस्तु को उसके बिना दिये भेड़ नहीं ले सकती ॥२८॥

श्रीशुक उवाच

जन्मबन्धुश्रियोन्नद्धमदास्ते भरतर्षभ ।
आश्राव्य रामं दुर्वाच्यमसभ्याः पुरमाविशन् २९॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! जन्म, बन्धु, और लक्ष्मी से मदोन्मत्त वे असभ्य कौरव बलदेव जीसे ऐसे दुर्वचन कहकर हस्तिनापुर चलेगये २९॥

दृष्ट्वा कुरूणां दौःशील्यं श्रुत्वाऽवाच्यानि चाच्युतः ।
अवोचत्कोपसंरब्धो दुष्प्रेक्ष्यः प्रहसन् मुहुः ॥३०॥

कौरवोंकी दुष्टता देखकर उनकी बातें सुनकर क्रोधावेग के कारण जिनकी ओर देखा नहीं जाता ऐसे बलदेवजी बार-बार हँसकर कहनेलगे कि॥३०॥

नूनं नानामदोन्नद्धाः शान्तिं नेच्छन्त्यसाधवः ।
तेषां हि प्रशमो दण्डः पशूनां लगुडो यथा॥३१॥

अनेक प्रकारके मदसे भरेहुए नीच पुरुष शांति कदापि नहीं चाहते वरन् जैसे पशु लाठी से शान्त होता है वैसे ही दुष्टों के शान्त करने का उपाय दण्ड ही है ॥३१॥

अहो यदून्सुसंरब्धान्कृष्णं च कुपितं शनैः ।
सान्त्वयित्वाऽहमेतेषां शममिच्छन्निहागतः ॥३२॥

अत्यन्त क्रोधी यादव यथा कुपित श्रीकृष्णको धीरे-धीरे समझा-बुझाकर मैं तो दोनों में एकता कराने के विचार से यहाँ आया था ॥ ३२ ॥

त इमे मन्दमतयः कलहाभिरताः खलाः ।
तं मामवज्ञाय मुहुर्दुर्भाषान् मानिनोऽब्रुवन् ॥३३॥

और यह मन्द बुद्धि, कलह-प्रिय, दुष्ट, अभिमानी लोग मेरा तिरस्कार करके न कहने योग्य बातें मुझसे कहते हैं ॥३३॥

नोग्रसेनः किल विभुर्भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः ।
शक्रादयो लोकपाला यस्यादेशानुवर्तिनः ॥३४॥

भोज, वृष्णि और अंधक वंश के स्वामी उग्रसेन कि जिनकी आज्ञानुसार इन्द्र आदि लोकपाल भी चलरहे हैं-उनको ये लोग राजाही नहीं गिनते ॥३४॥

सुधर्माऽऽक्रम्यते येन पारिजातोऽमराङ्घ्रिपः ।
आनीय भुज्यते सोऽसौ न किलाध्यासनार्हणः ३५

सुधर्मा सभाको दबा कर विराजने वाले तथा देववृक्ष को स्वर्ग से लाकर भोगने वाले श्रीकृष्णभी इन लोगोंकी दृष्टिमें सिंहासनके योग्य नहीं हैं॥३५॥

यस्य पादयुगं साक्षाच्छ्रीरुपास्तेऽखिलेश्वरी ।
स नार्हति किल श्रीशो नरदेवपरिच्छदान् ॥३६॥

समस्त जगत् की स्वामिनी श्रीलक्ष्मी भी जिन के युगल चरणकी सेवा करतीहैं, वे लक्ष्मीपति भी इनकी समझमें राज-चिह्नके योग्य नहीं हैं॥३६॥

यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजोऽखिललोकपालैर्मौल्युत्तमैर्धृतमुपासिततीर्थतीर्थम् । ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कलाः कलायाः श्रीश्चोद्वहेम चिरमस्य नृपासनं क ॥

गङ्गाजी ऐसे तीर्थ को भी पवित्र करने वाले, तथा जिनको सब लोकपाल भी उत्तम मुकुटों से धारण करते हैं, ऐसे भगवान् की जिन चरणों की रज को ब्रह्माजी, महादेवजी; लक्ष्मीजी और मैं अनादि कालसे सेवन करतेहैं और जिन परमात्मा के अंशांशरूप हैं उनको राज्यासन कैसे होसकताहै?

भुञ्जते कुरुभिर्दत्तं भूखण्डं वृष्णयः किल ।
उपानहः किल वयं स्वयं तु कुरवः शिरः ॥३८॥

यादव गण कौरवों का दिया हुआ पृथ्वी-खंड भोगरहे हैं, हम जूते और वे स्वयं सिर हैं ॥३८॥

अहो ऐश्वर्यमत्तानां मत्तानामवमानिनाम् ।
असंबद्धा गिरो रूक्षाः कः सहेतानुशासिता ॥३९॥

मद-पान किये हुए पुरुषों की नाईं ऐश्वर्य से मतवाले अभिमानियों की रूखी और अनुचित वाणी को ताड़ना करने की शक्ति रखने वालाकौन पुरुष सहन करेगा ? ॥३९॥

अद्य निष्कौरवीं पृथ्वीं करिष्यामीत्यमर्षितः ।
गृहीत्वा हलमुत्तस्थौ दहन्निव जगत्त्रयम् ॥४०॥

आज मैं पृथ्वी को कौरवों से रहित करदूँगा- इस प्रकार क्रोध करके त्रिलोकी को जलाने का विचार सा किये हुए, हल हाथमें लेकर बलरामजी उठ खड़े हुए ॥४०॥

लाङ्गलाग्रेण नगरमुद्विदार्य गजाह्वयम् ।
विचकर्ष स गङ्गायां प्राहरिष्यन्नमर्षितः ॥४१॥

और उन्होंने हलके अग्र भाग से हस्तिनापुर को उठाकर क्रोध पूर्वक गङ्गाजी में डुबाने के लिये दक्षिण ओर खींचा ॥४१॥

जलयानमिवाघूर्णं गङ्गायां नगरं पतत् ।
आकृष्यमाणमालोक्य कौरवा जातसंभ्रमाः॥४२॥

नाव की भांति घूमता और खींचा जाता हुआ तथा गङ्गाजी में गिरता हुआ हस्तिनापुर देखकर कौरव घबरा उठे ॥४२॥

तमेव शरणं जग्मुः सकुटुम्बा जिजीषवः ।
सलक्ष्मणं पुरस्कृत्य साम्बं प्राञ्जलयः प्रभुम्॥४३॥

वे लोग सकुटुम्ब अपने जीवनकी रक्षाके लिये लक्ष्मणा सहित सांब को आगे करके और हाथ जोड़कर उन्हीं प्रभु बल्देवजी के शरण गये ॥४३॥

राम रामाखिलाधार प्रभावं न विदाम ते ।
मूढानां नः कुबुद्धीनां क्षन्तुमर्हस्यतिक्रमम् ॥४४॥

और बोले कि-हे राम ! हे राम ! हे सर्वाधार! हम लोग आपका प्रभाव नहीं जानते, आपको हम दुर्बुद्धि मूर्खों का अपराध क्षमाकरना उचितहै ॥४४॥

स्थित्युत्पत्त्यप्ययानां त्वमेको हेतुर्निराश्रयः ।
लोकान्क्रीडनकानीश क्रीडतस्ते वदन्ति हि ॥४५॥

आप इस जगत्की उत्पति, स्थिति तथा प्रलय के एक कारण और निराधार हो, हे ईश ! ये लोग आपके खिलवाड़के खिलौने कहलाते हैं ॥ ४५ ॥

त्वमेव मूर्ध्नीदमनन्त लीलया भूमण्डलं बिभर्षि सहस्रमूर्धन् । अन्ते च यः स्वात्मनि रुद्धविश्वः शेषेऽद्वितीयः परिशिष्यमाणः ॥४६॥

हे सहस्र मस्तकधारी ! हे अनन्त ! इस भू-मंडल को आप ही लीला पूर्वक अपने मस्तक पर धारण करते हैं और प्रलयके समय अपने स्वरूपमें इस जगत् को लीन करके आपही अकेले शेष रहने वाले शेष-नाग पर शयन करते हो ॥४६॥

कोपस्तेऽखिलशिक्षार्थं न द्वेषान्न च मत्सरात् ।
विभ्रतो भगवन्सत्त्वं स्थितिपालनतत्परः ॥४७॥

आपका क्रोध द्वेष या मत्सर के कारण नहीं, वरन् सबकी शिक्षा के लिये होता है, हे भगवन् ! इस समय आपने सृष्टि की स्थिति तथा पालने के लिये सतोगुणी स्वरूप धारण किया है ॥४७॥

नमस्ते सर्वभूतात्मन् सर्वशक्तिधराव्यय ।
विश्वकर्मन्नमस्तेऽस्तु त्वां वयं शरणं गताः ॥४८॥

हे समस्त जीवोंके आत्मा ! हे सर्व शक्तिधारी! हे अविनाशी ! हे सर्वकृत्य! आपको हमारा प्रणाम है, हम आपके अरण आये हैं ॥४८॥

श्रीशुक उवाच

एवं प्रपन्नैः संविग्नैर्वेपमानायनैर्बलः ।
प्रसादितः सुप्रसन्नो मा भैष्टेत्यभयं ददौ ॥४९॥

श्रीशुकदेवजी बोले-इस प्रकार शरणागत, चिन्तायुक्त तथा कम्पित पुर वाले कौरवों ने जब विनय की, तब बल्देवजीने प्रसन्न होकर यह कहते हुए कि मत डरो, उन सब को अभय-दान दिया ॥

दुर्योधनः पारिबर्हं कुञ्जरान्षष्टिहायनान् ।
ददौ च द्वादशशतान्ययुतानि तुरङ्गमान् ॥५०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रथानां षट् सहस्राणि रौक्माणां सूर्यवर्चसाम् ।
दासीनां निष्ककण्ठीनां सहस्रं दुहितृवत्सलः ५१॥

दुर्योधन ने अपनी कन्या के दहेज़ में साठ २ वर्ष की आयुवाले बारहसौ हाथी; दसहज़ार घोड़े सूर्य के समान प्रकाशमय तथा तेजवान् सुनहरी छः हज़ार रथ और पदक पहने हुए एक हज़ार दासियाँ दीं, क्योंकि उसे अपनी पुत्री पर बड़ा स्नेह था ॥५०॥५१॥

प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं भगवान्सात्वतर्षभः ।
ससुतः सस्नुषः प्रायात्सुहृद्भिरभिनन्दितः ॥५२॥

यादवों में श्रेष्ठ बलरामजी वह सब लेकर पुत्र और बहूसहित कौरवोंसे आदर पाकर चलदिये।

ततः प्रविष्टः स्वपुरं हलायुधः समेत्य बन्धून-
नुरक्तचेतसः । शशंस सर्वं यदुपुङ्गवानां मध्ये
सभायां कुरुषु स्वचेष्टितम् ॥५३॥

फिर उन्होंने द्वारका में आकर अनुरागी चित्त वाले बन्धुओं से मिलकर उत्तम यदुओंकी सभामें बैठकर, कौरवों के साथ किये हुए व्यवहार को कह सुनाया ॥५३॥

अद्यापि च पुरं ह्येतत्सूचयद्रामविक्रमम् ।
समुन्नतं दक्षिणतो गङ्गायामनु दृश्यते ॥५४॥

आज भी वह हस्तिनापुर श्रीबलरामजी के पराक्रम को दिखलाता हुआ दक्षिण की ओर ऊँचा तथा गङ्गाजी की ओर नीचा जान पड़ता है ॥५४॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥

उनहत्तरवां अध्याय

(नारदागमन)

श्रीशुक उवाच

नरकं निहतं श्रुत्वा ततोद्वाहं च योषिताम् ।
कृष्णेनैकेन बह्वीनां तद्दिदृक्षुः स्म नारदः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—नरकासुरको मारकर भगवान्ने अकेलेही अनेकों स्त्रियोंके साथ व्याह किया है, यह बात सुनकर नारदजी देखनेको आये ॥१॥

चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत्पृथक् ।
गृहेषु द्व्यष्टसाहस्रं स्त्रिय एक उदावहत् ॥ २ ॥

कि यह कैसे आश्चर्यकी बातहै जो अकेले भगवान् ने एक शरीर ही से एक साथ जुदे २ घरों में सोलह हज़ार स्त्रियोंका पाणिग्रहण किया ॥२॥

इत्युत्सुको द्वारवतीं देवर्षिर्द्रष्टुमागमत् ।
पुष्पितोपवनारामद्विजालिकुलनादिताम् ॥ ३ ॥

इस तरह उत्सुक होकर देखनेके लिये नारदजी द्वारका आये, जहाँ पुष्पवाटिका और बागोंमें पक्षी तथा भौंरों के झुंड गूञ्ज रहे हैं ॥३॥

उत्फुल्लेन्दीवराम्भोजकह्लारकुमुदोत्पलैः ।
छुरितेषु सरस्सूच्चैः कूजितां हंससारसैः ॥ ४ ॥

फूले हुए इन्दीवर, अंभोज, कल्हार, कुमुद और उत्पलों से परिपूर्ण सरोवरों में हंस और सारस उच्च स्वर से कूँज रहे हैं ॥४॥

प्रासादलक्षैर्नवभिर्जुष्टां स्फाटिकराजतैः ।
महामरकतप्रख्यैः स्वर्णरत्नपरिच्छदैः ॥ ५ ॥

स्फटिक मणि तथा चाँदी के बने हुए नौ लाख महल शोभायमान् थे कि जिनमें अमूल्य मरकत मणियां जगमगाती थीं तथा सोने और रत्नों की सामग्री तैयार थी ॥५॥

विभक्तरथ्यापथचत्वरापणैः शालासभाभी
रुचिरां सुरालयैः । संसिक्तमार्गाङ्गणवीथिदेहलीं
पतत्पताकाध्वजवारितातपाम् ॥ ६ ॥

जहाँ अलग २ गलियों, राज-मार्गों चौहट्टों, दूकानों, शालाओं, सभाओं और देव-मन्दिरों की शोभा हो रही थी और मार्ग, आँगन, गलियों तथा देहली में छिड़काव होगया था, एवं फहराती हुई ध्वजा-पताकाओं से धूप का निवारण होता था ६॥

तस्यामन्तःपुरं श्रीमदर्चितं सर्वधिष्ण्यपैः ।
हरेः स्वकौशलं यत्र त्वष्ट्रा कार्त्स्न्येन दर्शितम् ॥७॥

तत्र षोडशभिः पद्मसहस्रैः समलंकृतम् ।
विवेशैकतमं शौरेः पत्नीनां भवनं महत् ॥ ८ ॥

वहाँ द्वारका में भगवान्का श्रीसम्पन्न अंतःपुर कि जिसका सब लोकपाल भी पूजन करते हैं तथा विश्वकर्माने जिसमें अपनी सारी चतुरता दिखलाई है और जहाँ भगवान् की सोलह हज़ार रानियों के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महल शोभायमान् हैं; उनमें से एक बड़ा सा महल देखकर नारदजीने उसमें प्रवेश किया ॥७॥८॥

विष्टब्धं विद्रुमस्तम्भैर्वैदूर्यफलकोत्तमैः ।
इन्द्रनीलमयैः कुड्यैर्जगत्या चाऽहतत्विषा ॥ ९ ॥
वितानैर्निर्मितैस्त्वष्ट्रा मुक्तादामविलम्बिभिः ।
दान्तैरासनपर्यङ्कैर्मण्युत्तमपरिष्कृतैः ॥१०॥
दासीभिर्निष्ककण्ठीभिः सुवासोभिरलंकृतम् ।
पुम्भिः सकञ्चुकोष्णीषसुवस्त्रमणिकुण्डलैः ॥११॥

जिसमें विद्रुम मणि के खंभ लगे हुए हैं जो वैडूर्य मणिके उत्तम पट्टे, इन्द्रनील मणिकी दीवारें अखंड कान्तिमयी इन्द्रमणि की भूमि, मोतियोंकी लटकती हुई झालर वाले विश्वकर्मा के बनाये हुए चँदोवे, हाथी दांत के श्रेष्ठ मणि-खचित आसन, पलंग, गलेमें पदक पहिने और सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए दासियाँ, जामा, पगड़ी, सुन्दर वस्त्र तथा मणियों के कुण्डल धारण किये हुए पुरुषों से शोभायान् हैं ॥९॥१०॥११॥

रत्नप्रदीपनिकरद्युतिभिर्निरस्तध्वान्तं विचित्रवलभीषु शिखण्डिनाऽङ्ग । नृत्यन्ति यत्र विहिता गुरुधूपमक्षैर्निर्यान्तमीक्ष्य घनबुद्धय उन्नदन्तः१२॥

हे राजन् ! अनेक रत्न-दीपों की कान्ति से अन्धकारका कहीं नाम भी न दीखताथा; उस महल की जालियों में से निकलते हुए अगर का धूप देख कर उसे मेघ समझते हुए मोर सुरीली ध्वनिकरते हुए छज्जों पर नाच करते थे ॥१२॥

तस्मिन् समानगुणरूपवयःसुवेषदासीसहस्रयुतयाऽनुसवं गृहिण्या । विप्रो ददर्श चमरव्यजनेन रुक्मदण्डेन सात्वतपतिं परिवीजयन्त्या १३॥

उस महल में सदैव ही अपने समान गुण, रूप अवस्था और स्वच्छ वेष वाली हज़ारों दासियों के साथ श्रीरुक्मिणीजी स्वर्ण की डंडी वाला चमर हाथमें लेकर जिनको पवन किया करती थीं, उन श्रीकृष्ण भगवान् का नारदजीने दर्शन किया ।१३॥

तं संनिरीक्ष्य भगवान्सहसोत्थितः श्रीपर्यङ्कतः सकलधर्मभृतां वरिष्ठः । आनम्य पादयुगलं शिरसा किरीटजुष्टेन साञ्जलिरवीविशदासने स्वे ॥१४॥

नारदजी को देखते ही धर्म धारण करने वालों में श्रेष्ठ श्रीकृष्णजी रुक्मिणीजीके पलंग परसे शीघ्र ही उठ खड़े हुए और किरीट मय मस्तकसे उनके चरणों में प्रणाम करके हाथ जोड़कर अपने आसन पर बिठलाया ॥१४॥

तस्यावनिज्य चरणौ तदपः स्वमूर्ध्ना बिभ्रज्जगद्गुरुतरोपि सतां पतिर्हि । ब्रह्मण्यदेव इति यद्गुणनामयुक्तं तस्यैव यच्चरणशौचमशेषतीर्थम्॥

जिनके चरणों का धोवन गङ्गा सबका तीर्थ है ऐसे सज्जनों के स्वामी श्रीकृष्ण भगवान् ने सबसे श्रेष्ठ होकर भी नारदजी के चरणों को पखार कर वह जल अपने मस्तकपर चढ़ाया. हे राजन्! उन्हों ने गुणों के द्वारा पाये हुए अपने 'ब्रह्मण्यदेव' नाम के अनुसार यह कर्म किया ॥१५॥

संपूज्य देवऋषिवर्यमृषिः पुराणो नारायणो नरसखो विधिनोदितेन । वाण्याभिभाष्य मितयाऽमृतमिष्टया तं प्राह प्रभो भगवते करवामहे किम्॥

मनुष्य के मित्र, पुराण ऋषि, नारायण भगवान् शास्त्रानुसार विधि पूर्वक नारदजी का पूजन करके अमृत के समान मीठी बोली से संक्षेप में बोले कि हे महाराज ! मुझे क्या आज्ञाहै ? मैं क्या करूँ ? १६

नारद उवाच

नैवाद्भुतं तव विभोऽखिललोकनाथ मैत्री जनेषु सकलेषु दमः खलानाम् । निःश्रेयसाय हि जगत्स्थितिरक्षणाभ्यां स्वैरावतार उरुगाय विदाम सुष्ठु१७

नारदजी बोले-हे विभु ! हे सर्व लोकेश्वर ! हे उरुगाय ! आप सब सज्जनोंपर स्नेह रखते हैं और दुष्टों को दण्ड देते हैं, यह कोई अचरज की बात नहींहै, क्योंकि जगत्के धारण, पालन तथा कल्याण के लिये ही यह आपका इच्छानुसार अवतारहुआ है, यह मैं भली भांति जानता हूँ ॥१७॥

दृष्टं तवाङ्घ्रियुगलं जनताऽपवर्गं ब्रह्मादिभिर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः । संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं ध्यायंश्चराम्यनुगृहाण यथा स्मृतिः स्यात्१८

यदि लोगों के मोक्षरूप, अगाध ज्ञान वाले ब्रह्मा आदि के भी हृदयमें ध्यान करने योग्य और संसार रूपी कूप में पड़े हुए पुरुषों को उद्धार करने के लिये आश्रय रूप आपके चरणों का मुझे दर्शन हुआहै तो अब मुझपर ऐसी कृपा कीजिये कि मुझे आपका स्मरण बना रहे और मैं आपके चरणों का ध्यान करता हुआ विचरता रहूँ ॥१८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ततोन्यदाविशद्गेहं कृष्णपत्न्याः स नारदः ।
योगेश्वरेश्वरस्याङ्ग योगमायाविवित्सया ॥१९॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन्! फिर वे नारद जी भगवान्की योगमाया जाननेके लिये योगेश्वरों के भी ईश्वर भगवान्की दूसरी रानीके महलमें गये॥

दीव्यन्तमक्षैस्तत्रापि प्रियया चोद्धवेन च ।
पूजितः परया भक्त्या प्रत्युत्थानासनादिभिः २०॥

उन्होंने वहाँ भी भगवान् को अपनी प्रियतमा तथा उद्धवजी के साथ चौपड़ खेलते देखा, वहाँ भी भगवान् ने परम भक्ति के साथ आसन आदि देकर नारदजी का पूजन किया ॥२०॥

पृष्टश्चाविदुषेवासौ कदाऽऽयातो भवानिति ।
क्रियते किं नु पूर्णानामपूर्णैरस्मदादिभिः ॥२१॥

और अनजान की भांति पूछने लगे कि आप कब पधारे? आपके समान पूर्ण पुरुष का हमसे अपूर्ण जन क्या पूजन कर सकते हैं? ॥२१॥

अथापि ब्रूहि नो ब्रह्मञ्जन्मैतच्छोभनं कुरु ।
स तु विस्मित उत्थाय तूष्णीमन्यदगाद्गृहम्॥२२

फिर भी हे ब्रह्मन्! जो काम हो वह हमसे कहिये और हमारे इस जन्म को पवित्र कीजिये, नारदजी आश्चर्य से चकित होकर वहाँसे चुपचाप उठकर दूसरे महल में पधारे ॥२२॥

तत्राप्याचष्ट गोविन्दं लालयन्तं सुताञ्छिशून् ।
ततोऽन्यस्मिन्गृहेऽपश्यन्मज्जनाय कृतोद्यमम्॥२३॥

वहाँ भी अपने छोटे २ बालकोंको खिलाते हुए भगवान् उन्हें दिखाई दिये, फिर दूसरे महल में स्नेह-संबंधी उद्योग करते हुए दीख पड़े ॥२३॥

जुह्वतं च वितानाग्नीन्यजन्तं पञ्चभिर्मखैः ।
भोजयन्तं द्विजान्कापि भुञ्जानमवशेषितम् ॥२४॥

कहीं अग्निहोत्र का होम करते हुए, कहीं वैश्व देव आदि पञ्च महा यज्ञ करते, कहीं ब्राह्मणों को भोजन करवाते या उनसे बचे हुए अन्न का भोजन करते हुए दिखाई दिये ॥२४॥

क्वापि सन्ध्यामुपासीनं जपन्तं ब्रह्म वाग्यतम् ।
एकत्र चासिचर्मभ्यां चरन्तमसिवर्त्मसु ॥२५॥

कहीं संध्योपासन करते और मौन रख कर गायत्रीका जाप करते हुए और कहीं ढाल तलवार लेकर पटा खेलते हुए दीख पड़े ॥२५॥

अश्वैर्गजै रथैः क्वापि विचरन्तं गदाग्रजम् ।
क्वचिच्छयानं पर्यङ्के स्तूयमानं च बन्दिभिः॥२६॥

कहीं हाथी, घोड़े या रथपर बैठकर फिरते हुए दीख पड़े, कहीं पलंगपर पौढ़े हुए दीख पड़े, जहाँ वन्दीजनों के द्वारा उनकी स्तुति होरही थी ॥२६॥

मन्त्रयन्तं च कस्मिंश्चिन्मन्त्रिभिश्चोद्धवादिभिः ।
जलक्रीडारतं क्वापि वारमुख्याऽबलावृतम् ॥२७॥

कहीं पर उद्धव आदि मन्त्रियों के साथ मंत्रणा कर रहे हैं, कहीं वेश्याओं से घिरे हुए जल-क्रीड़ा कर रहे हैं ॥२७॥

क्वचिद्द्विजमुख्येभ्यो ददतं गाः स्वलंकृताः ।
इतिहासपुराणानि शृण्वन्तं मङ्गलानि च ॥२८॥

कहीं सुपात्र ब्राह्मणोंको शृङ्गार कराके गौ-दान कररहे हैं, कहीं कल्याणकारी इतिहास और पुराण सुन रहे हैं ॥२८॥

हसन्तं हासकथया कदाचित्प्रियया गृहे ।
क्वापि धर्मं सेवमानमर्थकामौ च क्वचित् ॥२९॥

कहीं हँसीकी बात करके अपनी प्यारीके साथ हँस रहे हैं, कहीं अर्थ और काम का सेवन कर रहे हैं ॥ २९ ॥

ध्यायन्तमेकमासीनं पुरुषं प्रकृतेः परम् ।
शुश्रूषन्तं गुरून् क्वापि कामैर्भोगैः सपर्यया ॥३०॥

कहीं अकेले एकासन बैठकर प्रकृति से परे आत्मा का चिन्तवन कर रहे हैं, कहीं भोग और पूजाकी सामग्री से गुरुओंकी सेवा कर रहे हैं ॥३०॥

कुर्वन्तं विग्रहं कैश्चित्सन्धिं चान्यत्र केशवम् ।
क्वापि सह रामेण चिन्तयन्तं सतां शिवम् ॥३१॥

कहीं किसीसे संधि कररहे हैं और कहीं विग्रह कररहे हैं, कहीं बलदेवजी के साथ साधु पुरुषों के कल्याण करने का विचार कर रहे हैं ॥३१॥

पुत्राणां दुहितॄणां च काले विध्युपयापनम् ।
दारैर्वरैस्तत्सदृशैः कल्पयन्तं विभूतिभिः ॥३२॥

कहीं बड़ी धूमधामके साथ पुत्रोंका योग्यस्त्रियों के साथ और कन्याओं का योग्य वरों के साथ समय पर विवाह करा रहे हैं ॥३२॥

प्रस्थापनोपानयनैरपत्यानां महोत्सवान् ।
वीक्ष्य योगेश्वरेशस्य येषां लोका विसिस्मिरे ॥३३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहीं अपनी सन्तानों के बुलाने या भेजने के लिये महोत्सवोंका विचार कररहे हैं, जिनको देख कर लोग विस्मित होते हैं ॥३३॥

यजन्तं सकलान्देवान्कापि क्रतुभिरूर्जितैः ।
पूर्तयन्तं क्वचिद्धर्मं कूपारामामठादिभिः ॥३४॥

कहीं बड़े २ यज्ञोंको करके समस्त देवताओंका पूजन करते हैं, कहीं कुआँ, बावड़ी, बाग, मठआदि बनवाकर धर्म की पूर्त्ति कर रहे हैं ॥३४॥

चरन्तं मृगयां क्वापि हयमारुह्य सैन्धवम् ।
घ्नन्तं तंतः पशून्मेध्यान्परीतं यदुपुङ्गवैः ॥३५॥

कहीं सिन्धु देशके घोड़े पर चढ़ कर शिकार खेलरहे हैं और श्रेष्ठ यादवों के साथ विचित्र २ पशुओं को मार रहे हैं ॥३५॥

अव्यक्तलिङ्गं प्रकृतिष्वन्तःपुरगृहादिषु ।
क्वचिच्चरन्तं योगेशं तत्तद्भावबुभुत्सया ॥३६॥

किसी महल में मन्त्री तथा अन्तःपुर आदि के भीतर भेद जानने के लिये योगेश्वर भगवान् वेष बदल कर विचर रहे हैं ॥३६॥

अथोवाच हृषीकेशं नारदः प्रहसन्निव ।
योगमायोदयं वीक्ष्य मानुषीमीयुषो गतिम् ॥३७॥

तब मनुष्य-अवतार की लीला करते हुए भगवान् की योगमाया का यह सभी उदय देखकर मुसकराते हुए से नारदजी कहने लगे ॥३७॥

विदाम योगमायास्ते दुर्दर्शा अपि मायिनाम् ।
योगेश्वरात्मन्निर्भाता भवत्पादनिषेवया ॥३८॥

कि हे योगेश्वर ! मायावी पुरुष भी जिसको नहीं जान सकते, उस आपकी योग माया मात्र ही को हम आपके चरणारविन्दकी सेवा करके जानते हैं, परन्तु आपके सत्य-स्वरूपको नहीं जानते ॥३८॥

अनुजानीहि मां देव लोकांस्ते यशसा प्लुतान् ।
पर्यटामि तवोद्गायँल्लीलां भुवनपावनीम् ॥३९॥

हे देव ! मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं त्रैलोक को पवित्र करनेवाली आपकी लीलाको गाताहुआ आप की कीर्त्तिसे व्याप्त लोकों में विचरा करूँ ॥ ३९ ॥

श्रीभगवानुवाच

ब्रह्मन्धर्मस्य वक्ताऽहं कर्ता तदनुमोदिता ।
तच्छिक्षयँल्लोकमिममास्थितः पुत्र मा खिदः ॥४०॥

श्रीभगवान् बोले-हे पुत्र नारद ! मैं ही धर्मका कहने वाला, करने वाला और अनुमोद कर्त्ता हूँ, इसलिये मैं लोकों को धर्म की शिक्षा करता हुआ उसका स्वयं पालनभी करताहूँ, तुम मोहमें न पड़ो॥

श्रीशुक उवाच

इत्याचरन्तं सद्धर्मान्पावनान्गृहमेधिनाम् ।
तमेव सर्वगेहेषु सन्तमेकं ददर्श ह ॥४१॥

श्रीशुकदेवजी बोले-इस प्रकार गृहस्थोंके पवित्र तथा उत्तम धर्मका आचरण करतेहुए उन्हीं अकेले भगवान्को नारदजी ने सब घरों में देखा ॥४१॥

कृष्णस्यानन्तवीर्यस्य योगमायामहोदयम् ।
मुहुर्दृष्ट्वा ऋषिरभूद्विस्मितो जातकौतुकः ॥४२॥

अनन्त शक्ति भगवान् की योग माया का परम उदय बारंबार देखकर नारदजीको बड़ा ही कौतुक हुआ और वे अचरज करने लगे ॥४२॥

इत्यर्थकामधर्मेषु कृष्णेन श्रद्धितात्मना ।
सम्यक् सभाजितः प्रीतस्तमेवानुस्मरन्ययौ ॥४३॥

अर्थ, काम, धर्म में इस प्रकार श्रद्धा मय श्री कृष्णचन्द्रजी ने जब भली भांति सत्कार किया तब नारदजी ने प्रसन्न होकर उन्हींका स्मरणकरते हुए वहाँ से प्रस्थान किया ॥४३॥

एवं मनुष्यपदवीमनुवर्तमानो नारायणोऽखिल-
भवाय गृहीतशक्तिः । रेमेऽङ्ग षोडशसहस्रवराङ्ग-
नानां सव्रीडसौहृदनिरीक्षणहासजुष्टः ॥४४॥

हे राजन् ! इस प्रकार नर-लीला का अनुसरण करते हुए, सबके कल्याणार्थ अनेक अवतार धारण करने वाले, सोलह सहस्र उत्तम स्त्रियों की लज्जा तथा स्नेह पूर्ण चितवन तथा हास्य से प्रीति युक्त श्रीमन्नारायण कृष्णचंद्रजी रमण करते थे ॥४४॥

यानीह विश्वविलयोद्भवहेतुः कर्माण्यनन्य-
विषयाणि हरिश्चकार । यस्त्वङ्ग गायति शृणोत्यनु-
मोदते वा भक्तिर्भवेद्भगवति ह्यपवर्गमार्गे ॥४५॥

हे राजन् ! जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारण रूप भगवान्ने जो-जो असाधारण कर्म किये हैं, उन्हें जो मनुष्य गाये, सुने या अनुमोदन करे, उसे मोक्ष के मार्ग श्रीभगवान् की भक्ति प्राप्त हो ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सत्तरवां अध्याय

(जरासन्ध के यहां बन्दी राजाओं का श्रीकृष्ण को सन्देश)

श्रीशुक उवाच

अथोषस्युपवृत्तायां कुक्कुटान्कूजतोऽशपन् ।
गृहीतकण्ठ्यः पतिभिर्मार्धव्यो विरहातुराः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–पतियोंके कंठमें बांह डाल कर, आलिंगन की हुई श्रीकृष्णजीकी स्त्रियां मिलने के समय मुर्ग़ की ध्वनि सुनकर और यह जानकर कि अब श्रीकृष्णजी उठ जाँयगे–विरहातुर होकर उसे शाप देती थीं ॥ १ ॥

वयांस्यरूरुवन्कृष्णं बोधयन्तीव बन्दिनः ।
गायत्स्वलिष्वनिद्राणि मन्दारवनवायुभिः ॥ २ ॥

पारिजातकी सुगंधित पवनसे जब भ्रमर गायन करने लगते थे तब पक्षीवृन्द नींद छोड़ कर ऐसे नाद करने लगते थे, जैसे बंदीजन श्रीकृष्णजी को जगा रहे हों॥२॥

मुहूर्तं तं तु वैदर्भी नामृष्यदतिशोभनम् ।
परिरम्भणविश्लेषात्प्रियबाह्वन्तरं गता ॥ ३ ॥

अपने प्रियतम की बांहों के मध्य में रही हुई रुक्मिणी आदि स्त्रियोंको वह अत्यन्त सुन्दर समय सहन करना कठिन होजाता था, क्योंकि वह उन के आलिंगन से अलग करने वाला था ॥३॥

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः ।
दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम् ॥ ४ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रजी ब्रह्म-मुहूर्त्त में उठकर जल से आचमन करके प्रसन्न मनसे प्रकृति से परे आत्मा का ध्यान करने लगे ॥४॥

एकं स्वयंज्योतिरनन्यमव्ययं स्वसंस्थया नित्य निरस्तकल्मषम् । ब्रह्माख्यमस्योद्भवनाशहेतुभिः स्वशक्तिभिर्लक्षितभावनिर्वृतम् ॥ ५ ॥

जो अखंड, स्वयं प्रकाश, निरुपाधि, नित्य, अपने स्वरूप की स्थिति से अविद्याको हरनेवाला इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कारण, सदानन्द मूर्त्ति और परब्रह्म रूप है ॥५॥

अथाच्युतोऽम्भस्यमले यथाविधि क्रियाकलापं परिधाय वाससी । चकार संध्योपगमादि सत्तमो हुतानलो ब्रह्म जजाप वाग्यतः ॥ ६ ॥

फिर स्वच्छ जलमें स्नान करके, दोनों वस्त्र पहन कर विधि-पूर्वक संध्योपासनादि कर्म तथा अग्निहोत्र करके मौनता-पूर्वक गायत्रीका जप करनेलगे ॥

उपस्थायार्कमुद्यन्तं तर्पयित्वात्मनः कलाः ।
देवानृषीन्पितॄन्वृद्धान्विप्रानभ्यर्च्य चात्मवान्॥७॥
धेनूनां रुक्मशृङ्गीणां साध्वीनां मौक्तिकस्रजाम् ।
पयस्विनीनां गृष्टीनां सवत्सानां सुवाससाम्॥ ८ ॥
ददौ रूप्यखुराग्राणां क्षौमाजिनतिलैः सह ।
अलंकृतेभ्यो विप्रेभ्यो बद्धं बद्धं दिने दिने ॥ ९ ॥

फिर उदय हुए सूर्यको अर्घ्य देकर अपने अंश रूप देवता, ऋषि तथा पितरोंका तर्पण करके ज्ञानवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी वृद्ध तथा ब्राह्मणों का पूजन करके उनको प्रति दिन प्रत्येक घरमें स्वर्ण से मढ़े हुए सींगों वाली, पहली बार ब्याई हुई, सुघर, मोतियोंकी माला पहिने हुए, बछड़ोंसहित स्वच्छ वस्त्र ओढ़ाई हुई, रूपे से मढ़े हुए खुरों वाली, तेरह हज़ार चौरासी गौऐं अलंकृत करके, रेशमी वस्त्र, मृग-चर्म और तिलों के साथ दान देते थे ॥

गोविप्रदेवतावृद्धगुरून्भूतानि सर्वशः ।
नमस्कृत्यात्मसम्भूतीर्मङ्गलानि समस्पृशत् ॥१०॥

अपने विभूति रूप सब गौ, ब्राह्मण, देवता, वृद्ध, गुरु और प्राणियों को नमस्कार करके मांगलिक वस्तुओं को स्पर्श किया करते थे ॥११॥

आत्मानं भूषयामास नरलोकविभूषणम् ।
वासोभिर्भूषणैः स्वीयैर्दिव्यस्रगनुलेपनैः ॥११॥

फिर नर-लोक के आभूषण रूप अपने शरीर को वस्त्र, आभूषण दिव्य माला तथा चन्दनों से अलंकृत किया करते थे ॥११॥

अवेक्ष्याज्यं तथाऽऽदर्शं गोवृषद्विजदेवताः ।
कामांश्च सर्ववर्णानां पौरान्तःपुरचारिणाम् ।
प्रदाप्य प्रकृतीः कामैः प्रतोष्य प्रत्यनन्दत ॥१२॥

फिर घृत और दर्पण में अपना मुख देखकर गौ, बैल, ब्राह्मण और देवताओं का दर्शन करके, अन्तःपुर तथा नगर के सब वर्ण वालोंका मनोरथ पूर्ण करके, मन्त्रियोंकी कामना सिद्ध करके उनको प्रसन्न कर सबको मान देते थे ॥१२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स विभज्याग्रतो विप्रान्सक्ताम्बूलानुलेपनैः ।
सुहृदः प्रकृतीर्दारानुपायुङ्क्त ततः स्वयम् ॥१३॥

पहले ब्राह्मण फिर ब्राह्मण, कार्य अधिकारी और स्त्रियों को पान, फूल और अरगजा देने के पीछे उन वस्तुओंको अपने काममें लाते थे ॥१३॥

तावत्सूत उपानीय स्यन्दनं परमाद्भुतम् ।
सुग्रीवाद्यैर्हयैर्युक्तं प्रणम्यावस्थितोऽग्रतः ॥१४॥

इतने में दारुक सारथी सुग्रीव आदि घोड़ों से जुते हुए परम अद्भुत रथ को लाकर प्रणाम करके सामने खड़ा होगया ॥१४॥

गृहीत्वा पाणिना पाणी सारथेस्तमथारुहत् ।
सात्यक्युद्धवसंयुक्तः पूर्वाद्रिमिव भास्करः ॥१५॥

वे अपने हाथ से सारथी का हाथ पकड़ कर सात्यकि और उद्धव के साथ ऐसे रथ पर चढ़े, जैसे सूर्य उदयाचल पर चढ़ते हैं ॥१५॥

ईक्षितोऽन्तःपुरस्त्रीणां सव्रीडप्रेमवीक्षितैः ।
कृच्छ्राद्विसृष्टो निरगाज्जातहासो हरन्मनः ॥१६॥

बड़े ही कष्ट से भगवान् को छोड़ सकने वाली अन्त-पुर की स्त्रियाँ लज्जा तथा प्रेम भरी दृष्टि से उन्हें देखरही थीं और भगवान् भी हँसकर उनका मन हरण करते हुए बाहर निकले ॥ १६ ॥

सुधर्माख्यां सभां सर्वैर्वृष्णिभिः परिवारितः ।
प्राविशद्यन्निविष्टानां न सन्त्यङ्ग षड्भयः ॥१७॥

तथा सब यादवों को साथ लेकर सुधर्मासभा में पधारे, जिसमें बैठे हुए पुरुषों को भूख-प्यास आदि छः बाधायें नहीं व्यापतीं ॥१७॥

तत्रोपविष्टः परमासने विभुर्बभौ स्वभासा ककुभोऽवभासयन् । वृतो नृसिंहैर्यदुभिर्यदूत्तमो यथोडुराजो दिवि तारकागणैः ॥१८॥

वहाँ श्रेष्ठ आसन पर विराजमान् यदुओं में उत्तम भगवान् अपनी कान्तिसे दशों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए, पुरुष-सिंह यादवों से वेष्टित ऐसे शोभायमान होते थे, जैसे तारागणों के साथ चन्द्रमा ॥१८॥

तत्रोपमन्त्रिणो राजन्नानाहास्यरसैर्विभुम् ।
उपतस्थुर्नटाचार्या नर्तक्यस्ताण्डवैः पृथक् ॥१९॥

हे राजन् ! वहाँ उपमंत्री अनेक प्रकारके हास्य द्वारा भगवान् का मन प्रसन्न करते थे और नटोंके आचार्य तथा नर्त्तकियां अपने साथ के गायकों को लेकर अनी कलाओं द्वारा श्री भगवान् की सेवा करते थे ॥१९॥

मृदङ्गवीणामुरजवेणुतालदरस्वनैः ।
ननृतुर्जगुस्तुष्टुवुश्च सूतमागधबन्दिनः ॥२०॥

सूत, मागध और वंदीजन, मृदङ्ग, वीणा, मुरज वंशी. ताल, शंख-इन सबके शब्दों के साथ नाचते गाते तथा स्तुति करते थे ॥२०॥

तत्राहुर्ब्राह्मणाः केचिदासीना ब्रह्मवादिनः ।
पूर्वेषां पुण्ययशसां राज्ञां चाकथयन्कथाः ॥२१॥

वहाँ कई ब्रह्मवादी ब्राह्मण बैठे थे, जो पवित्र यशवाले प्राचीन राजाओं की कथा कहते थे ॥२१॥

तत्रैकः पुरुषो राजन्नागतोऽपूर्वदर्शनः ।
विज्ञापितो भगवते प्रतीहारैः प्रवेशितः ॥२२॥

हे राजन् ! वहाँ एक अज्ञात मनुष्य आया, उसने भगवान् को सूचना पहुंचाई, तो द्वारपालों ने भीतर जाने की आज्ञा दी ॥२२॥

स नमस्कृत्य कृष्णाय परेशाय कृताञ्जलिः ।
राज्ञामावेदयद्दुःखं जरासन्धनिरोधजम् ॥२३॥

ब्रह्मा आदि के ईश्वर श्रीकृष्णजीको हाथ जोड़ कर उस पुरुष ने प्रणाम किया और जिन राजाओं को जरासंध ने क़ैद करलिया था. उनकी ओर से निवेदन किया ॥२३॥

ये च दिग्विजये तस्य संनतिं न ययुर्नृपाः ।
प्रसह्य रुद्धास्तेनासन्नयुते द्वे गिरिव्रजे ॥२४॥
कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन्प्रपन्नभयभञ्जन ।
वयं त्वां शरणं यामो भवभीताः पृथग्धियः॥२५॥

जरासंध के दिग्विजय करते समय जो उसके शरण न हुए थे, उन बीस हज़ार राजाओं को उस ने बलपूर्वक गिरिव्रज नामक क़िलेमें क़ैद कररक्खा था, उनकी ओर से दूत ने प्रार्थना की कि हे कृष्ण, हे कृष्ण ! हे अप्रमेय स्वरूप ! हे शरणागतों के भय हरण ! हम भेद-बुद्धि वाले संसार से भयभीत होकर आपके शरण हुए हैं ॥२४॥॥२५॥

लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे । यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै॥

निषिद्ध तथा सकाम कर्मों में आसक्त ये लोक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जब तक आपके बतलाये हुए स्वधर्म अर्थात् आप के पूजन में भूल रखता है, इतने ही समय में जो बलवान् काल इस लोक की जीवन-आशा को तत्काल ही काट देता है, उस काल रूप आपको प्रणाम हो ॥२६॥

लोके भवाञ्जगदिनः कलयावतीर्णः सद्रक्षणाय खलनिग्रहणाय चान्यः । कश्चित्त्वदीयमतियाति निदेशमीश किं वा जनः स्वकृतमृच्छति तन्न विद्मः ॥

हे नाथ ! आपने सज्जनोंकी रक्षा तथा दुष्टोंको दण्ड देने के लिये अपने अंश के साथ अवतार लिया है, फिर हे जगन्नाथ ! आपके रहते हुए भी कोई आपकी आज्ञा के विरुद्ध काम करता है और आपके संरक्षण में रहने वाला मनुष्य अपने कर्म जनित दुःखों को भोगता है, इसका कारण क्या है? इसे हम नहीं जानते ॥२७॥

स्वप्नायितं नृपसुखं परतन्त्रमीश शश्वद्भयेन मृतकेन धुरं वहामः । हित्वा तदात्मनि सुखं त्वदनीहलभ्यं क्लिश्यामहेऽतिकृपणास्तव मायया इह ॥

हे ईश ! यह राज्य-सुख विषय-साध्य होने के कारण परतन्त्र है, इसीलिये स्वप्न के सुख की नाईं है और यह शरीर भी निरन्तर भय-पूर्ण तथा मुर्दे के समान है, फिर भी हम इसके द्वारा केवल स्त्री-पुत्रादि की ही चिन्ता किया करतेहैं और निष्काम को स्वयं प्राप्त होने वाला सुख छोड़कर अत्यन्त कृपण बने हुए आपकी माया वशात् यहाँ क्लेश भोगा करते हैं, क्योंकि पहले से ही हम लोगों ने निष्काम भाव से आपके चरणों का शरण नहीं लिया है ॥२८॥

तन्नो भवान्प्रणतशोकहराङ्घ्रियुग्मो बद्धान्विषुङ्क्ष्व मगधाह्वयकर्मपाशात् । यो भूभुजोऽयुतमतङ्गजवीर्यमेको बिभ्रद्रुरोध भवने मृगराडिवाऽवीः

इसलिये जिनके चरणारविन्द प्रणत पुरुषों के शोक दूर करने वाले हैं, उन आपसे बँधे हुए हम लोगों को परासंध रूपी कर्म-बन्धनसे छुड़ाइये,इस दस हज़ार हाथियोंके बराबर बल रखनेवाले जरासंध ने अकेले ही हम लोगों को अपने घर में इस प्रकार क़ैद कर रक्खा है, जैसे सिंह भेड़ों को रोक रखता है ॥२९॥

यो वै त्वया द्विनवकृत्व उदात्तचक्रभग्नो मृधे खलु भवन्तमनन्तवीर्यम् । जित्वा नृलोकनिरतं सकृदूढदर्पो युष्मत्प्रजा रुजति नोऽजित तद्विधेहि ३०

हे चक्रधर ! हे अजित ! आपके साथ जरासंध ने तो अठारह बार संग्राम किया है, उसमें आपने उसे सत्रह बार हराया, परन्तु आप अठारहवींबार नर-लीला करके रण-भूमिसे भाग निकले, इसलिए वह आपको जीतकर बहुतही अभिमानसे भरगया है आपकी प्रजा रूप हम लोगों को दुःख देता है, इसलिये अब आपको जो उपाय समझ में आवे सो कीजिये ॥३०॥

दूत उवाच

इति मागधसंरुद्धा भवदर्शनकाङ्क्षिणः । प्रपन्नाः पादमूलं ते दीनानां शं विधीयताम् ॥ ३१ ॥

दूत ने कहा—जरासंध के बन्दी आपके दर्शनों के अभिलाषी राजागण आपके चरण-मूल के शरण हुए हैं, इसलिये उन दीनों का आपको कल्याण करना चाहिये ॥३१॥

श्रीशुक उवाच

राजदूते ब्रवत्येवं देवर्षिः परमद्युतिः । बिभ्रत्पिङ्गजटाभारं प्रादुरासीद्यथा रविः ॥३२॥

श्रीशुकदेवजी बोले—राजदूत इस भांति विनय कर ही रहा था कि उसी समय पीत जटाधारी, परम कान्तिमय नारदजी वहाँ आ पहुँचे ॥३२॥

तं दृष्ट्वा भगवान्कृष्णः सर्वलोकेश्वरेश्वरः । ववन्द उत्थितः शीर्ष्णा ससभ्यः सानुगो मुदा ३३॥

समस्त लोकपालों के भी ईश्वर श्रीकृष्ण भगवान् नारदजी को देखकर सभासद तथा अनुचरों के साथ आनन्द पूर्वक उठ खड़े हुए और उन्हें सिर झुका कर प्रणाम किया ॥३३॥

सभाजयित्वा विधिवत्कृतासनपरिग्रहम् । बभाषे सूनृतैर्वाक्यैः श्रद्धया तर्पयन्मुनिम् ॥३४॥

आसन को स्वीकार करके बैठे हुए नारदजी का विधि-पूर्वक सत्कार करके, श्रद्धा सहित प्रसन्न करते हुए भगवान्ने मीठे वचनोंमें यह कहा ॥३४॥

अपि स्विदद्य लोकानां त्रयाणामकुतोभयम् । ननु भूयान्भगवतो लोकान्पर्यटतो गुणः ॥३५॥

श्रीभगवान् बोले—हे नारद ! आप तीनों लोकों में विचरण करतेहैं इसलिये मुझे लोकोंका वृत्तांत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जानने में बड़ा लाभ होताहै, भला आज-कल तीनों लोक सब प्रकार से निर्भय तो हैं ? ॥३५॥

न हि तेऽविदितं किञ्चिल्लोकेष्वीश्वरकर्तृषु ।
अथ पृच्छामहे युष्मान्पाण्डवानां चिकीर्षितम् ३६॥

ईश्वर के बनाये हुए लोकों में आपसे कोई बात छिपी नहीं है, इसलिये मैं आपसे पूछता हूँ कि पाण्डव लोग अब क्या करना चाहतेहैं ? ॥३६॥

नारद उवाच

दृष्टा मया ते बहुशो दुरत्यया माया विभो विश्व-सृजश्च मायिनः । भूतेषु भूमंश्चरतः स्वशक्तिभि-र्वह्नेरिव च्छन्नरुचो न मेऽद्भुतम् ॥३७॥

नारदजी बोले–हे प्रभु ! हे भूमन ! जो ब्रह्माजी को भी मोहित करने वाले और अपनी शक्तियों द्वारा प्राणियों में अन्तर्यामी रूप से रहने पर भी काष्ठ में रहने वाली अग्नि के समान प्रकाश वालेहैं उन आपकी मायाको मैंने कई बार देखाहै.इसलिये मुझे यह आपके किये हुए प्रश्न आदि विचित्र से जान पड़ते हैं ॥३७॥

तवेहितं कोऽर्हति साधु वेदितुं स्वमाययेदं सृजतो नियच्छतः । यद्विद्यमानात्मतयाऽवसीयते तस्मै नमस्ते स्वविलक्षणात्मने ॥३८॥

यह संसार जो कि वास्तव में असत्य है, उस के उत्पन्न, पालन तथा संहार करने वाले आपके भाव को भली भांति कौन पुरुष जान सकता है ? कोई भी नहीं, मैं ऐसे अचिन्त्य स्वरूप आपको प्रणाम करता हूँ ॥३८॥

जीवस्य यः संसरतो विमोक्षणं न जानतोऽनर्थ-वहाच्छरीरतः । लीलावतारैः स्वयशःप्रदीपकं प्राज्वालयत्त्वां तमहं प्रपद्ये ॥३९॥

जिन्होंने जन्म-मरण भोगते हुए और अनेक अनर्थकारी शरीर से मोक्ष होनेका उपाय न जानने वाले जीवों का अज्ञान रूपी अन्धकार दूर करने वाला अपने यश रूपी दीपक को लीलापूर्वक अवतार धारण करके प्रकट किया है, मैं उन आपकी शरण हूँ ॥३९॥

अथाप्याश्रावये ब्रह्मन्नरलोकविडम्बनम् ।
राज्ञः पैतृष्वसेयस्य भक्तस्य च चिकीर्षितम्॥४०॥

हे भगवन् ! फिर भी नर-लोक का अनुकरण करने वाले आपसे आपकी फूफी (कुंती) के पुत्र भक्त युधिष्ठिर का आगे जो करने का विचारहै सो कहता हूँ ॥ ४० ॥

यक्ष्यति त्वां मखेन्द्रेण राजसूयेन पाण्डवः ।
पारमेष्ठ्यकामो नृपतिस्तद्भवाननुमोदताम् ॥४१॥

राजा युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ के द्वारा आपका पूजन किया चाहते हैं; क्योंकि उन्हें चक्रवर्त्ति पद की अभिलाषाहै,इसमें आपको सम्मतिदेनीचाहिए॥

तस्मिन्देव क्रतुवरे भवन्तं वै सुरादयः ।
दिदृक्षवः समेष्यन्ति राजानश्च यशस्विनः ॥४२॥

हे देव! उस यज्ञमें तुम्हारे दर्शन करनेके लिये इन्द्र आदि देवता आयेंगे और बड़े यशस्वी राजा भी आयेंगे ॥४२॥

श्रवणात्कीर्तनाद्ध्यानात्पूयन्तेऽन्तेऽवसायिनः ।
तव ब्रह्ममयस्येश किमुतेक्षाभिमर्शिनः ॥४३॥

हे ईश ! आप परब्रह्म के (यश) कहने, सुनने तथा ध्यान से चांडाल भी पवित्र होजाते हैं, फिर आपके दर्शन तथा स्पर्श करनेवाले क्यों पवित्र न हों?

यस्यामलं दिवि यशः प्रथितं रसायां भूमौ च ते भुवनमङ्गलदिग्वितानम् । मन्दाकिनीति दिवि भोगवतीति चाधो गङ्गेति चेह चरणाम्बु पुनाति विश्वम् ॥४४॥

हे भुवन मङ्गल ! जिनका निर्मल यश पृथ्वी, पाताल और स्वर्ग में प्रसिद्ध तथा दशों दिशाओं का अलंकार रूप है और जिनके चरणों का काजल स्वर्ग में मन्दाकिनी, पाताल में भोगवती और भूलोक में गङ्गा नाम से सुन्दर कीर्त्ति पाकर जगत् को पवित्र करता है, उन आपके वहाँ पधारने से ही सब मङ्गल तथा पवित्रता होगी ॥ ४४ ॥

श्रीशुक उवाच

तत्र तेष्वात्मपक्षेष्वगृह्णत्सु विजिगीषया ।
वाचःपेशैः स्मयन्भृत्यमुद्धवं प्राह केशवः ॥४५॥

श्रीशुकदेवजी बोले–नारदजी के इस प्रकार कहने पर जब अपने पक्ष वाले यादवों ने जरासंध को जीतने के विचारसे यज्ञ में जानेकी अनुमति न दी, तब भगवान् ने हँसकर अपने भृत्य उद्धवजीसे मधुर वचनों में कहा ॥४५॥

श्रीभगवानुवाच

त्वं हि नः परमं चक्षुः सुहृन्मन्त्रार्थतत्त्ववित् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथाऽत्र ब्रूह्यनुष्ठेयं श्रद्दध्मः करवाम तत् ॥४६॥

श्रीभगवान्बोले-तुम हमारे सुहृद और सम्मति से सिद्ध करने योग्य बातों के परिणाम जाननेवाले होने के कारण उत्तम नेत्ररूप हो, इसलिये हमें इस विषय में जो करना उचित हो सो कहो, तुम जो कहोगे सो मैं मानूंगा ॥ ४६ ॥

इत्युपामन्त्रितो भर्त्रा सर्वज्ञेनापि मुग्धवत् ।
निदेशं शिरसाऽऽधाय उद्धवः प्रत्यभाषत ॥४७॥

श्रीशुकदेवजी बोले–जब सर्वज्ञ होते हुए भी भगवान् ने इस प्रकार अनजानेकी भांति पूछा तब आज्ञा को शिरोधार्य करके उद्धवजीने कहा ॥ ४७ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥

इकहत्तरवां अध्याय

(श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ-गमन)

श्रीशुक उवाच

इत्युदीरितमाकर्ण्य देवर्षेरुद्धवोऽब्रवीत् ।
सभ्यानां मतमाज्ञाय कृष्णस्य च महामतिः॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-भगवान्के इस तरह वचन सुनकर नारदजी, सभासद और श्रीकृष्णका अभिप्राय जानकर महाबुद्धि उद्धवजी ने कहा ॥ १ ॥

उद्धव उवाच

यदुक्तमृषिणा देव साचिव्यं यक्ष्यतस्त्वया ।
कार्यं पैतृष्वसेयस्य रक्षा च शरणैषिणाम् ॥ २ ॥

उद्धवजी बोले–हे देव ! नारदजी के कहने के अनुसार तो यज्ञ करने के इच्छुक फूफी के पुत्र राजा युधिष्ठिरको सहायता देनी चाहिये और शरण चाहने वाले राजाओं की भी रक्षा करनी चाहिये॥

यष्टव्यं राजसूयेन दिक्चक्रजयिना विभो ।
अतो जरासुतजय उभयार्थो मतो मम ॥३॥

हे प्रभु ! जब राजसूय यज्ञ करनाहै तब दिग्विजय अवश्य करना होगा, इस प्रसंगसे जरासंध भी जीता जायगा, ऐसा करने से शरणागतों की रक्षा और यज्ञमें जानेके दोनोंकार्य सिद्ध होजाँयगे मेरी राय तो यही है ॥३॥

अस्माकं च महानर्थो ह्येते नैव भविष्यति ।
यशश्च तव गोविन्द राज्ञो बद्धान्विमुञ्चतः ॥ ४ ॥

हे गोविंद ! ऐसा करनेसे अपना महान् अभिप्राय सिद्ध होसकताहै तथा बन्दी राजाओंको मुक्त करने से आपकी कीर्त्ति भी होगी ॥४॥

स वै दुर्विषहो राजा नागायुतसमो बले ।
बलिनामपि चान्येषां भीमं समबलं विना ॥ ५ ॥

दस हज़ार हाथियोंके बराबर बल रखने वाला वह जरासंध, उससे अधिक बल वाले लोग भी नहीं जीत सकते, फिर भी भीमके हाथ ही से उस का वध लिखा हुआ है ॥५॥

द्वैरथे स तु जेतव्यो मा शताक्षौहिणीयुतः ।
ब्रह्मण्योऽभ्यर्थितो विप्रैर्न प्रत्याख्याति कर्हिचित् ६
ब्रह्मवेषधरो गत्वा तं भिक्षेत वृकोदरः ।
हनिष्यति न सन्देहो द्वैरथे तव संनिधौ ॥ ७ ॥

जरासंध को द्वंद्व युद्ध ही में विजय किया जा सकताहै, उसे अनेक अक्षौहिणी सेना इकट्ठी करने का अवसर देना उचित नहीं, इसका उपाय यह है कि भीम ब्राह्मणका रूप धरकर उसके पास जाकर द्वंद्व युद्धकी याचना करे, जरासंध ब्राह्मणोंका भक्त है, इसलिये उससे ब्राह्मण जो कुछ भी माँगे, उस से वह आनाकानी नहीं करता, पस यह बात बन जाय तो भीम उसे निःसंदेह मार डालेंगे ॥६॥७॥

निमित्तं परमीशस्य विश्वसर्गनिरोधयोः ।
हिरण्यगर्भः शर्वश्च कालस्यारूपिणस्तव ॥ ८ ॥

निराकार काल रूप ईश्वर आपही जगत् की उत्पत्ति और प्रलय करते हो, उस काम में जैसे ब्रह्मा और रुद्र केवल निमित्त मात्र हैं वैसेही पास में खड़े हुए आपही उस जरासंध का वध करोगे, भीम तो केवल निमित्त रूप होंगे ॥ ८॥

गायन्ति ते विशदकर्म गृहेषु देव्यो राज्ञां स्वशत्रुवधमात्मविमोक्षणं च । गोप्यश्च कुञ्जरपतेर्जनकात्मजायाः पित्रोश्च लब्धशरणा मुनयो वयं च ॥९॥

जैसे गोपियां शंखचूड़के वध तथा अपनी मुक्ति के सम्बन्ध में आपके पवित्र चरित्र को गाती हैं, जैसे शरणागत जन ग्राह-वध तथा गजेन्द्र-मोक्ष

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रूपी आपके पवित्र चरित्र को गाते हैं, जैसे मुनि जन रावण-वध तथा उससे सीताजी के छुड़ाने का आपका पवित्र चरित्र गाते हैं, जैसे हम लोग कंस वध तथा उससे माता-पिता को छुड़ाने का आप का पवित्र चरित्र गाते हैं, वैसे ही जरासंध द्वारा बन्दी किये हुए राजाओं की स्त्रियाँ भी जब अपने बच्चों को खिलाने आदि का काम करतीहैं तब इस प्रकार आपके पवित्र गुणों को गाया करती हैं कि हे पुत्र! रोओ मत, करुणासिंधु श्रीकृष्ण जरासंध को मारेंगे और तुम्हारे पिताको छुड़ायेंगे ॥९॥

जरासन्धवधः कृष्ण भूर्यर्थायोपकल्पते ।
प्रायः पाकविपाकेन तव चाभिमतः क्रतुः ॥१०॥

हे कृष्ण! जरासंध के मारने से कई प्रयोजन सिद्ध होजाँयगे, क्योंकि फिर शिशुपाल आदि शत्रु निर्बल पड़ जाँयगे, मेरी समझ में तो राजाओं का पुण्यकाल तथा जरासंध आदिका पुण्यकाल उदय होने से ही आपको यज्ञ कराने की इच्छा हुई है१०॥

श्रीशुक उवाच

इत्युद्धववचो राजन्सर्वतोभद्रमच्युतम् ।
देवर्षिर्यदुवृद्धाश्च कृष्णश्च प्रत्यपूजयन् ॥११॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन्! ऐसे सब तरह से कल्याणकारी तथा उत्तम युक्तिसे पूर्ण उद्धवजी के वचनों को नारदजी. यदुवृद्धों और श्रीकृष्ण ने मान देते हुए स्वीकार कर लिया ॥११॥

अथादिशत्प्रयाणाय भगवान्देवकीसुतः ।
भृत्यान्दारुकजैत्रादीननुज्ञाप्य गुरून्विभुः ॥१२॥

फिर देवकीनन्दन भगवान् ने वसुदेव आदि श्रेष्ठ जनों की आज्ञा लेकर दारुक और जैत्र आदि भृत्यों को प्रस्थान के लिये आज्ञा दी ॥१२॥

निर्गमय्यावरोधान्स्वान्ससुतान्सपरिच्छदान् ।
संकर्षणमनुज्ञाप्य यदुराजं च शत्रुहन् ।
सूतोपनीतं स्वरथमारुहद्गरुडध्वजम् ॥१३॥

हे शत्रुघ्न! पुत्र, दासी, दास और सामान सहित रानियोंको आगे चलाकर श्रीकृष्णजी बलराम तथा उग्रसेन की आज्ञा लेकर दारुक सारथी के लाये हुए अपने गरुड़ध्वज रथ पर सवार हुए॥

ततो रथद्विपभटसादिनायकैः करालया परिवृत आत्मसेनया । मृदङ्गभेर्यानकशंखगोमुखैः प्रघोष घोषत्ककुभो निराक्रमत् ॥१४॥

फिर रथ, हाथी, पैदल, घुड़सवार और सरदारों सहित भयंकर सेना से घिरकर मृदङ्ग, शंख, भेरी, आनक और गौमुख की घोर ध्वनिसे गुंजित दिशा से भगवान् निकले ॥१४॥

नृवाजिकाञ्चनशिबिकाभिरच्युतं सहात्मजाः पतिमनु सुव्रता ययुः। वराम्बराभरणविलेपनस्रजः सुसंवृता नृभिरसिचर्मपाणिभिः ॥१५॥

उस समय ढाल, तलवार हाथ में लिये हुए पुरुषों के संरक्षण में, उत्तम आभूषण, वस्त्र, अरगजा और माला धारण किये हुए, पुत्रों को साथ लेकर पवित्र भगवान् की स्त्रियाँ तामजाम; बग्घी और पालकी में बैठ-बैठकर अपने नाथ के पीछे चलने लगीं ॥१५॥

नरोष्ट्रगोमहिषखराश्वतर्यनःकरेणुभिः परिजनवारयोषितः । स्वलंकृताः कटकुटिकम्बलाम्बरा-द्युपस्करा ययुरधियुज्य सर्वतः ॥१६॥

कुटुम्ब की स्त्रियां और वेश्यायें भले प्रकार से सज-धजकर चटाइयों के डेरे और कम्बल, वस्त्र आदि सब सामान मनुष्य, ऊँट, बैल, भैंसे, गधे, खच्चर, गाड़े और हथिनियों पर लाद कर चारों ओर से चले ॥१६॥

बलं बृहद्ध्वजपटछत्रचामरैर्वरायुधाभरणकिरीटवर्मभिः। दिवांशुभिस्तुमुलरवं बभौ रवेर्यथार्णवः क्षुभिततिमिङ्गिलोर्मिभिः ॥१७॥

घोर शब्दमयी वह भारी सेना ध्वजा, चमर, छत्र, पट, उत्तम हथियार, आभूषण किरीट,कवच और सूर्य की किरणों से ऐसी शोभा देतीथीं जैसे क्षुब्ध मत्स्यों तथा हिलोरों से संयुक्त समुद्र शोभा देता है ॥ १७ ॥

अथो मुनिर्यदुपतिना सभाजितः प्रणम्य तं हृदि विदधद्विहायसा। निशम्य तद्व्यवसितमाहृतार्हणो मुकुन्दसन्दर्शननिर्वृतेन्द्रियः ॥१८॥

फिर नारदजी श्रीकृष्ण भगवान् के कर्त्तव्य का निश्चय सुनकर दर्शनों से परमानन्द मग्न होकर उनसे आदर पाकर उन्हें प्रणाम करके तथा हृदय में स्मरण करते हुए और उनकी पूजा को स्वीकार करके आकाश-पथ से गमनित हुए। १८ ॥

राजदूतमुवाचेदं भगवान्प्रीणयन्गिरा ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मा भैष्ट दूत भद्रं वो घातयिष्यामि मागधम्॥१९॥

भगवान् ने अपनी वाणी से राजदूतको प्रसन्न करके कहा कि—हे दूत! तू राजाओं से कह देना कि तुम लोग न डरो, मैं जरासंध को मार कर तुम्हारा कल्याण करूँगा ॥१९॥

इत्युक्तः प्रस्थितो दूतो यथावदवदन्नृपान्।
तेऽपि संदर्शनं शौरेः प्रत्यैक्षंश्च मुमुक्षवः ॥२०॥

जब भगवान् ने इस प्रकार कहा, तब दूत ने वहाँ आकर राजाओं को यथा रूप सब समाचार सुनाये और वे लोग भी बन्धन-मुक्त होनेकी इच्छा से भगवान् के दर्शनों की प्रतीक्षा करने लगे ॥ २०॥

आनर्तसौवीरमरूंस्तीर्त्वा विनशनं हरिः।
गिरीन्नदीरतीयाय पुरग्रामव्रजाकरान् ॥२१॥
ततो दृषद्वतीं तीर्त्वा मुकुन्दोऽथ सरस्वतीम्।
पाञ्चालानथ मत्स्यांश्च शक्रप्रस्थमथागमत् ॥२२॥

श्रीकृष्ण भगवान् आनर्त, सौवीर और मारवाड़ को छोड़कर कुरुक्षेत्र, पर्वत, नदियां, पुर, गाँव, व्रज और खान वाले प्रान्तों को पार करते हुए दृषद्वती और सरस्वती से उतर कर पाँचाल और मत्स्य देशमें होते हुए इन्द्रप्रस्थ पहुंचे २१॥२२

तमुपागतमाकर्ण्य प्रीतो दुर्दर्शनं नृणाम्।
अजातशत्रुर्निरगात्सोपाध्यायः सुहृद्वृतः ॥२३॥

जिनके दर्शन मनुष्यों को अत्यन्त दुर्लभहैं, उन भगवान् का आगमन सुनकर युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए और उपाध्याय तथा सुहृदजनों के साथ उन के सन्मुख आये ॥ २३ ॥

गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा।
अभ्ययात्स हृषीकेशं प्राणः प्राणमिवादृतः॥२४॥

गायन-वादन और अत्यन्त वेद-ध्वनि के साथ वे भगवान् से ऐसे आदर पूर्वक मिले जैसे इन्द्रियां प्राण से मिलती हैं ॥२४॥

दृष्ट्वा विक्लिन्नहृदयः कृष्णं स्नेहेन पाण्डवः।
चिराद्दृष्टं प्रियतमं सस्वजेऽथ पुनः पुनः ॥२५॥

श्रीकृष्णजी का दर्शन करते ही उनका हृदय स्नेह के कारण आर्द्र होगया और उन्होंने बहुत समय के पीछे देखे हुए प्रियतम का बार-बार आलिंगन किया ॥२५॥

दोर्भ्यां परिष्वज्य रमाऽमलालयं मुकुन्दगात्रं नृपतिर्हताशुभः। लेभे परां निर्वृतिमश्रुलोचनो हृष्यत्तनुर्विस्मृतलोकविभ्रमः ॥२६॥

लक्ष्मी के निवास-रूप भगवान् के शरीर में युधिष्ठिर बाँह डालकर मिले, उनके अमङ्गल उसी समय दूर होगये और वे ऐसे आनन्द-मग्न हुए कि उनके नेत्रों से आँसू आगये, शरीर पुलकायमान होगया और वे लौकिक व्यवहार भी भूलगये ॥२६॥

तं मातुलेयं परिरभ्य निर्वृतो भीमः स्मयन्प्रेमजवाकुलेन्द्रियः। यमौ किरीटी च सुहृत्तमं मुदा प्रवृद्धबाष्पाः परिरेभिरेऽच्युतम् ॥२७॥

भीम अपने मामा के पुत्र भगवान् से हँसकर मिले, उस समय उनको ऐसा आनन्द हुआ कि उनकी इन्द्रियां प्रेम से विह्वल हो उठीं, अर्जुन, नकुल और सहदेव भी प्यारे श्रीकृष्ण से आनन्द पूर्वक मिले और उनकी भी अश्रुधारा उमड़ उठी॥

अर्जुनेन परिष्वक्तो यमाभ्यामभिवादितः।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य वृद्धेभ्यश्च यथार्हतः॥२८॥
मानितो मानयामास कुरुसृञ्जयकेकयान्।
सूतमागधगन्धर्वान्बन्दिनश्चोपमन्त्रिणः ॥२९॥

अर्जुन समान अवस्था के थे, इसलिये उन्होंने केवल भेंट की, नकुल, सहदेव छोटे थे इसलिये उन्होंने प्रणाम भी किया, उस समय भगवान् ने ब्राह्मण तथा वृद्धजनोंको यथा योग्य नमस्कार कर के उनसे सत्कार पाकर कुरु, सृञ्जय, कैकय, सूत, मागध, गन्धर्व, बन्दी और उपमन्त्रियों का सत्कार किया ॥२८॥॥ २९ ॥

मृदङ्गशंखपटहवीणापणवगोमुखैः।
ब्राह्मणाश्चारविन्दाक्षं तुष्टुवुर्ननृतुर्जगुः ॥३०॥

वे लोग मृदङ्ग, शंख, पटह, वीणा, पणव, रणसिंगा बजाते हुए नृत्य गान करते थे और ब्राह्मण लोग उस समय स्तुति करते थे ॥३०॥

एवं सुहृद्भिः पर्यस्तः पुण्यश्लोकशिखामणिः।
संस्तूयमानो भगवान्विवेशाऽलंकृतं पुरम् ॥३१॥

इस प्रकार पवित्र कीर्त्तिवान् पुरुषों के चूड़ामणि भगवान् सुहृदजनों के साथ सुसज्जित नगरमें पधारे; उस समय सब लोक स्तुति कर रहे थे ॥

संसिक्तवर्त्म करिणां मदगन्धतोयैश्चित्रध्वजैः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कनकतोरणपूर्णकुम्भैः । मृष्टात्मभिर्नवदुकूलविभूषणस्रग्गन्धैर्नृभिर्युवतिभिश्च विराजमानम् ॥३२॥

जहाँ मार्ग में गज-मद और सुगन्धित जल से छिड़काव होरहाथा, विचित्र ध्वजा, स्वर्णके तोरण और जल से भरे हुए कलश शोभा देते थे, स्नान करके नवीन वस्त्र, आभूषण, माला और सुगंधित पदार्थ धारणकिये हुए स्त्री-पुरुष दीप्तमान् होरहेथे॥

उद्दीप्तदीपबलिभिः प्रतिसद्मजालनिर्यातधूपरुचिरं विलसत्पताकम् । मूर्धन्यहेमकलशै रजतोरुशृङ्गैर्जुष्टं ददर्श भवनैः कुरुराजधाम ॥३३॥

घर-घर में दीप और पुष्पादि के समूह शोभा देरहे थे, झरोखोंमें से सुन्दर धूपका धुआँ निकल रहा था, पताकायें शोभा देरही थीं, जिनके ऊपर स्वर्ण के कलश और कलशों के नीचे रूपे के बड़े शिखर बने थे, ऐसे घरों से शोभायमान् राजा युधिष्ठिर का नगर देखा ॥३३॥

प्राप्तं निशम्य नरलोचनपानपात्रमौत्सुक्यविश्लथितकेशदुकूलबन्धाः । सद्यो विसृज्य गृहकर्म पतींश्च तल्पे द्रष्टुं ययुर्युवतयः स्म नरेन्द्रमार्गे॥३४॥

जिनके रूप को मनुष्यों के नेत्र पान करते हैं, ऐसे भगवान्के पधारनेका समाचार पाकर उत्साह के कारण खुले हुए केश तथा शिथिल वस्त्र-बन्धन वाली तरुण स्त्रियां घरका काम-काज और अपने पतियों को शैया पर छोड़कर उन्हें देखने के लिये राज-मार्ग में आईं ॥३४॥

तस्मिन्नुसंकुल इभाश्वरथद्विपाद्भिः कृष्णं सभार्यमुपलभ्य गृहाधिरूढाः । नार्यो विकीर्य कुसुमैर्मन सोपगुह्य सुस्वागतं विदधुरुत्स्मयवीक्षितेन ॥३५॥

हाथी, घोड़े, रथ और मनुष्यों की भीड़ वाले राजमार्ग से रानियों सहित भगवान् का आगमन जानकर स्त्रियाँ घरों पर ऊँची चढ़ गईं और पुष्प वर्षाकर मनसे भेंट करती हुई उत्साहपूर्ण कटाक्षों से ही उनका आगत-स्वागत करती थीं ॥३५॥

ऊचुः स्त्रियः पथि निरीक्ष्य मुकुन्दपत्नीस्तारा यथोडुपसहाः किमकार्यभूमिः । यच्चक्षुषां पुरुषमौलिरुदारहासलीलावलोककलयोत्सवमातनोति।

चन्द्रमाके साथ तारिकाओं की भांति भगवान् के साथ मार्ग में जाती हुई स्त्रियोंको देखकर, इन्द्रप्रस्थ की स्त्रियाँ आपस में कहने लगीं कि अहो! इन्होंने क्या पुण्य किया होगा कि जिनके नेत्रों को भगवान् पुरुषोत्तम अपने सुन्दर मन्द हास्य और लीलामयी चितवन की कला द्वारा आनंद देते हैं।

तत्र तत्रोपसंगम्य पौरा मङ्गलपाणयः । चक्रुः सपर्यां कृष्णाय श्रेणीमुख्या हतैनसः ॥३७॥

निष्पाप पुरवासी और प्रधान २ शिल्पकार जहाँ तहाँ मांगलिक पदार्थ हाथमें लिये हुए पास आ २ कर भगवान् को भेंट देते थे ॥३७॥

अन्तःपुरजनैः प्रीत्या मुकुन्दः फुल्ललोचनैः । ससंभ्रमैरभ्युपेतः प्राविशद्राजमन्दिरम् ॥३८॥

प्रीतिसे प्रफुल्लितनेत्र और बड़ेही संभ्रमसे भरी हुई अन्तःपुर की स्त्रियों ने सन्मुख आकर जिनका सत्कार किया है, ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण राजमन्दिर में पधारे ॥ ३८॥

पृथा विलोक्य भ्रात्रेयं कृष्णं त्रिभुवनेश्वरम् । प्रीतात्मोत्थाय पर्यङ्कात्सस्नुषा परिषस्वजे ॥३९॥

अपने भतीजे त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्णको देखकर कुन्ती प्रसन्न होकर, पलंग से उठकर अपनी वहू द्रौपदी सहित उनसे मिली ॥३९॥

गोविन्दं गृहमानीय देवदेवेशमादृतः । पूजायां नाविदत्कृत्यं प्रमोदोपहतो नृपः ॥४०॥

राजा युधिष्ठिर, देवाधिदेव ब्रह्मादिके भी नाथ श्रीकृष्ण को आदर सहित अपने घर ले आये, उस समय वे ऐसे प्रेम-विह्वल होगये कि वे पूजा की कितनी ही विधियाँ भूल गये ॥ ४० ॥

पितृष्वसुर्गुरुस्त्रीणां कृष्णश्चक्रेऽभिवादनम् । स्वयं च कृष्णया राजन्भगिन्या चाभिवन्दितः॥४१

हे राजन्! भगवान् ने फूफी तथा दूसरी गुरु जनों की स्त्रियों को प्रणाम किया और द्रौपदी तथा सुभद्रा ने उन्हें प्रणाम किया ॥४१॥

श्वश्वा सञ्चोदिता कृष्णा कृष्णपत्नीश्च सर्वशः । आनर्च रुक्मिणीं सत्यां भद्रां जाम्बवतीं तथा॥४२॥
कालिन्दीं मित्रविन्दां च शैब्यां नाग्नजितीं सतीम्। अन्याश्चाभ्यागता यास्तु वासःस्रङ्मण्डनादिभिः॥

सास (कुन्ती) के कहने से द्रौपदीने रुक्मिणी सत्यभामा, भद्रा, जांबवन्ती, कालिन्दी, मित्रविंदा शैब्या, नाग्नजिती तथा अन्य भगवान्के साथ आई

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुई रानियों की वस्त्र, माला और आभूषण आदि से पूजा की ॥४२॥ ४३॥

सुखं निवासयामास धर्मराजो जनार्दनम् ।
ससैन्यं सानुगामात्यं सभार्यं च नवं नवम् ॥४४॥

धर्मराज ने भी भगवान् को सेना, अनुचर, अमात्य (मन्त्री) और रानियों सहित नित्य प्रति नया सुख देते हुए रक्खा ॥४४॥

तर्पयित्वा खाण्डवेन वह्निं फाल्गुनसंयुतः ।
मोचयित्वा मयं येन राज्ञे दिव्या सभा कृता॥४५॥

उनको अर्जुन से विशेष प्रेमथा, इसलिये उन्हें सहायता देकर खांडव वन भक्षण कराके अग्निको तृप्त किया और उसमें जलते हुए मय दैत्य को बचाया, जिसने दिव्य सभा बनाकर धर्मराज को अर्पण की ॥४५॥

उवास कतिचिन्मासान्राज्ञः प्रियचिकीर्षया ।
विरहन्रथमारुह्य फाल्गुनेन भटैर्वृतः ॥४६॥

अर्जुनके साथ रथमें बैठकर योधाओंको साथ लेकर विहार करते हुए भगवान् राजा को प्रसन्न रखने के लिये कई महीने तक इन्द्रप्रस्थमें रहे॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

बहत्तरवां अध्याय

(जरासन्ध और भीम का युद्ध)

श्रीशुक उवाच

एकदा तु सभामध्य आस्थितो मुनिभिर्वृतः ।
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्भ्रातृभिश्च युधिष्ठिरः ॥ १ ॥
आचार्यैः कुलवृद्धैश्च ज्ञातिसंबन्धिबान्धवैः ।
शृण्वतामेव चैतेषामाभाष्यैदमुवाच ह ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन्! एक दिन राजा युधिष्ठिर मुनि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, भाई, आचार्य कुलवृद्ध, ज्ञाति सम्बन्धी और बान्धवों के साथ सभा में बैठे हुए उन लोगों के सुनते भगवान् को सम्बोधित करके यह कहने लगे ॥१॥२॥

युधिष्ठिर उवाच

क्रतुराजेन गोविन्द राजसूयेन पावनीः ।
यक्ष्ये विभूतीर्भवतस्तत्सम्पादय नः प्रभो ॥ ३ ॥

युधिष्ठिर बोले–हे गोविंद! हे प्रभु! सबयज्ञों का राजारूप जो राजसूय यज्ञ है उसके द्वारा मैं आपके अंशरूप देवताओंका पूजन किया चाहताहूँ इसलिये आप इस कार्य को सिद्ध कीजिये ॥ ३ ॥

त्वत्पादुके अविरतं परि ये चरन्ति ध्यायन्त्यभद्रनशने शुचयो गृणन्ति । विन्दन्ति ते कमलनाभ भवापवर्गमाशासते यदि त आशिष ईश नान्ये

हे पद्मनाभ! हे ईश! जो लोक शुद्ध होकर देह के द्वारा अमङ्गल नाश करनेवाली आपकी पादुकाओं का निरन्तर सेवन करते हैं, मनसे ध्यान तथा वाणी से वर्णन करते हैं, वे मोक्ष पाते हैं और जो वे चाहें उनके मनोरथ भी सिद्ध होते हैं दूसरों के नहीं ॥ ४ ॥

तद्देवदेव भवतश्चरणारविन्दसेवाऽनुभावमिह पश्यतु लोक एषः । ये त्वां भजन्ति न भजन्त्युत वोभयेषां निष्ठां प्रदर्शय विभो कुरुसृञ्जयानाम् ५॥

इसलिये हे देवदेव! इन लोगोंको अपने चरणों की सेवाका प्रभाव इस विषयमें अवश्य दिखलाना चाहिये, हे प्रभु! यह कितने ही कुरु और सृञ्जय वंश वाले जो कर्म आदि को प्रधान मानकर आप की भक्ति को उत्तम नहीं समझते, उनका अज्ञान दूर करने के लिये अपने भक्त तथा अभक्तों का अन्तर दिखलाइये ॥५॥

न ब्रह्मणः स्वपरभेदमतिस्तव स्यात्सर्वात्मनः समदृशः स्वसुखानुभूतेः । संसेवतां सुरतरोरिव ते प्रसादः सेवानुरूपमुदयो न विपर्ययोऽत्र ॥६॥

आप निरुपाधि, सर्वात्मा, समदृष्टि और स्वरूप सुख के अनुभव रूप हैं, इसलिये आपमें यह भेदभाव नहीं है कि यह अपना है और यह पराया, फिरभी कल्पवृक्षकी भांति जो आपका सेवन करते हैं उनको ही आपका प्रसाद मिलता है, दूसरों को नहीं तथा फल भी सेवा के अनुसार ही मिलताहै, इसमें कभी अन्तर नहीं पड़ता ॥६॥

श्रीभगवानुवाच

सम्यग्व्यवसितं राजन्भवता शत्रुकर्शिना ।
कल्याणी येन ते कीर्तिर्लोकाननुभविष्यति ॥ ७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीभगवान् बोले-हे शत्रुदमन ! हे महाराज ! आपने बहुत अच्छा निश्चय किया है कि जिससे आपका पवित्र यश लोकोंमें फैल जायगा ॥७॥

ऋषीणां पितृदेवानां सुहृदामपि नः प्रभो ।
सर्वेषामपि भूतानामीप्सितः क्रतुराडयम् ॥ ८ ॥

हे प्रभु ! यह उत्तम यज्ञ ऋषि, पितर, देवता, सुहृद, हम और समस्त प्राणियोंको भी इष्टहै ॥८॥

विजित्य नृपतीन्सर्वान्कृत्वा च जगतीं वशे ।
संभृत्य सर्वसंभारानाहरस्व महाक्रतुम् ॥ ९ ॥

सब राजाओं को जीतकर पृथ्वीको वशमें कर के और सब तैयारी करके महान् यज्ञ कीजिये ।९।

एते ते भ्रातरो राजँल्लोकपालांशसंभवाः ।
जितोऽस्म्यात्मवता तेऽहं दुर्जयो योऽकृतात्मभिः १०

हे राजन् ! आपके सब भाई लोकपालोंके अंश से उत्पन्न हैं, दूसरे मैं अजितेन्द्रियोंके कदापि वश में न होने वाला आपकी जितेन्द्रियता के वशमें हो गया हूँ, इसलिये आपको दिग्विजय करने में कुछ भी कठिनाई न होगी ॥१०॥

न कश्चिन्मत्परं लोके तेजसा यशसा श्रिया ।
विभूतिभिर्वाऽभिभवेद्देवोऽपि किमु पार्थिवः ॥११॥

जो मेरे आश्रित रहने वाला भक्त है, उसे तेज यश, लक्ष्मी या सेना द्वारा देवताभी पराजित नहीं करसकते, मनुष्यकी तो बात ही क्या है ? ॥११॥

श्रीशुक उवाच

निशम्य भगवद्गीतं प्रीतः फुल्लमुखाम्बुजः ।
भ्रातृन्दिग्विजयेऽयुङ्क्त विष्णुतेजोपबृंहितान्१२॥

श्रीशुकदेवजी बोले-भगवान् श्रीकृष्ण के वचन सुनकर प्रेमसे प्रफुल्लित मुखारविन्द वाले राजा युधिष्ठिर ने विष्णुके तेजसे बढ़े हुए अपने भाइयों को दिग्विजय की आज्ञा दी ॥१२॥

सहदेवं दक्षिणस्यामादिशत्सह सृञ्जयैः ।
दिशि प्रतीच्यां नकुलमुदीच्यां सव्यसाचिनम् ।
प्राच्यां वृकोदरं मत्स्यैः केकयैः सह मद्रकैः॥१३॥

सहदेव को सृञ्जय देश के क्षत्रियों के साथ दक्षिण में भेजा, नकुल को कैकय देशके क्षत्रियों के साथ पश्चिम में भेजा, अर्जुन को भद्र देशीय क्षत्रियों के साथ पूर्व में और भीमको मत्स्य देशके क्षत्रियों सहित पश्चिम में भेजा ॥१३॥

ते विजित्य नृपान्वीरा आजग्मुर्दिग्भ्य ओजसा ।
अजातशत्रवे भूरि द्रविणं नृप यक्ष्यते ॥१४॥

हे राजन् ! इन वीर पुरुषों ने राजाओंको पराक्रम से जीतकर यज्ञ के अभिलाषी राजा युधिष्ठिर को दिशाओंसे बहुतसा धन लाकर भेंट किया॥१४॥

श्रुत्वाऽजितं जरासन्धं नृपतेर्ध्यायतो हरिः ।
आहोपायं तमेवाद्य उद्धवो यमुवाच ह ॥१५॥

जब राजाने यह सुना कि जरासंध नहीं जीता गयाहै तब वे सोच-विचार में पड़ गये; उस समय प्रभुने उद्धवजी का बताया हुआ उपाय उनसे कहा ॥

भीमसेनोऽर्जुनः कृष्णो ब्रह्मलिंगधरास्त्रयः ।
जग्मुर्गिरिव्रजं तात बृहद्रथसुतो यतः ॥१६॥

हे राजन् ! भीम, अर्जुन और श्रीकृष्ण तीनों ब्राह्मण का वेष धरकर गिरिव्रज गये; उन दिनों जरासंध वहीं था ॥१६॥

ते गत्वातिथ्यवेलायां गृहेषु गृहमेधिनम् ।
ब्रह्मण्यं समयाचेरन्राजन्या ब्रह्मलिङ्गिनः ॥१७॥

ब्राह्मण वेषधारी इन तीनों क्षत्रियों ने ब्राह्मणभक्त तथा गार्हस्थ धर्म के पालने वाले जरासंध से अतिथि-पूजन के समय जाकर प्रार्थना की कि।१७।

राजन्विद्ध्यतिथीन्प्राप्तानर्थिनो दूरमागतान् ।
तन्नः प्रयच्छ भद्रं ते यद्वयं कामयामहे ॥१८॥

हे राजन् ! हम अतिथि दूर से याचना करने के लिये आये हैं, ये आप को विदित होना चाहिये, इसलिये हम जो माँगें वह आप हमें दें,इससे आप का कल्याण होगा ॥१८॥

किं दुर्मर्षं तितिक्षूणां किमकार्यमसाधुभिः ।
किं न देयं वदान्यानां कः परः समदर्शिनाम्॥१९॥

नीच पुरुषोंको कुछ भी असह्य नहीं, समदृष्टि वालोंके कोई भी शत्रु नहीं और इसी प्रकार उदार पुरुषों को कुछ भी अदेय नहीं है ॥१९॥

योऽनित्येन शरीरेण सतां गेयं यशो ध्रुवम् ।
नाऽऽचिनोति स्वयंकल्पः स वाच्यः शोच्य एव सः॥

जो पुरुष समर्थ होकर इस अनित्य देह के द्वारा सत्पुरुषोंके गाने योग्य अविचल यशको नहीं कमाता, वह पुरुष निन्दा तथा खेदका पात्र होताहै॥

हरिश्चन्द्रो रन्तिदेव उञ्छवृत्तिः शिविर्बलिः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याधः कपोतो बहवो ह्यध्रुवेण ध्रुवं गताः ॥२१॥

देखो हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव, मुद्गल, शिबि, बलि, कपोत और व्याधि इत्यादि अनेक प्राणी इस अनित्य शरीर से अचल पद को पागये हैं ॥२१॥

श्रीशुक उवाच

स्वरैराकृतिभिस्तांस्तु प्रकोष्ठ्यैर्ज्याहतैरपि ।
राजन्यबन्धून्विज्ञाय दृष्टपूर्वानचिन्तयत् ॥२२॥

श्रीशुकदेवजी बोले-स्वर, आकृति और धनुष की डोरी के द्वारा लगी हुई चोटों के चिह्न वाली भुजाओंसे उनको क्षत्रिय जानकर जरासंध सोचने लगा कि मैंने इनको कहीं देखा है ॥२२॥

राजन्यबन्धवो ह्येते ब्रह्मलिङ्गानि बिभ्रति ।
ददामि भिक्षितं तेभ्य आत्मानमपि दुस्त्यजम् २३॥

यह लोग क्षत्रिय हैं, पर ब्राह्मण का वेष बना कर आये हैं, इसलिये यदि यह दुस्त्यज शरीर भी माँगेंगे तो उसे भी दे दूँगा ॥२३॥

बलेर्नु श्रूयते कीर्तिर्विततादिक्ष्वकल्मषा ।
ऐश्वर्याद्भ्रंशितस्यापि विप्रव्याजेन विष्णुना॥२४॥

यद्यपि विष्णु ने छल पूर्वक ब्राह्मणका रूप धर कर राजा बलि के ऐश्वर्य को भ्रष्ट कर दिया था, फिर भी दिशाओंमें फैली हुई उसकी निर्मल कीर्ति अब तक सुनने में आती है ॥२४॥

श्रियं जिहीर्षतेन्द्रस्य विष्णवे द्विजरूपिणे ।
जानन्नपि महीं प्रादाद्वार्यमाणोऽपि दैत्यराट्॥२५॥

इन्द्र को लक्ष्मी देने की इच्छासे आयेहुए और ब्राह्मण का वेष धारण किये हुए विष्णु भगवान्को राजा बलि स्वयं पहिचानता था, दूसरे उसे शुक्राचार्य ने भी रोका था, फिर भी उन्हें पृथ्वीका दान उसने दे दिया था ॥२५॥

जीवता ब्राह्मणार्थाय कोन्वर्थः क्षत्रबन्धुना ।
देहेन पतमानेन नेहता विपुलं यशः ॥२६॥

क्षत्रिय होकरभी जो एक दिन पतन होनेवाले शरीर के अक्षत रहते हुए उसके द्वारा ब्राह्मण के लिये (उपकार करके) निर्मल यश को उपार्जन न करे, तो ऐसी देहसे लाभ ही क्या है ? ॥२६॥

इत्युदारमतिः प्राह कृष्णार्जुनवृकोदरान् ।
हे विप्रा वियतां कामो ददाम्यात्मशिरोपि वः २७॥

इस प्रकार निश्चय करके उदार बुद्धि जरासंध उन श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीम से कहने लगा कि हे ब्राह्मणो ! जो तुम्हारी इच्छाहो सो माँगो, यदि तुम सिर भी माँगोगे तो दे दूँगा ॥२७॥

श्रीभगवानुवाच

युद्धं नो देहि राजेन्द्र द्वन्द्वशो यदि मन्यसे ।
युद्धार्थिनो वयं प्राप्ता राजन्या नान्नकांक्षिणः॥२८॥

श्रीभगवान् बोले-हे राजेन्द्र ! यदि आपकी इच्छा हो तो हमें द्वन्द युद्ध का दान दीजिये, हम क्षत्रिय हैं, युद्धके लिये आपके पास आये हैं. अन्न की भीख लेने वाले ब्राह्मण नहीं हैं ॥२८॥

असौ वृकोदरः पार्थस्तस्य भ्राताऽर्जुनो ह्ययम् ।
अनयोर्मातुलेयं मा कृष्णं जानीहि ते रिपुम् २९॥

यह कुन्तीके पुत्र भीमहैं, ये इनके भाई अर्जुन हैं और मैं इनके मामा का पुत्र तुम्हारा पुराना शत्रु कृष्णहूँ, यह आप जान लीजिये ॥२९॥

एवमावेदितो राजा जहासोच्चैः स मागधः ।
आह चामर्षितो मन्दा युद्धं तर्हि ददामि वः॥३०॥

श्रीशुकदेवजी बोले-श्रीकृष्णके मुखसे ये संवाद सुनकर राजा जरासंध उच्च स्वरसे हँसा और क्रोध पूर्वक बोला कि हे मूर्खो ! अब तो मैं तुमको अवश्य ही युद्ध दान दूंगा ॥३०॥

न त्वया भीरुणा योत्स्ये युधि विक्लवचेतसा ।
मथुरां स्वपुरीं त्यक्त्वा समुद्रं शरणं गतः ॥३१॥

अरे डरपोक (कृष्ण) ! मैं तुझ विकल चित्त वाले से युद्ध न करूँगा, क्योंकि तू पहले ही मुझ से डरकर मथुरापुरी छोड़कर द्वारकामें जा बसाहै॥

अयं तु वयसाऽतुल्यो नातिसत्त्वो न मे समः ।
अर्जुनो न भवेद्योद्धा भीमस्तुल्यबलो मम ॥३२॥

यह अर्जुन न तो अवस्थामें मेरे समानहै और न बल तथा शरीरमें; इसलिये यहभी मुझसे लड़ने योग्य वीर नहींहै हाँ,केवल भीमही मेरे समान बलीहै

इत्युक्त्वा भीमसेनाय प्रादाय महतीं गदाम् ।
द्वितीयां स्वयमादाय निर्जगाम पुराद्बहिः ॥३३॥

इस प्रकार कहकर जरासंध एक बड़ी गदा, भीम को देकर तथा दूसरी गदा स्वयं लेकर नगर से बाहर निकला ॥३३॥

ततः समेखले वीरौ संयुक्तावितरेतरौ ।
जघ्नतुर्वज्रकल्पाभ्यां गदाभ्यां रणदुर्मदौ ॥३४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फिर वे रण-मद के मतवाले वीर युद्ध-भूमि में आकर परस्पर भिड़ गये और बज्र के समान गदाओं का प्रहार करनेलगे ॥३४॥

मण्डलानि विचित्राणि सव्यं दक्षिणमेव च ।
चरतोः शुशुभे युद्धं नटयोरिव रङ्गिणोः ॥३५॥

रंग-भूमि में आये हुए नटों की नाईं दायें-बायें अनोखे घेरों में घूमते हुए उन दोनोंका युद्ध सुन्दर प्रतीत होने लगा ॥३५॥

ततश्चटचटाशब्दो वज्रनिष्पेष सन्निभः ।
गदयोः क्षिप्तयो राजन्दन्तयोरिव दन्तिनोः ॥३६॥

हेराजन्! जैसे हाथियोंके लड़ते हुए उनकेदाँतों का शब्द होता है, वैसे ही परस्पर चलाई जाती हुई गदाओं का वज्रपात के समान चट्-चट् शब्द हो रहा था ॥३६॥

ते वै गदे भुजजवेन निपात्यमाने अन्योऽन्यतोऽसकटिपादकरोरुजत्रून् । चूर्णीबभूवतुरुपेत्य यथार्कशाखे संयुध्यतोर्द्विरदयोरिव दीप्तमन्यवोः ॥३७॥

और बढ़े हुए क्रोध वाले हाथियोंके युद्ध करते हुए अङ्गों पर पड़कर जैसे आककी टहनियाँ टूट जाती हैं, वैसे ही हाथ के वेगसे चलाई जाती हुई गदायें एक-दूसरेके कन्धे, कमर, हाथ, पाँव, साथल और हंसलियों पर पड़कर चूर्ण होगईं ॥३७॥

इत्थं तयोः प्रहतयोर्गदयोर्नृवीरौ क्रुद्धौ स्वमुष्टिभिरयःस्पर्शैरपिष्टाम् । शब्दस्तयोः प्रहरतोरिभयोरिवासीन्निर्घातवज्रपरुषस्तलताडनोत्थः ॥३८॥

इस प्रकार गदाओं के टूट जाने पर वे दोनों वीर क्रोध में आकर लोहे के समान कठोर स्पर्श वाले मुक्कों से आपस में घूंसे मारते हुए एक-दूसरे का अङ्ग चूर-चूर करने लगे, हाथी की भांति प्रहार करते हुए उन दोनों वीरों के मुष्टि-प्रहार का शब्द बज्रपात के समान होता था ॥३८॥

तयोरेवं प्रहरतोः समशिक्षाबलौजसोः ।
निर्विशेषमभूद्युद्धमक्षीणजवयोर्नृप ॥३९॥

हे राजन्! अभ्यास, धैर्य और प्रभावमें समान होनेके कारण किसीका भी वेग क्षीण न हुआ और उन दोनों वीरों में एकसा युद्ध होने लगा ॥३९॥

एवं तयोर्महाराज युध्यतोः सप्तविंशतिः ।
दिनानि निरगंस्तत्र सुहृद्वन्निशि तिष्ठतोः ॥४०॥

हे राजन्! इस प्रकार युद्ध करते २ उन दोनों को सत्ताईस दिन बीतगये, वे दोनों दिनमें तो युद्ध करते थे पर रातमें मित्रोंकी भांति रहते थे ॥४०॥

एकदा मातुलेयं वै प्राह राजन्वृकोदरः ।
न शक्तोऽहं जरासन्धं निर्जेतुं युधि माधव ॥४१॥

हे राजन्! एक समय भीम ने अपने मामा के पुत्र श्रीकृष्णजी से कहा कि-हे कृष्ण! मैं तो युद्धमें जरासंध को नहीं जीत सकता ॥४१॥

शत्रोर्जन्ममृती विद्वाञ्जीवितं च जराकृतम् ।
पार्थमाप्याययन्स्वेन तेजसाऽचिन्तयद्धरिः ॥४२॥

श्रीकृष्ण इस बातको जानते थे कि जरासंध दो खंड होकर जन्मा है तथा जरा नाम की दासी ने उसको जोड़ दिया है, अस्तु यह दो भाग होकर ही मरेगा, इसलिये उन्होंने अपने तेजसे भीम को बढ़ाया और जरासंधके चीड़देनेका विचारकिया॥

सञ्चिन्त्यारिवधोपायं भीमस्यामोघदर्शनः ।
दर्शयामास विटपं पाटयन्निव संज्ञया ॥४३॥

अमोघ ज्ञानवाले श्रीकृष्णजी ने शत्रु जरासंध को मारनेका विचार करके भीमको संकेतमें तिनका चीरकर उसके मारने का उपाय बतलाया ॥४३॥

तद्विज्ञाय महासत्त्वो भीमः प्रहरतां वरः ।
गृहीत्वा पादयोः शत्रुं पातयामास भूतले ॥४४॥

प्रहार करने वालोंमें श्रेष्ठ महाबली भीम ने वह युक्ति समझ कर शत्रु को पैर पकड़ कर पृथ्वी पर पटक दिया ॥४४॥

एकं पादं पदाक्रम्य दोर्भ्यामन्यं प्रगृह्य सः ।
गुदतः पाटयामास शाखामिव महागजः ॥४५॥

और उसके एक पैर को पैर से दबाकर तथा दूसरा पैर हाथसे पकड़कर उसे गुदा-स्थलसे इस प्रकार चीर डाला, जैसे हाथी वृक्ष की शाखा को चीर डालता है ॥ ४५ ॥

एकपादोरुवृषणकटिपृष्ठस्तनांसके ।
एकबाह्वक्षिभ्रूकर्णे शकले ददृशुः प्रजाः ॥४६॥

प्रजाने उसके एक-एक पैर, उरु, वृषण, कमर, पीठ, स्तन, कन्धा, हाथ, आँख, भौंह और कान वाले दो अलग-अलग खण्ड देखे ॥४६॥

हाहाकारो महानासीन्निहते मगधेश्वरे ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूजयामासतुर्भीमं परिरभ्य जयाच्युतौ ॥४७॥

जरासंध के मरने पर बड़ा कोलाहल मच गया और अर्जुन तथा श्रीकृष्ण ने भेंट करके भीम का सन्मान किया ॥४७॥

सहदेवं तत्तनयं भगवान्भूतभावनः ।
अभ्यषिञ्चदमेयात्मा मगधानां पतिं प्रभुः ।
मोचयामास राजन्यान्संरुद्धा मागधेन ये ॥४८॥

अप्रमेय स्वरूप, भूत भावन, प्रभु भगवान् ने उसके पुत्र सहदेव का मगध देश में राज्याभिषेक किया और जरासंध ने जिन राजाओंको बन्दी कर रक्खा था, उन्हें भी छुड़ा दिया ॥४८॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२॥

तेहत्तरवां अध्याय

(श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ को लौटना)

श्रीशुक उवाच

अयुते द्वे शतान्यष्टौ लीलया युधि निर्जिताः ।
ते निर्गता गिरिद्रोण्या मलिनामलवाससः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-वे बीस हज़ार आठ सौ राजा गुफा से बाहर निकले कि जिनको जरासंध ने लीला मात्र ही से क़ैद कर लिया था और जो मलिन वेष तथा मलिन वस्त्र धारण किये थे ॥१॥

क्षुत्क्षामा शुष्कवदनाः संरोधपरिकर्शिताः ।
ददृशुस्ते घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ २ ॥

वे बन्दीगृह में रहने के कारण भूख से दुर्बल शुष्क मुख और बहुत दुबले होगये थे, उन्होंने मेघ के समान श्यामवर्ण, पीले कौशेय वस्त्र धारणकिये श्री भगवान् का दर्शन किया ॥२॥

श्रीवत्साङ्कं चतुर्बाहुं पद्मगर्भारुणेक्षणम् ।
चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३ ॥

जो श्रीवत्स का चिह्न, चार भुजायें, कमल के गर्भ की नाईं अरुण नेत्र, सुन्दर प्रसन्न मुख और कान्तिमय मकराकृत कुण्डल धारण किये हैं ॥३॥

पद्महस्तं गदाशङ्खरथाङ्गैरुपलक्षितम् ।
किरीटहारकटककटिसूत्राङ्गदाचितम् ॥ ४ ॥

जिनके हाथमें कमलहै, शंख, चक्र और गदा-ये चिह्न जिनके उपलक्षक हैं किरीट, कड़े, कटिमेखला और भुजबन्द शोभा देरहे थे ॥४॥

भ्राजद्वरमणिग्रीवं निवीतं वनमालया ।
पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां लिहन्त इव जिह्वया ॥ ५ ॥
जिघ्रन्त इव नासाभ्यां रम्भन्त इव बाहुभिः ।
प्रणेमुर्हतपाप्मानो मूर्धभिः पादयोर्हरेः ॥ ६ ॥
कृष्णसंदर्शनाह्लादध्वस्तसंरोधनक्लमाः ।
प्रशशंसुर्हृषीकेशं गीर्भिः प्राञ्जलयो नृपाः ॥ ७ ॥

जिनके कण्ठ में कौस्तुभ मणि चमक रही है, जो बनमाला को धारण किये हैं, उन भगवान् को निष्पाप राजाओं ने चरणोंमें मस्तक झुका कर ऐसे भाव से प्रणाम किया जैसे नेत्रों से उन्हें पीरहे हों, जिह्वा से चाट रहे हों, नासिका से सूंघते हों और भुजाओं से भेंट करते हों, भगवान् के दर्शनों के आनन्द से जिनका बन्दीगृह सम्बन्धी खेद मिट गया है, ऐसे वे राजा लोग हाथ जोड़ कर वचनों द्वारा प्रभु की प्रशंसा करने लगे ॥५॥६॥७॥

राजान ऊचुः

नमस्ते देवदेश प्रपन्नार्तिहराव्यय ।
प्रपन्नान्पाहि नः कृष्ण निर्विण्णान्घोर संसृतेः ॥८॥

राजा बोले-हे देव देवेश ! हे शरणागतके दुख दूर करने वाले ! हे अखंड स्वरूप ! हे कृष्ण ! इस घोर संसार से खेद पाये हुए हम लोग शरणआये हैं, हमारी रक्षा कीजिये ॥८॥

नैनं नाथान्वसूयामो मागधं मधुसूदन ।
अनुग्रहो यद्भवतो राज्ञां राज्यच्युतिर्विभो ॥ ९ ॥
राज्यैश्वर्यमदोन्नद्धो न श्रेयो विन्दते नृपः ।
त्वन्मायामोहितोऽनित्या मन्यते सम्पदोऽचलाः १०

हे नाथ ! हे मधुसूदन ! हे विभु ! हम इस जरासंधको दोष नहीं देते, क्योंकि राज-भ्रष्ट होना आपकी कृपा ही है, इस कारण कि राज-संबन्धी ऐश्वर्य से मदमत्त राजा आपकी माया से मोहित होकर अनित्य सम्पदाओं को स्थिर समझने से कल्याण नहीं पाता ॥९॥१०॥

मृगतृष्णां यथा बाला मन्यन्त उदकाशयम् ।
एवं वैकारिकीं मायामयुक्ता वस्तु चक्षते ॥११॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जैसे मूर्ख लोग मृग-तृष्णा का जलाशय जानते हैं, वैसे ही अज्ञानी जन अनेक विकार वाली माया को सत्य समझते हैं ॥११॥

वयं पुरा श्रीमदनष्टदृष्टयो जिगीषयाऽस्या इतरेतरस्पृधः । घ्नन्तः प्रजा स्वा अतिनिर्घृणाः प्रभो मृत्युं पुरस्त्वाऽविगणय्य दुर्मदाः ॥१२॥

हे प्रभु ! जो हम लोग पहले लक्ष्मी से मदान्ध होकर इस भूमि को जीतने की इच्छा से परस्पर द्वेष रखते हुए और सिरपर रहने वाले आप काल रूप को कुछ न गिनते हुए उन्मत्त बनकर अत्यन्त निर्दयता के साथ प्रजा का संहार करते थे ॥१२॥

त एव कृष्णाद्य गभीररंहसा दुरन्तवीर्येण विचालिताःश्रियः । कालेन तन्वा भवतोऽनुकम्पया विनष्टदर्पाश्चरणौ स्मराम ते ॥१३॥

हे कृष्ण ! वही हम आज आपके अनुग्रह से गंभीर वेग और परम पराक्रमी आपकी कालमूर्त्ति द्वारा लक्ष्मी हरण होजाने से गर्व रहित होकर आपके चरण-स्मरण की इच्छा करते हैं ।१३॥

अथो न राज्यं मृगतृष्णिरूपितं देहेन शश्वत्पतता रुजां भुवा । उपासितव्यं स्पृहयामहे विभो क्रिया फलं प्रेत्य च कर्णरोचनम् ॥१४॥

अब हम इस निरन्तर क्षीण होने वाले और रोगोंके उत्पन्न होनेके स्थान अर्थात् शरीरसे सेवन करने योग्य और मृग-तृष्णा के समान राज्य को कदापि नहीं चाहते, यही नहीं वरन् अबहमें कानों को प्रिय लगने वाले क्रिया के फल रूप स्वर्गादि के भोग की भी इच्छा नहीं है ॥१४॥

तं नः समादिशोपायं येन ते चरणाब्जयोः । स्मृतिर्यथा न विरमेदपि संसारतामिह ॥१५॥

इसलिये हमें ऐसा उपाय बतलाइये कि जिस से हम यह अनेक योनियों में भटकते हुए भी आप के चरणारविन्द को न भूल जायँ ॥१५॥

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने । प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ॥१६॥

भक्तों के क्लेश-हरण, परमात्मा, कृष्ण, वासुदेव हरि भगवान् गोविन्द ! आपको हम बारम्बार प्रणाम करते हैं ॥१६॥

श्रीशुक उवाच

संस्तूयमानो भगवान्राजभिर्मुक्तबन्धनैः । तानाह करुणस्तात शरण्यः श्लक्ष्णया गिरा॥१७॥

श्रीशुकदेवजी बोले—बन्धन मुक्त राजाओंने जब इस प्रकार प्रार्थना की, तब दयामय शरणागत-वत्सल भगवान्ने मीठी वाणी द्वारा उनसे कहा ॥

श्रीभगवानुवाच

अद्यप्रभृति वो भूपा मय्यात्मन्यखिलेश्वरे । सुदृढा जायते भक्तिर्बाढमाशंसितं तथा ॥१८॥

श्रीभगवान् बोले—मुझ सर्वात्मा तथा सर्वेश्वर में तुम जैसी भक्ति चाहते हो, आजसे वैसीही दृढ़ भक्ति तुमको प्राप्त होगी ॥१८॥

दिष्ट्या व्यवसितं भूपा भवन्त ऋतभाषिणः । श्रियैश्वर्यमदोन्नाहं पश्य उन्मादकं नृणाम् ॥१९॥

हे राजाओ! तुमने अत्युत्तम क़िया और तुम्हारा यह कहना भी सच है कि लक्ष्मी और ऐश्वर्य के मद से होने वाला आचरण लोगों को उन्मत्त कर देता है, यह बात ऐसीही दिखलाई पड़ती है॥१९॥

हैहयो नहुषो वेनो रावणो नरकोऽपरे । श्रीमदाद्भ्रंशिताः स्थानादेवदैत्यनरेश्वराः ॥२०॥

सहस्रार्जुन, नहुष, वेन, रावण,नरकासुर तथा अन्य दैत्य, देवता और राजा लोग लक्ष्मी के मद ही से पद-च्युत हुए हैं ॥२०॥

भवन्त एतद्विज्ञाय देहाद्युत्पाद्यमन्तवत् । मां यजन्तोऽध्वरैर्युक्ताः प्रजा धर्मेण रक्षत ॥२१॥

तुम इन जन्म लेने वाले देह आदि पदार्थों को नश्वर समझकर यज्ञों द्वारा मेरा पूजन करो और धर्म पूर्वक प्रजा की रक्षा करो ॥२१॥

संतन्वन्तः प्रजातन्तून्सुखं दुखं भवाभवौ । प्राप्तं प्राप्तं च सेवन्तो मच्चित्ता विचरिष्यथ ॥२२॥

पुत्र आदि सन्तान उत्पन्न करतेहुए और सुख-दुःख, लाभ-हानि जो कुछ भी आजाय उसे सेवन करते हुए मुझमें मन लगाकर विचरते रहो ॥२२॥

उदासीनाश्च देहादावात्मारामा धृतव्रताः । मय्यावेश्य मनः सम्यङ् मामन्ते ब्रह्म यास्यथ २३

जो तुम देह आदि सब पदार्थों से उदासीन तथा आत्माराम बनकर नियम पूर्वक रहोगे और भले प्रकार मुझमें मन लगाओगे तो अन्त समय मुझ परब्रह्म स्वरूप ही को प्राप्त हो जाओगे ॥२३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीशुक उवाच

इत्यादिश्य नृपान्कृष्णो भगवान् भुवनेश्वरः ।
तेषां न्ययुङ्क्त पुरुषान्स्त्रियो मज्जनकर्मणि ॥२४॥

श्रीशुकदेवजी बोले—लोकेश्वर श्रीकृष्ण भगवान् ने इस प्रकार राजाओं को आज्ञा देकर उन्हें स्नान आदि करवाने के लिये कई एक स्त्री-पुरुषों को आज्ञा दी ॥ २४ ॥

सपर्यां कारयामास सहदेवेन भारत ।
नरदेवोचितैर्वस्त्रैर्भूषणैः स्रग्विलेपनैः ॥२५॥

हे राजन् ! सहदेव के हाथ से उन लोगों का राजसी वस्त्र, आभूषण, माला और चन्दन से सत्कार करवाया ॥२५॥

भोजयित्वा वरान्नेन सुस्नातान् समलंकृतान् ।
भोगैश्च विविधैर्युक्तांस्ताम्बूलाद्यैर्न्यपोचितैः ॥२६॥
ते पूजिता मुकुन्देन राजानो मृष्टकुण्डलाः ।
विरेजुर्मोचिताः क्लेशात्प्रावृडन्ते यथा ग्रहाः ॥२७॥

उन्हें श्रेष्ठ अन्न से भोजन, स्नान, शृङ्गार करा अनेक प्रकार के भोग-पदार्थ अर्पण करके, राजाओं के योग्य पान आदि देकर भगवान् ने सन्मानित किया, तब वे उज्ज्वल कुण्डल धारण किये हुए और क्लेश से मुक्ति पाये हुए वर्षा ऋतु के अन्त होने पर ग्रहों की भांति शोभा देने लगे ॥२६॥२७॥

रथान्सदश्वानारोप्य मणिकाञ्चनभूषितान् ।
प्रीणय्य सूनृतैर्वाक्यैः स्वदेशान्प्रत्ययापयत् ॥२८॥

फिर भगवान् ने श्रेष्ठ घोड़ों वाले रत्न और स्वर्णसे शोभायमान् रथों पर बिठलाकर और मधुर वचनोंसे प्रसन्न करके अपने देशको पहुँचाया २८॥

त एवं मोचिताः कृच्छ्रात्कृष्णेन सुमहात्मना ।
ययुस्तमेव ध्यायन्तः कृतानि च जगत्पतेः ॥२९॥

इस भांति जगत्पति महात्मा श्रीकृष्ण द्वारा छुड़ाये हुए कष्ट-मुक्त राजा लोगा भगवान् तथा उन के चरित्रोंका ध्यान करतेहुए अपने २ देशको गये॥

जगदुः प्रकृतिभ्यस्ते महापुरुषचेष्टितम् ।
यथाऽन्वशासद्भगवांस्तथा चक्रुरतन्द्रिताः ॥३०॥

उन्होंने वहाँ जाकर अपनी प्रजासे भगवान्का सब चरित्र वर्णनकिया और जो भगवान् ने आज्ञा दी थी, उसे आलस छोड़कर वैसेही पालनकिया ॥

जरासन्धं घातयित्वा भीमसेनेन केशवः ।
पार्थाभ्यां संयुतः प्रायात्सहदेवेन पूजितः ॥३१॥

श्रीकृष्ण भगवान् इसप्रकार भीमके द्वारा जरासंधका बध करके सहदेव द्वारा सत्कार पाकर भीमार्जुन के साथ इन्द्रप्रस्थ लौट आये ॥३१॥

गत्वा ते खाण्डवप्रस्थं शङ्खान्दध्मुर्जितारयः ।
हर्षयन्तः स्वसुहृदो दुर्हृदां चासुखावहाः ॥३२॥

शत्रु को जीतकर आनेके कारण उन्होंने मित्रों को आनन्दित करते तथा शत्रुओं को दुःख देने के लिये इन्द्रप्रस्थ में आकर शंख-नाद किया ॥३२॥

तच्छ्रुत्वा प्रीतमनस इन्द्रप्रस्थनिवासिनः ।
मेनिरे मागधं शान्तं राजा चाप्तमनोरथः ॥३३॥

इन्द्रप्रस्थ के निवासियों ने शंख-ध्वनि सुनकर यह जान लिया कि जरासंध मर गया, इसलिये उनका चित्त बहुत प्रसन्न हुआ और युधिष्ठिर का भी मनोरथ सफल होगया ॥३३॥

अभिवन्द्याथ राजानं भीमार्जुनजनार्दनाः ।
सर्वमाश्रावयाञ्चक्रुरात्मना यदनुष्ठितम् ॥३४॥

फिर भीमार्जुन तथा श्रीकृष्ण तीनों ने राजाको प्रणाम करके अपना किया हुआ सब हाल वर्णन किया ॥ ३४ ॥

निशम्य धर्मराजस्तत्केशवेनानुकम्पितम् ।
आनन्दाश्रुकलां मुञ्चन्प्रेम्णा नोवाच किञ्चन ३५॥

भगवान् की कृपा से यह समाचार सुनकर राजा की आँखों से अश्रु-विन्दु गिरने लगे और वे प्रेम के मारे बोल भी न सके ॥३५॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

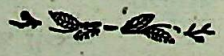

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चौहत्तरवां अध्याय

(शिशुपाल-वध)

श्रीशुक उवाच

एवं युधिष्ठिरो राजा जरासन्धवधं विभोः ।
कृष्णस्य चानुभावं तं श्रुत्वा प्रीतस्तमब्रवीत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी बोले-इस प्रकार राजा युधिष्ठिर ने जरासंध का बध तथा श्रीकृष्ण भगवान् का प्रभाव और आज्ञा पालन करना सुनकर प्रसन्न होकर उनसे कहा ॥१॥

युधिष्ठिर उवाच

ये स्युस्त्रैलोक्यगुरवः सर्वे लोकमहेश्वराः ।
वहन्ति दुर्लभं लब्ध्वा शिरसैवानुशासनम् ॥ २ ॥
स भवानरविन्दाक्षो दीनानामीश मानिनाम् ।
धत्तेऽनुशासनं भूमंस्तदत्यन्तविडम्बनम् ॥ ३ ॥

युधिष्ठिर बोले-हे प्रभु ! त्रैलोक के गुरु सनकादि सब लोक तथा लोकपाल जिनकी आज्ञाको दुर्लभ मानकर शिरोधार्य करते हैं, वे कमल नयन आप मुझ दीन और शक्तिमान् होने का मिथ्या अभिमान करनेवाले की आज्ञा शिरपर धारण करते हैं, यह केवल विडंबना ही है, वास्तव में आपको यह बात सम्भव नहीं है ॥२॥३॥

न ह्येकस्याद्वितीयस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ।
कर्मभिर्वर्धते तेजो हसते च यथा रवेः ॥ ४ ॥

आप एक, अद्वितीय, ब्रह्म, परमात्मा का तेज कर्म करने से सूर्यकी भांति क्षीण नहीं होता ॥४॥

न वै तेऽजित भक्तानां ममाहमिति माधव ।
त्वं तवेति च नानाधीः पशूनामिव वैकृता ॥ ५ ॥

हे माधव ! हे अजित ! जैसे अज्ञानीजन शरीर सम्बन्ध में 'मैं-तू-मेरा-तेरा' मानते हैं, वैसेही भेद बुद्धि आपके भक्तों में नहीं होती फिर आप में तो हो ही क्या सकती है ? ॥५॥

श्रीशुक उवाच

इत्युक्त्वा यज्ञिये काले वव्रे युक्तान्स ऋत्विजः ।
कृष्णानुमोदितः पार्थो ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-राजा युधिष्ठिरने इसप्रकार कहकर और भगवान् से सम्मति करके यज्ञ करने के उचित समय पर योग्य तथा ब्रह्मवादी ब्राह्मणों को 'होता' आदि ऋत्विज बनाने के लिये वरण किया ॥ ६ ॥

द्वैपायनो भरद्वाजः सुमन्तुर्गौतमोऽसितः ।
वसिष्ठश्च्यवनः कण्वो मैत्रेयः कवषस्त्रितः ॥७॥
विश्वामित्रो वामदेवः सुमतिर्जैमिनिः क्रतुः ।
पैलः पराशरो गर्गो वैशम्पायन एव च ॥ ८ ॥
अथर्वा कश्यपो धौम्यो रामो भार्गव आसुरिः ।
वीतिहोत्रो मधुच्छन्दा वीरसेनोऽकृतव्रणः ॥ ९ ॥
उपहूतास्तथा चान्ये द्रोणभीष्मकृपादयः ।
धृतराष्ट्रः सहसुतो विदुरश्च महामतिः ॥१०॥

वेदव्यास भरद्वाज, सुमंतु, गौतम, असित, वसिष्ठ, च्यवन, कण्व, मैत्रेय, कवष, त्रित, विश्वामित्र, वामदेव, सुमति, जैमिनि, क्रतु, पैल, पराशर, गर्ग, वैशंपायन, अथर्व, कश्यप, धौम्य, परशुराम, आसुरि, वीतिहोत्र, मधुच्छंदा, वीरसेन और अकृतवर्ण तथा वैसे ही और भी बहुत से लोग बुलाये गये; जैसे द्रोणाचार्य, भीष्म, कृपाचार्य आदि, पुत्रों सहित धृतराष्ट्र और महा मति विदुर ॥७॥८॥९॥१०॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा यज्ञदिदृक्षवः ।
तत्रेयुः सर्वराजानो राज्ञां प्रकृतयो नृप ॥११॥

हे राजन् ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, सब राजा तथा उनकी प्रजा-ये सब यज्ञ देखनेकी इच्छा से आये ॥११॥

ततस्ते देवयजनं ब्राह्मणाः स्वर्णलाङ्गलैः ।
कृष्ट्वा तत्र यथाम्नायं दीक्षयाञ्चक्रिरे नृपम् ॥१२॥

तब उन ब्राह्मणों ने स्वर्ण के हलों से भूमि को शुद्ध करके वहाँ वैदिक नियम के अनुसार राजा युधिष्ठिर को दीक्षा दी ॥१२॥

हैमाः किलोपकरणा वरुणस्य यथा पुरा ।
इन्द्रादयो लोकपाला विरिञ्चभवसंयुताः ॥१३॥
सगणाः सिद्धगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः ।
मुनयो यक्षरक्षांसि खगकिन्नरचारणाः ॥१४॥
राजानश्च समाहूता राजपत्न्यश्च सर्वशः ।
राजसूयं समीयुः स्म राज्ञः पाण्डुसुतस्य वै ॥१५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जैसे पहले वरुण के यज्ञ में सब सामग्री स्वर्ण की थी, वैसेही इस यज्ञमें भी कियागया और इन्द्र आदि लोकपाल, ब्रह्माजी, महादेवजी, गण सहित गन्धर्व, सिद्ध; विद्याधर, बड़े-बड़े नाग, मुनि,यक्ष, राक्षस, पक्षी, किन्नर, चारण, राजा तथा रानियां-यह सभी निमन्त्रण पाकर युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में आये ॥१३॥१४॥१५॥

मेनिरे कृष्णभक्तस्य सूपपन्नमविस्मिताः ।
अयाजयन्महाराजं याजका देववर्चसः ॥१६॥

ये लोग किसी बात का आश्चर्य न करके यही मानते थे कि भगवान् के भक्त से सब काम बन सकता है, जैसे देवताओंने वरुणका यज्ञ करवाया था, वैसे ही देवताओं के समान तेजवान ब्राह्मणों ने युधिष्ठिरको विधिपूर्वक राजसूय यज्ञ करवाया ॥

राजसूयेन विधिवत्प्राचेतसमिवामराः ।
सौत्येऽह्न्यवनीपालो याजकान्सदसस्पतीन् ।
अपूजयन्महाभागान्यथावत्सुसमाहितः ॥१७॥

सब प्रकारसे सावधान राजा युधिष्ठिरने सोमवल्ली कंडनके दिन महाभाग ऋत्विज तथा सभापतियों का पूजन प्रारम्भ किया ॥१७॥

सदस्याग्र्यार्हणार्हं वै विमृशन्तः सभासदः ।
नाध्यगच्छन्ननैकान्त्यात्सहदेवस्तदाब्रवीत् ॥१८॥

यहाँ सभासदों में से किसी का पहले पूजन होना चाहिये-इस प्रकार वे सभासद लोग विचार करते थे, पर वहाँ कितने ही एकसे एक बढ़कर अग्र पूजन के योग्य पुरुष बैठे हुए थे इसलिये कुछ निर्णय न होसका, अन्त में सहदेव ने कहा ॥ १८॥

अर्हति ह्यच्युतः श्रैष्ठ्यं भगवान्सात्वतां पतिः ।
एष वै देवताः सर्वा देशकालधनादयः ॥१९॥

सहदेव बोले-देवता,देश,काल और धनआदि सब श्रीकृष्ण के ही स्वरूप हैं इसलिये यही यादव पति भगवान् पूजा के योग्य हैं ॥१९॥

यदात्मकमिदं विश्वं क्रतवश्च यदात्मकाः ।
अग्निराहुतयो मन्त्राः साङ्ख्यं योगश्च यत्परः॥२०

यह जगत् और यज्ञ सब इन्हीं का स्वरूप है, अग्नि, आहुति, मन्त्र, ज्ञान और उपासना यह सब इन्हीं के प्राप्ति के साधन हैं ॥२०॥

एक एवाद्वितीयोऽसावैतदात्म्यमिदं जगत् ।
आत्मनाऽऽत्माश्रयः सभ्याः सृजत्यवति हन्त्यजः॥

यह श्रीकृष्ण एकही अद्वितीय रूप और इस जगत्की आत्माहैं, हे सभासदो ! ये अजन्मा और स्वाश्रय भगवान् इस जगत् को रचते, पालते और संहार करते हैं ॥२१॥

विविधानीह कर्माणि जनयन्यदवेक्षया ।
ईहते यदयं सर्वः श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ॥२२॥

ये सब लोक श्रीकृष्ण ही के अनुग्रहसे अनेक प्रकार के शुभ कर्म करके धर्म आदि पुरुषार्थ सिद्ध करते हैं ॥ २२ ॥

तस्मात्कृष्णाय महते दीयतां परमार्हणम् ।
एवं चेत् सर्वभूतानामात्मनश्चार्हणं भवेत् ॥२३॥

इसलिये महात्मा श्रीकृष्णजीही को यह उत्तम अग्र पूजा देनी चाहिये, यदि ऐसा करोगे तो सब जीवों की तथा अपनी भी पूजा होगी ॥ २३ ॥

सर्वभूतात्मभूताय कृष्णायानन्यदर्शिने ।
देयं शान्ताय पूर्णाय दत्तस्यानन्त्यमिच्छता॥२४॥

जो मनुष्य दानका अनन्त फलचाहे उसे चाहिये कि सब जीवोंके अंतर्यामी, भेद-बुद्धि मिटाने वाले, शान्त और पूर्ण श्रीकृष्ण भगवान् के अर्पण करे ॥

इत्युक्त्वा सहदेवोऽभूत्तूष्णीं कृष्णानुभाववित् ।
तच्छ्रुत्वा तुष्टुवुः सर्वे साधु साध्विति सत्तमाः२५॥

श्रीशुकदेवजी बोले-श्रीकृष्ण भगवान्का प्रभाव जाननेवाले सहदेव (जरासंधके पुत्र) इतना वचन कहकर चुप होगये, इसे सुनकर सब उत्तम पुरुष 'वाह-वाह' कहकर प्रशंसा करने लगे ॥२५॥

श्रुत्वा द्विजेरितं राजा ज्ञात्वा हार्दं सभासदाम् ।
समर्हयद्धृषीकेशं प्रीतः प्रणयविह्वलः ॥२६॥

ब्राह्मणों के वचन सुनकर और सभापतियों के अभिप्राय को जानकर प्रसन्न तथा प्रेम से विह्वल राजा युधिष्ठिर ने भगवान् की पूजा की ॥२६॥

तत्पादावनिज्यापः शिरसा लोकपावनीः ।
सभार्यः सानुजामात्यः सकुटुम्बोऽवहन्मुदा॥२७॥

राजाने भगवान्के चरण धोकर जगत्को पवित्र करने वाला चरणोदक, स्त्रियों, छोटे भाई,अमात्य और कुटुम्बियों के साथ आनन्द पूर्वक शिर पर चढ़ाया ॥ २७ ॥

वासोभिः पीतकौशेयैर्भूषणैश्च महाधनैः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्हयित्वाऽश्रुपूर्णाक्षो नाशकत्समवेक्षितुम् ॥२८॥

पीले रेशमी वस्त्र और आभूषणोंसे पूजनकरते ही राजा के नेत्र आनन्द के आँसुओं से भर गये और वे देख भी न सके ॥२८॥

इत्थं सभाजितं वीक्ष्य सर्वे प्राञ्जलयो जनाः ।
नमो जयेति नेमुस्तं निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥२९॥

इस प्रकार भगवान् का सत्कार हुआ देखकर सब लोग हाथ जोड़कर 'नमोनमः-जय जय' इस प्रकार के शब्द कहते हुए प्रणाम करने लगे और फूलों की वर्षा होने लगी ॥२९॥

इत्थं निशम्य दमघोषसुतः स्वपीठादुत्थाय कृष्णगुणवर्णनजातमन्युः । उत्क्षिप्य बाहुमिदमाह सदस्यमर्षी संश्रावयन्भगवते परुषाण्यभीतः॥३०॥

इस प्रकार वचन सुनकर दमघोष का पुत्र शिशुपाल भगवान् के गुण-वर्णन से क्रोधित होकर अपने आसनसे उठकर, बाँह उठाकर और निर्भय होकर सभा में श्रीकृष्ण के प्रति असहनीय कठोर वचन कहने लगा ॥३०॥

ईशो दुरत्ययः काल इति सत्यवती श्रुतिः ।
वृद्धानामपि यद्बुद्धिर्बालवाक्यैर्विभिद्यते ॥३१॥

शिशुपाल बोला-जगत् में काल अलंघ्य और समर्थ जो कहा जाता है सो ठीकहै, क्योंकि समय पर बालकके वचनों से बुड्ढों की बुद्धि भी फिर जाती है ॥ ३१ ॥

यूयं पात्रविदां श्रेष्ठा मान्यध्वं बालभाषितम् ।
सदस्पतयः सर्वे कृष्णो यत्संमतोऽर्हणे ॥३२॥

हे सभासदो ! तुम सब पात्रकी पहिचानकरने वालों में श्रेष्ठहो, इसलिये इस बालक का कहनान मानो, भला क्या यह कृष्ण अग्र पूजाके योग्य है ।

तपोविद्याव्रतधराज्ज्ञानविध्वस्तकल्मषान् ।
परमर्षीन्ब्रह्मनिष्ठाँल्लोकपालैश्च पूजितान् ॥३३॥
सदस्पतीनतिक्रम्य गोपालः कुलपांसनः ।
यथा काकः पुरोडाशं सपर्यां कथमर्हति ॥३४॥

तपस्वी, विद्वान, व्रतधारी, ज्ञानी,निष्पाप, ब्रह्म निष्ठ, लोकपालों से पूजित और ब्रह्मर्षि इस सभा में विराजमानहैं, इन सबको छोड़कर यह गायोंका चराने वाला और कुल को कलंक लगाने वाला पूजन के योग्य कैसे हो सकता है ? कहीं काग भी यज्ञका पुरोडाश खानेके योग्य होता है ? ॥३३॥३४॥

वर्णाश्रमकुलापेतः सर्वधर्मबहिष्कृतः ।
स्वैरवर्ती गुणैर्हीनः सपर्यां कथमर्हति ॥३५॥

वर्ण, आश्रम और कुलसे भ्रष्ट, सब धर्मों से बहिष्कृत, मनमाने काम करनेवाला और गुण हीन ये कृष्ण किस प्रकार अग्र पूजाके योग्य होसकताहै?

ययातिनैषां हि कुलं शप्तं सद्भिर्बहिष्कृतम् ।
वृथा पानरतं शश्वत्सपर्यां कथमर्हति ॥३६॥

राजा ययाति ने इसके कुल को शाप दिया था इसलिये इसका कुल सत्पुरुषों द्वारा बहिष्कृत है, दूसरे वह सदैव व्यर्थही मदिरा पान किया करता है, तब ऐसे कुल वाला कृष्ण कैसे पूजा के योग्य हो सकता है ? ॥३६॥

ब्रह्मर्षिसेवितान्देशान्हित्वैतेऽब्रह्मवर्चसम् ।
समुद्रं दुर्गमाश्रित्य बाधन्ते दस्यवः प्रजाः ॥३७॥

यह लुटेरे यादव गण ब्रह्मर्षियोंसे सेवित देशों को छोड़कर; ब्रह्मतेज से हीन समुद्र रूपी गढ़ का आश्रय लेकर प्रजा को दुःख देते हैं ॥३७॥

श्रीशुक उवाच

एवमादीन्यभद्राणि बभाषे नष्टमङ्गलः ।
नोवाच किञ्चिद्भगवान्यथा सिंहः शिवारुतम्॥३८॥

श्रीशुकदेवजी बोले-उस क्षीण पुण्यवाले शिशुपाल ने इस प्रकार से अनेक दुर्वचन कहे, पर जैसे सिंह सियारनी की बोली सुनकर नहीं बोलता, वैसे भगवान् भी कुछ न बोले ॥३८॥

भगवन्निन्दनं श्रुत्वा दुःसहं तत्सभासदः ।
कर्णौ पिधाय निर्जग्मुः शपन्तश्चेदिपं रुषा ॥३९॥

सभासद लोग भगवान् की दुःसह निन्दा सुन कर कान बन्द करके क्रोधसे शिशुपालको गालियां देते हुए सभा में से चले गये ॥ ३९ ॥

निन्दां भगवतः शृण्वंस्तत्परस्य जनस्य वा ।
ततो नापैति यः सोऽपि यात्यधः सुकृताच्च्युतः ४०

भगवान् या भगवद्भक्त की निन्दा सुनकर जो मनुष्य वहाँसे टाला देकर नहीं जाता वह भी पुण्य हीन होकर नरक में गिरता है ॥४०॥

ततः पाण्डुसुताः क्रुद्धा मत्स्यकैकयसृञ्जयाः ।
उदायुधाः समुत्तस्थुः शिशुपालजिघांसवः ॥४१॥

फिर पांडु-पुत्र,मत्स्य, कैकय और सृञ्जय क्रोध

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूर्वक शस्त्रउठाकर शिशुपालको मारनेके लिये उठे॥

ततश्चैद्यस्त्वसंभ्रान्तो जगृहे खड्गचर्मणी ।
भर्त्सयन्कृष्णपक्षीयान्राज्ञः सदसि भारत ॥४२॥

हे राजन् ! तब शिशुपाल भी निर्भय होकर ढाल, तलवार, हाथ में लेकर श्रीकृष्णजी के पक्ष वाले राजाओं को सभामें झिड़कने लगा ॥४२॥

तावदुत्थाय भगवान्स्वान्निवार्य स्वयं रुषा ।
शिरः क्षुरान्तचक्रेण जहारापततो रिपोः ॥४३॥

तब भगवान्ने विचारकिया कि यह मेरा पार्षद मेरे ही समान बलवान् है, जो मैं इसे न मारूँगा तो यह सबको मारडालेगा, यह सोचकर वह स्वयं उठे और उन्होंने क्रोध करके अपने बन्धुओंको हटा कर छुरे के समान चक्र से उस आते हुए शत्रु का सिर काट डाला ॥४३॥

शब्दः कोलाहलोप्यासीच्छिशुपाले हते महान् ।
तस्यानुयायिनो भूपा दुद्रुवुर्जीवितैषिणः ॥४४॥

शिशुपाल के मारे जानेपर बड़ा कोलाहल मच गया और उसके पक्ष वाले राजा लोग प्राण बचा कर भाग निकले ॥४४॥

चैद्यदेहोत्थितं ज्योतिर्वासुदेवमुपाविशत् ।
पश्यतां सर्वभूतानामुल्केव भुवि खाच्च्युता ॥४५॥

शिशुपालके शरीरसे तेज निकलकर भगवान्के शरीर में इस प्रकार लीन होगया जैसे आकाश से गिरा हुआ उल्का पृथ्वी में समा जाता है ॥४५॥

जन्मत्रयानुगुणितवैरसंरब्धया धिया ।
ध्यायंस्तन्मयतां यातो भावो हि भवकारणम् ४६॥

तीनों जन्मों से बारम्बार किये हुए बैर-भावके कारण उन्हीं का ध्यान करता हुआ वह शिशुपाल भगवान् रूप होगया, क्योंकि मनकी भावना ही जन्म का कारण होती है ॥४६॥

ऋत्विग्भ्यः स सदस्येभ्यो दक्षिणां विपुलामदात् ।
सर्वान्संपूज्य विधिवच्चक्रेऽवभृथमेकराट् ॥४७॥

चक्रवर्त्ति राजा युधिष्ठिरने ऋत्विज और सभा सदों को बहुत दक्षिणा दी और सब लोगों का सत्कार करके विधि पूर्वक अवभृथ (यज्ञ के अन्त का) स्नान किया ॥४७॥

साधयित्वा क्रतुं राज्ञः कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ।
उवास कतिचिन्मासान्सुहृद्भिरभियाचितः ॥४८॥

योगेश्वरोंके ईश्वर प्रभु श्रीकृष्ण राजा युधिष्ठिर का यज्ञ सिद्ध कराने पर, सुहृदों की विनय से कई एक माह तक वहीं विराजमान् रहे ॥४८॥

ततोऽनुज्ञाप्य राजानमनिच्छन्तमपीश्वरः ।
ययौ सभार्यः सामात्यः स्वपुरं देवकीसुतः॥४९॥

फिर सर्वेश्वर श्रीकृष्णजी राजाकी कदापि इच्छा न होते हुए भी उनसे आज्ञा लेकर, रानियों तथा अमात्यों के साथ अपनी पुरी पधारे ॥४९॥

वर्णितं तदुपाख्यानं मया ते बहुविस्तरम् ।
वैकुण्ठवासिनोर्जन्म विप्रशापात्पुनः पुनः ॥५०॥

वैकुंठवासी जय-विजय ब्राह्मणों के शापसे बार बार उत्पन्न हुए, इस कथाको मैंने अधिक विस्तार पूर्वक तुमसे कहा है ॥५०॥

राजसूयावभृथ्येन स्नातो राजा युधिष्ठिरः ।
ब्रह्मक्षत्रसभामध्ये शुशुभे सुरराडिव ॥५१॥

राजा युधिष्ठिर राजसूय का अवभृथ स्नान करके ब्राह्मण और क्षत्रियों की सभा में इन्द्र के समान शोभा देने लगे ॥५१॥

राज्ञा सभाजिताः सर्वे सुरमानवखेचराः ।
कृष्णं क्रतुं च शंसन्तः स्वधामानि ययुर्मुदा॥५२॥

देवता,मनुष्य और प्रमथ गण राजासे सत्कार पाकर श्रीकृष्ण तथा यज्ञ की प्रशंसा करते हुए अपने-अपने घर चले गये ॥५२॥

दुर्योधनमृते पापं कलिं कुरुकुलामयम् ।
यो न सेहे श्रियं स्फीतां दृष्ट्वा पाण्डुसुतस्य ताम् ५३

कलियुग के अंश और कुरु-वंश के रोग रूप एक पापी दुर्योधनके सिवा सब लोग प्रशंसा करते थे, क्योंकि वह युधिष्ठिर की बढ़ी हुई राज्य-लक्ष्मी को सहन न कर सका ॥ ५३ ॥

य इदं कीर्तयेद्विष्णोः कर्म चैद्यवधादिकम् ।
राजमोक्षं वितानं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥५४॥

राजाओंका मोक्ष, यज्ञ सिद्ध करवाना और शिशुपाल-वध आदि भगवान् के इस चरित्रका जो कीर्त्तन करता है, वह सब पापोंसे छूट जाताहै ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पचहत्तरवां अध्याय

(अवभृथ स्नानोत्सव)

राजोवाच

अजातशत्रोस्तं दृष्ट्वा राजसूयमहोदयम् ।
सर्वे मुमुदिरे ब्रह्मन्नृदेवा ये समागताः ॥ १ ॥

परीक्षित बोले-हे ब्रह्मन् ! राजा युधिष्ठिर के राजसूय का महोत्सव देखकर जो राजालोग आये थे, वे सभी प्रसन्न हुए ॥ १ ॥

दुर्योधनं वर्जयित्वा राजानः सर्षयः सुराः ।
इति श्रुतं नो भगवंस्तत्र कारणमुच्यताम् ॥ २ ॥

हे भगवन् ! राजा, देवता और ऋषि-यह सब प्रसन्न हुए, केवल दुर्योधन ही उस आनन्दसे बचा रहा-यह मैंने आपके मुंह से सुनाहै, इसका क्या कारण है ? मुझसे कहिये ॥२॥

श्रीशुक उवाच

पितामहस्य ते यज्ञे राजसूये महात्मनः ।
बान्धवाः परिचर्यायां तस्यासन्प्रेमबन्धनाः ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-तुम्हारे पितामह महात्मा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में प्रेम से बंधे हुए बन्धु जन उसका काम करते थे ॥३॥

भीमो महानसाध्यक्षो धनाध्यक्षः सुयोधनः ।
सहदेवस्तु पूजायां नकुलो द्रव्यसाधने ॥ ४ ॥

भीम रसोई के अध्यक्ष थे, दुर्योधन कोषाध्यक्ष था, सहदेव पूजन के काममें थे और नकुल अनेक प्रकार के पदार्थ एकत्र करते थे ॥४॥

गुरुशुश्रूषणे जिष्णुः कृष्णः पादावनेजने ।
परिवेषणे द्रुपदजा कर्णो दाने महामनाः ॥ ५ ॥

अर्जुन गुरुजनों की सेवा पर थे, श्रीकृष्ण पैर पखारने का काम करते थे, द्रौपदी परोसती थी और उदार चित्त कर्ण दानाध्यक्ष था ॥५॥

युयुधानो विकर्णश्च हार्दिक्यो विदुरादयः ।
बाह्लीकपुत्रा भूर्याद्या ये च संतर्दनादयः ॥ ६ ॥

सात्यकि, विकर्ण, हार्दिक्य, विदुर आदि और भूरि आदि राजा बाह्लीक के पुत्र तथा जो संतर्दन आदि बन्धु थे ॥६॥

निरूपिता महायज्ञे नानाकर्मसु ते तदा ।
प्रवर्तन्ते स्म राजेन्द्रे राज्ञः प्रियचिकीर्षवः ॥ ७ ॥

हे राजन् ! वे सभी अपने २ नियत किये हुए महान् यज्ञ सम्बन्धी अनेक कामोंमें राजाको प्रसन्न करने की इच्छा से लगे हुए थे ॥७॥

ऋत्विक्सदस्यबहुवित्सु सुहृत्तमेषु स्विष्टेषु सूनृतसमर्हणदक्षिणाभिः । चैद्ये च सात्वतपतेश्चरणं प्रविष्टे चक्रुस्ततस्त्ववभृथस्नपनं ह्युनद्याम् ॥ ८ ॥

ऋत्विज, सभासद, अधिक ज्ञानवान् और बन्धुवर्ग का मीठे वचनों, आभूषणों और दक्षिणा आदि से सत्कार होचुकने तथा शिशुपालको भगवान् के चरणों में लीन होने पर, युधिष्ठिर का गङ्गाजी में अवभृथ स्नान हुआ ॥८॥

मृदङ्गशंखपणवधुन्धुर्यानकगोमुखाः ।
वादित्राणि विचित्राणि नेदुरावभृथोत्सवे ॥ ९ ॥

उस अवभृथ स्नान के उत्सव में मृदङ्ग, शंख, पणव, धुंधुरी, आनक, गोमुख आदि अनेक विचित्र बाजे बाज रहे थे ॥९॥

नर्तक्यो ननृतुर्हृष्टा गायका यूथशो जगुः ।
वीणावेणुतलोन्नादस्तेषां स दिवमस्पृशत् ॥ १० ॥

नर्त्तकियां नाच रही थीं, गाने वालों के समूह गारहे थे और वीणा. वंशी तथा हथेलियों के शब्द आकाश तक गूंज रहे थे ॥१०॥

चित्रध्वजपताकाग्रैरिभेन्द्रस्यन्दनार्वभिः ।
स्वलंकृतैर्भटैर्भूपा निर्ययू रुक्ममालिनः ॥ ११ ॥

स्वर्ण की मालायें पहने हुए राजागण विचित्र ध्वजाओं और पताकाओंके अग्र भागसे सुशोभित गजेन्द्र, रथ और घोड़ों पर बैठकर, शृङ्गार किये हुए योधाओं के साथ बाहर निकले ॥११॥

यदुसृञ्जयकाम्बोजकुरुकेकयकोसलाः ।
कम्पयन्तो भुवं सैन्यैर्यजमानपुरः सराः ॥ १२ ॥

यजमान राजा युधिष्ठिरको यदु, सृञ्जय, कांबोज कुरु, कैकय, कौशल देशके क्षत्रिय लोग आगे कर के सेनाओंसे पृथ्वीको कम्पित करते हुए चले ॥

सदस्यर्त्विग्द्विजश्रेष्ठा ब्रह्मघोषेण भूयसा ।
देवर्षिपितृगन्धर्वास्तुष्टुवुः पुष्पवर्षिणः ॥ १३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सभासद, ऋत्विज और श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग वेद का भारी घोष कररहे थे, देवता,पितर, ऋषि और गन्धर्व फूल बरसा-बरसा कर स्तुति कररहे थे ॥

स्वलंकृता नरा नार्यो गन्धस्रग्भूषणाम्बरैः ।
विलिम्पन्त्योऽभिषिञ्चन्त्यो विजह्रुर्विविधै रसैः १४

नगर के स्त्री, पुरुष चन्दन, माला, आभूषण और वस्त्रोंसे शृङ्गार कर-करके अनेक प्रकारके दूध दही आदि रसोंको परस्पर लेपन करके भिगोतेहुए क्रीड़ा करते थे ॥१४॥

तैलगोरसगन्धोदहरिद्रासान्द्रकुंकुमैः ।
पुम्भिर्लिप्ताः प्रलिंपन्त्यो विजह्रुर्वारयोषितः॥१५॥

तैल, गोरस, सुगंधित जल,हल्दी, सघनकेसर इन पदार्थों को पुरुष वेश्याओं को लेप रहे थे और वेश्यायें भी पुरुषोंको लेपकर क्रीड़ा कर रही थीं ॥

गुप्ता नृभिर्निरगमन्नुपलब्धुमेतद्देव्यो यथा दिवि विमानवरैर्नृदेव्यः । ता मातुलेयसखिभिः परिषिच्यमानाः सव्रीडहासविकसद्वदना विरेजुः १६॥

यह उत्सव देखने के लिये जैसे देवांगनायें उत्तम विमानों में बैठकर आई थीं, वैसे ही योधाओं के पहरे में रानियाँ भी अवभृथ स्नान के लिये बाहर आईं, उन्हें मामाके पुत्र और सखियां भिगो रही थीं, इसलिये वे लज्जामय हास्य से प्रफुल्लित मुख होकर शोभा देती थीं ॥ १६ ॥

ता देवरानुत सखीन्सिषिचुर्दृतीभिः क्लिन्नाम्बरा विवृतगात्रकुचोरुमध्याः । औत्सुक्यमुक्तकबराच्च्यवमानमाल्याः क्षोभं दधुर्मलधियां रुचिरैर्विहारैः

वे अपने देवर तथा सखियों को डोलचियोंसे भिगो रही थीं, उस समय उनके सब वस्त्र भीग जाने से समस्त अङ्ग, कुच, उरु और मध्य भाग स्पष्ट दिखाई देते थे और उत्सुकताके कारण चोटी ढीली पड़ जाने से फूल बिखर रहे थे, यह उनकी लीलायें देखकर कामी पुरुषोंके मन क्षोभित होतेथे ॥

स सम्राड् रथमारूढः सदश्वं रुक्ममालिनम् ।
व्यरोचत स्वपत्नीभिः क्रियाभिः क्रतुराडिव ॥१८॥

जब चक्रवर्त्ती राजा युधिष्ठिर उत्तम घोड़ों तथा स्वर्ण की माला वाले रथ पर अपनी रानियों के साथ सवार हुए तब वे ऐसे शोभा देते थे जैसे क्रियाओं सहित स्वयं यज्ञराज शोभा देता हो ॥१८॥

पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वा ते तमृत्विजः ।
आचान्तं स्नापयाञ्चक्रुर्गङ्गायां सह कृष्णया॥१९॥

पत्नी संयाज तथा अवभृथ सम्बन्धी कर्म और आचमन करानेके अनन्तर उन ऋत्विजोंने द्रौपदी के साथ राजा को गङ्गाजी में स्नान कराया ॥१९॥

देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभिभिः समम् ।
मुमुचुः पुष्पवर्षाणि देवर्षिपितृमानवाः ॥२०॥

उस समय मनुष्यों के नक्कारे और देवताओं की दुन्दुभि बाजने लगी और देवता, ऋषि, पितर और मनुष्य पुष्प-वर्षा करने लगे ॥२०॥

सस्नुस्तत्र गताः सर्वे वर्णाश्रमयुता नराः ।
महापातक्यपि यतः सद्यो मुच्येत किल्बिषात्॥२१॥

फिर वहाँ सब वर्ण और आश्रम के लोगों ने स्नान किया, क्योंकि इस स्नान से महा पापी भी पाप से छूट जाता है ॥२१॥

अथ राजाऽहते क्षौमे परिधाय स्वलंकृतः ।
ऋत्विक्सदस्यविप्रादीनानर्चाभरणाम्बरैः ॥२२॥

फिर राजा ने नवीन वस्त्र पहिन कर, शृङ्गार करके ऋत्विज, सभासद और ब्राह्मण आदि सब लोगों का आभूषण तथा वस्त्रोंद्वारा सत्कार किया॥

बन्धुज्ञातिनृपान्मित्रसुहृदोन्यांश्च सर्वशः ।
अभीक्ष्णं पूजयामास नारायणपरो नृपः ॥२३॥

परमेश्वर के परम भक्त राजा युधिष्ठिर ने बंधु जाति, राजा, मित्र, सुहृद तथा अन्य सब लोगों का सत्कार किया ॥२३॥

सर्वे जनाः सुररुचो मणिकुण्डलस्रग्गुष्णीषकञ्चुकदुकूलमहार्घ्यहाराः । नार्यश्च कुण्डलयुताऽलकवृन्दजुष्टवक्त्रश्रियः कनकमेखलया विरेजुः ॥२४॥

सब लोग मणियों के कुण्डल, माला, पगड़ी, जामा, रेशमी वस्त्र और अमूल्य रत्न पहने हुए देवताओंके समान कान्तिमय होरहेथे और स्त्रियां भी दोनों कुण्डल और अलकोंसे शोभित मुखतथा कटिमेखला से शोभायमान् लगती थीं ॥२४॥

अथर्त्विजो महाशीलाः सदस्या ब्रह्मवादिनः ।
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा राजानो ये समागताः ॥२५॥
देवर्षिपितृभूतानि लोकपालाः सहानुगाः ।
पूजितास्तमनुज्ञाप्य स्वधामानि ययुर्नृप ॥२६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे राजन्! तत्पश्चात् परम शीलवान् ऋत्विज, ब्रह्मवादी सभासद, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, देवता, ऋषि, पितर, अनुचरों सहित लोकपाल और राजा लोग कि जो आये थे, वे सभी राजा से सत्कार पाकर बिदा मांगकर घरको गये ॥२५॥२६॥

हरिदासस्य राजर्षे राजसूयमहोदयम् ।
नैवातृप्यन्प्रशंसन्तः पिबन्मर्त्योऽमृतं यथा ॥२७॥

वे लोग हरिभक्त महाराज युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञ के महोत्सव की प्रशंसा करते २ भी इस तरह तृप्त न होते थे जैसे मनुष्य अमृत पी-पीकर तृप्त नहीं होता ॥२७॥

ततो युधिष्ठिरो राजा सुहृत्संबन्धिबान्धवान् ।
प्रेम्णा निवासयामास कृष्णं च त्यागकातरः॥२८॥

राजा युधिष्ठिर ने विदुर के भय से सुहृद, संबन्धी और श्रीकृष्ण भगवान् को प्रीति पूर्वक वहीं रोक लिया ॥२८॥

भगवानपि तत्राङ्ग न्यवात्सीत्तत्प्रियङ्करः ।
प्रस्थाप्य यदुवीरांश्च साम्बादींश्च कुशस्थलीम्२९॥

हे राजन्! भगवान्भी सांब आदि सब यादवों को द्वारका बिदा करके, राजा को प्रसन्न करने के लिये स्वयं वहीं ठहरे रहे ॥२९॥

इत्थं राजा धर्मसुतो मनोरथमहार्णवम् ।
सुदुस्तरं समुत्तीर्य कृष्णेनासीद्गतज्वरः ॥३०॥

धर्म-पुत्र राजा युधिष्ठिर इस प्रकार श्रीकृष्णकी कृपा से अत्यन्त दुस्तर मनोरथ रूपी महासागरसे पार उतर कर निश्चिन्त हुए ॥३०॥

एकदान्तःपुरे तस्य वीक्ष्य दुर्योधनः श्रियम् ।
अतप्यद्राजसूयस्य महित्वं चाच्युतात्मनः ॥३१॥

एकबार भगवद्भक्त महाराज युधिष्ठिरके अंतः पुर की लक्ष्मी तथा राजसूय यज्ञकी महिमा देखकर दुर्योधन सन्ताप करने लगा ॥३१॥

यस्मिन्नरेन्द्रदितिजेन्द्रसुरेन्द्रलक्ष्मीर्नाना विभान्ति किल विश्वसृजोपकल्पाः । ताभिः पतीन्द्रुपद-राजसुता प्रतस्थे यस्यां विषक्तहृदयः कुरुराडतप्यत्॥

जहाँ मय दानवकी रची हुई नरपति, दैत्यपति और देवपतियों की अनेक विभूतियां देदीप्यमान होरही थीं और द्रौपदी उन विभूतियों के साथ अपने पतियोंकी सेवा कररही थी, महाराज युधिष्ठिर के उस अन्तःपुर को देखकर दुर्योधनका मन डोल उठा और वह भीतरही भीतर जलने लगा ॥३२॥

यस्मिंस्तदा मधुपतेर्महिषीसहस्रं श्रोणीभरेण शनकैः क्वणदङ्घ्रिशोभम् । मध्ये सुचारुकुचकुंकम शोणहारं श्रीमन्मुखं प्रचलकुण्डलकुन्तलाढ्यम् ३३

जहाँ नितंब के भार से धीरे-धीरे झमकते हुए झाँझरों से शोभायमान् चरणों वाली, स्तनों की केसर से अरुण हार धारण किये हुए; चलायमान कुण्डल तथा वेणी सहित सुन्दरमुख तथा अत्यंत रमणीय कटि वाली, भगवान् की हज़ारों स्त्रियाँ इधर-उधर फिर रही थीं ॥३३॥

सभायां मयकल्पायां क्वापि धर्मसुतोऽधिराट् ।
वृतोनुजैर्बन्धुभिश्च कृष्णेनापि स्वचक्षुषा ॥३४॥
आसीनः काञ्चने साक्षादासने मघवानिव ।
पारमेष्ठ्यश्रिया जुष्टः स्तूयमानश्च बन्दिभिः॥३५॥

एक बार धर्म-पुत्र चक्रवर्त्तिमहाराज युधिष्ठिर अपने छोटे भाइयों तथा नेत्ररूपी श्रीकृष्णचंद्र के साथ मय दैत्यकी बनाई हुई सभामें स्वर्ण-सिंहासन पर इन्द्रकी भांति विराजमान्थे, वहाँ राज्य-लक्ष्मी की प्रभा झलक रहीथी और वंदीजन स्तुति करतेथे।

तत्र दुर्योधनो मानी परीतो भ्रातृभिर्नृप ।
किरीटमाली न्यविशदसिहस्तः क्षिपन्रुषा ॥३६॥

हे राजन्! वहाँ गर्वीला दुर्योधन अपने भाइयों के साथ किरीट और माला धारण किये हुए, तलवार हाथ में लिये हुए, पहरेदारों को धमकी देता हुआ सभा में आया ॥३६॥

स्थलेऽभ्यगृह्णाद्वस्त्रान्तं जलं मत्वा स्थलेऽपतत् ।
जले च स्थलवद्भ्रान्त्या मयमायाविमोहितः३७॥

वहाँ वह मय दानवकी मायासे ऐसा मोहित हुआ कि जहाँ स्थलथा वहाँतो जल मानकर अपने कपड़े समेटने लगा और जहाँ जल था वहाँ स्थल समझ कर गिर पड़ा ॥३७॥

जहास भीमस्तं दृष्ट्वा स्त्रियो नृपतयोऽपरे ।
निवार्यमाणा अप्यङ्ग राज्ञा कृष्णानुमोदिताः३८॥

हे राजन्! यद्यपि महाराज युधिष्ठिर ने उन्हें रोका, परन्तु श्रीकृष्ण का संकेत पाकर पहले भीम हंसे और फिर दूसरे राजा लोग तथा स्त्रियां भी हँस पड़ीं ॥३८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स व्रीडितोऽवाग्वदनो रुषा ज्वलन्निष्क्रम्य तूष्णीं प्रययौ गजाह्वयम् । हाहेति शब्दः सुमहान भूत्सतामजातशत्रुर्विमना इवाभवत् । बभूव तूष्णीं भगवान्भुवो भरं समुज्जिहीर्षुर्भ्रमति स्म यद्दृशाः॥

वह लज्जित होकर, मुंह नीचा किये हुए तथा क्रोध से जलता हुआ सभा से चुपचाप निकलकर हस्तिनापुर चला गया, उस समय सत्पुरुषोंमें हा-हाकार मचगया, युधिष्ठिर उदास होगये, परन्तु जिनकी दृष्टि में सब जगत् घूमता है, वे भगवान् चुपकी साधे बैठे रहे; क्योंकि उन्हें पृथ्वी का भार उतारने के लिये उसे द्वारा बनाना था ॥३६॥

एतत्तेऽभिहितं राजन्यत्पृष्टोऽहमिह त्वया । सुयोधनस्य दौरात्म्यं राजसूये महाक्रतौ ॥४०॥

हे राजन् ! तुमने पूछा था कि महान् राजसूय में दुर्योधन का दुर्भाव क्यों रहा ? सो उसका वृत्तान्त मैंने तुम्हें सुना दिया ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

छिअत्तरवां अध्याय

(यादव-शाल्व महायुद्ध वर्णन)

श्रीशुक उवाच

अथान्यदपि कृष्णस्य शृणु कर्माद्भुतं नृप । क्रीडानरशरीरस्य यथा सौभपतिर्हतः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! इनके आगे क्रीड़ाके लिये नर-तनधारी भगवान् श्रीकृष्णने और भी जो अद्भुत कर्म किये तथा जिस प्रकार सौभ-विमान के पति शाल्व को मारा सो सुनो ॥ १ ॥

शिशुपालसखः शाल्वो रुक्मिण्युद्वाह आगतः । यदुभिर्निर्जितः संख्ये जरासन्धादयस्तथा ॥ २ ॥

शिशुपालका मित्र शाल्व रुक्मिणीके विवाहमें आयाथा, वहाँ उसे तथा जरासंध आदिको संग्राम में यादवों ने जीत लिया था ॥२॥

शाल्वः प्रतिज्ञामकरोच्छृण्वतां सर्वभूभुजाम् । अयादवीं क्ष्मां करिष्ये पौरुषं मम पश्यत ॥ ३ ॥

तब शाल्व ने सब राजाओं के सुनते हुए यह प्रण किया कि मैं पृथ्वी को यदुवंश हीन करदूँगा, अब मेरा पराक्रम देखो ॥३॥

इति मूढः प्रतिज्ञाय देवं पशुपतिं प्रभुम् । आराधयामास नृप पांसुमुष्टिं सकृद्ददन ॥ ४ ॥

हे राजन् ! इस प्रकार प्रण करके वह मूर्ख प्रति दिन केवल एक मुट्ठी धूल का आहार करता हुआ शिवजी का आराधन करने लगा ॥४॥

संवत्सरान्ते भगवानाशुतोष उमापतिः । वरेण च्छन्दयामास शाल्वं शरणमागतम् ॥ ५ ॥

आशुतोष शंकर भगवान् ने एक वर्षके अन्तमें प्रकट होकर शरणागत शाल्वसे कहा कि-वर माँग।

देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् । अभेद्यं कामगं वव्रे स यानं वृष्णिभीषणम् ॥ ६ ॥

तब उसने वर माँगा कि मुझे ऐसा विमान दो कि जो मेरी इच्छा पर चले, जिससे यादवों को भय हो और जिसे देवता, दैत्य, मनुष्य, उरग तथा राक्षस न तोड़ सकें ॥६॥

तथेति गिरिशादिष्टो मयः परपुरञ्जयः । पुरं निर्माय शाल्वाय प्रादात्सौभमयस्मयम् ॥ ७ ॥

शिवजीने 'तथास्तु' कहकर मय दैत्यको आज्ञा दी, तब उसने शत्रुओं के पुरों को जीतने वाला सौभ नामका एक लोहे का विमान बनाकर शाल्व को दिया ॥७॥

स लब्ध्वा कामगं यानं तमोधाम दुरासदम् । ययौ द्वारवतीं शाल्वो वैरं वृष्णिकृतं स्मरन् ॥८॥

अन्धकारसे भरा हुआ, दीखनेमें न आनेवाला और इच्छा पूर्वक चलने वाला विमान पाकर वह शाल्व यादवों के किये बैरको स्मरण करके द्वारका को चला ॥ ८ ॥

विरुध्य सेनया शाल्वो महत्या भरतर्षभ । पुरीं बभञ्जोपवनान्युद्यानानि च सर्वशः ॥ ९ ॥

हे राजन् ! शाल्व बड़ी सेना लेकर और चारों ओर से पुरी घेर कर बाग़-बग़ीचोंको तोड़नेलगा ॥

सगोपुराणि द्वाराणि प्रासादाट्टालतोलिकाः । विहारान्सविमानाग्र्यान्निपेतुः शस्त्रवृष्टयः ॥१०॥

गोपुर, द्वार, महल, अटारियोंकी दीवारें और विहार-स्थान तोड़ने लगा तथा उस श्रेष्ठ विमानसे शस्त्रों की वर्षा होने लगी ॥१०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शिला द्रुमाश्चाशनयः सर्पा आसारशर्कराः ।
प्रचण्डश्चक्रवातोऽभूद्रजसाऽऽच्छादिता दिशः॥११॥

शिला, वृक्ष, बिजली, सर्प और ओले बरसने लगे, प्रचंड वायु चलने के कारण धूल उड़ने से दसों दिशायें अन्धकार मय होगईं ॥११॥

इत्यर्द्यमाना सौभेन कृष्णस्य नगरी भृशम् ।
नाभ्यपद्यत शं राजंस्त्रिपुरेण यथा मही ॥१२॥

हे राजन् ! उस सौभ नामक विमानसे पीड़ित वह पुरी ऐसे ही दुःखी होने लगी जैसे त्रिपुरासुर से पृथ्वी दुःखी हुई थी, सुखका कहीं नामभी न था।

प्रद्युम्नो भगवान् वीक्ष्य बाध्यमाना निजाः प्रजाः ।
मा भैष्टेत्यभ्यधाद्वीरो रथारूढो महायशाः ॥१३॥

तब परम यशस्वी वीर भगवान् प्रद्युम्न अपनी प्रजाको पीड़ित देखकर यह कहते हुए कि 'तुम न डरो' रथ पर चढ़े ॥१३॥

सात्यकिश्चारुदेष्णश्च साम्बोऽक्रूरः सहानुजः ।
हार्दिक्यो भानुविन्दश्च गदश्च शुकसारणौ ॥१४॥
अपरे च महेष्वासा रथयूथपयूथपाः ।
निर्ययुर्दंशिता गुप्ता रथेभाश्वपदातिभिः ॥१५॥

सात्यकि, चारुदेष्ण, सांब, छोटे भाइयोंसहित अक्रूर, हार्दिक्य, भानुविंद, गद, शुक, सारण तथा अन्य बड़े-बड़े धनुषधारी महारथियों के नायक कवच, सनाह पहन कर, रक्षित होकर और हाथी घोड़ों तथा पैदलों का दल लेकर बाहर निकले ॥

ततः प्रवव्रृते युद्धं शाल्वानां यदुभिः सह ।
यथासुराणां विबुधैस्तुमुलं लोमहर्षणम् ॥१६॥

फिर शाल्व-दल और यादवोंके बीच देवासुर संग्रामकी भांति घोर युद्ध होने लगा ॥१६॥

ताश्च सौभपतेर्माया दिव्यास्त्रै रुक्मिणीसुतः ।
क्षणेन नाशयामास नैशं तम इवोष्णगुः ॥१७॥

प्रद्युम्नने अपने दिव्य अस्त्रों के द्वारा शाल्व की समस्त माया को इस प्रकार नष्ट कर दिया जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट कर देता है ॥ १७ ॥

विव्याध पञ्चविंशत्या स्वर्णपुंखैरयोमुखैः ।
शाल्वस्य ध्वजिनीपालं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥१८॥

और शाल्व के सेनापति को सोनेके पंख,लोहे के फल तथा छोटी-छोटी सन्धि वाले पच्चीस बाण मारे । १८ ॥

शतेनाताडयच्छाल्वमेकैकेनास्य सैनिकान् ।
दशभिर्दशभिर्नेतॄन्वाहनानि त्रिभिस्त्रिभिः ॥१९॥

फिर शाल्व को सौ, सेना वालों को एक-एक, सारथियों को दस-दस और वाहनों को तीन-तीन बाण मारे ॥१९॥

तदद्भुतं महत्कर्म प्रद्युम्नस्य महात्मनः ।
दृष्ट्वा तं पूजयामासुः सर्वे स्वपरसैनिकाः ॥२०॥

महात्मा प्रद्युम्न का यह अद्भुत चरित्र देखकर अपने और पराये दोनों दलों के योधालोग उनकी प्रशंसा करने लगे ॥२०॥

बहुरूपैकरूपं तद्दृश्यते न च दृश्यते ।
मायामयं मयकृतं दुर्विभाव्यं परैरभूत् ॥२१॥

मय दानवका बनायाहुआ वह मायाका विमान कभी तो एक रूप में होजाता था और कभी अनेक रूपमें; कभी दीखताही न था, इसलिये उसके शत्रु यादव उसपर विचारभी न कर सकते थे ॥२१॥

क्वचिद्भूमौ क्वचिद्व्योम्नि गिरिमूर्ध्नि जले क्वचित् ।
अलातचक्रवद्भ्राम्यत्सौभं तदुरवस्थितम् ॥२२॥

वह विमान जलती हुई लकड़ी के समान कभी पृथ्वी पर आजाता था कभी आकाश में पहुँच जाता था, कभी पर्वत पर जाता था तो कभी जल में जाता था ॥२२॥

यत्र यत्रोपलक्ष्येत स सौभः सहसैनिकः ।
शाल्वस्ततस्ततोऽमुञ्चच्छरान्सात्वतयूथपः ॥२३॥

सेना तथा विमान के साथ वह शाल्व जहाँ २ दीखता था यादव यूथपति वहीं २ बाण चलातेथे॥

शरैरग्न्यर्कसंस्पर्शैराशीविषदुरासदैः ।
पीड्यमानपुरानीकः शाल्वोमुह्यत्परेरितैः ॥२४॥

अग्नि और सूर्यके समान गर्भ स्पर्श वाले विष तुल्य और असह्य बैरी के चलाये हुए बाणोंसे जब उसकी सेना के लोग पीड़ित हुए, तब शाल्व भी घबरा उठा ॥२४॥

शाल्वानीकपशस्त्रौघैर्वृष्णिवीरा भृशार्दिताः ।
न तत्यजू रणं स्वं स्वं लोकद्वयजिगीषवः ॥२५॥

यद्यपि शाल्व के सेनापतियों द्वारा चलाये हुए शस्त्र-समूह से यदुवंशी योधागण बहुत पीड़ित हो गये,फिरभी वे लोक और परलोक जीतनेकी इच्छा वाले अपनी युद्ध-भूमि से न टले ॥२५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शाल्वामात्यो द्युमान्नाम प्रद्युम्नं प्राक्प्रपीडितः ।
आसाद्य गदया मौर्व्या व्याहत्य व्यनदद्बली २६

द्युमान नामक शाल्व का अमात्य कि जो पहले प्रद्युम्नके द्वारा पीड़ित किया गया था,उस बलवान् पुरुषने प्रद्युम्नपर लोहमयी गदाका प्रहार करते हुए सिंह नाद किया ॥ २६ ॥

प्रद्युम्नं गदया शीर्णवक्षःस्थलमरिन्दमम् ।
अपोवाह रणात्सूतो धर्मविद्दारुकात्मजः ॥२७॥

जब शत्रुको दमन करनेवाले प्रद्युम्न का वक्षःस्थल गदासे विदीर्ण होगया, तब धर्म-वेत्ता दारुक पुत्र (सारथी) उन्हें रणभूमिसे बाहर लेगया ॥२७॥

लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन कार्ष्णिः सारथिमब्रवीत् ।
अहो असाध्विदं सूत यद्रणान्मेऽपसर्पणम् ॥२८॥

दो घड़ीके पीछे चैतन्य होकर प्रद्युम्नने सारथी से कहा कि हे सूत ! तूने मुझे रण-भूमि से हटा लाकर बड़ा बुरा काम किया है ॥२८॥

न यदूनां कुले जातः श्रूयते रणविच्युतः ।
विना मत्क्लीबचित्तेन सूतेन प्राप्तकिल्बिषात्॥२९॥

मेरे सिवा इस यदुवंश में ऐसा कोई भी नहीं हुआ है जिसे युद्धसे भागा हुआ सुना हो,केवल मैं ही ऐसा कायर हुआ हूँ, परन्तु इसमें मुझे क्या दोष है ? क्योंकि यह कलंक तो मेरे विह्वल चित्त वाले सारथी ने लगाया है ॥ २९ ॥

किंनु वक्ष्येऽभिसंगम्य पितरौ रामकेशवौ ।
युद्धात्सम्यगपक्रान्तः पृष्टस्तत्रात्मनः क्षमम् ॥३०॥

जब मैं अपने पिता राम-कृष्ण से मिलूँगा तब क्याकहूँगा ? जब वे पूछेंगे तब मैं युद्धसे भागाहुआ अपनी योग्यताके विषयमें किस प्रकार बोलूंगा ?

व्यक्तं मे कथयिष्यन्ति हसन्त्यो भ्रातृजामयः ।
क्लैब्यं कथं कथं वीर तवान्यैः कथ्यतां मृधे ॥३१॥

मेरी भावजें अवश्यही हँस-हँसकर कहेंगी कि हे वीर ! जब तुम दूसरे से लड़ते थे तब तुम्हारा क्या-क्या (हाल) हुआ ? सो हमसे कहो, उस समय वे मुझे नपुंसक ठहरायेंगी ॥३१॥

सारथिरुवाच

धर्मं विजानताऽऽयुष्मन्कृतमेतन्मया विभो ।
सूतः कृच्छ्रगतं रक्षेद्रथिनं सारथिं रथी ॥३२॥

सारथी बोला–हे आयुष्मान् ! हे प्रभु ! मैं ने तो अपना धर्म समझ कर ऐसा किया है, क्योंकि सारथी को कष्ट में रथी की तथा रथी को सारथी की रक्षा करनी चाहिये ॥३२॥

एतद्विदित्वा तु भवान्मयापोवाहितो रणात् ।
उपसृष्टः परेणेति मूर्छितो गदया हतः ॥३३॥

यही सोचकर मैं आपको युद्ध से उठा लायाहूँ क्योंकि जब शत्रु के हाथ की गदा लगी तब आप पीड़ा पाकर मूर्छित होगये थे ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥

सतत्तरवां अध्याय

(शाल्व-वध)

स उपस्पृश्य सलिलं दंशितो धृतकार्मुकः ।
नय मां द्युमतः पार्श्वं वीरस्येत्याह सारथिम् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी बोले–प्रद्युम्न ने कवच पहन कर धनुष धारणकरके और आचमनकर सारथीसे कहा कि मुझे वीर द्युमान के पास ले चल ॥१॥

विधमन्तं स्वसैन्यानि द्युमन्तं रुक्मिणीसुतः ।
प्रतिहत्य प्रत्यविध्यन्नाराचैरष्टभिः स्वयम् ॥ २ ॥

प्रद्युम्न ने अपनी सेना का संहार करते हुए द्युमान को रोक कर, उसे आठ बाण मारे ॥२॥

चतुर्भिश्चतुरो वाहान्सूतमेकेन चाहनत् ।
द्वाभ्यां धनुश्च केतुं च शरेणान्येन वै शिरः ॥ ३ ॥

चार बाणों से चारों घोड़ों और एक बाण से सारथी को मारा, एक बाणसे धनुष, एकसे ध्वजा और एक से उसका सिर काट डाला ॥३॥

गदसात्यकिसाम्बाद्या जघ्नुः सौभपतेर्बलम् ।
पेतुः समुद्रे सौभेयाः सर्वे सञ्छिन्नकन्धराः ॥ ४ ॥

गद, सात्यकि और सांब आदि जैसे २ शाल्व की सेना को मारते थे, वैसे ही उनके सिर कट २ कर समुद्र में गिर रहे थे ॥४॥

एवं यदूनां शाल्वानां निघ्नतामितरेतरम् ।
युद्धं त्रिणवरात्रं तदभूत्तुमुलमुल्बणम् ॥ ५ ॥

इस प्रकार यदुवंशी और शाल्व के सैनिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परस्पर युद्ध कर रहे थे, उनका सत्ताइस दिनतक घोर युद्ध होता रहा ॥५॥

इन्द्रप्रस्थं गतः कृष्ण आहूतो धर्मसूनुना ।
राजसूयेऽथ निर्वृत्ते शिशुपाले च संस्थिते ॥ ६ ॥
कुरुवृद्धाननुज्ञाप्य मुनींश्च ससुतां पृथाम् ।
निमित्तान्यतिघोराणि पश्यन्द्वारवतीं ययौ ॥ ७ ॥

श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के बुलाने से इन्द्रप्रस्थ गये हुए थे और वहीं विराजमान थे, जब राजसूय यज्ञ होचुका तथा शिशुपाल मारा गया गया, तब कुरु वृद्ध, मुनि लोग और पुत्रों सहित कुन्ती से आज्ञा लेकर मार्ग में भयावने उत्पात देखते हुए द्वारकापुरी पधारे ॥ ६ ॥ ७ ॥

आह चाहमिहायात आर्यमिश्राभिसंगतः ।
राजन्याश्चैद्यपक्षीया नूनं हन्युः पुरीं मम ॥ ८ ॥

तब उन्होंने मार्ग में कहा कि मैं बल्देवजी के साथ यहाँ चला आयाहूँ, इसलिये शिशुपालके पक्ष वाले राजा लोग मेरी पुरी को अवश्यही नष्ट कर रहे होंगे ॥ ८ ॥

वीक्ष्य तत्कदनं स्वानां निरूप्य पुररक्षणम् ।
सौभं च शाल्वराजं च दारुकं प्राह केशवः ॥ ९ ॥

उन्होंने आते ही दूरसे अपने लोगों को नाश होता हुआ देखकर पुरी की रक्षा का प्रबन्ध करके दारुक सारथी से कहा कि ॥९॥

रथं प्रापय मे सूत शाल्वस्यान्तिकमाशु वै ।
संभ्रमस्ते न कर्तव्यो मायावी सौभराडयम् ॥ १० ॥

हे सूत ! मेरा रथ शीघ्र ही शाल्व के पास पहुंचा दे, वह बड़ा ही मायावी है; परन्तु तू घबराना नहीं ॥ १० ॥

इत्युक्तश्चोदयामास रथमास्थाय दारुकः ।
विशन्तं ददृशुः सर्वे स्वे परे चारुणानुजम् ॥ ११ ॥

ऐसी आज्ञा देते ही दारुकने रथमें बैठकर उसे चलाया, तब अपने और पराये सब लोगोंने ध्वजा पर बैठे हुए गरुड़ को देखा ॥११॥

शाल्वश्च कृष्णमालोक्य हतप्रायबलेश्वरः ।
प्राहरत्कृष्णसूताय शक्तिं भीमरवां मृधे ॥ १२ ॥

जब शाल्वकी बहुतसी सेना मरचुकी तब श्री कृष्ण को संग्राम-भूमिमें आया हुआ देखकर शाल्व ने उनके सारथीपर भयङ्कर वेगवाली शक्तिचलाई।

तामापतन्तीं नभसि महोल्कामिव रंहसा ।
भासयन्तीं दिशः शौरिः सायकैः शतधाऽच्छिनत् ॥

जो उल्काकी नाईं वेगसे दसों दिशाओंको प्रकाशित करती हुई आरही थी, उस शक्तिके भगवान् ने आकाश ही में बाणोंके द्वारा सैकड़ों टुकड़े कर डाले ॥ १२ ॥

तं च षोडशभिर्विद्ध्वा बाणैः सौभं च खेभ्रमत् ।
अविध्यच्छरसन्दोहैः खं सूर्य इव रश्मिभिः ॥ १४ ॥

और सोलह बाण शाल्वके मारे तथा आकाश में घूमते हुए उस सौभ विमान् को बाणों से ऐसा बींध डाला जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे आकाश को बींधता है ॥ १४ ॥

शाल्वः शौरेस्तु दोः सव्यं सशार्ङ्गं शार्ङ्गधन्वनः ।
बिभेद न्यपतद्धस्ताच्छार्ङ्गमासीत्तदद्भुतम् ॥ १५ ॥

शाल्व ने भगवान् के हाथ की फुर्ती देखकर उनके शार्ङ्ग धनुषपर प्रहार किया, जिससे ये बड़ी ही अद्भुत बात हुई कि वह धनुष उनके हाथ से छूट पड़ा ॥१५॥

हाहाकारो महानासीद्भूतानां तत्र पश्यताम् ।
विनद्य सौभराडुच्चैरिदमाह जनार्दनम् ॥ १६ ॥

वहाँ जो लोग देख रहे थे, उन्होंने हाहाकार मचा दिया, तब शाल्व ने ऊंची गर्जना करके भगवान् से यह वचन कहा कि ॥१६॥

यत्त्वया मूढ नः सख्युर्भ्रातुर्भार्या हृतेक्षताम् ।
प्रमत्तः स सभामध्ये त्वया व्यापादितः सखा १७ ॥

हे मूर्ख ! तू जो हमारे भाई और सखा शिशुपाल की स्त्रीको हमारे ही सामने हर लायाहै और सभा में असावधान बैठे हुए समय में उसे तू ने मार डाला है ॥१७॥

तं त्वाद्य निशितैर्बाणैरपराजितमानिनम् ।
नयाम्यपुनरावृत्तिं यदि तिष्ठेर्ममाग्रतः ॥ १८ ॥

इसलिये यदि तू मेरे सामने खड़ा रहेगा तो मैं तुझ अजितपन के गर्व करने वाले को आज ही अपने तीक्ष्ण बाणोंसे बींधकर यमलोक पहुँचादूंगा।

श्रीभगवानुवाच

वृथा त्वं कत्थसे मंद न पश्यस्यन्तिकेऽन्तकम् ।
पौरुषं दर्शयन्ति स्म शूरा न बहुभाषिणः ॥ १९ ॥

श्रीभगवान् बोले–हे नीच ! तू व्यर्थ ही बक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहा है, परन्तु अपने पास खड़ी हुई मृत्यु को नहीं देखता, शूरवीर बहुत बकवाद नहीं करते, वरन् पराक्रम करके दिखलाते हैं ॥१६॥

इत्युक्त्वा भगवाञ्छाल्वं गदया भीमवेगया ।
ततोड जत्रौ संरब्धः स चकम्पे वमन्नसृक् ॥२०॥

श्रीशुकदेवजी बोले–भगवान्ने इस प्रकार कह कर क्रुद्ध होकर महा वेगवाली गदा से शाल्व की हंसलियों पर प्रहार किया, जिससे वह लोहू उगलता हुआ काँपने लगा ॥२०॥

गदायां सन्निवृत्तायां शाल्वस्त्वन्तरधीयत ।
ततो मुहूर्त आगत्य पुरुषः सिरसाऽच्युतम् ।
देवक्या प्रहितोऽस्मीति नत्वा प्राह वचो रुदन् २१

जब गदा लौट गई तब शाल्व अन्तर्धान हो गया, कुछ देर पीछे एक पुरुष आकर भगवान्को शिरसे प्रणाम करके रोता हुआ बोलाकि मैं देवकी का भेजा हुआ आया हूँ ॥२१॥

कृष्ण कृष्ण महाबाहो पिता ते पितृवत्सल ।
बद्ध्वाऽपनीतः शाल्वेन सौनिकेन यथा पशुः॥२२॥

हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाबाहु ! हे पितृ हित कारी ! जैसे कसाई पशु को बाँधकर लेजाता है वैसे ही शाल्व राजा आपके पिता को बाँध कर ले गया है ॥२२॥

निशम्य विप्रियं कृष्णो मानुषीं प्रकृतिं गतः ।
विमनस्को घृणी स्नेहाद्बबभाषे प्राकृतो तथा॥२३॥

यह अप्रिय समाचार सुनकर मनुष्य-स्वभावको प्राप्त हुए भगवान् मनमें उदास होकर साधारण पुरुष की भांति प्रेमसे कहने लगे कि ॥२३॥

कथं राममसंभ्रान्तं जित्वाऽजेयं सुरासुरैः ।
शाल्वेनाल्पीयसा नीतः पिता मे बलवान्विधिः २४

संभ्रम रहित और देवता तथा असुरों से भी न जीते जाने योग्य बलरामजी को जीतकर नीच और तुच्छ शाल्व मेरे पिताजी को कैसे ले गया होगा ? दैव बलवान् है ॥२४॥

इति ब्रुवाणे गोविन्दे सौभराट् प्रत्युपस्थितः ।
वसुदेवमिवानीय कृष्णं चेदमुवाच सः ॥२५॥
एष ते जनिता तातो यदर्थमिह जीवसि ।
वधिष्ये वीक्षतस्तेऽमुमीशश्चेत्पाहि बालिश ॥२६॥

इस प्रकार श्रीकृष्णजी कहही रहे थे कि उसी समय माया रूपी वसुदेव को लिये हुए शाल्व आया और प्रभुसे बोला कि रे मूर्ख ! तुझे जन्म-दाता यह तेरा पिताहै कि जिसके लिये तू जीवित है, मैं इसे तेरे देखते-देखते ही मार डालूंगा, यदि तुझ में शक्ति हो तो बचा ले ॥२५॥॥२६॥

एवं निर्भर्त्स्य मायावी खड्गेनानकदुन्दुभेः ।
उत्कृत्य शिर आदाय खस्थं सौभं समाविशत२७

मायावी शाल्व ने इस प्रकार भगवान् का तिरस्कार करके तलवार लेकर (माया-निर्मित) वसुदेव का सिर उड़ा दिया और उस सिर को लिये हुए आकाश-स्थित सौभ विमानमें जापहुंचा॥

ततो मुहूर्तं प्रकृतावुपप्लुतः स्वबोध आस्ते स्व-
जनानुषङ्गतः । महानुभावस्तदबुध्यदासुरीं मायां
स शाल्वमसृतां मयोदिताम् ॥२८॥

यद्यपि भगवान् स्वयं सिद्ध ज्ञानवान् हैं फिरभी स्वजन-स्नेह के कारण कुछ देर तक मनुष्य-स्वभाव (शोक) में मग्न बने रहे, फिर वे महानुभाव सचेत होकर जान गये कि यह तो मय दैत्य की दी हुई आसुरी माया का शाल्व ने प्रयोग किया है ॥२८॥

न तत्र दूतं न पितुः कलेवरं प्रबुद्ध आजौ
समपश्यदच्युतः । स्वाप्नं यथा चाम्बरचारिणं
रिपुं सौभस्थमालोक्य निहन्तुमुद्यतः ॥२९॥

इस प्रकार सचेत होकर भगवान् ने पिता के शरीर और उस दूत को वहाँ रण-भूमि में न देखा, मानो जागने पर पुरुष को स्वप्नके पदार्थ न दीखते हों,नब वे सौभ विमानमें बैठकर आकाशमें विचरते हुए शत्रु को देखकर उसे मारनेको तैयार हुए॥२९॥

एवं वदन्ति राजर्षे ऋषयः केचनान्विताः ।
यत्स्ववाचो विरुध्येत नूनं तन्न स्मरन्त्युत ॥३०॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजर्षि ! ऋषियोंने जो पहले कहा है, उसमें उनके कथनका उनकेही द्वारा विरोध होता है, उन्होंने उसमें अनुसन्धान का स्मरण नहीं रक्खा (कि पहले तो यह कहदिया कि भगवान् ज्ञानमूर्त्ति हैं और कह दिया कि वे मोहित होगये) ॥३०॥

क्व शोकमोहौ स्नेहो वा भयं वा येऽज्ञसम्भवाः ।
क्व चाखण्डितविज्ञानज्ञानैश्वर्यस्त्वखण्डितः ॥३१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भला अज्ञान से उत्पन्न होने वाले शोक, मोह स्नेह और भय कहाँ, तथा पूर्ण अखंड ज्ञान, विज्ञान एवं ऐश्वर्यवान् श्रीकृष्ण कहाँ ? ॥३१॥

यत्पादसेवोर्जितयाऽऽत्मविद्यया हिन्वन्त्यनाद्यात्मविपर्ययग्रहम् । लभन्त आत्मानमनन्तमैश्वरं कुतो नु मोहः परमस्य सद्गतेः ॥३२॥

जिनके चरण-कमल की सेवा द्वारा पुष्ट हुई आत्मा-विद्यासे साधु पुरुष अनादि कालकी देहात्म बुद्धि (देह को ही आत्मा मानने की भावना) को त्यागकर अनन्त ईश्वरीय पद आत्माको प्राप्त होते हैं, उन सर्वोत्तम शरणागत पालक श्रीकृष्णजी को कदापि मोह हो ही नहीं सकता ॥३२॥

तं शास्त्रपूगैः प्रहरन्तमञ्जसा शाल्वं शरैः शौरिरमोघविक्रमः । विद्ध्वाऽच्छिनद्वर्म धनुः शिरोमणिं सौभं च शत्रोर्गदयारुरोज ह ॥३३॥

इसलिये वास्तविकता यह है कि जो अमोघ पराक्रम शील भगवान् ने अनेक शस्त्रों से प्रहार करते हुए शाल्व को अपनी शक्ति से बाणोंके द्वारा बींधकर उसके कवच, धनुष और मस्तक के मणि काट कर, उस शत्रु के सौभ विमान को भी अपनी गदा से तोड़ डाला ॥३३॥

तत्कृष्णहस्तेरितया विचूर्णितं पपात तोये गदया सहस्रधा । विसृज्य तद्भूतलमास्थितो गदामुद्यम्य शाल्वोऽच्युतमभ्यगाद्द्रुतम् ॥३४॥

श्रीकृष्णचन्द्र के हाथ से चलाई हुई गदा से हज़ारों टुकड़े तथा चूर्णीभूत होकर वह विमान जलमें गिर गया, तब शाल्व विमान को छोड़ कर पृथ्वी पर खड़ा हुआ और गदा उठाकर शीघ्र ही भगवान् के सामने दौड़ा ॥३४॥

आधावतः सगदं तस्य बाहुं भल्लेन छित्त्वाऽथ रथाङ्गमद्भुतम् । वधाय शाल्वस्य लयार्कसन्निभं बिभ्रद्बभौ सार्क इवोदयाचलः ॥३५॥

दौड़ते आते हुए शाल्व का भालेसे गदासहित हाथ काट कर उसके मारने के लिये प्रलय काल के सूर्य की नाईं सुदर्शन चक्र धारण करते हुए भगवान् सूर्यसहित उदयाचलकी भांति शोभा देनेलगे।

जहार तेनैव शिरः सकुण्डलं किरीटयुक्तं पुरुमायिनो हरिः । वज्रेण वृत्रस्य यथा पुरन्दरो बभूव हाहेति वचस्तदा नृणाम् ॥३६॥

भगवान् ने उस अनेक माया करनेवाले शाल्व का किरीट और कुण्डलों सहित सिर चक्रसे उड़ा दिया, जैसे इन्द्र ने वज्र के द्वारा वृत्रासुर का सिर उड़ाया था, उस समय लोगों में बड़ा हाहाकार मय शब्द हुआ ॥३६॥

तस्मिन्निपतिते पापे सौभे च गदया हते । नेदुर्दुन्दुभयो राजन्दिवि देवगणेरिताः । सखीनामपतिं कुर्वन्दन्तवक्त्रो रुषाऽभ्ययात् ॥३७॥

हे राजन् ! उस पापी शाल्वके मरने तथा सौभ विमान के गदा से टूटने पर देवतागण आकाश में दुन्दुभी बजाने लगे, फिर मित्रों का बदला लेने के लिये दन्तवक्र आया ॥३७॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥

अठत्तरवां अध्याय

(दन्तवक्र और विदूरथ-वध)

श्रीशुक उवाच

शिशुपालस्य शाल्वस्य पौण्ड्रकस्यापि दुर्मतिः । परलोकगतानां च कुर्वन् पारोक्ष्यसौहृदम् ॥ १ ॥
एकः पदातिः संक्रुद्धो गदापाणिः प्रकम्पयन् । पद्भ्यां महीं महाराज महासत्त्वो व्यदृश्यत ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजीबोले-हे राजन् ! शिशुपाल, शाल्व और पौंड्रक के मर जाने पर उनके पीठ पीछे स्नेह जतलाता हुआ, अकेला, पैदल; महाबली, हाथ में गदा लिये हुए, पैरों से पृथ्वी को हिलाता हुआ, घोर-घोर से भरा हुआ दुर्बुद्धि दन्तवक्र दिखाई दिया ॥ १ ॥ २ ॥

तं तथाऽऽयान्तमालोक्य गदामादाय सत्वरः । अवप्लुत्य रथात्कृष्णः सिन्धुं वेलेव प्रत्यधात् ॥३॥

इस प्रकार आते हुए दन्तवक्रको देखकर भगवान् ने तुरन्त ही रथ से नीचे उतरकर और गदा लेकर उसे ऐसे रोक दिया जैसे तट समुद्र को रोकता है ॥ ३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गदामुद्यम्य कारूषो मुकुन्दं प्राह दुर्मदः ।
दिष्ट्या दिष्ट्या भवानद्य मम दृष्टिपथं गतः॥ ४॥

मदोन्मत्त दन्तवक्र गदा उठाकर भगवान् से बोला कि तू आज मुझे दिखाई दिया,यह बहुत ही अच्छा हुआ ॥ ४ ॥

त्वं मातुलेयो नः कृष्ण मित्रध्रुङ् मां जिघांससि ।
अतस्त्वां गदया मन्द हनिष्ये वज्रकल्पया ॥ ५ ॥

हे कृष्ण ! तू मेरे मामा का पुत्र (होकर भी) मित्र द्रोही है, (मेरे मित्रों को मारकर अब) मुझे भी मारना चाहता है, इसलिये हे मूर्ख ! वज्र के समान गदा से मैं तुझे मारूंगा ॥५॥

तर्ह्यानृण्यमुपैम्यज्ञ मित्राणां मित्रवत्सलः ।
बन्धुरूपमरिं हत्वा व्याधिं देहचरं यथा ॥ ६ ॥

हे मूर्ख ! जैसे देह में उत्पन्न हुए रोग का नाश किया जाता है वैसे ही मैं मित्रवत्सल तुझ बंधुरूप शत्रुको मारकर अपने मित्रोंसे उऋण होऊंगा ॥६॥

एवं रूक्षैस्तुदन् वाक्यैः कृष्णं तोत्रैरिव द्विपम् ।
गदया ताडयन्मूर्ध्नि सिंहवद्व्यनदच्च सः ॥ ७॥

जैसे अंकुश के द्वारा हाथी पीड़ित कियाजाता है वैसे ही इस प्रकार के कठोर वचनों से श्रीकृष्ण जी को पीड़ित करते हुए दन्तवक्रने उनके मस्तक पर गदा का प्रहार किया और सिंह की भांति गर्जना की ॥७॥

गदयाऽभिहतोऽप्याजौ न चचाल यदूद्वहः ।
कृष्णोऽपि तमहन्गुर्व्या कौमोदक्या स्तनान्तरे॥८॥

परन्तु उसके आघात से भगवान् रणमें विचलित न हुए और उन्होंने अपनी 'कामोद' नाम की गदा उसकी छाती में मारी ॥८॥

गदानिर्भिन्नहृदय उद्वमन्रुधिरं मुखात् ।
प्रसार्य केशबाहङ्घ्रीन्धरण्यां न्यपतद्व्यसुः ॥ ९ ॥

गदा प्रहार से उसका हृदय फटगया और वह दैत्य मुंहसे लोहू डालताहुआ पृथ्वी पर बाल और हाथ-पाँव फैलाकर प्राण-रहित होकर गिरपड़ा ।९।

ततः सूक्ष्मतरं ज्योतिः कृष्णमाविशदद्भुतम् ।
पश्यतां सर्वभूतानां यथा चैद्यवधे नृप ॥१०॥

हे राजन् ! शिशुपाल के मरने पर जैसे उसका तेज भगवान् में समा गया था त्योंही दन्तवक्रका अत्यन्त सूक्ष्म तेजभी सब लोगों के देखते हुए ही भगवान् में समा गया ॥१०॥

विदूरथस्तु तद्भ्राता भ्रातृशोकपरिप्लुतः ।
आगच्छदसिचर्मभ्यामुच्छ्वसंस्तज्जिघांसया ॥११॥

अपने भाई दन्तवक्रके शोक से व्याकुल होता हुआ विदूरथ भगवान् को मारने का विचार करके हाँपता हुआ ढाल-तलवार लिये हुए आ पहुंचा ११॥

तस्य चापततः कृष्णश्चक्रेण क्षुरनेमिना ।
शिरो जहार राजेन्द्र सकिरीटं सकुण्डलम् ॥१२॥

हे राजन् ! वह आही रहा था कि भगवान् ने छुरे के समान धार वाले चक्रसे उसके किरीट-कुण्डल सहित सिर को काट डाला ॥१२॥

एवं सौभं च शाल्वं च दन्तवक्त्रं सहानुजम् ।
हत्वा दुर्विषहानन्यैरीडितः सुरमानवैः ॥१३॥

इस प्रकार किसी दूसरे से विजय न होसकने योग्य सौभ विमान, शाल्व, दन्तवक्र और उसका छोटा भाई विदूरथ-इन सबके मारने से देवता और मनुष्य भगवान् की स्तुति करने लगे ॥१३॥

मुनिभिः सिद्धगन्धर्वैर्विद्याधरमहोरगैः ।
अप्सरोभिः पितृगणैर्यक्षैः किन्नरचारणैः ॥१४॥
उपगीयमानविजयः कुसुमैरभिवर्षितः ।
वृतश्च वृष्णिप्रवरैर्विवेशालंकृतां पुरीम् ॥१५॥

मुनि, सिद्ध, गन्धर्व विद्याधर, बड़े-बड़े नाग अप्सरा, पितृगण, यक्ष, किन्नर और चारण प्रभुके विजय का चरित्र गा-गाकर फूल बरसा रहे थे तब भगवान् ने यादवों के साथ सुसज्जित पुरी में प्रवेश किया ॥१४॥॥१५॥

एवं योगेश्वरः कृष्णो भगवाञ्जगदीश्वरः ।
ईयते पशुदृष्टीनां निर्जितो जयतीति सः ॥१६॥

इस प्रकार योगेश्वर और जगन्नाथ श्रीकृष्ण सदैव जय ही पाते रहेहैं, परन्तु पशु-दृष्टि वालोंको किसी समय जरासंध आदिसे हारे हुएभी समझ में आते हैं ॥१६॥

श्रुत्वा युद्धोद्यमं रामः कुरूणां सह पाण्डवैः ।
तीर्थाभिषेकव्याजेन मध्यस्थः प्रययौ किल॥१७॥

कौरव और पांडवों के युद्धकी तैयारी सुनकर दोनों को समान मानने वाले बलरामजी तीर्थयात्रा का बहाना करके द्वारका से चले गये ॥१७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्नात्वा प्रभासे संतर्प्य देवर्षिपितृमानवान् ।
सरस्वतीं प्रतिस्रोतं ययौ ब्राह्मणसंवृतः ॥१८॥

वे ब्राह्मणोंको साथ लेकर प्रभास क्षेत्र में स्नान करके देव, ऋषि, पितर और मनुष्योंको तृप्त करके सरस्वती नदी के सामने चले ॥१८॥

पृथूदकं बिन्दुसरस्त्रितकूपं सुदर्शनम् ।
विशालं ब्रह्मतीर्थं च चक्रं प्राचीं सरस्वतीम्॥१९॥
यमुनामनु यान्येव गङ्गामनु च भारत ।
जगाम नैमिषं यत्र ऋषयः सत्रमासते ॥२०॥

हे राजन् ! पृथुदक, बिन्दुसर, त्रितकूप, सुदर्शन विशाल, ब्रह्मतीर्थ, चक्रतीर्थ, प्राची, सरस्वती, गङ्गा और यमुना के तीर्थों में होते हुए नैमिषारण्य बनमें पहुंचे, जहाँ मुनिलोग यज्ञ कररहे थे।१९॥२०।

तमागतमभिप्रेत्य मुनयो दीर्घसत्रिणः ।
अभिवन्द्य यथान्यायं प्रणम्योत्थाय चाऽऽर्चयन् २१

दीर्घ यज्ञवाले उन मुनियों ने बलरामजी को आया हुआ देखकर प्रशंसा करते हुए उठकर और प्रणाम करके उनका यथा योग्य पूजन किया ॥२१॥

सोऽर्चितः सपरीवारः कृतासनपरिग्रहः ।
रोमहर्षणमासीनं महर्षेः शिष्यमैक्षत ॥२२॥

श्रीबलरामजी परिवार सहित सत्कार पाकर आसन को स्वीकार कर विराजमान् हुए, वहाँ उन को वेदव्यासजी का शिष्य रोमहर्षण दिखाईदिया।

अप्रत्युत्थायिनं सूतमकृतप्रह्वणाञ्जलिम् ।
अध्यासीनं च तान्विप्रांश्चुकोपोद्वीक्ष्य माधवः॥२३

वह सूत जाति होकर भी उन सब ब्राह्मणों से ऊंचा बैठा हुआ था, उसने बलरामजी को देखकर न उठकर प्रणामकिया और न हाथ जोड़कर प्रार्थना की, तब उसे देखकर उन्हें क्रोध आगया ॥२३॥

कस्मादसाविमान्विप्रानध्यास्ते प्रतिलोमजः ।
धर्मपालांस्तथैवास्मान्वधमर्हति दुर्मतिः ॥२४॥

यह (क्षत्रिय पिता तथा ब्राह्मणी मातासे उत्पन्न होने के कारण) सूत जाति का होने पर भी इन ब्राह्मणों तथा मुझ धर्म-पालक से भी उच्चासन पर क्यों बैठा है ? इस अपराध के कारण यह दुर्बुद्धि मारने के योग्य है ॥ २४ ॥

ऋषेर्भगवतो भूत्वा शिष्योऽधीत्य बहूनि च ।
सेतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः ॥२५॥

भगवान् वेद व्यासजी का शिष्य होकर और इतिहास तथा सम्पूर्ण धर्म-शास्त्र पढ़कर भी यह सूत ऐसा व्यवहार करता है ॥२५॥

अदान्तस्याविनीतस्य वृथा पण्डितमानिनः ।
न गुणाय भवन्ति स्म नटस्येवाऽजितात्मनः॥२६॥

सत्य है-जो नट की भांति (कपट) वेष धरने वाले, अजितेन्द्रिय, अजित चित्त, अविनीत और पाण्डित्य का व्यर्थ ही अभिमान करने वाला पुरुष है, उसे शास्त्रका अभ्यासभी गुणकारक नहींहोता।

एतदर्थं हि लोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृतः ।
वध्या मे धर्मध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिकाः२७॥

इस लोक में मैंने इसी लिये अवतार धारण किया है कि धर्मध्वज पुरुषों का संहार हो, क्योंकि वही सबसे बड़े पापी होते हैं ॥२७॥

एतावदुक्त्वा भगवान् निवृत्तोऽसद्वधादपि ।
भावित्वात्तं कुशाग्रेण करस्थेनाहनत्प्रभुः ॥२८॥

यद्यपि बलरामजीने दुष्टोंका मारना छोड़ दिया था, फिर भी भवितव्य ऐसीही थी, इसलिये उन्हों ने ऐसा कहकर अपने हाथमें लिये हुए कुश की नोक से उसे मार डाला ॥२८॥

हाहेति वादिनः सर्वे मुनयः खिन्नमानसाः ।
ऊचुः संकर्षणं देवमधर्मस्ते कृतः प्रभो ॥२९॥

तब सब मुनिजन हाहाकार करने लगे और दुखित होकर बोले कि हे प्रभु ! आपने यह अधर्म किया है ॥२९॥

अस्य ब्रह्मासनं दत्तमस्माभिर्यदुनन्दन ।
आयुश्चात्माऽक्लमं तावद्यावत्सत्रं समाप्यते ।
अजानतैवाचरितस्त्वया ब्रह्मवधो यथा ॥३०॥

हे यदुनन्दन ! हमने यज्ञ समाप्ति तक के लिये इस सूत को पुराणों की कथा कहनेके लिये ब्रह्मासन दिया था और इसे ऐसी भी आयुष दी थी कि जिससे उसका शरीर खेदित न हो. आपने अनजाने यह ब्रह्म-हत्या कैसा काम कर डाला है ॥

योगेश्वरस्य भवतो नाम्ना योऽपि नियामकः ।
यद्येतद्ब्रह्महत्यायाः पावनं लोकपावनः ।
चरिष्यति भवाँल्लोकसङ्ग्रहोऽनन्यचोदितः ॥३१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे योगेश्वर ! हे लोकपावन ! आपको वेद में कहा हुआ ब्रह्म-हत्या का निषेध नहीं लग सकता, फिर भी आप स्वयं ही इस ब्रह्म-हत्या के समान पापका प्रायश्चित् करोगे तभी जगत्की मर्यादारहेगी।

श्रीभगवानुवाच

करिष्ये वधनिर्वेशं लोकानुग्रहकाम्यया ।
नियमः प्रथमे कल्पे यावान्स तु विधीयताम्॥३२॥

बलरामजी बोले–जगत् की मर्यादा रखने के लिये मैं प्रायश्चित् करूंगा, इसलिये प्रायश्चित् की प्रधान विधि मुझे बतलाओ ॥३२॥

दीर्घमायुर्बलैतस्य सत्त्वमिन्द्रियमेव च ।
आशासितं यत्तद्ब्रूत साधये योगमायया ॥३३॥

इस रोमहर्षण की दीर्घ आयु, बल, इन्द्रिय सामर्थ्य होने के लिये जो तुम्हारी इच्छा हो सो मुझसे कहो, मैं अपनी योगमाया के बलसे वैसा ही कर दूँगा ॥३३॥

ऋषय ऊचुः

अस्त्रस्य तव वीर्यस्य मृत्योरस्माकमेव च ।
यथा भवेद्वचः सत्यं तथा राम विधीयताम्॥३४॥

मुनि बोले–हे बलरामजी ! जिस तरह आपके अस्त्र, पराक्रम, मृत्यु और वचनों की सत्यता का निर्वाह होसके वैसा कीजिये ॥ ३४ ॥

श्रीभगवानुवाच

आत्मा वै पुत्र उत्पन्न इति वेदानुशासनम् ।
तस्मादस्य भवेद्वक्ता आयुरिन्द्रियसत्त्ववान्॥३५॥

बलदेवजी बोले–पिता ही पुत्र रूप होता है- ऐसी वेद की आज्ञा है, इसलिये इसका पुत्र उग्रश्रवा तुम्हें पुराण सुनायगा और आयु, इन्द्रिय-बल तथा शरीरकी शक्तिसे सम्पन्न होगा ॥३५॥

किं वः कामो मुनिश्रेष्ठा ब्रूताहं करवाण्यथ ।
अजानतस्त्वपचितिं यथा मे चिन्त्यतां बुधाः॥३६॥

हे मुनि श्रेष्ठो ! आपको दूसरी क्या इच्छा है सो मुझसे कहो, जो आप लोग कहेंगे मैं वही करूँगा, हे ज्ञानियो ! मैं प्रायश्चित् नहीं जानता, इसलिये उसका भी विचार करो ॥३६॥

ऋषय ऊचुः

इल्वलस्य सुतो घोरो बल्वलो नाम दानवः ।
स दूषयति नः सत्रमेत्य पर्वणि पर्वणि ॥३७॥

ऋषि बोले–इल्वल का पुत्र बल्वल नामक घोर दैत्य प्रत्येक पर्व में आकर हमारे यज्ञ को दूषित कर देता है ॥३७॥

तं पापं जहि दाशार्ह तन्नः शुश्रूषणं परम् ।
पूयशोणितविण्मूत्रसुरामांसाभिवर्षिणम् ॥३८॥

वह पीव, रुधिर, मल-मूत्र, मदिरा और माँस बरसाकर हमारे यज्ञ को भ्रष्ट करता है, इसलिये उसे मार डालिये, ये हमारी बड़ी सेवा होगी॥३८॥

ततश्च भारतं वर्षं परीत्य सुसमाहितः ।
चरित्वा द्वादशान्मासांस्तीर्थस्नायी विशुध्यसे३९॥

फिर भली भांति सावधान होकर एक वर्ष तक भारतवर्ष की प्रदक्षिणा करके तीर्थ-स्नान करो जिससे आप पवित्र हो जाओगे ॥३९॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

उन्नासीवां अध्याय

(बलदेवजी द्वारा बल्वल-वध तथा तीर्थ-यात्रा)

श्रीशुक उवाच

ततः पर्वण्युपावृत्ते प्रचण्डः पांसुवर्षणः ।
भीमो वायुरभूद्राजन्पूयगन्धस्तु सर्वशः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! फिर पर्व आया तो उस दिन भयंकर और प्रचंड वायु चलनेलगी, धूल बरसने लगी और चारों ओर पीव की दुर्गंध फैल गई ॥ १ ॥

ततोऽमेध्यमयं वर्षं बल्वलेन विनिर्मितम् ।
अभवद्यज्ञशालायां सोऽन्वदृश्यत शूलधृत् ॥ २ ॥

फिर यज्ञशाला में बल्वलके बरसाये हुए अपवित्र पदार्थ बरसने लगे और वह दैत्य भी त्रिशूल लिये हुए दीख पड़ा ॥२॥

तं विलोक्य बृहत्कायं भिन्नाञ्जनचयोपमम् ।
तप्ताम्रशिखाश्मश्रुं दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीमुखम् ॥ ३ ॥
सस्मार मुसलं रामः परसैन्यविदारणम् ।
हलं च दैत्यदमनं ते तूर्णमुपतस्थतुः ॥ ४ ॥

टूटे हुए अंजन के ढेरकी नाईं बृहत्काय, तपे हुए तांबे के समान लाल शिखा और दाढ़ी-मूंछ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाले, दाढ़ों और भृकुटिसे भयानक मुखवाले उस दैत्यको देखकर बलदेवजीने शत्रुदल-नाशक मूसल और दैत्यों को दमन करने वाले हल का स्मरण किया, वे दोनों हल और मूसल तुरन्त आकर उपस्थित होगये ॥३॥४॥

तमाकृष्य हलाग्रेण बल्वलं गगनेचरम् ।
मुसलेनाहनत्क्रुद्धो मूर्ध्नि ब्रह्मद्रुहं बलः ॥ ५ ॥

बलदेवजीने क्रोधित होकर आकाशमें विचरते हुए उस ब्रह्म-द्रोही बल्वल दैत्य को हल के अग्र भाग से खींचकर उसके सिरमें मूसल मारा ॥५॥

सोऽपतद्भुवि निर्भिन्ननललाटोऽसृक्समुत्सृजन् ।
मुञ्चन्नार्तस्वरं शैलो यथा वज्रहतोऽरुणः ॥ ६ ॥

जिससे उसका ललाट फूट गया और लोहू की धारा बहने लगी और वह रुधिर उगलताहुआ तथा वज्र-प्रहार से टूटे हुए गेरू पर्वत की भांति आर्त स्वर करता हुआ भूमिपर गिर पड़ा ॥६॥

संस्तुत्य मुनयो रामं प्रयुज्यावितथाशिषः ।
अभ्यषिञ्चन्महाभागा वृत्रघ्नं विबुधा यथा ॥ ७ ॥

महाभाग मुनिजनों ने बलदेवजी की स्तुति कर और सत्य आशीर्वाद देकर उनका ऐसा अभिषेक किया जैसा देवता इन्द्र का करते हैं ॥७॥

वैजयन्तीं ददुर्मालां श्रीधामा म्लानपङ्कजाम् ।
रामाय वाससी दिव्ये दिव्यान्याभरणानि च ॥८॥

जिनमें लक्ष्मी का वास है तथा जो कभी कुम्हलाते नहीं, ऐसे कमलों की वैजयन्ती माला, दिव्य वस्त्र और आभूषण दिये ॥८॥

अथ तैरभ्यनुज्ञातः कौशिकीमेत्य ब्राह्मणैः ।
स्नात्वा सरोवरमगाद्यतः सरयुरास्रवत् ॥ ९ ॥

फिर बलरामजी मुनिजनों से आज्ञा लेकर, ब्राह्मणों के साथ कौशिकी नदीपर आये और उस में स्नान करके उस सरोवर पर पहुँचे कि जिस से सरयू निकली है ॥९॥

अनुस्रोतेन सरयूं प्रयागमुपगम्य सः ।
स्नात्वा संतर्प्य देवादीञ्जगाम पुलहाश्रमम् ॥१०॥

फिर सरयू के किनारे-किनारे चलकर प्रयाग आये और वहाँ स्नान तथा देवादिकों का तर्पण करके हरिद्वार आये ॥१०॥

गोमतीं गण्डकीं स्नात्वा विपाशां शोण आप्लुतः ।
गयां गत्वा पितॄनिष्ट्वा गङ्गासागरसंगमे ॥११॥

गोमती, गंडकी और विपाशा में स्नान करके शोणनद में स्नान किया, फिर गयामें जाकर पितृ-तर्पण करके गङ्गा सागर में स्नान किया ॥११॥

उपस्पृश्य महेन्द्राद्रौ रामं दृष्ट्वाऽभिवाद्य च ।
सप्तगोदावरीं वेणां पम्पां भीमरथीं गतः ॥१२॥
स्कन्दं दृष्ट्वा ययौ रामः श्रीशैलं गिरिशालयम् ।
द्रविडेषु महापुण्यं दृष्ट्वाद्रिं वेङ्कटं प्रभुः ॥१३॥

महेन्द्र पर्वत पर परशुरामजी के दर्शन किये और उन्हें प्रणाम करके सप्त गोदावरी, वेणा, पंपा और भीमरथी में नहाकर, स्वामि कार्त्तिक के दर्शन करके और महादेवजी के निवास-स्थान श्रीशैलपर जाकर फिर द्रविड़ देशमें परम पवित्र वेंकटाचल का दर्शन किया ॥१२।१३॥

कामकोष्णीं पुरीं काञ्चीं कावेरीं च सरिद्वराम् ।
श्रीरङ्गाख्यं महापुण्यं यत्र सन्निहितो हरिः ॥१४॥

फिर कामकोष्णी, काञ्चीपुरी, श्रेष्ठनदी कावेरी पर जाकर अत्यन्त पवित्र श्रीरङ्ग क्षेत्रपर पहुँचे कि जहाँ भगवान् हरि नित्य विराजमान् रहते हैं ॥१४॥

ऋषभाद्रिं हरेः क्षेत्रं दक्षिणां मथुरां तथा ।
सामुद्रं सेतुमगमन्महापातकनाशनम् ॥१५॥

वहाँ से ऋषभाद्रि पर्वत हरि क्षेत्र में जाकर दक्षिणी मथुरा में जाकर महा पाप-नाशक सेतुबंध पर पहुंचे ॥ १५ ॥

तत्रायुतमदाद्धेनूर्ब्राह्मणेभ्यो हलायुधः ।
कृतमालां ताम्रपर्णीं मलयं कुलाचलम् ॥१६॥
तत्रागस्त्यं समासीनं नमस्कृत्याभिवाद्य च ।
योजितस्तेन चाशीर्भिरनुज्ञातो गतोर्णवम् ।
दक्षिणं तत्र कन्याख्यां दुर्गां देवीं ददर्श सः॥१७॥

बलदेवजीने वहाँ जाकर दस हज़ार गौएँ दान कीं, फिर कृतमाला, ताम्रपर्णी, कुलाचल और मलयाचलपर गये वहाँ श्रीअगस्त्यजी विराजमान् थे, उन्हें नमस्कार तथा अभिवंदन करके और उन से आशीर्वाद पाकर आज्ञा लेकर दक्षिणी समुद्र पर पहुँचे ॥१६॥१७॥

ततः फाल्गुनमासाद्य पञ्चाप्सरसमुत्तमम् ।
विष्णुः सन्निहितो यत्र स्नात्वाऽस्पर्शद्गवायुतम् १८

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वहाँ कन्या नामक गढ़ को देखकर, फाल्गुन तीर्थ पर आकर फिर उत्तम पंचाप्सर नामक तीर्थ पर पहुँचे, जहाँ भगवान् विष्णु सदैव विराजमान् रहते हैं, उसमें स्नान करके उन्होंने दस हज़ार गौऐं दान कीं ॥१८॥

ततोऽभिव्रज्य भगवान्केरलांस्तु त्रिगर्तकान् ।
गोकर्णाख्यं शिवक्षेत्रं सान्निध्यं यत्र धूर्जटेः ॥१९॥

फिर केरल और त्रिगर्त देशमें गोकर्ण नामक तीर्थ पर पधारे, उस अपने क्षेत्र में महादेवजी सदैव विराजते हैं ॥१९॥

आर्यां द्वैपायनीं दृष्ट्वा शूर्पारकमगाद्बलः ।
तापीं पयोष्णीं निर्विन्ध्यामुपस्पृश्याथ दण्डकम् २०
प्रविश्य रेवामगमद्यत्र माहिष्मती पुरी ।
मनुतीर्थमुपस्पृश्य प्रभासं पुनरागमत् ॥२१॥

फिर आर्या द्वैपायनी का दर्शन करके शूर्पारक तीर्थ पर पहुँचे, इसके पीछे श्रीबलरामजी तापी पयोष्णी और निर्विन्ध्या नदी में स्नान करके दंडकारण्य वनमें होते हुए नर्मदा पर पहुंचे, जहाँ माहिष्मती नाम की पुरी है वहाँ मनु-तीर्थ में स्नान करके फिर प्रभास क्षेत्र में पधारे ॥२०॥२१॥

श्रुत्वा द्विजैः कथ्यमानं कुरुपाण्डवसंयुगे ।
सर्वराजन्यनिधनं भारं मेने हृतं भुवः ॥२२॥

वहाँ ब्राह्मणों के कहने से जब यह सुना कि कौरव-पांडव युद्ध में सब राजाओंका नाश होगया है, तब उन्हों ने विचार किया कि ठीक हुआ, जो पृथ्वी का भार उतर गया ॥२२॥

स भीमदुर्योधनयोर्गदाभ्यां युध्यतोर्मृधे ।
वारयिष्यन्विनशनं जगाम यदुनन्दनः ॥२३॥

फिर बलरामजी यह सुनकर कि भीम और दुर्योधन गदा-युद्ध कररहे हैं, उन्हें रोकने के लिये कुरुक्षेत्र पर पधारे ॥२३॥

युधिष्ठिरस्तु तं दृष्ट्वा यमौ कृष्णार्जुनावपि ।
अभिवाद्याभवंस्तूष्णीं किं विवक्षुरिहागतः ॥२४॥

नकुल, सहदेव, श्रीकृष्ण, अर्जुन और युधिष्ठिर यह सब उनको प्रणाम करके, यह सोच कर कि बलरामजी यहाँ क्यों आये और क्या कहेंगे ? डरते हुए चुपके रहगये ॥२४॥

गदापाणी उभौ दृष्ट्वा संरब्धौ विजयैषिणौ ।
मण्डलानि विचित्राणि चरन्ताविदमब्रवीत् ॥२५॥

हाथोंमें गदा लिये हुए क्रोधसे भरे हुए और विचित्र दाँव-पेंच लगातेहुए जयके अभिलाषी भीम तथा दुर्योधन को देखकर बल्देवजी बोले कि ॥२५॥

युवां तुल्यबलौ वीरौ हे राजन्हे वृकोदर ।
एकं प्राणाधिकं मन्ये उतैकं शिक्षयाधिकम् ॥२६॥

हे राजा दुर्योधन ! हे भीम ! तुम दोनों समान योधाहो, मुझे यह ज्ञातहै कि तुममें से एकतो बल में अधिक है और दूसरा विद्यामें ॥२६॥

तस्मादेकतरस्येह युवयोः समवीर्ययोः ।
न लक्ष्यते जयोऽन्यो वा विरमत्वफलो रणः॥२७॥

इसलिये तुम दोनों समान बलधारियोंमें किसी एककी जय या पराजय होनेकी आशा नहीं दीखती ऐसी दशा में यह व्यर्थ का युद्ध बन्द ही कर देना चाहिये ॥ २७ ॥

न तद्बाध्यं जगृहतुर्बद्धवैरौ नृपार्थवत् ।
अनुस्मरन्तावन्योन्यं दुरुक्तं दुष्कृतानि च ॥२८॥

हे राजन् ! (परन्तु) एक दूसरेके दुर्वचन और अप-व्यवहारों को स्मरण करते हुए बैरमें बंधे हुए उन दोनों ने बलदेवजी के भाव मय वचनों पर ध्यान न दिया ॥२८॥

दिष्टं तदनुमन्वानो रामो द्वारवतीं ययौ ।
उग्रसेनादिभिः प्रीतैर्ज्ञातिभिः समुपागतः ॥२९॥

तब बलरामजी ऐसा विचार कर कि दैवेच्छा ऐसी ही है, द्वारका पधारे, उनको देखकर उग्रसेन आदि प्रसन्न हुए और उनसे मिले ॥२९॥

तं पुनर्नैमिषं प्राप्तमृषयोऽयाजयन्मुदा ।
क्रत्वङ्गं ऋतुभिः सर्वैर्निवृत्ताखिलविग्रहम् ॥३०॥

सर्व क्लेशरहित और यज्ञमूर्त्ति बलदेवजी फिर नैमिषारण्य वनमें पधारे, वहाँ ब्राह्मणों ने स्नेह के साथ सब यज्ञों के द्वारा पूजन करवाया ॥३०॥

तेभ्यो विशुद्धविज्ञानं भगवान्व्यतरद्विभुः ।
येनैवात्मन्यदो विश्वमात्मानं विश्वगं विदुः ॥३१॥

फिर भगवान् बलदेवजी ने उन ब्राह्मणों को विशुद्ध ज्ञान दिया, जिसके द्वारा आत्मा में जगत् तथा जगत्में आत्मा का बोध होजाता है ॥ ३१ ॥

स्वपत्न्यावभृथस्नातो ज्ञातिबन्धुसुहृद्वृतः ।
रेजे स्वज्योत्स्नयेवेन्दुः सुवासाः सुष्ठ्वलंकृतः॥३२

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवभृथ स्नान करके जाति, बन्धु और मित्रों के साथ सुन्दर वस्त्र, आभूषण धारण किये हुए अपनी पत्नी सहित ऐसे शोभा पातेथे जैसे चंद्रमा चाँदनी के साथ शोभा पाता है ॥३२॥

ईदृग्विधान्यसंख्यानि बलस्य बलशालिनः ।
अनन्तस्याप्रमेयस्य मायामर्त्यस्य सन्ति ह ॥३३॥

महाबल, अनन्त, अप्रमेय और माया से नर-तनधारी श्रीबलरामजीके ऐसे २ अगणित चरित्रहैं।

योऽनुस्मरेत रामस्य कर्माण्यद्भुतकर्मणः ।
सायंप्रातरनन्तस्य विष्णोः स दयितो भवेत् ॥३४॥

जो पुरुष अद्भुत चरित्र वाले बलदेवजी की लीलाओंको सन्ध्या तथा प्रातःकाल स्मरण करेगा वह भगवान् का प्यारा होजायगा ॥३४॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे एकोनाशीतितमोऽध्यायः॥७९॥

अस्सीवां अध्याय

(श्रीसुदामा चरित)

राजोवाच

भगवन्यानि चान्यानि मुकुन्दस्य महात्मनः ।
वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य श्रोतुमिच्छामहे प्रभो ॥ १ ॥

परीक्षित बोले–हे भगवन् ! हे प्रभु ! मैं अनंत पराक्रम और महानुभाव भगवान् के और भी चरित्र सुनना चाहता हूँ ॥१॥

को नु श्रुत्वा सकृद्ब्रह्मन्नुत्तमश्लोकसत्कथाः ।
विरमेत विशेषज्ञो विषण्णः काममार्गणैः ॥ २ ॥

हे ब्रह्मन् ! कामदेवके बाणोंसे खेद पाया हुआ ऐसा कौनसा सार-ग्राही पुरुष होगा जो आपके चरित्रों से विराम पायेगा ॥२॥

सा वाग्यया तस्य गुणान्गृणीते करौ च तत्कर्मकरौ मनश्च । स्मरेद्वसन्तं स्थिरजङ्गमेषु शृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः ॥ ३ ॥

वाणी वही सफल है जो भगवान्के गुण गाये, हाथ वही सफल हैं जो भगवान् की सेवा करें,मन वही सफल है जो स्थावर-जङ्गम में व्याप्त भगवान् का स्मरण करे, कान वही सफलहैं जो पवित्र कथा सुनें ॥ ३ ॥

शिरस्तु तस्योभयलिङ्गमानमेत्तदेव यत्पश्यति तद्धि चक्षुः । अङ्गानि विष्णोरथ तज्जनानां पादोदकं यानि भजन्ति नित्यम् ॥ ४ ॥

सिर वही सफल है जो चराचर मूर्त्ति भगवान् को प्रणाम करे, नेत्र वही सफल हैं जो प्रभु के दर्शन करें, अङ्ग वही सफलहैं जो भगवान् और उनके भक्तों का चरणोदक सेवन करें ॥४॥

सूत उवाच

विष्णुरातेन संपृष्टो भगवान्बादरायणिः ।
वासुदेवे भगवति निमग्नहृदयोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥

सूतजी बोले–इस प्रकार जब परीक्षित ने प्रश्न किया, तब भगवान् के ध्यान में मग्न होकर श्री शुकदेवजी ने कहा ॥ ५ ॥

श्रीशुक उवाच

कृष्णस्यासीत्सखा कश्चिद्ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः ।
विरक्त इन्द्रियार्थेषु प्रशान्तात्मा जितेन्द्रियः॥ ६ ॥
यदृच्छयोपपन्नेन वर्तमानो गृहाश्रमी ।
तस्य भार्या कुचैलस्य क्षुत्क्षामा च तथाविधा॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–श्रीकृष्णका मित्र कोई एक ब्राह्मण था, जो परम ब्रह्मवेत्ता, इन्द्रिय-विषय से विरक्त, शान्त-चित्त; इन्द्रियजित और गृहस्थाश्रम में रहता हुआ भी दैवेच्छासे प्राप्त पदार्थसे अपना जीवन-निर्वाह करता था, उस चिथड़े पहनने वाले ब्राह्मण के स्त्री भी उसी तरह भूख के मारे दुबली थी ॥ ६ ॥ ७ ॥

पतिव्रता पतिं प्राह म्लायता वदनेन सा ।
दरिद्रा सीदमाना सा वेपमानाभिगम्य च ॥ ८ ॥

वह पतिव्रता, दरिद्रणी और सीदायमान् स्त्री कुम्हलाये हुए मुख से काँपती हुई पति के पास आकर कहने लगी कि ॥ ८ ॥

ननु ब्रह्मन्भगवतः सखा साक्षाच्छ्रियः पतिः ।
ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च भगवान्सात्वतर्षभः ॥ ९ ॥
तमुपेहि महाभाग साधूनां च परायणम् ।
दास्यति द्रविणं भूरि सीदते ते कुटुम्बिने ॥१०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे ब्रह्मन् ! साक्षात् लक्ष्मी-नाथ, ब्राह्मणोंकेभक्त शरणागत-वत्सल, यदुश्रेष्ठ भगवान् आपके मित्रहैं, इसलिये हे महाभाग ! उन सज्जनों के शरण-दाता श्रीकृष्ण के पास जाइये, मैं समझती हूँ कि आप दुःखित कुटुम्बी को देखकर वे प्रभु बहुत सा धन देंगे* ॥९॥१०॥

आस्तेऽधुना द्वारवत्यां भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः ।
स्मरतः पादकमलमात्मानमपि यच्छति ॥११॥

अभी वे भोज, वृष्णि और अंधक गोत्र वालों के पति भगवान् द्वारका में विराजमानहैं, इसलिये उनके आदर करने से दूसरे यादव भी (देखादेखी) आपको धन देंगे, यह कदापि संकोच न करो कि भगवान् आपको धन न देंगे, क्योंकि जो उनके चरणारविंद का स्मरण करता है, उसे वे अपना स्वरूप तक दे देते हैं ॥११॥

किं स्वर्थकामान्भजते नात्यभीष्टाञ्जगद्गुरुः ।
स एवं भार्यया विप्रो बहुशः प्रार्थितो मृदु ॥१२॥
अयं हि परमो लाभ उत्तमश्लोकदर्शनम् ।
इति संचिन्त्य मनसा गमनाय मतिं दधे ।
अप्यस्त्युपायनं किंचिद्गृहे कल्याणि दीयताम्१३

अभी वे जगद्गुरु स्वयं ऐसे विषयों और अर्थ का सेवन कर रहे हैं, जो उन्हें अधिक इष्ट नहीं है तब वह आपको भी देंगे, इस प्रकार स्त्री ने कई बार मधुर वाणी से विनयकी, तब सुदामा ब्राह्मण ने भी यह सोचकर कि चलो, उन श्रेष्ठ यश वाले श्रीकृष्ण भगवान् के दर्शन होना ही बड़ा लाभ है, द्वारका जानेकी इच्छा की और कहा कि हे मङ्गल रूपिणी ! यदि घरमें कुछ भी भेंट के योग्य हो, तो दे ॥१२॥१३॥

याचित्वा चतुरो मुष्टीन्विप्रान्पृथुकतण्डुलान् ।
चैलखण्डेन तान्बद्ध्वा भर्त्रे प्रादादुपायनम्॥१४॥

सुदामा की स्त्री ने किसी पड़ौसी ब्राह्मण के घर से चार मुट्ठी चावल माँगकर, एक चिथड़े में बाँधकर, श्रीकृष्णजी की भेंट के लिये सुदामा को दिये ॥१४॥

स तानादाय विप्राग्र्यः प्रययौ द्वारकां किल ।
कृष्णसंदर्शनं मह्यं कथं स्यादिति चिन्तयन्॥१५॥

'वे द्विजोत्तम सुदामाजी चावलों को लेकर, ये विचार करते हुए कि श्रीकृष्णजी का दर्शन कैसे होगा ? द्वारकापुरी में पहुँचे ॥१५॥

त्रीणि गुल्मान्यतीयाय तिस्रः कक्षाश्च स द्विजः ।
विप्रोऽभ्यन्धकवृष्णीनां गृहेष्वच्युतधर्मिणाम्॥१६॥
गृहं द्व्यष्टसहस्राणां महिषीणां हरेर्द्विजः ।
विवेशैकतमं श्रीमद्ब्रह्मानन्दं गतो यथा ॥१७॥

धर्मवान् और अगम्य अंधक तथा वृष्णियों के घरों में होते हुए तीन चौकी तथा तीन ड्योढ़ियाँ लाँघकर वे ब्राह्मण सोलह हज़ार स्त्रियों के महलों में से एक स्त्री के सुन्दर महल में प्रविष्ट हुए, उस समय उन्हें ब्रह्मानन्द प्राप्तिके समान अनुभवहुआ॥

तं विलोक्याच्युतो दूरात्प्रियापर्यङ्कमास्थितः ।
सहसोत्थाय चाभ्येत्य दोर्भ्यां पर्यग्रहीन्मुदा॥१८॥

अपनी प्रियतमा के पलंग पर विराजमान् भगवान् उनको दूर से आता हुआ देखकर पलंग से उठकर तुरन्त ही सामने आये और प्रेम पूर्वक भुजायें पसार कर उनसे मिले ॥१८॥

सख्युः प्रियस्य विप्रर्षेरङ्गसङ्गातिनिर्वृतः ।
प्रीतो व्यमुञ्चदब्बिन्दून्नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः ॥१९॥

अपने प्यारे सखा ब्राह्मण के अङ्ग-स्पर्शसे आनन्दित कमल नयन भगवान् के नेत्रों में से प्रेम के कारण आँसुओं के बिन्दु गिरने लगे ॥१९॥

अथोपविश्य पर्यङ्के स्वयं सख्युः समर्हणम् ।
उपहृत्यावनिज्यास्य पादौ पादावनेजनीः ॥२०॥
अग्रहीच्छिरसा राजन्भगवांल्लोकपावनः ।
व्यलिम्पद्दिव्यगन्धेन चन्दनागुरुकुंकुमैः ॥२१॥
धूपैः सुरभिभिर्मित्रं प्रदीपावलिभिर्मुदा ।
अर्चित्वाऽऽवेद्य ताम्बूलं गां च स्वागतमब्रवीत्२२॥

फिर भगवान् ने उन प्रिय मित्र को पलंग पर बिठलाकर उनके पूजन के लिये सब सामग्री अपने ही हाथों से लाकर उनके चरण पखारे और स्वयं

*-लोचन कमल दुख मोचन तिलक भाल, मनिमय कुण्डल मुकुट बाँधे माथ हैं । ओढ़े पीत वसन गरे मों वैजयन्ती माल,संख,चक्र, गदा और पद्म लिये हाथ हैं ॥ 'नरोत्तम' कवि कहैं सुभग संदीपन के, तुम कहौ-हम वे पढ़ैया एक साथ हैं । द्वारका गये दूर दारिद करेंगे पिय !, द्वारका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लोक-पावन होते हुएभी उनके चरणोदकको अपने शीश पर चढ़ाया, हे राजन्! फिर दिव्य गन्ध, चन्दन, अगर और केसर का अरगजा लेपन कर के सुगन्धित, धूप, दीप और माला से प्रीतिपूर्वक उनका पूजन करके और ताम्बूल तथा गौ भेंट कर के स्वागत सम्बन्धी वचन कहे ॥२०॥२१॥२२॥

कुचैलं मलिनं क्षामं द्विजं धमनिसंततम् ।
देवी पर्यचरच्छैव्या चामरव्यजनेन वै ॥२३॥

फटे पुराने वस्त्र पहिनेहुए, मलीन और केवल नसों से व्याप्त कृश शरीरवाले उन ब्राह्मणको देवी शैव्या चमर लेकर पवन करने लगीं ॥ २३ ॥

अन्तःपुरजनो दृष्ट्वा कृष्णेनामलकीर्तिना ।
विस्मितोऽभूदतिप्रीत्या अवधूतं सभाजितम् ॥२४॥

निर्मल यशवाले भगवान् ने उन मलिन (वेष धारी) ब्राह्मण का अत्यन्त प्रीति के साथ सत्कार किया, उसे देखकर अन्तःपुर के लोग विस्मय करने लगे ॥२४॥

किमनेन कृतं पुण्यमवधूतेन भिक्षुणा ।
श्रिया हीनेन लोकेऽस्मिन्गर्हितेनाधमेन च ॥२५॥
योऽसौ त्रिलोकगुरुणा श्रीनिवासेन संभृतः ।
पर्यङ्कस्थां श्रियं हित्वा परिष्वक्तोऽग्रजो यथा॥२६॥

कि इस निर्धन, अधम, निन्दित, श्रीहीन, मलिन और भिखारी ने इस लोक में ऐसा कौनसा पुण्य किया होगा कि जिसके कारण लक्ष्मी-निवास त्रिलोकी के गुरु भगवान् ने इसका आदर किया है और वे पलंगपर बैठे हुए लक्ष्मीको त्यागकर अपने ज्येष्ठ बंधु बलदेवजीकी भांति इससे मिले हैं२५।२६

कथयाञ्चक्रतुर्गाथाः पूर्वा गुरुकुले सतोः ।
आत्मनोर्ललिता राजन्करौ गृह्य परस्परम् ॥२७॥

हे राजन्! वे दोनों पहले स्वयं गुरु सांदीपन के यहाँ रहचुके थे, इसलिये परस्पर हाथ पकड़कर उन दिनों की सुन्दर बातें करने लगे ॥२७॥

श्रीभगवानुवाच

अपि ब्रह्मन्गुरुकुलाद्भवता लब्धदक्षिणात् ।
समावृत्तेन धर्मज्ञ भार्योढा सदृशी न वा ॥२८॥

श्रीभगवान् बोले–हे ब्रह्मन्! हे धर्मज्ञ! आपने गुरु को दक्षिणा देकर उनके घरसे आने पर अपने योग्य स्त्री से व्याह किया है, या नहीं ? ॥२८॥

प्रायो गृहेषु ते चित्तमकामविहृतं तथा ।
नैवातिप्रीयसे विद्वन्धनेषु विदितं हि मे ॥२९॥

हे विद्वन्! मैं अनुमान से जानता हूँ कि घरमें रहने पर भी आपका चित्त बहुधा विषयों में लिप्त न होता होगा और वस्त्रादि भोग्य वस्तुओं पर भी आपकी अधिकतर रुचि न होती होगी, विद्वानों को ऐसा ही करना चाहिये ॥२९॥

केचित्कुर्वन्ति कर्माणि कामैरहतचेतसः ।
त्यजन्तः प्रकृतीर्दैवीर्यथाऽहं लोकसंग्रहम् ॥३०॥

ईश्वर की माया से रची हुई विषय-वासनाओं का त्याग करते हुए कितने ही लोग मेरी भांति विषयों में आसक्त न होते हुए भी लोक-मर्यादा के लिये कर्म करते हैं ॥३०॥

कच्चिद्गुरुकुले वासं ब्रह्मन्स्मरसि नौ यतः ।
द्विजो विज्ञाय विज्ञेयं तमसः पारमश्नुते ॥३१॥

हे ब्रह्मन्! हम तुम गुरुजी के यहाँ सम्मिलित रहते थे, वह आपको स्मरण है न ?! कि जहाँ रहने से द्विज जन आत्म-तत्व को जानकर संसार से पार हो जाते हैं ॥ ३१ ॥

स वै सत्कर्मणां साक्षाद्द्विजातेरिह संभवः ।
आद्योऽङ्ग यत्र श्रमिणां यथाऽहं ज्ञानदो गुरुः३२॥

इस जगत् में तीन गुरु हैं-पहला जन्म-दाता, दूसरा उपनयन संस्कार करके वेद पढ़ाने वाला और तीसरा आश्रम वालों को ब्रह्म-विद्या सिखाने वाला, इनमेंसे पहला गुरु पूज्यहै, दूसरा मेरे समान है और तीसरा तो मेरा स्वरूप ही है ॥३२॥

नन्वर्थकोविदा ब्रह्मन्वर्णाश्रमवतामिह ।
ये मया गुरुणा वाचा तरन्त्यञ्जो भवार्णवम्॥३३॥

हे ब्रह्मन्! इस मनुष्य-जन्म में वर्णाश्रम वाले जो लोग साक्षात् मेरे स्वरूप ज्ञान देने वाले गुरु के उपदेशों से सहज ही में संसार-सागर को पार कर जाते हैं, उन्हें स्वार्थ सिद्ध करने में चतुर ही जानना चाहिये ॥३३॥

नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन च ।
तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा ॥३४॥

सब प्राणियों की आत्मा अर्थात् मैं जैसा गुरु सेवा से प्रसन्न होता हूँ वैसा ब्रह्मचर्य, यज्ञ, वानप्रस्थ और सन्यास धर्म से नहीं होता ॥३४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपि नः स्मर्यते ब्रह्मन्नृत्तं निवसतां गुरौ ।
गुरुदारैश्चोदितानामिन्धनानयने क्वचित् ॥३५॥

हे द्विज ! जब हम-आप गुरुजी के यहाँ रहते थे, उस समय गुरु-पत्नी ने मुझे और आपको लकड़ी लाने के लिये बनमें भेजा था, वहाँ दैवगति से जो घटना हुई थी वह यादहै न ? ॥३५॥

प्रविष्टानां महारण्यमपर्तौ सुमहद् द्विज ।
वातवर्षमभूत्तीव्रं निष्ठुराः स्तनयित्नवः ॥३६॥

हे द्विज ! जब हम-तुम लकड़ी लेने के लिये बड़े बनमें घुसे, तब वर्षा ऋतु न होते हुएभी महा तीव्र वायु के साथ वर्षा होने लगी थी और बड़ी घोर गर्जना हो रही थी ॥३६॥

सूर्यश्चास्तंगतस्तावत्तमसा चावृता दिशः ।
निम्नं कूलं जलमयं न प्राज्ञायत किंचन ॥३७॥

इतने ही में सूर्य अस्त होगया, दिशाओं में अंधेरा छागया और सब जलमय होजाने से ऊँचे नीचे स्थल का पता न चलता था ॥३७॥

वयं भृशं तत्र महानिलाम्बुभिर्निहन्यमाना मुहुरम्बुसंप्लवे । दिशोऽविदन्तोऽथ परस्परं वने गृहीतहस्ताः परिबभ्रिमातुराः ॥३८॥

उस जलमय बनमें तीव्र वायु और वर्षा से हम तुम पीड़ित होगये थे, दिशाओं का कुछ भी बोध न था, तब घबराये हुए एक दूसरे का हाथ पकड़ कर शिर पर लकड़ियों का बोझ रक्खे फिरते ॥ ३८॥

एतद्विदित्वा उदिते रवौ सान्दीपनिर्गुरुः ।
अन्वेषमाणो नः शिष्यानाचार्योऽपश्यदातुरान् ३९

जब गुरुजीको यह पता चला तब वे सूर्योदय होते ही हम-तुमको ढूंढते हुए आये और उन्होंने हम दोनों को आतुर आते हुए देखा ॥३९॥

अहो हे पुत्रका यूयमस्मदर्थेऽतिदुःखिताः ।
आत्मा वै प्राणिनां प्रेष्ठस्तमनादृत्य मत्पराः॥४०॥

और कहा कि हे पुत्रो ! मेरे लिये तुमने विशेष दुःख पाया है; देहधारियों को आत्मा सर्व प्रियहै, पर तुमने उसका भी तिरस्कार करके मेरी सेवा कीहै।

एतदेव हि सच्छिष्यैः कर्तव्यं गुरुनिष्कृतम् ।
यद्वै विशुद्धभावेन सर्वार्थात्मार्पणं गुरौ ॥४१॥

यह सब पुरुषार्थ प्राप्त कराने वाली देह शुद्ध भाव से गुरु के अर्पण करदेनाही उत्तम शिष्योंका सच्चा कर्त्तव्य तथा गुरुका प्रत्युपकार है ॥ ४१ ॥

तुष्टोऽहं भो द्विजश्रेष्ठाः सत्याः सन्तु मनोरथाः ।
छन्दांस्ययातयामानि भवन्त्विह परत्र च ॥४२॥

हे द्विजोत्तमो ! मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूँ, इस लिये इस लोक तथा परलोक में तुम्हारे मनोरथ सिद्धहों और मेरे पढ़ाये हुए वेद तुम्हें सार्थकहों ॥

इत्थंविधान्यनेकानि वसतां गुरुवेश्मसु ।
गुरोरनुग्रहेणैव पुमान्पूर्णः प्रशान्तये ॥४३॥

हम-तुम जब गुरु के यहाँ रहते थे, तब वहाँ ऐसे २ कई वृत्तान्त हुए थे, क्या वे आपको यादहैं गुरुकी कृपाही से मनुष्य पूर्णतया शांति पाता है ॥

ब्राह्मण उवाच

किमस्माभिरनिर्वृत्तं देवदेव जगद्गुरो ।
भवता सत्यकामेन येषां वासो गुरावभूत् ॥४४॥

ब्राह्मण ने कहा–हे देवदेव ! हे जगद्गुरु ! आप सत्य संकल्प के साथ मैं गुरुके यहाँ रहा हूँ, फिर मेरी किसी बात की कमी कैसे हो सकती है ? ॥

यस्य छन्दोमयं ब्रह्म देह आवपनं विभो ।
श्रेयसां तस्य गुरुषु वासोऽत्यन्तविडम्बनम् ॥४५॥

हे विभु ! कल्याणों के उत्पन्नकर्त्ता और वेद ब्रह्ममूर्त्ति आप गुरुके यहाँ रहे हैं, यह आपका केवल मनुष्य-लीला का अनुकरण ही है ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे अशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥

इक्यासीवां अध्याय

(सुदामा-चरित)

श्रीशुक उवाच

स इत्थं द्विजमुख्येन सह संकथयन्हरिः ।
सर्वभूतमयोऽभिज्ञः स्मयमान उवाच तम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–इस प्रकार उन द्विजोत्तम से बातें करते हुए, सबके मनकी बात जानने वाले भगवान् ने हँसकर उनसे कहा ॥१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मण्यो ब्राह्मणं कृष्णो भगवान्प्रहसन्प्रियम् ।
प्रेम्णा निरीक्षणेनैव प्रेक्षन्खलु सतां गतिः ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच

किमुपायनमानीतं ब्रह्मन्मे भवता गृहात् ।
अण्वप्युपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूर्येव मे भवेत् ।
भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥ ३ ॥

हँसी करते हुए प्रेममय दृष्टि से देखते हुए, सज्जनों के शरण-दाता और ब्राह्मणों के भक्त भगवान् बोले कि-हे ब्रह्मन् ! आप घर से क्या भेंट लाये हैं ! भक्तजन प्रेम पूर्वक यदि थोड़ा सा भी अर्पण करें तो मैं उसे बहुत समझता हूँ और अभक्त की बहुत भेंट से भी मैं प्रसन्न नहीं होता ॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ ४ ॥

शान्त चित्त पुरुष भक्ति पूर्वक जो पत्र, पुष्प, फल, जल मुझे अर्पण करता है वह भक्तिसे अर्पण करने के कारण मैं स्वीकार करता हूँ ॥४॥

इत्युक्तोऽपि द्विजस्तस्मै व्रीडितः पतये श्रियः ।
पृथुकप्रसृतिं राजन्नप्रायच्छदवाङ्मुखः ॥ ५ ॥

हे राजन् ! भगवान् ने इस प्रकार कहा भी, परन्तु लज्जासे नीचा मुख करके बैठेहुए सुदामाजी ने लक्ष्मीपति भगवान् को चावल न दिये ॥५॥

सर्वभूतात्मदृक् साक्षात्तस्यागमनकारणम् ।
विज्ञायाचिन्तयन्नायं श्रीकामो माऽभजत्पुरा ॥ ६ ॥
पत्न्याः पतिव्रतायास्तु सखा प्रियचिकीर्षया ।
प्राप्तो मामस्य दास्यामि संपदोऽमर्त्यदुर्लभाः ॥ ७ ॥

वे प्रभु सब जीवों के हृदय के साक्षी होने के कारण उनके आने का कारण जानकर सोचने लगे कि मेरे मित्रने पहले लक्ष्मी की अभिलाषासे भजन नहीं किया, पर अब अपनी पतिव्रता स्त्रीको प्रसन्न रखने के लिये मेरे पास आया है, इसलिये मैं इसे देवताओं को भी जो दुर्लभ है ऐसी संपदा दूँगा ॥

इत्थं विचिन्त्य वसनाच्चीरबद्धान्द्विजन्मनः ।
स्वयं जहार किमिदमिति पृथुकतण्डुलान् ॥ ८ ॥

ऐसा सोचकर भगवान् ने यों कहते हुए कि-'यह क्या है ?' उन ब्राह्मण के चिथड़े में बंधे हुए तंदुल अपने हाथ से निकाल कर ले लिये ॥८॥

नन्वेतदुपनीतं मे परमप्रीणनं सखे ।
तर्पयन्त्यङ्ग मां विश्वमेते पृथुकतण्डुलाः ॥ ९ ॥

और बोले कि-हे मित्र ! यह तो आप ऐसी वस्तु लाये हैं जो मुझे बहुत ही प्रिय है, हे सखे ! मुझ जगदात्मा को तो यह तंदुल बहुत ही प्रसन्न करते हैं ॥ ९ ॥

इति मुष्टिं सकृज्जग्ध्वा द्वितीयां जग्धुमाददे ।
तावच्छ्रीर्जगृहे हस्तं तत्परा परमेष्ठिनः ॥ १० ॥

इस प्रकार कहकर भगवान् चावलों की एक मुट्ठी फांक गये और जब दूसरी फाँकने लगे तब भगवत-परायण लक्ष्मीजी का अंशावतार रुक्मिणी ने उनका हाथ पकड़ लिया और कहा कि॥१०॥*

एतावताऽलं विश्वात्मन्सर्वसंपत्समृद्धये ।
अस्मिल्लोके तथाऽमुष्मिन्पुंसस्त्वत्तोषकारणम् ११ ॥

हे जगदात्मा ! इस लोक तथा परलोकमें भक्त भी जिस संपदा को देखकर स्वयं प्रसन्न होसकता है, उस समृद्धि के लिये इतना ही पर्याप्त है फिर आप दूसरी मुट्ठी खाकर क्या मुझे भी इसके आधीन करना चाहते हैं ? ॥११॥

ब्राह्मणस्तां तु रजनीमुषित्वाऽच्युतमन्दिरे ।
भुक्त्वा पीत्वा सुखं मेन आत्मानं स्वर्गतं यथा १२

ब्राह्मण ने उस रातको भगवान्के महलोंमें ही निवास किया, वहाँ भोजन-पान आदि को पाकर वह स्वर्गके समान सुख मानने लगे ॥१२॥

श्वोभूते विश्वभावेन स्वमुखेनाभिवन्दितः ।
जगाम स्वालयं तात पथ्यनुव्रज्य नन्दितः ॥ १३ ॥

हे राजन् ! दूसरे दिन सूर्योदय होते ही जगत् की रक्षा करने वाले तथा स्वरूपके आनन्दसे परिपूर्ण भगवान् उन ब्राह्मण देवता को प्रणाम करके राह में कुछ दूरतक पहुँचाकर और विनम्र बचनों से प्रसन्न करके लौटे और सुदामाजी भी अपने घरको लौट गये ॥१३॥

स चालब्ध्वा धनं कृष्णान्न तु याचितवान्स्वयम् ।

---

*-हाथ गहै प्रभु को कमला, कह नाथ ! कहा तुमने चितधारी । तन्दुल खाय मुठी द्वै दीन कियौ तुमने द्वै लोक विहारी ॥ खाय मुठी तिसरी अब नाथ ! कहाँ निज बासकी आस विचारी । विप्रहि आप समान कियो, तुमचाहत आपहिं होन भिखारी॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वगृहान्व्रीडितोऽगच्छन्महद्दर्शननिर्वृतः ॥१४॥

न तो भगवान्ने उन्हें धन दिया और न उन्हों ने ही लज्जा के कारण उनसे माँगा, वरन् भगवान् के ही दर्शन से ही आनन्दित होकर वे अपने घर को चल दिये ॥१४॥

अहो ब्रह्मण्यदेवस्य दृष्टा ब्रह्मण्यता मया ।
यद्दरिद्रतमो लक्ष्मीमाश्लिष्टो बिभ्रतोरसि ॥१५॥

वह चलते हुए सोचनेलगे कि मैंने ब्रह्मण्यदेव भगवान् की ब्रह्मण्यता देखली है, जो वक्षःस्थल में लक्ष्मीजी को धारण करने वाले होकर भी मुझ महा दरिद्री से मिले ॥१५॥

क्वाहं दरिद्रः पापीयान्क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः ।
ब्रह्मबन्धुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरम्भितः॥१६॥

भला मुझसा दरिद्री और महा पातकी कहां ? और लक्ष्मी-निवास भगवान् कहाँ ? वे मुझे केवल ब्राह्मण जाति का समझ कर ही दोनों बाहें पसार कर मिले हैं ॥ १६ ॥

निवासितः प्रियाजुष्टे पर्यङ्के भ्रातरो यथा ।
महिष्या वीजितः श्रान्तो बालव्यजनहस्तया॥१७॥

उन्होंने मुझे प्रिया के सेवन योग्य पलंग पर अपने भाइयों की भांति ही बिठलाया और मार्ग-श्रम दूर करनेके लिये भगवान्की रानी (रुक्मिणी) ने चमर हाथ में लेकर मुझे पवन की ॥१७॥

शुश्रूषया परमया पादसंवाहनादिभिः ।
पूजितो देवदेवेन विप्रदेवेन देववत् ॥१८॥

और देवताओं तथा ब्राह्मणों के देव-रूप भगवान् ने उत्तम सेवा एवं चरण चापने आदि के द्वारा देवताओं की भांति मेरा पूजन किया ॥१८॥

स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि संपदाम् ।
सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम् ॥१९॥

अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नुच्चैर्न मां स्मरेत् ।
इति कारुणिको नूनं धनं मे भूरि नाददात् ॥२०॥

यद्यपि भगवान् के चरणों की सेवा मनुष्यों के लिये स्वर्ग, मोक्ष और पाताल तथा पृथ्वी की सम्पदा एवं समस्त सिद्धियों की कारण है फिर भी दयालु भगवान् ने मुझे इस कारण थोड़ा भी धन नहीं दिया कि यदि इस निर्धन को धन मिल जायगा तो यह अत्यन्त मदोन्मत्त होकर मेरा ध्यान भूल जायगा ॥१९॥॥२०॥

इति तच्चिन्तयन्नन्तः प्राप्तो निजगृहान्तिकम् ।
सूर्यानलेन्दुसंकाशैर्विमानैः सर्वतो वृतम् ॥२१॥

इस प्रकार विचार करते हुए सुदामा ब्राह्मण अपने घरके पास आये,वहाँ उन्होंने देखा कि सूर्य अग्नि और चन्द्रमा के समान प्रकाशमान् विमान चारों ओर शोभा दे रहे हैं ॥२१॥

विचित्रोपवनोद्यानैः कूजद्द्विजकुलाकुलैः ।
प्रोत्फुल्लकुमुदाम्भोजकह्लारोत्पलवारिभिः ॥२२॥

अनोखे बाग-बगीचों में पक्षियों के झुंड बोल रहे हैं, जलाशयों के जलमें कुमुद, उत्पल, कल्हार और अम्भोज फूल रहे हैं ॥२२॥

जुष्टं स्वलंकृतैः पुम्भिः स्त्रीभिश्च हरिणाक्षिभिः ।
किमिदं कस्य वा स्थानं कथं तदिदमित्यभूत्॥२३॥

शृङ्गार कियेहुए पुरुष तथा मृगके समान नेत्रों वाली स्त्रियाँ शोभायमान् होरही हैं, सुदामाजी उन को देखकर चकित होगये कि यह क्या है ? यह स्थान किसका है और यह ऐसा किस प्रकार से हो गया ? ॥ २३ ॥

एवं मीमांसमानं तं नरा नार्योऽमरप्रभाः ।
प्रत्यगृह्णन्महाभाग गीतवाद्येन भूयसा ॥२४॥

इस प्रकार वह विचार करही रहे थे कि उसी समय देवताओंके समान स्त्री-पुरुष घने गाजे-बाजे की धूम-धाम के साथ उन भाग्यशाली सुदामाजी की अगवानी करने आये ॥२४॥

पतिमागतमाकर्ण्य पत्न्युद्धर्षाऽतिसंभ्रमा ।
निश्चक्राम गृहात्तूर्णं रूपिणी श्रीरिवालयात्॥२५॥

अपने पति के आने का समाचार पाकर उन की स्त्री अत्यन्त आनन्दित होकर बड़े ही संभ्रम पूर्वक साक्षात् लक्ष्मी के समान् तत्काल ही घरसे बाहर निकली ॥२५॥

पतिव्रता पतिं दृष्ट्वा प्रेमोत्कण्ठाऽश्रुलोचना ।
मीलिताक्ष्यनमद्बुद्ध्या मनसा परिषस्वजे॥२६॥

पति के दर्शन करते ही उस पतिव्रताके नेत्रोंमें प्रेम और उत्कण्ठा के कारण आँसू भर आये फिर उसने आँखें मूंद कर दृढ़ भाव के साथ प्रणाम करके उन्हें अपने मनसे आलिङ्गन किया ॥२६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पत्नीं वीक्ष्य विस्फुरन्तीं देवीं वैमानिकीमिव ।
दासीनां निष्ककण्ठीनां मध्ये भान्तीं स विस्मितः ॥

विमान में बैठी हुई देवाङ्गना के समान कान्ति धारे हुए, कण्ठ-भूषण पहने हुए, दासियों के बीच शोभा देतीहुई अपनी स्त्रीको देखकर उन सुदामा ब्राह्मण को बड़ा ही विस्मय हुआ ॥२७॥

प्रीतः स्वयं तया युक्तः प्रविष्टो निजमन्दिरम् ।
मणिस्तम्भशतोपेतं महेन्द्रभवनं यथा ॥२८॥

वह प्रसन्न होकर अपनी स्त्री के साथ अपने महल में गये, जहाँ इन्द्र-भवन के समान सैकड़ों मणियों के खंभ लगे हुए थे ॥२८॥

पयःफेननिभाः शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः ।
पर्यङ्का हेमदण्डानि चामरव्यजनानि च ॥२९॥

जिसमें दूधके फेनकी भांति कोमल और सफ़ेद बिछौने बिछरहे हैं और हाथी दाँत के पलंग पड़े हुए हैं तथा स्वर्ण की डंडी वाले चमर तथा पंखे रक्खे हुए हैं ॥२९॥

आसनानि च हैमानि मृदूपस्तरणानि च ।
मुक्तादामविलम्बीनि वितानानि द्युमन्ति च॥३०॥

कोमल बिछौने सहित सोनेकी चौकियाँ पड़ी हुई हैं और मोतियों की झालर वाले प्रकाशमान् चंदोबे तने हुए हैं ॥३०॥

स्वच्छस्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च ।
रत्नदीपान्भ्राजमानाँल्ललनारत्नसंयुतान् ॥३१॥

निर्मल स्फटिक मणि तथा महा मरकत मणि की दीवारों वाले स्त्री-रत्न सहित मन्दिर में रत्नों के दीपक प्रकाशित हैं ॥३१॥

विलोक्य ब्राह्मणस्तत्र समृद्धिं सर्वसंपदा ।
तर्कयामास निर्व्यग्रः स्वसमृद्धिमहैतुकीम् ॥३२॥

उस महलमें संपत्तियोंकी वृद्धि देखकर सुदामा जी स्थिर चित्तसे यह विचार करनेलगे कि अचानकही इतनी सम्पत्ति कहाँ से आगई ? ॥३२॥

नूनं बतैतन्मम दुर्भगस्य शश्वद्दरिद्रस्य समृद्धिहेतुः।
महाविभूतेरवलोकतोऽन्यो नैवोपपद्येत यदूत्तमस्य॥

मुझ सदाके दरिद्री तथा अभागेके घरमें इतनी सम्पत्ति होने का कारण सिवा महा ऐश्वर्यवान्, यादव-श्रेष्ठ श्रीकृष्णकी कृपा कटाक्षके दूसरा नहींहै।

नन्वब्रुवाणो दिशतेऽसमक्षं याचिष्णवे भूर्यपि भूरिभोजः । पर्जन्यवत्तत्स्वयमीक्षमाणो दाशार्हकाणामृषभः सखा मे ॥३४॥

पूर्ण मनोरथ, लक्ष्मीपति, दाशार्ह वंशमें उत्पन्न होने वालों में श्रेष्ठ मेरे मित्र श्रीकृष्णचन्द्र याचक को विना कहे ही बहुतसा धन दे देते हैं, क्योंकि वे देनेयोग्य वस्तुको मेघकी भांति (तुच्छ) देखतेहैं।

किञ्चित्करोत्युर्वपि यत्स्वदत्तं सुहृत्कृतं फल्ग्वपि भूरिकारी । मयोपनीतां पृथुकैकमुष्टिं प्रत्यग्रहीत्प्रीतियुतो महात्मा ॥३५॥

वे अपने बहुत दिये हुए को थोड़ा और सुहृदों के थोड़े दिये दिये हुए को बहुत मानते हैं, मैं चावलों की एक ही मुट्ठी लेगया था, उसे भी श्री महात्मा कृष्णजी ने प्रसन्न होकर ग्रहण किया॥३५॥

तस्यैव मे सौहृदसख्यमैत्रीदास्यं पुनर्जन्मनि जन्मनि स्यात । महानुभावेन गुणालयेन विषज्जतस्तत्पुरुषप्रसङ्गः ॥३६॥

अब तो मुझे धन-धान्य की इच्छा नहीं है, वरन् यही चाहता हूँ कि श्रीकृष्ण से प्रेम, साख्य, मयत्री और दास्य-भाव जन्म-जन्मान्तर तक बना रहे और उन्हीं सर्व गुणमय महानुभाव तथा उन के भक्तों का सत्संग बना रहे ॥३६॥

भक्ताय चित्रा भगवान्हि संपदो राज्यं विभूतीर्न समर्धयत्यजः । अदीर्घबोधाय विचक्षणः स्वयं पश्यन्निपातं धनिनां मदोद्भवम् ॥३७॥

धन का अभिमान होनेसे धनी पुरुषोंका नीच जन्म होता देखकर विवेक पूर्वक श्रीकृष्णजी अपने मूर्ख और भोले भक्तों को विचित्र सम्पदा तथा राज्य-भोग नहीं देते वरन् दृढ़ भक्ति प्रदान करतेहैं मैं भक्ति-हीन था इसलिये मुझे सम्पत्ति का सुख मिला है, परन्तु अब मैं उसी भक्तिके लिये प्रार्थना करता हूँ ॥३७॥

इत्थं व्यवसितो बुद्ध्या भक्तोऽतीव जनार्दने ।
विषयाञ्जायया त्यक्ष्यन् बुभुजे नातिलम्पटः॥३८॥

इस प्रकार बुद्धि से निश्चय करके श्रीकृष्णजी के परम भक्त सुदामाजी विषयों को अनायास ही त्यागने का अभ्यास करते हुए, स्त्री के साथ भोग करते रहने पर भी लोक-वासनाओं में अधिक लिप्त न हुए ॥३८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्य वै देवदेवस्य हरेर्यज्ञपतेः प्रभोः ।
ब्राह्मणा प्रभवो दैवं न तेभ्यो विद्यते परम् ॥३९॥

देव-देव, पाप-हरण, यज्ञ प्रतिपालक और समर्थ श्रीकृष्णचन्द्र जिनके प्रति ऐसा भाव रखते हैं उन ब्राह्मणों से परे कोई भी देवता नहीं है ॥३९॥

एवं स विप्रो भगवत्सुहृत्तदा दृष्ट्वा स्वभृत्यैरजितं पराजितम् ।
तद्ध्यानवेगोद्ग्रथितात्मबन्धनस्तद्धाम लेभेऽचिरतः सतां गतिम् ॥४०॥

इस प्रकार किसी से भी न जीते जाने वाले परन्तु भक्तोंके वश में रहनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रजी के मित्र सुदामाजी उनके दर्शनकरके तथा उनके ध्यान से अहङ्कार को दूर करके शीघ्र ही उन्हीं के धाम को प्राप्त होगये ॥ ४०॥

एतद्ब्रह्मण्यदेवस्य श्रुत्वा ब्रह्मण्यतां नरः ।
लब्धभावो भगवति कर्मबन्धाद्विमुच्यते ॥४१॥

जो पुरुष ब्रह्मण्यदेव श्रीकृष्णचन्द्रजी ब्राह्मणों को गौरव प्रदान करने वाली यह लीला सुनते हैं, वे भगवान् की भक्ति पाकर कर्म-बन्धन रूप संसार से छूट जाते हैं ॥ ४१ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥

बयासीवां अध्याय

(कुरुक्षेत्र यात्रा वर्णन)

श्रीशुक उवाच

अथैकदा द्वारवत्यां वसतो रामकृष्णयोः ।
सूर्योपरागः सुमहानासीत्कल्पक्षये यथा ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—श्रीकृष्ण और बलदेवजीके द्वारका में विराजते हुए एक दिन प्रलय काल के समान बड़ा भारी सूर्य-ग्रहण पड़ा ॥१ ॥

तं ज्ञात्वा मनुजा राजन्पुरस्तादेव सर्वतः ।
स्यमन्तपञ्चकं क्षेत्रं ययुः श्रेयोविधित्सया ॥ २ ॥

हे महाराज ! इस बात का ज्योतिषियों द्वारा निश्चय करके पुण्य करने की अभिलाषा से सब देशों के लोग पहलेही से कुरुक्षेत्र जा पहुँचे ॥ २ ॥

निःक्षत्रियां महीं कुर्वन्रामः शस्त्रभृतां वरः ।
नृपाणां रुधिरौघेण यत्र चक्रे महाह्रदान् ॥ ३ ॥

जहाँ शस्त्र धारण करने वालोंमें श्रेष्ठ परशुराम जीने इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय करके राजाओं के रक्त-समूह से बड़े-बड़े कुण्ड बनाये थे ॥ ३ ॥

ईजे च भगवान्रामो यत्रास्पृष्टोऽपि कर्मणा ।
लोकस्य ग्राहयन्नीशो यथाऽन्योऽघापनुत्तये ॥ ४ ॥

भगवान् परशुरामजी ने पाप का स्पर्श न होने पर भी लोकों को धर्म-मर्यादा सिखलाने के लिये दूसरे प्राकृत पुरुष के समान पाप-निवृत्ति के लिये यज्ञ किये ॥ ४ ॥

महत्यां तीर्थयात्रायां तत्राऽजग्मुर्भारतीः प्रजाः ।
वृष्णयश्च तथाऽक्रूरवसुदेवाहुकादयः ॥ ५ ॥

ययुर्भारत तत्क्षेत्रं स्वमघं क्षपयिष्णवः ।
गदप्रद्युम्नसाम्बाद्याः सुचन्द्रशुकसारणैः ।
आस्तेऽनिरुद्धो रक्षायां कृतवर्मा च यूथपः ॥ ६ ॥

हे राजन् ! इस बड़ी तीर्थ-यात्रा में भरतखंड की सब प्रजा आई, अक्रूर, वसुदेव, उग्रसेन, गद, प्रद्युम्न, सांब आदि सब यादव भी अपने पापों को क्षीण करने के लिये वहाँ आये और अनिरुद्ध तथा कृतवर्मा ये दोनों सुचंद्र, शुक और सारणके साथ द्वारकापुरी की रक्षा के लिये वहीं रहे ॥५॥६॥

ते रथैर्देवधिष्ण्याभैर्हयैश्च तरलप्लवैः ।
गजैर्नदद्भिरभ्राभैर्नृभिर्विद्याधरद्युभिः ॥ ७ ॥

व्यरोचन्त महातेजाः पथि काञ्चनमालिनः ।
दिव्यस्रग्वस्त्रसन्नाहाः कलत्रैः खेचरा इव ॥ ८ ॥

विमानों के समान रथ, तरङ्गोंके समान चंचल घोड़े, बादलके समान गर्जना करते हुए हाथी और विद्याधरों के समान कान्तिमान मनुष्यों के से वे बड़े तेजस्वी पुरुष कंचन की माला धारण कियेहुए और दिव्य वस्त्र, पुष्प-माल तथा कवच पहने हुए अपनी स्त्रियों के साथ मार्ग में जाते हुए देवताओं के समान शोभा पाते थे ॥७॥८॥

तत्र स्नात्वा महाभागा उपोष्य सुसमाहिताः ।
ब्राह्मणेभ्यो ददुर्धेनूर्वासःस्रग्युक्तमालिनीः ॥ ९ ॥

उन भाग्यवान् लोगों ने व्रत करके, सावधान अन्तःकरण होकर और कुरुक्षेत्र में स्नान करके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्राह्मणों को वस्त्र, पुष्प, माला और कञ्चनकी माला वाली गायें दान दीं ॥९॥

रामह्रदेषु विधिवत्पुनराप्लुत्य वृष्णयः ।
ददुः स्वन्नं द्विजाग्र्येभ्यः कृष्णे नो भक्तिरस्त्विति ॥

फिर यादवों ने परशुरामजी के कुण्डमें विधि पूर्वक मोक्ष-स्नान करके 'हमें भगवान्‌की भक्तिमिले' ऐसा संकल्प करके उत्तम ब्राह्मणों को श्रेष्ठ मिष्टान्न दिया ॥१०॥

स्वयं च तदनुज्ञाता वृष्णयः कृष्णदेवताः ।
भुक्त्वोपविविशुः कामं स्निग्धच्छायाङ्घ्रिपाङ्घ्रिषु ॥

श्रीकृष्णको ही इष्टदेव माननेवाले यादव आप भी ब्राह्मणोंकी आज्ञाले, भोजन करके शीतल छाया वाले वृक्षों के नीचे इच्छानुसार बैठ गये ॥११॥

तत्रागतांस्ते ददृशुः सुहृत्संबन्धिनो नृगान् ।
मत्स्योशीनरकौसल्यविदर्भकुरुसृञ्जयान् ॥१२॥
काम्बोजकेकयान्मद्रान्कुन्तीनानर्तकेरलान् ।
अन्यांश्चैवात्मपक्षीयान्परांश्च शतशो नृप ।
नन्दादीन्सुहृदो गोपान्गोपीश्चोत्कण्ठिताश्चिरम् १३

हे महाराज ! वहाँ उन लोगों ने उशीनर कौशल्य, विदर्भ, कुरु, संजय, कांबोज, कैकय, मद्र कुंती, आनर्त्त और केरल देशके रहने वाले अपने मित्र, बन्धु, राजा तथा दूसरेभी अपने पक्ष या पर पक्ष के सैकड़ों लोग, नन्द आदि अपने प्रिय स्नेही ग्वाल और बहुत दिनोंसे उत्कंठा रखनेवाली गोपियां आदि जो आये थे उन सबको देखा ॥१२॥१३॥

अन्योऽन्यसंदर्शनहर्षरंहसा प्रोत्फुल्लहृद्वक्त्रसरोरुहश्रियः । आश्लिष्य गाढं नयनैः स्रवज्जला हृष्यत्त्वचो रुद्धगिरो ययुर्मुदम् ॥१४॥

परस्पर दर्शन से उत्पन्न हुए आनन्द के वेगसे प्रफुल्लित हृदय और मुख कमल से शोभायमान, पुलकित शरीर और प्रेम के कारण रुकी हुई वाणी वाले सब लोग नेत्रों से जल छोड़ते हुए परस्पर प्रगाढ़ आलिंगन करके आनन्द-मग्न होगये ॥१४॥

स्त्रियश्च संवीक्ष्य मिथोऽतिसौहृदस्मितामलापाङ्गदृशोऽभिरेभिरे । स्तनैः स्तनान्कुङ्कुमपङ्करूषितान्निहत्य दोर्भिः प्रणयाश्रुलोचनाः ॥१५॥

जिनके नेत्रों में प्रेम के कारण अश्रु बह रहे हैं और अति प्रेम से उत्पन्न हुए मन्द हास से जिन की कटाक्ष तथा दृष्टि निर्मल है. ऐसी वे स्त्रियाँ परस्पर देखकर, केशर लगाये स्तनों को परस्पर मिलाती हुई हाथों से आलिंगन कर रही थीं ॥१५॥

ततोऽभिवाद्य ते वृद्धान्यविष्ठैरभिवन्दिताः ।
स्वागतं कुशलं पृष्ट्वा चक्रुः कृष्णकथां मिथः॥१६॥

फिर जब छोटी आयु वाले उनको वन्दन कर चुके तब वे वृद्ध पुरुषों को वंदन कर स्वागत और कुशल का प्रश्न करके आपस में श्रीकृष्णजी की बातें करने लगे ॥१६॥

पृथा भ्रातॄन्स्वसॄर्वीक्ष्य तत्पुत्रान्पितरावपि ।
भ्रातृपत्नीर्मुकुन्दं च जहौ संकथया शुचः ॥१७॥

कुन्ती, भाई-बहन, इनके पुत्र, माता-पिता, भावजों और भगवान् को देखकर परस्पर प्रेम की बातों से शोक भूल गये ॥१७॥

कुन्त्युवाच

आर्य भ्रातरहं मन्ये आत्मानमकृताशिषम् ।
यद्वा आपत्सु मद्वार्तां नानुस्मरथ सत्तमाः ॥१८॥

कुन्ती बोली–हे आर्य, ! हे भाई ! मैं अपने आत्माको नहीं मानतीहूँ, क्योंकि तुम समर्थ होकर भी जब विपत्ति आतीहै तब मेरी सुधि नहीं लेते॥

सुहृदो ज्ञातयः पुत्रा भ्रातरः पितरावपि ।
नानुस्मरन्ति स्वजनं यस्य दैवमदक्षिणम् ॥१९॥

जिससे दैव रूठ जाता है उसकी कोई भी संबन्धी अर्थात् जाति वाले, पुत्र, भाई, माता-पिता ये भी सुधि नहीं लेते ॥१९॥

वसुदेव उवाच

अम्बमास्मानसूयेथा दैवक्रीडनकान्नरान् ।
ईशस्य हि वशे लोकः कुरुते कार्यतेऽथ वा ॥२०॥

वसुदेवजी बोले–हे अंब ! हम मनुष्य जो दैव के खिलौने हैं उनपर दोष न लगाओ, क्योंकि जगत् में करना और करवाना ईश्वरके हाथहै ॥२०

कंसप्रतापिताः सर्वे वयं याता दिशो दश ।
एतर्ह्येव पुनः स्थानं दैवेनासादिताः स्वसः ॥२१॥

हे बहन ! पहले तो हम सब कंस से दुःखी होकर दसों दिशाओं में भाग निकले थे, अब पीछे दैवेच्छा से अभी अपने स्थान पर आये हैं ॥२१॥

श्रीशुक उवाच

वसुदेवोग्रसेनाद्यैर्यदुभिस्तेऽर्चिता नृपाः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आसन्नच्युतसंदर्शपरमानन्दनिर्वृताः ॥२२॥

श्रीशुकदेवजी बोले–वसुदेव और उग्रसेन आदि यादवों से सन्मान पाये हुए वे राजा लोग भगवान् के दर्शन करके परमानन्द में मग्न होगये थे ॥२२॥

भीष्मो द्रोणोम्बिकापुत्रो गान्धारी ससुता तथा।
सदाराः पाण्डवाःकुन्ती सृञ्जयो विदुरः कृपः२३॥
कुन्तिभोजो विराटश्च भीष्मको नग्नजिन्महान्।
पुरुजिद्द्रुपदः शल्यो धृष्टकेतुः सकाशिराट्॥२४॥
दमघोषो विशालाक्षो मैथिलो मद्रकेकयौ।
युधामन्युः सुशर्मा च ससुता वाह्लिकादयः ॥२५॥
राजानो ये च राजेन्द्र युधिष्ठिरमनुव्रताः।
श्रीनिकेतं वपुः शौरेः सस्त्रीकं वीक्ष्य विस्मिताः २६

भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, गांधारी के पुत्र; स्त्री सहित पांडव, कुंती, सृञ्जय, विदुर, कृपाचार्य, कुन्ती, भोज, विराट्, भीष्मक; नग्नजित, पुरुजित, द्रुपद, शल्य, धृष्टकेतु, काशिराज, दमघोष, विशालाक्ष, मिथिला का राजा, मद्र देश का राजा, केकय देश का राजा, युधामन्यु, सुशर्मा, बाह्लीक, आदि और उनके पुत्र तथा युधिष्ठिर का अनुसरण करने वाले जो दूसरे भी राजा लोग थे, वे सब लक्ष्मी-निवास भगवान् के शरीर तथा उनकी स्त्रियों को देखकर विस्मित होगये ॥२३॥२४॥२५॥२६॥

अथ ते रामकृष्णाभ्यां सम्यक्प्राप्तसमर्हणाः।
प्रशशंसुर्मुदा युक्ता वृष्णीन्कृष्णपरिग्रहान् ॥२७॥

जिनका बलदेवजी और श्रीकृष्णने भली भांति सत्कार किया है, ऐसे वे लोग प्रसन्न होकर भगवान् के अङ्गीकार किये हुए यादवों की प्रशंसा करने लगे कि ॥२७॥

अहो भोजपते यूयं जन्मभाजो नृणामिह।
यत्पश्यतासकृत्कृष्णं दुर्दर्शमपि योगिनाम् ॥२८॥

हे महाराज उग्रसेन! यहाँ मनुष्यों में जन्म तो आपही का सफल है क्योंकि जिनके दर्शन योगिजनों को भी दुर्लभ हैं, उन भगवान् के आप बारबार दर्शन करते हो ॥२८॥

यद्वि श्रुतिः श्रुतितनुतेदमलं पुनाति पादावनेजनपतश्च वचश्च शास्त्रम्। भूः कालभर्जितभगापि यदङ्घ्रिपद्मस्पर्शोत्थशक्तिरभिवर्षति नोऽखिलार्थान् ॥२९॥

जिनकी कीर्त्ति वेदसे प्रशंसित है और जिनके चरणों के धोवनका जल (गङ्गा) तथा जिनके वचन रूप वेद इस जगत्को अत्यन्त पवित्र करतेहैं और यह पृथ्वी काल की गति से शक्ति रहित होने पर भी जिनके चरणारविन्द के स्पर्श से उत्तम शक्ति पाकर हमें सब पदार्थ देती है ॥२९॥

तद्दर्शनस्पर्शनानुपथप्रजल्पशय्यासनाशनसयौन सपिण्डबन्धः। येषां गृहे निरयवर्त्मनि वर्ततां वः स्वर्गापवर्गविरमः स्वयमास विष्णुः ॥३०॥

उन भगवान् के साथ दर्शन, स्पर्शन, अनुसरण आसन, गोष्ठी, शैया, भोजन, विवाह और सपिंडता के सम्बन्ध से बंधे हुए होने से तुम यद्यपि नरक के पंथ रूप घर में रहते हो, तो भी तुम्हारे घरमें स्वर्ग और मोक्षकी तृष्णा निवृत्त करनेवाले विष्णु भगवान् स्वयं प्रकट हुए हैं, इसलिये तुम्हारा जन्म सफल हुआ है ॥३०॥

श्रीशुक उवाच

नन्दस्तत्र यदून्प्राप्ताञ्ज्ञात्वा कृष्णपुरोगमान्।
तत्रागमद्वृतो गोपैरनःस्थार्थैर्दिदृक्षया ॥३१॥

हे महाराज! श्रीकृष्ण आदि यादवों को यहाँ आया हुआ जानकर नन्दरायजी सब गोपोंको संग लेकर और सब सामान गाड़ों में भरकर उनके दर्शन की इच्छा से कुरुक्षेत्र आये ॥३१॥

तं दृष्ट्वा वृष्णयो हृष्टास्तन्वः प्राणमिवोत्थिताः।
परिष्वजिरे गाढं चिरदर्शनकातराः ॥३२॥

नन्दरायजी को देखकर यादव बहुत प्रसन्नहुए और जैसे प्राणके आने से इन्द्रियां उठकर सन्मुख जाती हैं, वैसे सन्मुख जाकर बहुत दिनों के पीछे दर्शन होने के कारण संभ्रमके साथ उनसे मिले ॥

वासुदेवः परिष्वज्य संप्रीतः प्रेमविह्वलः।
स्मरन्कंसकृतान्क्लेशान्पुत्रन्यासं च गोकुले ॥३३॥

वसुदेवजी कंस के दिये हुए दुखों और अपने पुत्रों को जो गोकुल में छोड़ रक्खा था, उस बात का स्मरण करके प्रेम-विह्वल होते हुए उनसे मिल कर बहुत प्रसन्न हुए ॥३३॥

कृष्णरामौ परिष्वज्य पितरावभिवाद्य च।
न किंचनोचतुः प्रेम्णा साश्रुकण्ठौ कुरूद्वह॥३४॥

हे महाराज! राम-कृष्ण अपने माता-पिता यशोदा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और नन्दरायजी से मिलकर प्रणाम करके, प्रेमाश्रु कंठ में आ जाने से कुछ भी न बोले ॥३४॥

तावात्मासनमारोप्य बाहुभ्यां परिरभ्य च ।
यशोदा च महाभागा सुतौ विजहतुः शुचः॥३५॥

वे महाभाग नंद और यशोदा इन दोनों पुत्रों को अपने आसनों पर बिठलाकर दोनों हाथों से मिलकर आँसू बहाने लगे ॥३५॥

रोहिणी देवकी चाथ परिष्वज्य व्रजेश्वरीम् ।
स्मरन्त्यौ तत्कृतां मैत्रीं बाष्पकण्ठ्यौ समूचतुः ३६

यशोदाकी की हुई मयत्री का स्मरण करतीहुई रोहिणी और देवकी कंठमें आँसू भरकर और आलिंगन करके यशोदासे कहने लगी कि ॥३६॥

का विस्मरेत वां मैत्रीमनिवृत्तां व्रजेश्वरि ।
अवाप्याप्यैन्द्रमैश्वर्यं यस्या नेह प्रतिक्रिया ॥३७॥

'हे व्रजेश्वरी ! सदा एकसी रहने वाली आप की मयत्री कि जिसका बदला इन्द्र का ऐश्वर्य पाने पर भी नहीं दिया जा सकता, उसे कौन भूलेगा ?

एतावदृष्टपितरौ युवयोः स्म पित्रोः संप्रीणनाभ्युदयपोषणपालनानि । प्राप्योषतुर्भवति पक्ष्म ह तद्वदक्ष्णोर्न्यस्तावकुत्र च भयौ न सतां परः स्वः३८

जिन्होंने माता-पिता को आँखों से भी न देखा था, ऐसे यह हमारे पुत्र जैसे पलक से नेत्र रक्षा पाते हैं वैसे आपही से रक्षित होकर माता-पिता रूप आपके हाथ से लालन-पालन, अभ्युदय और पोषण पाकर निर्भय रीति से रहे, ठीक है, सत्पुरुषों के 'यह मेरा और यह पराया' ऐसी भेद बुद्धि नहीं होती ।. ३८ ॥

श्रीशुक उवाच

गोप्यश्च कृष्णमुपलभ्य चिरादभीष्टं यत्प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्मकृतं शपन्ति । दृग्भिर्हृदि कृतमलं परिरभ्य सर्वास्तद्भावमापुरपि नित्ययुजां दुरापम् ॥

जिनके दर्शनमें पलकोंकी आड़ पड़नेसे पलकों के रचने वाले विधाता को गोपियाँ गालियाँ दिया करती हैं, वे प्यारे श्रीकृष्ण बहुत दिनोंमें दृष्टि आये अतएव नेत्रों द्वारा उन्हें हृदय में स्थापित करके समाधिनिष्ठ योगियों को भी जिसकी प्राप्ति अति दुर्लभ है, उस तादृप्य भाव को प्राप्त हुईं ॥३९॥

भगवांस्तास्तथाभूता विविक्त उपसंगतः ।
आश्लिष्याऽनामयं पृष्ट्वा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥४०॥

उन प्रेम भरी गोपियों से एकान्त में मिल आलिंगन कर आरोग्यता पूछ, हंसकर भगवान् ने यह कहा ॥४०॥

अपि स्मरथ नः सख्यः स्वानामर्थचिकीर्षया ।
गतांश्चिरायिताञ्शत्रुपक्षक्षपणचेतसः ॥४१॥

श्रीभगवान् बोले-हे सखियो ! हम अपने बन्धुओं का कार्य करने की इच्छा से गये थे और वहाँ शत्रुओं के पक्षका नाश करनेमें लगगये जिस से हम बहुत दिनों तक वहीं रुके रहे, सो कभी हमें भी तुम याद करती हो ? ॥४१॥

अप्यवध्या यथाऽस्मान्स्विदकृतज्ञा विशङ्कया ।
नूनं भूतानि भगवान्युनक्ति वियुनक्ति च ॥४२॥

'ये अकृतज्ञ हैं' क्या इस प्रकार तुमको हमपर कुछ क्रोध तो नहीं आता है ? दैव ही तो प्राणियों को मिलता है और वही बिछुड़ा देता है ॥४२॥

वायुर्यथा घनानीकं तृणं तूलं रजांसि च ।
संयोज्याक्षिपते भूयस्तथा भूतानि भूतकृत् ॥४३॥

जैसे पवन, मेघ-पटल, तृण, रुई और रज को मिलाकर फिर अलग कर देता है, वैसे ही दैव प्राणियों को मिलाकर अलग कर देताहै ॥४३॥

मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते ।
दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः॥४४॥

मेरी भक्ति करने वाला मनुष्य मोक्ष को प्राप्त होता है, अतएव यह बहुत अच्छा हुआ, जो मेरी प्राप्ति करनेवाला मेरा स्नेह तुम्हें प्राप्त हुआ ॥४४॥

अहं हि सर्वभूतानामादिरन्तोऽन्तरं बहिः ।
भौतिकानां यथा खं वार्भूर्वायुर्ज्योतिरङ्गनाः॥४५॥

हे स्त्रियो ! जैसे आकाश, जल, पृथ्वी, वायु और तेज-ये पंच महाभूत ही घटादिक पदार्थों के आदि अन्त बाहरी और भीतरी रूप हैं, वैसे मैं भी सब पदार्थोंका आदि,अन्त, बाहरी और भीतरीहूँ॥

एवं ह्येतानि भूतानि भूतेष्वात्मात्मना ततः ।
उभयं मय्यथ परे पश्यताभातमक्षरे ॥४६॥

इसी तरह जरायुज, अंबुज, स्वेदज, उद्भिज-ये चार प्रकार के प्राणी अपने कारणरूप पंच महा भूतों में रहते हैं पर आत्मा जो भोक्ताहै उसमें नहीं रहते, आत्मा तो उन भूतों में भोक्तापन से व्याप्तहै

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर कारण रूप से व्याप्त नहीं, भूत, भौतिक, भोग्य और भोक्ता इन सबको परिपूर्ण रूप से मुझ में भ्रान्ति से प्रकाशित जानो ॥४६॥

श्रीशुक उवाच

अध्यात्मशिक्षया गोप्य एवं कृष्णेन शिक्षिताः ।
तदनुस्मरणध्वस्तजीवकोशास्तमध्यगन् ॥४७॥

श्रीशुकदेवजी बोले-इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान् ने उन्हें स्वरूप के उपदेश से शिक्षा की, तब उसके स्मरण से उनका लिंग देह छूट गया और उन्हीं को प्राप्त हुईं ॥४७॥

आहुश्च ते नलिननाभपदारविन्दं योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः । संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं गेहं जुषामपि मनस्युदियात्सदा नः॥४८॥

और बोलीं कि-हे पद्मनाभ ! अगाध बोध ! योगेश्वरों के चिन्तन करने योग्य और संसार रूप कूप में पड़े हुए पुरुषों के आलंबन रूप आपका चरणारविंद यद्यपि हम घरमें रहाकरें तोभी हमारे मनमें सदैव प्रकट रहा करे ॥४८॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२॥

तिरासीवां अध्याय

(श्रीकृष्ण की रानियों द्वारा अपने अपने विवाह का वर्णन)

श्रीशुक उवाच

तथानुगृह्य भगवान्गोपीनां स गुरुर्गतिः ।
युधिष्ठिरमथापृच्छत्सर्वांश्च सुहृदोऽव्ययम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-गोपियोंके परम गुरु और शरणरूप भगवान् हरि उनपर इस प्रकार अनुग्रह करके फिर युधिष्ठिर तथा सुहृदजनों से कुशल पूछने लगे ॥ १ ॥

त एवं लोकनाथेन परिपृष्टाः सुसत्कृताः ।
प्रत्यूचुर्हृष्टमनसस्तत्पादेक्षाहतांहसः ॥ २ ॥

जब लोकेश्वर भगवान् ने इस प्रकार अत्यन्त आदर करके उनसे पूछा, तब उनके चरणारविंद के दर्शनों से निष्पाप हुए उन लोगों ने प्रसन्न मन से उत्तर दिया कि ॥२॥

कुतोऽशिवं त्वच्चरणाम्बुजासवं महन्मनस्तो मुखनिःसृतं क्वचित् । पिबन्ति ये कर्णपुटैरलं प्रभो देहंभृतां देहकृदस्मृतिच्छिदम् ॥ ३ ॥

हे प्रभु ! आपके चरणारविन्द का रस कि जो महात्मा पुरुषों के मन से उनके मन द्वारा प्रकट हुआ है और जो देहधारियों को देहाभिमान बढ़ाने वाली अविद्या का नाश करने वाला है, उसको जो लोग अपने २ कानरूपी दुहनों से पीते हैं, उनको अमङ्गल कहाँ से हो सकता है ? ॥३॥

हित्वाऽऽत्मधाम विधुतात्मकृतव्यवस्थमानन्दसंप्लवमखण्डमकुण्ठबोधम् । कालोपसृष्टनिगमावन आत्तयोगमायाकृतिं परमहंसगतिं नताः स्मः ॥४॥

अपने स्वरूप के प्रकाश द्वारा बुद्धि के कारण तीनों अवस्थाओं से निवृत्त, समस्त आनन्द के कदम्ब रूप, अपरिच्छिन्न, अकुंठित चैतन्य शक्ति वाले और काल के द्वारा नष्ट प्रायः हुए वेदों की रक्षार्थ योगमायासे मनुष्य-मूर्त्ति धारण करने वाले तथा परमहंसों की गति रूप ! आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ ४ ॥

ऋषिरुवाच

इत्युत्तमश्लोकशिखामणिं जनेष्वभिष्टुवत्स्वन्धककौरवस्त्रियः । समेत्य गोविन्दकथा मिथोऽगृणं स्त्रिलोकगीताः शृणु वर्णयामि ते ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-पवित्र कीर्त्ति पुरुषों के मुकुट मणि भगवान्की लोग इस प्रकार स्तुतिकर रहे थे, वहाँ अन्धक और कौरवोंकी स्त्रियाँ एकत्र होकर त्रिलोक में गाई जानेवाली भगवान्की कथा के सम्बन्धमें जो बात-चीत कर रही थीं, उसे मैं तुमसे कहता हूँ सो सुनो ॥५॥

द्रौपद्युवाच

हे वैदर्भ्युच्यतां भद्रे हे जाम्बवति कौसले ।
हे सत्यभामे क्रालिन्दि शैब्ये रोहिणि लक्ष्मणे ६॥
हे कृष्णपत्न्य एतन्नो ब्रूत वो भगवान्स्वयम् ।
उपयेमे यथा लोकमनुकुर्वन्स्वमायया ॥ ७ ॥

द्रौपदी बोली-हे रुक्मिणी ! हे भद्रे ! हे जांबवन्ती ! हे सत्यभामा ! हे सत्या ! हे कालिन्दी ! हे मित्रविन्दा ! हे रोहिणी ! हे लक्ष्मणा ! तथा श्री

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृष्णकी अन्य रानियो ! हमसे यह कहोकि अपनी माया द्वारा लोकका अनुकरण करतेहुए स्वयं भगवान्ने तुम्हारा पाणिग्रहण किस प्रकार किया? ६।७

रुक्मिण्युवाच

चैद्याय मार्ष्यितुमुद्यतकार्मुकेषु राजस्वजेयभटशेखरिताङ्घ्रिरेणुः। निन्ये मृगेन्द्र इव भागमजाविधूथात्तच्छ्रीनिकेतचरणोऽस्तु ममार्चनाय ॥ ८ ॥

रुक्मिणी बोलीं-मुझे शिशुपालको प्राप्त कराने के लिये जरासंध आदि राजा गण धनुष सजा कर आ पहुंचेथे, उस समय अजित वीर पुरुषों के सिर पर जिनके चरणोंकी रज मुकुटके समान विद्यमान है, ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण अपने भागरूप मुझे उन लोगों में से इस प्रकार ले आये थे, जैसे सिंह बकरियों की टोली में से अपना भाग ले जाता है.उन लक्ष्मी-निवास रूप भगवान् के चरणों की मैं पूजा किया करूँ ॥ ८ ॥

सत्यभामोवाच

यो मे सनाभिवधतप्तहृदा ततेन लिप्ताभिशापमपमार्ष्टुमुपाजहार। जित्वर्क्षराजमथ रत्नमदात्स तेन भीतः पिताऽदिशत मां प्रभवेऽपि दत्ताम् ॥ ९ ॥

सत्यभामा बोली-भाई के मरने के शोक से दुःखित होकर मेरे पिता ने जो कलंक लगाया था, उसे निवृत्त करने के लिये भगवान् ने ऋक्षपति (जांबवंत) को जीतकर और मणि लाकर मेरेपिता को दी, तब उस अपराध से भयभीत होकर मेरे पिता ने मेरी मँगनी होचुकने पर भी मुझे श्रीकृष्ण को अर्पण कर दिया था ॥ ९ ॥

जाम्बवत्युवाच

प्राज्ञाय देहकृदमुं निजनाथदेवं सीतापतिं त्रिणवहान्यमुनाऽभ्ययुध्यत्। ज्ञात्वा परीक्षित उपाहरदर्हणं मां पादौ प्रगृह्य मणिनाऽहममुष्य दासी १०

जांबवन्ती बोली-मेरे पिता ने इन भगवान् को अपने इष्टदेव, स्वामी श्रीरामचन्द्रजी न जान कर इनसे सत्ताईस दिनतक युद्धकिया; फिर ये निश्चय होने पर कि यह साक्षात् रामचन्द्रजी ही हैं-मेरे पिता ने इनके चरणों में गिरकर दहेज़ रूपसे मणि के साथ में मुझे भी अर्पण करदिया, वही मैं श्री कृष्णचन्द्रजी की दासी हूँ ॥ १० ॥

कालिन्द्युवाच

तपश्चरन्तीमाज्ञाय स्वपादस्पर्शनाऽऽशया। सख्योपेत्याग्रहीत्पाणिं योहं तद्गृहमार्जनी ॥ ११ ॥

कालिन्दी बोली-मुझे अपने चरण-स्पर्श की इच्छासे तप करती हुई जानकर पहले अपने मित्र अर्जुनद्वारा मिलकर (मेरा भेद ज्ञात करके) जिन्हों ने मेरा पाणिग्रहण किया है, उन भगवान् के घरमें बुहारी देने वाली दासी मैं ही हूँ ॥ ११ ॥

मित्रविन्दोवाच

यो मां स्वयंवर उपेत्य विजित्य भूपान्निन्ये श्वयूथगमिवात्मबलिं द्विपारिः। भ्रातुश्च मेऽपकुरुतः स्वपुरं श्रियौकस्तस्यास्तु मेऽनुभवमङ्घ्रयवनेजनत्वम् ॥ १२ ॥

मित्रविंदा बोली-लक्ष्मी-निवास भगवान् स्वयं वर में जाकर राजाओं तथा बुराई करते हुए मेरे भाइयों को जीतकर मुझे इस प्रकार द्वारका लेगये थे जैसे सिंह श्वानों के झुंड में से अपना भाग ले जाता है-मैं उनके चरण पखारने वाली दासी जन्म जन्मान्तर होती रहूँ ॥ १२ ॥

सत्योवाच

सप्तोक्षणोऽतिबलवीर्यसुतीक्ष्णशृङ्गान्पित्रा कृतान्क्षितिपवीर्यपरीक्षणाय। तान्वीरदुर्मदहतस्तरसा निगृह्य क्रीडन्बबन्ध ह यथा शिशवोऽजतोकान् १३ ॥

नाग्नजिती बोली-मेरे पिता ने राजाओं के बल की परीक्षा करनेके लिये अत्यन्त तीक्ष्ण सींगवाले और परम बली तथा पराक्रमी एवं वीर पुरुषों के दुर्मद को नष्ट करने वाले जो सात बैल रख छोड़े थे, उनको भगवान् ने खेलही खेल में इस प्रकार बाँध लिया था जैसे बालक बकरी के बच्चों को बाँध ले ॥ १३ ॥

य इत्थं वीर्यशुल्कां मां दासीभिश्चतुरङ्गिणीम्। पथि निर्जित्य राजन्यान्निन्ये तदास्यमस्तु मे ॥ १४ ॥

इस प्रकार पराक्रम मात्र ही से मिल सकने वाली मुझ दासी का पाणिग्रहण करके भगवान् आरहे थे, तब मार्गमें जो राजा आये उनको जीत कर मेरे पिता की भेंट की हुई दासियां और चतुरंगिणी सेना को साथ लेकर मुझे द्वारका लेगये थे, मैं उनकी सदैव दासी बनी रहूँ ॥ १४ ॥

भद्रोवाच

पिता मे मातुलेयाय स्वयमाहूय दत्तवान्।
कृष्णे कृष्णाय तच्चित्तामक्षौहिण्या सखीजनैः १५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भद्रा बोली–मेरे पिता ने मेरा चित्त भगवान्में लगा हुआ जानकर मामा के पुत्र श्रीकृष्णजी को बुलाकर एक अक्षौहिणी सेना और सखियों के सहित मुझे भगवान् के अर्पण करदिया था ॥१५॥

अस्य मे पादसंस्पर्शो भवेज्जन्मनि जन्मनि ।
कर्मभिर्भ्राम्यमाणाया येन तच्छ्रेय आत्मनः॥१६॥

चाहे मैं अपने कर्मों से कहीं भी भटका करूँ पर जन्म-जन्मान्तर में मुझे भगवान् के पुरुषार्थ (मोक्ष) रूप चरणों का ही स्पर्श मिला करे ॥१६॥

लक्ष्मणोवाच

ममापि राज्यच्युतजन्मकर्म श्रुत्वा मुहुर्नारद-
गीतमास ह । चित्तं मुकुन्दे किल पद्महस्तया
वृतः सुसंमृश्य विहाय लोकपान् ॥१७॥

लक्ष्मणा बोली–हे द्रौपदी ! बारंबार नारदजी द्वारा गाये हुए भगवान् के जन्म-कर्मका वर्णन सुन कर इस विचार से कि लक्ष्मीजी ने भी लोकपालों को छोड़कर भगवान् के साथ व्याह किया है (तब मुझे भी ऐसा ही करना चाहिये) मेरा चित्त भगवान् में आसक्त होगया ॥१७॥

ज्ञात्वा मम मतं साध्वि पिता दुहितृवत्सलः ।
बृहत्सेन इति ख्यातस्तत्रोपायमचीकरत् ॥१८॥

हे साध्वी ! पुत्री पर प्रेम करने वाले बृहत्सेन नामक मेरे पिता ने मेरा भाव समझ कर श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिये यह उपाय किया ॥१८॥

यथा स्वयंवरे राज्ञि मत्स्यः पार्थेप्सया कृतः ।
अयं तु बहिराच्छन्नो दृश्यते स जले परम् ॥१९॥

हे द्रौपदी ! जैसे अर्जुन के साथ विवाह करने की इच्छा से तुम्हारे स्वयंवर में मत्स्य रचा गया था वैसे ही मेरे स्वयंवर में किया गया था, परन्तु तुम्हारा मत्स्य केवल बाहर से ढका हुआ था इस लिये दीख पड़ताथा, परन्तु मेरा मत्स्य खंभेके पास रक्खे हुए घट-जल से ही दीख सकता था ॥१९॥

श्रुत्वैतत्सर्वतो भूपा आययुर्मत्पितुः पुरम् ।
सर्वास्त्रशस्त्रतत्त्वज्ञाः सोपाध्यायाः सहस्रशः ॥२०॥

यह बात सुनकर सब शस्त्रास्त्र-वेत्ता तथा हज़ारों राजागण उपाध्यायों को साथ लेकर मेरे पिता के पुर में आये ॥२०॥

पित्रा संपूजिताः सर्वे यथावीर्यं यथावयः ।
आददुः सशरं चापं वेद्धुं पर्षदि मद्धियः ॥२१॥

मेरे पिता ने पराक्रम तथा अवस्थानुसार सब का सत्कार किया, पर उन लोगों का मन मुझमें लगा रहनेके कारण वह मत्स्य किसीसे न बिंधसका॥

आदाय व्यसृजन्केचित्सज्यं कर्तुमनीश्वराः ।
आकोष्ठं ज्यां समुत्कृष्य पेतुरेकेऽमुना हताः ॥२२॥

कितने ही राजाओं ने तो धनुष-बाण हाथ में लेकर फिर रखदिया, कई एक धन्वे की डोरी ही न चढ़ा सके, कुछ ने हाथके पहुंचे तक डोरी तान तो ली पर उसके झटके से गिर पड़े ॥२२॥

सज्यं कृत्वाऽपरे वीरा मागधाम्बष्ठचेदिपाः ।
भीमो दुर्योधनः कर्णो नाविन्दंस्तदवस्थितिम् २३॥

जरासंध, अंबष्ट,शिशुपाल, भीम,दुर्योधन और कर्ण तथा दूसरे वीरोंने धनुषकी डोरीतो खींचली पर कोई उस मत्स्यकी स्थिति न जान सका ॥२३॥

मत्स्याभासं जले वीक्ष्य ज्ञात्वा च तदवस्थितिम् ।
पार्थो यत्तोऽसृजद्बाणं नाच्छिनत्पस्पृशे परम् २४॥

फिर अर्जुन ने जलमें मत्स्य का प्रतिबिंब देख कर उसकी स्थिति जानकर सावधानी के साथ बाण चलाया, जिससे मत्स्य का स्पर्श तो होगया पर वह कटा नहीं ॥२४॥

राजन्येषु निवृत्तेषु भग्नमानेषु मानिषु ।
भगवान्धनुरादाय सज्यं कृत्वाऽथ लीलया ॥२५॥
तस्मिन्सन्धाय विशिखं मत्स्यं वीक्ष्य सकृज्जले ।
छित्त्वेषुणाऽपातयत्तं सूर्ये चाभिजिति स्थिते ॥२६॥

इस प्रकार वे अभिमानी राजा मान भंग होने से अलग होगये, तब श्रीकृष्णजी ने धनुष लेकर उसकी पनच चढ़ाकर तथा लीला के साथ बाण संधान करके दिन के दोपहर समय अभिजित् मुहूर्त्त में एक बार जलके भीतर मत्स्यको देखकर बाणसे काट कर गिरा दिया ॥२५॥२६॥

दिवि दुन्दुभयो नेदुर्जयशब्दयुता भुवि ।
देवाश्च कुसुमासारान्मुमुचुर्हर्षविह्वलाः ॥२७॥

उस समय स्वर्ग तथा पृथ्वी में दुन्दुभी बजने लगी, जय-ध्वनि होने लगी और देवता लोग हर्ष से विह्वल होकर पुष्प बरसाने लगे ॥२७॥

तद्रङ्गमाविशमहं कलनूपुराभ्यां पद्भ्यां प्रगृह्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कनकोज्ज्वलरत्नमालाम् । नूत्ने विनीय परिधाय च कौशिकास्ये सव्रीडहासवदना कबरीधृतस्रक् ॥

फिर नवीन उत्तम वस्त्र धारण करके चोटी में पुष्पों की माला गुंधाये हुए; लज्जा मय हास्य मुख वाली मैं हाथ में स्वर्ण के समान उज्ज्वल रत्नोंकी माला लेकर, पैरों से सुन्दर नूपुरों की झनकार करती हुई उस सभा-मंडप में आई ॥२८॥

उन्नीय वक्त्रमुरुकुन्तलकुण्डलत्विड्गण्डस्थलं शिशिरहासकटाक्षमोक्षैः । राज्ञो निरीक्ष्य परितः शनकैर्मुरारेरंसेऽनुरक्तहृदया निदधे स्वमालाम् २९

केश-भार और कुण्डलों की कान्ति से चमकते हुए कपोलों वाले मुख को ऊंचा उठाकर, संताप हरण करने वाले हास्यमय कटाक्षके विलास द्वारा धीरे २ चारों ओर के राजाओं को देखकर अनुरक्त चित्त वाली मैंने श्रीकृष्णचन्द्रजी के कण्ठ में माला पहिनाई ॥ २९॥

तावन्मृदङ्गपटहाः शङ्खभेर्यानकादयः । निनेदुर्नटनर्तक्यो ननृतुर्गायका जगुः ॥३०॥

उसी समय मृदङ्ग, पटह, शंख, भेरी, आनक आदि बाजे बजने लगे, नट और नर्त्तकियाँ नाचने लगीं; गायक गाने लगे ॥३०॥

एवं ऋते भगवति मयेशे नृपयूथपाः । न सेहिरे याज्ञसेनि स्पर्धन्तो हृच्छयातुराः ॥३१॥

हे द्रौपदी ! इस तरह मैंने श्रीकृष्णजीका वरण किवा, तब द्वेषी तथा काम-विवश बड़े-बड़े राजा लोग इस बातको सहन न करसके ॥ ३१ ॥

मां तावद्रथमारोप्य हयरत्नचतुष्टयम् । शार्ङ्गमुद्यम्य सन्नद्धस्तस्थावाजौ चतुर्भुजः ॥३२॥

भगवान् तो (उधर) उसी समय (स्यमन्तक कौस्तुभ, परीस और चिन्तामणि चार) रत्न रूप चार घोड़ों वाले रथ में मुझे बिठला कर, चार भुजायें धारण कर, दो भुजाओं से मुझे आलिंगन किये हुए तथा शेष दो भुजाओं से धनुष-बाण लेकर स्वयं रण के लिये तैयार हुए ॥३२॥

दारुकश्चोदयामास काञ्चनोपस्करं रथम् । मिषतां भूभुजां राज्ञि मृगाणां मृगराडिव ॥३३॥

और हे द्रौपदी ! इधर दारुक सारथी ने स्वर्ण से मढ़े हुए रथ को आगे बढ़ाया, तब जैसे हिरनों के देखते २ सिंह चला जाताहै वैसे ही राजाओं के देखते २ भगवान् चले ॥३३॥

तेऽन्वसज्जन्त राजन्या निषेद्धुं पथि केचन । संयता उद्धृतेष्वासा ग्रामसिंहा यथा हरिम्॥३४॥

जैसे श्वान सिंह को देखकर पीछे दौड़ पड़े, वैसे ही कई राजा लोग धनुष उठाकर भगवान्को रोकने के लिये उनके पीछे दौड़े और कितने एक आगे जाकर खड़े होगये ॥३४॥

ते शार्ङ्गच्युतबाणौघैः कृत्तबाहङ्घ्रिकन्धराः । निपेतुः प्रधने केचिदेके संत्यज्य दुद्रुवुः ॥३५॥

तब शार्ङ्ग धनुष से निकले हुए बाण-समूह द्वारा उन लोगों के हाथ, पैर और गले कट गये और कितने ही रण छोड़कर भाग निकले ॥३५॥

ततः पुरीं यदुपतिरत्यलंकृतां रविच्छदध्वजपट चित्रतोरणाम् । कुशस्थलीं दिवि भुवि चापि संस्तुतां समाविशत्तरणिरिव स्वकेतनम् ॥३६॥

फिर जैसे सूर्य अस्ताचल पर जाता है, वैसे भगवान् द्वारकापुरी पधारे. जो सूर्यको ढकती हुई ध्वजा और तोरणोंसे अत्यन्त सुसज्जित एवं पृथ्वी और स्वर्ग की प्रशंसा-पात्र है ॥३६॥

पिता मे पूजयामास सुहृत्संबन्धिबान्धवान् । महार्हवासोलंकारैः शय्यासनपरिच्छदैः ॥३७॥

मेरे पिता ने अमूल्य वस्त्र,आभूषण, शैया, आसन तथा सामग्रियों से मित्र-सम्बन्धी और बंधुओं का सत्कार किया ॥३७॥

दासीभिः सर्वसंपद्भिर्भटेभरथवाजिभिः । आयुधानि महार्हाणि ददौ पूर्णस्य भक्तितः॥३८॥

स्वयं पूर्ण श्रीकृष्ण भगवान् को दासियां सब संपदा, योधा, हाथी, रथ, घोड़े और सब प्रकार के शस्त्र भक्ति पूर्वक मेरे पिता ने अर्पण किये॥३८॥

आत्मारामस्य तस्येमा वयं वै गृहदासिकाः । सर्वसङ्गनिवृत्त्याऽद्धा तपसा च बभूविम ॥३९॥

ये आठों हम (दासियाँ) सब प्रकारकी आसक्ति त्याग कर तप के प्रभाव से उन आत्म रमण साक्षात् श्रीकृष्ण की गृह-दासियाँ हुई हैं ॥३९॥

महिष्य ऊचुः

भौमं निहत्य सगणं बुधि तेन रुद्धा ज्ञात्वाऽथ नः क्षितिजये जितराजकन्याः । निर्मुच्य संसृति-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विमोक्षमनुस्मरन्तीः पादाम्बुजं परिणिनाय य आप्तकामः ॥४०॥

(सोलह हज़ार एकसौ) रानियां बोलीं—नरकासुर ने दिग्विजय में जिन राज-कन्याओं को जीत कर रोक रक्खा था उन हमको भवसागर से मुक्त करने वाले अपने चरणारविंद का ध्यान करती हुई जानकर श्रीकृष्ण भगवान् ने पूर्ण काम होकर भी संग्राम में उस भौमासुर तथा उसके कुटुम्ब को मारकर हमारा पाणिग्रहण किया ॥४०॥

न वयं साध्वि साम्राज्यं स्वाराज्यं भौज्यमप्युत ।
वैराज्यं पारमेष्ठ्यं च आनन्त्यं वा हरेः पदम् ४१॥

हे द्रौपदी ! न तो हम चक्रवर्त्ती पद चाहती हैं और न इन्द्रपद, दोनों प्रकार के वैभव, अणिमादि सिद्धियां, ब्रह्म पद, सालोक्य आदि मुक्ति या कैवल्य पद की अभिलाषिणी हैं ॥ ४१ ॥

कामयामह एतस्य श्रीमत्पादरजः श्रियः ।
कुचकुङ्कुमगन्धाढ्यं मूर्ध्ना वोढुं गदाभृतः ॥४२॥

वरन् श्रीलक्ष्मीजीके स्तनकी केसरसे सुगंधित भगवान् की सर्वश्रेष्ठ चरण-रज को शिर से धारण किया चाहती हैं ॥४२॥

व्रजस्त्रियो यद्वाञ्छन्ति पुलिन्द्यस्तृणवीरुधः ।
गावश्चारयतो गोपाः पादस्पर्शं महात्मनः ॥४३॥

जैसे गोप, गोपियाँ, भीलनियाँ, तृण और लतायें गौ चराते हुए महात्मा श्रीकृष्ण के चरणों की रज को चाहती हैं वैसे ही हम दासियाँ भी चाहती हैं ॥४३॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे त्रयशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥

चौरासीवां अध्याय

(वसुदेव कृत यज्ञ महोत्सव)

श्रीशुक उवाच

श्रुत्वा पृथा सुबलपुत्र्यथ याज्ञसेनी माधव्यथ क्षितिपपत्न्य उत स्वगोप्याः । कृष्णेऽखिलात्मनि हरौ प्रणयानुबन्धं सर्वा विसिस्म्युरलमश्रुकलाकुलाक्ष्यः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—कुन्ती, द्रौपदी, गांधारी, सुभद्रा, राजाओंकी स्त्रियां और गोपियां सभी इस प्रकार भगवान् की रानियोंसे उन सर्वात्मामें स्नेह पूर्ण बातें सुनकर बहुत ही चकित हुईं तथा आँसुओं के उमड़ आने से उनके नेत्र विह्वल होगये ॥

इति संभाष्यमाणासु स्त्रीभिः स्त्रीषु नृभिर्नृषु ।
आययुर्मुनयस्तत्र कृष्णरामदिदृक्षया ॥ २ ॥
द्वैपायनो नारदश्च च्यवनो देवलोऽसितः ।
विश्वामित्रः शतानन्दो भरद्वाजोऽथ गौतमः ॥३॥
रामः सशिष्यो भगवान्वसिष्ठो गालवो भृगुः ।
पुलस्त्यः कश्यपोऽत्रिश्च मार्कण्डेयो बृहस्पतिः ॥४॥
द्वितस्त्रितश्चैकतश्च ब्रह्मपुत्रस्तथाङ्गिराः ।
अगस्त्यो याज्ञवल्क्यश्च वामदेवादयोऽपरे ॥ ५ ॥

इस प्रकार स्त्रियोंके साथ स्त्रियाँ पुरुषोंकेसाथ पुरुष बात-चीत कररहे थे, वहाँ वेदव्यास, नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानन्द, भरद्वाज, गौतम, शिष्यों सहित महात्मा परशुराम, वशिष्ठ, गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कंडेय, बृहस्पति, द्वित, त्रित, एकत, ब्रह्मपुत्र अङ्गिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य तथा अन्य वामदेव आदि ऋषि कुरुक्षेत्र में आये ॥२॥३॥४॥५॥

तान्दृष्ट्वा सहसोत्थाय प्रागासीना नृपादयः ।
पाण्डवाः कृष्णरामौ च प्रणेमुर्विश्ववन्दितान् ॥६॥

पांडव, राम-कृष्ण और पहले के बैठे हुए राजा आदि सब लोगों ने जगत् के पूजित उन ऋषियों के दर्शन करके तुरन्तही उठकर उन्हें प्रणामकिया॥

तानानर्चुर्यथा सर्वे सहरामोऽच्युतोऽर्चयत् ।
स्वागतासनपाद्यार्घ्यमाल्यधूपानुलेपनैः ॥ ७ ॥

सब लोगों तथा भगवान् ने स्वागत, आसन, पाद्य, अर्घ्य, चन्दन, पुष्प और धूप आदि से उन का यथोचित पूजन किया ॥७॥

उवाच सुखमासीनान्भगवान्धर्मगुप्तनुः ।
सदस्तस्य महतो यतवाचोऽनुशृण्वतः ॥ ८ ॥

जिन्होंने धर्म की रक्षा के लिये शरीर धारण किया है, वे भगवान् मौनता पूर्वक बैठी हुई महा सभा के सुनते हुए उन सुख सहित विराजमान ऋषियों से बोले ॥८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीभगवानुवाच

अहो वयं जन्मभृतो लब्धं कात्स्न्र्येन तत्फलम्।
देवानामपि दुष्प्रापं यद्योगेश्वरदर्शनम् ॥ ९॥

श्रीभगवान् बोले-अहो! आज हमारा जन्म कृतार्थ हुआ और हमें जन्म लेनेका फल मिलचुका क्योंकि देवगण को भी दुर्लभ आप योगेश्वरों के दर्शन हुए॥ ९॥

किं स्वल्पतपसां नृणामर्चायां देवचक्षुषाम्।
दर्शनस्पर्शनप्रश्नप्रह्वपादार्चनादिकम् ॥१०॥

केवल तीर्थ-स्नान आदि को ही जो लोग तप मानते हैं और जो मूर्त्तिमात्रही को देवता समझते हैं, ऐसे लोगों को क्या आपके दर्शन, स्पर्शन, प्रश्न, नमस्कार और चरण-पूजन आदि मिलते हैं? कभी नहीं॥ १०॥

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥११॥

तीर्थ केवल जलरूप नहीं है, देवता केवल मिट्टी पाषाण मय ही नहीं है (वरन् तीर्थ तथा मूर्त्ति से अधिक तो वे महात्माओं में हैं क्योंकि तीर्थआदि) वे तो अधिक समयमें पवित्र करतेहैं, पर साधुजन तो दर्शनमात्र ही से पवित्र कर देते हैं॥११॥

नाग्निर्न सूर्योन च चन्द्रतारका न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः। उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्तसेवया ॥१२॥

अग्नि, सूर्य, चन्द्र, तारागण, पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, वाणी और मन-यदि इनकी उपासना की जाय तो यह भेद-बुद्धि के कर्त्ता होनेके कारण अज्ञान को दूर नहीं करसकते, पर ज्ञानी पुरुष भेद बुद्धि रहित होने के कारण क्षण मात्र की सेवा ही से अज्ञान का नाश कर देते हैं॥१२॥

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः। यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥१३॥

जो लोग वात-पित्त और कफ मय शरीर ही को आत्मा मानते हैं, स्त्री आदि को ही अपना समझते हैं, मूर्त्ति मात्रही को पूजना जानतेहैं और जलहीको तीर्थ अनुमान करतेहैं, पर तत्व-ज्ञानियों को आत्मरूप, अपना पूज्य और तीर्थ नहीं समझते, वे बैल से भी अधिक अज्ञानी हैं॥१३॥

श्रीशुक उवाच

निशम्येत्थं भगवतः कृष्णस्याकुण्ठमेधसः।
वचो दुरन्वयं विप्रास्तूष्णीमासन्भ्रमद्धियः ॥१४॥

श्रीशुकदेवजी बोले-तीक्ष्ण बुद्धि और ईश्वर भगवान् के ऐसे दीनतामय वचन सुनकर चकित बुद्धि होकर वे ब्राह्मण चुप होगये॥१४॥

चिरं विमृश्य मुनय ईश्वरस्येशितव्यताम्।
जनसंग्रह इत्यूचुः स्मयन्तस्तं जगद्गुरुम् ॥१५॥

फिर उन मुनियोंने ईश्वर श्रीकृष्ण के कर्माधिकारपर बड़ी देरतक विचार करके हंसते-हंसते जगद्गुरु श्रीकृष्ण से कहा कि-आपकी यह दीनता केवल लोक-मर्यादा की रक्षा के लिये है॥१५॥

यन्माययाऽतत्त्वविदुत्तमा वयं विमोहिता विश्वसृजामधीश्वराः। यदीशितव्यायितगूढ ईहया अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितम् ॥१६॥

क्योंकि जिस मायाके द्वारा आप मनुष्य-लीला करने के लिये गुप्त रहकर अनीश्वरकी भांति चेष्टा करते हैं और जिसके कारण तत्ववेत्ताओं में श्रेष्ठ (ऋषिजन) और प्रजापति भी मोहितहैं, वह माया बड़ी विचित्र है॥ १६॥

अनीह एतद्बहुधैक आत्मना सृजत्यवत्यत्ति न बध्यते यथा। भौमैर्हि भूमिर्बहुनामरूपिणी अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम् ॥१७॥

आप चेष्टा रहित तथा एक होतेहुए भी अपने स्वरूप मात्रही से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करते हुए अनेक प्रकार के नाम-रूप धारण करते हो, जैसे पृथ्वी घट आदि विकारों के कारण अनेक नाम-रूप वाली होती है, हे पूर्णरूप! आप के जन्म लेने आदि के चरित्र केवल विडंबनामात्र ही हैं, वास्तविक नहीं॥१७॥

अथापि काले स्वजनाभिगुप्तये बिभर्षि सत्त्वं खलनिग्रहाय। स्वलीलया वेदपथं सनातनं वर्णाश्रमात्मा पुरुषः परो भवान् ॥१८॥

आप परम पुरुष होकर भी भक्त की रक्षा तथा दुष्टों के नाश करने के लिये यथा समय वर्णाश्रम रूप से शुद्ध सत्वमय अवतार धारण करके अपने आचरण के द्वारा सनातन वैदिक मार्ग की रक्षा करते हो॥१८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्म ते हृदयं शुद्धं तपःस्वाध्यायसंयमैः ।
यत्रोपलब्धं सद्व्यक्तमव्यक्तं च ततः परम् ॥१६॥

जिसमें तप, स्वाध्याय और संयमों से कार्य-कारण रूप तथा उनसे भी परे सत् मात्र परब्रह्म प्राप्त होताहै, वह वेद आपका शुद्ध अन्तरङ्ग रूपहै।

तस्माद्ब्रह्मकुलं ब्रह्मन् शास्त्रयोनेस्त्वमात्मनः ।
सभाजयसि तद्धाम तद्ब्रह्मण्याग्रणीर्भवान्॥२०॥

इसलिये हे परब्रह्म ! आप वेदसे प्राप्य अपनी प्राप्ति के आश्रय रूप ब्राह्मण कुल का सत्कार करते हैं और ब्रह्मण्य लोगों में मुख्यहोकर कर्म करतेहैं ।

अद्य नो जन्मसाफल्यं विद्यायास्तपसो दृशः ।
त्वया संगम्य सद्गत्या यदन्तः श्रेयसां परः॥२१॥

साधुओं के गति रूप आपके सत्संग से आज हमारे जन्म, विद्या, तप और ज्ञान सफलहुए; क्यों कि आप कल्याणों की परम अवधि हैं ॥२१॥

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।
स्वयोगमायया च्छन्नमहिम्ने परमात्मने ॥२२॥

अपनी योग माया द्वारा गंभीर महिमा और तीक्ष्ण बुद्धि वाले परमात्मा श्रीकृष्ण भगवान् ! आपको हम प्रणाम करते हैं ॥२२॥

न यं विदन्त्यमी भूपा एकारामाश्च वृष्णयः ।
मायाजवनिकाच्छन्नमात्मानं कालमीश्वरम्॥२३॥

आपके साथ एकही स्थानपर रहनेवाले राजा तथा यादवभी मायारूपी पर्देसे ढकेहुए आप ईश्वर परमात्मा तथा कालरूपके स्वरूपको नहीं जानते ॥

यथा शयानः पुरुष आत्मानं गुणतत्त्वदृक् ।
नाममात्रेन्द्रियाभातं न वेद रहितं परम् ॥२४॥

जैसे सोता हुआ मनुष्य स्वप्नमें अपने मनसे बने हुए व्याघ्र आदिके मिथ्या रूपको सत्य मानता है अपने आदि रूप को नहीं जानता ॥२४॥

एवं त्वा नाममात्रेषु विषयेष्विन्द्रियेहया ।
मायया विभ्रमच्चित्तो न वेद स्मृत्युपप्लवात्॥२५॥

वैसेही केवल नामवाले और मनसे ही प्रकाशमान् जाग्रत अवस्था के विषयों में इन्द्रियों की प्रवृत्ति रूपी माया से भ्रान्त पुरुष ज्ञान नष्ट होनेसे आपके यथार्थ स्वरूप को नहीं जानते ॥२५॥

तस्याद्य ते ददृशिमाङ्घ्रिमघौघमर्षतीर्थास्पदं हृदि कृतं सुविपक्वयोगैः । उत्सिक्तभक्त्युपहृताशयजीवकोशा आपुर्भवद्गतिमथोऽनुगृहाण भक्तान् ॥२६॥

पाप समूह को दूर करने वाले गङ्गारूपी तीर्थ जिनसे प्रकट हुआ और दृढ़ योग वाले योगी जन भी जिनका केवल हृदय में ध्यान करते हैं, परन्तु उन्हें भी जो दिखाई नहीं देते, हम लोगों ने आप के उन चरणारविन्दों का दर्शन पाया है, इसलिये हमें भक्ति देनेकी कृपा कीजिये, क्योंकि विना भक्ति के आपके चरण प्राप्त नहीं होते; जो बढ़ीहुई भक्ति के द्वारा अपने लिंग शरीर का नाश कर चुके हैं, उन्हींने आपको पायाहै दूसरों ने नहीं ॥२६॥

श्रीशुक उवाच

इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरम् ।
राजर्षे स्वाश्रमान्गन्तुं मुनयो दधिरे मनः ॥२७॥

शुकदेवजी बोले–हे राजन् ! इस प्रकार स्तुति करके श्रीकृष्ण, धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर मुनियों ने अपने अपने आश्रम पर जाने का विचार किया ॥ २७ ॥

तद्वीक्ष्य तानुपव्रज्य वसुदेवो महायशाः ।
प्रणम्य चोपसंगृह्य बभाषेदं सुयन्त्रितः ॥२८॥

उनका ऐसा विचार देखकर परम यशस्वी वसुदेवजी उनके पास आकर प्रणाम करके और चरण पकड़ कर सावधानी के साथ यह वचन कहने लगे ॥ २८ ॥

वसुदेव उवाच

नमो वः सर्वदेवेभ्य ऋषयः श्रोतुमर्हथ ।
कर्मणा कर्मनिर्हारो यथा स्यान्नस्तदुच्यताम् २९॥

वसुदेवजी बोले–हे ऋषियो ! मैं सर्व देव रूप आपको प्रणाम करता हूँ, मेरी विनय सुननी आप को उचित है, जो कर्म जिस प्रकार करने से क्षय हो सकते हैं वह हमसे कहिये ॥२९॥

नारद उवाच

नातिचित्रमिदं विप्रा वसुदेवो बुभुत्सया ।
कृष्णं मत्वाऽर्भकं यन्नः पृच्छति श्रेय आत्मनः३०॥

नारदजी बोले–हे ब्राह्मणो ! श्रीकृष्णजी को अपना पुत्र समझकर वसुदेवजी अपने कल्याणकी इच्छा से हम लोगों से प्रश्न कर रहे हैं, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है ॥३०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संनिकर्षोऽत्र मर्त्यानामनादरणकारणम् ।
गाङ्गं हित्वा यथाऽन्याम्भस्तत्रत्यो याति शुद्धये ३१

इस संसार में समीप रहना ही निरादर का कारण हुआ करता है, देखो गङ्गा के किनारे रहने वाले लोग उसके जलको छोड़कर अपनी शुद्धि के लिये दूसरे तीर्थ पर जाते हैं ॥ ३१ ॥

यस्यानुभूतिः कालेन लयोत्पत्त्या दिनाऽस्य वै ।
स्वतोन्यस्माच्च गुणतो न कुतश्चन रिष्यति ॥३२॥

तं क्लेशकर्मपरिपाकगुणप्रवाहैरव्याहतानुभवमीश्वरमद्वितीयम् । प्राणादिभिः स्वविभवैरुपगूढमन्यो मन्येत सूर्यमिव मेघहिमोपरागैः ॥३३॥

जिनका ज्ञान किसी काल से, इस जगत् की उत्पत्ति या प्रलय आदिसे, आपसे, दूसरे से और रूपान्तर आदि होने पर भी नाश नहीं होता, जो अद्वितीय, ईश्वर, अखंडित और ज्ञान स्वरूप हैं, वे श्रीकृष्णचन्द्र क्लेश, कर्म, सुख, दुःख, गुणों के प्रवाह और अपने कार्य रूप प्राण आदि के द्वारा आच्छादित माने जाँय तो कोई आश्चर्य नहीं, जैसे सूर्य, बादल, हिम या राहु से आच्छादित मान लिया जाता है ॥३२॥॥३३॥

श्रीशुक उवाच

अथोचुर्मुनयो राजन्नाभाष्यानकदुन्दुभिम् ।
सर्वेषां शृण्वतां राज्ञां तथैवाच्युतरामयोः ॥३४॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! तब इन मुनियों ने सब राजाओं तथा श्रीराम-कृष्ण के सुनते हुए वसुदेवजी को संबोधित करते हुए कहा ॥३४॥

ब्राह्मण उवाच

कर्मणा कर्मनिर्हार एष साधु निरूपितः ।
यच्छ्रद्धया यजेद्विष्णुं सर्वयज्ञेश्वरं मखैः ॥३५॥

ब्राह्मण बोले-सब यज्ञों के ईश्वर विष्णु भगवान् का यज्ञों द्वारा श्रद्धा पूर्वक पूजन करना ही, सर्वोत्तम कर्म के द्वारा कर्म मिटाने का उपाय कहा गया है ॥ ३५ ॥

वित्तस्योपशमोऽयं वै कविभिः शास्त्रचक्षुषा ।
दर्शितः सुगमो योगो धर्मश्चात्ममुदावहः ॥३६॥

इसी को विद्वान् पुरुषों ने शास्त्र रूपी दृष्टि के द्वारा मनको वशमें करने, मोक्ष को प्राप्त करने तथा धीरे-धीरे अन्तःकरण शुद्ध करनेवाला सरल स्वधर्म बतलाया है ॥३६॥

अयं स्वस्त्ययनः पन्था द्विजातेर्गृहमेधिनः ।
यच्छ्रद्धयाऽऽप्तवित्तेन शुक्लेनेज्येत पूरुषः ॥३७॥

न्याय पूर्वक मिले हुए धन से श्रद्धा सहित ईश्वर का यजन करना ही गृहस्थ द्विज लोगों के कल्याण का मार्ग है ॥३७॥

वित्तैषणां यज्ञदानैर्गृहैर्दारसुतैषणाम् ।
आत्मलोकैषणां देव कालेन विसृजेद्बुधः ॥३८॥

हे वसुदेवजी ! बुद्धिमान् पुरुषोंको धनके फल रूप यज्ञ तथा दान करके धनकी इच्छा छोड़ देनी चाहिये, गृह-संबन्धी भोग भोग चुकनेपर स्त्री-पुत्र की तृष्णा छोड़ देनी चाहिये और संसारको नाशवान् समझ कर अपनी प्रतिष्ठा तथा स्वर्ग आदि की तृष्णा छोड़ देनी चाहिये ॥३८॥

ग्रामे त्यक्तैषणाः सर्वे ययुर्धीरास्तपोवनम् ।
ऋणैस्त्रिभिर्द्विजो जातो देवर्षिपितृणां प्रभो ।
यज्ञाध्ययनपुत्रैस्तान्यनिस्तीर्य त्यजन्पतेत् ॥३९॥

सभी धीर पुरुष ग्राम-संबन्धी सारी तृष्णा छोड़कर तपोवन में गये हैं, हे वसुदेवजी ! जब द्विज उत्पन्न होते हैं तब देव, ऋषि और पितरोंके ऋण भी उन्हीं के साथ उत्पन्न होते हैं, इसलिये जो यज्ञ द्वारा देव-ऋण, वेदाध्ययन द्वारा ऋषि-ऋण और पुत्र उत्पन्न करके पितृ-ऋण चुकायेबिना संसार को छोड़ देते हैं वे पतित होजाते हैं ॥३९॥

त्वं त्वद्य मुक्तो द्वाभ्यां वै ऋषिपित्रोर्महामते ।
यज्ञैर्देवर्णमुन्मुच्य निर्ऋणोऽशरणो भव ॥४०॥

हे महामति! आप अभी पितृ तथा ऋषि-ऋण से मोक्ष होचुके हैं, अब यज्ञ करके देव-ऋण भी चुका डालो, फिर गृह-त्याग कर देना ॥४०॥

वसुदेव भवान्नूनं भक्त्या परमया हरिम् ।
जगतामीश्वरं प्रार्चः स यद्वां पुत्रतां गतः ॥४१॥

हे वसुदेवजी ! आपने निश्चयही जगत्पति भगवान् विष्णु का परम भक्ति के साथ पूजन किया है इसीलिये ये विष्णु भगवान् पुत्र रूप में आप के यहाँ प्रकट हुए हैं ॥४१॥

श्रीशुक उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा वसुदेवो महात्मनाम् ।
तानृषीनृत्विजो वव्रे मूर्ध्नाऽऽनम्य प्रसाद्य च ॥४२॥

श्रीशुकदेवजी बोले-उदार हृदय वसुदेवजी ने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनका ऐसा वचन सुनकर उन्हें सिर से प्रणाम करके प्रसन्न करते हुए ऋत्विज का काम करने के लिये वरण किया ॥४२॥

त एनमृषयो राजन्वृता धर्मेण धार्मिकम् ।
तस्मिन्नयाजयन्क्षेत्रे मखैरुत्तमकल्पकैः ॥४३॥

हे राजन् ! धर्म के नियम सहित वरण किये हुए वे ऋषिजन कुरुक्षेत्र में धर्मात्मा वसुदेवजी का श्रेष्ठ सामग्रियों सहित यज्ञ कराने लगे ॥ ४३ ॥

तदीक्षायां प्रवृत्तायां कृष्णयः पुष्करस्रजः ।
स्नाताः सुवाससो राजन्राजानः सुष्ठ्वलंकृताः४४॥

हे राजन् ! जिस समय वसुदेवजी ने यज्ञ की दीक्षा ली, उस समय यादव तथा राजालोग स्नान करके सुन्दर वस्त्र और कमलकी माला धारण कर के आभूषणोंसे सुसज्जित होकर शोभा देने लगे ॥

तन्महिष्यश्च मुदिता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः ।
दीक्षाशालामुपाजग्मुरालिप्ता वस्तुपाणयः ॥४५॥

और वसुदेवजी की स्त्रियाँ भी चन्दन आदि लेपन किये हुए, कण्ठमें आभूषण पहने हुए, स्वच्छ वस्त्र धारण कियेहुए और पूजन-सामग्री हाथमें लिये हुए प्रसन्न होकर दीक्षा-गृह में आयीं ॥ ४५ ॥

नेदुर्मृदङ्गपटहशङ्खभेर्यानकादयः ।
ननृतुर्वटनर्तक्यस्तुष्टुवुः सूतमागधाः ।
जगुः सुकण्ठ्यो गन्धर्व्यः संगीतं सहभर्तृकाः४६॥

मृदङ्ग, शंख, पटह, भेरी, आनक आदि बाजे बजने लगे, नट तथा नर्त्तक नाचने लगे, सूत और मागध स्तुति करनेलगे, सुन्दर स्वर और कंठवाली गन्धर्वोंकी स्त्रियां अपने २ पतिके साथ गाने लगीं ॥

तमभ्यषिञ्चन्विधिवदक्तमभ्यक्तमृत्विजः ।
पत्नीभिरष्टादशभिः सोमराजमिवोडुभिः ॥४७॥

जैसे ताराओं के साथ चन्द्रमा का अभिषेक हुआ था, वैसे ही ऋत्विजों ने वसुदेवजीकी आँखों में अंजन लगाकर और देह में मक्खन मलकर, अठारह स्त्रियोंके साथ उनका अभिषेक किया ॥४७॥

ताभिर्दुकूलवलयैर्हारनूपुरकुण्डलैः ।
स्वलंकृताभिर्विबभौ दीक्षितोऽजिनसंवृतः ॥४८॥

मृग-चर्म ओढ़े हुए दीक्षित वसुदेवजी वस्त्र, कङ्कण, हार, नूपुर और कुंडल आदि अलंकारोंसे सुसज्जित स्त्रियोंके साथ शोभा देने लगे ॥ ४८ ॥

तस्यर्त्विजो महाराज रत्नकौशेयवाससः ।
ससदस्या विरेजुस्ते यथा वृत्रहणोऽध्वरे ॥४९॥

हे राजन् ! वसुदेवजीके यज्ञमें रत्न और रेशमी वस्त्र धारण कियेहुए ऋत्विज और सभासद इन्द्र यज्ञ की नाईं शोभा देरहे थे ॥४९॥

तदा रामश्च कृष्णश्च स्वैः स्वैर्बन्धुभिरन्वितौ ।
रेजतुः स्वसुतैर्दारैर्जौवेशौ स्वविभूतिभिः ॥५०॥

उस समय सब प्राणियों के स्वामी श्रीकृष्ण और बलरामजी अपने बन्धुओं सहित स्त्री, पुत्र और विभूतियों से शोभा दे रहे थे ॥५०॥

ईजेऽनुयज्ञं विधिना अग्निहोत्रादिलक्षणैः ।
प्राकृतैर्वैकृतैर्यज्ञैर्द्रव्यज्ञानक्रियेश्वरम् ॥५१॥

प्रत्येक यज्ञ में विधि पूर्वक अग्निहोत्र आदि प्रकृति और विकृतिरूप यज्ञों द्वारा द्रव्य-मंत्र और कर्मोंके ईश्वर विष्णु का पूजन होने लगा ॥५१॥

अथर्त्विग्भ्योऽददात्काले यथाम्नातं स दक्षिणाः ।
स्वलंकृतेभ्यो विप्रेभ्यो गोभूकन्या महाधनाः ५२॥

फिर शास्त्र-विधिके अनुसार भलीभांति शृङ्गार कराके ऋत्विज और ब्राह्मणों को समय पर उत्तम धन युक्त दक्षिणा के साथ गौ, पृथ्वी और कन्या दान दिये ॥५२॥

पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वा ते महर्षयः ।
सस्नू रामह्रदे विप्रा यजमानपुरःसराः ॥५३॥

उन महर्षि और ब्राह्मणों ने पत्नी संयाज और अवभृथ नाम की क्रियायें करवाने के पश्चात् यजमानको आगे लेकर 'राम-कुंड' में स्नान करवाया ॥

स्नातोऽलंकारवासांसि बन्दिभ्योऽदात्तथा स्त्रियः ।
ततः स्वलंकृतो वर्णानाश्वभ्योऽन्नेन पूजयत् ॥५४॥

स्नान और सुन्दर शृङ्गार करके वसुदेवजी तथा उनकी स्त्रियों ने बन्दीजनोंको अलंकार और वस्त्र दिये और सब वर्णों तथा श्वान-पर्यन्त सब जीवों का उन्हें अन्न दान देकर सत्कार किया॥५४॥

बन्धून्सदारान्ससुतान्पारिबर्हेण भूयसा ।
विदर्भकोसलकुरून्काशिकेकयसृञ्जयान् ॥५५॥
सदस्यर्त्विक्सुरगणान्नृभूतपितृचारणान् ।
श्रीनिकेतमनुज्ञाप्य शंसन्तः प्रययुः क्रतुम् ॥५६॥

बन्धु, उनकी स्त्रियाँ, उनके पुत्र, सभासद,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऋत्विज, देवगण, मनुष्य, भूत, पितृ, चारण और विदर्भ, कोशल, कुरु, काशि, कैकय तथा सृञ्जय वंशी क्षत्रियों को अधिक पारितोषिक देकर उनका सत्कार किया, वे लोग यज्ञ की प्रशंसा करते हुए भगवान्से आज्ञा लेकर वहाँसे चलदिये ॥५५॥५६॥

धृतराष्ट्रोऽनुजः पार्थो भीष्मो द्रोणः पृथा यमौ ।
नारदो भगवान्व्यासः सुहृत्संबन्धिबान्धवाः॥५७॥
बन्धून्परिष्वज्य यदून्सौहृदाऽक्लिन्नचेतसः ।
ययुर्विरहकृच्छ्रेण स्वदेशांश्चापरे जनाः ॥५८॥

धृतराष्ट्र, विदुर, भीष्म, द्रोण, कुन्ती,युधिष्ठिर भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव,महात्मा नारद,व्यास मित्र, सम्बन्धी और बान्धव कि जिनका चित्त स्नेह के कारण द्रवित होरहा था, वे लोग अपने सम्बन्धी यादवों से मिलकर वियोगका कष्ट सहन न करते हुए बड़ी कठिनाईसे अपने २ देशको गये, तब अन्य लोगोंने भी वहाँसे प्रस्थान किया ५७।५८

नन्दस्तु सह गोपालैर्बृहत्या पूजयार्चितः ।
कृष्णरामोग्रसेनाद्यैर्न्यवात्सीद्बन्धुवत्सलः ॥५९॥

श्रीराम-कृष्ण और उग्रसेन आदि बान्धवों से विशेष सत्कार पाकर बन्धु वत्सल नन्दरायजी ग्वालों सहित कुछ दिनोंतक वहीं निवास करतेरहे।

वसुदेवोऽञ्जसोत्तीर्य मनोरथमहार्णवम् ।
सुहृद्वृतः प्रीतमना नन्दमाह करे स्पृशन् ॥६०॥

सहज ही में अपने मनोरथ रूपी महासागरसे पार उतर कर प्रसन्न चित्त तथा सम्बन्धीजनों से आवृत वसुदेवजी ने नन्दरायजी का हाथ पकड़ कर उनसे कहा ॥६०॥

वसुदेव उवाच

भ्रातरीशकृतः पाशो नृणां यः स्नेहसंज्ञितः ।
तं दुस्त्यजमहं मन्ये शूराणामपि योगिनाम्॥६१॥

वसुदेवजी बोले–हे भाई ! मैं यह जानताहूँ कि ईश्वर ने जो स्नेह नाम का जाल मनुष्यों पर डाल रक्खा है, उसका छुड़ाना वीर तथा योगी जनों को भी कठिन है ॥६१॥

अस्मास्वप्रतिकल्पेयं यत्कृताऽज्ञेषु सत्तमैः ।
मैत्र्यर्पिताऽफला वापि न निवर्तेत कर्हिचित् ॥६२॥

आप महात्माओंने जो हम कृतघ्न लोगोंकेसाथ मित्रता की है उसका बदला हम कभी नहीं देसकते फिर भी वह सदैव वैसी ही बनी रहती है और कभी कम नहींहोती, इससे जान पड़ताहै कि ईश्वर ने आप पर यह बन्धन डाल रक्खा है ॥६२॥

प्रागकल्पाच्च कुशलं भ्रातर्वो नाचरामहि ।
अधुना श्रीमदान्धाक्षा न पश्याम पुरः सतः॥६३॥

हे भाई ! पहले असमर्थ होने के कारण हम आपका कुछ भी भला न करसके और अब लक्ष्मी के मद से अन्धे होकर सामने खड़े हुए आप महात्माओं को देखते भी नहीं ॥ ६३ ॥

मा राज्यश्रीरभूत्पुंसः श्रेयस्कामस्य मानद ।
स्वगतानुत बन्धून्वा न पश्यति यथान्धदृक्॥६४॥

हे मानदाता ! कल्याणके चाहनेवाले लोगों को लक्ष्मी प्राप्त न होनी चाहिये; क्योंकि इससे अंधा होकर मनुष्य अपने आश्रित तथा बन्धुओं को भी नहीं देखता ॥ ६४ ॥

श्रीशुक उवाच

एवं सौहृदशैथिल्यचित्त आनकदुन्दुभिः ।
रुरोद तत्कृतां मैत्रीं स्मरन्नथ विलोचनः ॥६५॥

श्रीशुकदेवजी बोले–इसप्रकार स्नेहसे शिथिल चित्त वाले वसुदेवजी नेत्रोंमें आँसू भरकर नँदजी के उपकारों का स्मरण करके रोने लगे ॥६५॥

नन्दस्तु सख्युः प्रियकृत्प्रेम्णा गोविन्दरामयोः ।
अद्य श्व इति मासांस्त्रीन्यदुभिर्मानितोऽवसत्॥६६॥

नन्दरायजी यादवों से सन्मान पाकर अपने मित्र वसुदेवजी को प्रसन्न करतेहुए, श्रीराम-कृष्ण के प्रेम से 'आज-कल–आज-कल' करते-करते तीन मास तक रहे, कि जिस समय का कोई मूल्य नहीं हो सकता ॥६६॥

ततः कामैः पूर्यमाणः सव्रजः सहबान्धवः ।
परार्ध्याभरणक्षौमनानानर्घ्यपरिच्छदैः ॥६७॥
वसुदेवोग्रसेनाभ्यां कृष्णोद्धवबलादिभिः ।
दत्तमादाय पारिबर्हं यापितो यदुभिर्ययौ ॥६८॥

फिर अमूल्य आभूषण,रेशमीवस्त्र और अनेक प्रकार के सामान तथा वाञ्छित कामनाओंसे परिपूर्ण नन्दरायजी व्रज-बान्धवों को साथ लेकर वसुदेवजी, उग्रसेनजी, श्रीराम-कृष्ण, उद्धव आदि यादवों की दी हुई पहरावनी लेकर बिदा हुए,उस समय यादवों ने एक बड़ी सेना उनके साथ भेजी ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नन्दो गोपाश्च गोप्यश्च गोविन्दचरणाम्बुजे ।
मनः क्षिप्तं पुनर्हर्तुमनीशा मथुरां ययुः ॥६६॥

श्रीकृष्णजी के चरणारविंद में लगे हुए मनको उनसे मोड़नमें विवश नन्द, गोप और गोपियाँ मथुरा को चलीं ॥६६॥

बन्धुषु प्रतियातेषु वृष्णयः कृष्णदेवताः ।
वीक्ष्य प्रावृषमासन्नां ययुर्द्वारवतीं पुनः ॥७०॥

बन्धुजनों के जाने पर श्रीकृष्णजी को इष्टदेव मानने वाले यादवगण वर्षा ऋतु का आगम जान कर द्वारका को लौटे ॥७०॥

जनेभ्यः कथयाञ्चक्रुर्यदुदेवमहोत्सवम् ।
यदासीत्तीर्थयात्रायां सुहृत्संदर्शनादिकम् ॥७१॥

उन्होंने तीर्थ यात्रा में वसुदेवजी के यज्ञ के महोत्सव और सम्बन्धियोंके समागमका यथारूप वर्णन और लोगों को आकर सुनाया ॥ ७१ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥

पचासीवां अध्याय

(श्रीराम-कृष्ण तत्व-ज्ञान कथन)

श्रीबादरायणिरुवाच

अथैकदात्मजौ प्राप्तौ कृतपादाभिवन्दनौ ।
वसुदेवोऽभिनन्द्याह प्रीत्या संकर्षणाच्युतौ ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-फिर एकदिन जब श्रीराम कृष्णने वसुदेवजीके पास आकर उन्हें प्रणामकिया तब उन्होंने प्रेम पूर्वक सत्कार करके कहा ॥१॥

मुनीनां स वचः श्रुत्वा पुत्रयोर्धामसूचकम् ।
तद्वीर्यैर्जातविश्रम्भः परिभाष्याभ्यभाषत ॥ २ ॥

पुत्रों के प्रभाव को जतलाने वाले मुनियों के वचन सुनकर उनके पराक्रमोंको देखनेसे विश्वास पायेहुए वसुदेवजीने उन्हें संबोधित करके कहा कि॥

कृष्ण कृष्ण महायोगिन्संकर्षण सनातन ।
जाने वामस्य यत्साक्षात्प्रधानपुरुषौ परौ ॥ ३ ॥

हे कृष्ण, हे कृष्ण! हे महायोगिन्! हे संकर्षण! हे सनातन! आप इस जगत्के कारण, प्रधानपुरुष और उनके भी ईश्वरहैं, मैं ऐसा जानता हूँ ॥३॥

यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा ।
स्यादिदं भगवान्साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ ४ ॥

जिसमें जिस साधन से, जिससे जिस कारण से, जिसका, जिसके लिये, जिसको, जो, जिस प्रकार और जब यह जगत् स्थित हुआ है और स्थित किया जाता है, उस सब भोग्य और भोक्ता के नियंता आप ही हैं ॥४॥

एतन्नानाविधं विश्वमात्मसृष्टमधोक्षजः ।
आत्मनानुप्रविश्यात्मन्प्राणो जीवो बिभर्त्यजः॥५॥

हे अधोक्षज! हे आत्म रूप! आप जन्मरहित हो और अपने रचे इस अनेक प्रकार के जगत् में अपने ही रूप से प्रविष्ट होकर क्रिया तथा ज्ञान-शक्ति का रूप धारण करके इसका भरण पोषण करते हो॥ ५ ॥

प्राणादीनां विश्वसृजां शक्तयो याः परस्यताः ।
पारतन्त्र्याद्वै सादृश्याद्व्योश्चेष्टैव चेष्टताम् ॥ ६ ॥

जगत् कारणरूप जो प्राण आदिकी शक्तियां हैं वे सब आप ही ईश्वर की हैं, प्राण आदिकी नहीं, क्योंकि क्रिया करनेवाले प्राण आदि पदार्थ परतंत्र और जड़हैं, यह केवल चेष्टा वालेही हैं, शक्ति वाले नहीं, जैसे तृण आदि पदार्थों में चलने की शक्ति पवन के बल पर है, स्वतः नहीं ॥६॥

कान्तिस्तेजः प्रभा सत्ता चन्द्राग्न्यर्कर्क्षविद्युताम् ।
यत्स्थैर्यं भूभृतां भूमेर्वृत्तिर्गन्धोऽर्थतो भवान्॥ ७ ॥

चन्द्रमाका प्रकाश, अग्निका तेज; सूर्यकी प्रभा नक्षत्र और बिजली की चमक, पर्वतोंकी स्थिरता, पृथ्वी की आधार शक्ति और गंध-यह सब आपही की शक्तियाँ हैं ॥७॥

तर्पणं प्राणनमपां देवत्वं ताश्च तद्रसः ।
ओजः सहो बलं चेष्टा गतिर्वायोस्तवेश्वर ॥ ८ ॥

हे देव! जल तथा उसकी तृप्ति करनेकी शक्ति प्राण बचाने की शक्ति और उसका रस-यह सब आप ही हैं, हे ईश्वर! वायुके जो ओज, सह,बल, चेष्टा और गति हैं वे सभी आपही के हैं ॥८॥

दिशां त्वमवकाशोऽसि दिशः खं स्फोट आश्रयः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नादो वर्णस्त्वमोंकार आकृतीनां पृथक्कृतिः ॥९॥

दिशायें, उनके अवकाश, आकाश और उसका शब्द रूप गुण, उसकी मात्रा वाणी, आकार और नाम रूप से कहनेमें आनेवाले आप ही हैं ॥९॥

इन्द्रियं त्विन्द्रियाणां त्वं देवाश्च तदनुग्रहः ।
अवबोधो भवान्बुद्धेर्जीवस्यानुस्मृतिः सती ॥१०॥

इन्द्रियों में प्रकाश करने की शक्ति, उनके देवता तथा अधिष्ठान शक्ति और बुद्धि की निश्चय शक्ति एवं अन्तःकरण की श्रेष्ठ अनुसन्धान शक्ति आप ही हैं ॥१०॥

भूतानामसि भूतादिरिन्द्रियाणां च तैजसः ।
वैकारिको विकल्पानां प्रधानमनुशायिनाम् ॥११॥

पंचभूतों का कारण, तामस अहङ्कार, इन्द्रियों के देवताओं का कारण सात्विक अहङ्कार, इन्द्रियों का उत्पादक राजस अहङ्कार और जीवों की सृष्टि का कारण प्रधान आप ही हैं ॥११॥

नश्वरेष्विह भावेषु तदसि त्वमनश्वरम् ।
यथा द्रव्यविकारेषु द्रव्यमात्रं निरूपितम् ॥१२॥

जैसे नाशवान् पदार्थ घट, कुण्डल आदि में मिट्टी और सोना आदि पदार्थ अविनाशी हैं, वैसे उपरोक्त सब पदार्थोंमें अविनाशी पदार्थ आपहीहैं॥

सत्वं रजस्तम इति गुणास्तद्वृत्तयश्च याः ।
त्वय्यद्धा ब्रह्मणि परे कल्पिता योगमायया॥१३॥

सत, रज और तमोगुण तथा उनके परिणाम रूप महत्तत्त्व आदि पदार्थ आप साक्षात् परब्रह्म रूप में माया से कल्पना किये जाते हैं ।१३॥

तस्मान्न सन्त्यमी भावा यर्हि त्वयि विकल्पिताः ।
त्वं चामीषु विकारेषु ह्यन्वयाद्व्यावहारिकः॥१४॥

इस कारण यह पदार्थ आपसे पृथक् नहीं हैं, जब इन पदार्थों की कल्पना की जाती है (अर्थात् तत्व-उत्पत्ति होती है) तब केवल विश्वास से ऐसा जान पड़ता है, मानो वे आपमें आप कारण रूपसे उनमें हो, जब उनकी कल्पना नहीं कीजाती (अर्थात् तत्व-भेद नष्ट होजाता है) तब आप ही शेष रह जाते हैं॥१४॥

गुणप्रवाह एतस्मिन्नबुधास्त्वखिलात्मनः ।
गतिं सूक्ष्मावबोधेन संसरन्तीह कर्मभिः ॥१५॥

इस गुणों के प्रवाह रूपी संसारमें आप सर्वात्मा की सूक्ष्म गति न जाननेवाले लोग देहाभिमान से किये हुए कर्मों के वश होकर जन्म मरण को प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥

यदृच्छया नृतां प्राप्य सुकल्पामिह दुर्लभाम् ।
स्वार्थे प्रमत्तस्य वयो गतं त्वन्माययेश्वर ॥१६॥

हे ईश्वर ! दैवयोग से अत्यन्त सुघर इन्द्रियां और दुर्लभ मनुष्य-तन पाकरभी मैंने आपकी माया से असावधान रहकर समस्त आयु वृथाही खोदी।

असावहं ममैवैते देहे चास्यान्वयादिषु ।
स्नेहपाशैर्निबध्नाति भवान्सर्वमिदं जगत् ॥१७॥

आपने इस जगत् को ऐसे स्नेह-बन्धनमें बांध रक्खा है कि वह अपने देह को 'यह मैं हूँ' और अपने पुत्रादि को 'ये मेरे हैं'ऐसा माना करता है ॥

युवां न नः सुतौ साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरौ ।
भूभारक्षत्रक्षपण अवतीर्णौ तथात्थ ह ॥१८॥

आप हमारे पुत्र नहीं, वरन् प्रधान पुरुष ईश्वर हैं और पृथ्वी के भार रूप क्षत्रियों का संहारकरने के लिये अवतीर्ण हुए हो, क्योंकि आप ऐसेही हो॥

तत्ते गतोऽस्म्यरणमद्य पदारविन्दमापन्नसंसृति भयापहमार्तबन्धो । एतावताऽलमलमिन्द्रिय-लालसेन मर्त्यात्मदृक् त्वयि परे यदपत्यबुद्धिः१९॥

हे दीनबन्धु ! इसीलिये आज मैं आपके चरणारविंद की शरण आया हूँ, जो शरणागतों को संसार रूपी भय से छुड़ा देतेहैं, विषयकी लालसा इतनी है कि मैंने इस नश्वर शरीरको आत्मा और आप परब्रह्म को पुत्र समझा ॥१९॥

सूतीगृहे ननु जगाद भवानजौ नौ संजज्ञ इत्यनुयुगं निजधर्मगुप्त्यै । नानातनुर्गगनवद्विद-धज्जहासि को वेद भूम्न उरुगाय विभूतिमायाम्२०

आपने सूतिका-गृहमें मुझसे कहाथा कि पहले जन्ममें तुम सुतपा और पृश्नि हुए थे, फिर कश्यप और अदिति हुए थे और अब की बार वसुदेव और देवकी हुए हो, मैं अजन्मा होकर भी तुम्हारे तीनों जन्मोंमें तीन बार धर्मकी रक्षा करनेके लिये तुमसे जन्म लेकर आयाहूँ, आप आकाशकी भांति निर्मल हो और अनेक रूप धारण करते हो और छोड़ते हो, हे सर्वव्यापक ! आपकी वैभव-रूपिणी माया को कौन जान सकता है ? ॥२०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीशुक उवाच

आकर्ण्येत्थं पितुर्वाक्यं भगवान्सात्वतर्षभः ।
प्रत्याह प्रश्रयाऽऽनम्रः प्रहसन् श्लक्ष्णया गिरा॥२१॥

श्रीशुकदेवजी बोले–यादवोत्तम तथा विनम्र भगवान् ने पिता के इस प्रकार वचन सुनकर हास्य पूर्वक मीठी वाणी से कहा ॥२१॥

श्रीभगवानुवाच

वचो वः समवेतार्थं तातैतदुपमन्महे ।
यन्नः पुत्रान्समुद्दिश्य तत्त्वग्राम उदाहृतः ॥२२॥

श्रीभगवान् बोले–हे तात ! हम पुत्रों के विषय में जो आपने तत्व निरूपण कियाहै उसे हम सत्य मानते हैं ॥ २२ ॥

अहं यूयमसावार्य इमे च द्वारकौकसः ।
सर्वेऽप्येवं यदुश्रेष्ठ विमृश्याः सचराचरम् ॥२३॥

हे यदुश्रेष्ठ ! मैं, यह बड़े भाई (बलरामजी), द्वारकावासी और सब स्थावर-जंगम जो हैं, इन सबको भी आप ऐसाही (परब्रह्म) समझिये ।२३॥

आत्मा ह्येकः स्वयंज्योतिर्नित्योऽन्यो निर्गुणो गुणैः ।
आत्मसृष्टैस्तत्कृतेषु भूतेषु बहुधेयते ॥२४॥
खं वायुर्ज्योतिरापो भूस्तत्कृतेषु यथाशयम् ।
आविस्तिरोऽल्पभूर्येको नानात्वं यात्यसावपि २५॥

जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश–पंच महाभूत घट आदि पदार्थों में प्रत्यक्ष, गुप्त, थोड़े या बहुत रूप से प्रतीत होते हैं, वैसे ही एक आत्मा भी आपके रचे हुए गुणों से प्रकट कियेहुए शरीरों में अनेक प्रकार से प्रतीत होताहै, वास्तव में वह (आत्मा) एक, स्वयं प्रकाश, नित्य, सब से पृथक् और निर्गुण है ॥२४॥२५॥

श्रीशुक उवाच

एवं भगवता राजन्वसुदेव उदाहृतः ।
श्रुत्वा विनष्टनानाधीस्तूष्णीं प्रीतमना अभूत्॥२६॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! इसप्रकार भगवान् के वचन सुनकर वसुदेवजी भेद-बुद्धि छोड़ कर प्रसन्न चित्त होते हुए मौन होगये ॥२६॥

अथ तत्र कुरुश्रेष्ठ देवकी सर्वदेवता ।
श्रुत्वाऽऽनीतं गुरोः पुत्रमात्मजाभ्यां सुविस्मिता ॥
कृष्णरामौ समाश्राव्य पुत्रान्कंसविहिंसितान् ।
स्मरन्ती कृपणं प्राह वैक्लव्याद श्रुलोचना ॥२८॥

देवकी ने जब यह सुना कि मेरे पुत्र गुरु के मृतक पुत्रको (यमलोकसे) लौटा लाये थे,तब वह बहुत ही चकित होकर, कंस द्वारा मारे हुए अपने पुत्रों का स्मरण करके विकलता के कारण नेत्रोंमें आँसू भरकर श्रीराम-कृष्णको बतलाती हुई यह वचन कहने लगी ॥२७॥ २८॥

देवक्युवाच

राम रामाप्रमेयात्मन्कृष्ण योगेश्वरेश्वर ।
वेदाहं वां विश्व सृजामीश्वरावादिपूरुषौ ॥२९॥

देवकी बोली–हे राम ! हे राम ! हे अप्रमेय आत्मा ! हे कृष्ण ! हे योगेश्वर ! आप दोनों प्रजा पतियों के ईश्वर और आदि पुरुष हैं–ऐसा मैं जानती हूँ ॥ २९ ॥

कालविध्वस्तसत्त्वानां राज्ञामुच्छास्त्रवर्तिनाम् ।
भूमेर्भारायमाणानामवतीर्णौ किलाद्य मे ॥३०॥

काल के प्रभावसे सतोगुणका नाश होने पर शास्त्र-मर्यादा तोड़कर चलनेवाले पृथ्वीके भाररूप राजाओं का नाश करके, पृथ्वी का बोझ उतारने के लिये आप इस समय प्रकट हुए हैं ॥३०॥

यस्यांशांशांशभागेन विश्वोत्पत्तिलयोदयाः ।
भवन्ति किल विश्वात्मंस्तं त्वाऽद्याहं गतिं गता ३१

हे विश्वात्मन् ! हे आद्य ! जिसके अंशके भी अंश रूप मायाके गुणोंके लेश से जगत्की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय होती है, उन आपके मैं शरण आई हूँ ॥ ३१ ॥

चिरान्मृतसुतादाने गुरुणा किल चोदितौ ।
आनिन्यथुः पितृस्थानाद्गुरवे गुरुदक्षिणाम्॥३२॥
तथा मे कुरुतं कामं युवां योगेश्वरेश्वरौ ।
भोजराजहतान्पुत्रान्कामये द्रष्टुमाहृतान् ॥३३॥

हे योगेश्वरों के भी ईश्वर ! जब गुरुने अपने चिरकाल से मरे हुए पुत्र को ला देनेके लिये आप से कहा था, तब आपने उसे यमलोक से लाकर गुरु-दक्षिणा रूप में उनको भेंट किया था, इसी प्रकार मेरी भी इच्छा पूर्ण कीजिये, अर्थात् कंसके द्वारा मारे हुए मैं अपने पुत्रों को देखना चाहतीहूँ, आप उन्हें भी ले आयें ॥३२॥३३॥

श्रीशुक उवाच

एवं सञ्चोदितौ मात्रा रामः कृष्णश्च भारत ।
सुतलं संविविशतुर्योगमायमुपाश्रितौ ॥३४

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन्! इस तरह अपनी माताकी प्रेरणासे श्रीराम-कृष्ण अपनी योगमायाके बल द्वारा सुतल लोक में गये ॥३४॥

तस्मिन्प्रविष्टावुपलभ्य दैत्यराड् विश्वात्मदेवं सुतरां यथात्मनः। तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुताशयः सद्यः समुत्थाय ननाम सान्वयः ॥३५॥

जगदात्मा, देवरूप और और अपने परम इष्ट देव दोनों भाइयों को पातालमें आया हुआ देखकर उनके दर्शनों से राजा बलि का अन्तःकरण आनंद पूर्ण होगया, उसने तुरन्तही अपने परिवारसहित उठकर उन दोनों को प्रणाम किया ॥३५॥

तयोः समानीय वरासनं मुदा निविष्टयोस्तत्र महात्मनोस्तयोः। दधार पादावनिज्य तज्जलं सवृन्द आब्रह्म पुनद्यदम्बु ह ॥३६॥

और प्रेमसहित आसन लाकर उन महात्माओं को बिठलाया, फिर चरण पखार कर ब्रह्मातक को पवित्र करने वाला वह जल उसने सपरिवार सिर पर चढ़ाया ॥३६॥

समर्हयामास स तौ विभूतिभिर्महार्हवस्त्राभरणानुलेपनैः। ताम्बूलदीपामृतभक्षणादिभिः स्वगोत्रवित्तात्मसमर्पणेन च ॥३७॥

उत्तम वस्त्र, आभूषण, लेपन, तांबूल, दीप और अमृत के समान भोजन आदि अनेक वैभवों द्वारा उनका पूजन किया और अपना तन, धन तथा कुटुम्ब सभी उन्हें अर्पण किया ॥३७॥

स इन्द्रसेनो भगवत्पदाम्बुजं बिभ्रन्मुहुः प्रेमविभिन्नया धिया। उवाच हाऽऽनन्दजलाकुलेक्षणः प्रहृष्टरोमा नृपगद्गदाक्षरम् ॥३८॥

हे राजन्! प्रेम से द्रवित बुद्धि द्वारा भगवान् के चरणारविन्द को बारंबार धारण करता हुआ आनन्द के आँसुओं से विह्वल नेत्रवाला राजाबलि गद्गद शरीर तथा कंठ होकर कहने लगा ॥३८॥

बलिरुवाच

नमोऽनन्ताय बृहते नमः कृष्णाय वेधसे। साङ्ख्ययोगवितानाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥३९॥

बलि बोला–अपने फण के एक भाग में जगत् को धारण करने वाले महा शेषरूप (बलरामजी!) मैं आपको प्रणाम करता हूँ, जगत्के विधाता तथा सांख्य योग के विस्तार-कर्त्ता परमात्मा कृष्ण-मूर्ति मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ३९ ॥

दर्शनं वां हि भूतानां दुष्प्रापं चाप्यदुर्लभम्। रजस्तमःस्वभावानां नः प्राप्तौ यदृच्छया ॥४०॥

आपके दर्शन जीवोंको दुर्लभ होनेपर भी आप की कृपा से कितने ही पुरुषों को सुलभ होजाते हैं, देखिये मुझ रजोगुणी और तमोगुणी को भी दैवेच्छा ही से दर्शन हुए हैं ॥४०॥

दैत्यदानवगन्धर्वाः सिद्धविद्याध्रचारणाः। यक्षरक्षःपिशाचाश्च भूतप्रमथनायकाः ॥४१॥

विशुद्धसत्त्वधाम्न्यद्धा त्वयि शास्त्रशरीरिणि। नित्यं निबद्धवैरास्ते वयं चान्ये च तादृशाः ॥४२॥

दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत, प्रमथ पति, हम तथा हमीं ऐसे आपसे वैर रखने वाले दूसरे लोगों को भी आप शुद्ध, सत्वमय और वेद-मूर्त्ति का दर्शन होजाता है ॥४१॥४२॥

केचनोद्बद्धवैरेण भक्त्या केचन कामतः। न तथा सत्त्वसंरब्धाः सन्निकृष्टाः सुरादयः ॥४३॥

जिस प्रकार कितने ही लोग बैर, भक्ति या कामना द्वारा आपके स्वरूप को प्राप्त होगये हैं, उस प्रकार सतोगुण वाले देवता आपके स्वरूप को नहीं जानते ॥४३॥

इदमित्थमिति प्रायस्तव योगेश्वरेश्वर। न विदन्त्यपि योगेशा योगमायां कुतो वयम् ॥४४॥

हे योगेश्वरों के भी ईश्वर! बहुधा योगेश्वरभी आपकी माया को ठीक २ यों नहीं कह सकते कि 'यह इसी प्रकारहै' तब हमतो जानही क्या सकतेहैं?

तन्नः प्रसीद निरपेक्षविमृग्ययुष्मत्पादारविन्दधिषणान्यगृहान्धकूपात्। निष्क्रम्य विश्वशरणाङ्घ्र्युपलब्धवृत्तिः शान्तो यथैक उत सर्वसखैश्चरामि ॥४५॥

इसलिये मुझपर ऐसी कृपा कीजिये कि मैं निष्काम पुरुषों के ढूंढ़ने योग्य आपके चरण-कमल के आश्रय से भिन्न घररूपी गहरे गढ़े में से निकल कर वृक्ष के तले स्वयं टूटकर गिरे हुए फल आदि से निर्वाह करता हुआ शान्त होकर अकेला या सबके मित्र रूप महात्माजनोंके साथ विचारकरूँ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शाध्यस्मानीशितव्येश निष्पापान्कुरु नः प्रभो ।
पुमान्यच्छ्रद्धया तिष्ठञ्श्वोदनाया विमुच्यते ॥४६॥

हे प्रभु ! जीव मात्रके स्वामी ! हमें ऐसी आज्ञा देकर पाप-मोचन कीजिये कि जिसे श्रद्धा पूर्वक पालन करने से मनुष्यों का विधि-निषेधरूप बंधन छूट जाता है ॥४६॥

श्रीभगवानुवाच

आसन्मरीचेः षट् पुत्रा ऊर्णायां प्रथमेऽन्तरे ।
देवाः कं जहसुर्वीक्ष्य सुतां यभितुमुद्यतम् ॥४७॥

श्रीभगवान् बोले-स्वायंभुव मन्वंतर में मरीचि ऋषि के यहाँ ऊर्णा नाम स्त्री से छः पुत्र हुए थे, वे ब्रह्माजी को पुत्री के साथ रमण करने के लिये उद्यत देखकर हँसे थे ॥४७॥

तेनासुरीमगन्योनिमधुनाऽवद्यकर्मणा ।
हिरण्यकशिपोर्जाता नीतास्ते योगमायया ॥४८॥
देवक्या उदरे जाता राजन्कंसविहिंसिताः ।
सा ताञ्छोचत्यात्मजान्स्वांस्त इमेऽध्यासतेऽन्तिके॥

इसलिये हे राजन् ! वे तत्कालही असुर योनि को पाकर हिरण्यकश्यपके पुत्रहुए, फिर योगमाया ने उन्हें वहाँ से देवकी के उदर में पहुंचाया. जो कंस के हाथ से मारे गये थे, अभी देवकी अपने उन पुत्रों के लिये सोच करती है और वे आपके पास बैठे हैं ॥४८॥१६॥

इत एतान्प्रणेष्यामो मातृशोकापनुत्तये ।
ततः शापाद्विनिर्मुक्ता लोकं यास्यन्ति विज्वराः५०

इसलिये माताका शोक निवारण करनेके लिये मैं इन्हें यहाँ से ले जाऊँगा और फिर यह शाप-मुक्त, संताप रहित होकर देवलोक को जाँयगे५०॥

स्मरोद्गीथः परिष्वङ्गः पतङ्गः क्षुद्रभृद्घृणी ।
षडिमे मत्प्रसादेन पुनर्यास्यन्ति सद्गतिम् ॥५१॥

स्मर, उद्गिथ, परिष्वंग, पतंग, क्षुद्रभुक् और घृणी-यह छहों देवलोक में जाकर फिर मोक्ष हो जाँयगे ॥ ५१ ॥

इत्युक्त्वा तान्समादाय इन्द्रसेनेन पूजितौ ।
पुनर्द्वारवतीमेत्य मातुः पुत्रानयच्छताम् ॥५२॥

श्रीशुकदेवजी बोले-श्रीराम-कृष्ण ऐसी आज्ञा देकर बलि की पूजा ग्रहण कर और उन पुत्रों को लेकर द्वारका आये और उन्हें माता देवकीको दिये॥

तान्दृष्ट्वा बालकान्देवी पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी ।
परिष्वज्याङ्कमारोप्य मूर्ध्न्यजिघ्रदभीक्ष्णशः॥५३॥

उन्हें देखते ही पुत्र-स्नेह से देवकी के स्तन चू पड़े, वह उनसे मिलकर उन्हें गोदमें बिठाकर उन के सिरों को बार-बार सूंघने लगी ॥५३॥

अपाययत्स्तनं प्रीता सुतस्पर्शपरिप्लुता ।
मोहिता मायया विष्णोर्यया सृष्टिः प्रवर्तते ॥५४॥

सृष्टि में प्रवृत्ति करने वाली भगवान्की माया से मोहित और पुत्रोंके स्पर्शसे आनन्द-मग्न देवकी ने उन्हें दूध पिलाया ॥५४॥

पीत्वाऽमृतं पयस्तस्याः पीतशेषं गदाभृतः ।
नारायणाङ्गसंस्पर्शप्रतिलब्धात्मदर्शनाः ॥५५॥
ते नमस्कृत्य गोविन्दं देवकीं पितरं बलम् ।
भिषतां सर्वभूतानां ययुर्धाम दिवौकसाम् ॥५६॥

भगवान्के पीने से बचाहुआ देवकी का अमृत तुल्य दूध पीकर भगवान् के अङ्ग-स्पर्श से आत्म-ज्ञान को पाकर वे छहों भगवान्, देवकी, वसुदेव और बलरामजी को प्रणाम करके सब लोगों के समक्ष ही देवलोक को चले गये ॥५५॥५६॥

तद्दृष्ट्वा देवकी देवी मृतागमननिर्गमम् ।
मेने सुविस्मिता मायां कृष्णस्य रचितां नृप॥५७॥

हे राजन् ! मृत पुत्रों का आन-जाना देखकर विस्मित देवकी जानगई कि यह सब भगवान्की रची हुई माया है ॥५७॥

एवंविधान्यद्भुतानि कृष्णस्य परमात्मनः ।
वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य सन्त्यनन्तानि भारत ॥५८॥

हे राजन् ! अनन्त शक्ति, परमात्मा श्रीकृष्ण के ऐसे-ऐसे अद्भुत चरित्र अपार हैं ॥५८॥

सूत उवाच

य इदमनुशृणोति श्रावयेद्वा मुरारेश्चरितममृत-कीर्तिवर्णितं व्यासपुत्रैः । जगदघभिदलं तद्भक्त-सत्कर्णपूरं भगवति कृतचित्तो याति तत्क्षेमधाम५९

श्रीसूतजी बोले-श्रीशुकदेवजी के कहे हुए, जगत् पाप-नाशक, भक्तों के कानों को आभूषणरूप इस अमृत-कीर्त्ति भगवान् के चरित्र को जो पुरुष उन्हीं में मन लगाकर सुने या सुनाये, वह प्रभु के अभय पद को प्राप्त होता है ॥५९॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छियासीवां अध्याय

(भगवान् की मिथिला यात्रा)

राजोवाच

ब्रह्मन्वेदितुमिच्छामः स्वसारं रामकृष्णयोः।
यथोपयेमे विजयो या ममासीत्पितामही ॥ १ ॥

परीक्षित बोले–हे ब्रह्मन् ! राम-कृष्णकी बहिन सुभद्रा कि जो मेरी दादीथी, उसके साथ अर्जुनने जिस भांति व्याह किया सो मैं जानना चाहताहूँ ॥

श्रीशुक उवाच

अर्जुनस्तीर्थयात्रायां पर्यटन्नवनीं प्रभुः ।
ततः प्रभासमभ्गणोन्मातुलेयीं स आत्मनः ॥ २ ॥

दुर्योधनाय रामस्तां दास्यतीति न चापरे ।
तल्लिप्सुः स यतिर्भूत्वा त्रिदण्डी द्वारकामगात्॥३॥

श्रीशुकदेवजी बोले–प्रभु अर्जुन तीर्थ-यात्रा के निमित्त पृथ्वी में फिरते हुए प्रभास में पहुँचे वहाँ उन्होंने सुना कि अपने मामा वसुदेवजी की कन्या सुभद्रा को बलदेवजी दुर्योधन को देंगे, पर यह सम्बन्ध करने में दूसरों की सम्मति नहीं है, इस लिये वे उस कन्या की अभिलाषा करके त्रिदंडी सन्यासी का रूप धरकर द्वारका आये ॥ २ ॥ ३ ॥

तत्र वै वार्षिकान्मासानवात्सीत्स्वार्थसाधकः ।
पौरैः सभाजितोऽभीक्ष्णं रामेणाऽजानता च सः॥४॥

स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये अर्जुन वहाँ चौमासे के चार महीने रहे, पर वहाँ के लोगों को और बलदेवजी को उस छल का पता न चला, जिससे वे उनका बारंबार सत्कार करते रहे ॥ ४ ॥

एकदा गृहमानीय आतिथ्येन निमन्त्रितम् ।
श्रद्धयोपाहृतं भैक्ष्यं बलेन बुभुजे किल ॥ ५ ॥

एक दिन उन अतिथि रूप अर्जुन का निमंत्रण करके घर लाकर बलदेवजीने श्रद्धा से उन्हें भिक्षा दी और अर्जुन ने वहाँ भोजन किया ॥५॥

सोऽपश्यत्तत्र महतीं कन्यां वीरमनोहराम् ।
प्रीत्युत्फुल्लेक्षणस्तस्यां भावक्षुब्धं मनो दधे॥ ६ ॥

वहाँ उन्होंने वीर पुरुषोंके मन हरनेवाली एक बड़ी कन्या देखी, जिसपर दृष्टि पड़ते ही उनके नेत्र प्रीति से प्रफुल्लित होगये और रति की इच्छा से क्षोभित मन उसमें लग गया ॥६॥

सापि तं चमके वीक्ष्य नारीणां हृदयङ्गमम् ।
हसन्ती व्रीडितापाङ्गी तन्न्यस्तहृदयेक्षणा ॥ ७ ॥

स्त्रियों के मन हरने वाले अर्जुन को देखकर, उसने भी उसी भांति इच्छा की और वह मुसकराती हुई उनकी ओर नेत्र लगाकर, लाज भरे कटाक्ष के साथ देखने लगी ॥७॥

तां परं समनुध्यायन्नन्तरं प्रेप्सुरर्जुनः ।
न लेभे शं भ्रमच्चित्तः कामेनातिबलीयसा ॥ ८ ॥

केवल उसी का ध्यान करते हुए, उसके हरण का अवसर देखते हुए अति बलवान कामदेव से भ्रान्त चित्त अर्जुन को किसी भी तरह शान्ति न मिलती थी ॥८॥

महत्यां देवयात्रायां रथस्थां दुर्गनिर्गताम् ।
जहारानुमतः पित्रोः कृष्णस्य च महारथः ॥ ९ ॥

फिर बड़ी देव यात्रा के समय रथ में बैठकर सुभद्रा ज्योंही गढ़ से बाहर निकली त्योंही उसके माता-पिता और श्रीकृष्ण की सम्मति लेकर महा रथी अर्जुनने सुभद्रा का हरण किया ॥९॥

रथस्थो धनुरादाय शूरांश्चाऽरुन्धतो भटान् ।
विद्राव्य क्रोशतां स्वानां स्वभागं मृगराडिव ॥१०॥

रथ में बैठे हुए अर्जुन धनुष लेकर जो शूरवीर उन्हें रोकने के लिये सामने आये, उन्हें भगाकर सम्बन्धियों के कोलाहल करते हुए सुभद्राको इस प्रकार लेगये जैसे सिंह अपना भाग ले जाय ॥१०॥

तच्छ्रुत्वा क्षुभितो रामः पर्वणीव महार्णवः ।
गृहीतपादः कृष्णेन सुहृद्भिश्चान्वशाम्यत ॥११॥

यह बात सुनकर पूर्णिमाकी रातमें जैसे समुद्र क्षोभित होता है वैसेही बलदेवजी अधिक क्षोभित हुए, पर श्रीकृष्ण और दूसरे बन्धु लोगोंके चरणों में पड़ने से वे शान्त होगये ॥११॥

प्राहिणोत्पारिबर्हाणि वरवध्वोर्मुदा बलः ।
महाधनोपस्करेभरथाश्वनरयोषितः ॥१२॥

फिर बलदेवजीने आनन्दसे दहेज़में उन दूलह दुलहिन को अमूल्य सामान, हाथी, रथ, दास और दासियाँ आदि दिये ॥१२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीशुक उवाच

कृष्णस्यासीद्द्विजश्रेष्ठ श्रुतदेव इति श्रुतः ।
कृष्णैकभक्त्या पूर्णार्थः शान्तः कविरलम्पटः१३॥

श्रीशुकदेवजी बोले—एक श्रुतदेव नामका उत्तम ब्राह्मण जो केवल भगवान् की कृपाही से कृतकृत्य शान्त, विद्वान् और विषय-वासना से रहित तथा भगवान् का परम भक्त था ॥१३॥

स उवास विदेहेषु मिथिलायां गृहाश्रमी ।
अनीहयाऽऽगताऽऽहार्यनिवर्तितनिजक्रियः ॥१४॥

वह विदेह देश की मिथिलापुरी में रहा करता था और गृहस्थ होने पर भी उद्यम बिना जो कुछ अन्न आदि मिल जाता था उसी से अपना सब काम चलाता था ॥१४॥

यात्रामात्रं त्वहरहर्दैवादुपनमत्युत ।
नाधिकं तावता तुष्टः क्रियाश्चक्रे यथोचिताः॥१५॥

दैवगति से उसे प्रति दिन निर्वाह के योग्य अन्न मिल जाता था, पर अधिक नहीं मिलताऔर वह उतने ही से संतोष करके अपना यथा योग्य काम चलाता था ॥१५॥

तथा तद्राष्ट्रपालोऽङ्ग बहुलाश्व इति श्रुतः ।
मैथिलो निरहंमान उभावप्यच्युतप्रियौ ॥१६॥

हे महाराज ! उस देश का राजा जनक वंशी बहुलाश्व भी वैसाही अहङ्कार रहित और भगवान् का भक्त था, ये दोनोंही प्रभुके प्यारे थे ॥१६॥

तयोः प्रसन्नो भगवान्दारुकेणाहृतं रथम् ।
आरुह्य साकं मुनिभिर्विदेहान्प्रययौ प्रभुः ॥१७॥

इन दोनोंपर अधिक प्रसन्नहुए भगवान् दारुक के लाये हुए रथपर विराजकर मुनि लोगों के साथ विदेह देश में पधारे ॥१७॥

नारदो वामदेवोऽत्रिः कृष्णो रामोऽसितोऽरुणिः ।
अहं बृहस्पतिः कण्वो मैत्रेयश्च्यवनादयः ॥१८॥

उस समय नारदजी, वामदेव, अत्री, वेदव्यास जी, परशुराम, असित, अरुणि, मैं (शुकदेवजी) बृहस्पति, कण्व, मैत्रेय, च्यवन आदि सभी मुनि उनके साथ थे ॥१८॥

तत्र तत्र तमायान्तं पौरा जानपदा नृप ।
उपतस्थुः सार्घहस्ता ग्रहैः सूर्यमिवोदितम् ॥१९॥

हे महाराज ! मार्ग में मुनियों सहित-भगवान् जहाँ-जहाँ जाते वहीं नगर या देशवाले अर्घ्य लेकर सन्मुख आकर जैसे ग्रहों के साथ उदय हुए सूर्य को लोग सन्मान करते हैं वैसे सन्मान करते थे ॥

आनर्तधन्वकुरुजाङ्गलकङ्कमत्स्यपाञ्चालकुन्ति-
मधुकेकयकोसलार्णाः । अन्ये च तन्मुखसरोज-
मुदारहासस्निग्धेक्षणं नृप पपुर्दृशिभिर्नार्यः२०॥

हे महाराज ! अनर्त, धन्व, कुरु, जांगल, कङ्क, मत्स्य, पांचाल, कुंति, मधु, केकय, कौशल और अरुण देश के रहने वाले और दूसरे भी स्त्री-पुरुष सुन्दर हास्य और स्नेह भरी दृष्टि मय भगवान्के मुखारविन्द का नेत्रों से पान करते थे ॥२०

तेभ्यः स्वयीक्षणविनष्टतमिस्रदृग्भ्यः क्षेमं त्रिलोक
गुरुरर्थदृशं च यच्छन् । शृण्वन्दिगन्तधवलं स्वयशो
ऽशुभघ्नं गीतं सुरैर्नृभिरगाच्छनकैर्विदेहान् ॥२१॥

जिन लोगों का प्रभुके दर्शन से अज्ञान निवृत्त होगया था, उन्हें अभय तथा तत्व ज्ञान देते हुए दिगंत पर्यन्त व्याप्त, अशुभ मिटाने वाली, देवता और मनुष्यों से गाई जाती अपनी उज्ज्वल कीर्त्ति सुनते हुए श्रीकृष्ण भगवान् धीरे-धीरे विदेह देश में पधारे ॥२१॥

तेऽच्युतं प्राप्तमाकर्ण्य पौरा जानपदा नृप ।
अभीयुर्मुदितास्तस्मै गृहीतार्हणपाणयः ॥२२॥

हे महाराज ! भगवान् को आये हुए सुनकर प्रसन्न हुए नगर और देश के लोग हाथ में पूजन के पदार्थ लेकर उनके सन्मुख चले ॥२२॥

दृष्ट्वा त उत्तम श्लोकं प्रीत्युत्फुल्लाननाशयाः ।
कैर्धृताञ्जलिभिर्नेमुः श्रुतपूर्वांस्तथा मुनीन् ॥२३॥

उन्होंने उत्तम श्लोक भगवान् और प्रथम जिन के नाम ही सुना करते थे उन ऋषियों के दर्शनकर के प्रीति से प्रफुल्लित मुख और अन्तःकरण होकर हाथ जोड़कर शिर पर रखते हुए मस्तक झुका कर प्रणाम किया ॥२३॥

स्वानुग्रहाय संप्राप्तं मन्वानौ तं जगद्गुरुम् ।
मैथिलः श्रुतदेवश्च पादयोः पेततुः प्रभोः ॥२४॥

उन जगत् गुरु भगवान् को अपने ऊपर अनुग्रह करने को आये मानकर राजा बहुलाश्व और ब्राह्मण श्रुतदेव भगवान् के चरणों में गिर पड़े ॥

न्यमन्त्रयेतां दाशार्हमातिथ्येन सह द्विजैः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैथिलः श्रुतदेवश्च युगपत्संहताञ्जली ॥२५॥

बहुलाश्व और श्रुतदेवने हाथ जोड़कर ब्राह्मणों के साथ भगवान्का अतिथ्य सत्कार करने के लिये एक साथ निमन्त्रण किया ॥२५॥

भगवांस्तदभिप्रेत्य द्वयोः प्रियचिकीर्षया ।
उभयोराविशद्गेहमुभाभ्यां तदलक्षितः ॥२६॥

इन दोनोंका निमंत्रण मानकर दोनों को प्रसन्न रखने के लिये भगवान् ब्राह्मणों के साथ दो रूप धारण कर, दोनों के घर एक ही समय में पधारे और यह बात बहुलाश्व और श्रुतदेव के जानने में न आई ॥२६॥

श्रोतुमप्यसतां दूराज्जनकः स्वगृहागतान् ।
आनीतेष्वासनाग्र्येषु सुखासीनान्महामनाः॥२७॥
प्रवृद्धभक्त्या उद्धर्षहृदयास्राविलेक्षणः ।
गत्वा तदङ्घ्रीन्प्रक्षाल्य तदपो लोकपावनीः॥२८॥
सकुटुम्बो वहन्मूर्ध्ना पूजयाञ्चक्र ईश्वरान् ।
गन्धमाल्याम्बराकल्पधूपदीपार्घगोवृषैः ॥२९॥

बढ़ी हुई भक्ति के प्रताप से अति प्रसन्न चित्त और अश्रुओं से व्याकुल नेत्र, उदार मन, जनक राजा ने नीच पुरुषोंको जिनका नाम सुननाभी दूर है, ऐसे अपने घर आये हुए मुनि लोगों को अपने हाथ से लाये हुए उत्तम आसनों पर बिठाया और सुख पूर्वक विराजे हुए उन लोगों को प्रणाम कर चरण धोकर जगत् को पवित्र करने वाला चरणों का जल सकुटुम्ब शिर पर चढ़ाया और गंध,पुष्प वस्त्र, धूप, दीप, अलङ्कार,अर्घ,गौ और बैल अर्पण करके उन महात्माओं की पूजा की ॥२७॥२८॥२९॥

वाचा मधुरया प्रीणन्निदमाहान्नतर्पितान् ।
पादावङ्कगतौ विष्णोः संस्पृशञ्छनकैर्मुदा ॥३०॥

भोजन करके तृप्त हुए उन ब्राह्मणों को मधुर वाणी से प्रसन्न करता हुआ और गोद में लिये हुए भगवान् के चरणों का प्रीति से धीरे २ स्पर्शकरता हुआ राजा यह वचन बोला ॥३०॥

राजोवाच

भवान्हि सर्वभूतानामात्मा साक्षी स्वदृग्विभो ।
अथ नस्तत्पदाम्भोजं स्मरतां दर्शनं गतः ॥३१॥

बहुलाश्वने कहा–हे विभु ! आप सब जीवों के आत्मा, साक्षी और स्वयं प्रकाश हो, अतएव आप के चरणारविन्द का स्मरण करने वाले हमको आपने दर्शन दिया ॥३१॥

स्ववचस्तदृतं कर्तुमस्मद्दृग्गोचरो भवान् ।
यदात्थैकान्तभक्तान्मे नानन्तः श्रीरजःप्रियः॥३२॥

मुझे एकांत भक्त से बढ़कर शेषजी, लक्ष्मीजी या ब्रह्माजी भी प्रिय नहीं हैं' ऐसा जो आपने कहा है सो वही अपना वचन सत्य करनेके लिये आप ने मुझे दर्शन दिया है ॥३२॥

को नु त्वच्चरणाम्भोजमेवं विद्विसृजेत्पुमान् ।
निष्किञ्चनानां शान्तानां मुनीनां यस्त्वमात्मदः३३

आप निष्किंचन और शान्त मुनि लोगों को अपना स्वरूप देते हो इस बात को जानने वाला कौन मनुष्य आपके चरण कमलका त्याग करेगा ?

योऽवतीर्य यदोर्वंशे नृणां संसरतामिह ।
यशो वितेने तच्छान्त्यै त्रैलोक्यदृजिनापदम्॥३४॥

जिन्होंने यदुवंशमें अवतार धारणकर संसारी जीवों के संसार की निवृत्ति के लिये त्रिलोकी के संकट को हरने वाला अपना यश फैलायाहै ॥३४॥

नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ।
नारायणाय ऋषये सुशान्तं तप ईयुषे ॥३५॥

उन तीक्ष्ण बुद्धि परम शान्त, तप करने वाले, ऋषि स्वरूप, नारायण श्रीकृष्ण भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३५॥

दिनानि कतिचिद्भूमन्गृहान् नो निवस द्विजैः ।
समेतः पादरजसा पुनीहीदं निमेः कुलम् ॥३६॥

हे प्रभु ! कुछ दिन ब्राह्मणों के साथ रहिये और हम गृहस्थियों के घर तथा इस निमि राजा के कुल को अपनी चरण रजसे पवित्र कीजिये३६॥

श्रीशुक उवाच

इत्युपामन्त्रितो राज्ञा भगवांल्लोकभावनः ।
उवास कुर्वन्कल्याणं मिथिलानरयोषिताम्॥ ३७॥

श्रीशुकदेवजी बोले–जगत्पालक भगवान् की इस प्रकार राजा ने प्रार्थना की, तब मिथिलापुरी के स्त्री-पुरुषों का कल्याण करते हुए भगवान् कुछ दिन वहीं विराजे ॥३७॥

श्रुतदेवोऽच्युतं प्राप्तं स्वगृहाञ्जनको यथा ।
नत्वा मुनीन्सुसंहृष्टो धुन्वन्वासो ननर्त ह ॥३८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जब भगवान् श्रुतदेव के घर पधारे, तब वहभी जनक राजा के समान मुनि लोगोंको प्रणाम करके बहुत प्रसन्न हो वस्त्र घुमाता हुआ नृत्य करनेलगा।

तृणपीठबृसीष्वेतानानीतेषूपवेश्य सः ।
स्वागतेनाभिनन्द्याङ्घ्रीन्सभार्योऽवनिजे मुदा ।।३९।।

तृण, पीढ़े और चटाइयां लाकर उनपर उन्हें बैठाकर और आगत-स्वागत से सत्कार करके स्त्री के साथ उस ब्राह्मण ने प्रीति से चरण पखारे ॥

तदम्भसा महाभाग आत्मानं स सहान्वयम् ।
स्नापयाञ्चक्र उद्धर्षो लब्धसर्वमनोरथः ॥४०॥

उस सफल मनोरथ और महाभाग ब्राह्मण ने परम आनंदित होकर चरणों के जल से घर और कुटुम्ब सहित अपने शरीर को नहलाया ॥ ४०॥

फलार्हणोशीरशिवामृताम्भसा मृदा सुरभ्या तुलसीकुशाम्बुजैः । आराधयामास यथोपपन्नया सपर्यया सत्त्वविवर्धनान्धसा ॥४१॥

फल, पूजन के पदार्थ, खससे सुगंधित अमृत सा मधुर जल, सुगन्धित मृत्तिका तुलसी, दर्भ, कमल, सत्वगुण बढ़ाने वाला अन्न और बन सकने योग्य पूजा से उन महात्माओंका आराधन किया॥

स तर्कयामास कुतो ममान्वभूद्गृहान्धकूपे पतितस्य सङ्गमः । यः सर्वतीर्थास्पदपादरेणुभिः कृष्णेन चास्यात्मनिकेतभूसुरैः ॥४२॥

और वह विचार करने लगा कि मुझ घररूपी अन्धकूप में पड़े हुए को जिनकी चरण रज सब तीर्थों का आस्पदहै, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र और इनके आत्मा के निवास रूप ब्राह्मणों का समागम किस पुण्य से प्राप्त हुआ है ? ॥४२॥

सूपविष्टान्कृतातिथ्याञ्छ्रुतदेव उपस्थितः ।
सभार्यस्वजनापत्य उवाचाङ्घ्र्यभिमर्शनः ॥४३॥

फिर आतिथ्य-सत्कार करके भलेप्रकार विराजमान् किये हुए ब्राह्मणों के पास स्त्री; कुटुम्ब और पुत्रसहित आकर भगवान्के चरणोंका स्पर्श करता हुआ श्रुतदेव यह वचन बोला ॥ ४३ ॥

श्रुतदेव उवाच

नाद्य नो दर्शनं प्राप्तः परं परमपूरुषः ।
यर्हीदं शक्तिभिः सृष्ट्वा प्रविष्टो ह्यात्मसत्तया ॥४४॥

श्रुतदेव बोले-हे परमपुरुष ! जब आप अपनी शक्तियों से इस जगत् को रचकर इसमें अपनी सत्ता से प्रविष्ट हुए थे, तभी मुझे प्राप्त होचुके थे, परन्तु प्रत्यक्ष दर्शन तो आज ही हुए हैं ॥ ४४ ॥

यथा शयानः पुरुषो मनसैवात्ममायया ।
सृष्ट्वा लोकं परं स्वात्ममनुविश्यावभासते ॥४५॥

जैसे सोताहुआ पुरुष अपनी अविद्याके कारण मनहीसे स्वप्नमें दूसरा शरीर बनाकर उसमें प्रविष्ट सा जान पड़ताहै, उसी प्रकार आपभी इस जगत् को रचकर इसमें प्रविष्टसे प्रतीत होते हो ॥४५॥

शृण्वतां गदतां शश्वदर्चतां त्वाऽभिवन्दताम् ।
नृणां संवदतामन्तर्हृदि भास्यमलात्मनाम् ॥४६॥

जो मनुष्य निरन्तर आपही का श्रवण,कीर्त्तन चरचा, पूजन करते हैं और आप ही को प्रणाम करते हैं, उन शुद्ध हृदय वालों को भी आप उनके हृदय ही में दर्शन देते हैं ॥४६॥

हृदिस्थोऽप्यतिदूरस्थः कर्मविक्षिप्तचेतसाम् ।
आत्मशक्तिभिरग्राह्योऽप्यत्युपेतगुणात्मनाम् ॥४७॥

यद्यपि आप हृदय ही में रहते हैं फिरभी कर्मों से विक्षिप्त मन वालों से बहुत दूर हैं और यद्यपि आपको अहङ्कार आदि के द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता, फिर भी जिनके अन्तःकरण में आपके श्रवण-कीर्त्तन आदि का संस्कार है, आप उनके पास ही रहते हैं ॥४७॥

नमोऽस्तु तेऽध्यात्मविदां परात्मने अनात्मनस्वात्मविभक्तमृत्यवे । सकारणाकारणलिङ्गमीयुषे स्वमायया ऽसंवृतरुद्धदृष्टये ॥४८॥

देह आदि के अभिमान से रहित पुरुषों को मोक्षदाता; देह आदिमें अभिमान रखनेवाले पुरुषों को आत्मा से भिन्न संसार (जन्म-मरण) देने वाले महातत्व आदि कार्य और उनकीकारण रूप माया नामवाली उपाधिके नियंता, अपनी मायासे अलुप्त ऐश्वर्य और उसके द्वारा दूसरों के ज्ञान का आच्छादन करनेवाले आपको मैं प्रणाम करताहूँ ॥

स त्वं शाधि स्वभृत्यान्नः किं देव करवामहे ।
एतदन्तो नृणां क्लेशो यद्भवानक्षिगोचरः ॥४९॥

हे देव ! वे परमेश्वर (आप) अपने दास हम लोगों को आज्ञा दें कि हम क्या करें ? जब तक आपके साक्षात् दर्शन नहीं होते तभी तक मनुष्यों को क्लेश रहते हैं, साक्षात् होने पर क्लेशों का अंत हो जाता है ॥४९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीशुक उवाच

तदुक्तमित्युपाकर्ण्य भगवान्प्रणतार्तिहा ।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रहसंस्तमुवाच ह ॥५०॥

श्रीशुकदेवजी बोले-इस प्रकार श्रुतदेव के वचन सुनकर भक्तों के दुःख दूर करने वाले भगवान् ने अपने हाथसे उसका हाथ पकड़ कर हंसते हुए यह देखकर कि उसने ब्राह्मणों से अधिक मेरा (भगवान् का) सन्मान रक्खा है, लोक-संग्रह के लिये यह वचन कहा ॥५०॥

ब्रह्मंस्तेऽनुग्रहार्थाय संप्राप्तान्विद्धचमून्मुनीन् ।
संचरन्ति मया लोकान्पुनन्तः पादरेणुभिः ॥५१॥

श्रीभगवान् बोले-हे ब्राह्मण ! ये मुनि जन तुम पर कृपा करने के लिये यहाँ आये हैं यह तुमको ज्ञात होना चाहिये, ये लोग अपने चरणों की रज से लोकों को पवित्र करते हुए मेरे साथ विचरा करते हैं ॥ ५१ ॥

देवा क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शनस्पर्शनार्चनैः ।
शनैः पुनन्ति कालेन तदप्यर्हत्तमेक्षया ॥५२॥

देवता, क्षेत्र और तीर्थ तो बहुत दिनों के दर्श स्पर्श और पूजन से पवित्र करते हैं, परन्तु यह (ऋषिजन) तो तत्काल ही पवित्र बना देतेहैं,वरन् उन देवतआओं आदि में पवित्र करने की शक्तिभी ऐसे ही महात्माओं की दृष्टि पड़ने से आती है ॥

ब्राह्मणो जन्मना श्रेयान्सर्वेषां प्राणिनामिह ।
तपसा विद्यया तुष्ट्या किमु मत्कलया युतः ॥५३॥

ब्राह्मण यहाँ जन्महीं से सब प्राणियों में उत्तम हैं, फिर यदि वह तप, विद्या, संतोष और मेरी उपासना में भी निष्ठा रखता हो तो उसका कहना ही क्या है ? ॥५३॥

न ब्राह्मणान्मे दयितं रूपमेतच्चतुर्भुजम् ।
सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेव मयो ह्यहम् ॥५४॥

ब्राह्मण सर्व वेदमय और मैं सर्व देवमय हूँ और देवताओं की सिद्धि वेद के आधीन है, इस लिये मुझे ब्राह्मण अपने चतुर्भुज रूपसे भी अधिक प्यारा है ॥ ५४ ॥

दुष्प्रज्ञा अविदित्वैवमवजानन्त्यसूयवः ।
गुरुं मां विप्रमात्मानमर्चादाविज्यदृष्टयः ॥५५॥

गुण में दोष लगाने वाले और केवल मूर्त्तिही को पूज्य मानने वाले दुर्बुद्धि लोग ऐसा न समझ कर गुरु,आत्मा तथा मेरे रूप(के समान माननीय) ब्राह्मणों का अपमान करते हैं ॥५५॥

चराचरमिदं विश्वं भावा ये चास्य हेतवः ।
मद्रूपाणीति चेतस्याऽऽधत्ते विप्रो मदीक्षया ॥५६॥

ब्राह्मण अपने चित्तमें सर्वत्र ब्रह्म-दृष्टिकेकारण यही जानता है कि यह चराचर जगत् तथा इसके कारण महत्तत्वादि भगवान् के ही रूप हैं ॥५६॥

तस्माद्ब्रह्मऋषीनेतान्ब्रह्मन्मच्छ्रद्धयार्चया ।
एवं चेदर्चितोऽस्म्यद्धा नान्यथा भूरिभूतिभिः॥५७॥

इसलिये हे ब्राह्मण ! इनको मेरा स्वरूप समझ कर इनपर मेरे ही भांति श्रद्धा रक्खो और पूजा करो, ऐसा करने से ही मेरा पूजन होगा, अन्यथा महान् वैभव से भी किया हुआ मेरा पूजन वास्तविक पूजन नहीं हो सकता ॥५७॥

श्रीशुक उवाच

स इत्थं प्रभुणाऽऽदिष्टः सहकृष्णान्द्विजोत्तमान् ।
आराध्यैकात्मभावेन मैथिलश्चाप सद्गतिम् ॥५८॥

श्रीशुकदेवजी बोले-जब भगवान्ने इस प्रकार आज्ञा दी, तब वह श्रीकृष्ण-सहित सब ब्राह्मणों की एक भाव से पूजा करके उत्तम [illegible] को प्राप्त हुआ और राजा बहुलाश्वने भी श्रेष्ठ गति पाई ॥

एवं स्वभक्तयो राजन्भगवान्भक्तभक्तिमान् ।
उषित्वाऽऽदिश्य सन्मार्गं पुनर्द्वारवतीमगात् ॥५९॥

हे राजन् ! इस प्रकार भक्तों पर प्रीति रखने वाले भगवान् वहाँ रहकर अपने दोनों भक्तों को सन्मार्ग का उपदेश करके (कि समस्त वेद भाव रूपसे मेराही प्रतिपादन करते हैं) द्वारका पधारे ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे षड्शीतितमोऽध्यायः ॥८६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सत्तासीवां अध्याय

(वेद-स्तुति वर्णन)

परीक्षिदुवाच

ब्रह्मन्ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणे गुणवृत्तयः ।
कथं चरन्ति श्रुतयः साक्षात्सदसतः परे ॥ १ ॥

परीक्षित बोले—हे ब्रह्मन् ! ब्रह्म कार्य-कारण से सर्वथा परे है, सत्व, रज और तम ये तीनों गुण उसमें हैं ही नहीं, उसका मन और वाणीसे संकेत रूप निर्देश भी नहीं होसकता, इधर श्रुतियों का विषय गुण ही है, वे जिस विषय का वर्णन करती हैं उसके गुण, जाति, क्रिया अथवा रूढ़ि का ही निर्देश करती हैं, ऐसी स्थिति में वे निर्गुण ब्रह्मका प्रतिपादन किस प्रकार करती हैं ? क्योंकि निर्गुण का स्वरूपतो उनकी पहुंचसे बाहर जान पड़ताहै ॥

श्रीशुक उवाच

बुद्धीन्द्रियमनः प्राणाञ्जनानामसृजत्प्रभुः ।
मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च॥ २ ॥
सैषा ह्युपनिषद्ब्राह्मी पूर्वेषां पूर्वजैर्धृता ।
श्रद्धया धारयेद्यस्तां क्षेमं गच्छेदकिञ्चनः ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन् ! भगवान् सर्व शक्तिमान् और गुणों के निधानहैं, श्रुतियां स्पष्टतः सगुणका ही निरूपण करतीहैं, परन्तु विचारकिया जाय तो उनका तात्पर्य निर्गुण ही निकलताहै,भगवान् ने विचार करने के लिये ही जीवों को बुद्धि इन्द्रिय, मन और प्राण दिये हैं, इनके द्वारा वे स्वेच्छा पूर्वक धर्म, अर्थ, काम या मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं, प्राणों के द्वारा जीवन-धारण, श्रवण आदि इन्द्रियों द्वारा महा वाक्य आदि का सुनना मनके द्वारा विचार और बुद्धि द्वारा निश्चय करने पर श्रुतियों के भाव-रूप निर्गुण का साक्षात्कार हो सकता है, इसलिये श्रुतियां पाठ-रूप में सगुण की प्रतिपादक होती हुई भी निर्गुण का ही निरूपण करती हैं. ब्रह्म-निरूपण करने वाले उपनिषद् का यही स्वरूप है, इसे पूर्वजों के भी पूर्वज सनकादि ऋषियोंने आत्म-निश्चय द्वारा धारण किया है, जो मनुष्य इसे श्रद्धा पूर्वक धारण करता है वह बंधन के कारण रूप समस्त उपाधियों से मुक्त होकर अपने परम कल्याणरूप परमात्माको प्राप्त होताहै ॥

अत्र ते वर्णयिष्यामि गाथां नारायणान्विताम् ।
नारदस्य च संवादमृषेर्नारायणस्य च ॥ ४॥

इस विषयमें नारायण सम्बन्धी एक इतिहास कहता हूँ, जिसमें नारद और और नारायण का सम्वाद है ॥ ४ ॥

एकदा नारदो लोकान्पर्यटन्भगवत्प्रियः ।
सनातनमृषिं द्रष्टुं ययौ नारायणाश्रमम् ॥ ५ ॥

एक दिन भगवान् के प्रिय नारदजी लोकों में विचरते हुए श्रीमन्नारायण के दर्शनार्थ उनके आश्रम में गये ॥५॥

यो वै भारतवर्षेऽस्मिन्क्षेमाय स्वस्तये नृणाम् ।
धर्मज्ञानशमोपेतमाकल्पादास्थितस्तपः ॥ ६ ॥

हे राजन् ! जो इस भरतखंड में मनुष्यों के कल्याण और मोक्ष के लिये आरंभही से धर्म,ज्ञान और शम सहित तप कर रहे हैं ॥६॥

तत्रोपविष्टमृषिभिः कलापग्रामवासिभिः ।
परीतं प्रणतोऽपृच्छदिदमेव कुरूद्वह ॥ ७॥

हे राजन् ! जिस समय भगवान् कलाप-ग्राम के निवासियों (सिद्ध और ऋषियों) के बीच में विराजमान् थे उस समय उनसे प्रणाम कर नारद जी ने यही प्रश्न किया था ॥७॥

तस्मै ह्यवोचद्भगवानृषीणां शृण्वतामिदम् ।
यो ब्रह्मवादः पूर्वेषां जनलोकनिवासिनाम् ॥ ८ ॥

तब सब ऋषिगणों के सुनते हुए नारायण भगवान् ने नारदजी से वही ब्रह्म-वाद का विषय कहा जो पहले जन-लोक के निवासी सनकादि के बीच में हुआ था ॥ ८ ॥

श्रीभगवानुवाच

स्वयंभुवं ब्रह्मसत्रं जनलोकेऽभवत्पुरा ।
तत्रस्थानां मानसानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ ९ ॥

नारायण बोले—हे ब्रह्म पुत्र नारद ! पहले जन लोक के रहने वाले ब्रह्माजी के मानस पुत्र नैष्ठिक ब्रह्मचारी सनकादिकोंके बीचमें वहाँपर ब्रह्म-विद्या पर विचार हुआ था ॥९॥

श्वेतद्वीपं गतवति त्वयि द्रष्टुं तदीश्वरम् ।
ब्रह्मवादः सुसंवृत्तः श्रुतयो यत्र शेरते ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तत्र हाऽयमभूत्प्रश्नस्त्वं मां यमनुपृच्छसि ॥१०॥

तुम जब श्वेतद्वीप के स्वामी अनिरुद्धजी के दर्शनों को वहाँ गये हुए थे, तब तुम्हारे परोक्ष में जन-लोक में यह ब्रह्म-वाद हुआ था कि जिसमें सब श्रुतियों का तात्पर्य आजाताहै, तुमने जो प्रश्न मुझसे किया है वही प्रश्न वहाँ हुआ था ॥ १० ॥

तुल्य श्रुततपःशीलास्तुल्यस्वीयारिमध्यमाः ।
अपि चक्रुः प्रवचनमेकं शुश्रूषवोऽपरे ॥११॥

यद्यपि चारों सनकादि शास्त्राभ्यास, तप और स्वभाव से समान तथा अपने पराये और उदासीनों के प्रति समान भाव रखने वाले हैं, तो भी सुनने के कौतुकसे उन्होंने एकको तो वक्ता बनाया और शेष श्रोता बने ॥११॥

सनन्दन उवाच

स्वसृष्टमिदमापीय शयानं सह शक्तिभिः ।
तदन्ते बोधयांचक्रुस्तल्लिङ्गैः श्रुतयः परम् ॥१२॥

सनन्दन बोले–अपने रचे हुए इस जगत् को अपनी शक्तियों द्वारा अपने ही स्वरूप में लीन कर के, योग निद्रा में मग्न से प्रतीत होने वाले सगुण ब्रह्मको सृष्टि के आरम्भ में उनके पहले ही निःश्वास से प्रकट हुई श्रुतियाँ, उन्हीं को प्रतिपादन करने वाले वाक्यों के द्वारा जगाने लगीं ॥१२॥

यथा शयानं सम्राजं बन्दिनस्तत्पराक्रमैः ।
प्रत्यूषेऽभ्येत्य सुश्लोकैर्बोधयन्त्यनुजीविनः ॥१३॥

जैसे सोते हुए चक्रवर्त्ति राजा को प्रातःकाल उसके अनुजीवी बन्दीजन आकर उसके प्रशस्त यश सहित पराक्रम सुनाकर जगाते हैं, वैसे ही श्रुतियाँ भी भगवान् के प्रतिपादक वाक्यों द्वारा उन्हें जगाने लगीं ॥१३॥

श्रुतय ऊचुः

जय जय जह्यजामजित दोषगृभीतगुणां त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः । अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते क्वचिदजयाऽऽत्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः ॥१४॥

श्रुतियाँ बोलीं–हे अजित ! आपकी जय हो, जय हो, जैसे व्यभिचारिणी स्त्री दूसरे लोगों को ठगने के लिये गुण धारण करती है, वैसेही आनंद आदि का आवरण करने के लिये गुण धारणकरने वाली, चराचरकी अविद्याका नाश कीजिये, आप के वश में माया है, इसलिये आपको स्वरूप ही से सब ऐश्वर्य प्राप्त हैं, तभी अविद्या का दोष आपमें नहीं लग सकता, आप सब जीवों के अन्तर्यामी और समस्त शक्तियों को ज्ञान देनेवालेहैं, इसलिये जीव ज्ञान प्राप्त करने में स्वतन्त्र नहीं वरन् परतंत्र है, अखंड ज्ञान और ऐश्वर्य आदि गुण वाले तथा ज्ञान आदि शक्तियों को प्रकट करके जीवों की अविद्या हरने वाले आप ही हैं, इस विषय में हम ही प्रमाण हैं, आप जब कभी सृष्टि आदि के समय में माया से क्रीड़ा करते हैं, तब उस स्वरूप का और सत्य; ज्ञान, अनन्त, आनन्द, एक रस से विराजमान् रहने वाले स्वरूप का भी वेदही प्रतिपादन करते हैं ॥१४॥

बृहदुपलब्धमेतदवयन्त्यवशेषतया यत उदयास्तमयौ विकृतेर्मृदिवाऽविकृतात् । अत ऋषयो दधुस्त्वयि मनोवचनाचरितं कथमयथा भवन्ति भुवि दत्तपदानि नृणाम् ॥१५॥

मन्त्रों में इन्द्र, अग्नि आदि देवताओं का प्रतिपादन देखने में आता है, परन्तु उन सबका अपवाद होते-होते अन्ततः आप ही शेष रह जाते हैं, जैसे घट आदि विकार मिट्टी ही से उत्पन्न होते हैं और उसी में लय होजाते हैं, इसलिये घट आदि विकारों की अधिष्ठान रूप मिट्टी सदैव निर्विकार है और वे पदार्थ मिट्टीसे भिन्न नहीं हैं, इसी तरह सबकी उत्पत्ति और लय आपही में होती है, इस लिये आप निर्विकार और सबके उपादान कारणहैं इस भाव से इन्द्र आदि का प्रतिपादन करनेवाली श्रुतियाँ वास्तव में आपही का प्रतिपादन करती हैं क्योंकि देवता आपसे भिन्न नहीं, अतएव मन्त्र और मन्त्रों के द्रष्टा ऋषि लोगों के मन और वचन का तात्पर्य आप ही से है, भिन्न २ विकारोंसे नहीं, जैसे पृथ्वी पर फिरने वाला प्राणी अपना पैर ईंट पत्थर आदि किसी वस्तु पर भी रक्खे, वह पैर पृथ्वी से जुदा नहीं कहा जा सकता, ऐसे ही मंत्र किसी भी देवता का प्रतिपादन क्यों न करें, पर वह आपही का प्रतिपादन है ॥१५॥

इति तव सूरयस्त्र्यधिपतेऽखिललोकमलक्षपणकथाऽमृताब्धिमवगाह्य तपांसि जहुः । किमुत पुनः स्वधामविधुताशयकालगुणाः परम भजन्ति ये पदमजस्रसुखानुभवम् ॥१६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे त्रिगुणात्मक माया रूपी मृगी के नर्त्तक ! हे परम ! हे सबके कारण ! आपही परमार्थ रूप हैं- ऐसा जानकर विवेकी पुरुष सब लोगों के पाप हरने वाली आपकी कथारूपी समुद्रका सेवन कर के पाप और दुःख से छूटे हैं; तब स्वरूप साक्षात् होने पर अन्तःकरण के गुण राग आदि और काल के गुण जरा आदि जिनके निवृत्त होगये हैं और जो अखंड आनंद के अनुभव रूप आपके स्वरूप का सेवन करते हैं, उनका पाप और दुःख निवृत्त होना कौनसे आश्चर्य की बात है ॥ १६ ॥

इतय इव श्वसन्त्यसुभृतो यदि तेऽनुविधा महद हमादयोऽण्डमसृजन्यदनुग्रहतः । पुरुषविधोऽन्वयोऽत्र चरमोऽन्नमयादिषु यः सदसतः परं त्वमथ यदेष्ववशेषमृतम् ॥१७॥

मनुष्य-जीवन भजन करने ही से सफल है, अन्यथा लुहार की धोंकनीकी भांति उसका श्वांस लेना वृथा है, जिनके प्रवेश होनेसे सामर्थ्य पाकर महत्तत्व और अहङ्कार आदि समष्टि तथा व्यष्टि रूप ब्रह्मांड को रचतेहैं, उन परमात्मा का जो लोग भजन नहीं करते उन कृतघ्नों को कामादि फल भी नहीं मिलते (मोक्ष आदि की तो बातही क्याहै ?) अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्द मय-ये पंचकोश कि जो देह, प्राण, मन,बुद्धि और ज्ञान रूप कहलाते हैं, उनमें प्रवेश करनेवाला उन्हीं की तरह आकार बनाकर उन्हे चेतनता देने वाला जो सब से परे ब्रह्मवेदों ने बतलाया है, वह आपही हैं, यद्यपि आप इन कोशों में इस प्रकार सम्प्रविष्टहो फिर भी आपका असंग तत्व नहीं मिटता, क्योंकि आप स्थूल और सूक्ष्म अन्नमय आदि कोशों के साक्षी और उनका अपवाद होने पर भी अवशेष रहने वाले तथा सत्य रूप हैं, जैसे शुद्ध चन्द्र दिखलाने के लिये वृक्ष की शाखा का अवलम्बन कर लिया जाताहै, वैसे ही आप (ब्रह्म) के दिखाने लिये कोश आदि का अवलम्बन किया जाता है ॥ १७ ॥

उपासतेय ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः परिसरपद्धतिं हृदयमारुणयोदहरम् । तत उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं पुनरिह उदरमु यत्समेत्य न पतन्ति कृतान्तमुखे ॥१८॥

हे अनन्त ! जो मनुष्य वेदोक्त मार्ग में स्थित होकर अग्निहोत्र आदि यज्ञ करते हुए भगवान् के दर्शनों की रुचि नहीं रखते, उनके नेत्रोंमें धूल पड़ी हुई माननी चाहिये, इससे वे सूक्ष्म तत्व का दर्शन नहीं कर सकते, (परन्तु हैं वे भी भगवत्-उपासक क्योंकि यज्ञो वै विष्णुः) और योगी जन नाड़ियों के द्वारा प्रभु की उपासना हृदयमें करते, इसलिये उन्हें अरुणोदय की नाईं उपासना का कुछ अंश प्राप्त होजाता है, परन्तु जो प्राणी आपकी प्राप्तिका स्थान रूप सुषुम्ना नाड़ी कि जो मूल आधार से हृदय में होती हुई ब्रह्मरन्ध्र तक गईहै, उसे पाजाते हैं, वे फिर संसार में नहीं आते, इसी को मुक्ति कहते हैं ॥ १८ ॥

स्वकृतविचित्रयोनिषु विशन्निव हेतुतया तरतमतश्चकास्यनलवत्स्वकृतानुकृतिः । अथ वितथास्वमूष्ववितथं तव धाम समं विरजधियोऽन्वयन्त्यभिविपण्यव एकरसम् ॥१९॥

आप सबके उपादान कारण हैं, इसलिये सब में पहले ही से स्थित रहने के कारण आपके रचे हुए ऊँच-नीच या मध्यम शरीरों में आपका प्रवेश होना संभव नहीं है, फिर भी जिस प्रकार आप उनमें प्रविष्ट हैं, वैसे ही उन देह आदिकों के अनुसार न्यूनाधिक भी जान पड़ते हो, जैसे अग्नि तारतम्य-रहित होती हुई भी काष्ठ के अनुसार ही थोड़ी या अधिक जान पड़तीहै, इस भांतिसे आप को समस्त उपाधियों से रहित, समान और एक रस जानकर, उभय लोकोंके कर्म-फलको न चाहने वाले, निर्मल बुद्धि वाले पुरुष असत्य देह आदिमें आपकोही सत्य मानकर आपकी उपासना करतेहैं।

स्वकृतपुरेष्वमीष्वबहिरन्तरसंवरणं तव पुरुषं वदन्त्यखिलशक्तिधृतोऽशकृतम् । इति नृगतिं विविच्य कवयो निगमावपनं भवत उपासतेऽङ्घ्रिमभवं भुवि विश्वसिताः ॥२०॥

अपने किये हुए कर्मों के द्वारा प्राप्त हुए मनुष्य आदि के शरीर में यह जीव भोक्ता रूप से है, वह जीव आप भीतर-बाहर से आवरण रहित, सर्व शक्तियों के धारणकर्त्ता (परब्रह्म) का ही अंश है, इस प्रकार जीव की गति को पहिचानकर विद्वान् पुरुष वेदों के उत्पत्ति-स्थान रूप और संसार से मुक्त करने वाले आपके चरणों की उपासना करते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं, इस मर्त्य लोक में परम विश्वास पूर्वक उनका अर्चन, वन्दन करना ही उचित है ॥२०॥

दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्ततनोश्चरित-मृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः। न परिलषन्ति केचिद पवर्गमपीश्वर ते चरणसरोजहंसकुलसङ्गविसृष्टगृहाः॥

हे ईश्वर ! दुर्बोध आत्म तत्व समझानेके लिये अवतार धारण करके किये हुए आपके चरित्ररूपी अमृत-सिन्धु में डुबकी लगाकर अमरहित होजाने वाले कितने ही पुरुष तो ऐसे हैं कि वे मोक्ष तक की इच्छा नहीं करते, फिर (आप के चरित्र के आगे) उन्हें इन्द्र-पद तो बातही क्या है ? जिन्हों ने आपके चरण कमल में हंसकी नाईं क्रीड़ा करते हुए भक्त लोगों का सत्संग करनेके लिये अपने घर बार सम्बन्धी सुख भी छोड़ दिये हैं; तब जन्म-जन्मान्तर में प्राप्त होने वाले परलोक सुख की तो बात ही क्या है ? इसलिये हम कहती हैं कि मुक्ति से भक्ति बड़ी है ॥२१॥

त्वदनुपथं कुलायमिदमात्मसुहृत्प्रियवच्चरति तथोन्मुखे त्वयि हिते प्रिय आत्मनि च। न बत रमन्त्यहो असदुपासनयाऽत्महनो यदनुशया भ्रमन्त्युरुभये कुशरीरभृतः ॥२२॥

आपकी सेवा में काम आने वाला यह शरीर जब आत्मा, सुहृद और प्रिय की भांनि स्वतन्त्र है और आप समक्ष स्थित रहने वाले, हितकारी, प्रिय तथा आत्मरूप होने से सुख पूर्वक सेवाकरने योग्य हैं, फिर भी देहादि के लालन-पालन-संबंधी प्रमाद में पड़े रहने के कारण लोग आपकी भक्ति नहीं करते, यह बड़े ही खेद की बात है, देहादिक के लालन-पालन की वासना रखनेवाले लोग नीच योनियाँ पाकर महा भयरूपी संसारमें भटकाकरते हैं, अतएव उन्हें आत्मघाती समझना चाहिये २२॥

निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढयोगयुजो हृदि यन्मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात्। स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्तधियो वयमपि ते समाः समदृशोऽङ्घ्रिसरोजसुधाः ॥२३॥

प्राण, मन और इन्द्रियोंको वशमें रखकर, दृढ़ योग करने वाले मुनिजन आपके जिस तत्व की हृदय में उपासना करते हैं और जिसे हम आपके चरणारविन्द को भले प्रकार धारण करने वाली श्रुतियाँ भी देश; काल और वस्तुके आवरणरहित देखती हैं, उस तत्वको शत्रुभी केवल स्मरण मात्र से प्राप्त होगये और आपके सर्पराज के शरीर की भांति भुजदण्डों में आसक्त रहने वाली स्त्रियाँ भी प्राप्त होगईं, इसलिये हम कहती हैं कि आप की कृपा-दृष्टि सब पर समान है, आपके स्मरण का प्रताप ऐसाही है कि आपको किसी भाव से भजने पर भी आपका स्वरूप प्राप्त होजाता है ॥२३॥

क इह नु वेद बतावरजन्मलयोऽग्रसरं यत उदगादृषिर्यमनु देवगणा उभये। तर्हि न सन्नचासदुभयं न च कालजवः किमपि न तत्र शास्त्रमव कृष्य शयीत यदा ॥२४॥

जिनके पीछे इस जगत् में सब देवगण उत्पन्न हुए और ब्रह्माजीभी जिनसे प्रकटहुए-ऐसे अनादि काल से सिद्ध रहने वाले आप को आप से पीछे उत्पन्न और नाश होने वाला कौन जान सकताहै ? ठीक भी है, जो पहले उत्पन्न होता है वह अपने से पीछे उत्पन्न होने वाले का सब वृत्तान्त जानता है, पीछे उत्पन्न हुआ व्यक्ति अपने पूर्वजका वृत्तान्त नहीं जान सकता, आपसे पहले ब्रह्माजी हुए, उन से अध्यात्मिक और अधिदैविक रूप देवता हुए, उनके पीछे जीव-जन्तु हुए, इसलिये आप इन सब का हाल जानते हो, परन्तु यह लोग आपका नहीं जानते, जब आप संहार करके शयन करते हैं तब आकाश आदि स्थूल पदार्थ, महत्तत्वादि सूक्ष्म पदार्थ, इन दोनों से उत्पन्न होने वाला शरीर उस के निमित्त-रूप काल की विषमता, इन्द्रियाँ, प्राण आदि और उनका बोध कराने वाला शास्त्र यह कुछ भी नहीं रहता, ऐसी दशा में जीव आपके स्वरूप को कैसे जान सकता है ? इसलिये आपकी शरण लेकर भक्ति करनी ही उचित है ॥२४॥

जनिमसतः सतो मृतिमुतात्मनि ये च भिदां विपणमृतं स्मरन्त्युपदिशन्ति त आरुपितैः। त्रिगुणमयः पुमानिति भिदा यदबोधकृता त्वयि न ततः परत्र स भवेदवबोधरसे ॥२५॥

वैशेषिक कहते हैं यह जगत् पहले कुछ भी न था, फिर हुआहै,योगशास्त्र वाले कहते हैं कि-जीव में ब्रह्मत्व नहीं है, योग-साधनसे वह उसमें उत्पन्न होजाता है, नैयायिक कहते हैं कि इक्कीस प्रकार के दुःखों का नाश होना ही मोक्ष है, सांख्यवाले जीव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और ब्रह्म में भेद बतलाते हैं, कितने एक कर्मफल को सत्य कहतेहैं,इन सबका उपदेश भ्रम-मूलक है, तत्व-दृष्टिसे नहीं,वास्तवमें यदि आत्मा त्रिगुणात्मक हो तब तो उनका कहना सत्य होसकताहै, परन्तु वह ऐसा है ही नहीं, आपमें यह त्रिगुणात्मक भेद तो अज्ञानके कारण कल्पना किये गयेहैं और आप अज्ञान से परे, संग रहित और ज्ञानघन हो, इस लिये आपके स्वरूप में अज्ञान असंभव है ॥२५॥

सदिव मनस्त्रिवृत्त्वयि विभात्यसदामनुजात्सद-भिमृशन्त्यशेषमिदमात्मतयात्मविदःन हि विकृतिं त्यजन्ति कनकस्य तदात्मतया स्वकृतमनुप्रविष्ट-मिदमात्मतयाऽवसितम् ॥२६॥

केवल मनही से प्रतीत होता हुआ यह प्रपंच असत् होने पर भी इसके अधिष्ठान रूप आपकी सत्ता ही से यह सत् सा जान पड़ता है, यह बात केवल पंचभूतोंपर ही लागू नहीं होती, वरन् जीव की सत्ता भी भिन्न प्रतीत होती है, सो केवल मन का विलास ही है, आत्मज्ञानी पुरुष इस भोक्ता और भोग्य रूप समस्त संसार को अधिष्ठान रूप आत्मा की सत्ता ही से सत्य मानते हैं, आत्मा से भिन्न सत्ता वाला नहीं, क्योंकि स्वर्ण के विकार रूप कुण्डल आदि पदार्थ स्वर्णरूप ही हैं, इसलिये ऐसा ज्ञान रखनेवाले स्वर्णके इच्छुक उन (कुण्डल आदि) पदार्थोंको नहीं छोड़ते, इससे यह निश्चय हुआ है कि आपके द्वारा रचा हुआ यह जगत् और इसमें प्रवेश करने वाला पुरुष (जीव) आप काही स्वरूपहै,वह आपसे भिन्न सत्ता नहीं रखता॥

तव परि ये चरन्त्यखिलसत्त्वनिकेततया त उत पदाऽऽक्रमन्त्यविगणय्य शिरोनिर्ऋतेः । परिवयसे पशूनिव गिरा विबुधानपि तांस्त्वयि कृतसौहृदाः खलु पुनन्ति न ये विमुखाः ॥२७॥

आपको समस्त पदार्थों में व्याप्त जानकर जो पुरुष आपकी सेवा करतेहैं वही मृत्युका तिरस्कार करके उसके सिर पर पैर रखते हुए मोक्ष पाते हैं, आपकी भक्ति से विमुख चाहे कैसेही विद्वान् क्यों न हों,उन्हें आप अपनी वेदरूपी वाणीसे पशुओं की नाईं बाँध लेते हैं (अर्थात् वे कर्म-बन्धन में बँधे रहते हैं) और जो पुरुष आपसे प्रेम करते हैं वे स्वयं अपने को और दूसरों को पवित्र करते हैं, परन्तु आपसे विमुख लोग जब अपनेही को पवित्र नहीं कर सकते, तब दूसरोंको क्या पवित्र करेंगे?

त्वमकरणः स्वराडखिलकारकशक्तिधरस्तव बलिमुद्वहन्ति समदन्त्यजयाऽनिमिषाः । वर्षभुजो ऽखिललोकतिपतेरिव विश्वसृजो विदधति यत्र ये त्वधिकृता भवतश्चकिताः ॥२८॥

आप स्वयं इन्द्रिय रहित हो, तथापि सब प्राणियों की इन्द्रियों को शक्ति देते हो और आप की ज्ञान-शक्ति स्वयं सिद्ध होनेसे आपको इन्द्रियों की अपेक्षा नहीं होती,जैसे सेवकगण अपनी स्त्रियों सहित अपने स्वामी की सेवा करते हैं, वैसे ही इन्द्र आदि देवता और उनके पूज्य ब्रह्मा आदि भी अपनी अविद्या के साथ आपकी सेवा किया करते हैं, जैसे खंडपति (परतन्त्र) राजा लोग प्रजासे कर लेकर चक्रवर्त्ती राजा को देते हैं, वैसे ही देवता गण मनुष्यों के दिये हुए बलिदान-भाग द्वारा आप से पाये हुए कर्त्तव्य को पूर्ण करने का ही भयभीत की नाईं आपको कर अर्पण करते हैं ॥ २८ ॥

स्थिरचरजातयः स्युरजयोत्थनिमित्तयुजो विहर उदीक्षया यदि परस्य विमुक्ततः । नहि पुमस्य कश्चिदपरो न परश्च भवेद्वियत इवाऽपदस्य तव शून्यतुलां दधतः ॥२९॥

हे नित्यमुक्त ! जिस समय आप माया द्वारा विहार करते हैं उस समय आपकी दृष्टि द्वारा प्रकट हुए कर्म या कर्म-युक्त लिंग शरीरसे स्थावर जङ्गम जातिके जीव उत्पन्न होतेहैं, यदि ऊंच-नीच योनियां प्राप्त होने में उन जीवोंके पूर्व-सञ्चित कर्म न माने जाँय, तो सृष्टिमें योनि भेद होनेका कारण भी कोई दूसरा नहीं हो सकता, क्योंकि आप तो मन-वाणी से अगोचर, शून्य भाव से समता करने वाले आकाश की नाईं सबमें समान भाव रखने वाले और परम दयालु हैं, इसलिये आप में से विषम सृष्टिका होना संभव नहीं; क्योंकि आपको तो न कोई अपना है और न कोई पराया, आपतो केवल इन्द्रियों के प्रवर्त्तक हैं और जीव इन्द्रियों के आधीन हैं, इसलिये दोनों प्रकार से आप का भजन करना ही उचित है ॥२९॥

अपरिमिता ध्रुवास्तनुभृतो यदि सर्वगतास्तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुव नेतरथा । अजनि च यन्मयं तदविमुच्य नियन्तृ भवेत्सममनुजानतां यदमतं मतदुष्टतया ॥३०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(ध्रुव ! हम इस पक्ष को कभी समर्थन नहीं करतीं कि जीव अनन्त, नित्य और सर्वव्यापक है, क्योंकि इस दशामें वह आपही के समान होजाने के कारण आपके विषय में रहने वाला नहीं कहा जा सकता क्योंकि) जो वस्तु उपाधि से जिस वस्तुकी विकार रूपहो, वह दूसरी वस्तुपर निश्चय नियंत्र करने वाली होगी, क्योंकि अनुस्यूत रहता हुआ वह पदार्थ कारण रूपसे उस वस्तु का त्याग नहीं करता, आपके स्वरूप में 'जो' या 'वह' के सिवा और कुछ भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि 'हम ब्रह्म को जानते हैं' जो लोग ऐसा कहते हैं वे ब्रह्म स्वरूप को कुछ भी नहीं जानते, इसलिये कि ब्रह्म जानने का विषय ही नहीं है, जो कुछ भी जानने में आता है वह आत्म पदार्थ है* ॥३०॥

न घटत उद्भवः प्रकृतिपूरुषयोरजयोरुभययुजा भवन्त्यसुभृतो जलबुद्बुदवत् । त्वयि त इमे ततो विविधनामगुणैः परमे सरित इवार्णवे मधुनि लिल्युरशेषरसाः ॥३१॥

प्रकृति और पुरुष का जन्म संभव नहीं, क्यों कि यह दोनों अजन्मा हैं, जीव इन दोनों के संबंध से जन्म लेता है. जैसे बुलबुला जल और वायु के सम्बन्ध ही से प्रकट होता है (किसी एकसे नहीं) आप कारणरूप ईश्वर हैं और आपही में अनेक नाम, रूप और गुणों सहित जीव लय होजाता है, जैसे शहद में सम्पूर्ण वनस्पतियों का रस और समुद्र में समस्त नदियाँ लीन होती हैं ॥ ३१ ॥

नृषु बत मायया भ्रममतीष्ववगत्य भृशं त्वयि सुधियोऽभवे दधति भावमनुप्रभवम् । कथमनुवर्ततां भवभयं तव यद्भ्रुकुटिः सृजति मुहुस्त्रिणेमिरभवच्छरणेषु भयम् ॥३२॥

यह संसारी जीव आपही की मायासे बारंबार जन्म-मरण रूपी भ्रमण कर रहे हैं, इस बात को जानकर सुन्दर बुद्धि वाले मनुष्य आप संसार से पार करने वाले का निरन्तर ध्यान किया करते हैं, इसलिये आपके भक्तों को भय कैसे हो सकताहै ? किसी भांति भी नहीं, हाँ. जो आपकी शरण नहीं लेते उन्हीं को आपकी भृकुटि रूप काल का जन्म-मरण रूपी भय रहता है ॥३२॥

*—देखिय, सुनिय, गुनिय मन माहीं । मोह मूल परमारथ नाहीं ॥

विजितहृषीकवायुभिरदान्तमनस्तुरगं य इह यतन्ति यंतु लोलमुपायखिदः । व्यसनशतान्विताः समवहाम गुरोश्चरणं वणिज इवाऽऽजसन्त्यऽकृतकर्णधरा जलधौ ॥३३॥

हे अजित् ! ऐसा सेवन मनके वश में करने से ही हो सकता है और मन गुरु की शरण लेने से वश में होता है, महान् चञ्चल और दुष्ट मन रूपी घोड़े को कि जिसे इन्द्रियाँ और प्राण जीत लेने वाले भी नहीं जानने पाते, जो लोग गुरु-चरणोंका आश्रय लिये बिना ही वश में किया चाहते हैं, वे अनेक विघ्न आने से व्याकुल होकर अपने यत्न में खेद पाते हुए इस भवसागर ही में भूले रहते हैं, जैसे कि मल्लाह को न रखने वाले व्यापारी लोग समुद्र में ही पड़े हुए दुःख पाया करते हैं ॥३३॥

स्वजनसुतात्मदारधनधामधराऽसुरथैस्त्वयि सति किं नृणां श्रयत आत्मनि सर्वरसे । इति सदजानतां मिथुनतो रतये चरतां सुखयति को न्विह स्वविहते स्वनिरस्तभगे ॥३४॥

जो पुरुष आपका आश्रय ले चुकते हैं उन्हें आप सर्व सुख-धाम आत्मरूपके रहते हुए, आत्मा की अपेक्षा अत्यन्त तुच्छ स्वजन, पुत्र, देह, स्त्री, धन, घर प्राण और रथ आदि का क्या प्रयोजन है जो सत्य परमार्थ रूप सुख को न जानकर, स्त्री पुरुष मिलकर रति के लिये विचरा करते हैं, उन्हें इस नाशवान् और निःसार संसारमें आनन्द देने वाला दूसरा कौनसा पदार्थ है ? कोईभी नहीं, इस लिये आपका सेवन करना ही उचित है ॥ ३४ ॥

भुवि पुरुपुण्यतीर्थसदनान्यृषयो विमदास्त उत भवत्पदाम्बुजहृदोऽघभिदङ्घ्रिजलाः । दधति सकृन्मनस्त्वयि य आत्मनि नित्यसुखे न पुनरुपासते पुरुषसारहरावसथान् ॥३५॥

निरहङ्कार और हृदय में आपही के चरण-कमल का ध्यान करने वाले मुनियों के चरणों का जल स्वयं पापनाशक है, फिरभी वे आपका भजन रूपी महान् पुण्य करनेवाले महात्माओंके आश्रमों अत्यन्त पवित्र तीर्थों तथा क्षेत्रों का सेवन करतेहैं, पुरुष के ज्ञान आदि का नाश करने वाले घर का नहीं करते, जो गुरु के उपदेशके तत्वको जान गये हैं और जिनको सार-असार का निश्चय होचुका है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वे सब से विरक्त होकर महात्माओं की संगति ही करते हैं, क्योंकि जिसे एक बार भी आत्म-सुखका अनुभव होजाताहै, वह कदापि घरमें आसक्त नहीं होता, फिर उत्तम पुरुषतो हो ही कैसे सकताहै ?

सत इदमुत्थितं सदिति चेन्ननु तर्कहतं व्यभिचरति क्व च क्व मृषा न तथोभययुक् । व्यवहृतये विकल्प इषितोऽन्धपरम्परया भ्रमयति भारतीत उरुवृत्तिभिरुक्थजडान् ॥३६॥

न यदिदमग्र आस न भविष्यतो निधनादनुमितमन्तरा त्वयि विभाति मृषैकरसे । अत उपमीयते द्रविणजातिविकल्पपथैर्वितथमनोविलासमृतमित्यवयन्त्यबुधाः ॥३७॥

हे भगवन् ! जैसे मिट्टीसे बनाहुआ घड़ा मिट्टी रूप ही है. वैसे ही एक जगत् सत् से उत्पन्न होने के कारण सत् ही है ऐसा कहना युक्ति युक्त नहीं, क्योंकि कारण और कार्य का निर्देश ही उनके भेद को बतलाने वाला है, यदि भेद मात्र का निषेध करने के लिये ही ऐसा कहा जाता हो, तब पिता-पुत्र में; दण्ड और घट-नाशमें कार्य-कारणका भाव होने पर भी वे एक दूसरे से भिन्न हैं, इस तरहसे कार्य-कारण की एकता सर्वत्र घटित नहीं होती, यदि इसे निमित्तकारण न मानकर उपादानकारण मानें-जैसे कुण्डल का सोना. तो भी कहीं-कहीं कारण की असत्यता सिद्ध होती है जैसे रस्सी में सांप, क्योंकि यह उपादान कारणसे सत्य होने पर भी उसका कार्य (सर्प) सर्वथा असत्य है, यदि ये कहा जाय कि इसका कारण केवल सर्प नहीं वरन् अविद्या और भ्रम है, तो जगत् भी अविद्या और सत् के मेल से बना है, इसलिये जगत्भी मिथ्या है, हाँ यह व्यावहारिक रूप ही में सत्य कहा जा सकता है परमार्थ रूप में नहीं. यह भ्रम व्यावहारिक जगत् में कल्पित काल की दृष्टि से अनादि है और अज्ञानी लोग अन्ध परम्परा से इसे ऐसा ही मानते आये हैं; इस दशा में कर्म फल को सत्य बतलाने वाली श्रुतियाँ कर्म में भूले हुए लोगों को ही भ्रम में डालती है; जो यह नहीं जानते कि यह श्रुतियाँ कर्म-फल की नित्यता नहीं बतलातीं वरन् उनकी प्रशंसा करके मनुष्य को कर्म की ओर लगाती हैं, सच तो यह है कि यह जगत् न तो उत्पत्ति से पहले था और न प्रलय के पीछे रहेगा; इसलिये यह एक रस परमात्मा में बीच ही बीचमें मिथ्या सा सिद्ध होता है, इसलिये हम श्रुतियां इस जगत् का वर्णन ऐसी उपमा देकर करती हैं कि जैसे मिट्टी में घट, लोहे शस्त्र और सोने में कुण्डल आदि नाम मात्र ने और वास्तव में मिट्टी लोहा तथा सोना ही हैं, इसी तरह परमात्मा में वर्णन किया हुआ जगत् नाम मात्र, सर्वथा असत्य और मन की कल्पना है, इसे अज्ञानी मूर्ख ही सत्य मानते हैं ॥३६॥३७॥

स यदजया त्वजामनुशयीत गुणांश्च जुषन्भजति सरूपतां तदनु मृत्युसपेतभगः । त्वमुत जहासि तामहिरिव त्वचमात्तभगो महसि महीयसेऽष्टगुणितेऽपरिमेयभगः ॥३८॥

ये जीव मायामें पड़े हुए अविद्याका आलिंगन किया करते हैं, इसलिये देह और इन्द्रियों का सेवन करते हुए उन्हीं को अपना स्वरूप मानते हैं, तभी वे देह और इन्द्रियों के धर्म युक्त गुणों के आवरण से जन्म-मरण पाते हैं, यह सब कर्म-कांड अविद्या वाले जीव ही के लिये है, आप तो माया की असत्यता जानते हुए उसे सर्प की केंचुल की भांति छोड़ देते हैं, इसलिये आप नित्य अखण्ड ऐश्वर्यवान्, अप्रमेय, अणिमादिक अष्ट विभूतियों के धारण कर्त्ता आप ही अपने में विराजमान् रहने वाले हैं ॥ ३८ ॥

यदि न समुद्धरन्ति यतयो हृदि कामजटा दुरधिगमोऽसतां हृदि गतोऽस्मृतकण्ठमणिः । असुतृपयोगिनामुभयतोऽप्यसुखं भगवन्ननपगतान्तकादनधिरूढपदाद्भवतः ॥३९॥

हे भगवान् ! जो सन्यासी यति अपने हृदयमें स्थित काम-वासनाओं का त्याग नहीं करते, उन असाधुओं के हृदय में रहकर भी आप उन्हें प्राप्त नहीं होते, जैसे ध्यान उड़ जाने पर गले में पड़ी हुई मणि भी नहीं मिलती, इन्द्रियों को तृप्त करने वाले लोग इस लोक तथा परलोक में दुःख भी भोगते हैं, क्योंकि लोक सम्बन्धी आयोजन करने में यहाँ दुःख उठाना पड़ता है और कर्म-फल की इच्छा से यदि सन्यास भी लिया तो वहाँ भी दुःख ही रहा ॥३९॥

त्वदवगमी न वेत्ति भवदुत्थशुभाशुभयोर्गुण-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विगुणान्वयांस्तर्हि देहभृतां च गिरः । अनुयुग-मन्वहं सगुणगीतपरम्परया श्रवणभृतो यतस्त्व-मपवर्गगतिर्मनुजैः ॥४०॥

हे भगवन् ! जिन भक्तों को आपका ज्ञान हो गया है; वे आप ही प्रकट हुए अपने पुण्य-पाप के फल रूप सुख-दुःख के सम्बन्ध को कुछ भी नहीं मानते और न देहाभिमानियों से सम्बन्ध रखने वाले प्रवृत्ति या निवृत्ति करने वाले विधि-निषेध सुनते हैं क्योंकि देहाभिमान रहित होजाने से कार्य या अकार्य का सम्बन्ध नहीं रहता, हे भग-वान् ! आप प्रत्येक युग में अवतार लेकर सन्मार्ग पर चलने वाले और आपके चरित्रों को प्रति दिन हृदय में धारण करने वाले पुरुषोंको शुभ गति देते हैं, तब तत्व ज्ञानियों को तो कर्म की शंकाही नहीं रह सकती, हाँ पाखंडी योगी को अवश्य दोनों लोक दुःख रूप हैं ॥४०॥

द्युपतय एव ते न ययुरन्तमनन्ततया त्वमपि यदन्तराऽण्डनिचया ननु सावरणाः । ख इव रजांसि वान्ति वयसा सह यच्छ्रुतयस्त्वयि फलन्त्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः ॥४१॥

हे भगवन् ! स्वर्ग आदि लोकों के पति ब्रह्मा आदि आपके प्रताप के अन्त को नहीं पाते, इसमें आश्चर्य ही क्या है, जब कि आप स्वयं अपने अंत को नहीं पाते, परन्तु इससे आपकी सर्वज्ञता और सर्व शक्तिमानता नष्ट नहीं होती, क्योंकि जैसे शशक के सींग नहीं हैं, वैसे ही आपका अन्त है ही नहीं, फिर वह मिले कैसे ? आपके स्वरूपमें तो आकाश की रज के कणों की नाईं काल-चक्र द्वारा उत्तरोत्तर दस-दस गुने आवरणों युक्त ब्रह्माण्डों के समस्त स्वरूप एक साथ घूमा करते हैं, इस प्रकार होने से श्रुतियाँ तात्पर्य वृत्ति से आपही का निरूपण करती हैं, पर स्पष्टतया कह नहीं सकतीं, क्योंकि सगुण रूप के गुण अनन्त हैं और निर्गुण रूप तक वाणी की पहुँच नहीं है, इसलिये आपका स्पष्टतया संपूर्ण प्रतिपादन नहीं होसकता अस्तु वे अनात्म पदार्थों का निषेध (अन्त) बत-लाती हुई अन्तमें आपही का प्रतिपादन करती हैं, क्योंकि किसी पदार्थ की अन्तिम सीमा बतलाये बिना उसका निषेध नहीं किया जा सकता, इस लिये श्रुतियाँ निषेध की सीमा रूप आप ही का प्रतिपादन करती हैं ॥४१॥

श्रीभगवानुवाच

इत्येतद्ब्रह्मणः पुत्रा आश्रुत्यात्मानुशासनम् । सनन्दनमथानर्चुः सिद्धा ज्ञात्वाऽऽत्मनो गतिम् ४२

नारायण बोले–आत्म-स्वरूप जानकर जीवन्-मुक्त सनकादि ने इस प्रकार ब्रह्म-निरूपण सुनकर सनन्दन का पूजन किया ॥४२॥

इत्यशेषसमाम्नायपुराणोपनिषद्रसः । समुद्धृतः पूर्वजातैर्व्योमयानैर्महात्मभिः ॥४३॥

सृष्टि में पहले उत्पन्न हुए, आकाश में चलने वाले और महात्मा सनकादिने इस प्रकार समस्त श्रुतियों, पुराण और उपनिषदों का तात्पर्य प्रकट किया ॥ ४३ ॥

त्वं च तद्ब्रह्मदायाद श्रद्धयात्मानुशासनम् । धारयंश्चर गां कामं कामानां भर्जनं नृणाम्॥४४॥

हे ब्रह्मपुत्र ! तुमभी मनुष्योंकी वासनाको भस्म करनेवाले इस ब्रह्म-निरूपण को श्रद्धा-पूर्वक मनमें धारण करके जहाँ जी चाहे वहाँ विचरण करो ॥

श्रीशुक उवाच

एवं स ऋषिणादिष्टं गृहीत्वा श्रद्धयात्मवान् । पूर्णः श्रुतधरो राजन्नाह वीरव्रतो मुनिः ॥४५॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! इस प्रकार नारायण ऋषि के कहे हुए ब्रह्म-निरूपण को श्रद्धा पूर्वक ग्रहण करके पूर्णकाम तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारी नारदजी ने कहा ॥ ४५ ॥

नारद उवाच

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाऽमलकीर्तये । यो धत्ते सर्वभूतानामभवायोशतीः कलाः ॥४६॥

नारदजी बोले–जो श्रीकृष्णचन्द्र समस्त भूतों के कल्याण के लिये सुन्दर अवतार लेते हैं उनके स्वरूप भूत आप निर्मल कीर्तिको मेरा प्रणामहै ॥

श्रीशुक उवाच

इत्याद्यमृषिमानम्य तच्छिष्यांश्च महात्मनः । ततोगादाश्रमं साक्षात्पितुर्द्वैपायनस्य मे ॥४७॥

श्रीशुकदेवजी बोले-उदार हृदय नारदजी आदि ऋषि नारायण तथा उनके शिष्योंको नमस्कार कर के मेरे पिता वेदव्यासजी के आश्रम में गये ॥४७॥

सभाजितो भगवता कृतासनपरिग्रहः । तस्मै तद्वर्णयामास नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥४८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वेदव्यासजी ने सन्मान पूर्वक उन्हें आसन दिया, उसे ग्रहण करके नारदजी ने नारायण के द्वारा सुना हुआ ज्ञान उन्हें सुनाया ॥ ४८ ॥

इत्येतद्वर्णितं राजन्यन्नः प्रश्नः कृतस्त्वया ।
यथा ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणेपि श्रुतिश्चरेत् ॥४९॥

हे राजन् ! तुमने जो प्रश्न किया उसका मैंने उत्तर दिया कि जिस प्रकार अनिर्देश्य और निर्गुण ब्रह्म में श्रुतियों की प्रवृत्ति होती है ॥४९॥

योऽस्योत्प्रेक्षक आदिमध्यनिधने योऽव्यक्तजीवेश्वरो यः सृष्ट्वेदमनुप्रविश्य ऋषिणा चक्रे पुरः शास्ति ताः । यं संपद्य जहात्यजामनुशयी सुप्तः कुलायं यथा तं कैवल्यनिरस्तयोनिमभयं ध्याये-दजस्रं हरिम् ॥५०॥

माया के दूर करने वाले, भक्तों के भय-नाशक नारायण कि जो अपनेही स्वरूपमें शयन करते हुए जीवों के सब पुरुषार्थ सिद्ध करने के लिये सृष्टि, स्थिति और संहार का विचार करते हैं, जो इस जगत् के आदि-मध्य और और अन्त में वर्त्तते हैं, जो प्रकृति-पुरुष के उपादान कारण हैं, जो जगत् रचकर जीव के साथ प्रवेश करके उसे भोग देने के लिये अलग-अलग रूप बनाये हैं तथा भोग देते हुए उनके शरीरों का पालन करतेहैं, जिन्हें उपासना द्वारा प्राप्त होकर जीव देहादि रूपी अभिमान को सुषुप्ति में सोते हुए शरीर की नाईं छोड़ देता है उन भगवान् का निरंतर ध्यान करना चाहिये ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥

अट्ठासीवां अध्याय

(वृकासुराख्यान)

राजोवाच

देवासुरमनुष्येषु ये भजन्त्यशिवं शिवम् ।
प्रायस्ते धनिनो भोजानतु लक्ष्म्याः पतिं हरिम्॥१॥

परीक्षित बोले–देव, असुर या मनुष्यों में से जो लोग भोग-सुख का तिरस्कार करने वाले श्री महादेवजी का भजन करते हैं, वे प्रायः धनी और भोगी होते हैं, परन्तु लक्ष्मीपति श्रीविष्णु भगवान के भक्त ऐसे नहीं होते ॥१॥

एतद्वेदितुमिच्छामः संदेहोऽत्र महान्हि नः ।
विरुद्धशीलयोः प्रभ्वोर्विरुद्धा भजतां गतिः ॥ २ ॥

मैं इसका कारण जानना चाहता हूँ, क्योंकि शिव धन-पद से और विष्णु निर्धनता से स्वाभाविक विरुद्ध हैं, परन्तु उनके भक्तों को उलटा फल मिलता है, यह मुझे बड़ा संदेह है ॥२॥

श्रीशुक उवाच

शिवः शक्तियुतः शश्वत्त्रिलिङ्गो गुणसंवृतः ।
वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा ॥ ३ ॥
ततो विकारा अभवन्षोडशामीषु कञ्चन ।
उपाधावन्विभूतीनां सर्वासामश्नुते गतिम् ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–ईश्वर जब मायाकी उपाधि धारण करके गुणों से आवृत होकर रहते हैं, तब वही ब्रह्मा, विष्णु और महेशरूप बनजाते हैं, ग्यारह इन्द्रियाँ और पंच महाभूतरूप विकार उत्पन्न करने वाला अहङ्कार तीन प्रकार का है–(१) सतोगुणी, (२) रजोगुणी, (३) तमोगुणी, इनमें से ब्रह्माजी में रजोगुण, विष्णु में सतोगुण और महेश में तमोगुण का अंश अधिक है, इसलिये जो मनुष्य जिस प्रधान गुण वाले देवता का भजन करता है, उस को उसी गुण संबन्धी विभूतियां मिलती हैं॥३॥४॥

हरिर्हि निर्गुणः साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः ।
स सर्वदृगुपद्रष्टा तं भजन्निर्गुणो भवेत् ॥ ५ ॥

साक्षात् माया से परे, निर्गुण, सबके देखने वाले, साक्षी रूप भगवान् हरि का जो पुरुष भजन करता है वह अन्त में निर्गुणही होजाता है ॥५॥

निवृत्तेष्वश्वमेधेषु राजा युष्मत्पितामहः ।
शृण्वन्भगवतो धर्मानपृच्छदिदमच्युतम् ॥ ६ ॥

तुम्हारे पितामह महाराज युधिष्ठिर ने अपना अश्वमेध यज्ञ पूर्ण होने पर भगवान्से धर्म-संबंधी विषय सुनते हुए यही प्रश्न किया था ॥६॥

स आह भगवांस्तस्मै प्रीतः शुश्रूषवे प्रभुः ।
नृणां निःश्रेयसार्थाय योऽवतीर्णो यदोःकुले ॥७॥

तब मनुष्योंके कल्याणके लिये यदुकुलमें अव-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तार लेने वाले भगवान् ने सुनने की इच्छा करने वाले युधिष्ठिर को उत्तर दिया ॥७॥

श्रीभगवानुवाच

यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः ।
ततो धनं त्यजन्त्यस्य स्वजना दुःखदुःखितम्॥८॥

श्रीभगवान् बोले-जो मनुष्य विषय त्याग करना चाहे, परन्तु वासनाओं की प्रबलताके कारण उन्हें न त्याग सके और उनके भोगने में वह क्लेश भी पाता हो, तो मैं उसपर कृपा करके धीरे-धीरे उस का सब धन हरण कर लेता हूँ, ऐसी दशामें उस के संबन्धी उसे निर्धन और दुखी समझकर छोड़ देते हैं ॥ ८ ॥

स यदा वितथोद्योगो निर्विण्णः स्याद्धनेहया ।
मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम् ॥ ९॥

यदि वह भक्त अपने बन्धुओं के आग्रहसे धन कमाने की चेष्टा भी करे तो मेरी कृपा से उसकी सब चेष्टायें भी विफल होजाती हैं. ऐसी दशा में वह प्रबल वैराग्य उत्पन्न होने से मेरे अनन्य भक्तों से मित्रता करता है और उस समय मैं उसपर परम अनुग्रह करता हूँ ॥ ९ ॥

तद् ब्रह्म परमं सूक्ष्मं चिन्मात्रं सदनन्तकम् ।
अतो मां सुदुराराध्यं हित्वान्यान्भजते जनः॥१०॥

चैतन्य मात्र, सत्य, अनन्त और सूक्ष्म परब्रह्म की प्राप्ति होना ही मेरा परम अनुग्रह है, इस तरह से मेरा आराधन अत्यन्त कठिनहै, इसीलिये लोग मुझे छोड़कर दूसरे देवताओंका आराधन करतेहैं॥

ततस्त आशुतोषेभ्यो लब्धराज्यश्रियोद्धताः ।
मत्ताः प्रमत्ता वरदान्विस्मरन्त्यवजानते ॥११॥

और उसके द्वारा शीघ्र ही प्रसन्न होने वाले देवताओं से राज-लक्ष्मी पाकर वे लोग ढीठ, मतवाले और उन्मत्त होकर अपने वर देने वाले देवताओं तक को भूलकर उनका अपमान करते हैं ॥

श्रीशुक उवाच

शापप्रसादयोरीशा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
सद्यः शापप्रसादोऽङ्ग शिवो ब्रह्मा न चाच्युतः १२

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! ब्रह्मा, विष्णु और महेश-शाप देने तथा अनुग्रह करने की शक्ति रखते हैं; इनमें से ब्रह्मा और महेश तो शीघ्र ही प्रसन्न होजातेहैं या शाप भी देदेतेहैं, पर विष्णुजी न तो शीघ्र प्रसन्नही होते हैं और न शापही देतेहैं।

अत्र चोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
वृकासुराय गिरिशो वरं दत्त्वाऽप सङ्कटम् ॥१३॥

महादेवजी वृकासुर को वरदान देकर स्वयंही संकट में पड़ गये थे, यह पुराना इतिहास इस विषय में कहा जाता है ॥१३॥

वृको नामासुरः पुत्रः शकुनेः पथि नारदम् ।
दृष्ट्वाऽऽशुतोषं प्रपच्छ देवेषु त्रिषु दुर्मतिः ॥१४॥

शकुनि के पुत्र दुर्बुद्धि वृकासुर ने मार्गमें जाते हुए नारदजी को देखकर उनसे पूछा कि तीनों देवताओं में से तत्काल ही प्रसन्न होने वाला कौन सा देवता है ? ॥ १४ ॥

स आह देवं गिरिशमुपाधावाशु सिद्ध्यति ।
योऽल्पाभ्यां गुणदोषाभ्यामाशु तुष्यति कुप्यति ॥

नारदजी बोले-तू महादेवजीके शरण जा,क्यों कि वे थोड़े ही गुण से प्रसन्न और थोड़े ही अवगुणसे अप्रसन्न होजाते हैं, इस प्रकार तेरी इच्छा शीघ्र ही पूर्ण होजायेगी ॥१५॥

दशास्यबाणयोस्तुष्टः स्तुवतोर्बन्दिनोरिव ।
ऐश्वर्यमतुलं दत्त्वा तत आप सुसङ्कटम् ॥१६॥

रावण और बाणासुर ने महादेवजी की वंदी जनों की नाईं वंदना की, जिससे प्रसन्न होकर शिवजी ने उनको बड़ा ऐश्वर्य प्रदान किया, परन्तु उस वैभव से उनको बड़ा सङ्कटभी भोगना पड़ा ॥

इत्यादिष्टस्तमसुर उपाधावत्स्वगात्रतः ।
केदार आत्मक्रव्येण जुह्वानोऽग्निमुखं हरम् ॥१७॥

नारदजी के इस प्रकार कहते ही वह असुर केदार क्षेत्र में जाकर शिवजी के नाम पर तपस्या करने लगा और उन्हें प्रसन्न करने के लिये अपना माँस काट-काट कर उनके मुख रूपी अग्नि में होमने लगा ॥१७॥

देवोपलब्धिमप्राप्य निर्वेदात्सप्तमेऽहनि ।
शिरोऽवृश्चत्स्वधितिना तत्तीर्थक्लिन्नमूर्धजम् ॥१८॥

ऐसा करते हुए उसे सात दिन होगये, परन्तु शङ्करजी के दर्शन न हुए, तब वृकासुर तीर्थ-स्नानों से भीगे हुए केशों वाले अपने मस्तक को अपने शस्त्र से काटने लगा ॥१८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तदा महाकारुणिकः स धूर्जटिर्यथा वयं चाग्निरिवोत्थितोऽनलात् । निगृह्य दोर्भ्यां भुजयोर्न्यवारयत्तत्स्पर्शनाद्भूय उपस्कृताकृतिः ॥१९॥

तब परम दयालु महादेवजी शरीर धारण कर अग्नि की भांति ही अग्नि-कुंडमें से प्रकट हुए और उन्होंने आत्मघात करने वाले की नाईं उसे रोका शिवजी का स्पर्श होते ही उसका शरीर स्वस्थ हो गया ॥१९॥

तमाह चाङ्गाऽऽलमलं वृणीष्व मे यथाभिकामं वितरामि ते वरम् । प्रीये यतो येन नृणां प्रपद्यतामहो त्वयात्मा भृशमर्द्यते वृथा ॥२०॥

महादेवजी बोले–हे अङ्ग ! बस वर माँग, जो तू माँगेगा मैं वही दूँगा, क्योंकि मैं अपने शरणागतों पर केवल जलके अभिषेक ही से प्रसन्न हो जाताहूँ, तू अपने शरीरको क्यों वृथा पीड़ा देताहै।

देवं स वव्रे पापीयान्वरं भूतभयावहम् । यस्य यस्य करं शीर्ष्णि धास्ये स म्रियतामिति२१॥

उस महा पातकीने लोगों को जिससे बड़ाभय हो, ऐसा वर माँगा कि मैं जिस किसी के भी सिर पर हाथ रक्खूं वह मर जाय ॥ २१ ॥

तच्छ्रुत्वा भगवान्रुद्रो दुर्मना इव भारत । ओमिति प्रहसंस्तस्मै ददेऽहेरमृतं यथा ॥२२॥

हे राजन् ! यह वचन सुनकर, महादेवजी ने ऐसा वचन सुनकर उदासी के साथ परन्तु हँसते हुये जैसे सर्प को दूध पिलाया जाय वैसे ही उसे 'तथास्तु' कहकर वरदान दे दिया ॥२२॥

इत्युक्तः सोऽसुरो नूनं गौरीहरणलालसः । स तद्वरपरीक्षार्थं शम्भोर्मूर्ध्नि किलासुरः ॥२३॥

इस प्रकार सुनतेही वह असुर वरकी सत्यता जानने तथा पार्वतीजी को हरण करने की इच्छा से महादेवजी के ही मस्तक पर हाथ रखने का उद्योग करने लगा, तब महादेवजी अपने किये हुए काम से भयभीत होकर भागे ॥२३॥

स्वहस्तं धातुमारेभे सोऽबिभ्यत्स्वकृताच्छिवः । तेनोपसृष्टः संत्रस्तः पराधावन्सवेपथुः । यावदन्तं दिवो भूमेः काष्ठानामुदगादुदक् ॥२४॥

उस असुर के पीछे पड़ जाने से शिवजी भयभीत होते तथा काँपते हुए स्वर्ग, पृथ्वी तथा दिशाओं के अन्त तक गये ॥ २४ ॥

अजानन्तः प्रतिविधिं तूष्णीमासन्सुरेश्वराः । ततो वैकुण्ठमगमद्भास्वरं तमसः परम् ॥२५॥

पर कोई उपाय न देखकर देवता चुप होरहे, तब शिवजी माया से पर प्रकाशमय श्वेत द्वीप में पहुँचे ॥ २५ ॥

यत्र नारायणः साक्षान्न्यासिनां परमा गतिः । शान्तानां न्यस्तदण्डानां यतो नावर्तते गतः॥२६॥

जहाँ शान्त रूप, सबको अभय देने वाले, सन्यासियोंकेपरमगति साक्षात् नारायणविराजमान् हैं और जहाँ जानेपर फिर आवागमन नहीं होता॥

तं तथाव्यसनं दृष्ट्वा भगवान्वृजिनार्दनः । दूरात्प्रत्युदियाद्भूत्वा बटुको योगमायया ॥२७॥ मेखलाजिनदण्डाक्षैस्तेजसाग्निरिव ज्वलन् । अभिवादयामास च तं कुशपाणिर्विनीतवत्॥२८॥

दुःख को दूर करने वाले भगवान् श्रीनारायण ने शिवजीके पीछे भागे आते उस वृकासुर दैत्यको दूरही से देखकर अपनी योगमाया द्वारा ब्रह्मचारी का वेष धारण करके मेखला, मृगचर्म, दंड और माला धारण किये हुए तेजके कारण अग्निके समान प्रकाशमय, हाथ में कुशा लिये हुए, नम्र की भांति उस दैत्यको अभिवादन करके कहा ॥२७॥२८॥

श्रीभगवानुवाच

शाकुनेय भवान्व्यक्तं श्रान्तः किं दूरमागतः । क्षणं विश्रम्यतां पुंस आत्माऽयं सर्वकामधुक्॥२९॥

श्रीभगवान् बोले–हे शकुनि पुत्र ! तुम अवश्य थक गये हो, ऐसा जान पड़ता है, तुम बड़ी दूर से आये हो, अब थोड़ी देर विश्राम करलो, क्यों कि यही देह सब मनोरथ पूर्ण करता है, इसको अधिक थकाना अच्छा नहीं ॥ २९॥

यदि नः श्रवणायालं युष्मद्व्यवसितं विभो । भण्यतां प्रायशः पुंभिर्धृतैः स्वार्थान्समीहते॥३०॥

हे विभु! यदि आप अपना विचार मुझसे कहने योग्य समझें तो कहें, क्योंकि मनुष्य दूसरे की सहायता लेकर अपना स्वार्थ सिद्ध करसकता है॥

श्रीशुक उवाच

एवं भगवता पृष्टो वचसाऽमृतवर्षिणा । गतक्लमोऽब्रवीत्तस्मै यथापूर्वमनुष्ठितम् ॥३१॥

इस प्रकार अमृत बरसाते हुए से वचनोंद्वारा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जब भगवान् ने पूछा तब वृकासुरने अपनी थकान मिटने पर अपना किया हुआ सारा पूर्व वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ३१ ॥

श्रीभगवानुवाच

एवं चेत्तर्हि तद्वाक्यं न वयं श्रद्दधीमहि ।
यो दक्षशापात्पैशाच्यं प्राप्तः प्रेतपिशाचराट्॥३२॥

भगवान् बोले-यदि ऐसा है तो हम शिवजी के वचनों को सत्य नहीं मानते, क्योंकि वे दक्ष के शाप से पिशाचता को प्राप्त हुए हैं, और प्रेत पिशाचों ही के राजा हैं ॥३२॥

यदि वस्तत्र विश्रम्भो दानवेन्द्र जगद्गुरौ ।
तर्ह्यङ्गाशु स्वशिरसि हस्तं न्यस्य प्रतीयताम्॥३३॥

हे दानवराज ! जगद्गुरु कहलाने वाले इन महादेवजीपर यदि तुम्हें विश्वासहो तो तुम अपने ही सिर पर हाथ रखकर इनके वचनों की परीक्षा कर देखो ॥ ३३ ॥

यद्यसत्यं वचः शम्भोः कथञ्चिद्दानवर्षभ ।
तदैनं जह्यसद्वाचं न यद्वक्ताऽनृतं पुनः ॥३४॥

हे दानवोत्तम ! यदि किसीभी प्रकार महादेव का वचन झूठ जान पड़े तो इन मिथ्यावादी को मार डालना कि जिससे यह फिर झूठ न बोलें॥

इत्थं भगवतश्चित्रैर्वचोभिः स सुपेशलैः ।
भिन्नधीर्विस्मितः शीर्ष्णि स्वहस्तं कुमतिर्न्यधात्३५

इस प्रकार भगवान् के विचित्र और सुन्दर तथा कोमल वचनों से चलायमान् बुद्धि वाले दुर्मति वृकासुर ने भूलकर अपना हाथ अपने ही मस्तक पर धर लिया ॥३५॥

अथापतद्भिन्नशिरा वज्राहत इव क्षणात् ।
जयशब्दो नमःशब्दः साधुशब्दोऽभवद्दिवि ॥३६॥

हाथ के रखते ही जैसे बज्र की चोट लगी हो वैसे उसका सिर फूट गया और वह दैत्य मरगया देवगण स्वर्ग में 'नमः-नमः, जय-जय, साधु-साधु' कहने लगे ॥३६॥

मुमुचुः पुष्पवर्षाणि हते पापे वृकासुरे ।
देवर्षिपितृगन्धर्वा मोचितः संकटाच्छिवः ॥३७॥

पापी वृकासुर के मरने पर देव, ऋषि, पितर और गन्धर्व फूल बरसानेलगे, इस भांति भगवान् ने महादेवजी को सङ्कट से छुड़ाया ॥३७॥

मुक्तं गिरिशमभ्याह भगवान्पुरुषोत्तमः ।
अहो देव महादेव पापोऽयं स्वेन पाप्मना ॥३८॥
हतः को नु महत्स्वीश जन्तुर्वै कृतकिल्बिषः ।
क्षेमी स्यात्किमु विश्वेशे कृतागस्को जगद्गुरौ३९॥

सङ्कट से छूटे हुए शिवजीके पास आकर भगवान् बोले कि-हे देव ! हे महादेव ! हे ईश्वर ! यह पापी अपने ही पाप से मरगया, दूसरे महात्माओं का अपराध करने पर भी जब किसी जीव का कल्याण नहीं होता तब आप जगद्गुरु और ईश्वर का अपराध करनेपर तो वह होही क्या सकताहै॥

य एवमव्याकृतशक्त्युदन्वतः परस्य साक्षात्पर मात्मनो हरेः । गिरित्रमोक्षं कथयेच्छृणोति वा विमुच्यते संसृतिभिस्तथाऽरिभिः ॥४०॥

इस प्रकार मन तथा वाणी से परे, शक्ति-सिंधु माया-तीत, साक्षात् परमात्मा भगवान् ने महादेव जी को कष्ट से छुड़ाया, जो पुरुष इस कथाको कहे या सुने वह जन्म-मरण तथा शत्रुओं से मुक्त हो जाय ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

नवासीवां अध्याय

(तीनों देवताओं में बड़ा कौन ?)

श्रीशुक उवाच

सरस्वत्यास्तटे राजन्नृषयः सत्रमासत ।
वितर्कः समभूत्तेषां त्रिष्वधीशेषु को महान् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! (एक बार) सरस्वती नदी के किनारे ऋषि लोग यज्ञ कर रहे थे, उनमें इस बात पर तर्क हो पड़ी कि-तीनों देवताओं में बड़ा कौन है ? ॥१॥

तस्य जिज्ञासया ते वै भृगुं ब्रह्मसुतं नृप ।
तज्ज्ञप्त्यै प्रेषयामासुः सोऽभ्यगाद्ब्रह्मणःसभाम्२

न तस्मै प्रह्वणं स्तोत्रं चक्रे सत्त्वपरीक्षया ।
तस्मै चुक्रोध भगवान्प्रज्वलन्स्वेन तेजसा ॥ ३ ॥

हे राजन् ! इस बात का निश्चय करने के लिये उन लोगों ने ब्रह्म-पुत्र भृगुजीको पहुंचाया, वे ब्रह्मा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जीकी सभामें गये और उन्होंने ब्रह्माजीका बड़प्पन जाँचनेके लिये उनको प्रणाम न किया तथा न उन की स्तुति की, तब अपने तेज से प्रकाशमय ब्रह्मा जी ने उनपर क्रोध किया ॥२॥३॥

स आत्मन्युत्थितं मन्युमात्मजायात्मना प्रभुः ।
अशीशमद्यथा वह्निं स्वयोन्या वारिणात्मनः ॥४॥

परन्तु फिर उन्होंने यह सोचकर कि भृगु मेरा पुत्र है, अपने मनके क्रोध को शान्त किया, उस समय भृगु का ब्रह्माजी द्वारा उत्पन्न होना उनके क्रोध को शान्त करने के लिये वैसेही काम आया जैसे अग्नि से उत्पन्न हुआ जल उसी को शान्त करने में काम आता है ॥४॥

ततः कैलासमगमत्स तं देवो महेश्वरः ।
परिरब्धुं समारेभे उत्थाय भ्रातरं मुदा ॥ ५ ॥
नैच्छत्त्वमस्युत्पथग इति देवश्चुकोप ह ।
शूलमुद्यम्य तं हन्तुमारेभे तिग्मलोचनः ॥६॥

फिर भृगुजी कैलाश पर्वतपर पहुंचे, तब शिव जी खड़े होकर अपने उन भाई से मिलनेको उद्यत हुए, परन्तु भृगुजी ने उनसे यह कहकर कि 'तुम कुमार्ग पर चलते हो' मिलने से अनिच्छा प्रकट की, यह सुनकर शिवजीको बड़ा क्रोध आया और वे तीक्ष्ण दृष्टिधारी (महादेवजी) त्रिशूल उठाकर भृगुजी को मारने लगे ॥ ५ ॥ ६ ॥

पतित्वा पादयोर्देवी सान्त्वयामास तं गिरा ।
अथो जगाम वैकुण्ठं यत्र देवो जनार्दनः ॥ ७ ॥

तब पार्वतीजी ने पैरों में गिरकर वचनों द्वारा उनको शान्त किया. फिर भृगुजी वैकुण्ठ में पहुँचे कि जहाँ विष्णुजी विराजमान हैं ॥७॥

शयानं श्रिय उत्सङ्गे पदा वक्षस्यताडयत् ।
तत उत्थाय भगवान्सह लक्ष्म्या सतां गतिः ।
स्वतल्पादवरुह्याथ ननाम शिरसा मुनिम् ॥ ८ ॥
आह ते स्वागतं ब्रह्मन्निषीदात्रासने क्षणम् ।
अजानतामागतान्वः क्षन्तुमर्हथ नः प्रभो ॥ ९ ॥

उस समय भगवान् लक्ष्मीजी की गोद में सो रहे थे, भृगुजी ने वहाँ जाकर उनकी छातीमें लात मारी, तब सज्जनों के शरणदाता भगवान्ने लक्ष्मी जी सहित जागकर, पलंग से उतर कर, भृगुजीको सिर झुकाकर प्रणामकिया और कहाकि हे ब्रह्मन्! आप भले पधारे, कुछ समय यहाँ आसन पर बिराजिये, हे प्रभु ! मुझे आपके आने का पता न था, इसलिये (स्वागत न कर सकने की भूल) आप क्षमा करें ॥ ८ ॥ ९ ॥

अतीव कोमलौ तात चरणौ ते महामुने ।
इत्युक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन्स्वेन पाणिना ॥१०॥

हे तात ! हे महामुनि ! आपके चरण कोमलहैं (और मेरी छाती कठोर है) इस कारण आपको चोट लग गई होगी; ऐसा कहकर भगवान् अपने हाथ से भृगुजीके चरण चाँपनेलगे और बोले कि ।

पुनीहि सहलोकं मां लोकपालांश्च मद्गतान् ।
पादोदकेन भवतस्तीर्थानां तीर्थकारिणा ॥११॥

तीर्थों को भी पवित्र करने वाले अपने चरणों के धोवन के जल से मुझे, मुझमें रहने वाले लोग तथा लोकपालों को पवित्र कीजिये ॥११॥

अद्याहं भगवँल्लक्ष्म्या आसमेकान्तभाजनम् ।
वत्स्यत्युरसि मे भूतिर्भवत्पदहतांहसः ॥१२॥

हे भगवन् ! आपके चरण-प्रहार से मेरे सब पाप निवृत्त होगये, इसलिये अब मैं लक्ष्मीजीका अटल निवास-स्थान बनगया, क्योंकि अब लक्ष्मी जी मेरे वक्षःस्थल से न टलेंगी ॥१२॥

श्रीशुक उवाच

एवं ब्रुवाणे वैकुण्ठे भृगुस्तन्मन्द्रया गिरा ।
निर्वृतस्तर्पितस्तूष्णीं भक्त्युत्कण्ठोऽश्रुलोचनः १३

श्रीशुकदेवजी बोले—जब भगवान् इस प्रकार कह रहे थे, तब भृगुजी उनकी गंभीर वाणी सुन कर परम आनन्द में मग्न होकर चुप होगये और भक्ति से उत्पन्न हुई उत्कंठा के कारण उनके नेत्रों में आँसू भर आये ॥१३॥

पुनश्च सत्रमाव्रज्य मुनीनां ब्रह्मवादिनाम् ।
स्वानुभूतमशेषेण राजन्भृगुरवर्णयत् ॥१४॥

हे राजन्! फिर भृगुजीने उन ब्रह्मवादी ऋषियों के यज्ञमें आकर जो कुछभी उनकी समझमें आया था, वह सब कह सुनाया ॥१४॥

तन्निशम्याथ मुनयो विस्मिता मुक्तसंशयाः ।
भूयांसं श्रद्दधुर्विष्णुं यतः शान्तिर्यतोऽभयम् ॥१५॥
धर्मः साक्षाद्यतो ज्ञानं वैराग्यं च तदन्वितम् ।
ऐश्वर्यं चाष्टधा यस्माद्यशश्चात्ममलापहम् ॥१६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह बात सुनकर विस्मयवाले मुनियोंने संदेह त्यागकर यह जान लिया कि भगवान् विष्णु ही सबसे बड़ेहैं कि जिनमें शान्ति, अभय, धर्म, प्रत्यक्ष ज्ञान सहित वैराग्य, आठों सिद्धियाँ और अन्तःकरण के मलको दूर करनेवाले यशका निवासहै ॥

मुनीनां न्यस्तदण्डानां शान्तानां समचेतसाम् ।
अकिञ्चनानां साधूनां यमाहुः परमां गतिम्॥१७॥

सबको निर्भय करने वाले, शान्त, सम चित्त और अकिंचन साधु ऋषि लोगों के जो शरण रूप हैं उन भगवान् विष्णुको सबसे बड़ा समझलिया॥

सत्त्वं यस्य प्रिया मूर्तिर्ब्राह्मणास्त्विष्टदेवताः ।
भजन्त्यनाशिषः शान्ता यं वा निपुणबुद्धयः॥१८॥

सत्व जिनकी प्रिय मूर्त्तिहै, ब्राह्मण जिनके इष्ट देव हैं, शान्त और निष्काम पुरुष जिनका भजन करते हैं. उन विष्णुजी को सबसे बड़ा जानना चाहिये ॥ १८ ॥

विविधाकृतयस्तस्य राक्षसा असुराः सुराः ।
गुणिन्या मायया सृष्टाः सत्त्वं तत्तीर्थसाधनम्१९॥

यद्यपि गुणमय माया से रचे हुए तीनों प्रकार वाले राक्षस, असुर और देवता भगवान् ही के स्वरूप हैं, फिर भी भगवान् की प्राप्ति का साधन सतोगुण ही है ॥१९॥

श्रीशुक उवाच

एवं सारस्वता विप्रा नृणां संशयनुत्तये ।
पुरुषस्य पदाम्भोजसेवया तद्गतिं गताः ॥२०॥

श्रीशुकदेवजी बोले-इस प्रकार मनुष्यों का संशय दूर करनेके लिये दृढ़ निश्चय करके सरस्वती तट पर रहने वाले ब्राह्मण भगवान्के चरणारविंद की सेवा से उन्हीं प्रभुके स्वरूप को प्राप्त हुए॥२०॥

सूत उवाच

इत्येतन्मुनितनयास्यपद्मगन्धपीयूषं भवभयभित्परस्य पुंसः । सुश्लोक्यं श्रवणपुटैः पिबत्यभीक्ष्णं पान्थोऽध्वभ्रमणपरिश्रमं जहाति ॥२१॥

श्रीसूतजी बोले-इस प्रकार श्रीशुकदेवजी के मुख कमल की सुगंध से मिला हुआ अमृत-तुल्य संसार के भय को निवारण करने वाले पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्र का यश जो पुरुष कान रूपी 'दोनों' में भरकर पान करेगा, वह संसार के आवागमन सम्बन्धी परिश्रम से छूट जायगा ॥२१॥

श्रीशुक उवाच

एकदा द्वारवत्यां तु विप्रपत्न्याः कुमारकः ।
जातमात्रो भुवं स्पृष्ट्वा ममार किल भारत ॥२२॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! एक समय द्वारका में किसी ब्राह्मणकी स्त्री का पुत्र उत्पन्न हो कर पृथ्वी को छूते ही मर गया ॥ २२ ॥

विप्रो गृहीत्वा मृतकं राजद्वार्युपधाय सः ।
इदं प्रोवाच विलपन्नातुरो दीनमानसः ॥२३॥

वह व्याकुल और दीन चित्तवाला ब्राह्मण उस लाश को लेकर राज-द्वार पर रखकर विलापकरता हुआ यह वचन बोला कि ॥२३॥

ब्रह्मद्विषः शठधियो लुब्धस्य विषयात्मनः ।
क्षत्रबन्धोः कर्मदोषात्पञ्चत्वं मे गतोऽर्भकः ॥२४॥

मेरा बालक ब्राह्मणों के द्वेषी, शठ बुद्धि, विषय लंपट और लोभी क्षत्रियों के कुकर्मों के कारण मर गया है ॥ २४ ॥

हिंसाविहारं नृपतिं दुःशीलमजितेन्द्रियम् ।
प्रजा भजन्त्यः सीदन्ति दरिद्रा नित्यदुःखिताः२५॥

हिंसक, दुःस्वभाव और अजितेन्द्रिय राजाकी सेवा करनेवाली प्रजाही नित्य दुःखी और दरिद्री रहती है ॥ २५॥

एवं द्वितीयं विप्रर्षिस्तृतीयं त्वेवमेव च ।
विसृज्य स नृपद्वारि तां गाथां समगायत ॥२६॥

वह ब्राह्मण पहले ही बालक की भांति दूसरी और तीसरी बार भी बालक को राजद्वार पर रख कर उसी प्रकार कहता रहा ॥२६॥

तामर्जुन उपश्रुत्य कर्हिचित्केशवान्तिके ।
परेते नवमे बाले ब्राह्मणं समभाषत ॥२७॥

किसी समय जबकि श्रीभगवान् अर्जुनके पास बैठे हुए थे, वह ब्राह्मण नवीं बार बालकके मरजाने पर उसी प्रकार कहने लगा, तब उसके वचन सुन कर अर्जुन बोले कि ॥२७॥

किंस्विद्ब्रह्मंस्त्वन्निवास इह नास्ति धनुर्धरः ।
राजन्यबन्धुरेते वै ब्राह्मणाः सत्रमासते ॥२८॥

हे ब्राह्मण ! क्या तुम्हारे यहाँ कोई धनुषधारी नहीं है ? ये धन, स्त्री और पुत्रों में आसक्त चित्त वाले यादव तो यज्ञ से भोजन के लिये एकत्र हुए ब्राह्मणों की नाईं जान पड़ते हैं ॥ २८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धनदारात्मजान्पृक्ता यत्र शोचन्ति ब्राह्मणाः ।
ते वै राजन्यवेषेण नटा जीवन्त्यसुंभराः ॥२९॥

जिन क्षत्रियों के जीवित रहतेहुए जहाँपर धन स्त्री और पुत्र सहित ब्राह्मण शोक कररहे हों, उन अपनेही पेट भरनेवाले क्षत्रियों को तो ऐसे जानना चाहिये जैसे क्षत्रिय वेष में नटही जीवित हों॥२९॥

अहं प्रजां वां भगवन्रक्षिष्ये दीनयोरिह ।
अनिस्तीर्णप्रतिज्ञोऽग्निं प्रवेक्ष्ये हतकल्मषः ॥३०॥

हे महाराज ! आप दीनहैं, मैं यहाँ तुम्हारे पुत्रों की रक्षाकरूँगा, यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण न कर सका तो अग्नि में प्रवेश करके अपने कलंक को दूर करूँगा ॥३०॥

ब्राह्मण उवाच

संकर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नो धन्विनां वरः ।
अनिरुद्धोऽप्रतिरथो न त्रातुं शक्नुवन्ति यत्॥३१॥
तत्कथं नु भवान्कर्म दुष्करं जगदीश्वरैः ।
चिकीर्षसि त्वं बालिश्यात्तन्न श्रद्दध्महे वयम्॥३२॥

ब्राह्मण बोला–जिसे संकर्षण, श्रीकृष्ण, धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्न और जिनके समान कोई योधा नहीं, वे अनिरुद्ध भी न बचा सके और जो काम जगत् के ईश्वरों से भी नहीं हो सकता उसे तुम किस प्रकार करोगे ? यदि तुम ऐसे कामको करना चाहते हो तो यह तुम्हारी मूर्खताहै, मुझे तुम्हारी बात का विश्वास नहीं होता ॥ ३१॥३२ ॥

अर्जुन उवाच

नाहं सङ्कर्षणो ब्रह्मन्न कृष्णः कार्ष्णिरेव च ।
अहं वा अर्जुनो नाम गाण्डीवं यस्य वै धनुः॥३३॥

अर्जुन बोले–हे ब्राह्मण ! न तो मैं संकर्षण हूँ, न कृष्ण हूँ और न प्रद्युम्न हूँ, वरन् अर्जुन हूँ, कि जिसके पास गांडीव धनुष है ॥३३॥

माऽवमंस्था मम ब्रह्मन्वीर्यं त्र्यम्बकतोषणम् ।
मृत्युं विजित्य प्रधने आनेष्ये ते प्रजां प्रभो॥३४॥

हे ब्राह्मण ! महादेवजी को भी प्रसन्न करने वाले मेरे पराक्रमका तुम अपमान न करो, हे प्रभु! युद्धमें मृत्युको भी जीतकर तुम्हारे पुत्रको लाऊँगा।

एवं विश्रम्भितो विप्रः फाल्गुनेन परन्तप ।
जगाम स्वगृहं प्रीतः पार्थवीर्यं निशामयन् ॥३५॥

हे राजन् ! जब इस प्रकार अर्जुन ने विश्वास दिलाया तब वह अर्जुनके पराक्रमको सुनकर प्रसन्न होता हुआ अपने घरको चला गया ॥३५॥

प्रसूतिकाल आसन्ने भार्याया द्विजसत्तमः ।
पाहि पाहि प्रजां मृत्योरित्याहार्जुनमातुरः॥३६॥

जब उसकी स्त्री का प्रसव-काल निकट आया तब उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने आतुर होकर अर्जुनके पास आकर कहा कि मेरे पुत्रको बचाओ-बचाओ ॥३६॥

स उपस्पृश्य शुच्यम्भो नमस्कृत्य महेश्वरम् ।
दिव्यान्यस्त्राणि संस्मृत्य सज्यं गाण्डीवमाददे३७॥

तब अर्जुन ने पवित्र जल से आचमन करके महादेवजी को प्रणाम करनेके पश्चात् दिव्य अस्त्रों का स्मरण कर और गांडीव धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ाकर उसे हाथ में लिया ॥३७॥

न्यरुणत्सूतिकागारं शरैर्नानास्त्रयोजितैः ।
त्रिर्यगूर्ध्वमधः पार्थश्चकार शरपञ्जरम् ॥३८॥

और अनेक प्रकार के अस्त्रोंसे जोड़े हुए बाणों के द्वारा प्रसूतिका के घर को ऊपर, नीचे, बगलों आदि चारों ओर से बन्द करके शर-पंजर सा बना दिया ॥३८॥

ततः कुमारः संजातो विप्रपत्न्या रुदन्मुहुः ।
सद्योऽदर्शनमापेदे सशरीरो विहायसा ॥३९॥

उस समय ब्राह्मण की स्त्री से अत्यन्त रुदन करताहुआ बालक उत्पन्न हुआ और आकाश-मार्ग से सदेह ही अदृश्य होगया ॥३९॥

तदाह विप्रो विजयं विनिन्दन्कृष्णसंनिधौ ।
मौढ्यं पश्यत मे योहं श्रद्दधे क्लीबकत्थनम् ॥४०॥

तबतो वह ब्राह्मण श्रीकृष्णजीके सामने अर्जुन की निन्दा करता हुआ कहने लगा कि देखो, मेरी मूर्खता देखो कि मैंने नपुंसककी बात पर विश्वास कर लिया ॥ ४० ॥

न प्रद्युम्नो नानिरुद्धो न रामो न च केशवः ।
यस्य शेकुः परित्रातुं कोन्यस्तदवितेश्वरः ॥४१॥

प्रद्युम्न, अनिरुद्ध; बलराम और श्रीकृष्ण भी जिसकी रक्षा न कर सके, उसे दूसरा कौन बचा सकता है ? ॥४१॥

धिगर्जुनं मृषावादं धिगात्मश्लाघिनो धनुः ।
दैवोपसृष्टं यो मौढ्यादानिनीषति दुर्मतिः ॥४२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस मिथ्यावादी अर्जुन को धिक्कार है, इस अपने आप अपनी बड़ाई करनेवाले अर्जुनके धनुष को धिक्कारहै, जो दुर्बुद्धिवाला दैवके द्वारा विनाश किये हुए पदार्थों को अपनी मूर्खता के कारण बचाना चाहता है ॥४२॥

एवं शपति विप्रर्षौ विद्यामास्थाय फाल्गुनः ।
ययौ संयमिनीमाशु यत्रास्ते भगवान्यमः ॥४३॥

ब्राह्मण तो यहाँ इस प्रकार अर्जुनको गालियां बक रहा था, वहाँ अर्जुन अपनी विद्या को धारण करके, तत्काल ही यमपुरी में पहुँचे जहाँ यमराज विराजमान् हैं ॥४३॥

विप्रापत्यमचक्षाणस्तत ऐन्द्रीमगात्पुरीम् ।
आग्नेयीं नैर्ऋतीं सौम्यां वायव्यां वारुणीमथ ।
रसातलं नाकपृष्ठं विष्ण्यान्यन्यान्युदायुधः ॥४४॥
ततोऽलब्धद्विजसुतो ह्यनिस्तीर्णप्रतिश्रुतः ।
अग्निं विविक्षुः कृष्णेन प्रत्युक्त प्रतिषेधितः ॥४५॥

वहाँ जब उन्होंने कहीं भी ब्राह्मण-पुत्र को न देखा तब वे इन्द्रपुरी में पहुँचे, वहाँ भी उसे न पा कर शस्त्र उठाकर अग्नि, निर्ऋति,सोम,वायु और वरुण की पुरी में गये, पाताल, स्वर्ग और दूसरे सभी स्थान ढूंढ फिरे पर कहीं भी ब्राह्मण-पुत्र का पता न पा सके, अन्त में उन्होंने प्रतिज्ञा भंग होने के कारण अग्नि में प्रवेश करने का विचार किया, तब भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें रोका और कहा कि॥

दर्शये द्विजसूनूंस्ते मावज्ञात्मानमात्मना ।
ये ते हि कीर्तिं विमलां मनुष्याः स्थापयन्ति नः ॥

तुम स्वयंही अपना तिरस्कार न करो, मैं तुम्हें ब्राह्मणके पुत्रों को दिखला दूँगा, जिसके कारण जो आज तुम्हारी निन्दा करतेहैं, वही तुम्हारी निर्मल कीर्त्तिको पृथ्वी पर निश्चल कर देंगे ॥४६॥

इति संभाष्य भगवानर्जुने न सहेश्वरः ।
दिव्यं स्वरथमास्थाय प्रतीचीं दिशमाविशत्॥४७॥

परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णजी इस प्रकार कह कर अर्जुनसहित अपने दिव्य रथमें बैठकर पश्चिम की ओर पधारे ॥४७॥

सप्त द्वीपान्सप्त सिन्धून् सप्त सप्त गिरीनथ ।
लोकालोकं तथाऽतीत्य विवेश सुमहत्तमः ॥४८॥

सात द्वीप, सात समुद्र, सात पर्वत और लोकालोक नामी पर्वत को पार करके आगे महान् अन्धकार में पहुँचे ॥४८॥

तत्राश्वाः शैव्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकाः ।
तमसि भ्रष्टगतयो बभूवुर्भरतर्षभ ॥४९॥

हे भारत कुलोत्तम ! वहाँ शैव्य, सुग्रीव, मेघ-पुष्प, बलाहक नामक प्रभु के चारों घोड़े अन्धकार के कारण रुक रहे ॥४९॥

तान्दृष्ट्वा भगवान्कृष्णो महायोगेश्वरेश्वरः ।
सहस्रादित्यसंकाशं स्वचक्रं प्राहिणोत्पुरः ॥५०॥

परम योगेश्वरों के भी ईश्वर भगवान् ने उन्हें रुका हुआ देखकर सहस्र सूर्य के समान (प्रकाश करने वाले) अपने सुदर्शनको आगे बढ़ाया ॥५०॥

तमः सुघोरं गहनं कृतं महद्विदारयद्भूरितरेण रोचिषा । मनोजवं निर्विविशे सुदर्शनं गुणच्युतो रामशरो यथा चमूः ॥५१॥

अपने अत्यन्त तेज के द्वारा प्रकृति के फलरूप उस घने तथा प्रबल अन्धकारको चीड़ते हुए भगवान् के सुदर्शन चक्रने मनके समान वेगपूर्वक उस में इस प्रकार प्रवेश किया जैसे श्रीरामचन्द्रजी का प्रत्यंचा से छूटा हुआ बाण सेनामें प्रवेश करताहै॥

द्वारेण चक्रानुपथेन तत्तमः परम्परं ज्योतिरनन्तपारम् । समश्नुवानं प्रसमीक्ष्य फाल्गुनः प्रताडिताक्षोऽपिदधेऽक्षिणी उभे ॥५२॥

चक्र के द्वारा किये हुए मार्ग से जाते २ उस अन्धकार से बहुतही दूर अनन्त अपार तेज व्याप्त होता हुआ दिखाई दिया, जिसे देखकर अर्जुन ने चकमका कर अपनी आँखें बन्द करलीं ॥५२॥

ततः प्रविष्टः सलिलं नभस्वता बलीयसैजद्बृहदूर्मिभीषणम् । तत्राद्भुतं वै भवनं द्युमत्तमं भ्राजन्मणिस्तम्भसहस्रशोभितम् ॥५३॥

फिर अत्यन्त प्रबल पवन से उठती हुई तरंगों से शोभायमान् जल में उन्होंने प्रवेश किया, वहाँ उन्हें परम प्रकाश मय और शोभामय हज़ारों मणियों के खंभों से कान्तिमान् एक अद्भुत भवन दृष्टि आया ॥५३॥

तस्मिन्महाभीममनन्तमद्भुतं सहस्रमूर्धन्यफणामणिद्युभिः । विभ्राजमानं द्विगुणोल्बणेक्षणं सिताचलाभं शितिकण्ठजिह्वम् ॥५४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वहाँ महा भयानक, अद्भुत, हज़ार फणों पर स्थित मणियोंसे कान्तिवान् भयप्रद दो हज़ार नेत्र धारण किये हुए श्याम कण्ठ और जीभवाले पर्वत के समान शेषजी को देखा ॥ ५४ ॥

ददर्श तद्भोगसुखासनं विभुं महानुभावं पुरुषोत्तमोत्तमम् । सान्द्राम्बुदाभं सुपिशङ्गवाससं प्रसन्नवक्त्रं रुचिरायतेक्षणम् ॥५५॥

उन शेषजी के शरीर पर सुखसे लेटेहुए परम प्रतापी व्यापक और श्रेष्ठ प्रभु पुरुषोत्तम भगवान् के दर्शनपाये, जिन भूमा भगवान्की कान्ति गंभीर मेघ के समानहै, वे पीतांबर ओढ़े हुए और प्रसन्न मुख हैं तथा उनके विशाल और मनोहर नेत्र शोभा दे रहे हैं ॥ ५५ ॥

महामणिव्रातकिरीटकुण्डलप्रभापरिक्षिप्तसहस्रकुन्तलम् । प्रलम्बचार्वष्टभुजं सुकौस्तुभं श्रीवत्सलक्ष्म्या वनमालया वृतम् ॥५६॥

जिनके केश विशाल मणियों से जटित किरीट और कुण्डलों की कान्ति से शोभायमान हैं, आठ सुन्दर विशाल बाहु हैं, जो कौस्तुभ मणि और भृगु-लता चिह्न को शोभा देती हुई वनमाला को धारण किये हैं ॥५६॥

सुनन्दनन्दप्रमुखैः स्वपार्षदैश्चक्रादिभिर्मूर्तिधरैर्निजायुधैः । पुष्ट्या श्रिया कीर्त्यजयाऽखिलर्धिभिर्निषेव्यमाणं परमेष्ठिनां पतिम् ॥५७॥

सुनन्द, नन्द आदि पार्षद, मूर्त्तिमान सुदर्शन चक्र आदि आयुध, पुष्टि, लक्ष्मी, कीर्त्ति, माया और आठों सिद्धियां जिनकी सेवामें तन्मयहैं और जो ब्रह्मा आदि के पति हैं ॥५७॥

ववन्द आत्मानमनन्तमच्युतो जिष्णुश्च तद्दर्शनमात्तसाध्वसः । तावाह भूमा परमेष्ठिनां प्रभुर्बद्धाञ्जली सस्मितमूर्जया गिरा ॥५८॥

ऐसे अनन्त भूमा भगवान्रूप अपनेही स्वरूप को देखकर सब लोकोंके स्वामी श्रीकृष्णजीने उन्हें प्रणाम किया और भयभीत अर्जुन ने भी प्रणाम किया, तब श्रीकृष्णार्जुन को हाथ जोड़े खड़ा देख कर भगवान् हँसकर गंभीर वाणी से बोले ॥५८॥

द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा मयोपनीता भुवि धर्मगुप्तये । कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान्हत्वेह भूयस्त्वरयेतमन्तिमे ॥५९॥

भूमा भगवान् बोले-तुम्हारे देखने के लिये ही मैं ब्राह्मण-पुत्रोंको यहाँ ले आयाहूँ, तुम दोनोंपृथ्वी पर धर्म-रक्षा के लिये मेरे अंश से प्रकट हुए हो, इसलिये अब पृथ्वी के भार रूप दैत्यों के बध का काम पूर्ण करके शीघ्रही मेरे पास आ जाओ ॥५९॥

पूर्णकामावपि युवां नरनारायणावृषी । धर्ममाचरतां स्थित्यै ऋषभौ लोकसंग्रहात् ॥६०॥

यद्यपि तुम दोनों नर-नारायण ऋषि के अवतार रूप सर्व श्रेष्ठ और पूर्ण काम हो, फिर भी जगत् की स्थिति के लिये लोक-संग्रह का ध्येय रखकर धर्म का आचरण करो ॥६०॥

श्रीशुक उवाच

इत्यादिष्टौ भगवता तौ कृष्णौ परमेष्ठिना । ओमित्यानम्य भूमानमादाय द्विजदारकान् ६१॥

न्यवर्ततां स्वकं धाम संप्रहृष्टौ यथागतम् । विप्राय ददतुः पुत्रान्यथारूपं यथावयः ॥६२॥

श्रीशुकदेवजी बोले-जब भूमा भगवान् ने इस प्रकार आज्ञा दी, तब श्रीकृष्णार्जुन उनके वचनोंको शिरोधार्य करके ब्राह्मण के पुत्रों को लेकर उन प्रभु को प्रणाम करके जिस मार्गसे गये थे उसीसे लौट कर द्वारका आये और उन्होंने ब्राह्मण को उसी अवस्था तथा रूपवाले पुत्र दिये ॥६१॥६२॥

निशम्य वैष्णवं धाम पार्थः परमविस्मितः । यत्किंचित्पौरुषं पुंसां मेने कृष्णानुकम्पितम् ॥६३॥

अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान् के धाम को देखकर अत्यन्त चकित होगये और तब उनकी समझ में आया कि मनुष्य में जितना भी पुरुषार्थहै वह सब भगवान् ही की कृपा से है ॥६३॥

इतीदृशान्यनेकानि वीर्याणीह प्रदर्शयन् । बुभुजे विषयान्ग्राम्यानीजे चात्यूर्जितैर्मखैः ॥६४॥

इस लोक में ऐसे २ अनेक पराक्रम दिखलाते हुए भगवान् ने सांसारिक विषयों का भोग करते हुए अत्यन्त सात्विकी बुद्धि वाले यज्ञों द्वारा यजन किया ॥६४॥

प्रववर्षाखिलान्कामान्प्रजासु ब्राह्मणादिषु ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यथाकालं यथैवेन्द्रो भगवाञ्छ्रैष्ठ्यमास्थितः॥६५॥

सर्व श्रेष्ठ भगवान् ने इन्द्र की नाईं ब्राह्मण आदि समस्त प्रजा के सभी मनोरथ समय-समय पर पूर्ण किये ॥६५॥

हत्वा नृपानधर्मिष्ठान्घातयित्वार्जुनादिभिः ।
अञ्जसा वर्तयामास धर्मं धर्मसुतादिभिः ॥६६॥

अधर्मी राजाओं को स्वयं मारकर और अर्जुन के द्वारा संहार करवाके युधिष्ठिर आदि धर्मवान् राजाओं से सहजही में धर्म-प्रवृत्त कर दिया॥६६॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे नवाशीतितमोऽध्यायः ॥८९॥

नब्बेवां अध्याय

(पुनः श्रीकृष्ण विहार-लीला वर्णन)

श्रीशुक उवाच

सुखं स्वपुर्यां निवसन्द्वारकायां श्रियः पति ।
सर्वसंपत्समृद्धायां जुष्टायां वृष्णिपुङ्गवैः ॥ १ ॥
स्त्रीभिश्चोत्तमवेषाभिर्नवयौवनकान्तिभिः ।
कन्दुकादिभिर्हर्म्येषु क्रीडन्तीभिस्तडिद्द्युभिः ॥२॥
नित्यं सङ्कुलमार्गायां मदच्युद्भिर्मतङ्गजैः ।
स्वलंकृतैर्भटैरश्वै रथैश्च कनकोज्ज्वलैः ॥ ३ ॥
उद्यानोपवनाढ्यायां पुष्पितद्रुमराजिषु ।
निर्विशद्भृङ्गविहगैर्नादितायां समन्ततः ॥ ४ ॥
रेमे षोडशसाहस्रपत्नीनामेकवल्लभः ।
तावद्विचित्ररूपोऽसौ तद्गृहेषु महर्द्धिषु ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-जो सम्पूर्ण सम्पत्तियों से भरी हुई, श्रेष्ठ यदुवंशियोंसे सेवितहै, जहाँ नवीन यौवन की छबि से दीप्तमान् तथा बिजली की नाईं कान्तिमयी स्त्रियाँ महलों में गेंद आदि से अनोखे खेल खेलरही हैं और शृङ्गारसे मनोहर वेष धारण कर रही हैं, जहाँ के मार्गों में मद झरते हुए हाथी, उत्तम वेष वाले योधा, घोड़ों और स्वर्ण से दीप्तमान् रथों की सदैव भीड़ लगी रहती है, जहाँ फूल-फल वाले वगीचे लगे हुए हैं और फूले हुए वृक्षों की पंक्तियों में भौरों तथा पक्षियों की गुञ्जार हो रही है, उस द्वारका में सोलह हज़ार स्त्रियों के प्रियतम लक्ष्मीपति भगवान् प्रति स्त्री के समृद्धिवान् महल, पीछे एक-एक विचित्र रूप धारण कर के उन सबसे रमण करते थे ॥१॥२॥३॥४॥५॥

प्रोत्फुल्लोत्पलकह्लारकुमुदाम्भोजरेणुभिः ।
वासितामलतोयेषु कूजद्द्विजकुलेषु च ॥ ६ ॥

इन महलों में निर्मल जलाशयों के जल, फूले हुए उत्पल, कल्हार, कुमुद और पद्म की सुगंधिसे सुवासित होरहे थे और उनके तीर पर पक्षियों के झुंड कूंज रहे थे ॥६॥

विजहार विगाह्याम्भो हृदिनीषु महोदयः ।
कुचकुङ्कुमलिप्ताङ्गः परिरब्धश्च योषिताम् ॥ ७ ॥

उन तालाबियों में प्रवेश करके परम प्रतापी श्रीकृष्णचन्द्र विहार करते थे, वहाँ स्त्रियों के आलिंगन से उनके कुचों की केसर छूटकर भगवान् के अङ्गों में लग रही थी ॥७॥

उपगीयमानो गन्धर्वैर्मृदङ्गपणवानकान् ।
वादयद्भिर्मुदा वीणां सूतमागधबन्दिभिः ॥ ८ ॥

गन्धर्व गण प्रेम पूर्वक मृदङ्ग, पणव, आनक और वीणा बजारहे थे, और सूत, मागध तथा बंदीजन उनका यश गारहे थे ॥ ८ ॥

सिच्यमानोऽच्युतस्ताभिर्हसन्तीभिः स्म रेचकैः ।
प्रतिसिञ्चन्विचिक्रीडे यक्षीभिर्यक्षराडिव ॥ ९ ॥

हँसती हुई स्त्रियाँ पिचकारियोंसे भगवान् को भिगोरही थीं और भगवान् उन्हें भिगो रहे थे उस समय ऐसे जान पड़ता था मानों कुबेर यक्षिणियों के साथ विहार कर रहे हों ॥९॥

ताः क्लिन्नवस्त्रविवृतोरुकुचप्रदेशाः सिञ्चन्त्य उद्धृतबृहत्कबरप्रसूनाः । कान्तं स्म रेचकजिहीर-
षयोपगुह्य जातस्मरोत्सवलसद्वदना विरेजुः ॥१०॥

वस्त्र भीग जानेसे जिनके स्तन, उरु और कुच प्रत्यक्ष से दीखने लगे हैं, जिनकी चोटियाँ ढीली होने से उनमें से फूल बिखर रहे हैं और पिचकारियों से बचने के कारण भगवान् का आलिंगन करते हुए कामदेव की उमंग से जिनके मुख देदीप्यमान् होरहे हैं, ऐसी स्त्रियाँ भगवान्को भिगोती हुई विशेष शोभा पाने लगीं ॥ १० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृष्णस्तु तत्स्तनविषज्जितकुङ्कुमस्रक् क्रीडाभिषङ्गधुतकुन्तलवृन्दबन्धः । सिञ्चन्मुहुर्युवतिभिः प्रतिषिच्यमानो रेमे करेणुभिरिवेभपतिः परीतः ११

स्त्रियों के कुचोंकी केसर से भगवान्की माला भरगई और क्रीड़ा करने से उनके केश-पाश के बन्धन ढीले पड़ गये, जब श्रीकृष्ण और उनकी रानियाँ एक दूसरे को भिगोरही थीं, उस समय श्रीकृष्ण भगवान् हथिनियों के साथ विहार करते हुए हाथी के समान शोभा पारहे थे ॥११॥

नटानां नर्तकीनां च गीतवाद्योपजीविनाम् ।
क्रीडालंकारवासांसि कृष्णोऽदात्तस्य च स्त्रियः १२

नट, नटनियोंतथा दूसरे गाने-बजानेका उद्योग करने वालोंको श्रीकृष्ण भगवान् और रानियां क्रीड़ा करने के अलंकार और वस्त्र दे रही थीं ॥१२॥

कृष्णस्यैवं विहरतो गत्यालापेक्षितस्मितैः ।
नर्मक्ष्वेलिपरिष्वङ्गैः स्त्रीणां किल हृता धियः॥१३॥
ऊचुर्मुकुन्दैकधियो गिर उन्मत्तवज्जडम् ।
चिन्तयन्त्योऽरविन्दाक्षं तानि मे गदतः शृणु ॥१४

इस प्रकार क्रीड़ा करते हुए श्रीकृष्ण भगवान् के भाषण, गति, चितवन, मन्द मुसकान,ठिठोली, हास्य वचन और आलिंगन से जिनका मन हरण होगया है, तथा जिनकी बुद्धि उन्हीं में लग रहीहै, ऐसी वे स्त्रियाँ भगवान् का चिन्तवन करती हुई उन्मत्त तथा जड़ की भाँति जो वचन कह रही थीं वे मैं तुमसे कहता हूँ सो सुनो ॥१३॥१४॥

महिष्य ऊचुः

कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोधः । वयमिव सखि कश्चिद्गाढनिर्भिन्नचेता नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन ॥१५॥

स्त्रियाँ बोलीं–हे टिटहरी ! जगत् में गुप्त ज्ञान भगवान् श्रीकृष्ण तो रात में शयन कररहे हैं और तू जागती हुई विलाप कर-करके उनकी निद्रा भंग कर रही है, तू सोती नहीं यह तो अनुचित है, हे सखी ! क्या हमारी तरह से तेरा मन भी कमल नयन भगवान् के सुन्दर हास्य और लीलामयी चितवन से अत्यन्त भिन्न होगया है ? ॥१५॥

नेत्रे निमीलयसि नक्तमदृष्टबन्धुस्त्वं रोरवीषि करुणं बत चक्रवाकि । दास्यंगता वयमिवाच्युतपादजुष्टां किं वा स्रजं स्पृहयसे कबरेण वोढुम् १६॥

हे चकवी ! तूने आँखें क्यों मूंद लीं ? तू तो ऐसे रोरही है जैसे रातमें पति न मिलनेपर करुणा आने से रोया जाता है, क्या दासी-भाव पाई हुई हम गोपियों की भांति तू भी भगवान् के चरणों में चढ़ीहुई मालाको अपनी चोटीपर चढ़ाना चाहतीहै?

भो भोः सदा निष्टनसे उदन्वन्नलब्धनिद्रोऽधिगतप्रजागरः । किंवा मुकुन्दापहृतात्मलाञ्छनः प्राप्तां दशां त्वं च गतो दुरत्ययाम् ॥१७॥

रे समुद्र ! निद्रा न आने से क्या तुझे प्रजागर होगया है जो सदा चिल्लाया करती है या तेरी भी हमारी सी दशा होगई है ? क्योंकि जैसे भगवान् ने हमारे कुचों की केशर हरली है वैसे ही तुझे मन्थन करके तुझसे लक्ष्मी और कौस्तुभ मणि हरली है ॥ १७ ॥

त्वं यक्ष्मणा बलवताऽसि गृहीत इन्दो क्षीणस्तमो न निजदीधितिभिः क्षणोषि । कच्चिन्मुकुन्दगदितानि यथा वयं त्वं विस्मृत्य भोः स्थगितगीरुपलक्ष्यसे नः ॥१८॥

हे चन्द्रमा ! क्या तू प्रबल क्षय रोग होने के कारण ही इतनी क्षीणता को प्राप्त होगया है कि अपनी किरणों से अन्धकार को दूर नहीं करता, या भगवान् की रहस्यमयी बातों को स्मरण करके उन्हीं की चिन्ता में मग्न रहने से ऐसा नहीं करने पाता, हमारी समझ में तो हम रानियों की तरह ही तेरी वाणी मौन होगई है ॥ १८ ॥

किंवाचरितमस्माभिर्मलयानिल तेऽप्रियम् ।
गोविन्दापाङ्गनिर्भिन्ने हृदीरयसि नः स्मरम्॥१९॥

हे मलयगिरिके पवन ! हमने तेरा क्या बिगाड़ा है जो तू श्रीकृष्ण के अङ्गों से स्पर्श करके हमारे हृदयों में कामदेव को जगाता है ॥१९॥

मेघ श्रीमंस्त्वमसि दयितो याद्वेन्द्रस्य नूनं श्रीवत्साङ्कं वयमिव भवान्ध्यायति प्रेमबद्धः । अत्युत्कण्ठः शबलहृदयोऽस्मद्विधो बाष्पधाराः स्मृत्वा स्मृत्वा विसृजसि मुहुर्दुःखदस्तत्प्रसङ्गः२०॥

हे श्रीमन् मेघ ! तू अवश्यही भगवान्का मित्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, क्योंकि तपन मिटाने का गुण जैसा भगवान्में है वैसा ही तुझ में भी है; इसलिये प्रेम से बंधकर तू भी हमारी नाईं उनका चिन्तवन करता हुआ जान पड़ता है, क्योंकि तू अपने हृदय की अत्यंत उत्कंठासे भृगुलताके चिह्नधारी श्रीकृष्णका स्मरण कर-करके हमारी ही भांति अश्रु-धारा बहाता है और तेरा हृदय श्याम होगया है, अरे! तूने उन के साथ मित्रता क्यों की? उनका साथ तो दुःख-दायी ही है ॥२०॥

प्रियराव पदानि भाषसे मृतसंजीविकयाऽनया गिरा। करवाणि किमद्य ते प्रियं वद मे वल्गित कण्ठ कोकिल ॥२१॥

हे सुन्दर कण्ठ वाली कोकिल! तू मृतक को भी जीवित कर देने वाली इस अपनी कोमलवाणी से मीठे वचन बोलने वाले भगवान् के समान पद बोलती है, इसके बदले में मैं तेरा क्या हित करूँ? सो तू मुझसे कह ॥२१॥

न चलसि न वदस्युदारबुद्धे क्षितिधर चिन्तयसे महान्तमर्थम्। अपि बत वसुदेवनन्दनाङ्घ्रिं वयमिव कामयसे स्वनैर्विधर्तुम् ॥२२॥

हे उदार बुद्धि वाले पर्वत! न तो तू चलता फिरता है और न बोलता है, इससे जान पड़ता है कि तू किसी महान् विषयपर विचार किया करता है, क्या तू भी हमारी नाईं भगवान् के चरणों को अपने शिखरपर धरना चाहता है? यदि तूने ऐसा किया तो तेरी भी हमारी ही भांति दशा होगी ॥

शुष्यद्ब्रध्नदाः कृशतरा बत सिन्धुपत्न्यः संप्रत्य-पास्तकमलश्रिय इष्टभर्तुः। यद्वद्वयं यदुपतेः प्रणयावलोकमप्राप्यमुष्टहृदयाः पुरुकर्शिताः स्मः ॥

हे सिन्धु-प्रिया सरिताओ! जैसे हम रानियां भगवान् के कृपाकटाक्ष को न पाकर, हृदय हरण होजाने से अत्यन्त दुर्बल होगई हैं; वैसी क्या तुम भी आज-कल मेघ द्वारा समुद्र का जल न पाकर (वर्षा न होने से) दुर्बल, सूखे हुए गढ़हों और कमलों से शोभा-हीन होगई हो ॥ २३ ॥

हंस स्वागतमास्यतां पिब पयो ब्रूह्यङ्ग शौरेः कथां दूतं त्वां नु विदाम कच्चिदजितः स्वस्त्यास्त उक्तं पुरा। किंवा नश्चलसौहृदः स्मरति तं कस्माद्व्रजामो वयं क्षौद्रालापय कामदं श्रियमृते सैवैकनिष्ठा स्त्रियाम् ॥२४॥

हे हंस! तेरा स्वागत है; आ, बैठ दूध पी और भगवान् की कथा कह, हम जानती हैं कि तू दूत बनकर आया है, भगवान् अच्छी तरह तो हैं? वे क्षणिक स्नेह रखने वाले हमसे स्वयं ही जो कुछ कहगये थे क्या उसे कभी स्मरण भी करते हैं? हे छली के दूत! हमारा उनसे प्रयोजन ही क्या है यदि हमें काम-सुख देने के लिये बुलातेहों तो उन्हें ही यहाँ क्यों नहीं बुला लाता, परन्तु याद रहे कि लक्ष्मी हम सबको धोखा देकर अकेले ही उनका सेवन कर रही है इसलिये अकेले भगवान्ही को बुला लाना, लक्ष्मी उनके साथ न आवे, यदि तू यह समझता हो कि वे लक्ष्मी को छोड़ कर कैसे आयेंगे? तो क्या केवल लक्ष्मीही निष्ठा वाली है? हम नहीं ॥ २४ ॥

इतीदृशेन भावेन कृष्णे योगेश्वरेश्वरे। क्रियमाणेन माधव्यो लेभिरे परमां गतिम् ॥२५॥

श्रीशुकदेवजी बोले–योगेश्वरों के भी ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र में ऐसा प्रेम रखकर वे सब स्त्रियाँ परम गति को प्राप्त हुईं ॥२५॥

श्रुतमात्रोऽपि यः स्त्रीणां प्रसह्याकर्षते मनः। उरुगायोरुगीतो वा पश्यन्तीनां कुतः पुनः ॥२६॥

जिन भगवान् के अनेक यश गाने, सुनने या मनन करने से ही स्त्रियों के मन बलात्कार से ही खिंचकर उनमें लगजाते हैं, तब उनके दर्शन करने वाली स्त्रियों के मन खिंचकर उनमें लग जाना कौनसी अचंभे की बात है? ॥२६॥

याः संपर्यचरन्प्रेम्णा पादसंवाहनादिभिः। जगद्गुरुं भर्तृबुद्ध्या तासां किं वर्ण्यते तपः॥२७॥

भला उन स्त्रियों की तपस्या का क्या वर्णन किया जासकताहै जो जगद्गुरु भगवान्को अपना पति समझकर प्रेम पूर्वक चरण चाँपने आदि के द्वारा उनकी सेवा करती थीं ॥२७॥

एवं वेदोदितं धर्ममनुतिष्ठन्सतां गतिः। गृहं धर्मार्थकामानां मुहुश्चादर्शयत्पदम् ॥२८॥

इस प्रकार वेदके अनुसार आचरण करते हुए सज्जनों के शरण रूप भगवान् ने बारंबार यही बात दिखलाई कि घर ही धर्म; अर्थ और कामकी जगह है (अर्थात् वैदिक नियम से चलने पर धर्म अर्थ और कामकी यथोचित प्राप्ति होसकती है)॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आस्थितस्य परं धाम कृष्णस्य गृहमेधिनाम्।
आसन्षोडशसाहस्रं महिष्योष्टशताधिकम् ॥२६॥

जिस समय भगवान् गृहस्थों के उत्तम धर्मका पालन करते थे, उस समय उनके सोलह हज़ार एकसौ आठ रानियाँ थीं ॥२६॥

तासां स्त्रीरत्नभूतामामष्टौ याः प्रागुदाहृताः।
रुक्मिणीप्रमुखा राजंस्तत्पुत्राश्चानुपूर्वशः ॥३०॥

हे राजन्! स्त्रियों में रत्नके समान इन सोलह हज़ार एकसौ आठ रानियों में भी रुक्मिणी आदि आठ पटरानी थीं, उनके पुत्रों का पीछे वर्णन किया जा चुका है ॥३०॥

एकैकस्यां दश दश कृष्णोऽजीजनदात्मजान्।
यावत्य आत्मनो भार्या अमोघगतिरीश्वरः ॥३१॥

अमोघ गति ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र ने अपनी प्रत्येक रानी से दस-दस पुत्र उत्पन्न किये ॥ ३१ ॥

तेषामुदामवीर्याणामष्टादश महारथाः।
आसन्नुदारयशसस्तेषां नामानि मे शृणु ॥३२॥

हे राजन्! उनमें से बड़े ही पराक्रमी, उदार और यशस्वी अठारह महारथी हुए, उनके नाम मुझसे सुनो ॥३२॥

प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च दीप्तिमान्भानुरेव च।
साम्बो मधुर्बृहद्भानुश्चित्रभानुर्वृकोऽरुणः ॥३३॥
पुष्करो वेदबाहुश्च श्रुतदेवः सुनन्दनः।
चित्रबाहुर्विरूपश्च कविर्न्यग्रोध एव च ॥३४॥

प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, दीप्तिमान्, भानु, सांब, मधु, बृहद्भानु, चित्रभानु, वृक, अरुण, पुष्कर, वेदबाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन, चित्रबाहु, विरूप, कवि और न्यग्रोध ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

एतेषामपि राजेन्द्र तनुजानां मधुद्विषः।
प्रद्युम्न आसीत्प्रथमः पितृवद्रुक्मिणीसुतः ॥३५॥

हे राजेन्द्र! भगवान्के इन पुत्रोंमें भी रुक्मिणी कुमार महारथी प्रद्युम्न श्रीकृष्णचन्द्र जी से किसी बात में कम न थे ॥३५॥

स रुक्मिणो दुहितरमुपयेमे महारथः।
तस्मात्सुतोऽनिरुद्धोऽभून्नागायुतबलान्वितः ॥३६॥

इन महारथी प्रद्युम्न ने रुक्मी की कन्या का पाणिग्रहण किया, जिससे दस हज़ार हाथियों के समान बलधारी अनिरुद्ध नामक पुत्र हुआ ॥३६॥

स चापि रुक्मिणः पौत्रीं दौहित्रो जगृहे ततः।
वज्रस्तस्याभवद्यस्तु मौसलादवशेषितः ॥३७॥

अनिरुद्ध ने रुक्मी की पोती रोचना के साथ विवाह किया, जिससे उनके यहाँ वज्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो मौसल नामक यादवों के पारस्परिक संग्राम में मृत्यु से बचा (शेष सबका संहार हो गया) ॥३७॥

प्रतिबाहुरभूत्तस्मात्सुबाहुस्तस्य चात्मजः।
सुबाहोः शान्तसेनोऽभूच्छतसेनस्तु तत्सुतः ॥३८॥

वज्रनाभ के प्रतिबाहु, उसके सुबाहु, उसके शान्तसेन और शान्तसेन के शतसेन नामक पुत्र हुआ ॥ ३८ ॥

न ह्येतस्मिन्कुले जाता अधना अबहुप्रजाः।
अल्पायुषोऽल्पवीर्याश्च अब्रह्मण्याश्च जज्ञिरे ॥३९॥

इस कुल में कोई भी ऐसा उत्पन्न न हुआ जो निर्धन, अल्प सन्तान वाला, अल्पायु, अल्पवीर्य या ब्राह्मणों का अभक्त हो ॥३९॥

यदुवंशप्रसूतानां पुंसां विख्यातकर्मणाम्।
सङ्ख्या न शक्यते कर्तुमपि वर्षायुतैर्नृप ॥४०॥

हे राजन्! यदुवंशमें उत्पन्न होनेवाले विख्यात कर्म-कर्त्ता पुरुषों की गिनती दस हज़ार वर्ष में भी नहीं की जा सकती ॥४०॥

तिस्रः कोट्यः सहस्राणामष्टाशीतिशतानि च।
आसन्यदुकुलाचार्याः कुमाराणामिति श्रुतम् ॥४१॥

यदुवंश के अगणित बालकों को पढ़ाने वाले अध्यापक तीन करोड़ आठ हज़ार आठ सौ थे, ऐसा सुना गया है ॥४१॥

सङ्ख्यानं यादवानां कः करिष्यति महात्मनाम्।
यत्रायुतानामयुतलक्षेणास्ते स आहुकः ॥४२॥

उन महात्मा यादवों की संख्या कौन कर सकता है कि जिनमें से केवल उग्रसेन ही हज़ारों के दस हज़ार और उनके लाखों (गुने) यादवों के साथ द्वारका में वास करते थे ॥४२॥

देवासुराहवहता दैतेया ये सुदारुणाः।
ते चोत्पन्ना मनुष्येषु प्रजा हृत्वा बबाधिरे ॥४३॥

देवासुर संग्राम में जो भयंकर दैत्य मारे गये वे मनुष्यों में प्रकट होकर गर्व के साथ प्रजा को दुःख दे रहे थे ॥४३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तन्निग्रहाय हरिणा प्रोक्ता देवा यदोः कुले ।
अवतीर्णाः कुलशतं तेषामेकाधिकं नृप ॥४४॥

हे राजन् ! उनका संहार करने के लिये भगवान् की आज्ञासे देवता लोग यदुवंशमें प्रकट हुए थे, उनके कुल एकसौ एक थे ॥४४॥

तेषां प्रमाणं भगवान्प्रभुत्वेनाभवद्धरिः ।
ये चानुवर्तिनस्तस्य बभ्रुधुः सर्वयादवाः ॥४५॥

यह सभी यादव श्रीकृष्णजीको ही अपना प्रभु तथा प्रमाण मानते थे और उन्हींके अनुगामी रहने के कारण वे लोग भले प्रकार फले-फूले ॥४५॥

शय्यासनाटनालापक्रीडास्नानादिकर्मसु ।
न विदुः सन्तमात्मानं वृष्णयः कृष्णचेतसः॥४६॥

जिनका चित्त केवल श्रीकृष्णही में लगा हुआ है-ऐसे यादव लोग सोते, बैठते, फिरते, बोलते, खेलते, नहाते तथा दूसरे काम करते हुए भी अपने शरीर का भान तक भूल गये थे ॥४६॥

तीर्थं चक्रे नृपोनं यदजनि यदुषु स्वःसरित्पादशौचं विद्विट्स्निग्धाः स्वरूपं ययुरजितपरा श्रीर्यदर्थेऽन्ययत्नः । यन्नामाऽमङ्गलघ्नं श्रुतमथ गदितं यत्कृतो गोत्रधर्मः कृष्णस्यैतन्न चित्रं क्षितिभरहरणे कालचक्रायुधस्य ॥४७॥

हे राजन् ! पहले तो भगवान् के चरणोंके धोने की जल रूप गङ्गाजी को ही सर्वोत्तम तीर्थ मानते थे, परन्तु इसके पीछे भगवान् का यश रूपी तीर्थ जो यादवों में प्रकट हुआ,उसने गङ्गाजी का महत्व अपने से कम कर दिया, भगवान् के स्वरूपकी यह कैसी महान् महिमा है कि उनसे प्रेम करने वाले भी और द्वेष रखने वाले भी दोनों ही उनके स्वरूप को प्राप्त होगये, जिन लक्ष्मीजी को प्राप्त करने के लिये ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता यत्न किया करते हैं, वे ही भगवान् की सेवामें सदैव निरन्तर लगी रहती हैं, भगवान् का नाम एक बार सुनने अथवा उच्चारण करने से ही सारे अमंगल नष्ट होजाते हैं, ऋषियों के वंशजों में जितने भी धर्म प्रचलित हैं, उन सबके स्थापन-कर्त्ता भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं, उनके हाथ में काल रूप चक्र और आयुध है,ऐसी दशा में दुष्टों को मार कर पृथ्वी का भार उतारना उनके लिये कौनसी बड़ी बात है ? ॥४७॥

जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो यदुवरपरिषत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम् । स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मिताः श्रीमुखेन व्रजपुरवनितानां वर्धयन्कामदेवम् ॥४८॥

भगवान् श्रीकृष्ण ही समस्त जीवों के आश्रय स्थान हैं, यद्यपि वे सदैव ही सर्वत्र उपस्थित रहते हैं, फिर भी कहने के लिये उन्होंने देवकी के गर्भ से जन्म लिया है, यदुवंशी वीर पार्षदों के रूप में उनकी सेवा किया करते हैं, वे इच्छामात्रसे अधर्म का नाश कर सकते हैं, फिर भी क्रीड़ा के लिये अपनी भुजाओं के बल से अधर्म को दूर करके चराचर जीवों का दुःख दूर करते हुए, मन्द-मन्द मुसकान से युक्त सुन्दर मुखारविन्द से व्रज तथा पुर की स्त्रियों के हृदय में प्रेम-भाव का संचार करते रहते हैं, ऐसे सर्वोत्तम भगवान्की जय हो ॥

इत्थं परस्य निजवर्त्मरिरक्षयाऽऽत्तलीलातनोस्तदनुरूपविडम्बनानि । कर्माणि कर्मकषणानि यदूत्तमस्य श्रृणादमुष्य पदयोरनुवृत्तिमिच्छन्॥४९॥

प्रकृति से परे परमात्माने अपने द्वारा स्थापन किये हुए धर्म की मर्यादा रखने के लिये दिव्य लीला-शरीर धारण करके उन्हीं के अनुसार जो जो चरित्र किये हैं; उन यदु श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण के वे कर्म-बन्धन काटने वाले चरित्र ऐसे पुरुषको अवश्य सुनना चाहिये जो भगवान् के चरणों की सेवा का अभिलाषी हो ॥४९॥

मर्त्यस्तयानुसवमेधितया मुकुन्द श्रीमत्कथा श्रवणकीर्तनचिन्तयैति । तद्धाम दुस्तरकृतान्तजवापवर्गं ग्रामाद्वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्थाः ॥५०॥

प्रत्येक क्षण श्रीकृष्णचन्द्र की सुन्दर कथा सुनने तथा कीर्त्तन सहित चिन्तवन करने से बढ़ी हुई भक्ति द्वारा मनुष्य-कालके कठिन वेगको शांन्त करने वाले भगवद्धाम को पाताहै, बड़े-बड़े सम्राट् भी इसी प्रकार की भक्ति के लिये अपने नगर को छोड़कर बनमें गये हैं ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे गोविन्ददास "विनीत" विरचितायां बाल-बोधनी नाम्नी भाषा टीकायां नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

❀ दशमस्कन्ध समाप्तः ❀

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

* श्रीगणेशायनमः *

श्रीमद्भागवत

बाल बोधिनी भाषा टीका सहित ।

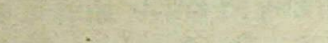

एकादश स्कन्ध

विहरत जे चर अचर महिं, यथा भाव अनुमान ।
ते बिहरहिं मम हीय बिच, सदा कृष्ण भगवान् ॥

पहिला अध्याय

(मूसल सम्बन्धी शापसे यदुवंशियों के क्षयका वर्णन)

श्रीबादरायणिरुवाच

कृत्वा दैत्यवधं कृष्णः सरामो यदुभिर्वृतः ।
भुवोऽवतारयद्भारं जविष्ठं जनयन्कलिम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—बलरामजी और यादवोंके साथ श्रीकृष्ण भगवान्ने दैत्योंका बध किया और कौरव-पांडवोंमें कलह कराके भूमिका भार उतारा।

ये कोपिताः सुबहु पांडुसुताः सपत्नैर्दुर्द्यूतहेलन-
कचग्रहणादिभिस्तान् । कृत्वा निमित्तमितरेतरतः
समेतान्हत्वा नृपान्निरहरत्क्षितिभारमीशः ॥ २ ॥

दुर्योधन आदि शत्रुओं ने दुष्ट द्यूत-कर्म, अपमान, द्रौपदी के केश खींचना और लाक्षागृह में जलाना आदि अनेक क्रूरता के काम करके पांडवों को कई बार दुःखी तथा क्रोधित किया, तब कौरव पांडव युद्ध ठन जाने से दोनों के पक्ष में आये हुए राजाओं का एक-दूसरे द्वारा संहार करवा के भगवान् ने भूमि का भार उतारा ॥ २ ॥

भूभारराजपृतना यदुभिर्निरस्य गुप्तैः स्वबाहु-
भिरचिंतयदप्रमेयः । मन्येऽवनेर्ननु गतोऽप्यगतं
हि भारं यद्यादवं कुलमहो ह्यविषह्यमास्ते ॥ ३ ॥

फिर उन्होंने विचार किया कि यद्यपि भूमि के भार रूप राजाओं का दल मैं अपने बाहु-संरक्षित यादवों के द्वारा संहार करवा चुका हूँ, फिर भी अभी भार नहीं उतरा, क्योंकि मेरे हाथसे जिनका संहार होना उचित नहीं है, ऐसे यादवोंका असह्य भार अभी शेष है ॥ ३ ॥

नैवान्यतः परिभवोऽस्य भवेत्कथंचिन्मत्संश्रयस्य
विभवोन्नहनस्य नित्यम् । अंतः कलिं यदुकुलस्य
विधाय वेणुस्तंबस्य वह्निमिव शांतिमुपैमि धाम॥४॥

इस यदुकुल का पराभव किसी दूसरे के द्वारा हो नहीं सकता, क्योंकि यह मेरे आश्रित हैं तथा हाथी, घोड़े आदि वैभवके कारण उद्धत भी होगया इसलिये इसका संहारभी आवश्यकहै;ऐसी दशामें इसका आपसमें ही कलह कराके संहार कराऊँगा, जैसे कि बाँसोंकी रगड़ से उत्पन्नहुई आगके द्वारा बाँसों का नाश होजाता है, तब कहीं मैं शान्ति पाकर अपने धाम को जाऊँगा ॥४॥

एवं व्यवसितो राजन्सत्यसंकल्प ईश्वरः ।
शापव्याजेन विप्राणां संजह्रे स्वकुलं विभुः ॥ ५ ॥

हे राजन् ! सत्य संकल्प श्रीकृष्ण भगवान् ने इस प्रकार निश्चय करके ब्राह्मण शाप का बहाना ढूंढकर अपने कुल का नाश किया ॥५॥

स्वमूर्त्या लोकलावण्यनिर्मुक्त्या लोचनं नृणाम् ।
गीर्भिस्ताः स्मरतां चित्तं पदैस्तानीक्षतां क्रिया॥६॥
आच्छिद्य कीर्तिं सुश्लोकां वितत्य ह्यंजसा नु कौ ।
तमोऽनया तरिष्यंतीत्यगात्स्वं पदमीश्वरः ॥ ७ ॥

जिससे अधिक लोकों में कहीं सुन्दरता नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है और जिसके कारण लोक शोभा पाते हैं, ऐसे शरीर से भक्त जनों के नेत्रों को अपनी ओर लगा कर अपनी वाणी से उसे स्मरण करने वालों का चित्त खींचकर धूल में बने हुए चरण-चिह्नों को देखने वाले प्राणियों को यहाँ-वहाँ भटकने (आवागमन या तीर्थादि जाने की लालसा) से बचाकर और यह सोचते हुए कि समयपर होनेवाले प्राणी इसी के आसरे से संसार-सागर पार हो जाँयगे, पुण्यात्माओं के हृदय में निवास करती हुई अपनी निर्मल कीर्त्ति को पृथ्वी पर फैलाकर श्रीकृष्ण भगवान् अपने धाम को पधारे ॥ ६ ॥ ७ ॥

राजोवाच

ब्रह्मण्यानां वदान्यानां नित्यं वृद्धोपसेविनाम् ।
विप्रशापः कथमभूद्वृष्णीनां कृष्णचेतसाम् ॥ ८ ॥
यन्निमित्तः स वै शापो यादृशो द्विजसत्तम ।
कथमेकात्मनां भेद एतत्सर्वं वदस्व मे ॥ ९ ॥

परीक्षित बोले—जो ब्राह्मणोंके भक्त दानी और वृद्ध पुरुषों के सेवक नहीं होते, ब्राह्मणों का कोप उन्हीं पर होता है परन्तु यादव तो ऐसे न थे, दूसरे उनका चित्त सदैव श्रीकृष्ण में लगा रहता था, फिर उनको ब्राह्मणका शाप कैसे हुआ ? क्यों कि श्रीकृष्ण में मन लगाने वाले को तो ब्राह्मण का शापभी न लगना चाहिये. हे शुकदेवजी ! इन मेल जोल से रहनेवाले यादवों को फिर यह शाप क्यों और कैसे लगा और उनमें कलह कैसे हुआ ? सो आप मुझ से कहिये ॥८॥९॥

श्रीशुक उवाच

बिभ्रद्वपुः सकलसुंदरसन्निवेशं कर्माऽऽचरन्भुवि सुमंगलमाप्तकामः । आस्थाय धाम रममाण उदारकीर्तिः संहर्तुमैच्छत कुलं स्थितकृत्यशेषः१०॥

श्रीशुकदेवजी बोले—पहले भगवान् ने भक्तोंको सुख देने के लिये सर्वोत्तम स्वरूप धारण कर पूर्ण काम होतेहुए भी अत्यन्त कल्याणकारी कर्म पृथ्वी पर किये और द्वारका में (गृहस्थों को आदर्श सिखाने के लिये तथा) जीवों का उद्धार करने के लिये गार्हस्थ-सम्बन्धी आचरण करके भक्तों को सुख दिया तथा अपनी सुन्दर कीर्त्ति फैलाई, अब उन्हें भूमिका भार उतारने के लिये इतना ही काम शेष रहगया था, इसलिये उन्होंने यदु-कुल संहार की इच्छा की ॥ १० ॥

कर्माणि पुण्यनिवहानि सुमंगलानि गायञ्जगत्कलिमलापहराणि कृत्वा । कालात्मना निवसता यदुदेवगेहे पिंडारकं समगमन्मुनयो विसृष्टाः॥११॥
विश्वामित्रोऽसितः कण्वो दुर्वासा भृगुरंगिराः ।
कश्यपो वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठो नारदादयः ॥१२॥

भगवान् जो कर्म करते थे उनको केवल कहने से ही कीर्त्तन करने वालों की पुण्य-वृद्धि और सुख-प्राप्ति होती है और उनके कलियुग-संबन्धी पाप-क्षय होते हैं, भगवान् ने ऐसे कर्म पूर्ण करने के लिये जिन ब्राह्मणों को बुलाया था उनके द्वारा सब कर्मों से अवकाश पाकर उन सबको पिंडारक नामी स्थान पर जाने के लिये कहा. तब वे वहीं पर गये, वे काल रूप होने के कारण वसुदेवजी के घर में रहते हुए ही अपने कुल को निर्मूल किया चाहते थे, इसलिये उन्होंने ऋषियों को वहाँ पर भेज दिया ॥ ११॥१२ ॥

क्रीडंतस्तानुपव्रज्य कुमारा यदुनंदनाः ।
उपसंगृह्य पप्रच्छुरविनीता विनीतवत् ॥१३॥

विश्वामित्र, असित. कण्व, दुर्वासा, भृगु, अङ्गिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ और नारद आदि ऋषि भगवान् की आज्ञा से पिंडारक स्थान में रहते थे ॥१३॥

ते वेषयित्वा स्त्रीवेषैः सांबं जांबवतीसुतम् ।
एषा पृच्छति वो विप्रा अंतर्वत्न्यसितेक्षणा ॥१४॥
प्रष्टुं विलज्जती साक्षात्प्रब्रूतामोघदर्शनाः ।
प्रसोष्यंती पुत्रकामा किंस्वित्संजनयिष्यति ॥१५॥

एक समय यादवों के बालक खेलते-खेलते उन ऋषियों के पास पहुंचे और जांबवन्तीके पुत्र सांब को स्त्री-वेष में सजाकर लेगये तथा कपट के साथ नम्रता दिखलातेहुए उनसे पूछनेलगे कि—हे सर्वज्ञ! इस गर्भवती स्त्री के प्रसव होने का समय निकट है और यह पुत्र चाहती है, यह आपसे सामने पूछनेमें लज्जा करतीहै इसलिये हमारे द्वारा पूछती है कि मेरे क्या होगा ? ॥१४॥१५॥

एवं प्रलब्धा मुनयस्तानूचुः कुपिता नृप ।
जनयिष्यति वो मंदा मुसलं कुलनाशनम् ॥१६॥

जब इस प्रकार छल-पूर्वक यादवों के बालकों ने उनसे प्रश्न किया, तब उनपर क्रोधित होकर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुनियों ने कहा कि हे मूर्खो ! यह स्त्री तुम्हारे वंश को संहार करने वाला मुसल उत्पन्न करेगी ॥१६॥

तच्छ्रुत्वा तेऽतिसंत्रस्ता विमुच्य सहसोदरम् ।
सांबस्य ददृशुस्तस्मिन्मुसलं कुलनाशनम् ॥१७॥

यह सुनतेही अत्यन्त भयभीत कुमारों ने शीघ्र ही सांब का पेट खोलकर देखा तो उसमें कुलका संहार करने वाला लोहे का मुसल देखा ॥१७॥

किं कृतं मंदभाग्यैर्नः किं वदिष्यंति नो जनाः ।
इति विह्वलिता गेहानादाय मुसलं ययुः ॥१८॥

तब वे आपस में कहनेलगे कि हाय ! हम मंद भाग्यों ने यह क्या किया ? लोग हम लोगों से क्या कहेंगे ? इस प्रकार विह्वल होते हुए वे कुमार मूसल लेकर घर आये ॥१८॥

तच्चोपनीय सदसि परिम्लानमुखश्रियः ।
राज्ञ आवेदयांचक्रुः सर्वयादवसन्निधौ ॥१९॥

जिनके मुख की शोभा मलिन होगई है, ऐसे उन कुमारों ने सब यादवों के सामने उग्रसेनराजा को सब हाल सुनाया, पर भगवान्से कुछ न कहा॥

श्रुत्वाऽमोघं विप्रशापं दृष्ट्वा च मुसलं नृप ।
विस्मिता भयसंत्रस्ता बभूवुर्द्वारकौकसः ॥२०॥

हे राजन् ! ब्राह्मणों का अमोघ शाप सुनकर और मुसल को देखकर द्वारकावासी आश्चर्य के साथ भयभीत होगये ॥२०॥

तच्चूर्णयित्वा मुसलं यदुराजः स आहुकः ।
समुद्रसलिले प्रास्यल्लोहं चास्यावशेषितम् ॥२१॥

यादवों के राजा उग्रसेन ने श्रीकृष्ण से उस मूसल को चूर्ण कराके समुद्र में बहा दिया और जितना लोहा घिसते-घिसते शेष रहा उसे भी समुद्र में फिकवा दिया ॥२१॥

कश्चिन्मत्स्योऽग्रसील्लोहं चूर्णानि तरलैस्ततः ।
उह्यमानानि वेलायां लग्नान्यासन्किलैरकाः ॥२२॥

किसी मत्स्यने उस शेष लोहेको निगल लिया और उसका चूर्ण लहरोंसे बहकर समुद्रके किनारे आ लगा, उससे पटेरा नामकी घास उत्पन्न हुई ॥

मत्स्यो गृहीतो मत्स्यघ्नैर्जालेनान्यैः सहार्णवे ।
तस्योदरगतं लोहं स शल्ये लुब्धकोऽकरोत् ॥२३॥

किसी मछलहारे ने दूसरी मछलियोंके साथ२ उस मत्स्य को भी जाल में फाँस लिया, उसके चीरने से उसके पेटमें जो लोहे का कीला निकला उसकी उसने अपने तीर के लिये फली बना ली ॥

भगवान्ज्ञातसर्वार्थ ईश्वरोऽपि तदन्यथा ।
कर्तुं नैच्छद्विप्रशापं कालरूप्यन्वमोदत ॥२४॥

यद्यपि भगवान् सर्वज्ञ और हर बातके मिटाने में समर्थ थे, फिर भी उन्होंने ब्राह्मणों का शाप मिटाने का विचार न किया, वरन् उन कालरूप ने उसका अनुमोदन ही किया ॥२४॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

दूसरा अध्याय

(निमि जायंत सम्वाद)

श्रीशुक उवाच

गोविंदभुजगुप्तायां द्वारवत्यां कुरूद्वह ।
अवात्सीन्नारदोऽभीक्ष्णं कृष्णोपासनलालसः ॥ १॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे कुरुकुल-दीपक ! श्री गोविंदकी भुजाओं से रक्षित द्वारका में उनकी उपासना से प्रेम करने वाले नारदजी निरन्तर वास करते थे ॥१॥

को नु राजन्निंद्रियवान्मुकुंदचरणांबुजम् ।
न भजेत्सर्वतोमृत्युरुपास्यममरोत्तमैः ॥ २ ॥

हे राजन् ! सब जगह पर जिसके सिर पर काल चक्र रहता है, ऐसा कौनसा इन्द्रिय वाला पुरुष है जो उस काल से भयभीत होकर देवताओं के भी उपासना करने योग्य श्रीकृष्णजीके चरणारविन्द की उपासना न करेगा ॥२॥

तमेकदा तु देवर्षिं वसुदेवो गृहागतम् ।
अर्चितं सुखमासीनमभिवाद्येदमब्रवीत् ॥ ३ ॥

एक दिन नारदजी वसुदेवजीके घर आये, तब वसुदेवजीने उन्हें उत्तम आसन देकर उनका पूजन किया और फिर प्रणाम करके उनसे पूछा ॥३॥

वसुदेव उवाच

भगवन्भवतो यात्रा स्वस्तये सर्वदेहिनाम् ।
कृपणानां यथा पित्रोरुत्तमश्लोकवर्त्मनाम् ॥ ४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे भगवन्! जैसे माता-पिता बालकोंके कल्याण के लिये आते हैं और जैसे भगवान् के मार्ग रूप महात्मा लोग दीन जनों के कल्याण के लिये आते हैं, वैसे ही आप साक्षात् नारायण रूप का आना सब प्राणियों के कल्याण के लिये है ॥४॥

भूतानां देवचरितं दुःखाय च सुखाय च ।
सुखायैव हि साधूनां त्वादृशामच्युतात्मनाम्॥ ५ ॥

देवताओंका चरित्र भी वृष्टि करके सुखदेता है तो कभी अति वृष्टि आदिके द्वारा दुःखभी देता है; परन्तु भगवान् में चित्त लगाये हुए आप से महात्माओं का चरित सदैव सुखही देता है ॥५॥

भजंति ये यथा देवान्देवा अपि तथैव तान् ।
छायेव कर्मसचिवाः साधवो दीनवत्सलाः ॥ ६ ॥

देवताओं का जो जितना भजन करता है, वे उसको उतनाही सुख देते हैं, वे पुरुष की छायानुसार ही व्यवहार करते हैं, परन्तु आप ऐसे साधु तो दीनों को देखते ही दयालु होजाते हैं ॥६॥

ब्रह्मंस्तथापि पृच्छामो धर्मान्भागवतांस्तव ।
याञ्छ्रुत्वा श्रद्धया मर्त्यो मुच्यते विश्वतोभयात्॥७॥

हे नारदजी! यद्यपि मैं आपके आनेसे ही कृतार्थ होगया हूँ, फिर भी भगवान् को प्रसन्न करने वाले वैष्णव धर्म कि जिनको श्रद्धा पूर्वक सुननेसे मनुष्य संसार-मुक्त होजाता है-पूछता हूँ ॥७॥

अहं किल पुरानंतं प्रजार्थे भुवि मुक्तिदम् ।
अपूजयं न मोक्षाय मोहितो देवमायया ॥ ८ ॥
यथा विचित्रव्यसनाद्भवद्भिर्विश्वतोभयात् ।
मुच्येम ह्यंजसैवाद्धा तथा नः शाधि सुव्रत ॥ ९ ॥

मैंने दैव-मायासे प्रेरित होकरअनन्त मुक्ति-दाता भगवान् का पूजन पुत्र-कामना से किया था, मुक्ति के लिये नहीं, यह बात जन्म-समय में भगवान् ने मुझसे कही थी, वह मुझे अबतक यादहै ॥८॥९॥

श्रीशुक उवाच

राजन्नेवं कृतप्रश्नो वसुदेवेन धीमता ।
प्रीतस्तमाह देवर्षिर्हरेः संस्मारितो गुणैः ॥१०॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन्! जब बुद्धिमान् वसुदेवजी ने इस प्रकार प्रश्न किया तब भगवान् के गुणों का प्रसंग आजाने से नारदजी को प्रभुका स्मरण हो आया और उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक वसुदेवजी से कहा ॥१०॥

नारद उवाच

सम्यगेतद्व्यवसितं भवता भरतर्षभ ।
यत्पृच्छसे भागवतान्धर्मांस्त्वं विश्वभावनान्॥११॥

श्रीनारदजी बोले-हे यदुश्रेष्ठ! आपने बहुत अच्छा विचार किया, जो सबको पवित्र करने वाला भगवद्धर्म पूछा ॥११॥

श्रुतोनुपठितो ध्यात आदृतो वाऽनुमोदितः ।
सद्यः पुनाति सद्धर्मो देवविश्वद्रुहोऽपि हि ॥१२॥

हे वसुदेव! भगवद्धर्मतो सारे संसारके द्रोही जनों को भी श्रवण, पाठ, ध्यान, आदर या अनुमोदन मात्र ही से शीघ्र पवित्र कर देता है ॥१२॥

त्वया परमकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः ।
स्मारितो भगवानद्य देवो नारायणो मम ॥१३॥

आपने परम कल्याण रूप और परम पवित्र श्रवण तथा कीर्त्तन वाले भगवान् नारायणका मुझे आज स्मरण दिलाकर मेरे साथ बड़ा उपकार किया है ॥ १३ ॥

अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ।
आर्षभाणां च संवादं विदेहस्य महात्मनः ॥१४॥

इन भगवद्धर्मों के निर्णय करने के लिये ऋषभ देवजी के पुत्र और महात्मा विदेहराज का संवाद रूप पुराना इतिहास कहा जाता है॥१४॥

प्रियव्रतो नाम सुतो मनोः स्वायंभुवस्य यः ।
तस्याग्नीध्रस्ततो नाभिर्ऋषभस्तत्सुतः स्मृतः॥१५॥

स्वायंभुव मनु के प्रियव्रत नामक पुत्र था, उस के आग्नीध्र, आग्नीध्रके नाभि और नाभि के ऋषभ देवजी पुत्र हुए ॥१५॥

तमाहुर्वासुदेवांशं मोक्षधर्मविवक्षया ।
अवतीर्णं सुतशतं तस्यासीद्वेदपारगम् ॥१६॥

भगवान् के अंशरूप ऋषभदेव ने मोक्ष-संबंधी धर्म बतलानेके लिये अवतार लिया था-ऐसा कहा जाता है, इनके सौ पुत्र हुए जो वेदके पारंगत थे ॥

तेषां वै भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायणः ।
विख्यातं वर्षमेतद्यन्नाम्ना भारतमद्भुतम् ॥१७॥

इनमें भरत सबसे बड़े और नारायण के परम भक्त थे, जिनके नाम से 'अज नाभ' नामक वर्ष (खंड) का नाम भारत वर्ष हुआ ॥१७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स भुक्तभोगांत्यक्त्वेमां निर्गतस्तपसा हरिम् ।
उपासीनस्तत्पदवीं लेभे वै जन्मभिस्त्रिभिः ॥१८॥

ये भरत पृथ्वीके भोगोंको भोगकर, उसे त्याग कर घरसे वनमें तप करने के लिये चले गये और वहीं तप द्वारा भगवान् की उपासना करते-करते तीन जन्मों से मोक्ष पा गये ॥१८॥

तेषां नव नवद्वीपपतयोऽस्य समंततः ।
कर्मतंत्रप्रणेतार एकाशीतिर्द्विजातयः ॥१९॥

शेष निन्यानवै पुत्रों में से नौ पुत्र नौ खंडों के राजा हुए, इक्यासी पुत्र कर्म-मार्ग में प्रवृत्तिकराने वाले ब्राह्मण हुए ॥१९॥

नवाभवन्महाभागा मुनयो ह्यर्थशंसिनः ।
श्रमणा वातरशना आत्मविद्याविशारदाः ॥२०॥
कविर्हरिरंतरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः ।
आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ॥२१॥

कवि, हरि, अन्तरिक्ष प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रमिल, चमस और करभाजन-ये नौ परम भाग्यशाली योगिराज हुए, यह परमार्थ का निरूपण, आत्म-विद्या में श्रम करने वाले, दिगम्बर और ब्रह्म विद्या में निपुण थे ॥२०॥२१॥

एते वै भगवद्रूपं विश्वं सदसदात्मकम् ।
आत्मनोऽव्यतिरेकेण पश्यंतो व्यचरन्महीम् ॥२२॥

ये योगेश्वर कार्य-कारण रूप जगत्को भगवान् स्वरूप तथा भगवत् स्वरूप को अपने आत्म रूप देखते हुए पृथ्वी पर विचरण करते हैं ॥२२॥

अव्याहतेष्टगतयः सुरसिद्धसाध्यगंधर्वयक्षसुर-
किन्नरनागलोकान् । मुक्ताश्चरंति मुनिचारण-
भूतनाथविद्याधर द्विजगवां भुवनानि कामम् ॥२३॥

वे अप्रतिहत गति वाले आसक्ति रहित होकर देवता, सिद्ध, साध्य, गन्धर्व, यक्ष, मनुष्य, किन्नर, नाग, मुनि, चारण, भूतनाथ, विद्याधर, द्विज और गौओं के लोक में स्वेच्छा-पूर्वक विचरा करते हैं ॥

त एकदा निमेः सत्रमुपजग्मुर्यदृच्छया ।
वितायमानमृषिभिरजनाभेर्महात्मनः ॥२४॥

यह योगेश्वर एक दिन भारतवर्ष के महात्मा निमिराज के यज्ञ में पहुंचे कि जिसे ऋषि लोग नियम पूर्वक चला रहे थे ॥ २४ ॥

तान्दृष्ट्वा सूर्यसंकाशान्महाभागवतान्नृप ।
यजमानोऽग्नयो विप्राः सर्व एवोपतस्थिरे ॥२५॥

हे राजन् ! सूर्य के समान तेज वाले इन महा वैष्णवों को देखते ही यजमान, अग्नि और ब्राह्मण उठ खड़े हुए ॥ २५ ॥

विदेहस्तानभिप्रेत्य नारायणपरायणान् ।
प्रीतः संपूजयांचक्र आसनस्थान्यथार्हतः ॥२६॥

राजा निमि ने इन लोगोंको नारायण का परम भक्त जानकर प्रसन्नता पूर्वक आसन दिया और इनका यथा विधि पूजन किया ॥२६॥

तान्रोचमानान्स्वरुचा ब्रह्मपुत्रोपमान्नव ।
पप्रच्छ परमप्रीतः प्रश्रयावनतो नृपः ॥२७॥

अत्यन्त प्रसन्न निमिराज ने स्वाभाविक कान्ति से शोभायमान् और सनत्कुमारोंकी नाईं (प्रभाव शाली इन नौ योगेश्वरों की भक्ति भाव से नम्र होकर पूछा ॥२७॥

विदेह उवाच

मन्ये भगवतः साक्षात्पार्षदान्वो मधुद्विषः ।
विष्णोर्भूतानि लोकानां पावनाय चरंति हि ॥२८॥

निमि बोले-मैं आप लोगों को भगवान् विष्णु के पार्षद मानता हूँ, क्योंकि वही लोगों को पवित्र करने के लिये सर्वत्र विचरा करते हैं ॥२८॥

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः ।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुंठप्रियदर्शनम् ॥२९॥

अनेक योनियों में भटकते हुए जीवों को यह मनुष्य देह क्षण भंगुर होने पर भी मिलना महा कठिन है, फिर वहाँ वैष्णवों का दर्शन होना तो और भी दुर्लभ है-मैं ऐसा मानता हूँ ॥ २९॥

अत आत्यंतिकं क्षेमं पृच्छामो भवतोऽनघाः ।
संसारेऽस्मिन्क्षणार्धोऽपि सत्संगः शेवधिर्नृणाम् ३०

हे निष्पाप पुरुषो ! इसलिये मैं आपसे पूछता हूँ कि संसारमें सर्वोत्तम कल्याण का साधन क्या है ? इस जगत् में आधे क्षणभी सत्संग का मिलना मनुष्यों के लिये निधि प्राप्त होने के समान आनंद देता है ॥३०॥

धर्मान्भागवतान्ब्रूत यदि नः श्रुतये क्षमम् ।
यैः प्रसन्नः प्रपन्नाय दास्यत्यात्मानमप्यजः ॥३१॥

यदि मेरे सुनने योग्य हो तो उस सर्व श्रेष्ठ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कल्याणके लिये भगवत्सम्बन्धी धर्म भी कहिये कि जिनसे प्रसन्न होकर भगवान् भक्तों को अपना स्वरूप तक दे देते हैं ॥ ३१ ॥

नारद उवाच

एवं ते निमिना पृष्टा वसुदेवमहत्तमाः ।
प्रतिपूज्याब्रुवन्प्रीत्या ससदस्यर्त्विजं नृपम् ॥३२॥

नारदजी बोले–हे वसुदेव ! इस प्रकार राजा निमि ने प्रश्न किया, तब उन महात्मा योगेश्वरों ने प्रीति पूर्वक सभासदों और ऋत्विजों सहित उन का सत्कार करके इस प्रकार उत्तर दिया ॥३२॥

कविरुवाच

मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य पादांबुजोपासनमत्र नित्यम् । उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावाद्विश्वात्मना यत्र निवर्तते भीः ॥३३॥

कवि बोले–इस संसार में भगवान्के चरणारविंद की उपासना करनाही समस्त भयको मिटाने वाला तथा सर्वोत्तम कल्याण है. इसी के द्वारा आत्मा से भिन्न देह आदि पदार्थों से उद्वेग पाया हुआ यह प्राणी संसार-सम्बन्धी समस्त भयसे छूट जाता है, मैं ऐसा मानता हूँ ॥ ३३ ॥

ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये ।
अंजः पुंसामविदुषां विद्धि भागवतान्हि तान् ॥३४॥

भगवान् ने मनु और याज्ञवल्क्य आदिके मुख से वर्णाश्रम आदि के धर्म कहलाकर, फिर अज्ञानी पुरुषों को सहज ही में स्वरूप प्राप्ति के लिये जो अत्यन्त गूढ़ उपाय श्रीमुख ही से कहे हैं, वही भागवत धर्म हैं; ऐसा तुम जानो ॥३४॥

यानास्थाय नरो राजन्न प्रमाद्येत कर्हिचित् ।
धावन्निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह ॥३५॥

हे राजन् ! योग आदि में विघ्नों के उपद्रवों से मनुष्य जैसा दुखी होजाता है वैसा इन भगवद्धर्मों से कदापि नहीं होता, इस मार्ग में आँख मूंदकर भी दौड़ा जाय पर गिरता नहीं और फल से भ्रष्ट नहीं होता, यदि यह धर्म भली भांति निभ न सके तो भी प्रतिवाद का कारण नहीं होना ॥३५॥

कायेन वाचा मनसेंद्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वानुसृतस्वभावात् । करोति यद्यत्सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत् ॥३६॥

केवल शास्त्रोक्त किये हुए कर्मोंको ही भगवान् के अर्पण करने का नियम नहीं वरन् काया; वाणी, मन, इन्द्रिय, बुद्धि अहङ्कार और अध्यास द्वारा माने हुए ब्राह्मणत्व आदि स्वभाव से भी जो कर्म किये जाँय वे सब परमेश्वर के अर्पण कर देने से सब प्रकार की शरीर आदि की क्रियायें भगवत्-सम्बन्धी धर्म रूप होजाती हैं ॥३६॥

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः । तन्मायया ऽतो बुध आभजेत्तं भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा ॥३७॥

यद्यपि अज्ञान से माना हुआ भय ज्ञान ही से दूर होता है, फिर भी परमेश्वर से विमुख पुरुषों को उनकी माया के कारण भगवान् के स्वरूप का ज्ञान नहीं होता और उन्हें यह अभिमान होजाता है कि 'मैं देह हूँ' और ऐसी बुद्धि से भय उत्पन्न होता है, इसलिये गुरु में ईश्वर और आत्मा का भाव रखकर भय की मूल कारण माया के नियंता ईश्वर का ज्ञानी पुरुष को अनन्य गति के साथ भजन करना चाहिये ॥३७॥

अविद्यमानोऽप्यवभाति हि द्वयोर्ध्यातुर्धिया स्वप्नमनोरथौ यथा । तत्कर्मसंकल्पविकल्पकं मनो बुधो निरुंध्यादभयं ततः स्यात् ॥३८॥

फिर भी जैसे ध्यान करने वाले पुरुष को मन से स्वप्न और मनोरथ दीख पड़तेहैं, वैसेही अविद्या से द्वैत का भास होता है, इसलिये बुद्धिमान् को चाहिये कि वह इस सङ्कल्प-विकल्प करने वाले मनही को रोके, तब कहीं निश्चल भक्ति के द्वारा भजन से उभय होसकता है ॥३८॥

शृण्वन्सुभद्राणि रथांगपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके । गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन्विलज्जो विचरेदसंगः ॥३९॥

भगवान् के जितने कल्याणकारी जन्म और कर्म हैं और उनके जन्म-कर्म के अनुसार जितने भी जगत् में नाम प्रसिद्ध हैं, उनको लज्जा त्याग कर निःस्पृह भाव से गायन करते हुए विचरण करना चाहिये ॥ ३९ ॥

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः । हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः ॥४०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऐसा नियम रखने वाला और भगवान्के नाम कीर्त्तन से द्रवित हृदय वाला भक्त भगवान्में अनुराग बढ़ जाने से कभी तो हँसता है, कभी रोताहै कभी अत्यन्त उत्कंठा के साथ पुकारता है, कभी आनन्द मानकर ऊंचे स्वर से गाता है और कभी नाचता हुआ उन्मत्तों की भांति अलौकिक चेष्टायें करता है ॥ ४० ॥

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्वानि दिशो द्रुमादीन् । सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किं च भूतं प्रणमेदनन्यः ॥४१॥

आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ज्योति, प्राणीमात्र, दिशा, वृक्ष, नदी और समुद्र सबको भगवान्का ही स्वरूप मानकर अनन्य भावसे सभी को प्रणाम करना चाहिये ॥४१॥

भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक एककालः । प्रपद्यमानस्य यथाऽश्नतः स्युस्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपा योऽनुघासम् ॥४२॥

जैसे भोजन करनेवाले पुरुष को ग्रासके द्वारा एक ही साथ, सुख उदर-पोषण और क्षुधा से निवृत्ति होती है, वैसे ही भजन करते हुए पुरुषको प्रेम लक्षणा भक्ति, प्रेम के आश्रय रूप भगवान् के स्वरूप की स्फूर्त्ति और गृह आदि से वैराग्य-यह तीनों बातें एक साथ प्रकट होती हैं ॥४२॥

इत्यच्युतांघ्रिं भजतोऽनुवृत्त्या भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः । भवंति वै भागवतस्य राजंस्ततः परां शांतिमुपैति साक्षात् ॥४३॥

हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्के चरणारविंद का निरन्तर भजन करने वाले वैष्णव को भक्ति, ज्ञान और वैराग्य प्रबल प्राप्त होजाने से अन्त में साक्षात् परम शान्ति प्राप्त होजाती है ॥ ४३॥

राजोवाच

अथ भागवतं ब्रूत यद्धर्मो यादृशो नृणाम् । यथाऽऽचरति यद्ब्रूते यैर्लिङ्गैर्भगवत्प्रियः ॥४४॥

निमिराज बोले-अब वैष्णवके विषयमें कहिये कि वह किस धर्म में निष्ठा रखता है ? उसका स्वभाव कैसा होताहै ? मनुष्योंमें वह कैसा आचरण करता है ? कैसा बोलता है और किस चिह्न के रखने से वह भगवान् का प्यारा होता है ॥४४ ॥

हरिरुवाच

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः । भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥४५॥

हरि योगेश्वर बोले-जो चैतन्य परब्रह्म रूप से अपने को समस्त प्राणियों में स्थित देखे और अपने ब्रह्म रूप में सब प्राणियों को स्थित देखे, वही उत्तम वैष्णव है ॥ ४५ ॥

ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च । प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥४६॥

जो पुरुष ईश्वरसे प्रेम, उनके भक्तोंसे मित्रता मूर्खों पर दया और शत्रुओं पर उपेक्षा रखता है, वह मध्यम श्रेणी का वैष्णव कहलाता है ॥४६ ॥

अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते । न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः॥ ४७॥

जो मनुष्य श्रद्धा-पूर्वक मूर्त्ति में ही भगवान्को मानकर उनका पूजन करता है परन्तु भगवान् के भक्तों का नहीं करता,विशेष कर अन्य प्राणियों को कदापि पूजनीय नहीं समझता, वह प्राकृतिक (प्रारम्भिक) भक्तहै ॥४७॥

गृहीत्वापींद्रियैरर्थान्यो न द्वेष्टि न हृष्यति । विष्णोर्मायामिदं पश्यन्स वै भागवतोत्तमः ॥४८॥

जो केवल इन्द्रियों से भोग करते हुए किसी से द्वेष या प्रीति नहीं रखते सभी वस्तुओंको ईश्वर की माया-कृत जानते हैं, वे उत्तम भक्त हैं ॥ ४८ ॥

देहेंद्रियप्राणमनोधियां यो जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः । संसार धर्मैरविमुह्यमानः स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधानः ॥४९॥

देह सम्बन्धी लौकिकधर्म, जन्म-मरण,इन्द्रियों के कष्ट, प्राणों की भूख, बुद्धिकी तृष्णा आदि से जो मोहित न होकर निरन्तर हरि-स्मरण किया करता है वह वैष्णव भक्तों में मुख्य है ॥४९॥

न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि संभवः । वासुदेवैकनिलय यः स वै भागवतोत्तमः ॥५०॥

जिसके मनमें काम, कर्म और वासना उत्पन्न नहीं होती और जिसका चित्त एक श्रीकृष्णजी के स्वरूप में बसता है, वही उत्तम वैष्णव है ॥५०॥

न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः । सज्जतेऽस्मिन्नहंभावो देहे वै स हरेः प्रियः ॥५१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिसको उत्तम कुल, तप, वर्ण, आश्रम और जाति का अभिमान नहीं है, वह भगवान्का परम प्रिय भक्त है ॥५१॥

न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा।
सर्वभूतसमः शांतः स वै भागवतोत्तमः ॥५२॥

जो पुरुष धन का "अपना-पराया, देह को मैं या दूसरा' ऐसे भेद के साथ नहीं मानता, जो प्राणी मात्र में समदृष्टि रखता है और शान्त होता है, वही उत्तम वैष्णव कहलाता है ॥५२॥

त्रिभुवन विभवहेतवेऽप्यकुंठस्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात्। न चलति भगवत्पदारविंदाल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः ॥५३॥

जो मनुष्य त्रिलोक के राज्य की उपेक्षा करके भी भगवान् में चित्त लगाये हैं, जो देवताओं को भी दुर्लभ भगवान् के चरणारविन्द के भजन बिना आधा क्षण भी नहीं बिताते, जिनकी ऐसी धारणा है कि हरि-चरणों से अधिक सार कुछ भी नहीं है वह वैष्णवों में श्रेष्ठ हैं ॥५३॥

भगवत उरुविक्रमांघ्रिशाखानखमणिचंद्रिकया निरस्ततापे। हृदि कथमुपसीदतां पुनः स प्रभवति चंद्र इवोदितेऽर्कतापः ॥५४॥

भगवान्के परम पराक्रमी चरणोंकी अंगुलियों के नख रूपी मणियों की शीतल कान्ति से जिनके तृष्णा आदि ताप शान्त होचुके हैं, फिर उनके हृदय में वह कैसे उत्पन्न होसकते हैं, चन्द्रमा के उदय होनेपर सूर्यकी तपन कदापि नहीं होसकती॥

विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः। प्रणयरशनया धृतांघ्रिपद्मः स भवति भागवतप्रधान उक्तः ॥५५॥

विवशता की दशा में केवल नाम लेने ही से पाप-समूह को नाश करने वाले भगवान् प्रेम रूपी रस्सी से अपना चरण बँध जाने से जिसके हृदय को स्वयं ही नहीं छोड़ सकते, वह उत्तम वैष्णव कहलाता है ॥ ५५ ॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तीसरा अध्याय

(निमि और नवयोगेश्वरों का सम्वाद)

राजोवाच

परस्य विष्णोरीशस्य मायिनामपि मोहिनीम्।
मायां वेदितुमिच्छामि भगवंतो ब्रुवंतु नः ॥ १ ॥

निमिराज बोले-परमात्मा ईश्वर विष्णु की माया कि जो बड़े-बड़े मायावी पुरुषोंको भी मोहित करने वाली है, उसे मैं जानना चाहता हूँ, इसलिये हे भगवत्परायण ! आप कहिये ॥१॥

नानुतृप्ये जुषन्युष्मद्वचो हरिकथामृतम्।
संसारतापनिष्तप्तो मर्त्यस्तत्तापभेषजम् ॥ २ ॥

मुझ मरण-धर्म और संसार के तापों से संतप्त प्राणी को औषध रूप भगवान् की कथारूप अमृत को तुम्हारे वचनोंद्वारा पीते-२ भी तृप्ति नहीं होती॥

अंतरिक्ष उवाच

एभिर्भूतानि भूतात्मा महाभूतैर्महाभुज।
ससर्जोच्चावचान्याद्यः स्वमात्रात्मप्रसिद्धये ॥ ३ ॥

अन्तरिक्ष बोले-हे राजन् ! आदि पुरुष सबके कारण रूप भगवान्ने अपने अंशरूप जीवोंको भोग और मोक्ष के लिये जिस शक्तिद्वारा अपने रचे हुए पंच महाभूतों से ऊँचे-नीचे शरीर उत्पन्न किये हैं, वही शक्ति माया कहलाती है ॥३॥

एवं सृष्टानि भूतानि प्रविष्टः पंचधातुभिः।
एकधा दशधात्मानं विभजञ्जुषते गुणान् ॥ ४ ॥

इस भांति जीवों के उपकार के लिये पंच महा भूतों से रचे हुए शरीरों में स्वयं अन्तर्यामी रूपसे प्रविष्ट होकर मन और दश इन्द्रियों के द्वारा विषयों के विभाग करके जीवों को जिस शक्ति से विषय भोग करवाते हैं, वही भगवान्की मायाहै ॥

गुणैर्गुणान्सभुंजान आत्मप्रद्योतितैः प्रभुः।
मन्यमान इदं सृष्टमात्मानमिह सज्जते ॥ ५ ॥

अन्तर्यामी से प्रकाशित की हुई इन्द्रियों द्वारा विषयोंको भोगता हुआ और उत्पन्नहुए इस शरीर को अपना ही रूप मानता हुआ यह जीव जिस शक्ति के द्वारा इन शरीर आदि में मोहित होजाता है वह भगवान् की माया है ॥ ५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर्माणि कर्मभिः कुर्वन्सनिमित्तानि देहभृत् ।
तत्तत्कर्म फलं गृह्णन्भ्रमतीह सुखेतरम् ॥ ६ ॥
इत्थं कर्मगतीर्गच्छन्बहभद्रवहाः पुमान् ।
आभूतसंप्लवात्सर्गप्रलयावश्नुतेऽवशः ॥ ७ ॥

कर्म सम्बन्धी इन्द्रियों से वासना सहित कर्म करता हुआ और उन कर्मों के सुख-दुःख रूप फलों को ग्रहण करता हुआ यह जीव जिस शक्ति द्वारा मुक्ति न पाकर संसार में भटकता हुआ प्रलय तक जन्म-मरण भोगा करता है और अनेक दुःख देने वाली कर्म की गतियों को पाता हुआ परतंत्र बना रहता है, वह भगवान् की माया है ॥६॥७॥

धातूपप्लव आसन्ने व्यक्तं द्रव्यगुणात्मकम् ।
अनादिनिधनः कालो ह्यव्यक्तायापकर्षति ॥ ८ ॥
शतवर्षा ह्यनावृष्टिर्भविष्यत्युल्वणा भुवि ।
तत्कालोपचितोष्णार्को लोकांस्त्रीन्प्रतपिष्यति ॥ ९ ॥

प्रलय का आरम्भ होने पर आदि अन्त-रहित काल इस स्थूल और सूक्ष्म रूप जगत् को जिस शक्ति से ईश्वर में मिलाने के लिये खींचता है वह भगवान् की माया है, प्रलय काल में जिस शक्तिके द्वारा सौ वर्ष तक घोर सूखा पड़े या और विशेष तेजोमय होकर सूर्य तीनों लोकोंको तपायेगा, वही भगवान् की माया है ॥ ८ ॥ ९ ॥

पातालतलमारभ्य संकर्षणमुखानलः ।
दहन्नूर्ध्वशिखो विष्वग्वर्धते वायुनेरितः ॥ १० ॥

जिस शक्ति द्वारा पाताल से जलानेका प्रारम्भ करके ऊंची शिखा वाली वायु से प्रेरित, शेष भगवान् के मुख की ज्वाला बढ़ती हुई चारों ओर फैलेगी, वह भगवान् की माया है ॥१०॥

सांवर्तको मेघगणो वर्षति स्म शतं समाः ।
धाराभिर्हस्तिहस्ताभिर्लीयते सलिले विराट् ॥ ११ ॥

जिस शक्ति द्वारा प्रलयकारी सांवर्त्तक नामक मेघ-समूह हाथी की सूंड़ के समान मोटी धाराओं से सौ वर्ष तक वर्षा करेगा और ब्रह्मांड जल में लीन होजायगा वह भगवान् की माया है ॥११॥

ततो विराजमुत्सृज्य वैराजः पुरुषो नृप ।
अव्यक्तं विशते सूक्ष्मं निरिंधन इवानलः ॥ १२ ॥

हे राजन् ! फिर जैसे ईंधन समाप्त होजाने पर अग्नि शुद्ध अग्नि में मिल जाता है, वैसे ही ब्रह्मांड रूप शरीरधारी विराट पुरुष अपने शरीरको छोड़ कर सूक्ष्म ब्रह्म में प्रवेश कर जाता है ॥१२॥

वायुना हृतगंधा भूः सलिलत्वाय कल्पते ।
सलिलं तद्धृतरसं ज्योतिष्ट्वायोपकल्पते ॥ १३ ॥

उस समय पृथ्वी का भाग (गंध) वायु हर लेगा और पृथ्वी जल में लीन होजायगी, जब जल का भाग (रस) वायु खींच लेगा, तब जल तेज रूप होजायगा ॥१३॥

हृतरूपं तु तमसा वायौ ज्योतिः प्रलीयते ।
हृतस्पर्शोऽवकाशेन वायुर्नभसि लीयते ॥ १४ ॥

फिर प्रलय काल के अन्धकार द्वारा तेज का हरण होजायगा और वायु का गुण (स्पर्श) आकाश में लीन होजायगा ॥१४॥

कालात्मना हृतगुणं नभ आत्मनि लीयते ।
इंद्रियाणि मनो बुद्धिः सह वैकारिकैर्नृप ।
प्रविशंति ह्यहंकारं स्वगुणैरहमात्मनि ॥ १५ ॥

फिर आकाशका गुण (शब्द) काल द्वारा हरण होजायगा और आकाश तामस अहङ्कार में लीन होजायगा, इन्द्रियां और बुद्धि राजस अहङ्कार में लीन होगी एवं मन तथा इन्द्रियोंके देवता सात्विक अहङ्कार में लीन होंगे, हे राजन् ! फिर अहंकार अपने तीन प्रकार के कार्यों सहित महत्तत्वमें और महत्तत्व प्रकृति में लीन होजायगा ॥१५॥

एषा माया भगवतः सर्गस्थित्यंतकारिणी ।
त्रिवर्णा वर्णितास्माभिर्भूयः किं श्रोतुमिच्छसि १६

सृष्टि, स्थिति और प्रलय करने वाली तथा तीनों गुणों वाली भगवान् की माया का स्वरूप मैंने आपसे कहाहै, अब और क्या सुननेकी इच्छाहै?

राजोवाच

अथैतामैश्वरीं मायां दुस्तरामकृतात्मभिः ।
तरंत्यंजः स्थूलधियो महर्ष इदमुच्यताम् ॥ १७ ॥

निमिराज बोले-हे महर्षि ! शरीर में अहङ्कार रखनेवाले और मनको वशमें न रखनेवाले मनुष्यों को अत्यन्त दुस्तर यह ईश्वरीय माया जिस तरह से सहज ही में जीती जा सकती हो, वह उपाय मुझसे कहिये ॥१७॥

प्रबुद्ध उवाच

कर्माण्यारभमाणानां दुःखहत्यै सुखाय च ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पश्येत्पाकविपर्यासं मिथुनीचारिणां नृणाम्॥१८॥

प्रबुद्ध बोले-(माया से तरने के लिये अर्थात्) दुःख मिटाने और सुख प्राप्त करने के लिये स्त्री-पुरुष मिलकर जो प्रवृत्ति वाले कर्म करते हैं उनका परिणाम दुःख रूप ही होता है, ऐसा देखते (विचारते) रहना चाहिये ॥ १८ ॥

नित्यार्तिदेन वित्तेन दुर्लभेनात्ममृत्युना ।
गृहापत्याप्तपशुभिः का प्रीतिः साधितैश्चलैः ॥१९॥

कर्मोंके द्वारा यदि धन आदि उपार्जनभी किये जाँय, तो वे मिलकर भी सुख नहीं देते, इसलिये निरन्तर पीड़ा देने वाले और दुर्लभ तथा अपनी मृत्यु के कारण रूप धन. पुत्र, बन्धु और पशुओंके पाने से क्या सिद्धि हो सकती है ? यह सब तो मिथ्या हैं ॥१९॥

एवं लोकं परं विद्यान्नश्वरं कर्म निर्मितम् ।
सतुल्यातिशयध्वंसं यथा मंडलवर्तिनाम् ॥२०॥

इसी प्रकार कर्मों से मिले हुए परलोकको भी मिथ्या जानना चाहिये, क्योंकि जैसे खंड पति राजाओंकोअपने समान देखकर चक्रवर्त्ती राजाको ईर्ष्या स्पर्द्धा और खंडपति राजाओंको उसकी ओर से भय आदि दुःख होते हैं, वैसे परलोक में भी ईर्ष्या, स्पर्द्धा और भय रहते हैं ॥२०॥

तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥२१॥

इसलिये जो मनुष्य अपना सर्वोत्तम कल्याण चाहे उसे चाहिये कि वेद के पारंगत, सब संशय मिटाने वाले, परब्रह्म के स्वरूप को जानने वाले शिष्यों को अपना ज्ञान जमा देने वाले और शान्त रूप गुरु के शरण जाय ॥२१॥

तत्र भागवतान् धर्मान्शिक्षेद्गुर्वात्मदैवतः ।
अमायया ऽनुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्मप्रदो हरिः ॥२२॥

गुरु के पास रहता हुआ उसी को आत्मा और इष्टदेव मानकर निष्कपट सेवा द्वारा भगवत्संबंधी धर्म सीखे कि जिनके कारण आत्म रूप और भक्त जनों को अपना स्वरूप देने वाले भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं ॥ २२ ॥

सर्वतो मनसोऽसंगमादौ संगं च साधुषु ।
दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम् ॥२३॥

पहले मनमें समस्त विषयों से वैराग्य, सत्-पुरुषों का संग, अपने साथ अपेक्षा न करने वाले प्राणियों के प्रति दया, समता वाले से मित्रता और उत्तमके साथ नम्रता करना सीखे ॥२३॥

शौचं तपस्तितिक्षां च मौनं स्वाध्यायमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्वंद्वसंज्ञयोः ॥२४॥

शारीरिक और मानसिक पवित्रता, धर्म का आचरण, क्षमा, यथोचित अध्ययन और ब्रह्मचर्य सीखे, व्यर्थ की बात-चीत, कुटिलता और द्रोह को छोड़े तथा सुख-दुःख में एक भाव से रहे॥२४॥

सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यमनिकेतताम् ।
विविक्तचीरवसनं संतोषो येन केनचित् ॥२५॥

प्राणी मात्र में समान, चैतन्य और आनन्द से व्याप्त ब्रह्म को समझे और उसे सबका नियन्ता माने, एकान्त वास करे, गृह आदि का अभिमान न करे, निर्जन मार्ग में पड़े हुए वस्त्र या वल्कलको धारण करे, जो वस्तु जितनी मिले उसीमें संतोष रक्खे और मिलने की इच्छा न करे ॥ २५॥

श्रद्धां भागवते शास्त्रेऽनिंदामन्यत्र चापि हि ।
मनोवाक्कर्मदंडं च सत्यं शमदमावपि ॥२६॥
श्रवणं कीर्त्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः ।
जन्मकर्मगुणानां च तदर्थेऽखिल चेष्टितम् ॥२७॥

भगवान्का प्रतिपादन करने वाले शास्त्रोंको ही श्रद्धापूर्वक सुनाकरे, पराई निन्दा न करे,मन, वचन औरकर्मको प्राणायाम,मौन औरनिश्चेष्टता द्वारा दंड दे, सत्य, शम, दम, अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् के जन्म, कर्म और गुणों का श्रवण, कीर्त्तन तथा भगवान्के हेतुही सब कर्म करे ॥ २६॥२७ ॥

इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम् ।
दारान्सुतान्गृहान्प्राणान्यत्परस्मै निवेदनम्॥२८॥

यजन, दान, जप, तप, सदाचार, गन्ध पुष्प आदि प्रिय पदार्थ, स्त्री, पुत्र,घर तथा प्राण-येसभी दास्य-भावके साथ ईश्वर को अर्पण करे ॥२८॥

एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम् ।
परिचर्यां चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु ॥२९॥
परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः ।
मिथो रतिर्मिथस्तुष्टिर्निवृत्तिर्मिथ आत्मनः ॥३०॥

उसी प्रकार भगवान् ही को आत्मा और स्वामी मानने वाले लोगों से स्नेह, चराचर की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सेवा और विशेष कर मनुष्यों की सेवा, मनुष्यों में भी स्वधर्म पालने वालों की सेवा और उनमें भी वैष्णवों की विशेष सेवा, आपस में भगवान् के पवित्र यश का वर्णन तथा उसके द्वारा ही मन की चञ्चलता, सुख तथा सब दुःखों की निवृत्ति-यह सब धर्म गुरु के पास सीखे ॥२९॥३०॥

स्मरंतः स्मारयंतश्च मिथोऽघौघहरं हरिम् ।
भक्त्या संजातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम् ॥

इस प्रकार व्यवहार करने वाले और पाप-समूह नाशक भगवान् का स्मरण करते-कराते हुए भक्त पुरुषों के शरीर में साधन-भक्ति से रोमाञ्च हो जाते हैं ॥ ३१ ॥

क्वचिद्रुदंत्यच्युतचिंतया क्वचिद्धसंति नंदंति वदंत्यलौकिकाः । गायंति नृत्यंत्यनुशीलयंत्यजं भवंति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः ॥३२॥

ऐसे अलौकिक भक्त भगवान् का चिन्तवन करते हुए कभी रुदन करते हैं; कभी हँसते हैं, कभी प्रसन्न होते हैं, कभी बातें बनाने लगते हैं, कभी नाचते हैं, कभी गाते हैं, कभी प्रभु की लीला का अनुकरण करते हैं और कभी उनके स्वरूपको प्राप्त होकर आनन्द में मग्न होकर चुप होजाते हैं ॥३२॥

इति भागवतान्धर्मान्शिक्षन्भक्त्या तदुत्थया ।
नारायणपरो मायामंजस्तरति दुस्तराम् ॥३३॥

इस प्रकार भगवत्सम्बन्धी धर्मों को सीखता हुआ और नारायणमें तन्मय रहता हुआ पुरुष इन धर्मों से उत्पन्न हुई भक्ति के प्रभाव से दुस्तर माया को सहजही में तर जाता है ॥३३॥

राजोवाच

नारायणाभिधानस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ।
निष्ठामर्हथ नो वक्तुं यूयं हि ब्रह्मवादिनः ॥३४॥

निमिराज बोले-नारायण में तत्पर रहने वाला पुरुष माया को तिर जाता है-ऐसा आपने मुझसे कहा है, उन नारायण नामक परब्रह्म परमात्मा का स्वरूप आप मुझ से कहिये, क्योंकि आप बड़े ब्रह्मवेत्ता हैं ॥३४॥

पिप्पलायन उवाच

स्थित्युद्भवप्रलयहेतुरहेतुरस्य यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिषु सद्बहिश्च । देहेंद्रियासुहृदयानि चरंति येन संजीवितानि तदवेहि परं नरेंद्र ॥३५॥

पिप्पलायन बोले-इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार जिसके द्वारा होताहै, जो जागृत स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं में साक्षी रूपसे अनुस्यूत रहता है, जो इनसे भिन्न समाधि आदि दशाओं में भी अनुस्यूत रहताहै, जो देह, इन्द्रिय, प्राण तथा मनको चेतन शक्ति से प्रवृत्त करता है, वह हेतु रहित परम तत्व नारायण का स्वरूप है, ऐसा तुम जानो ॥३५॥

नैतन्मनो विशति वागुत चक्षुरात्मा प्राणेंद्रियाणि च यथाऽनलमर्चिषः स्वाः । शब्दोपि बोधकनिषेधतयाऽऽत्ममूलमर्थोक्तमाह यदृते न निषेधसिद्धिः३६

इस ब्रह्मको वाणी, नेत्र, बुद्धि, प्राण और समस्त इन्द्रियाँ भी स्पर्श नहीं कर सकतीं, जैसे छोटीसी चिनगारी महाभूत अग्नि को न तो प्रकाशित कर सकती है और न जला सकती है, वेद भी उसे प्रकट नहीं कह सकते, क्योंकि वेद स्वयं कहते हैं कि-वाणी व मन आदि जितने भी बोध करानेवाले पदार्थहैं वे आत्म-तत्वतक नहीं पहुँच सकते, परन्तु इसका यह आशय नहीं है कि वेद ब्रह्म का प्रतिपादन नहीं करते, क्योंकि वे यह भी कहते हैं कि स्थूल, सूक्ष्म या वाणीसे कहा जानेवाला ब्रह्म नहीं है, इस प्रकार वेद ने जो निषेध किया है उसकी अवधि ही ब्रह्म है, यदि अवधि न हो तो निषेध सिद्ध ही नहीं हो सकता ॥३६॥

सत्त्वं रजस्तम इति त्रिवृदेकमादौ सूत्रं महानहमिति प्रवदंति जीवम् । ज्ञानक्रियार्थफलरूपतयोरु शक्ति ब्रह्मैव भाति सदसच्च तयोः परं यत् ॥३७॥

जो कुछ भी कार्य-कारण दिखाई देता है वह सब ब्रह्म ही है, क्योंकि वह सबका परम कारण और माया नामकी महान् शक्ति वालाहै, कि जिस से वह एक होकर भी अनेक रूपों में प्रतीत होता है, वह एक होकर भी सत, रज और तम तीन प्रकार वाला प्रधान कहलाता है, फिर वही क्रिया शक्ति और ज्ञान शक्ति के कारण महत्तत्व नाम से पुकारा जाता है, इसी प्रकार इन्द्रियों के देवता, इन्द्रियाँ, विषय, विषयों का प्रकाश और सुखादि रूपोंसे एक ब्रह्मही प्रकाशमानहै, सब प्रकार अपने स्वरूप ही से प्रतीत होने वाले परब्रह्म को अपनी सिद्धि के लिये किसी दूसरे प्रमाणकी आवश्यकता नहीं, इसलिये कोई प्रमाण न पहुँच सकनेसे ऐसी शंका न करनी चाहिये कि ब्रह्म है ही नहीं ॥३७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नात्मा जजान न मरिष्यति नैधतेऽसौ न क्षीयते सवनविद्व्यभिचारिणां हि । सर्वत्र शश्वदनपाय्युपलब्धिमात्रं प्राणो यथेंद्रियबलेन विकल्पितं सत् ॥

आत्मा न तो जन्म लेता है, न मरता है, न बढ़ताहै, न किसी अन्तको प्राप्त होता है, न घटता है और न है, क्योंकि इन छः विकारों वाले देहों की अवस्था मात्र का साक्षी है, इसलिये उस पर अवस्थाओं का प्रभाव नहीं पड़ता और वह केवल ज्ञान रूप है, सदैव रहता है, इन्द्रियों की वृत्ति की उत्पत्ति और क्षय होता है, ज्ञान प्राण की भांति एक रूप है ॥३८॥

अंडेषु पेशिषु तरुष्वविनिश्चितेषु प्राणो हि जीवमुपधावति तत्र तत्र । सन्ने यदिंद्रियगणेऽहमि च प्रसुप्ते कूटस्थ आशयमृते तदनुस्मृतिर्नः ॥३९॥

जैसे जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज शरीर बदला करते हैं, परन्तु जीव के पीछे उनमें प्राण एक का एकही रहता है, वैसेही अवस्था-भेद से देह बदला करते हैं, परन्तु उनमें आत्मा एक रूप ही रहता है, जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं में आत्मा निर्विकार है, परन्तु जागृत दशा में इन्द्रियाँ काम करती हैं और स्वप्न में जागृत अवस्था के संस्कार वाला अहङ्कार काम करता है, इसलिये वह (आत्मा) विकारी सा जान पड़ता है और सुषुप्तिमें इन्द्रिय-अहङ्कार का लय होने से निर्विकार आत्मा का साक्षात् अनुभव होता है, पर विषयों का सम्बन्ध न होने से वह प्रकट नहीं होता ॥३९॥

यर्ह्यब्जनाभचरणैषणयोरुभक्त्या चेतोमलानि विधमेद्गुणकर्मजानि । तस्मिन्विशुद्ध उपलभ्यत आत्मतत्त्वं साक्षाद्यथाऽमलदृशोः सवितृप्रकाशः ॥

जब गृह, पुत्र, धन आदि की वासना छोड़कर केवल भगवान् के चरणारविंद की इच्छा की जाय तो उससे भक्ति बढ़तीहै, उसके द्वारा चित्त के गुण कर्म से उत्पन्नहुए पाप क्षय होतेहैं, तब चित्त शुद्ध होकर प्रत्यक्ष आत्म-तत्व को प्राप्त होता है, जैसे निर्मल दृष्टि होने पर सूर्य-मण्डल का प्रकाश दीखता है ॥ ४० ॥

राजोवाच

कर्मयोगं वदत नः पुरुषो येन संस्कृतः । विधूयेहाशु कर्माणि नैष्कर्म्यं विंदते परम् ॥४१॥

निमिराज बोले–भक्ति कर्म-योग के आधीन है कि जिसे करने से शुद्ध होकर कर्मों के वेग को दूर करके पुरुष निष्काम-कर्म सम्बन्धी श्रेष्ठ ज्ञान पाता है और अन्त में कर्म छूट जाते हैं, इसलिये पहले उसी कर्म-योग को कहिये ॥४१॥

एवंप्रश्नमृषीन्पूर्वमपृच्छं पितुरंतिके । नाब्रुवन्ब्रह्मणः पुत्रास्तत्र कारणमुच्यताम्॥४२॥

हे महाराज ! यही प्रश्न मैंने सनकादि ऋषियों से उनके आने पर अपने पिता के सामने किया था परन्तु उन्होंने मुझे इसका उत्तर क्यों न दिया था सो बतलाइये ॥४२॥

आविर्होत्र उवाच

कर्माकर्मविकर्मेति वेदवादो न लौकिकः । वेदस्य चेश्वरात्मत्वात्तत्र मुह्यंति सूरयः ॥४३॥

आविर्होत्र बोले–कर्म, अकर्म और विकर्म-वेद ही से समझमें आते हैं मनुष्यों से नहीं, वेद ईश्वर के प्रकट किये हुए हैं मनुष्य के नहीं, इसका भाव समझने में पण्डित भी मोहित हो जाते हैं, फिर तुम तो उस समय बालक ही थे, इसलिये उन्होंने इसका उत्तर तुम्हें न दिया था ॥४३॥

परोक्षवादो वेदोऽयं बालानामनुशासनम् । कर्ममोक्षाय कर्माणि विधत्ते ह्यगदं यथा ॥४४॥

वेद परोक्षवाद रूपहै, जैसे इसमें कर्म-त्यागको ही कर्म कहा है, उसके वाक्य ऐसे हैं जैसे बालकों को फुसलाने के लिये कोई लालच आदि दिया जाय और फिर उसी के द्वारा उसका हित कर दिया जाय, क्योंकि वेद सकाम कर्मोंका फल देता हुआ अन्त में निष्काम कर्म की ओर ले जाता है, ऐसी दशा में उसका समझना आसान नहीं ॥४४॥

नाचरेद्यस्तु वेदोक्तं स्वयमज्ञोऽजितेंद्रियः । विकर्मणा ह्यधर्मेण मृत्योर्मृत्युमुपैति सः ॥४५॥

जब तक मनुष्य अज्ञान और अजितेन्द्रिय है तब तक उसे वेदोक्त कर्म ही करना चाहिये, क्यों कि उनको यकायक छोड़ देने वाला मनुष्य अधर्म करके ही मरताहै और वह सर्वदा जन्म-मरण पाता हुआ काल ही के मुख में बना रहता है ॥४५॥

वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसंगोऽर्पितमीश्वरे । नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः॥४६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसलिये निषिद्ध कर्मों को त्याग कर, ज्ञान उत्पन्न होने तक, फलकी इच्छा छोड़कर वेदोक्त कर्म करते रहना चाहिये, तथा अपना किया हुआ सब ईश्वर को अर्पण कर देना चाहिये, तभी मोक्ष रूपी सिद्धि मिल सकती है, वेद में कर्मों का फल लिखा अवश्य है, परन्तु उसका वास्तविक ध्येय निष्काम कर्म ही है ॥४६॥

य आशु हृदयग्रंथिं निर्जिहीर्षुः परात्मनः ।
विधिनोपचरेद्देवं तंत्रोक्तेन च केशवम् ॥४७॥

जो ब्रह्म स्वरूप जीव की अहङ्कार-रूपिणी गाँठ तत्काल ही काटना चाहें, उन्हें तन्त्रोक्त और वेदोक्त दोनों ही प्रकार से भगवान् का पूजन करना चाहिये ॥४७॥

लब्धानुग्रह आचार्यात्तेन संदर्शितागमः ।
महापुरुषमभ्यर्चेन्मूर्त्याभिमतयात्मनः ॥४८॥

आचार्य की कृपा प्राप्त करके उससे पूजन-विधि सीखकर, भगवान् की जो भी मूर्त्ति अपने को प्यारी लगे, उसी मूर्त्ति में उनका पूजन करना चाहिये ॥४८॥

शुचिः संमुखमासीनः प्राणसंयमनादिभिः ।
पिंडं विशोध्य संन्यासकृतरक्षोऽर्चयेद्धरिम् ॥४९॥

पवित्र होकर मूर्त्ति के सामने बैठे, प्राणायाम और भूतशुद्धि आदि के द्वारा देहको शुद्ध बनाकर न्यासों के द्वारा रक्षा करने के पश्चात् यथा प्राप्त उपचारों से भगवान्का पूजन करना चाहिये ॥४९॥

अर्चादौ हृदये चापि यथालब्धोपचारकैः ।
द्रव्यक्षित्यात्मलिंगानि निष्पाद्य प्रोक्ष्य चासनम् ५०
पाद्यादीनुपकल्प्याथ सन्निधाप्य समाहितः ।
हृदादिभिः कृतन्यासो मूलमंत्रेण चार्चयेत् ॥५१॥

पुष्प आदि द्रव्यके जन्तु आदि शोधकर, भूमि को लीप-पोतकर, मनको सावधान करके, मूर्त्ति को स्नान आदि कराके और आसन का प्रोक्षण करके, पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय तीन पात्र बनाकर मूर्त्ति या हृदय में भगवान्का पूजन करना चाहिये और हृदय-पूजित भगवान् का मूर्त्ति में ध्यान करना चाहिये, फिर हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र;अस्त्र और मूल मन्त्रों द्वारा देव-शरीर में न्यास करके मूल मंत्रसे पूजा करनी चाहिये ॥

सांगोपांगां सपार्षदां तां तां मूर्तिं स्वमंत्रतः ।
पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः ॥५२॥
गंधमाल्याक्षतस्रग्भिर्धूपदीपोपहारकैः ।
सांगं संपूज्य विधिवत्स्तवैः स्तुत्वा नमेद्धरिम्॥५३॥

हृदय आदि अङ्ग, चक्र आदि उप-अङ्ग और पार्षद सहित उस-उस मूर्त्ति का मूल-मन्त्र कहते पूजन करना चाहिये, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वस्त्र; आभूषण, चन्दन, पुष्प, अक्षत, माला धूप; दीप और नैवेद्य से नियम-पूर्वक सांगोपांग पूजन करना चाहिये, फिर स्तोत्रों द्वारा स्तुति करके भगवान्को प्रणाम करना चाहिये ॥५२॥५३॥

आत्मानं तन्मयं ध्यायन्मूर्तिं संपूजयेद्धरेः ।
शेषामाधाय शिरसा स्वधाम्न्युद्वास्य सत्कृतम्५४॥

अपने आत्मा को भगवान् रूप मानकर ध्यान करते हुए भगवान्की मूर्त्तिका पूजन करना चाहिये, फिर निर्माल्य को शिर पर चढ़ाये, पूजित मूर्त्तिको नियत स्थान पर रक्खे, फिर सब सामग्री इकट्ठी करके पूजा को समाप्त करदे ॥ ५४॥

एवमग्न्यर्कतोयादावतिथौ हृदये च यः ।
यजतीश्वरमात्मानमचिरान्मुच्यते च सः ॥५५॥

इसी प्रकार जो मनुष्य अग्नि, सूर्य, जल आदि अतिथि और हृदय में भी ईश्वर को स्थित जान कर उसका पूजन करता है, वह तुरन्त ही संसार से मोक्ष पा जाता है ॥ ५५ ॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चौथा अध्याय

(नारायण का अवतार वर्णन)

राजोवाच

यानि यानीह कर्माणि यैर्यैः स्वच्छंदजन्मभिः ।
चक्रे करोति कर्ता वा हरिस्तानि ब्रुवंतु नः ॥ १ ॥

निमिराज बोले–हे योगेश्वर ! भगवान् जिन २ स्वच्छन्द अवतारों से जो-जो चरित्र कर चुके हैं, करते हैं, या करेंगे, वे सब अवतार तथा उनके कर्म मुझसे कहिये ॥१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्रुमिल उवाच

यो वा अनंतस्य गुणाननंताननुक्रमिष्यन्स तु बालबुद्धिः । रजांसि भूमेर्गणयेत्कथंचित्कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः ॥ २ ॥

द्रुमिल बोले-अनन्त भगवान् के अनंत गुणों को जो गिनना चाहते हैं वे अज्ञानी हैं, क्योंकि कदाचित् कोई बुद्धिमान पुरुष कालान्तर में पृथ्वी के कणों को चाहे गिनले, पर उन अनन्त शक्ति के गुणों को कदापि नहीं गिन सकता ॥२॥

भूतैर्यदा पंचभिरात्मसृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन् । स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधानमवाप नारायण आदिदेवः ॥ ३ ॥

फिर भी संक्षेप में प्रमुख अवतारों का वर्णन करता हूँ, जब अपने रचे हुए पंच महाभूतों से ब्रह्मांड रूप देह बनाकर उसमें लीला करनेके लिये भगवान् ने प्रवेश किया, तब आदि देव नारायणने 'पुरुष' नाम पाया ॥ ३ ॥

यत्काय एष भुवनत्रयसन्निवेशो यस्येंद्रियैस्तनुभृतामुभयेंद्रियाणि । ज्ञानं स्वतः श्वसनतो बलमोज ईहा सत्त्वादिभिः स्थितिलयोद्भव आदिकर्ता ॥ ४ ॥

उन पुरुष रूप भगवान् की देह रूप ही यह त्रिलोकी है, जीवों की इन्द्रियाँ उन्हीं की इन्द्रियों से प्रवृत्त हुई हैं, उनका ज्ञान स्वयं सिद्ध है, उनके प्राण से जीवों की देह शक्ति, इन्द्रिय-शक्ति और क्रियायें उत्पन्न हुई हैं, उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय सत्व,रज और तमोगुण द्वारा पहले कर्त्ता वहीहैं ॥

आदावभूच्छतधृती रजसाऽस्य सर्गे विष्णुः स्थितौ क्रतुपतिर्द्विजधर्मसेतुः । रुद्रोऽप्ययाय तमसा पुरुषः स आद्य इत्युद्भवस्थितिलयाः सततं प्रजासु ॥ ५ ॥

उनके रजोगुण से सृष्टि चलाने के लिये पहले ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई, सतोगुण से यज्ञों के फल दाता और द्विज जनों के धर्म-पालक श्रीविष्णुजी जगत् की रक्षाके लिये हुए और तमोगुणसे संहार के लिये रुद्रजी उत्पन्न हुए, इस प्रकार जिनसे उत्पन्न हुए ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रजीके द्वारा प्रजा की उत्पत्ति, पालन और संहार हुआ करता है, वे आदि पुरुष यही हैं ॥५॥

धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां नारायणो नरऋषिप्रवरः प्रशांतः । नैष्कर्म्यलक्षणमुवाच चचार कर्म योऽद्यापिचास्त ऋषिवर्यनिषेवितांघ्रिः ॥

फिर दक्ष की कन्या कि जो धर्म की स्त्री थी, और जिसका नाम मूर्त्ति था, उससे ऋषियों में उत्तम और अत्यन्त शान्त 'नर नारायण' नाम का अवतार हुआ, बड़े-बड़े ऋषि जिनके चरणों का सेवन करते हैं, ऐसे उन भगवान् ने आत्म रूप बतलाने वाले कर्मका नारद आदिको उपदेश करते हुए स्वयं भी वैसा ही आचरण किया, वे अब भी वैसे ही कर्म करते हैं ॥६॥

इंद्रो विशंक्य मम धाम जिघृक्षतीति कामं न्ययुंक्त सगणं स बदर्युपाख्यम् । गत्वाप्सरोगणवसंमसुमंदवातैः स्त्रीप्रेक्षणेषुभिरविध्यदतन्महिज्ञः ७

उनका तप देखकर इन्द्र को यह शंका हुई कि कदाचित यह मेरा स्थान लेना चाहते हैं, इसलिये उसने वसन्त आदिके साथ कामदेवकोभेजा,उनकी महिमा का न जानने वाला कामदेव अप्सरा-गण, वसन्त और मन्द वायुको साथ लेकर उनके आश्रम में गया और स्त्रियों के कटाक्ष रूपी बाणों से उन्हें बींधने लगा ॥७॥

विज्ञाय शक्रकृतमक्रममादिदेवः प्राह प्रहस्य गतविस्मय एजमानान् । मा भैष्ट भो मदनमारुतदेववध्वो गृह्णीत नो बलिमशून्यमिमं कुरुध्वम् ॥८॥

तब गर्व रहित नर नारायण इन्द्र का किया हुआ अपराध जानकर शाप के भय से काँपते हुए कामदेव आदि से बोले कि हे कामदेव ! हे देवांगनाओ ! हे पवन ! डरो नहीं, हमारे अतिथि बनकर स्थान को सुवास मय करो ॥ ८ ॥

इत्थं ब्रुवत्यभयदे नरदेवदेवाः सव्रीडनम्रशिरसः सघृणं तमूचुः । नैतद्विभो त्वयि परेऽविकृते विचित्रं स्वारामधीर निकरानतपादपद्मे ॥ ९ ॥

हे निमिराज ! अभयदाता नारायणने जब इस प्रकार कहा, तब लज्जाके मारे नीचा सिर कियेहुए दयालु श्रीनारायण से वे कामदेव आदि बोले कि-हे प्रभो ! आप माया से परे निर्विकार हो और आत्माराम धीर मुनि जन आपके चरणारविंद को प्रणाम करते हैं, इसलिये आपमें ऐसा दया-भाव होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है ॥९॥

त्वां सेवतां सुरकृता बहवोऽन्तरायाः स्वौको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विलंघ्य परमं व्रजतां पदं ते । नान्यस्य बर्हिषि बलीन्ददतः स्वभागान्धत्ते पदं त्वमविता यदि विघ्नमूर्ध्नि ॥१०॥

आपकी सेवा करने वाले मनुष्य देवताओं के स्थान को पार करके आपके परम धामको जाते हैं, इसलिये देवता उनको अनेक विघ्न करते हैं, परन्तु जो लोग आपको न मानकर यज्ञ में देवताओं का भाग दिया करते हैं उनके अनुष्ठान में देवता विघ्न नहीं करते अर्थात् हम लोगों का स्वभाव ही अपराध करने का है, परन्तु आप अपने भक्तोंके रक्षक हैं, इसलिये वे विघ्नों के शिर पर पैर रखते हुए आपको प्राप्त होजाते हैं ॥१०॥

क्षुत्तृट्त्रिकालगुणमारुतजैह्वयशैश्न्यानस्मानपार जलधीनतितीर्यकेचित् । क्रोधस्य यांति विफलस्य वशं पदे गोर्मज्जंति दुश्चरतपश्च वृथोत्सृजंति ॥११॥

भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, वर्षा, वायु, जिह्वा और शिश्न-रस रूप हम लोगों की मर्यादा भंग करके जो मनुष्य निष्फल क्रोध के वश होजाते हैं, वे मानो महासागरों से तो पार उतर जातेहैं,परन्तु अन्त में गौ-खुर के गड्ढे में डूब जाते हैं, अर्थात् वे लोग क्रोध से शाप आदि देकर अपने महा कठिन तप को वृथा ही नष्ट कर देते हैं ॥११॥

इति प्रगृणतां तेषां स्त्रियोऽत्यद्भुतदर्शनाः । दर्शयामास शुश्रूषां स्वर्चिताः कुर्वतीर्विभुः ॥१२॥

जब इस प्रकार देवता स्तुति कर रहे थे, तब भगवान्ने उनका गर्व दूर करनेके लिये सेवाकरती हुई, शृङ्गार किये हुए और अत्यन्त रूपवती दूसरी स्त्रियाँ अपने योग-बलसे उत्पन्न करके दिखलाईं ॥

ते देवानुचरा दृष्ट्वा स्त्रियः श्रीरिव रूपिणीः । गंधेन मुमुहुस्तासां रूपौदार्यहतश्रियः ॥१३॥

मूर्त्तिमयी लक्ष्मीजी के समान उन स्त्रियों को देखकर उनके अद्भुत रूप से निस्तेज हुए वे इन्द्र के अनुचर उनके शरीर की सुगंधि ही से मोहित हो गये ॥ १३ ॥

तानाह देवदेवेशः प्रणतान्प्रहसन्निव । आसामेकतमां वृङ्ध्वं सवर्णां स्वर्गभूषणाम् ॥१४॥

देवताओं के देवता रूप ब्रह्मा आदि के भी स्वामी भगवान् नर नारायण अपने को नमस्कार करते हुए उन देवताओंसे हँसते हुए से कहने लगे कि इन स्त्रियों में से किसी भी एक को या अपने समान वर्ण वाली को या स्वर्गकी भूषणरूप बनाने के लिये यों ही किसी एक स्त्री को तुम माँग लो ॥

ओमित्यादेशमादाय नत्वा तं सुरवंदिनः । उर्वशीमप्सरःश्रेष्ठां पुरस्कृत्य दिवं ययुः ॥१५॥

वे देवताओं के बन्दीजन नारायण की आज्ञा को 'जो आज्ञा' ऐसा कहते हुए शिरोधार्य करके उन अप्सराओंमें से उत्तम उर्वशी नामकी अप्सरा को लेकर स्वर्ग को गये ॥१५॥

इन्द्रायानम्य सदसि शृण्वतां त्रिदिवौकसाम् । ऊचुर्नारायणबलं शक्रस्तत्रास विस्मितः ॥१६॥

उन्होंने सभा के बीच आकर इन्द्र को प्रणाम करके देवताओं के सामने नारायणके बलकी वार्ता सुनाई, ये सुनकर इन्द्रको भय और आश्चर्य हुआ।

हंसस्वरूप्यऽवददच्युत आत्मयोगं दत्तः कुमार ऋषभो भगवान्पिता नः । विष्णुः शिवाय जगतां कलयावतीर्णस्तेनाहृता मधुभिदा श्रुतयो हयास्ये ॥

भगवान् ने हंसका अवतार धारण करके ब्रह्म विद्या का उपदेश किया, आत्रेय, सनकादिक और मेरे पिता ऋषभदेवजी के वेष में विष्णु भगवान् ही अपने अंश से जगत् का कल्याण करने के लिये प्रकट हुए थे और इन्होंने ब्रह्म-विद्या का उपदेश किया था, भगवान् विष्णु हयग्रीवका अवतार धर कर मधु दैत्य को मारकर वेदोंको लौटा लाये थे ॥

गुप्तोऽप्यये मनुरिलौषधयश्च मात्स्ये क्रौडे हतो दितिज उद्धरतांभसः क्ष्माम् । कौर्मे धृतोऽद्रिरमृतोन्मथने स्वपृष्ठे ग्राहात्प्रपन्नमिभराजमुंचदार्तम् ॥

भगवान् ने मत्स्यावतार धारण करके प्रलय काल में मनु, पृथ्वी और औषधियों की रक्षा की, वाराह अवतार लेकर जलमें से पृथ्वी का उद्धार करते समय हिरण्याक्षका बध किया, अमृत-मंथन के समय कच्छप अवतार लेकर अपनी पीठ पर पर्वत को धारण किया, पीड़ित होकर शरण आये हुए गजेन्द्र को जिन्होंने ग्राह से छुड़ाया था, वह भी भगवान् का अवतार था ॥ १८ ॥

संस्तुन्वतोऽब्धिपतिमाञ्छ्रमणानृषींश्च शक्रं च वृत्रवधतस्तमसि प्रविष्टम् । देवस्त्रियोऽसुरगृहे पिहिता अनाथा जघ्नेऽसुरेंद्रमभयाय सतां नृसिंहे ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवान् ने पृथक् २ अवतार लेकर इस प्रकार चरित्र किये, एक बार वाल्यखिल्य नामक तपस्वी कश्यपजी के लिये समधि लेने के लिये बन में जा रहे थे, वहाँ वे गौ-खुर के गड्ढे में डूब गये, उन्हें इस दशा में देखकर इन्द्र हँसने लगा, तब उन्होंने भगवान् की स्तुति की कि जिससे प्रसन्न होकर प्रभु ने उनको संकट से छुड़ाया, जब वृत्रासुर के मारने की इन्द्र को हत्या लगी, तब उसे दूर करके भगवान् ने इन्द्र को निष्पाप किया, दैत्य के घर में रोकी हुई अनाथ देवांगनाओं को छुड़ाया, नृसिंह अवतार धारण करके सज्जनों को अभय करने के लिये हिरण्यकश्यप को मारा ॥१६॥

देवासुरे युधि च दैत्यपतीन्सुरार्थे हत्वांऽतरेषु भुवनान्यदधात्कलाभिः । भूत्वाऽथ वामन इमामहरद्बलेः क्ष्मां याच्ञा छलेन समदाददितेःसुतेभ्यः॥

सभी मन्वंतरों में देवासुर-संग्राम के समय अपने अवतारों द्वारा बड़े-बड़े दैत्यों को मार कर लोकों की रक्षा की, वामन अवतार लेकर माँगने के जल से पृथ्वी बलिराज से हरण करके देवताओं को दी ॥ २० ॥

निःक्षत्रियामकृत गां च त्रिःसप्तकृत्वो रामस्तु हैहयकुलाऽप्ययभार्गवाग्निः । सोऽब्धिं बबंध दशवक्त्र महन्सलंकं सीतापतिर्जयति लोकमलघ्नकीर्तिः २१॥

हैहय नामक क्षत्रिय वंश के नाश करनेके लिये अग्नि के समान परशुरामजी ने भृगुकुलमें अवतार लेकर इक्कीस वार पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन कर डाला.आगे रामावतार लेकर समुद्र में सेतु बांधेंगे और लंका सहित रावण को मारेंगे, जिनकी कीर्ति संसार के पाप नाश करने वाली है, वे रघुनाथजी आजकल विद्यमान् हैं ॥२१॥

भूमेर्भरावतरणाय यदुष्वऽजन्मा जातः करिष्यति सुरैरपि दुष्कराणि । वादैर्विमोहयति यज्ञकृतोऽत दर्हाञ्छूद्रान्कलौ क्षितिभुजो न्यहनिष्यदंते ॥२२॥

भूमिका भार उतारनेके लिये भगवान् अजन्मा होने पर भी यादव कुलमें श्रीराम-कृष्णका अवतार लेकर ऐसे कार्य करेंगे, जो देवताओं से नहीं हो सकते; यज्ञ करने के योग्य न होते हुए भी यज्ञ करने वाले दैत्यों को बुद्ध अवतार लेकर नास्तिकवाद से मोहित करेंगे, कलियुग के अन्तमें कल्कि अवतार लेकर शूद्र जातिके राजाओंका वध करेंगे॥

एवंविधानि कर्माणि जन्मानि च जगत्पतेः । भूरीणि भूरियशसो वर्णितानि महाभुज ॥२३॥

हे राजन् ! जगत्पति और परम कीर्त्ति वाले भगवान् के ऐसे ही ऐसे अनेक जन्म और कर्म महात्माओंने वर्णन किये हैं ॥ २३ ॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पांचवां अध्याय

(जयन्त का उपाख्यान)

राजोवाच

भगवंतं हरिं प्रायो न भजंत्यात्मवित्तमाः । तेषामशांतकामानां का निष्ठाऽविजितात्मनाम्॥१॥

निमि बोले–जिन लोगोंकी वासना शान्त नहीं होती वे बहुधा भगवान् हरि का भजन नहीं करते ऐसे लोगोंकी क्या दशा होतीहै सो मुझसे कहिये॥

चमस उवाच

मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह । चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक् ॥ २ ॥

चमस बोले–पहले परम पुरुष के मुखसे सत्व गुण द्वारा ब्राह्मण उत्पन्न हुए, भुजाओं से सत-रज के मेल द्वारा क्षत्रिय हुए, ऊरु से रजोगुण और तमोगुण के मेल द्वारा वैश्य हुए और चरणों से तमोगुण द्वारा शूद्र हुए तथा आश्रम सहित अलग अलग वर्ण स्थापित हुए ॥ २ ॥

य एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम् । न भजंत्यवजानंति स्थानाद्भ्रष्टाः पतंत्यधः ॥ ३ ॥

इनमें से जो लोग अपने उत्पन्न करने वाले साक्षात् गुरु रूप ईश्वर नारायण को न जानकर उनकी सेवा नहीं करते, या जो जान-बूझ कर ही उनकी अवज्ञा करते हैं, वे कृतघ्न होने के कारण वर्णाश्रम से भ्रष्ट होकर दुर्गति पाते हैं ॥ ३ ॥

दूरेहरिकथाः केचिद्दूरे चाच्युतकीर्तनाः । स्त्रियः शूद्रादयश्चैव तेऽनुकंप्या भवादृशाम् ॥ ४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो लोग भगवान् की कथा कहने या सुनने से दूर हैं ऐसे द्विजों, स्त्रियों और भगवान्को न जानने से उनका भजन करने वाले शूद्रों का आप जैसे पुरुषों को कृपा करके सुधार करना चाहिये ॥४॥

विप्रो राजन्यवैश्यौ च हरेः प्राप्ताः पदांतिकम् ।
श्रौतेन जन्मनाऽथापि मुह्यंत्यान्नायवादिनः ॥ ५ ॥

कई एक द्विज जाति वाले उपनयन संस्कार तथा वेदाध्ययन आदि द्वारा भगवद्भजन का श्रेष्ठ अधिकार पाकर भी वेद के फल रूप वचनों से मोहित होकर जान-बूझ कर भी भगवान्का भजन न करके कर्मासक्त होरहे हैं,ऐसे अर्द्ध दग्ध पुरुषों के सुधार का कोई उपाय नहीं, इसलिये आप जैसे सज्जनों को भी उनकी उपेक्षा करनी उचितहै ॥५॥

कर्मण्यऽकोविदाः स्तब्धा मूर्खाः पंडितमानिनः ।
वदंति चाटुकान्मूढा यया माध्व्या गिरोत्सुकाः ६॥

जो लोग यह नहीं जानते कि कर्म किस प्रकार से करने पर वह लोक-बन्धन में नहीं डालता, जो ढिठाई के कारण विद्वानों का भी मान नहीं रखते और मूर्ख होने पर भी पंडित होनेका गर्व करतेहैं, ऐसे अर्द्ध दग्ध मूर्ख पुरुष वेद के फल रूप स्तुति वाले मधुर वचनों से उत्सुक होकर ऐसी मीठी २ बातें किया करते हैं जैसे हम इस कर्म को करके अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करेंगे···आदि ॥६॥

रजसा घोरसंकल्पाः कामुका अहिमन्यवः ।
दांभिका मानिनः पापा विहसंत्य च्युतप्रियान्॥७॥

रजोगुण बढ़नेसे अभिचार आदि घोर संकल्प करने वाले, अत्यन्त अधिक तृष्णा वाले, सर्प के समान क्रोधी,पाखंडी,अभिमानी और क्रूर स्वभाव वाले-ये अर्द्ध दग्ध लोग भगवान् के भक्तों की हँसी करते हैं ॥७॥

वदंति तेऽन्योन्यमुपासितस्त्रियो गृहेषु मैथुन्यसुखेषु चाशिषः । यजंत्यसृष्टान्नविधानदक्षिणं वृत्त्यै परं घ्नंति पशूनतद्विदः ॥ ८ ॥

हे राजन्! अपने वृद्ध पुरुषोंको छोड़कर स्त्रियों की सेवा करने वाले, केवल मैथुन ही का सुख देने वाले और अतिथि के सत्कार से हीन घरों में रह कर मनोरथ वाले लोग कहा करतेहैं कि आज मैंने यह पाया, आगे यह मनोरथ पूरा करूँगा, पूर्णतया दक्षिणा व अन्न दान नहीं देते, केवल दंभ के लिये यज्ञ करते हैं और केवल जीविका के लिये पशुओं को मारते हैं ॥८॥

श्रिया विभूत्याभिजनेन विद्यया त्यागेन रूपेण बलेन कर्मणा । जातस्मयेनांधधियः सहेश्वरान्स तोऽवमन्यंति हरिप्रियान्खलाः ॥ ९ ॥

सम्पत्ति, ऐश्वर्य; उत्तम कुल में जन्म, विद्या; दान, रूप, बल और कर्मसे उत्पन्न होनेवाले अभिमान के कारण अन्धे बने हुए ये दुष्ट लोग भगवान तथा उनके भक्तों का अपमान करते हैं ॥९॥

सर्वेषु शश्वत्तनुभृत्स्ववस्थितं यथा खमात्मानम भीष्टमीश्वरम् । वेदोपगीतं च न शृण्वतेऽबुधा मनोरथानां प्रवदंति वार्तया ॥१०॥

इस प्रकार आचरण करने वाले ये मूर्ख लोग वेद का तत्वार्थ स्पष्ट होनेपर भी उसे नहीं जानते, यद्यपि वेद यह बतलाते हैं कि आत्मा देहधारियों में आकाश की भाँति व्याप्त है और वे परम प्रिय ईश्वर का प्रतिपादन करते हैं, फिर भी ये मूर्ख उसे न सुनकर मनोरथ की वार्तायें कह-सुनकर विवाद किया करते हैं ॥१०॥

लोके व्यवायाऽमिषमद्यसेवा नित्यास्तु जंतोर्न हि तत्र चोदना । व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञसुराग्र हैरासु निवृत्तिरिष्टा ॥११॥

वे कहते हैं कि लोक में मैथुन, माँस भक्षण और मदिरा पान सदा ही करना चाहिये, विषयी पुरुषों को अनुराग स्वभावही से प्राप्त है, इसके लिये कोई नियम नहीं, परन्तु जिस वेदका आधार लेकर वे ऐसी डींग मार दिया करतेहैं; उसमें ऐसा लिखा है कि-ऋतुके दिनही स्त्री-संग करना चाहिये यज्ञ में ही (यदि वह यज्ञ माँसका निषेध न करता हो तो) माँस खाना चाहिये एवं सौत्रामणि यज्ञ में ही मदिरा-पान करना चाहिये (और कभी नहीं) इन वाक्यों से वेद मनुष्य को ऐसी कुप्रथाओं से बचाता है, परन्तु मूर्ख उसे न समझ कर उलटे चलते हैं ॥ ११ ॥

धनं च धर्मैकफलं यतो वै ज्ञानं सविज्ञानमनुप्रशांति । गृहेषु युंजंति कलेवरस्य मृत्युं न पश्यंति दुरंतवीर्यम् ॥१२॥

धन का फल धर्म करनाहै, धर्म से परन्तु ज्ञान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और शीघ्र शान्ति देने वाला प्रत्यक्ष ज्ञान दोनों ही होजातेहैं-ऐसे कल्याणकारी धनको यह लोग शरीर आदि के लिये घर में वृथा ही गँवा देते हैं, शोकहै कि वे इस बात का और सिरपर घूमते हुए प्रबल काल का विचार नहीं करते ॥१२॥

यद्घ्राणभक्षो विहितः सुरायास्तथा पशोरालभनं न हिंसा । एवं व्यवायः प्रजया न रत्या इमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्मम् ॥१३॥

वेद में मद्य-पान आदि की आज्ञा का भाव भी एक विशेष प्रकार का है, जिसे मूर्ख नहीं जानते, उसमें ऋतु के दिन स्त्री-भोगकी आज्ञा केवल गर्भ स्थित करने के लिये ही है, अपनी काम-तृप्ति के लिये नहीं. मदिरा-पानका अर्थ केवल उसके सूंघने से है, पशु-हिंसा केवल देवताओं के लिये करनेकी अनुमति है, अपने पेट भरने के लिये नहीं, ऐसे शुद्ध धर्म को विषयासक्त होकर न करनेके तात्पर्य को मूर्ख नहीं जानते ॥ १३ ॥

ये त्वनेवंविदोऽसंतः स्तब्धाः सदभिमानिनः । पशून्द्रुह्यंति विस्रब्धाः प्रेत्य खादंति ते च तान् ॥१४

इस प्रकार धर्म को न जानने वाले, असाधु, हठवादी और अपनेको सज्जन माननेवाले जो लोग निशंक रहकर तथा ऐसा करने में मनोरथ सिद्ध होने का विश्वास रखकर पशुओं से द्रोह करते हैं, उन लोगों को मरने पर वही पशु खाते हैं ॥ १४ ॥

द्विषंतः परकायेषु स्वात्मानं हरिमीश्वरम् । मृतके सानुबंधेऽस्मिन्बद्धस्नेहाः पतंत्यधः ॥१५॥

अपने आत्म रूप परमात्मा ही दूसरे शरीरों में विराजमान् हैं उनसे द्वेष करने वाले इस मृतक-तुल्य शरीर तथा पुत्र आदि परिवारमें स्नेह बाँधने वाले लोग दुर्गति पाते हैं ॥१५॥

ये कैवल्यमसंप्राप्ता ये चातीताश्च मूढताम् । त्रैवर्गिका ह्यक्षणिका आत्मानं घातयंति ते ॥१६॥

अज्ञानी लोग तत्व-ज्ञानियों की कृपा से तर जाते हैं और तत्वज्ञानी स्वयं तर जाते हैं, परन्तु बीच के अधकचड़े लोग धर्म, अर्थ और काम ही को मुख्य मानने के कारण उपशान्ति का तनिक भी अवसर न मिलने से अपने हाथों अपने आत्मा को हत करते हैं ॥१६॥

एत आत्महनोऽशांता अज्ञाने ज्ञान मानिनः । सीदंत्यकृतकृत्या वै कालध्वस्तमनोरथाः ॥१७॥

इस भांति आत्मघाती,शान्ति-रहित और कर्म ही को ज्ञान मानने वाले तथा जिनके प्राप्त मनोरथ काल के द्वारा नष्ट होजाते हैं, वे लोग अपना आवश्यक कर्त्तव्य पूरा किये विना ही मर जाते हैं ॥

हित्वाऽऽत्मायासरचिता गृहापत्यसुहृच्छ्रियः । तमो विशंत्यनिच्छंतो वासुदेवपराङ्मुखाः ॥१८॥

जो भगवान् से विमुख हैं वे परिश्रम के साथ उपार्जन किये हुए अपने घर, सन्तान, सम्बन्धी और धन को इच्छा न रहते हुए भी छोड़कर नीच योनियों में गिरते हैं ॥ १८ ॥

राजोवाच

कस्मिन्काले स भगवान्किवर्णः कीदृशो नृभिः । नाम्ना वा केन विधिना पूज्यते तदिहोच्यताम् ॥१९॥

निमिराज बोले–वे नारायण किस समय, कैसे वर्ण से, कैसी आकृति से, किस नियम से लोकमें पूजे जाते हैं सो कहिये ॥१९॥

करभाजन उवाच

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिरित्येषु केशवः । नानावर्णाभिधाकारो नानैव विधिनेज्यते ॥२०॥

करभाजन बोले–सत्, त्रेता, द्वापर और कलि यह चार युग हैं, जिनमें भिन्न २ नाम से भिन्न २ वर्ण वाले, भिन्न २ आकृति वाले भगवान् भिन्न २ नियमों से पूजे जाते हैं ॥२०॥

कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो वल्कलांबरः । कृष्णाजिनोपवीताक्षान्बिभ्रद्दंडकमंडलू ॥२१॥

सतयुग में भगवान् श्वेत वर्ण, चतुर्भुजी, जटा धारी, वल्कल वस्त्र पहने हुए, कालिय मृग चर्म यज्ञोपवीत. माला,दण्ड और कमण्डल धारणकिये ब्रह्मचारी का वेष बनाये हुए विराजते हैं ॥२१॥

मनुष्यास्तु तदा शांता निर्वैराः सुहृदः समाः । यजंति तपसा देवं शमेन च दमेन च ॥२२॥

इस युग के मनुष्य शान्त बैर-भावहीन, सबके मित्र, समदर्शी होते हैं और शम, दम तथा ध्यान के द्वारा भगवान्का पूजन करते हैं ॥२२॥

हंसः सुपर्णो वैकुंठो धर्मो योगेश्वरो मनुः । ईश्वरः पुरुषोऽव्यक्तः परमात्मेति गीयते ॥२३॥

हंस, सुपर्ण, वैकुण्ठ, धर्म, योगेश्वर,मनु, ईश्वर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुरुष, अव्यक्त और परमात्मा-यह नाम भगवान्के उपयोग में होते हैं ॥२३॥

त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः ।
हिरण्यकेशस्त्रय्यात्मा स्रुक्स्रुवाद्युपलक्षणः॥ २४॥

त्रेतायुगमें यज्ञमूर्त्ति भगवान् रक्तवर्ण,चतुर्भुज, तीन मेखला धारण किये हुए, स्वर्ण के समान वेष धारी स्रुच और स्रुवा आदि चिह्नों को धारण करते हैं ॥ २४ ॥

तं तदा मनुजा देवं सर्वदेवमयं हरिम् ।
यजंति विद्यया त्रय्या धर्मिष्ठा ब्रह्मवादिनः॥ २५॥

इस युगमें धर्मवान् और ब्रह्मवादी मनुष्यहोते हैं और सर्व देवमय भगवान् की तीनों वेदोंमें कहे हुए नियमों के अनुसार पूजन करते हैं ॥ २५॥

विष्णुर्यज्ञः पृश्निगर्भः सर्वदेव उरुक्रमः ।
वृषाकपिर्जयंतश्च उरुगाय इतीर्यते ॥२६॥

विष्णु, यज्ञ, पृश्निगर्भ, सर्वदेव, तरुक्रम, वृषाकपि, जयंत और उरुगाय-इन नामों से पुकारे जाते हैं ॥२६॥

द्वापरे भगवाञ्छ्यामः पीतवासा निजायुधः ।
श्रीवत्सादिभिरंकैश्च लक्षणैरुपलक्षितः ॥२७॥

द्वापर में भगवान् श्यामवर्ण, पीतांबर पहने, अपने चक्र आदि आयुध धारण किये हुए,श्रीवत्स आदि दैहिक चिह्न तथा कौस्तुभ आदि बाहरी चिह्न धारण किये हुए बिराजते हैं ॥२७॥

तं तदा पुरुषं मर्त्यामहाराजोपलक्षणम् ।
यजंति वेदतंत्राभ्यां परं जिज्ञासवो नृप ॥२८॥

हे राजन् ! इस युगमें मनुष्य ब्रह्म-ज्ञानकी अभिलाषा रखते हैं और चक्रवर्त्ती के चिह्नों वाले भगवान् की वेदमार्ग और तंत्रमार्ग से पूजा करते हैं ॥

नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय तुभ्यं भगवते नमः ॥२९॥
नारायणाय ऋषये पुरुषाय महात्मने ।
विश्वेश्वराय विश्वाय सर्वभूतात्मने नमः ॥३०॥
इति द्वापर उर्वीश स्तुवंति जगदीश्वरम् ।
नानातंत्रविधानेन कलावपि यथा शृणु ॥३१॥

वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, ऋषि, महात्मा, पुरुष, विश्वेश्वर, विश्वरूप और सर्व भूतात्मा भगवान् आपको हम प्रणाम करतेहैं, द्वापर में इस प्रकार ऐसे नामों से लोग भगवान्की स्तुति करते हैं और प्रत्येक नाम का उच्चारणकरते हुए भगवान् को प्रणाम करते हैं, हे राजन् ! अब कलियुगमें भी अनेक प्रकारके तन्त्र मार्गोंको मुख्य मानकर जिस प्रकार भगवान्का पूजन कियाजाता है सो सुनो ॥ २९॥३०॥३१ ॥

कृष्णवर्णंत्विषा कृष्णं सांगोपांगास्त्रपार्षदम् ।
यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजंति हि सुमेधसः ॥३२॥

श्यामवर्ण, कान्तिमय, अङ्ग और उपांगके चिह्नों वाले, अस्त्र और पार्षद सहित भगवान्का विवेकी पुरुष कीर्त्तन आदि अर्चन द्वारा यजन करते हैं३२॥

ध्येयं सदापरिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिव-
विरिंचिनुतं शरण्यम् । भृत्यार्तिहं प्रणतपाल-
भवाब्धिपोतं वंदे महापुरुष ते चरणारविंदम्॥३३॥

हे भक्तरक्षक ! हे महापुरुष ! आपके ध्यानकरने योग्य इन्द्रियों तथा कुटुम्बियों द्वारा होने वाले तिरस्कार से बचाने वाले; मनोरथ पूर्ण करने वाले गङ्गा आदि तीर्थों के आश्रय रूप, ब्रह्मा-महेशआदि से स्तुति किये जाने वाले, सुख रूप; समस्त भक्तों के क्लेश हरनेवाले और संसार सागरके लिये नौका रूप चरणारविंद की वन्दना करता हूँ ॥ ३३ ॥

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं धर्मिष्ठ
आर्यवचसा यदगादरण्यम् । मायामृगं दयितये-
प्सितमन्वधावद्वंदे महापुरुष ते चरणारविंदम्३४॥

हे परम पुरुष ! हे रामचन्द्र ! आप जो देवताओं की अभीष्ट है और जिसे वे भी नहीं त्याग सकते, ऐसी राज्य-लक्ष्मी को त्यागकर केवल धर्म की रक्षा करने के लिये पिता के वचनों से वन में पधारे और प्यारी सीता के चाहे हुए माया-मृग के पीछे उनके प्रेम-निर्वाह के लिये दौड़े, मैं ऐसे भक्त प्रिय प्रभु आपको प्रणाम करता हूँ ॥३४॥

एवं युगानुरूपाभ्यां भगवान्युगवर्तिभिः ।
मनुजैरिज्यते राजञ्छ्रेयसामीश्वरो हरिः ॥३५॥

हे राजन् ! इस प्रकार कलियुग के मनुष्य तत् सम्बन्धी उचित रूप से समस्त पुरुषार्थों के पति भगवान् का पूजन करते हैं ॥३५॥

कलिं सभाजयंत्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः ।
यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते ॥३६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुण के जानने वाले और सार ग्राही महात्मा पुरुष चारों युगों में कलियुग की प्रशंसा करते हैं; क्योंकि सतयुग में ध्यानसे, त्रेता में यज्ञ से और द्वापरमें पूजनसे जो फल मिलताहै वह फल कलियुग में केवल कीर्तन से मिलता है ॥३६॥

न ह्यतः परमो लाभो देहिनां भ्राम्यतामिह ।
यतो विंदेत परमां शांतिं नश्यति संसृतिः । ३७॥

इस संसार में भटकने वाले प्राणी को कीर्त्तन से बढ़कर कोई भी लाभ नहीं है, कि जिसके द्वारा परमशान्ति मिलतीहै और आवागमन छूटजाताहै।

कृतादिषु प्रजा राजन्कलाविच्छंति संभवम् ।
कलौ खलु भविष्यंति नारायणपरायणाः ॥३८॥

हे राजन् ! इसीलिये सतयुग,त्रेता और द्वापर में होनेवाली प्रजा चाहती है कि हमारा जन्म कलियुगमें हो, इस युगमें नारायणके परम भक्तभी होंगे।

क्वचित्क्वचिन्महाराज द्रविडेषु च भूरिशः ।
ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ॥३९॥
कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी ।
ये पिबंति जलं तासां मनुजा मनुजेश्वर ।
प्रायो भक्ता भविष्यंति वासुदेवेऽमलाशयाः॥४०॥

हे राजन् ! नारायण के परम भक्त कलियुग में कहीं-कहीं ही होंगे, फिर भी द्रविड़ देशमें अधिक होंगे कि जहाँ ताम्रपर्णी, कृतमाला, पयस्विनी, महा पवित्र कावेरी और महानदी प्रतीची हैं, हे राजन्! जो लोग इन नदियों का जल पियेंगे वे बहुधा निर्मल अन्तःकरण होकर भगवान् वासुदेवके परम भक्त हो जाँयगे ॥ ३९ ॥ ४० ॥

देवर्षिभूताप्तनृणां पितृणां न किंकरो नायमृणी च राजन् । सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुंदं परिहृत्य कर्तम् ॥४१॥

हे राजन् ! जो पुरुष भेद-दृष्टि छोड़कर समस्त विश्व को भगवान् रूप मानकर शरणागत रक्षक भगवान् की शरण लेता है, उसके ऊपर देव,ऋषि प्राणी, परिवार और पितरों का ऋण नहीं रहता और उसे पंच यज्ञ आदि का भी प्रबल आयोजन करने की आवश्यकता नहीं ॥४१॥

स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः । विकर्म यच्चोत्पतितं कथं चिद्धुनोति सर्वं हृदि सन्निविष्टः ॥४२॥

जो मनुष्य देह आदि का अभिमान छोड़कर केवल भगवान् के चरणों का भजन करते हैं, उनसे कदापि पाप नहीं बन सकता, फिर भी कहीं प्रमाद आदि के कारण कोई पाप बन भी जाय, तो उसके हृदय में विराजमान् रहने वाले भगवान् ही उसके पापों को मिटा देते हैं, वे यम आदि देवताओं के भी नियन्ता हैं ॥४२॥

नारद उवाच

धर्मान्भागवतान्नित्यं श्रुत्वाथ मिथिलेश्वरः ।
जायंतेयान्मुनीन्प्रीतः सोपाध्यायो ह्यपूजयत् ॥४३॥

नारदजी बोले–मिथिलापति राजा निमि तथा उसके उपाध्यायों ने इस प्रकार भागवत्-धर्म सुन कर प्रसन्नता पूर्वकर उन जयन्तीके पुत्र नव योगेश्वरों का पूजन किया ॥ ४३॥

ततोऽन्तर्दधिरे सिद्धाः सर्वलोकस्य पश्यतः ।
राजा धर्मानुपातिष्ठन्नवाप परमां गतिम् ॥४४॥

फिर वे नवयोगेश्वर सब लोगोंके देखते-देखते अन्तर्धान होगये और राजा निमि भी उन धर्मोंका पालन करके परम गति को प्राप्त हुआ ॥४४॥

त्वमप्येतान्महाभाग धर्मान्भागवताञ्छुतान् ।
आस्थितः श्रद्धया युक्तो निःसंगो यास्यसे परम्४५

हे महाभाग ! तुमभी मुझसे सुने हुए इन भगवत्सम्बन्धी धर्मों का यदि श्रद्धा और वैराग्य के साथ पालन करोगे तो मुक्त होजाओगे ॥४५॥

युवयोः खलु दंपत्योर्यशसा पूरितं जगत् ।
पुत्रतामगमद्यद्वां भगवानीश्वरो हरिः ॥४६॥

यह तो मैंने शास्त्रोक्त विधि तुमसे कही है, परन्तु दोनों स्त्री-पुरुष तो भगवान् के संग ही से कृतार्थ होचुके हो, परमेश्वर भगवान्विष्णु तुम्हारे पुत्र रूप हुए हैं, इसलिये तुम्हारे यश से समस्त संसार गूञ्ज रहा है ॥४६॥

दर्शनालिंगनालापैः शयनासनभोजनैः ।
आत्मा वां पावितः कृष्णे पुत्रस्नेहं प्रकुर्वतोः॥४७॥

दर्शन, स्पर्शन, भाषण, शयन, आसन और भोजन से भगवान् में पुत्र-स्नेह रखनेके कारण तुम ने अपना अन्तःकरण पवित्र कर लिया है,इसलिये दूसरों की भांति तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि पुत्र पर लाड़-प्यार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करनेही से तुम्हारे सब भगवत्सम्बन्धी धर्म सिद्ध हो चुके हैं ॥४७॥

वैरेण यं नृपतयः शिशुपालपौंड्रशाल्वादयो
गतिविलासविलोकनाद्यैः । ध्यायंत आकृतधियः
शयनासनादौ तत्साम्यमापुरनुरक्तधियां पुनः किम्

जब शिशुपाल, पौंड्रक और शाल्व आदि राजा सोते-बैठते भगवान् का वैर-भावसे ध्यान करते थे इसलिये भगवान् की गति, कटाक्ष और विलास आदि में उनकी बुद्धि उसी रूप में होजानेके कारण वे सारूप्य गति को पहुँचे थे, तब स्नेह के कारण तद्रूप बुद्धि वालों का तो कहना ही क्या है ? ॥४८॥

मापत्यबुद्धिमकृथाः कृष्णे सर्वात्मनीश्वरे ।
मायामनुष्यभावेन गूढैश्वर्ये परेऽव्यये ॥४९॥

सर्वात्मा, सर्वेश्वर, सर्वपर, अविनाशी, माया से अपने ऐश्वर्य को गुप्त रखने वाले श्रीकृष्ण को तुम अपना पुत्र न समझो ॥४९॥

भूभारासुरराजन्यहंतवे गुप्तये सताम् ।
अवतीर्णस्य निर्वृत्यै यशो लोके वितन्यते ॥५०॥

पृथ्वी के भार दैत्य रूप राजाओं को मारनेके लिये और सत्पुरुषों की रक्षा करने के लिये अवतार धारी भगवान् की कंस बध आदि की प्रशंसा उनकी महिमा पर दृष्टि डालनेसे आश्चर्यमयी नहीं जान पड़ती, फिरभी मनुष्योंकी मुक्ति-प्राप्तिके लिए वह आश्चर्य पूर्वक वर्णन की जाती है ॥५०॥

श्रीशुक उवाच

एतच्छ्रुत्वा महाभागो वसुदेवोऽतिविस्मितः ।
देवकी च महाभागा जहतुर्मोहमात्मनः ॥५१॥

श्रीशुकदेवजी बोले—यह बात सुनकर अत्यन्त विस्मयमें पड़ेहुए भाग्यशाली वसुदेव तथा देवकी ने मोह त्याग दिया ॥५१॥

इतिहासमिमं पुण्यं धारयेद्यः समाहितः ।
स विधूयेह शमलं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥५२॥

जो मनुष्य सावधानी के साथ इस इतिहास का अभ्यास करता है, वह मोह से छूटकर जीवन मुक्त हो जाता है ॥५२॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

छठवां अध्याय

(श्रीकृष्ण के प्रति ब्रह्मादि देवकृत सविनय विज्ञापन)

श्रीशुक उवाच

अथ ब्रह्मात्मजैर्देवैः प्रजेशैरावृतोऽभ्यगात् ।
भवश्च भूतभव्येशो ययौ भूतगणैर्वृतः ॥ १ ॥
इंद्रो मरुद्भिर्भगवानादित्या वसवोऽश्विनौ ।
ऋभवोऽंगिरसो रुद्रा विश्वे साध्याश्च देवताः ॥२॥
गंधर्वाप्सरसो नागाः सिद्धचारणगुह्यकाः ।
ऋषयः पितरश्चैव सविद्याधरकिन्नराः ॥ ३ ॥
द्वारकामुपसंजग्मुः सर्वे कृष्णदिदृक्षवः ।
वपुषा येन भगवान्नरलोकमनोरमः ।
यशो वितेने लोकेषु सर्वलोकमलापहम् ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-फिर सनकादि देवता और प्रजापतियों सहित ब्रह्माजी, भूतगण सहित भूत भविष्यके स्वामी महादेवजी, मरुत् देवताओंसहित इन्द्र, वसु, अश्विनीकुमार, ऋभु, आंगिरस रुद्र, विश्वेदेवा, साध्य देवता, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक, ऋषि, पितर, विद्याधर और किन्नर—यह सब लोग भगवान् के श्रीअङ्ग के दर्शन करने के लिये द्वारका गये कि जिसके द्वारा मनुष्य के मनको रमण कराने वाले भगवान् ने सब लोगों का पाप-नाशक यश संसारमें फैलाया ॥१॥२॥३॥४॥

तस्यां विभ्राजमानायां समृद्धायां महर्द्धिभिः ।
व्यचक्षतावितृप्ताक्षाः कृष्णमद्भुतदर्शनम् ॥ ५ ॥

महान् समृद्धिशालिनी और नेदीप्यमान द्वारका में जिनके नेत्र तृप्त नहीं होते, ऐसे देवताओंने अद्भुत स्वरूप वाले भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन किये॥५॥

स्वर्गोद्यानोपगैर्माल्यैश्छादयंतो यदूत्तमम् ।
गीर्भिश्चित्रपदार्थाभिस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम् ॥ ६ ॥

स्वर्ग के उद्यानों से लाये हुए पुष्पों से श्रीकृष्ण जी को आच्छादित करते हुए उन देवताओं ने विचित्र पद और अर्थ वाली वाणी के द्वारा जगदीश्वर की इस प्रकार स्तुति की ॥६॥

देवा ऊचुः

नताः स्म ते नाथ पदारविंदं बुद्धींद्रियप्राण-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मनोवचोभिः ।यच्चिंत्यतेंऽतर्हृदि भावयुक्तैर्मुमुक्षुभिः कर्ममयोरुपाशात्॥ ७॥

देवताओंने कहा–हे नाथ! कर्म रूपी दृढ़ बंधन से मुक्त होने की अभिलाषा करने वाले पुरुष जिन का अपने हृदय में भक्ति पूर्वक चिन्तवन करते हैं, हम आपके उन चरणारविन्दों को बुद्धि, इन्द्रिय, प्राण, मन और वचन से हो सकने योग्य साष्टांग प्रणाम के साथ नमस्कार करते हैं, हमारा यही सौभाग्य है॥७॥

त्वं मायया त्रिगुणयात्मनि दुर्विभाव्यं व्यक्तं सृजस्यवसि लुंपसि तद्गुणस्थः । नैतैर्भवानजित कर्मभिरज्यते वै यत्स्वे सुखेऽव्यवहितेऽभिरतोऽनवद्यः ॥ ८ ॥

हे अजित्! आप माया के गुणों में नियंतारूप से विद्यमान् हैं और मनके द्वारा भी समझ में न आनेवाले इस जगत्को त्रिगुणात्मक मायाके द्वारा अपने ही स्वरूप में रचते, पालते और संहारकरते हैं, फिर भी इन कर्मों में लिप्त नहीं होते, क्योंकि आप आवरण और दोष रहित तथा आत्मा ही में रमण करने वाले हैं ॥ ८ ॥

शुद्धिर्नृणां न तु तथेड्य दुराशयानां विद्याश्रुताध्ययनदानतपः क्रियाभिः । सत्त्वात्मनामृषभ ते यशसि प्रवृद्धसच्छ्रद्धया श्रवणसंभृतया यथा स्यात् ॥ ९ ॥

हे स्तुत्य! हे उत्तम! विषयी पुरुषों के चित्त विद्या, श्रवण, अध्ययन, दान और तप आदि कर्मों के द्वारा भी उतने शुद्ध नहीं होते जितने केवल आपके यशको सुनने ही से साधुओं के चित्त शुद्ध हो जाते हैं ॥ ९ ॥

स्यान्नस्तवांघ्रिरशुभाशयधूमकेतुः क्षेमाय यो मुनिभिरार्द्रहृदोह्यमानः। यः सात्वतैः समविभूतय आत्मवद्भिर्व्यूहेऽर्चितः सवनशः स्वरतिक्रमाय१०॥

जिन चरणारविंदों का मुमुक्षुजन प्रेमसे द्रवित हृदय में चिन्तवन करते हैं, भक्त जन आप ही के समान वैभव पानेके लिये वासुदेव आदि चतुर्व्यूह में पूजन करते हैं और उनमें से कितने ही धीर पुरुष वैकुण्ठ पाने के लिये त्रैकाल में पूजन करतेहैं वे अशुभ वासनाओंको अग्नि की भांति भस्म करें ॥

यश्चित्यते प्रयतपाणिभिरध्वराग्नौ त्रय्या निरुक्त विधिनेश हविर्गृहीत्वा । अध्यात्मयोग उत योगिभिरात्ममायां जिज्ञासुभिः परमभागवतैः परीष्टः११

हे ईश! आपका यज्ञ करने वाले लोग हाथ जोड़कर उनमें हवि लेकर वेद में कहे हुए इन्द्रादि देवताओं के रूप ये यज्ञाग्निके द्वारा चिन्तवनकरते हैं, योगीजन मनोनिग्रह करके योगके द्वारा सिद्धियां पाने के लिये चिंतवन करते हैं और महा वैष्णव तथा मुक्त पुरुष सब प्रकार पूजते हैं ॥११॥

पर्युष्टया तव विभो वनमालयेयं संस्पर्धिनी भगवती प्रतिपन्निवच्छ्रीः । यः सुप्रणीतममुयार्हणमाददन्नो भूयात्सदांघ्रिरशुभाशयधूमकेतुः॥१२॥

हे प्रभो! आपके समस्त अङ्गों में व्याप्त बनमाला से भगवती लक्ष्मीजी सौत की भांति डाह रखती हैं, फिर भी यह बनमाला भक्तों की अर्पण की हुई है, इस भांति की प्रीति से आप उसके द्वारा किये हुए पूजन को भले प्रकार अङ्गीकार करते हैं, आपके चरणारविंद हमारी विषय-वासनायें अग्नि की भांति भस्म करें ॥१२॥

केतुस्त्रिविक्रमयुतस्त्रिपतत्पताको यस्ते भयाभय करोऽसुरदेवचम्वोः । स्वर्गाय साधुषु खलेष्वितराय भूमन्पादः पुनातु भगवन्भजतामघं नः ॥१३॥

हे व्यापक! आपका जो चरण राजा बलि को बाँधने के समय दूसरी डग भरनेमें सत्यलोक तक पहुँचकर ध्वजा के समान दीखता था और जिस से तीन प्रकारकी गिरती हुई गङ्गाजीकी धारा तीन पताकाओं की भांति जान पड़ती थी, जिसने देवसेना को अभय करके स्वर्ग में रक्खा और असुर दल को भयभीत करके पाताल पहुंचा, वह आप का चरण हम भजन करने वालों के पाप को दूर करके पवित्र करे ॥१३॥

नस्योतगाव इव यस्य वशे भवंति ब्रह्मादयस्तनुभृतो मिथुरर्द्यमानाः । कालस्य ते प्रकृतिपूरुषयोः परस्य शं नस्तनोतु चरणः पुरुषोत्तमस्य ॥१४॥

परस्पर पीड़ित होते हुए ब्रह्मादिक भी नाकमें नथनी पहने हुए बैलों की नाईं द्वेष आदिके कारण जिनके वशमें हैं, वे सबके प्रवर्त्तक और प्रकृति पुरुषके नियन्ता आपके चरण हमारा कल्याणकरें॥

अस्यासि हेतुरुदयस्थितिसंयमानामव्यक्तजीव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महतामपि कालमाहः । सोऽयं त्रिणाभिरखिलापचये प्रवृत्तः कालो गभीररय उत्तमपुरुषस्त्वम् १५

आप इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण हैं, प्रकृति पुरुष और महत्तत्व के भी नियन्ता हैं, सबके संहार में प्रवृत्त रहने वाला गंभीर वेगवाला और सर्दी, गर्मी, बरसात इन तीन भागों वाला जो यह संवत्सर रूपी काल है, वह आपका ही स्वरूप है, इसलिये आप पुरुषोत्तम हैं ॥

त्वत्तः पुमान्समधिगम्य यया स्ववीर्यं धत्ते महांतमिव गर्भममोघवीर्यः । सोऽयं तयाऽनुगत आत्मन आंडकोशं हैमं ससर्ज बहिरावरणैरुपेतम् ॥

अमोघ शक्ति वाले आदि पुरुष ने आपही से शक्ति पाकर और मायाके साथ मिलकर इस जगत के गर्भ रूप महत्तत्व को उत्पन्न कियाहै और महत्तत्व ने भी आपही से शक्ति पाकर उस माया से मिलकर अपने ही स्वरूप में से यह स्वर्ण कैसी कान्तिवाला आवरणोंसहित ब्रह्मांड उत्पन्न कियाहै।

तत्तस्थुषश्च जगतश्च भवानधीशो यन्मायययोत्थगुणविक्रिययोपनीतान । अर्थाञ्जुषन्नपि हृषीकपते न लिप्तो येऽन्ये स्वतः परिहृतादपि बिभ्यति स्म ॥

हे इन्द्रियों के स्वामी ! माया के द्वारा उत्पन्न हुई इन्द्रिय-वृत्तियों से विषय भोग करते हुए भी आप निर्लेप रहते हैं, दूसरे पुरुष विषयों का त्याग करने पर भी उनके पुनर्बन्धन की आशंका से डरा करते हैं, इसलिये ही आप (इस विशेष धर्म के पालन कर्त्ता और) स्थावर जंगमके स्वामी हैं॥१७॥

स्मायावलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमंडलप्रहित सौरतमंत्रशौंडैः । पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनंगबाणैर्यस्येंद्रियं विमथितुं करणैर्न विभ्व्यः ॥१८॥

अपनी मन्द मुसकानसहित चितवनके कटाक्ष द्वारा जतलाये हुए भाव से मन को हरने वाली, भृकुटि-मंडल से प्रेरित संभोग सम्बन्धी विचारों में प्रबल, काम-बाणों और काम-कलाओं के द्वारा जब सोलह सहस्र स्त्रियाँ भी आपके मनको वशमें न करसकीं तब आप निर्लेप ही हैं ॥१८॥

विभ्व्यस्तवामृतकथोदवहास्त्रिलोक्याः पादावनेजसरितः शमलानि हंतुम् । आनुश्रवं श्रुतिभिरंघ्रिजमंगसंगैस्तीर्थद्वयं शुचिषदस्त उपस्पृशंति॥१९॥

इसलिये आपकी अमृत रूपी कथा के जल से भरी हुई कीर्त्ति रूपी नदी और आपके चरणोदक रूपी गङ्गा यह दोनों त्रैलोक के पाप दूर करने को समर्थ हैं, क्योंकि कानों के द्वारा वेदों में गाये हुए आपके यश सुनने से सब पाप नष्ट होजाते हैं और गङ्गा स्नान से भी सब पाप नष्ट होजाते हैं, इसलिये जो धर्मज्ञ हैं वे इन दोनों तीर्थोंका सेवन करते हैं ॥

श्रीबादरायणिरुवाच

इत्यभिष्टूय विबुधैः सेशः शतधृतिर्हरिम् । अभ्यभाषत गोविंदं प्रणम्यांबरमाश्रितः ॥२०॥

श्रीशुकदेवजी बोले–आकाश में खड़े हुए देवताओं सहित ब्रह्माजी तथा महादेवजीने इस तरह स्तुति तथा प्रणाम करके प्रार्थना की ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

भूमेर्भारावताराय पुरा विज्ञापितः प्रभो । त्वमस्माभिरशेषात्मंस्तत्तथैवोपपादितम् ॥२१॥

ब्रह्माजी बोले–हे प्रभु ! हे सर्वात्मन् ! पहले मैं ने भूमि का भार उतारने के लिये आपसे प्रार्थना की थी, तब आपने अवतार धारण करके सब वैसा ही कर दिखलाया ॥२१॥

धर्मश्च स्थापितः सत्सु सत्यसंधेषु वै त्वया । कीर्तिश्च दिक्षु विक्षिप्ता सर्वलोकमलापहा ॥२२॥ अवतीर्य यदोर्वंशे बिभ्रद्रूपमनुत्तमम् । कर्माण्युद्दामवृत्तानि हिताय जगतोऽकृथाः ॥२३॥

आपने सत्य प्रतिज्ञ सज्जनों में धर्म स्थापन किया, सब लोकोंका पाप हरनेवाले यशको दिशाओं में फैलाकर यदुवंश में अवतार धरकर आप सर्वोत्तमरूप धारीने कल्याण करनेके लिये परमपराक्रम वाले चरित्र किये ॥२२॥२३॥

यानि ते चरितानीश मनुष्याः साधवः कलौ । शृण्वंतः कीर्तयंतश्च तरिष्यंत्यंजसा तमः ॥२४॥

हे ईश ! कि जिन चरित्रों को निरन्तर कहने-सुनने से सत्पुरुष कलिकाल में आसानीसे संसार सागर पार हो जाँयगे ॥२४॥

यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम । शरच्छतं व्यतीयाय पंचविंशाधिकं प्रभो ॥२५॥

हे प्रभो ! हे पुरुषोत्तम ! आपको यदुवंश में अवतार लिये हुए एकसौपच्चीस वर्ष होचुकेहैं२५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नाधुना तेऽखिलाधार देवकार्यावशेषितम् ।
कुलं च विप्रशापेन नष्टप्रायमभूदिदम् ॥२६॥

हे सर्वाधार ! अब आपको कोई भी देवताओं का कार्य करने के लिये शेष नहीं है और आपका वंश भी अब विप्र-शापसे निकट भविष्य में नष्ट होने वाला ही है ॥ २६ ॥

ततः स्वधाम परमं विशस्व यदि मन्यसे ।
सलोकाँल्लोकपालान्नः पाहि वैकुंठ किंकरान्॥२७॥

इसलिये यदि आपकी इच्छाहो तो आप अपने वैकुण्ठको पधारिये, हे वैकुण्ठनाथ ! हम आपके सेवकहैं, लोकोंसहित लोकपालोंकी रक्षा कीजिये ॥

श्रीभगवानुवाच

अवधारितमेतन्मे यदात्थ विबुधेश्वर ।
कृतं वः कार्यमखिलं भूभेर्भारोवतारितः ॥२८॥

भगवान् बोले–हे देवेश ! तुम्हारे कहनेके अनुसार मैंने निश्चय करके तुम्हारा काम किया और पृथ्वी का भार उतारा ॥२८॥

यदिदं यादवकुलं वीर्यशौर्यश्रियोद्धतम् ।
लोकं जिघृक्षद्दुर्धं मे वेलयेव महार्णवः ॥२९॥

और वीर्य तथा शौर्यमयी लक्ष्मी से पूर्ण इस यदुवंश को भी कि जो लोकों का नाश करने वालों की भांति उद्धत है इस प्रकार रोक रक्खा है, जैसे मर्यादा से समुद्र रुका हुआ है ॥२९॥

यद्यसंहृत्य दृप्तानां यदूनां विपुलं कुलम् ।
गंतास्म्यनेन लोकोऽयमुद्वेलेन विनंक्ष्यति ॥३०॥

परन्तु जो मैं इस अभिमानी और उच्छृंखल यदुवंश का संहार होदे से पहले स्वधाम को चला जाऊँ तो इस कुलके द्वारा लोकोंका नाश होजायगा॥

इदानीं नाश आरब्धः कुलस्य द्विजशापतः ।
यास्यामि भवनं ब्रह्मन्नेतदंते तवानघ ॥३१॥

हे निष्पाप ! हे ब्रह्माजी ! अभी मैंने ब्राह्मणों से शाप दिलवाकर इस कुलके नाशका आयोजन कर दिया, अब मैं इस कामसे निबटकर तुम्हारे लोकों में होता हुआ वैकुण्ठ जाऊँगा ॥ ३१॥

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तो लोकनाथेन स्वयंभूः प्रणिपत्य तम् ।
सहदेवगणैर्देवः स्वधाम समपद्यत ॥३२॥

श्रीशुकदेवजी बोले–जब भगवान् ने इस तरह कहा तब ब्रह्माजी उनको प्रणाम करके सब देवताओं के साथ अपने लोक को लौट गये ॥ ३२ ॥

अथ तस्यां महोत्पातान्द्वारवत्यां समुत्थितान् ।
विलोक्य भगवानाह यदुवृद्धान्समागतान् ॥३३॥

इसके पीछे द्वारका में बड़े-बड़े उत्पात मचने लगे, उन्हें देखकर इकट्ठे किये हुए वृद्ध-वृद्ध यादवों से भगवान् ने कहा ॥३३॥

श्रीभगवानुवाच

एते वै सुमहोत्पाता युत्तिष्ठंतीह सर्वतः ।
शापश्च नः कुलस्यासीद्ब्राह्मणेभ्यो दुरत्ययः॥३४॥

श्रीभगवान् बोले–इस द्वारकामें बड़े २ उत्पात होने लगेहैं और अपने वंशको ब्राह्मणों का दुस्त्यज शाप भी हुआ है ॥३४॥

न वस्तव्यमिहास्माभिर्जिजीविषुभिरार्यकाः ।
प्रभासं सुमहत्पुण्यं यास्यामोऽद्यैव मा चिरम्३५॥

इसलिये हे आर्यो ! हम लोगों को यहाँ रहना उचित नहीं, क्योंकि हम लोग अभी जीना चाहतेहैं इसलिये हम लोगोंको आजही विलम्ब किये बिना महा पवित्र प्रभास क्षेत्र में चलदेना चाहिये ॥३५॥

यत्र स्नात्वा दक्षशापाद्गृहीतो यक्ष्मणोडुराट् ।
विमुक्तः किल्बिषात्सद्यो भेजे भूयः कलोदयम्३६॥

कि जिस क्षेत्र में स्नान करने से दक्ष-शाप के कारण क्षय रोग ग्रस्त चन्द्रमा पाप से छूट गया और उसने फिरसे कलाओंकी वृद्धि प्राप्त करली ॥

वयं च तस्मिन्नाप्लुत्य तर्पयित्वा पितॄन्सुरान् ।
भोजयित्वोशिजो विप्रान्नानागुणवतांऽधसा ॥३७॥
तेषु दानानि पात्रेषु श्रद्धयोप्त्वा महांति वै ।
वृजिनानि तरिष्यामो दानैर्नौभिरिवार्णवम्॥३८॥

हम लोग भी वहाँ स्नान करके देवता और पितरों का तर्पण तथा ब्राह्मणों को अनेक गुणोंवाले अन्न का भोजन कराके. उन सुपात्र ब्राह्मणों रूपी क्षेत्र में श्रद्धा पूर्वक महादान रूपी बीज बोकर सब दुःखों से इस प्रकार तिर जाँयगे, जैसे नौका द्वारा समुद्र को तिर जाते हैं ॥३७॥३८॥

श्रीशुक उवाच

एवं भगवताऽऽदिष्टा यादवाः कुलनंदन ।
गंतुं कृतधियस्तीर्थं स्यंदनान्समयूयुजन् ॥३९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीशुकदेवजी बोले-हे कुरुनंदन ! जब भगवान् ने इस प्रकार आज्ञा दी तब यादव लोग तीर्थजाने के लिये रथ तैयार करने लगे ॥३९॥

तन्निरीक्ष्योद्धवो राजञ्छ्रुत्वा भगवतोदितम् ।
दृष्ट्वाऽरिष्टानि घोराणि नित्यं कृष्णमनुव्रतः॥४०॥
विविक्त उपसंगम्य जगतामीश्वरेश्वरम् ।
प्रणम्य शिरसा पादौ प्रांजलिस्तमभाषत ॥४१॥

हे राजन् ! यह दशा और द्वारका के उत्पातों को देखकर तथा भगवान् के वचन सुनकर सदैव उन्हीं का अनुसरण करने वाले उद्धवजी ने प्रभुसे एकान्त में मिलकर मस्तक झुकाते हुए प्रणाम कर के तथा हाथ जोड़कर इस प्रकार विनयकी ४०।४१

उद्धव उवाच

देवदेवेश योगेश पुण्यश्रवणकीर्तन ।
संहृत्यैतत्कुलं नूनं लोकं संत्यक्ष्यते भवान् ।
विप्रशापं समर्थोपि प्रत्यहन्न यदीश्वरः ॥४२॥

उद्धवजी बोले-हे देवदेवेश्वर ! हे योगेश्वर ! हे श्रवण-कीर्त्तन द्वारा पवित्र करने वाले ! ऐसा जान पड़ता है कि आप इस वंश का संहार करके अब अवश्यही मर्त्य-लोक को त्याग देंगे, क्योंकि ईश्वर होने के कारण सामर्थ्य रखते हुए भी आप ने ब्राह्मणों की शाप से मोक्ष होने के लिये कोई उपाय नहीं किया ॥४२॥

नाहं तवांघ्रिकमलं क्षणार्धमपि केशव ।
त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामपि ॥४३॥

परन्तु हे नाथ ! हे केशव ! मैं आपके चरणारविंद आधे क्षण भी नहीं त्याग सकता, इसलिये अपने धाम मुझे भी ले चलिये ॥४३॥

तव विक्रीडितं कृष्ण नृणां परममंगलम् ।
कर्णपीयूषमास्वाद्य त्यजत्यन्यस्पृहां जनः ॥४४॥

हे कृष्ण ! मनुष्योंके महा मंगलरूप और कानों को अमृत के समान लगने वाले आपके चरित्र का स्वाद लेने से लोगों की और सब प्रकार की तृष्णा छूट जाती है ॥४४॥

शय्यासनाटनस्थानस्नानक्रीडाशनादिषु ।
कथं त्वां प्रियमात्मानं वयं भक्तास्त्यजेमहि॥४५॥

जिसने सोते, बैठते, चलते, खड़े रहते; नहाते, क्रीड़ा या भोजन करते आदि सब समयों में आप की सेवा की है, ऐसा मैं परम प्रिय और आत्मरूप आपका साथ किस प्रकार छोड़ सकता हूँ ॥४५॥

त्वयोपभुक्तस्रग्गंधवासोलंकारचर्चिताः ।
उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि ॥४६॥

आपके भोगे हुए चन्दन, माला, वस्त्र और अलङ्कारों को प्रसाद रूप धारण करने वाले और आपके जूठन को खाने वाले हम दास वृन्द आप की माया से अवश्य ही पार होजाँयगे ॥४६॥

वाताशना य ऋषयः श्रमणा ऊर्ध्वमंथिनः ।
ब्रह्माख्यं धाम ते यांति शांताः संन्यासिनोऽमलाः॥

हे परम योगिन् ! वायु का भक्षण करने वाले तप का परिश्रम करने वाले, ब्रह्मचर्य पालने वाले, शान्त और निर्मल सन्यासी पुरुष तप आदि में श्रम भोगकर बड़ी कठिनता से आपके ब्रह्म रूप धाम को प्राप्त होते हैं ॥४७॥

वयं त्विह महायोगिन् भ्रमंतः कर्मवर्त्मसु ।
त्वद्वार्तया तरिष्यामस्तावकैर्दुस्तरं तमः ॥४८॥

परन्तु हम कर्म-मार्गमें भटकने वाले लोग आप के भक्तों के साथ आपकी वार्त्तामात्र करके ही इस दुस्तर संसार से पार होजाँयगे ॥४८॥

स्मरंतः कीर्तयंतस्ते कृतानि गदितानि च ।
गत्युत्स्मितेक्षणक्ष्वेलिर्यन्नृलोकविडंबनम् ॥४९॥

आपके चरित्र, बात-चीत, चाल, उत्तम मन्द मुसकान, चितवन और मनुष्य-लीला के अनुसार परिहास आदि का स्मरण और कीर्त्तन करने से ही हम तिर सकते हैं, इसलिये माया के भय से मैं यह प्रार्थना नहीं करता हूँ वरन् इसलिये करता हूँ कि मुझसे आपका वियोग सहन न होगा ॥४९॥

श्रीशुक उवाच

एवं विज्ञापितो राजन् भगवान् देवकीसुतः ।
एकांतिनं प्रियं भृत्यमुद्धवं समभाषत ॥५०॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! इस प्रकार उद्धवजी ने जब अपना विचार प्रकट किया तब देवकीनन्दन भगवान् ने अपने प्यारे और सच्चे भक्त उद्धव से कहा ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सातवां अध्याय

(श्रीकृष्णजी का उद्धवजी को आत्म-ज्ञान समझाना)

श्रीभगवानुवाच

यदात्थ मां महाभाग तच्चिकीर्षितमेव मे ।
ब्रह्मा भवो लोकपालाः स्वर्वासं मेऽभिकांक्षिणः १॥

श्रीभगवान् बोले–हे उद्धव ! तुम जो कहते हो मेरी वही करनेकी इच्छाहै, ब्रह्मा, शिव; लोकपाल और देवता मेरे वैकुंठ-वासकी इच्छा कररहे हैं॥१॥

मयानिष्पादितं ह्यत्र देवकार्यमशेषतः ।
तदर्थमवतीर्णोऽहमंशेन ब्रह्मणार्थितः ॥ २ ॥

ब्रह्माजी की प्रार्थना से मैं जिस काम के लिये अपने अंश सहित प्रकट हुआ था, वह देवताओं का सारा काम पूर्ण कर चुका हूँ ॥२॥

कुलं वै शापनिर्दग्धं नंक्ष्यत्यन्योन्यविग्रहात् ।
समुद्रः सप्तमेऽह्येतां पुरीं च प्लावयिष्यति ॥ ३ ॥

शापके द्वारा जला हुआ यह वंश आपसी कलह से नष्ट होजायगा और इस पुरी को सातवें दिन समुद्र डुबा देगा ॥३॥

तर्ह्येवायं मया त्यक्तो लोकोऽयं नष्टमंगलः ।
भविष्यत्यचिरात्साधो कलिनापि निराकृतः॥ ४ ॥

हे साधु ! मैं ज्योंही इस लोकका त्याग करूंगा त्योंही कलियुग इसे अत्यधिक दबा लेगा और समस्त मङ्गल नष्ट होजायेंगे ॥४॥

न वस्तव्यं त्वयैवेह मया त्यक्ते महीतले ।
जनोऽधर्मरुचिर्भद्र भविष्यति कलौ युगे ॥ ५ ॥

हे उद्धव ! मेरी त्यागी हुई इस पृथ्वी पर तुम भी न रहना, क्योंकि कलियुग में लोगों की अधर्म में प्रीति होजायगी ॥५॥

त्वं तु सर्वं परित्यज्य स्नेहं स्वजनबंधुषु ।
मय्यावेश्य मनः सम्यक् समदृग् विचरस्व गाम् ६॥

इसलिये तुम भी स्वजन और बन्धुओंसे स्नेह तोड़कर मुझमें भलीभांति मन लगाये हुए समदर्शी बनकर पृथ्वी पर विचरण करो ॥६॥

यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः ।
नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि माया मनोमयम् ॥ ७ ॥

मन, वाणी, नेत्र और श्रवण आदि इन्द्रियों के द्वारा ज्ञात होने वाला यह संसार सब प्रकार से मनोमय होने के कारण माया रूप और क्षण-भंगुर है, इस प्रकार समझो ॥७॥

पुंसोऽयुक्तस्य नानार्थो भ्रमः स गुणदोषभाक् ।
कर्माकर्मविकर्मेति गुणदोषधियो भिदा ॥ ८ ॥

विक्षिप्त मन वाले पुरुष को वेद का अर्थ कई प्रकार से दीखता है, इसलिये वे भ्रम में पड़े रहते हैं, कर्म-अकर्म और विकर्म का गुण-दोष भेद-बुद्धि वाले को ही है, समदर्शी आत्मज्ञानी को नहीं ॥८॥

तस्माद्युक्तेंद्रियग्रामो युक्तचित्त इदं जगत् ।
आत्मनीक्षस्व विततमात्मानं मय्यधीश्वरे ॥ ९ ॥

इसलिये तुम सब इन्द्रियों और चित्तको वश में करके इस अपार संसार को अपने ही में देखो और आत्मा को ब्रह्म रूप मानो ॥९॥

ज्ञानविज्ञानसंयुक्त आत्मभूतः शरीरिणाम् ।
आत्मानुभवतुष्टात्मा नांतरायैर्विहन्यसे ॥१०॥

जब तुम वेदके अभिप्राय का निश्चय और उस के अर्थके अनुसार अनुभवका मेल मिलाकर आत्म ज्ञान से ही सन्तुष्ट रहोगे और देवता आदिकों को भी आत्मरूप जानोगे तब कोई विघ्न न करेगा, जब तक आत्म ज्ञान न होजाय तब तक वर्णाश्रम के अनुसार ही काम करना चाहिये, अनुभव होजाने पर विघ्नों से कुछ नहीं होता ॥१०॥

दोषबुद्ध्योभयातीतो निषेधान्न निवर्तते ।
गुणबुद्ध्या च विहितं न करोति यथार्भकः॥११॥

जैसे बालक संकल्प-विकल्प रहित होकर भी किसी कामको करताहै और किसीको नहीं करता, वैसे ही गुण-दोष के भेद से रहित पुरुष जो कुछ भी निषिद्ध कर्म करना छोड़ देताहै, वह उसके दोष विचार कर नहीं छोड़ता, वरन् अपने पूर्व संस्कार से ही छोड़ देता है और इसी कारण वह वेदोक्त कर्म भी करता है ॥११॥

सर्वभूतसुहृच्छांतो ज्ञानविज्ञाननिश्चयः ।
पश्यन् मदात्मकं विश्वं न विपद्येत वै पुनः॥१२॥

इस भांति ज्ञान-विज्ञानका निश्चय करलेनेवाला प्राणी मात्र का स्नेही शान्त और जगत् मात्र को ब्रह्म रूप देखता हुआ पुरुष फिर आवागमन में नहीं पड़ता ॥१२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीशुक उवाच

इत्यादिष्टो भगवता महाभागवतो नृप।
उद्धवः प्रणिपत्याह तत्त्वजिज्ञासुरच्युतम् ॥१३॥

श्रीशुकदेवजीबोले–हे राजन्! इस प्रकार भगवान् ने जब आज्ञा की, तब महा वैष्णव उद्धवजीने तत्व समझने के लिये प्रणाम करके इस प्रकार से विनय की ॥१३॥

उद्धव उवाच

योगेश योगविन्यास योगात्मन योगसंभव।
निःश्रेयसाय मे प्रोक्तस्त्यागः संन्यासलक्षणः॥१४॥

उद्धवजी बोले–हे योगेश्वर! हे योग के जानने वाले पुरुषों के गुप्त निधिरूप! हे योगरूप! हे योगोत्पादक! आपने मेरे कल्याणके लिये जो सन्यास रूप त्याग कहा है वह केवल अपनी महिमा का गौरव रखतेहुए कहाहै, मैं इसका अधिकारी नहींहूँ।

त्यागोऽयं दुष्करो भूमन् कामानां विषयात्मभिः।
सुतरां त्वयि सर्वात्मन्नभक्तैरिति मे मतिः ॥१५॥

हे सर्वव्यापक! हे सर्वात्मन्! यह विषयों का त्याग करना सकामी पुरुषों को कठिन है और जो आपके भक्त नहीं हैं उनको तो महान् ही कठिन है, मैं ऐसा मानता हूँ ॥१५॥

सोऽहं ममाहमिति मूढमतिर्विगाढस्त्वन्मायया विरचितात्मनि सानुबंधे। तत्त्वंजसा निगदितं भवता यथाहं संसाधयामि भगवन ननु शाधि भृत्यम् ॥१६॥

आपने मुझसे त्याग करने के लिये कहा है, पर मैं तो मूढ़ बुद्धि और आपकी माया द्वारा रची हुई देह आदि की अहंता-ममता में फंसा हूँ; इसलिये हे भगवन्! जिस प्रकार मैं आपकी दी हुई शिक्षा को समझकर आसानी के साथ पालन कर सकूं वैसे रूप से मुझे उपदेश कीजिये ॥१६॥

सत्यस्य ते स्वदृश आत्मन आत्मनोऽन्यं वक्तार मीश विबुधेष्वपि नानुचक्षे। सर्वे विमोहितधियस्तव माययेमे ब्रह्मादयस्तनुभृतो बहिरर्थभावाः ॥१७॥

हे ईश्वर! इस समानरूप, स्वयं प्रकाश आत्मा के विषय में समझाने वाला आपके सिवा कोई देवताओं में भी मुझे नहीं दीखता, क्योंकि यह ब्रह्मादिक देहधारी तो आपकी माया से मोहित हैं और विषयों को आपसे भिन्न मानते हैं ॥१७॥

तस्माद् भवंतमनवद्यमनंतपारं सर्वज्ञमीश्वरमकुंठविकुंठधिष्ण्यम्। निर्विण्णधीरहमु ह व्रजिनाभितप्तो नारायणं नरसखं शरणं प्रपद्ये ॥१८॥

कितने ही दुष्ट स्वभाव वाले हैं, कितनेही सेवा करने पर भी फल देते समय नष्ट होजाते हैं, कई एक अज्ञानी हैं, कोई रक्षा करनेमें असमर्थहैं, कोई कोई अपने स्थान से भ्रष्ट होजाते हैं, परन्तु आप तो निर्दोष, समस्त देश-काल में अविनाशी, सर्वज्ञ रक्षा करने में समर्थ और काल आदि की बाधासे रहित वैकुण्ठवासीहो, इसलिये मैं विषयोंसे खेदित तथा दुःखों से संतप्त आप नरके मित्ररूप नारायण के शरण आया हूँ ॥ १८ ॥

श्रीभगवानुवाच

प्रायेण मनुजा लोके लोकतत्त्वविचक्षणाः।
समुद्धरंति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात् ॥१९॥

श्रीभगवान् बोले–बहुधा इस जगत् में लोकतत्व की परीक्षा करने वाले मनुष्य आपही अपने आत्मा को विषय-वासनाओं में से निकाल लेते हैं, गुरु की कुछ भी अपेक्षा नहीं करते ॥१९॥

आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः।
यत् प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोऽसावनुविंदते ॥२०॥

पशु आदिके शरीरमें भी हित-अनहितका ज्ञान होने के लिये आप अपनाही गुरु रूप होताहै और मनुष्य देह में तो होताही है, क्योंकि मनुष्य-शरीर में प्रत्यक्ष और अनुमानद्वारा अपना स्वरूपजानना आसान पड़ता है ॥२०॥

पुरुषत्वे च मां धीराः सांख्ययोगविशारदाः।
आविस्तरां प्रपश्यंति सर्वशक्त्युपबृंहितम् ॥२१॥

पशु आदि की अपेक्षा मनुष्य में ज्ञान आदि सभी शक्तियाँ अत्यन्त अधिक होती हैं, इसलिये मनुष्य-देहमें आत्मा अधिक प्रत्यक्षहै, ऐसा सांख्य और योग में निपुण बुद्धि वाले धीर पुरुषों ने निश्चय किया है ॥२१॥

एकद्वित्रिचतुष्पादो बहुपादस्तथाऽपदः।
बह्व्यः संति पुरः सृष्टास्तासां मे पौरुषी प्रिया॥२२॥

एक, दो, तीन, चार पैर वाले, बहुत से पैरों वाले और बिना पैर वाले अनेकानेक शरीर रचे गये हैं, उनमें से मुझे मनुष्यका शरीर प्रियहै॥२२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अत्र मां मार्गयंत्यद्धा युक्ता हेतुभिरीश्वरम् ।
गृह्यमाणैर्गुणैर्लिंगैरग्राह्यामनुमानतः ॥२३॥

इस मनुष्य-देह में जो सावधान हैं वे अहङ्कार आदि से रहित होकर मुझे प्रत्यक्ष ढूंढते हैं और वे यह अनुमान बाँधतेहैं कि बुद्धि आदिका प्रकाश किसी स्वप्रकाश रूप पदार्थ (आत्मा) के बिना नहीं हो सकता ॥२३॥

अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ।
अवधूतस्य संवादं यदोरमिततेजसः ॥२४॥

अपने आप उदाहरण लेकर विचार करने से भी ज्ञान प्राप्त होजाताहै, इसके विषयमें गुरु दत्तात्रेय और परम तेजस्वी राजा यदु का संवाद रूप इतिहास कहा जाता है ॥२४॥

अवधूतं द्विजं कंचित् चरंतमकुतोभयम् ।
कविं निरीक्ष्य तरुणं यदुः पप्रच्छ धर्मवित् ॥२५॥

अवधूत वेषधारी, परम विद्वान् और सदैव युवावस्था वाले दत्तात्रेयजी सदैव निर्भय रीति से लोक में विचरा करतेथे, उनको देखकर राजा यदु ने इस प्रकार प्रश्न किया ॥ २५॥

यदुरुवाच

कुतो बुद्धिरियं ब्रह्मन्नकर्तुः सुविशारदा ।
यामासाद्य भवाँल्लोकं विद्वांश्चरति बालवत् ॥२६॥

यदु बोले–हे ब्रह्मन् ! आप अकर्त्ता हैं, आपको ऐसी सब लोकोंसे विचित्र और निपुण बुद्धिकहाँ से प्राप्त हुई कि जिसके कारण आप विद्वान् होकर भी बालक की नाईं लोकमें विचरा करते हो ।२६।

प्रायो धर्मार्थकामेषु विवित्सायां च मानवाः ।
हेतुनैव समीहंते आयुषो यशसः श्रियः ॥२७॥

मनुष्य बहुधा धर्म, अर्थ, काम और आत्मा के विचार में लगे रहतेहैं और उन्हें आयुष्य; यश या लक्ष्मी ही की कामना रहती है ॥२७॥

त्वं तु कल्पः कविर्दक्षः सुभगो मृतभाषणः ।
न कर्ता नेहसे किंचिज्जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥२८॥

परन्तु आप तो समर्थ, ज्ञानवान्; चतुर,सुन्दर और अमृत के समान मधुर भाषण करने वाले हो कर भी जड़, उन्मत्त और पिशाच की भांति न तो कुछ कामही करतेहो और न कुछ इच्छाही रखतेहो॥

जनेषु दह्यमानेषु कामलोभदवाग्निना ।
न तप्यसेऽग्निना मुक्तो गंगांभःस्थ इव द्विपः ॥२९॥

काम और लोभरूपी दावाग्नि में जलते हुए लोगों में आप अग्नि से निवृत्त होकर गङ्गा-जल में खड़े हुए हाथी की भांति किसी प्रकार के भी ताप में ग्रस्त नहीं हो, भला ऐसा परमानन्द आपको कहाँ से मिला ? ॥२९॥

त्वं हि नः पृच्छतां ब्रह्मन्नात्मन्यानंदकारणम् ।
ब्रूहि स्पर्शविहीनस्य भवतः केवलात्मनः ॥३०॥

हे ब्रह्मन् ! आप विषय-भोग और स्त्री-पुत्रादि से रहित रहनेवाले के हृदय में ऐसा आनन्द किस कारण से रहता है ? मैं वह पूछना चाहता हूँ. आप कहिये ॥३०॥

श्रीभगवानुवाच

यदुनैवं महाभागो ब्रह्मण्येन सुमेधसा ।
पृष्टः सभाजितः प्राह प्रश्रयावनतं द्विजः ॥३१॥

श्रीभगवान् बोले–जब ब्राह्मणों के भक्त और सुन्दर बुद्धि वाले राजा यदु ने इस प्रकार आदर पूर्वक प्रश्नकिया तब गुरु दत्तात्रेयजी ने उन विनम्र राजा से कहा ॥ ३१ ॥

ब्राह्मण उवाच

संति मे गुरवो राजन्बहवो बुद्ध्युपाश्रिताः ।
यतो बुद्धिमुपादाय मुक्तोऽटामीह तान्शृणु ॥३२॥

दत्तात्रेयजी बोले–हे राजन् ! मेरे बुद्धि ही से ग्रहण किये हुए गुरु बहुत से हैं. जिनसे शिक्षा पाकर मुक्त दशा में मैं विचरता हूँ, उनके नाम मैं कहता हूँ सो सुनो ॥३२॥

पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चंद्रमा रविः ।
कपोतोऽजगरः सिंधुः पतंगो मधुकृद्गजः ॥३३॥
मधुहा हरिणो मीनः पिंगला कुररोऽर्भकः ।
कुमारी शरकृत्सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत् ॥३४॥
एते मे गुरवो राजंश्चतुर्विंशतिराश्रिताः ।
शिक्षावृत्तिभिरेतेषामन्वशिक्षमिहात्मनः ॥३५॥

पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्र,सूर्य, कपोत, अजगर, समुद्र, पतंग, शहद की मक्खी, हाथी, शहद ले जाने वाला, हिरन, मछली,पिंगला नाम की वेश्या, कुरर पक्षी, बालक, कुमारी, बाण बनाने वाला, सर्प, मकड़ी और भंवरी–हे राजन् ! इन चौबीसोंको मैंने गुरु बनायाहै; इनके आचरणों से मैंने अपने लिये शिक्षा ली है ॥३३॥३४॥३५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यतो यदनुशिक्षामि यथा वा नाहुषात्मज ।
तत् तथा पुरुषव्याघ्र निबोध कथयामि ते ॥३६॥

हे ययातिनन्दन यदु! हे पुरुषसिंह! मैंने जिस से जिस प्रकार शिक्षा लीहै सो मैं कहताहूँ सुनो॥

भूतैराक्रम्यमाणोऽपि धीरो दैववशानुगैः ।
तद्विद्वान्न चलेन्मार्गादन्वशिक्षं क्षितेर्व्रतम् ॥३७॥

पहले मैंने पृथ्वी से यह सीखा है कि जिस प्रकार उसे सभी प्राणी रोंधा करते हैं परन्तु वह अपने नियम से विचलित नहीं होती वैसे ही दैव के आधीन रहने वाला प्राणी यदि धीर पुरुष को दुःख दे तो उसकी विवशता की गति को जानने वाले उस पुरुष को भी अपने नियम से विचलित न होना चाहिये ॥३७॥

शश्वत्परार्थसर्वेहः परार्थैकांतसंभवः ।
साधुः शिक्षेत भूभृत्तो नगशिष्यः परात्मताम्॥३८॥

पृथ्वी रूप पर्वतसे यह सीखाहै कि जैसे पर्वत वृक्ष, तृण और झरने आदि केवल परोपकार के लिये करता है और उसका जन्म ही परोपकार के लिये होता है, वैसे ही साधु पुरुष को अपने सारे काम तथा जीवन परोपकार में लगा देने चाहिये, इसी प्रकार पृथ्वी रूप वृक्षों से यह शिक्षा पाई है कि वृक्ष निरन्तर पराधीन रहकर अपना निर्वाह कर लेता है, वैसे ही साधु पुरुष को सब कुछ करते हुए अपना जीवन निर्वाह करना चाहिये३८॥

प्राणवृत्त्यैव संतुष्येन्मुनिर्नैवेंद्रियप्रियैः ।
ज्ञानं यथा न नश्येत नावकीर्येत वाङ्मनः॥३९॥

प्राण वायु जैसे केवल आहारसे सन्तुष्टरहता है और इन्द्रियों के भोगों को नहीं चाहता, ऐसेही साधु पुरुष को जैसा भी आहार प्राप्त हो, उसी में सन्तुष्ट रहना चाहिये, अन्यथा चित्त और वचन विक्षिप्त होने से ज्ञान की सिद्धि नहीं होती, यह विद्या मैंने प्राणवायु से सीखी है ॥३९॥

विषयेष्वाविशन्योगी नानाधर्मेषु सर्वतः ।
गुणदोषव्यपेतात्मा न विषज्जेत वायुवत् ॥४०॥

जैसे वायु बनमें रहने पर प्रसन्न नहीं होती और अग्नि में रहने पर अप्रसन्नभी नहीं होती, त्यों ही गुण-दोष रहित बुद्धिवाले योगीको भी शीतोष्ण आदि विषयों में से अनुकूल विषय पाकर प्रसन्न और प्रतिकूल विषय पाकर अप्रसन्न न होना चाहिये ॥ ४० ॥

पार्थिवेष्विह देहेषु प्रविष्टस्तद्गुणाश्रयः ।
गुणैर्न युज्यते योगी गंधैर्वायुरिवात्मदृक् ॥४१॥

जैसे वायु सुगन्धि और दुर्गन्धिमयी प्रतीत होती हुई भी दोनों विकारों से शून्य है, त्यों ही आत्मा पृथ्वी के विकार रूप देहादिक में रहने से जन्म-मरण आदि धर्मों वाला प्रतीत होता हुआभी इन सब धर्मों से परे है, यह मैं बाहरी वायु से सीखा हूँ ॥४१॥

अंतर्हितश्च स्थिरजंगमेषु ब्रह्मात्मभावेन समन्वयेन । व्याप्त्याऽव्यवच्छेदमसंगमात्मनो मुनिर्नभस्त्वं विततस्य भावयेत् ॥४२॥

जैसे आकाश सबमें व्याप्त होकर भी असंग है और वह परिच्छेद रहित भी है, वैसे ही योगी पुरुष ब्रह्म-स्वरूप की भावना से अपने आत्मा को स्थावर-जङ्गम से सर्व अंश में मिला हुआ होने पर भी असंग और परिच्छेद-रहित विचार करे ॥४२॥

तेजोऽबन्नमयैर्भावैर्मेघाद्यैर्वायुनेरितैः ।
न स्पृश्यते नभस्तद्वत्कालसृष्टैर्गुणैः पुमान् ॥४३॥

जैसे आकाश का वायु प्रेरित और आने-जाने वाले मेघ तथा रजका स्पर्श नहीं होता, ऐसे ही काल से रचे हुए पृथ्वी जल और तेज मय आवागमनवाले पदार्थोंका जिसे स्पर्श न हो, उसे योगी पुरुष जानना चाहिये, यह मैंने आकाशसे सीखाहै॥

स्वच्छः प्रकृतितः स्निग्धो माधुर्यस्तीर्थभूर्नृणाम् ।
मुनिः पुनात्यपां मित्रमीक्षोपस्पर्शकीर्तनैः ॥४४॥

जैसे जल सरस, मधुर, मनुष्यों की पवित्रता का स्थान और दर्शन, स्पर्श तथा कीर्त्तन से भी शुद्ध करने वाला है, ऐसे ही योगी को स्वच्छ, सरस स्वभाव, मधुर भाषण करने वाला, मनुष्यों के पवित्र होने का स्थान और दर्शन-स्पर्शन तथा कीर्त्ति से ही शुद्ध करने वाला होना चाहिये, यह मैंने जल से सीखा है ॥४४॥

तेजस्वी तपसा दीप्तो दुर्धर्षोदरभाजनः ।
सर्वभक्षोऽपि युक्तात्मा नादत्ते मलमग्निवत् ॥४५॥

जैसे अग्नि तेजस्वी, प्रताप से दीप्त, अत्यन्त दुःसह और केवल पेटही का पात्र रखनेवाला होने के कारण सब कुछ भक्षण करने पर भी निर्दोष रहता है, वैसे ही योगी भी ज्ञान की अधिकता से तेजस्वी तप से दीप्त, मोह के प्रभावसे निर्लेप और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

केवल पेट का पात्र होने से प्रत्येक पदार्थका भक्षण करने वाला होने पर भी निर्दोष रहताहै ॥४५॥

क्वचिच्छन्नः क्वचित् स्पष्ट उपास्यः श्रेय इच्छताम् ।
भुंक्ते सर्वत्र दातृणां दहन्नागुत्तराशुभम् ॥४६॥

फिर जैसे अग्नि कहीं गुप्त रूप से और कहीं प्रकट रीति से कल्याण चाहने वालों को उपासनीय है और हवि देने वालों के भूत भविष्यत के पापों को भस्म करके पराई इच्छा से सब स्थानों पर भक्षण करताहै, ऐसेही योगीको होनाचाहिये॥

स्वमायया सृष्टमिदं सदसल्लक्षणं विभुः ।
प्रविष्ट ईयते तत्तत्स्वरूपोऽग्निरिवैधसि ॥४७॥

जैसे अग्नि एक रूप होनेपर भी ईंधनकी न्यूनाधिकता से थोड़ा या बहुत दीखता है, वैसे ही आत्मा एक रूप होने पर भी अपनी अविद्या से उत्पन्न कियेहुए उच्च-नीच भेदवाले शरीरोंमें प्रविष्ट होकर ऊंच-नीच प्रतीत होता है, यह मैंने अग्निसे सीखा है ॥४७॥

विसर्गाद्याः श्मशानांता भावा देहस्य नात्मनः ।
कलानामिव चंद्रस्य कालेनाव्यक्तवर्त्मना ॥४८॥

जैसे चन्द्र-मंडल सदा पूर्ण और एक रूप है और घटना-बढ़ना या क्षय (सूर्यके कारण) उसकी कलाओं का ही होता है, चन्द्रमा का नहीं, ऐसेही जन्मसे मरणतक छहों विकार गुप्तरूपसे चलतेहुए काल के कारण देहको ही होते हैं आत्माको नहीं॥

कालेन ह्योघवेगेन भूतानां प्रभवाप्ययौ ।
नित्यावपि न दृश्येते आत्मनोऽनेर्यथार्चिषाम् ४९॥

जैसे अग्नि की ज्वालायें क्षण-क्षण पर प्रकट या लोप हुआ करती हैं और दृष्टि नहीं आतीं वैसे ही कालरूपी नदी के वेग से इस देह का ही जन्म मरण होताहै, ऐसा जानकर योगीको विरक्त रहना चाहिये, इतनी बात अग्नि से सीखी है ॥४९॥

गुणैर्गुणानुपादत्ते यथाकालं विमुंचति ।
न तेषु युज्यते योगी गोभिर्गा इव गोपतिः ॥५०॥

जैसे सूर्य अपनी किरणों से जलको सोखकर वर्षा-काल में उसी को छोड़ देता है, वैसेही योगी को इन्द्रिय-अपेक्षित पदार्थ ग्रहण करना चाहिये और किसी के माँगने पर उन्हें ममता छोड़ कर तत्काल दे देना चाहिये ॥५०॥

बुध्यते स्वेन भेदेन व्यक्तिस्थ इव तद्गतः ।
लक्ष्यते स्थूलमतिभिरात्मा चावस्थितोऽर्कवत् ५१॥

फिर सूर्य जैसे आकाश में एक ही स्वरूप से रहते हैं, वहाँ वे भिन्न २ दिखाई नहीं देते, परन्तु जल-घट आदि में अपने प्रतिबिंब से भिन्न दीखतेहैं इसी प्रकार एक स्वरूप वाला आत्मा देहोंमें स्थूल बुद्धि वालों को ईश्वर होने पर भी भिन्न २ दिखाई देता है-ऐसा योगी पुरुष को विचारना चाहिये-ये शिक्षा सूर्य से मिलती है ॥५१॥

नातिस्नेहः प्रसंगो वा कर्तव्यः क्वापि केनचित् ।
कुर्वन् विंदेत संतापं कपोत इव दीनधीः ॥५२॥

किसी पुरुष को किसी जगह अधिक प्रीति या संभोग आदि में अत्यन्त आसक्त न होना चाहिये क्योंकि इससे कपोत (कबूतर) की भांति दीन बन कर दुःखी होना पड़ता है ॥५२॥

कपोतः कश्चनारण्ये कृतनीडो वनस्पतौ ।
कपोत्या भार्यया सार्धमुवास कतिचित् समाः॥५३

कोई एक कबूतर बनके किसी वृक्षमें घोंसला बनाकर अपनी स्त्री कपोती के साथ कई बरसतक निवास करता रहा ॥५३॥

कपोतौ स्नेहगुणितहृदयौ गृहधर्मिणौ ।
दृष्टिं दृष्ट्यांगमंगेन बुद्धिं बुद्ध्या बबंधतुः ॥५४॥

स्नेह में बंधे हुए हृदय वाले दम्पति ने एक दूसरे की आँखसे आँख, अङ्ग से अङ्ग और बुद्धि के साथ बुद्धि बाँध रक्खी थी ॥ ५४ ॥

शय्यासनाटस्थानवार्ताक्रीडाशनादिकम् ।
मिथुनीभूय विस्रब्धौ चेरतुर्वनराजिषु ॥५५॥

ये दोनों शयन,बैठना, चलना, खड़े होना,बात चीत, रमण और भोजन आदि में निशंक होकर साथ २ ही बनकी गलियों में बिचरा करते थे॥५५॥

यंयं वांछति सा राजंस्तर्पयंत्यनुकंपिता ।
तंतं समनयत् कामं कृच्छ्रेणाप्यजितेंद्रियः ॥५६॥

हे राजन् ! कपोत को प्रसन्न रखती और उस की प्रेम-पात्री बनी हुई वह कपोतिनी जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करतीथी उसी वस्तुको वह कपोत दुःख उठाकर भी ला देता था ॥५६॥

कपोती प्रथमं गर्भं गृह्णती काल आगते ।
अंडानि सुषुवे नीडे स्वपत्युः सन्निधौ सती ॥५७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उस पतिव्रता कपोतिनी के पहली बार गर्भ रहा और उसने अपने पति के पास ही घोंसले में अण्डे दिये ॥५७॥

तेषु काले व्यजायंत रचितावयवा हरेः ।
शक्तिभिर्दुर्विभाव्याभिः कोमलांगतनूरुहाः ॥५८॥

उन जल से भरे हुए अंडों में यथा समय भगवान् की अचिंत्य माया-शक्ति से कोमल अङ्ग तथा रोम वाले बच्चे उत्पन्न हुए ॥५८॥

प्रजाः पुपुषतुः प्रीतौ दंपती पुत्रवत्सलौ ।
शृण्वंतौ कूजितं तासां निर्वृतौ कलभाषितैः॥५९॥

प्रसन्न चित्त तथा पुत्रों पर प्रेम करने वाले वे स्त्री-पुरुष अपने बालकों का भरण-पोषण करते हुए उनके तोतले और प्रिय लगने वाले शब्दों से सुख पाते थे ॥ ५९ ॥

तासां पतत्रैः सुस्पर्शैः कूजितैर्मुग्धचेष्टितैः ।
प्रत्युद्गमैरदीनानां पितरौ मुदमापतुः ॥६०॥

इस आनन्द में रहते हुए उन बच्चों के कोमल कोमल पंख, बोली और बालकपनकी भोली-भोली चेष्टायें तथा अपने माता-पिताके सामने आनेआदि के ढंगों से वे दोनों बड़े ही प्रसन्न होते थे ॥६०॥

स्नेहानुबद्धहृदयावन्योन्यं विष्णुमायया ।
विमोहितौ दीनधियौ शिशून् पुपुषतुः प्रजाः॥६१॥

हृदय में आपस के स्नेह से बंधे हुए, भगवान् की माया से मोहित और कृपण बुद्धिवाले ये पक्षी अपने छोटे २ बालकों का पोषण करते थे ॥६१॥

एकदा जग्मतुस्तासामन्नार्थौ तौ कुटुंबिनौ ।
परितः कानने तस्मिन्नर्थिनौ चेरतुश्चिरम् ॥६२॥

एक दिन वे दोनों पक्षी अपने बच्चों को अन्न लेने के लिये बनमें गये और उसकी लालच से बहुत देर तक बनमें भटका किये ॥६२॥

दृष्ट्वा तांल्लुब्धकः कश्चिद् यदृच्छातो वनेचरः ।
जगृहे जालमावृत्य चरतः स्वालयांतिके ॥६३॥

उनके पीछे बनमें घूमने वाला कोई चिड़ीमार वहाँ आ पहुँचा और उसने दैवेच्छा से घोंसले के पास उड़ते हुए उन बच्चोंको देखकर जाल फैलाया और पकड़ लिया ॥ ६३ ॥

कपोतश्च कपोती च प्रजापोषे सदोत्सुकौ ।
गतौ पोषणमादाय स्वनीडमुपजग्मतुः ॥६४॥

बच्चों के भरण-पोषणमें निरन्तर उत्साहसे लगे हुए कपोत और कपोतिनी जोकि बनमें गये थे वे खानेके लिये चारा लेकर घोंसलेके पास लौटआये॥

कपोती स्वात्मजान् वीक्ष्य बालकान् जालसंवृतान्।
तानभ्यधावत् क्रोशंती क्रोशतो भृशदुःखिता॥६५॥

वहाँ अपने बच्चोंको जालमें बँधा और चिल्लाता हुआ देखकर अत्यन्त दुखित कपोतिनी चिल्लाती हुई उनके पास जाने के लिये दौड़ी ॥६५॥

साऽसकृत्स्नेहगुणिता दीनचित्ताऽजमायया ।
स्वयं चाबध्यत शिचा बद्धान् पश्यंत्यपस्मृतिः६६॥

बारंबार स्नेह से बँधी हुई और भगवान् की माया से दीनताको प्राप्तहुई वह बेचारी कपोतिनी अपने बच्चों को जाल में फँसा हुआ देखकर बुद्धि भ्रष्ट होजाने से आप भी जालमें फंस गई ॥६६॥

कपोतश्चात्मजान् बद्धानात्मनोऽप्यधिकान् प्रियान्
भार्यां चात्मसमां दीनो विललापातिदुःखितः६७॥

प्राणों से प्यारे बच्चों तथा इच्छानुसार मिली हुई पत्नी को बंधा हुआ देखकर अत्यन्त दुःखित वह बेचारा कपोत विलाप करने लगा ॥६७॥

अहो मे पश्यतापायमल्पपुण्यस्य दुर्मतेः ।
अतृप्तस्याकृतार्थस्य गृहस्त्रैवर्गिको हतः ॥६८॥

हाय मुझ अल्प पुण्य और दुर्बुद्धिका सर्वनाश देखो, मैं अबतक तृप्त न हुआ था और मेरे मनोर्थ पूर्ण न होसके थे, कि इससे पहले ही धर्म, अर्थ और काम के देने वाले गृहका विध्वंस होचुका ॥

अनुरूपानुकूला च यस्य मे पति देवता ।
शून्ये गृहे मां संत्यज्य पुत्रैः स्वर्याति साधुभिः६९॥

यथोचित रूप से अनुकूल रहने वाली और पतिव्रता यह स्त्री मुझे शून्य घर में छोड़ कर स्वयं अपने अच्छे बेटोंके साथ स्वर्ग जारही है ॥६९॥

सोऽहं शून्ये गृहे दीनो मृतदारो मृतप्रजः ।
जिजीविषे किमर्थं वा विधुरो दुःखजीवितः ॥७०॥

दीन, रँडुआ, दुःख-पूर्वक जीवन काटने वाला और नष्ट सन्तान मैं अकेला अब उस उजड़ेहुए घर में किसलिये जीने की इच्छा करूँ ? ॥ ७०॥

तांस्तथैवावृताञ्छिग्भिर्मृत्युग्रस्तान्विचेष्टतः ।
स्वयं च कृपणः शिक्षु पश्यन्नप्यबुधोऽपतत् ॥७१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकार विलाप करता हुआ वह मूर्ख और दीन कपोत भी उन सबको जालमें फंस कर मृत्यु के ग्रास बने और तड़पते हुए देखकर आपभी उस जाल में जा फँसा ॥७१॥

तं लब्ध्वा लुब्धकः क्रूरः कपोतं गृहमेधिनम् ।
कपोतकान्कपोतीं च सिद्धार्थः प्रययौ गृहम् ॥७२॥

उस गृहस्थ कपोत को स्त्री और बच्चों सहित लेकर अपना काम बन जाने के कारण वह क्रूर चिड़ीमार अपने घर गया ॥७२॥

एवं कुटुंब्यशांतात्मा द्वंद्वारामः पतत्रिवत् ।
पुष्णन्कुटुंबं कृपणः सानुबंधोऽवसीदति ॥७३॥

जो कुटुम्बी मनुष्य अशान्त चित्त, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों में फंसा हुआ कृपण और कुटुम्ब ही के भरण-पोषण में लगा रहने वाला होता है, वह कपोत की भांति ही परिवार सहित दुखी होताहै ॥

यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम् ।
गृहेषु खगवत्सक्तस्तमारूढच्युतं विदुः ॥७४॥

जब गृहकी ममता पशु-पक्षियों तक का अनर्थ करती है, तब मनुष्यों का तो कहना ही क्या है ? इसलिये जो मनुष्य मुक्ति के खुले हुए द्वारपर नर जन्म को पाकर भी कपोतकी भाँति घरमें आसक्त होकर रहता है, वह मानो ऊपर चढ़कर पतन की ओर जाता है-ऐसा विद्वानों का मत है ॥७४॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

आठवां अध्याय

(पिंगलाका उपाख्यान)

ब्राह्मण उवाच

सुखमैंद्रियकं राजन्स्वर्गे नरकएव च ।
देहिनां यद्यथा दुःखं तस्मान्नेच्छेत तद्बुधः ॥ १ ॥
ग्रासं सुमृष्टं विरसं महांतं स्तोकमेव वा ।
यदृच्छयैवापतितं ग्रसेदाजगरोऽक्रियः ॥ २ ॥
शयीताहानि भूरीणि निराहारोऽनुपक्रमः ।
यदि नोपनमेद्ग्रासो महाहिरिव दिष्टभुक् ॥ ३ ॥

दत्तात्रेयजी बोले-जैसे अजगर उद्यम रहित रहकर अच्छा, बुरा, थोड़ा, बहुत जो कुछ भी दैवेच्छा से मिलता है, उसी को खाकर सन्तुष्ट रहता है, वैसे ही मुनि को भी रहना चाहिये, जैसे उद्यम किये बिना ही प्रारब्ध के अनुसार स्वयंएव दुःख आता है; वैसे ही सुख भी आता है, क्योंकि इन्द्रियों का सुख तो स्वर्ग और नरक में होता ही है, इसलिये सुखके लिये उद्यम करने में मनुष्य को अपनी आयु वृथा न खोनी चाहिये, यदि खाने को भी न मिले तो प्रारब्धपर श्रद्धा रखकर उद्यमहीन रहते हुए अजगर की भाँति निराहार रहकर बहुत दिनोंके लिये सो रहे पर कोई प्रयत्न न करे ।१-३॥

ओज सहोबलयुतं बिभ्रद्देहमकर्मकम् ।
शयानो वीतनिद्रश्च नेहेतेंद्रियवानपि ॥ ४ ॥

इन्द्रिय, मन और शरीर में बल रहते हुए भी देह को उद्यमरहित रखकर सो रहना चाहिये और आत्म-प्राप्ति रूपी स्वार्थ का ध्यान रखना चाहिये, अर्थात् परिपूर्ण इन्द्रियों के होते हुए भी उनका कोई व्यापार न करना-ये शिक्षा अजगरसे मिलतीहै।

मुनिः प्रसन्नगंभीरो दुर्विगाह्यो दुरत्ययः ।
अनंतपारो ह्यक्षोभ्यः स्तिमितोद इवार्णवः ॥ ५ ॥

जैसे निश्चल जल वाला समुद्र बाहरसे प्रसन्न भीतर गंभीर होता है, जिसकी थाह नहीं मिल सकती, जो अन्त, पार और क्षोभ रहित होता है, ऐसा ही योगी को भी समुद्र से शिक्षा लेकर रहना चाहिये ॥५॥

समृद्धकामो हीनो वा नारायणपरो मुनिः ।
नोत्सर्पेत न शुष्येत सरिद्भिरिव सागरः ॥ ६ ॥

जैसे समुद्र वर्षा की नदियों के जल से बढ़ता नहीं है और गर्मियों में सूखता भी नहीं, वैसे ही योगिराज को यथा लाभ सन्तोष रखना चाहिये और कुछ न मिलने पर खेद भी न करना चाहिये, केवल श्रीमन्नारायण ही में तन्मय रहकर विषयों से दूर रहना चाहिये ॥६॥

दृष्ट्वा स्त्रियं देवमायां तद्भावैरजितेंद्रियः ।
प्रलोभितः पतत्यंधे तमस्यग्नौ पतंगवत् ॥ ७ ॥

जैसे पतंग अग्नि का रूप देखकर लालच के मारे उसमें गिर पड़ता है, ऐसे ही अजितेन्द्रिय पुरुष ईश्वर की माया रूपिणी स्त्री के रूपको देख कर विलासोंकी लालचसे महा मोहमें पड़ जाताहै॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

योषिद्धिरण्याभरणांबरादिद्रव्येषु मायारचितेषु मूढः। प्रलोभितात्मा ह्युपभोगबुद्ध्यापतंगवन्नश्यति नष्टदृष्टिः ॥ ८ ॥

स्त्री, स्वर्ण, आभूषण और वस्त्र आदि माया रचित पदार्थों को उपभोग करने की लालच से अन्धा हुआ यह मूढ़ पुरुष पतङ्ग की नाईं नष्ट हो जाता है, इसलिये योगी को इन वस्तुओं का लोभ न करना चाहिये ॥८॥

स्तोकंस्तोकं ग्रसेद्ग्रासं देहो वर्तेत यावता।
गृहानहिंसन्नातिष्ठेद् वृत्तिं माधुकरीं मुनिः ॥ ९ ॥

जैसे भौंरा सुगन्ध के लोभ से एकही कमल में वास करता है और उसमें बन्द तक होजाता है, ऐसे ही यदि योगी पुरुष पदार्थों के लोभ से एक ही घर का आश्रय पकड़ कर रह जाय, तो उसमें बंधकर रह जाता है, इसलिये योगी पुरुष को गृहस्थों को दुःख न देते हुए देह के निर्वाह योग्य अल्प अहार करना चाहिये और वह भिक्षा माँग कर जुदे २ घरों से लाना चाहिये, भ्रमर की भाँति अत्यन्त लालच में न पड़ना चाहिये ॥९॥

अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः।
सर्वतः सारमादद्यात्पुष्पेभ्य इव षट्पदः ॥१०॥

जैसे भ्रमर छोटे-बड़े सभी पुष्पों में से सार ग्रहण कर लेता है, वैसे ही योगी पुरुष को सब शास्त्रों में से सार ले लेना चाहिये ॥१०॥

सायंतनं श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षितम्।
पाणिपात्रोदरामत्रो मक्षिकेव न संग्रही ॥११॥
सायंतनं श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षुक।
मक्षिका इव संगृह्णन् सह तेन विनश्यति ॥१२॥

जैसे मधुमक्खी को मधु संग्रह के कारण प्राण गंवाना पड़ते हैं, वैसे मुनिको भिक्षा माँगकर उसे सन्ध्या या दूसरे दिनको जोड़कर न रखना चाहिये अन्यथा मधुमक्खी की तरह गति होगी. उसे तो केवल हाथ के पात्र में लेकर पेट का पात्र ही भर लेना चाहिये ॥ ११ ॥१२॥

पदापि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेदारवीमपि।
स्पृशन् करीव बध्येत करिण्या अंगसंगतः ॥१३॥

जैसे हाथी हथिनी के संग (ममता) से बंधनमें पड़ जाताहै, वैसेही पुरुषभी स्त्री के संगसे बंधनमें पड़ जाता है; इसलिये योगी को स्त्री रूप में काठ की पुतली को भी हाथ से तो क्या ? पैर से भी न छूना चाहिये ॥१३॥

नाधिगच्छेत् स्त्रियं प्राज्ञः कर्हिचिन्मृत्युमात्मनः।
बलाधिकैः स हन्येत गजैरन्यैर्गजो यथा ॥१४॥

जैसे हथिनी का संग करता हुआ हाथी दूसरे बलवान् हाथियों के द्वारा मारा जाता है, वैसे ही पुरुष भी स्त्री-संग करने से दूसरों के द्वारा मारा जाता है, इसलिये योगी को स्त्री के निकट भी न जाना चाहिये ॥१४॥

न देयं नोपभाग्यं च लुब्धैर्यदुःखसंचितम्।
भुक्तं तदपि तच्चान्यो मधुहेवार्थविन्मधु ॥१५॥

जैसे बड़े कष्टसे एकत्र की हुई मधुमक्खियों की मधु को मधु तोड़ने वाला लेजाकर भोगता है वैसे ही लोभी मनुष्यों के कष्ट पूर्वक संचय किये हुए धन कि जो सत्कर्मों में व्यय नहीं होता उसे घात जानने वाले लोग छीनकर उपभोग करते हैं॥

सुदुःखोपार्जितैर्वित्तैराशासानां गृहाशिषः।
मधुहेवाग्रतो भुंक्ते यतिर्वै गृहमेधिनाम् ॥१६॥

मधुहा (शहद तोड़कर लेजाने वाले) से यह शिक्षा मिलती है कि जैसे मधुमक्खियों के कष्ट से संग्रह किये हुए शहद को मक्खियों के उपभोग से पहले ही मधुहा लेजाकर उपभोग कर लेता है वैसे ही सुखके अभिलाषी गृहस्थोंके महान् कष्टसे उपार्जित धनसे रींधेहुए अन्नका उपभोग सन्यासी पहले करतेहैं, पीछे वे गृहस्थ-सारांश यहहै कि योगीको बिना उद्यम के भी भोग प्राप्त होजाते हैं ॥१६॥

ग्राम्यगीतं न शृणुयाद् यतिर्वनचरः क्वचित्।
शिक्षेत हरिणाद् बद्धान्मृगयोर्गीतमोहितात्॥१७॥

जैसे हरिण बहेलियेके गीतसे मोहित होजाता है वैसे बनमें विचरने वाला सन्यासी भी गायन सुनकर मोहित होजाता है, इसलिये उसे विषय सम्बन्धी गीत आदि न सुनना चाहिये ॥१७॥

नृत्यवादित्रगीतानि जुषन् ग्राम्याणि योषिताम्।
आसां क्रीडनको वश्यमृष्यशृंगो मृगीसुतः ॥१८॥

जैसे मृगी से उत्पन्न हुए ऋष्यशृङ्ग वेश्याओं के विषय सम्बन्धी नाच, गायन और बाजों से वेश्याओं का खिलौना सा बनकर उनके वश हो गये थे ॥ १८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिह्वयाऽतिप्रमाथिन्या जनो रसविमोहितः ।
मृत्युमृच्छत्यसद्बुद्धिर्मीनस्तु बडिशैर्यथा ॥१९॥

जैसे मछली जीभ के स्वादकी लालच में काँटे से बिंधकर मर जाती है, ऐसे ही रस से मोहित हुआ देहाभिमानी पुरुषभी अत्यन्त दुःख देनेवाली जीभके लोभसे मारा जाता है ॥१९॥

इंद्रियाणि जयंत्याशु निराहारा मनीषिणः ।
वर्जयित्वा तु रसनं तन्निरन्नस्य वर्धते ॥२०॥

विद्वान् पुरुष आहार को छोड़कर दूसरी इन्द्रियों को तुरन्त ही जीत लेते हैं, परन्तु उस दशा में भी जिह्वा नहीं जीती जाती, वरन् उसकी लालच और भी बढ़ जाती है ॥२०॥

तावज्जितेंद्रियो न स्याद्विजितान्येंद्रियः पुमान् ।
न जयेद्रसनं यावज्जितं सर्वं जिते रसे ॥२१॥

चाहे कोई सभी इन्द्रियों को जीतले, परन्तु जब तक रसेन्द्रिय (जिह्वा) न जीत ली जाय, तब तक मनुष्य जितेन्द्रिय नहीं कहा जा सकता, हाँ, जिह्वा के जीत लेने पर सब इन्द्रियों का जीत लेना समझना चाहिये, इसलिये योगी को रसका लोभ छोड़कर औषधरूपमें अन्न खाना चाहिये ॥२१॥

पिंगला नाम वेश्यासीद् विदेहनगरे पुरा ।
तस्या मे शिक्षितं किंचिन्निबोध नृपनंदन ॥२२॥

हे राजन् ! पहले समयमें राजा विदेह के यहाँ पिंगला नाम की वेश्या रहती थी, उससे मैंने जो शिक्षा पाई है सो मैं कहता हूँ, सुनो ॥२२॥

सा स्वैरिण्येकदा कांतं संकेत उपनेष्यती ।
अभूत्काले बहिर्द्वारि बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥२३॥

एक दिन वह वेश्या किसी पुरुष को अपने रति-स्थान पर लाने के लिये सोलह शृङ्गार करके संध्या समय घरके द्वार पर बैठी ॥२३॥

मार्ग आगच्छतो वीक्ष्य पुरुषान्पुरुषर्षभ ।
ताञ्छुल्कदान्वित्तवतः कांतान्मेनेऽर्थकामुका ॥२४॥

हे नर-श्रेष्ठ राजन् ! मार्ग में धनी पुरुषों को आता हुआ देखकर धन का लोभ रखने वाली वह वेश्या उन्हें अपना मूल्य दैने तथा सुरति (संभोग) करने के योग्य समझती थी ॥ २४ ॥

आगतेष्वपयातेषु सा संकेतोपजीविनी ।
अप्यन्यो वित्तवान्कोऽपि मामुपैष्यति भूरिदः२५॥

जब द्वारसे निकलनेवाले सभी लोग चले गये, तब संकेत-वृत्तिसे जीविका कमानेवाली वह वेश्या सोचने लगी कि अब भी कोई धनी पुरुष कदाचित् मेरे पास आजायगा ॥ २५॥

एवं दुराशया ध्वस्तनिद्रा द्वार्यवलंबिनी ।
निर्गच्छंती प्रविशती निशीथं समपद्यत ॥२६॥

इस प्रकार आशा के मारे उसे निद्रा न आई और वह बैठी-बैठी उठकर भीतर गई, फिर बाहर आई, इस प्रकार घड़ी-घड़ी पर बाहर-भीतर आते जाते उसे आधी रात होगई ॥२६॥

तस्या वित्ताशया शुष्यद्वक्राया दीनचेतसः ।
निर्वेदः परमो जज्ञे चिंताहेतुः सुखावहः ॥२७॥

जिसका मुख धनकी आशा से कुम्हला और सूख गया है, ऐसी वह दीन चित्त वाली वेश्या ये सोचने लगी कि बस यह धन्धा बहुत किया, अब इतना ही बहुत है, इस प्रकार उसे निर्वेद बुद्धि प्राप्त हुई कि जिससे सुख मिलता है ॥२७॥

तस्या निर्विण्णचित्ताया गीतं शृणु यथा मम ।
निर्वेद आशापाशानां पुरुषस्य यथा ह्यसिः ।
न ह्यंगाऽजातनिर्वेदो देहबंधं जिहासति ॥२८॥

उस निर्वेदित मन वाली वेश्या ने उस समय जो कुछ गाया वह मैं अक्षरशः कहता हूँ, सुनो, हे राजन् ! निर्वेद खड्ग की भांति पुरुष की आशा रूपी पाशों को काट देता है, जबतक निर्वेद उत्पन्न न होजाय तब तक देह का बन्धन छोड़ देने की इच्छा नहीं होती ॥२८॥

पिंगलोवाच

अहो मे मोहवितति पश्यताऽविजितात्मनः ।
या कांतादसतः कामं कामये येन बालिशा ॥२९॥

पिंगला बोली–विवेक न होने के कारण मनको न जीत सकने वाली मुझ मूर्खा के मानसिक मोह के विस्तार को तो देखो कि मैं तुच्छ पुरुष से कामना पूर्ण होने की इच्छा रखती हूँ ॥ २९॥

संतं समीपे रमणं रतिप्रदं वित्तप्रदं नित्यमिमं विहाय । अकामदं दुःखभयादिशोकमोहप्रदं-तुच्छमहं भजेऽज्ञा ॥३०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैं इन निरन्तर समीपमें रहने वाले, धन और आनन्द-दाता साक्षात् अन्तर्यामी ईश्वर को छोड़ कर, कामना पूर्ण न करने वाले; दुःख, भय आदि शोक तथा मोह के देनेवाले तुच्छ पुरुषका मूर्खता के कारण सेवन करती हूँ ॥३०॥

अहो मयात्मा परितापितो वृथा सांकेत्यवृत्त्या तिविगर्ह्यवार्तया । स्त्रैणान्नराद्यार्थतृषोऽनुशोच्या त्क्रीतेन वित्तं रतिमात्मनेच्छती ॥३१॥

हाय ! मैंने इस आत्मा को व्यर्थ ही कष्ट दिया कि अत्यन्त निन्दामय शोक से ग्रसे हुए धन और रति की इच्छा से मेरी देह बिक गई ॥३१॥

यदस्थिभिर्निर्मितवंशवंश्यस्थूणं त्वचारोमनखैः पिनद्धम् । क्षरन्नवद्वारमगारमेतद्विण्मूत्रपूर्णं मदुपैति कान्या ॥३२॥

जिसके शरीर रूपी घरमें आड़सल,पीड़ा और खंभे सब हड्डियों के बने हैं, नौ मोहरियाँ बहती हैं जो मल-मूत्र से भरा हुआ है और ऊपरसे चमड़ा, रोम तथा नखों में ढका हुआ है, ऐसे पुरुषको मेरे सिवा कौनसी स्त्री कान्त (पति) समझ कर सेवन करेगी ॥३२॥

विदेहानां पुरे ह्यस्मिन्नहमेकैव मूढधीः । याऽन्यमिच्छंत्यसत्यस्मादात्मदात्काममच्युतात् ॥

इस परम ज्ञानी राजा विदेह के नगरमें एक मैं ही मूढ़ बुद्धि वाली और दुष्टाहूँ. क्योंकि स्वरूप को देने वाले इन अविनाशी और अन्तर्यामी को छोड़ कर दूसरे के साथ भोग की इच्छा करती हूँ ॥३३॥

सुहृत्प्रेष्ठतमो नाथ आत्मा चायं शरीरिणाम् । तं विक्रीयात्मनैवाहं रमेऽनेन यथा रमा ॥३४॥

यही ईश्वर सब प्राणियों के मित्र और परम प्रिय आत्म रूप हैं, इसलिये मैं उन्हें अपना मन देकर उसके बदलेमें मोल लूंगी और उन्हींके साथ लक्ष्मी की नाईं रमण करूँगी ॥३४॥

कियत्प्रियं ते व्यभजन् कामा ये कामदा नराः । आद्यंतवंतो भार्याया देवा वा कालविद्रुताः ॥३५॥

विषय, विषय देने वाले पुरुष और आदि-अंत वाले, काल के ग्रास रूप देवताओं ने मुझ स्त्री का क्या हित किया है ? कुछ भी नहीं, इसलिये दोनों लोकों में सिवा भगवान् के कोई भी सेवा करने योग्य नहीं है ॥३५॥

नूनं मे भगवान्प्रीतो विष्णुः केनापि कर्मणा । निर्वेदोऽयं दुराशाया यन्मे जातः सुखावहः॥३६॥

किसी पूर्व पुण्य के कारण भगवान् मुझपर अब प्रसन्नसे जान पड़तेहैं, जिससे मुझे इस नीच आशा में से वैराग्य उत्पन्न हुआ है ॥३६॥

मैवं स्युर्मंदभाग्यायाः क्लेशा निर्वेदहेतवः । येनानुबंधंनिर्हृत्य पुरुषः शममृच्छति ॥३७॥

यदि मेरा भाग्य मन्द ही होता तो मुझे निर्वेद देने वाले क्लेश कदापि न होते, कि जिससे मनुष्य गृह आदिके बन्धनोंको छोड़कर शान्ति पाजाताहै॥

तेनोपकृतमादाय शिरसा ग्राम्यसंगताः । त्यक्त्वा दुराशाः शरणं व्रजामि तमधीश्वरम्॥३८॥

इसलिये मैं भगवान् के दिये हुए वैराग्य रूपी दान के उपकार को शिर पर धारण करके और दुष्टों की नाईं आशाओं को छोड़कर उन्हीं प्रभु की शरण लेती हूँ ॥३८॥

संतुष्टा श्रद्दधत्येतद्यथालाभेन जीवती । विहराम्यमुनैवाहमात्मना रमणेन वै ॥३९॥

अब मैं परमेश्वरपर श्रद्धा रखकर संतुष्ट रहती हुई, जो मिल जाय, उसीसे जीविका-निर्वाहकरती हुई अपने आत्मा के साथ ही रमण करूंगी ॥ ३९॥

संसारकूपे पतितं विषयैर्मुषितेक्षणम् । ग्रस्तं कालाहिनात्मानं कोऽन्यस्त्रातुमधीश्वरः॥४०॥

इस संसार-कूप में पड़े हुए विषयान्ध और फिर भी कालरूप सर्प से ग्रसित जीवको भगवान् के बिना बचाने वाला कौन है ? ॥ ४० ॥

आत्मैव ह्यात्मनो गोप्ता निर्विद्येत यदाखिलात् । अप्रमत्त इदं पश्येद्ग्रस्तं कालाहिना जगत् ॥४१॥

जब काल-सर्प से ग्रसित इस जगत् को देख कर सावधानी के साथ दोनों लोकों से विरक्त हो जाताहै; तब आपही अपनी रक्षा की जासकतीहै॥

ब्राह्मण उवाच

एवं व्यवसितमतिर्दुराशां कांततर्षजाम् । जित्वोपशममास्थाय शय्यामुपविवेश सा ॥४२॥

दत्तात्रेयजी बोले-इस प्रकार निश्चय करके कान्त की लालच से उत्पन्न हुई दुराशा को काट कर वह वेश्या शान्ति के साथ शैयापर जा लेटी ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् ।
यथा संछिद्य कांताशां सुखं सुष्वाप पिंगला ॥४३॥

इससे यह फल निकलता है कि आशाही परम दुःख और आशा का त्याग ही परम सुख है, जैसे कि पिंगला पति की आशा छोड़ने पर ही सुख की निद्रा ले सकी ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नौवां अध्याय

(अवधूत वाक्य)

ब्राह्मण उवाच

परिग्रहो हि दुःखाय यद्यत्प्रियतमं नृणाम् ।
अनंतं सुख माप्नोति तद्विद्वान्यस्त्वकिंचनः॥ १ ॥

सामिषं कुररं जघ्नुर्बलिनो ये निरामिषाः ।
तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविंदत ॥ २ ॥

दत्तात्रेयजी बोले—एक कुररपक्षी अपनी चोंच में माँस दबाये जारहा था, उसे दूसरे बलवान् पक्षी कि जिनके पास माँस न था, मारनेलगे, इसी से मैंने यह शिक्षा पाई कि जो-जो बहुत ही प्यारी वस्तुयें हैं उनका संग्रह करना ही महान् दुःखदाई है, ऐसा जानकर जो संग्रह करना त्याग देता है वही अनन्त सुख पाता है ॥१॥२॥

न मे मानावमानौ स्तो न चिंता गेहपुत्रिणाम् ।
आत्मक्रीड आत्मरतिर्विचरामीह बालवत् ॥ ३ ॥

जैसे बालक मान-अपमान और घर या बाल-बच्चों की चिन्ता से निवृत्त है, वैसे ही मैं भी सब प्रकार की चिन्ताओं से निवृत्त रहकर अपने ही साथ क्रीड़ा करता हूँ और अपने ही ऊपर प्रीति रखता हुआ जगत्में विचरण करता हूँ ॥३॥

द्वावेव चिंतया मुक्तौ परमानंद आप्लुतौ ।
यो विमुग्धो जडो बालो यो गुणेभ्यः परं गतः॥४॥

दोही पुरुष चिन्ता-मुक्त और परमानन्दमें मग्न रहते हैं, पहले अज्ञानी बालक और दूसरे गुणातीत ईश्वर को पाया हुआ पुरुष ॥४॥

क्वचित्कुमारी त्वात्मानं वृणानान्गृहमागतान् ।
स्वयं तानर्हयामास क्वापि यातेषु बंधुषु ॥ ५ ॥

एक गाँव में किसी कुमारी के कुटुम्बी मनुष्य किसी काम से उसे घरमें छोड़कर बाहर गये थे, उस समय उसका सम्बन्ध करने के लिये दूसरे गाँव से वर-पक्ष वाले लोग आये कि जिनसे पहले तत्सम्बन्धी बात-चीत होचुकी थी, तब वह कन्या स्वयंही उनके आतिथ्य-सत्कारका प्रबंध करनेलगी॥

तेषामभ्यवहारार्थं शालीन्रहसि पार्थिव ।
अवघ्नंत्याः प्रकोष्ठस्थाश्चक्रुः शंखाः स्वनं महत्॥६॥

हे राजन् ! वह कन्या उन्हें भोजन के लिये एकान्त में धान कूटने लगी, तब उसके हाथ की चूड़ियाँ बजने लगीं ॥६॥

सा तज्जुगुप्सितं मत्वा महती व्रीडिता ततः ।
बभंजैकैकशः शंखान् द्वौद्वौ पाण्योरशेषयत् ॥ ७ ॥

बुद्धिमती कन्या ने अपने नैहर की दरिद्रता छिपाने के लिये लज्जित होकर दोनों हाथों में से चूड़ियाँ उतार दीं, केवल एक-एक हाथ में दो-दो चूड़ियाँ रह गईं ॥७॥

उभयोरप्यभूद्घोषो ह्यवघ्नंत्याः स्म शंखयोः ।
तत्राप्येकं निरभिददेकस्मान्नाभवद्ध्वनिः ॥ ८ ॥

इस प्रकार धान कूटनेमें भी वे दो-दो चूड़ियां ही बजने लगीं, तब उसने एक-एक चूड़ी और उतार दी और फिर वह शब्द न हुआ ॥ ८ ॥

अन्वशिक्षमिमं तस्या उपदेशमरिंदम ।
लोकाननुचरन्नेताँल्लोकतत्त्वविवित्सया ॥ ९ ॥

हे शत्रुघ्न यदु ! मुझ लोक-तत्व जाननेके लिये जगत् में विचरने वाले ने उससे यह शिक्षा ग्रहण की कि ॥ ९ ॥

वासे बहूनां कलहो भवेद्वार्ता द्वयोरपि ।
एक एव चरेत्तस्मात्कुमार्या इव कंकणः ॥१०॥

बहुत जनों के साथ रहने से कलह होता है और दो के साथ रहनेसे भी बात-चीत हुआकरती है, इसलिये कुमारी की चूड़ियों की नाईं योगीको अकेला ही रहना चाहिये ॥१०॥

मन एकत्र संयुञ्ज्याज्जितश्वासो जितासनः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वैराग्याभ्यासयोगेन ध्रियमाणमतंद्रितः ॥११॥

यस्मिन्मनो लब्ध पदं यदेतच्छनैः शनैर्मुंचति कर्मरेणून्। सत्त्वेन वृद्धेन रजस्तमश्च विधूय निर्वाण मुपैत्यनिंधनम् ॥१२॥

तदैवमात्मन्यवरुद्धचित्तो न वेद किं चिद्बहिरं तरं वा। यथेषुकारो नृपतिं व्रजंतमिषौ गतात्मा न ददर्श पार्श्वे ॥१३॥

एक बाण बनाने वाला बाण बना रहाथा उसे समान करने में वह ऐसा तन्मय था कि उसके पास से धूम-धामके साथ राजा निकल गया परन्तु उसे उसका ध्यान भी न आया, ऐसे ही ब्रह्म रूप चित्त होने वाले योगी को किसी पदार्थ व मानसिक सुख-दुःख आदिका ज्ञान नहीं रहता, आसन जीतने से श्वाँस जीता जाता है. श्वाँस जीतने से मन निश्चल होजाता है, क्षण मात्र मन निश्चलहोने पर भी उसके विषय-वासना में विक्षिप्त होने या सुषुप्ति अवस्था की नाईं सर्वथा लीन होने की आशंका रहती है, इसलिये दृढ़ वैराग्य के द्वारा मन को विक्षेप से बचाना चाहिये और आलस्य त्याग कर योगाभ्यास द्वारा उसे परमानन्द भगवान् में स्थिर रखते हुए दोनों को इस प्रकार जोड़ देना चाहिये कि जिससे मन स्वयंही क्रमशः वासनाओं को त्याग दे और विक्षेप तथा लय के मूल कारण रजोगुण तथा तमोगुण को भी बढ़ेहुए उपशमरूपी सतोगुण के द्वारा हटाकर मन पर ऐसा अधिकार करना चाहिये कि वह गुण तथा उसके कार्यों से रहित होजाने पर वृत्ति-हीन होकर ब्रह्म-स्थितिको प्राप्त होजाय, ऐसी 'असंप्रज्ञात' समाधि वाले द्वैत का भान नहीं रखते ॥११॥१२॥१३॥

एकचार्योऽनिकेतः स्यादप्रमत्तो गुहाशयः ।
अलक्ष्यमाण आचारैर्मुनिरेकोऽल्पभाषणः ॥१४॥

जैसे सर्प सब लोगों से डरता हुआ अकेला ही फिरता है, एक जगह घर नहीं रखता, सदैव सावधान रहता है, एकान्तमें वास करताहै, किसी से सहायता नहीं चाहता, अपनी गति दूसरों से छिपाये रहता है, विष या निर्विष समझ में नहीं आता और थोड़ा बोलता है, ऐसे ही मुनियों को रहना चाहिये ॥१४॥

गृहारंभो हि दुःखाय विफलश्चाध्रुवात्मनः ।
सर्पः परकृतं वेश्म प्रविश्य सुखमेधते ॥१५॥

जैसे साँप स्वयं अपना घर न बनाकर किसी दूसरे के बनाये हुए घर में ही सुख से बढ़ा करता है, ऐसे ही योगी को घर न बनाकर दूसरोंके यहाँ ही अपना जीवन-निर्वाह करते रहना चाहिये, क्यों कि घर का आरम्भ करनाही अत्यन्त दुःखदायी है और देह नश्वर होनेके कारण अंतमें वह व्यर्थहीहै॥

एको नारायणो देवः पूर्वसृष्टं स्वमायया ।
संहृत्य कालकलया कल्पांत इदमीश्वरः ॥१६॥
एक एवाद्वितीयोऽभूदात्माधारोऽखिलाश्रयः ।
कालेनात्मानुभावेन साम्यंनीतासु शक्तिषु ।
सत्त्वादिष्वादिपुरुषः प्रधानपुरुषेश्वरः ॥१७॥
परावराणां परम आस्ते कैवल्यसंज्ञितः ।
केवलानुभवानंदसंदोहो निरुपाधिकः ॥१८॥
केवलात्मानुभावेन स्वमायां त्रिगुणात्मिकाम् ।
संक्षोभयन सृजत्यादौ तया सूत्रमरिंदम ॥१९॥
तामाहुस्त्रिगुणव्यक्तिं सृजंतीं विश्वतोमुखम् ।
यस्मिन प्रोतमिदं विश्वं येन संसरते पुमान्॥२०॥
यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णां संतत्य वक्रतः ।
तया विहृत्य भूयस्तां ग्रसत्येवं महेश्वरः ॥२१॥

जैसे मकड़ी अपने हृदय में से निकले हुए को मुंह से फैलाकर उसमें रमण करके फिर उसे निगल जाती है, उसे किसी दूसरे साधन की आवश्यकता नहीं होती, ऐसे ही ईश्वर अपने स्वरूप में से जगत्को रचकर उसमें विहार करने के पीछे फिर उसे अपने ही में लय कर लेते हैं, उन्हें किसी साधन की आवश्यकता नहीं, अपनी माया द्वारा पहले रचे हुए इस जगत् को किसी साधन की अपेक्षा बिना ही कल्पान्त में काल-शक्ति से संहार करके सजातीय, विजातीय और स्वगत भेद-रहित सबके अधिष्ठान रूप, प्रभु आदि पुरुष अपने ही स्वरूप में रहते हैं, उस समय भगवान् का प्रभावरूपी काल जगत् की कारण रूप सतोगुण आदि की शक्तियों को प्रधान में लीन कर लेता है और निरुपाधि, स्वयं प्रकाश, अनुभव से जानने योग्य आनन्द के समूह रूप, मुक्त नाम से कहने योग्य आदि पुरुष, प्रधान पुरुष के भी ईश्वर और ब्रह्मा आदि तथा दूसरे मुक्त जीवों को प्राप्त होने वाले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक परमात्मा ही रह जाते हैं, वे अपने प्रभाव रूप काल से ही अपनी त्रिगुणमयी मायाके द्वारा उसी में से महत्तत्व को उत्पन्न करते हैं, हे राग-द्वेषादि शत्रुओं को दमन करनेवाले राजन्! यह महत्तत्व ही तीनों गुणों के कार्य रूप और अपनेमें से उत्पन्न हुए अहङ्कार रूपी द्वार से अनेक भांति का संसार रचने वाला कहलाताहै, इस समष्टि रूपी महत्तत्व में ही जीवों का जन्मान्तर हुआ करता है और उसीमें यह जगत् गुंथा रहताहै, इसलिए महत्तत्व का "सूत्र" नामसे पुकारा जाता है ॥१६-२१॥

यत्र यत्र मनो देही धारयेत्सकलं धिया।
स्नेहाद्द्वेषाद्भयाद्वापि याति तत्तत्सरूपताम्॥२२॥
कीटः पेशस्कृतं ध्यायन्कुड्यां तेन प्रवेशितः।
याति तत्साम्यतां राजन्पूर्वरूपमसंत्यजन् ॥२३॥

हे राजन्! भ्रमरी जिस कीड़े को पकड़ कर अपने घर में बन्द कर लेती है, वह कीड़ा भय के मारे उसी का ध्यान करता-करता अपने पूर्व शरीर में रहता हुआ भी भ्रमरी रूप बनजाता है, ऐसे ही प्राणी भी राग-द्वेष या भय से जिस-जिस पदार्थमें मन लगाता है उसी के रूप को पाजाता है तब भगवान् का ध्यान करने वाला पुरुष ईश्वर रूप होजाने में क्या आश्चर्य है ॥२२॥२३॥

एवं गुरुभ्य एतेभ्य एषा मे शिक्षिता मतिः।
स्वात्मोपशिक्षितां बुद्धिं शृणु मे वदतः प्रभो॥२४॥

हे प्रभु! इन चौबीस गुरुओं से मैंने इस तरह शिक्षा ली है, अब मैंने अपनी ही देहसे जो शिक्षा ली है, उसे मैं कहता हूँ-सुनो ॥२४॥

देहो गुरुर्मम विरक्तिविवेकहेतुर्बिभ्रत्सम सत्त्व-
निधनं सततार्त्युदर्कम्। तत्त्वान्यनेन विमृशामि
यथा तथापि पारक्यमित्य वसितो विचराम्यसंगः॥

यह देह भी मेरा गुरु है, क्योंकि इसी से मुझे वैराग्य और विवेक उत्पन्न हुआ है, यह सदैव क्लेश सहित जन्म-मरण को पाता है, इसीके द्वारा वास्तविक तत्वों का विचार करने से मुझे वैराग्य उत्पन्न हुआ है, परन्तु फिर भी मैं इस पर प्रीति नहीं करता, क्योंकि यह कुत्तों और स्यारों का भक्ष्य रूप है, ऐसा निश्चय करके मैं असंग होकर विचरा करता हूँ ॥२५॥

जायात्मजार्थपशुभृत्यगृहाप्तवर्गान्पुष्णाति यत्प्रिय
चिकीर्षया वितन्वन्। स्वांते सकृच्छ्रमवरुद्धधनः
स देहः सृष्ट्वाऽस्य बीजमवसीदति वृक्षधर्मा ॥२६॥

जिस देह को प्रसन्न रखने के लिये स्त्री, पुत्र, धन, पशु, दास, घर और बन्धुगणका रक्षण करना पड़ता है, बहुत ही दुःख उठाकर धन संग्रह करना पड़ता है, फिर भी अन्त में यह देह नष्ट होजाती है, पर उसके नष्ट होनेपर भी दुःखों का नाश नहीं होता, क्योंकि वह दूसरे देहों के उत्पादक कर्म-बीज बो जाता है कि जिससे फिर दुःख रूप देह ऐसे उत्पन्न होजाता है जैसे वृक्ष के छोड़े हुए बीज से दूसरा वृक्ष उत्पन्न होजाता है ॥ २६ ॥

जिह्वैकतोमुमपकर्षति तर्हि तर्षा शिश्नोन्यतस्त्व
गुदरं श्रवणं कुतश्चित्। घ्राणोन्यतश्चपलदृक् क्व च
कर्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनंति॥२७॥

और इस आत्मा को जिह्वा-रस के लिये, प्यास जल के लिये, शिश्न स्त्री-संग के लिये, त्वचा स्पर्श के लिये, श्रवण सुननेके लिये, नासिका गंध के लिये, चञ्चल दृष्टि रूप देखने के लिये और कर्म शक्ति अपने विषयके लिये-इस प्रकार सब इन्द्रियां अपनी-अपनी ओर खींचती हुई देह को ऐसे लूट लेती हैं जैसे गृहस्थको सौतें लूटा करती हैं ॥२७॥

सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयात्मशक्त्या वृक्षा
न्सरीसृपपशून्खगदंशमत्स्यान्। तैस्तैरतुष्टहृदयः
पुरुषं विधाय ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः २८

हे देव! प्रभु ने अपनी शक्ति रूपी माया के द्वारा वृक्ष, सर्प, पशु, पक्षी, मच्छर और मछली आदि अनेक प्रकार के शरीर उत्पन्न करके संतोष न पाया, परन्तु ब्रह्म ज्ञान की बुद्धि रखने वाले नर शरीर को रचकर ही उसे संतोष हुआ ॥२८॥

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसंभवांते मानुष्यमर्थदम
नित्यमपीह धीरः। तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु
यावन्निः श्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात्२९॥

इसलिये ऐसे अत्यन्त दुर्लभ और अनित्यहोने पर भी पुरुषार्थके देनेवाले नर-देह को अनेक जन्मों के पीछे पानेपर, योगी पुरुषों को मृत्यु होनेसे पहले पहले मोक्ष पानेके लिये शीघ्रातिशीघ्र प्रयत्न करना चाहिये, क्योंकि विषय तो प्रत्येक योनि में मिल सकतेहैं, पर मोक्षका साधन इसी योनिमें मिलताहै।

एवं संजातवैराग्यो विज्ञानालोक आत्मनि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विचरामि महीमेतां मुक्तसंगोऽनहंकृतिः ॥३०॥

इस प्रकार मुझे वैराग्य उत्पन्न होने से ज्ञानका प्रकाश हुआ और मैं आत्मनिष्ठ होकर असंग तथा निरहंकार होकर पृथ्वी पर विचरने लगा हूँ ॥३०॥

न ह्येकस्मादगुरोर्ज्ञानं सुस्थिरं स्यात्सुपुष्कलम् ।
ब्रह्मैतदद्वितीयं हि गीयते बहुधर्षिभिः ॥३१॥

एक ही गुरु करने से अत्यन्त स्थिर होकर बढ़ने नहीं पाता, क्योंकि उस अद्वितीय ब्रह्म को कोई ऋषि प्रपंच-रहित कहते हैं तो कोई प्रपंच युक्त बतलाते हैं, कोई और प्रकार भी कहते हैं, इनसे भ्रम होजाता है, उसे मिटाने के लिये अपनी बुद्धि से अनेक दृष्टान्त रूप गुरु करने योग्य हैं, मैं ने ऐसा ही किया है ॥३१॥

श्रीभगवानुवाच

इत्युक्त्वा स यदुं विप्रस्तमामंत्र्य गभीरधीः ।
वंदितोऽभ्यर्थितो राज्ञा ययौ प्रीतो यथागतम् ॥३२॥

श्रीभगवान् बोले—राजा यदु की प्रार्थना तथा प्रणाम करने के कारण वे गंभीर बुद्धिवाले ब्राह्मण दत्तात्रेयजी इस प्रकार वर्णन करने के पीछे उनसे आज्ञा माँगकर प्रसन्नता पूर्वक जैसे आये थे वैसे ही दैवेच्छा से चले गये ॥ ३२ ॥

अथधूतवचः श्रुत्वा पूर्वेषां नः स पूर्वजः ।
सर्वसंगविनिर्मुक्तः समचित्तो बभूव ह ॥३३॥

अपने कुल वृद्ध राजा यदु ने गुरु दत्तात्रेयजी का वचन सुनकर समस्त सङ्ग त्याग कर केवल परब्रह्म में मन लगा दिया, अपने वंश में ऐसे-ऐसे महात्मा होचुके हैं कि जिनके कारण उनके वंशजों को भी मान मिलता है ॥३३॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥९॥

दसवां अध्याय

(उद्धव जी को भगवान का ज्ञानोपदेश)

श्रीभगवानुवाच

मयोदितेष्ववहितः स्वधर्मेषु मदाश्रयः ।
वर्णाश्रमकुलाचारमकामात्मा समाचरेत् ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले—पंचरात्र आदि में मेरे कहे हुए वैष्णव धर्मों में सावधान रहकर ऐसे निष्काम भाव से वर्णाश्रम तथा कुल-धर्म का पालन करना चाहिये कि जिससे उनमें विरोध न पड़े ॥१॥

अन्वीक्षेत विशुद्धात्मा देहिनां विषयात्मनाम् ।
गुणेषु तत्त्वध्यानेन सर्वारंभविपर्ययम् ॥ २ ॥

विषयी पुरुष विषयों को अचल मानकर जो-जो उद्योग करतेहैं उन सबका फल उलटा मिलता है. शुद्ध अन्तःकरण वाले को इस बात पर सदैव दृष्टि रखनी चाहिये, क्योंकि इससे निष्काम भाव उत्पन्न होता है ॥२॥

सुप्तस्य विषयालोको ध्यायतो वा मनोरथः ।
नानात्मकत्वाद्विफलस्तथा भेदात्मधीर्गुणैः ॥ ३ ॥

जो-जो विषय इन्द्रियों से जाने जाते हैं वे सब अनेक प्रकार के होने से अध्रुव होते हैं, जैसे कि मनसे उत्पन्न हुए स्वप्न और मनोरथ अनेक प्रकार के होने से अध्रुव हैं, ऐसा विचार करने से भी निष्काम-भाव उत्पन्न होते हैं ॥३॥

निवृत्तं कर्म सेवेत प्रवृत्तं मत्परस्त्यजेत् ।
जिज्ञासायां संप्रवृत्तो नाद्रियेत्कर्मचोदनाम् ॥ ४ ॥

मुझ में तत्पर रहते हुए पुरुषको निष्काम-कर्म करना चाहिये सकाम नहीं, आत्म-विचार में भले प्रकार प्रवृत्ति होजाने पर कर्म-विधिका भी आदर न करे ॥ ४ ॥

यमानभीक्ष्णं सेवेत नियमान्मत्परः क्वचित् ।
मद्भिज्ञं गुरुं शांतमुपासीत मदात्मकम् ॥ ५ ॥

मुझमें तत्पर रहनेवाला जो पुरुष संयम-नियम का पालन करे, सहन-शील हो, मेरे स्वरूप को जानता हो; शान्त हो, ऐसा पुरुष मेरा ही रूप है—ऐसे गुरु की सेवा करनी चाहिये ॥५॥

अमान्यऽमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढसौहृदः ।
असत्वरोऽर्थजिज्ञासुरनसूयुरमोघवाक् ॥ ६ ॥

गुरु-सेवा करनेवाले को मान, मत्सर, आलस्य और स्त्री-पुत्र आदि की ममता का त्याग, गुरु में दृढ़ प्रेम, अव्यग्र भाव और यथार्थ तत्वका विचार करना चाहिये और ईर्ष्या तथा व्यर्थ का बकवाद न करना चाहिये ॥६॥

जायापत्यगृहक्षेत्रस्वजनद्रविणादिषु ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदासीनः समं पश्यन्त्सर्वेष्वर्थमिवात्मनः ॥ ७ ॥

स्त्री, सन्तान, गृह, क्षेत्र, कुटुम्बी और धन आदि में उदासीन रहना चाहिये और सबमें एक ही आत्मा है-ऐसा विचार कर सबके सुख-दुःख को समान समझे ॥७॥

विलक्षणः स्थूलसूक्ष्मादेहादात्मेक्षिता स्वदृक् ।
यथाग्निर्दारुणो दाह्याद्दाहकोऽन्यः प्रकाशकः ॥८॥

यह आत्मा स्थूल व सूक्ष्म शरीर से भिन्न,सब का साक्षी, स्वयं ज्ञानवान् और आकाशके समानहै जैसे कि जलाने के काष्ठ से उसको जलाने तथा प्रकाशने वाला अग्नि अलग है ॥८॥

निरोधोत्पत्त्यणुबृहन्नानात्वं तत्कृतान्गुणान् ।
अंतः प्रविष्ट आधत्ते एवं देहगुणान्परः ॥ ९ ॥

जैसे काष्ठ में प्रविष्ट अग्नि उसके लिये नाश, उत्पत्ति, छोटापन, बड़प्पन और बहुरूपताको प्राप्त होता है, परन्तु स्वयं नहीं होता, ऐसे ही देह में प्रविष्ट आत्मा भी उसके लिये अनित्यता आदि गुणों को धारण करता हुआ भी उनको प्राप्त नहीं होता, आत्मा वास्तवमें देहसे भिन्न और नित्यहै ॥

योऽसौ गुणैर्विरचितो देहोऽयं पुरुषस्य हि ।
संसारस्तन्निबंधोऽयं पुंसो विद्याच्छिदात्मनः॥१०॥

यह स्थूल और सूक्ष्म शरीर ईश्वर के आधीन रहने वाली माया से रचा हुआ है, उसके अध्यास के लिये ही जीव को संसार में आना पड़ता है, इस संसार के काटने का उपाय आत्म-विद्याही है॥

तस्माज्जिज्ञासयात्मानमात्मस्थं केवलं परम् ।
संयम्य निरसेदेतद्वस्तुबुद्धिं यथाक्रमम् ॥११॥

इसलिये देह आदि में स्थित केवल और परमात्मा के विचारही से भली भांति आत्माको जान कर धीरे २ देह आदि पदार्थों से आत्म बुद्धि को छोड़ देना चाहिये ॥११॥

आचार्योऽरणिराद्यः स्यादंतेवास्युत्तरारणिः ।
तत्संधानं प्रवचनं विद्यासंधिः सुखावहः ॥१२॥

गुरु रूपी नीचे की अरणि, शिष्यरूपी ऊपरकी अरणि और उपदेश रूपी बीच का मंथन काष्ठ है, इन तीनोंमें से ब्रह्म-विद्यारूपी परम सुख देनेवाला अग्नि प्रकट होता है ॥१२॥

वैशारदी सातिविशुद्धबुद्धिर्धुनोति मायां गुण संप्रसूताम् । गुणांश्च संदह्य यदात्ममेतत् स्वयं च शाम्यत्यऽसमिद्यथाग्निः ॥१३॥

निपुण गुरुके द्वारा दी हुई और निपुण शिष्य द्वारा ग्रहण की हुई यह परम पवित्र ब्रह्म-विद्या गुणों के कार्य रूप संसार तथा उन गुणों को कि जिनसे यह जगत् जीव के लिये जन्म-मरण का कारण बना रहताहै, भस्म करके ईंधन रहित अग्नि नाईं आपभी शान्त होजाती है, ऐसी दशामें कार्य कारण और विद्या की एकता होने से जीव परमानन्द स्वरूप को पा जाता है ॥ १३ ॥

अथैषां कर्मकर्तॄणां भोक्तॄणां सुखदुःखयोः ।
नानात्वमथ नित्यत्वं लोककालागमात्मनाम्॥१४
मन्यसे सर्व भावानां संस्था ह्यौत्पत्तिकी यथा ।
तत्तदाकृतिभेदेन जायते विद्यते च धीः ॥१५॥

आत्मा वास्तवमें स्वयं प्रकाश, ज्ञानमय, नित्य और एक ही है, इसमें कर्त्ता तथा भोक्तापनके धर्म देहकी उपाधि से होते हैं, उसके सिवा और सभी पदार्थ माया-कृत हैं, इसलिये पुरुष सबसे विरक्त होकर मुक्त होजाता है परन्तु मीमांसकों का यह सिद्धान्त है कि "मैं हूँ" ऐसे भावसे समझमें आने वाला आत्मा प्रत्येक शरीर में भिन्नहै, वही कर्म, कर्त्ता और सुख-दुःख का भोक्ता है, इसका स्वरूप भूत कोई दूसरा निर्विकार आत्मा नहीं है, भोग के स्थान रूप लोक, भोग का काल, भोगके उपायरूप कर्मोंको बतलानेवाला वेद-यह सभी भोगके साधन और भोगों का भोगने वाला आत्मा-यदि अनित्य हों तो वैराग्य संभव है, परन्तु यह सब नित्य हैं, इसलिये वैराग्य नहीं होसकता, फिर भोग्य पदार्थ बीचमें नष्ट होजाते हों, या मायामयहों, तो वैराग्य संभव है, परन्तु जगत्में माला, चन्दन आदि सब पदार्थ प्रवाह रूप से नित्य हैं और यथार्थ रूप में हैं, इसलिये वैराग्य नहीं हो सकता, जगत् की स्थिति जैसी आज देखने में आती है वैसी पहले न थी, इसलिये जगत् का कर्त्ता ईश्वर भी नहीं है, फिर आत्मा भी स्वयं नित्य ज्ञानमय नहीं है, क्यों कि घट-पट आदि की नाईं उसके ज्ञानमें फेर-फार हुआ करताहै, मुक्ति में आत्मा इन्द्रिय आदि से रहित तथा ज्ञान-शून्य होजाने से जड़ जीवरूप हो जाता है, इसलिये मुक्ति का प्राप्त करना भी कोई पुरुषार्थ नहीं है, अर्थात् प्रवृत्ति-मार्ग अच्छा है, निवृत्ति नहीं ॥ १४॥१५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एवमप्यंग सर्वेषां देहिनां देहयोगतः ।
कालावयवतः संति भावा जन्मादयोऽसकृत्॥१६॥

हे उद्धव ! यदि प्रवृत्तिःमार्ग को ऐसा ही मान लिया जाय तो भी वह आगे अनर्थ का कारण ही सिद्ध होता है, क्योंकि प्राणीमात्रको देहके संयोग ही से संवत्सर रूपी काल के द्वारा जन्म-मरण आदि बारम्बार हुआ करते हैं ॥१६॥

अत्रापि कर्मणां कर्तुरस्वातंत्र्यं च लक्ष्यते ।
भोक्तुश्च दुःखसुखयोः को न्वर्थो विवशं भजेत्॥१७

मीमांसकों के सिद्धान्त के अनुसार कर्म करने तथा भोगने वाले जीव की पराधीनताभी नष्ट नहीं होती, यदि जीव परतन्त्र ही है तो ऐसे पुरुष को किसी प्रकार के पुरुषार्थ की प्राप्ति भी नहीं हो सकती, यदि जीव स्वतंत्र हो तो उसको दुष्कर्म या दुःख के भोग भी प्राप्त न होना चाहिये ॥१७॥

न देहिनां सुखं किंचिद्विद्यते विदुषामपि ।
तथा च दुःखं मूढानां वृथाहंकरणं परम् ॥१८॥

यदि यह कहा जाय कि योग्य सुखी और अयोग्य दुःखी होता है, तो यहभी ठीक नहीं क्यों कि कहीं विद्वान् पुरुष थोड़े से भी सुखी नहीं दीखते और कहीं मूढ़ थोड़ेसे भी दुःखी नहीं मिलते इसलिये जो यह कहते हैं कि हम कर्म करने में कुशल होने से सुखी हैं, वे केवल अहंकार में पड़े हुए हैं ॥ १८॥

यदि प्राप्तिं विघातं च जानंति सुखदुःखयोः ।
तेऽप्यद्धा न विदुर्योगं मृत्युर्न प्रभवेद्यथा ॥१९॥

यदि ऐसा मानलें कि यह लोग सुख-प्राप्ति और उससे छूटने का उपाय जानते हैं, परन्तु साक्षात् मृत्यु से बचने का उपाय नहीं जानते, परन्तु यह भी सिद्धान्त तो असत्य है क्योंकि कर्म करने से जीवन-पर्यन्त सुख भी नहीं रहता ॥१९॥

को न्वर्थः सुखयत्येनं कामो वा मृत्युरंतिके ।
आघातं नीयमानस्य वध्यस्येव न तुष्टिदः ॥२०॥

क्योंकि जब काल सिर पर नाच रहा है तब धन या भोग से क्या सुख माना जा सकता है ? जैसे अपराधी मनुष्य को मारने के लिये ले जाते समय अर्थ-काम आदि से सुख नहीं मिलता ॥२०॥

श्रुतं च दृष्टवद्दृष्टं स्पर्धासूयात्ययव्ययैः ।
बह्वंतरायकामत्वात्कृषिवच्चापि निष्फलम् ॥२१॥

इहलोक की भांति परलोक में भी सुख नहींहै, क्योंकि वहाँ भी स्पर्धा, ईर्ष्या, सुख का क्षय और दूसरे के समान अपने को सुख न मिलने का दुःख लगा रहता है, फिर जैसे खेती के सफल होने में अनेक विघ्न आजातेहैं, वैसेही यज्ञ आदि से मिलने वाले स्वर्ग आदि में भी कर्म की भूल-चूक आदि सम्बन्धी अनेक विघ्न उपस्थित होते हैं, इसलिये स्वर्ग आदि भी निष्फल हैं ॥२१॥

अंतरायैरविहतो यदि धर्मः स्वनुष्ठितः ।
तेनापि निर्जितं स्थानं यथा गच्छति तच्छृणु॥२२॥

इतने पर भी विघ्नोंका निवारण करके जो भले प्रकार धर्म किया जाय, तो उन धर्मों से पाये हुए स्थानोंमें जिस प्रकार यह प्राणी जाताहै-सो सुनो॥

इष्ट्वेह देवता यज्ञैः स्वर्लोकं याति याज्ञिकः ।
भुंजीत देववत्तत्र भोगान्दिव्यान्निजार्जितान्॥२३॥

इस लोक में यज्ञके द्वारा देवताओं को संतुष्ट करके यज्ञ करने वाला स्वर्ग में जाता है और वहाँ अपने कमाये हुए दिव्य भोगों को देवताओं की नाईं भोगता है ॥२३॥

स्वपुण्योपचिते शुभ्रे विमान उपगीयते ।
गंधर्वैर्विहरन् मध्ये देवीनां हृद्यवेषधृक् ॥२४॥

वह अपने पुण्य के प्रभाव से समस्त भोग-सम्पन्न सुन्दर विमान में मनोहर वेष धारण करके अप्सराओं के साथ विहार करता है और गन्धर्व उसके पास आकर उसकी कीर्त्ति गाते हैं ॥२४॥

स्त्रीभिः कामगयानेन किंकिणीजालमालिना ।
क्रीडन्न वेदात्मपातं सुराक्रीडेषु निर्वृतः ॥२५॥

घूंघरू समूहसे शोभायमान् तथा इच्छानुसार जाने वाले विमान में बैठकर देवताओं के बाग में विहार करता हुआ और आनन्द मग्न वह पुरुष यह नहीं जानता कि यहाँ से कभी गिरना पड़ेगा ॥

तावत् प्रमोदते स्वर्गे यावत्पुण्यं समाप्यते ।
क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन्कालचालितः॥२६॥

पुण्य पूर्ण होने तक वह स्वर्ग में आनंद पाया करता है, परन्तु पुण्य क्षीण होते ही काल के द्वारा चलायमान् होकर वह इच्छा न होते हुए भी नीचे गिर जाता है ॥२६॥

यद्यधर्मरतः संगादसतां वाऽजितेंद्रियः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कामात्मा कृपणो लुब्धस्त्रैणो भूतविहिंसकः॥२७॥
पशूनविधिनाऽऽलभ्य प्रेतभूतगणान् यजन्।
नरकानवशो जंतुर्गत्वा यात्युल्बणं तमः॥२८॥

इस प्रकार विधि-पूर्वक सकाम कर्म करने का फल कहा गया है, परन्तु विधिको तोड़ कर अधर्म करने वाले की जो गति होती है सो सुनो कि यदि नीच पुरुषों के संग अथवा अजितेन्द्रिय पन से विषयों में लगा हुआ, कृपण, भोग की तृष्णा से व्याकुल और स्त्रियों में लंपट पुरुष अधर्म-रत हो कर प्राणियों को मारे और धन आदि की तृष्णासे विधि छोड़कर पशु-वध द्वारा प्रेत या भूतों का यजन करे, तो वह पुरुष परतन्त्र होकर नरक में पड़ताहै और फिर स्थावर योनि पाताहै॥२७।२८॥

कर्माणि दुःखोदर्काणि कुर्वन् देहेन तैः पुनः।
देहमाभजते तत्र किं सुखं मर्त्यधर्मिणः॥२९॥

कर्म में प्रवृत्ति रखने वाला पुरुष न तो सुखही पाता है और न कर्मों से छूटने ही पाता है, क्योंकि वह देह धारण करके अन्त में दुःख देने वाले कर्म ही करता है और फिर उन्हीं कर्मों के कारण पुनर्जन्म पाता है, इस प्रकार जो मरण से मुक्त न हो उस प्राणी को कौनसा सुख मिल सकताहै?॥२९॥

लोकानां लोकपालानां मद्भयं कल्पजीविनाम्।
ब्रह्मणोपि भयं मत्तो द्विपरार्धपरायुषः॥३०॥

लोक और लोकपाल कल्पान्तर तक जीवित रहते हैं, परन्तु उन्हें भी मुझ काल रूप का भयहै, और द्वैपरार्ध तक जीवित रहने वाले महान् आयुष्वान् ब्रह्माको भी मुझ कालरूपका भय रहताहै॥

गुणाः सृजंति कर्माणि गुणोऽनुसृजते गुणान्।
जीवस्तु गुणसंयुक्तो भुंक्ते कर्मफलान्यसौ॥३१॥

इन्द्रियाँ कर्मों ही से बनती हैं, उन्हें सत्व, रज और तम-ये तीन गुण ही रचते हैं, आत्मा कुछ नहीं करता, यह जीव इन्द्रियों का संग करके अहं भाव धारण कर लेता है, इसी लिये कर्मों के फल को भोगता है॥३१॥

यावत्स्याद्गुणवैषम्यं तावन्नानात्वमात्मनः।
नानात्वमात्मनो यावत्पारतंत्र्यं तदैव हि॥३२॥

इन गुणों के धर्मसे जबतक अहम् भाव है, तब तक आत्मा अनेक रूप में जान पड़ता है, परन्तु जब ये माया के गुण छूट जाँयगे तब आत्मा एक ही प्रतीत होने लगेगा, जब तक आत्मा अनेक रूप में जान पड़ता है, तब तकही वह पराधीनहै॥३२॥

यावदस्याऽस्वतंत्रत्वं तावदीश्वरतो भयम्।
य एतत् समुपासीरंस्ते मुह्यंति शुचार्पिताः॥३३॥

जब तक पराधीन है तभी तक काल का भय है, जो लोग ऐसे प्रवृत्ति मार्ग का सेवन करते हैं, वही मोहमें पड़े हुए शोक भोगा करते हैं॥३३॥

काल आत्मागमो लोकः स्वभावो धर्म एव च।
इति मां बहुधा प्राहुर्गुणव्यतिकरे सति॥३४॥

काल, आत्मा, वेद, लोक, स्वभाव और धर्म यह नाम गुणों के सम्बन्ध ही से हैं, गुणों का सम्बन्ध छूटने पर सब मेरे ही स्वरूप होजाते हैं, वास्तव में केवल मैं ही हूँ, माया के कारण अनेक रूपमें प्रतीत होता हूँ, इसलिये निवृत्ति मार्ग ही उत्तम मुक्ति का कारण है॥३४॥

उद्धव उवाच

गुणेषु वर्तमानोऽपि देहजेष्वनपावृतः।
गुणैर्न बध्यते देही बध्यते वा कथं विभो॥३५॥

उद्धवजी बोले-हे भगवन्! आपके मतानुसार जब यह आत्मा गुणों से मिला हुआ होने पर भी उनके कार्य सुख-दुःख आदि से बद्ध नहीं है, इस लिये आकाश की भांति सर्वत्र व्याप्त है, निर्लेप और आवरण-रहितहै, तो वह बन्धनमें कैसे आता है? कि जिससे छूटने की आवश्यकता होती है॥

कथं वर्तेत विहरेत्कैर्वा ज्ञायेत लक्षणैः।
किं भुंजीतोऽत विसृजेच्छयीतासीत याति वा॥३६॥

यह बन्धन या मुक्ति के समय कैसा रहताहै? किस प्रकार रहता है? कैसा बिहार करता है? कैसे लक्षणोंसे जाना जाताहै? क्या भोजन करता है? क्या त्यागता है? कैसे सोताहै? कैसे बैठता है? कैसे चलता है?॥३६॥

एतदच्युत मे ब्रूहि प्रश्नं प्रश्नविदां वर।
नित्यबद्धो नित्यमुक्त एक एवेति मे भ्रमः॥३७॥

हे अच्युत! हे विदांवर! यह एक आत्माही नित्य बद्ध भी है और नित्य मुक्तभी है, इसमें मुझे भ्रम होता है, इसलिये मेरे इस प्रश्न का उत्तर आप दीजिये॥३७॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे दशमोऽध्यायः॥१०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ग्यारहवां अध्याय

(बद्ध-मुक्त और भक्ति के लक्षण)

श्रीभगवानुवाच

बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः ।
गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न बंधनम् ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले-तुम्हारे कथनानुसार आत्मा का बद्ध या मुक्तहोना केवल मेरे आधीन रहनेवाले गुणों के सम्बंध से जान पड़ता है, वास्तविक रूप से नहीं, गुणों का मूल माया है और मैं माया का नियन्ता हूँ, इसलिये बन्ध या मोक्ष मुझे कुछ भी नहीं है ॥१॥

शोकमोहौ सुखं दुःखं देहोत्पत्तिश्च मायया ।
स्वप्नो यथात्मनः ख्यातिः संसृतिर्न तु वास्तवी॥२॥

मुझे माया के द्वारा ही मोह. सुख-दुःख देहकी प्राप्ति आदि सांसारिक धर्म प्राप्त होतेहैं, जैसे स्वप्न केवल बुद्धि का ही विवर्त है, वास्तविक नहीं॥२॥

विद्याविद्ये ममतनू विद्ध्युद्धव शरीरिणाम् ।
मोक्षबंधकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते ॥ ३ ॥

हे उद्धव ! प्राणियों को मोक्ष देने वाला-ज्ञान और बन्ध देने वाला अज्ञान-यह दोनों मेरी अनादि शक्तियाँ हैं और मायाकृत हैं, ऐसा जानो ॥३॥

एकस्यैव ममांशस्य जीवस्यैव महामते ।
बंधोऽस्याविद्ययाऽनादिर्विद्यया च तथेतरः ॥ ४ ॥

हे महामति उद्धव ! मैं जब तक अज्ञान को प्रवृत्त करता हूँ तब तक मेरे अंश रूप जीव को बन्धन प्रतीत होता है और जब ज्ञान देता हूँ तब मोक्ष प्राप्त होती है अर्थात् बन्ध और मोक्ष दोनों अनादि हैं और मैं दोनों से परे हूँ ॥४॥

अथ बद्धस्य मुक्तस्य वैलक्षण्यं वदामि ते ।
विरुद्धधर्मिणोस्तातस्थितयोरेकधर्मिणि ॥ ५ ॥

अब बद्ध और मुक्त में भेद क्या है ? तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर देता हूँ सो सुनो, हे तात ! ये भेद दो प्रकारसे है, पहले ईश्वर और जीवका भेद दूसरे जीव का ही जीव से भेद, इनमें से पहला भेद यों समझो कि एक ही शरीर में स्थित रहने पर भी ईश्वर का धर्म आनन्दहै और जीवका दुख आदि, ईश्वर नियन्ता है और जीव नियन्त्रण में रहने वाला है ॥५॥

सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ यदृच्छयैतौ कृतनीडौ च वृक्षे । एकस्तयोः खादति पिप्पलान्नमन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान् ॥ ६ ॥

जैसे वृक्ष पर घोंसला बनाकर रहनेवाले पक्षी वृक्ष से जुदे हैं, ऐसे ही जीव और ईश्वर शरीर रूपी वृक्ष में हृदय रूपी घोंसला बनाकर रहते हुए भी शरीर से जुदे हैं, दोनों चैतन्य रूप से समानहैं और साथ रहने तथा एक मत होने से सखाभी हैं उनके निवास की कारण रूप माया कहने में नहीं आती, इनमें से जीव रूप पक्षी तो शरीररूपी वृक्ष के (कर्म रूप) फल भोगता है, परन्तु ईश्वर रूपी पक्षी केवल अपने आनन्द से ही तृप्त रहताहै और ज्ञान आदि शक्तियोंके कारण जीवसे अधिक बलिष्ट भी रहता है ॥६॥

आत्मानमन्यं च स वेद विद्वानपिप्पलादो न तु पिप्पलादः । योऽविद्यया युक्स तु नित्यबद्धो विद्यामयो यः स तु नित्यमुक्तः ॥ ७ ॥

कर्म-फल न भोगने वाला सर्वज्ञ ईश्वर अपने आपको तथा जीव को जानता है, परन्तु कर्म-फल भोगने वाला अल्पज्ञ जीव यथार्थ रूप से न अपने आप को जानता है और न ईश्वर को, इसलिये अज्ञान मय जीव अनादि कालसे बद्धहै और माया मय होने पर भी सत्व गुण की अधिकताके कारण ईश्वर सर्वज्ञ तथा अनादि काल से मुक्त है ॥७॥

देहस्थोपि न देहस्थो विद्वान् स्वप्नाद्यथोत्थितः ।
अदेहस्थोपि देहस्थः कुमतिः स्वप्नदृग् यथा॥ ८ ॥

जो अपने स्वरूप और परमात्मा को जानते हैं वही पण्डित हैं, शरीर में रहते हुए भी उससे जुदे हैं, उनको देह के धर्म नहीं व्यापते, जैसे स्वप्न से जागे हुए पुरुष को स्वप्न-शरीरके धर्म नहीं व्यापते परन्तु जो अज्ञानी हैं, वे देह-वस्तु से जुदे होते हुए भी उसमें देहाभिमानके कारण स्थित हैं और सुख दुःख को भोगते हैं, जैसे स्वप्न-देह में स्थित रहने वाला स्वप्न सम्बन्धी सुख-दुःख को भोगताहै॥८॥

इंद्रियैरिंद्रियार्थेषु गुणैरपि गुणेषु च ।
गृह्यमाणेष्वहं कुर्यान्न विद्वान् यस्त्वविक्रियः॥ ९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राग-द्वेष रहित मुक्त पुरुष की इन्द्रियाँ विषय को ग्रहण भी करती हैं पर वह अपने को भोक्ता नहीं मानता और यह समझ कर उससे निर्लेप रहताहै कि गुणोंके कार्यको गुणही ग्रहण करते हैं॥

दैवाधीने शरीरेऽस्मिन्गुणभाव्येन कर्मणा ।
वर्तमानोऽबुधस्तत्र कर्तास्मीति निबध्यते ॥१०॥

परन्तु अज्ञानी पुरुष पूर्व कर्म के कारण प्राप्त हुई देह में रहकर इन्द्रियों से होने वाले कर्मों का कर्त्ता अपने को मानता है और इसी अहङ्कार के कारण बन्धन में पड़ जाता है, ज्ञानी मुक्त पुरुष सुख-दुःख रहित अहङ्कार हीन होकर देह में वर्त्ता करता है परन्तु अज्ञानी इससे विपरीत होता है, यही मुक्त और बद्ध पुरुष में भेद है ॥१०॥

एवं विरक्तः शयन आसनाटनमज्जने ।
दर्शनस्पर्शनघ्राणभोजनश्रवणादिषु ॥११॥

जिस पुरुषको ऐसे रूपसे वैराग्य तथा विवेक होजाताहै क्योंकि वह बद्ध नहीं होता; वह इन्द्रियों को विषय-भोग कराता है-स्वयं नहीं करता ॥११॥

न तथा बध्यते विद्वांस्तत्र तत्रादयन्गुणान् ।
प्रकृतिस्थोऽप्य संसक्तो यथा खं सवितानिलः॥१२॥

जैसे आकाश सब जगह व्याप्त होता हुआ भी सब से अलगहै, जैसे सूर्य जल आदि में प्रतिबिंब रूप से रहता हुआ भी उसके कम्प रूपी धर्म से जुदा है, जैसे वायु सर्वत्र चलता हुआ भी निर्लेपहै ऐसे ही आत्मा इस देह में स्थित रहकर इन्द्रियों के स्वभावानुसार उनके गुणोंको ग्रहण करताहुआ भी उन सबसे भिन्न है ॥१२॥

वैशारद्येक्षयाऽसंगशितया छिन्नसंशयः ।
प्रतिबुद्ध इव स्वप्नान्नानात्वाद्विनिवर्तते ॥१३॥

जैसे जागा हुआ पुरुष स्वप्न-सम्बंधी धर्मों से निवृत्त होजाताहै, वैसेही वैराग्य द्वारा तीक्ष्ण और निर्मल ज्ञान द्वारा समस्त संशय काट कर अनेक प्रकारके इन प्रपंचों से छूट जाता है ॥१३॥

यस्य स्युर्वीतसंकल्पाः प्राणेंद्रियमनोधियाम् ।
वृत्तयः स विनिर्मुक्तो देहस्थोपि हि तद्गुणैः॥१४॥

जिस पुरुष की प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धि की वृत्तियाँ सङ्कल्प-विकल्प रहित होगई हों, वह देह में रहकर भी उसके धर्मसे मुक्त रहताहै ॥१४॥

यस्यात्मा हिंस्यते हिंस्रैर्येन किंचिद्यदृच्छया ।
अर्च्यं ते वा क्वचित्तत्र न व्यतिक्रियते बुधः ॥१५॥

जिसको किसी दुष्ट या अन्य प्राणी से दैहिक कष्ट मिले या दैवयोग से कहीं सन्मान प्राप्त हो, पर उसे कुछ विषाद या हर्ष हो तो वह महात्माहै ऐसा समझना चाहिये, अन्यथा बद्ध पुरुष मानना चाहिये ॥ १५ ॥

न स्तुवीत न निंदेत कुर्वतः साध्वसाधु वा ।
वदतो गुणदोषाभ्यां वर्जितः समदृङ्मुनिः ॥१६॥

जो गुण-दोष रहित और समदर्शी होकर अच्छे या बुरे व्यवहार वाले अथवा अच्छी या बुरी तरह बोलने वाले की स्तुति या निंदा न करे, लौकिक व्यवहार से न्यारा रहे, वही मुनि और मुक्त पुरुष है ॥१६॥

न कुर्यान्न वदेत्किंचिन्न ध्यायेत्साध्वसाधु वा ।
आत्मारामोऽनया वृत्त्या विचरेज्जडवन्मुनिः॥१७॥

मुनि लोग कर्म आदि में उदासीन रहते हैं, न कुछ करते हैं न विचार करतेहैं और न बुरी भली बात मनमें रखते हैं, एक आत्मा ही में रमण करते हैं और जड़की भांति विचरण किया करते हैं ॥१७॥

शब्दब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात्परे यदि ।
श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः ॥१८॥

जो लक्षण मुक्त पुरुष के कहे गये हैं, यही मुमुक्षु पुरुषके भी हैं, जो पुरुष वेदमें यथार्थ रीति से निपुण होकर पण्डित बन जाय, परन्तु उसके अर्थ में निष्ठा रखकर पूर्वोक्त साधनों से परब्रह्म में ध्यान आदि न करे तो उसका वह अभ्यासका श्रम निष्फल है, जैसे बहुत दिनोंकी प्रसूता हुई गाय से दूधके दुहनेकी इच्छावाले का श्रम व्यर्थही जाताहै॥

गां दुग्धदोहामसतीं च भार्यां देहं पराधीनम-
सत्प्रजां च । वित्तं त्वतीर्थीकृतमंग वाचं हीनां
मया रक्षति दुःखदुःखी ॥१९॥

हे उद्धव ! जो दुहीहुई गौ, कामना रहित स्त्री, क्षण-क्षणपर दुःखदायी देह; दोनों लोकों के साधन न बनने वाले पुत्र, सुपात्र को न देते हुए पाप और अपकीर्त्ति बढ़ाने वाले धन को, और मेरे प्रसंग-विहीन वाणी को रखता है, उस पुरुष को दुःखीसे से भी दुःखी समझना चाहिये ॥१९॥

यस्यां न मे पावनमंग कर्म स्थित्युद्भवप्राण-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निरोधमस्य। लीलावतारेप्सितजन्म वा स्याद्वंध्यां गिरं तां बिभृयान्न धीरः ॥२०॥

हे उद्धव! जिस वाणीसे इस जगत्की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय करने के पवित्र चरित्र अथवा लीला से धारण किये हुए अवतारों में से जगत् के प्यारे अवतारका वर्णन नहीं होता, ऐसी वंध्या वाणी बुद्धिमान् को रखना उचित नहीं ॥२०॥

एवं जिज्ञासयाऽपोह्य नानात्वभ्रममात्मनि।
उपारमेत विरजं मनो मय्यर्प्य सर्वगे ॥२१॥

इस भांति निश्चय करके विचार बल से देह आदि के अध्यास को छोड़कर मेरे स्वरूप में शुद्ध मन लगाते हुए तृप्त होना चाहिये, कोरी पंडिताई पर बस न कर बैठना चाहिये ॥२१॥

यद्यनीशो धारयितुं मनो ब्रह्मणि निश्चलम्।
मयि सर्वाणि कर्माणि निरपेक्षः समाचर ॥२२॥

यदि तुम परब्रह्म में मन लगाने से असमर्थ हो तो यह भी छोड़कर निष्काम भाव से जो भी करो वह मेरे अर्पण कर दो ॥२२॥

श्रद्धालुर्मे कथाः शृण्वन्सुभद्रा लोकपावनीः।
गायन्ननुस्मरन्कर्म जन्म चाभिनयन्मुहुः ॥२३॥
मदर्थे धर्मकामार्थानाचरन्मदपाश्रयः।
लभते निश्चलां भक्तिं मय्युद्धव सनातने ॥२४॥

हे उद्धव! जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक परम कल्याण रूप और लोक पावनी मेरी कथा सुनता रहे, मेरे जन्म और कर्मों का बार-बार स्मरण, गायन और अनुकरण करता रहे, मेरी प्रीति के लिये धर्म, अर्थ और काम का सेवन करे तथा मेरेही आश्रित रहा करे, उस मनुष्य को मुझ सनातनकी निश्चल भक्ति प्राप्त होती है ॥२३॥२४॥

सत्संगलब्धया भक्त्या मयि मां समुपासिता।
स वै मे दर्शितं सद्भिरंजसा विंदते पदम् ॥२५॥

इस प्रकार सत्संग से प्राप्त हुई मेरी भक्ति के द्वारा वह ध्यान करता हुआ, उन साधुओं के बतलाये हुए मेरे स्वरूप को सहज ही में अवश्य पा जाता है ॥ २५॥

उद्धव उवाच

साधुस्तवोत्तमश्लोकमतः कीदृग्विधः प्रभो।
भक्तिस्त्वय्युपयुज्येत कीदृशी सद्भिरादृता ॥२६॥

उद्धवजी बोले–हे उत्तमकीर्त्ति प्रभु! अपनी २ बुद्धिके अनुसार अनेकों अपने को साधु मानते हैं, परन्तु आप कैसे लक्षणों वाले को साधु मानते हैं? इसी तरह कई प्रकार की भक्ति भी है परन्तु आप की प्राप्तिके लिये कैसी भक्ति उपयोगी होती है? और साधुजन कैसी भक्तिका सन्मान करते हैं?

एतन्मे पुरुषाध्यक्ष लोकाध्यक्ष जगत्प्रभो।
प्रणतायानुरक्ताय प्रपन्नाय च कथ्यताम् ॥२७॥

हे पुरुषाध्यक्ष! हे लोकनायक! हे जगत्प्रभो! यह बात बड़ीही गूढ़ है, इसलिये मुझ प्रणत-स्नेही और शरणागत भक्त से इसका कहना आपको उचित है ॥२७॥

त्वं ब्रह्म परमं व्योम पुरुषः प्रकृतेः परः।
अवतीर्णोऽसि भगवन्स्वेच्छोपात्तपृथग्वपुः ॥२८॥

हे भगवान्! आप आकाश की भांति असंग, प्रकृति से परे, परम पुरुष और परब्रह्म (होकरभी) भक्तों की अभिलाषा पूर्ण करने के लिये यह आवरण मय देह धारण करके प्रकट हुए हो, इसलिये आपके द्वारा मैं यह लाभ उठाना चाहता हूँ ॥२८॥

श्रीभगवानुवाच

कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम्।
सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः ॥२९॥
कामैरहतधीर्दांतो मृदुः शुचिरकिंचनः।
अनीहो मितभुक् शांतः स्थिरो मच्छरणो मुनिः ३०
अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुणः।
अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः ३१॥
आज्ञायैवं गुणान्दोषान्मयाऽऽदिष्टानपि स्वकान्।
धर्मान्संत्यज्य यः सर्वान्मां भजेत स सत्तमः ॥३२॥

श्रीभगवान् बोले–जो पराया दुःख न देख सकें किसी से बैर न करें, क्षमा रक्खें, सत्यबोलें, निंदा आदि दोषों से रहित, समदर्शी, सुख-दुःख में एक भाव रहें, यथा शक्ति परोपकार करें; सभीके अपराधों को सह सकें, जिनकी बुद्धि काम से चञ्चल न हो, बाहरी इन्द्रियाँ जीतकर जो कोमल शुद्ध चित्त रहें, संग्रह न करें, व्यर्थके काम न करें; थोड़ा भोजन करें, शान्त हों, स्वधर्म में स्थित रहें, एक मेरा ही आश्रय लें, मेरा ही स्मरण करें, सावधान निर्विकार और धीरजवान् होकर क्षुधा, प्यास,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शोक, मोह, जरा, मृत्यु को जीते रहें; स्वयं अभिमानी न हों, दूसरों का सत्कार करें, औरों को समझा सकें, सबके मित्र रहें, सबका हित चाहें, दयालु तथा पूर्ण ज्ञानी हों, ऐसे ही पुरुष साधु कहलातेहैं,मेरे स्वरूपभूत वेदके बतलाये हुए स्वधर्म पालन से हृदय-शुद्धि आदि गुण उत्पन्न होते हैं, पालन न करने से दोष बढ़ते हैं-यह सिद्धान्त भली भांति समझ लेने पर भी उनको प्रभु के ध्यान में विक्षेप करने वाला जानकर जो यह निश्चय करता है कि यदि मैं इन धर्मों का पालन न करूँगा तोभी यह भक्ति द्वारा सिद्ध होजाँयगे या जो भक्ति की दृढ़ता के कारण अपने धर्मोंका अधिकार रुक जाने से उनको त्याग करके केवल मेरा ही भजन करता है उसको भी श्रेष्ठ साधु समझना चाहिये २९-३२॥

ज्ञात्वाऽज्ञात्वाऽथ ये वै मां यावान्यश्चास्मि यादृशः।
भजंत्यनन्यभावेन ते मे भक्ततमा मताः ॥३३॥

जो मुझे देश-काल के आवरणसे रहित, सर्वात्मा और सच्चिदानन्द रूप जानकर मनन आदि के द्वारा विशेष अनुभव करके दृढ़ तथा अनन्य भाव से भजते हैं, मैं उन्हें भी उत्तम साधु समझताहूँ॥

मल्लिंगमद्भक्त जनदर्शनस्पर्शनार्चनम् ।
परिचर्या स्तुतिः प्रह्वगुणकर्मानुकीर्तनम् ॥३४॥
मत्कथाश्रवणे श्रद्धा मदनुध्यानमुद्धव ।
सर्वलाभोपहरणं दास्येनात्मनिवेदनम् ॥३५॥
मज्जन्मकर्मकथनं मम पर्वानुमोदनम् ।
गीततांडववादित्रगोष्ठीभिर्मद्गृहोत्सवः ॥३६॥
यात्रा बलिविधानं च सर्ववार्षिकपर्वसु ।
वैदिकी तांत्रिकी दीक्षा मदीयव्रतधारणम् ॥३७॥
ममार्चास्थापने श्रद्धा स्वतः संहत्य चोद्यमः ।
उद्यानोपवनाक्रीडपुरमंदिरकर्मणि ॥३८॥
संमार्जनोपलेपाभ्यां सेकमंडलवर्तनैः ।
गृहशुश्रूषणं मह्यं दासवद्यदमायया ॥३९॥
अमानित्वमदंभित्वं कृतस्यापरिकीर्त्तनम् ।
अपि दीपविलोकं मे नोपयुंज्यान्निवेदितम् ॥४०॥
यद्यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः ।
तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदानंत्याय कल्पते ॥४१॥

हे उद्धव ! मेरी मूर्त्तियों तथा मेरे भक्तों का दर्शन, स्पर्शन और पूजन करना, उनकी सेवा, स्तुति एवं उनके गुण कर्म कहना, नम्र रहना, मेरी कथाओं में श्रद्धा रखना, मेरा ध्यान करना, जो भी मिल जाय वह मुझे अर्पण करना, दास्य भाव से शरीर का निवेदन करना, मेरे जन्म-कर्म का वर्णन करना, जन्म-अष्टमी आदि पर्व मनाना और ऐसे अवसरों पर गायन, नृत्य तथा सभायें करके मेरे मन्दिरों में उत्सव करना, प्रति वर्ष के पर्व-दिनोंपर यात्रा और महा नैवेद्य करना, वैदिक या तांत्रिक दीक्षा लेना, मेरे व्रत धारण करना, मेरी मूर्त्ति-स्थापना में श्रद्धा रखना,यदि सामर्थ्य हो तो नगर या मन्दिर स्वयं बनवाना और शक्ति न हो तो दूसरों से मिलकर उस काममें सहायता पहुंचाना निश्चल भाव से झाड़ देना, लीपना, जल आदि से छिड़काव करना, चौक, चित्रकारी आदि से सजा कर दास की नाईं मेरे मन्दिर की सेवा करना, अभिमान और दंभ न करना, अपनी करणी न कहना, मुझे अर्पित वस्तुओं से अपने गृह-संबंधी कार्य न करना, लोक में जो-जो पदार्थ अपने को अत्यन्त प्रिय हों अथवा अधिक उत्कंठा के योग्य हों, वे सब मेरे अर्पण करना, इसका अक्षय फल मिलता है॥३४—४१॥

सूर्योऽग्निर्ब्राह्मणो गावो वैष्णवः खं मरुज्जलम् ।
भूरात्मा सर्वभूतानि भद्र पूजापदानि मे ॥४२॥

हे उद्धव ! सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, वैष्णव, हृदयाकाश, पवन, जल, पृथ्वी, आत्मा और प्राणी मात्र-ये ग्यारह मेरे पूजन के स्थान हैं ॥४२॥

सूर्ये तु विद्यया त्रय्या हविषाग्नौ यजेत माम् ।
आतिथ्येन तु विप्राग्र्ये गोष्वंग यवसादिना॥४३॥

वेद-विधिसे सूर्यमें मेरा पूजन करना चाहिये, अग्नि में घृत डालकर मेरा पूजन करना चाहिये, ब्राह्मणों में आतिथ्य-भाव द्वारा मेरा पूजन करना चाहिये, गाय में उसे उत्तम तृण आदि खिलाकर मेरा पूजन करना चाहिये ॥४३॥

वैष्णवे बंधुसत्कृत्या हृदि खे ध्याननिष्ठया ।
वायौ मुख्यधिया तोये द्रव्यैस्तोयपुरस्कृतैः॥४४॥

वैष्णवों में उनका बन्धु की भांति सत्कार कर के मेरा पूजन करना चाहिये, हृदयाकाश में ध्यान के द्वारा, वायु में प्राण बुद्धि द्वारा और जल में तर्पण आदि के द्वारा मेरा पूजन करना चाहिये ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थंडिले मंत्रहृदयैर्भोगैरात्मानमात्मनि ।
क्षेत्रज्ञं सर्वभूतेषु समत्वेन यजेत माम् ॥४५॥

पृथ्वी में रहस्य मन्त्र के द्वारा न्यास करके मेरा पूजन करना चाहिये, अपने आत्मा में उसे भोग देकर मेरा पूजन करना चाहिये और प्राणी मात्र में समदृष्टि रखकर मुझ सर्वान्तर्यामी का पूजन करना चाहिये ॥४५॥

धिष्ण्येष्वेष्विति मद्रूपं शंखचक्रगदांबुजैः ।
युक्तं चतुर्भुजं शांतं ध्यायन्नर्चेत्समाहितः ॥४६॥

इन स्थानों में शंख, चक्र, गदा और पद्माधारी मुझ चतुर्भुज और शान्त स्वरूप का ध्यान करके इन्द्रियजित बनकर मन्त्रों के द्वारा मेरा पूजन करना चाहिये ॥४६॥

इष्टापूर्तेन मामेवं यो यजेत समाहितः ।
लभते मयि सद्भक्तिं मत्स्मृतिः साधुसेवया ॥४७॥

जो जितेन्द्रिय पुरुष यजन, बावली-कूपादि का निर्माण कराके पूर्वोक्त विधि से मेरा पूजन करताहै उसे मेरी दृढ़ भक्ति प्राप्त होजाती है और उससे साधु पुरुषों की सेवा द्वारा मेरा ज्ञान होजाता है ॥

प्रायेण भक्तियोगेन सत्संगेन विनोद्धव ।
नोपायो विद्यते सध्र्यङ् प्रायणं हि सतामहम् ४८॥

हे उद्धव ! बहुधा सत्संगसे मिलने वाले भक्ति योग के सिवा दूसरा कोई सरल उपाय संसार-सागर से पार होने का नहीं है, मैं सत्पुरुषों का उत्तम आश्रय हूँ; इसलिये उनके सत्संग से मैं शीघ्र ही प्राप्त होजाता हूँ ॥४८॥

अथैतत्परमं गुह्यं शृण्वतो यदुनंदन ।
सुगोप्यमपि वक्ष्यामि त्वं मे भृत्यः सुहृत् सखा ४९॥

हे उद्धव ! एक विषय यद्यपि अत्यन्त रहस्य-पूर्ण और सबसे गोपनीय है, फिर भी मैं तुमसे कहता हूँ, क्योंकि तुम मेरे दास, बन्धु और सखा हो और (मेरे उपदेश को) श्रद्धा-पूर्वक सुनरहे हो॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

बारहवां अध्याय

(साधुसंग महिमा—कर्मानुष्ठान और कर्मत्याग की विधि)

श्रीभगवानुवाच

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥१॥
व्रतानि यज्ञश्छंदांसि तीर्थानि नियमा यमाः ।
यथावरुंधे सत्संगः सर्वसंगापहो हि माम् ॥ २ ॥

श्रीभगवान् बोले—योग, तत्व ज्ञान, धर्म, वेदाध्ययन, तप, सन्यास, यज्ञ, पूर्त-कर्म, दक्षिणा, व्रत, देव पूजा, मन्त्र, तीर्थ, यम-नियम—ये सब मुझे इतना वशमें नहीं कर सकते, जितना समस्त संग को निवृत्त करने वाला सत्संग मुझे वश में कर लेता है ॥१॥२॥

सत्संगेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः ।
गंधर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः ॥ ३ ॥
विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोऽन्त्यजाः ।
रजस्तमः प्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन्युगेऽनघ ॥ ४ ॥

हे उद्धव ! दैत्य, राक्षस, मृग, पक्षी, गन्धर्व, अप्सरायें, नाग, सिद्ध, चारण, यक्ष, विद्याधर और मनुष्यों में भी वैश्य, शूद्र, स्त्रियाँ तथा अन्त्यज-जो कि रजोगुणी और तमोगुणी स्वभाव वाले हैं, वे भी उस युग में केवल सत्संग के कारण मुझे प्राप्त होसके हैं ॥३॥॥४॥

बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः ।
वृषपर्वा बलिर्बाणो मयश्चाथ विभीषणः ॥ ५ ॥
सुग्रीवो हनुमान्ऋक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथः ।
व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथा परे॥ ६ ॥

वृत्रासुर, प्रह्लाद आदि, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मयदानव, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, जांबवंत गजेन्द्र, जटायु पक्षी, तुलाधार वैश्य, धर्मव्याध, कुब्जा, व्रज की गोपियाँ, यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों की स्त्रियाँ और दूसरे लोग भी सत्संग के प्रभाव से मेरे पदको प्राप्त हुए हैं ॥५॥६॥

ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः ।
अव्रतातप्ततपसः सत्संगान्मामुपागताः ॥ ७ ॥

उन लोगों ने न तो अध्ययन किया और न अध्ययन के लिये महात्माओं की सेवा की, न व्रत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

या तप किया, फिर भी सत्संग के प्रभाव से मुझे प्राप्त हुए ॥७॥

केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः ।
येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरंजसा॥ ८ ॥

गोपियाँ, गौयें, ऋक्ष, मृग, नाग तथा दूसरे भी मूढ़ बुद्धिवाले जीव केवल सत्संग से प्राप्त हुए भाव से सफल होकर मुझको सहज ही में प्राप्त हो गये ॥ ८ ॥

यं न योगेन सांख्येन दानव्रततपोऽध्वरैः ।
व्याख्यास्वाध्यायसंन्यासैः प्राप्नुयाद्यत्नवानपि ९॥

योग, सांख्य, दान, व्रत, तप, यज्ञ, व्याख्यान, वेदाध्ययन और सन्यास के लिये यत्न करने वाले भी मेरे जिस पद को नहीं पासके, उस स्वरूप को पूर्वोक्त प्राणी केवल सत्संग से प्राप्त होगये हैं ॥९॥

रामेण सार्धं मथुरां प्रणीते श्वाफल्किना मय्य-
नुरक्तचित्ताः । विगाढभावेन न मे वियोगतीव्राध
योऽन्यं ददृशुः सुखाय ॥१०॥

हे उद्धव ! जब अक्रूर बलरामजी सहित मुझे मथुरा में लेगये, तब दृढ़ प्रीति के साथ मुझमें आसक्त चित्त वाली और वियोगके कारण दुःसह दुःख में पड़ी हुई गोपियोंने सुखके लिये मेरे सिवा और की आशा भी न की ॥१०॥

तास्ताः क्षपाः प्रेष्ठतमेन नीता मयैव वृंदावन
गोचरेण । क्षणार्धवत्ताः पुनरंग तासां हीना मया
कल्पसमा बभूवुः ॥११॥

मुझ प्रियतम के साथ विचरण करने में उन गोपियों को जो रातें आधे क्षण की भांति बीत गईं वही रातें मेरा वियोग होने पर कल्प के समान बड़ी हो गईं ॥ ११ ॥

ता नाविदन्मय्यनुषंगबद्धधियः स्वमात्मान-
मदस्तथेदम् । यथा समाधौ मुनयोऽब्धितोये
नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे ॥१२॥

जिस तरह से समाधिस्थ योगीजनों को अपने नाम या स्वरूप का भान नहीं रहता, वैसेही गोपियों की बुद्धि मुझ में अधिक आसक्त होगई थी, इसलिये उन्हें पति-पुत्र आदि, देह, लोक तथा पर लोक का कुछ भी भान न रहा था और वे मेरे स्वरूप में इस प्रकार समागईं जैसे नदियाँ समुद्र में समा जाती हैं ॥१२॥

मत्कामा रमणं जारमस्वरूपविदोऽबलाः ।
ब्रह्म मां परमं प्रापुः संगाच्छतसहस्रशः ॥१३॥

इसप्रकार केवल मेरी इच्छा करनेवाली हज़ारों स्त्रियाँ यद्यपि मेरे वास्तविक स्वरूप को न जानती थीं, फिर भी जार-बुद्धि द्वारा जाने हुए मेरे प्रति ब्रह्म-सत्सङ्ग के प्रभाव से मुक्त होगईं ॥१३॥

तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम् ।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेव च ॥१४॥
मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम् ।
याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः ॥१५॥

हे उद्धव ! यह मेरे भजन का ही प्रभाव है कि जो जार बुद्धिके द्वारा भी गोपियाँ मुझे प्राप्त होगईं, इसलिये तुम श्रुति-स्मृति के विधि-निषेध, प्रवृत्ति-निवृत्ति के धर्म और सुना-सुनाया छोड़कर मुझ सब देहधारियों के आत्मरूप का सबमें भाव रख कर मेरी अनन्य शरण लेकरही निर्भय होसकोगे ॥

उद्धव उवाच

संशयः शृण्वतो वाचं तव योगेश्वरेश्वरः ।
न निवर्त्तत आत्मस्थो येन भ्राम्यति मे मनः॥१६॥

उद्धवजी बोले–हे योगेश्वरों के ईश्वर ! "आप पहले तो यह कहचुके हैं कि मेरा भजन करो और अब कहते हैं कि सर्वस्व त्यागकर मेरी शरण लो" इससे मेरे चित्त में भ्रम होगया है कि त्याग करूँ या भजन–इसलिये आप इस संशयको मिटाइये ॥

श्रीभगवानुवाच

स एष जीवो विवरप्रसूतिः प्राणेन घोषेण गुहां
प्रविष्टः । मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपं मात्रा स्वरो
वर्ण इति स्थविष्ठः ॥१७॥

श्रीभगवान् बोले–वह ईश्वर पहले नाद वाले प्राण रूप से आधार चक्र में प्रवेश करता है, मनोमय सूक्ष्म रूप से दीखता है, और "परावाणी" नाम से पुकारा जाता है, फिर वाणी रूप परमेश्वर मणिपूरक चक्र में आकर "पश्यन्ती वाणी" नामसे जाना जाता है; फिर विशुद्धि चक्र में आने पर "मध्यमा वाणी" नाम के कहा जाता है, फिर मुख में आकर अत्यन्त स्थूल स्वर मात्रादि अक्षर रूप 'वैखरी' नाम से विविध रूप में होजाता है ॥१७॥

यथाऽनलः खेनिलबंधुरूष्मा बलेन दारुण्यधि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मथ्यमानः । अणुः प्रजातो हविषा समिध्यते तथैव मे व्यक्तिरियं हि वाणी ॥१८॥

जैसे अग्नि गर्मी रूप से आकाश में विद्यमान रहता है, फिर वही वायुकी सहायतासे बल-पूर्वक काष्ट मन्थन से छोटी सी चिनगारीके रूपमें प्रकट होता है, वही हविष्य आदि से बढ़ता है, वैसे ही वाणी प्रकट होने का यही स्थान है ॥१८॥

एवंगदिः कर्मगतिर्विसर्गो घ्राणो रसो दृक्स्पर्शः श्रुतिश्च । संकल्पविज्ञानमथाभिमानः सूत्रं रजः सत्वतमो विकारः ॥१९॥

हाथों का धर्म क्रिया, चरणों का धर्म चलना, गुह्येन्द्रिय का धर्म मल त्याग आदि, ज्ञानेन्द्रियों के धर्म घ्राण, रस, दर्शन, और श्रवण आदि, मन का धर्म सङ्कल्प-विकल्प आदि, चित्तका धर्म विज्ञान और बुद्धि, अहङ्कार का धर्म अभिमान, सूत्र माया का धर्म सत, रज, तम इन तीनों गुणों का विकार अधिदैव, अध्यात्म और अधिभूत यह सब मेरे प्रकट होने के स्थान हैं ॥१९॥

अयं हि जीवस्त्रिवृदब्जयोनिरव्यक्त एको वयसा स आद्यः । विश्लिष्टशक्तिर्बहुधेव भाति बीजानि योनिं प्रतिपद्य यद्वत् ॥२०॥

यह आत्मा एक, ब्रह्म और अप्रकट है. कालके कारण माया शक्ति का स्पर्श करने से इन्द्रियों के रूप में अनेक प्रकार से प्रकट हुआ जान पड़ता है, यही ईश्वर तीनों गुणों का आश्रय, सृष्टि कमलका बीज रूप है, जैसे बीज खेत को पाकर अनेक प्रकार से प्रकाशित होता है, वैसे ही आदि कारण ईश्वर भी काल की गति से माया को अङ्गीकार करके प्रपंच रूप होजाता है ॥२०॥

यस्मिन्निदं प्रोतमशेषमोतं पटो यथा तंतुवितान संस्थः । य एष संसारतरुः पुराणः कर्मात्मकः पुष्पफले प्रसूते ॥२१॥

जैसे वस्त्र तन्तुओं में ओत-प्रोत रहता है इस लिये उनसे भिन्न नहींहै,ऐसेही यह समस्त संसार किसी भी प्रकार ईश्वरसे भिन्न नहीं है, इस प्रकार समष्टि-व्यष्टि रूप और अविद्या के कारण आत्मा में अध्यास किया हुआ प्रपंच रूपी वृक्ष ही जीवके कर्त्ता या भोक्तापन आदि संसार का कारण रूप है इस प्रकार जब आत्मा की नित्यता और प्रपंच की अनित्यता समझमें आजाय तब कर्म-त्यागके लिये मेरा आदेश है, यह अनादि और प्रवृत्ति रूपी स्वभाव वाला प्रपंच रूप वृक्ष फूल-फल (भोग-मोक्ष या कर्म और उसका फल) उत्पन्न करता है ॥२१॥

द्वे अस्य बीजे शतमूलस्त्रिनालः पंचस्कंधः पंच रसप्रसूतिः । दशैकशाखो द्विसुपर्णनीडस्त्रिवल्कलो द्विफलोऽर्कं प्रविष्टः ॥२२॥

इस वृक्ष के (पुण्य-पाप) दो बीज हैं, (वासना रूपी) सैकड़ों जड़ें हैं, (गुणरूप) तीन नाल हैं, (महाभूत रूप) पाँच स्कन्ध हैं, (इन्द्रियों रूप) ग्यारह शाखायें हैं, (वात, पित्त और कफ) तीन त्वचायें हैं, (सुख दुःख) दो फल हैं, इसमें से (विषय रूपी) पाँच रस उत्पन्न होते हैं. इसमें (जीव और ईश्वर रूपी) दो पक्षियों का कोटर है, यह सूर्य मण्डल तक व्याप्त है, सूर्य मण्डल से आगे संसार नहीं है ॥२२॥

अदंति चैकं फलमस्य गृध्रा ग्रामेचरा एकमरण्यवासाः । हंसा य एकं बहुरूपमिज्यैर्मायामयं वेद स वेद वेदम् ॥२३॥

इस वृक्ष के (दुःखरूपी) एक फल को (कामी गृहस्थ रूपी) गाँव में रहने वाले गिद्ध पक्षी खातेहैं और (सुखरूपी) दूसरा फल बनवासी (विवेकी सन्यासी रूपी) हंस पक्षी खाते हैं. इसप्रकार आप ही अपनी से अनेक रूप प्रतीत होनेवाले परमात्मा को गुरुओं के उपदेश से जो जानले, उसीको वेदके तत्वार्थ का जाननेवाला जानना चाहिये ॥२३॥

एवं गुरूपासनयैव भक्त्या विद्याकुठारेण शितेन धीरः । विवृश्च्य जीवाशयमप्रमत्तः संपद्य चात्मानमथत्यजास्त्रम् ॥२४॥

इस प्रकार गुरु की उपासना से ही उत्पन्नहोने वाली भक्ति से तीक्ष्ण किये हुए ब्रह्म विद्या रूपी कुल्हाड़े के द्वारा सावधानी तथा धीरज के साथ लिंग शरीरको काटकर और परमात्माको प्राप्तहोने पर सब साधनों को त्यागना चाहिये ॥२४॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तेरहवां अध्याय

(सत्वगुण वृद्धि से विद्या के उदय का क्रम तथा हंस-कथा)

श्रीभगवानुवाच

सत्त्वं रजस्तम इति गुणा बुद्धेर्न चात्मनः ।
सत्त्वेनान्यतमौ हन्यात्सत्त्वं सत्त्वेन चैव हि ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले-सत्व, रज और तम-यह तीनों प्रकृति के गुण हैं आत्मा के नहीं. इसलिये सतोगुण को बढ़ाकर रजोगुण तथा तमोगुण की वृत्तियों को नष्ट करना चाहिये और सत्य तथा दया आदि रूप वाले सत्व को भी उपशम रूपी सत्वगुण ही से नष्ट करना चाहिये ॥१॥

सत्त्वाद्धर्मो भवेद्वृद्धात्पुंसो मद्भक्तिलक्षणः ।
सात्त्विकोपासया सत्त्वं ततो धर्मः प्रवर्तते ॥ २ ॥

सत्व गुण सात्विक पदार्थों के सेवन से बढ़ता है और बढ़े हुए सतोगुण से पुरुष को मेरी भक्ति रूप धर्म की प्राप्ति होती है ॥२॥

धर्मो रजस्तमोहन्यात्सत्त्ववृद्धिरनुत्तमः ।
आशु नश्यति तन्मूलो ह्यधर्म उभये हते ॥ ३ ॥

बढ़े हुए सतोगुण से प्राप्त होने वाला सर्वश्रेष्ठ भक्ति-धर्म रजोगुण और तमोगुण को नष्ट करदेता है और इन दोनों के नाश होने पर इनसे उत्पन्न हुआ राग-द्वेष तथा प्रमाद और आलस्यादि रूपी अधर्म भी नष्ट होजाता है ॥३॥

आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च जन्म च ।
ध्यानं मंत्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः ॥ ४ ॥

शास्त्र, जल, लोक,देश, काल,कर्म, जन्म, ध्यान मन्त्र और संस्कार-यह दस पदार्थ तीनों गुणों की वृद्धि करते हैं ॥ ४ ॥

तत्तत्सात्त्विकमेवैषां यद्यद्वृद्धाः प्रचक्षते ।
निंदंति तामसंयत्तद्राजसं तदुपेक्षितम् ॥ ५ ॥

इनमें से जिन पदार्थों की विद्वान् पुरुष प्रशंसा करते हैं, उनको सात्विक जानना चाहिये, जिनकी निन्दा करते हैं उनको तामसी और जिनकी न निंदा करते हैं न स्तुति-उनको राजसी गुण जानना चाहिये ॥ ५ ॥

सात्त्विकान्येव सेवेत पुमान्सत्त्वविवृद्धये ।
ततो धर्मस्ततो ज्ञानं यावत्स्मृतिरपोहनम् ॥ ६ ॥

इसलिये पुरुष को सतोगुण बढ़ाने के लिये सात्विकी पदार्थों का ही सेवन करना चाहिये कि जिसके प्रभाव से गुणों का क्षय होकर भक्ति धर्म प्राप्त होनेसे मेरे स्वरूप का ज्ञान होताहै ॥६॥

वेणुसंघर्षजो वह्निर्दग्ध्वा शाम्यति तद्वनम् ।
एवं गुणव्यत्ययजो देहः शाम्यति तत्क्रियः ॥ ७ ॥

जैसे बाँसों के वनकी आग बांसों की रगड़ से उठकर समस्त बनको जलाकर ईंधन समाप्त हो जाने पर आप भी शान्त होजाती है, वैसे ही गुणों के क्षोभ से उत्पन्न हुआ शरीर (विद्या द्वारा गुणों को भस्म करके) आपही शान्त होजाता है ॥७॥

उद्धव उवाच

वदंति मर्त्याः प्रायेण विषयान्पदमापदाम् ।
तथापि भुंजते कृष्ण तत्कथं श्वखराजवत् ॥ ८ ॥

उद्धवजी बोले-हे कृष्ण ! इस बात को बहुधा सभी कहते हैं कि विषय दुःख रूप हैं, फिर इतना जानकरभी बहुतसे मनुष्य कूकर, गधे और बकरों की नाईं निर्लज्ज होकर उन्हींको सेवन क्यों करतेहैं?

श्रीभगवानुवाच

अहमित्यन्यथा बुद्धिः प्रमत्तस्य यथा हृदि ।
उत्सर्पति रजो घोरं ततो वैकारिकं मनः ॥ ९ ॥

श्रीकृष्ण बोले-विवेक-हीन मनुष्य के हृदय में जब देहादिक पदार्थों के प्रति अहङ्कार भाव उत्पन्न होजाता है तब सतोगुण के कार्य रूप मन में दुःख रूप रजोगुण व्याप्त होजाता है ॥९॥

रजो युक्तस्य मनसः संकल्पः सविकल्पकः ।
ततः कामो गुणध्यानाद्दुःसहः स्याद्धि दुर्मतेः ॥ १० ॥

रजोगुण व्यापनेसे मनमें सङ्कल्प-विकल्प उठने लगते हैं, उनके उठते ही दुर्बुद्धि वाले मनुष्यों को दुर्विषय प्यारे लगते हैं, दुर्विषयों से दुःसह तृष्णा उत्पन्न होती है ॥१०॥

करोति कामवशगः कर्माण्यविजितेंद्रियः ।
दुःखोदर्काणि संपश्यन्रजोवेगविमोहितः ॥ ११ ॥

रजोगुण के वेग से मोहित यह अजितेन्द्रिय पुरुष कर्मों को अन्तमें दुःखरूप जानकर भी तृष्णा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के वश होकर विषय भोगने के लिये उन कर्मों को करता है ॥११॥

रजस्तमोभ्यां यदपि विद्वान्विक्षिप्तधीः पुनः ।
अतंद्रितो मनो युंजन्दोषदृष्टिर्न सज्जते ॥१२॥

इस पर भी यदि कभी रजोगुण विक्षेप करे और तमोगुण मोह उत्पन्न करे तो विवेकी पुरुष को प्रमाद छोड़कर मनको रोकते हुए विषयों को दूषित ही मानना चाहिये. इसके करने से विषयों में आसक्ति नहीं होती ॥१२॥

अप्रमत्तोऽनुयुंजीत मनो मय्यर्पयञ्छनैः ।
अनिर्विण्णो यथाकालं जितश्वासो जितासनः १३॥

योगी पुरुषको आलस्य छोड़कर नित्य आसन जीतकर प्राणायाम करते हुए मुझमें मन स्थिर करना चाहिये ॥ १३ ॥

एतावान्योग आदिष्टो मच्छिष्यैः सनकादिभिः ।
सर्वतो मन आकृष्य मय्यद्धाऽऽवेश्यते यथा॥१४॥

मेरे शिष्य सनकादि ने सब विषयों से मनको खींचकर मुझमें स्थिर करने को ही सर्वोत्तम योग बतलाया है ॥१४॥

उद्धव उवाच

यदा त्वं सनकादिभ्यो येन रूपेण केशव ।
योगमादिष्टवानेतद्रूपमिच्छामि वेदितुम् ॥१५॥

उद्धवजी बोले–हे केशव ! आपने सनकादिकों को जब और जिस रूप से उपदेश दिया हो वह समय और रूप मैं जानना चाहताहूँ, आप कहिये॥

श्रीभगवानुवाच

पुत्रा हिरण्यगर्भस्य मानसाः सनकादयः ।
पप्रच्छुः पितरं सूक्ष्मां योगस्यैकांतिकीं गतिम् १६॥

श्रीभगवान् बोले–ब्रह्माजी के मनसे उत्पन्न हुए सनकादिक पुत्रों ने अपने पिताजीसे योगकी सूक्ष्म सीमा के विषय में(इस प्रकार) प्रश्न किया था॥१६॥

सनकादय ऊचुः

गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रभो ।
कथमन्योन्यसंत्यागो मुमुक्षोरतितितीर्षोः ॥१७॥

सनकादिक बोले–हे प्रभु ! हे ब्रह्माजी ! चित्त अपने स्वभाव से हीं राग आदि के कारण विषयों में प्रवेश करता है और अनुभवमें आये हुए विषय वासना रूप से चित्तमें प्रवेश करते हैं, अब विषय त्याग का अभिलाषी मुमुक्षु पुरुष परस्पर इन दोनों का त्याग किस प्रकार करे ? ॥१७॥

श्रीभगवानुवाच

एवं पृष्टो महादेवः स्वयंभूर्भूतभावनः ।
ध्यायमानः प्रश्नबीजं नाभ्यपद्यत कर्मधीः ॥१८॥

भगवान् बोले–जब इस प्रकार सनकादिकों ने पूछा, तब जगत् के रचने वाले महादेव ब्रह्माजी उसपर विचार करने लगे, परन्तु उन्हें किसी उलझनके कारण उस प्रश्नका तत्व समझमें न आया॥

स मामचिंतयद्देवः प्रश्नपारतितीर्षया ।
तस्याहं हंसरूपेण सकाशमगमं तदा ॥१९॥

इस प्रश्न का आशय तथा उत्तर जाननेके लिये ब्रह्माजीने मेरा ध्यान किया, तब मैं हंस रूप धारण करके उनके सामने पहुंचा ॥१९॥

दृष्ट्वा मां त उपव्रज्य कृत्वा पादाभिवंदनम् ।
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा पप्रच्छुः को भवानिति॥२०॥

मुझे देखकर उन सनकादिकों ने ब्रह्माजी को आगे करके मेरे सामने आकर और मेरे चरणों में प्रणाम करके मुझसे पूछा कि 'आप कौनहैं ?' ॥२०॥

इत्यहं मुनिभिः पृष्टस्तत्त्वजिज्ञासुभिस्तदा ।
यदवोचमहं तेभ्यस्तदुद्धव निबोध मे ॥२१॥

हे उद्धव ! तत्व जानने के इच्छावान् मुनियों के इस प्रश्न पर मैंने उनको जो उत्तर दिया वह मैं तुमसे कहता हूँ सुनो ॥२१॥

वस्तुनो यद्यनानात्वमात्मनः प्रश्न ईदृशः ।
कथं घटेत वो विप्रा वक्तुर्वा मे क आश्रयः॥२२॥

मैंने कहा कि–तुम आत्मा के सम्बन्धमें पूछते हो या कि आत्मा के उपाधि-रूप भूत-समूह को लक्ष्य करके ? यदि आत्मा को लेकर तुमने ये प्रश्न किया है तो तुम्हारा यह प्रश्न ही असंभव है, क्यों कि आत्मा परमार्थ रूप और भेद रहित और सब में एक ही है, ऐसी दशा में मैं एक विशेष बन कर या विशेषता रहित आत्मा की विशेषता प्रकट कर के क्या उत्तर दूँ ? ॥२२॥

पंचात्मकेषु भूतेषु समानेषु च वस्तुतः ।
को भवानिति वः प्रश्नो वाचारंभो ह्यनर्थकः॥२३॥

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपींद्रियैः ।
अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमंजसा ॥२४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यदि भूत-समूह को लक्ष्य करके पूछते हो तो देवता और मनुष्य आदिकों के सभी शरीर पंच भौतिक होने के कारण परस्पर भिन्न नहीं, ऐसी दशा में भी तुम्हारा प्रश्न केवल कथन मात्र और व्यर्थ ही है, तुम तत्व-विचार से यह समझो कि मन, वचन, दृष्टि और इन्द्रियोंसे जो कुछभी ग्रहण कियाजाय वह मैंही हूँ,मुझसे कुछ भिन्नहै ही नहीं॥

गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रजाः ।
जीवस्य देह उभयं गुणाश्चेतो मदात्मनः ॥२५॥
गुणेषु चाविशच्चित्तमभीक्ष्णं गुणसेवया ।
गुणाश्च चित्तप्रभवा मद्रूप उभयं त्यजेत् ॥२६॥

हे पुत्रो ! विषयों में प्रवेश करने वाला चित्त और चित्त में प्रवेश करने वाले विषय–यह दोनों एक दूसरे में गुंथे हुए हैं और ब्रह्म स्वरूप जीव का जो शरीर है वह उपाधि रूप है, सच्चा नहीं, इस लिये उन दोनोंको अनित्य समझकर अपने स्वरूप में ब्रह्मत्व की भावना की जाय तो राग आदि न रहने से चित्त और विषय स्वयं जुदे होजाँयगे, विषयों के संस्कार से उनमें बार-बार प्रवेश करता हुआ चित्त और वासना रूप से चित्त में प्रकट होने वाले विषयों का आप ब्रह्म-रूप होकर त्याग करो ॥ २५ ॥ २६ ॥

जाग्रत्स्वप्नः सुषुप्तं च गुणतो बुद्धिवृत्तयः ।
तासां विलक्षणो जीवः साक्षित्वेन विनिश्चितः २७

जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति-ये तीनों अवस्थायें बुद्धि की वृत्तियाँ हैं स्वाभाविक नहीं, वरन् सत्, रज और तमके कारण होतीहैं, जीव इन अवस्थाओं का साक्षीमात्र होनेसे उनसे रहित जाननाचाहिये॥

यर्हि संसृतिबंधोऽयमात्मनो गुणवृत्तिदः ।
मयि तुर्ये स्थितो जह्यात्त्यागस्तद्गुणचेतसाम् ।२८॥

जब बुद्धि अहङ्कार के बन्धन में पड़ जाती है; तब 'मैं जागता हूँ-मैं सोता हूँ' आदि देह के धर्म अपने धर्म से प्रतीत होते हैं, वास्तव में आत्माका अवस्थाओं से कोई सम्बन्ध नहीं है, इसलिये जब अहं भाव छूटकर आत्म-चिन्तवन होने लगता है, तब विषय और चित्त परस्पर अलग होजाते हैं ॥

अहंकारकृतं बंधमात्मनोऽर्थविपर्ययम् ।
विद्वान्निर्विद्य संसारचिंतां तुर्ये स्थितस्त्यजेत्॥२९॥

देहाभिमान करने से ही आत्माका अनर्थ तथा बन्धन होता है ऐसा समझकर वैराग्य धारण कर के आत्म-चिन्तवन करते हुए संसार की सारी चिन्तायें छोड़ देनी चाहिये ॥ २९॥

यावन्नानार्थ धीः पुंसो न निवर्त्तेत युक्तिभिः ।
जागर्त्यपि स्वपन्नज्ञः स्वप्ने जागरणं यथा ॥३०॥

जब तक पुरुष की भेद-दृष्टि युक्तियों द्वारा निवृत्त न होजाय तब तक उस पुरुषको कर्मआदि को जानकरभी स्वप्नमें अपनेको जागता हुआमानने वाले मनुष्यकी नाईं स्वप्नही में पड़ा हुआ समझना चाहिये क्योंकि उसे यथार्थ ज्ञान नहीं हुआहै॥३०॥

असत्त्वादात्मनोऽन्येषां भावानां तत्कृता भिदा ।
गतयो हेतवश्चास्य मृषा स्वप्नदृशो यथा ॥३१॥

ये देहादिक सब पदार्थ तथा उनके द्वारा किये हुए वर्णाश्रम आदि भेद, स्वर्ग आदि फल और कर्म सभी अनित्य हैं, आत्मा के धर्म नहीं हैं, अविद्या के कारण होते हैं, इसलिये निकृष्ट और मिथ्या हैं, जैसे स्वप्न देखते हुए पुरुष के सभी मनोरथ मिथ्या होते हैं ॥३१॥

यो जागरे बहिरनुक्षणधर्मिणोऽर्थान् भुंक्ते समस्तकरणैर्हृदि तत्सदृक्षान् । स्वप्ने सुषुप्त उपसंहरते स एकः स्मृत्यन्वयात्त्रिगुणवृत्तिदृगिंद्रियेशः॥

एवं विमृश्यगुणतो मनसस्त्र्यवस्था मन्मायया मयि कृता इति निश्चितार्थाः । संछिद्य हार्दमनुमानसदुक्तितीक्ष्णज्ञानासिना भजत माऽखिलसंशयाधिम् ॥३३॥

जो जागृत् अवस्था में क्षण-क्षण बदलने वाले विषयों का भोगता है और स्वप्न अवस्था में भी उसी प्रकार भोगता है और सुषुप्तिमें उन सबको लीन कर लेता है, वह आत्मा एक ही है, क्योंकि वह तीनों अवस्थाओंका साक्षी और सब इन्द्रियों का नियन्ता है, यह भेद तो बाहरी हैं और आत्मा सब रूपों में एक ही है, जैसे बाल्य, यौवन आदि अवस्था भेद में भी आत्मा एक ही है, यह तीनों अवस्थायें गुणों के कारण केवल मन की ही होती हैं, परन्तु अज्ञान के कारण अपनी (आत्मा की) मान रक्खी है, ऐसा सोचकर आत्म स्वरूप का निश्चय करके अनुमान तथा सद्गुरु के उपदेशों से तीक्ष्ण हुए ज्ञान रूपी खड्गसे सब संशयोंके स्थान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रूप अहङ्कार को काटकर मुझ हृदय-निवासी का ही भजन करना चाहिये ॥३२॥३३॥

ईक्षेत विभ्रममिदं मनसो विलासं दृष्टं विनष्ट-मतिलोलमलातचक्रम्। विज्ञानमेकमुरुधेव विभाति माया स्वप्नस्त्रिधा गुणविसर्गकृतो विकल्पः ॥३४॥

यह दीखने वाला जगत् सब का सब मन का विलास है, केवल भ्रम रूप है और मिथ्या है, ऐसे ही द्वैत भी भ्रान्ति रूप है क्योंकि वह अलात-चक्र की भांति अत्यन्त चञ्चल है, ब्रह्म में अनेक प्रकार के द्वैत की भ्रान्ति होती है, इसलिये भ्रान्ति का अधिष्ठान रूप ब्रह्म ही अनेक रूप से दीखता है, परन्तु वास्तविक दृष्टि से विचार करने पर यह त्रिगुणमयी माया का भ्रम स्वप्नही सिद्ध होताहै ॥

दृष्टिं ततः प्रतिनिवर्त्य निवृत्ततृष्णस्तूष्णीं भवे-न्निजसुखानुभवो निरीहः। संदृश्यते क्व च यदीदम वस्तुबुद्ध्या त्यक्तं भ्रमाय न भवेत्स्मृतिरानिपातात्॥

इसलिये हे उद्धव ! ऐसे प्रपंच से दृष्टि फेरकर तृष्णा छोड़कर और आत्म-सुखके विचारमें तत्पर होकर इन्द्रियों के सभी धर्म छोड़ देना चाहिये, आहार आदि कर्मों में यद्यपि द्वैत देखने में आता है, परन्तु जब उसका अवस्तु बुद्धि के द्वारा त्याग कर दिया जाताहै, तब मोह उत्पन्न नहीं होता३५॥

देहं च नश्वरमवस्थितमुत्थितं वा सिद्धो न पश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम्। दैवादपेतमुत दैववशादुपेतं वासो यथा परिकृतं मदिरामदांधः ॥३६॥

जीवन्मुक्त ज्ञानी पुरुष इस विनाशी देहके दैव गति से होने वाले व्यापारों को अहं-दृष्टि से नहीं देखता, जैसे मदिरा से मत्त पुरुष अपने पहने हुए वस्त्र का भान नहीं रखता, वैसेही वह भी अपनेको उठा, खड़ा, बाहरगया या भीतर आयाहुआ आदि नहीं मानता, क्योंकि वह अपने स्वरूप को जान चुका है ॥३६॥

देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म यावत्स्वारंभकं प्रति समीक्षत एव सासुः। तं सप्रपंचमधिरूढ-समाधियोगः स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः३७

यह भी दैवाधीन है, जब तक इसका प्रारब्ध कर्म है तब तक यह प्राण और इन्द्रियों सहित रहता है, इसलिये जो समाधि योगके द्वारा आत्म स्वरूप को जान चुके हैं, वे इस प्रपंच मयी स्वप्न के समान देह की ममता नहीं रखते ॥३७॥

मयैतदुक्तं वो विप्रा गुह्यं यत्सांख्ययोगयोः। जानीतमागतं यज्ञं युष्मद्धर्मविवक्षया ॥३८॥

हे ब्राह्मणो ! यह मैंने सांख्य और योग-मार्ग का रहस्य तुमसे कहा है, तुमको विदित रहे कि मैं विष्णु हूँ और ज्ञान तथा धर्म का उपदेश देने के लिये ही आया हूँ ॥३८॥

अहं योगस्य सांख्यस्य सत्यस्यर्तस्य तेजसः। परायणं द्विजश्रेष्ठाः श्रियः कीर्तेर्दमस्य च ॥३९॥

हे द्विजोत्तमो ! योग, सांख्य, समझ में आने योग्य और पालने योग्य धर्म प्रभाव, लक्ष्मी,कीर्ति जितेन्द्रियपन के द्वारा जो कुछ प्राप्त होता है, वह मैं ही हूँ ॥ ३९ ॥

मां यजंति गुणाः सर्वे निर्गुणं निरपेक्षकम्। सुहृदं प्रियमात्मानं साम्याऽसंगादयो गुणाः॥४०॥

मैं निर्गुण, निरपेक्ष, सबका बन्धु. प्रिय और आत्मरूप ईश्वरहूँ, मुझमें साम्य और असंग आदि समस्त गुण सदैव ही रहते हैं, इसलिये मेरे कहने पर दृढ़ विश्वास रक्खो ॥ ४० ॥

इति मे छिन्नसंदेहा मुनयः सनकादयः। सभाजयित्वा परया भक्त्याऽगृणत संस्तवैः॥४१॥

जब मैंने इस प्रकार उनका संदेह दूर करदिया तब सनकादि ऋषियों ने परम भक्ति के साथ मेरा सत्कार किया और स्तोत्रोंके द्वारा मेरी स्तुतिकी॥

तैरहं पूजितः सम्यक्संस्तुतः परमर्षिभिः। प्रत्येयाय स्वकंधाम पश्यतः परमेष्ठिनः ॥४२॥

इन महात्मा ऋषियों ने मेरी भले प्रकार पूजा और स्तुति की. तब मैं भी ब्रह्माजी के देखते हुए वहाँ से अपने धाम को लौटा ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चौदहवां अध्याय

(भक्तिमय ध्यान योग)

उद्धव उवाच

वदंति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवादिनः ।
तेषां विकल्पप्राधान्यमुताहो एकमुख्यता ॥ १ ॥

उद्धवजी बोले–हे कृष्ण ! वेदवेत्ता पुरुष तो अनेकों साधन बतलाते हैं, भला क्या वे सभी मुख्य हैं या कि उनमें से कोई एक ? सो कहिये ॥

भवतोदाहृतः स्वामिन्भक्तियोगोऽनपेक्षितः ।
निरस्य सर्वतः संगं येन त्वय्याविशेन्मनः ॥ २ ॥

हे ईश्वर ! आप केवल निष्काम भक्ति योग को ही मुख्य साधन बतलाते हैं कि सब संग छोड़कर केवल मुझमें ही चित्त लगाना चाहिये ॥२।

श्रीभगवानुवाच

कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेदसंज्ञिता ।
मयादौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः॥३॥
तेन प्रोक्ता च पुत्राय मनवे पूर्वजाय सा ।
ततो भृग्वादयोऽगृह्णन्सप्त ब्रह्ममहर्षयः ॥ ४ ॥

श्रीकृष्णजी बोले–सर्व श्रेष्ठ फल देनेवाली होने के कारण भक्ति ही मुख्य है, दूसरे साधनों को तो लोगों ने अपने-अपने स्वभाव के अनुसार मुख्य मान रक्खा है, परन्तु वे सभी छुद्र फल देने वाले हैं, प्रलय काल में नष्टहुई यह वेद-वाणी कि जिस में मुझसे मन लगाने वाले धर्म का निरूपण है, वह मैंने पहले ब्रह्माजी से कही थी, ब्रह्माजी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र मनु से कही थी तथा मनु से महर्षि भृगु आदि सप्त प्रजापतियों ने ग्रहण की थी ॥३॥४॥

तेभ्यः पितृभ्यस्तत्पुत्रा देव दानवगुह्यकाः ।
मनुष्याः सिद्धगंधर्वाः सविद्याधरचारणाः ॥ ५ ॥
किंदेवाः किन्नरा नागा रक्षः किंपुरुषादयः ।
बह्व्य स्तेषां प्रकृतयो रजः सत्त्वतमोभुवः ॥ ६ ॥

उन प्रजापतियों से उनके पुत्र देव, दानव,यक्ष मनुष्य, सिद्ध, विद्याधर, चारण, किंदेव, किन्नर, नाग; राक्षस और किंपुरुष आदिकों ने सीखी कि जिनकी वासनायें रजोगुण,तमोगुण आदिके कारण अनेक प्रकार की हैं ॥५॥॥६॥

याभिर्भूतानि भिद्यंते भूतानां मतयस्तथा ।
यथाप्रकृति सर्वेषां चित्रा वाचः स्रवंति हि ॥ ७ ॥

जिन वासनाओं के कारण देव, दैत्य और मनुष्य आदि प्राणियों के शरीर भिन्न २ प्रकार के होते हैं और उनकी बुद्धियों में भी भेद पड़ना है, उन्होंने अपनी-अपनी वासना के अनुसार वेद की जुदी २ व्याख्या है ॥७॥

एवं प्रकृतिवैचित्र्याद्भिद्यंते मतयो नृणाम् ।
पारंपर्येण केषांचित्पाखंडमतयोऽपरे ॥ ८ ॥

इस प्रकार कितनेही मनुष्योंकी बुद्धियाँ स्वभाव की विचित्रता से जुदी २ हुआ करती हैं, कितनों ही की बुद्धियाँ तो पुराने ढर्रे के कारण जुदी पड़ जाती हैं और कितनोंही की वेदसे विरुद्ध पाखंड विषय में ही लगी रहती हैं ॥ ८ ॥

मन्मायामोहितधियः पुरुषाः पुरुषर्षभ ।
श्रेयो वदंत्यनेकांतं यथाकर्म यथारुचि ॥ ९ ॥

हे पुरुष श्रेष्ठ ! मेरी मायासे मोहित बुद्धिवाले पुरुष अपने-अपने कर्म और रुचिके अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार के कल्याणकारी साधन कहतेहैं ॥ ९ ॥

धर्ममेके यशश्चान्ये कामं सत्यं दमं शमम् ।
अन्ये वदंति स्वार्थं वा ऐश्वर्यं त्यागभोजनम्॥१०॥

कोई धर्म को; कोई यश को, कोई काम को, कोई सत्य को, कोई शमदम को कोई ऐश्वर्य को, कोई दान और भोग को और कोई-कोई यज्ञ, तप, दान, व्रत, नियम तथा यमों को पुरुषार्थ कहतेहैं ॥

केचिद्यज्ञतपोदानं व्रतानि नियमान्यमान् ।
आद्यंतवंत एवैषां लोकाः कर्मविनिर्मिताः ।
दुःखोदर्कास्तमोनिष्ठाः क्षुद्रानंदाः शुचार्पिताः॥११॥

इन सब लोगों को अपने कर्मानुसार फल-रूप जो लोक प्राप्त होते हैं, वे सभी आदि अन्त वाले परिणाम में दुःख रूप, तुच्छ आनन्द वाले और शोक से भरे हुए हैं ॥११॥

मय्यर्पितात्मनः सभ्य निरपेक्षस्य सर्वतः ।
मयात्मना सुखं यत्तत् कुतः स्याद्विषयात्मनाम्॥१२

हे उद्धव ! इसलिये भक्ति ही सर्वोत्तमहै, अन्य सभी विषयों की तृष्णा छोड़कर मुझ में ही मन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लगाने वाला पुरुष मेरे परम आनन्द मय स्वरूप की स्फूर्ति से जो सुख पाता है वह विषयासक्त पुरुषों को कहाँ मिल सकता है ॥१२॥

अकिंचनस्य दांतस्य शांतस्य समचेतसः ।
मया संतुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥१३॥

अभिमान रहित, जितेन्द्रिय, शान्त, मेरी ही प्राप्ति से सदैव सन्तुष्ट रहने वाले और समदृष्टि रखने वाले पुरुषके लिये सब दिशायें सुखमयी हैं ॥

न पारमेष्ठ्यं न महेंद्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् । न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत् ॥१४॥

अपने चित्तको मुझमें अर्पण करनेवाला पुरुष ब्रह्मा का पद, इन्द्र का आसन, चक्रवर्त्तिपन, पाताल का राज्य या दूसरे किसी पदार्थ की बात क्या ? मेरे बिना योग की सिद्धियाँ और मोक्ष की भी इच्छा नहीं करता ॥१४॥

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः ।
न चैव संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान् १५॥

हे उद्धव ! जैसे तुम मुझे प्रिय लगते हो, वैसे मेरे पुत्र ब्रह्मा, मेरे स्वरूप भूत महादेव, बन्धु बलरामजी और पत्नी लक्ष्मीजी तथा मेरी मूर्त्ति भी मुझे प्रिय नहीं है, क्योंकि मैं भक्तों को और भक्त मुझे प्रिय हैं ॥१५॥

निरपेक्षं मुनिं शांतं निर्वैरं समदर्शनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यंघ्रिरेणुभिः ॥१६॥

तृष्णा रहित, शान्त, निर्वैर और समबुद्धिवाले भक्त के पीछे मैं भी इस भाव से चला जाता हूँ कि इसकी चरण रजके द्वारा मैं अपनेमें स्थित ब्रह्माण्ड को पवित्र करूँ ॥१६॥

निष्किंचना मय्यनुरक्तचेतसः शांता महांतोऽखिलजीववत्सलाः । कामैरनालब्धधियो जुषंति यत् तन्नैरपेक्ष्यं न विदुः सुखं मम ॥१७॥

किसी वस्तु का संग्रह न करने वाले, केवल मुझमें ही मन लगानेवाले, शान्त, अभिमान-रहित, जीव मात्र पर प्रेम रखने वाले, मुझे प्रसन्न रखने वाले और चित्त को विषय-स्पर्श से बचाने वाले वही निरपेक्ष होनेके सुखको जानतेहैं दूसरे नहीं ॥

बाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयैरजितेंद्रियः ।
प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते ॥१८॥

मेरा प्राकृत भक्त भी कृतार्थ है. क्योंकि वह इन्द्रियों को वशमें न रख सकने के कारण विषयों से खींचा जाता है, परन्तु भक्तिका बल पानेसे उन के द्वारा प्रभावित नहीं पाता ॥१८॥

यथाग्निः सुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात् ।
तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ॥१९॥

हे उद्धव ! जैसे अत्यंत दहकतीहुई अग्नि काष्ठों को जलाकर भस्म करदेती है, ऐसे ही मेरी दृढ़ भक्ति पापों को भस्म कर देती है ॥१९॥

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता २०

मेरी बढ़ी हुई भक्ति जैसे मुझे वशमें कर लेती है वैसे योग, सांख्य, धर्म, वेदाध्ययन, तप या दान भी नहीं कर सकते ॥२०॥

भक्त्याऽहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियःसताम् ।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि संभवात् ॥२१॥

मैं आत्म रूप और प्रिय श्रद्धा के द्वारा उत्पन्न हुई भक्तिसे ही साधुओंके वश होजाताहूँ, मेरीभक्ति चाण्डालों को भी जाति-दोष से पवित्र करदेती है॥

धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता ।
मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि ॥२२॥

सत्य और दया से भरा हुआ धर्म और तप सहित विद्या भी मेरी भक्तिसे रहित चित्तको पूर्ण रूप से शुद्ध नहीं कर सकती ॥२२॥

कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना ।
विनानंदाश्रुकलया शुध्येद् भक्त्या विनाऽऽशयः २३

जब तक शरीरोंमें रोमाञ्च न हों, चित्त द्रवित न हो और आनन्द के आँसुओं की बूंदें न टपकें, तबतक भक्तिका पता कैसे चले और भक्तिके बिना अन्तःकरण कैसे शुद्धहो ? ॥२३॥

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च । विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥२४॥

जिसकी वाणी गद्गद हो, चित्त द्रवित और कोमल हो, नेत्रों से बारंबार आँसू बहें, कभी हँसे कभी लज्जा छोड़कर रोवे, कभी उच्च स्वर से गावे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और कभी नाचे, ऐसा मेरा भक्त सब लोकों को पवित्र करता है ॥२४॥

यथाऽग्निना हेम मलं जहाति ध्मातं पुनः स्वं भजते स्वरूपम् । आत्मा च कर्मानुशयं विधूय मद्भक्तियोगेन भजत्यथोमाम् ॥२५॥

जैसे सोना अग्नि में तपाने से ही अपने आंतरिक मैल को त्याग कर फिर निज स्वरूपको प्राप्त होजाता है, वैसेही चित्तभी भक्तियोग द्वारा अपनी कर्म-वासनायें त्यागकर तद्रूप होजाता है ॥२५॥

यथायथात्मा परिमृज्यतेऽसौ मत्पुण्यगाथा श्रवणाभिधानैः । तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं चक्षुर्यथैवांजनसंप्रयुक्तम् ॥२६॥

जैसे-जैसे मेरी पवित्र कथा के सुनने-कहने से मन निर्मल होता जाता है, वैसे-वैसे ही सूक्ष्म ब्रह्म दृष्टि आने लगता है, जैसे कि ज्यों-ज्यों अञ्जन के द्वारा नेत्र स्वच्छ हो त्यों-त्यों सूक्ष्म पदार्थ दीखने लगते हैं ॥ २६ ॥

विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते । मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते ॥२७॥

विषय का ध्यान करने से चित्त विषय ही में रहता है और मेरा ध्यान करने से चित्तशुद्ध होकर मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है ॥२७॥

तस्मादसदभिध्यानं यथा स्वप्नमनोरथम् । हित्वा मयि समाधत्स्व मनो मद्भावभावितम्॥२८॥

इसलिये हे उद्धव ! स्वप्नके मनोरथों की नाईं मिथ्या पदार्थों का ध्यान छोड़कर मेरी भावना द्वारा चित्त को शुद्ध बनाये और उसे मेरे स्वरूप में स्थित करे ॥ २८ ॥

स्त्रीणां स्त्री संगिनां संगं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान् । क्षेमे विविक्त आसीनश्चिंतयेन्मामतंद्रितः ॥२९॥

स्त्रियों और स्त्रियों के साथियों का साथ दूर ही से छोड़दे और धीर होकर निर्भय तथा एकांत स्थानपर बैठे एवं आलस्य छोड़कर मेरा ध्यानकरे।

न तथाऽस्य भवेत् क्लेशो बंधश्चान्यप्रसंगतः । योषित्संगाद् यथा पुंसो यथा तत्संगिसंगतः॥३०॥

स्त्रियों तथा उनके साथियों का साथ करने से पुरुष को जैसा क्लेश और बन्धन होता है, वैसा किसी दूसरे से नहीं ॥३०॥

उद्धव उवाच

यथा त्वामरविंदाक्ष यादृशं वा यदात्मकम् । ध्यायेन्मुमुक्षुरेतन्मे ध्यानं मे वक्तुमर्हसि ॥३१॥

उद्धव बोले–हे कमलनयन प्रभु ! मैं तो आप के दास्य-भाव रूपी पुरुषार्थ को प्राप्त हो चुका हूँ, परन्तु जो मोक्ष के इच्छावान् हों उन्हें आपके किस स्वरूप का और किस प्रकार ध्यान करना चाहिये ? यह मुझ से कहिये ॥ ३१ ॥

श्रीभगवानुवाच

सम आसन आसीनः समकायो यथासुखम् । हस्तावुत्संग आधाय स्वनासाग्रकृतेक्षणः ॥३२॥

श्रीभगवान् बोले–कम्बलादि का सम तल पर आसन लगाकर अपने शरीर को सीधा रखते हुए ऐसा बैठे जिसमें सुख रहे, दोनों हाथ खोले (गोद) में रक्खे और चित्तकी स्थिरता के लिये दृष्टि को नाक के अग्र भाग पर जमाये ॥३२॥

प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुंभकरेचकैः । विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेंद्रियः ॥३३॥

फिर पूरक, कुंभक और रेचक के क्रमसे प्राण मार्गको शुद्धकरे, चाहे इसके विपरीत क्रमसे काम ले, फिर धीरे-धीरे इन्द्रियों को जीतकर प्राणायाम का अभ्यास करे ॥३३॥

हृद्यविच्छिन्नमोंकारं घंटानादं बिसोर्णवत् । प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत् स्वरम् ॥३४॥

सगर्भ और अगर्भ दो प्रकार के प्राणायामों में से सगर्भ (ओंकार सहित) प्राणायाम की विधि यह है कि मूल आधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक कमल नाल के तंतु की भाँति सूक्ष्म और अविच्छिन्न रूप से व्याप्त ओंकार को मनमें प्राण से प्रकट करके उसमें घण्टे के नाद के समान उदात्त नाद को स्थिर करना चाहिये ॥३४॥

एवं प्रणवसंयुक्तं प्राणमेव समभ्यसेत् । दशकृत्वस्त्रिषवणं मासादर्वाग्जितानिलः ॥३५॥

इस प्रकार जो प्रतिदिन तीनों समय दस-दस बार ओंकार सहित प्राणायाम करे, उस पुरुष के एक मास के भीतरही प्राणवायु वशमें होजाताहै॥

हृत्पुंडरीकमंतस्थमूर्ध्वनालमधोमुखम् । ध्यात्वोर्ध्वमुखमुन्निद्रमष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥३६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शरीर में ऊँचे नाल वाला, नीचे मुख वाला और कदली के फूल की नाईं बिना खिला हुआ हृदय कमल है, उसे नीचे नाल वाला ऊँचे मुख वाला, फूला हुआ, पंखरियों और कर्णिका सहित मानकर ध्यान करना चाहिये ॥ ३६ ॥

कर्णिकायां न्यसेत् सूर्यसोमाग्नीनुत्तरोत्तरम् ।
वह्निमध्ये स्मरेद्रूपं ममैतद्ध्यानमंगलम् ॥३७॥

उस कर्णिका में सूर्य, चन्द्र और अग्नि का एक दूसरे के ऊपर ध्यान करना चाहिये और अग्नि में शुभ विषयरूप मेरे स्वरूपका ध्यान करना चाहिये॥

समं प्रशांतं सुमुखं दीर्घचारुचतुर्भुजम् ।
सुचारुसुंदरग्रीवं सुकपोलं शुचिस्मितम् ॥३८॥
समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुंडलम् ।
हेमांबरं घनश्यामं श्रीवत्सश्रीनिकेतनम् ॥३९॥
शंखचक्रगदापद्मवनमालाविभूषतम् ।
नूपुरैर्विलसत्पादं कौस्तुभप्रभया युतम् ॥४०॥
द्युमत्किरीटकटककटिसूत्रांगदाऽऽयुतम् ।
सर्वांगसुंदरं हृद्यं प्रसादसुमुखेक्षणम् ॥४१॥
सुकुमारमभिध्यायेत् सर्वांगेषु मनो दधत् ।
इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यो मनसाऽऽकृष्यतन्मनः ।
बुद्ध्या सारथिना धीरः प्रणयेन्मयि सर्वतः॥४२॥

योग्य समान अङ्ग, शान्त, सुन्दर मुख प्रलंब चार भुजाओंसे सुशोभित, अत्यन्त रमणीय सुन्दर कण्ठ और कपोलों से शोभायमान, स्वच्छ मन्द मुसकान भरे हुए, कानों में एक से देदीप्यमान मकराकृत कुंडल पहनेहुए, स्वर्णके समान पीतांबर ओढ़े हुए, मेघ सदृश श्याम वर्ण, वक्षःस्थल की दाईं ओर श्रीवत्स और बाईं ओर लक्ष्मी को धारण किये हुए, शंख, चक्र, गदा और पद्म तथा वनमाला से विभूषित, चरणों में नूपुर पहने हुए कौस्तुभ मणि से कान्तिवान, चमकते हुए किरीट, कड़े, कटिबंधनी और भुजबन्द धारण किये हुए, सर्वाङ्ग सुन्दर, मनोहर, प्रसन्नता के कारण प्रफुल्लित मुख और नेत्रों से शोभामय तथा अत्यन्त सुकुमार मेरे स्वरूप के सब अङ्गों में मन लगाकर ध्यान करना चाहिये, धीर पुरुष को मन के द्वारा इन्द्रियों को विषयों से खींचकर और उस मनको बुद्धि के द्वारा मेरे सर्वाङ्गयुक्त स्वरूपमें भले प्रकार स्थिर करना चाहिये ॥ ३८—४२ ॥

तत् सर्वव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत् ।
नान्यानि चिंतयेद् भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम्॥४३

सब अङ्गों में लगे हुए मनको खींचकर फिर किसी एक अङ्गमें स्थिर करना चाहिये और दूसरे अङ्गों का ध्यान भुला देना चाहिये, इनमेंसे सुन्दर मन्द मुसकान मय मुख में मनको विशेष विलम्ब तक लगाना चाहिये ॥४३॥

तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत् ।
तच्च त्यक्त्वा मदारोहो नकिंचिदपि चिंतयेत्॥४४॥

जब चित्त मुख पर स्थिर होजाय, तब उसे वहाँ से खींचकर सर्व कारण-भूत स्वरूप में स्थिर करना चाहिये, फिर उसे भी त्याग कर शुद्ध ब्रह्म में आरूढ़ होकर समस्त प्रकार के चिन्तवन छोड़ देना चाहिये ॥४४॥

एवं समाहितमतिर्मामेवात्मानमात्मनि ।
विचष्टे मयि सर्वात्मञ्ज्योतिर्ज्योतिषि संयुतम् ४५॥

इस प्रकार समाधिस्थ पुरुष अपने स्वरूप में मुझको ही देखता है और अपने को मुझ सर्वात्मक स्वरूप में मिला हुआ देखता है, जैसे तेजका तेज में मिलने का आभास होता है ॥४५॥

ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युंजतो योगिनो मनः ।
संयास्यत्याशु निर्वाणं द्रव्यज्ञानक्रियाभ्रमः ॥४६॥

इस प्रकार अत्यन्त तीव्र ध्यान से मन को सावधान करते हुए योगी का अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवत रूप व दृश्य, द्रष्टा तथा दर्शनरूप भ्रम शीघ्रही भलीभांति दूर हो जाता है ॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पन्द्रहवां अध्याय

(विष्णु-पद-प्राप्ति में विघ्न-रूप अणिमादि का वर्णन)

श्रीभगवानुवाच

जितेंद्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः ।
मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठंति सिद्धयः ॥ १ ॥

श्रीभगवान्बोले-इन्द्रियों और श्वांसको जीतने वाले स्थिर चित्तको मुझ में लगाते हुए योगी के पास सिद्धियाँ आया करती हैं ॥१॥

उद्धव उवाच

कया धारणया का स्वित्कथं वा सिद्धिरच्युत ।
कति वा सिद्धयो ब्रूहि योगिनां सिद्धिदो भवान२॥

उद्धवजी बोले-हे कृष्ण ! कैसी-कैसी धारणा से कौन-कौन और किस-किस प्रकार की सिद्धियां प्राप्त हुआ करती हैं ? वे कितनी हैं ? सो कहिये, आपही योगियोंको सिद्धियाँ देने वाले हैं, इसलिये उनके विषय को यथार्थ रीति से और कोई नहीं जान सकता ॥२॥

श्रीभगवानुवाच

सिद्धयोऽष्टादश प्रोक्ता धारणा योगपारगैः ।
तासामष्टौ मत्प्रधाना दशैवगुणहेतवः ॥ ३ ॥

श्रीभगवान् बोले-धारणा और योगके पारंगत पुरुषों ने अट्ठारह सिद्धियाँ बतलाई हैं, उनमें से आठ तो पूर्ण रीति से मुझ में ही रहती हैं या मेरे सारूप्य पुरुषों में रहती हैं, परन्तु उनमें उनका अंश कुछ कम रहता है, शेष दस सिद्धियाँ सतोगुण की वृद्धि ही से प्राप्त होजाती हैं, इसलिये वे अन्य योगियों को भी प्राप्त हो जाती हैं ॥३॥

अणिमा महिमा मूर्तेर्लघिमा प्राप्तिरिंद्रियैः ।
प्राकाश्यं श्रुत दृष्टेषु शक्तिप्रेरणमीशिता ॥ ४ ॥
गुणेष्वसंगो वशिता यत्कामस्तदवस्यति ।
एता मे सिद्धयः सौम्य अष्टावौत्पत्तिका मतः ॥५॥

अणिमा (बड़े शरीरको छोटा करलेना)महिमा (छोटे शरीर को बड़ा कर लेना) लघिमा (भारी शरीरको हलका करलेना) ये तीन देहकी सिद्धियां हैं, प्राप्ति (प्राणी मात्र की इन्द्रियों के साथ उन-उन इन्द्रियों का देवरूप से सम्बन्ध करना) ये इन्द्रिय की सिद्धि है, प्राकाश्य (दोनों लोकों के विषय-भोग देखनेकी शक्ति) ईशिता (ईश्वरमें माया तथा दूसरों में माया के अंशों को प्रेरित करने की शक्ति) वशिता (विषयों का भोग में असंग) और प्राकाम्य (किसीभी चाहे हुए सुखकी चर्म-सीमातक पहुँचने की शक्ति) हे उद्धव ! यह आठ सिद्धियां मुझ में ही रहती हैं ॥ ४॥॥५ ॥

अनूर्मिमत्त्वं देहेऽस्मिन्दूरश्रवणदर्शनम् ।
मनोजवः कामरूपं परकायप्रवेशनम् ॥ ६ ॥
स्वच्छंदमृत्युर्देवानां सहक्रीडानुदर्शनम् ।
यथासंकल्पसंसिद्धिराज्ञाऽप्रतिहताऽऽगतिः ॥ ७ ॥

सतोगुणके बढ़नेसे मिलनेवाली दसों सिद्धियां यह हैं-अनूर्मिमत्व (भूख-प्यास आदि न लगना) दूरश्रवण दूरदर्शन, मनोजव (जहाँ मन जाय वहीं शरीर सहित पहुँच जाना) कामरूप (इच्छित रूप धारण करना) परकाय प्रवेशन (दूसरे की देह में प्रवेश करना) स्वच्छन्द मृत्यु, देवता और अप्सराओं में होने वाली क्रीड़ा की प्राप्ति, यथा सङ्कल्प संसिद्धि (सङ्कल्पके अनुसार प्राप्ति) अप्रतिहताज्ञा (आज्ञा का भंग न होना) ॥६॥॥७॥

त्रिकालज्ञत्वमद्वंद्वं परचित्ताद्यभिज्ञता ।
अग्न्यर्कांबुविषादीनां प्रतिष्टंभोऽपराजयः ॥ ८ ॥

त्रिकाल का ज्ञान, निर्द्वन्द्व (शीतोष्ण आदि से पराभव न पाना) पराये चित्तको जानना, प्रतिष्टंभ (अग्नि, सूर्य, जल या विष आदि से शरीर को किसी प्रकार हानि न पहुँचाना) पराजित न होना यह पाँच क्षुद्र सिद्धियाँ हैं ॥ ८ ॥

एताश्चोदेशतः प्रोक्ता योगधारणसिद्धयः ।
ययाधारणया या स्याद्यथा वा स्यान्निबोध मे॥९॥

योग धारणा से प्राप्त होने वाली सिद्धियोंमें से मुख्य २ सिद्धियों का नाम मैंने तुमसे कहा है, अब जिस-जिस धारणा से जो-जो सिद्धियां जिस तरह की प्राप्त होती हैं, सो मैं कहता हूँ सुनो ॥९॥

भूतसूक्ष्मात्मनि मयि तन्मात्रं धारयेन्मनः ।
अणिमानमवाप्नोति तन्मात्रोपासको मम ॥१०॥

मेरे भूत सूक्ष्म उपाधि वाले रूप का उपासक पुरुष अपने मनको भूत सूक्ष्म (अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) और सूक्ष्म तन्मात्रा के आकार द्वारा उस रूप में धारण करनेसे 'अणिमा' नाम की सिद्धि पाता है ॥१०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महत्यात्मन्मयि परे यथासंस्थं मनो दधत् ।
महिमानमवाप्नोति भूतानां च पृथक् पृथक्॥११॥

जो पुरुष ज्ञानशक्ति वाले महत्तत्व का आकार लक्ष्य करके उस महत्तत्व उपाधि वाले मेरे स्वरूप में मनको स्थिर करता है, वह 'महिमा' सिद्धि को प्राप्त होता है और जो आकाश आदि अलग-अलग भूत रूपी मेरे स्वरूप में मन लगाता हैं, वह महत्ता रूपी महिमा पाता है ॥ ११॥

परमाणुमये चित्तं भूतानां मयि रंजयन् ।
कालसूक्ष्मार्थतां योगी लघिमानमवाप्नुयात्॥१२॥

परमाणु-उपाधि वाले मेरे स्वरूप में जब योगी चित्त स्थिर करता है, तब वह सूक्ष्म रूपिणी लघिमा सिद्धि पाता है ॥१२॥

धारयन्मय्यहंतत्त्वे मनो वैकारिकेऽखिलम् ।
सर्वेंद्रियाणामात्मत्वं प्राप्तिं प्राप्नोति मन्मनाः॥१३॥

सात्विक अहङ्कार उपाधि वाले मेरे स्वरूप में सबप्रकार मन स्थिर करनेवाला योगी सब इन्द्रियों की अधिष्ठाता रूपी 'प्राप्ति' नाम की सिद्धिपाताहै, यह मुझमें मन स्थिर करने के प्रभाव ही से प्राप्त हो जाती है॥१३॥

महत्यात्मनि यः सूत्रे धारयेन्मयि मानसम् ।
प्राकाश्यं पारमेष्ठ्यं मे विंदतेऽव्यक्तजन्मनः॥ १४॥

मेरे क्रिया-शक्ति उपाधिवाले महत्तत्वके स्वरूप में चित्त धारण करने वाला पुरुष उसी महत्तत्व रूपी सर्वोत्तम प्रकाश्य सिद्धि को पाता है ॥१४॥

विष्णौ त्र्यधीश्वरे चित्तं धारयेत्कालविग्रहे ।
स ईशित्वमवाप्नोति क्षेत्रक्षेत्रज्ञचोदनाम् ॥१५॥

जो पुरुष त्रिगुणात्मक माया के नियंता अन्तर्यामी विष्णु में मनकी धारणा करता है, वह जीवों में माया के अंशों को प्रेरित करने की शक्ति रूप 'ईशिता' सिद्धिको प्राप्त होता है, यह जगत् की क्रियायें चलाने वाली सिद्धि मुझमें ही रहती है ॥

नारायणे तुरीयाख्ये भगवच्छब्दशब्दिते ।
मनो मय्यादधद् योगी मद्धर्मा वशितामियात् १६

विराट् हिरण्यगर्भ और कारण रूप निरुपाधि ईश्वर का चौथा नारायणरूप में मन धरनेसे योगी मेरे ही धर्म को पाकर 'वशिता नाम की सिद्धिको पाता है ॥१६॥

निर्गुणे ब्रह्मणि मयि धारयन् विशदं मनः ।
परमानंदमाप्नोति यत्र कामोऽवसीयते ॥१७॥

निर्गुण ब्रह्ममें निर्मल मन लगाने से परमानन्द रूपिणी 'प्राकाम्य' सिद्धि कि जो सुख की सीमा है मिलती है ॥१७॥

श्वेतद्वीपपतौ चित्तं शुद्धे धर्ममये मयि ।
धारयन्श्वेततां याति षड्ऊर्मिरहितो नरः ॥१८॥

जो पुरुष मुझ श्वेत द्वीप के स्वामी सतोगुण और धर्ममय के स्वरूप में मन स्थिर करता है,वह शुद्धता को प्राप्त होकर भूख-प्यास आदि से बचता है अर्थात् उसे अनूर्मिमत्व सिद्धि प्राप्त होती है ॥

मय्याकाशात्मनि प्राणे मनसा घोषमुद्वहन् ।
तत्रोपलब्धा भूतानां हंसो वाचः शृणोत्यसौ॥१९॥

आकाश रूप प्राण हैं, वह मेरा स्वरूप है, जो पुरुष उसमें मन लगाकर शब्दका चिन्तवन करता है, वह दूर से प्राणियों की विचित्र वाणी सुननेकी शक्ति (अर्थात् दूरश्रवण सिद्धि) पाजाता है ॥१९॥

चक्षुस्त्वष्टरि संयोज्य त्वष्टारमपि चक्षुषि ।
मां तत्र मनसा ध्यायन्विश्वं पश्यति सूक्ष्मदृक् २०

सूर्य में चक्षु को और चक्षु में सूर्य को स्थित करके उन दोनों के संयोग में मन से मेरा ध्यान करने वाला सूक्ष्मदर्शी योगी जगत् को देखनेवाली दूरदर्शन नाम की सिद्धि पाता है ॥२०॥

मनो मयि सुसंयोज्य देहं तदनु वायुना ।
मद्धारणाऽनुभावेन तत्रात्मा यत्र वै मनः ॥२१॥

मन, देह और इनका अनुसरण करने वाले वायुको मेरे स्वरूप में भली भांति मिलाकर मेरी धारणा करने से मनोजव सिद्धि मिलती है ॥२१॥

यदा मन उपादाय यद्यद्रूपं बुभूषति ।
तत् तद्भवेन्मनोरूपं मद्योगबलमाश्रयः ॥२२॥

मुझ अचिन्त्य शक्ति और अनेक आकार वाले की धारणा करने से कामरूप सिद्धि प्राप्त होती है, अर्थात् मनोवांछित देवरूप मिल जाता है ॥२२॥

परकायं विशन् सिद्ध आत्मानं तत्र भावयेत् ।
पिंडं हित्वा विशेत् प्राणो वायुभूतः षडंघ्रिवत्२३॥

पराई देह में प्रविष्ट होने के लिये उस शरीरमें अपने आत्मा का ध्यान करे तो अपने स्थूल शरीर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को छोड़कर लिंग-शरीररूप उपाधि को साथलेकर वह दूसरे शरीर में इस प्रकार प्रवेश कर जाता है जैसे भौंरा एक फूलसे दूसरेपर जा बैठताहै,अर्थात् उसे परकाय प्रवेशन नाम की सिद्धि प्राप्त होतीहै॥

पार्ष्ण्याऽऽपीड्य गुदं प्राणं हृदुरःकंठमूर्धसु ।
आरोप्य ब्रह्मरंध्रेण ब्रह्म नीत्वोत्सृजेत् तनुम् २४॥

पैंड़ी से गुदा को दबाकर प्राण रूप उपाधि वाले आत्मा को क्रम पूर्वक हृदय, वक्षःस्थल, कंठ और मस्तक में चढ़ाकर, ब्रह्मरन्ध्र रूपी द्वार से पराये शरीर में लेजा कर अपने स्थूल देहका त्याग करने पर परकाय प्रवेशन होताहै, स्वच्छन्द मृत्यु नामक सिद्धिभी इसी प्रकारहोतीहै, उसमें आत्मा को पूर्वोक्त विधि से ब्रह्म में लेजा कर अपने स्थूल शरीर को त्यागना पड़ता है ॥२४॥

विहरिष्यन्सुराक्रीडे मत्स्थं सत्त्वं विभावयेत् ।
विमानेनोपतिष्ठंति सत्त्ववृत्तीः सुरस्त्रियः ॥२५॥

मेरी मूर्त्तिरूप शुद्ध सतोगुण का ध्यान करने से देवसहक्रीड़ानुदर्शन रूप सिद्धि प्राप्त होती है और देवांगनायें उसी समय विमान लेकर आ खड़ी होती है ॥२५॥

यथा संकल्पयेद् बुद्ध्या यदा वा मत्परः पुमान् ।
मयि सत्ये मनो युंजंस्तथा तत्समुपाश्नुते ॥२६॥

जब पुरुष मुझ सत्य-सङ्कल्प में विश्वास कर के बुद्धि से सङ्कल्प करनेवाला योगी 'यथा-सङ्कल्प' नाम की सिद्धि पाता है अर्थात् उसका मनोरथ सफल होजाता है ॥२६॥

यो वै मद्भावमापन्न ईशितुर्वशितुः पुमान् ।
कुतश्चिन्न विहन्येत तस्य चाज्ञा यथा मम ॥२७॥

मुझ सर्वेश्वर, नियन्ता और स्वतन्त्र के भाव को प्राप्त हुए पुरुष की आज्ञा मेरी ही भाँति सभी मानते हैं अर्थात् उसे अप्रतिहत आज्ञा नाम की सिद्धि प्राप्त होती है ॥२७॥

मद्भक्त्या शुद्धसत्त्वस्य योगिनो धारणाविदः ।
तस्य त्रैकालिकी बुद्धिर्जन्ममृत्यूपबृंहिता ॥२८॥

त्रिकालज्ञ ईश्वरमें मनको धारण करनेसे भक्ति द्वारा शुद्ध अन्तःकरण हुए योगी को अपने जन्म-मरण सहित तीनों काल का ज्ञान तथा दूसरों के चित्त की बात जाननेकी सिद्धि प्राप्त होती है ॥२८॥

अग्न्यादिभिर्न हन्येत मुनेर्योगमयं वपुः ।
मद्योगशांतचित्तस्य यादसामुदकं यथा ॥२९॥

मुझमें मन लगाने वाले योगी के शरीर को अग्नि, सूर्य, जल या विष से किसी प्रकार हानि नहीं पहुंच सकती, जैसे जल के जीवों को जल से हानि नहीं होती, अर्थात् उसे प्रतिष्टंभ नाम की सिद्धि प्राप्त होती है ॥२९॥

मद्विभूतीरभिध्यायञ्छ्रीवत्साङ्क विभूषिताः ।
ध्वजातपत्रव्यजनैः स भवेदपराजितः ॥३०॥

इसी विधि से अद्वन्द्व नाम की सिद्धि मिलती है, जो पुरुष श्रीवत्स और शङ्खों से सुसज्जित, ध्वज, छत्र और चमर के सहित मेरे अवतारों का ध्यान करे, वह योगी अपराजय नाम की सिद्धि पाता है ॥३०॥

उपासकस्य मामेवं योगधारणया मुनेः ।
सिद्धयः पूर्वकथिता उपतिष्ठंत्यशेषतः ॥३१॥

इस प्रकार भिन्न २ योग की धारणाओं द्वारा मेरे उपासक को समस्त सिद्धियाँ मिलती हैं॥३१॥

जितेंद्रियस्य दांतस्य जितश्वासात्मनो मुनेः ।
मद्धारणां धारयतः का सा सिद्धिः सुदुर्लभा॥३२॥

इन्द्रियाँ, मन और प्राणको जीत लेने पर मुझ तुरीय ब्रह्म नारायण स्वरूप की धारणा करने वाले मुनि को कौनसी सिद्धि दुर्लभ है ? ॥३२॥

अंतरायान् वदंत्येता युंजतो योगमुत्तमम् ।
मया संपद्यमानस्य कालक्षपणहेतवः ॥३३॥

जो मेरे साक्षात् स्वरूप को धारण करते हैं, उनको मेरी प्रीतिके मार्गमें ये सिद्धियाँ बिघ्न डालती हैं, इसलिये इन सिद्धियों के लोभ में व्यर्थ समय न खोना चाहिये और न इनकी इच्छा ही करनी चाहिये ॥ ३३ ॥

जन्मौषधितपोमंत्रैर्यावतीरिह सिद्धयः ।
योगेनाप्नोति ताः सर्वा नान्यैर्योगगतिं व्रजेत्॥३४॥

इस जगत् में जन्म, औषधि, तप और मंत्रोंसे जितनी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, वे सभी केवल मेरे चतुर्थ स्वरूप (नारायण की धारणा) ही से मिल जाती हैं, परन्तु अन्य योगों के द्वारा इस धारणा की भांति सालोक्य मुक्ति नहीं मिलसकती ॥ ३४ ॥

सर्वासामपि सिद्धीनां हेतुः पतिरहं प्रभुः ।
अहं योगस्य सांख्यस्य धर्मस्य ब्रह्मवादिनाम्॥३५

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैं समस्त सिद्धियों को उत्पन्न और पालन करने वाला प्रभु हूँ, मोक्ष, मोक्ष का साधन ज्ञान, ज्ञान का साधन धर्म और धर्म का उपदेश करने वाले ब्रह्मा आदि देवताओं का स्वामी हूँ ॥३५॥

अहमात्मांतरो बाह्योऽनावृतः सर्वदेहिनाम् ।
यथा भूतानि भूतेषु बहिरंतः स्वयं तथा ॥३६॥

मैं सब जीवों का आत्मा, अन्तर्यामी, भीतर-बाहर रहने वाला परिच्छेद रहित और पंच महा भूतों की भाँति सब देहोंमें ही नहीं, वरन् उन पंच भूतों में भी व्यापक हूँ ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

सोलहवां अध्याय

(आत्म-स्वरूप निरूपण)

उद्धव उवाच

त्वं ब्रह्म परमं साक्षादनाद्यंतमपावृतम् ।
सर्वेषामपि भावानां प्राणस्थित्यप्ययोद्भवः ॥ १ ॥

उद्धवजी बोले–आप आदि-अन्त रहित, सब पदार्थों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके अधिष्ठान रूप साक्षात् परब्रह्म हैं ॥१॥

उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयमकृतात्मभिः ।
उपासते त्वां भगवन् याथातथ्येन ब्राह्मणाः ॥२॥
येषुयेषु च भावेषु भक्त्या त्वां परमर्षयः ।
उपासीनाः प्रपद्यं ते संसिद्धिंतद्वदस्व मे ॥ ३ ॥

हे भगवन् ! जो वेद के तत्व को जानते हैं, वे सर्वत्र और उच्च-नीच सब पदार्थोंमें आपको कारण रूप से विद्यमान जानकर भजते हैं और जो आत्म तत्व को नहीं जानते, उनकी समझ से आप बाहर हैं, जिन-जिन पदार्थों में भावना करके महर्षि जन भक्ति द्वारा सिद्धि को प्राप्त होते हैं, उन पदार्थों के नाम मुझसे कहिये ॥२॥॥३॥

गूढश्चरसि भूतात्मा भूतानां भूतभावन ।
न त्वां पश्यंति भूतानि पश्यंतं मोहितानि ते॥ ४ ॥

हे भूतभावन ! आप समस्त में अन्तर्यामी रूप से गूढ़ रहते हैं, फिर भी आपके द्वारा मोहित प्राणी आप सर्व साक्षी को नहीं देखते ॥४॥

याः काश्च भूमौ दिवि वै रसायां विभूतयो दिक्षु महाविभूते । ता मह्य माख्याह्यनुभावितास्ते नमामि ते तीर्थपदांघ्रिपद्मम् ॥ ५ ॥

हे महा विभूति ! पृथ्वी, स्वर्ग, पाताल और दिशाओं में आपकी विशेष शक्ति से संयुक्त जो विभूतियाँहों वे सब मुझसे कहिये,मैं आपके तीर्थ स्वरूप चरणारविन्द को प्रणाम करता हूँ ॥५॥

श्रीभगवानुवाच

एवमेतदहं पृष्टः प्रश्नं प्रश्नविदां वर ।
युयुत्सुना विनशने सपत्नैरर्जुनेन वै ॥ ६ ॥

श्रीभगवान् बोले–हे प्रश्न जाननेवालों में श्रेष्ठ ! कुरुक्षेत्र में शत्रुओं से युद्ध की इच्छा वाले अर्जुन ने मुझसे ऐसा ही प्रश्न किया था ॥६॥

ज्ञात्वा ज्ञातिवधं गर्ह्यमधर्मं राज्यहेतुकम् ।
ततो निवृत्तो हंताऽहं हतोऽयमिति लौकिकः॥ ७ ॥

राज्यके लिये अपने जातिवालों का वध करना अनुचित, अत्यन्त निंदित और अधर्मरूप जानकर पुरुष श्रेष्ठ अर्जुन की बुद्धि करुणा से व्याप्त होउठी वह यह सोचने लगे कि 'मैं इन लोगों को मारूँगा और यह लोग मरेंगे" इन विचारों से वह युद्ध छोड़कर बैठ गये ॥७॥

स तदा पुरुषव्याघ्रो युक्त्या मे प्रतिबोधितः ।
अभ्यभाषत मामेवं यथा त्वं रणमूर्धनि ॥ ८ ॥

उस समय उन नर केहरी अर्जुन को मैंने बुद्धि पूर्वक आत्म-तत्व समझाया था, प्रसंग वशात् अर्जुन ने भी ऐसा हीं प्रश्न किया था कि जैसा तुम कररहे हो, इसलिये मैं वही उत्तर तुमको भी दूँगा॥

अहमात्मोद्धवामीषां भूतानां सुहृदीश्वरः ।
अहं सर्वाणि भूतानि तेषां स्थित्युद्भवाप्ययः॥ ९ ॥

हे उद्धव ! इन समस्त प्राणियों का आत्मा मैं हूँ, सुहृद, मित्र, ईश्वर और नियन्ता मैं हूँ, सर्व पदार्थ रूप और सबकी उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार का कारण रूप मैं हूँ ॥९॥

अहं गतिर्गतिमतां कालः कलयतामहम् ।
गुणानां चाप्यहं साम्यं गुणिन्यौत्पत्तिको गुणः१०

चलने वालों की चाल मैं हूँ, वशमें करने वालों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में काल रूप मैं हूँ, तीनों गुणों की समता-रूपिणी प्रकृति मैं हूँ, द्रव्य का स्वाभाविक गुण मैं हूँ ॥१०॥

गुणिनामप्यहं सूत्रं महतां च महानहम् ।
सूक्ष्माणामप्यहं जीवो दुर्जयानामहं मनः ॥११॥

गुण वाले पदार्थों में क्रिया-शक्ति प्रधान जो महत्तत्व है वह मैं हूँ, बड़ों में महत्तत्व रूप मैं हूँ, छोटे पदार्थों में जीव रूप मैं हूँ, दुर्जय पदार्थों में मैं मन रूप हूँ ॥११॥

हिरण्यगर्भो वेदानां मंत्राणां प्रणवस्त्रिवृत् ।
अक्षराणामकारोऽस्मि पदानि छंदसामहम्॥१२॥

वेदों को पढ़ाने वालों में मेरा स्वरूप ब्रह्मा है, मन्त्रों में ओंकार रूप मैं हूँ, अक्षरों में अकार मैं हूँ छन्दोंमें गायत्री मैं हूँ ॥१२॥

इंद्रोऽहं सर्वदेवानां वसूनामस्मि हव्यवाट् ।
आदित्यानामहं विष्णु रुद्राणां नीललोहितः१३॥

समस्त देवताओं में इन्द्र मैं हूँ, आदित्यों में विष्णु मैं हूँ, रुद्रोंमें नीललोहित नामक रुद्र मैं हूँ ॥

ब्रह्मर्षीणां भृगुरहं राजर्षीणामहं मनुः ।
देवर्षीणां नारदोऽहं हविर्धान्यस्मि धेनुषु ॥१४॥

ब्रह्मर्षियों में भृगु मैं हूँ, राजर्षियों में मनु मैं हूँ, देवर्षियों में नारद मैं हूँ, गौओंमें कामधेनु मैं हूँ १४

सिद्धेश्वराणां कपिलः सुपर्णोऽहं पतत्रिणाम् ।
प्रजापतीनां दक्षोऽहं पितृणामहमर्यमा ॥१५॥

सिद्धेश्वरों में कपिलदेव मैं हूँ, पक्षियों में गरुड़ मैं हूँ, प्रजापतियोंमें दक्ष मैं हूँ, पित्रीश्वरोंमें अर्यमा मैं हूँ ॥ १५ ॥

मां विद्ध्युद्धव दैत्यानां प्रहादमसुरेश्वरम् ।
सोमं नक्षत्रौषधीनां धनेशं यक्षरक्षसाम् ॥१६॥

हे उद्धव ! दैत्यों में दैत्यपति प्रह्लाद को मेरा स्वरूप जानो, नक्षत्रों और औषधियों का चन्द्रमा मेरा स्वरूप है, यक्ष और राक्षसों का पति कुबेर मैं हूँ ॥ १६ ॥

ऐरावतं गजेंद्राणां यादसां वरुणं प्रभुम् ।
तपतां द्युमतां सूर्यं मनुष्याणां च भूपतिम्॥१७॥

गजेन्द्रों में ऐरावत, जल जीवों का स्वामी वरुण, प्रतापी और दीप्त पदार्थों में सूर्य और मनुष्यों में राजा मैं हूँ ॥१७॥

उच्चैःश्रवास्तुरंगाणां धातूनामस्मि कांचनम् ।
यमः संयमतां चाहं सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥१८॥

घोड़ों में उच्चैःश्रवा, धातुओं में स्वर्ण, दंड देने वालों में यम और सर्पों में वासुकि मैं हूँ ॥१८॥

नागेंद्राणामनंतोऽहं मृगेंद्रः शृंगिदंष्ट्रिणाम् ।
आश्रमाणामहं तुर्यो वर्णानां प्रथमोऽनघ ॥१९॥

नागराजों में अनन्त शेषनाग मैं हूँ, सींगवालों और दाढ़ वालों में सिंह मैं हूँ; आश्रमोंमें सन्यास मैं हूँ, और हे अनघ ! वर्णों में ब्राह्मण मैं हूँ ॥१९॥

तीर्थानां स्रोतसां गंगा समुद्रः सरसामहम् ।
आयुधानां धनुरहं त्रिपुरघ्नो धनुष्मताम् ॥२०॥

तीर्थ और प्रवाहों में गङ्गा मैं हूँ, स्थिर जलाशयों में समुद्र मैं हूँ, आयुधों में धनुष मैं हूँ, धनुर्धारियों में त्रिपुर का संहार कर्त्ता रुद्र मैं हूँ ॥२०॥

धिष्ण्यानामस्म्यहं मेरुर्गहनानां हिमालयः ।
वनस्पतीनामश्वत्थ ओषधीनामहं यवः ॥२१॥

निवास-स्थानोंमें सुमेरु, दुर्गम स्थलोंमें हिमालय, वनस्पतियों में अश्वत्थ और औषधियों में जव मैं हूँ ॥२१॥

पुरोधसां वसिष्ठोऽहं ब्रह्मिष्ठानां बृहस्पतिः ।
स्कंदोऽहं सर्वसेनान्यामग्रण्यां भगवानजः ॥२२॥

पुरोहितों में वसिष्ठ, वेद का अर्थ जाननेवालों में बृहस्पति मैं हूँ, सेनापतियों से स्वामिकार्तिकेय उत्तम मार्ग प्रवर्त्तकों में ब्रह्मा मैं हूँ ॥२२॥

यज्ञानां ब्रह्मयज्ञोऽहं व्रतानामविहिंसनम् ।
वाय्वग्न्यर्कांबुवागात्मा शुचीनामप्यहं शुचिः २३॥

यज्ञों में ब्रह्म यज्ञ, व्रतों में हिंसा रहित व्रत मैं हूँ, शुद्ध करने वालों में वायु, अग्नि, सूर्य, जल और ब्राह्मणों का वचन मैं हूँ ॥२३॥

योगानामात्मसंरोधो मंत्रोऽस्मि विजिगीषताम् ।
आन्वीक्षिकी कौशलानां विकल्पः ख्यातिवादिनाम्

योगियों में समाधि मैं हूँ, जय के चाहनेवालों में मुझे नीति जानो, विवेकियों में आत्मा और अनात्मा का निर्णय करने वाली विद्या मेरा रूपहै, पाँच प्रकार के विवादियों (आख्याति, अन्यथा ख्याति, शून्याख्याति, असत्ख्याति और अनिर्वचनीय ख्याति) में से 'यह यों है अथवा यों ?' इस प्रकार का विकल्प मैं हूँ ।२४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्त्रीणां तु शतरूपाऽहं पुंसां स्वायंभुवो मनुः ।
नारायणो मुनीनां च कुमारो ब्रह्मचारिणाम् २५॥

स्त्रियों में शतरूपा मैं हूँ, पुरुषों में स्वायंभुव मनु मैं हूँ, मुनियों में नारायण मुनि मैं हूँ, ब्रह्मचारियों में सनत्कुमार मैं हूँ ॥ २५॥

धर्माणामस्मि संन्यासः क्षेमाणामबहिर्मतिः ।
गुह्यानां सूनृतं मौनं मिथुनानामजस्त्वहम् ॥२६॥

धर्मोंमें अभयदान मैं हूँ, निर्भय स्थानोंमें आत्म निष्ठा मैं हूँ, अत्यन्त रहस्यों में प्रिय वचन और मौन मैं हूँ; स्त्री-पुरुषके जोड़ेमें ब्रह्मा मैं हूँ कि जिन की आधी देहसे स्त्री और पुरुष हुए हैं ॥२६॥

संवत्सरोऽस्म्यनिमिषामृतूनां मधुमाधवौ ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहं नक्षत्राणां तथाऽभिजित् २७

धर्म में सावधान रहने वालों में वर्ष रूप काल मैं हूँ, ऋतुओं में बसंत ऋतु मैं हूँ, महीनों में मार्ग शिर मैं हूँ, नक्षत्रों में अभिजित मैं हूँ ॥२७॥

अहं युगानां च कृतं धीराणां देवलोऽसितः ।
द्वैपायनोऽस्मि व्यासानां कवीनां काव्य आत्मवान्

युगों में सतयुग, धीर पुरुषों में असित देवल मैं हूँ; वेद के विभाग कर्त्ताओं में द्वैपायन व्यास मैं हूँ, विद्वानों में ज्ञानी शुक्र मेरा स्वरूप ॥२८॥

वासुदेवो भगवतां त्वं तु भागवतेष्वहम् ।
किं पूरुषाणां हनुमान् विद्याध्राणां सुदर्शनः॥२९॥

उत्पत्ति, प्रलय, प्राणियोंकी गति, अगति, विद्या और अविद्या-इन छः विषयों के जानने वालों में वासुदेव मैं हूँ और हे उद्धव ! भगवद्भक्तों में तुम मेरे स्वरूप हो, किंपुरुषों में हनुमान् मेरा स्वरूपहैं, विद्याधरों में सुदर्शन मेरा स्वरूप है ॥२९॥

रत्नानां पद्मरागोऽस्मि पद्मकोशः सुपेशसाम् ।
कुशोऽस्मि दर्भजातीनां गव्यमाज्यं हविःष्वहम् ३०॥

रत्नोंमें पद्मराग (माणिक) मैं हूँ, सुन्दर पदार्थों में कमलकोश मैं हूँ, दर्भ जातियों में कुश मैं हूँ, घृतों में से गौ का घृत मैं हूँ ॥३०॥

व्यवसायिनामहं लक्ष्मीः कितवानां छलग्रहः ।
तितिक्षाऽस्मि तितिक्षूणां सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ३१

उद्योगी पुरुषों में लक्ष्मीरूप मैं हूँ, धूर्तोंमें कपट रूप द्यूत मैं हूँ, क्षमावानों में क्षमा मैं हूँ, सत्यवादियों में सत्य मैं हूँ॥३१॥

ओजः सहो बलवतां कर्माहं विद्धि सात्वताम् ।
सात्वतां नवमूर्तीनामादिमूर्तिरहं परा ॥३२॥

बलवानों में देह-बल और इन्द्रिय-बल मैं हूँ, भक्तों में भक्ति रूप कर्म मैं हूँ, भक्तों के पूजने योग्य वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, हयग्रीव, वाराह; नृसिंह, और ब्रह्मा इन नव मूर्त्तियों में वासुदेव नामक उत्तम मूर्त्ति मैं हूँ ॥३२॥

विश्वावसुः पूर्वचित्तिर्गंधर्वाप्सरसामहम् ।
भूधराणामहं स्थैर्यं गंधमात्रमहं भुवः ॥३३॥

गन्धर्वों में विश्वावसु मैं हूँ, अप्सराओं में पूर्व चिती मैं हूँ, पर्वतों में स्थिरता मैं हूँ ॥३३॥

अपां रसश्च परमस्तेजिष्ठानां विभावसुः ।
प्रभा सूर्येंदुतारागां शब्दोऽहंनभसः परः ॥३४॥

जलों में श्रेष्ठ मधुरता नामक रस मेरा रूप है, तेजस्वियों में अग्नि मैं हूँ, सूर्य, चन्द्र और तारागण में कान्ति मैं हूँ, आकाश में परानाम शब्द मैं हूँ ॥

ब्रह्मण्यानां बलिरहं वीराणामहमर्जुनः ।
भूतानां स्थितिरुत्पत्तिरहं वै प्रतिसंक्रमः ॥३५॥

ब्रह्मण्यों में बलि मैं हूँ, वीरों में अर्जुन मैं हूँ, हे उद्धव ! निश्चय रूप से सब प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय मैं ही हूँ ॥३५॥

गत्युक्त्युत्सर्गोपादानमानंदस्पर्शलक्षणम् ।
आस्वादश्रुत्यवघ्राणमहं सर्वेंद्रियेंद्रियम् ॥३६॥

(चरण, वाणी, गुदा, हाथ, लिंग) इन पाँचों इन्द्रियों के गमन, वचन, मल-त्याग, ग्रहण और आनन्द कर्म मैं हूँ, इसी प्रकार पाँचों ज्ञानेन्द्रियों (त्वचा नेत्र, जिह्वा, श्रवण, नासिका) के स्पर्श, देखना, आस्वादन, सुनना और गन्ध लेना-कर्म मैं हूँ और इन्द्रियोंमें विषय धारण करनेकी शक्ति मैं हूँ॥

पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतिरहं महान् ।
विकारः पुरुषोऽव्यक्तं रजः सत्त्वं तमः परम्॥३७॥

पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और तेजकी तन्मात्रा अहङ्कार, महत्तत्व, पंच महाभूत, पुरुष, प्रकृति, रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण से भी परे परब्रह्म मैं हूं ॥३७॥

अहमेतत् प्रसंख्यानं ज्ञानं तत्त्वविनिश्चयः ।
मयेश्वरेण जीवेन गुणेन गुणिना विना ।
सर्वात्मनाऽपि सर्वेण न भावो विद्यते क्वचित्॥३८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इन तत्वों की गिनती, इनके लक्षणों का ज्ञान और निश्चय मैं ही हूं, मैं ही जीव ईश्वर रूप, गुण और गुणवान् रूप, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ रूप और सब का नियन्ता होकर भी सर्वरूप हूँ, मुझसे रहित कहीं कुछ भी नहीं है ॥३८॥

संख्यानं परमाणूनां कालेन क्रियते मया ।
न तथा मे विभूतीनां सृजतोऽण्डानि कोटिशः॥३९॥

मैं पृथ्वीके परमाणुओंकी गणना तो कालांतर में करके कह भी सकता हूं, परन्तु अपने रचे हुए करोड़ों ब्रह्माण्डों की गणना करके मैं नहीं कह सकता, तब उनमें स्थित मेरी विभूतियोंकी गणना होना तो असंभव ही है ॥३९॥

तेजः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यं ह्रीस्त्यागः सौभगं भगः ।
वीर्यं तितिक्षा विज्ञानं यत्र यत्र स मेंऽशकः ॥४०॥

संक्षेप में भाव यह है कि जिस-जिस पदार्थ में प्रभाव, सम्पत्ति, कीर्त्ति, ऐश्वर्य, लज्जा, दान, सौन्दर्य, भाग्य, बल, सहन शक्ति, और विज्ञान हो उस-उस पदार्थ में मेरी विभूति का रूप जानना चाहिये ॥ ४० ॥

एतास्ते कीर्तिताः सर्वाः संक्षेपेण विभूतयः ।
मनोविकारा एवैते यथा वाचाभिधीयते ॥४१॥

ये सब विभूतियाँ संक्षेप में मैंने तुमसे कहीहैं, परतु यह सब मनकी विकार रूप हैं, परमार्थ रूप नहीं, और आकाश पुष्प की नाईं केवल कहने की ही हैं ॥ ४१ ॥

वाचं यच्छ मनो यच्छ प्राणान्यच्छेंद्रियाणि च ।
आत्मानमात्मना यच्छ न भूयःकल्पसेऽध्वने॥४२॥

इसलिये वाणी, मन, प्राण और इन्द्रियों का निग्रह करो और बुद्धिका सतोगुण मयी बुद्धि से निग्रह करो तो फिर आवागमन न होगा ॥४२॥

यो वै वाङ्मनसी सम्यगसंयच्छन्धिया यतिः ।
तस्य व्रतं तपो ज्ञानं स्रवत्यामघटांबुवत् ॥४३॥

जो सन्यासी भली भांति मन और बुद्धि का निग्रह न करे उसका जप, तप और ज्ञान कच्चे घड़े के जल की भाँति बह जाता है ॥४३॥

तस्मान्मनोवचःप्राणान्नियच्छेन्मत्परायणः ।
मद्भक्तियुक्तया बुद्ध्या ततः परिसमाप्यते ॥४४॥

इसलिये मन, वचन और प्राणों को जीतकर मुझमें तत्पर होकर बुद्धि लगाने से ही पुरुष कृत-कृत्य होता है ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे षोड़शोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सत्रहवां अध्याय

(वर्णाश्रम-धर्म वर्णन)

उद्धव उवाच

यस्त्वयाभिहितः पूर्वं धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः ।
वर्णाश्रमाचारवतां सर्वेषां द्विपदामपि ॥ १ ॥
यथाऽनुष्ठीयमानेन त्वयि भक्तिर्नृणां भवेत् ।
स्वधर्मेणारविंदाक्ष तत्समाख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥

उद्धवजी बोले-हे कमल नयन ! आप पहले भक्ति के लक्षणों सहित धर्म का वर्णन कर चुके हैं इसलिये वर्णाश्रम के आचरण वालों का तथा उस आचरण के अधिकार से रहित पुरुषों का स्वधर्म कहिये कि वह धर्म किस प्रकार करने से आपके प्रति भक्ति होजाती है ? ॥१॥२॥

पुरा किल महाबाहो धर्मं परमकं प्रभो ।
यत्तेन हंसरूपेण ब्रह्मणेऽभ्यात्थ माधव ॥ ३ ॥
स इदानीं सुमहता कालेनामित्रकर्शन ।
न प्रायो भविता मर्त्यलोके प्रागनुशासितः ॥ ४ ॥

हे शत्रुघ्न ! हे महाबाहु ! हे प्रभु ! हे माधव ! पहले जो उत्तम और सुख रूप धर्म आप हंसरूप धारण करके ब्रह्माजी से कह चुकेहैं, वह आजकल तक बहुत समय बीतने के कारण बहुधा मनुष्य-लोक से नष्ट सा होगया होगा ॥३॥४॥

वक्ता कर्ताऽविता नान्यो धर्मस्याच्युत ते भुवि ।
सभायामपि वैरिंच्यां यत्र मूर्तिधराः कलाः ॥५॥

हे अच्युत ! इस पृथ्वी पर आपके सिवा दूसरा धर्मका कहनेवाला, करने वाला तथा पालने वाला नहीं है, इतना हीं नहीं; वरन् ब्रह्माजी की सभामें भी कि जहाँ मूर्त्तिमान् वेद आदि उपस्थित हैं, आपके सिवा कोई धर्म-तत्वज्ञ नहीं है ॥५॥

कर्त्राऽवित्रा प्रवक्रा च भवता मधुसूदन ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्यक्ते महीतले देव विनष्टं कः प्रवक्ष्यति ॥ ६ ॥
तत्त्वं नः सर्वधर्मज्ञ धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः ।
यथा यस्य विधीयेत तथा वर्णय मे प्रभो ॥ ७ ॥

हे मधुसूदन ! जब आप समस्त धर्मों के वक्ता रक्षक और कर्त्ता इस भूलोकको त्यागकर स्वधाम को पधारेंगे, तब इस नष्टहुए धर्मको कौन कहेगा? इसलिये हे समस्त धर्मोंके जाननेवाले प्रभु ! आप की भक्ति का साधन रूप धर्म जिसको जिसप्रकार करना उचित हो सो हमसे कहिये ॥६॥॥७॥

श्रीशुक उवाच

इत्थं स भृत्यमुख्येन पृष्टः स भगवान हरिः ।
प्रीतः क्षेमाय मर्त्यानां धर्मानाह सनातनान्॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–इस प्रकार भक्तों में मुख्य उद्धवजी के पूछने पर भगवान् ने अत्यन्त सन्तुष्ट होकर मनुष्यों का मरण-धर्म नाश करने वाला सनातन धर्म वर्णन किया ॥८॥

श्रीभगवानुवाच

धर्म्य एष तव प्रश्नो नैश्रेयसकरो नृणाम् ।
वर्णाश्रमाचारवतां तमुद्धव निबाध मे ॥ ९ ॥

श्रीभगवान् बोले–हे उद्धव ! तुम्हारा ये प्रश्न धर्ममय और वर्णाश्रम के आचरण वालों को परम कल्याणकारी है, उसे मुझसे सुनो ॥९॥

आदौ कृतयुगे वर्णो नृणां हंस इति स्मृतः ।
कृतकृत्याः प्रजा जात्या तस्मात्कृतयुगं विदुः॥१०॥

पहले सतयुग में मनुष्यों का वर्ण केवल हंस रूप था और प्रजा जन्महीं से कृतकृत्य थी,इसलिये उस समय का नाम कृतयुग था ॥१०॥

वेदः प्रणव एवाग्रे धर्मोऽहं वृषरूपधृक् ।
उपासते तपोनिष्ठा हंसं मां मुक्तकिल्बिषाः॥११॥

उस युग में वेद एक ओंकार ही के रूप में था और मेरा ध्यानरूपी वृषभ तुल्य चारों चरणवाला धर्म वर्तता था, इसलिये तप के निष्ठावान् निष्पाप लोग मुझ शुद्ध स्वरूप की उपासना ही करते थे ॥

त्रेतामुखे महाभाग प्राणान्मे हृदयात्त्रयी ।
विद्या प्रादुरभूत्तस्या अहमासं त्रिवृन्मखः ॥१२॥

हे महाभाग ! फिर त्रेता युग के आरंभमें मुझ ईश्वर स्वरूप के हृदय से श्वांस रूप में वेदत्रयी विद्या प्रकट हुई और होता, उद्गाता तथा अध्वर्यु द्वारा पूर्ण होने वाला मेरा स्वरूप भूत यज्ञ उत्पन्न हुआ ॥१२॥

विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा मुखबाहूरुपादजाः ।
वैराजात्पुरुषाज्जाता य आत्माचारलक्षणाः॥१३॥

मुझ विराट् पुरुषरूप के मुख,बाहु, जंघा और चरणों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण उत्पन्न हुए और उनका अलग-अलग धर्म भी प्रकट हुआ ॥१३॥

गृहाश्रमो जघनतो ब्रह्मचर्यं हृदो मम ।
वक्षःस्थानाद्वनेवासो न्यासः शीर्षणि संस्थितः१४॥

मेरे जंघाओं से गृहस्थाश्रम, हृदयसे ब्रह्मचर्य, वक्षःस्थल से वानप्रस्थ और मस्तक से सन्यास प्रकट हुआ ॥१४॥

वर्णानामाश्रमाणां च जन्मभूम्यनुसारिणीः ।
आसन्प्रकृतयो नृणां नीचैर्नीचोत्तमोत्तमैः ॥१५॥

मनुष्योंके वर्ण तथा आश्रमोंके स्वभाव अपनी जन्म भूमि के अनुसार अलग-अलग हुए हैं अर्थात् जिसने उच्च अङ्ग से जन्म पाया है, उसका स्वभाव उत्तम हुआ और जिसने नीच अङ्गसे जन्म पाया उसका स्वभाव नीच हुआ ॥१५॥

शमो दमस्तपः शौचं संतोषः क्षांतिरार्जवम् ।
मद्भक्तिश्च दया सत्यं ब्रह्मप्रकृतयस्त्वमाः ॥१६॥

शम, दम, तप, शौच,सन्तोष,शान्ति, सरलता; मेरी भक्ति, दया और सत्य-ये ब्राह्मणका स्वभावहै।

तेजो बलं धृतिः शौर्यं तितिक्षौदार्य उद्यमः ।
स्थैर्यं ब्रह्मण्यतैश्वर्यं क्षत्रप्रकृतयस्त्वमाः ॥१७॥

तेज, बल, धैर्य, शौर्य, क्षमा, उदारता, उद्यम, स्थिरता, ब्राह्मण-भक्ति और ऐश्वर्य-यह क्षत्रियोंका स्वभाव है ॥१७॥

आस्तिक्यं दाननिष्ठा च अदंभो ब्रह्मसेवनम् ।
अतुष्टिरर्थोपचयैर्वैश्यप्रकृतयस्त्वमाः ॥१८॥

आस्तिकपन; दान, निष्कपट-भाव, ब्राह्मणोंकी सेवा, द्रव्य-संग्रह में अतृप्ति-ये वैश्यका स्वभावहै ॥

शुश्रूषणं द्विजगवां देवानां चाप्यमायया ।
तत्र लब्धेन संतोषः शूद्रप्रकृतयस्त्वमाः ॥१९॥

गौ, ब्राह्मण और देवताओं की निष्कपट-भाव से सेवा करना और उससे जो कुछभी मिले उसी में संतोष रखना-यह शूद्रका स्वभावहै ॥१९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अशौचमनृतं स्तेयं नास्तिक्यं शुष्कविग्रहः ।
कामः क्रोधश्चतर्षश्च स्वभावोऽतेवसायिनाम् ॥२०॥

अपवित्रता, असत्य भाषण, चोरी, नास्तिकता व्यर्थ का कलह, काम, क्रोध और तृष्णा-यह नीच जाति वालों का स्वभाव है ॥२०॥

अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता ।
भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः ॥२१॥

अहिंसा, सत्य भाषण, चोरी न करना, काम, क्रोध, लोभ का त्याग, प्राणी मात्र का हित करना यह सभी भले वर्णों का धर्म है ॥२१॥

द्वितीयं प्राप्यानुपूर्व्याज्जन्मोपनयनं द्विजः ।
वसन्गुरुकुले दांतो ब्रह्माधीयीत चाऽऽहुतः ॥२२॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णों में जन्म लेने वाले पुरुष को गर्भाधान आदि संस्कारों के क्रमानुसार दूसरे जन्मरूपी यज्ञोपवीत संस्कार के पीछे जितेन्द्रिय बनकर गुरुके यहाँ रहना चाहिये और गुरु के बुलाने पर वेद पढ़ना चाहिये ॥२२॥

मेखलाजिनदंडाक्षब्रह्मसूत्रकमडलून् ।
जटिलोऽधौतवद्वासोऽरक्तपीठः कुशान्दधत् ॥२३॥

मेखला, मृग-चर्म, दण्ड, जप करने की माला यज्ञोपवीत और कमण्डल-इतना सामान रखना चाहिये, तैल आदि न लगाकर केशों के जटा बना देना चाहिये, दाँत और वस्त्रोंको स्वच्छ न रखना चाहिये, आसन को रंगीन न बनाना चाहिये, कुश धारण करना चाहिये ॥२३॥

स्नानभोजनहोमेषु जपोच्चारे च वाग्यतः ।
नच्छिंद्यान्नखरोमाणि कक्षोपस्थगतान्यपि ॥२४॥

स्नान, भोजन, होम, जप और मल-त्याग के समय मौन रहना चाहिये, नखों को तथा काँख और लिंगेंद्रिय के रोम न काटना चाहिये ॥२४

रेतो नावकिरेज्जातु ब्रह्मव्रतधरः स्वयम् ।
अवकीर्णेऽवगाह्याप्सुयतासुस्त्रिपदीं जपेत् ॥२५॥

स्वयं ब्रह्मचर्य व्रत को धारण किये हुए रूप में अपना वीर्य स्खलित न करे, यदि स्वप्न-दोष आदि में वह स्वयं स्खलित होजाय तो जलसे स्नान कर के प्राणायाम तथा गायत्रीका जप करना चाहिये ॥

अग्न्यर्काचार्यगोविप्रगुरुवृद्धसुराञ्शुचिः ।
समाहित उपासीत संध्ये च यतवाग्जपन् ॥२६॥

सावधान और पवित्र रहकर अग्नि, आचार्य, सूर्य, गौ, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध और देवताओं का पवित्रताके साथ पूजन, मौनता और एकाग्र चित्त के साथ सन्ध्योपासन आदि जप करना चाहिये ॥

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ।
न मर्त्यबुद्ध्याऽसूयते सर्वदेवमयो गुरुः ॥२७॥

आचार्यको मेरा स्वरूप जानकर उसकी कदापि अवज्ञा न करनी चाहिये, उसके गुण में दोष न लगाना चाहिये, क्योंकि गुरुही सर्व देवमय है ॥

सायं प्रातरुपानीय भैक्ष्यं तस्मै निवेदयेत् ।
यच्चान्यदप्यनुज्ञातमुपयुंजीत संयतः ॥२८॥

संध्या या प्रातःकाल भिक्षा द्वारा जो कुछ मिले और उसके सिवा जो कुछ भी प्राप्त हो वह सब गुरु के सामने लाकर रख देना चाहिये, यदि गुरु आज्ञा दे तो इन्द्रियों को वश में रखकर प्राप्त पदार्थों का उपयोग करना चाहिये ॥२८॥

शुश्रूषमाण आचार्यं सदोपासीत नीचवत् ।
यानशय्यासनस्थानैर्नातिदूरे कृतांजलिः ॥२९॥

जब गुरु कहीं को जाय तब उसके पीछे-पीछे चलना चाहिये, जब बैठे तब हाथ जोड़कर मर्यादा पूर्वक उसके पास बैठना चाहिये, जब सोवे तब उसके पैर दबाना चाहिये और सदैव ही शुश्रूषा तथा उपासना करते रहना चाहिये ॥२९॥

एवं वृत्तो गुरुकुले वसेद्भोगविवर्जितः ।
विद्या समाप्यते यावद्बिभ्रद्व्रतमखंडितम् ॥३०॥

इस प्रकार विद्याध्ययन समाप्त होने तक भोगों का त्याग करके अखंड नियम रखते हुए गुरु के यहाँ रहना चाहिये ॥३०॥

यद्यसौ छंदसां लोकमारोक्ष्यन्ब्रह्मविष्टपम् ।
गुरवे विन्यसेद्देहं स्वाध्यायार्थं बृहद्व्रतः ॥३१॥

यदि ब्रह्मचारी मूर्त्तिमान् वेदोंके निवासस्थान ब्रह्मलोक में जाना चाहे तो गुरु के पास ही सदैव रहकर वेदाध्ययन करते हुए निष्काम ब्रह्मचर्य रख कर अपने को गुरु के ही अर्पण करदेना चाहिये ॥

अग्नौ गुरावात्मति च सर्वभूतेषु मां परम् ।
अपृथग्धीरुपासीत ब्रह्मवर्चस्व्यकल्मषः ॥३२॥

वेदाभ्याससे तेजस्वी हुए तथा निष्पाप नैष्ठिक ब्रह्मचारीको भेद-बुद्धि त्यागकर अग्नि, गुरु, अपने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शरीर तथा सभी प्राणियों में मेरे ब्रह्म स्वरूप की उपासना करनी चाहिये ॥३२॥

स्त्रीणां निरीक्षणस्पर्शसंलापक्ष्वेलनादिकम् ।
प्राणिनो मिथुनीभूतानगृहस्थोऽग्रतस्त्यजेत् ॥३३॥

जो गृहस्थ न हों उनको स्त्रियों का दर्श-स्पर्श, भाषण और हास्य-विनोद आदि त्यागना चाहिये और दम्पत्ति रूप स्त्री-पुरुष को तो देखना भी नहीं चाहिये ॥३३॥

शौचमाचमनं स्नानं संध्योपासनमार्जवम् ।
तीर्थसेवा जपोऽस्पृश्याऽभक्ष्याऽसंभाष्यवर्जनम् ३४
सर्वाश्रमप्रयुक्तोऽयं नियमः कुलनंदन ।
मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायसंयमः ॥३५॥

हे उद्धव ! शौच, आचमन, स्नान, संध्योपासन, सरलता, तीर्थ-सेवन, जप, अस्पर्श्य, अभक्ष्य और अनुचित बात-चीत का त्याग, सब पदार्थों में मेरी भावना तथा मन, वचन और शरीर का निग्रह-यह सब आश्रमों के साधारण धर्म हैं ॥३४॥॥३५॥

एवं बृहद्व्रतधरो ब्राह्मणोऽग्निरिव ज्वलन् ।
मद्भक्तस्तीव्रतपसा दग्धकर्माशयोऽमलः ॥३६॥

इस प्रकार नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण करने से अग्नि के समान कान्तिवान् यदि निष्काम भी हो तो उसका अन्तःकरण रूपी लिंग-शरीर तीव्र तप के प्रभाव से जल जाने के कारण वह मेरा परम भक्त होजाता है ॥ ३६॥

अथानंतरमावेक्ष्यन्यथा जिज्ञासितागमः ।
गुरवे दक्षिणां दत्त्वा स्नायाद्गुर्वनुमोदितः॥ ३७।

जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी नहीं रहना चाहता उसे इस आश्रम के पश्चात् किसी भी आश्रम में प्रवेश करने का अधिकार है, गृहस्थाश्रममें आनेवाले को चाहिये कि वह वेद का अर्थ समझ लेने पर गुरु-दक्षिणा देकर उससे माँगकर और अभ्यङ्ग आदि करके समावर्त्तन (मेखला-दंड आदिका त्याग) करे॥

गृहं वनं वोपविशेत् प्रव्रजेद्वा द्विजोत्तमः ।
आश्रमादाश्रमं गच्छेन्नान्यथा मत्परश्चरेत् ॥३८॥

यदि विषय-भोग की इच्छा हो तो गृहस्थ आश्रममें जाना चाहिये और अन्तःकरण शुद्ध करना हो तो वानप्रस्थ में जाय, यदि स्वयं ब्राह्मण हो तो सन्यास ले ले, मेरे भक्त को किसी आश्रमकी आवश्यकता नहीं, पर साधारण लोगों को एक आश्रमसे दूसरे अगले आश्रममें जाना चाहिये, पिछले में न लौटना चाहिये, जैसे सन्यस्थ से गृहस्थ न बनना चाहिये ॥ ३८॥

गृहार्थी सदृशीं भार्यामुद्वहेदजुगुप्सिताम् ।
यवीयसीं तु वयसा यां सवर्णामनुक्रमात् ॥३९॥

गृहस्थ बनने वालों को समावर्तन कर्म करनेके पीछे अपने समान वर्ण वाली सुन्दर कुल तथा लक्षणों वाली कन्याके साथ विवाह करे, यदि भोग इच्छा से और भी विवाह करना हो तो अपने वर्ण की भार्या के साथ विवाह करनेके पश्चात् वह वर्ण के अनुक्रमानुसार किसी दूसरे वर्ण वाली कन्याके साथ भी विवाह कर सकता है, जैसे क्षत्रिय-वैश्य या शूद्र की कन्या को विवाह सकता है ॥३९॥

इज्याध्ययनदानानि सर्वेषां च द्विजन्मनाम् ।
प्रतिग्रहोऽध्यापनं च ब्राह्मणस्यैव याजनम्॥४०॥

यज्ञ, वेदाध्ययन और दान करना-यह तीनों कर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को आवश्यक हैं, परन्तु वेद पढ़ना, दान लेना और यज्ञ कराना-यह तीन कर्म ब्राह्मण ही के हैं ॥४०॥

प्रतिग्रहं मन्यमानस्तपस्तेजोयशोनुदम् ।
अन्याभ्यामेव जीवेत शिलैर्वा दोषदृक्तयोः॥४१॥

यदि ब्राह्मण दान लेने से तेज और यश का नाश होना समझकर उसका लेना उचित न समझे तो वेद पढ़ाकर और यज्ञ कराके जीविका कमाये. यदि इसमें भी दीनताका दोष देखे तो खेतके दाने जो कि मालिक ने छोड़े हों-बीनकर अपना जीवन-निर्वाह करे ॥४१॥

ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते ।
कृच्छ्राय तपसे चेह प्रेत्यानंतसुखाय च ॥४२॥

ब्राह्मण का यह शरीर संसार के तुच्छ भोग-विलासों के लिये नहीं है, वरन् जीवन-पर्यन्त कष्ट सहते हुए तपस्या करके मरण-पर्यन्त परलोक में अनन्त सुख भोगने के लिये है ॥४२॥

शिलोञ्छवृत्त्या परितुष्टचेता धर्मं महांतं विरजं जुषाणः । मय्यर्पितात्मा गृह एव तिष्ठन्नातिप्रसक्तः समुपैति शांतिम् ॥४३॥

बाज़ारों या खेत में पड़े हुए दाने बीनकर उन पर ही सन्तोष करने वाला, उत्तम निष्काम करने वाला ब्राह्मण या अन्य कोई भी भक्त मोक्ष को पा जाता है ॥ ४३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समुद्धरंति ये विप्रं सीदंतं मत्परायणम् ।
तानुद्धरिष्ये न चिरादापद्भ्यो नौरिवार्णवात् ४४॥

जो लोग दरिद्री ब्राह्मण या मेरे भक्त का आपत्ति से उद्धार करते हैं, उनको मैं शीघ्र सब कष्टों से पार कर दूँगा, जैसे नाव समुद्र में से मनुष्यों को पार कर देती है ॥४४॥

सर्वाः समुद्धरेद्राजा पितेव व्यसनात्प्रजाः ।
आत्मानमात्मना धीरो यथा गजपतिर्गजान्॥४५॥

राजा को अपनी प्रजा का कष्ट से इसी प्रकार उद्धार करना चाहिये, जैसे पिता पुत्र का उद्धार करता है अथवा जैसे गजपति हाथियों को कीचड़ में से निकालता है, वैसे ही धीरवान् राजाको प्रजा का कष्ट निवारण करते हुए अपनी आप भी रक्षा करनी चाहिये ॥४५॥

एवंविधो नरपतिर्विमानेनार्कवर्चसा ।
विधूयेहाशुभं कृत्स्नमिंद्रेण सह मोदते ॥४६॥

ऐसा राजा यहीं सब कर्मों से मुक्त होकर सूर्य के समान रथ में बैठा हुआ इन्द्र के साथ आनन्द करता है ॥४६॥

सीदन्विप्रो वणिग्वृत्त्या पण्यैरेवापदं तरेत ।
खड्गेन वाऽऽपदाक्रांतो न श्ववृत्त्या कथंचन ॥४७॥

यदि ब्राह्मण जीविका बिना दुःखी हो, तो उसे वैश्य-वृत्ति (व्यापार) या अत्यन्त विपत्तिमें क्षत्रिय वृत्ति (हथियार बाँधना आदि) करके अपने को उद्धार करना चाहिये, पर श्वान-वृत्ति-रूपी नौकरी कदापि न करनी चाहिये ॥४७॥

वैश्यवृत्त्या तु राजन्यो जीवेन्मृगयाऽऽपदि ।
चरेद्वा विप्ररूपेण न श्ववृत्त्या कथंचन ॥४८॥

आजीविका-रहित दुःखी क्षत्रिय को भी इसी प्रकार वैश्य-वृत्ति या घोर विपत्तिमें शिकार आदि से अपना निर्वाह करना चाहिये अथवा विपद्-काल तक ब्राह्मण-वृत्ति से भी जीविका उपार्जन कर लेनी चाहिये, परन्तु श्वान-वृत्तिरूप दासता कभी न करना चाहिये ॥ ४८ ॥

शूद्रवृत्तिं न भजेद्वैश्यश्शूद्रः कारुकटक्रियाम् ।
कृच्छ्रान्मुक्तो न गर्ह्येणवृत्तिं लिप्सेत कर्मणा॥४९॥

जीविका बिना दुःखित वैश्य को शूद्र-वृत्ति (सेवा) के द्वारा अपनी आपत्ति काटनी चाहिये और जीविका-रहित शूद्रको प्रतिलोम जाति की वृत्ति (चटाई आदि बनाने) से अपना पेट पालन करना चाहिये, आपत्ति टल जाने पर प्रत्येक वर्ण को पर-वृत्ति छोड़ देनी चाहिये ॥४९॥

वेदाध्यायस्वधास्वाहाबल्यन्नाद्यैर्यथोदयम् ।
देवर्षिपितृभूतानि मद्रूपाण्यन्वहं यजेत् ॥५०॥

गृहस्थ लोगोंको वेदाध्ययनरूपी ब्रह्म-यज्ञ द्वारा ऋषियों का, स्वधाकार-द्वारा पित्रीश्वरों का, स्वाहाकार से देवताओं का, बलिदान द्वारा भूतों का और अन्न-जल आदि के दान द्वारा मनुष्यों का अपनी शक्ति के अनुसार प्रति दिन पूजन करना चाहिये तथा उन सबमें ईश्वर-दृष्टि रखनीचाहिये॥

यदृच्छयोपपन्नेन शुक्लेनोपार्जितेन वा ।
धनेनाऽपीडयन्भृत्यान्न्यायेनैवाहरेत्क्रतून् ॥५१॥

यदि शक्ति हो तो बिना उद्यम के मिले हुए अथवा अपनी वृत्ति से न्याय-पूर्वक कमायेहुए शुद्ध धन के द्वारा इस रीति से यज्ञ करना चाहिये कि जिसमें अपने पोष्यवर्ग (कुटुम्ब) को पीड़ा न पहुंचे॥

कुटुंबेषु न सज्जेत न प्रमाद्येत्कुटुंब्यपि ।
विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥५२॥

गृहस्थको फिर भी कुटुम्ब में आसक्त न होना चाहिये, मेरे भजनमें सावधान रहना चाहिये, इस प्रपंच और स्वर्गादि को भी मिथ्या जानकर केवल आत्मा ही को सत्य मानना चाहिये ॥५२॥

पुत्रदाराप्तबंधूनां संगमः पांथसंगमः ।
अनुदेहं वियंत्येते स्वप्नो निद्रानुगो यथा ॥५३॥

पुत्र, स्त्री, सुहृद और बन्धुओं का समागम मुसाफिरों के समागम की नाईं है, क्योंकि जैसे निद्रा जाने पर स्वप्न चला जाता है, त्यों ही देह जाने पर यह सब चले जाते हैं ॥५३॥

इत्थं परिमृशन्मुक्तो गृहेष्वतिथिवद्वसन् ।
न गृहैरनुबध्येत निर्ममो निरहंकृतः ॥५४॥

इस प्रकार विचार करने से मुक्त पुरुष अहंता ममता को छोड़कर महमान की तरह घरोंमें रहता हुआ भी बन्धनको प्राप्त नहीं होता ॥५४॥

कर्मभिर्गृहमेधीयैरिष्ट्वा मामेव भक्तिमान् ।
तिष्ठेद्वनं वोपविशेत्प्रजावान्वा परिव्रजेत् ॥५५॥

इस प्रकार गृह-सम्बन्धी कर्मों के द्वारा पूजन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करता हुआ पुरुष चाहे गृहस्थाश्रममें बनारहे और चाहे वानप्रस्थ में जाय या सन्यासाश्रममें जाय ॥

यस्त्वासक्तमतिर्गेहे पुत्रवित्तैषणातुरः ।
स्त्रैणः कृपणधीर्मूढो ममाहमिति बध्यते ॥५६॥

घर में आसक्ति रखने वाला, पुत्र और धनकी तृष्णा से आतुर, स्त्रीमें लंपट और दीन बुद्धिवाला मूढ़ गृहस्थ अहंता और ममता के बन्धन में बंध जाता है ॥ ५६ ॥

अहो मे पितरौ वृद्धौ भार्याबालात्मजात्मजाः ।
अनाथा मामृते दीनाः कथं जीवंति दुःखिताः५७॥

यह मेरे माता-पिता वृद्धहैं, मेरी स्त्री के छोटे बालक हैं, यह मेरे बिना अनाथ हो जाँयगे, भला यह दीन-दुखिया मेरे बिना कैसे जीवित रहेंगे? ५७

एवं गृहाशयाक्षिप्तहृदयो मूढधीरयम् ।
अतृप्तस्ताननुध्यायन्मृतोऽधं विशते तमः ॥५८॥

इस प्रकार घर की वासना में चारों ओर से बंधे हुए हृदयवाला और विषयोंसे अतृप्त यह मूढ़ बुद्धि गृहस्थ निरन्तर उन्हीं का ध्यान करने से मरनेके उपरान्त तामसी योनिमें जन्म पाताहै॥५८॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७॥

अठारहवां अध्याय

(वानप्रस्थ और सन्यस्थ धर्म वर्णन)

श्रीभगवानुवाच

वनं विविक्षुः पुत्रेषु भार्यां न्यस्य सहैव वा ।
वन एव वसेच्छांतस्तृतीयं भागमायुषः ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण बोले–जब अवस्था का तीसरा भाग (अर्थात् पचास वर्ष उपरान्त) आरम्भ हो, तब पुत्रों को घर सौंपकर बनमें वास करना चाहिये, यदि स्त्री साथ हो तो उसे बनमें ले जाना चाहिये, अन्यथा उसे भी पुत्रों के साथ छोड़कर शान्ति-पूर्वक बनमें रहना चाहिये ॥१॥

कंदमूल फलैर्वन्यैर्मेध्यैर्वृत्तिं प्रकल्पयेत् ।
वसीत वल्कलं वाससृणपर्णाजिनानि च ॥ २ ॥

बनमें कन्द, मूल, फल खाकर अपनी जीविका चलानी चाहिये, वल्कल, तृण. पत्ते और मृग-चर्म पहिनना चाहिये, यह सभी बनकी वस्तुयें परम पवित्र हैं ॥२॥

केशरोमनखश्मश्रुमलानि बिभृयादतः ।
न धावेदप्सु मज्जेत त्रिकालं स्थंडिलेशयः ॥ ३ ॥

केश, रोम, नख, दाढ़ी और मूंछ न कटवानी चाहिये. इनको साफ भी न करना चाहिये. तीनों समय जलमें घुसकर स्नान करलेना चाहिये, दांतों को भी साफ़ न करना चाहिये और पृथ्वी पर सोना चाहिये ॥३॥

ग्रीष्मे तप्येत पंचाग्नीन्वर्षास्वासारषाड्जले ।
आकंठमग्नः शिशिर एवंवृत्तस्तपश्चरेत् ॥ ४ ॥

ग्रीष्म ऋतु में पञ्चाग्नि (चारों ओर प्रज्वलित अग्नि की धूनियाँ लगाकर) तपे, वर्षा-ऋतु में जल वृष्टि सहन करे, जाड़ोंमें कंठतक पानीमें डूबा रहे॥

अग्निपक्वं समश्नीयात्कालपक्वमथापि वा ।
उलूखलाश्मकुट्टो वा दंतोलूखल एव वा ॥ ५ ॥

अग्नि से पके हुए या स्वयं पके हुए पदार्थोंको ऊखल में कूटकर या पत्थर से कूच कर खाना चाहिये अथवा दाँतोंही से चबाकर खानाचाहिये॥

स्वयं संचिनुयात्सर्वमात्मनो वृत्तिकारणम् ।
देशकालबलाभिज्ञो नाददीताऽन्यदाऽऽहृतम्॥ ६ ॥

अपने जीवन-निर्वाह सम्बन्धी पदार्थ स्वयं ही लाना चाहिये और देश-काल तथा अपना बल देखते हुए नये अन्न के मिल जानेपर पुराने अन्नका त्याग कर देना चाहिये ॥६॥

वन्यैश्चरुपुरोडाशैर्निर्वपेत् कालचोदितान ।
न तु श्रौतेन पशुना मां यजेत वनाश्रमी ॥ ७ ॥

वन में उत्पन्न हुए चरु और पुरोडाश के द्वारा कि जो यथा कालीन हों-देवताओं का यज्ञ करना चाहिये, परन्तु जैसा वेद में पशु-बल के लिये कहा गया है, वैसा करके फिर यजन न करना चाहिये॥

अग्निहोत्रं च दर्शश्च पूर्णमासश्च पूर्ववत् ।
चातुर्मास्यानि च मुनेरान्नातानि च नैगमैः ॥ ८ ॥

वानप्रस्थ को भी अग्निहोत्र, दर्श पूर्ण मास और चतुर्मास यज्ञ गृहस्थाश्रम की भाँति करना चाहिये, ऐसा वेदवादियों ने निर्णय कियाहै ॥८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एवं चीर्णेन तपसा मुनिर्धमनिसंततः ।
मां तपोमयमाराध्य ऋषिलोकादुपैति माम्॥ ९ ॥

इस प्रकार तपस्या करते-करते क्लेशसे सबदेह सूखकर नाड़ियों का जाल मात्र शेष रह जाता है और वह मुझ तपोमय के आराधन द्वारा पहले ऋषिलोक से महर्लोक आदि में जाता हुआ मुझे प्राप्त हो जाता है ॥९॥

यस्त्वेतत्कृच्छ्रतश्चीर्णं तपो निःश्रेयसं महत् ।
कामायाल्पीयसे युंज्याद्बालिशः कोऽपरस्ततः॥१०

इतने कष्ट भोगकर कियेहुए और परमकल्याण रूप मोक्ष को देने वाले तप के द्वारा जो पुरुष सांसारिक तुच्छ सुखों को प्राप्तकरे, उसके समान मूर्ख कौनहै ? भाव यहहै कि जीवन-पर्यन्त निष्काम रहने से मोक्ष प्राप्त होजाता है ॥१०॥

यदाऽसौ नियमेऽकल्पो जरया जातवे पशुः ।
आत्मन्यग्नीन् समारोप्य मच्चित्तोऽग्निं समाविशेत् ॥

आयु का तीसरा भाग (पचहत्तर वर्ष) पूर्ण होने पर वैराग्य मन्द रहते हुए भी सन्यास धारण करने का अधिकार है, यदि इससे पहले ही वृद्धावस्था के कारण देह काँपनेलगे और कर्त्तव्य-पालन की शक्ति न रहे, तो आत्मा में अग्नियों का समारोपण करके मुझमें मन लगाते हुए चितामें प्रवेश कर जाना चाहिये ॥११॥

यदा कर्मविपाकेषु लोकेषु निरयात्मसु ।
विरागो जायते सम्यङ् न्यस्ताग्निः प्रव्रजेत्ततः॥१२॥

और कर्म के फल रूप तथा अन्त में नरक के समान दुःखरूप सब लोकों से वैराग्य होजाय तो अग्निहोत्र को त्यागकर वानप्रस्थ से सन्यास लेना चाहिये ॥ १२ ॥

इष्ट्वा यथोपदेशं मां दत्त्वा सर्वस्वमृत्विजे ।
अग्नीन्स्वप्राण आवेश्य निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥१३॥

सन्यास लेते समय शास्त्रानुसार मेरा पूजन करके ऋत्विजों को सर्वस्व दे डाले और अग्निहोत्र को अपने प्राणों में प्रविष्ट करके स्वयं तृष्णादि का त्याग करके सन्यास ले ॥१३॥

विप्रस्य वै संन्यसतो देवा दारादिरूपिणः ।
विघ्नान्कुर्वन्त्ययं ह्यस्मानाक्रम्य समियात्परम्॥१४॥

जब ब्राह्मण सन्यास लेता है तब देवता उसे अपने लोकसे आगे बढ़ता हुआ देखकर स्त्री आदि के वेषमें आकर विघ्न करतेहैं, इसलिये उस समय उन विघ्नों को जीतते हुए सन्यास लेना चाहिये ॥

बिभृयाच्चेन्मुनिर्वासः कौपीनाच्छादनं परम् ।
त्यक्तं न दंडपात्राभ्यामन्यत्किंचिदनापदि ॥१५॥

यदि सन्यासी वस्त्र धारण करनाचाहे तो उसे उतना ही वस्त्र लेना चाहिये जिसमें लिंगेन्द्रिय ढक जाय, एक दण्ड और एक जल-पात्र के सिवा कुछ भी न लेना चाहिये ॥१५॥

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥१६॥

पृथ्वी पर देख-देखकर पैर रखना चाहिये, जल को वस्त्र से छानकर पीना चाहिये, सत्यता पूर्वक पवित्र वचन बोलना चाहिये और विचार पूर्वक जो बात शुद्ध जान पड़े वह करना चाहिये ॥१६॥

मौनाऽनीहानिलायामा दंडा वाग्देहचेतसाम् ।
न ह्येते यस्य संत्यंग वेणुभिर्न भवेद्यतिः ॥१७॥

हे उद्धव ! मौन रखना-यह वाणी का दण्ड है सकाम कर्म न करना देह का दण्ड है और प्राणायाम करना मनका दण्ड है, इन्हीं तीन दण्डों को धारण करने वाला दण्डी सन्यासी कहलाता है, अन्यथा कोरा बांस का दण्ड (डण्डा) लेने वाला सन्यासी नहीं कहला सकता ॥१७॥

भिक्षां चतुर्षु वर्णेषु विगर्ह्यान्वर्जयंश्चरेत् ।
सप्तागारानसंक्लृप्तांस्तुष्येल्लब्धेन तावता ॥१८॥

दान, यज्ञ, पढ़ाने और खेतमें से अन्न बीनकर जीविका करने वाले चार प्रकार के ब्राह्मणों के घर से ही भिक्षा लानी चाहिये, निंदित पुरुषों के यहाँ से नहीं, केवल सात घर ही से पाई हुई भिक्षा पर सन्तोष करना चाहिये ॥१८॥

बहिर्जलाशयं गत्वा तत्रोपस्पृश्य वाग्यतः ।
विभज्य पावितं शेषं भुंजीताऽशेषमाहृतम् ॥१९॥

भिक्षा लेकर गाँव से बाहर जलाशय पर जाय आचमन करके अन्न को प्रोक्षण आदि द्वारा शुद्ध करे, फिर जितना लाया हो उतना अन्न मौनतापूर्वक खा जाय, यदि कोई अतिथि आ जाय तो यथा भाग उसे देकर शेष अन्नको खाना चाहिये ॥

एकश्चरेन्महीमेतां निःसंगः संयतेंद्रियः ।
आत्मक्रीड आत्मरत आत्मवान्समदर्शनः ॥२०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

असंग होकर, इन्द्रियों पर अधिकार रख कर आत्मा ही में रमण करते हुए और उसी में संतोष धैर्य तथा समदृष्टि रखकर इस पृथ्वी पर अकेले ही विचरण करना चाहिये ॥२०॥

विविक्तक्षेमशरणो मद्भावविमलाशयः ।
आत्मानं चिंतयेदेकमभेदेन मया मुनिः ॥२१॥

निर्जन और निर्भय स्थानमें बैठकर मेरी भावना से अन्तःकरण को शुद्ध करके मेरे साथ अभेद-बुद्धि रखते हुए सन्यासी को आत्म-चिन्तवन करना चाहिये ॥२१॥

अन्वीक्षेतात्मनो बंधं मोक्षं च ज्ञाननिष्ठया ।
बंध इंद्रियविक्षेपौ मोक्ष एषां च संयमः ॥२२॥

ज्ञान निष्ठ होकर अपने बन्ध-मोक्ष पर विचार करना चाहिये कि इन्द्रियोंका विक्षिप्त रहनाही तो बंधहै और उनका निग्रह ही मोक्ष है ॥२२॥

तस्मान्नियम्य षड्वर्गं मद्भावेन चरेन्मुनिः ।
क्षुल्लकामेभ्यो लब्ध्वात्मनि सुखं महत् ॥२३॥

इसलिये इन्द्रियोंका निग्रह करके मुझमें चित्त लगाना चाहिये, तुच्छ कामनाओं से विरक्त रहना चाहिये-ऐसा करते हुए मुनि को अत्युत्तम आत्म-सुख पूर्वक पृथ्वी पर विचरना चाहिये ॥२३॥

पुरग्रामव्रजान्सार्थान्भिक्षार्थं प्रविशंश्चरेत् ।
पुण्यदेशसरिच्छैलवनाश्रमवतीं महीम् ॥२४॥

केवल भिक्षा के लिये ही नगर, गाँव, व्रज और समूह में जाना चाहिये, अन्यथा सदैव पवित्र देश नदियों, पर्वतों, बनों और आश्रमों वाली पृथ्वीपर अकेले ही विचरना चाहिये ॥२४॥

वानप्रस्थाश्रमपदेष्वभीक्ष्णं भैक्ष्यमाचरेत् ।
संसिध्यत्याशुसंमोहः शुद्धसत्त्वः शिलांधसा॥२५॥

प्रतिदिन वानप्रस्थों के आश्रम से भिक्षा लाई जाय तो सबसे अच्छा है, क्योंकि उस अन्न से अन्तःकरण शुद्ध होजाता है और मोह दूर होजाने से मोक्ष भी प्राप्त होजाता है ॥२५॥

नैतद्वस्तुतया पश्येद्दृश्यमानं विनश्यति ।
असक्तचित्तो विरमेदिहामुत्र चिकीर्षितात् ॥२६॥

मिष्टान्न पदार्थों को देखकर उन्हें वास्तविक न समझना चाहिये, क्योंकि इससे विनाश होता है, इसलिये लोक-परलोक की आसक्ति छोड़ कर इन पदार्थों के लिये उपाय न करना चाहिये ॥ २६ ॥

यदेतदात्मनि जगन्मनोवाक्प्राणसंहतम् ।
सर्वं मायेतितर्केण स्वस्थस्त्यक्त्वा न तत्स्मरेत् २७

यह ममता का आस्पद जगत् अहङ्कारका आस्पद शरीर और इनके द्वारा प्राप्त होने वाले सुख यह सभी भगवान् की माया मात्र हैं, ऐसा सोच कर उन्हें त्यागकर, केवल आत्मनिष्ठ होकर इन पदार्थों का स्मरण भी न करना चाहिये, क्योंकि स्मरण ही से आत्मा बन्धन में पड़ता है ॥ २७ ॥

ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तो वाऽनपेक्षकः ।
सलिंगानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः ॥२८॥

वैराग्य द्वारा मोक्ष के अभिलाषी, पूर्ण ज्ञानवान् या मोक्ष के भी न चाहने वाले मेरी भक्ति में दृढ़ता पूर्वक लगे हुए मेरे भक्त को दण्ड आदि की आवश्यकता वाले आश्रमों के धर्मों की आसक्ति छोड़कर, यथासाध्य ही आश्रम-सम्बन्धी धर्मों का पालन करना उचित है, उनमें अधिक लिप्त न होना चाहिये ॥२८॥

बुधो बालकवत्क्रीडेत्कुशलो जडवच्चरेत् ।
वदेदुन्मत्तवद्विद्वान्गोचर्यां नैगमश्चरेत् ॥२९॥

विवेकी होने पर भी बालक की भांति मान-अपमानका विचार न करतेहुए क्रीड़ा करनीचाहिए चतुर होकर फल का अनुसन्धान न रख कर जड़ की भांति विचरण करना चाहिये, पण्डित होकर भी लोक को प्रसन्न करने की इच्छा न रखते हुए उन्मत्त की भांति बोलना चाहिये और वेद निष्ठ होकरभी लोक-संगसे बचनेके लिये बैल की भांति नियम-रहित दशा में रहना चाहिये ॥ २९॥

वेदवादरतो न स्यान्न पाखंडी न हैतुकः ।
शुष्कवादविवादेन कंचित्पक्षं समाश्रयेत् ॥३०॥

वेद संबन्धी अनेक वाद-विवाद या वेद-विरुद्ध केवल तर्क में निष्ठा न रखनी चाहिये, पाखण्डमें न पड़ना चाहिये और न निष्प्रयोजन विषयके विवाद में कोई पक्ष लेना चाहिये ॥३०॥

नोद्विजेत जनाद्धीरो जनं नोद्वेजयेन्न तु ।
अतिवादांस्तितिक्षेतनावमन्येत कंचन ।
देहमुद्दिश्य पशुवद्वैरं कुर्यान्न केनचित् ॥३१॥

न तो किसी के कारण स्वयं उद्वेग पाये और न किसी को उद्वेग पहुंचाये, धैर्य-पूर्वक दुर्वचन सहन करे, किसी का अनादर न करे और न देह के कारण पशुकी भांति किसी से बैर करे ॥३१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक एव परो ह्यात्मा भूतेष्वात्मन्यवस्थितः ।
यथेंदुरुदपात्रेषु भूतान्येकात्मकानि च ॥३२॥

जैसे जल के भिन्न २ पात्रों में एक ही चंद्रमा रहता है, वैसे ही अपने तथा प्राणी मात्र के भीतर एक ही परमात्मा है, इसलिये आत्म-दृष्टि से जिस प्रकार बैर रखने का कोई कारण नहीं है, वैसे ही देह-दृष्टि से भी नहीं, क्योंकि देह मात्र भी कारण रूप से एक ही हैं ॥३२॥

अलब्ध्वा न विषीदेत काले कालेऽशनं क्वचित् ।
लब्ध्वा न हृष्येद्धृतिमानुभय दैवतंत्रितम् ॥३३॥

किसी स्थान पर यदि यथा समय भोजन न मिले तो धीरज रक्खे और घबराये नहीं, और मिलजाय तो प्रसन्न भी न हो, क्योंकि मिलना या न मिलना दैवाधीन है ॥३३॥

आहारार्थं समीहेत युक्तं तत्प्राणधारणम् ।
तत्त्वं विमृश्यते तेन तद्विज्ञाय विमुच्यते ॥३४॥

आहार के लिये प्रयत्न अवश्य करना चाहिये क्योंकि परमहंस को भी प्राण धारण करना पड़ेगा और प्राण होंगे तो तत्व-विचार हो सकेगा कि जिसके द्वारा मोक्ष संभव है ॥३४॥

यदृच्छयोपपन्नान्नमद्याच्छ्रेष्ठमुतापरम् ।
तथा वासस्तथा शय्यां प्राप्तं प्राप्तं भजेन्मुनिः॥३५॥

दैवेच्छा से जो कुछ भी अच्छा या बुरा मिल जाय वही अन्न खाले, इसी प्रकार शैया, वस्त्र भी जैसा मिले उसी को ग्रहण करले ॥३५॥

शौचमाचमनं स्नानं न तु चोदनया चरेत् ।
अन्यांश्च नियमान्ज्ञानी यथाऽहं लीलयेश्वरः॥३६॥

जिस प्रकार मैं ईश्वर शौच, आचमन, स्नान और दूसरे नियमों को लीलामात्र से ग्रहण करता हूँ, वेद का दास बनकर नहीं, वैसे ही ज्ञानवान्को सामर्थ्य रहते हुए इन नियमों का पालन करना चाहिये, वेदका दास न बनना चाहिये ॥३६॥

न हि तस्य विकल्पाख्या या च मद्वीक्षया हता ।
आदेहांतात्क्वचित्ख्यातिस्ततः संपद्यते मया॥३७॥

ज्ञानी पुरुषको भेद नहीं प्रतीत होना, जो कुछ होता भी है वह ज्ञान से नष्ट होजाता है, यद्यपि देहावसान तक आहार आदि में भेद दिखाई देता है, पर वह यथार्थ नहीं होता और देहान्त होनेपर मुक्ति हो जाती है ॥३७॥

दुःखोदर्केषु कामेषु जातनिर्वेद आत्मवान् ।
अजिज्ञासितमद्धर्मो गुरुं मुनिमुपाव्रजेत् ॥३८॥

जिस पुरुष को परिणाम में दुःखरूप विषय में वैराग्य उत्पन्न तो होजाय परन्तु मुझसे मिलने का उपाय समझ में न आवे, उसे धैर्य-पूर्वक किसी ब्रह्मवेत्ता गुरु की शरण लेनी चाहिये ॥३८॥

तावत्परिचरेद्भक्तः श्रद्धावाननसूयकः ।
यावद्ब्रह्म विजानीयान्मामेव गुरुमादृतः ॥३९॥

जब तक ब्रह्मज्ञान प्राप्त न होजाय तब तक श्रद्धा और आदर के साथ ईर्ष्या त्याग कर गुरुको मेरा स्वरूप मानते हुए भक्ति पूर्वक उसकी सेवा करनी चाहिये ॥ ३९ ॥

यस्त्वसंयतषड्वर्गः प्रचंडेंद्रियसारथिः ।
ज्ञानवैराग्यरहितस्त्रिदंडमुपजीवति ॥४०॥

जिससे छहों इन्द्रियों का दमन न हो सका, जिसकी बुद्धि विषयों में अत्यन्त आसक्त बनी रही जो ज्ञान-वैराग्य से शून्य बना रहा, ऐसा सन्यासी केवल पेट भरने के लिये तीन दंड उठाकर फिरता है॥

सुरानात्मानमात्मस्थं निन्हुते मां च धर्महा ।
अविपक्वकषायोऽस्मादमुष्माच्च विहीयते ॥४१॥

मनके राग-द्वेष आदि मल भस्म होने के बिना जो मनुष्य सन्यास लेकर धर्म का त्याग करता है, वह पूज्य देवताओं को, अपने आपको और अपने अन्तरात्मा रूप मुझको भी ठगता है तथा लोक-परलोक से नष्ट होजाता है ॥४१॥

भिक्षोर्धर्मः शमोऽहिंसा तप ईक्षा वनौकसः ।
गृहिणो भूतरक्षेज्या द्विजस्याचार्यसेवनम् ॥४२॥

शान्ति और अहिंसा सन्यासी का, तपस्या और विचार वानप्रस्थ का, प्राणी मात्र का दया, रक्षा और देवयज्ञ गृहस्थ का और गुरु-सेवा ब्रह्मचारी का मुख्य धर्म है ॥ ४२ ॥

ब्रह्मचर्यं तपः शौचं संतोषो भूतसौहृदम् ।
गृहस्थस्याप्यृतौ गंतुः सर्वेषां मदुपासनम् ॥४३॥

ब्रह्मचर्य, तप, शौच, सन्तोष, प्राणी मात्र के साथ सुहृद-भाव और ऋतुकाल में स्त्री-संग करना गृहस्थ के धर्म हैं और मेरी सेवा करना तो सभी का धर्म है ॥४३॥

इति मां यः स्वधर्मेण भजन्नित्यमनन्यभाक् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्वभूतेषु मद्भावो मद्भक्ति विंदते चिरात् ॥४४॥

इस प्रकार जो मनुष्य वर्णाश्रम के धर्म पालन करता हुआ मेरा निरन्तर भजन करे, स्त्री पुत्रादि से प्रीति न करे, प्राणी मात्र में मेरी भावना रक्खे, उसे मेरी भक्ति शीघ्रही प्राप्त होजाती है ॥४४॥

भक्त्योद्धवानपायिन्या सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सर्वोत्पत्त्यप्ययं ब्रह्म कारणं मोपयाति सः ॥४५॥

हे उद्धव ! ऐसा पुरुष दृढ़ भक्ति द्वारा मुझ सब लोकों के महान् ईश्वर, उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारण रूप, श्वाँससे वेद को उत्पन्न करने वाले और वैकुंठवासी को प्राप्त होता है ॥४५॥

इति स्वधर्मनिर्णिक्तसत्त्वो निर्ज्ञातमद्गतिः ।
ज्ञानविज्ञानसंपन्नो न चिरात्समुपैति माम् ॥४६॥

और इस प्रकार वर्णाश्रम धर्म पालन करने से चित्त शुद्ध होकर मेरे स्वरूप का बोध हो जाता है और ज्ञान-विज्ञान प्राप्त होने से वह शीघ्र ही मुझे प्राप्त होजाता है ॥४६॥

वर्णाश्रमवतां धर्म एष आचारलक्षणः ।
स एव मद्भक्तियुतो निःश्रेयसकरः परः ॥४७॥

यह वर्णाश्रम वालों का आचरण रूपी धर्म का फल पितृ लोक देता है, परन्तु यदि इसी को मेरे अर्पण करने से सर्वोत्तम मुक्ति प्राप्त होजाती है ॥

एतत्तेऽभिहितं साधो भवान्पृच्छति यच्च माम् ।
यथा स्वधर्मसंयुक्तो भक्तो मां समियात्परम् ॥४८॥

हे साधो ! तुम्हारे पूछने के अनुसार यह सब धर्म मैंने तुमसे वर्णन किया है; जो पालन करने से मुझ परब्रह्म की प्राप्ति होजाती है ॥४८॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे अष्टदशोऽध्यायः ॥१८॥

उन्नीसवां अध्याय

(भक्तियोग ज्ञानयोग और क्रियायोग निरूपण)

श्रीभगवानुवाच

यो विद्याश्रुतसंपन्न आत्मवान्नानुमानिकः ।
मायामात्रमिदं ज्ञात्वा ज्ञानं च मयि संन्यसेत् ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले–जिस पुरुष को शास्त्र-श्रवण से आत्म-तत्व के अनुभवपर्यन्त ज्ञान प्राप्त होचुका हो, वह प्रपंच की निवृत्ति के साधनको मेरे स्वरूप में माया मात्र जानकर ज्ञान के साधनको भी त्याग दे, इसे विद्वान् सन्यास कहते हैं ॥१॥

ज्ञानिनस्त्वहमेवेष्टः स्वार्थो हेतुश्च संमतः ।
स्वर्गश्चैवापवर्गश्च नान्योऽर्थो मदृते प्रियः ॥ २ ॥

ज्ञानी पुरुष को तो इष्ट फलरूप मैं ही हूँ तथा उसका साधन, स्वर्ग और संसार की निवृत्ति रूप भी मैं ही हूँ, उसे मेरे बिना कुछ भी प्रिय नहीं लगता, इसलिये उसे कुछ प्राप्त करने या कर्त्तव्य पालने के लिये कोई आवश्यकता नहीं रह जाती ॥

ज्ञानविज्ञानसंसिद्धाः पदं श्रेष्ठं विदुर्मम ।
ज्ञानी प्रियतमोऽतो मे ज्ञानेनासौ बिभर्ति माम् ॥३॥

ज्ञान और विज्ञानके द्वारा सिद्धिपाये हुए पुरुष मेरे श्रेष्ठ पद को जानते हैं और ज्ञानी पुरुष ज्ञानके द्वारा मुझको धारण करता है, इसलिये मुझे ज्ञानी ही अत्यन्त प्रिय है ॥३॥

तपस्तीर्थं जपो दानं पवित्राणीतराणि च ।
नाऽलं कुर्वंति तां सिद्धिं या ज्ञानकलया कृता ॥४॥

जो सिद्धि लेश मात्र ज्ञानके द्वारा होसकती है वह तप, तीर्थ, जप दान और दूसरे पवित्र पदार्थों के द्वारा कदापि नहीं हो सकती ॥४॥

तस्माज्ज्ञानेन सहितं ज्ञात्वा स्वात्मानमुद्धव ।
ज्ञानविज्ञानसंपन्नो भज मां भक्तिभावितः ॥ ५ ॥

इसलिये हे उद्धव ! तुम मुझ ज्ञान रूपको जान कर ज्ञान-विज्ञान युक्त होकर भक्ति पूर्वक मेरा भजन करो ॥५॥

ज्ञानविज्ञानयज्ञेन मामिष्ट्वात्मानमात्मनि ।
सर्वयज्ञपतिं मां वै संसिद्धिं मुनयोऽगमन् ॥ ६ ॥

मुझ समस्त यज्ञों के पति और आत्मा रूपका अपने ही में ज्ञान-विज्ञान रूपी यज्ञ से पूजन करके मेरे उत्तम स्वरूप को प्राप्त होचुके हैं ॥६॥

त्वय्युद्धवाश्रयति यस्त्रिविधो विकारो मायांऽतराऽऽपतति नाद्यपवर्गयोर्यत् । जन्मादयोऽस्य यदमी तव यस्य किं स्युराद्यंतयोर्यदसतोऽस्ति तदेव मध्ये ॥ ७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे उद्धव ! यह देह तथा इन्द्रियों का विकार माया रूप है वास्तविक नहीं, यह न तो देह से पहले आत्मा पर था न पीछे रहेगा, केवल बीचही में होगया है, इसलिये इसे भ्रम जानना चाहिये, आत्मा शुद्ध है, यह जन्मादि भी केवल देहके लिए ही है, आत्मा के लिये नहीं, क्योंकि वह जन्म-मरण रहित है, फिर देह भी जन्म-मरण रहित है, क्योंकि वह भी माया रूप है, देह के आदि अन्त में जो ब्रह्म है वही मध्य में भी है, जब देह नहीं रहता तब सभी ब्रह्ममय होजाते हैं, इसलिये तुम भी निर्विकार ही हो ॥७॥

उद्धव उवाच

ज्ञानं विशुद्धं विपुलं यथैतद् वैराग्यविज्ञानयुतं पुराणम् । आख्याहि विश्वेश्वर विश्वमूर्ते त्वद्भक्ति योगं च महद्विमृग्यम् ॥ ८ ॥

उद्धवजी बोले–हे विश्वेश्वर ! हे विश्वमूर्त्ति ! यह वैराग्य तथा विज्ञानमय पुरातन विशुद्ध ज्ञान ऐसी विस्तृत रीति से कहिये कि जिसमें निश्चय होजाय और उस भक्ति-योग को भी कहिये कि जिसे ब्रह्मा आदि खोजा करते हैं ॥ ८ ॥

तापत्रयेणाभिहतस्य घोरे संतप्यमानस्य भवाध्वनीश । पश्यामि नान्यच्छरणं तवांघ्रिद्वंद्वातपत्रादमृताभिवर्षात् ॥ ९ ॥

हे प्रभु ! मैं इस घोर संसार के मार्ग में तीनों तापों से संतप्त हूँ, मुझे आपके अमृत बरसाने वाले युगल चरण छत्र के सिवा कहीं भी अपने लिये शरण नहीं दीखती ॥ ९ ॥

दृष्टं जनं संपतितं बिलेऽस्मिन् कालाहिना क्षुद्र सुखोरुतर्षम् । समुद्धरैनं कृपयाऽऽपवर्ग्यैर्वचोभिरासिंच महानुभाव ॥१०॥

हे महा प्रभाव ! यह सेवक इस संसार-कूप में पड़ा हुआ है, इसे कालरूपी सर्प डस गयाहै, फिर भी यह तुच्छ सुखों की तृष्णा किये है; इसलिये आप इसपर कृपा करके मोक्ष देने वाले वचनों से सींचकर इसका ताप शान्त कीजिये ॥१०॥

श्रीभगवानुवाच

इत्थमेतत्पुरा राजा भीष्मं धर्मभृतां वरम् । अजातशत्रुः पप्रच्छ सर्वेषां नोऽनुशृण्वताम्॥११॥

श्रीभगवान् बोले–हे उद्धव ! इस प्रकार पहले राजा युधिष्ठिर ने हम लोगों के सामने धर्मात्माओं में श्रेष्ठ भीष्म पितामह से प्रश्न किया था ॥११॥

निवृत्ते भारते युद्धे सुहृन्निधनविह्वलः । श्रुत्वा धर्मान बहून् पश्चान्मोक्षधर्मानपृच्छत॥१२॥

महाभारत युद्ध से अवकाश पाकर अपने बन्धुओं के बध से व्याकुल होकर अनेक प्रकार के धर्म सुनने के अनन्तर यही मोक्ष धर्म सम्बन्धी प्रश्न किया था ॥१२॥

तानहं तेऽभिधास्यामि देवव्रतमुखाच्छ्रुतान् । ज्ञानवैराग्यविज्ञानश्रद्धाभक्त्युपबृंहितान् ॥१३॥

वहाँ भीष्मजी ने युधिष्ठिर से जो धर्म कहे थे वह मैंने भी सुने थे, अब मैं उन्हीं ज्ञान, वैराग्य, विज्ञान, श्रद्धा और भक्ति से बढ़े हुए श्री भीष्म द्वारा सुने हुए उपदेश कहताहूँ सुनो ॥१३॥

नवैकादश पंच त्रीन्भावान्भूतेषु येन वै । ईक्षेताथैकमप्येषु तज्ज्ञानं मम निश्चितम् ॥१४॥

प्रकृति पुरुष; महत्तत्व, अहङ्कार, पाँच तन्मात्रा ग्यारह इन्द्रियाँ, पंच महाभूत और तीन गुण–यह अट्ठाईस तत्व ब्रह्मासे लेकर स्थावरतक सब कामों में मिले हुए हैं और इनसे एक ब्रह्म मिला हुआ है, अर्थात् कार्य-कारण रूप जगत् अपने परम कारण (ब्रह्म) ही का रूप है, इस प्रकार विचार से जब समझ में आने लगे तब वह विचार 'ज्ञान' कहाता है, मेरा ऐसा निश्चय है ॥१४॥

एतदेव हि विज्ञानं न तथैकेन येन यत् । स्थित्युत्पत्त्यप्ययान्पश्येद् भावानां त्रिगुणात्मनाम्

जैसे ज्ञानके समय सब पदार्थ (अलग-अलग) देखने में आते हैं, वैसे दिखाई न देकर केवल ब्रह्म ही जब दीखने लगता है तब वही ज्ञान 'विज्ञान' कहा जाता है, उस समय यह निश्चय हो जाता है कि उत्पत्ति, प्रलय और स्थिति होने के कारण पदार्थ त्रिगुणात्मक और नश्वर हैं ॥१५॥

आदावंते चमध्ये च सृज्यात् सृज्यं यदन्वियात् । पुनस्तत्प्रतिसंक्रामे यच्छिष्येत तदेवसत् ॥१६॥

उत्पत्ति, रूपान्तर और मध्य में जो सब का आश्रय तथा कारण रूप होने से जो कार्य और कार्यान्तर में रहता है और प्रलय के पश्चात् भी अवशिष्ट रहता है, वही वास्तविक वस्तु माननी चाहिये ॥ १६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम् ।
प्रमाणेष्वनवस्थानाद् विकल्पात् स विरज्यते॥१७॥

वेद, प्रत्यक्ष, परम्परा की प्रसिद्धि और अनुमान से भी यह द्वैत असत्य और अद्वैत सत्य ठहरता है, यह दृश्य ब्रह्म से उत्पन्न होने के कारण उससे भिन्न नहीं है, जैसे कि मिट्टी से बने हुए घट आदि उससे भिन्न नहीं हैं, इस प्रकार द्वैतको भ्रम रूप जानकर विकल्प से विरक्त होना चाहिये॥१७॥

कर्मणां परिणामित्वादा विरिंचादमंगलम् ।
विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥१८॥

पण्डित को इस लोक की भांति ब्रह्म-लोक पर्यन्त स्वर्ग आदिका सुखभी दुःखरूप और मिथ्या देखना चाहिये, क्योंकि ये नाशवान् कर्मोंके फलहैं॥

भक्तियोगः पुरैवोक्तः प्रीयमाणाय तेऽनघ ।
पुनश्च कथयिष्यामि मद्भक्तेः कारणं परम् ॥१९॥

हे निष्पाप ! तुम मुझे परम प्रिय हो, इसलिये मैं पहले भी भक्ति-योग कह चुका हूँ, अब फिर भी उसके उत्तम साधन कहता हूँ-सुनो॥१९॥

श्रद्धाऽमृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम् ।
परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम॥२०॥

मेरी अमृत तुल्य कथा में श्रद्धा, मेरा निरन्तर कीर्त्तन, मेरे पूजन में निष्ठा और स्तुति पाठों द्वारा मेरी स्तुति करना चाहिये॥२०॥

आदरः परिचर्यायां सर्वांगैरभिवंदनम् ।
मद्भक्तपूजाऽभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः ॥२१॥

मेरी टहल करने में आदर-भाव, मुझे समस्त अङ्गों से प्रणाम, मेरे भक्तों का अधिक पूजन और प्राणी मात्र में मेरी भावना करनी चाहिये॥२१॥

मदर्थेष्वंगचेष्टा च वचसा मद्गुणेरणम् ।
मय्यर्पणं च मनसः सर्वकामविवर्जनम् ॥२२॥

मेरी सेवा के लिये शरीर से चेष्टा, वाणी से मेरे गुणों का कीर्त्तन, मुझ में मन का अर्पण और समस्त कामनाओं का त्याग करना चाहिये॥२२॥

मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्य च सुखस्य च ।
इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मदर्थं यद् व्रतं तपः ॥२३॥

मेरे भजन में विरोध उत्पन्न करने वाले द्रव्य का त्याग कर देना चाहिये और वही भोग तथा सुख सेवन करना चाहिये कि जिनसे मेरी सेवा में रुकावट न पड़े, जो कुछ भी यज्ञ, दान, जप, तप, होम या व्रत करे, वह सब मेरेही लिये करे॥२३॥

एवं धर्मैर्मनुष्याणामुद्धवात्मनिवेदिनाम् ।
मयि संजायते भक्तिः कोऽन्योऽर्थोऽस्याऽवशिष्यते॥

हे उद्धव ! इस प्रकार धर्मपूर्वक जो पुरुष मुझ में आत्म-समर्पण कर देता है, उसको मेरी प्रेम-लक्षणा भक्ति उत्पन्न होजाती है और फिर कोई कर्म करने को शेष नहीं रह जाता॥२४॥

यदात्मन्यर्पितं चित्तं शांतं सत्त्वोपबृंहितम् ।
धर्मज्ञानं सवैराग्यमैश्वर्यं चाभिपद्यते ॥२५॥

जब सतोगुण से बढ़े हुए शान्त मन को मुझे अर्पण करदे, तब उसे धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य आप ही प्राप्त होजाते हैं॥२५॥

यदर्पितं तद् विकल्पे इंद्रियैः परिधावति ।
रजस्वलं चासन्निष्ठं चित्तं विद्धिविपर्ययम् ॥२६॥

और यही मन जब रजोगुण में आसक्त होकर विकल्प में पड़कर इन्द्रियों द्वारा विषयों में दौड़ता है तब अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य प्राप्त होते हैं॥२६॥

धर्मो मद्भक्तिकृत् प्रोक्तो ज्ञानं चैकात्म्यदर्शनम् ।
गुणेष्वसंगो वैराग्यमैश्वर्यं चाणिमादयः ॥२७॥

जिससे मेरी भक्ति उत्पन्न होजाय वही धर्म है, जिससे अद्वैत भाव समझा जाय वही ज्ञान है, विषयों से आसक्तिका छूटना वैराग्यहै और अणिमादिक सिद्धियों का मिलना ऐश्वर्य है॥२७॥

उद्धव उवाच

यमः कतिविधः प्रोक्तो नियमो वाऽरिकर्शन ।
कः शमः को दमः कृष्ण का तितिक्षा धृतिःप्रभो२८

उद्धवजी बोले-हे शत्रुघ्न ! हे कृष्ण ! हे प्रभो ! संयम-नियम कितने प्रकार के हैं ? शमदम किसे कहते हैं ? क्षमा और धैर्य क्या हैं ? ॥२८॥

किं दानं किं तपः शौर्यं किं सत्यमृतमुच्यते ।
कस्त्यागः किं धनं चेष्टं को यज्ञः का च दक्षिणा२९

दान, तप, शौर्य, सत्य, ऋत, त्याग; धन, इष्ट, यज्ञ और दक्षिणा क्या हैं ? ॥२९॥

पुंसः किंस्विद् बलं श्रीमन् भगो लाभश्च केशव ।
का विद्या ह्रीः परा का श्रीः किं सुखं दुःखमेव च॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे श्रीमन् ! मनुष्य का बल क्या है ? भगवत्-सम्बन्धी लाभ क्याहै ? पराविद्या, परा लक्ष्मी और पराही क्या है ? सुख-दुःख किसे कहते हैं ? ॥३०॥

कः पंडितः कश्च मूर्खः कः पंथा उत्पथश्च कः ।
कः स्वर्गो नरकःकः स्वित् को बंधुरुत किं गृहम्३१

पंडित कौन है ? मूर्ख कौनहै ? मार्ग क्या है ? और उल्टा मार्ग क्याहै ? स्वर्ग क्याहै ? नरक क्या है ? बन्धु और घर किसे कहते हैं ? ॥३१॥

क आढ्यः को दरिद्रो वा कृपणः कः क ईश्वरः ।
एतान् प्रश्नान् मम ब्रूहि विपरीतांश्च सत्पते ॥३२॥

धनी-दरिद्री कौन है ? कृपण, ईश्वर कौन है ? हे सत्पुरुषों के स्वामी ! इनसे विपरीत जो अशम आदि हैं उनके अर्थ भी मुझसे कहिये ॥ ३२ ॥

अहिंसा सत्यमस्तेयमसंगो ह्रीरसंचयः ।
आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाऽभयम्३३

श्रीभगवान् बोले-अहिंसा, सत्य भाषण, मन से भी पराई वस्तु हरण करने का विचार न करना अनासक्ति, मौनता, स्थिरता, क्षमा रखना और निर्भीकता, निंद्य कर्मों से लजाना, संग्रह न करना, धर्म पर विश्वास और ब्रह्मचर्य पालन-यह बारह यम हैं ॥ ३३ ॥

शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धाऽऽतिथ्यं मदर्चनम् ।
तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्यसेवनम् ॥३४॥

अन्तःकरण और शरीर की पवित्रता, जप,तप होम,श्रद्धा,अतिथि-सत्कार, मेरा पूजन, तीर्थयात्रा, परोपकार, सन्तोष और गुरु-सेवा-यह बारह नियम हैं ॥ ३४ ॥

एते यमाः सनियमा उभयोर्द्वादश स्मृताः ।
पुंसामुपासितास्तात यथाकामं दुहंति हि ॥३५॥

हे उद्धव ! यह बारहों यम और बारहों नियम यदि मनुष्य धारण करे तो उसकी मनोवाञ्छित कामना पूर्ण होजाय ॥३५॥

शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम इंद्रियसंयमः ।
तितिक्षा दुःखसंमर्षो जिह्वोपस्थजयो धृतिः॥३६॥
दंडन्यासः परं दानं कामत्यागस्तपः स्मृतम् ।
स्वभावविजयः शौर्यं सत्यं च समदर्शनम् ॥३७॥
ऋतं च सूनृता वाणी कविभिः परिकीर्तिता ।
कर्मस्वसंगमः शौचं त्यागः संन्यास उच्यते॥३८॥

बुद्धिकी मुझमें निष्ठा होना शम है, इन्द्रियोंको जीतना दम, दुःख का सहना तितिक्षा, जीभ और उपस्थ का जीत लेना धैर्या भूत-द्रोहको त्याग देना उत्कृष्ट दान, भोग की उपेक्षा करना तप, स्वभावको जीतना शौर्य, ब्रह्म-दर्शन को सत्य, सच्ची और प्यारी वाणी को ऋत, कर्मोंकी अनासक्तिको शौच और त्याग को पण्डित जन सन्यास कहते हैं ॥

धर्म इष्टं धनं नृणां यज्ञोऽहं भगवत्तमः ।
दक्षिणा ज्ञानसंदेशः प्राणायामः परं बलम् ॥३९॥
भगो म ऐश्वरो भावो लाभो मद्भक्तिरुत्तमः ।
विद्यात्मनि भिदाबाधो जुगुप्सा ह्रीरकर्मसु ॥४०॥
श्रीर्गुणा नैरपेक्ष्याद्या सुखं दुःखसुखात्ययः ।
दुःखं कामसुखापेक्षा पंडितो बद्धमोक्षवित् ॥४१॥
मूर्खो देहाद्यहंबुद्धिःपंथा मन्निगमः स्मृतः ।
उत्पथश्चित्तविक्षेपः स्वर्गः सत्त्वगुणोदयः ॥४२॥
नरकस्तमउन्नाहो बंधुर्गुरुरहं सखे ।
गृहं शरीरं मानुष्यं गुणाढ्यो ह्याढ्य उच्यते॥४३॥
दरिद्रो यस्त्वसंतुष्टः कृपणो योऽजितेंद्रियः ।
गुणेष्वसक्तधीरीशो गुणसंगो विपर्ययः ॥४४॥

धर्म को इच्छित धन, मुझ परमेश्वर रूप को यज्ञ, ज्ञान के उपदेश को दक्षिणा, मन को दमन करने रूप प्राणायाम को महाबल, मेरी ईश्वरता के भाव को भग, मेरी भक्ति को उत्तम लाभ, आत्मा से भेद-बुद्धि दूर होना विद्या, कुत्सित कर्मों का त्याग ह्री, शुभ गुणों का होना शोभा, सुख-दुःखका अनुसन्धान न रहना सुख, विषय लालसाको दुख, बन्ध और मोक्ष के जानने वाले को पण्डित, देह आदि में अहङ्कार रखनेवाले को मूर्ख, मुझको प्राप्त कराने वाले निवृत्ति मार्गको पंथ, चित्तको विक्षिप्त करने वाले मार्ग को कुपंथ, सतोगुण के उदय को स्वर्ग, तमोगुण की वृद्धि को नरक, हे सखा उद्धव! मेरे ही समान स्वरूप धारी कहलाने वाले गुरु को बन्धु, साधन सहित भोग के निवास-स्थान शरीर को घर, गुण सम्पन्न को धनी, असन्तोषी को दरिद्री, अजितेन्द्रिय को कृपण, विषयों में अनासक्त रहने वाले को ईश और आसक्त पुरुष को अनीश (विवश) जानो ॥३९—४४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एत उद्धव ते प्रश्नाः सर्वे साधु निरूपिताः ।
किं वर्णितेन वहुना लक्षणं गुणदोषयोः ।
गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः ॥४५॥

हे उद्धव ! तुमने जो प्रश्न किये थे वे मैंने सभी भले प्रकार समझाये हैं, अब अधिक क्या कहूँ ? क्योंकि गुण दोष का लक्षण तो इतनाही है अर्थात् पराये गुण-दोष देखना ही दोष है और किसी के गुण-दोष पर ध्यान न देना यही गुण है ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

बीसवां अध्याय

(भक्ति, ज्ञान और कर्मयोग का वर्णन)

उद्धव उवाच

विधिश्च प्रतिषेधश्च निगमो हीश्वरस्य ते ।
अवेक्षतेऽरविंदाक्ष गुणदोषं च कर्मणाम् ॥ १ ॥

उद्धवजी बोले–हे कमल नयन ! हे श्रीकृष्ण ! आप परमेश्वर रूप की आज्ञा रूप वेद विधि-निषेध मय है, वह विधि-निषेध कर्मों के पुण्य-पाप रूप फल का निरूपण करता है ॥१॥

वर्णाश्रमविकल्पं च प्रतिलोमानुलोमजम् ।
द्रव्यदेशवयः कालान् स्वर्गं नरकमेव च ॥ २ ॥

इसी प्रकार उत्तम-अधम भावसे उसके अधिकारी वर्ण-आश्रम प्रतिलोमज (उत्तम वर्णकी स्त्रियों से नीच वर्ण पुरुष द्वारा उत्पन्न हुआ) और अनुलोमज (नीच स्त्रीसे उत्तम वर्ण पुरुष द्वारा उत्पन्न हुआ) के भेद को और योग्य-अयोग्य कर्म होने से द्रव्य, देश, अवस्था और काल के भेद को तथा कर्म फल रूप स्वर्ग-नरक को गुण-दोष रूप ही से प्रतिपादन करता है ॥२॥

गुणदोषभिदादृष्टिमंतरेण वचस्तव ।
निःश्रेयसं कथं नृणां निषेषविधिलक्षणम् ॥ ३ ॥

गुण-दोषमें भेद न रखने का भी आपका वचन है और विधि-निषेध का निरूपण करने वाला वेद भी आपका वचनहै, फिर मनुष्योंका कल्याण कैसे हो ? क्योंकि आपके ही वचन एक दूसरेका खंडन करते हैं ॥ ३ ॥

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुस्तवेश्वर ।
श्रेयस्त्वनुपलब्धेऽर्थे साध्यसाधनयोरपि ॥ ४ ॥

हे ईश्वर ! स्वर्ग और मोक्ष तथा साधन और साधनके जाननेके लिये देवता, पितर और मनुष्यों का श्रेष्ठ नेत्र रूपी आपका वचन अर्थात् वेद ही प्रमाण है ॥ ४ ॥

गुणदोषभिदादृष्टिर्निगमात्ते न हि स्वतः ।
निगमेनापवादश्च भिदाया इति ह भ्रमः ॥ ५ ॥

गुण और दोष में भेद-दृष्टि आपका वचन रूप वेद बतलाताहै, इसलिये वह कल्पित नहीं है, फिर फिर आपही श्रीमुख से भेदका अपवाद कररहे हैं, ऐसी दशा में मुझे भ्रम हो रहा है, इसे आप ही निवारण कीजिये ॥५॥

श्रीभगवानुवाच

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया ।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योस्ति कुत्रचित् ६॥

श्रीभगवान् बोले–हे उद्धव ! मनुष्यों के कल्याण के लिये मैंने वेद में भक्ति, ज्ञान और कर्मरूप तीन योग कहे हैं, कि जिनके सिवा और कोई भी साधन नहीं है ॥६॥

निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मसु ।
तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम् ॥७॥

जो कर्मों से विरक्त होकर फल की इच्छा नहीं रखते, उनके लिये ज्ञान योग सिद्धि दाता है और जो विरक्त नहीं होसके हैं, उन कर्म-फल के अभिलाषियों के लिये कर्म योग अच्छा है ॥७॥

यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान् ।
न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः ८

जिसको यदृच्छा से ही मेरी कथा में श्रद्धा उत्पन्न होजाय और जो न अधिक विरक्त ही हो, न अधिक आसक्त, ऐसे पुरुष के लिये भक्ति योग सिद्धि देने वाला है ॥ ८ ॥

तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता ।
मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ॥ ९ ॥

जब तक वैराग्य उत्पन्न न हो और मेरी कथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में श्रद्धा उत्पन्न न होजाय, तभी तक कर्म करना चाहिये ॥ ९ ॥

स्वधर्मस्थो यजन् यज्ञैरनाशीः काम उद्धव ।
न याति स्वर्गनरकौ यद्यन्यन्न समाचरेत् ॥१०॥

हे उद्धव ! स्वधर्म में स्थित रहे, फलकी इच्छा छोड़कर यज्ञों द्वारा मेरा यजन करता रहे और निषिद्ध कर्म का आचरण किया करे, वह न तो स्वर्ग में जाता है और न नरक में ॥१०॥

अस्मिँल्लोके वर्तमानः स्वधर्मस्थोऽनघः शुचिः ।
ज्ञानं विशुद्धमाप्नोति मद्भक्तिं वा यदृच्छया ॥११॥

वरन् इसी लोक में रहता हुआ स्वधर्ममें आरूढ़ रहने के कारण निष्पाप तथा पवित्र होकर या तो केवल ज्ञान को प्राप्त होजाता है, या भगवान्की इच्छा के कारण इससे भी दुर्लभ मेरी भक्ति पा जाता है ॥ ११ ॥

स्वर्गिणोप्येतमिच्छंति लोकं निरयिणस्तथा ।
साधकं ज्ञानभक्तिभ्यामुभयं तदसाधकम् ॥१२॥

इस लोक को स्वर्ग और नरक वाले दोनों ही चाहते हैं, क्योंकि यहीं पर ज्ञान और भक्ति रूपी मोक्ष के साधन हैं, स्वर्ग या नरक के शरीरों से कोई साधन नहीं हो सकता ॥१२॥

न नरः स्वर्गतिं कांक्षेन्नारकीं वा विचक्षणः ।
नेमं लोकं च कांक्षेत देहाऽऽवेशात्प्रमाद्यति ॥१३॥

चतुर मनुष्य को स्वर्ग, नरक का या इसलोक की इच्छा न करनी चाहिये. क्योंकि इससे देहकी आसक्ति के कारण प्रमाद होजाता है ॥१३॥

एतद्वै विद्वान् पुरा मृत्योरभवाय घटेत सः ।
अप्रमत्त इदं ज्ञात्वा मर्त्यमप्यर्थसिद्धिदम् ॥१४॥

इस बात के जानने वाले मनुष्यको अर्थसिद्धि के देने वाले इस शरीर को भी नश्वर जानकर आलस्य छोड़कर मृत्यु से पहले अपने मोक्ष के लिये उपाय करना चाहिये ॥१४॥

छिद्यमानं यमैरेतैः कृतनीडं वनस्पतिम् ।
खगः स्वकेतमुत्सृज्य क्षेमं याति ह्यलंपटः ॥१५॥

जैसे जो पक्षी अपने घोंसलेवाले वृक्षमें ममता नहीं रखता, वह उस वृक्ष को किसी निर्दयी के द्वारा कटता हुआ जानकर आनन्द पूर्वक छोड़कर चल देता है ॥ १५ ॥

अहोरात्रैश्छिद्यमानं बुद्ध्वाऽऽयुर्भयवेपथुः ।
मुक्तसंगः परं बुद्ध्वा निरीह उपशाम्यति ॥१६॥

इसी प्रकार रात दिन रूपी बढ़ई जिसे काट रहे हैं, ऐसी आयु का ज्ञान रखने वाला, भय से काँपता हुआ जो पुरुष असंग हो जाता है वह प्रभु का ज्ञान होजानेसे निरीह होकर शान्त होजाताहै॥

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् । मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ॥१७॥

और सबकी मूल, अत्यन्त दुर्लभ और महान् दृढ़ इस मनुष्य देह रूपी नौका, गुरु रूपी केवट और मुझ ईश्वर रूपी अनुकूल पवन को पाकर भी जो मनुष्य संसार सागर पार न उतरे उसको आत्मघाती समझना चाहिये ॥१७॥

यदारंभेषु निर्विण्णो विरक्तः संयतेंद्रियः ।
अभ्यासेनात्मनो योगी धारयेदचलं मनः ॥१८॥

जब कर्मों से निर्वेद प्राप्त होकर वैराग्य उत्पन्न होजाय और जब इन्द्रियाँ वश में हो जाँय, तब योगी पुरुष को अभ्यास करके अपना मन स्थिर करना चाहिये ॥१८॥

धार्यमाणं मनो यर्हि भ्राम्यदाश्ववस्थितम् ।
अतंद्रितोऽनुरोधेन मार्गेणात्मवशं नयेत् ॥१९॥

जब मनका निग्रह किया जाय और फिर भी मनकी चञ्चलता न जासके, तब सावधानीके साथ उसकी कुछ इच्छा पूर्ण करके फिर उसे वश में करना चाहिये ॥१९॥

मनोगतिं न विसृजेज्जितप्राणो जितेंद्रियः ।
सत्त्वसंपन्नया बुद्ध्या मन आत्मवशं नयेत् ॥२०॥

प्राण और इन्द्रियाँ वशमें होजाने पर भी मन को ढीला न छोड़ना चाहिये, वरन् जैसे भी बने वैसे सतोगुणी बुद्धि के द्वारा उसे सदैव ही वशमें रखना उचित है ॥२०॥

एष वै परमो योगो मनसः संग्रहः स्मृतः ।
हृदयज्ञत्वमन्विच्छन् दम्यस्येवार्वतो मुहुः ॥२१॥

इस प्रकार अनुवर्तन द्वारा मन का जीतना उत्तम योग कहलाताहै, जैसे सवार जिस घोड़े को वश में करना चाहता है उसे पहले कुछ दूर तक उसी की इच्छानुसार चलने देता है, फिर अपनी

CC-Q. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इच्छानुसार चलता है, इसी प्रकार धीरे-धीरे मन को वश में करना चाहिये ॥२१॥

सांख्येन सर्वभावानां प्रतिलोमानुलोमतः ।
भवाप्ययावनुध्यायेन्मनो यावत्प्रसीदति ॥२२॥

तथा सांख्य शास्त्र की रीति के अनुसार अनुलोम तथा प्रतिलोम विधि के द्वारा समस्त तत्वों की उत्पत्ति तथा प्रलय का ध्यान तब तक करना चाहिये कि जबतक चित्त प्रसन्न न होजाय ॥२२॥

निर्विण्णस्य विरक्तस्य पुरुषस्योक्तवेदिनः ।
मनस्त्यजति दौरात्म्यं चिंतितस्यानुचिंतया॥ २३॥

जब चित्त में वैराग्य उत्पन्न होजाय तब गुरुके बतलाये हुए धर्म पर विचार करना चाहिये, इस इसतरह करनेसे ही चित्त देहाभिमान छोड़देताहै।

यमादिभिर्योगपथैरान्वीक्षिक्या च विद्यया ।
ममार्चोपासनाभिर्वा नान्यैर्योग्यं स्मरेन्मनः॥ २४॥

यम आदि योगके साधन, आत्म-विचार और मेरी सेवा तथा उपासना के द्वारा मुझ परमात्मामें मन लगाये, इससे बढ़कर मेरे स्मरण का दूसरा उपाय नहीं है ॥२४॥

यदि कुर्यात्प्रमादेन योगी कर्म विगर्हितम् ।
योगेनैव दहेदंहो नान्यत्तत्र कदाचन ॥२५॥

यदि योगी से प्रमाद वशात् कोई निंद्य कर्म बन जाय तो उसे योगाभ्यास द्वारा ही अपना पाप निवृत्त करना चाहिये दूसरा उपाय न करे ॥२५॥

स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठः स गुणः परिकीर्त्तितः ।
कर्मणां जात्यशुद्धानामनेन नियमः कृतः ।
गुणदोषविधानेन संगानां त्याजनेच्छया ॥२६॥
जातश्रद्धो मत्कथासु निर्विण्णः सर्वकर्मसु ।
वेददुःखात्मकान्कामान्परित्यागेऽप्यनीश्वरः २७॥

अपने अधिकार में रहना ही गुण है, प्रवृत्ति मार्ग स्वभाव ही से अपवित्र है, फिरभी वह यकायक नहीं छूट सकता; इस प्रकार प्रवृत्तिके संकोच द्वारा अपने-अपने अधिकार में निष्ठा रखने का विधान निवृत्ति के लिये किया गया है, योगी की निवृत्ति गति स्वाभाविक होती है, इससे उसको प्रायश्चित की आवश्यकता नहीं है ॥२६॥२७॥

ततो भजेत मां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढनिश्चयः ।
जुषमाणश्च तान्कामान्दुःखोदर्कांश्च गर्हयन् ॥२८॥

यदि मेरी कथा में श्रद्धा, कर्मों से वैराग्य और विषयों को दुःख रूप जान चुकने पर भी उनका परित्याग न हो सके तो श्रद्धा-सहित दृढ़ निश्चय के साथ प्रीति पूर्वक मेरा भजन करना चाहिये और विषय भोग करता हुआ भी उनकी निन्दा करते रहना चाहिये ॥२८॥

प्रोक्तेन भक्तियोगेन भजतो माऽसकृन्मुनेः ।
कामा हृदय्यानश्यंति सर्वे मयि हृदिस्थिते॥२९॥

पहले मैंने तुमसे भक्ति-योग कहाहै, उस रीति से मुनिको निरन्तर मेरा भजन करना चाहिये, तब उसके हृदय में मेरा निवास होजाने पर उसकी सब कामना नष्ट होजाती हैं ॥२९॥

भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः ।
क्षीयंते चाऽस्य कर्माणि मयि दृष्टेऽखिलात्मनि३०

जब सबके अन्तर्यामी ईश्वर रूप मेरा साक्षात् होजाताहै तब अहंता और ममता रूपी हृदय-ग्रंथि कट जाती है और सन्देह निवारण होजाने से इस के कर्म मात्र क्षीण होजाते हैं ॥३०॥

तस्मान्मद्भक्ति युक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः ।
न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह ॥३१॥

इसलिये मैं कहता हूँ कि जो योगी मुझमें मन लगाकर मेरी भक्तिका आश्रय लेता है उसके लिये बहुधा ज्ञान, वैराग्य नहीं वरन् भक्ति-योग ही कल्याण का मार्ग है ॥३१॥

यत्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्चयत् ।
योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ॥३२॥
सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा ।
स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथंचिद्यदि वांछति ॥३३॥

कर्म, तप, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान, धर्म तथा अन्यान्य साधनों से जो फल मिलता है, वह फल भक्ति-योग द्वारा सहजही में प्राप्त होजाता है, मेरे भक्तको स्वर्ग, मोक्ष और मेरा धाम प्राप्त रहता है, पर वह किसी की इच्छा नहीं करता ॥२२॥३३॥

न किंचित्साधवो धीरा भक्ता ह्येकांतिनो मम ।
वांछंत्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम् ॥३४॥

जो धीर साधुजन मेरे ही अनन्य भक्त हैं, वे कोईभी फल नहीं चाहते, यद्यपि मैं उनको कैवल्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मोक्ष देना चाहता हूँ, परन्तु वे उसकी भी इच्छा नहीं करते ॥३४॥

नैरपेक्ष्यं परं प्राहुर्निःश्रेयसमनल्पकम् ।
तस्मान्निराशिषो भक्तिर्निरपेक्षस्य मे भवेत्॥३५॥

मेरी निरपेक्ष भक्ति ही परम कल्याण रूप है, इसलिये निरपेक्ष भक्तही को मेरी निरपेक्ष भक्ति प्राप्त होती है ॥३५॥

न मय्येकांतभक्तानां गुणदोषोद्भवा गुणाः ।
साधूनां समचित्तानां बुद्धेः परमुपेयुषाम् ॥३६॥

राग आदि दोष निवृत्त होकर अन्तःकरण सम्यक् भाव को पाचुके हैं और उसी के द्वारा जो बुद्धि से परे परमेश्वर को प्राप्त होचुके हैं, ऐसे मेरे एकान्त भक्तों को राग द्वेष से उत्पन्न होने वाले पाप-पुण्य नहीं लगते ॥ ३६ ॥

एवमेतान्मयादिष्टाननुतिष्ठंति मे पथः ।
क्षेमं विंदंति मत्स्थानं यद्ब्रह्म परमं विदुः॥३७॥

जो पुरुष इस प्रकार मेरे कहे हुए मेरी भक्तिके साधनों को धारण करते हैं, वे काल और मायासे रहित परब्रह्म नामक मेरे लोकको प्राप्त होते हैं ॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

इक्कीसवां अध्याय

(द्रव्य-देश आदि के गुण-दोष वर्णन)

श्रीभगवानुवाच

य एतान्मत्पथो हित्वा भक्तिज्ञानक्रियात्मकान् ।
क्षुद्रान्कामांश्चलैः प्राणैर्जुषंतः संसरंति ते ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले—जो लोग भक्ति, ज्ञान और क्रिया रूप मेरे इन तीन मार्गों को छोड़कर चञ्चल प्राणों से तुच्छ विषयों का सेवन करते हैं वे बार-बार संसार ही को भोगा करते हैं ॥१॥

स्वेस्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणःपरिकीर्तितः ।
विपर्ययस्तु दोषः स्यादुभयोरेष निश्चयः ॥ २ ॥

अपने-अपने अधिकार में निष्ठा रखने को गुण और इससे विपरीत करने को दोष कहते हैं. गुण दोष के विषयमें यही दृढ़ निश्चय किया गयाहै ॥२॥

शुद्ध्यशुद्धी विधीयेते समानेष्वपि वस्तुषु ।
द्रव्यस्य विचिकित्सार्थं गुणदोषौ शुभाशुभौ॥३॥

यह वस्तु योग्य है या अयोग्य है-इस प्रकार के भ्रम से स्वाभाविक प्रवृत्ति की रोकने के लिये सब समान वस्तुओं में भी वेद ने शुद्धि अशुद्धि का विधान कियाहै और इसीके लिये उसमें गुण-दोष मान लिये हैं और इन्हीं से अर्थ-अनर्थ (पुण्य-पाप) माने हैं ॥ ३ ॥

धर्मार्थं व्यवहारार्थं यात्रार्थमिति चाऽनघ ।
दर्शितोऽयं मयाऽऽचारो धर्ममुद्वहतां धुरम्॥ ४ ॥

हे अनघ ! यह शुद्धि और अशुद्धि-धर्म-व्यवहार और निर्वाह के लिये गुण-दोष रूप से प्रतिपादन की गई है, ऐसे आचार का मैंने ही धर्मरूप भार उठाने वालों को मनु आदि रूप धारण करके दिखलाया है ॥ ४ ॥

भूम्यंब्वग्न्यनिलाकाशा भूतानां पंच धातवः ।
आब्रह्मस्थावरादीनां शारीरा आत्मसंयुताः॥ ५ ॥

वास्तवमें सभी वस्तुएँ समानहैं, क्योंकि ब्रह्मा से लेकर स्थावर आदि समस्त प्राणियों के शरीर के कारण रूप पृथ्वी. जल, अग्नि, वायु और आकाश-यह पंच महाभूत ही हैं, इसलिये देह एकही है और आत्मा भी एक ही है ॥५॥

वेदेन नामरूपाणि विषमाणि समेष्वपि ।
धातुषूद्धव कल्प्यंत एतेषां स्वार्थसिद्धये ॥ ६ ॥

इसलिये हे उद्धव ! इन समान वस्तुओं में भी वेद ने विषम नामरूप इसलिये कल्पन किये हैं कि जीव मात्र का स्वार्थ सिद्ध हो ॥६॥

देशकालादिभावानां वस्तूनां मम सत्तम ।
गुणदोषौ विधीयेते नियमार्थं हि कर्मणाम् ॥ ७ ॥

हे उद्धव ! केवल देह में ही यह विभाग नहींहै वरन् देश, काल आदि सभी वस्तुओं में गुण-दोष का विधान केवल कर्मों के संकोच के लिये है ॥७॥

अकृष्णसारो देशानामब्रह्मण्योऽशुचिर्भवेत् ।
कृष्णसारोप्यसौवीरकीकटासंस्कृतेरिणम् ॥ ८ ॥

जिस देश में ब्राह्मणों की भक्ति और काले हिरण न हों वह देश देशों में अपवित्र माना जाता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, जहाँ कृष्ण मृग होते हुए भी सत्पुरुष न हों, शुद्धता न हो या उपज न हो वह देश अपवित्र हैं, अङ्ग, वङ्ग, कलिंग, सौराष्ट्र और मगध आदि अशुद्ध देशभी सत्पुरुषोंके निवाससे पवित्र माने जाते हैं॥

कर्मण्यो गुणवान् कालो द्रव्यतः स्वत एव वा।
यतो निवर्त्तते कर्म स दोषोऽकर्मकः स्मृतः॥ ९॥

जो काल द्रव्य की संपत्तिसे या आपही प्रातः आदि कर्म करने योग्य हैं, वह पवित्र माना जाताहै जिस काल में कर्म न बन सके उसे दूषित माना जाता है॥ ९॥

द्रव्यस्य शुद्ध्यशुद्धी च द्रव्येण वचनेन च।
संस्कारेणाथ कालेन महत्त्वाल्पतयाऽथवा॥१०॥

द्रव्य की शुद्धि-अशुद्धि-द्रव्य से, वचन से, संस्कार से, काल से, बड़प्पन या लघुपन से मानी जाती है॥१०॥

शक्त्याऽशक्त्याऽथवा बुद्ध्या समृद्ध्या च यदात्मने
अघं कुर्वंति हि यथा देशावस्थानुसारतः॥११॥

शक्ति और अशक्तिके अनुसारभी शुद्धि-अशुद्धि मानी जाती है फिर बुद्धि और समृद्धिके अनुसार भी इसका भेद होजाता है. इन द्रव्य, वचन आदि की अशुद्धिका आत्मापर जो पाप लगताहै वह देश और अवस्था के अनुसार ही लगा करता है॥११॥

धान्यदार्व स्थितंतूनां रसतैजसचर्मणाम्।
कालवाय्वग्निमृत्तोयैः पार्थिवानां युतायुतैः॥१२॥

अन्न, काठ, अस्थि, सूत्र; रस (तैल आदि) तैजस पदार्थ (स्वर्ण आदि) चर्म और पृथ्वी के विकार आदि की शुद्धि काल, वायु, अग्नि और जल के द्वारा यथायोग्य रीति से होती है, कहीं यह पदार्थ अकेलेही शुद्ध करदेते हैं; कहीं मिल-जुल कर॥

अमेध्यलिप्तं यद्येन गंधलेपं व्यपोहति।
भजते प्रकृतिं तस्य तच्छौचं तावदिष्यते॥१३॥

पीढ़ा, पात्र और वस्त्र में यदि अपवित्र वस्तु लग जाय तो पीढ़ा (काठ) छीलने से, पात्र-राख और खटाई के द्वारा धोने से और वस्त्र धोने से गन्ध तथा लेप छूटने पर शुद्ध होजाता है॥१३॥

स्नानदानतपोऽवस्थावीर्यसंस्कारकर्मभिः।
मत्स्मृत्या चात्मनः शौचं शुद्धः कर्माचरेद् द्विजः॥

स्नान, दान, तप, अवस्था, शक्ति, संस्कार, कर्म और मेरे स्मरण से कर्त्ता शुद्ध होता है, द्विज मात्र को इस प्रकार शुद्ध होकर अपना कर्त्तव्य करना चाहिये॥ १४॥

मंत्रस्य च परिज्ञानं कर्मशुद्धिर्मदर्पणम्।
धर्मः संपद्यते षड्भिरधर्मस्तु विपर्ययः॥१५॥

यथाविधि जानना ही मन्त्र की शुद्धिहै, जो भी करे वह मेरे समर्पण करना-यह कर्म की शुद्धि है, देश, काल, द्रव्य, कर्त्ता, मन्त्र और कर्म-ये छः शुद्ध हों तो धर्म सिद्ध होता है, अन्यथा अधर्म॥१५॥

क्वचिद्गुणोपि दोषः स्याद्दोषोपि विधिना गुणः।
गुणदोषार्थनियमस्तद्भिदामेव बाधते॥१६॥

यह गुण-दोष विभाग यथार्थ नहीं है, क्योंकि कहीं तो दोष को गुण मान लिया जाता है और कहीं गुण को भी दोष माना जाता है, गुण-दोष के नियम बतलाने वाले शास्त्र ही उनके गुण-दोष भेद को ही बाधित करते हैं॥१६॥

समानकर्माचरणं पतितानां न पातकम्।
औत्पत्तिको गुणः संगो न शयान. पतत्यधः॥१७॥

कहीं दोष भी दोष रूप नहीं होता. जैसे सुरा-पान अपतित पुरुषों के लिये दोष रूपहै, परन्तु पतितोंको उचित बतलाया गयाहै, ऐसेही सन्यासी को स्त्री-संग दोष रूप परन्तु गृहस्थको गुणरूप है, भाव यहहै कि जो पतितहै उसे दोष नहीं लगाया जाता. क्योंकि जो पुरुष पहले ही से नीचे पड़ा हुआ है, वह नीचे नहीं गिरता॥१७॥

यतो यतो निवर्त्तेत विमुच्येत ततस्ततः।
एष धर्मो नृणां क्षेमः शोकमोहभयापहः॥१८॥

इसलिये गुण-दोष सम्बन्धी नियम-विधि का तात्पर्य केवल निवृत्ति की ओर ले जाता है, यह पुरुष जिस-जिस विषय से निवृत्त होजायगा उसी उसी से मुक्ति पा जायगा, यही धर्म मनुष्यके लिये शोक, मोह और भय को मिटाकर कल्याण करने वाला है॥ १८॥

विषयेषु गुणाध्यासात्पुंसः संगस्ततो भवेत्।
संगात्तत्र भवेत्कामः कामादेव कलिर्नृणाम्॥१९॥

विषयों का गुण रूप अध्यास होने से आसक्ति बढ़ती है, आसक्तिसे कामना बढ़तीहै और कामना (पूर्ण न होने) से कलह उत्पन्न होता है॥१९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कलेर्दुर्विषहः क्रोधस्तमस्तमनुवर्त्तते ।
तमसा ग्रस्यते पुंसश्चेतना व्यापिनी द्रुतम् ॥२०॥

कलहसे असहनीय क्रोध उत्पन्न होताहै, क्रोध से तम (अज्ञान) उत्पन्न होता है और अज्ञान से समस्त देह में व्याप्त चेतना-शक्ति शीघ्र ही नष्ट हो जाती है ॥२०॥

तया विरहितः साधो जंतुः शून्याय कल्पते ।
ततोऽस्य स्वार्थविभ्रंशो मूर्छितस्य मृतस्य च॥२१॥

हे साधो ! चेतना (कार्य-अकार्य की स्मृति) नष्ट होने पर पुरुष शून्यवत् होजाता है, तब उस के पुरुषार्थ की हानि होजाने से यह मृतक तुल्य माना जाता है ॥२१॥

विषयाभिनिवेशेन नात्मानं वेद नापरम् ।
वृक्षजीविकया जीवन् व्यर्थं भस्त्रेव यः श्वसन्॥२२॥

क्योंकि विषयासक्त होने से न तो वह आत्मा को पहचानता है और न दूसरे पदार्थों को, ऐसा पुरुष धोंकनी की भाँति श्वाँसें मात्र ही भरता है, क्योंकि उसका जीवन वृक्षकी नाईं वृथाही है॥२२॥

फलश्रुतिरियं नृणां न श्रेयो रोचनं परम् ।
श्रेयोविवक्षया प्रोक्तं यथा भैषज्यरोचनम् ॥२३॥

जो यह वेदों में प्रवृत्ति-मार्ग की आज्ञा है वह वास्तविक नहीं, केवल शुभ कर्मों की ओर रुचि दिलाने के लिये ही उनके फल वर्णन किये हैं (वास्तव में वेद का तात्पर्य निवृत्ति की ओर ले जाने का है) जैसे रोगी को (स्वस्थ बनानेके उद्देश्य से) औषधकी रुचि उपजाई जाती है ॥२३॥

उत्पत्त्यैव हि कामेषु प्राणेषु स्वजनेषु च ।
आसक्तमनसो मर्त्या आत्मनोऽनर्थहेतुषु ॥२४॥

मनुष्य स्वभाव ही से अपने अनर्थ के कारण-रूप पशु, इन्द्रिय, बल, वीर्य और पुत्रादि में आसक्त होता है ॥२४॥

न तानविदुषः स्वार्थं भ्राम्यतो वृजिनाध्वनि ।
कथं युंज्यात् पुनस्तेषु तांस्तमो विशतो बुधः॥२५॥

इसलिये जो अपने स्वार्थ को नहीं जानते और जो दुःखरूपी मार्ग में भटक रहे हैं और उसी के द्वारा वृक्ष आदि योनियों में पहुंच रहे हैं, उनको वेद ऐसे पतितकारी कर्मों की ओर कैसे प्रवृत्त कर सकता है ? ॥२५॥

एवं व्यवसितं केचिदविज्ञाय कुबुद्धयः ।
फलश्रुतिं कुसुमितां न वेदज्ञा वदंति हि ॥२६॥

परन्तु वेदके इस भावको न जानकर कितने ही दुर्बुद्धि लोग फूलकी भाँति स्वर्गादि सुखरूपी अवान्तर फलको ही मुख्य मान लेते हैं ॥२६॥

कामिनः कृपणा लुब्धाः पुष्पेषु फलबुद्धयः ।
अग्निमुग्धा धूमतांडाः स्वं लोकं न विदंति ते॥२७॥

जो लोग कामी,कृपण,लालची, अग्निहोत्रआदि कर्मों से ही मोहित होकर धूम्रमार्ग (दक्षिणायन) के जाने वाले और पुरुष रूपी स्वर्ग आदि सुखरूप अवान्तर फलही को मुख्य माननेवाले हैं, वे अपने लोक (आत्म-तत्व) को कदापि नहीं जान सकते ॥

न ते मामंग जानंति हृदिस्थं य इदं यतः ।
उक्थशास्त्रा ह्यसुतृपो यथा नीहारचक्षुषः ॥२८॥

हे उद्धव ! जो जगत् रूप है और जिससे यह जगत् उत्पन्न हुआ है, उस परमात्मा रूप मुझको वे पशु-हिंसारूपी साधनायें करनेवाले और केवल प्राणी को तृप्त करने वाले पुरुष तिमिर-दृष्टि वालों की भांति उनके हृदयमें रहनेपर भी नहीं जानते ॥

ते मे मतमविज्ञाय परोक्षं विषयात्मकाः ।
हिंसायां यदि रागः स्याद्यज्ञ एव न चोदना॥२९॥

इसी लिये विषयी लोग मेरे वाक्य रूप वेद के गूढ़ रहस्य को नहीं जानते, मेरा मत तो यहहै कि यदि माँस भक्षण के लिये ही हिंसा-विधि से वेद को प्रीति होती, तो वह केवल यज्ञ के समय ही पशु-बध तथा माँस-भक्षण की आज्ञा क्यों देता ?

हिंसाविहारा ह्यालब्धैः पशुभिः स्वसुखेच्छया ।
यजंते देवता यज्ञैः पितृभूतपतीन् खलाः ॥३०॥

फिर भी जो हिंसा को क्रीड़ा मानने वाले और दुष्ट हैं, वे अपने विषय-भोग के लिये पशु-हिंसा करके देवता, पितृ और भूतपतियोंका पूजन करतेहैं॥

स्वप्नोपमममुं लोकमसंतं श्रवणप्रियम् ।
आशिषो हृदि संकल्प्यत्यजन्त्यर्थान् यथा वणिक्॥

वे विषयी पुरुष वणिककी भाँति स्वप्नके समान केवल कानों को सुख देने वाली लोकों की कामनाओं को मनमें मानकर अपने धनको सकामकर्मों में व्यय कर डालते हैं और अन्त में दोनों लोकों से भ्रष्ट होजाते हैं ॥३१॥

रजःसत्त्वतमोनिष्ठा रजःसत्वतमोजुषः ।
उपासते इंद्रमुख्यान् देवादीन्न तथैव माम् ॥३२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वे सत् रज और तमोगुणमें बंधकर जैसे इन्द्र आदि देवताओं का पूजन करते हैं, वैसा मेरा नहीं करते हैं ॥३२॥

इष्ट्वेह देवता यज्ञैर्गत्वा रंस्यामहे दिवि ।
तस्यांत इह भूयास्म महाशाला महाकुलाः ॥३३॥
एवं पुष्पितया वाचा व्याक्षिप्तमनसां नृणाम् ।
मानिनां चातिस्तब्धानां मद्वार्ताऽपि न रोचते ३४॥

वे लोग मनमें अनेक मनोरथ बाँधा करते हैं कि यहाँ यज्ञों द्वारा देवताओंका यजन करके स्वर्ग में जाँयगे और वहाँ अप्सराओं के साथ रमण करेंगे, फिर वहाँ से यहाँ जन्म लेकर बड़े गृहस्थ और कुलीन होंगे, इस प्रकार पुष्प रूप स्वर्गादि सुख की निरूपण करने वाली वाणी से जिनके मन विक्षिप्त होगये हैं, वे लोग कदापि आवागमन से नहीं छूट सकते ॥३३॥३४॥

वेदा ब्रह्मात्म विषयास्त्रिकांडविषया इमे ।
परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं मम च प्रियम् ॥३५॥

यद्यपि ब्रह्म और आत्म-विषयक वेद ब्रह्म ही का प्रतिपादन करतेहैं परन्तु उसमें कर्म, ज्ञान और उपासना रूप तीन भिन्न-भिन्न मार्गों का आश्रय लिया गया है, मन्त्र और मन्त्रों के द्रष्टा ऋषियों ने परोक्ष रीति से पदार्थों का प्रतिपादन किया है,यह परोक्ष-विधि मुझे परम प्रिय है ॥३५॥

शब्दब्रह्म सुदुर्बोधं प्राणेंद्रियमनो मयम् ।
अनंतपारं गंभीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत् ॥३६॥

'ब्रह्म शब्द' का अर्थ समझना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि वह प्राण, मन और इन्द्रिय मय है, जो कि देह में सूक्ष्म रूप से रहते हैं, इसका चौथा वैखरी रूपहै-जिससे मनुष्य बोलते हैं, अस्तु ब्रह्म के परिच्छेद रहित होने से ब्रह्म शब्द या वेद भी अपने अर्थ सहित अपार और अत्यन्त गहन और समुद्र की नाईं थाह पाने के लिये दुर्गम है ॥३६॥

मयोपबृंहितं भूम्ना ब्रह्मणाऽनंतशक्तिना ।
भूतेषु घोष रूपेण बिसेषूर्णेव लक्ष्यते ॥३७॥

यह ब्रह्म शब्द मुझ अनन्त शक्ति, भूमा और परब्रह्म से कमल-तन्तु की भाँति सब प्राणियों में वाणी रूप से प्रकट होता है, इसे तो विद्वान् ही जानते हैं ॥३७॥

यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णामुद्वमते मुखात् ।
आकाशाद्घोषवान्प्राणो मनसा स्पर्शरूपिणा ३८॥
छंदोमयोऽमृतमयः सहस्रपदवीं प्रभुः ।
ओंकाराद्व्यंजितस्पर्शस्वरोष्मांतस्थभूषिताम् ३९॥
विचित्रभाषाविततां छंदोभिश्चतुरुत्तरैः ।
अनंतपारां बृहतीं सृजत्याक्षिपते स्वयम् ॥४०॥

जैसे मकड़ी हृदयमें से तन्तु प्रकट करके मुख द्वारा प्रत्यक्ष दिखलाती है, वैसे ही यह वेद-मूर्त्ति अमृतमय, समर्थ नादवाला प्राण स्पर्श आदि वर्णों की कल्पना करनेवाले मनको निमित्त लेकर हृदयाकाश से वेद लक्षणा वैखरी नाम वाली वाणी को प्रकट करता है कि जो हृदयगत सूक्ष्म ओंकार से प्रकट हुए स्पर्श, स्वर, ऊष्मा और अन्तस्थ से शोभित और चित्र-विचित्र लौकिक और वैदिक भाषाओं से फैला हुआ और उत्तरोत्तर चार-चार अक्षर जिनमें अधिक हैं, ऐसे छन्दों से पूर्ण और पारावार रहित है,, उसे प्राण आपही प्रकट करता है और फिर आपही उपसंहार करता है ॥३८-४०॥

गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पंक्तिरेव च ।
त्रिष्टुब्जगत्यतिच्छंदो ह्यत्यष्ट्यतिजगद्विराट्॥४१॥

गायत्री, उष्णक, अनुष्टुप,बृहती,पंक्ति, त्रिष्टुप, जगती, अति छन्दस, अत्यष्टि, अति जगती और अति विराट् इत्यादि छन्द हैं ॥४१॥

किं विधत्ते किमाचष्टे किमनूद्य विकल्पयेत् ।
इत्यस्या हृदयं लोके नान्यो मद्वेद कश्चन ॥४२॥

यह वेदवाणी कर्म-काण्डमें विधि वाक्यों द्वारा क्या विधान करती है ? देव-काण्ड में मन्त्रवाक्यों से क्या प्रकट करती है ? ज्ञान-काण्ड में किसका अनुवाद करके विकल्प बतलाती है ? इस प्रकार से वेद-वाणी के तात्पर्य को कोई भी जानने की शक्ति नहीं रखता ॥४२॥

मां विधत्तेऽभिधत्ते मां विकल्प्यापोह्यते त्वहम् ।
एतावान्सर्ववेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम् ।
मायामात्रमनूद्यांते प्रतिषिध्य प्रसीदति ॥४३॥

यह वेद-वाणी मुझे ही देवता रूप बतलातीहै, मुझ यज्ञ स्वरूप का ही विधान करती है, मेरा ही अनुवाद करके विकल्प करती है, वेद का तात्पर्य यही है कि परमेश्वर ही परमार्थ रूप है और भेद माया रूप है, ओंकार रूपी परमेश्वर वाची अंकुर के तीनों कांड रूपी शाखाओं में भी वही भाव रूपी रस विद्यमान है ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बाईसवां अध्याय

(तत्वों की संख्या के निमित्त श्रीकृष्ण से उद्धव जी का प्रश्न)

उद्धव उवाच

कति तत्त्वानि विश्वेश संख्यातान्यृषिभिः प्रभो ।
नवैकादश पंच त्रीण्यात्थ त्वमिह शुश्रुम ॥ १ ॥

उद्धवजी बोले-हे विश्वनाथ ! हे प्रभु ! कितने ही महात्माजन तत्वों की संख्या कई प्रकारसे बतलाते हैं, आपके श्रीमुख से मैंने नौ, ग्यारह, पाँच और तीन अर्थात् सब मिलाकर अट्ठाईस तत्व सुने हैं, परन्तु ऋषियों द्वारा निर्णय किये हुये वे कितने हैं ? ॥ १ ॥

केचित्षड्विंशतिं प्राहुरपरे पंचविंशतिम् ।
सप्तैके नव षट् केचिच्चत्वार्येकादशापरे ॥ २ ॥

कोई-कोई छब्बीस तत्व बतलाते हैं, कई एक पच्चीस कहते हैं, कितने ही सात बतलाते हैं, कितने ही नौ, छः, चार या ग्यारह तत्व कहते हैं ॥२॥

केचित्सप्तदश प्राहुः षोडशैके त्रयोदश ।
एतावत्त्वं हि संख्यानामृषयो यद्विवक्षया ।
गायंति पृथगायुष्मन्निदं नो वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

कुछ सत्रह, कुछ सोलह और कुछ तेरह तत्व बतलाते हैं, हे आयुष्मन् ! ऋषियों ने इस प्रकार तत्वों की जुदी-जुदी संख्या जिस आशय से वर्णन की हो वह मुझसे कहिये ॥३॥

श्रीभगवानुवाच

युक्तं च संति सर्वत्र भाषंते ब्राह्मणा यथा ।
माया मदीयामुद्गृह्य वदतां किं नु दुर्घटम् ॥ ४ ॥

श्रीभगवान् बोले-ब्राह्मणों ने तत्वों के विषयमें में जो कुछ भी कहा है वह युक्त है, क्योंकि मेरी माया को स्वीकार करने पर उससे संबन्ध रखने वाले किसी भी विषय में जो कुछ भी ऋषि जन कहेंगे, वह युक्ति द्वारा सिद्ध होजायगा ॥४॥

नैतदेवं यथात्थ त्वं यदहं वच्मि तत्तथा ।
एवं विवदतां हेतुं शक्तयो मे दुरत्ययाः ॥ ५ ॥
यासां व्यतिकरादासीद्विकल्पो वदतां पदम् ।
प्राप्ते शमदमेऽप्येति वादस्तमनु शाम्यति ॥ ६ ॥

'जैसे तू कहताहै वैसे वह नहीं है, परन्तु जैसे मैं कहता हूँ वैसे ही है' इस प्रकार का उन तत्वों के मूल कारण में जो ब्राह्मण विवाद किया करतेहैं वह वास्तविक रूप से देखा जाय तो अपने-अपने स्वभाव के अनुसार बदलने वाले सत् आदि गुण ही उसके कारण हैं कि जिनकी शक्तियोंके क्षोभ से विवाद करने वालों का विषय रूपी यह भेद बन गया है, शम और दम प्राप्त होने पर यह भेद दूर होजाताहै और फिर विवादभी शान्त होजाताहै ॥

परस्परानुप्रवेशात्तत्त्वानां पुरुषर्षभ ।
पौर्वापर्यप्रसंख्यानं यथा वक्तुर्विवक्षितम् ॥ ७ ॥

हे पुरुष श्रेष्ठ ! तत्वों के परस्पर प्रविष्ट होनेसे तत्वों की संख्या कहने वाले की इच्छानुसार हो सकती है ॥७॥

एकस्मिन्नपि दृश्यंते प्रविष्टानीतराणि च ।
पूर्वस्मिन् वाऽपरस्मिन्वा तत्त्वे तत्त्वानि सर्वशः ॥ ८ ॥

जैसे मिट्टीमें घटआदि अन्तर्भूत होजातेहैं वैसे ही एक कारण रूप तत्व में उसका कार्य रूप तत्व अन्तर्भूत हो (समा) जाता है, जैसे घट आदि में मिट्टी का समावेश होता है, वैसे ही किसी कारण रूप तत्व का अपने कारण रूप तत्व में समावेश होता है ॥८॥

पौर्वापर्यमतोऽमीषां प्रसंख्यानमभीप्सताम् ।
यथाविविक्तं यद्वक्त्रं गृह्णीमो युक्तिसंभवात् ॥ ९ ॥

इस प्रकार कहने वालों की युक्तियाँ फबित हो जाती हैं, इसलिये तत्वों के कार्य-कारण तथा न्यूनाधिकता के विषय में विवाद-कर्त्ताओं की वाणी जिस इच्छा से प्रवृत्त होती है, वह उसे ही सिद्ध कर सकती है, अस्तु हम उनकी बात को संभव मानते हैं ॥९॥

अनाद्यविद्यायुक्तस्य पुरुषस्यात्मवेदनम् ।
स्वतो न संभवादन्यस्तत्त्वज्ञो ज्ञानदो भवेत् ॥ १० ॥

"जीव जो कि अनादि काल से अविद्यामय है उसे अपने स्वरूप का ज्ञान स्वयं नहीं हो सकता, किन्तु उसे ज्ञान देने वाला सर्वज्ञ ईश्वर अलग ही है-ऐसा जानकर जीव और ईश्वर में भेद मानने वालों के मतानुसार चौबीस तत्व, पच्चीसवां जीव और छब्बीसवां ईश्वर-तत्व है ॥१०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुरुषेश्वरयोरत्र न वैलक्षण्यमण्वपि ।
तदन्यकल्पनाऽपार्था ज्ञानं च प्रकृतेर्गुणः ॥११॥

परन्तु जो ईश्वर और जीव दोनों को चैतन्य होने के कारण उनमें किसी प्रकार की विलक्षणता न होने से भेद-कल्पना व्यर्थ मानते हैं—उनके मत से पच्चीस तत्व हैं, ज्ञान ईश्वर-दत्त प्रकृति का ही एकगुण होनेके कारण जुदा तत्व नहीं माना जाता॥

प्रकृतिर्गुणसाम्यं वै प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ।
सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यंतहेतवः ॥१२॥

तीनों गुणों की समान अवस्था ही प्रकृति है, गुण प्रकृतिही के हैं आत्माके नहीं, जो कि उत्पत्ति पालन और प्रलय के कारण रूप सत, रज और तम कहलाते हैं ॥ १२ ॥

सत्त्वं ज्ञानं रजः कर्म तमोऽज्ञानमिहोच्यते ।
गुणव्यतिकरः कालः स्वभावः सूत्रमेव च ॥१३॥

सत्वमय ज्ञान प्रकृति का गुण है, कर्म रजोगुण की वृत्ति है और अज्ञान तमोगुण की वृत्तिहै स्वभाव महत्तत्व का और काल ईश्वर का स्वरूप है, इसलिये काल और स्वभाव अलग २ तत्व नहीं हैं. मैंने तो तत्वों की संख्या अट्ठाईस बतलाई है, वह पूर्वोक्त पच्चीस तत्व और तीन गुण मिलाकर होती है ॥१३॥

पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमहंकारो नभोऽनिलः ।
ज्योतिरापः क्षितिरिति तत्त्वान्युक्तानि मे नव१४॥
श्रोत्रं त्वग् दर्शनं घ्राणो जिह्वेति ज्ञानशक्तयः ।
वाक्पाण्युपस्थपाय्वंघ्रिकर्माण्यंगोभयं मनः॥१५॥
शब्दः स्पर्शो रसो गंधो रूपं चेत्यर्थजातयः ।
गत्युक्त्युत्सर्गशिल्पानि कर्मायतनसिद्धयः ॥१६॥

पुरुष, प्रकृति, महत्तत्व, अहङ्कार, आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी-यह नौ कर्ण, त्वचा, नेत्र, नासिका, जिह्वा-यह पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ और गुदा-यह पाँच कर्मेन्द्रियाँहैं और हे उद्धव ! ज्ञान तथा कर्म रूप मन-ये ग्यारह शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध-ये पाँच विषय और तीन गुण—इस प्रकार से मैंने कुल अट्ठाईस तत्व कहे हैं, गति, भाषण, वीर्य-त्याग, मल-त्याग और शिल्प-यह पाँच कर्मेन्द्रियों के फल रूप होने से अट्ठाईस में ही हैं अलग तत्व नहीं ॥१४-१६॥

सर्गादौ प्रकृतिर्ह्यस्य कार्यकारणरूपिणी ।
सत्त्वादिभिर्गुणैर्धत्ते पुरुषोऽव्यक्त ईक्षते ॥१७॥

इस सृष्टि के आदि में प्रकृति ही कार्य-कारण रूप है, वही सत्वादि गुणों के द्वारा इस जगत्की उत्पत्ति आदिके समय देह आदिको धारण करती है और पुरुष (ईश्वर) साक्षी रूप होने के कारण उससे भिन्न हैं ॥१७॥

व्यक्तादयो विकुर्वाणा धातवः पुरुषेक्षया ।
लब्धवीर्याः सृजंत्यंडं संहताः प्रकृतेर्बलात् ॥१८॥

प्रकृति से उत्पन्न हुए और विकार को पाने वाले महत्तत्वादि पदार्थ ही पुरुष की दृष्टि से बल पाकर इकट्ठे होते हैं और प्रकृति का आश्रय लेकर ब्रह्मांड को रचते हैं, फिर संघात को प्राप्त होकर उनके उत्पन्न किये हुए पदार्थ उन्हीं में अन्तर्भूतहो जाते हैं, इसलिये देह आदि जुदे तत्व नहीं हैं॥१८॥

सप्तैव धातव इति तत्रार्थाः पंच खादयः ।
ज्ञानमात्मोभयाधारस्ततो देहेंद्रियासवः ॥१९॥

कुछ लोग सात ही तत्व मानते हैं—आकाश आदि पंच महाभूत, साक्षी रूप जीव और आधार रूप ईश्वर । इस मत के अनुसार प्रकृति महत्तत्व और अहङ्कार-इन कारण रूप तत्वों का आकाश आदि में अन्तर्भाव किया गया है और इन सात तत्वों ही से देह, इन्द्रिय, प्राण और सब कार्योंकी उत्पत्ति मानी गई है ॥१९॥

षडित्यत्रापि भूतानि पंच षष्ठः परः पुमान् ।
तैर्युक्त आत्मसंभूतैः सृष्ट्वेदं समुपाविशत् ॥२०॥

कितनोंही के मतमें पाँच महाभूत और छठवां ईश्वर—कुल छः ही तत्व माने हैं, इस मत में परमात्मा अपने आत्मा में से उत्पन्न हुए इन भूतों से जगत् को रचकर उसमें प्रविष्ट है, इसलिये सब पदार्थों का परमात्मा में अन्तर्भाव है ॥२०॥

चत्वार्येवेति तत्रापि तेज आपोऽन्नमात्मनः ।
जातानि तैरिदं जातं जन्मावयविनः खलु ॥२१॥

जो चार तत्व मानते हैं, उनके मतानुसार आत्मा और आत्मा से प्रकट हुए तेज, जल और पृथ्वी—यही चार तत्वहैं, इन्हींसे सब जगत् उत्पन्न हुआ है और सब कार्यों का उसीमें अन्तर्भाव है ॥

संख्याने सप्तदशके भूतमात्रेंद्रियाणि च ।
पंच पंचैकमनसा आत्मा सप्तदशः स्मृतः ॥२२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सत्रह तत्व मानने वालोंके अनुसार पाँच महा भूत, पाँच विषय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, एक मन और सत्रहवाँ आत्मा है ॥२२॥

तद्वत्षोडशसंख्याने आत्मैव मन उच्यते ।
भूतेंद्रियाणि पंचैव मनआत्मा त्रयोदश ॥२३॥

सोलह तत्व मानने वालों ने आत्मा ही को मन कहा है, तेरह मानने वालों ने पंच महाभूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, एक मन, जीवात्मा और तेरहवाँ परमात्मा बतलाया है ॥२३॥

एकादशत्वमात्माऽसौ महाभूतेंद्रियाणि च ।
अष्टौ प्रकृतयश्चैव पुरुषश्च नवेत्यथ ॥२४॥

ग्यारह मानने वाले पंच महाभूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियां और एक आत्मा को ही मानते हैं और नौ तत्व मानने वालों के मतानुसार पंच महाभूत, प्रकृति, महत्तत्व, अहङ्कार और पुरुष-ये तत्वहैं ॥

इति नानाप्रसंख्यानं तत्त्वानामृषिभिः कृतम् ।
सर्वं न्याय्यं युक्तिमत्त्वाद्विदुषां किमशोभनम् २५॥

इस प्रकार ऋषियों ने तत्वों की अलग-अलग संख्या बतलाई है, यह केवल प्रकृति से पुरुष को भिन्न जतलाने के लिये कही गई है, जो कि सब प्रकार से न्याय संगत है, क्योंकि विद्वान् युक्ति लगाकर प्रत्येक बात को घटित कर सकते हैं॥२५॥

उद्धव उवाच

प्रकृतिः पुरुषश्चोभौ यद्यप्यात्मविलक्षणौ ।
अन्योन्यापाश्रयात्कृष्ण दृश्यते न भिदा तयोः२६॥

उद्धवजी बोले-हे कृष्ण ! जड़रूप प्रकृति और चैतन्य रूप ब्रह्म यद्यपि स्वभाव ही से भिन्न हैं, तथापि परस्पर का त्याग करने से उनकी प्रतीत नहीं होती, इससे उनका भेद नहीं देखा जाता २६

प्रकृतौ लक्ष्यते ह्यात्मा प्रकृतिश्च तथात्मनि ।
एवं मे पुंडरीकाक्ष महांतं संशयं हृदि ।
छेत्तुमर्हसि सर्वज्ञ वचोभिर्नयनैपुणैः ॥२७॥

हे कमलनयन ! हे सर्वज्ञ ! आत्मा देहमें जाना जाता है और देह आत्मा को साथ लेकर ही जाना जाता है, इस प्रकार दोनों का अभेद प्रतीत होने से मुझे बड़ा संशय है, आप इसे युक्तिमय वचनों के द्वारा खण्डन कीजिये ॥ २७॥

त्वत्तो ज्ञानं हि जीवानां प्रमोषस्तेऽत्र शक्तितः ।
त्वमेव ह्यात्ममायाया गतिं वेत्थ न चापरः॥२८॥

आपकी कृपा ही से इस संसार में जीवों को ज्ञान होता है और आपही की माया से अज्ञान भी हुआ है, इसलिये आपके सिवा आपकी माया की गति कोई नहीं जानता ॥२८॥

श्रीभगवानुवाच

प्रकृतिः पुरुषश्चेति विकल्पः पुरुषर्षभ ।
एष वैकारिकः सर्गो गुणव्यतिकरात्मकः ॥२९॥

श्रीभगवान् बोले-हे पुरुष श्रेष्ठ ! देह और आत्मा में विशेष विलक्षणता है, क्योंकि गुणों के क्षोभ से होने वाला यह देह तो विकारी है और आत्मा निर्विकार है ॥ २९॥

ममांग माया गुणमय्यनेकधा विकल्पबुद्धिश्च गुणैर्विधत्ते । वैकारिकस्त्रिविधोऽध्यात्ममेकमथाधिदैवमधिभूतमन्यत् ॥३०॥

हे उद्धव ! मेरी गुणमयी मायाने गुणों के द्वारा अनेक प्रकार के भेद और भेद के ज्ञानों को बनाया है, यद्यपि इस देहमें अनेक भेदहैं परन्तु साधारण तया अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत-यह तीन भेद माने जाते हैं ॥३०॥

दृग्रूपमार्कं वपुरत्र रंध्रे परस्परं सिध्यति यः स्वतः खे । आत्मा यदेषामपरो य आद्यः स्वयाऽनुभूत्याऽखिल सिद्धसिद्धिः । एवं त्वगादि श्रवणादि चक्षुर्जिह्वादि नासादि च चित्तयुक्तम् ३१

जैसे दृष्टि अध्यात्महै, रूप अधिभूत और नेत्र के गोलकमें प्रवेश किया हुआ सूर्यका अंश अधिदैव कहलाता है, नेत्रों द्वारा रूप जाना जाता है, परन्तु यदि उनका देवता सूर्य न हो तो वे अपने काम नहीं कर सकते, फिर रूप ही न हो तो चक्षु अपना काम किस पर करें ? ऐसी दशा में नेत्र,रूप और सूर्यकी सिद्धि एक दूसरेसे ही होती है, इसी प्रकार त्वचा. स्पर्श और वायु, श्रवण, शब्द और दिशा, जिह्वा; रस और वरुण. नासिका, गंध और अश्विनीकुमार, चित्त, चेतयितव्य और वासुदेव, मन, मन्तव्य और चन्द्र; बुद्धि,बोधव्य और ब्रह्मा, अहङ्कार, अहंकर्त्तव्य और रुद्र-यह तीन-तीन भेद हैं, इनमें से आत्मा तो आकाश-स्थित सूर्यकी नाईं स्वयं सिद्ध और किसी के आश्रय की उपेक्षा न करने वाला है, इसलिये वह अध्यात्म आदि का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कारण रूप होने से इन देहादि विकार मय पदार्थों से भिन्न है, फिर आत्मा से यह अध्यात्म आदि उत्पन्न हुएहैं और वे अलग-अलगहैं, परन्तु आत्मा किसी से उत्पन्न नहीं हुआ और सदैव एक रसहै, यह सर्वज्ञहै परन्तु देह आदि आत्माको नहीं जानते, इस प्रकार भी आत्मा इन देह आदि पदार्थों से पृथक् है ॥ ३१ ॥

योऽसौ गुणक्षोभकृतो विकारः प्रधानमूलान्महतः प्रसूतः । अहं त्रिवृन्मोहविकल्पहेतुर्वैकारिकस्तामस ऐन्द्रियश्च ॥३२॥

सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी-यह तीन प्रकार का अहङ्कार गुणों के क्षोभकर्त्ता काल और प्रकृतिके मूल महत्तत्वसे उत्पन्न हुआ एक विकार है, यही अधिदैवहै, अध्यात्म और अधिभूत रूपी मोह से देह आदि के विकल्प का कारण है, इस लिये देहादि का अहङ्कार मिटने पर ही आत्मा जाना जा सकता है ॥३२॥

आत्मा परिज्ञानमयो विवादोह्यस्तीति नास्तीति भिदार्थनिष्ठः । व्यर्थोऽपि नैवोपरमेत पुंसां मत्तः परावृत्तधियां स्वलोकात् ॥३३॥

यह अहङ्कार और उनसे उत्पन्नहुआ देह आत्म ज्ञान न होने से ही प्रतीत होता है, यद्यपि इस विषय में यह है यह नहीं आदि अनेक प्रकार के विवाद भेद निष्ठ हैं और वे वास्तव में आत्मा को सिद्ध करनेवाले न होने के कारण व्यर्थही हैं, फिर भी जो लोग अपने स्वरूप भूत मुझसे बहिर्मुख हैं उनके अहङ्कार और विकल्प नहीं छूटते और उन्हीं विवादों के कारण किये हुए कर्मोंसे वे ऊँची-नीची योनियों में जन्म-मरण पाया करते हैं ॥३३॥

उद्धव उवाच

त्वत्तः परावृत्तधियः स्वकृतैः कर्मभिः प्रभो । उच्चावचान्यथा देहान्गृह्णंति विसृजंति च ॥३४॥
तन्ममाख्याहि गोविंद दुर्विभाव्यमनात्मभिः । न ह्येतत् प्रायशो लोके विद्वांसः संति वंचिताः३५॥

उद्धवजी बोले-हे प्रभो ! हे गोविंद ! आपसे विमुख बुद्धि वाले लोग अपने किये हुए कर्मों के द्वारा जिस प्रकार से उच्च-नीच देहों को धारण करते अथवा छोड़ते हैं, वह प्रकार अज्ञानियों की समझ में नहीं आ सकता, क्योंकि इस लोक में वे लोग माया से मोहित हैं इसलिये यहाँ बहुधा इस विषय के जानने वाले नहीं हैं कि व्यापक आत्मा कैसे एक देहसे दूसरे देहमें जाताहै ? वह अकर्त्ता होकर भी कैसे कर्त्ता माना जाता है और नित्य हो कर भी कैसे जन्म-मरण पाता है ? ॥३४॥॥३५॥

श्रीभगवानुवाच

मनः कर्ममयं नृणामिंद्रियैः पंचभिर्युतम् । लोकाल्लोकं प्रयात्यन्य आत्मा तदनुवर्तते ॥३६॥

श्रीभगवान् बोले-पंच इन्द्रिय मय लोगों का कर्म संयुक्त मन ही एक देह से दूसरे देहमें जाताहै आत्मा यद्यपि इस मन से भिन्न है, परन्तु अहङ्कार के कारण ही वह मनके पीछे-पीछे जाता है अर्थात् अध्यास के कारण ही मनके जाने को अपना जाना मानता है, इसलिये लिंग शरीर के अध्यास से ही यह सब घट सकता है ॥३६॥

ध्यायन्मनोऽनुविषयान् दृष्टान् वाऽनुश्रुतानथ । उद्यत्सीदत् कर्मतंत्रं स्मृतिस्तदनु शाम्यति ॥३७॥

कर्मों के आधीन मन लोक तथा परलोक के जिन विषयों को स्मरण करता है उन्हीं में प्रकट होता है और वह पूर्व विषयों से दूर होजाता है तब वह आगे-पीछे का ध्यान भूल जाता है ॥३७॥

विषयाभिनिवेशेन नात्मानं यत्स्मरेत् पुनः । जंतोर्वै कस्यचिद्धेतोर्मृत्युरत्यंतविस्मृतिः ॥३८॥

कर्मों के द्वारा दूसरे देह में अत्यन्त अभिनिवेष होने पर यदि वह देह उत्तम हो तो विषाद आदि के कारण जीव को अपने पूर्व शरीर का बिल्कुल ध्यान नहीं रहता, तब आत्मा का मरण मान लिया जाता है, वास्तव में वह देह की तरह मरता नहीं है ॥३८॥

जन्म त्वात्मतया पुंसः सर्वभावेन भूरिद । विषय स्वीकृतिं प्राहुर्यथा स्वप्नमनोरथाः ॥३९॥

हे महादानी ! मनका दूसरे देहके साथ संबंध होने पर उसमें अत्यन्त अहङ्कार उत्पन्न होजाता है और मनके अध्यास से आत्मा भी देहके अभिमान में पड़ जाता है, पस यही आत्माका जन्म है ॥३९॥

स्वप्नं मनोरथं चेत्थं प्राक्तनं न स्मरत्यसौ । तत्र पूर्वमिवात्मानमपूर्वं चानुपश्यति ॥४०॥

जैसे एक स्वप्नके पश्चात् दूसरा स्वप्न होता है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

या एक मनोरथ के पश्चात् दूसरा मनोरथ होताहै, तब पहला स्वप्न या मनोरथ भूल जाता है, इसी प्रकार आत्मा मन के अध्यास से अपने को पूर्व सिद्ध होने पर भी नया उत्पन्न हुआ मानताहै और पूर्व देह का अभिमान नष्ट होने तथा नवीन देह में प्रगाढ़ अहङ्कार बढ़ जाने से उसे पूर्व जन्म का भी ध्यान नहीं रहता ॥४०॥

इंद्रियायनसृष्ट्येदं त्रैविध्यं भाति वस्तुनि ।
बहिरंतर्भिदाहेतुर्जनोऽसज्जनकृद्यथा ॥४१॥

इन्द्रियों के आश्रय रूप मन की दूसरे देह में अभिनिवेश रूपी उत्पत्ति होने पर उसके अध्यास के कारण आत्मा स्वयं उत्तम, मध्यम या अधम न होने पर भी वैसा जान पड़ता है और ऐसा होनेसे से वह देह सम्बन्धी बाहरी और भीतरी विषयों को देखता है, जैसे स्वप्नमें जीव अनेक प्रकार के देहों सम्बंधी विषयोंको देखता या करताहै अथवा कुपूत का पिता उसके शत्रु-मित्र को अपना शत्रु-मित्र मान लेता है ॥४१॥

नित्यदा ह्यंग भूतानि भवंति न भवंति च ।
कालेनालक्ष्यवेगेन सूक्ष्मत्वात्तन्न दृश्यते ॥४२॥

जिसकी तीव्र गति समझ में नहीं आती, ऐसे काल के कारण यह शरीर क्षण-क्षण पर उत्पन्न होते और मरतेहैं, परन्तु कालकी सूक्ष्मताके कारण अज्ञानी लोग इस जन्म-मरणको नहीं जानते ।४२॥

यथाऽर्चिषां स्रोतसां च फलानां वा वनस्पतेः ।
तथैव सर्वभूतानां वयोऽवस्थादयः कृताः ॥४३॥

जैसे ज्योति, जल-प्रवाह और वृक्ष के फलों की अवस्थाओं को काल बदलता रहता है; ऐसेही वह सब शरीरों की अवस्था, तेज, बल आदि को भी बदला करता है ॥४३॥

सोऽयं दीपोऽर्चिषां यद्वत्स्रोतसां तदिदं जलम् ।
सोऽयं पुमानिति नृणां मृषा गीर्धीर्मृषायुषाम् ॥४४॥

जैसे समान आकृतिके दूसरेकी ज्योति दीपक को देखकर यह भ्रम होता है कि यह वही दीपक है या जल स्रोत में नया जल आने पर भी यह धारणा करली जाती है कि यह वही स्रोत है, इसी प्रकार यद्यपि शरीर क्षण-क्षण पर बदला करता है परन्तु अज्ञानी पुरुष भ्रममें पड़कर यही कहा करते हैं कि यह तो वही शरीर है ॥४४॥

मा स्वस्य कर्मबीजेन जायते सोऽप्ययं पुमान् ।
म्रियते वाऽमरो भ्रांत्या यथाऽग्निर्दारुसंयुतः ॥४५॥

वास्तविक रीति से देखा जाय तो जन्म-मरण स्वयं ही असत्य हैं, देह पर ममत्व रखने वाला पुरुष भी कर्म रूपी बीज से न तो जन्मता है और न मरता है, वरन् वह अजन्मा और अमर होनेपर भी भ्रांति के कारण ऐसा जान पड़ताहै, जैसे अग्नि नित्य होने पर भी काष्ठ के संयोग से प्रकट होता हुआ और काष्ठ के वियोग से नष्ट होता हुआ सा जान पड़ता है ॥४५॥

निषेकगर्भजन्मानि बाल्यकौमारयौवनम् ।
वयोमध्यं जरा मृत्युरित्यवस्थास्तनोर्नव ॥४६॥

उदर में प्रवेश, उदरमें वृद्धि, जन्म, बालकपन, कौमार्य, यौवन, अवस्था का मध्य, बुढ़ापा और मरण-ये नौ अवस्थायें शरीर की हैं ॥४६॥

एता मनोरथमयीर्ह्यन्यस्योच्चावचास्तनूः ।
गुणसंगादुपादत्ते क्वचित्कश्चिज्जहाति च ॥४७॥

देहकी इन मानी हुई अवस्थाओंको देह-संबंधी अज्ञान के कारण जीवन अपने में मान लेताहै,कोई भक्तजन ही ईश्वर के अनुग्रह से विशेष ज्ञान होने पर इन अवस्थाओं को छोड़ देता है ॥४७॥

आत्मनः पितृपुत्राभ्यामनुमेयौ भवाप्ययौ ।
न भवाप्ययवस्तूनामभिज्ञोद्वयलक्षणः ॥४८॥

यद्यपि अपने जन्म-मरण के समय मूर्छा रहने के कारण मनुष्य को स्वयं अपने जन्म-मरण से ही तत्सम्बन्धी ज्ञान नहीं रहता, परन्तु उसे इस प्रकार तो बोध हो सकताहै कि वह यह सोचे कि मैं पिता से जन्मा हूँ, इसी भाँति किसी का मरण देखकर उसका भी ज्ञान हो सकता है, परन्तु जन्म मरण वाले देह का जो द्रष्टा है उसका जन्म-मरण कदापि नहीं होता ॥ ४८ ॥

तरोर्बीजविपाकाभ्यां यो विद्वान् जन्मसंयमौ ।
तयो र्विलक्षणो द्रष्टा एवं द्रष्टा तनोः पृथक् ॥४९॥

जैसे वृक्ष के बीज से जन्म को और पक जाने से मरण का ज्ञान रखने वाला वृक्ष से भिन्नहै ऐसे ही देह के जन्म-मरण को जानने वाला भी देह से पृथक् है ॥ ४९ ॥

प्रकृतेरेवमात्मानमविविच्याबुधः पुमान् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तत्त्वेन स्पर्शसंमूढः संसारं प्रतिपद्यते ॥५०॥

इस प्रकार देह आदिके द्वारा आत्माका यथार्थ विचार कर लेना चाहिये, अन्यथा विषय-मोह में पड़ने के कारण ये मूर्ख जीव संसारही में गिरताहै॥

सत्त्वसंगादृषीन् देवान् रजसाऽसुरमानुषान्।
तमसा भूततिर्यक्त्वं भ्रामितो याति कर्मभिः॥५१॥

कर्मों के कारण भ्रम में पड़ा हुआ यह जीव सतोगुण के संग से ऋषि और देवताओं का जन्म पाता है, रजोगुण से असुर और मनुष्य का जन्म पाता है और तमोगुण से भूत तथा पशु-पक्षी का जन्म पाता है ॥५१॥

नृत्यतो गायतः पश्यन् यथैवानुकरोति तान्।
एवं बुद्धिगुणान् पश्यन्ननीहोऽप्यनुकार्यते ॥५२॥

जैसे नाचते और गाते हुए पुरुषों को देखकर मनुष्य उनके ताल-स्वर का अपने में अनुवर्त्तन करता है, इसी प्रकार बुद्धि के गुणों को देखता हुआ अकर्त्ता पुरुष भी उन गुणों के बल से उन्हें अपने में मान लेता है ॥५२॥

यथाऽम्भसा प्रचलता तरवोऽपि चला इव।
चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते भ्रमतीव भूः ॥५३॥

जैसे जल के द्वारा किनारे के वृक्ष चलते से जान पड़ते हैं या दृष्टि-भ्रम से पृथ्वी चलती सी जान पड़ती है, इसी प्रकार दृश्य का धर्म द्रष्टा में प्रतीत होता है और आत्मा के लक्षण आनन्द आदि होने पर भी उसके विषय आदि लक्षण प्रतीत होते हैं ॥५३॥

यथा मनोरथधियो विषयानुभवो मृषा।
स्वप्नदृष्टाश्च दाशार्ह तथा संसार आत्मनः ॥५४॥

हे उद्धव! जैसे स्वप्न अथवा मनोरथ सम्बंधी बुद्धि असत्य है, वैसे ही आत्मा में प्रतीत होता हुआ विषयों का अनुभव रूप यह संसार भी असत्य है ॥५४॥

अर्थे ह्यविद्यमानेपि संसृतिर्न निवर्त्तते।
ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥५५॥

जैसे स्वप्न असत्य होने पर भी विषयों का ध्यान करने वाले पुरुष के उस अवस्था सम्बन्धी दुःख नहीं मिटते, वैसे ही अहङ्कार रूपी संसार असत्य होने पर भी विषयों का ध्यान करने वाले पुरुषके अज्ञान अवस्थामें जन्म-मरण नहीं मिटते॥

तस्मादुद्धव मा भुंक्ष्व विषयानसदिंद्रियैः।
आत्माऽग्रहणनिर्भातं पश्य वैकल्पितं भ्रमम्॥५६॥

हे उद्धव! इसलिये तुम दुष्ट इन्द्रियोंसे विषय भोग न करो और सांसारिक भ्रान्ति को आत्मा के अज्ञान से ही बना हुआ समझो ॥ ५६ ॥

क्षिप्तोऽवमानितोऽसद्भिः प्रलब्धोऽसूयितोऽथवा।
ताडितः सन्निबद्धो वा वृत्त्या वा परिहापितः॥५७॥
निष्ठितो मूत्रितो वाऽज्ञैर्बहुधैवं प्रकंपितः।
श्रेयस्कामः कृच्छ्रगत आत्मनात्मानमुद्धरेत्॥५८॥

चाहे नीच पुरुष निंदा या अपमान करें, हँसी उड़ावें, ईर्ष्या करें, ताड़ना दें, बाँधें, जीविका छीन लें, सिर पर थूकें या मूत दें और दूसरे भी ऐसेही यत्न करके ब्रह्म निष्ठा से भ्रष्ट करना चाहें, चाहे उससे अपने को महान् कष्टही क्यों न हो, तथापि मुमुक्षु पुरुष को अपने यत्न द्वारा अपना उद्धार करना चाहिये ॥५७॥५८॥

उद्धव उवाच

यथैवमनुबुध्येयं वद नो वदतां वर।
सुदुःसहमिमं मन्ये आत्मन्यसदतिक्रमम् ॥५९॥

उद्धवजी बोले-हे वक्ताओं में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण! यह आपका कथन मेरी समझमें जिस प्रकार पूर्ण रीतिसे आसके, उसी रीतिसे आप इसे समझाइये नीच पुरुष तो इस प्रकार से पीड़ा पहुंचाय और पुरुष उसे सहन करे-यह तो मुझको बड़ा कठिन जान पड़ता है ॥५९॥

विदुषामपि विश्वात्मन् प्रकृतिर्हि बलीयसी।
ऋते त्वद्धर्मनिरताञ्छांतांस्ते चरणालयान् ॥६०॥

हे जगदात्मा! जो पुरुष आपही के धर्म में निरत हैं और केवल आपही के चरणों की शरण में रहने वाले हैं, उन्हें छोड़कर विद्वानों के द्वारा भी ऐसे अपराधोंका सहन होना मैं कठिन मानता हूँ क्योंकि स्वभाव बड़ा ही बलवान् है ॥६०॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तेईसवां अध्याय

(मननिरोधिनी भिक्षु गीता वर्णन)

बादरायणिरुवाच

स एवमाशंसित उद्धवेन भागवतमुख्येन दाशार्हमुख्यः । स भाजयन् भृत्यवचो मुकुंदस्तमाबभाषे श्रवणीयवीर्यः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–जब भक्तों में श्रेष्ठ उद्धव ने इस प्रकार प्रार्थना की, तब यादवों में प्रमुख तथा सुनने योग्य पराक्रम वाले श्रीकृष्ण भगवान् ने अपने दासके वचनों का सत्कार करके इस प्रकार उत्तर दिया ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

बार्हस्पत्य स वै नात्र साधुर्वै दुर्जनेरितैः ।
दुरुक्तैर्भिन्नमात्मानं यः समाधातुमीश्वरः ॥ २ ॥

श्रीभगवान बोले–हे बृहस्पति के शिष्य ! इस लोक में ऐसा कोई भी साधु नहीं है जो दुष्टों के दुर्वचनों द्वारा विदीर्ण हुए अपने अन्तःकरण को शान्त रखने की सम्मर्थ्य रखता हो ॥२॥

न तथा तप्यते विद्धः पुमान् बाणैः सुमर्मगैः ।
यथा तुदंति मर्मस्थाह्यसतां परुषेषवः ॥ ३ ॥

क्योंकि नीच पुरुषों के कठोर वचनरूपी बाणों के मर्म स्थान पर लगने से मनुष्य को जैसी पीड़ा होती है, वैसी लोहे के बाणों से नहीं होती; चाहे वे मर्म स्थान पर ही क्यों न जा लगे हों ॥३॥

कथयंति महत्पुण्यमितिहासमिहोद्धव ।
तमहं वर्णयिष्यामि निबोध सुसमाहितः ॥ ४ ॥

फिरभी मैं ऐसे उपाय कहूँगा कि जिनसे दुःख सहन हो सकें, इसके लिये एक परम पवित्र इतिहास है, वह मैं तुम से कहता हूँ, सावधानी से सुनो ॥ ४ ॥

केनचिद्भिक्षुणा गीतं परिभूतेन दुर्जनैः ।
स्मरता धृतियुक्तेन विपाकं निजकर्मणाम् ॥ ५ ॥

एक भिक्षुक को जब दुष्ट लोग अत्यन्त दुःख देने लगे, तब उसने अपने कर्मों के फल का ध्यान करते हुए धीरज रखकर इस विषय पर अत्युत्तम विचार किया है ॥५॥

अवंतिषु द्विजः कश्चिदासीदाढ्यतमः श्रिया ।
वार्तावृत्तिः कदर्यस्तु कामी लुब्धोऽतिकोपनः ॥ ६ ॥

उज्जैन प्रान्तमें अत्यन्त लक्ष्मीवान् एक धनाढ्य ब्राह्मण रहता था, वह खेती, वाणिज्य आदि करता था और कामी, लोभी, महा क्रोधी तथा कदर्यथा ॥

ज्ञातयोऽतिथयस्तस्य वाङ्मात्रेणापि नार्चिताः ।
शून्यावसथ आत्मापि काले कामैरनर्चितः ॥ ७ ॥

वह ब्राह्मण अपने धर्म-शून्य घर में जातिवालों या अतिथों का वचनों से भी सत्कार न करता था, इतना ही नहीं, वरन् वह तो उचित समय पर आत्माको भी भोगों से प्रसन्न करता था ॥७॥

दुःशीलस्य कदर्यस्य द्रुह्यंते पुत्रबांधवाः ।
दारा दुहितरो भृत्या विषण्णा नाचरन् प्रियम् ॥ ८ ॥

उस दुःशील कदर्यके द्वारा दुःख पाये हुए उस के पुत्र, बान्धव, स्त्री, पुत्री और सेवकतक उसका हित करने के बदले उसका द्रोह करने लगे ॥८॥

तस्यैवं यक्षवित्तस्य च्युतस्योभयलोकतः ।
धर्म कामविहीनस्य चुक्रुधुः पंच भागिनः ॥ ९ ॥

इस प्रकार यक्षकी नाईं धन जोड़नेवाले दोनों लोकों से भ्रष्ट, धर्म और सुखसे हीन, उस ब्राह्मण पर नित्य कर्त्तव्य रूपी पंच यज्ञ के अंश-भागी देवता अपना भाग न पाकर क्रुद्ध होगये ॥ ९ ॥

तदवध्यानविस्रस्तपुण्यस्कंधस्य भूरिद ।
अर्थोऽप्यगच्छन्निधनं बह्वायासपरिश्रमः ॥ १० ॥

हे अधिक दानकर्त्ता उद्धव ! देवताओंके अनादर से उसका केवल धन प्राप्त होने के लिये ही (धन उपयोग के लिये नहीं) जो पूर्व पुण्य था, वह भी नष्ट होगया, तब खेती आदि परिश्रम मात्र से कमाया हुआ धन भी क्षीण होगया ॥१०॥

ज्ञातयो जगृहुः किंचित्किंचिद्दस्यव उद्धव ।
दैवतः कालतः किंचिद् ब्रह्मबंधोर्नृपार्थिवात् ॥ ११ ॥

हे उद्धव ! उस ब्राह्मणका कुछ धन तो उसके जाति वालों ने ले लिया, कुछ चोर लेगये, कुछ दैवगति या काल गति से जल-गल गया या खो गया, कुछ दूसरे लोग दबा बैठे और कुछ राजा ने ले लिया ॥११॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स एवं द्रविणे नष्टे धर्मकामविवर्जितः ।
उपेक्षितश्च स्वजनैश्चिंतामाप दुरत्ययाम् ॥१२॥

इस प्रकार धन के नष्ट होने से वह धर्म तथा काम-भोगहीन ब्राह्मण स्वजनों के द्वारा उपेक्षित हो कर घोरातिघोर चिन्ता में पड़ गया ॥१२॥

तस्यैवं ध्यायतो दीर्घं नष्टरायस्तपस्विनः ।
खिद्यतो बाष्पकंठस्य निर्वेदः सुमहानभूत् ॥१३॥

धन नष्ट होने से संतप्त तथा खेद प्राप्त उस ब्राह्मण के आँसू मुंह में प्रविष्ट होकर गले तक आ पहुंचे, तब वह धन के सम्बन्ध में महान् शोकित होता हुआ परम वैराग्य को प्राप्त हुआ ॥१३॥

स चाहेदमहो कष्टं वृथात्मा मेऽनुतापितः ।
न धर्माय न कामाय यस्यार्थायास ईदृशः ॥१४॥

वह ब्राह्मण कहने लगा कि हाय ! मैंने अपने देह को वृथा ही दुःख दिया, इतना बड़ा भारी मेरा द्रव्य-सम्बन्धी परिश्रम व्यर्थ ही गया, जो न तो धर्म ही काम आया और न उससे सुख ही भोग सका, यह बड़ा बुरा हुआ ॥१४॥

प्रायेणार्थाः कदर्याणां न सुखाय कदाचन ।
इह चात्मोपतापाय मृतस्य नरकाय च ॥१५॥

बहुधा कदर्य पुरुषों को अपने धन का कभी सुख नहीं मिलता, वह जबतक इस लोकमें जीवित रहते हैं, सन्ताप भोगा करते हैं और जब मरते हैं तब नरक में जाते हैं ॥१५॥

यशो यशस्विनां शुद्धं श्लाघ्या ये गुणिनां गुणाः ।
लोभः स्वल्पोऽपि तान् हंति श्वित्रो रूपमिवेप्सितम् ॥

जैसे अत्यन्त सुन्दर रूपको थोड़ासा ही श्वेत कुष्ट नष्ट करदेता है, त्योंही यशस्वी पुरुषोंके पवित्र यश और गुणवानों के प्रशंसनीय गुणों को थोड़ा सा ही लोभ नष्ट कर देता है ॥ १६ ॥

अर्थस्य साधने सिद्ध उत्कर्षे रक्षणे व्यये ।
नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिंता भ्रमो नृणाम् १७॥

धन को कमाते, बढ़ते, रक्षा करते, व्ययकरते, नष्ट होते और भोगते समय में भी मनुष्य को परिश्रम, भय, चिन्ता और भ्रम बना रहता है ॥१७॥

स्तेयं हिंसाऽनृतं दंभः कामः क्रोधः स्मयो मदः ।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥१८॥
एते पंचदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् ।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्॥१९॥

चोरी, हिंसा, झूठ, दंभ, काम, क्रोध, अभिमान मद, भेद, बैर, अविश्वास, स्पर्द्धा, स्त्री, जुआ और मदिरापान—यह पन्द्रह अनर्थ मनुष्यों को धनके ही कारण हुआ करते हैं, इसलिये इस अनर्थरूपी अर्थ (धन)कोअपना कल्याण चाहने वालेको दूर ही से त्याग देना चाहिये ॥१८॥१९॥

भिद्यंते भ्रातरो दाराः पितरः सुहृदस्तथा ।
एकास्निग्धाः काकिणिना सद्यः सर्वेऽरयःकृताः २०

भाई; स्त्री, माता, पिता और सम्बन्धी जो कि स्नेह के कारण मन मिलाकर रहा करते हैं, वे भी धन के लिये एक-दूसरे से अलग होजाते हैं और बीस कौड़ियोंके लियेही परस्पर शत्रु बन बैठतेहैं ॥

अर्थेनाल्पीयसा ह्येते संरब्धा दीप्तमन्यवः ।
त्यजंत्याशुस्पृधो घ्नंति सहसोत्सृज्य सौहृदम् २१॥

थोड़े से ही धन के पीछे उत्तेजित, स्पर्द्धा में पड़े हुए और महाप्रचंड क्रोधवान ऐसे लोग शीघ्र ही एक-दूसरे का प्रेम तोड़ कर परस्पर मारने लगते हैं ॥ २१ ॥

लब्ध्वा जन्माऽमरप्रार्थ्यं मानुष्यं तद्द्विजाग्र्यता म्।
तदनादृत्य ये स्वार्थं घ्नंति यांत्यशुभां गतिम्॥२२॥

जिस प्रकार देह के लिये देवता भी प्रार्थना करते हैं, उसे और उसमें भी मुख्यतर ब्राह्मण की देह पाकर जो लोग उसका तिरस्कार करते हुए अपने स्वार्थ को खोते हैं, वे अधम गति पायेंगे ॥

स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं प्राप्य लोकमिमं पुमान् ।
द्रविणे कोनुषज्जेत मर्त्योऽनर्थस्य धामनि ॥२३॥

इसलिये इस स्वर्ग और मोक्ष के द्वाररूप इस मनुष्य देह को पाकर कौनसा मरणधर्मा पुरुष ऐसे अनर्थ के आश्रय रूपी धनमें आसक्त होगा ? ॥२३

देवर्षिपितृभूतानि ज्ञातीन् बंधूंश्च भागिनः ।
असंविभज्य चात्मानं यक्षवित्तः पतत्यधः ॥२४॥

देवता, ऋषि, पितर, भूत, जाति और बन्धु आदि अंश के भागी जन तथा अपनी आत्मा को जो नहीं देता, वह यक्ष की भांति केवल धन की रखवाली करने वाला पुरुष नीच गतिमें जाता है ॥

व्यर्थयाऽर्थेहया वित्तं प्रमत्तस्य वयो बलम् ।
कुशला येन सिध्यंति जरठः किं नु साधये ॥२५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुझ व्यर्थ ही धन की तृष्णासे सदैव असावधान रहनेवाले के धन अवस्था और वल क्षीण हो चुके हैं, इन्हीं तीन वस्तुओं के द्वारा विवेकी पुरुष सिद्ध बन जाते हैं, अब मैं बूढ़ा हो चुका हूँ, भला ऐसी दशा में कर ही क्या सकता हूँ ? ॥२५॥

कस्मात्संक्लिश्य ते विद्वान्व्यर्थयार्थेहयाऽसकृत् ।
कस्यचिन्मायया नूनं लोकोऽयं सुविमोहितः॥२६॥

लोग इस प्रकार अनर्थों को जानकर धन की व्यर्थ तृष्णा में क्यों क्लेश उठा रहे हैं ? जान पड़ता है कि अवश्य किसी की माया से वे अत्यन्त ही मोहित हैं ॥२६॥

किं धनैर्धनदैर्वा किं कामैर्वा कामदैरुत ।
मृत्युना ग्रस्यमानस्य कर्मभिर्वोत तन्मदैः ॥२७॥

यद्यपि धन से सांसारिक भोग मिल जाते हैं परन्तु जब प्राणी के निकट दिन प्रति दिन मृत्यु आरही है, तब उस धन और धन देने वाले, सुख और सुख देने वाले तथा बार-बार जन्म देने वाले कर्मों से क्या लाभ है ? ॥२७॥

नूनं मे भगवांस्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः ।
येन नीतो दशामेतां निर्वेदश्चात्मनः प्लवः ॥२८॥

मुझे जान पड़ता है कि सर्व देव मय भगवान् मुझपर अवश्य ही प्रसन्न हुए हैं कि जिन्होंने मुझे इस दशा पर पहुंचाकर आत्मा को संसार-सागर पार करनेवाला नौका-रूपी वैराग्य प्रदान कियाहै ॥

सोऽहं कालावशेषेण शोषयिष्येंऽगमात्मनः ।
अप्रमत्तोऽखिलस्वार्थे यदि स्यात्सिद्धआत्मनि२९॥

अब मेरा जितना भी जीवन-काल शेषहै; उसी में यथा साध्य तपस्याके द्वारा अपनी देहको क्षीण करूंगा और आत्मा ही में सन्तुष्ट तथा धर्म आदि साधनों से सावधान होकर रहूँगा ॥२९॥

तत्र मामनुमोदेरन् देवास्त्रिभुवनेश्वराः ।
मुहूर्तेन ब्रह्मलोकं खट्वांगः समसाधयत् ॥३०॥

जिस प्रकार खट्वांग राजा मुहूर्त्त मात्र में ही चेतकर ब्रह्मलोक पागया था, ऐसे ही थोड़ा समय रहने पर भी मुझपर इस विषय में त्रिभुवन पति देवता कृपा करेंगे-ऐसी मुझे आशा है ॥३०॥

श्रीभगवानुवाच

इत्यभिप्रेत्य मनसा ह्यावंत्यो द्विजसत्तमः ।
उन्मुच्य हृदयग्रंथीञ्छांतो भिक्षुरभून्मुनिः ॥३१॥

श्रीभगवान् बोले-वह मालवीय ब्राह्मण मनसे ऐसा निश्चय करके, अहंता और ममता को छोड़ कर शान्त तथा मौन रखनेवाला सन्यासी होगया॥

स चचार महीमेतां संयतात्मेंद्रियानिलः ।
भिक्षार्थं नगरग्रामानसंगोऽलक्षितोऽविशत् ॥३२॥

मन, इन्द्रिय और प्राणों को जीत लेने वाला भिक्षुक पृथ्वी पर विचरने लगा और आसक्ति रहित होकर अपनी श्रेष्ठता को गुप्त रखता हुआ केवल भिक्षा के लिये ही नगर और गाँव में जाया करता था ॥ ३२ ॥

तं वै प्रवयसं भिक्षुमवधूतमसज्जनाः ।
दृष्ट्वा पर्यभवन्भद्र बह्वीभिः परिभूतिभिः ॥३३॥

हे उद्धव ! अब बूढ़े अवधूत भिक्षुक को देख कर नीच लोग अनेक प्रकार के तिरस्कार करके उसे दुःख देने लगे ॥ ३३ ॥

केचित्त्रिवेणुं जगृहुरेके पात्रं कमंडलुम् ।
पीठं चैकेऽक्षसूत्रं च कंथां चीराणि केचन ॥३४॥

कितने ही मनुष्य उसके त्रिदण्ड छीन लेते हैं, कितने एक पात्र, कमण्डल, पीढ़ा, माला, गुदड़ी और चीर छीन लेते थे ॥ ३४ ॥

प्रदाय च पुनस्तानि दर्शितान्याददुर्मुनेः ।
अन्नं च भक्ष्यसंपन्नं भुंजानस्य सरित्तटे ॥३५॥

फिर उससे कहते थे कि "यह ले" इस प्रकार कहकर उसे उसकी वस्तुऐं लौटा दिया करते थे, परन्तु फिर छीन लेतेथे, वह जो कुछ भीख लाता था, वह नदी के तट पर जाकर खाता था ॥३५॥

मूत्रयंति च पापिष्ठाः ष्ठीवंत्यस्य च मूर्धनि ।
यतवाचं वाचयंति ताडयंति न वक्तिचेत ॥३६॥

तब पापी लोग उसके शिर पर मूत्र और थूक (कफ) डालते थे, वह मौन धारण कर चुका था, इस लिये उसे बल पूर्वक बुलाने की चेष्टा करतेथे, इसपर भी जब वह न बोलता तो उसे मारते थे ॥

तर्जयंत्यपरे वाग्भिः स्तेनोऽयमिति वादिनः ।
बध्नंति रज्ज्वा तं केचिद्बध्यतांबध्यतामिति॥३७॥

कितने ही लोग "यह चोर है" आदि कह कर उसका तिरस्कार करते थे, कितनेही 'बांधो-बांधो' कहते हुए उसे रस्सियों से बाँध देते थे ॥३७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्षिपंत्येकेऽवजानंत एष धर्मध्वजः शठः ।
क्षीणवित्त इमां वृत्तिमग्रहीत्स्वजनोज्झितः ॥३८॥

कितनेही लोग यह कहकर उसकी निंदा करते थे कि ये पाखंडी और ठगहै, जब धन नष्ट होगया और सम्बन्धियों ने इसका परित्याग कर दिया, तब यह इस आजीविका को करने लगा है ॥३८॥

अहो एष महासारो धृतिमान्गिरिराडिव ।
मौनेन साधयत्यर्थं बकवद्दृढनिश्चयः ॥३९॥

अरे यह तो पहाड़की नाईं धैर्यवान् और दृढ़ निश्चयी सा जान पड़ता है; यह मौन रखकर बगला ध्यानी बना हुआ अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहा है ॥३९॥

इत्येके विहसंत्येनमेके दुर्वातयंति च ।
तं बबंधुर्निरुरुधुर्यथा क्रीडनकं द्विजम् ॥४०॥

इस भांति कितने ही लोग उसकी हंसी करते थे, कितने ही उसपर अपान वायु छोड़ देतेथे,कोई उसे खेल के पक्षी की भांति बाँध देते और रोक रखते थे ॥ ४० ॥

एवं स भौतिकं दुःखं दैविकं दैहिकं च यत् ।
भोक्तव्यमात्मनो दिष्टं प्राप्तं प्राप्तमबुध्यत ॥४१॥

इस प्रकार दैहिक, दैविक और भौतिक दुःखों में से जो-जो उसे आ पड़े थे उन्हें वह भिक्षु अपने अवश्य भोगों का प्रारब्ध माना करता था ॥४१॥

परिभूत इमां गाथामगायत नराधमैः ।
पातयद्भिः स्वधर्मस्थो धृतिमास्थाय सात्त्विकीम्४२

इस प्रकार उसे धर्म-भ्रष्ट कर देने की इच्छा करने वाले लोग तिरस्कृत करते रहे, परन्तु वह सात्विक धैर्य धारण किये हुए अपने धर्ममें स्थित रहकर इस प्रकार गाथाको गाने लगा ॥४२॥

ब्राह्मण उवाच

नायं जनो मे सुखदुःखहेतुर्न देवताऽऽत्मा ग्रह कर्मकालाः । मनः परं कारणमामनंति संसार चक्रं परिवर्तयेद्यत् ॥४३॥

ब्राह्मण बोला—यह मनुष्य; देवता, आत्मा,ग्रह, कर्म या काल कोई भी मेरे सुख-दुःख का कारण नहीं है, वरन् एक मन ही है, जो कि संसार चक्र में भ्रमण कराता है ॥४३॥

मनो गुणान्वै सृजते बलीयस्ततश्च कर्माणि विलक्षणानि । शुक्लानि कृष्णान्यथ लोहितानि तेभ्यः सवर्णाः सृतयो भवंति ॥४४॥

अत्यन्त बलवान् मन गुणोंकी वृत्तियां उत्पन्न करता है, गुणों से सात्विक, राजस और तामस कर्म होते हैं और कर्मानुसार ही जन्म होते हैं, इस इस प्रकार मन ही संसार-चक्रमें भ्रमण कराताहै ॥

अनीह आत्मा मनसा समीहता हिरण्मयो मत्सख उद्विचष्टे । मनः स्वलिंगं परिगृह्य कामान् जुषन्निबद्धो गुणसंगतोऽसौ ॥४५॥

कर्म करते हुए मनके साथ नियन्ता रूप से रहकर भी उसके कर्मों से असंग, ज्ञान मय और मेरा सखा रूप जो ईश्वर है, वह केवल अखंडज्ञान द्वारा देखा ही करताहै और मैं अपनेही में संसार को दिखलाने वाले मनको आत्म-रूप मान कर कर्म तथा गुणों के संग से विषय-सेवन करने के कारण बन्धन में पड़ गया हूँ, अर्थात् अविद्या के कारण मनके अध्याससे ही यह संसार हुआहै स्वयं नहीं॥

दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च श्रुतानि कर्माणि च सद्व्रतानि । सर्वे मनोनिग्रहलक्षणांताः परो हि योगो मनसः समाधिः ॥४६ ।

दान, स्वधर्म, नियम, आचार, उत्तम व्रत, और दूसरे भी सभी सत्कर्म केवल मनके निग्रहके लिये ही किये जाते हैं, क्योंकि मन का वश में हो जाना ही सबसे बड़ा योग है ॥४६॥

समाहितं यस्य मनः प्रशांतं दानादिभिः किं वद तस्य कृत्यम् । असंयतं यस्य मनो विनश्य-दानादिभिश्चेदपरं किमेभिः ॥४७॥

भला बतलाओ तो कि जिसका मन शान्त और वशीभूत होचुका है, उसे दान आदि करनेकी क्या आवश्यकता है ? और जिसका मन वशीभूत न होकर भटक रहा है, उसे भी इन कर्मों से क्या फल मिल सकता है ? ॥१७॥

मनोवशेऽन्ये ह्यभवन स्म देवा मनश्च नान्यस्य वशं समेति । भीष्मो हि देवः सहसः सहीयान् युंज्याद्वशे तं स हि देवदेवः ॥४८॥

जितने भी देवता अर्थात् इन्द्रियाँ हैं, वे सभी मनके वश में हैं; मन किसी दूसरे के वश में नहीं है, मन ही सब बलधारियों से महा बलवान् और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भयंकर देवता है, इसलिये जो पुरुष मनको वश में करले, वही देवताओं का देवता है ॥ ४८ ॥

तं दुर्जयं शत्रुमसह्यवेगमरुंतुदं तन्न विजित्य केचित् । कुर्वंत्य सद्विग्रहमत्र मर्त्यैर्मित्राण्युदासीन रिपून विमूढाः ॥४९॥

यह मनरूपी शत्रु कठिनतासे जीता जा सकता है, इसका वेग असह्य है और यह मार्मिक पीड़ा पहुँचाने वाला है, ऐसे शत्रु को जीते बिना जो लोग और मनुष्यों से लड़ाई ठान बैठते हैं या उन्हें शत्रु-मित्र और निष्पक्ष मान लेते हैं, वे मूर्ख हैं४९॥

देहं मनोमात्रमिमं गृहीत्वा ममाहमित्यंधधियो मनुष्याः । एषोऽहमन्योऽयमिति भ्रमेण दुरंतपारे तमसि भ्रमंति ॥५०॥

केवल मनकी कल्पनाही से इस देहको अहंता पूर्वक और सम्बन्धियों के देह को ममता के साथ स्वीकार करके अन्ध बुद्धि मनुष्य इस भ्रम में पड़े रहते हैं कि "यह मैं हूँ और यह तू है" बस इसी कारण से वे अनन्त और अपार संसार में भटका करते हैं ॥५०॥

जनस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनश्चात्र हि भौमयोस्तत् । जिह्वां क्वचित् संदशति स्वदद्भिस्त द्वेदनायां कतमाय कुप्येत् ॥५१॥

यदि मनुष्यही सुख-दुःखके कारणहों तो उसमें आत्मा को क्या ? क्योंकि मिट्टी के विकार रूप शरीर परस्पर ही सुख-दुःख के कारण बन जाते हैं, आत्मा न उनका कर्त्ता ही है और न भोक्ता ही, यदि मनकी कल्पना से आत्मा को ही सुख-दुःख देने वाला मानलें तो दोनों देहों में एक ही ईश्वर-रूप आत्माका निवासहै, तब क्रोध किसपर किया जाय ? क्योंकि जब अपने ही दाँत से अपनी ही जीभ कट जाय, तब क्रोध किस पर किया जा सकता है ? ॥५१॥

दुःखस्य हेतुर्यदि देवतास्तु किमात्मनस्तत्र विकारयोस्तत् । यदंगमंगेन निहन्यते क्वचित् क्रुध्येत कस्मै पुरुषः स्वदेहे ॥५२॥

यदि सुख-दुःख के कारण देवता हों तो भी आत्मा को क्या ? क्योंकि इस दशा में भी अङ्ग से अङ्ग को चोट पहुंचने पर उन अङ्गों के देवता ही विकारी हुए, आत्मा नहीं क्योंकि वहभी देवताओं का पारस्परिक संघर्ष मात्र ही हुआ, वहाँ पुरुष किस पर क्रोध करे ? ॥५२॥

आत्मा यदि स्यात्सुखदुःखहेतुः किमन्यतस्तत्र निजस्वभावः । न ह्यात्मनोन्यद्यदि तन्मृषा स्यात् क्रुध्येत कस्मान्न सुखं न दुःखम् ॥५३॥

यदि आत्माही को सुख-दुःखका कारण माना जाय तो भी दूसरे को दुःख देने का कारण कह सकना असंभव है और ऐसी दशा में कोई भी क्रोध का पात्र नहीं ठहरता, क्योंकि वह अपना ही स्वभाव है, आत्मा तो सर्वत्र एक ही है, उससे भिन्न कुछ भी नहीं है, यह जो कुछ भी दीखता है वह सभी आत्म रूप है, फिर क्रोध क्यों किया जाय ? क्योंकि सुख-दुःख या उनके निमित्त दोनों ही वास्तविक नहीं ॥५३॥

ग्रहा निमित्तं सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनोऽजस्य जनस्य ते वै । ग्रहैर्ग्रहस्यैव वदंति पीडां क्रुध्येत कस्मै पुरुषस्ततोऽन्यः ॥५४॥

यदि ग्रहों को सुख-दुःख का कारण माना जाय तो भी आत्माको क्या ? क्योंकि ग्रह तो जन्म लेने वाले देह को ही लगते हैं अजन्मा आत्मा को नहीं, जन्म-लग्न के अनुसार ही ये देहाभिमानियोंके लिये ग्रह रूप (सुख-दुःख-दाता हैं, वे अन्तरिक्ष-वासी परस्पर ही पीड़ा के कारण बने रहते हैं ऐसा ज्योतिषी कहते हैं, परन्तु आत्मा देह और ग्रहों से पृथक्है, इस दशामें भी किसपर क्रोध कियाजाय ?

कर्माऽस्तु हेतुः सुखदुःखयोर्वै किमात्मनस्तद्धि जडाजडत्वे । देहस्त्वचित् पुरुषोऽयं सुपर्णः क्रुध्येत कस्मै न हि कर्म मूलम् ॥५५॥

यदि कर्म सुख-दुःख का कारण हो तो भी आत्मा को उससे क्या ? क्योंकि कर्म तो एक ही पदार्थ में जड़ता और अजड़ता के मिलने पर होते हैं, क्योंकि कर्म करनेमें कर्त्ताकी जड़ता रूप विकारता तथा अजड़ता रूप अपने हित का अनुसंधान यह दोनों धर्म होना आवश्यक है, इसलिये जड़ होने से केवल देह हित का अनुसन्धान नहीं कर सकता और आत्मा मात्र ही चैतन्य रूप होने से विकारी नहीं हो सकता, ऐसी दशा में जब सुख-दुःख का कारण रूप कर्म ही सिद्ध नहीं होता, तब मनुष्य क्रोध किस पर करे ? ॥५५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कालस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनस्तत्र तदात्मकोऽसौ। नाग्नेर्हि तापो न हिमस्य तत्स्यात् क्रुद्ध्येत कस्मै न परस्य द्वंद्वम् ॥५६॥

यदि काल को सुख-दुःखका कारण माना जाय तो उसमें भी आत्मा को क्या? क्योंकि काल तो आत्मा ही का अंश है, इसलिये जैसे ज्वाला की गर्मी अग्नि को या हिमकण की सर्दी हिम को नहीं लगती, इसी भांति काल के कारण होने वाले सुख दुःख का आत्मा पर क्लेश पड़ना असंभव है, क्यों-अपने ही अंश द्वारा किसी पदार्थ को भय नहीं हो सकता, दूसरे आत्मा असंग है ॥ ५६ ॥

न केनचित्कापि कथंचनास्य द्वंद्वोपरागः परतः परस्य। यथाऽहमः संसृतिरूपिणः स्यादेवं प्रबुद्धो न बिभेति भूतैः ॥५७॥

इन छः सुख-दुःख के कारणों के सिवा कोई दूसरा कारण बतलाये, तो ऐसे भी प्रकृति से परे आत्मा को दुःख-सुख का सम्बन्ध संभव नहीं है, क्योंकि आत्मा को किसीसे, कहीं भी और किसी प्रकार भी सुख-दुःख का संबन्ध संभव नहींहै, इस संसार को देने वाले अहंकारके कारणही यह सुख दुःख आदि प्रतीत होते हैं, वास्तवमें कुछभी नहीं है, जो पुरुष ऐसा ज्ञान रखता है वह किसी से नहीं डरता ॥५७॥

एतां समास्थाय परात्मनिष्ठामध्यासितां पूर्वतमैर्महर्षिभिः। अहंतरिष्यामि दुरंतपारं तमो मुकुंदांघ्रिनिषेवयैव ॥५८॥

इसलिये मैं भी अत्यन्त प्राचीन महर्षियों की धारण की हुई इस ब्रह्म निष्ठा का आश्रय लेकर भगवान् के चरणारविन्दकी सेवा द्वारा इस दुस्तर और अपार संसाररूपी अंधकारसे पार होजाऊँगा॥

श्रीभगवानुवाच

निर्विद्य नष्टद्रविणो गतक्लमः प्रव्रज्य गां पर्यटमान इत्थम्। निराकृतोऽसद्भिरपि स्वधर्मादकंपितोऽमुं मुनिराह गाथाम् ॥५९॥

श्रीभगवान् बोले-इस प्रकार धन नष्ट होने से वैराग्य प्राप्त होनेसे जिसका सारा परिश्रम निवृत्त होचुका था और जो सन्यास लेकर पृथ्वी पर विचर रहा था, वह मुनि नीच मनुष्योंके दुःख देने पर भी अपने धर्मसे विचलित न होकर इस गाथा को गाता ही रहा ॥५९॥

सुखदुःखप्रदो नान्यः पुरुषस्यात्मविभ्रमः। मित्रोदासीनरिपवः संसारस्तमसः कृतः ॥६०॥

मित्र, शत्रु, उदासीन और ये संसार भी अज्ञान के कारण अपने मन की भ्रान्ति ही से उत्पन्न हुआ है, वास्तवमें मनुष्यको सुख-दुःख देनेवाला दूसरा कोई भी नहीं है ॥६०॥

तस्मात् सर्वात्मना तात निगृहाण मनो धिया। मय्यावेशितया युक्त एतावान् योगसंग्रहः ॥६१॥

इसलिये हे उद्धव! मुझमें सब प्रकारसे बुद्धि लगाकर मनका निग्रह करो, योग का मूल रूप यही है ॥ ६१ ॥

य एतां भिक्षुणा गीतां ब्रह्मनिष्ठां समाहितः। धारयञ्छ्रावयन्शृण्वन् द्वंद्वैर्नैवाभिभूयते ॥६२॥

जो पुरुष यह भिक्षुक द्वारा गाई हुई ब्रह्मनिष्ठा को सावधान होकर धारण करे, सुने या सुनाये, वहभी सुख-दुःख आदिसे पराभव नहीं पा सकता ॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

चौबीसवां अध्याय

(सांख्य-सिद्धान्त वर्णन)

श्रीभगवानुवाच

अथ ते संप्रवक्ष्यामि सांख्यं पूर्वैर्विनिश्चितम्। यद्विज्ञाय पुमान् सद्यो जह्याद्वैकल्पिकभ्रमम्॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले-अब मैं पूर्वाचार्यों द्वारा निर्णय किया हुआ सांख्य कहूँगा कि जिसे जानने से पुरुष भेद-बुद्धि के कारण होने वाली सुख-दुःख की भ्रान्तिको तत्काल ही छोड़ देता है ॥१॥

आसीज्ज्ञानमथो ह्यर्थ एकमेवाविकल्पितम्। यदा विवेकनिपुणा आदौ कृतयुगेऽयुगे ॥ २ ॥

महा प्रलय में द्रष्टा और दृश्य में कुछ भेद न होने से वे दोनों एक ही ब्रह्म में लीन थे, फिर प्रथम सतयुग में भी सब प्राणी विवेक में रत्त थे, इसलिये कोई भेद न होने से सब ईश्वर रूप ही जाना जाता है ॥२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तन्मायाफलरूपेण केवलं निर्विकल्पितम् ।
वाङ्मनोऽगोचरं सत्यंद्विधा समभवद्बृहत् ॥ ३ ॥

केवल भेद रहित और सत्य वह व्यापक ब्रह्म ही अपनी माया से वाणी और मनकी प्रवृत्ति के अनुसार द्रष्टा और दृश्य दो प्रकार का होगया॥३॥

तयोरेकतरो ह्यर्थः प्रकृतिः सोभयात्मिका ।
ज्ञानं त्वन्यतमो भावः पुरुषः सोऽभिधीयते ॥ ४ ॥

इनमें से दृश्य तो कारणरूपिणी प्रकृतिहै और और दूसरा द्रष्टा रूप पुरुष है ॥ ४ ॥

तमो रजः सत्त्वमिति प्रकृतेरभवन्गुणाः ।
मया प्रक्षोभ्यमाणायाः पुरुषानुमतेन च ॥ ५ ॥

मुझ पुरुषरूप के देखनेसे क्षोभ पाईहुई प्रकृति के द्वारा सत्, रज और तम-ये तीन गुण प्रकटहुए।

तेभ्यः समभवत्सूत्रं महान्सूत्रेण संयुतः ।
ततो विकुर्वतोजातोऽहंकारो यो विमोहनः ॥ ६ ॥

उन तीनों गुणों से महत्तत्व उत्पन्न हुआ जिस के ज्ञान तथा क्रिया-शक्तिके कारण दो भेद कहे जाते हैं, महत्तत्व जब विकार को प्राप्त हुआ, तब जीवों को भ्रम में डालने वाला अहङ्कार उत्पन्न हुआ ॥६॥

वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिवृत् ।
तन्मात्रेंद्रियमनसां कारणं चिदचिन्मयः ॥ ७ ॥
अर्थस्तन्मात्रिकाज्ज्ञे तामसादिंद्रियाणि च ।
तैजसाद्देवता आसन्नेकादश च वैकृतात् ॥ ८ ॥

अहंकार तीन प्रकारकाहै-(१) वैकारिक (२) तैजस (३) तामस; उनमें से वैकारिक अहंकार से इन्द्रियों के ग्यारह देवता तथा मनकी उत्पत्ति है, तैजस से ग्यारह इन्द्रियाँ हुईं और तामससे शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध-ये पाँच तन्मात्रा प्रकट हुईं, यह अहंकार देवताओं और मन का कारण तथा जड़ (प्रकृति) और चैतन्य (जीव) का ग्रन्थि रूप है, क्योंकि यह चिर प्रकाशमय है और देवताओं तथा मनका स्वभाव प्रकाश है, इसलिये यह दोनों सात्विक अहंकार के कार्य हैं. इन्द्रियों का स्वभाव प्रवृत्ति है, इसलिये वे तैजस अहङ्कार की कार्य रूपिणी हैं और पंच महाभूतों का स्वभाव आवरण है, इसलिये वे तामस अहङ्कार के कार्य रूप हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

मया संचोदिता भावाः सर्वे संहत्यकारिणः ।
अंडमुत्पादयामासुर्ममायतनमुत्तमम् ॥ ९ ॥

फिर मेरी प्रेरणासे इन सब पदार्थोंने मिल कर अपने में शक्ति उत्पन्न होजाने के कारण मुझ अन्तर्यामीका आश्रय रूप ब्रह्मांड उत्पन्न किया ॥ ९ ॥

तस्मिन्नहं समभवमंडे सलिलसंस्थितौ ।
मम नाभ्यामभूत्पद्मं विश्वाख्यं तत्र चात्मभूः॥१०॥

जल में ठहरे हुए उस ब्रह्मांडमें लीला-पूर्वक मैं नारायण रूप देह धारण करके स्थित हुआ, मेरी नाभि से सब लोकों का कारण रूप कमल प्रकट हुआ और कमलों में से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥१०॥

सोऽसृजत्तपसा युक्तो रजसा मदनुग्रहात् ।
लोकान्सपालान्विश्वात्मा भूर्भुवःस्वरिति त्रिधा ११

उन रजोगुणी तथा जगत्के कारणरूप ब्रह्माजी ने मेरे अनुग्रहसे तप करके लोकपालों सहित भूर्लोक और स्वर्लोक की रचना की ॥११॥

देवानामोक आसीत्स्वर्भूतानां च भुवः पदम् ।
मर्त्यादीनां च भूर्लोकः सिद्धानां त्रितयात्परम् १२

इनमें से स्वर्लोक देवताओं का, भुवर्लोक भूतों का और भूर्लोक मनुष्यों के रहने का स्थान हुआ; परन्तु ज्ञानी पुरुषों का स्थान इन तीनों लोकों से परे परब्रह्म है ॥१२॥

अधोऽसुराणां नागानां भूमेरोकोऽसृजत्प्रभुः ।
त्रिलोक्यां गतयः सर्वाः कर्मणां त्रिगुणात्मनाम्१३

ब्रह्माजी ने नाग और असुरोंका निवास-स्थान पृथ्वी के नीचे (पाताल) बनाया है, तीन गुणोंवाले कर्म करनेसे जो २ गतियाँ मिलती हैं, वह त्रिलोक ही में प्राप्त हो जाती हैं ॥ १३ ॥

योगस्य तपसश्चैव न्यासस्य गतयोऽमलाः ।
महर्जनस्तपः सत्यं भक्तियोगस्य मद्गतिः ॥१४॥

योग, तप और सन्याससे महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोकमें यथायोग्य निर्मल गतियां मिला करती हैं और भक्ति-योग वालों को वैकुंठलोक की गति मिलती है ॥१४॥

मया कालात्मना धात्रा कर्मयुक्तमिदं जगत् ।
गुणप्रवाह एतस्मिन्नुन्मज्जति निमज्जति ॥१५॥

मुझ काल-शक्ति धारी तथा कर्म फल-दाता की शक्ति से कर्मों में लगा हुआ यह जगत् गुण रूपी प्रवाह के कारण कभी उत्तम लोकोंको पाताहै और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कभी नीच लोकों को, क्योंकि वैकुंठ के सिवा शेष सभी लोक चञ्चल हैं, इसलिये सभी से वैराग्य रखना चाहिये ॥१५॥

अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो यो यो भावः प्रसिध्यति ।
सर्वोऽप्युभयसंयुक्तः प्रकृत्या पुरुषेण च ॥१६॥

छोटा, बड़ा, दुबला या स्थूल जो भी पदार्थ है वह प्रकृति और पुरुष मय है ॥ १६॥

यस्तु यस्यादिरंतश्च स वै मध्यं च तस्य सन् ।
विकारो व्यवहारार्थो यथा तैजसपार्थिवाः ॥१७॥

जो जिसके आदि और अन्त में है, वह मध्य में भी है, जैसे सोने तथा मिट्टी के पदार्थ. यद्यपि यह पदार्थ व्यवहार रूप में बदलते रहते हैं. परन्तु उनका मूल स्वर्ण या मिट्टी नहीं बदलते, इसलिये वे सत्य कहलाते हैं, इसी प्रकार निर्विकार आत्मा भी सत्य है, जैसे घट-कुण्डल आदि विकार केवल व्यवहार के लिये है, ऐसे ही ही जगत् को जानना चाहिये, फिर जैसे कुण्डल या घट आदि जैसे स्वर्ण या मिट्टी ही रूप हैं, ऐसे ही जगत् भी ब्रह्म स्वरूप है ॥१७॥

यदुपादाय पूर्वस्तु भावो विकुरुतेऽपरम् ।
आदिरंतो यदा यस्य तत्सत्यमभिधीयते ॥१८॥

वे कारणरूप महत्तत्वादि अपने कार्यरूप अहंकार आदि पदार्थों को आत्म-भाव लेकर ही उत्पन्न करते हैं, इसलिये कार्य और कारणका परम कारण रूप ब्रह्म ही सत्य है, क्योंकि जो पदार्थ किसी के आदि अन्त में रहता है, वही सत्य होता है॥१८॥

प्रकृतिर्ह्यस्योपादानमाधारः पुरुषः परः ।
सतोऽभिव्यंजकः कालो ब्रह्म तत्त्रितयं त्वहम् १९॥

इस जगत्की उपादान कारण प्रकृति और उस का अधिष्ठाता पुरुष और गुणों को क्षोभ देकर कर्मों को प्रकट करने वाला काल-यह तीनों मेरे ही स्वरूप हैं, मुझसे भिन्न नहीं, क्योंकि प्रकृति मेरी शक्ति है और पुरुष तथा काल मेरी अवस्थाहैं,इस लिये मैंही अद्वितीय पुरुष हूँ ॥१९॥

सर्गः प्रवर्तते तावत्पौर्वापर्येण नित्यशः ।
महान्गुणविसर्गार्थः स्थित्यंतो यावदीक्षणम् २०॥

जीवोंको भोग देनेके लिये प्रकट हुई ये महान् सृष्टि स्थिति के अन्त (प्रलय) तक पिता और पुत्र रूप से लगातार चलती रहती है और स्थिति जब तक परमात्मा का ईक्षण रहताहै, तबतक रहतीहै॥

विराण्मयाऽऽसाद्यमानो लोककल्पविकल्पकः ।
पंचत्वाय विशेषाय कल्पते भुवनैः सह ॥२१॥

इस अनेकों लोकों के कल्प-विकल्प से भरे हुए विराट् रूप ब्रह्मांड के निकट जब मेरा ही स्वरूप काल पहुँचने लगता है तब लोकों सहित यह ब्रह्मांड बिखरने लगताहै और नष्ट होने लगताहै ॥

अन्ने प्रलीयते मर्त्यमन्नं धानासु लीयते ।
धाना भूमौ प्रलीयंते भूमिर्गंधे प्रलीयते ॥२२॥

शरीर अन्न में लीन होजाता है, अन्न बीज में लीन होजाता है, बीज पृथ्वी में लीन होजाता है और पृथ्वी गंध में लीन होजाती है ॥२२॥

अप्सु प्रलीयते गंध आपश्च स्वगुणे रसे ।
लीयते ज्योतिषि रसो ज्योती रूपे प्रलीयते ॥२३॥

गन्ध जल में लीन होतीहै, जल अपने गुणरूप रस में लीन होता है, रस तेज में लीन होता है और तेज रूप में लीन होजाता है ॥२३॥

रूपं वायौ स च स्पर्शे लीयते सोऽपि चांबरे ।
अंबरं शब्दतन्मात्रे इंद्रियाणि स्वयोनिषु ॥२४॥

रूप वायु में, वायु स्पर्श में, स्पर्श आकाश में, आकाश तन्मात्रा शब्द में और इन्द्रियां अपने प्रवर्त्तक देवताओं में लीन होजाती हैं ॥२४॥

योनिर्वैकारिके सौम्य लीयते मनसीश्वरे ।
शब्दो भूतादिमप्येति भूतादिर्महति प्रभुः ॥२५॥

देवता अपने नियन्ता रूपमें लीन होते हैं और सब जगत् को मोहित करने वाला अहङ्कार महत्तत्व में लीन होजाता है ॥२५॥

स लीयते महान् स्वेषु गुणेषु गुणवत्तमः ।
तेऽव्यक्ते संप्रलीयंते तत्काले लीयतेऽव्यते ॥२६॥

ज्ञान तथा क्रिया-शक्ति वाला महत्तत्व अपने कारण रूप गुणोंमें लय होताहै, गुण माया में लीन होते हैं, अपनी वृत्ति से उपरत हुए कालमें उसके आधीन रहने वाली माया लीन होती है ॥२६॥

कालो मायामये जीवे जीव आत्मनि मय्यजे ।
आत्मा केवल आत्मस्थो विकल्पापायलक्षणः २७॥

काल-माया के प्रवर्त्तक पुरुष में लीन होता है, प्रकृतिके लीन होजाने से पुरुष अपने पूर्व स्वरूप से आत्मा में रहताहै, आत्मा स्वयं केवल रूप होने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के कारण अपने ही स्वरूप में रहता है, किसी में लीन नहीं होता, क्योंकि आत्मा ही सृष्टि और लय का मूल है ॥२७॥

एवमन्वीक्षमाणस्य कथं वैकल्पिको भ्रमः ।
मनसो हृदि तिष्ठेत व्योम्नीवार्कोदये तमः ॥२८॥

जो मनुष्य इस प्रकार विचार करता रहे उस के मन में किसी प्रकार भी भेद सम्बन्धी भ्रम नहीं होता, जैसे सूर्य निकलने पर आकाश में अंधकार नहीं रहता ॥२८॥

एष सांख्यविधिः प्रोक्तः संशयग्रंथिभेदनः ।
प्रतिलोमानुलोमाभ्यां परावरदृशा मया ॥२९॥

मैं भूत भविष्य को जानने वाला हूँ, मैंने यह सन्देह रूपी ग्रन्थि को काटने वाला सांख्य विधि का वर्णन किया है और उत्पत्ति तथा प्रलय का नियम बतलाया है ॥२९॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

पच्चीसवां अध्याय

(गुणों का वर्णन)

श्रीभगवानुवाच

गुणानामसमिश्राणां पुमान्येन यथा भवेत् ।
तन्मे पुरुषवर्येदमुपधारय शंसतः ॥ १ ॥

श्रीभगवान बोले–हे पुरुष श्रेष्ठ उद्धव ! अब मैं उन गुणों के विषय में कहता हूँ कि जिनके कारण उनके अनुसार ही मनुष्य भी जुदे-जुदे स्वभाववाले होते हैं, क्योंकि गुण भी न्यारे-न्यारे हैं ॥ १ ॥

शमोदमस्तितिक्षेक्षा तपः सत्यं दया स्मृतिः ।
तुष्टिस्त्यागोऽस्पृहा श्रद्धा ह्रीर्दयादिः स्वनिर्वृतिः २

शम, दम, सहनशीलता, विवेक, स्वधर्म, निष्ठा, सत्य, दया, पक्की और पिछली स्मरण, सन्तोष, त्याग, वैराग्य, आस्तिकता, अनुचित कर्मों से लज्जा, दान, सरलता, विनय आदि और आत्म-प्रेम यह सतोगुण की वृत्तियाँ हैं ॥२॥

काम ईहा मदस्तृष्णास्तंभ आशीर्भिदा सुखं ।
मदोत्साहो यशः प्रीतिर्हास्यं वीर्यं बलोद्यमः॥ ३ ॥

स्वर्ग आदि की अभिलाषा, यज्ञ आदि उद्यम, मद, लोभ होने पर भी असन्तोष, गर्व, सुख के लिये देवताओं से प्रार्थना, भेद बुद्धि, विषय-भोग, युद्ध आदि का उत्साह, अपनी कीर्त्ति से प्रीति, उपहास, पराक्रम का प्रसिद्ध करना और बल के द्वारा उद्योग करना–ये रजोगुणकी वृत्तियाँ हैं ॥३॥

क्रोधो लोभोऽनृतं हिंसायाच्ञा दंभः क्लमः कलिः।
शोकमोहौ विषादार्ती निद्राऽऽशा भीरनुद्यमः ॥४॥

क्रोध, लोभ, झूठ, हिंसा, याचना, दंभ, भ्रम, कलह, शोक, मोह, दुःख, दीनता, आलस्य, दीर्घ आशा, भय और जड़ता–ये तमोगुणकी वृत्तियाँहैं॥

सत्त्वस्य रजसश्चैतास्तमसश्चानु पूर्वशः ।
वृत्तयो वर्णितप्रायाः सन्निपातमथो शृणु ॥ ५ ॥

यह सत्, रज और तमोगुण की अलग-अलग वृत्तियाँ वर्णनकी गई हैं, यदि इसी प्रकारकी और भी हों तो उन्हें भी इसी अनुसार जानना चाहिये, अब उनके मेल से बनने वाली वृत्तियों के विषयमें कहता हूँ, सुनो ॥५॥

सन्निपातस्त्वहमिति ममेत्युद्धव या मतिः ।
व्यवहारः सन्निपातो मनोमात्रेंद्रियासुभिः ॥ ६ ॥

हे उद्धव ! 'मैं और मेरा' ऐसी जो बुद्धि होती है, वह तीनों गुणों का सन्निपात (मेल) है, मन शब्द आदि विषय, इन्द्रियों और प्राणोंसे जो कुछ भी व्यवहार होता है वह तीनों गुणों का मेल ही समझना चाहिये ॥६॥

धर्मे चार्थे च कामे च यदाऽऽसौ परिनिष्ठितः ।
गुणानां सन्निकर्षोऽयं श्रद्धारतिधनावहः ॥७॥

जब पुरुष धर्म, अर्थ और काम में आसक्त हो रहा हो तब उसके व्यवहार को तीनों गुणोंके मेल ही से उत्पन्न हुआ जानना चाहिये, कि जिस से श्रद्धा, रति और धनकी प्राप्ति होती है ॥७॥

प्रवृत्तिलक्षणे निष्ठा पुमान् यर्हि गृहाश्रमे ।
स्वधर्मे चानुतिष्ठेत गुणानां समितिर्हि सा ॥ ८ ॥

सकाम धर्म में निष्ठा रक्खे, गृहस्थाश्रम में ही आसक्त होकर रहनेलगे और अपने नित्य-नैमित्तिक कर्मों में भी निष्ठा रक्खे, तो इस व्यवहार को भी गुणों का मेल जानना चाहिये ॥८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुरुषं सत्त्वसंयुक्तमनुमीयाच्छमादिभिः ।
कामादिभी रजोयुक्तं क्रोधाद्यैस्तमसा युतम्॥ ९ ॥

शम आदि वृत्तियों से पुरुष को सतोगुणी, कामादि से रजोगुणी और क्रोध आदि से तमोगुणी जानना चाहिये ॥९॥

यदा भजति मां भक्त्यानिरपेक्षः स्वकर्मभिः ।
तं सत्त्वप्रकृतिं विद्यात्पुरुषं स्त्रियमेव च ॥१०॥

जो पुरुष या स्त्री निष्काम कर्म करताहुआ प्रेम और भक्ति के साथ मेरा ही भजन करे, उसे सतोगुणी स्वभाव वाला समझना चाहिये ॥१०॥

यदा आशिष आशास्य मां भजेत स्वकर्मभिः ।
तं रजःप्रकृतिं विद्याद्धिंसामाशास्य तामसम्॥११॥

जो सुख की इच्छा से कर्म करता हुआ मेरा भजन करे, उसे रजोगुणी स्वभाव वाला जानना चाहिये और जो हिंसाके विचारसे मेरा भजन करे उसे तमोगुणी स्वभाव वाला जानना चाहिये ॥११॥

सत्त्वं रजस्तम इति गुणा जीवस्य नैव मे ।
चित्तजा यैस्तु भूतानां सज्जमानो निबध्यते ॥१२॥

सत्, रज और तम-यह तीन गुण जीव ही के हैं मेरे नहीं, जो चित्त के विकार से उत्पन्न होते हैं और जिनके कारण प्राणी आसक्त होकर बन्धन में पड़ जाता है; मैं आसक्त, नियन्ता और द्रष्टा होने से अबद्ध हूँ, इसीलिये अपने भजन को बार-बार कहता हूँ ॥ १२ ॥

यदेतरौ जयेत् सत्त्वं भास्वरं विशदं शिवम् ।
तदा सुखेन युज्येत धर्मज्ञानादिभिः पुमान् ॥१३॥

जब प्रकाशक, निर्मल और शान्त सतोगुण शेष दो गुणों को दबाकर बढ़ जाता है, तब पुरुष सुख; धर्म, ज्ञान और शम-दम आदि से युक्त होजाताहै।

यदा जयेत्तमः सत्त्वं रजः संगं भिदा चलम् ।
तदा दुःखेन युज्येत कर्मणा यशसा श्रिया ॥१४॥

जब भेद और संग का कारणरूप तथा प्रवृत्ति स्वभाव वाला रजोगुण दूसरे दो गुणोंको दबाकर बढ़ जाताहै, तब पुरुष दुःख, कर्म, यश और लक्ष्मी से युक्त होजाता है ॥१४॥

यदा जयेद्रजः सत्त्वं तमो मूढं लयं जडम् ।
युज्येत शोकमोहाभ्यां निद्रया हिंसयाऽऽशया॥१५

जब ज्ञान से भ्रष्ट करने वाला आवरण और निरुद्यम रूप तमोगुण दूसरे दो गुणों को दबा कर बढ़ जाताहै, तब पुरुष शोक,मोह, निद्रा,हिंसा और आशा से युक्त होजाता है ॥१५॥

यदा चित्तं प्रसीदेत इंद्रियाणां च निर्वृतिः ।
देहेऽभयं मनोऽसंगं तत्सत्त्वं विद्धि मत्पदम्॥१६॥

जब चित्त स्वच्छहो, इन्द्रियाँ शान्त हों, शरीर में निर्भयताहो और मन असंग हो, तब मेरी प्राप्ति के आश्रयरूपसतोगुणको बढ़ाहुआ जाननाचाहिये॥

विकुर्वन् क्रियया चाऽऽधीरनिर्वृत्तिश्च चेतसाम् ।
गात्रास्वास्थ्यं मनो भ्रांतं रज एतैर्निशामय॥१७॥

जब मनुष्य क्रिया द्वारा विकारको प्राप्त होकर विक्षेप में पड़ जाय, इन्द्रियों को शान्ति न मिले, कर्मेन्द्रियों में विकार बढ़ जाय और मन भटकता रहे, तब रजोगुणकी वृद्धि जाननी चाहिये ॥१७॥

सीदच्चित्तं विलीयेत चेतसो ग्रहणेऽक्षमम् ।
मनो नष्टं तमो ग्लानिस्तमस्तदुपधारय ॥१८॥

जब अस्त होताहुआ चित्त चैतन्य आभासको ग्रहण करने में असमर्थ होकर लीन हो रहे और सङ्कल्प रूप मन की भी यही दशा हो तथा अज्ञान और खेद उत्पन्न हों, तब तमोगुणकी वृद्धि जाननी चाहिये ॥ १८ ॥

एधमाने गुणे सत्वे देवानां बलमेधते ।
असुराणां च रजसि तमस्युद्धव रक्षसाम् ॥१९॥

हे उद्धव ! जब सतोगुण बढ़ता है तब देवताका बल बढ़ता है, जब रजोगुण की वृद्धि होती है तब असुरों का बल बढ़ताहै और जब तमोगुणकी वृद्धि होती है तब राक्षसोंका बल बढ़ता है ॥१९॥

सत्त्वाज्जागरणं विद्याद्रजसा स्वप्नमादिशेत् ।
प्रस्वापं तमसा जंतोस्तुरीयं त्रिषु संततम् ॥२०॥

सतोगुण से जाग्रत, रजोगुण से स्वप्न और तमोगुण से सुषुप्ति अवस्था हुआ करती हैं, इन तीनों अवस्थाओं में जो मिला रहता है वह केवल आत्मा है ॥२०॥

उपर्युपरिगच्छंति सत्त्वेन ब्राह्मणा जनाः ।
तमसाऽधोऽध आमुख्याद्रजसांऽतरचारिणः ॥२१॥

मनुष्य सतोगुण द्वारा ब्रह्मलोक तक ऊँचे २ (श्रेष्ठ) लोकों को पाताहै, तमोगुण से जड़ योनियों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तक नीची २ गतियाँ पाताहै और रजोगुणसे फिर भी मनुष्य-देह को प्राप्त होता है ॥२१॥

सत्त्वे प्रलीनाः स्वर्यांति नरलोकं रजोलयाः ।
तमोलयास्तु निरयं यांति मामेव निर्गुणाः ॥२२॥

सतोगुण की वृद्धि के समय मरे हुए मनुष्य स्वर्ग में, रजोगुण की वृद्धिके समय मरेहुए मनुष्य लोक में और तमोगुण के समय में मरे हुए लोग नरक में जाते हैं और निर्गुण पुरुष तो जीते हुए ही मुझे प्राप्त होजाते हैं ॥२२॥

मदर्पणं निष्फलं वा सात्त्विकं निजकर्म तत् ।
राजसं फलसंकल्पं हिंसाप्रायादि तामसम् । २३॥

मेरी प्रीति प्राप्त करनेके लिये या केवल दास्य भाव से ही जो अपना वर्णाश्रम सम्बन्धी उचित कर्म किया जाय, वह सात्विक कर्म कहलाता है, फल की इच्छा रखकर जो कर्म किया जाय, वह रजोगुणी कहलाता है और जो अत्यन्त हिंसामय कर्म दम्भ तथा मत्सर पूर्वक किया जाय वह तमोगुणी कहलाता है ॥२३॥

कैवल्यं सात्विकं ज्ञानं रजो वैकल्पिकं च यत् ।
प्राकृतं तामसं ज्ञानं मन्निष्ठं निर्गुणं स्मृतम् ॥२४॥

आत्मा को देहादि से भिन्न जानना-सात्विकी, भिन्न न जानना राजसी और बालक या मूक की भांति प्राकृत ज्ञान रखना तामसी ज्ञान है और मेरे स्वरूप का जानना निर्गुण ज्ञान है, इस प्रकार ज्ञान भी चार प्रकार का है॥२४॥

वने तु सात्विको वासो ग्रामे राजस उच्यते ।
तामसं द्यूत सदनं मन्निकेतं तु निर्गुणम् ॥२५॥

बन में रहना सात्विकी, घर में रहना राजसी और जुए आदि की जगहमें रहना तामसी निवास कहलाता है और मेरे मन्दिर में रहना निर्गुण निवास है ॥२५॥

सात्त्विकः कारकोऽसंगी रागांधो राजसः स्मृतः ।
तामसः स्मृतिविभ्रष्टो निर्गुणो मदपाश्रयः ॥२६॥

आसक्ति रहित होकर कर्म करनेवाला सात्विकी अत्यन्त आसक्ति पूर्वक कर्म करने वाला रजोगुणी और अगली-पिछली स्मृति भूलकर कर्म करनेवाला तामसीकर्त्ता कहलाताहै, जो केवल मेराही आश्रय लेकर अहङ्कार छोड़कर कर्म करता है, वह निर्गुण कर्त्ता कहलाता है ॥२६॥

सात्त्विक्याध्यात्मिकी श्रद्धा कर्म श्रद्धा तु राजसी ।
तामस्यधर्मे या श्रद्धा मत्सेवायां तु निर्गुणा ॥२७॥

परमेश्वर सम्बन्धी शास्त्रों में श्रद्धा रखना सात्विकी, कर्मोंमें श्रद्धा रखना राजसी और अधर्म को धर्म रूप जानना तामसी श्रद्धा है और केवल मेरी सेवा संबन्धी श्रद्धा निर्गुण है ॥ २७॥

पथ्यं पूतमनायस्तमाहार्यं सात्त्विकं स्मृतम् ।
राजसं चेंद्रियप्रेष्ठं तामसं चार्तिदाऽशुचि ॥२८॥

पथ्य, पवित्र और अनायास से मिला हुआ आहार सात्विकी, इन्द्रियों को मीठा लगने वाला भोजन राजसी और दीनता प्रदान करने वाला अशुद्ध भोजन तामसी कहलाताहै तथा मुझे अर्पण किया हुआ प्रसाद रूप भोजन निर्गुण है ॥२८॥

सात्त्विकं सुखमात्मोत्थं विषयोत्थं तु राजसम् ।
तामसं मोहदैन्योत्थं निर्गुणं मदपाश्रयम् ॥२९॥

आत्मा को देहादि से भिन्न जानने से मिलने वाला सुख सात्विकी, विषयों से प्राप्त होने वाला सुख राजसी और मोह-दीनतासे प्राप्त सुख तामसी कहलाता है और शुद्ध ब्रह्म ज्ञान से मिलने वाला सुख निर्गुण है ॥ २९॥

द्रव्यं देशः फलं कालो ज्ञानं कर्म च कारकः ।
श्रद्धावस्था कृतिर्निष्ठा त्रैगुण्यः सर्व एव हि ॥३०॥

इस प्रकार आहार आदि पदार्थ, बन आदि स्थान, सुख रूप फूल, दूसरे दो गुणों को दबानेका समय आदि काल, ज्ञान, कर्म, कर्त्ता, श्रद्धा, जाग्रत आदि अवस्था, देव आदि योनि और स्वर्ग आदि की प्राप्ति रूप निष्ठा-ये सभी वस्तुयें त्रिगुणात्मकहैं ॥

सर्वे गुणमया भावाः पुरुषाव्यक्तधिष्ठिताः ।
दृष्टं श्रुतमनुध्यातं बुद्ध्या वा पुरुषर्षभ ॥३१॥

हे पुरुषों में श्रेष्ठ ! यह वर्णन किये हुए पदार्थ ही नहीं, वरन् प्रकृति और पुरुष मय जितने भी पदार्थ देखने, सुनने या समझनेमें आते हैं वे सभी त्रिगुण मय हैं ॥ ३१ ॥

एताः संसृतयः पुंसो गुणकर्मनिबंधनाः ।
येनेमे निर्जिताः सौम्य गुणा जीवेन चित्तजाः ३२॥

हे उद्धव ! जीव के सब जन्म, गुण और कर्म केवल अहङ्कार रूप कारण से ही हुआ करते हैं, जो जीव चित्तसे होने वाले इन गुणों को जीत ले वह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अखंड भक्ति-योग द्वारा मेरी निष्ठा प्राप्त करके मोक्ष के योग्य होजाता है ॥३२॥

भक्तियोगेन मन्निष्ठो मद्भावाय प्रपद्यते ।
तस्माद्देहमिमं लब्ध्वा ज्ञानविज्ञानसंभवम् ॥३३॥

इसलिये यह ज्ञान-विज्ञान होने योग्य नर-देह यदि मिलजाय तो गुणोंकी आसक्ति छोड़कर विद्वान पुरुषोंको मेरा भजन करना चाहिये ॥३३॥

गुणसंगं विनिर्धूय मां भजंतु विचक्षणाः ।
निःसंगो मां भजेद्विद्वानप्रमत्तो जितेंद्रियः ।
रजस्तमश्चाभिजयेत्सत्त्व संसेवया मुनिः ॥३४॥
सत्त्वं चाभिजयेद्युक्तो नैरपेक्ष्येण शांतधीः ।
संपद्यते गुणैर्मुक्तो जीवो जीवं विहायमाम् ॥३५॥
जीवो जीवविनिर्मुक्तो गुणैश्चाशयसंभवैः ।
मयैव ब्रह्मणा पूर्णो न बहिर्नांतरश्चरेत् ॥३६॥

विद्वान् पुरुष को जितेन्द्रिय होकर, आसक्ति छोड़कर, सावधानी के साथ मेरा भजन करना चाहिये और शान्त बुद्धि वाले मुनि को सतोगुण का सेवन करते हुए रजोगुण तथा तमोगुण को जीतना चाहिये, फिर निरपेक्ष होकर मुझमें चित्त लगाकर सतोगुण को भी जीत ले-इस प्रकार जब सब गुणों से छूट जाता है तब अपने वासना रूप देह को त्याग कर मुझे प्राप्त होता है, लिंग-शरीर और चित्तसे होने वाले गुणों से मुक्त तथा मुझ परब्रह्म से परिपूर्ण जीव विषयों का भोग तो क्या स्मरण भी नहीं करता और इसी लिये उसे जन्म-मरण रूप संसार प्राप्त नहीं होता ॥३४॥३५॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

छब्बीसवां अध्याय

(राजा पुरूरवा का इतिहास)

श्रीभगवानुवाच

मल्लक्षणमिमं कायं लब्ध्वा मद्धर्म आस्थितः ।
आनंदं परमात्मानमात्मस्थं समुपैति माम् ॥ १ ॥

जिस नर-तन के द्वारा मेरा स्वरूप जाना जा सकता है उसे पाकर यदि मेरी भक्ति रूप धर्म में दृढ़ रहा जाय तो पुरुष शरीर में नियन्ता रूप से स्थित मुझ परमानन्द रूप आत्मा को प्राप्त हो सकता है ॥१॥

गुणमय्या जीवयोन्या विमुक्तो ज्ञाननिष्ठया ।
गुणेषु मायामात्रेषु दृश्यमानेष्ववस्तुतः ।
वर्तमानोऽपि न पुमान्युज्यते वस्तुभिर्गुणैः ॥ २ ॥

ज्ञान निष्ठा के प्रभाव से गुणमय लिंग शरीरसे मुक्ति पाया हुआ पुरुष माया मात्र ही से सत्य प्रतीत होने वाले परन्तु वास्तव में असत्य गुणों के संग में नहीं पड़ता ॥२॥

संगं न कुर्यादसतां शिश्नोदरतृपां क्वचित् ।
तस्यानुगस्तमस्यंधे पतत्यंधानुगोऽधवत् ॥ ३ ॥
ऐलः सम्राडिमां गाथामगायत बृहच्छ्रवाः ।
उर्वशीविरहान्मुह्यन्निर्विण्णः शोकसंयमे ॥ ४ ॥

इला का पुत्र पुरूरवा चक्रवर्त्ती और परम प्रसिद्ध कीर्त्ति वाला था, पहले वह उर्वशीके विरह से मोहित होकर उसी दशामें भटकता हुआ कुरु-क्षेत्र जा पहुंचा, वहाँ उसे वह अप्सरा मिली और उसने कहा कि तू गन्धर्वों की उपासना करने से सफल मनोरथ होसकेगा. राजा ने वैसाही किया, तब गन्धर्वों ने उसे अग्नि दी कि जिसके द्वारा उसे गन्धर्वलोक प्राप्त होगया, वहाँ पहुंचने पर उसका शोक दूर होगया, तब उसने विरक्त होकर यह गाथा गायी ॥ ३॥४ ॥

त्यक्त्वात्मानं व्रजंतीं तां नग्न उन्मत्तवन्नृपः ।
विलपन्नन्वगाज्जाये घोरे तिष्ठेति विक्लवः ॥ ५ ॥

जबतक उसे वैराग्य प्राप्त न हुआ था तब तक उसकी यह दशा थी कि जब उसे छोड़कर उर्वशी जाने लगी तब वह मोह से विह्वल होकर 'हे स्त्री! हे घोरे! ठहरो-ठहरो' इस प्रकार विलाप करता हुआ उन्मत्त की भाँति नंगा ही उसके पीछे-पीछे दौड़ पड़ा ॥ ५ ॥

कामानतृप्तोऽनुजुषन्क्षुल्लकान्वर्षयामिनीः ।
न वेद यांतीर्नायांतीरुर्वश्याऽऽकृष्टचेतनः ॥ ६ ॥

पहले जब उर्वशी उसके पासथी तब वह राजा विषय-भोग करता हुआ भी तृप्त न होता था और केवल उर्वशीमें मन खिंच जानेसे उसे यह भी नहीं जान पड़ता था कि वर्ष की कितनी रातें बीतचुकी हैं और कितनी शेष हैं ॥६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऐल उवाच

अहो मे मोहविस्तारः कामकश्मलचेतसः ।
देव्या गृहीतकंठस्य नायुः खंडा इमे स्मृताः॥ ७ ॥

फिर जब उर्वशीके लोकको पाकर उसके संग भोग करने पर उसे वैराग्य हुआ तब उस राजा पुरूरवा ने कहा कि हाय ! देखो तो कि मुझे मोह बढ़ाकर उर्वशी ने मेरे कण्ठ से आलिंगन किया, जिससे मेरा चित्त कामदेव के वशीभूत होकर इतना मलिन होगया कि मुझे रात दिन बीतने का भी ध्यान न रहा ॥७॥

नाहं वेदाभिनिर्मुक्तः सूर्यो वाऽभ्युदितोऽमुया ।
मुषितो वर्षपूगानां बताहानि गतान्युत ॥ ८ ॥

मैं उर्वशी द्वारा छला हुआ सूर्यके उदय-अस्त तथा अनेक वर्षों के बीते हुए दिन रात को भी नहीं जानता ॥८॥

अहो मे आत्मसंमोहो येनात्मा योषितां कृतः ।
क्रीडामृगश्चक्रवर्त्ती नरदेवशिखामणिः ॥ ९ ॥

हाय ! मेरे मनका मोह (कितना) प्रबल है कि जिस ने चक्रवर्त्ती और राजाओं के मुकुट-मणिरूप अपने शरीर को स्त्रियों के पास क्रीड़ा मृग के समान बना डाला ॥९॥

सपरिच्छदमात्मानं हित्वा तृणमिवेश्वरम् ।
यांतीं स्त्रियं चान्वगमं नग्न उन्मत्तवद्रुदन् ॥१०॥

फिर जब वह राज्य सहित मुझ चक्रवर्त्ती के शरीर को तृण की नाईं छोड़कर जाने लगी,तब मैं उस स्त्री के पीछे नग्न दशा में उन्मत्त की भाँति रोता हुआ दौड़ा ॥१०॥

कुतस्तत्स्वानुभावः स्यात्तेज ईशत्वमेव वा ।
योऽन्वगच्छन् स्त्रियं यांतीं खरवत्पादताडितः॥११॥

मैं गधे की तरह मुंहपर लातें खाता हुआ छोड़ कर जाती हुई स्त्री के पीछे गया, फिर भला मुझ ऐसे पुरुष में प्रभाव, बल और सामर्थ्य कैसे रह सकते हैं ? ॥११॥

किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन श्रुतेन वा ।
किं विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम्॥१२॥

जिसका मन स्त्रियोंने हर लियाहो उसे विद्या, तप, सन्यास, एकान्त वास और मौनता से क्या लाभ हो सकता है ? ॥१२॥

स्वार्थस्याकोविदं धिङ् मां मूर्खं पंडितमानिनम् ।
योहमीश्वरतां प्राप्य स्त्रीभिर्गोखरवज्जितः ॥१३॥

मुझ स्वार्थ को न जाननेवाले और मूर्ख होकर भी पंडितपन के अभिमानी को धिक्कार है कि जो चक्रवर्त्ती होकर भी बैल और गधेकी भाँति स्त्रियों के वशीभूत होगया ॥१३॥

सेवतो वर्षपूगान् मे उर्वश्या अधरासवम् ।
न तृप्यत्यात्मभूः कामो वह्नि राहुतिभिर्यथा॥१४॥

मैंने कई वर्ष तक उर्वशी का अधरामृत पान किया, फिर भी जैसे आहुतियों से अग्नि शान्त नहीं होता, वैसे ही मेरे मनमें प्रकट हुआ कामदेव तृप्त न हो सका ॥१४॥

पुंश्चल्याऽपहृतं चित्तं को न्वन्यो मोचितुं प्रभुः ।
आत्मारामेश्वरमृते भगवंतमधोक्षजम् ॥१५॥

जिनका चित्त वेश्याओं ने हर लिया है, उनको एक आत्माराम अधोक्षज भगवान् के सिवा और कौन छुड़ा सकता है ? ॥१५॥

बोधितस्यापि देव्या मे सूक्तवाक्येन दुर्मतेः ।
मनोगतो महामोहो नापयात्यजितात्मनः ॥१६॥

यद्यपि मुझ दुर्बुद्धि और अजितेंद्रियको उर्वशी ने यथार्थ वचनों से उपदेश भी दिया, फिर भी मेरे मन का मोह किसी भी तरह निवृत्त न हुआ॥१६॥

किमेतया नोऽपकृतंरज्ज्वा वा सर्पचेतसः ।
रज्जुस्वरूपाविदुषो योऽहं यदजितेंद्रियः ॥१७॥

मैं अपने अजितेन्द्रिय पन ही से दुःखी हुआ हूँ तो इसमें उर्वशी का क्या दोष ? यह तो मेरा ही अपराध है, यदि कोई रस्सी को सर्प मान ले तो उसमें उसके स्वरूपको न जाननेका ही अपराधहै॥

क्वायं मलीमसः कायो दौर्गंध्याद्यात्म कोऽशुचिः ।
क्व गुणाः सौमनस्याद्या ह्यध्यासोऽविद्यया कृतः१८

अहो ! कहाँ तो यह अत्यन्त मलिन दुर्गन्ध आदि से भरा हुआ स्त्री का शरीर और कहाँ फूल की सुगन्ध की भांति आत्मा के गुण ? ऐसे घृणास्पद शरीर पर ममता केवल अज्ञान के कारण ही हुई है ॥ १८ ॥

पित्रोः किं स्वं नु भार्यायाः स्वामिनोऽग्नेः श्वगृध्रयोः । किमात्मनः किं सुहृदामिति यो नावसीयते ॥१९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फिर इस देह को किसका कहा जाय ? माता, पिता, स्त्री, स्वामी, अग्नि, कुत्ते-कौवे, आत्मा और मित्र-सभी तो इसके स्वामी या संबन्धी कहे जा सकते हैं, वास्तव में यह किसका है ? सो निश्चय नहीं होता ॥१६॥

तस्मिन् कलेवरेऽमेध्ये तुच्छनिष्ठे विषज्जते ।
अहो सुभद्रं सुनसं सुस्मितं च मुखं स्त्रियाः ॥२०॥

ऐसे अपवित्र और अन्त में कीड़ा. निष्ठा या भस्म रूप होने वाले देह में भी मनुष्य इस प्रकार कल्पना करके आसक्त होजाता है कि अहो ! स्त्री का मुख अत्यन्त सुन्दर, श्रेष्ठ नासिका और परम मनोहर मन्द मुसकान वाला है ॥२०॥

त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंहतौ ।
विण्मूत्रपूये रमतां कृमीणां कियदंतरम् ॥२१॥

जो लोग त्वचा,माँस,रुधिर, नसों, मेद, मज्जा और हड्डियों के समूह रूप देह में रमण करते हैं, उनमें और विष्ठा,मूत्र तथा पूय में रमण करनेवाले कीड़ों में क्या अन्तर है ? ॥२१॥

अथापि नोपसज्जेत स्त्रीषु स्त्रैणेषु चार्थवित् ।
विषयेंद्रियसंयोगान्मनः क्षुभ्यति नान्यथा ॥२२॥

विवेकी पुरुष को जिस प्रकार स्त्री-संग करना अनुचित है, वैसे ही उसे स्त्रियों तथा स्त्री-लंपट पुरुषों का संग-दर्शन भी न करना चाहिये, क्योंकि विषय और इन्द्रियों का साथ होने पर ही मन क्षोभित हुआ करता है. असंग दशा में नहीं ॥२२॥

अदृष्टादश्रुताद्भावान्न भाव उपजायते ।
असंप्रयुंजतः प्राणान् शाम्यति स्तिमितं मनः॥२३

बिना देखे अथवा सुनेहुए पदार्थोंकी ओर मन कभी नहीं जाता, इसलिये जो इन्द्रियों को प्रारंभ ही में विषयों से रोक लेता है, उसका मन निश्चल होकर शान्त होजाता है ॥२३॥

तस्मात्संगो न कर्तव्यः स्त्रीषु स्त्रैणेषु चेंद्रियैः ।
विदुषां चाप्यविश्रब्धः षड्वर्गः किमु मादृशाम् २४

इसलिये इन्द्रियों द्वारा स्त्रियों तथा स्त्री-लंपट पुरुषों का सङ्ग कदापि न करना चाहिये, क्योंकि जब विद्वान् पुरुष भी इन्द्रियों का विश्वास नहीं करते, तब मुझ ऐसे अविवेकी पुरुषों की तो बात ही क्या है ? ॥२४॥

श्रीभगवानुवाच

एवं प्रगायन्नरदेवदेवः स उर्वशीलोकमथो विहाय । आत्मानमात्मन्यवगम्य मां वै उपारमज्ज्ञानविधूतमोहः ॥२५॥

श्रीभगवान् बोले–इस तरह गायन करता हुआ वह सम्राट् पुरूरवा उर्वशी के लोक को त्याग कर मुझ परमात्मा को अपने ही में जानता हुआ, ज्ञान के द्वारा मोह से निवृत्त होने के कारण शान्ति को प्राप्त हो गया ॥२५॥

ततो दुःसंगमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान् ।
संत एतस्य छिंदंति मनोव्यासंगमुक्तिभिः ॥२६॥

इसलिये बुद्धिमान्को नीच जनोंका सङ्ग छोड़ कर सत्सङ्ग करना चाहिये, क्योंकि वे अपने बचनों द्वारा इसके मनकी गाँठ काट देते हैं ॥२६॥

संतोऽनपेक्षा मच्चिताः प्रशांताः समदर्शिनः ।
निर्ममा निरहंकारा निर्द्वंद्वा निष्परिग्रहाः ॥२७॥

क्योंकि वे अपेक्षा रहित, मुझमें तन्मय. समदर्शी, प्रशान्त, ममता रहित, निरहङ्कार, निर्द्वन्द्व और संग्रह-हीन होते हैं ॥२७॥

तेषु नित्यं महाभाग महाभागेषु मत्कथाः ।
संभवंति हिता नृणां जुषतां प्रपुनंत्यघम् ॥२८॥

हे महाभाग ! जो मेरी कथाओं को निरन्तर सुना करते हैं, वे बड़े ही भाग्यशाली हैं क्योंकि वे कथायें मनुष्यके मनके सब पाप दूर करदेती हैं२८॥

ता ये शृण्वंति गायंति ह्यनुमोदंति चादृताः ।
मत्पराः श्रद्दधानाश्च भक्तिं विंदंति ते मयि॥२९॥

मुझ में परायण रहकर जो लोग श्रद्धा पूर्वक इन कथाओं को सुनें, गायें या इनकी प्रशंशा करें वे मेरी भक्ति पा जाते हैं ॥२९॥

भक्तिं लब्धवतः साधोः किमन्यदवशिष्यते ।
मय्यनंतगुणे ब्रह्मण्यानंदानुभवात्मनि ॥३०॥

जिस पुरुष को मुझ अनन्त गुण और आनंद मय अनुभव रूप परब्रह्म की भक्ति मिल जाय, उस साधु को फिर क्या शेष रह जाता है ॥३०॥

यथोपश्रयमाणस्य भगवंतं विभावसुम् ।
शीतं भयं तमोऽप्येति साधून् संसेवतस्तथा॥३१॥

जैसे अग्निदेव के सेवन करने से मनुष्य के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शीत, भय और अन्धकार नष्ट होजाते हैं, ऐसे ही साधुओं की सेवा से कर्म सम्बन्धी जड़ता, जन्म-मरण का भय और अज्ञान रूपी अन्धकार दूर हो जाते हैं ॥ ३१ ॥

निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायणम् ।
संतो ब्रह्मविदः नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम् ॥३२॥

जैसे जलमें डूबते हुए को नाव परमगति होती है, वैसे ही घोर संसार सागर में डूबते-उछलते मनुष्य के लिये ब्रह्म ज्ञानी शान्त साधु ही परम गति रूप हैं ॥ ३२ ॥

अन्नं हि प्राणिनां प्राण आर्तानां शरणं त्वहम् ।
धर्मो वित्तं नृणां प्रेत्यसंतोऽर्वाग् बिभ्यतोऽरणम् ३३

जैसे प्राणियों के लिये अन्न ही जीवन रूप है, वैसे ही आर्त्त पुरुषों के लिये मैं शरणरूप हूँ, जैसे मरने पर मनुष्य के लिये धर्म रूपी धन ही शरणहै वैसे ही संसार से भयभीत पुरुषों को शरण देने वाले साधु हैं ॥ ३३ ॥

संतो दिशंति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः ।
देवता बांधवाः संतः संत आत्माऽहमेव च ॥३४॥

सूर्य भले प्रकार उदय होने पर केवल बाहरी प्रकाश दे सकता है, पर साधु सगुण और निर्गुण ज्ञानरूपी अनेक अन्तर चक्षु देतेहैं, इसलिये देवता और बान्धव रूप साधु है और आत्मा तथा मद्रूप भी है ॥ ३४ ॥

वैतसेनस्ततोऽप्येवमुर्वश्या लोकनिस्पृहः ।
मुक्तसंगो महीमेतामात्मारामाश्चचार ह ॥३५॥

जब ऐसे ज्ञानसे राजा पुरूरवा की उर्वशी के दर्शनकी भी इच्छा छूटगई तब वह स्वयं असङ्ग और आत्माराम होकर पृथ्वी पर विचरने लगा ॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६॥

सत्ताईसवां अध्याय

(पूजा-विधि)

उद्धव उवाच

क्रियायोगं समाचक्ष्व भवदाराधनं प्रभो ।
यस्मात्त्वां ये यथार्चंति सात्वताः सात्वतर्षभ ॥१॥

उद्धवजी बोले-हे यादवोत्तमप्रभु! आप अपना आराधन रूप क्रिया-योग को मुझसे कहिये कि जिस कारण से और जिस प्रकारसे आपके अधिकारी भक्तजन आपको प्रसन्न करने के लिये उसे करते हैं ॥ १ ॥

एतद्वदंति मुनयो मुहुर्निःश्रेयसं नृणाम् ।
नारदो भगवान् व्यास आचार्यौऽगिरसः सुतः॥२॥

नारद, भगवान् वेद व्यास और वृहस्पति आचार्य-ये सब मुनि बार-बार यह कहते हैं कि आप का पूजन ही मनुष्य मात्र के लिये निश्चय रूप से कल्याणकारी है ॥२॥

निःसृतं ते मुखांभोजाद्यदाह भगवानजः ।
पुत्रेभ्यो भृगुमुख्येभ्यो देव्यै च भगवान् भवः॥३॥

आपके श्रीमुख से कहा हुआ जो पूजन का नियम भगवान् ब्रह्माजी ने अपने भृगु आदि पुत्रोंसे कहा था और सर्व श्रेष्ठ महादेवजी ने जिसे पार्वती से वर्णन कियाथा,वही नियम मैं सुनना चाहताहूँ॥

एतद्वै सर्ववर्णानामाश्रमाणां च संमतम् ।
श्रेयसामुत्तमं मन्ये स्त्रीशूद्राणां च मानद ॥ ४ ॥

हे मानदाता ! सब वर्ण, आश्रम, स्त्रियों और शूद्रों के लिये भी यही उत्तम साधन मान लिया गया है-ऐसा मैं मानता हूँ ॥४॥

एतत्कमलपत्राक्ष कर्मबंधविमोचनम् ।
भक्ताय चानुरक्ताय ब्रूहि विश्वेश्वरेश्वर ॥ ५ ॥

इसलिये हे कमल दल नयन ! हे जगदीश्वरों के भी ईश्वर ! मुझ अपने परम प्रेमी तथा भक्त से कर्म-बन्धन छुड़ाने वाला यह विषय कहिये ॥५॥

श्रीभगवानुवाच

न ह्यंतोऽनंतपारस्य कर्मकांडस्य चोद्धव ।
संक्षिप्तं वर्णयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ६ ॥

श्रीभगवान् बोले-हे उद्धव ! पूजा-विधि के विषय में अनेक ग्रन्थ हैं तथा वह कहनेसे भी पूर्ण नहीं होसकती, इसलिये यदि वह सारीविधि वर्णन करूँ तो उसका अन्तभी नहीं आ सकता, इसलिये उसे संक्षेपमें अनुक्रम-पूर्वक यथार्थ रीतिसे कहूँगा॥

वैदिकस्तांत्रिको मिश्र इति मे त्रिविधो मखः ।
त्रयाणामीप्सितेनैव विधिना मां समर्चयेत् ॥ ७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मेरा पूजन तीन विधियों से होता है १-वैदिक २-तान्त्रिक और ३-मिश्रित, इनमेंसे अपने को जो विधि अच्छी लगे, उसी के अनुसार मेरा पूजन करना चाहिये ॥७॥

यदा स्वनिगमेनोक्तं द्विजत्वं प्राप्य पूरुषः ।
यथा यजेत मां भक्त्या श्रद्धया तन्निबोध मे॥ ८।

जिस पुरुष का वैदिक गायत्री आदि विधानों के द्वारा संस्कार हुआ हो, उसे श्रद्धा और भक्ति पूर्वक जिस प्रकार मेरा पूजन करना चाहिये, वह मैं तुम से कहता हूँ, सुनो ॥ ८ ॥

अर्चायां स्थंडिलेऽग्नौ वा सूर्ये वाऽप्सु हृदि द्विजे ।
द्रव्येण भक्तियुक्तोऽर्चेत् स्वगुरुं माममायया ॥९॥

भक्त पुरुष को निष्कपट भाव से मूर्त्ति, पृथ्वी, अग्नि, सूर्य, जल हृदय और ब्राह्मणों में मुझ गुरु रूप को मानकर पूजन के पदार्थों द्वारा (मेरा लक्ष्य रखते हुए उनकी) पूजा करनी चाहिये ॥ ९ ॥

पूर्वं स्नानं प्रकुर्वीत धौतदंतोऽगशुद्धये ।
उभयैरपि च स्नानं मंत्रैर्मृद्ग्रहणादिभिः ॥१०॥

पहले दतून से दाँत स्वच्छ करनेपर अङ्ग शुद्ध करने के लिये स्नान करना चाहिये, ये स्नान वैदिक तथा तान्त्रिक मन्त्रों द्वारा मिट्टी आदि पदार्थों से करना चाहिये ॥१०॥

संध्योपास्त्यादिकर्माणि वेदेनाऽऽचोदितानि मे ।
पूजां तैः कल्पयेत् सम्यक्संकल्पः कर्मपावनीम्॥११॥

ईश्वर ही में भाव रखने वाले पुरुष को वेद-विहित सन्ध्योपासन आदि कर्म न छोड़कर, कर्म बन्धन काटने वाली मेरी पूजा करनी चाहिये॥११॥

शैलादरुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता॥१२॥

पाषाण, काष्ठ, धातु, मिट्टी, चन्दन, चित्र, बालू मणि या मानसिक-यह आठ मूर्त्तियाँ पूजन के लिये बतलाई गई हैं ॥१२॥

चलाचलेति द्विविधा प्रतिष्ठा जीवमंदिरम् ।
उद्वासावाहने न स्तः स्थिरायामुद्धवार्चने ॥१३॥

हे उद्धव ! यदि हृदयही में पूजा करनी हो तो मनोमयी मूर्त्तिका पूजन करना चाहिये और स्थिर मूर्त्तिकी पूजा करनीहो तो उसका प्रतिदिन आवाहन और विसर्जन न करना चाहिये, स्थिर और अनस्थिर भेद से मूर्त्तियां दो प्रकार की हैं जिनमें प्राण प्रतिष्ठा द्वारा मेरा निवास होता है ॥१३॥

अस्थिरायां विकल्पः स्यात् स्थंडिले तु भवेद्द्वयम्
स्नपनं त्वविलेप्यायामन्यत्र परिमार्जनम् ॥१४॥

अस्थिर मूर्त्तियों में आवाहन और विसर्जन कहीं किया जाताहै और कहीं नहीं भी किया जाता है, जैसे शालिग्रामजी की मूर्त्तिमें यह कभी नहीं होता और बालू की मूर्त्ति में इसका होना आवश्यक है, दूसरी मूर्त्तियों का करे तो अच्छा न करे तो अच्छा, परन्तु पृथ्वी पूजन में यह क्रिया अनिवार्य है; मिट्टी, चन्दन और चित्रमय प्रतिमाओंका केवल मार्जन ही कराना चाहिये, स्नान नहीं ॥१४॥

द्रव्यैः प्रसिद्धैर्मद्यागः प्रतिमादिष्वमायिनः ।
भक्तस्य च यथालब्धैर्हृदि भावेन चैव हि ॥१५॥

सकाम भक्त को अत्यन्त प्रसिद्ध द्रव्यों द्वारा मूर्त्तिमें मेरी पूजा करना चाहिये और निष्कामको जो कुछ भी मिल जाय उसी से मेरी पूजा करनी चाहिये, जब हृदय में पूजन किया जाय तब मनोमय पदार्थों द्वारा ही करनी चाहिये ॥१५॥

स्नानालंकरणं प्रेष्ठमर्चायामेव तूद्धव ।
स्थंडिले तत्त्वविन्यासो वह्नावाज्यप्लुतं हविः॥१६॥

हे उद्धव ! स्नान और प्रिय अलङ्कारोंका केवल धातु आदिकी मूर्त्तियोंमें ही उपयोग करनाचाहिये जब पृथ्वी में पूजन किया जाय, तब अङ्ग और उन के प्रधानभूत देवताओं की उन-उन स्थानोंमें भिन्न भिन्न मन्त्रों से स्थापना करनी चाहिये, जब अग्नि में पूजा की जाय तब घी सहित हवि द्वारा होम करना चाहिये ॥१६॥

सूर्ये चाभ्यर्हणं प्रेष्ठं सलिले सलिलादिभिः ।
श्रद्धयोपाहृतं प्रेष्ठं भक्तेन मम वार्यपि ॥१७॥

अर्घ और उपस्थान आदिसे सूर्यमें और तर्पण आदिसे जलमें पूजन करना चाहिये, क्योंकि श्रद्धा पूर्वक दिया हुआ भक्तों का जल मात्र ही मुझको अत्यन्त प्रिय है ॥१७॥

भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ।
गंधो धूपः सुमनसो दीपोऽन्नाद्यं च किं पुनः॥१८॥

और अभक्त पुरुष यदि मुझे बहुतसे बहुत भी अर्पण करे, तो भी मैं उसपर प्रसन्न नहीं होता, फिर गन्ध, धूप, दीप, पुष्प और अन्न आदि पदार्थ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्पण करने ही से मैं उस (अभक्त) पर कैसे प्रसन्न हो सकता हूँ ? ॥१८॥

शुचिः संभृतसंभारः प्राग्दर्भैः कल्पितासनः ।
आसीनः प्रागुदग् वार्चेदर्चायामथ संमुखः ॥१९॥

पवित्र होकर पूजन की सामग्रियां एकत्र कर के और पूर्व दिशा की ओर कुशों की नोक रखते हुए आसन डालकर उसपर पूर्व या उत्तरकी ओर मुख करके पूजा के लिये बैठना चाहिये, यदि मूर्त्ति अचलहो तो उसीकी ओर मुंह करके बैठनाचाहिये ॥

कृतन्यासः कृतन्यासां मदर्चां पाणिना मृजेत् ।
कलशं प्रोक्षणीयं च यथावदुपसाधयेत् ॥२०॥

फिर गुरु आदि को नमस्कार करके, अपने शरीर में न्यास करने के पश्चात् मूर्त्तिमें न्यास कर के उसपर चढ़े हुए निर्माल्य आदि को अलग कर के उसे स्वच्छ करना चाहिये फिर जल-पूर्ण घट तथा प्रोक्षण करने के जल पात्र का चन्दन-पुष्पादि द्वारा यथाविधि संस्कार करना चाहिये ॥२०॥

तदद्भिर्देवयजनं द्रव्याण्यात्मानमेव च ।
प्रोक्ष्य पात्राणि त्रीण्यद्भिस्तैस्तैर्द्रव्यैश्च साधयेत् २१
पाद्यार्घ्याचमनीयार्थं त्रीणि पात्राणि दैशिकः ।
हृदा शीर्ष्णाऽथ शिखया गायत्र्या चाभिमंत्रयेत् २२

प्रोक्षण पात्र के जल से पूजन-स्थान, पूजन-पदार्थ तथा अपने शरीरका प्रोक्षण (जल छिड़कने का कर्म) करना चाहिये, गुरु के उपदेशानुसार पाद्य, अर्घ्य और आचमन के लिये निश्चित किये हुए तीन पात्रों को जल तथा उन पदार्थों के द्वारा शुद्ध करना चाहिये,अर्घ्य-पात्रमें गन्ध, पुष्प, अक्षत यव (जौ) कुश के अग्र भाग, तिल, सरसों और दूर्वा-यह आठ पदार्थ डालना चाहिये, पाद्य-पात्र में श्यामा, दूर्वा, कमल और विष्णुक्रान्ता आदि और आचमन-पात्रमें जावित्री, लौंग और कङ्कोल डालना चाहिये, फिर इन तीनों पाद्य, अर्घ्य और आचमन के पात्रों को पृथक् २ क्रमानुसार हृदय, मस्तक और शिखा के मन्त्रों सहित गायत्री मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रण करना चाहिये ॥ २१॥२२॥

पिंडे वाय्वग्निसंशुद्धे हृत्पद्मस्थां परां मम ।
अण्वीं जीवकलांध्यायेन्नादांते सिद्धभावितां २३॥

फिर देह को कोष्ठगत वायु से शुद्ध करे और मूलाधार में स्थित अग्नि से जलाये और ललाट में स्थित चन्द्र-मण्डल के अमृत से सिंचित करके उसे अमृतमय करे, फिर हृदय-कमल में स्थित सूक्ष्म और उत्तम नारायण-मूर्त्ति का ध्यान करे, तत्पश्चात् प्रणव अक्षर के "अकार-उकार और मकार" का ध्यान करे कि जिसका सिद्ध पुरुष ध्यान करते हैं ॥२३॥

तयात्मभूतया पिंडे व्याप्ते संपूज्य तन्मयः ।
आवाह्यार्चादिषु स्थाप्य न्यस्तांगं मां प्रपूजयेत २४

जैसे दीपक के प्रकाश से घर व्याप्त होजाताहै, वैसे ही अपने स्वरूप की भावना से ध्यान में लाई हुई मूर्त्ति से जब देह व्याप्त होजाय, तब देह में ही पहले मानस-पूजनकर, तन्मय होकर उसी भावना द्वारा मेरी मूर्त्ति आदि में आह्वान करके स्थापना करनी चाहिये; फिर न्यास पूर्वक मेरा पूजन करना चाहिये ॥२४॥

पाद्योपस्पर्शार्हणादीनुपचारान् प्रकल्पयेत् ।
धर्मादिभिश्च नवभिः कल्पयित्वाऽऽसनं मम ॥२५॥

फिर आवाहन के पश्चात् प्रतिमामें पाद्य, आचमन और अर्घ्य आदि उपचार करना चाहिये, फिर धर्म आदि आठ तथा नव शक्तियों से मेरे लिए आसन की कल्पना करनी चाहिये* ॥२५॥

पद्ममष्टदलं तत्र कर्णिका केसरोज्ज्वलम् ।
उभाभ्यां वेदतंत्राभ्यां मह्यं तूभयसिद्धये ॥२६॥

इस प्रकार भगवान् की शैया का ध्यान करते हुए उसपर कर्णिका, केसर तथा उसमें स्थित सूर्य आदि मण्डलों से परम शोभामय अष्ट दल वाले कमल की कल्पना करनी चाहिये, फिर मुक्ति तथा कामना-सिद्धि के लिये वैदिक तथा तान्त्रिक विधि से पाद्य आदि उपचार मुझे अर्पण करना चाहिये॥

सुदर्शनं पांचजन्यं गदासीषुधनुर्हलान् ।
मुशलं कौस्तुभं मालां श्रीवत्सं चानुपूजयेत्॥२७॥

*–धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य रूपी चार पाये दिशाओं के कोण में मानना चाहिये. अधर्म अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य रूपी ईस और ऊपले दिशाओं में मानना चाहिये, त्रैगुण रूपी पट्टियाँ और विमला; उत्कर्षणी, ज्ञाना, क्रिया,योगा प्रह्वी, सत्या, ईशाना और अनुग्रहा-ये नव शक्तियां आठों दिशाओं तथा मध्य में मानकर उन विराट् भगवान् का आसन विचारना चाहिये ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नंदं सुनंदं गरुडं प्रचंडं चंडमेव च ।
महाबलं बलं चैव कुमुदं कुमुदेक्षणम् ॥२८॥

फिर सुदर्शन, पाञ्चजन्य, गदा, खड्ग, बाण, धनुष, हल, मूसल, कौस्तुभ, माला और श्रीवत्स इन चिह्नों की वक्षःस्थल में, नन्द, सुनन्द, प्रचण्ड, महाबल, बल, कुमुद और कुमुदेक्षण-इन आठ पार्षदों की आठ दिशाओंमें और गरुड़की भगवान् के सन्मुख पूजा करनी चाहिये ॥२७॥॥२८॥

दुर्गां विनायकं व्यासं विष्वक्सेनं गुरून् सुरान् ।
स्वे स्वे स्थाने त्वभिमुखान् पूजयेत्प्रोक्षणादिभिः२९

दिशाओं के चारों कोनों में दुर्गा, विनायक, व्यास और विष्वक्सेन की पूजा करनी चाहिये, वाम भाग में गुरुओं और चारों दिशा पूर्व आदि में इन्द्रआदि चार लोकपालोंकी पूजा करनीचाहिए, इस प्रकार इन सबकी अपने-अपने स्थान पर भगवान् के समक्ष ही प्रोक्षण तथा अर्घ्य आदि से पूजा करनी चाहिये ॥२९॥

चंदनोशीरकर्पूरकुंकुमागुरुवासितैः ।
सलिलैः स्नापयेन्मंत्रैर्नित्यदा विभवे सति ॥३०॥

यदि सामर्थ्यहो तो चन्दन, अगर, खस, कपूर, केसर और कस्तूरी आदि से सुगन्धित किये हुए जल द्वारा प्रति दिन मन्त्र-पाठ करते हुए स्नान करना चाहिये ॥३०॥

स्वर्णधर्मानुवाकेन महापुरुषविद्यया ।
पौरुषेणापि सूक्तेन सामभी राजनादिभिः ॥३१॥

स्वर्ण धर्म नामक अनुवाक (सुवर्णधर्मं परिवेदवेनमित्यादिः) पुरुष सूक्त (सहस्र शीर्षेत्यादि) महा पुरुषविद्या (जितंते पुंडरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुष पूर्वज) नीराजन और रोहिणी आदि सामवेद के मन्त्रों को पढ़ना चाहिये ॥ ३१ ॥

वस्त्रोपवीताभरणपत्रस्रग्गंधलेपनैः ।
अलंकुर्वीत सप्रेम मद्भक्तो मां यथोचितम् ॥३२॥

मेरे भक्त को यथा विधि वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभरण, मकराकृत कुण्डल, सुगन्ध और लेपन से प्रेम पूर्वक मेरा शृङ्गार करना चाहिये ॥ ३२ ॥

पाद्यमाचमनीयं च गंधं सुमनसोऽक्षतान् ।
धूपदीपोपहार्याणि दद्यान्मे श्रद्धयार्चकः ॥३३॥

उस भक्त पुजारी को श्रद्धा पूर्वक पाद्य, आचमन, गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप-दीप और नैवेद्य मेरे लिये अर्पण करना चाहिये ॥ ३३ ॥

गुडपायससर्पिंषि शष्कुल्यापूपमादेकान् ।
संयावदधिसूपांश्च नैवेद्यं सति कल्पयेत् ॥३४॥

यदि सामर्थ्यहो तो गुड़, खीर, घी, पूड़ी, कचौड़ी पुए, लड्डू हलुवा, दही और अनेक प्रकारके व्यंजनों से मुझे भोग लगाये ॥ ३४ ॥

अभ्यंगोन्मर्दनादर्शदंतधावाभिषेचनम् ।
अन्नाद्यं गीतनृत्यानि पर्वणि स्युरुतान्वहम् ॥३५॥

अभ्यङ्ग, उबटन, दर्पण, दतून, पञ्चामृत आदि से स्नान, भक्ष्य, भोज्य; गायन और नृत्य आदि भगवान् की सेवा-सम्बन्धी सभी साधन करना चाहिये, यदि सामर्थ्य हो तो यह साधन प्रतिदिन करना चाहिये अन्यथा त्यौहारके दिन तो अवश्य ही करना चाहिये ॥३५॥

विधिना विहिते कुंडे मेखलागर्तवेदिभिः ।
अग्निमाधाय परितः समूहेत् पाणिनोदितम् ॥३६॥

अग्नि पूजनकी विधि यहहै कि-गृह्यसूत्र में कही हुई विधिसे मेखला गर्त और वेदी आदिसे संयुक्त कुण्ड बनाकर उसमें अग्नि रक्खे, उसे प्रज्वलित करके फिर हाथ द्वारा चारों ओरसे एकत्र करदे ॥

परिस्तीर्याथ पर्युक्षेदन्वाधाय यथाविधि ।
प्रोक्षण्याऽऽसाद्य द्रव्याणि प्रोक्ष्याग्नौ भावयेत माम् ।

फिर कुश से परिस्तरण करके चारों ओर प्रोक्षण करना चाहिये। फिर नियमपूर्वक आहुतियों से समिधा-होम आदि 'अन्वाधान' कर्मसे निवृत्त होकर अग्नि के उत्तर भाग में होम के उपयोगी पदार्थ रखकर उनका प्रोक्षणी-पात्रके जलसे प्रोक्षण करके अग्निमें इस भांति मेरा ध्यान करनाचाहिये॥

तप्तजांबूनद प्रख्यं शंखचक्रगदांबुजैः ।
लसच्चतुर्भुजं शांतं पद्मकिंजल्कवाससम् ॥३८॥
स्फुरत्किरीटकटककटिसूत्रवरांगदम् ।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥३९॥
ध्यायन्नभ्यर्च्य दारूणि हविषाऽभिघृतानि च ।
प्रास्याऽऽज्यभागावाऽऽघारौ दत्त्वा चाज्यप्लुतं हविः
जुहुयान्मूलमंत्रेण षोडशर्चाऽवदानतः ।
धर्मादिभ्यो यथान्यायं मंत्रैः स्विष्टकृतं बुधः॥४१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभ्यर्च्यार्थ नमस्कृत्य पार्षदेभ्यो बलिं हरेत् ।
मूलमंत्रं जपेद्ब्रह्म स्मरन्नारायणात्मकम् ॥४२॥

तप्त स्वर्णके समान कान्तिमय, शंख, चक्र,गदा और पद्मसे शोभायमान् चतुर्भुजी, शान्त स्वरूप, कमल के केसर की भांति पीतांबरधारी, किरीट, कटक, कटिमेखला और श्रेष्ठ भुजबन्दों से दीप्तमान श्रीवत्स चिह्न वक्षःस्थल में धारण किये हुए कौस्तुभ मणि से प्रकाशमान और बनमाला पहने हुए मेरे स्वरूपका ध्यान तथा पूजन करनेके अनंतर घृत से पूर्ण समिधा अग्नि में डालकर और चारों ओर घी डालने की क्रिया से आधार और आज्य भाग देकर, मूल मन्त्र व पुरुष सूक्त द्वारा प्रति ऋचा पर एक २ आहुति लेकर पूजन-क्रमके अनुसार धर्म आदि के लिये घृत युक्त हवि से अग्निमें होम करना चाहिये, फिर स्विष्टकृत् नामक होम करके अग्नि-स्थित अन्तर्यामी का पूजन तथा उनको नमस्कार करके पार्षदों को बलिदान देना चाहिये. फिर पूजा की जगह भगवान् ही के पास बैठकर सुबुद्धि पुरुष को परब्रह्म का स्मरण करतेहुए यथा शक्ति मूलमंत्र का जप करना चाहिये ॥३८-४२॥

दत्त्वाचमनमुच्छेषं विष्वक्सेनाय कल्पयेत् ।
मुखवासं सुरभिमत्तांबूलाद्यमथार्हयेत् ॥४३॥

फिर भगवान् को आचमन कराके उच्छिष्ट सामग्री विष्वक्सेन पार्षद को अर्पण करने का सङ्कल्प करके उनकी आज्ञा पाकर स्वयं भोजनकरना चाहिये, पर इसके पहले ताम्बूल आदि मुख के सुवासकारी पदार्थ अर्पण करके पुष्पांजलि देनी चाहिये ॥ ४३ ॥

उपगायन् गृणन् नृत्यन्कर्माण्यभिनयन मत ।
मत्कथाः श्रावयन् शृण्वन् मुहूर्तं क्षणिको भवेत्४४

मेरे चरित्र गाना, स्तुति करना, नाचना, मेरे कर्मों का अनुकरण करना, मेरी कथायें सुनना या सुनाना आदि-ऐसे कर्मोंके लिये कुछ समय अवश्य निकाल रखना चाहिये ॥४४॥

स्तवैरुच्चावचैः स्तोत्रैः पौराणैः प्राकृतैरपि ।
स्तुत्वा प्रसीद भगवन्निति वंदेत दंडवत् ॥४५॥

पुराण के छोटे-छोटे स्तोत्र तथा प्राकृत भाषा की स्तुतियाँ करके "हे भगवान् ! आप मुझ पर प्रसन्नहों" इस प्रकार प्रार्थना करके दंडवत्-प्रणाम करनी चाहिये ॥४५॥

शिरो मत्पादयोः कृत्वा बाहुभ्यां च परस्परम् ।
प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात् ॥४६॥

मेरे चरणोंमें मस्तक रखकर अपराधी की नाईं पीठ पीछे हाथ बाँधकर या दोनों हाथों से मेरे चरण पंकड़ कर इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये कि हे ईश्वर ! मृत्यु रूपी ग्राह वाले संसार-सागर से भयभीत होकर मुझ शरण में आये हुएकी रक्षा कीजिये ॥ ४६ ॥

इति शेषां मयादत्तां शिरस्याधाय सत्वरम् ।
उद्वासयेच्चेदुद्वास्यं ज्योतिर्ज्योतिषि तत् पुनः॥४७॥

फिर ऐसी ही प्रार्थना द्वारा मेरे निर्माल्य को मेरा ही दिया हुआ विचार कर उसी समय शिर पर धारण कर लेना चाहिये. यदि मेरा विसर्जन करना हो तो जिस ज्योति का पहले मूर्त्ति में आह्वान किया था, उसी ज्योतिका हृदय कमल-स्थित ज्योति में विसर्जन कर देना चाहिये ॥४७।

अर्चादिषु यदा यत्र श्रद्धा मां तत्र चार्चयेत् ।
सर्वभूतेष्वात्मनि च सर्वात्माहमवस्थितः ॥४८॥

जिसको जिस मूर्त्तिमें श्रद्धा हो उसी में मेरा पूजन करना चाहिये, क्योंकि समस्त भूतों में सर्व रूप मैं ही स्थितहूँ और सब भूत मुझमें स्थितहैं ॥

एवं क्रियायोगपथैः पुमान् वैदिकतांत्रिकैः ।
अर्चन्नुभयतः सिद्धिं मत्तो विंदत्यभीप्सिताम्॥४९॥

इस प्रकार वैदिक तथा तांत्रिक विधियों से मेरी सेवा करने वाला पुरुष इस लोक तथा पर लोक की वाञ्छित सिद्धियाँ पाता है ॥४९॥

मदर्चां संप्रतिष्ठाप्य मंदिरं कारयेद्दृढम् ।
पुष्पोद्यानानि रम्याणि पूजायात्रोत्सवाऽऽश्रितान्॥

सामर्थ्यवान् पुरुष को मेरी मूर्त्ति स्थापित करके उसके निमित्त दृढ़ मन्दिर बनवाना चाहिये; वहाँ फूलोंका उत्तम बाग़ बनवानाचाहिये कि जिस में मेरी पूजा-यात्रा सम्बन्धी उत्सव हो सकें ॥५०॥

पूजादीनां प्रवाहार्थं महापर्वस्वथान्वहम् ।
क्षेत्रापणपुरग्रामान् दत्त्वा मत्सार्ष्टितामियात् ५१॥

फिर उस मन्दिर के लिये क्षेत्र, पुर या गाँव आदि कोई ऐसी स्थाई सम्पत्ति लगादेनी चाहिए कि जिसमें मेरी पूजा नित्य या त्यौहारों के समय निर्विघ्न रूपसे होसके, तब वह ऐश्वर्यको पाताहै ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रतिष्ठया सार्वभौमं दानेन भुवनत्रयम् ।
पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्साम्यतामियात्॥५२

प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराने वाला पृथ्वी का राजा होता है, मन्दिर बनवाने वाला त्रैलोक का राज्य पाताहै, पूजा आदि यह सब कर्म करनेवाला ब्रह्मलोक पाता है, तीनों विधियाँ करने वाला मेरी सायुज्य नाम्नी मुक्ति पाता है ॥५२॥

मामेव नैरपेक्ष्येण भक्तियोगेन विंदति ।
भक्तियोगं स लभते एवं यः पूजयेत माम् ॥५३॥

इस रीतिसे जो पुरुष मेरी सेवाकरे वह भक्ति योग को प्राप्त होजाता है और फिर निष्काम भक्ति के द्वारा साक्षात् मुझे ही पा जाता है ॥५३॥

यः स्वदत्तां परैर्दत्तां हरेत सुरविप्रयोः ।
वृत्तिं स जायते विड्भुग् वर्षाणामयुतायुतम्॥५४॥

जो मनुष्य अपनी या दूसरे की दी हुई ब्राह्मण की जीविका को छीनले, वह करोड़ वर्षतक विष्ठा खाने वाला कीड़ा होता है ॥५४॥

कर्तुश्च सारथेर्हेतोरनुमोदितुरेव च ।
कर्मणां भागिनः प्रेत्य भूयो भूयसि तत्फलम्॥५५॥

इस प्रकार के सत्कर्म का फल कर्त्ता,सहायक, प्रेरक और सम्मति देने वाला-यह चारों पाते हैं, क्योंकि वे सभी कर्मके भागी हो चुके, उसमें जिस ने जितना अधिक भाग लिया हो उतना ही उसे फल मिलता है* ॥५५॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अट्ठाईसवां अध्याय

(संक्षिप्त ज्ञानयोग)

श्रीभगवानुवाच

परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत् ।
विश्वमेकात्मकं पश्यन्प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले-समस्त संसार एकही प्रकृति और पुरुष का रूप है, इस प्रकार जानकर किसी के स्वभाव या कर्म की न तो निन्दा करनी चाहिये और न स्तुति ॥१॥

परस्वभावकर्माणि यः प्रशंसति निंदति ।
स आशु भ्रश्यते स्वार्थादसत्यऽभिनिवेशतः ॥ २ ॥

क्योंकि जो पराये स्वभाव या कर्म की निंदा या स्तुति करता है वह द्वैत के चक्कर में पड़ जाने से अपने स्वार्थ-पथ (ज्ञान) से भ्रष्ट होजाता है ॥२॥

तैजसे निद्रयापन्ने पिंडस्थो नष्टचेतनः ।
मायां प्राप्नोति मृत्युं वा तद्वन्नानार्थदृक् पुमान्॥३॥

जैसे इन्द्रियाँ निद्रा व्याप्त होने पर, देह में स्थित जीव केवल मन ही से स्वप्न रूप माया को प्राप्त होता है और मन के लीन होजाने पर चेतना शून्य होने से मृत्यु या मृत्यु-तुल्य सुषुप्तिको प्राप्त होता है, ऐसे ही भेद-बुद्धिवाला पुरुष विक्षेप और लय को प्राप्त होता है ॥३॥

किं भद्रं किमभद्रं वा द्वैतस्यावस्तुनः कियत् ।
वाचोदितं तदनृतं मनसा ध्यातमेव च ॥ ४ ॥

असत्य रूप द्वैत में क्या तो अच्छा है और क्या बुरा ? इन्द्रियों से जानी हुई, मन से विचार की हुई या वाणी से जानी हुई जो भी बात है सो सब असत्य है; तब असत्य में किसी प्रकार की सत्यता का निश्चय करना भी असत्यहै ॥ ४ ॥

छायाप्रत्याह्वयाभासा ह्यसंतोऽप्यर्थकारिणः ।
एवं देहादयो भावायच्छंत्यामृत्युतो भयम् ॥ ५ ॥

जैसे छाया, प्रतिध्वनि (झाईं) और आभास अवस्तु रूप (असत्य) होने पर भी भय आदि देते हैं, वैसे ही देह आदि वास्तविक न होने पर भी लय होनेसे पहलेतक भय आदिके कारण रहतेहैं ॥

आत्मैव तदिदं विश्वं सृज्यते सृजति प्रभुः ।
त्रायते त्राति विश्वात्मा ह्रियते हरतीश्वरः ॥ ६ ॥

जो उत्पन्न होता है, जो उत्पन्न करता है, जो पालता है, जिसका पालन किया जाता है, जो संहार करताहै और जिसका संहार किया जाताहै वह सब आत्मा ही है ॥६॥

निरूपितेयं त्रिविधा निर्मूला भातिरात्मनि ।
इदं गुणमयं विद्धि त्रिविधं मायया कृतम् ॥ ७ ॥

*-पूजन-विधि के लिये इस विषय सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ना चाहिये ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आत्मा सबसे पृथक् है, उससे कोई भी पदार्थ जुदा नहीं कहा जा सकता, इस जगत् को जो अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत रूप तीन प्रकार का माना जाता है, वह निश्चय ही निर्मूल है, क्यों कि यह गुणमय जगत् आत्मा में माया का ही बनाया हुआ है ॥७॥

एतद्विद्वान्मदुदितं ज्ञानविज्ञाननैपुणम् ।
न निंदति न च स्तौति लोके चरति सूर्यवत्॥ ८ ॥

जो मेरी कही हुई इस ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी निष्ठा को जानता है वह किसीकी निंदा या स्तुति नहीं करता, किन्तु संसार में सूर्यकी भाँति असंग रहकर विचरण करता है ॥८॥

प्रत्यक्षेणानुमानेन निगमेनात्मसंविदा ।
आद्यंतवदसद्वृ ज्ञात्वा निःसंगो विचरेदिह ॥ ९ ॥

जो वस्तु आदि-अन्त वाली है वही असत्यहै-इस नियम से यह प्रत्यक्षतः उत्पन्न और नष्ट होने वाले जगत् का अनुमान, वेद और अनुभव द्वारा असत्य समझना चाहिये, यह दृढ़ निश्चय करके ज्ञानी पुरुष को असंग होकर विचरना चाहिये ॥

उद्धव उवाच

नैवात्मनो न देहस्य संसृतिर्द्रष्टृदृश्ययोः ।
अनात्मसदृशोरीश कस्य स्यादुपलभ्यते ॥१०॥

उद्धव बोले-हे प्रभो आत्मा स्वयं प्रकाश है और देह आदि द्वैत पदार्थ जड़हैं, फिर ये संसार इन दोनों में से किस पर घटित होताहै ? क्योंकि चैतन्य मात्र आत्मा ही में या जड़ मात्र देह ही में इसका प्रतीत होना असंभव है ॥१०॥

आत्माऽव्ययोऽगुणः शुद्धः स्वयंज्योतिरनावृतः ।
अग्निवदारुवदचिद्देहः कस्येह संसृतिः ॥११॥

आत्मा अविनाशी, गुण-रहित, शुद्ध, स्वयं प्रकाश और आवरण रहितहै और देह आदि जड़ हैं, तब यह दोनों तो अग्नि और काष्ठ के समानहैं, इनमें से किस एकमें संसारका होना माना जाय ॥

श्रीभगवानुवाच

यावद्देहेंद्रियप्राणैरात्मनः सन्निकर्षणम् ।
संसारः फलवांस्तावदपार्थोऽप्यविवेकिनः ॥१२॥

श्रीभगवान् बोले-जब तक देह, इन्द्रिय और प्राण से आत्मा का सम्बन्ध है तब तक अज्ञान के कारण यह मिथ्या संसार जान पड़ता है ॥१२॥

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ।
ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥१३॥

जैसे विषयों का ध्यान करने वाले पुरुष के स्वप्नावस्था सम्बन्धी अनर्थ असत्य होने पर भी दूर नहीं होते, वैसे ही विषयों का चिन्तवन करने वाले पुरुष का यह संसार असत्य होते हुए भी निवृत्त नहीं होता ॥१३॥

यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत् ।
स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥१४॥

जैसे सोते हुए मनुष्य को स्वप्नावस्था अनेक अनर्थ देती है, परन्तु जागने पर वह अनर्थ दूर हो जाने से किसी प्रकार का मोह नहीं कर सकती, वैसे ही अज्ञान अवस्था में देह आदि अनेक दुःख देते हैं परन्तु ज्ञान होने पर मोह नहीं कर सकते, इसलिये जीवन्मुक्त का विषयों की स्फूर्त्तिसे अनर्थ नहीं हो सकता ॥१४॥

शोकहर्षभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः ।
अंहकारस्य दृश्यंते जन्ममृत्युश्च नात्मनः ॥१५॥

शोक, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, काम, जन्म और मरण-ये सब अहङ्कार ही से होते हैं, इनका आत्मा से कोई लगाव नहीं है ॥१५॥

देहेंद्रियप्राणमनोभिमानोजीवोंऽतरात्मा गुण कर्ममूर्तिः । सूत्रं महानित्युरुधेव गीतः संसार आधावति कालतंत्रः ॥१६॥

यह आत्मा ही देह, इन्द्रिय, प्राण और मनका अहङ्कार करके उनमें जीव रूप से स्थित है, इसी से यह गुण-कर्ममय मूर्त्तिहै, इन्हींके कारण आत्मा बन्धन में पड़ा हुआ है और ईश्वर के आधीन हो कर संसार में दौड़ता फिरता है, यही सूत्र और महत्तत्व आदि अनेक रूप से अनेक प्रकार का कहा जाता है ॥ १६ ॥

अमूलमेतद्बहुरूपरूपितं मनो वचः प्राणशरीर कर्म । ज्ञानासिनोपासनया शितेन छित्त्वा मुनिर्गां विचरत्यतृष्णः ॥१७॥

मन, वचन, प्राण, शरीर और कर्म के विषयमें यह अहङ्कार मय निर्मूल संसार अज्ञान के कारण ही बहु-रूप प्रतीत होताहै. इसलिये इसे गुरु-भक्ति रूपी तीक्ष्ण खड्ग से काटकर ज्ञानी पुरुष तृष्णा छोड़कर पृथ्वी पर विचरता है ॥१७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञानं विवेको निगमस्तपश्च प्रत्यक्षमैतिह्यमथानुमानम्। आद्यंतयोरस्य यदेव केवलं कालश्च हेतुश्च तदेव मध्ये ॥१८॥

ज्ञान का स्वरूप विवेक है जो कि वेद, स्वधर्म, अनुभव, गुरुके उपदेश और तर्कद्वारा हुआ करता है, उस विवेक से यह निश्चय होजाता है कि जो इस जगत् के आदि और अन्त में है वही मध्य में भी है, जगत् उससे जुदा नहीं है, क्योंकि अपने प्रकाशकर्त्ता और कारण से वह जुदी सत्ता नहीं रख सकता ॥१८॥

यथा हिरण्यं स्वकृतं पुरस्तात्पश्चाच्च सर्वस्य हिरण्मयस्य। तदेव मध्ये व्यवहार्यमाणं नानाऽपदेशैरहमस्य तद्वत् ॥१९॥

जैसे जब तक सोनेके कुण्डल आदि आभूषण नहीं बनते तब तक उसका एक ही नाम रहता है, आभूषण बनने पर उसके अनेक नाम होजाते हैं और मिटने पर फिर सोना ही कहलाने लगता है, इसलिये उससे बने हुए पदार्थ कोई दूसरी वस्तु नहीं माने जा सकते, क्योंकि सोनाही उनके आदि मध्य और अन्त में है, इसी प्रकार बहु रूप इस जगत् में आदि-मध्य तथा अन्ततः रहने वाले मुझ को जगन्मय और एक समझना चाहिये ॥१९॥

विज्ञानमेतत् त्रियवस्थमंग गुणत्रयं कारणकार्य कर्तृ। समन्वयेन व्यतिरेकतश्च येनैव तुर्येण तदेव सत्यम् ॥२०॥

हे उद्धव! तीन अवस्थाओंवाला मन, अवस्थाओं के कारणरूप त्रैगुण और गुणका कार्यरूप इन्द्रियाँ देवता और पंच महत्तत्व मय सब जगत् जिससे होता है, जिसके प्रविष्ट होने से प्रकाशता है और जो इन्द्रियों के समाधि अवस्था में होने पर भी रहता है, वही ज्ञान अर्थात् तीन गुण वाले पदार्थों से जुदा चौथा ब्रह्म स्वरूप और सत्य है ॥२०॥

नयत्पुरस्तादुत यन्न पश्चान्मध्ये च तन्न व्यपदेश मात्रम्। भूतं प्रसिद्धं च परेण यद्यत्तदेव तत्स्या दिति मे मनीषा ॥२१॥

जो उत्पत्ति से पहले, नाश के पीछे या मध्यमें भी नहीं है, वरन् केवल नाम मात्र ही को कहने-सुनने की वस्तुहै, वह तो वास्तवमें जिससे उत्पन्न हुई है और जिससे प्रकाशित है, उसी का रूप या वही है, मेरी समझ तो ऐसी है ॥२१॥

अविद्यमानोऽप्यवभासते यो वैकारिको राज सर्ग एषः। ब्रह्म स्वयं ज्योतिरतो विभाति ब्रह्मेंद्रियार्थात्मविकार चित्रम् ॥२२॥

यह विकारों का समूह रूप प्रपञ्च पहले न था रजोगुण के द्वारा ब्रह्म का कार्य रूप उत्पन्न हुआ है और उसी से प्रकाशित है, ब्रह्म स्वयं सिद्ध तथा प्रकाशक है, इसलिये वही इन्द्रियों, तन्मात्रा, देवता और पञ्च महाभूत आदिके रूप में विचित्रता-पूर्वक प्रतीत होता है ॥२२॥

एवं स्फुटं ब्रह्मविवेकहेतुभिः परापवादेन विशार देन। छित्त्वात्मसंदेहमुपारमेत स्वानंदतुष्टोऽखिल कामुकेभ्यः ॥२३॥

इस प्रकार परब्रह्म का विवेक कराने वाले वेद आदि से, देहादि अनात्म पदार्थों से अहं बुद्धि त्यागने से और सद्गुरु की सहायता से अपने स्वरूप सम्बन्धी सन्देहको काटकर उसी निजानंद में सन्तुष्ट रहते हुए समस्त इन्द्रिय आदि का संग त्याग देना चाहिये ॥२३॥

नात्मा वपुः पार्थिवमिंद्रियाणि देवा ह्यसुर्वायु जलं हुताशः। मनोऽन्नमात्रं धिषणा च सत्त्व महंकृतिः खं क्षितिरर्थसाम्यम् ॥२४॥

यह देह आत्मा नहींहै, क्योंकि पृथ्वीका विकार रूप है, इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार-यह भी आत्मा नहीं हैं क्योंकि यह अन्न के आश्रित रहने से विकारी हैं, इसी प्रकार वायु, जल, अग्नि, आकाश और पृथ्वी यह पञ्चभूत तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध और प्रकृति भी आत्मा नहीं है, क्योंकि जड़ हैं ॥२४॥

समाहितैः कः करणैर्गुणात्मभिर्गुणो भवेन्मत्सु विविक्तधाम्नः। विक्षिप्य माणैरुत किन्नु दूषणं धनैरुपेतैर्विगतै रवेः किम् ॥२५॥

जो विवेकी, ज्ञानवान् और जीवन्मुक्त हैं उन मेरे स्वरूप के जानने वालों पर इन्द्रियाँ वशमें रहें तो कोई गुण का प्रभाव नहीं पड़ता और विक्षिप्त रहें तो दोष भी नहीं लगता, जैसे कि बादलों के आने-जाने से सूर्य को किसी प्रकार का गुण-दोष नहीं लगता ॥२५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यथा नभो वाय्वनलांबुभूगुणैर्गतागतैर्वर्तुगुणैर्न सज्जते । तथाऽक्षरं सत्त्वरजस्तमोमलैरहं मतेः संसृतिहेतुभिः परम् ॥२६॥

जैसे आकाश पृथ्वीपर आने-जानेवाले ऋतुओं की सर्दी, गर्मी आदि या वायु, अग्नि तथा जल के कारण बन्धन में नहीं पड़ता, वैसे ही अहङ्कार से परे आत्माका स्वरूप संसारमें जन्म-मरण देने वाले सत् रज और तमके विकारसे बंधनमें नहीं पड़ता॥

तथापि संगः परिवर्जनीयो गुणेषु मायारचितेषु तावत् । मद्भक्तियोगेन दृढेन यावद्रजो निरस्येत मनःकषायः ॥२७॥

फिर भी जब तक मनको मलिन करने वाले मल रूपी विषयों की आसक्ति मेरे दृढ़ भक्ति-योग द्वारा दूर न होजाय, तब तक माया रचित विषयों का संग छोड़ देना चाहिये ॥२७॥

यथाऽऽमयोऽसाधु चिकित्सितो नृणां पुनःपुनः संतुदति प्ररोहन् । एवं मनोऽपक्वकषायकर्म कुयोगिनं विध्यति सर्वसंगम् ॥२८॥

जैसे कि यथेष्ठ चिकित्सा न होनेपर कोई रोग बार-बार उत्पन्न होकर दुःख देता है, वैसे ही जिस के राग आदि विषय तथा कर्म पूर्ण रूपसे भस्म न होजाँय, वह मन भी बारंबार विषयोंमें आसक्त हो होकर योगी को बाधा पहुंचाता है ॥२८॥

कुयोगिनो ये विहतांतरायैर्मनुष्यभूतैस्त्रिदशोपसृष्टैः । ते प्राक्तनाभ्यासबलेन भूयो युंजंति योगं न तु कर्मतंत्रम् ॥२९॥

यदि अदृढ़ योगी देवताओं से प्रेरित बन्धु आदि रूप विघ्नों के द्वारा योग-भ्रष्ट भी होजाँय तो भी वे पूर्व अभ्यास के बल से अगले जन्म में भी योग-मार्ग पर ही चलते हैं, कर्म सम्बन्धी प्रवृत्ति मार्ग पर नहीं ॥२९॥

करोति कर्म क्रियते च जंतुः केनाप्यसौ चोदित आ निपातात् । न तत्र विद्वान्प्रकृतौ स्थितोऽपि निवृत्ततृष्णः स्वसुखानुभूत्या ॥३०॥

यों तो किसी प्रारब्ध की प्रेरणा से इस देह-द्वारा सभी को तत्सम्बन्धी कर्म करना ही पड़ते हैं और उनके द्वारा दैहिक विकार भी हुआ करते हैं, परन्तु जो विवेकी है वह उस देह में स्थित रहता हुआ भी आत्म-सुख के अनुभव द्वारा तृष्णासे छूट कर विकार को प्राप्त नहीं होता ॥३०॥

तिष्ठंतमासीनमुत व्रजंतं शयानमुक्षंतमदंत मन्नम् । स्वभावमन्यत् किम पीहमानमात्मान-मात्मस्थमतिर्न वेद ॥३१॥

जिसकी बुद्धि आत्मा में स्थित हो वह ज्ञानी पुरुष बैठे,खड़े; चलते,सोते, मूत्र त्यागते, अन्नखाते या कोई भी क्रिया करते हुए अपने देह का भान नहीं रखता ॥ ३१ ॥

यदि स्म पश्यत्यसदिंद्रियार्थं नानानुमानेन विरुद्धमन्यत् । न मन्यते वस्तुतया मनीषी स्वाप्नं यथोत्थाय तिरोदधानम् ॥३२॥

जो पुरुष विवेकी हैं वे यद्यपि इन इन्द्रियों के विषयों को देखते हैं फिर भी वे आत्मा के सिवा दूसरे किसी भी पदार्थ को वास्तविक न मान कर स्वप्नकी भाँति मिथ्या समझते हैं, क्योंकि जैसे जागने पर स्वप्नका विषय आपही विलीन होजाता है, वैसे ही ज्ञान होने पर विषय मात्र लीन होजाते हैं-ऐसा उनका निश्चय होता है ॥३२॥

पूर्वं गृहीतं गुणकर्मचित्रमज्ञानमात्मन्यविविक्त-मंग । निवर्तते तत्पुनरीक्षयैव न गृह्यते नापि विसृज्य आत्मा ॥३३॥

हे उद्धव ! गुण और कर्मों से अनोखे अज्ञानके कार्यरूप देह और इन्द्रिय आदि अध्याससे अपने स्वरूप में मिले हुए मान लिये जाते हैं, वही ज्ञान से मुक्तावस्था में निवृत्त होजाते हैं, आत्मा न तो किसी से त्यागा ही जाताहै और न ग्रहणही किया जाताहै,यदि यह माना जाय कि कर्म करनेसे आत्मा मुक्त होगया है, तो आत्मा पर विकारका आना भी सिद्ध होताहै, इसलिये मायामय पदार्थोंकी निवृत्ति का नामही मोक्षहै, बन्ध या मोक्ष आत्मा का स्पर्श नहीं करते, क्योंकि वह सदैव एक रूप और निर्विकार है ॥३३॥

यथा हि भानोरुदयो नृचक्षुषां तमो निहन्यान्न तु सद्विधत्ते । एवं समीक्षा निपुणा सती मे हन्यात्तमिस्रं पुरुषस्य बुद्धेः ॥३४॥

जैसे सूर्योदय मनुष्यों की आँखोंका अन्धकार दूर करताहै, परन्तु पहलेही से विद्यमान घटआदि में कुछ भी विकार नहीं करता, ऐसे ही श्रेष्ठ और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चातुरी पूर्ण मुख से सम्बन्ध रखने वाली आत्म-विद्या तो केवल बुद्धिके मोहको दूर करतीहै,आत्मा की स्थिति यथा पूर्व ही रहती है ॥ ३४ ॥

एष स्वयंज्योतिरजोऽप्रमेयो महानुभूतिः सकलानुभूतिः । एकोऽद्वितीयो वचसां विरामे येनेषिता वागसवश्चरंति ॥३५॥

यह स्वयं प्रकाश, अजन्मा, ज्ञान-विज्ञान से भी न जानने योग्य, परम प्रतापवान् किसी भी विकार से न घटने वाला और न बढ़ने वाला, सदैव एक रूप, सबका प्रकाशक, अद्वितीय वचन और इन्द्रियातीत है, उसी की प्रेरणा से वाणी तथा इन्द्रियाँ अपना-अपना काम करती हैं ॥३५॥

एतावानात्मसंमोहो यद्विकल्पस्तु केवले । आत्मन्नृते स्वमात्मानमवलंबो न यस्य हि॥३६॥

केवल आत्मा में केवल मन की भ्रान्ति ही से भेद प्रतीत होता है, जैसे सर्प के भ्रम का आश्रय रस्सी के सिवा दूसरा नहीं है वैसे ही भेद-भ्रमका आश्रय मात्र भी आत्माके सिवा दूसरा नहीं ॥३६॥

यन्नामाकृतिभिर्ग्राह्यं पंचवर्णमबाधितम् । व्यर्थेनाऽप्यर्थवादोऽयं द्वयं पंडितमानिनाम्॥३७॥

रूप और नाम के द्वारा जो वस्तु कही जाती है वही पञ्चभूत रूप है, अस्तु देह इन्द्रिय आदि को अद्वैत रूप मानने वाले या द्वैत को वास्तविक समझनेवाले मीमांसक पण्डितोंका यह मत दूषित है, वास्तव में तत्ववेत्ताओं के विचार से आत्माके सिवा शेष सभी मिथ्या है ॥ ३७॥

योगिनोऽपक्वयोगस्ययुंजतः काय उत्थितैः । उपसर्गैर्विहन्येत तत्रायं विहितो विधिः ॥३८॥

जो योगी अभी दृढ़ नहीं हुए हैं और योग-साधना करते हैं, उनको देह में उठे हुए रोग आदि योग-भ्रष्ट करदेते हैं, उनके बचने के लिये मैं यह आगे लिखी हुई विधि कहता हूँ ॥३८॥

योगधारणया कांश्चिदासनैर्धारणान्वितैः । तपोमंत्रौषधैः कांश्चिदुपसर्गान् विनिर्दहेत् ॥३९॥

सूर्य और चन्द्र आदि की धारणा से गर्मी, सर्दी आदि को जीतना चाहिये, वायु की धारणा सहित आसनों के द्वारा वात-रोग आदि जीतना चाहिये, क्रूर ग्रह और सर्प आदि के भय को तप, मन्त्र और औषधियों से दूर करना चाहिये ॥३९॥

कांश्चिन्ममानुध्यानेन नामसंकीर्तनादिभिः । योगेश्वरानुवृत्त्या वा हन्यादशुभदाञ्छनैः ॥४०॥

काम क्रोध आदि अनेक विघ्नों को मेरे ध्यान और नाम कीर्त्तन आदि से दूर करना चाहिये,दंभ और मान आदि विघ्नों को योगेश्वरों की सेवा कर के धीरे-धीरे नष्ट करना चाहिये ॥४०॥

केचिद्देहमिमं धीराः सुकल्पं वयसिस्थिरम् । विधाय विविधोपायैरथ युंजंति सिद्धये ॥४१॥

कितने ही योगी अनेक उपायों द्वारा इस देह को वृद्धावस्था रहित तथा स्थिर युवावस्था वाला बनाकर, ज्ञाननिष्ठ न होकर सिद्धियोंमें पड़जाते हैं॥

न हि तत्कुशलादृत्यं तदायासो ह्यपार्थकः । अंतवत्त्वाच्छरीरस्य फलस्येव वनस्पतेः ॥४२॥

ऐसा करना चतुर पुरुषों के लिये आदरणीय नहीं है, क्योंकि शरीर कभी न कभी निःसन्देह नष्ट हो जायगा, इसलिये इसके लिये परिश्रम करना व्यर्थ ही है ॥४२॥

योगं निषेवतो नित्यं कायश्चेत्कल्पतामियात् । तच्छ्रद्दध्यान्न मतिमान योग मुत्सृज्य मत्पराः॥४३॥

योगका निरन्तर सेवन करके प्राणायामके द्वारा यदि शरीर समर्थ होजाय तो भी मेरे परायण बुद्धिमान् पुरुष को समाधि त्याग कर देह-संबंधी सिद्धियों पर विश्वास न करना चाहिये ॥४३॥

योगचर्यामिमां योगी विचरन मद्व्यपाश्रयः । नांतरायैर्विहन्येत निःस्पृहः स्वसुखानुभूः ॥४४॥

जब योगी मेरा आश्रय लेकर यह योग धारण करताहै तब उसे विघ्न नहींआते और वह निःस्पृह भाव वाला अपने स्वरूप-सुख का अनुभव प्राप्त कर लेता है ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे अष्टविंशोऽध्यायः ॥२८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन्तीसवां अध्याय

(संक्षिप्त भक्ति-योग)

उद्धव उवाच

सुदुष्करामिमां मन्ये योगचर्यामनात्मनः ।
यथाऽञ्जसा पुमान् सिद्ध्येत्तन्मे ब्रूह्यंजसाऽच्युत १॥

उद्धवजी बोले–हे कृष्ण ! मैं यह मानता हूँ कि जिसने अपने मनको वश में न किया हो, उसको योग-साधन करना कठिनहै, ऐसा आपने भी कहा है, इसलिये बिना श्रम के जिस प्रकार मोक्ष मिल जाय ऐसा उपाय मुझे सरल रीति से समझा कर कहिये ॥ १ ॥

प्रायशः पुंडरीकाक्ष युंजंतो योगिनो मनः ।
विषीदंत्यसमाधानान्मनोनिग्रहकर्शिताः ॥ २ ॥

हे कमल नयन ! योगीजन बहुधा मनको वश में करने के लिये अत्यन्त उपाय करते हैं, परन्तु इसपर भी जब वह वश में नहीं होता तब थककर दुःखी हो जाते हैं ॥२॥

अथात आनंददुघं पदांबुजं हंसाः श्रयेरन्नर-विंदलोचन । सुखं नु विश्वेश्वर योगकर्मभिस्त्व न्माययाऽमी विहता न मानिनः ॥ ३ ॥

हे कमलाक्ष ! इसलिये सार-असार को जानने वाले दक्ष पुरुष समस्त आनन्द की पूर्ति करनेवाले आपके चरण-कमलका ही सुख पूर्वक सेवन करते हैं, जो योग और कर्म का अभिमान रखने वाले ऐसा नहीं करते, वे मायासे पराभव पातेहैं अर्थात् आपके भक्तों को माया दुःखी नहीं करती और वे आपकी कृपा से कृतार्थ होजाते हैं ॥३॥

किंचित्रमच्युततवैतदशेषबंधो दासेष्वनन्यशरणेषु यदात्मसात्त्वम् । योऽरोचयत्सह मृगैः स्वयमीश्वराणां श्रीमत्किरीटतटपीडित पादपीठः ॥ ४ ॥

हे श्रीकृष्ण ! हे सभी के बन्धु ! जो आपके अनन्य भक्त हैं उनके वशमें आप भी रहते हैं–यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि यद्यपि आप स्वयं इतने वैभव पूर्ण हैं कि ब्रह्मादि देवता आप के चरण पृष्ठ पर अपने उत्तम मुकुटों के अग्र भाग घिसा करतेहैं, फिरभी आपने रामावतार में वानरों के साथ प्रेम-पूर्ण मित्रता की थी ॥४॥

तं त्वाऽखिलात्मदयितेश्वरमाश्रितानां सर्वार्थदं स्वकृतविद्विसृजेत को नु । को वा भजेत्किमपि विस्मृतयेऽनु भूत्यै किं वा भवेन्न तव पादरजो जुषां नः ॥ ५ ॥

इसलिये आप आश्रितजनों के समस्त पुरुषार्थ सिद्ध करने वाले, प्राणी मात्र के आत्म-रूप परम प्रिय और ईश्वर होने से अवश्य ही भजने योग्य हैं, भला आपको छोड़कर ऐश्वर्य या मोक्ष के लिये कौन पुरुष दूसरे देवताओं अथवा धर्म ज्ञान आदि साधनोंका सेवन करेगा ? क्योंकि आपकेही सेवन से तो सर्व सिद्धि तथा मोक्ष मिल सकती है ॥५॥

नैवोपयंत्यपचितिं कवयस्तवेश ब्रह्मायुषापि कृतमृद्धमुदः स्मरंतः । योंऽतर्बहिस्तनुभृतामशुभं विधुन्वन्नाचार्यचैत्य वपुषा स्वगतिं व्यनक्ति॥ ६ ॥

हे प्रभु ! आप बाहर तो आचार्य रूप से और भीतर अन्तर्यामी रूप से प्राणियों की विषय-वासनायें छुड़ाकर उनको अपने स्वरूप का दर्शन देतेहैं, आपके इस उपकार का स्मरण करते हुए परमानंद पूर्ण ज्ञानी जन ब्रह्मा समान आयु पाकरभी उसका बदला नहीं चुका सकते, वरन् वह तो अत्यन्त सेवा और आत्म-निवेदनही से चुकता होसकताहै ॥

श्रीशुक उवाच

इत्युद्धवेनात्यनुरक्तचेतसा पृष्टो जगत्क्रीडनकः स्वशक्तिभिः । गृहीतमूर्तित्रय ईश्वरेश्वरो जगाद सप्रेममनोहरस्मितः ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–जब अत्यन्त प्रीति-पात्र उद्धवजी ने इस प्रकार प्रश्न किया तब जिनके लिये जगत् एक खिलौना है और जिन्होंने अपनी सत, रज और तम शक्तियों से ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश यह तीन रूप धारण किये हैं, वे सर्व लोकेश्वर श्रीकृष्ण भगवान् मन्द मनोहर मुसकान के साथ प्रीति पूर्वक यह कहने लगे ॥७॥

श्रीभगवानुवाच

हंत ते कथयिष्यामि मम धर्मान्सुमंगलान् ।
यानश्रद्धया चरन्मर्त्यो मृत्युं जयति दुर्जयम्॥ ८ ॥

श्रीभगवान् बोले–हे प्रिय उद्धव ! अब मैं तुम से अत्यन्त मङ्गलकारी अपने सहज धर्म कहता हूँ,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिनका श्रद्धा पूर्वक अनुष्ठान करता हुआ पुरुष मृत्यु को सहज ही में जीत लेता है–सुनो ॥८॥

कुर्यात्सर्वाणि कर्माणि मदर्थं शनकैः स्मरन् ।
मय्यर्पितमनश्चित्तो मद्धर्मात्ममनोरतिः ॥ ९ ॥

मेरा स्मरण करता रहे; मेरे ही निमित्त कर्म करे, धीरे-धीरे चित्त और मनको मुझमें ही लगा दे और उनकी रुचि मेरे ही धर्मों में रक्खे ॥९॥

देशान्पुण्यान्संश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान् ।
देवासुरमनुष्येषु मद्भक्ताचरितानि च ॥१०॥

मेरे साधु भक्तोंके निवास-स्थान जहाँ हों उन्हीं देशों में निवास करे, मेरे जो भक्त देव, असुर या मनुष्योंमें पहले होचुकेहैं उन्हींके अनुसार कर्मकरे॥

पृथक्सत्रेण वा मह्यं पर्वयात्रामहोत्सवान् ।
कारयेद्गीतनृत्याद्यैर्महाराजविभूतिभिः ॥११॥

अकेले ही या दूसरोंके साथ मेरे सामने नाच गान आदि करे, चक्रवर्त्तीकी विभूतियाँ चमर-छत्र आदि मेरे अर्पण करे और पर्वणी सम्बन्धी यात्रा तथा महोत्सव करे ॥११॥

मामेव सर्वभूतेषु बहिरंतरपावृतम् ।
ईक्षेतात्मनि चात्मानं यथा खममलाशयः ॥१२॥

निर्मल हृदय वाले भक्त को सब प्राणियों तथा अपने आत्मा में मुझे सदैव विराजमान् देखना चाहिये, मैं आकाशकी भाँति असंग होनेके कारण सब में रहता हुआ भी आवरण-रहित और बाहर भीतर पूर्ण हूँ ॥१२॥

इति सर्वाणि भूतानि मद्भावेन महाद्युते ।
सभाजयन्मन्यमानो ज्ञानं केवलमाश्रितः ॥१३॥

हे परम प्राज्ञ ! इसप्रकार केवल ज्ञान-दृष्टि रख कर जो प्राणी मात्र को मेरा ही रूप मानता हुआ उनका सत्कार करे, उसे पण्डित मानता हूँ ॥१३॥

ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिंगके ।
अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक् पंडितो मतः ॥१४॥

ब्राह्मण और नीच, चोर और ब्रह्मण्य, सर्प और चिनगारी तथा शान्त और क्रूर में जो पुरुष समदृष्टि रखकर मुझको ही देखता है वह पंडित कहलाता है ॥१४॥

नरेष्वभीक्ष्णं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात् ।
स्पर्धासूयातिरस्काराः साहंकारा वियंति हि ॥१५॥

जो पुरुष सब मनुष्यों में मेरा ही भाव रखता है उसके ईर्ष्या, निन्दा, तिरस्कार और अहङ्कार-ये स्वभाव अवश्य ही नष्ट होजाते हैं ॥१५॥

विसृज्य स्मयमानान्स्वान्दृशं व्रीडां च दैहिकीम् ।
प्रणमेद्दंडवद्भूमावाश्वचांडालगोखरम् ॥१६॥

इसलिये देहाभिमान से होने वाले ऊंच-नीच के विचार को तथा उससे होने वाली लज्जा को छोड़कर कुत्ते, चांडाल, बैल और गधे तक को प्रणाम करे, इसमें मित्र हंसी उड़ावें तो उसकी चिन्ता न करे ॥१६॥

यावत्सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते ।
तावदेवमुपासीत वाङ्मनः कायवृत्तिभिः ॥१७॥

जब तक प्राणी मात्र में मेरी भावना उत्पन्न न होजाय तब तक इस विधि से बन, वाणी और देह की वृत्तियों से उपासना करता रहे ॥१७॥

सर्वं ब्रह्मात्मकं तस्य विद्ययाऽऽत्ममनीषया ।
परिपश्यन्नुपरमेत्सर्वतो मुक्तसंशयः ॥१८॥

इस प्रकार करनेसे सबमें ईश्वर-बुद्धि होजाती है कि जिससे ब्रह्म-विद्या प्राप्त होजातीहै और ब्रह्म विद्या प्राप्त होने पर सारे संशय दूर होजाते हैं१८॥

अयं हि सर्वकल्पानां समीचीनो मतो मम ।
मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः ॥१९॥

संशय निवृत्त होने से सब ब्रह्म रूपही दीखने लगता है, मेरा यह मत है कि प्राणी मात्र में मन, वचन और काया की वृत्तियों द्वारा मेरा भाव रखना ही सब उपायों में श्रेष्ठ है ॥१९॥

न ह्यंगोपक्रमे ध्वंसो मद्धर्मस्योद्धवाण्वपि ।
मया व्यवसितः सम्यङ् निर्गुणत्वादनाशिषः ॥२०॥

हे उद्धव ! मुझसे संबन्धित निष्काम करतेहुए यदि कभी कुछ भूल भी होजाय तोभी उससे कोई हानि नहीं होसकती, क्योंकि निर्गुणताके लिये मैंने ही इस धर्म को उत्तम निश्चय किया है ॥२०॥

योयो मयि परे धर्मः कल्प्यते निष्फलाय चेत् ।
तदायासो निरर्थः स्याद्भयादेरिव सत्तम ॥२१॥

हे उद्धव ! भय या शोक के कारण भागना या चिल्लाना आदि ऐसे ही क्लेशों के समान जो-जो व्यर्थ के लौकिक परिश्रम हुआ करते हैं, यदि ऐसे व्यर्थ काममें मुझ सर्वपरको निष्काम भावसे अर्पण करदिये जाँय तो वे भी धर्म रूप होजाते हैं ॥२१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम् ।
यत्सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति माऽमृतम् ॥२२॥

इस मिथ्या और अविनाशी मनुष्य शरीर से इस जन्ममें मुझ सत्य तथा अविनाशी के स्वरूपका प्राप्त होजाना ही बुद्धिमानों की बुद्धि की चतुरता है और विवेकी पुरुषों का विवेक है ॥२२॥

एष तेऽभिहितः कृत्स्नो ब्रह्मवादस्य संग्रहः ।
समासव्यासविधिना देवानामपि दुर्गमः ॥२३॥

मैंने यह ब्रह्म-वाद का समस्त संग्रह तुमसे संक्षेप तथा विस्तार पूर्वक कह सुनायाहै कि जिस का मिलना देवताओं को भी कठिन है ॥२३॥

अभीक्ष्णशस्ते गदितं ज्ञानं विस्पष्टयुक्तिमत् ।
एतद्विज्ञाय मुच्येत पुरुषो नष्टसंशयः ॥२४॥

मैंनेयह अनेक युक्तियोंके साथ जो विषय तुमसे बारंबार कहाहै, उसके जाननेसे संशय निवृत्त हो जाने के कारण पुरुष मुक्त होजाता है ॥२४॥

सुविविक्तं तव प्रश्नं मयैतदपि धारयेत् ।
सनातनं ब्रह्म गुह्यं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥२५॥

मैंने जो तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर दिया है, यदि उसको ही कोई मनमें धारण करे, कहे या सुने-तो वह भी वेदके रहस्यरूप ब्रह्मको प्राप्त होसकताहै ॥

य एतन्मम भक्तेषु सम्प्रदद्यात्सुपुष्कलम् ।
तस्याहं ब्रह्मदायस्य ददाम्यात्मानमात्मना ॥२६॥

जो पुरुष मेरे भक्तों को विस्तार पूर्वक ये ज्ञान सिखलाता है उस पुरुष को मैं स्वयं ही अपना स्वरूप देता हूँ ॥२६॥

य एतत्समधीयीत पवित्रं परमं शुचि ।
स पूयेताहरहर्मां ज्ञानदीपेन दर्शयन् ॥२७॥

जो मनुष्य इस परमपवित्र तथा दूसरों को भी पवित्र करने वाले इस आख्यान का प्रति दिन पाठ करे, वह ज्ञान रूपी दीपक से मेरे स्वरूप को देख कर पवित्र हो जाता है ॥ २७॥

य एतच्छ्रद्धया नित्यमव्यग्रः शृणुयान्नरः ।
मयि भक्तिं परां कुर्वन् कर्मभिर्न स बध्यते ॥२८॥

जो मनुष्य श्रद्धा और सावधानी के साथ इस आख्यान को प्रति दिन सुनता है वह मेरी उत्तम भक्ति उत्पन्न होने से कर्मों में नहीं बंधता ॥२८॥

अप्युद्धव त्वया ब्रह्म सखे समवधारितम् ।
अपि ते विगतो मोहः शोकश्चासौ मनोभवः ॥२९॥

हे सखे ! क्या तुम्हारे ध्यान में भली भाँति परब्रह्म आ चुका है ? क्या तुम्हारा सन्देह और मोह निवृत्त हो चुका ? ॥ २९॥

नैतत्त्वया दांभिकाय नास्तिकाय शठाय च ।
अशुश्रूषोरभक्ताय दुर्विनीताय दीयताम् ॥३०॥

तुम यह ज्ञान दंभी, नास्तिक, छली, असेवक, अभक्त और अनम्र मनुष्य को न देना ॥३०॥

एतैर्दोषैर्विहीनाय ब्रह्मण्याय प्रियाय च ।
साधवे शुचये ब्रूयाद्भक्तिः स्याच्छूद्रयोषिताम् ॥३१॥

वरन् जिसमें यह दोष न हों और जो ब्राह्मणों का भक्त, प्रिय, साधु तथा पवित्रहो, उसे यह ज्ञान देना, यदि स्त्री या शूद्र में भक्ति हो तो उसे भी यह बतला देना ॥ ३१ ॥

नैतद्विज्ञाय जिज्ञासोर्ज्ञातव्यमवशिष्यते ।
पीत्वा पीयूषममृतं पातव्यं नावशिष्यते ॥३२॥

जैसे बहुत ही मीठा अमृत पी चुकनेपर किसी दूसरे पदार्थ के पाने की इच्छा नहीं रहती, इसी प्रकार ज्ञान के अभिलाषी को इस विषय का ज्ञान होजानेपर फिर कुछभी जाननेको शेष नहीं रहता॥

ज्ञाने कर्मणि योगे च वार्तायां दंडधारणे ।
यावानर्थो नृणां तात तावांस्तेऽहं चतुर्विधः ॥३३॥

हे उद्धव ! दूसरे भिन्न २ फल पाने के साधन जानने के योग्य बहुत से हैं, परन्तु वे अभक्तों के लिये ही हैं. परन्तु तुम जो मेरे भक्तहो, इसलिये तुम को तो ज्ञान, कर्म, योग, कृषि आदि व्यापार और राजनीति से प्राप्त होने वाले धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष मैं ही हूँ, इसलिये तुम तो केवल मेरी शरण लेकर ही रहो ॥३३॥

मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे ।
तदा मृतत्वं प्रतिपद्यमानो मयात्मभूयाय च कल्पते वै ॥३४॥

जब मनुष्य सब कर्म छोड़कर, अपना आत्मा मेरे अर्पण कर देताहै, तब मैं उसका परम कल्याण करना चाहता हूँ, मेरी इच्छा से वह मेरे स्वरूप या मेरे समान ऐश्वर्य को पा जाता है ॥३४॥

श्रीशुक उवाच

स एवमादर्शितयोगमार्गस्तदोत्तमश्लोकवचो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निशम्य । बद्धांजलिः प्रीत्युपरुद्धकंठो न किंचिदूचेऽश्रुपरिप्लुताक्षः ॥३५॥

श्रीशुकदेवजी बोले-जब भगवान् ने इसप्रकार योग-मार्ग बतलाया तब उन उत्तम कीर्तिवान् प्रभु का वचन सुनकर हाथ जोड़कर सामने खड़े रहे, परन्तु आँसुओं से नेत्र भर जाने और गला रुँध जाने से कुछ बोल न सके ॥३५॥

विष्टभ्य चित्तं प्रणयावघूर्णं धैर्येण राजन्बहु मन्यमानः । कृतांजलिः प्राह यदुप्रवीरं शीर्ष्णा स्पृशंस्तच्चरणारविंदम् ॥३६॥

हे राजन् ! फिर स्नेह से चंचल हुए चित्तको धैर्य पूर्वक स्थिर करके अपनेको कृतार्थ मानते हुए और हाथ जोड़कर खड़े हुए उद्धवजीने अपने सिर से भगवान् के चरण कमल का स्पर्श करके इस भाँति विनय की ॥३६॥

उद्धव उवाच

विद्रावितो मोहमहांधकारो य आश्रितो मे तव सन्निधानात् । विभावसोः किं नु समीपगस्य शीतं तमो भीः प्रभवंत्यजाद्य ॥३७॥

उद्धवजी बोले-हे ब्रह्माजी के भी उत्पन्नकर्त्ता ! मैंने जो अज्ञान रूप अन्धकारका आसरा लिया था वह आपके समागम से दूर होगयाहै, भला सूर्यके पास ठंडक और अँधेरा कैसे भय दे सकते हैं ?

प्रत्यर्पितो मे भवतानुकंपिना भृत्याय विज्ञानमयः प्रदीपः । हित्वा कृतज्ञस्तव पादमूलं कोऽन्यत्समीयाच्छरणं त्वदीयम् ॥३८॥

आपने अत्यन्त दया करके मुझ सेवकको यह विज्ञान-दीप दिया है, भला ऐसा कौन है जो आप के इस उपकार को जानकर किसी दूसरे की शरण जायगा ? ॥ ३८ ॥

वृक्णश्च मे सुदृढः स्नेहपाशो दाशार्हवृष्ण्यंधकसात्वतेषु । प्रसारितः सृष्टिविवृद्धये त्वया स्वमायया ह्यात्मसुबोधहेतिना ॥३९॥

सृष्टि बढ़ाने के लिये आपने अपनी माया से दाशार्ह, वृष्णि, अन्धक और सात्वत आदि कुलों के यादवों की दृढ़ स्नेह-पाश जो मेरे गले में बाँध रक्खी थी, वह अपने ही आत्म-तत्व के ज्ञान रूप शस्त्र से आज काट डाली है ॥ ३९ ॥

नमोऽस्तु ते महायोगिन् प्रपन्नमनुशाधि माम् । यथा त्वच्चरणांभोजे रतिः स्यादनपायिनी ॥४०॥

हे महायोगिन् ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ, मुझ शरणागत को ऐसी शिक्षा दीजिये कि जिसमें आपके चरणारविन्दकी अविचल प्रीति बनी रहे ॥

श्रीभगवानुवाच

गच्छोद्धव मयादिष्टो बदर्याख्यं ममाश्रमम् । तत्र मत्पादतीर्थोदे स्नानोपस्पर्शनैः शुचिः ॥४१॥

श्रीभगवान् बोले-हे उद्धव ! तुम मेरी आज्ञासे मेरे बद्रिकाश्रम को जाओ, वहाँ मेरे चरण-कमल से निकलीहुई अलकनन्दा नामक गङ्गा तीर्थमें स्नान तथा आचमन करके पवित्र हो जाओगे ॥४१॥

ईक्षयाऽलकनंदाया विधूताशेषकल्मषः । वसानो वल्कलान्यंग वन्यभुक् सुखनिस्पृहः॥४२॥

हे उद्धव ! तुम्हारे पाप मात्र अलकनन्दा के दर्शन ही से कट जाँयगे, फिरभी तुम वहाँ वल्कल पहनना, वन-फल खाना और लोक-सुख की इच्छा न करना॥ ४२ ॥

तितिक्षुर्द्वंद्वमात्राणां सुशीलः संयतेंद्रियः । शांतः समाहितधिया ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥४३॥

सर्दी-गर्मी आदि द्वन्द्व सहन करना, सरलता और शान्ति रखना तथा इन्द्रिय-निग्रह करते हुए बुद्धिको ज्ञान-विज्ञानसहित समाधिमें स्थिरकरना।

मत्तोऽनुशिक्षितं यत्ते विविक्तमनुभावयन् । मय्यावेशितवाक्चित्तो मद्धर्मनिरतो भव । अतिव्रज्य गतीस्तिस्रो मामेष्यसि ततः परम्॥४४॥

मुझसे जो ब्रह्म-विद्या तुम ने पढ़ी है, उसका सदैव मनन और अध्यास रखना, केवल मुझमें ही वाणी और मनको लगाकर मेरे ही धर्मों में निरंतर प्रीति रखना, ऐसा करनेसे तुम त्रिगुणमय गतियों को पार करके उनसे आगे मुझे प्राप्त हो जाओगे ॥

श्रीशुक उवाच

स एवमुक्तो हरिमेधसोद्धवः प्रदक्षिणं तं परिसृत्य पादयोः । शिरो निधायाश्रुकलाभिरार्द्रधीर्न्यषिंचदद्वंद्वपरोऽप्यपक्रमे ॥४५॥

श्रीशुकदेवजी बोले-संसारको हरण करनेवाली बुद्धि के धारण करने वाले भगवान् ने जब इस प्रकार आज्ञा दी; तब उद्धव स्वयं सुख-दुःख से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुक्त होते हुए भी विदाईके समय भगवान् के स्नेह से उनका हृदय भर आया, उन्होंने भगवान् की परिक्रमा करके उनके चरणों में मस्तक रखकर अश्रु-विन्दुओं से उनको भिगो दिया ॥४५॥

सुदुस्त्यजस्नेहवियोगकातरो न शक्नुवंस्तं परिहातुमातुरः। कृच्छ्रं ययौ मूर्धनि भर्तृपादुके बिभ्रन्नमस्कृत्य ययौ पुनः पुनः ॥४६।

अत्यन्त दुस्त्यज स्नेह के वियोगसे कायर बन कर भगवान्को त्यागने से असमर्थ उद्धवजी बहुत ही व्याकुल होगये, फिर भगवान् की कृपा से पाई हुई उनकी पादुकाओं को शिर पर धारण करके, प्रभु का विशेष आग्रह होने से उनको बारंबार प्रणाम करके चल दिये ॥४६॥

ततस्तमंतर्हृदि संनिवेश्य गतो महाभागवतो विशालाम् । यथोपदिष्टां जगदेकबंधुना तपः समास्थाय हरेरगाद्गतिम् ॥४७॥

फिर भगवान् के स्वरूपको भले प्रकार हृदय में धारण करके उद्धवजी बद्रिकाधाम पहुंचे और वे परम वैष्णव जगत् के मुख्य सखा श्रीकृष्ण के उपदेश के अनुसार धारणा रखकर प्रभु की गति को प्राप्त हुए ॥४७॥

य एतदानंदसमुद्रसंभृतं ज्ञानामृतं भागवताय भाषितम् । कृष्णेन योगेश्वरसेवितांघ्रिणा सच्छ्रद्धयाऽऽसेव्य जगद्विमुच्यते ॥४८॥

जिनके चरणों को योगेश्वर सेवन करतेहैं, उन श्रीकृष्ण भगवान् ने आनन्दरूपी समुद्र मय यह ज्ञानामृत परम भागवत उद्धवजी को दिया है, जो मनुष्य इसको श्रद्धा-पूर्वक सेवन करे वह संसार से मुक्त होजाय ॥४८॥

भवभयमपहंतुं ज्ञानविज्ञानसारं निगमकृदुपजह्रे भृंगवद्वेदसारम् ।अमृतमुदधितश्चापाययद्भृत्यवर्गान् पुरुषमृषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि ॥४९॥

जिन वेदकर्त्ता श्रीभगवान् ने संसार का भय दूर करने के लिये भ्रमर की भाँति वेद के साररूप इस ज्ञान-विज्ञान रूपी श्रेष्ठ अमृत का उद्धार किया है, जिन्होंने समुद्र से अमृत निकालकर देवताओं को और वेदों में से वाणी रूप अमृत निकाल कर अपने दास भक्तों को पिलाया है, ऐसे श्रीकृष्ण भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ॥४९॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

तीसवां अध्याय

(यदुकुल संहार)

राजोवाच

ततो महाभागवत उद्धवे निर्गते वनम् ।
द्वारवत्यां किमकरोद्भगवान्भूतभावनः ॥१॥

परीक्षित बोले–परम भक्त उद्धवजी के बन में चले जाने पर विश्व-रक्षक भगवान् ने द्वारका में और क्या किया ? ॥१॥

ब्रह्मशापोपसंसृष्टे स्वकुले यादवर्षभः ।
प्रेयसीं सर्वनेत्राणां तनुं स कथमत्यजत् ॥२॥

अपने कुल को ब्राह्मणों के शाप से नष्ट प्रायः जानकर यादवोत्तम श्रीकृष्ण भगवान्ने सब लोगों के नेत्रों को प्रिय लगने वाले अपने शरीर से कैसे परित्याग किया ? ॥२॥

प्रत्याक्रष्टुं नयनमबला यत्र लग्नं न शेकुः कर्णाविष्टं न सरति ततो यत्सतामात्मलग्नम् । यच्छ्रीर्वाचां जनयति रतिं किं नु मानं कवीनां दृष्ट्वा जिष्णोर्युधि रथगतं यच्च तत्साम्यमीयुः॥ ३ ॥

जिस स्वरूप में लगे हुए नेत्रोंको स्त्रियाँ खींच न सकीं, जो स्वरूप श्रवणों द्वारा हृदय में प्रविष्ट होकर साधुओं के मनपर स्थाई रूप से अङ्कितसा होजाता है, जो स्वरूप वर्णन करती हुई कवियों की वाणी प्रीति में लहरा उठती है, जिस स्वरूप को अर्जुन के रथपर देखकर महाभारत के युद्ध में वीर गति को पाये हुए योधागण सारूप्य मुक्तिको प्राप्त हो गये ॥३॥

श्रीशुक उवाच

दिवि भुव्यंतरिक्षे च महोत्पातान् समुत्थितान् ।
दृष्ट्वासीनान् सुधर्मायां कृष्णः प्राह यदूनिदम्॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–जब आकाश में सूर्य के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मण्डल, पृथ्वी में कम्प और अन्तरिक्ष में दिशाओं का दाह आदि बड़े-बड़े उत्पात होने लगे, तब उन को देखकर सुधर्मा सभा में बैठे हुए यादवों से श्री कृष्णजी ने यह कहा ॥४॥

श्रीभगवानुवाच

एते घोरा महोत्पाता द्वार्वत्यां यमकेतवः ।
मुहूर्त्तमपि न स्थेयमत्र नो यदुपुंगवाः ॥ ५ ॥

श्रीभगवान् बोले–हे यादवश्रेष्ठो ! द्वारका में ये मृत्युकी सूचना देनेवाले अनेक महा भयङ्कर और बड़े-बड़े उत्पात हो रहे हैं, इसलिये अब हमलोगों को यहाँ दो घड़ी भी ठहरना उचित नहीं ॥ ५ ॥

स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च शंखोद्धारं व्रजंत्वितः ।
वयं प्रभासं यास्यामो यत्र प्रत्यक् सरस्वती॥ ६ ॥

यहाँ से स्त्रियाँ, बालक तथा बूढ़े लोगों को शंखोद्धार नामक तीर्थ पर भेजदो, उनके जाने पर हम लोग प्रभास क्षेत्र चलेंगे कि जहाँ पर पश्चिम की ओर बहने वाली सरस्वती है ॥६॥

तत्राभिषिच्यु शुचय उपोष्य सुसमाहिताः ।
देवताः पूजयिष्यामः स्नापनालेपनार्हणैः ॥ ७॥

वहाँ स्नान और उपवास करते हुए पवित्र हो कर सावधानी के साथ स्नान, लेपन और अर्घ्य आदि से देवताओं का पूजन करेंगे ॥७॥

ब्राह्मणांस्तु महाभागान्कृतस्वस्त्ययना वयम् ।
गोभूहिरण्यवासोभिर्गजाश्वरथवेश्मभिः ॥ ८ ॥

हम लोग वहाँ पर स्वस्तिवाचन करायेंगे और भाग्यशाली ब्राह्मणों का गौ, भूमि, स्वर्ण, वस्त्र, घोड़ा, हाथी, रथ गृह दान करके पूजन करेंगे॥८॥

विधिरेष ह्यरिष्टघ्नो मंगलायनमुत्तमम् ।
देवद्विजगवां पूजा भूतेषु परमो भवः ॥ ९ ॥

यह विधि अनर्थोंको मिटाने वाली तथा उत्तम कल्याण करने वालीहै, क्योंकि देवता, ब्राह्मण और गौओं का पूजन देह धारियों का विशेष कल्याण करता है ॥ ९ ॥

इति सर्वे समाकर्ण्य यदुवृद्धा मधुद्विषः ।
तथेति नौभिरुत्तीर्य प्रभासं प्रययू रथैः ॥१०॥

श्रीकृष्ण भगवान् का यह वचन सुनकर सब यदु वृद्ध लोग "जो आज्ञा" ऐसा कहकर नौकाओं में बैठकर समुद्र के पार पहुंचे और फिर रथों के द्वारा प्रभास क्षेत्र आये ॥१०॥

तस्मिन्भगवता दिष्टं यदुदेवेन यादवाः ।
चक्रुः परमया भक्त्या सर्वश्रेयोपबृंहितम् ॥११॥

यादव-देव श्रीकृष्ण भगवान् के कथनानुसार सब यादवों ने प्रभास क्षेत्र में पहुँच कर कृत किये और उसके सिवाभी अनेक कल्याण-कारी कर्मकिये॥

ततस्तस्मिन्महापानं पपुर्मैरेयकं मधु दिष्टविभ्रंशितधियो यद्वद्रवैर्भ्रश्यते मतिः ॥१२॥

फिर होनहार से नष्ट बुद्धि वाले यादवोंने इस प्रभास ऐसे पवित्र क्षेत्रमें मैरेयक नामकी मीठेरस वाली मदिरा का पान किया कि जिससे बुद्धि मारी जाती है ॥१२॥

महापानाभिमत्तानां वीराणां दृप्तचेतसाम् ।
कृष्णमायाविमूढानां संघर्षः सुमहानभूत् ॥१३॥

भगवान् की मायासे मोहित तथा मदिरा-पान से उन्मत्त देहका अभिमान रखनेवाले वीर यादवों में परस्पर महान् कलह उत्पन्न होगया ॥१३॥

युयुधुः क्रोधसंरब्धा वेलायामाततायिनः ।
धनुर्भिरसिभिर्भल्लैर्गदाभिस्तोमरर्ष्टिभिः ॥१४॥

क्रोध के वेग से परस्पर बध को तत्पर हुए शस्त्रधारी यादव गण समुद्र तट पर धनुष, खड्ग, गदा; तोमर, भाला और ऋष्टियोंसे युद्ध करनेलगे।

पतत्पताकै रथकुंजरादिभिः खरोष्ट्रगोभिर्महिषैर्नरैरपि । मिथः समेत्याश्वतरैः सुदुर्मदा न्यहन् शरैर्द्विरिव द्विपा वने ॥१५॥

जैसे हाथी बनमें दाँतों से परस्पर प्रहार करते हैं, वैसे ही वे दुर्मद यादव लोग फहराती हुई ध्वजाओं वाले रथ, हाथी, गधे, ऊँट, बैल, मनुष्यों और खच्चरों से परस्पर भिड़कर बाणों का प्रहार करने लगे ॥१५॥

प्रद्युम्नसांबौ युधि रूढमत्सरावक्रूरभोजावनिरुद्ध सात्यकी । सुभद्रसंग्रामजितौ सुदारुणौ गदौ सुमित्रासुरथौ समीयतुः ॥१६॥

प्रद्युम्न और सांब, अक्रूर और कृतवर्मा, अनिरुद्ध और सात्यकि, सुभद्र और संग्रामजित, श्री कृष्णजी का भाई गद और उसी नाम वाला भगवान् का पुत्र, सुमित्र और असुरथ–यह लोग अत्यन्त घोर स्वभाव के मत्सर से चूर होकर परस्पर द्वन्द्व युद्ध करने लगे ॥१६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्ये च ये वै निशठोल्मुकादयः सहस्रजिच्छत
जिद्भानुमुख्याः। अन्योऽन्यमासाद्य मदांधकारिता
जघ्नुर्मुकुंदेन विमोहिता भृशम् ॥१७॥

और भी भगवान् की माया से मोहित निशठ उल्मुक, सहस्रजित्, शतजित और भानु आदि यादव-गण मदिरा से मतवाले तथा अन्धेसे होकर परस्पर भिड़कर एक-दूसरे को मारने लगे ॥१७॥

दाशार्हवृष्ण्यंधकभोजसात्वता मध्वर्बुदा माथुर
शूरसेनाः। विसर्जनाः कुकुराः कुंतयश्च मिथस्त-
तस्तेऽथ विसृज्य सौहृदम् ॥१८॥

दाशार्ह, वृष्णि, अंधक भोज, सात्वत, मधु, विसर्जन, कुकुर. कुन्तिवंशी, अर्बुद, माथुर और शूरसेन देश के यादव गण संबंध भूलकर परस्पर प्राण लेने लगे ॥१८॥

पुत्रा अयुध्यन्पितृभिर्भ्रातृभिश्च स्वस्रीयदौहित्र
पितृव्यमातुलैः। मित्राणि मित्रै सुहृदः सहृद्भि
र्ज्ञातींस्त्वहन्ज्ञातय एव मूढाः ॥१९॥

पुत्र पितासे, मामा भानजोंसे, दोहिते नानाओं से,भतीजे चाचाओंसे और मित्र मित्रोंसे युद्धकरने लगे, इस प्रकार मूर्ख बने हुए ये जाति वाले अपने जाति वालों को ही मारने लगे ॥१९॥

शरेषु क्षीयमाणेषु भज्यमानेषु धन्वसु ।
शस्त्रेषु क्षीयमाणेषु मुष्टि भिर्जह्व रेरकाः ॥२०॥

जब उनके बाण समाप्त होचुके धनुष टूट गये और शस्त्रभी न रहे, तब वे समुद्र-तट पर उगे हुए ऐरे को अपनी मुट्ठियों से उखाड़ने लगे ॥२०॥

ता वज्रकल्पा ह्यभवन्परिघा मुष्टिना धृताः ।
जघ्नुर्द्विषस्तैः कृष्णेन वार्यमाणास्तु तं च ते॥२१॥

हाथ में लेते ही ऐरे बज्र की नाईं दुधारे रूप होगये, उन्हीं से वे एक दूसरे शत्रुओं को मारने लगे, श्रीकृष्णजी ने जब बीच-बचाव किया तो वे लोग उनपर भी प्रहार करने लगे ॥२१॥

प्रत्यनीकं मन्यमाना बलभद्रं च मोहिताः ।
हंतुं कृतधियो राजन्नापन्ना आततायिनः ॥२२॥

हे राजन् ! वे मोहित दशाको प्राप्त यादव गण श्रीकृष्ण और बलरामजी को भी शत्रु समझ कर उन्हें मारने के लिये सामने आये ॥२२॥

अथ तावपि संक्रुद्धावुद्यम्य कुरुनंदन ।
एरकामुष्टिपरिघौ चरंतौ जघ्नतुर्युधि ॥२३॥

हे कुरुनन्दन ! तब तो दोनों भाई भी क्रोध में आकर मुट्ठियों में दुधारे रूप बने हुए ऐरेको लेकर विचरते हुए यादवों को मारने लगे ॥२३॥

ब्रह्मशापोपसृष्टानां कृष्णमायावृतात्मनाम् ।
स्पर्द्धाक्रोधः क्षयं निन्ये वैणवोऽग्निर्यथा वने॥२४॥

ब्रह्म शाप से मोहित तथा भगवान् की माया से घिरे हुए उन यादवों की पारस्परिक स्पर्द्धा से बढ़े हुए क्रोध के कारण उन सबका ऐसे ही संहार होगया. जैसे बाँसों से प्रकट हुई अग्निसे बाँसोंका बन नाश हो जाता है ॥ २४ ॥

एवं नष्टेषु सर्वेषु कुलेषु स्वेषु केशवः ।
अवतारितो भुवो भार इति मेनेऽवशेषितः ॥२५॥

इस प्रकार जब अपने सभी यादव नष्ट हो गये, तब शेष बचे हुए श्रीकृष्ण भगवान्ने भूमिभार को उतरा हुआ माना ॥२५॥

रामः समुद्रवेलायां योगमास्थाय पौरुषं ।
तत्याज लोकं मानुष्यं संयोज्यात्मानमात्मनि २६॥

श्रीबलरामजी ने समुद्र के किनारे पधार कर परमात्मा के ध्यान-योग द्वारा अपने स्वरूपको पर-ब्रह्म में लगाकर नर-देह को त्याग दिया ॥२६॥

रामनिर्याणमालोक्य भगवान् देवकीसुतः ।
निषसाद धरोपस्थे तूष्णीमासाद्य पिप्पलम् ॥२७॥

श्रीबलरामजी का निर्याण (जाना) देखकर श्रीदेवकीनंदन कृष्ण भगवान् पीपलका आश्रय लेकर मौनता-पूर्वक भू-तल पर बैठ गये ॥२७॥

बिभ्रच्चतुर्भुजं रूपं भ्राजिष्णु प्रभया स्वया ।
दिशो वितिमिराः कुर्वन् विधूम इव पावकः॥२८॥

उस समय भगवान् ने अपना देदीप्यमान् चतुर्भुजी स्वरूप धारण किया, जिसकी कान्ति से दिशायें अन्धकार-रहित होरही थीं और भगवान् का स्वरूप निर्धूम्र अग्नि की भाँति दीप्तमान् हो रहा था ॥ २८ ॥

श्रीवत्सांकं घनश्यामं तप्तहाटकवर्चसम् ।
कौशेयांबरयुग्मेन परिवीतं सुमंगलम् ॥२९॥

श्रीवत्सका चिह्न शोभा देरहा था, मेघ समान श्यामवर्ण, तपेहुए सोनेकी नाईं कांतिमय पीतांबर परम मङ्गलकारी शोभा दे रहा था ॥ २९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुंदरस्मितवक्राब्जं नीलकुंतलमंडितम् ।
पुंडरीकाभिरामाक्षं स्फुरन्मकरकुंडलम् ॥३०॥

मन्द हास्यमय मुखारविन्द, सांवले केशों से शोभायमान् होरहा था, कमलके समान नेत्र प्रकाशमान् हो रहे थे और कानों में मकराकृत कुण्डल दमक रहे थे ॥ ३० ॥

कटिसूत्रब्रह्मसूत्रकिरीटकटकांगदैः ।
हारनूपुरमुद्राभिः कौस्तुभेन विराजितं ॥३१॥

कटिमेखला, यज्ञोपवीत, किरीट कड़े, भुजबंध, हार, नूपुर, अँगूठियाँ और कौस्तुभ मणि प्रकाश दे रही थी ॥ ३१ ॥

वनमालापरीतांगं मूर्तिमद्भिर्निजायुधैः ।
कृत्वोरौ दक्षिणे पादमासीनं पंकजारुणम् ॥३२॥

अङ्गों में बनमाला व्याप्त होरही थी, भगवान्के आयुध मूर्त्ति धरकर उनके पास उपस्थित थे और वे लाल कमल के समान शोभायमान् अपने बायें चरण को दायें जंघे पर रक्खेहुए विराजमान् थे ॥

मुशलावशेषायःखंडकृतेषुर्लुब्धको जरा ।
मृगास्याकारं तच्चरणं विव्याध मृगशंकया ॥३३॥

उसी समय 'जरा' नामक व्याध ने कि जिसने मूसल के शेष भाग से जो बाण बना लिया था-उसी के द्वारा मृग के समान आकार वाले श्रीभगवान् के चरण को मृग ही समझ कर बींध दिया ॥

चतुर्भुजं तं पुरुषं दृष्ट्वा स कृतकिल्बिषः ।
भीतः पपात शिरसा पादयोरसुरद्विषः ॥३४॥

फिर वह व्याध पास पहुँचा तो चतुर्भुज पुरुष को देखकर भयभीत होता हुआ शीघ्र ही सिर के बल उनके चरणों पर गिर पड़ा और बोला कि-

अजानता कृतमिदं पापेन मधुसूदन ।
क्षंतुमर्हसि पापस्य उत्तमश्लोक मेऽनघ ॥३५॥

हे मधुसूदन! हे उत्तम श्लोक! हे अनघ! मैंने यह आपका अपराध बिना जाने किया है, आप मुझ पापी को क्षमा करें ॥३५॥

यस्यानुस्मरणं नृणामज्ञानध्वांतनाशनम् ।
वदंति तस्य ते विष्णो मयाऽसाधु कृतं प्रभो॥३६॥

हे प्रभु! जिनका स्मरण मनुष्यों के अज्ञानरूपी अन्धकार का नाशकारी कहलाता है, उन आपका मैंने अपराध किया है ॥३६॥

मामाशु जहि वैकुंठ पाप्मानं मृगलुब्धकम् ।
यथा पुनरहं त्वेवं न कुर्यां सदतिक्रमम् ॥३७॥

इसलिये हे प्रभु! मुझ मृग के लोभी पापी को शीघ्र ही मार डालिये कि जिससे मैं ऐसे सज्जनों का अपराध न करूँ ॥३७॥

यस्याऽऽत्मयोगरचितं न विदुर्विरंचो रुद्रादयोऽस्य
तनयाः पतयो गिरां ये । त्वन्मायया पिहितदृष्टय
एतदंजः किं तस्य ते वयमसद्गतयो गृणीमः ३८॥

यद्यपि आप इस घटना का कारण ब्राह्मण-शाप को मानतेहों, परन्तु आपकी मायासे अन्धे हुए हम लोग इसे कैसे कह सकते हैं? क्योंकि जिन आप की स्वाधीन माया की रचना को भी ब्रह्मा और उन ब्रह्माके पुत्र रुद्र आदि तथा वेद के द्रष्टा तक नहीं जानते, उन्हें ब्राह्मण-शाप कैसे लग सकताहै?

श्रीभगवानुवाच

मा भैर्जरे त्वमुत्तिष्ठ काम एष कृतो हि मे ।
याहि त्वं मदनुज्ञातः स्वर्गं सुकृतिनां पदम् ॥३९॥

श्रीभगवान् बोले-हे जरा! तू भय न मान, उठ खड़ा हो, यह तो तूने मेरी ही इच्छानुसार किया है, तू मेरी आज्ञा से स्वर्ग को जा कि जहाँ पुण्यआत्मा पुरुष जाते हैं ॥३९॥

इत्यादिष्टो भगवता कृष्णेनेच्छाशरीरिणा ।
त्रिःपरिक्रम्य तं नत्वा विमानेन दिवं ययौ॥४०॥

इच्छा ही से शरीर धारण करने वाले भगवान् ने जब उसे इस प्रकार आज्ञा दी तब वह उनको तीन परिक्रमा देकर, प्रणाम करके विमानमें बैठकर स्वर्ग को चला गया ॥४०॥

दारुकः कृष्णपदवीमन्विच्छन्नधिगम्य ताम् ।
वायुं तुलसिकामोदमाघ्रायाभिमुखं ययौ ॥४१॥

भगवान् का सारथी दारुक उनकी पदवी का पता लगाता हुआ तुलसी की सुगन्ध से मिली हुई वायु के द्वारा भगवान् के स्थान का अनुमान करके उसी ओर को चला कि जिधर से वह वायु आ रही थी ॥ ४१ ॥

तं तत्र तिग्मद्युभिरायुधैर्वृतं ह्यश्वत्थमूले कृत केतनं पतिम् । स्नेहप्लुतात्मा निपपात पादयो रथादवप्लुत्य सबाष्पलोचनः ॥४२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वहाँ प्रदीप्त कान्तिमय शस्त्र भगवान् के चारों ओर उपस्थित थे और भगवान पीपल के तले विराजमान थे, उनका दर्शन होते ही दारुक का हृदय स्नेह से भर उठा और उसके नेत्रों में आँसू भर आये और वह तत्काल ही रथ से उतर कर भगवान् के चरणों में गिर पड़ा ॥४२॥

अपश्यतस्त्वच्चरणांबुजं प्रभो दृष्टिः प्रनष्टा तमसि प्रविष्टा । दिशो न जाने न लभे च शांतिं यथा निशाया मुडुपे प्रनष्टे ॥४३॥

और कहने लगा कि हे प्रभु ! जैसे रात में चन्द्रमा अस्त होजाने पर अन्धकार फैलने से दृष्टि नष्ट सी होजाती है, वैसे ही आपके चरणारविन्द के दर्शन बिना मेरी दृष्टि नष्ट होगई है, अब मुझे न तो दिशाओंका ही बोधहै और न शान्ति मिलने का उपाय ही दीखता है ॥४३॥

इति ब्रुवति सूते वै रथो गरुडलांछनः ।
खमुत्पपात राजेंद्र साश्वध्वज उदीक्षतः ॥४४॥

हे राजेन्द्र ! वह सारथी इस प्रकार कह ही रहाथा कि उसके देखते-देखतेही वह गरुड़के चिह्न वाला रथ घोड़े और ध्वजा सहित वैसा का वैसा ही आकाश में चला गया ॥४४॥

तमन्वगच्छन् दिव्यानि विष्णुप्रहरणानि च ।
तेनातिविस्मितात्मानं सूतमाह जनार्दनः ॥४५॥

और उसके पीछे भगवान् के आयुध भी चले गये, तब तो सारथी महान् आश्चर्य में पड़ गया; उस समय भगवान् ने उससे कहा कि ॥४५॥

गच्छ द्वारवतीं सूत ज्ञातीनां निधनं मिथः ।
संकर्षणस्य निर्याणं बंधुभ्यो ब्रूहि मद्दशाम् ॥४६॥

हे सूत ! तू द्वारका में जा और हमारे बंधुओं से यादवों के आपस में लड़कर मरने, बलदेवजी के निर्याण तथा मेरी जो दशा देख रहा है, उसका हाल कह ॥४६॥

द्वारकायां च न स्थेयं भवद्भिः स्वस्व बंधुभिः ।
मया त्यक्तां यदुपुरीं समुद्रः प्लावयिष्यति ॥४७॥

उनसे यह भी कह देना कि तुम लोग अपने बन्धुओं सहित अब द्वारका में न रहना, क्योंकि इसको मैंने त्याग दिया है, इसलिये इसको अब समुद्र डुबा देगा ॥४७॥

स्वं स्वं परिग्रहं सर्वे आदाय पितरौ च नः ।
अर्जुनेनाविताः सर्व इंद्रप्रस्थं गमिष्यथ ॥४८॥

इसलिये अब तुम लोग अपना सामान तथा हमारे माता-पिता को साथ लेकर अर्जुनकी रक्षामें इन्द्रप्रस्थ को चले जाना ॥४८॥

त्वं तु मद्धर्ममास्थाय ज्ञाननिष्ठ उपेक्षकः ।
मन्मायारचनामेतां विज्ञायोपशमं व्रज ॥४९॥

और तू ज्ञान में निष्ठा रखकर सब को छोड़ कर, मेरे धर्मको धारणकर तथा इस समस्त जगत् को मेरी माया समझ कर शान्ति प्राप्त कर ॥४९॥

इत्युक्तस्तं परिक्रम्य नमस्कृत्य पुनः पुनः ।
तत्पादौ शीर्ष्ण्युपाधाय दुर्मनाः प्रययौ पुरीम् ॥५०॥

श्रीकृष्ण भगवान् ने जब इस प्रकार कहा तब दारुक श्रीकृष्णजी के चरणारविन्द सिर पर रख कर कुल के नाश होने से उदास होकर द्वारका को लौट गया ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

इकतीसवां अध्याय

(श्रीकृष्ण का स्वधाम गमन वर्णन)

श्रीशुक उवाच

अथ तत्रागमद्ब्रह्मा भवान्या च समं भवः ।
महेंद्रप्रमुखा देवा मुनयः सप्रजेश्वराः ॥१॥
पितरः सिद्धगंधर्वा विद्याधरमहोरगाः ।
चारणा यक्षरक्षांसि किन्नराप्सरसो द्विजाः ॥२॥
द्रष्टुकामा भगवतो निर्याणं परमोत्सुकाः ।
गायंतश्च गृणंतश्च शौरेः कर्माणि जन्म च ॥३॥

श्रीशुकदेवजीबोले-फिर वहाँ ब्रह्माजी, पार्वतीजी को साथ लिये हुए महादेवजी, इन्द्र आदि देवता, प्रजापति, पित्रीश्वर, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, नाग, चारण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, अप्सरा-गण, द्विज और मैत्रेय आदि ब्राह्मण-भगवान् के जन्म-कर्मका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कीर्त्तन-गायन करते हुए उनका निर्याण देखने के लिये बड़ी ही उत्सुकता के साथ द्वारकामें आये ॥

ववृषुः पुष्पवर्षाणि विमानावलिभिर्नभः ।
कुर्वंतः संकुलं राजन् भक्त्या परमया युताः ॥ ४ ॥

हे राजन् ! वे सब लोग विमानों की पंक्तियों से आकाशमें बड़ी भारी भीड़ करतेहुए,परम भक्ति सहित पुष्प वर्षा करने लगे ॥ ४ ॥

भगवान् पितामहं वीक्ष्य विभूतीरात्मनो विभुः ।
संयोज्यात्मनि चात्मानं पद्मनेत्रे न्यमीलयत् ॥ ५ ॥

व्यापक प्रभु श्रीकृष्ण भगवान् ने जब ये देखा कि मेरी विभूति रूप ब्रह्मा आदि देवता मुझे अपने-अपने लोक ले जाने की इच्छा से आये हैं, तो उन्होंने अपने को अपने ही में संयुक्त करते हुए समाधि लेते हुए कमल नयन मूँद लिये ॥५॥

लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमंगलम् ।
योगधारणयाऽऽग्नेय्याऽदग्ध्वा धामाविशत् स्वकम् ॥

श्रीकृष्ण भगवान् ने स्वच्छन्द मृत्यु वाले योगियों की भाँति अपनी देह को योगाग्नि की धारणाद्वारा दग्ध न किया, वरन् उसी देहसे अपने धाम को पधारे, क्योंकि उनके देहमें समस्त लोक स्थित हैं, उसके भस्म होनेसे जगतका भस्म होना संभव था, दूसरे वह देह धारणा और ध्यान का विषय है, इसलिये उसके भस्म होने पर उपासक किसकी धारणा या ध्यान करते ? ॥६॥

दिवि दुंदुभयो नेदुः पेतुः सुमनसश्च खात् ।
सत्यं धर्मो धृतिर्भूमेः कीर्तिः श्रीश्रानु तं ययुः ॥७॥

तब तो देवलोक में नक़ारे बजनेलगे, आकाश से पुष्प-वृष्टि होने लगी और भगवान् के जाते ही पृथ्वी पर से सत्य, धर्म, धैर्य, कीर्त्ति और लक्ष्मी-यह सभी चले गये ॥७॥

देवादयोब्रह्ममुख्या न विशंतं स्वधामनि ।
अविज्ञातगतिं कृष्णं ददृशुश्चातिविस्मिताः ॥ ८ ॥

ब्रह्मा आदि देवताओं ने भगवान् को स्वधाममें प्रवेश करते हुए न देखने पाया, इसलिये वे सभी आश्चर्य में पड़ गये और श्रीकृष्ण की गति किसी की समझ में न आ सकी ॥८॥

सौदामन्या यथाकाशे यांत्या हित्वाऽभ्रमंडलम् ।
गतिर्न लक्ष्यते मर्त्यैस्तथा कृष्णस्य दैवतैः ॥ ९ ॥

जैसे मेघ-मण्डलको छोड़कर आकाशमें जाती हुई बिजलीकी गति मनुष्योंसे समझी नहीं जाती, इसी प्रकार भगवान् की गति किसी देवता से समझी न जा सकी, केवल प्रभु के पार्षद ही समझ सके ॥ ९ ॥

ब्रह्मरुद्रादयस्ते तु दृष्ट्वा योगगतिं हरेः ।
विस्मितास्तां प्रशंसंतः स्वं स्वं लोकं ययुस्तदा १० ॥

भगवान् की इस योग गति को देखकर ब्रह्मा और रुद्र आदि देव-गण आश्चर्य तथा उस गति की स्तुति करते हुए अपने २ लोक को चले गये ॥

राजन् परस्य तनुभृज्जननाप्ययेहा मायाविडंबनमवेहि यथा नटस्य । सृष्ट्वात्मनेदमनुविश्य विहृत्य चांते संहृत्य चात्ममहिमोपरतः स आस्ते ॥ ११ ॥

हे राजन् ! यादव वंश में श्रीकृष्ण भगवान् का जन्म धारण करना माया के द्वारा एक अनुकरण मात्र ही है, जैसे कि नट स्वयं निर्विकार है, परन्तु अनेक रूप बनाकर जन्म आदिका अनुकरण करता है, इसी भाँतिप्रभु आप ही यह जगत् रचते हैं, आप ही अन्तर्यामी रूप से इसमें प्रवेश करते हैं, और आप ही अन्तमें इसे संहार करदेते हैं परन्तु आप अपनी महिमा से निर्विकारही रहते हैं ॥११॥

मर्त्येन यो गुरुसुतं यमलोकनीतं त्वां चानयच्छरणदः परमास्त्रदग्धम् । जिग्येंऽतकांतकमपीश मसावनीशः किं स्वावने स्वरनयद्वृ मृगयुं सदेहम् ॥

जो शरण दाता श्रीकृष्ण भगवान् अपने गुरुके मृतक पुत्र को उसी शरीर सहित यम-लोक से लौटा लाये, जिन्होंने ब्रह्मास्त्र से तुम्हें बचाया, कालों के भी काल रूप महा रुद्र को बाणासुर के संग्राम में जीत लिया और जरा नामक व्याध को सदेह स्वर्ग पहुंचाया, वे श्रीकृष्णजी क्या अपने शरीर की रक्षा न कर सकते थे ? ऐसा कभी भी न विचारो ॥१२॥

तथाऽप्यशेषस्थितिसंभवाप्ययेष्वनन्यहेतुर्यदशेषशक्तिधृक् । नैच्छत्प्रणेतुं वपुरत्र शेषितं मर्त्येन किं स्वस्थगतिं प्रदर्शयन् ॥ १३ ॥

यद्यपि समस्त जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय के वे स्वयं ही कारण हैं, उन्हें दूसरे की आवश्यकता नहीं, वे अनेक शक्तियाँ धारण किये हैं, फिर भी उन्होंने यादव-भाव को निभानेके लिये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूसरे आत्म-निष्ठ पुरुषों को दिव्य गति दिखलाने के लिये अपने शरीर का यहाँ रखना उचित न समझा, अर्थात् उन्होंने यह आदर्श उपस्थित कर दिया कि मनुष्य-देह को अधिक काल तक रखने में कोई लाभ नहीं, दूसरे आत्म-निष्ठ पुरुषों को दिव्य गति का अनादर करते हुए इस शरीर को दीर्घ काल तक रखना व्यर्थ है ॥१३॥

य एतां प्रातरुत्थाय कृष्णस्य पदवीं पराम् ।
प्रयतः कीर्त्तयेद्भक्त्या तामेवाप्नोत्यनुत्तमाम्॥१४॥

जो मनुष्य प्रातःकाल उठ कर सावधानी के साथ श्रीकृष्णजी की इस परम गति का भक्ति सहित कीर्त्तन करे, वह परमोत्तम गति को प्राप्त होगा ॥ १४ ॥

दारुको द्वारकामेत्य वसुदेवोग्रसेनयोः ।
पतित्वा चरणावस्रैर्न्यषिंचत्कृष्णविच्युतः ॥१५॥

श्रीकृष्ण जी से वियोग पाया हुआ दारुक सारथी जब द्वारका में आया, तब वह वसुदेव और उग्रसेन के चरणों में गिर कर आँसुओं द्वारा उनके चरणों को सींचने लगा ॥१५॥

कथयामास निधनं वृष्णीनां कृत्स्नशो नृप ।
तच्छ्रुत्वोद्विग्नहृदया जनाः शोकविमूर्च्छिताः॥१६॥

हे राजन् ! उसने सब यादवों के संहार होने का हाल कह सुनाया, उसे सुनतेही वसुदेव आदि सभी लोग विषाद-पूर्ण होकर मूर्छित होगये ॥१६॥

तत्र स्म त्वरिता जग्मुः कृष्णविश्लेष विह्वलाः ।
व्यसवः शेरते यत्र ज्ञातयो घ्नंत आननम् ॥१७॥

वे लोग श्रीकृष्णजी के विरह से व्याकुल हो कर अपने सिर को पीटते हुए उतावली के साथ वहीं आये कि जहाँ पर उनके मृतक बान्धव-गण पड़े हुए थे ॥१७॥

देवकी रोहिणी चैव वसु देवस्तथा सुतौ ।
कृष्णरामावपश्यंतः शोकार्ता विजहुः स्मृतिम्॥१८॥

देवकी, रोहिणी और वसुदेव ने जब अपने पुत्र श्रीकृष्ण तथा बलराम को न पाया, तब वे शोक से विह्वल होकर मूर्छित होगये ॥ १८ ॥

प्राणांश्च विजहुस्तत्र भगवद्विरहातुराः ।
उपगूह्य पतींस्तात चितामारुरुहुः स्त्रियः ॥१९॥

उन सबने भगवान् के विरह से विह्वल होकर वहीं प्राण छोड़ दिये और स्त्रियाँ अपने पति के साथ चितामें जलकर भस्म होगईं ॥१९॥

रामपत्न्यश्च तद्देहमुपगुह्याग्निमाविशन् ।
वसुदेवपत्न्यस्तद्गात्रं प्रद्युम्नादीन्हरेः स्नुषाः ।
कृष्णपत्न्योऽविशन्नग्निं रुक्मिण्याद्यास्तदात्मिकाः॥

श्रीबलरामजी की पत्नी उनकी देह को भेंट करके अग्निमें प्रवेश कर गईं, इसी प्रकार वसुदेव जी की स्त्रियाँ उनके शव के साथ और श्रीकृष्ण के पुत्रों की स्त्रियाँ अपने-अपने पतियोंके शवके साथ तथा भगवान्ही में मन रखनेवाली रुक्मिणी आदि श्रीकृष्णजी की रानियों ने एकात्म होकर अग्नि में प्रवेश किया ॥२०॥

अर्जुनः प्रेयसः सख्युः कृष्णस्य विरहातुरः ।
आत्मानं सांत्वयामास कृष्णगीतैः सदुक्तिभिः २१

अपने परम प्रिय सखा श्रीकृष्ण के विरह से अर्जुन आतुर तो होगये, परन्तु उन्होंने श्रीकृष्ण की कही हुई गीता के उपदेशों का स्मरण करके अपने आपको समझाया ॥२१॥

बंधूनां नष्टगोत्राणामर्जुनः सांपरायिकम् ।
हतानां कारयामास यथावदनुपूर्वशः ॥२२॥

जिनकी सम्पत्ति नाश होचुकी तथा जो स्वयं नाश हो चुके, उन सब बान्धवों की पिंडदानआदि क्रिया विधि पूर्वक और यथाक्रम करवाई ॥२२॥

द्वारकां हरिणा त्यक्तां समुद्रोऽप्लावयत्क्षणात् ।
वर्जयित्वा महाराज श्रीमद्भगवदालयम् ॥२३॥

हे राजन् ! श्रीमान् कृष्ण भगवान् के मन्दिर को छोड़ कर उनसे त्यागी हुई समस्त द्वारका को समुद्र ने क्षण मात्र में डुबो दिया ॥२३॥

नित्यं सन्निहितस्तत्र भगवान्मधुसूदनः ।
स्मृत्याऽशेषाऽशुभहरं सर्वमंगलमंगलम् ॥२४॥

स्मरण मात्र ही से समस्त अमङ्गल को हरण करने वाले और सब मङ्गलों के भी मङ्गलरूप भगवान् मधुसूदन उस मन्दिर में अब भी नित्य विराजमान् रहते हैं ॥२४॥

स्त्रीबालवृद्धानादाय हतशेषान् धनंजयः ।
इंद्रप्रस्थं समावेश्य वज्रं तत्राऽभ्यषेचयत् ॥२५॥

मरने से बचे हुए स्त्री, बालक और वृद्धों को अर्जुन इन्द्रप्रस्थ ले गये और वहाँ बज्रनाभ का राज्याभिषेक किया ॥२५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रुत्वा सुहृद्वधं राजन्नर्जुनात्ते पितामहाः।
त्वां तु वंशधरं कृत्वा जग्मुः सर्वे महापथम्॥२६॥

हे राजन्! तुम्हारे दादा अर्जुन के मुख से अपने सुहृदों के मरने का समाचार सुनकर तुम को राजा बनाकर सब पाण्डवों ने भी परम पथ के लिये प्रस्थान किया॥२६॥

य एतद्देवदेवस्य विष्णोः कर्माणि जन्म च।
कीर्त्तयेच्छ्रद्धया मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥२७॥

जो मनुष्य देवाधि देव भगवान् विष्णु के इस चरित्र तथा जन्म और कर्मों का श्रद्धा के सहित कीर्त्तन करेगा, वह सब पापों से मुक्त हो जायगा॥ २७॥

इत्थं हरेर्भगवतो रुचिरावतारवीर्याणि बाल चरितानि च शंतमानि। अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन्मनुष्यो भक्तिं परां परमहंसगतौ लभेत॥२८॥

इस भाँति इस तथा दूसरे भी ग्रन्थों में वर्णन किये हुए भगवान् विष्णु के परम कल्याण रूप मन-हरण अवतार सम्बन्धी पराक्रम तथा बाल-चरित्रों को जो मनुष्य कहेंगे वह पुरुष परमहंसों के गति रूप श्रीकृष्णकी परम भक्ति पायेंगे॥२८॥

इति श्रीमद्भागवते एकादशस्कन्धे गोविन्ददास "विनीत" विरचितायां बाल-बोधनी नाम्नी भाषा टीकायां एकत्रिंशोऽध्यायः॥३१॥

❋ एकादशस्कन्ध समाप्त ❋

जनम-रहित के जनम कृत, जग व्यापक के देह।
जप सोई, धर ध्यान सोई, "गोविंद" सहित सनेह॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

* श्रीगणेशायनमः *

श्रीमद्भागवत

बाल बोधिनी भाषा टीका सहित ।

द्वादश स्कन्ध

एक रूप द्वै नाम धरि, जग-हित कारन जोय ।
द्रवहिं दीन "गोविन्द" पहँ, राधा-माधव दोय ॥

पहिला अध्याय

(जरासंध के भावी वंशज राजाओं का वर्णन)

राजोवाच

स्वधामानुगते कृष्णे यदुवंशविभूषणे ।
कस्य वंशोऽभवत्पृथ्व्यामेतदाचक्ष्व मे मुने ॥ १ ॥

परीक्षित बोले-हे मुने ! यदुकुल-विभूषण श्रीकृष्णचन्द्र जब अपने धाम को पधार गये, तब पृथ्वी पर किसका वंश रहा ? सो मुझसे कहिये ॥

श्रीशुक उवाच

योंऽत्यः पुरंजयो नाम भविष्यो बारहद्रथः ।
तस्यामात्यस्तु शुनको हत्वा स्वामिनमात्मजम् ।
प्रद्योतसंज्ञं राजानं कर्ता यत्पालकः सुतः ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! वृहद्रथ के वंश का अन्तिम राजा पुरञ्जय होगा, उसका मंत्री शुनक उसे (पुरञ्जय को) मार कर अपने पुत्र प्रद्योत को राज्य-सिंहासन पर बैठायगा, उसके 'पालक' नाम का पुत्र होगा ॥२॥

विशाखयूपस्तत्पुत्रो भविता राजकस्ततः ।
नंदिवर्धनस्तत्पुत्रः पंच प्रद्योतना इमे ॥ ३ ॥

उसके विशाख यूप नाम का पुत्र होगा, विशाख यूप के राजक, राजक के नन्दिवर्द्धन नाम का पुत्र होगा, ये प्रद्योत नाम से प्रसिद्ध पाँच राजा एक सौ अड़तीस वर्ष तक पृथ्वीका भोग करेंगे ॥३॥

अष्टत्रिंशोत्तरशतं भोक्ष्यंति पृथिवीं नृपाः ।
शिशुनागस्ततो भाव्यः काकवर्णस्तु तत्सुतः ।
क्षेमधर्मा तस्य सुतः क्षेत्रज्ञः क्षेमधर्मजः ॥ ४ ॥
विधिसारः सुतस्तस्याजातशत्रुर्भविष्यति ।
दर्भकस्तत्सुतो भावी दर्भकस्याजयः स्मृतः ॥ ५ ॥
नंदिवर्धन आजेयो महानंदिः सुतस्ततः ।
शिशुनागा दशैवैते षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥ ६ ॥

फिर शिशुनाग नामका राजा होगा, शिशुनाग के काकवर्ण, काकवर्ण के क्षेमधर्मा, क्षेमधर्मा के क्षेत्रज्ञ, क्षेत्रज्ञ के विधिसार, विधिसार के अजात शत्रु, अजातशत्रु के दर्भक; दर्भक के अजय, अजय के नन्दिवर्धन और नन्दिवर्धन के महनन्दि नाम का पुत्र होगा, हे राजन् ! यह शिशुनाग वंश के दस राजा तीनसौ साठ वर्ष तक कलियुग में पृथ्वी का भोग करेंगे ॥ ४ ॥५॥ ६ ॥

समा भोक्ष्यंति पृथिवीं कुरु श्रेष्ठ कलौ नृपाः ।
महानंदिसुतो राजञ्छूद्रीगर्भोद्भवो बली ॥ ७ ॥

हे राजन् ! फिर महानन्दिके यहाँ शूद्री के गर्भ से नन्द नाम का कोई एक बलवान् राजा होगा॥७॥

महापद्मपतिः कश्चिन्नंदः क्षत्रविनाशकृत् ।
ततो नृपा भविष्यंति शूद्रप्रायास्त्वधार्मिकाः॥ ८ ॥

वह महापद्म सेना का अध्यक्ष तथा नन्द नाम के क्षत्रियों का नाशकर्त्ता होगा, इस राजा के बाद सभी राजा प्रायः शूद्र और महान अधर्मी होंगे ॥८॥

स एकच्छत्रां पृथिवीमनुल्लंघितशासनः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शासिष्यति महापद्मो द्वितीय इव भार्गवः ॥ ९ ॥

यह राजा नन्द परशुरामजी की भाँति समस्त पृथ्वी पर एक छत्रधारी होगा, उसकी आज्ञा को कोई उल्लंघन न कर सकेगा ॥९॥

तस्य चाष्टौ भविष्यंति सुमाल्यप्रमुखाः सुताः ।
य इमां भोक्ष्यंति महीं राजानः स्म शतं समाः १०॥

उस राजा के सुमाल्य आदि आठ पुत्र होंगे, वे राजा सौ वर्ष तक पृथ्वी का पालन करेंगे ॥१०॥

नव नंदान् द्विजः कश्चित्प्रपन्नानुद्धरिष्यति ।
तेषामभावे जगतीं मौर्या भोक्ष्यंति वै कलौ ॥११॥

इन प्रसिद्ध नौ राजाओं को कोई एक चाणक्य नाम का ब्राह्मण मारेगा, उनके पीछे मौर्य नाम के राजा कलियुग में पृथ्वी पर राज्य करेंगे ॥११॥

स एव चंद्रगुप्तं वै द्विजो राज्येऽभिषेक्ष्यति ।
तत्पुत्रो वारिसारस्तु ततश्चाशोकवर्धनः ॥१२॥

उन नव नन्दोंको मारने वाला ब्राह्मण चन्द्रगुप्त मौर्यको राज्याभिषेक करेगा, उस चंद्रगुप्तके वारिसार नाम का पुत्र होगा, उसके अशोकवर्धन नाम का पुत्र होगा ॥१२॥

सुयशा भविता तस्य संगतः सुयशः सुतः ।
शालिशूकस्ततस्तस्य सोमशर्मा भविष्यति ॥१३॥
शतधन्वा ततस्तस्य भविता तद्बृहद्रथः ।
मौर्या ह्येते दश नृपाः सप्तत्रिंशच्छतोत्तरम् ।
समा भोक्ष्यंति पृथिवीं कलौ कुरुकुलोद्वह ॥१४॥

अशोकवर्धन के सुयशा, सुयशा के संगत, सङ्गत के शालिशूक, शालिशूकके सोमशर्मा, सोमशर्मा के शतधन्वा, और शतधन्वा के बृहद्रथ नाम का पुत्र होगा, हे कुरुत्तम ! यह मौर्य वंशीय दस राजा एक सौ सैंतीस वर्ष तक कलियुग में पृथ्वी का राज्य करेंगे ॥१३॥१४॥

अग्निमित्रस्ततस्तस्मात्सुज्येष्ठोऽथ भविष्यति ।
वसुमित्रो भद्रकश्च पुलिंदो भविता सुतः ॥१५॥
ततो घोषः सुतस्तस्माद्वज्रमित्रो भविष्यति ।
ततो भागवतस्तस्माद्देवभूतिरितिश्रुतः ॥१६॥
शुंगा दशैते भोक्ष्यंति भूमिं वर्षशताधिकम् ।
ततः कण्वानियं भूमिर्यास्यत्यल्पगुणा नृप॥१७॥

फिर (मौर्य वंश के अन्तिम राजा को उसका सेनापति पुष्पमित्र मारकर स्वयं राज्य करेगा) अग्निमित्र राजा होगा, अग्निमित्र के सुज्येष्ठ, सुज्येष्ठ के वसुमित्र, वसुमित्र के भद्रक, भद्रक के पुलिंद, पुलिंद के घोष, घोष के बज्रमित्र, बज्रमित्रके भागवत, भागवत के देवभूत नाम का पुत्र होगा, यह शुङ्ग वंशी राजा एकसौ बारहवर्ष तक राज्य करेंगे फिर यह भूमि अन्य गुणवाले काण्ववंशी राजाओं के अधिकार में चली जायगी ॥१५॥१६॥१७॥

शुंगं हत्वा देवभूतिं कण्वोऽमात्यस्तु कामिनम् ।
स्वयं करिष्यते राज्यं वसुदेवो महामतिः ॥१८॥

पर स्त्री गामी देवभूति नामक शुंग वंशी राजा को मारकर उसका मंत्री कण्ववंशी और परमबुद्धि वाला वसुदेव स्वयं राज्य करेगा ॥१८॥

तस्य पुत्रस्तु भूमित्रस्तस्य नारायणः सुतः ।
काण्वायना इमे भूमिं चत्वारिंच्च पंच च ।
शतानि त्रीणि भोक्ष्यंति वर्षाणां च कलौ युगे १९॥

इस वसुदेव के भूमित्र, भूमित्र के नारायण, नारायण के सुशर्मा नामक पुत्र होगा, यह कण्व वंशी समस्त राजा तीनसौ पैंतालीस वर्ष तक पृथ्वी का पालन करेंगे ॥१९॥

हत्वा कण्वं सुशर्माणं तद्भृत्यो वृषलो बली ।
गां भोक्ष्यत्यंध्रजातीयः कंचित्कालमसत्तमः॥२०॥

उस काण्व वंशी सुशर्मा का कोई अन्ध्र जाति वाला बली नामक शूद्र नौकर उसे मार कर कुछ समय तक स्वयं राज्य करेगा ॥२०॥

कृष्णनामाऽथतद्भ्राता भविता पृथिवीपतिः ।
श्रीशांतकर्णस्तत्पुत्रः पौर्णमासस्तु तत्सुतः ॥२१॥
लंबोदरस्तु तत्पुत्रस्तस्माच्चिबिकलो नृपः ।
मेघस्वातिश्चिबिलकादटमानस्तु तस्य च ॥२२॥
अनिष्टकर्मा हालेयस्तलकस्तस्य चात्मजः ।
पुरीषभीरुस्तत्पुत्रस्ततो राजा सुनंदनः ।२३॥
चकोरो बहवो यत्र शिवस्वातिररिंदम ।
तस्यापि गोमतीपुत्रः पुरीमान् भविता ततः॥२४॥
मेदशिराः शिवस्कंदो यज्ञश्रीस्तत्सुतस्ततः ।
विजयस्तत्सुतो भाव्यश्चंद्रविज्ञः सलोमधिः ॥२५॥

उस राजा बलि का भाई कृष्ण राजा होगा, कृष्ण के श्रीकान्तकर्ण, उसके पौर्णमास, उसके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लंबोदर, उसके विकल, उसके मेघस्वाति, उसके अटमान, उसके कुकर्म करने वाला हालेय, उसके तलक, उसके पुरीषभीरु, उसके सुनन्दन, उसके चकोर और उसके शिवस्वाति नामक नवाँपुत्र होगा, हे शत्रुघ्न ! उसके गोमती, उसके पुरीमान, उसके मेदशिरा, उसके शिवस्कन्द, उसके यज्ञश्री, उसके विजय, उसके चन्दविज्ञ और उसके सलोमधि नाम का पुत्र होगा ॥ २१—२५॥

एते त्रिंशन्नृपतयश्चत्वार्यब्दशतानि च ।
षट्पंचाशच्च पृथिवीं भोक्ष्यंति कुरुनंदन ॥२६॥

हे कुरुनन्दन ! ये तीस राजा चारसौ छप्पन वर्ष तक पृथ्वी का भोग करेंगे ॥२६॥

सप्ताभीरा आवभृत्या दश गर्दभिनेनृपाः ।
कंकाः षोडश भूपाला भविष्यंति च लोलुपाः २७॥

फिर अवभृति नाम की नगरी में आभीर जाति के सात राजा होंगे, दस गर्दभि नामके राजा होंगे, फिर महालोभी सोलह कङ्क जाति के राजा होंगे ॥

ततोऽष्टौ यवना भाव्याश्चतुर्दश तुरुष्ककाः ।
भूयो दश गुरुंडाश्च मौना एकादशैव तु ॥२८॥

फिर आठ यवन राजा होंगे, तदनन्तर चौदह तुरुष्व (तुर्क) राजा होंगे. फिर दस गुरंड और ग्यारह मौन राजा होंगे ॥२८॥

एते भोक्ष्यंति पृथिवीं दशवर्षशतानि च ।
नवाधिकां च नवतिं मौना एकादश क्षितिम्॥२९॥

यह सब मौन वंश तक के राजा १०९९ वर्ष तक राज्य करेंगे ॥२९॥

भोक्ष्यंत्यब्दशतान्यंग त्रीणि तैः संस्थिते ततः ।
किलिकिलायां नृपतयो भूतनंदोऽथ वंगिरिः॥३०॥

हे राजन् ! वे मौन राजा तीन सौ वर्ष तक पृथ्वी का भोगकरेंगे, फिर किलकिला नामक नगर में भूतनन्द नामका राजा होगा, तदुपरांत वंगिरि॥

शिशुनंदिश्च तद्भ्राता यशोनंदिः प्रवीरकः ।
इत्येते वै वर्षशतं भविष्यंत्यधिकानि षट् ॥३१॥

वंगिरिसे उसका भाई शिशुनन्दि, उससे यशो नन्दि, उससे प्रवीरक नामका राजा होगा, ये लोग एकसौ छः वर्ष तक पृथ्वी का पालन करेंगे ॥३१॥

तेषां त्रयोदश सुता भवितारश्च बाह्लिकाः ।
पुष्पमित्रोऽथ राजन्यो दुर्मित्रोऽस्य तथैव च॥३२॥

उनके तेरह पुत्रहोंगे, वे सब बाह्लिक कहलायेंगे फिर एक पुष्यमित्र नाम का दूसरा राजा होगा, जिसके दुर्मित्र नाम का पुत्र होगा ॥ ३२ ॥

एककाला इमे भूपाः सप्तांध्राः सप्त कौशलाः ।
वैदूरपतयो भाव्या नैषधास्तत एव हि ॥३३॥

फिर उन बाह्लिक वंशियों में से सात तो अन्ध्र देश के, सात कौशल देशके, वैदूर और निषध देश के राजा होंगे, यह अपने-अपने देश के नाम ही से प्रसिद्ध राजा एक ही समय में अलग २ मंडलेश्वर होकर राज्य करेंगे ॥ ३३ ॥

मागधानां तु भविता विश्वस्फूर्जिः पुरंजयः ।
करिष्यत्यपरो वर्णान् पुलिंदयदुमद्रकान् ॥३४॥

फिर मागध वंशियों में विश्वस्फूर्जि पुरञ्जय नाम का राजा होगा, यह बड़ाही दुर्बुद्धि और पराक्रमी होगा और वर्णों को भ्रष्ट करके पुलिंद, यदु तथा भद्रक नाम की ऐसी जातियाँ करदेगा, जो प्रायः म्लेच्छ ही होंगी ॥ ३४ ॥

प्रजाश्चाब्रह्मभूयिष्ठाः स्थापयिष्यति दुर्मतिः ।
वीर्यवान् क्षत्रमुत्साद्य पद्मवत्यां स वै पुरि ।
अनुगंगामाप्रयागं गुप्तां भोक्ष्यति मेदिनीम्॥३५॥

और ऐसी प्रजाको स्थापित करेगा जो ब्रह्मत्व से हीन होगी, यह पराक्रमी पुरञ्जय क्षत्रियों का नाश करके पद्मावतीपुरीमें राज्य करेगा, तत्पश्चात् हरिद्वार से प्रयाग तक "गुप्त" नाम धारी राजा राज्य करेंगे ॥३५॥

सौराष्ट्रावंत्याभीराश्च शूद्रा अर्बुदमालवाः ।
व्रात्या द्विजा भविष्यंति शूद्रप्राया जनाधिपाः३६॥

फिर सौराष्ट्र, उज्जैन, आभीर, शूद्र, अर्बुद और मालवा देशों के निवासी यज्ञोपवीत की क्रिया से हीन होजाँयगे और राजा शूद्र प्रायः होंगे ॥३६॥

सिंधोस्तटं चंद्रभागां कौंतीं काश्मीरमंडलम् ।
भोक्ष्यंति शूद्रा व्रात्याद्या म्लेच्छाश्चाब्रह्मवर्चसः ३७

सिन्धु और चन्द्रभागा के किनारे कौंतीपुरी और काश्मीर देश को शूद्र, म्लेच्छ, संस्कार हीन भ्रष्ट व्रात्य तथा निस्तेज ब्राह्मण आदि भोगेंगे॥३७॥

तुल्यकाला इमे राजन म्लेच्छप्रायाश्च भूभृतः ।
एतेऽधर्मानृतपराः फल्गुदा स्तीव्रमन्यवः ॥३८॥

स्त्रीबालगोद्विजघ्नाश्च परदारधनादृताः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदितास्तमितप्राया अल्पसत्त्वाल्पकायुषः ॥ ३९॥
असंस्कृताः क्रियाहीना रजसा तमसा वृताः ।
प्रजास्ते भक्षयिष्यंति म्लेच्छा राजन्यरूपिणः॥४०॥

हे राजन् ! एक ही समय में होने वाले म्लेच्छ प्रायः ये राजा लोग अधर्मी, असत्यवादी, अत्यन्त क्रोधी, कंजूस, स्त्री, बालक गौ और द्विजों को मारने वाले, पर-स्त्री तथा परधन के चाहने वाले, उदय-अस्त (उत्थान के साथ ही पतन) पाने वाले, कम धीरज वाले, अल्पायु, संस्कार-रहित, क्रिया-हीन और रजोगुण तथा तमोगुणसे घिरे हुए होंगे, यह राजाओं का रूप धरने वाले म्लेच्छ प्रजा का भक्षण सा कर लेंगे ॥३८॥३९॥४०॥

तन्नास्थाते जनपदास्तच्छीलाचारवादिनः ।
अन्योन्यतो राजभिश्च क्षयं यास्यंति पीडिताः॥४१॥

इन राजाओं के राज्य में रहनेवाले लोग उन्हीं के समान शील, आचार और भाव रखकर आपसी क्लेश तथा राजाओं के उपद्रवों से पीड़ित होकर नष्ट हो जाँयगे ॥४१॥

इति श्रीमद्भागवते द्वादशस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

दूसरा अध्याय

(कलियुग के दोष और अधर्म)

श्रीशुक उवाच

ततश्चानुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया ।
कालेन बलिना राजन्क्ष्यंत्यायुर्बलं स्मृतिः॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! फिर बलवान् काल के प्रभाव से दिन-प्रति दिन धर्म, सत्य, शौच क्षमा, दया, आयु, बल और स्मृति का नाश होता जायगा ॥१॥

वित्तमेव कलौ नृणां जन्माचारगुणादयः ।
धर्मन्यायव्यवस्थायां कारणं बलमेव हि ॥ २ ॥

कलियुगमें जिसके पास धन होगा वही कुलीन आचारी तथा गुणी कहलायेगा, जो अधिक बली होगा वही धर्मात्मा और न्यायवान् कहलायेगा॥२॥

दांपत्येऽभिरुचिर्हेतुर्मायैव व्यावहारिके ।
स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च हि रतिर्विप्रत्वे सूत्रमेव हि॥ ३ ॥

स्त्री-पुरुष के संबन्ध होने में कुल-गोत्र आदि नहीं, वरन् केवल आपसकी प्रीतिही कारण होगी, लेन-देनमें कपट व्यवहार होगा, स्त्री और पुरुषकी उत्तमता कुल या आचार से नहीं वरन् रति करने में कुशलतासे मानी जायगी, ब्राह्मणके पास केवल यज्ञोपवीत ही शेष रह जायगा ॥३॥

लिंगमेवाश्रमख्यातावन्योऽन्यापत्तिकारणम् ।
अवृत्त्यां न्यायदौर्बल्यं पांडित्ये चापलं वचः॥ ४ ॥

केवल चिह्न धारण करलेने से ही आश्रम मान लिया जायगा, यदि न्यायाधीशों को घूंस न दी जायगी तो न देने वाले न्याय में हार जाँयगे, जो बहुत बोलेगा वही पंडित कहलायगा ॥४॥

अनाढ्यतैवासाधुत्वे साधु त्वे दंभ एव तु ।
स्वीकार एव चोद्वाहे स्नानमेव प्रसाधनम्॥ ५ ॥

धनहीन असाधु कहलायेगा, पाखंडी मनुष्य साधु कहा जायगा; स्वीकार मात्र ही से व्याह होना मान लिया जायगा, स्नान करना ही शृङ्गार कहलायेगा ॥ ५ ॥

दूरे वार्ययनं तीर्थं लावण्ये केशधारणम् ।
उदरंभरिता स्वार्थः सत्यत्वे धार्ष्ट्यमेव हि॥ ६ ॥

लोग दूर के जलाशय को तो तीर्थ मानेंगे पर अपने गुरु और माता-पिता को न मानेंगे, अच्छे बाल रखना ही शोभा मानी जायगी, पेट भरना ही पुरुषार्थ माना जायगा और ढीठ पुरुष ही सच्चा कहलायगा ॥ ६ ॥

दाक्ष्यं कुटुंबभरणं यशोर्थे धर्मसेवनम् ।
एवं प्रजाभिर्दुष्टाभिराकीर्णे क्षितिमंडले ॥ ७ ॥
ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां यो बली भविता नृपः ।
प्रजा हि लुब्धै राजन्यैर्निर्घृणैर्दस्युधर्मभिः ॥ ८ ॥
आच्छिन्नदारद्रविणा यास्यंति गिरिकाननम् ।
शाकमूलामिषक्षौद्रफलपुष्पाष्टिभोजनाः ॥ ९ ॥

कुटुम्ब का भरण-पोषण करना ही चतुरता कहलायेगी, लोग यश पाने के लिये ही धर्म करेंगे; इस भाँति दुष्ट प्रजाओंसे जब पृथ्वी पूर्ण होजायगी तब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र में से जो बलवान् होगा वही राजा होजायगा, लोभी; निर्दयी और चोर की नाईं वृत्ति रखने वाले राजा जब

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रजा का धन तथा स्त्रियाँ छीन लेंगे तब प्रजा गांव और नगर छोड़कर पहाड़ों और बन में चली जायगी और वहाँ शाक, मूल, माँस, शहद, फल फूल और बीज खाकर निर्वाह करेगी ॥७-९॥

अनावृष्ट्या विनंक्ष्यंति दुर्भिक्षकरपीडिताः ।
शीतवातातपप्रावृड्हिमैरन्योऽन्यतः प्रजाः ॥१०॥

अकाल और राजाओं के कर से पीड़ित प्रजा पानी न बरसने, सरदी, गरमी, हवा, अधिक वर्षा और हिमसे परस्परही दुःखी होकर नष्ट होजायगी॥

क्षुत्तृड्भ्यां व्याधिभिश्चैव संतापेन च चिंतया ।
त्रिंशद्विंशति वर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम्॥११॥

भूख, प्यास, रोग, सन्ताप और चिन्ता से प्रजा अत्यन्त ही दुःखी हो जायगी और मनुष्यों की आयु भी कलियुग में बीस और तीस वर्ष के बीच ही में होगी ॥११॥

क्षीयमाणेषु देहेषु देहिनां कलिदोषतः ।
वर्णाश्रमवतां धर्मे नष्टेवेदपथे नृणाम् ॥१२॥

कलियुग के प्रभाव से देहधारियों के देह छोटे होजांयगे और वर्णाश्रम वाले लोगों का वैदिकधर्म नष्ट हो जायगा ॥ १२ ॥

पाखंडप्रचुरे धर्मे दस्युप्रायेषु राजसु ।
चौर्या नृतवृथाहिंसानानावृत्तिषु वै नृषु ॥१३॥

धर्म के बदले केवल पाखंड रह जायगा, राजा बहुधा चोर की भाँति होंगे, मनुष्य चोरी, झूठ और व्यर्थ की हिंसा आदि कुकर्मोंमें लग जाँयगे ॥

शूद्रप्रायेषु वर्णेषु छागप्रायासु धेनुषु ।
गृहप्रायेष्वाश्रमेषु यौनप्रायेषु बंधुषु ॥१४॥

वर्ण शूद्र प्रायः हो जाँयगे, गायें बकरियों की तरह छोटी-छोटी रह जाँयगी, घर ही की तरह आश्रम रह जाँयगे, सगे भाई-बन्धुओं का संबन्ध माना जायगा ॥ १४ ॥

अणुप्रायास्वौषधीषु शमीप्रायेषु स्थास्नुषु ।
विद्युत्प्रायेषु मेघेषु शून्यप्रायेषु सद्मसु ॥१५॥

औषधियाँ अत्यन्त सूक्ष्म रह जाँयगी, वृक्षोंमें केवल शमी का वृक्ष रह जायगा, वर्षा में बहुधा बिजलियाँ गिरा करेंगी, घर प्रायः धर्म से शून्य हो जाँयगे ॥ १५ ॥

इत्थं कलौ गतप्राये जनेषु खरधर्मिणि ।
धर्मत्राणाय सत्त्वेन भगवानवतरिष्यति ॥१६॥

इस प्रकार जब सभी लोग अधर्मी होजाँयगे और घोर अधर्मी कलियुग जब अपनी अवधि पर पहुंचेगा तब सतोगुण द्वारा धर्म की रक्षा करने के लिये भगवान् कल्कि अवतार लेंगे ॥१६॥

चराचरगुरोर्विष्णोरीश्वरस्याखिलात्मनः ।
धर्मत्राणाय साधूनां जन्म कर्मापनुत्तये ॥१७॥

चराचर के गुरु, सबके अन्तर्यामी और प्रभु भगवान् विष्णु का कल्कि अवतार साधुओंके धर्म की रक्षा तथा मोक्ष के लिये है ॥१७॥

शंभलग्राममुख्यस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ।
भवने विष्णुयशसः कल्किः प्रादुर्भविष्यति ॥१८॥

वह अवतार शंभल नामक गाँव में प्रमुख महात्मा विष्णुयश नामक ब्राह्मणके यहाँ होगा ॥

अश्वमाशुगमारुह्य देवदत्तं जगत्पतिः ।
असिना साधुदमनमष्टैश्वर्यगुणान्वितः ॥१९॥
विचरन्नाशुना क्षोण्यां हयेनाप्रतिमद्युतिः ।
नृपलिंगच्छदो दस्यून्कोटिशो निहनिष्यति ॥२०॥

अष्ट सिद्धियों से युक्त जगत्पति बिष्णु अत्यंत वेग वाले और दुष्टों के दमन करने योग्य देवदत्त नामक घोड़े पर चढ़कर शीघ्रता पूर्वक पृथ्वी पर विचरते हुए अपने अतुल तेजमय कल्कि रूप से राजाओं की भाँति वेष धारण करने वाले चोरोंका संहार करेंगे ॥ १९ ॥ २० ॥

अथ तेषां भविष्यंति मनांसि विशदानि वै ।
वासुदेवांगरागातिपुण्यगंधानिलस्पृशाम् ।
पौरजानपदानां वै हतेष्वखिलदस्युषु ॥२१॥

जब सभी चोर मारे जाँयगे, तब भगवान् के अङ्गों में लगे हुए चन्दन आदि की सुगंध मयी वायु का स्पर्श होनेसे नगर और देशके शेष मनुष्य पवित्र हो जाँयगे ॥ २१ ॥

तेषां प्रजाविसर्गश्च स्थविष्ठः संभविष्यति ।
वासुदेवे भगवति सत्वमूर्त्तौ हृदि स्थिते ॥२२॥

और सत्वगुणी मूर्त्ति भगवान् वासुदेव के हृदय में स्थित रहने से उन प्रजाओं की सन्तान फिर बढ़ने लगेगी ॥ २२ ॥

यदाऽवतीर्णो भगवान्कल्किर्धर्मपतिर्हरिः ।
कृतं भविष्यति तदा प्रजासूतिश्च सात्विकी ॥२३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जब धर्म-पालक कल्किभगवान् अवतार धारण करेंगे, तब से सतयुग का प्रवेश होगा और प्रजा की सन्तान भी सतोगुणी होगी ॥२३॥

यदा चंद्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यबृहस्पती ।
एकराशौ समेष्यंति तदा भवति तत्कृतम् ॥२४॥

जब पुष्य नक्षत्र के योग से चन्द्र, सूर्य और बृहस्पति एक ही राशि पर आँयगे, तबसे सतयुग प्रारम्भ होगा ॥ २४ ॥

येऽतीता वर्तमाना ये भविष्यंति च पार्थिवाः ।
ते त उद्देशतः प्रोक्ता वंशीयाः सोमसूर्ययोः॥२५॥

सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजा जो पहले हो चुके हैं, अभी विद्यमान्हैं या जो आगे होनेवाले हैं उनका वर्णन मैं संक्षेप में तुमसे कर चुका हूँ ॥२५॥

आरभ्य भवतो जन्म यावन्नंदाऽभिषेचनम् ।
एतद्वर्षसहस्रं तु शतं पंचदशोत्तरम् ॥२६॥

तुम्हारे जन्म से लेकर नन्द राजा के शासन तक पन्द्रह सौ दस वर्ष तक का समय है ॥२६॥

सप्तर्षीणां तु यौ पूर्वौ दृश्येते उदितौ दिवि ।
तयोस्तु मध्ये नक्षत्रं दृश्यते यत्समं निशि ॥२७॥
तेनैव ऋषयो युक्तास्तिष्ठंत्यब्दशतं नृणाम् ।
ते त्वदीये द्विजाः काल अधुना चाश्रिता मघाः२८॥

आकाश में सप्तर्षि-मंडल उदय होता है, उनमें जो पहले दो तारे दिखाई पड़ते हैं, उनके बीच समान प्रदेश में जो अश्विनी आदि नक्षत्र रात के समय दीखता है; उस प्रत्येक नक्षत्र सहित सप्तर्षि मण्डल लगभग मनुष्य के सौ वर्ष तक एक नक्षत्र पर रहते हैं, यह सप्तर्षि तुम्हारे जन्म-काल से अब तक मघा नक्षत्र पर हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

विष्णोर्भगवतो भानुः कृष्णाख्योऽसौ दिवं गतः ।
तदाऽविशत्कलिर्लोकं पापे यद्रमते जनः ॥२९॥

जब श्रीकृष्ण भगवान्का शुद्ध सात्विकी शरीर वैकुंठ धाम को चला गया, तभी से कलियुग का प्रवेश होचुका है, कि जिस युगमें लोगोंकी प्रवृत्ति पाप की ओर हुआ करती है ॥२९॥

यावत्स पादपद्माभ्यां स्पृशन्नास्ते रमापतिः ।
तावत्कलिर्वै पृथिवीं पराक्रांतुं न चाशकत् ॥३०॥

यद्यपि कलियुग सूक्ष्म रीति से लक्ष्मी-पति श्री कृष्ण भगवान् के समय में ही प्रारम्भ होगया था, परन्तु जब तक वे अपने चरण-कमल से पृथ्वी का स्पर्श करते रहे तब तक पृथ्वी का पराभव न कर सका था ॥३०॥

यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरंति हि ।
तदा प्रवृत्तस्तु कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः ॥३१॥

जब से सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर वर्तने लगे हैं, तभी से दिव्य बारह सौ वर्ष की अवधि वाले कलियुग का प्रारम्भ हो चुका है ॥ ३१ ॥

यदा मघाभ्यो यास्यंति पूर्वाषाढां महर्षयः ।
तदा नंदात्प्रभृत्येष कलिर्वृद्धिं गमिष्यति ॥३२॥

जब सप्तर्षि मण्डल मघा नक्षत्र से निकल कर पूर्वाषाढ़ नक्षत्र पर जाँयगे तब नन्दका राज्य होगा और तभी से कलियुग का अधिक प्रभाव बढ़ेगा ॥

यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाऽहनि ।
प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः ॥३३॥

जिस दिन और जिस घड़ी में श्रीकृष्ण भगवान् स्वधाम को पधारे, उसी समय से कलियुग का प्रवेश हो चुका है—ऐसा भूतकालके जाननेवाले वाले ऋषि लोग कहते हैं ॥३३॥

दिव्याब्दानां सहस्रांते चतुर्थे तु पुनः कृतम् ।
भविष्यति यदा नृणां मन आत्मप्रकाशकम् ॥३४॥

कलियुग का प्रमाण बारहसौ दिव्य वर्षोंका है, उसके बीतने पर सतयुग प्रारम्भ होगा, तभी से मनुष्यों के मनमें आत्म-प्रकाश होने लगेगा ॥३४॥

इत्येष मानवो वंशो यथा संख्यायते भुवि ।
तथा विट्शूद्रविप्राणां तास्ता ज्ञेया युगेयुगे ॥३५॥

हे राजन् ! जिस प्रकार मनुवंशी राजाओं की स्थिति का हेर-फेर कहा गया है वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की स्थिति का हेर-फेर जानना चाहिये ॥३५॥

एतेषां नामलिंगानां पुरुषाणां महात्मनाम् ।
कथामात्रावशिष्टानां कीर्त्तिरेव स्थिता भुवि॥३६॥

जिन महात्माओं के केवल अब नाम ही जानने में आते हैं और जिनकी केवल अब चरचा ही रह गई है, वे पृथ्वी पर नहीं हैं, परन्तु उनकी कीर्त्ति मात्र ही यहाँ रह गई है ॥३६॥

देवापिः शंतनोर्भ्राता मरुश्चेक्ष्वाकुवंशजः ।
कलापग्राम आसाते महायोगबलान्वितौ ॥३७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चन्द्रवंशी राजा शंतनु का भाई देवापि और इक्ष्वाकु वंशी मरु-यह दोनों महायोग-बलके प्रभाव से कलाप ग्राम में निवास कर रहे हैं ॥ ३७॥

ताविहैत्य कलेरंते वासुदेवानुशिक्षितौ ।
वर्णाश्रमयुतं धर्मं पूर्ववत्प्रथयिष्यतः ॥३८॥

वे दोनों राजा कलिकाल के अन्त में भगवान् की आज्ञा से फिर यहाँ आकर पहले ही की तरह वर्णाश्रम सम्बन्धी धर्म का लोगों में प्रचार करेंगे॥

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ।
अनेन क्रमयोगेन भुवि प्राणिषु वर्त्तते ॥३९॥

सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग-इसी क्रम से पृथ्वी पर देहधारियों में वर्ता करते हैं ॥३९॥

राजन्नेते मया प्रोक्ता नरदेवास्तथाऽपरे ।
भूमौ ममत्वं कृत्वांते हित्वेमां निधनं गताः॥४०॥

हे राजन् ! मेरे कहे हुए यह राजा तथा दूसरे भी जो हुए हैं, वे सब पृथ्वी की ममता बाँध कर अन्त में उसे छोड़कर स्वयं नष्ट होगये ॥४०॥

कृमिविड्भस्मसंज्ञाऽन्ते राजनाम्नोऽपि यस्य च ।
भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः॥४१॥

राजा कहलाने पर भी जिस देह की अन्तिम दशा कीड़ा, विष्ठा या भस्म रूप होती है, उसके लिये दूसरे प्राणियों से द्रोह करने वाले पुरुष का क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकताहै ? इससे तो नरक ही मिलता है ॥ ४१ ॥

कथं सेयमखंडा भूः पूर्वैर्मे पुरुषैर्धृता ।
मत्पुत्रस्य च पौत्रस्य मत्पूर्वा वंशजस्य च ॥४२॥

तेजोऽबन्नमयं कायं गृहीत्वात्मतयाऽबुधाः ।
महीं ममतया चोभौ हित्वांऽतेऽदर्शनं गताः॥४३॥

इस अखंड पृथ्वीका मेरे पूर्वजोंने कैसा पालन किया और वह मेरे व मेरे पुत्र-पौत्रोंके पास अविचल रीति से क्यों कर रह सकेगी ?' इस प्रकार की ममता के साथ पृथ्वीको तथा अग्नि तेज और जल मय देह को आत्मा समझ कर उनकी ममता अहंता में पड़े रहकर अन्त में दोनों को ही छोड़ कर मूर्ख राजा मर गये ॥४२॥४३॥

येये भूपतयो राजन्भुंजंति भुवमोजसा ।
कालेन ते कृताः सर्वे कथामात्राः कथासु च॥४४॥

हे राजन् ! जो-जो राजा अपनी शक्तिसे पृथ्वी का भोग करते रहे हैं, उन सबका नाम मात्र ही कहने के लिये काल ने छोड़ा है ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते द्वादशस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तीसरा अध्याय

(काल-प्रमाण)

श्रीशुक उवाच

दृष्ट्वात्मनि जये व्यग्रान्नृपान्हसति भूरियम् ।
अहो मां विजिगीषंति मृत्योः क्रीडनका नृपाः॥ १॥

श्रीशुकदेवजी बोले-जो राजा इस पृथ्वी को जीतने का उद्योग करते हैं उन्हें देखकर यह हँसती है कि हैं ! यह काल के खिलौने रूप राजा मुझे जीतना चाहते हैं ॥ १ ॥

काम एष नरेंद्राणां मोघः स्याद्विदुषामपि ।
येन फेनोपमे पिंडे येऽतिविश्रंभिता नृपाः ॥ २ ॥

जिस प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये इस बुलबुलेके समान शरीरपर विश्वास किया जाताहै, वह प्रयोजन विद्वान् राजाओं तकके व्यर्थ होते हैं ॥

पूर्वं निर्जित्य षड्वर्गं जेष्यामो राजमंत्रिणः ।
ततः सचिवपौराप्तकरींद्रानस्य कंटकान् ॥ ३ ॥

एवं क्रमेण जेष्यामः पृथ्वीं सागरमेखलाम् ।
इत्याशाबद्धहृदयान पश्यंत्यंतिकेंऽतकम् ॥ ४ ॥

समुद्रावरणां जित्वा मां विशंत्यब्धिमोजसा ।
कियदात्मजयस्यैतन्मुक्तिरात्मजये फलम् ॥ ५ ॥

राजा लोग बहुधा यह सोचा करते हैं कि 'हम पहले छः इन्द्रियों को जीतेंगे, फिर राज-मंत्रियोंको जीतेंगे, फिर कंटक उखाड़कर सचिव, नगर-निवासी, सभ्य पुरुष और राजाओं को जीतेंगे, ऐसे क्रम से समुद्र रूपी मेखला वाली पृथ्वी को वशमें कर लेंगे' इस प्रकार की आशा में बँधे हुए राजा लोग अपने पास सिर पर मँडराते हुए काल को नहीं देखते, कितने एक राजा तो मुझे जीतते हुए तृष्णा से समुद्र पार के देशों तक में जाते हैं, पर इन्द्रियों को वश में करने का यह तुच्छ फल नहीं, साक्षात् मोक्ष ही फल है ॥३॥४॥५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यां विसृज्यैव मनवस्तत्सुताश्च कुरूद्वह ।
गता यथागतं युद्धे तां मां जेष्यंत्यबुद्धयः ॥ ६ ॥

हे कुरुनन्दन ! पृथ्वी कहती है कि जिसे छोड़ कर मनु और उनके पुत्र तक चले गये, उस मुझ को यह दुर्बुद्धि राजा लोग क्या युद्धमें जीत लेंगे ॥

मत्कृते पितृपुत्राणां भ्रातृणां चापि विग्रहः ।
जायते ह्यसतां राज्ये ममताबद्धचेतसाम् ॥ ७ ॥

जिन दुष्टों का चित्त राज्य-ममता से बँधाहुआ है, वे पिता-पुत्र और भाई-भाई ही परस्पर कलह कर बैठते हैं ॥७॥

ममैवेयं मही कृत्स्ना न ते मूढेति वादि नः ।
स्पर्धमाना मिथो घ्नंति म्रियंते मत्कृते नृपाः ॥ ८ ॥

"हे मूढ़ ! यह पृथ्वी मेरी है, तेरी नहीं" इस प्रकार आपसमें स्पर्द्धा रखते हुए राजा लोग मरते मारते रहते हैं ॥८॥

पृथुः पुरूरवा गाधिर्नहुषो भरतोऽर्जुनः ।
मांधाता सगरो रामः खट्वांगो धुंधुहा रघुः॥ ९ ॥
तृणबिंदुर्ययातिश्च शर्यातिः शंतनुर्गयः ।
भगीरथः कुवलयाश्वः ककुत्स्थो नैषधो नृगः॥१०॥
हिरण्यकशिपुर्वृत्रो रावणो लोकरावणः ।
नमुचिः शंबरो भौमो हिरण्याक्षोऽथ तारकः॥११॥
अन्ये च बहवो दैत्या राजानो ये महेश्वराः ।
सर्वे सर्वविदः शूराः सर्वे सर्वजितोऽजिताः ॥१२॥
ममतां मय्यवर्त्तंत कृत्वोच्चैर्मर्त्यधर्मिणः ।
कथावशेषाः कालेन ह्यकृतार्थाः कृता विभो॥१३॥

पृथु, पुरूरवा; गाधि, नहुष, भरत, अर्जुन, मांधाता, सगर, राम, खट्वाँग, धुंधुहा, रघु, तृण विन्दु, ययाति, शर्याति, शान्तनु, गय, भगीरथ, कुवलयाश्व, ककुत्स्थ, नल, नृग, हिरण्यकशिपु, वृत्रासुर, लोकों को रुलाने वाला रावण, नमुचि, शंबर, भौमासुर, हिरण्याक्ष, तारकासुर तथा दूसरे भी असुर एवं राजा कि जो सबसे अधिक ऐश्वर्य वान् सब कुछ जानने वाले सबको जीतने वाले शूरवीर और कभी भी किसी से न हारने वाले थे, वे भी मुझमें दृढ़ ममता बाँधकर अन्त में मर गये, उन अपूर्ण मनोरथ वालों को काल ने केवल नाम मात्र से ही कहने योग्य छोड़ाहै ॥९—१३॥

कथा इमास्ते कथिता महीयसांविताय लोकेषु यशः परेयुषाम् । विज्ञानवैराग्यविवक्षया विभो वचोविभूतीर्न तु पारमार्थ्यम् ॥१४॥

हे राजन् ! लोकों में यश को फैलाकर मरे हुए इन महात्मा राजाओं की कथायें केवल विषयों की असारता और वैराग्य बतलाने के लिये कही हैं, इसलिये यह भी केवल वाणी मात्र की विलासरूप ही हैं, परमार्थ रूप नहीं ॥१४॥

यस्तूत्तमश्लोकगुणानुवादः संगीयतेऽभीक्ष्णम मंगलघ्नः । तमेव नित्यं शृणुयादभीक्ष्णं कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः॥१५॥

इनमें जो अमङ्गल-नाशक भगवान् का गुणानुवाद बारंबार गाया जाता है वही पुरुषार्थ रूप है, इसलिये जो श्रीकृष्ण भगवान्के प्रति निर्मल भक्ति के अभिलाषी हों उन्हें यह चरित्र निरन्तर सुनना चाहिये ॥१५॥

राजोवाच

केनोपायेन भगवान् कलेर्दोषान्कलौ जनाः ।
विधमिष्यंत्युपचितांस्तन्मे ब्रूहि यथा मुने ॥१६॥

परीक्षित बोले-हे भगवन्! हे मुनिराज ! कलियुग के दोषों को उस कालमें उत्पन्न होनेवाले लोग किस प्रकार से दूर कर सकते हैं ? सो मुझ से ठीक-ठीक कहिये ॥१६॥

युगानि युगधर्मांश्च मानं प्रलयकल्पयोः ।
कालस्येश्वररूपस्य गतिं विष्णोर्महात्मनः ॥१७॥

और प्रत्येक युग के धर्म, प्रलय और कल्प का प्रमाण और ईश्वर रूप श्रीविष्णु-मूर्त्ति महात्मा काल की गति कहिये ॥१७॥

श्रीशुक उवाच

कृते प्रवर्त्तते धर्मश्चतुष्पात्तैर्जनैर्धृतः ।
सत्यं दया तपो दानमिति पादा विभोर्नृप॥१८॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन्! सतयुगमें मनुष्यों का धर्म चारों चरणों से बर्तता है, सत्य, दया तप और दान-यह चार धर्मके चरण हैं ॥१८॥

संतुष्टाः करुणा मैत्राः शांता दांतास्तितिक्षवः ।
आत्मारामाः समदृशः प्रायशः श्रमणा जनाः१९॥

सतयुग के मनुष्य प्रायः सन्तोषी, दयालु, सब से मित्रभाव रखने वाले, शान्त, इन्द्रियजित, सहन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तक्षकः प्रहितो विप्राः क्रुद्धेन द्विजसूनुना ।
हंतुकामो नृपं गच्छन्ददर्श पथि कश्यपम् ॥११॥

हे ब्राह्मणो ! क्रोध में आये हुए ब्राह्मण के पुत्र (ऋष्यश्रृङ्ग) का भेजा हुआ तक्षक जब राजा को काटने की इच्छासे चला तब उसने रास्तेमें कश्यप को देखा ॥११॥

तं तर्पयित्वा द्रविणैर्निवर्त्य विषहारिणम् ।
द्विजरूपप्रतिच्छन्नः कामरूपोऽदशन्नृपम् ॥१२॥

तक्षक ने उस विष दूर करने वाले ब्राह्मण को यथेष्ठ धन से तृप्त करके बीच ही से लौटा दिया और उस इच्छानुसार वेष रखने वाले (तक्षक) ने अपनेको ब्राह्मण वेषमें छिपाकर राजाको काटलिया॥

ब्रह्मभूतस्य राजर्षेर्देहोऽहिगरलाग्निना ।
बभूव भस्मासात्सद्यः पश्यतां सर्वदेहिनाम् ॥१३॥

उन ब्रह्मस्वरूप राजर्षिका शरीर विष की अग्नि से सब लोगोंके देखते २ ही तत्काल भस्म होगया॥

हाहाकारो महानासीद्भुवि खे दिक्षु सर्वतः ।
विस्मिता ह्यभवन् सर्वे देवासुरनरादयः ॥१४॥

उस समय पृथ्वी, आकाश और दिशाओं में चारों ओर से बड़ा ही हाहाकार मच गया और देवता, असुर तथा मनुष्य आदि सभी आश्चर्य में पड़ गये ॥ १४ ॥

देवदुन्दुभयो नेदुर्गंधर्वाप्सरसो जगुः ।
ववर्षुः पुष्पवर्षाणि विबुधाः साधुवादिनः ॥१५॥

आकाश में देवताओं की दुन्दुभि बजने लगी, गन्धर्व और अप्सराओं का गायन होने लगा और देवगण धन्य २ कहते हुए फूल बरसाने लगे ।१५॥

जनमेजयः स्वपितरं श्रुत्वा तक्षकभक्षितम् ।
तथा जुहाव संक्रुद्धो नागान्सत्रे सह द्विजैः ॥१६॥

जब जन्मेजय ने तक्षक के द्वारा अपने पिता का मरना सुना, तो उन्होंने क्रोधित होकर ब्राह्मणों को बुलाया और यज्ञ में सर्पों का होम करना प्रारम्भ कर दिया ॥१६॥

सर्पसत्रे समिद्धाग्नौ दह्यमानान्महोरगान ।
दृष्ट्वेंद्रं भयसंविग्नस्तक्षकः शरणं ययौ ॥१७॥

उस सर्प यज्ञ से प्रदीप्त हुए अग्नि में बड़े-बड़े साँपों को जलता हुआ देखकर तक्षक भय के मारे चिन्तित होकर इन्द्र के शरण गया ॥१७॥

अपश्यंस्तक्षकं तत्र राजा पारीक्षितो द्विजान् ।
उवाच तक्षकः कस्मान्न दह्येतोरगाधमः ॥१८॥

परीक्षित के पुत्र जन्मेजय राजाने अपने यज्ञमें तक्षकको न देखकर ब्राह्मणों से कहा कि नागों में अधम तक्षक क्यों नहीं जलता ॥१८॥

तं गोपायति राजेंद्र शक्रः शरणमागतम् ।
तेनसंस्तंभितः सर्पस्तस्मान्नाग्नौ प्रतत्यसौ ॥१९॥

ब्राह्मण बोले–हे राजेन्द्र ! इन्द्र अपनी शरण में आये हुए इस तक्षककी रक्षा कररहाहै और उसी ने इसको रोक रक्खा है, इसलिये वह अग्नि में नहीं पड़ता ॥१९॥

पारीक्षित इतिश्रुत्वा प्राहर्त्विज उदारधीः ।
सहेंद्रस्तक्षको विप्रा नाग्नौ किमिति पात्यते ॥२०॥

यह बात सुनकर उदार बुद्धि राजा जन्मेजयने ऋषियोंसे कहा कि हे ब्राह्मणो ! इन्द्र सहित तक्षक ही को क्यों नहीं अग्निमें डाल देते ? ॥२०॥

तच्छ्रुत्वा जुहुवुर्विप्राः सहेंद्रं तक्षकं मखे ।
तक्षकाशु पतस्वेह सहेंद्रेण मरुत्वता ॥२१॥

यह वचन सुनकर ब्राह्मणोंने यज्ञमें इन्द्र सहित तक्षक को इस प्रकार के मन्त्रों से बुलाया कि 'हे तक्षक ! मरुत् गण के स्वामी इन्द्र के साथ तू यहाँ शीघ्र ही पड़, ॥ २१॥

इति ब्रह्मोदिताक्षेपैः स्थानादिंद्रः प्रचालितः ।
बभूव संभ्रांतमतिः सविमानः सतक्षकः ॥२२॥

ब्राह्मणोंके कहे हुए इन कठोर वाक्योंसे तक्षक सहित इन्द्र अपने स्थानसे विमानके साथ चलायमान् होते हुए मनमें व्याकुल हो उठे ॥२२॥

तं पततं विमानेन सह तक्षकमंबरात् ।
विलोक्यांगिरसः प्राह राजानं तं बृहस्पतिः ॥२३॥

तक्षक सहित इन्द्रको आकाशसे गिरता हुआ देखकर अङ्गिराके पुत्र बृहस्पतिने उन राजा जनमेजय से कहा कि ॥ २३ ॥

नैष त्वया मनुष्येंद्र वधमर्हति सर्पराट् ।
अनेन पीतममृतमथ वा अजरामरः ॥२४॥

हे राजन् ! इस सर्पराज का बध तुम्हारे द्वारा होना अयोग्यहै, क्योंकि इसने अमृत पान किया है इसलिये यह अजर और अमर है ॥२४॥

जीवितं मरणं जंतोर्गतिः स्वेनैव कर्मणा ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजंस्ततोऽन्यो नान्यस्य प्रदाता सुखदुःखयोः २५॥

हे राजन्! प्राणियों का जीवन-मरण और परलोक उनके कर्मों पर निर्भर है, सुख-दुख का देने वाला कोई दूसरा नहीं ॥२५॥

सर्पचोराग्निविद्युद्भ्यः क्षुत्तृड्व्याध्यादिभिर्नृप ।
पंचत्वमृच्छते जंतुर्नान्य आरब्धकर्म तत् ॥२६॥

हे राजन्! सर्प, चोर, अग्नि, बिजली या रोग आदि के द्वारा जो मनुष्य का मरण होता है, वह प्रारब्ध कर्म ही के कारण हुआ करता है ॥२६॥

तस्मात्सत्रमिदं राजन संस्थीयेताभिचारकम् ।
सर्पा अनागसो दग्धा जनैर्दिष्टं हि भुज्यते ॥२७॥

इसलिये हे राजन्! इस हिंसामय यज्ञको यहीं से बन्द करदो, इसमें अनेक निरपराधी सर्प जल गयेहैं, परन्तु वह तुम्हारा दोष नहीं, क्योंकि प्राणी अपने प्रारब्ध कर्म ही को भोगता है ॥२७॥

सूत उवाच

इत्युक्तः स तथेत्याह महर्षेर्मानयन्वचः ।
सर्पसत्रादुपरतः पूजयामास वाक्पतिम् ॥२८॥

जब बृहस्पतिजी ने इस प्रकार कहा, तब उन के वचनका मान करनेके लिये उसे स्वीकार किया और सर्प यज्ञ समाप्त करके बृहस्पतिजी का पूजन किया ॥ २८ ॥

सैषा विष्णोर्महामायाऽबाध्ययाऽलक्षणा यया ।
मुह्यंत्यस्यैवात्मभूता भूतेषु गुणवृत्तिभिः ॥२९॥

भगवान् विष्णु की अतर्क्य माया किसीसे भी निवारण नहीं होती, कि जिसके द्वारा उन्हीं भगवान् का अंश 'जीव' अपनी देह में तीनों गुणों की वृत्ति क्रोध आदि से मोहित होकर संसार में भ्रमता रहता है ॥२९॥

न यत्र दंभीत्यभया विराजिता मायात्मवादेऽसकृदात्मवादिभिः । न यद्विवादो विविधस्तदाश्रयोमनश्च संकल्पविकल्पवृत्तिमत् ॥३०॥

जब आत्मवादी पुरुष बार-बार आत्म-तत्व पर विचार करते हैं, तब यह कपट कारिणी माया निर्भय रूपसे नहीं रहने पाती, क्योंकि उस विचार तक माया के आश्रय देने वाले अनेक वाद और संकल्प-विकल्प रूप वृत्ति वाला मन भी नहीं रहता भाव यह है कि आत्म-विचारही से माया छूटतीहै।

न यत्र सृज्यं सृजतोभयोः परं श्रेयश्च जीवस्त्रिभिरन्वितस्त्वहम् । तदेतदुत्सादितबाध्यबाधकं निषिध्य चोर्मीन्विरमेत्स्वयं मुनिः ॥३१॥

अहङ्कार आदि तरङ्गों को छोड़ कर जिसमें इन्द्रियाँ कर्म और इन दोनों से होने वाला फल तथा इन तीनों से संबन्ध रखने वाला अहङ्कारमय जीव रूप नहीं रहता, इसलिये जिसमें पीड़ा देने वाला तथा पीड़ित दोनों नहींहैं, उसी आत्म-स्वरूप में विवेकी पुरुष को अपनी इच्छा पूर्वक रमण करना चाहिये ॥३१॥

परं पदं वैष्णवमामनंति तत् यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः । विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौ हृदा हृदोपगुह्यावसितं समाहितैः ॥३२॥

अनात्म पदार्थों के त्याग की इच्छा करते हुए देहादि के अहंभाव को छोड़कर एक आत्मा के सिवा किसी भी दूसरे से प्रेम रखने वाले विवेकी पुरुष अनात्म पदार्थों को 'नेति-नेति कह छोड़ कर अन्त में प्रतीत होने वाले आत्म-स्वरूप को ही विष्णुका परम पद कहतेहैं कि जिसका समाधिस्थ पुरुषों ने ध्यान आदि के द्वारा हृदय में अनुभव किया है ॥ ३२ ॥

त एतदधिगच्छंति विष्णोर्यत्परमं पदम् ।
अहं ममेति दौर्जन्यं न येषां देहगेहजम् ॥३३॥

जो लोग देह और घर में अहंता तथा ममता नहीं रखते, वही विष्णुके इस परम पदको पातेहैं॥

अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन ।
न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥३४॥

इसलिये पराये दुर्वचनों को सहन करना चाहिये, किसी का अपमान न करना चाहिये और इस देह के लिये किसी से बैर न करना चाहिये ॥

नमो भगवते तस्मै कृष्णायाकुंठमेधसे ।
यत्पादांबुरुहध्यानात्संहितामध्यगामिमाम् ॥३५॥

अकुंठित बुद्धि वाले श्रीवेदव्यासजी को मैं प्रणाम करताहूँ कि जिनके चरणारविंद का ध्यान करने से मुझे यह भागवत संहिता प्राप्त हुई है ॥

शौनक उवाच

पैलादिभिर्व्यासशिष्यवैदाचार्यैर्महात्मभिः ।
वेदाश्च कतिधा व्यस्ता एतत्सौम्याभिधेहि नः ३६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शौनक बोले–हे सौम्य ! व्यासजी के शिष्य वेदों के प्रवर्त्तक पैल आदि आचार्य महात्माओं ने वेद विभाग कितने प्रकार से किया है ? सो हम से कहिये ॥३६॥

सूत उवाच

समाहितात्मनो ब्रह्मन् ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
हृद्याकाशादभून्नादो वृत्तिरोधाद्विभाव्यते ॥३७॥

सूतजी बोले–हे ब्रह्मन् ! समाधिस्थ परमेष्ठी ब्रह्माजीके हृदय-आकाशसे पहले नाद उत्पन्न हुआ कि जो कान मूँदने से सुनाई पड़ता है ॥३७॥

यदुपासनया ब्रह्मन् योगिनो मलमात्मनः ।
द्रव्यक्रियाकारकाख्यं धूत्वा यांत्यपुनर्भवम् ॥३८॥

और जिस नाद की उपासना करने से योगी जन अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैवतरूपी अपने मलको धोकर मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥३८॥

ततोऽभूत्त्रिवृदोंकारो योऽव्यक्तप्रभवः स्वराट् ।
यत्तल्लिंगं भगवतो ब्रह्मणः परमात्मनः ॥३९॥

इस नाद में से स्वयं प्रकाश तथा स्पष्ट रूपसे समझ में न आने वाला 'अ, उ, म्' तीन अक्षर वाला 'ओंकार' प्रकट हुआ है जो कि सर्व व्यापक परमात्मा भगवान् का बतलाने वाला है ॥३९॥

शृणोति य इमं स्फोटं सुप्तश्रोत्रे च शून्यदृक् ।
येन वाग्व्यज्यते यस्य व्यक्तिराकाश आत्मनः ॥४०॥

कि जो परमात्मा स्वयं ज्ञानमय होने के कारण सब शून्य होजाने तथा कान बन्द होने पर भी इस अव्यक्त ओंकार को सुनते हैं, जीव इन्द्रियों के आधीन होने से इस दशामें कुछ नहीं सुनसकता. हृदय रूपी आकाश में आत्मासे उत्पन्नहुए ओंकार से 'वैखरी' वाणी प्रकट हुई ॥४०॥

स्वधाम्नो ब्रह्मणः साक्षाद्वाचकः परमात्मनः ।
स सर्वमंत्रोपनिषद्वेदबीजं सनातनम् ॥४१॥

यही ओंकार अपने आश्रय रूप परमात्मा ब्रह्म का साक्षात् कराने वाला, सब मन्त्रों का रहस्य और वेदों का सनातन बीज है ॥४१॥

तस्य ह्यासंस्त्रयो वर्णा अकाराद्या भृगूद्वह ।
धार्यंते यैस्त्रयो भावा गुणनामार्थवृत्तयः ॥४२॥

हे भृगुकुलश्रेष्ठ ! इस ओंकारके 'अकार-उकार और मकार' यह तीन अक्षर प्रकटहुए जिनमें तीन गुण, तीन वेद, तीन लोक तथा तीन अवस्था आदि का भाव माना जाता है ॥४२॥

ततोऽक्षरसमाम्नायमसृजद्भगवानजः ।
अंतस्थोष्मस्वरस्पर्शह्रस्वदीर्घादिलक्षणम् ॥४३॥

ब्रह्माजी ने इन्हीं तीन वर्णोंसे अक्षरों का समूह बनाया, जिसमें अन्तस्थ (य र ल व) ऊषभ (श ष स ह) स्वर (अ से औ तक) स्पर्श (क् से म् तक) ह्रस्व और दीर्घ आदि सम्मिलित हैं ॥४३॥

तेनासौ चतुरो वेदांश्चतुर्भिर्वदनैर्विभुः ।
सव्याहृतिकान्सोंकारांश्चातुर्होत्रविवक्षया ॥४४॥

ब्रह्माजी ने यज्ञ संबन्धी कर्मों का उपदेश करने के लिये इस वर्ष समुदाय में से चार मुखों द्वारा व्याहृतियों (भूः भुवः स्वः) और ओंकार सहित चारों वेदों की रचना की ॥४४

पुत्रानध्यापयत्तांस्तु ब्रह्मर्षीन्ब्रह्मकोविदान् ।
ते तु धर्मोपदेष्टारः स्वपुत्रेभ्यः समादिशन् ॥४५॥

फिर ब्रह्माजी ने वेदोच्चारण में निपुण अपने पुत्र मरीचि आदि ब्रह्मर्षियों को वे (वेद) पढ़ाये और धर्मोपदेश करनेके लिये उन ब्रह्मर्षियोंने अपने पुत्रों को वह सिखाये ॥४५॥

ते परंपरया प्राप्तास्तत्तच्छिष्यैर्धृतव्रतैः ।
चतुर्युगेष्वथ व्यस्ता द्वापरादौ महर्षिभिः ॥४६॥

ये वेद व्रतधारी शिष्य परंपरा से चारों युगों में रहते हैं, द्वापर युग के अन्त में महर्षियों ने उन के विभाग किये हैं ॥४६॥

क्षीणायुषः क्षीणसत्त्वान्दुर्मेधान्वीक्ष्य कालतः ।
वेदान्ब्रह्मर्षयो व्यस्यन् हृदिस्थाच्युतनोदिताः ॥४७॥

काल के बल से अल्पायु, पराक्रम हीन और मन्द बुद्धि कलियुग वाले मनुष्यों को देखकर ही हृदय में विराजमान् भगवान् की प्रेरणा से इन ऋषियों ने वेद-विभाग किये हैं ॥४७॥

अस्मिन्नप्यंतरे ब्रह्मन् भगवाँल्लोकभावनः ।
ब्रह्मेशाद्यैर्लोकपालैर्याचितो धर्मगुप्तये ॥४८॥
पराशरात्सत्यवत्यामंशांशकलया विभुः ।
अवतीर्णो महाभाग वेदं चक्रे चतुर्विधम् ॥४९॥

हे शौनक ! इस वैवस्वत मन्वन्तर में धर्म की रक्षा के लिये ब्रह्मा तथा महादेव आदि लोकपालों की प्रार्थना पर लोकपाल भगवान् अपनी माया के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सात्विक अंश लेकर पराशरजी के वीर्य द्वारा सत्य वतीजी के गर्भ से श्रीवेदव्यासजी के रूप में प्रकट हुए हैं और उन्होंने वेदके चार विभाग किये हैं ॥

ऋगथर्वयजुःसाम्नां राशीनुद्धृत्य वर्गशः ।
चतस्रः संहिताश्चक्रे मंत्रैर्मणिगणा इव ॥५०॥

जैसे मणियोंके ढेरमें से माणिक्य आदि अलग अलग छाँट लिये जाते हैं, ऐसे ही मन्त्र समुदाय रूपी एक वेद में से ऋच्, यजुष. समान और अथर्वन् नाम के मन्त्रों को अपने-अपने वर्गके अनुसार अलग २ संग्रहीत करके ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद नाम की चार संहितायें वेदव्यासजी ने बनाईं ॥५०॥

तासां स चतुरः शिष्यानुपाहूय महामतिः ।
एकैकां संहितां ब्रह्मन्नेकैकस्मै ददौ विभुः ॥५१॥

हे शौनक ! फिर परम बुद्धि व्यासजी ने अपने चार शिष्यों को बुलाकर एक-एक को एक-एक संहिता प्रदान की ॥५१॥

पैलाय संहितामाद्यां बह्वृचाख्यामुवाच ह ।
वैशंपायनसंज्ञाय निगदाख्यं यजुर्गणम् ॥५२॥

पैलको बह्वृच नामकी पहली ऋग्वेद संहितादी, वैशंपायन को निगद नाम की यजुर्वेद संहितादी ।

साम्नां जैमिनये प्राह तथा छंदोगसंहिताम् ।
अथर्वांगिरसीं नाम स्वशिष्याय सुमंतवे ॥५३॥

जैमिन को छंदोग नाम की सामवेद संहिता दी और सुमन्तु को अङ्गिरस नामकी अथर्वण वेद संहिता दी ॥५३॥

पैलः स्वां संहितामूच इंद्रप्रमितये मुनिः ।
बाष्कलाय च सोप्याह शिष्येभ्यः संहितां स्वकाम् ॥
चतुर्धा व्यस्य बोध्याय याज्ञवल्क्याय भार्गव ।
पराशरायाग्निमित्रे इंद्रप्रमितिरात्मवान् ॥५५॥
अध्यापयत्संहितां स्वां मांडूकेयमृषिं कविम् ।
तस्य शिष्यो देवमित्रः सौभर्यादिभ्य ऊचिवान् ५६

पैल मुनि ने इन्द्र प्रमिति और बाष्कल नामके दो शिष्योंको अपनी संहिता सिखलाई, हे शौनक! बाष्कलने अपनी संहिताके चार भाग करके बोध्य, याज्ञवल्क्य, पराशर और अग्निमित्र-इन चार शिष्यों को वह पढ़ाई, आत्मवेत्ता इन्द्र प्रमिति ने अपने विद्वान् शिष्य मांडूकेय को अपनी संहिता पढ़ाई, मांडूकेय से देवमित्र ने सीखा और उन्होंने सौभरि आदि ऋषियों को सिखलाई ॥५४॥५५॥५६॥

शाकल्यस्तत्सुतस्तां तु पंचधा व्यस्य संहिताम् ।
वात्स्यमुद्गलशालीयगोखल्यशिशिरेष्वधात् ॥५७॥

मांडूकेय के पुत्र शाकल्य ने अपनी संहिता के पाँच भाग करके वात्स्य, मुद्गल, शालीय, गोखल्य और शिशिर नाम के शिष्यों को सिखलाई ॥५७॥

जातूकर्ण्यश्च तच्छिष्यः सनिरुक्तां स्वसंहिताम् ।
बलाकपैजवैतालविरजेभ्यो ददौ मुनिः ॥५८॥

शाकल्य के छठवें शिष्य जातूकर्ण्य ने अपनी संहिता के तीन भाग करके तथा वैदिक पदार्थों की व्याख्या करने वाला निरुक्त नामक ग्रन्थ बनाकर बलाक, पैज, बेताल और बिरज नाम के चार शिष्यों को पढ़ाया ॥५८॥

बाष्कलिः प्रतिशाखाभ्यो बालखिल्याख्यसंहिताम्
चक्रे बालाय निर्भज्य काशारश्चैव तां दधुः ॥५९॥

बाष्कल के पुत्र बाष्कलिने सब संहिताओंमें से बालखिल्य नामकी संहिता बनाकर उसे बालाय निभज्य और कासार को पढ़ाया ॥५९॥

बह्वृचाः संहिता ह्येता एभिर्ब्रह्मर्षिभिर्धृताः ।
श्रुत्वैतच्छंदसां व्यासं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६०॥

ये ऋक् वेद की संहितायें उन ब्रह्मर्षि लोगोंके द्वारा धारण की गई हैं, जो मनुष्य वेद के इस विस्तारको सुनेगा वह सब पापोंसे मुक्त होजायगा॥

वैशंपायनशिष्या वै चरकाध्वर्यवोऽभवन् ।
यच्चेरुर्ब्रह्महत्यांहःक्षपणं स्वगुरोर्व्रतम् ॥६१॥

वैशंपायन के शिष्य यजुर्वेद पढ़ने के कारण अध्वर्यु की पदवी को प्राप्त हुए, इनके गुरु को ब्रह्म हत्या का दोष लगा, तब गुरुके बदले इन्होंने उस पापसे निवृत्त होने के लिये प्रायश्चित किया, इस लिये इनका नाम चरकाध्वर्यु हुआ ॥६१॥

याज्ञवल्क्यश्च तच्छिष्य आहाहो भगवन्कियत् ।
चरितेनाल्पसाराणां चरिष्येऽहं सुदुश्चरम् ॥६२॥

शिष्य याज्ञवल्क्य ने गुरु वैशंपायनसे कहा कि अल्प दृढ़तावाले शिष्योंसे यह व्रत क्या होसकेगा? इसलिये मैं अकेले ही इसे करूँगा ॥६२॥

इत्युक्तो गुरुरप्याह कुपितो याह्यलं त्वया ।
विप्रावमंत्रा शिष्येण मदधीतं त्यजाश्विति ॥६३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देवता या जगत् की रचना सम्बन्धी विभाग नहीं रहते, अर्थात् सब एक होजाते हैं ॥१६॥

न स्वप्नजाग्रन्न च तत्सुषुप्तं न खं जलं भूरनिलोऽग्निरर्कः। संसुप्तवच्छून्यवदप्रतर्क्यं तन्मूलभूतं पदमामनंति ॥२०॥

उसमें जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, आकाश, पवन, अग्नि, जल; पृथ्वी और सूर्य भी नहीं हैं, वह शून्य के समान प्रतीत होताहै, उसे विद्वान् पुरुष जगत् का मूल तत्व कहते हैं ॥२०॥

लयः प्राकृतिको ह्येष पुरुषाव्यक्तयोर्यदा। शक्तयः संप्रलीयंते विवशाः कालविद्रुताः ॥२१॥

यह प्राकृतिक प्रलय कहलाती है, क्योंकि इस के अन्त में माया या प्रकृति शेष रहजाती है, जिस में प्रकृति तथा पुरुष की सब शक्तियाँ काल की प्रेरणा से परवश होकर लीन होजाती हैं ॥२१॥

बुद्धींद्रियार्थरूपेण ज्ञानं भाति तदाश्रयम्। दृश्यत्वाव्यतिरेकाभ्यामाद्यंतवदवस्तु यत् ॥२२॥

बुद्धि, इन्द्रिय और विषय के रूप में उनका आश्रय दाता एक ब्रह्म ही प्रकाश रहा है, इसलिये यह व्यक्तिगत सा दृश्यमान् आदि-अन्त वाला प्रपंच उससे जुदा न होनेके कारण अवस्तु रूपहैं॥

दीपश्चक्षुश्च रूपं च ज्योतिषो न पृथग्भवेत्। एवं धीः खानि मात्रांश्च न स्युरन्यतमादतात्॥२३॥

जैसे दीपक, नेत्र और रूप-ज्योति से अलग नहीं हैं, ऐसे ही बुद्धि, इन्द्रिय और तन्मात्रा ब्रह्म से अलग नहीं हैं ॥२३॥

बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति चोच्यते। मायामात्रमिदं राजन्नानात्वं प्रत्यगात्मनि ॥२४॥

हे राजन्! जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति-ये तीनों बुद्धि ही की वृत्तियाँहैं, शुद्ध आत्मामें जो अनेकता प्रतीत होती है, वह केवल माया मय है ॥ २४ ॥

यथा जलधरा व्योम्नि भवन्ति न भवंति च। ब्रह्मणीदं तथा विश्वमवयव्युदयाप्ययात् ॥२५॥

जैसे आकाशमें कभी तो बादल दीखते हैं और कभी नहीं दीखते, ऐसे ही ब्रह्ममें कभी यह जगत् दीखने लगता है, कभी लय होजाता है, इसलिये यह नश्वर है ॥२५॥

सत्यं ह्यवयवः प्रोक्तः सर्वावयविनामिह। विनार्थेन प्रतीयेरन्पटस्येवांगतंतवः ॥२६॥

जो अवयव वाले सभी पदार्थों का कारण रूप अवयव है, वही सत्य है, क्योंकि अवयव वाले पदार्थ के न रहनेपर भी मूल अवयव प्रतीत होता रहता है, जैसे कि वस्त्र रूप न होने पर भी तागा विद्यमान् रहता है, ऐसे ही ब्रह्म भी जगत्के विना होता है, अस्तु ब्रह्म ही सत्य है ॥२६॥

यत्सामान्यविशेषाभ्यामुपलभ्येत स भ्रमः। अन्योन्यापाश्रयात्सर्वमाद्यंतवदवस्तु यत् ॥२७॥

कार्य और कारण मिलकर जो कुछ भी होता है वह केवल भ्रम है, इसलिये परस्पर के आश्रय द्वारा जो कुछ भी आदि-अन्त वाला है वह सब अवस्तु है ॥२७॥

विकारः ख्यायमानोपि प्रत्यगात्मानमंतरा। न निरूप्योऽस्त्यणुरपि स्याच्चेच्चित्सम आत्मवत् २८

यह विकारमय जगत् प्रकाश मय है, परन्तु विना ब्रह्म के प्रकाशित नहीं है, जो विना ब्रह्म के प्रकाशित हो वह ब्रह्म रूप ही है ॥ २८ ॥

नहि सत्यस्य नानात्वम विद्वान्यदि मन्यते। नानात्वं छिद्रयोर्यद्वज्ज्योतिषोर्वातयोरिव ॥२९॥

सत्य पदार्थ एक ही होसकता है, उसमें अनेकत्व नहीं हो सकता, जिसमें अनेकत्व हो वह सत्य नहीं हो सकता, आत्मा या ब्रह्म वास्तव में एक ही हैं, जैसे आकाश और घटाकाश, या सूर्य तथा उसका प्रतिबिंब—सब एकही हैं, अस्तु ब्रह्ममें जो अनेकत्व मानते हैं वे अज्ञान हैं ॥ २९॥

यथा हिरण्यं बहुधा समीयते नृभिः क्रियाभिर्व्यवहारवर्त्मसु। एवं वचोभिर्भगवानधोक्षजो व्याख्यायते लौकिकवैदिकैर्जनैः ॥३०॥

जैसे स्वर्ण मनुष्यों के व्यवहार आदि में आने से चूड़ा, कुण्डल आदि रूपोंके द्वारा अनेक प्रकार का प्रतीत होता है, वैसे ही भगवान् अधोक्षज लौकिक तथा वैदिक वाणियों से व्यवहार में आने से अनेक रूप से प्रतीत होते हैं ॥ ३० ॥

यथा घनोऽर्कप्रभवोऽर्कदर्शितो ह्यर्कांशभूतस्य च चक्षुषस्तमः। एवं त्वहं ब्रह्मगुणस्तदीक्षितो ब्रह्मांशकस्यात्मन आत्मबंधनः ॥३१॥

जैसे सूर्यसे उत्पन्नहुआ और सूर्यही से प्रकाश

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पाया हुआ मेघ सूर्य के अंशरूप चक्षु को ढक लेता है, वैसे ब्रह्म से उत्पन्न हुआ और ब्रह्मही से प्रकाशित अहङ्कार ब्रह्म के अंश रूप जीवको उसी ब्रह्म दर्शन में बाधक बन जाता है॥ ३१ ॥

घनो यदाऽर्कप्रभवो विदीर्यते चक्षुः स्वरूपं रविमीक्षते तदा। यदा ह्यहंकार उपाधिरात्मनो जिज्ञासया नश्यति तर्ह्यनुस्मरेत् ॥३२॥

जब सूर्यसे उत्पन्न हुए मेघ छिन्न-भिन्न होजाते हैं तब चक्षु सूर्य को देख सकतेहैं, इसी प्रकार जब तत्व-विचार द्वारा अहङ्काररूप उपाधि नष्ट होजाती है, तब यह जीव अपने ब्रह्म-स्वरूपको देखता है ॥

यदैवमेतेन विवेकहेतिना मायामयाहंकरणात्म बंधनम्। छित्त्वाऽच्युतात्मानुभवोऽवतिष्ठते तमाहुरात्यंतिकमंग संप्लवम् ॥३३॥

इस प्रकार विवेक रूपी शस्त्रसे मायामय अहंकार रूपी आत्मा के बन्धन को काट जब जीव परिपूर्ण ब्रह्मका अनुभव करताहै, तब विद्वान् पुरुष उस स्थिति (मोक्ष) को आत्यंतिक प्रलय कहतेहैं ॥

नित्यदा सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां परंतप।
उत्पत्तिप्रलयावेके सूक्ष्मज्ञाः संप्रचक्षते ॥३४॥

हे शत्रुओं को सन्तापकारी! कुछ सूक्ष्म वेत्ता विद्वानों का मतहै कि ब्रह्मा आदि समस्त प्राणियों की उत्पत्ति और प्रलय क्षण-क्षणपर हुआ करतीहै॥

कालस्रोतोजवेनाशु ह्रियमाणस्य नित्यदा।
परिणामिनामवस्थास्ता जन्मप्रलयहेतवः ॥३५॥

जैसे नदी के प्रवाह या दीपक के ज्वाला की गति क्षण-क्षण पर बदलती रहतीहै, ऐसेही काल रूप प्रवाह के वेग से क्षण-क्षणपर आयु बल-हरण होने के कारण देह आदि की अवस्थाका नित्य ही क्षण-क्षण पर जन्म-मरण हुआ करता है, भाव यह है कि जगत्की प्रत्येक वस्तु क्षण-क्षण में एक नया रूप पाया करती है, इसलिये पिछले रूपका त्याग मरण माना जाताहै और नये रूपकी प्राप्ति जन्म ॥

अनाद्यंतवताऽनेन कालेनेश्वरमूर्त्तिना।
अवस्था नैव दृश्यंते वियति ज्योतिषामिव ॥३६॥

जैसे आकाश में नक्षत्र आदि की गति देखनेमें नहीं आती, वैसे ही आदि-अन्त रहित ईश्वर की मूर्त्ति रूप काल से होती हुई प्राणियों की सूक्ष्म अवस्था जानने में नहीं आती ॥३६॥

नित्यो नैमित्तिकश्चैव तथा प्राकृतिको लयः।
आत्यंतिकश्च कथितः कालस्य गतिरीदृशी ॥३७॥

इस प्रकार नैमित्तिक, प्राकृतिक, आत्यंतिक और नित्य-इन चार प्रकारके प्रलयों का तुमसे वर्णन किया, काल की गति इसी प्रकार है ॥३७॥

एताः कुरुश्रेष्ठ जगद्विधातुर्नारायणस्याखिल सत्त्वधाम्नः। लीला कथास्ते कथिताः समासतः कात्स्न्र्येन नाजोऽप्यभिधातुमीशः ॥३८॥

हे कुरुश्रेष्ठ! जगत्कर्त्ता और सब प्राणियों के आश्रय रूप नारायण की लीलाओं की यह कथा मैंने तुमसे संक्षेप में कही है, इसे पूरा तो ब्रह्मा भी नहीं कह सकते ॥३८॥

संसारसिंधुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षोर्नाऽन्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य। लीलाकथारसनिषेवणमंतरेण पुंसो भवेद्विविधदुःखदवार्दितस्य ॥३९॥

जो लोग अनेक दुःख रूपी दावाग्नि से पीड़ित इस दुस्तर संसार-सागरको पार करना चाहें, उन को भगवान् पुरुषोत्तम की लीला-गाथा के सेवन करने के सिवा कोई तरणी नहीं है ॥३९॥

पुराणसंहितामेतामृषिर्नारायणोऽव्ययः।
नारदाय पुरा प्राह कृष्णद्वैपायनाय सः ॥४०॥

अविनाशी नारायण ऋषि ने पहले यह पुराण संहिता नारदजी से कही थी, नारदजी ने श्रीवेदव्यासजी से वर्णन की थी ॥४०॥

स वै मह्यं महाराज भगवान्बादरायणः।
इमां भागवतीं प्रीतः संहितां वेदसंमिताम् ॥४१॥

हे राजन्! इन महात्मा वेदव्यासजी ने प्रसन्न होकर इस वेद-तुल्य भागवत को मुझसे वर्णन किया ॥ ४१ ॥

एतां वक्ष्यत्यसौ सूत ऋषिभ्यो नैमिशालये।
दीर्घसत्रे कुरुश्रेष्ठ संपृष्टः शौनकादिभिः ॥४२॥

हे कुरुश्रेष्ठ! यह अपने पास बैठा हुआ सूत (आगे चलकर) नैमिषारण्य में दीर्घ-कालीन यज्ञके समय शौनकादि ऋषियोंके पूछने पर उनको यही कथा सुनायगा ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवते द्वादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पाचवां अध्याय

(ब्रह्मोपदेश)

श्रीशुक उवाच

अत्रानुवर्ण्यतेऽभीक्ष्णं विश्वात्मा भगवान्हरिः ।
यस्य प्रसादजो ब्रह्मा रुद्रः क्रोधसमुद्भवः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-इस भागवत में निरन्तर विश्व के आत्म-रूप भगवान् का ही वर्णन है कि जिनके रजोगुण से ब्रह्मा और तमोगुण से रुद्रजी की उत्पत्ति है ॥१॥

त्वं तु राजन्मरिष्येति पशुबुद्धिमिमां जहि ।
न जातः प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं न नंक्ष्यसि ॥ २ ॥

हे राजन् ! 'हम मरेंगे' ऐसी पशु-बुद्धिको छोड़ दो, इस देह की भांति न तो तुम पहले उत्पन्न हुए हो और न नष्ट होओगे ॥२॥

न भविष्यसि भूत्वा त्वं पुत्र पौत्रादिरूपवान् ।
बीजांकुरवद्देहादेर्व्यतिरिक्तो यथाऽनलः ॥ ३ ॥

जैसे बीज अंकुरकी भांति यह देह-पुत्र, पौत्रादिक रूप होकर जन्म धारण करता है, ऐसे तुम न होओगे, क्योंकि तुम तो देहादि से अलग हो, जैसे कि अग्नि काष्ठ से अलग होती है ॥३॥

स्वप्ने यथा शिरश्छेदं पंचत्वाद्यात्मनः स्वयम् ।
यस्मात्पश्यति देहस्य तत आत्मा ह्यजोऽमरः ॥ ४ ॥

जैसे स्वप्नमें अपने सिर का कटना देखा जाता है, वैसे ही जाग्रत में देह का मरण दृष्टि आता है, इसीलिये आत्मा के प्रति मरने का भाव करना केवल भ्रम है, क्योंकि वह तो अजर अमर है ॥४॥

घटे भिन्ने यथाऽऽकाश आकाशः स्याद्यथा पुरा ।
एवं देहे मृते जीवो ब्रह्म संपद्यते पुनः ॥ ५ ॥

जैसे घट के फूटने पर उसमें स्थित रहा हुआ आकाश पहले बड़े आकाश में जाकर मिल जाताहै ऐसे ही देह नष्ट होने पर जीव फिर ब्रह्म में जा मिलता है ॥५॥

मनः सृजति वै देहान्गुणान्कर्माणि चात्मनः ।
तन्मनः सृजते माया ततो जीवस्य संसृतिः ॥ ६ ॥

मन-आत्मा के देह, गुण और कर्मों को उत्पन्न करता है और माया मनको उत्पन्न करती है, इसी माया के कारण जीव के जन्म-मरण आदि होते हैं॥

स्नेहाधिष्ठानवर्त्यग्निसंयोगो यावदीयते ।
ततो दीपस्य दीपत्वमेवं देहकृतो भवः ।
रजःसत्वतमोवृत्त्या जायतेऽथ विनश्यति ॥ ७ ॥

जब तक तैल, प्याला, बत्ती और अग्नि का संयोग रहता है, तभी तक दीपक कहलाताहै, इसी प्रकार जब तक रजोगुण, सतोगुण और तमोगुण की वृत्तियों वाला उपाधि समूह रूप संसार है, तभी तक देह आदि का किया हुआ संसारहै॥७॥

न तत्रात्मा स्वयंज्योतिर्यो व्यक्ताव्यक्तयोः परः ।
आकाश इव चाधारो ध्रुवोऽनंतोपमस्ततः ॥ ८ ॥

जैसे दीपक के नष्ट होनेसे तेज नष्ट नहीं होता ऐसे ही संसार के नष्ट होने पर स्वयं प्रकाश, स्थूल और सूक्ष्म देहों से भिन्न आकाश की नाईं सबका आधार, निर्विकार, अनन्त और अनुपम आत्माभी नष्ट नहीं होती ॥८॥

एवमात्मान मात्मस्थमात्मनैवामृश प्रभो ।
बुद्ध्यानुमानगर्भिण्या वासुदेवानुचिंतया ॥ ९ ॥

हे राजन् ! अनुमान युक्त बुद्धि द्वारा भगवान् वासुदेव का चिन्तवन करते हुए शरीर में स्थित आत्मा का मन के द्वारा विचार करो ॥ ९ ॥

चोदितो विप्रवाक्येन न त्वांधक्ष्यति तक्षकः ।
मृत्यवो नोपधक्ष्यंति मृत्यूनां मृत्युमीश्वरम् ॥ १० ॥

इससे ब्राह्मण वचन द्वारा प्रेरित तक्षक नाग तुमको भस्म न कर सकेगा, क्योंकि मृत्यु के भी मृत्यु रूप परब्रह्म (आत्मा) पर मृत्यु का कोई भी कारण प्रभावकारी नहीं हो सकता ॥१०॥

अहं ब्रह्म परंब्रह्म ब्रह्माहं परमं पदम् ।
एवं समीक्षन्नात्मानमात्मन्याधाय निष्कले ॥ ११ ॥
दशंतं तक्षकं पादे लेलिहानं विषाननैः ।
न द्रक्ष्यसि शरीरं च विश्वं च पृथगात्मनः ॥ १२ ॥

'जो मैं हूँ वही परम पदरूप ब्रह्महै' यदि ऐसा विचार कर तुम अपने आपको ब्रह्म में स्थित कर दोगे तो विषैले मुख से अपने चरण में काटते हुए तक्षक का, अपने शरीर का या आत्मा से पृथक् जगत् का अर्थात् द्वैत का) तुम्हें भास न होगा ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एतत्ते कथितं तात यथात्मा पृष्टवान्नृप ।
हरेर्विश्वात्मनश्चेष्टां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१३॥

हे तात ! हे राजन् ! तुमने जो कुछ विश्वात्मा भगवान् हरि का चरित्र मुझसे पूछा वह मैंने तुम से कहा; अब बतलाओ कि तुम और क्या सुनना चाहते हो ? ॥१३॥

इति श्रीमद्भागवते द्वादशस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

छठवां अध्याय

(परीक्षित-मोक्ष)

सूत उवाच

एतन्निशम्य मुनिनाभिहितं परीक्षिद्वयसात्मजेन
निखिलात्मदृशा समेन । तत्पादपद्ममुपसृत्य नतेन
मूर्ध्ना बद्धांजलिस्तमिदमाह स विष्णुरातः ॥ १ ॥

सूतजी बोले–सबमें आत्म-दृष्टि रखने से सम बुद्धि वाले व्यास-नन्दन श्रीशुकदेवजीका यह उपदेश सुनकर राजा परीक्षित ने हाथ जोड़, मस्तक झुकाकर उनके चरणों को सिर पर चढ़ाते हुए इस प्रकार कहा ॥१॥

राजोवाच

सिद्धोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवता करुणात्मना ।
श्रावितो यच्च मे साक्षादनादिनिधनो हरिः ॥ २ ॥

परीक्षित बोले–हे करुणामय ! आपने आदि-अन्त रहित साक्षात् परब्रह्म का वर्णन सुनाकर मुझपर बड़ा ही अनुग्रह कियाहै कि जिसके कारण मैं कृतार्थ होगया हूँ ॥२॥

नात्यद्भुतमहं मन्ये महतामच्युतात्मनाम् ।
अज्ञेषु तापतप्तेषु भूतेषु यदनुग्रहः ॥ ३ ॥

यदि आप जैसे भागवत रूप महात्माजन संसार के तापों से संतप्त मूर्ख मनुष्यों पर अनुग्रह करें तो इसे मैं अधिक आश्चर्य की बात नहीं समझता (क्योंकि महात्माओं का स्वभावही अनुग्रह करने का होता है) ॥३॥

पुराणसंहितामेतामश्रौष्म भवतो वयम् ।
यस्यां खलूत्तमश्लोको भगवाननुवर्ण्यते ॥ ४ ॥

मैंने आपसे यह पुराणसंहिता श्रवण की है कि जिसमें उत्तम कीर्त्तिवाले भगवानका वर्णन निरंतर किया जाता है ॥ ४ ॥

भगवंस्तक्षकादिभ्यो मृत्युभ्यो न बिभेम्यहम् ।
प्रविष्टो ब्रह्मनिर्वाणमभयं दर्शितं त्वया ॥ ५ ॥

हे भगवन् ! अब मैं तक्षक आदि मृत्युओं से नहीं डरता, क्योंकि आपके दिखलाये हुए निर्भय परमानन्द स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त हो चुकाहूँ ॥५॥

अनुजानीहि मां ब्रह्मन्वाचं यच्छाम्यधोक्षजे ।
मुक्तकामाशयं चेतः प्रवेश्य विसृजाम्यसून् ॥ ६ ॥

हे ब्रह्मन् ! अब मुझे आज्ञा दीजिये कि जिससे मैं वाणी को रोक कर वासना-रहित चित्तको भगवान् में लगाकर अपने प्राण त्याग दूँ ॥६ ॥

अज्ञानं च निरस्तं मे ज्ञानविज्ञान निष्ठया ।
भवता दर्शितं क्षेमं परं भगवतः पदम् ॥ ७ ॥

ज्ञान-विज्ञान की निष्ठा से मेरा अज्ञान तथा उसके संस्कार निवृत्त होचुके हैं, आपने मुझे परम कल्याण रूप भगवान् का स्वरूप दिखलाया है ॥७॥

सूत उवाच

इत्युक्तस्तमनुज्ञाप्य भगवान्बादरायणिः ।
जगाम भिक्षुभिः साकं नरदेवेन पूजितः ॥ ८ ॥

सूतजी बोले–इस प्रकार कहकर राजा ने श्री शुकदेवजी का पूजन किया. उसे स्वीकार करके महात्मा शुकदेवजी उनसे बिदा माँगकर सन्यासियों सहित वहाँ से पधारे ॥८॥

परीक्षिदपि राजर्षिरात्मन्यात्मानमात्मना ।
समाधाय परं दध्यावस्पंदासुर्यथा तरुः ॥ ९ ।
प्राक्कूले बर्हिष्यासीनो गंगाकूल उदङ्मुखः ।
ब्रह्मभूतो महायोगी निःसंगश्छिन्नसंशयः ॥१०।

तब परीक्षित गङ्गाजी के तट पर पूर्व की ओर नोक वाले कुशासन पर उत्तर की ओर मुख किये हुए बैठगये और वे आसक्ति-रहित, ब्रह्मरूप, महायोगी और हत सन्देह राजर्षि बुद्धि के द्वारा मन को परमात्मा में लगाकर उनका ध्यान करते हुए वृक्ष की भाँति प्राण हीन होगये ॥९॥॥१०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शील, आत्माराम, समदर्शी और आत्मा संबन्धी अभ्यास में परिश्रमी होते हैं ॥१९॥

त्रेतायां धर्मपादानां तुर्यांशो हीयते शनैः ।
अधर्मपादैरनृतहिंसाऽसंतोषविग्रहैः ॥२०॥

त्रेतायुग में धीरे धीरे असत्य भाषण, हिंसा, असन्तोष और कलह-इन चार अधर्म के चरणोंसे धर्मके चरणोंका चौथा चौथा भाग घट जाताहै॥२०॥

तदा क्रियातपोनिष्ठा नातिहिंस्रा न लंपटाः ।
त्रैवर्गिकास्त्रयीवृद्धा वर्णा ब्रह्मोत्तरा नृप ॥२१॥

हे राजन् ! त्रेतायुग में मनुष्य क्रिया और तप में निपुण होते हैं, वे न अधिक हिंसक ही होते हैं और न अधिक लंपट, उनकी धर्म, अर्थ और काम में अधिक निष्ठा होती है, वे वेदत्रयी के धर्म में उन्नत माने जाते हैं और उनमें ब्राह्मणों को मुख्य माना जाता है ॥२१॥

तपःसत्यदयादानेष्वर्धं ह्रसति द्वापरे ।
हिंसातुष्ट्यनृतद्वेषैर्धर्मस्याधर्मलक्षणैः ॥२२॥

द्वापर में हिंसा, तृष्णा, झूठ और द्वेष-इनचार अधर्म के चरणों से तप, दया, सत्य और दान-इन चार धर्मके चरणोंका आधा अंश क्षीण होजाताहै॥

यशस्विनो महाशीलाः स्वाध्यायाध्ययने रताः ।
आढ्याः कुटुंबिनो हृष्टा वर्णाः क्षत्रद्विजोत्तराः२३॥

इसलिये द्वापर के लोग बहुधा यशस्वी, बड़े गृहस्थ, वेद पढ़ने के प्रेमी, धनाढ्य, कुटुम्बी, आनन्दमय होते हैं और इस युग में ब्राह्मण तथा क्षत्रिय प्रधान माने जाते हैं ॥२३॥

कलौतु धर्महेतूनां तुर्यांशोऽधर्महेतुभिः ।
एधमानैः क्षीयमाणो ह्यंते सोपि विनंक्ष्यति ॥२४॥

कलियुग में अधर्म के चारों चरण बढ़ जानेसे धर्म के चरणों का केवल चौथाई भाग शेष रह जाता है और धीरे-धीरे क्षीण होता हुआ अन्त में वह भी नष्ट होजाता है ॥२४॥

तस्मिन लुब्धा दुराचारा निर्दयाः शुष्कवैरिणः ।
दुर्भगा भूरितर्षाश्च शूद्रदासोत्तराः प्रजाः ॥२५॥

कलियुग में मनुष्य लोभी, दुराचारी, निर्दयी, व्यर्थ के झगड़े करने वाले, अभागे और अत्यन्त तृष्णावान् होंगे, इस युग में शूद्रों और दासों की प्रधानता रहेगी ॥२५॥

सत्वं रजस्तम इति दृश्यंते पुरुषे गुणाः ।
कालसंचोदितास्ते वै परिवर्त्तंत आत्मनि ॥२६॥

सत् रज और तम यह तीनगुण पुरुषमें दिखलाई देते हैं और काल की गति से चित्त में सदैव ही बर्तते रहते हैं ॥२६॥

प्रभवंति यदा सत्त्वे मनोबुद्धींद्रियाणि च ।
तदा कृतयुगं विद्याज्ज्ञाने तपसि यद्रुचिः ॥२७॥

जब मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ सतोगुणमें स्थित हों तब सतयुग जानना चाहिये,क्योंकि इससे ज्ञान तथा तप में रुचि बढ़ती है ॥ २७॥

यदा कर्मसु काम्येषु भक्तिर्भवति देहिनाम् ।
तदा त्रेता रजोवृत्तिरिति जानीहि बुद्धिमन् ॥२८॥

जब प्राणियों की रुचि काम्य कर्मों में हो तब हे बुद्धिमान् राजन् ! रजोगुणकी वृत्ति वाला त्रेता युग जानना चाहिये ॥२८॥

यदा लोभस्त्वसंतोषो मानो दंभोऽथ मत्सरः ।
कर्मणां चापि काम्यानां द्वापरं तद्रजस्तमः ॥२९॥

जब लोभ, असन्तोष, मान; दंभ, मत्सर और काम्य कर्मों की रुचि हो, तब रजोगुण तथा तमोगुण वाला द्वापर जानना चाहिये ॥ २९॥

यदा मायानृतं तंद्रा निद्रा हिंसा विषादनम् ।
शोको मोहो भयं दैन्यं स कलिस्तामसः स्मृतः॥३०

जब कपट, झूठ, आलस्य, निद्रा, हिंसा, दुःख शोक, मोह,भय तथा दीनता हो तब तामसी कलियुग जानना चाहिये ॥३०॥

यस्मात्क्षुद्रदृशो मर्त्याः क्षुद्रभाग्या महाशनाः ।
कामिनो वित्तहीनाश्च स्वैरिण्यश्च स्त्रियोऽसतीः३१॥

कलियुगी लोग मन्द बुद्धि, मन्दभागी, अधिक आहारी, कामी और निर्धन होंगे तथा स्त्रियाँ व्यभिचारिणी एवं दुष्टा होंगी ॥ ३१ ॥

दस्यूत्कृष्टा जनपदा वेदाः पाखंडदूषिताः ।
राजानश्च प्रजाभक्षाः शिश्नोदरपरा द्विजाः ॥३२॥

देशोंमें बहुतसे चोरहोंगे, वेद पाखंड के कारण दूषित होजाँयगे, राजा प्रजाके भक्षक और ब्राह्मण स्त्री-लंपट और उदर-पोषक होंगे ॥३२॥

अव्रता बटवोऽशौचा भिक्षवश्च कुटुंबिनः ।
तपस्विनो ग्रामवासा न्यासिनो ह्यर्थलोलुपाः॥३३॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मचारी शौच और आचार से गिर जाँयगे, गृहस्थ लोग आपही भिक्षापर निर्वाह करेंगे,तपस्वी गाँव में रहने लगेंगे, सन्यासी धनके लोभी होंगे ॥

ह्रस्वकाया महाहारा भूर्यपत्या गतह्रियः ।
शश्वत्कटुकभाषिण्यश्चौर्यमायोरुसाहसाः ॥३४॥

स्त्रियाँ नाटी, बड़े आहारवाली, अधिकसंतान उत्पन्न करने वाली, लज्जा-रहित, कटु वचन कहने वाली, चोर, ढीठ, छलिनी तथा साहस करने वाली होंगी ॥३४॥

पणयिष्यंति वै क्षुद्राः किरीटाः कूटकारिणः ।
अनापद्यपिमंस्यंते वार्तां साधु जुगुप्सिताम् ॥३५॥

कपटी; तुच्छ, किरात आदि व्यापारी होंगे, वे लोग विपत्ति आनेसे पहले ही सज्जनों से निंदनीय जीविका को अच्छा समझेंगे ॥३५॥

पतिं त्यक्ष्यंति निर्द्रव्यं भृत्या अप्यखिलोत्तमम् ।
भृत्यं विपन्नं पतयः कौलं गाश्चापयस्विनीः॥३६॥

धनहीन स्वामी को सर्वोत्तम होनेपर भी नौकर छोड़ देंगे, इसी प्रकार यदि नौकर विपद् ग्रस्त हो जायगा तो चाहे वह सदा का ही क्यों न हो, उसे स्वामी छोड़ देगा, लोग दूध न देने वाली गाय को छोड़ देंगे ॥३६॥

पितृभ्रातृसुहृज्ज्ञातीन्हित्वा सौरतसौहृदाः ।
ननांदृश्यालसंवादा दीनाः स्त्रैणाः कलौ नराः३७॥

पिता, भाई, सुहृद और जाति वालों को छोड़ कर स्त्रियों के आधीन रहनेवाले और केवल विषय भोग संबन्धी स्नेह को पालने वाले दीन मनुष्य अपने साले-सालियों के मत में रहेंगे ॥३७॥

शूद्राः प्रतिग्रहीष्यंति तपोवेषोपजीविनः ।
धर्मं वक्ष्यंत्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम् ॥३८॥

जीविका कमाने वाले शूद्र तपस्वियों का वेष बनाकर दान लेंगे, और कर्मके न जाननेवाले लोग उत्तम उच्चासन पर बैठकर धर्म का उपदेश करेंगे॥

नित्यमुद्विग्नमनसो दुर्भिक्षकरपीडिताः ।
निरन्ने भूतले राजन्ननावृष्टिभयातुराः ॥३९॥

हे राजन् ! अकाल; राजाओंके कर और अनावृष्टि के भय से पीड़ित प्रजा सदा चिंतित रहेगी॥

वासोन्नपानशयनव्यवायस्नानभूषणैः ।
हीनाः पिशाचसंदर्शा भविष्यंति कलौ प्रजाः॥४०॥

और वस्त्र, अन्न, जल, शैया, मैथुन, स्नान तथा आभूषण संबन्धी सुखों से हीन प्रजा कलियुग में पिशाचों की भाँति हो जायगी ॥४०॥

कलौ काकिणिकेऽप्यर्थे विगृह्य त्यक्तसौहृदाः ।
त्यक्ष्यंति च प्रियान् प्राणान् हनिष्यंति स्वकानपि॥

कलियुगमें केवल बीस कौड़ियों के लिये ही कलह बढ़ाकर प्रेम तोड़ देने वाले मनुष्य अपने प्यारे प्राण तक छोड़ देंगे और अपने बंधुओं को मारेंगे ॥४१॥

न रक्षिष्यंति मनुजाः स्थविरौ पितरावपि ।
पुत्रान्सर्वार्थकुशलान् क्षुद्राः शिश्नोदरंभराः ॥४२॥

शिश्न (लिङ्ग) तथा उदरको ही तृप्त करने वाले कलियुगी लोग अपने वृद्ध माता-पिता तथा सब विषयों में चतुर पुत्रका भी पालन न करेंगे ॥ ४२ ॥

कलौ न राजन् जगतां परं गुरुं त्रैलोक्यनाथा
नतपादपंकजम् । प्रायेण मर्त्या भगवंतमच्युतं
यक्ष्यंति पाखंडविभिन्नचेतसः ॥४३॥

हे राजन् ! जिनके चरणारविन्द को तीनों लोकों के स्वामी भी प्रणाम करते हैं, उन जगद्गुरु अच्युत भगवान् का पूजन भी प्रायः कलियुग में पाखंड से विक्षिप्त चित्त होजाने से लोग न करेंगे॥

यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः पतन् स्खलन्वा
विवशो गृणन् पुमान् । विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां
गतिं प्राप्नोति यक्ष्यंति न तं कलौ जनाः ॥४४॥

जिन भगवान् का नाम मरते, गिरते, उखड़ते, पराधीन तथा आतुर होते हुए लेने पर भी मनुष्य कर्म-बन्धन से छूटकर उत्तम गतिको प्राप्त होता है उनकी पूजा भी कलियुगी जीव न करेंगे ॥४४॥

पुंसां कलिकृतान्दोषान्द्रव्यदेशात्मसंभवान् ।
सर्वान्हरति चित्तस्थो भगवान्पुरुषोत्तमः ॥४५॥

द्रव्य, देश, तथा शरीर से होने वाले कलियुग के दोषों को मनुष्य के चित्त में स्थित भगवान् पुरुषोत्तम ही हरण करते हैं ॥४५॥

श्रुतः संकीर्त्तितो ध्यातः पूजितश्चादृतोपि वा ।
नृणां धुनोति भगवान हृत्स्थो जन्मायुताशुभम्४६॥

जो मनुष्य भगवान् का श्रवण, कीर्त्तन, ध्यान, पूजन तथा आदर करता है, उसके हृदय में स्थित होकर भगवान् दस हज़ार जन्मों के पाप का भी नाश कर देते हैं ॥४६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यथा हेम्नि स्थितो वह्निर्दुर्वर्णं हंति धातुजम् ।
एवमात्मगतो विष्णुर्योगिनामशुभाशुभम् ॥४७॥

जैसे अग्नि स्वर्णमें स्थित होकर उसकी दूसरी धातुओं की मिलावट से उत्पन्न हुई मलिनता को दूर करदेता है, वैसेही कलियुगमें भगवान् हृदय में स्थित होकर अशुभ वासनाओं को दूर करदेते हैं॥

विद्यातपःप्राण विरोधमैत्रीतीर्थाभिषेकव्रतदान जप्यैः । नात्यंतशुद्धिं लभतेंऽतरात्मा यथा हृदिस्थे भगवत्यनंते ॥४८॥

यह अन्तःकरण जैसा अनन्त भगवान्के हृदय में स्थित होने से शुद्ध होता है, वैसा विद्या, तप, प्राणायाम, मित्रता, तीर्थ स्नान, व्रत, दान और जप से शुद्ध नहीं होता ॥४८॥

तस्मात्सर्वात्मना राजन्हृदिस्थं कुरु केशवम् ।
म्रियमाणो ह्यवहितस्ततो यासि परां गतिम् ॥४९॥

इसलिये हे राजन् ! आप मरणासन्न हैं इस लिये सावधान होकर सब प्रकार से केशवका ध्यान करो, तभी मोक्ष पाओगे ॥ ४९ ॥

म्रियमाणैरभिध्येयो भगवान्परमेश्वरः ।
आत्मभावं नयत्यंग सर्वात्मा सर्वसंश्रयः ॥५०॥

सर्वात्मा तथा सर्वाश्रय भगवान् का ध्यान करना चाहिये, तभी उस मरणासन्न पुरुषके हृदय में भगवान् अपने स्वरूप को उत्पन्न करेंगे ॥५०॥

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः ।
कीर्त्तना देव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत् ॥५१॥

हे राजन् ! यद्यपि ये कलियुग दोषों का भंडार है, परन्तु इसमें सबसे बड़ा गुण यह है कि इसमें भगवान् का कीर्त्तन करने ही से मनुष्य मुक्त संग होकर परम पद पा जाता है ॥५१॥

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरि कीर्त्तनात् ॥५२॥

सतयुगमें भगवान् के ध्यान से, त्रेता युग में यज्ञ द्वारा यजन से और द्वापरमें पूजनसे जो फल मिलता है, वह कलियुग में केवल कीर्त्तन करने से ही मिल जाता है ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवते द्वादशस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चौथा अध्याय

(चार प्रकार के प्रलयोंका वर्णन)

श्रीशुक उवाच

कलिस्तत्परमाण्वादिर्द्विपरार्द्धावधिर्नृप ।
कथितो युगमानं च शृणु कल्पलयावपि ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! परमाणु से लेकर द्वैपरार्द्ध पर्यन्त काल और युगों के प्रमाणका प्रमाण मैं तुमसे पहले कह चुकाहूँ अब कल्प और प्रलय के विषय में भी सुनो ॥ १ ॥

चतुर्युगसहस्रं च ब्रह्मणो दिनमुच्यते ।
स कल्पो यत्र मनवश्चतुर्दश विशांपते ॥ २ ॥

हे राजन् ! चार हज़ार युग की अवधि में ब्रह्माजी का एक दिन होता है, उसीको कल्प कहते हैं, एक कल्पमें चौदह मनु होते हैं ॥२॥

तदंते प्रलयस्तावान्ब्राह्मी रात्रि रुदाहृता ।
त्रयो लोका इमे तत्र कल्पंते प्रलयाय हि ॥ ३ ॥

इस दिनके अन्तमें चार हज़ार युग की अवधि वाली ब्रह्माजी की रात होतीहै इसे प्रलय कहते हैं, इसमें तीनों लोक लय होजाते हैं ॥ ३ ॥

एष नैमित्तिकः प्रोक्तः प्रलयो यत्र विश्वसृक् ।
शेतेऽनंतासनो विश्वमात्मसात्कृत्य चात्मभूः ॥ ४ ॥

इसे नैमित्तिक प्रलय कहते हैं, क्योंकि इसमें विश्व को रचने वाले भगवान् ब्रह्मा सहित इस विश्व को अपने उदर में धारण करके अनन्त शैया पर शयन करते हैं ॥४॥

द्विपरार्द्धे त्वतिक्रांते ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
तदा प्रकृतयः सप्त कल्पंते प्रलयाय वै ॥ ५ ॥

जब ब्रह्माजी की आयु के दोनों परार्द्ध पूर्ण हो जाते हैं तब महत्तत्व, अहङ्कार, पाँच तन्मात्रा और सातों प्रकृतियाँ लीन होजाती हैं ॥ ५ ॥

एष प्राकृतिको राजन् प्रलयो यत्र लीयते ।
आंडकोशस्तु संघातो विघात उपसादिते ॥ ६ ॥

इसलिये इसे 'प्राकृतिक प्रलय' कहते हैं, हे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजन् ! इसमें नाश का कारण प्राप्त होने से सातों प्रकृतियाँ तथा उनका कार्य-रूप सारा ब्रह्माण्ड भी लय हो जाता है ॥६॥

पर्जन्यः शतवर्षाणि भूमौ राजन्न वर्षति ।
तदा निरन्नेह्यन्योन्यं भक्षमाणाः क्षुधार्दिताः ।
क्षयं यास्यंति शनकैः कालेनोपद्रुताः प्रजाः ॥ ७ ॥

हे राजन् ! उस समय सौ वर्ष तक पानी न बरसेगा, तब अन्न के अभाव से भूखी और कालके उपद्रवोंसे पीड़ितहुई प्रजा धीरे २ नाश होजायगी॥

सामुद्रं दैहिकं भौमं रसं सांवर्त्तको रविः ।
रश्मिभिः पिबते घोरैः सर्वं नैव विमुंचति ॥ ८ ॥

प्रलय-काल का सूर्य अपनी प्रचंड किरणोंद्वारा समुद्र, पृथ्वी और समस्त देहों के रस को खींच लेगा छोड़ेगा नहीं ॥८॥

ततः संवर्त्तको वह्निः संकर्षणमुखोत्थितः ।
दहत्यनिलवेगोत्थः शून्यान् भूविवरानथ ॥ ९ ॥

फिर भगवान् शेषजी के मुख से प्रकट हुआ प्रलय का अग्नि पवन के वेग से प्रज्वलित होकर ऊजड़ पृथ्वी के प्रदेश तथा पाताल के विवरों को जला डालेगा ॥ ९ ॥

उपर्यधः समंताच्च शिखाभिर्वह्निसूर्ययोः ।
दह्यमानं विभात्यंडं दग्धगो मयपिंडवत् ॥१०॥

उस समय ऊपर-नीचे और चारों ओर अग्नि तथा सूर्य की ज्वालाओं से जलकर यह ब्रह्माण्ड जलते हुए कंडे की नाईं प्रतीत होगा ॥१०॥

ततः प्रचंडपवनो वर्षाणामधिकं शतम् ।
परः संवर्तको वाति धूम्रं खं रजसा वृतम् ॥११॥

फिर प्रलय काल की प्रचंड पवन सौ वर्ष से कुछ अधिक समय तक चला करेगी, उस समय धूलसे भरा हुआ आकाश धुयें केसे रङ्ग का होगा ॥११॥

ततो मेघकुलान्यंग चित्रवर्णान्यनेकशः ।
शतं वर्षाणि वर्षंति नदंतो रभसस्वनैः ।
तत एकोदकं विश्वं ब्रह्माण्डविवरान्तरम् ॥१२॥

हे अङ्ग ! इसके पश्चात् विचित्र वर्ण के अनेक मेघ घोर शब्द करते हुए सौ वर्ष तक बरसा करेंगे तब यह ब्रह्मांड फूट जानेसे समस्त विश्व जलमय हो जायगा ॥१२॥

तदा भूमेर्गंधगुणं ग्रसंत्याप उदप्लवे ।
ग्रस्तगंधा तु पृथिवी प्रलयत्वाय कल्पते ॥१३॥

तब भूमिके गुण 'गंध' को जल लीन कर लेगा और पृथ्वी गंधहीन होकर जलमें लय होजायगी॥

अपां रसमथो तेजस्ता लीयंतेऽथ नीरसाः ।
ग्रसते तेजसो रूपं वायुस्तद्रहितं तदा ॥१४॥

जल के गुण 'रस' को तेज खींच लेगा, तब जल तेजमें लय होजायगा, तेजका गुण 'रूप' वायु खेंच लेगी, जब तेज रूपहीन होकर वायु में लय हो जायगा ॥१४॥

लीयते चानिले तेजो वायोः खं ग्रसते गुणम् ।
स वै विशति खं राजंस्ततश्च नभसो गुणम् ॥१५॥
शब्दं ग्रसति भूतादिर्नभस्तमनुलीयते ।
तैजसश्चेंद्रियाण्यंग देवान्वैकारिको गुणैः ॥१६॥

हे राजन् ! वायु के गुण 'स्पर्श' को आकाश खींच लेगा, तब वायु आकाश में लय होजायगी, आकाश के गुण 'शब्द' को तामस अहङ्कार खींच लेगा, तब आकाश उसमें लीन होजायगा, इन्द्रियों और उनकी वृत्तियों को राजस अहङ्कार ग्रस्त कर लेगा तब वे उसमें लय होजाँयगी, इन्द्रियोंके देवताओं को सात्विक अहङ्कार निगल कर अपने में लीन करलेगा ।१५॥१६॥

महान्ग्रसत्यहंकारं गुणाः सत्त्वादयश्च तम् ।
ग्रसतेऽव्याकृतं राजन् गुणान् कालेन नोदितम् १७॥

हे राजन् ! अहङ्कार तथा महत्तत्वको सत्वादि तीन गुण खींच कर अपने में लीन कर लेंगे और उन गुणों को काल से प्रेरित माया ग्रस लेगी १७॥

न तस्य कालावयवैः परिणामादयो गुणाः ।
अनाद्यनंतमव्यक्तं नित्यं कारणमव्ययम् ॥१८॥

यह माया काल के अंशों से घट-बढ़ नहींहोती सदा एक रस रहती है, वह आदि-अन्त रहित, स्पष्ट देखने में न आने वाली, नित्य और जगत् की कारण रूप है ॥१८॥

न यत्र वाचो न मनो न सत्त्वं तमो रजो वा महदादयोऽमी । न प्राणबुद्धींद्रियदेवता वा न सन्निवेशः खलु लोककल्पः ॥१९॥

इस माया में वाणी, मन, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, महत्तत्व आदि, प्राण, बुद्धि, इन्द्रियाँ,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह बात सुनकर गुरु ने क्रुद्ध होकर कहा कि रे ब्राह्मणों का अपमान करने वाले ! तूने जो कुछ भी मुझसे सीखा है उसे त्यागकर तू तत्काल ही चला जा, तुझसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं ॥६३॥

देवरातसुतः सोपि छर्दित्वा यजुषां गणम् ।
ततो गतोऽथ मुनयो ददृशुस्तान्यजुर्गणान् ॥६४॥

गुरुके कहनेपर वह देवरात का पुत्र याज्ञवल्क्य यजुर्वेद के मन्त्रों को उगल कर वहाँ से चलदिया, तब उस यजुर्वेद के मन्त्रोंको दूसरे मुनियोंने देखा॥

यजूंषि तित्तिरा भूत्वा तल्लोलुपतयाऽऽददुः ।
तैत्तिरीया इति यजुःशाखा आसन्सुपेशलाः॥६५॥

उनकी अभिलाषा होने के कारण मुनियों ने तीतर पक्षी का वेष बना-बनाकर वे यजुर्वेद के मंत्र ग्रहण कर लिये, फिर उस मन्त्र-समुदाय में से उसी के अन्तर्गत अनेक विभाग होने पर उनमें से तैत्तिरीय नाम वाली अत्यन्त रमणीय यजुर्वेदीय शाखायें होगईं ॥६५॥

याज्ञवल्क्यस्ततो ब्रह्मन्छंदांस्यधिगवेषयन् ।
गुरोरविद्यमानानि सूपतस्थेऽर्कमीश्वरम् ॥६६॥

हे राजन् ! फिर याज्ञवल्क्य ईश्वर सूर्यदेव की उपासना करनेलगा कि जिसमें उसे ऐसे वैदिक मंत्र प्राप्त होजाँय जो गुरु के भी पास न हों ॥ ६६ ॥

याज्ञवल्क्य उवाच

ॐनमोभगवते आदित्यायाखिलजगतामात्म स्वरूपेण कालस्वरूपेण चतुर्विधभूतनिकायानां ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतानामंतर्हृदयेषु बहिरपि चाकाश इवोपाधिनाऽव्यवधीयमानो भगवानेक एव क्षण लवनिमेषावयवोपचित संवत्सरगणेनापामादान विसर्गाभ्यामिमां लोकयात्रामनुवहति ॥६७॥

याज्ञवल्क्य ने सूर्यदेव की स्तुति की–हे गुरुसे भी अधिक वेद (ज्ञान) के देनेवाले आदित्य ! आप को नमस्कार है; आप ब्रह्मा से लेकर तृण-पर्यन्त चार प्रकार के प्राणियों के समुदाय सहित इस जगत्के हृदयमें निरुपाधि अन्तर्यामी रूपसे स्थित हैं और बाहर क्षण, लव तथा निमेष रूप अनेक अवयव धारी वर्षोंके समूह वाले काल रूपसे रहने पर भी आकाश की भाँति उपाधि से आच्छादित नहीं होते तथा प्रति वर्ष जलको सुखाने तथा बरसाने से अकेले ही इस जगत् की जीविका को चलाया करते हैं, आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥६७॥

यदु ह वाव विबुधर्षभ सवितरदस्तपत्यनुसवन महरहराम्नायविधिनोपतिष्ठमानानामखिल दुरित दृजिनबीजावभर्जन भगवतः समभिधीमहि तपन मंडलम् ॥६८॥

हे देवोत्तम ! हे तपने वाले ! हे त्रिकाल में वैदिक विधि से स्तुति करने वाले भक्तजनोंके सब पाप, दुःख और अज्ञान को जलाने वाले ! हे सूर्य ! आपके इस प्रति दिन संतप्त रहनेवाले मंडल का मैं भले प्रकार संमुख होकर ध्यान करता हूँ ॥ ६८ ॥

य इह वाव स्थिरचरनिकराणां निजनिकेतनानां मनइंद्रियासुगणा ननात्मनः स्वयमात्मांतर्यामी प्रचोदयति ॥६९॥

हे सूर्यदेव ! आप जो इस जगत् में अपने निवासके स्थानरूप स्थावर-जङ्गम के समुदाय के जड़ रूप मन; इन्द्रिय और प्राणों को अन्तर्यामी आत्मा रूप से प्रेरणा करते हैं, उनको हम बारंबार प्रणाम करते हैं ॥६९॥

य एवेमं लोकमतिकरालवदनांधकारसंज्ञाजगर संज्ञाजगरग्रहगिलितं मृत कमिव विचेतनमवलो क्यानुकंपया परमकारुणिक ईक्षयैवोत्थाप्याहर हरनुसवनं श्रेयसि स्वधर्माख्यात्मावस्थाने प्रवर्त्त यत्यवनिपतिरिवासाधूनां भयमुदीरयन्नटति॥७०॥

हे सूर्यदेव! अत्यन्त भयानक मुखवाले अंधकार रूपी अजगरसे निगले हुए और मृतक तुल्य अचेतन जगत्को देखकर आप परम दयामय उसे दया पूर्वक अपने दर्शन ही से उठाकर प्रति दिन समय समय पर कल्याण रूप स्वधर्म में प्रवृत्त करते हो और राजा की भाँति दुष्टों को भय देते हुए भ्रमण करते हो, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥७०॥

परित आशापालैस्तत्र तत्र कमलकोशांजलि भिरुपहृतार्हणः ॥७१॥

हे सूर्यदेव ! आपको चारों ओर दिक्पाल कमल युक्त अञ्जलियों द्वारा स्थान-स्थान पर अर्घ देते हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥७१॥

अथह भगवंस्तव चरणनलिनयुगलं त्रिभुवन गुरुभिर्वंदितमहमयातयामयजुःकाम उपसरामीति॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे भगवन्! तीनों लोकोंके गुरुओं द्वारा वंदित आपके चरणारविन्द के मैं शरण आया हूँ और मैं ऐसे सारमय यजुर्वेद को पढ़ना चाहता हूँ कि जो दूसरे लोगों को न ज्ञात हो ॥७२॥

सूत उवाच

एवं स्तुतः स भगवान् वाजिरूपधरो हरिः ।
यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात्प्रसादितः ॥७३॥

सूतजी बोले-इस प्रकार याज्ञवल्क्य के स्तुति करने पर सूर्य भगवान् ने प्रसन्न होकर तथा अश्व-रूप धारण करके सारयुक्त यजुर्वेदके मन्त्र सिखाये॥

यजुर्भिरकरोच्छाखा दश पंच शतैर्विभुः ।
जगृहुर्वाजसन्यस्ताः काण्वमाध्यंदिनादयः ॥७४॥

उन समर्थ मुनि ने सैकड़ों मंत्रों में से पन्द्रह शाखायें प्रकट कीं, उनका नाम वाजसनेयी हुआ और उन्हें कण्व तथा माध्यंदिन नामक ऋषियोंने ग्रहण किया ॥७४॥

जैमिनेः सामगस्यासीत्सुमंतुस्तनयो मुनिः ।
सुन्वांस्तु तत्सुतस्ताभ्यामेकैकां प्राप संहिताम्॥७५॥

सामवेद के ज्ञाता जैमिन मुनि ने अपने पुत्र सुमन्तु तथा पौत्र सुन्वान् को एक-एक संहिता पढ़ाई ॥ ७५ ॥

सुकर्मा चापितच्छिष्यः सामवेदतरोर्महान् ।
सहस्रं संहिताभेदं चक्रे साम्नां ततो द्विजः॥७६॥

उन जैमिन का सुकर्मा नामक शिष्य बड़ा ही बुद्धिमान् था, उसने सामवेद रूपी वृक्ष के अनेक मन्त्रों में से अलग-अलग संहितायें बना कर एक हज़ार शाखायें रचीं ॥७६॥

हिरण्यनाभः कौशल्यः पौष्यंजिश्च सुकर्मणः ।
शिष्यौ जगृहतुश्चान्य आवंत्यो ब्रह्मवित्तमः॥७७॥

हिरण्यनाभ कौशल्य, पौष्यंजि और वेद-विशारद आवन्त्य-ये तीन शिष्य सुकर्मा के हुए ॥७७॥

उदीच्याः सामगाः शिष्या आसन्पंच शतानि च ।
पोष्यंज्यावंत्ययोश्चापि तांश्च प्राच्यान् प्रचक्षते ७८॥

इन तीन शिष्योंके पाँचसौ शिष्य सामवेदपाठी हुए जो उत्तर दिशा के निवासी थे, परन्तु उनमें से कुछ पूर्व दिशाके निवासी कहलाये ॥७८॥

लौगाक्षिर्मांगलिः कुल्यः कुशीदः कुक्षिरेव च ।
पौष्यंजिशिष्या जगृहुः संहितास्ते शतं शतम्॥७९॥

पौष्यञ्जि के लौगाक्षि, मांगलि, कुल्य, कुशीद, और कुक्षि नाम के दूसरे भी शिष्य थे, जिन्होंने सौ-सौ संहितायें ग्रहण कीं ॥७९॥

कृतो हिरण्यनाभस्य चतुर्विंशतिसंहिताः ।
शिष्य ऊचे स्वशिष्येभ्यः शेषा आवंत्य आत्मवान्॥

हिरण्यनाभ के कृत नामक दूसरा शिष्य था, उसने अपने शिष्यों को चौबीस संहितायें पढ़ाईं, शेष संहितायें ज्ञानवान् आवन्त्य ने अपने शिष्यों को पढ़ाईं ॥८०॥

इति श्रीमद्भागवते द्वादशस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सातवां अध्याय

(अथर्ववेद-विस्तार, पुराणों का विभाग तथा लक्षण)

सूत उवाच

अथर्ववित्सुमंतुश्च शिष्यमध्यापयत्स्वकाम् ।
संहितां सोऽपि पथ्याय वेददर्शाय चोक्तवान्॥ १ ॥

सूतजी बोले-अथर्व वेद के ज्ञाता सुमन्तु ने अपने कबंध नामक शिष्य को अपनी संहिता दी, कबंध ने उसके दो भाग करके पथ्य और वेददर्श नामक दो शिष्यों को पढ़ाया ॥१॥

शौल्कायनिर्ब्रह्मबलिर्मोदोषः पिप्पलायनिः ।
वेददर्शस्य शिष्यास्ते पथ्यशिष्यानथो शृणु ।
कुमुदः शुनको ब्रह्मन् जाजलिश्चाप्यथर्ववित्॥ २ ॥

हे राजन्! वेददर्श ने अपनी संहिता के चार भाग करके शौल्कायनि, ब्रह्मबलि, मोदोष और पिप्पलायनि नाम के चार शिष्यों को उसका एक२ भाग पढ़ाया । अब पथ्य के शिष्य सुनो-कुमुद शुनक और जाजलि-ये तीनों अथर्ववेदके ज्ञाताहुए।

बभ्रुः शिष्योऽथांगिरसः सैंधवायन एव च ।
अधीयेतां संहिते द्वे सावर्ण्याद्यास्तथाऽपरे ॥ ३ ॥
नक्षत्रकल्पः शांतिश्च कश्यपांगिरसादयः ।
एते आथर्वणाचार्याः शृणु पौराणिकान्मुने॥ ४ ॥

शुनक के शिष्य बभ्रु और सैंधवायन थे, इन दोनों ने दो संहितायें पढ़ीं, सैंधवायनि आदि के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सावर्णि आदि, नक्षत्र कल्प, शान्तिकल्प, कश्यप और आंगिरस आदि शिष्यहुए, हे राजन् ! यह सभी अथर्ववेद के आचार्य कहेगये हैं, अब पुराण के आचार्य सुनो ॥३॥४॥

त्रय्यारुणिः कश्यपश्च सावर्णिरकृतव्रणः ।
वैशंपायनहारीतौ षड्वै पौराणिका इमे ॥ ५ ॥

त्रय्यारुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, वैशंपायन और हारीत-ये छः पुराणोंके आचार्य हुएहैं॥

अधीयंत व्यासशिष्यात्संहितां मत्पितुर्मुखात् ।
एकैकामहमेतेषां शिष्यः सर्वाः समध्यगाम् ॥ ६ ॥

वेदव्यासजी के शिष्य मेरे पिता से इन सबने एक-एक संहिता पढ़ी, मैंने इन छहों का शिष्य होकर छहों संहितायें पढ़ीं ॥६॥

कश्यपोहं च सावर्णी रामशिष्योऽकृतव्रणः ।
अधीमहि व्यासशिष्यान्चतस्रो मूलसंहिताः ॥ ७ ॥

कश्यप, सावर्णि, परशुरामजी के शिष्य अकृतव्रण और मैं-इन चारों ने व्यासजी के शिष्य से चार मूल संहितायें पढ़ीं ॥७॥

पुराणलक्षणं ब्रह्मन् ब्रह्मर्षिभिनिरूपितम् ।
शृणुष्व बुद्धिमाश्रित्य वेद शास्त्रानुसारतः ॥ ८ ॥

हे ब्रह्मन् ! वेद-शास्त्र के अनुसार पुराणोंके जो लक्षण ब्रह्मर्षियों ने वर्णन किये हैं सो मैं कहता हूँ, ध्यान पूर्वक सुनो ॥८॥

सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षांतराणि च ।
वंशो वंश्यानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः ॥ ९ ॥
दशभिर्लक्षणैर्युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः ।
केचित्पंचविधं ब्रह्मन्महदल्पव्यवस्थया ॥१०॥

सर्ग, विसर्ग, वृत्ति रक्षा, मन्वन्तर, वंश, वंशजों का चरित्र, संस्था हेतु और अपाश्रय-हे शौनक ! यह दस लक्षण जिस ग्रन्थ में हों उसे विद्वान् पुरुष पुराण कहते हैं, कोई (सर्ग, विसर्ग वंश, वंशजों का चरित्र और मन्वन्तर इन) पाँच लक्षणों वाले ग्रन्थ को ही पुराण कहते हैं, यह व्यवस्था छोटे-बड़े के विचार से मानी जाती है, (अर्थात् दस लक्षण वाला ग्रन्थ महापुराण माना जाता है और पाँच वाला पुराण) ॥९॥१०॥

अव्याकृतगुणक्षोभान्महतस्त्रिवृतोऽहमः ।
भूतसूक्ष्मेंद्रियार्थानां संभवः सर्ग उच्यते ॥११॥

इस प्रधान के गुणों का क्षोभ होनेसे महत्तत्व, तीन प्रकारके अहङ्कार, पंच महाभूत और इन्द्रिय गण की उत्पत्ति को सर्ग कहते हैं ॥११॥

पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः ।
विसर्गोऽयं समाहारो बीजाद्बीजं चराचरम्॥१२॥

ईश्वरके अनुग्रह द्वारा महत्तत्व आदिसे प्रकट होते हुए स्थावर-जङ्गम रूप प्रपंचको विसर्ग कहते हैं, जो बीज में से उत्पन्न होने वाले बीज की नाईं ही उत्पन्न होता रहता है ॥ १२ ॥

वृत्तिर्भूतानि भूतानां चराणामचराणि च ।
कृता स्वेन नृणां तत्र कामाच्चोदनयापि वा ॥१३॥

साधारण रूप से जङ्गम प्राणियों का आहार स्थावर प्राणीहैं, और माँस खानेकी रुचि के कारण जङ्गम भी आहार में सम्मलितहैं, उसमें से मनुष्यों के लिये जो आहार रुचि अथवा शास्त्रानुसार निश्चित किया गया है, उसे वृत्ति कहते हैं ॥१३॥

रक्षाऽच्युतावतारेहा विश्वस्यानु युगे युगे ।
तिर्यङ्मर्त्यर्षिदेवेषु हन्यंते यैस्त्रयीद्विषः ॥१४॥

पशु, पक्षी, मनुष्य, ऋषि और देवताओं में भगवान् अवतार लेकर युग-युगमें जो लीला करते हैं और जिसके द्वारा अधर्मियों का नाश करते हैं, वही विश्व की रक्षा कहलाती है ॥ १४ ॥

मन्वंतरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः ।
ऋषयोंऽशावतारश्च हरेः षड्विधमुच्यते ॥१५॥

मनु, देवता, मनु के पुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और भगवान् के अंशावतार-ये छः मिलकर मन्वन्तर कहे जाते हैं ॥ १५ ॥

राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः ।
वंश्यानुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराश्च ये ॥१६॥

ब्रह्म से उत्पन्न हुए शुद्ध राजाओं की त्रैकाल सम्बन्धी सन्तान को वंश और उस वंशमें उत्पन्न हुए पुरुषों के चरित्र को वंशानुचरित् कहते हैं १६

नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यंतिको लयः ।
संस्थेति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धाऽस्य स्वभावतः१७॥

नित्य, नैमित्तिक,प्राकृत और और आत्यंतिक इन चार प्रकार के प्रलयों को विद्वान् पुरुष संस्था कहते हैं ॥१७॥

हेतुर्जीवोऽस्य सर्गादेरविद्याकर्मकारकः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यं वानुशयिनं प्राहुरव्याकृतमुतापरे ॥१८॥

अविद्या के कारण कर्म करने वाले जीव की वासना ही इस जगत् की सृष्टि का निमित्त है, इस लिये वह हेतु (ऊति) कहलाती है. जीव को मुख्य मानने वाले अनुशयी और उपाधि को माननेवाले लोग अव्याकृत कहते हैं ॥१८॥

व्यतिरेकान्वयो यस्य जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।
मायामयेषु तद्ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाश्रयः ॥१९॥

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में जीव रूपसे बर्तने वाले परब्रह्म मायामय विश्व, तैजस और प्राज्ञ में अनुस्यूत है और समाधि आदि में उनसे जुदा भी है, वही अपाश्रय कहलाता है ॥ १९ ॥

पदार्थेषु यथा द्रव्यं सन्मात्रं रूपनामसु ।
बीजादिपंचतांतासु ह्यवस्थासु युतायुतम् ॥२०॥

जैसे घट आदि में मिट्टी मिली भी है और उन से जुदी भी है, इसी प्रकार गर्भ से मरण तक की दैहिक अवस्थाओं में अधिष्ठान रूप से परब्रह्म मिलाभी है और इनसे पृथक्भी है, सब नाम और रूपों से अपनी सत्ता से वही स्थित है ॥ २०॥

विरमेत यदा चित्तं हित्वा वृत्तित्रयं स्वयम् ।
योगेन वा तदात्मानं वेदेहाया निवर्त्तते ॥२१॥

जब त्रिगुणात्मक वृत्तियों को छोड़कर स्वयं या योग-बल से चित्त विराम को प्राप्त होजाता है, तब यह ब्रह्म जाना जाताहै और संसारसे निवृत्ति हो जाती है ॥ २१ ॥

एवं लक्षणलक्ष्याणि पुराणानि पुराविदः ।
मुनयोऽष्टादश प्राहुः क्षुल्लकानि महांति च ॥२२॥

उपर्युक्त लक्षणों के जानने में आने वाले अल्प और महा सब अठारह पुराण प्राचीन विद्वान् मुनि बतलाते हैं ॥ २२ ॥

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैंगं सगारुडम् ।
नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कांदसंज्ञितम् ॥ २३॥
भविष्यं ब्रह्मवैवर्त्तं मार्कंडेयं सवामनम् ।
वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्मांडाख्यमिति त्रिषट् ॥

ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, लिंग पुराण, गरुड़ पुराण, नारद पुराण, भागवत पुराण, अग्नि पुराण, स्कंद पुराण, भविष्य पुराण, वैवर्त्त पुराण, मार्कण्डेय पुराण, वामन पुराण, वराह पुराण, मत्स्य पुराण, कूर्म पुराण और ब्रह्मांडपुराण यह अठारह पुराण कहलाते हैं ॥२३॥॥ २४ ॥

ब्रह्मन्निदं समाख्यातं शाखाप्रणयनं मुनेः ।
शिष्यशिष्यप्रशिष्याणां ब्रह्मतेजोविवर्धनम् ॥२५॥

हे शौनक ! वेदव्यासजी, उनके शिष्य, प्रशिष्य तथा उनके भी शिष्यों ने जो शाखाओं का विस्तार किया है उससे सम्बन्धित विषय मैंने आपसे कह सुनाया है कि जिससे वक्ता और श्रोता दोनों का ब्रह्म-तेज बढ़ता है ॥२५॥

इति श्रीमद्भागवते द्वादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

आठवां अध्याय

(मार्कण्डेय चरित्र)

शौनक उवाच

सूत जीव चिरं साधो वद नो वदतां वर ।
तमस्यपारे भ्रमतां नृणां त्वं पारदर्शनः ॥ १ ॥

शौनक बोले–हे सूतजी ! हे साधु ! आप चिर-जीव रहें, हे वक्ताओं में श्रेष्ठ ! आप अपार संसार में भटकने वाले लोगों को पार कर दिखाते हैं॥१॥

आहुश्चिरायुषमृषिं मृकंडतनयं जनाः ।
यः कल्पांते उर्वरितो येन ग्रस्तमिदं जगत् ॥ २ ॥

मृकण्ड के पुत्र मार्कण्डेय ऋषिको लोग चिरं-जीव कहते हैं, जब कल्पांत में समस्त संसार का नाश होजाताहै तब वह किस प्रकार रह सकते हैं ?

स वा अस्मत्कुलोत्पन्नः कल्पेऽस्मिन् भार्गवर्षभः ।
न वाऽद्यापि भूतानां संप्लवः कोऽपि जायते॥ ३ ॥

क्योंकि वे भृगु-कुल श्रेष्ठ मार्कंडेय मुनि इसी कल्प में हमारे ही वंश में उत्पन्न हुए हैं और तब से अब तक प्राणियों का प्रलय भी नहीं हुआ है, फिर उनका प्रलयमें शेष रहना कैसे माना जाय ? ३

एक एवार्णवे भ्राम्यददर्श पुरुषं किल ।
वटपत्रपुटे तोकं शयानं त्वेकमद्भुतम् ॥ ४ ॥

कहा जाता है कि उन्होंने प्रलय के समुद्र में अकेले ही भ्रमते हुए एक बट के पत्ते में सोते हुए एक अद्भुत बाल पुरुष को देखा-ये कैसे संभव है ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एष नः संशयो भूयान् सूत कौतूहलं यतः ।
तं नश्छिंधि महायोगिन् पुराणेष्वपि संमतः॥ ५ ॥

हे सूतजी ! हे महायोगिन् ! यह मुझे बड़ा ही संदेह है, आप सब पुराणों के वेत्ता हैं, इसलिये इसे निवारण कीजिये ॥५॥

सूत उवाच

प्रश्नस्त्वया महर्षेऽयं कृतो लोकभ्रमापहः ।
नारायणकथा यत्र गीता कलिमलापहा ॥ ६ ॥

सूतजी बोले–हे महर्षि ! आपका ये प्रश्न संसार का भ्रम मिटाने वालाहै, क्योंकि इसमें कलिमल-हारिणी श्रीनारायण की ही कथा है ॥६॥

प्राप्तद्विजातिसंस्कारो मार्कंडेयः पितुः क्रमात् ।
छंदांस्यधीत्य धर्मेण तपः स्वाध्यायसंयुतः ॥ ७ ॥

जब मार्कंडेयजी ने क्रमानुसार संस्कार पाते हुए पिता से यज्ञोपवीत संस्कार पाया, तब वह ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके वेदाध्ययन, तप और स्वाध्याय में लग गये ॥७॥

बृहद्व्रतधरः शांतो जटिलो वल्कलांबरः ।
बिभ्रत्कमंडलुं दंडमुपवीतं समेखलम् ॥ ८॥
कृष्णाजिनं साक्षसूत्रं कुशांश्च नियमर्द्धये ।
अग्न्यर्कगुरुविप्रात्मस्वर्चयन् संध्ययोर्हरिम् ॥ ९ ॥

उन शान्त नैष्ठिक ब्रह्मचारी ने वल्कल, जटा, दण्ड, कमंडल, उपवीत, मेखला, काले हिरन का चर्म, कमलाक्ष की माला और कुश धारण किये और वे धर्म वृद्धि के लिये दोनों संध्याओंमें शान्त भाव के साथ अग्नि, सूर्य, गुरु, ब्राह्मण और अपने ही में भगवान् का पूजन करने लगे ॥८॥९॥

सायं प्रातः स गुरवे भैक्ष्यमाहृत्य वाग्यतः ।
बुभुजे गुर्वनुज्ञातः सकृन्नो चेदुपोषितः ॥१०॥

वे सन्ध्या तथा प्रातःकाल भिक्षा लाकर गुरु को अर्पण कर देते थे और गुरु की आज्ञा मिलने पर एक ही बार मौनता पूर्वक भोजन करते थे, अन्यथा उपवास ही रखते थे ॥१०॥

एवं तपःस्वाध्ययपरो वर्षाणामयुतायुतम् ।
आराधयन्हृषीकेशं जिग्ये मृत्युं सुदुर्जयम् ॥११॥

इस प्रकार दस करोड़ वर्ष तक तप और स्वाध्याय करने से वह अत्यन्त दुर्जय मृत्यु को जीत गये ॥ ११ ॥

ब्रह्मा भृगुभवो दक्षो ब्रह्मपुत्राश्च ये परे ।
नृदेवपितृभूतानि तेनासन्नतिविस्मिताः ॥१२॥

मार्कंडेय को मृत्यु-विजेता देखकर ब्रह्मा, भृगु, महादेव, दक्ष आदि ब्रह्मा के पुत्र, मनुष्य, देवता, पितृ और सभी प्राणी अत्यंतही आश्चर्यमें पड़गये॥

इत्थं बृहद्व्रतधरस्तपःस्वाध्यायसंयमैः ।
दध्यावधोक्षजं योगी ध्वस्तक्लेशांतरात्मना ॥१३॥

इस भाँति तप, स्वाध्याय और जितेन्द्रियता पूर्वक नैष्ठिक ब्रह्मचर्य को धारण करके वह योगी मार्कण्डेयजी राग-दोष छोड़कर अन्तःकरणसे भगवान् का ध्यान करने लगे ॥१३॥

तस्यैवं युंजतश्चित्तं महायोगेन योगिनः ।
व्यतीयाय महान् कालो मन्वंतरषडात्मकः ॥१४॥

इस भाँति परम योग के बल से मनका निग्रह करते हुए उन महायोगी को छः मन्वन्तर का लंबा समय बीत गया ॥१४॥

एतत्पुरंदरो ज्ञात्वा सप्तमेऽस्मिन्किलांतरे ।
तपोविशंकितो ब्रह्मन्नारेभे तद्विघातनम् ॥१५॥

हे राजन् ! इस सातवें मन्वंतरके पुरन्दर नामक इन्द्रने ये बात जानकर और उनके तप से शंकित होकर विघ्न करना प्रारंभ किया ॥१५॥

गंधर्वाप्सरसः कामं वसंतमलयानिलौ ।
मुनये प्रेषयामास रजस्तोकमदौ तदा ॥१६॥

इन्द्रने मुनिका तप भंग करने के लिये गन्धर्व, अप्सरा, कामदेव, बसंतऋतु, मलयाचलका पवन, प्रलोभन और मद-इन सबको भेजा ॥१६॥

ते वै तदाश्रमं जग्मुर्हिमाद्रेः पार्श्व उत्तरे ।
पुष्पभद्रा नदी यत्र चित्राख्या च शिला विभो१७॥

हे विभु ! वे सब हिमालयके उस उत्तरी भाग में गये कि जहाँ पुष्पभद्रा नदी और चित्रा शिला के पास उनका आश्रम है ॥१७॥

तद्राश्रमपदं पुण्यं पुण्यद्रुमलतांचितम् ।
पुण्यद्विजकुलाकीर्णं पुण्यामलजलाशयम् ॥१८॥

इन मार्कण्डेयजी के आश्रममें पवित्र वृक्ष और लतायें शोभा देती हैं, पवित्र ब्राह्मणों के वंश रहते हैं, निर्मल और पवित्र जलाशय हैं ॥१८॥

मत्तभ्रमरसंगीतं मत्तकोकिलकूजितम् ।
मत्तबर्हिनटाटोपं मत्तद्विजकुलाकुलम् ॥१९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मतवाले भौंरे गूञ्जते हैं, मदमाती कोकिलायें कूका करती हैं, मदोन्मत्त मयूर नट की नाईं नाचते हैं और मदमय पक्षी गण हैं ॥१९॥

वायुः प्रविष्ट आदाय हिमनिर्झरशीकरान् ।
सुमनोभिः परिष्वक्तो ववावुत्तंभयन्स्मरम् ॥२०॥

उसमें हिममय झरनों के बिन्दुओं को लेकर प्रविष्ट होती हुई बन-पवन पुष्पों की उत्तम गंध के साथ कामदेव को बढ़ाती हुई बहती है ॥२०॥

उद्यच्चंद्रनिशावक्त्रः प्रवालस्तबकालिभिः ।
गोपद्रुमलताजालैस्तत्रासीत्कुसुमाकरः ॥२१॥

प्रदोष-काल में चन्द्रोदय हुआ और कोमल पत्तों तथा गुच्छों वाले आपसमें घने गुंथे हुए पेड़ तथा लता-समूह वाला वसन्त ऋतु वहाँ प्रकट हुआ ॥ २१ ॥

अन्वीयमानो गंधर्वैर्गीतवादित्रयूथकैः ।
अदृश्यतात्तचापेषुः स्वःस्त्रीयूथपतिः स्मरः ॥२२॥

गीत, वादित्र आदि समूह वाले गन्धर्वों को साथ लियेहुए अप्सरागण का नायक कामदेव हाथ में धनुष-बाण लेकर वहाँ दिखाई दिया ॥२२॥

हुत्वाग्निं समुपासीनं ददृशुः शक्रकिंकराः ।
मीलिताक्षं दुराधर्षं मूर्तिं मंतमिवानलम् ॥२३॥

अग्नि-कुंड में होम करने के पश्चात् ध्यान पूर्वक आँखें बन्द कियेहुए साक्षात् अग्निके समान असह्य तेज वाले मार्कण्डेय मुनि को विराजमान् देखकर वे इन्द्र के अनुचर अपना-२ करतब दिखाने लगे ॥

ननृतुस्तस्य पुरतः स्त्रियोऽथो गायका जगुः ।
मृदंगवीणापणवैर्वाद्यं चक्रुर्मनोरमम् ॥२४॥

उनके सामने अप्सरायें नाचने लगीं, गन्धर्व गाने लगे तथा मृदङ्ग, वीणा और ढोलक आदि सुन्दर बाजे बजाने लगे ॥२४

संदधेऽस्त्रं स्वधनुषि कामः पंचमुखं तदा ।
मधुर्मनो रजस्तोक इंद्रभृत्या व्यकंपयन् ॥२५॥

उस समय कामदेवने (शोषण, दीपन, संमोहन तापन और उन्मादन नामक) पाँच मुख वाले बाण को अपने धनुषपर चढ़ाया, वसन्त प्रलोभन देकर तथा इन्द्रके दूसरे अनुचर भी (अपने २ करतब दिखाकर) उन मुनि के मनको डाँवाडोल करने की चेष्टा करने लगे ॥२५॥

क्रीडंत्याः पुंजिकस्थल्याः कंदुकैः स्तनगौरवात् ।
भृशमुद्विग्नमध्यायाः केशविस्रंसितस्रजः ॥२६॥
इतस्ततो भ्रमद्दृष्टेश्चलंत्या अनु कंदुकम् ।
वायुर्जहार तद्वासः सूक्ष्मं त्रुटितमेखलम् ॥२७॥

स्तनों के भार से चमकती हुई कमर वाली पुञ्जिक स्थली नाम की अप्सरा कि जिसकी वेणी मेंसे ढीली होकर माला खिसक रहीथी और जिस की दृष्टि चारों ओर घूम रही थी—जब गेंद लेने को दौड़ी तब कटिबंधनी टूट जानेसे उसका वस्त्र छूट गया और वायु ने उसके सूक्ष्म वस्त्र को भी हरण कर लिया ॥२६॥२७॥

विससर्ज तदा बाणं मत्वा तं स्वजितं स्मरः ।
सर्वं तत्राभवन्मोघमनीशस्य यथोद्यमः ॥२८॥

ऐसे अवसर पर मार्कण्डेयजी को अपने वशमें जानकर कामदेव ने अपना तीक्ष्ण बाण चलाया, परन्तु भाग्यहीन पुरुष की नाईं उन सबका उद्यम निष्फल हुआ ॥ २८ ॥

त इत्थमपकुर्वंतो मुनेस्तत्तेजसा मुने ।
दह्यमाना निववृतुः प्रबोध्याहिमिवार्भकाः ॥२९॥

हे मुनि ! इस प्रकार मार्कण्डेयके विरुद्ध व्यवहार करते हुए वे सभी उनके तेज से जलने लगे और इस प्रकार पीछे लौट गये जैसे बालक सर्प को जगाकर भय के मारे भाग जाते हैं ॥२९॥

इतींद्रानुचरैर्ब्रह्मन्धर्षितोऽपि महामुनिः ।
यन्नागादहमो भावं न तच्चित्रं महत्सु हि ॥३०॥

हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार इन्द्र के अनुचरों द्वारा किये हुए उद्यम को विफल होता हुआ देखकर मुनि को अहङ्कार भी उत्पन्न न हुआ, इस प्रकार से होना महात्माओं के प्रति कोई आश्चर्य की बात नहीं है ॥ ३० ॥

दृष्ट्वा निस्तेजसं कामं सगणं भगवान्स्वराट् ।
श्रुत्वानुभावं ब्रह्मर्षेर्विस्मयं समगात्परम् ॥३१॥

अपने समूह-सहित कामदेव को तेज-हत देख कर तथा मार्कण्डेयजी का प्रभाव सुनकर इन्द्र को बड़ा ही आश्चर्य हुआ ॥ ३१ ॥

तस्यैवं युंजतश्चित्तंतपः स्वाध्यायसंयमैः ।
अनुग्रहायाविरासीन्नरनारायणो हरिः ॥३२॥

इस प्रकार तप, स्वाध्याय और जितेन्द्रियपन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से मन पर अधिकार रखतेहुए उन मार्कण्डेय मुनि पर कृपा करने के लिये भगवान् नर-नारायण वहाँ पर प्रकट हुए ॥३२॥

तौ शुक्लकृष्णौ नवकंजलोचनौ चतुर्भुजौ रौरव वल्कलांबरौ । पवित्रपाणी उपवीतकं त्रिवृत्कमंडलुं दंडमृजुं च वैणवम् ॥३३॥

पद्माक्षमालामुत जंतुमार्जनं वेदं च साक्षात्तप एव रूपिणौ । तपत्तडिद्वर्ण पिशंगरोचिषा प्रांशू दधानौ विबुधर्षभार्चितौ ॥३४॥

ते वै भगवतो रूपे नरनारायणाव्रषी ।
दृष्ट्वोत्थायादरेणोच्चैर्ननामांगेन दंडवत ॥३५॥

तीन लड़ी का यज्ञोपवीत, कमंडल, बाँस का सीधा डंडा, कमल-ककड़ीके बीजोंकी माला. हिंसा से बचने को राह के जन्तुओं को हटाने के लिये या आसन सुधारने का पंजा और कुशों की मुष्ठि धारण किये हुए, श्वेत तथा श्याम वर्णवाले नवीन कमल के समान नेत्रवाले, चतुर्भुजीरूप बनाये हुए मृगचर्म तथा वल्कल पहने हुए, हाथ में पवित्री लिये हुए, साक्षात् तपोमूर्त्ति, देदीप्यमान् बिजली की नाईं और कान्तिमय, दीर्घ आकार वाले,महान् देवताओंसे पूजित और भगवान् विष्णुके अवतार रूप नर-नारायण का दर्शन करके मार्कंडेयजी ने महान् आदर पूर्वक खड़े होकर दण्डवत् प्रणाम किया ॥३३॥३४॥३५॥

स तत्संदर्शनानंदनिवृत्तात्मेंद्रियाशयः ।
हृष्टरोमाश्रुपूर्णाक्षो न सेहे तावुदीक्षितुम् ॥३६॥

उन दोनों के दर्शनों के आनन्द से मार्कण्डेय के देह. इन्द्रिय मन परम शान्त होगये, उनके रोम खड़े होगये और नेत्रों में जल भर आया कि जिस से वे भगवान् के सामने देख न सके ॥३६॥

उत्थाय प्रांजलिः प्रह्व औत्सुक्यादाश्लिषन्निव ।
नमो नम इतीशानौ बभाषे गद्गदाक्षरः ॥३७॥

फिर उन्होंने खड़े होकर, हाथ जोड़, उमङ्ग में भेंट करते हुए की नाईं नम्रता-पूर्वक गद्गद कण्ठ से केवल 'नमोनमः' ही उनसे कहा ॥३७॥

तयोरासनमादाय पादयोरवनिज्य च ।
अर्हणेनानुलेपेन धूपमाल्यैरपूजयत् ॥३८॥

उनको आसन पर बिठला कर उनके चरण पखारे और अर्घ्य, चन्दन, धूप तथा पुष्पों से उन का पूजन किया ॥३८॥

सुखमासनमासीनौ प्रसादाभिमुखौ मुनी ।
पुनरानम्य पादाभ्यां गरिष्ठाविदमब्रवीत् ॥३९॥

सुख-पूर्वक आसन पर बैठे हुए और कृपाकरने के लिये अभिमुख, परमपूज्य नर-नारायणके चरणों में फिर से प्रणाम करके मुनिने ये वचन कहे॥३९॥

मार्कंडेय उवाच

किं वर्णये तव विभो यदुदीरितोऽसुः संस्पंदते तमनु वाङ्मनइंद्रियाणि । स्पंदंति वै तनुभृतामज शर्वयोश्च स्वस्याप्यथापि भजतामसि भावबंधुः॥४०॥

मार्कण्डेय बोले–हे प्रभु ! जिनकी प्रेरणा से ब्रह्मा, महादेव. मेरे तथा प्राणी मात्रके प्राण प्रवृत्त होते हैं और फिर वाणी, मन तथा इन्द्रियाँ भी प्रवृत्त होती हैं, उन (आप) की मैं किस प्रकार से स्तुति करूँ ? हे देव ! फिर भी आप भजन करने वालों के आत्म-बन्धु हैं ॥४०॥

मूर्तीं इमे भगवतो भगवंस्त्रिलोक्याः क्षेमाय तापविरमाय च मृत्युजित्यै । नाना बिभर्ष्यवितुमन्यतनूर्यथेदं सृष्ट्वा पुनर्ग्रससि सर्वमिवोर्णनाभिः॥

जिस प्रकार आप जगत्की रक्षा करनेके लिये दूसरे अनेक अवतार लिया करते हैं, वैसेही जगत् पालनकरने, दुःख दूर करने और मोक्ष देनेके लिये आपने यह दो देह धारण किये हैं, आप मकड़ीकी नाईं इस विश्व को रचकर फिर अपने ही में लय कर लेते हैं ॥४१॥

तस्यावितुः स्थिरचरेशितुरंघ्रिमूलं यत्स्थं न कर्मगुण कालरजः स्पृशंति । यद्वै स्तुवंति निनमंति यजंत्यभीक्ष्णं ध्यायंति वेदहृदया मुनयस्तदाप्त्यै ॥

आप चराचर-पति और संरक्षकके जिन चरण कमल के आश्रय में रहने वाले पुरुष को कर्म, गुण और काल का विकार स्पर्श भी नहीं कर सकता, जिनकी प्राप्ति के लिये वेदवेत्ता मुनि प्रणाम करते हैं, पूजन करते हैं, निरन्तर स्तुति करते हैं और ध्यान करते हैं, मैं उन्हीं चरणारविन्द का भजन करता हूँ ॥ ४२ ॥

नान्यं तवांघ्र्युपनयादपवर्गमूर्तेः क्षेमं जनस्य परितो भिय ईश विद्मः । ब्रह्मा बिभेत्यलमतो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्विपरार्ध्यधिष्ण्यः कालस्य ते किमुत तत्कृत भौतिकानाम् ॥४३॥

हे ईश ! हे अपवर्ग मूर्त्ति! सब ओर से भय-भीत मनुष्यों का आपके चरणारविंद की प्राप्ति से अधिक मङ्गल मैं नहीं जानता, जब द्विपरार्द्ध की आयु वाले ब्रह्माजी भी तुम्हारी भ्रकुटि रूपी काल से अत्यन्त डरते हैं, तब उनके बनाये हुए प्राणी यदि डरें तो क्या आश्चर्य की बात है ? ॥४३॥

तद्वै भजाम्यृतधियस्तव पादमूलं हित्वेदमा त्मच्छदि चात्मगुरोः परस्य । देहाद्यपार्थमसदंत्य मभिज्ञमात्रं विंदेत ते तर्हि सर्वमनीषितार्थम्॥४४॥

जो पुरुष आपका भजन करताहै, उसको आप ही के द्वारा सब वांछित फल मिल जाते हैं, इस लिये मैं स्वरूप को आवरण करने वाले निष्फल, तुच्छ, नश्वर और अवास्तविक होनेपर भी स्वरूप से भिन्न न दिखाई देने वाले इस देह आदि का भजन छोड़कर सत्य ज्ञान स्वरूप, जीवके नियंता और सबसे पृथक् आपके चरणारविन्द का भजन करता हूँ ॥४४॥

सत्त्वं रजस्तम इतीश तवात्मबंधो मायामयाः स्थितिलयोदयहेतवोऽस्य । लीला धृता यदपि सत्त्वमयी प्रशांत्यै नान्ये नृणां व्यसनमोहभियश्च याभ्याम् ॥४५॥

हे आत्म-बन्धु ! हे ईश ! यद्यपि इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारण रूप सत्, रज और तम-यह तीनों गुण आपही की माया से रचे हुए हैं और गुणमय शरीर रूप लीलायें भी आपही की की हुईहैं; फिर भी उनमें से सतोगुणी शरीर की लीला ही से मनुष्यों को शान्ति प्राप्त होती है, दूसरोंसे दुःख, मोह और भय मिलताहै॥

तस्मात्त्वेह भगवन्नथ तावकानां शुक्लां तनुं स्वदयितां कुशला भजंति । यत्सात्वताः पुरुषरूप मुशंति सत्वं लोको यतोऽभयमुतात्मसुखं न चाऽन्यत् ॥४६॥

हे भगवन् ! भक्त जन सत्वगुण ही को ईश्वर रूप मानतेहैं; रजोगुण और तमोगुणको नहीं, इसी कारण चतुर पुरुष आपकी इस शुद्ध नर नारायण मूर्त्ति को भजते हैं कि जिससे मनुष्य निर्भय सुखी होकर आपके लोक को पाते हैं ॥४६॥

तस्मै नमो भगवते पुरुषाय भूम्ने विश्वाय विश्व गुरवे परदैवताय । नारायणाय ऋषये च नरोत्त माय हंसाय संयतगिरे निगमेश्वराय ॥४७॥

व्यापक पुरुष; जगद्गुरु, जगत् रूप, सर्वश्रेष्ठ, शुद्ध स्वरूप, वाणी के नियन्ता, वेदों के प्रवर्तक, भगवान् नर नारायण ऋषिको मैं प्रणाम करताहूँ॥

यं वै न वेद वितथाक्षपथैर्भ्रमद्धीः संतं स्वखेष्व सुषु हृद्यपि दृक्पथेषु । तन्माययाऽऽवृतमतिः स उ एव साक्षादाद्यस्तवाऽखिलगुरोरुपसाद्य वेदम् ४८॥

जिनकी मायासे आवृत बुद्धिवाला तथा उसी के कारण व्यर्थके इन्द्रिय सम्बन्धी मार्गोंमें भटकने वाली मति वाला यह पुरुष अपनी इन्द्रियों, प्राण, हृदय और विषयों में भी निरन्तर विराजने वाले आपको नहीं जानता,उन आपको मैं प्रणाम करताहूँ॥

यद्दर्शनं निगम आत्मरहःप्रकाशं मुह्यंति यत्र कवयोऽजपरायतंतः । तंसर्ववादविषयप्रतिरूपशीलं वंदे महापुरुषमात्मनि गूढबोधम् ॥४९॥

आपके रहस्य को प्रकाशित करने वाला आप का दर्शन (ज्ञान) वेद ही से होता है, इसलिये सांख्य योग आदि उपायों से आपके जानने की चेष्टा करने वाले ब्रह्मा आदि विद्वान् भी मोहितहो जाते हैं, क्योंकि देह आदि के अभिनिवेश होनेसे आपका स्वभाव निर्गुण या सगुण दोनों प्रकार के वचनों का अनुकूल कहा जा सकताहै, मैं ऐसे गूढ़ तत्व ज्ञान मय स्वरूपवान् महा पुरुष ! आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भागवते द्वादशस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नौवां अध्याय

(मार्कण्डेय जी को प्रलय में बाल भगवान् का दर्शन होना)

सूत उवाच

संस्तुतो भगवानित्थं मार्कंडेयेन धीमता ।
नारायणो नरसखः प्रीत आह भृगूद्वहम् ॥ १ ॥

सूतजी बोले-जब बुद्धिमान् मार्कंडेयजीने नर के मित्र नारायण भगवान् की इस प्रकार स्तुति की, तब नारायण ने प्रसन्न होकर उनसे कहा ॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीभगवानुवाच

भो भो ब्रह्मर्षिवर्योऽसि सिद्ध आत्म समाधिना।
मयि भक्त्यानपायिन्या तपःस्वाध्यायसंयमैः॥ २॥

श्रीभगवान् बोले-हे ब्रह्मर्षियों में श्रेष्ठ ! तुम अपने चित्त की एकाग्रता, मेरी निष्काम भक्ति, तप, स्वाध्याय और जितेंद्रियता के कारण सिद्ध हुएहो॥

वयं ते परितुष्टाः स्म तद्बृहद्व्रतचर्यया।
वरं प्रतीच्छ भद्रं ते वरदेशादभीप्सितम् ॥ ३॥

तुम्हारे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण करने से मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ और मैं वर देने वालों का स्वामी तुम से वर माँगने के लिये कहता हूँ, इस लिये इच्छानुसार वर माँगो ॥ ३॥

ऋषिरुवाच

जितं ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराच्युत।
वरेणैतावताऽलं नो यद्भवान्सम दृश्यत ॥ ४॥

मार्कण्डेयजी बोले-हे देवदेवेश! हे शरणागतों का दुःख नाश करने वाले ! हे अच्युत ! आपने जो मुझे दर्शन दिया है, यही सबसे बड़ा वर है ॥४॥

गृहीत्वाऽज्ञादयो यस्य श्रीमत्पादाब्जदर्शनम्।
मनसा योगपक्वेन स भवान्मेऽक्षगोचरः ॥ ५॥

योगबल द्वारा दृढ़ किये हुए मनसे ब्रह्माआदि देवता जिनके लक्ष्मीवान् चरणारविंद का दर्शन पातेहैं, वही आप मेरे नेत्रोंके आगे साक्षात् पधारेहैं॥

अथाप्यंबुजपत्राक्ष पुण्यश्लोकशिखामणे।
द्रक्ष्ये मायां यया लोकः सपालो वेद सद्भिदाम् ६॥

फिर भी हे कमलदल लोचन ! हे पवित्रकीर्त्ति वालोंमें शिरोमणि ! मैं आपकी उस माया को देखना चाहताहूँ कि जिसके द्वारा लोकों सहित लोकपाल मोहित हो जाते हैं ॥६॥

सूत उवाच

इतोऽतोऽर्चितः काममृषिणा भगवान् मुने।
तथेति स स्मयन्प्रागाद्बदर्याश्रममीश्वरः ॥ ७॥

सूतजी बोले-हे शौनक ! मार्कण्डेयजी इस प्रकार स्तुति सुनकर भगवान् नर नारायण ने उन से एवमस्तु कहा और उनका पूजन स्वीकार कर के वे मुसकाते हुए बद्रिकाश्रमको पधारे ॥७॥

तमेव चिंतयन्नर्थमृषिः स्वाश्रम एव सः।
वसन्नग्न्यर्कसोमांबुभूवायुवियदात्मसु ॥ ८॥

ध्यायन्सर्वत्र च हरिं भावद्रव्यैरपूजयत्।
क्वचित्पूजां विसस्मार प्रेमप्रसरसंप्लुतः ॥ ९॥

तत्पश्चात् मार्कंडेयजी उसी का चिन्तवन करते हुए अग्नि, सूर्य, जल, चन्द्रमा, पृथ्वी, आकाश और आत्मा में भगवान् का ध्यान धरते हुए अपने आश्रममें रहकर सर्वत्र मानसिक पदार्थों द्वारा प्रभु का पूजन करनेलगे, कभी-कभी तो भक्तिके आवेश में वे पूजा करना भी भूल जाते थे॥ ८॥९॥

तस्यैकदा भृगुश्रेष्ठ पुष्पभद्रातटे मुने।
उपासीनस्य संध्यायां ब्रह्मन् वायुरभून्महान्॥१०॥

श्रीसूतजी बोले-हे भृगुवंशियों में श्रेष्ठ ! हे मुनि ! हे ब्रह्मन् ! एकदिन सन्ध्याके समय वे मुनि पुष्पभद्रा नदी के किनारे बैठे हुए थे, उनके सामने बड़े वेग से वायु चलने लगी ॥१०॥

तं चंडशब्दं समुदीरयंतं बलाहका अन्वभवन्कराला:। अक्षस्थविष्ठा मुमुचुस्तडिद्भिः स्वनंत उच्चैरभिवर्षधाराः ॥११॥

उस महा वेगमयी भयङ्कर और प्रचंड शब्द करती हुई इस पवन के पीछे बिजलियों सहित घोर मेघ प्रकट होकर अत्यन्त गर्व के साथ रथके पहियों के समान जल की मोटी २ धारायें सब ओर से बरसाने लगे ॥११॥

ततो व्यदृश्यंत चतुःसमुद्राः समंततःक्ष्मातलमाग्रसंतः। समीरवेगोर्मिभिरुग्रनक्रमहाभयावर्त्तगभीरघोषाः ॥१२॥

फिर वायु वेग के कारण तरङ्गों से पृथ्वी को डुबाते हुए और भयङ्कर भँवर, उग्र मगर तथा गंभीर शब्द वाले चारों समुद्र चारों ओरसे दीखने लगे ॥

अंतर्बहिश्चाद्रिरतिद्युभिः खरैः शतह्रदाभीरुपतापितं जगत्। चतुर्विधं वीक्ष्य सहात्मना मुनिर्जलाप्लुतां क्ष्मां विमनाः समत्रसत् ॥१३॥

अपने सहित चार प्रकार के जगत् को जल, घोर बिजलियों तथा पवनोंसे भीतर-बाहर पीड़ित देखकर और पृथ्वी को डूबता हुआ देखकर मुनि घबरा कर अत्यन्त भयभीत हुए ॥१३॥

तस्यैवमुद्वीक्षत ऊर्मिभीषणः प्रभंजनाघूर्णितवार्महार्णवः। आपूर्यमाणो वरषद्भिरंबुदैः क्ष्मामप्यधाद् द्वीपवर्षाद्रिभिः समम् ॥१४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकार उन मुनि के देखते-देखते ही तरंगों के कारण महा भयंकर, वायु से घूमते हुए जल वाला और बरसते हुए मेघों से पूर्ण होता हुआ महा समुद्र-द्वीप, खंड और पर्वतों सहित समस्त पृथ्वी पर फैल गया ॥१४॥

सक्ष्मांतरिक्षं सदिवं सभागणं त्रैलोक्यमासीत्स हदिग्भिराप्लुतम् । स एक एवोर्वरितो महामुनिर्ब भ्राम विक्षिप्य जटा जडांधवत् ॥१५॥

पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग के निवासी, ज्योतिर्गण तथा दिशाओं सहित तीनोंलोक जलमें डूब गये, उस समय अकेले महामुनि मार्कण्डेय ही जटाओं को खोले और जड़ तथा अंधेके नाईं जल में भ्रमण करने लगे ।१५॥

क्षुत्तृट्परीतो मकरैस्तिमिंगिलैरुपद्रुतो वीचिन भस्वता हतः । तमस्यपारे पतितो भ्रमन्दिशो न वेद खं गां च परिश्रमेषितः ॥१६॥

भूख-प्यास से पीड़ित, मगर और तिमिंगिलों से भयभीत, तरंगों और वायु के झकोरों से ठुकराये हुए अपार अन्धकार में पड़े हुए भटकते हुए और थके हुए मुनि को आकाश, दिशा तथा पृथ्वी का भान न रहा ॥१६॥

क्वचिद्गतो महावर्त्ते तरंगैस्ताडितः क्वचित् । यादोभिर्भक्ष्यते क्वापि स्वयमन्योऽन्यघातिभिः१७॥

कहीं तो वे महा भँवरमें गिरते थे, कहीं तरंगों की ठोकर खाते थे और कहीं आपस में लड़ते हुए जल-जन्तु उनका भक्षण करते थे ॥१७॥

क्वचिच्छोकं क्वचिन्मोहं क्वचिद्दुःखं सुखं भयम् । क्वचिन्मृत्युमवाप्नोति व्याध्यादिभिरुतार्दितः॥१८॥

वे कहीं शोक, कहीं मोह, कहीं दुःख, कहीं सुख, कहीं भय और कहीं मृत्यु को पाते थे और कहीं रोग आदि से पीड़ित होते थे ॥१८॥

अयुतायुतवर्षाणां सहस्राणि शतानि च । व्यतीयुर्भ्रमतस्तस्मिन्विष्णुमायावृतात्मनः ॥१९॥

भगवान् की माया से घिरे हुए चित्तवाले उन मुनिजी को जल में भटकते-भटकते एक शंख वर्ष बीत गये ॥ १९ ॥

स कदाचिद्भ्रमंस्तस्मिन् पृथिव्याः ककुद द्विजः । न्यग्रोधपोतं ददृशे फलपल्लवशोभितम् ॥२०॥

उस समुद्रमें भटकतेहुए मार्कंडेयजीने एकबार पृथ्वी के किसी टापूपर फल और पत्तोंसे शोभायमान् एक कोमल वट-वृक्ष देखा ॥२०॥

प्रागुत्तरस्यां शाखायां तस्यापि ददृशे शिशुम् । शयानं पर्णपुटके प्रसंतं प्रभया तमः ॥२१॥

उस वटकी ईशान कोण वाली शाखाके दोनेमें सोते हुए और अपनी प्रभा से अन्धकार को दूर करते हुए एक बालक को देखा ॥२१॥

महामरकतश्यामं श्रीमद्वदनपंकजम् । कंबुग्रीवं महोरस्कं सुनासं सुंदरभ्रुवम् ॥२२॥

जिसका महामरकत मणिके समान श्याम वर्ण शोभामय मुख, शंखकी भांति तीन रेखाओं युक्त कंठ, विशाल वक्षःस्थल, सुन्दर नासिका और भ्रकुटि है ॥ २२ ॥

श्वासैजदलकाभातं कंबुश्रीकर्णदाडिमम् । विद्रुमाधरभासैषच्छोणायितसुधास्मितम् ॥२३॥

श्वाँससे कंपित केशोंकी शोभा होरहीहै,भीतर की ओर शंख की भाँति बल खायेहुए सुन्दर कानों में अनार-पुष्प लगरहे हैं, मूँगे के समान अरुण होठों की कान्ति से अमृत-तुल्य स्वच्छ मुसक्यान भी कुछ अरुण सी हो रही है ॥२३॥

पद्मगर्भारुणापांगं हृद्यहासावलोकनम् । श्वासैजद्वलिसंविग्ननिम्ननाभिदलोदरम् ॥२४॥

कमल गर्भ की नाईं कटाक्ष, सुन्दर मंद मुसकान मयी चितवन 'पीपल-पत्र के समान उदर में श्वाँससे काँपती हुई रेखाओंसे चंचल और गंभीर नाभि शोभा दे रही है ॥२४ ॥

चार्वंगुलिभ्यां पाणिभ्यामुन्नीय चरणांबुजम् । मुखे निधाय विप्रेंद्रो धयंतं वीक्ष्य विस्मितः ॥२५॥

वह अपने सुन्दर अँगुलियों वाले दोनों हाथों से चरण-कमल को ऊँचा उठाकर मुख में दिये हुए चूस रहा है, उस बालक को देखकर मार्कंडेय मुनि बड़े ही आश्चर्य में हुए ॥२५॥

तदर्शनाद्वीतपरिश्रमो मुदा प्रोत्फुल्लहृत्पद्मविलोचनांबुजः । प्रहृष्टरोमाद्भुतभावशंकितः प्रष्टुं पुरस्तं प्रससार बालकम् ॥२६॥

उसके दर्शन मात्रसे श्रम दूर होजानेसे आनंद के कारण उनके कमल रूपी हृदय तथा नेत्र प्रफु-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्षित हो उठे और अद्भुत भाव देखने से रोमाञ्च होगये, तब वे मुनि परिचय पाने के लिये डरते २ उस बालक के पास गये ॥२६॥

तावच्छिशोर्वै श्वसितेन भार्गवः सोऽन्तःशरीरं मशको यथाऽविशत् । तत्राप्यदो न्यस्तमचष्ट कृत्स्नशोयथा पुराऽमुह्यदतीव विस्मितः ॥२७॥

इतने ही में वे उस बालक की श्वाँस के साथ मच्छर की भाँति उसके शरीर में जा पहुंचे और उन्होंने उसके छोटे से उदर में इस जगत्को वैसी ही स्थिति में देखा कि जिसमें यह प्रलय से पहले था, तबतो वे विस्मित तथा मोहित होगये ॥२७॥

खं रोदसीभगणानद्रिसागरान् द्वीपान्सवर्षान्क कुभः सुरासुरान् । वनानि देशान्त्सरितः पुराक रान्खेटान्व्रजानाश्रमवर्णवृत्तयः ॥२८॥

महांति भूतान्यथ भौतिकान्यसौ कालं च नाना युगकल्पकल्पनम् । यत्किंचिदन्यद्व्यवहारकारणं ददर्श विश्वं स दिवावभासितम् ॥२९॥

आकाश, स्वर्ग, पृथ्वी, नक्षत्रगण, पर्वत, समुद्र, द्वीप, खंड, दिशायें, देवता, दैत्य, वन, देश, नदियाँ पुर, खानें, कृषक-ग्राम, गोकुल, आश्रम, वर्ण तथा इन दोनों की जीविका, पञ्च महाभूत, इनसे बने हुए पदार्थ, अनेक युग तथा कल्पादि रूपी काल और अन्य भी व्यवहार के कारण उन मार्कंडेयजी ने देखे कि जो उसी बालक की सत्ता से सत्य जान पड़ते थे ॥२८॥२९॥

हिमालयं पुष्पवहां च तां नदीं निजाश्रमं तत्र ऋषीनपश्यत् । विश्वं विपश्यन्श्वसिताच्छिशोर्वै बहिर्निरस्तो न्यपतल्लयाब्धौ ॥३०॥

हिमालय, पुष्पवहा नदी, अपना आश्रम और उसमें रहने वाले ऋषि भी उन्हें दिखाई पड़े; इस प्रकार वे विश्व को देखही रहे थे कि उस बालक के श्वाँस फेंकते ही वे फिर से समुद्र के जल में आ पड़े ॥३०॥

तस्मिन् पृथिव्याः ककुदि प्ररूढं वटं च तत्पर्णपुटे शयानम् । तोकं च तत्प्रेमसुधास्मितेन निरीक्षितो ऽङ्गनिरीक्षणेन ॥३१॥

वहाँ फिर से समुद्रके टाप् में उगा हुआ वह वट-वृक्ष तथा उसके पत्ते के दोने में सोया हुआ बालक दिखाई दिया, बालकने प्रेमके कारण अमृत तुल्य मन्द मुसकान सहित कटाक्ष-पूर्वक उनकी ओर देखा ॥३१॥

अथ तं बालकं वीक्ष्य नेत्राभ्यां धिष्ठितं हृदि । अभ्ययादतिसंक्लिष्टः परिष्वक्तुमधोक्षजम् ॥३२॥

फिर अधिक क्लेश पायेहुए मार्कण्डेयजी अपने हृदय ही में विराजमान् भगवान् रूपी बालक को नेत्रों द्वारा देखकर उससे भेंट करने के लिये उस के पास गये ॥३२॥

तावत्स भगवान् साक्षाद्योगाधीशो गुहाशयः । अंतर्दध ऋषेः सद्यो यथेहानीशनिर्मिता ॥३३॥

इतने ही में वे साक्षात् योगेश्वर अन्तर्यामी भगवान् उन ऋषिके पास से इस प्रकार अंतर्धान होगयें जैसे अभागे मनुष्यका उद्यम लोप होजाताहै॥

तमन्वथ वटो ब्रह्मन् सलिलं लोकसंप्लवः । तिरोधायि क्षणादस्य स्वाश्रमे पूर्ववत्स्थितः॥३४॥

हे ब्रह्मन् ! फिर तो वट-वृक्ष, जल और जगत् का प्रलय-यह सभी क्षणमात्र में अन्तर्धान होगये और मार्कण्डेयजी अपने आश्रम में पहले की नाईं स्थित होगये ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्भागवते द्वादशस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥९॥

दसवां अध्याय

(मार्कण्डेयजी कृत महादेवजी कीस्तुति)

सूत उवाच

स एवमनुभूयेदं नारायणविनिर्मितम् । वैभवं योगमायायास्तमेव शरणं ययौ ॥ १ ॥

सूतजी बोले–नारायण भगवान् द्वारा रचे हुए योगमाया का इस प्रकार अनुभव करके, वे मुनि उन्हीं प्रभु की शरण हुए ॥१॥

मार्कण्डेय उवाच

प्रपन्नोऽस्म्यंघ्रिमूलं ते प्रपन्नाभयदं हरे । यन्माययाऽपि विबुधा मुह्यंति ज्ञानकाशया ॥ २ ॥

मार्कंडेय बोले–हे हरि ! ज्ञानरूप जान पड़ने वाली जिनकी माया से आपके भजन को छोड़कर ज्ञान का अभिमान रखनेवाले लोग मोहित होजाते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं, उन शरणागतोंको अभयदाता आपके चरणारविन्द के मैं शरण हूँ ॥२॥

सूत उवाच

त मेवं निभृतात्मानं वृषेण दिवि पर्यटन् ।
रुद्राण्या भगवान्रुद्रो ददर्श स्वगणैर्वृतः ॥ ३ ॥

सूतजी बोले-एक दिन बैल पर बैठकर पार्वती जीके साथ, गणोंसे आवृत तथा आकाशमें बिचरते हुए महादेवजी ने इन शान्त चित्त मार्कण्डेय मुनि को देखा ॥३॥

अथोमा तमृषिं वीक्ष्य गिरिशं समभाषत ।
पश्येमं भगवन् विप्रं निभृतात्मेंद्रियाशयम् ॥ ४ ॥
निभृतोदभ्रषव्रातो वातापाये यथार्णवः ।
कुर्वस्य तपसः साक्षात् संसिद्धिं सिद्धिदो भवान्५॥

श्रीपार्वतीजी ने इन मुनि को देखकर महादेव जीसे कहा कि हे भगवन्! जैसे पवन-रहित समुद्र जल-जन्तु सहित निश्चल होता है, वैसे ही निश्चल देह, इन्द्रियों और मन वाले इस ब्राह्मणको देखिए और इसकी तपस्या का फल प्रकट कीजिये क्यों कि आप सिद्धि देने वाले हैं ॥ ४ ॥॥५॥

श्रीभगवानुवाच

नैवेच्छत्याशिषः क्वापिब्रह्मर्षिर्मोक्षमप्युत ।
भक्तिं परां भगवति लब्धवान् पुरुषेऽव्यये ॥ ६ ॥

श्रीमहादेवजी बोले-यह ब्रह्मर्षि अव्यक्ति पुरुष भगवान् की परम भक्ति प्राप्त होजाने के कारण मुक्ति की भी अभिलाषा नहीं करता ॥६॥

अथाऽपि संवदिष्यामो भवान्येतेन साधुना ।
अयं हि परमो लाभो नृणां साधुसमागमः ॥ ७ ॥

फिर भी हे भवानी! इस साधु के साथ बातचीत करेंगे, क्योंकि मनुष्यों को सत्संग ही विशेष लाभदायक है ॥७॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा तमुपेयाय भगवान सात्वतां पतिः ।
ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वदेहिनाम् ॥ ८ ॥

सूतजी बोले-समस्त विद्याओं, प्राणियों और सज्जनों के पति महादेवजी इस प्रकार कहकर उन मार्कण्डेयजी के पास गये ॥८॥

तयोरागमनं साक्षादीशयोर्जगदात्मनोः ।
न वेद रुद्धधीवृत्तिरात्मानं विश्वमेव च ॥ ९ ॥

मार्कण्डेयजीको बुद्धि-वृत्ति रुक जानेके कारण अपना तथा जगत्का भी भान न होताथा, इसलिये वे साक्षात् ईश्वर और जगदात्मा शिव-पार्वतीजी के आगमन को भी न जान सके ॥९॥

भगवांस्तदभिज्ञाय गिरीशो योगमायया ।
आविशत्तद्गुहाकाशं वायुश्छिद्रमिवेश्वरः ॥१०॥

भगवान् महादेवजी इस बातको जानकर योग माया द्वारा मार्कण्डेयजी के हृदयाकाशमें इस तरह प्रविष्ट होगये जैसे वायु छेदमें प्रविष्ट होता है१०॥

आत्मन्यपि शिवं प्राप्तं तडित्पिंगजटाधरम् ।
त्र्यक्षं दशभुजं प्रांशुमुद्यंतमिव भास्करम् ॥११॥
व्याघ्रचर्माबरं शूलधनुरिष्वसिचर्मभिः ।
अक्षमालाडमरुककपालपरशुंसह ॥१२॥
बिभ्राणं सहसा भातं विचक्ष्य हृदि विस्मितः ।
किमिदं कुत एवेति समाधेर्विरतो मुनिः ॥१३॥

बिजली के समान पीली जटायें,दस भुज, तीन नेत्र, लम्बे, निकलते हुए सूर्य की भाँति तेजवान्, बाघांबर, त्रिशूल, धनुष,बाण,खड्ग,ढाल,रुद्राक्ष की माला, डमरू,कपाल और फरशे को धारण कियेहुए अक्समात् हृदय में प्रकट हुए शिवजी को देखकर विस्मय में पड़े हुए मुनि बोले कि-'यह क्या ? यह क्या ?' यों कहते २ ही उनकी समाधि भङ्ग होगई॥

नेत्रे उन्मील्य ददृशे सगणं सोमयाऽऽगतम् ।
रुद्रं त्रिलोकैकगुरुं ननाम शिरसा मुनिः ॥१४॥
तस्मै सपर्यां व्यदधात् सगणाय सहोमया ।
स्वागतासनपाद्यार्घगंधस्रग्धूपदीपकैः ॥१५॥
आह चात्मानुभावेन पूर्णकामस्य ते विभो ।
करवाम किमीशान येनेदं निर्वृतं जगत् ॥१६॥

तो उन्होंने आँख खोलकर गणों तथा पार्वतीजी सहित महादेवजीको आयाहुआ देखा, उन त्रैलोक्य गुरुको मार्कण्डेयजी ने शिरसे प्रणाम किया और स्वागत-वचन कह आसन, पाद्य, अर्घ्य, चन्दन,धूप तथा दीप से गणों एवं पार्वती सहित शिवजी का पूजन किया और कहा कि हे विभु! हे ईश! आप अपने ही प्रभाव से पूर्ण काम और जगत्के परम सुख-कारी हैं, मैं आपका क्या कार्य करने के योग्य हूँ ? ॥ १४ ॥॥१५॥१६॥

नमः शिवाय शांताय सत्त्वाय प्रमृडाय च ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रजोजुषेऽप्यघोराय नमस्तुभ्यं तमोजुषे ॥१७॥

आप निर्गुण, शान्त, सत्व के अधिष्ठाता, सबको परम सुख देने वाले और रजोगुण तथा तमोगुण के धारणकर्त्ता होकर भी अघोर हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥१७॥

सूत उवाच

एवं स्तुतः स भगवानादिदेवः सतां गतिः ।
परितुष्टः प्रसन्नात्मा प्रहसंस्तमभाषत ॥१८॥

सूतजी बोले–जब इस प्रकार मार्कण्डेयजी ने स्तुति की, तब प्रसन्न अन्तःकरण वाले, सज्जनोंके शरण दाता और आदिदेव शिवजी ने प्रसन्नता-पूर्वक मुसकाते हुए यह कहा ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच

वरं वृणीष्व नः कामं वरदेशा वयं त्रयः ।
अमोघं दर्शनं येषां मर्त्यो यद्विंदतेऽमृतम् ॥१९॥

महादेवजी बोले–हे मुनि ! मैं तीनों वर देने वालों का स्वामी हूँ, मेरे अमोघ दर्शन से मनुष्यको मोक्ष मिलतीहै, इसलिये तुमभी इच्छित वर माँगो ॥

ब्राह्मणाः साधवः शांता निःसंगा भूतवत्सलाः ।
एकांतभक्ता अस्मासु निर्वैराः समदर्शिनः ॥२०॥
सलोंका लोकपालास्तान् वंदंत्यर्चंत्युपासते ।
अहं च भगवान ब्रह्मा स्वयं च हरिरीश्वरः ॥२१॥

जो ब्राह्मण, साधु, शान्त, असंग, समस्त प्राणियों पर दया करने वाला, मेरे एकान्त भक्त, निर्वैर और समदर्शीहैं. उनको लोकों सहित लोक-पाल देवता वन्दना करके पूजते हैं और मैं, महात्मा तथा स्वयं भगवान् विष्णुभी सेवन करतेहैं॥२०।२१॥

न ते मय्यच्युतेऽजे च भिदामण्वपि चक्षते ।
नात्मनश्च जनस्यापि तद्युष्मान वयमीमहि। २२॥

आपके समान ब्राह्मण मुझमें. विष्णु में, ब्रह्मा में, अपने आत्मा और लोकों में किञ्चित भेद नहीं रखते, इसीलिये हम आपका भजन करते हैं ॥२२॥

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवाश्चेतनोज्झिताः ।
ते पुनंत्युरुकालेन यूयं दर्शनमात्रतः ॥२३॥

क्या जलमय तीर्थ नहीं है ? या प्रतिमा रूप देवता नहीं हैं; परन्तु वे कालान्तर में पवित्र करते हैं और आप लोग तो दर्शन मात्र ही से पवित्र कर देते हैं ॥२३॥

ब्राह्मणेभ्यो नमस्यामो येऽस्मद्रूपं त्रयीमयम् ।
बिभ्रत्यात्मसमाधानतपःस्वाध्यायसंयमैः ॥२४॥

जो चित्त की एकाग्रता, तप स्वाध्याय और संयम से वेदमय स्वरूप को धारण करते हैं, उन ब्राह्मणों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२४॥

श्रवणाद्दर्शनाद्वापि महापातकिनोपि वः ।
शुध्येर न्नंत्यजाश्चापि किमु संभाषणादिभिः॥२५॥

आपके श्रवण तथा दर्शन मात्रही से जब महा पापी और चांडाल भी पवित्र होजाते हैं, तब आप से संभाषण करके शुद्ध होने में क्या आश्चर्यहै ?

सूत उवाच

इति चंद्र ललामस्य धर्मगुह्योपबृंहितम् ।
वचोऽमृतायनमृषिर्नातृप्यत्कर्णयोः पिबन् ॥२६॥

सूतजी बोले-इस प्रकार चंद्रशेखर श्रीशिवजी के गूढ़ धर्ममय अमृतरूप वचनों को श्रवणों द्वारा पान करते २ मार्कण्डेयजी तृप्त न हुए ॥२६॥

स चिरं मायया विष्णोर्भ्रामितः कर्शितो भृशम् ।
शिववागमृतध्वस्तक्लेशपुंजस्तमब्रवीत् ॥२७॥

विष्णु की माया से चिरकाल तक भ्रमते हुए दुःखित मुनि श्रीशिवजी के अमृत मय वचनोंद्वारा समस्त क्लेशों से निवृत्त होकर उनसे बोले ॥२७॥

ऋषिरुवाच

अहोईश्वरचर्येयं दुर्विभाव्या शरीरिणाम् ।
यन्नमंतीशितव्यानि स्तुवंति जगदीश्वराः ॥२८॥

मार्कण्डेय बोले–अहो ! ईश्वर की लीला देह-धारियों के लिये तर्कना करने में महान् कठिन है कि जिस लीलासे आप जगदीश्वर होकरभी अपने आधीन रहने वाले प्राणियों को प्रणाम करते हैं तथा उनकी प्रशंसा करते हैं ॥ २८ ॥

धर्मं ग्राहयितुं प्रायः प्रवक्तारश्च देहिनाम् ।
आचरंत्यनुमोदंते क्रियमाणं स्तुवंति च ॥२९॥

या ज़ान पड़ता है कि धर्म का उपदेश करने वाले ईश्वर होकर भी आप लोकों को धर्माचरण कराने के लिये स्वयं धर्म का आचरण करतेहैं तथा धर्माचारियों के कार्य की प्रशंसा करते हैं ॥२९॥

नैतावता भगवतः स्वमायामयवृत्तिभिः ।
न दुष्येतानुभावस्तैर्मायिनः कुहकं यथा ॥३०॥

आप जो अपनी मायामय वृत्तियों से दूसरे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राणियों को प्रणाम आदि करते हैं, उससे आपकी महिमा कम नहीं होती, जैसे नट की क्रियाओं से उसकी महत्ता में कुछ अन्तर नहीं आता ॥३०॥

सृष्ट्वेदं मनसा विश्वमात्मनानुप्रविश्य यः ।
गुणैः कुर्वद्भिराभाति कर्तृवत्स्वयमक्रियथा ॥३१॥
तस्मै नमो भगवते त्रिगुणाय गुणात्मने ।
केवलायाद्वितीयाय गुरवे ब्रह्ममूर्तये ॥३२॥

जैसे स्वप्न का देखने वाला पुरुष मनके अनेक शरीर उत्पन्न करके उनमें प्रवेश करके इन्द्रियों से होती हुई क्रियाओं के कारण स्वयं ही कर्त्ता सा प्रतीत होता है, वैसे ही जो मनसे इस जगत् को रचकर उसमें अपने स्वरूप से प्रविष्ट होकर गुणों से होने वाली क्रियाओं के कर्त्ता से जान पड़ते हैं, उन त्रिगुण नियन्ता, शुद्ध रूप, अद्वितीय, सबके गुरु तथा ब्रह्ममूर्त्ति भगवान्को मैं प्रणाम करताहूँ ॥

कं वृणे नु परं भूमन् वरं त्वद्वरदर्शनात् ।
यद्दर्शनात् पूर्णकामः सत्यकामः पुमान् भवेत्॥३३॥

हे भूमन् ! आपके दर्शन मात्रही से मनुष्य पूर्ण काम और सत्यकाम होजाताहै, फिर वह सर्वोत्तम दर्शन पाकर उससे बढ़कर क्या वर हो सकता है ?

वरमे कं वृणेऽथापि पूर्णात्कामाभिवर्षणात् ।
भगवत्यच्युतां भक्तिं तत्परेषु तथा त्वयि ॥३४॥

फिर भी आप समस्त कामनाओं के बरसाने वाले और पूर्ण प्रभु से मैं एक वरदान माँगता हूँ कि भगवान्, भगवान् के भक्त और आपमें मेरी सदैव भक्ति बनी रहे ॥३४॥

सूत उवाच

इत्यर्चितोऽभिष्टुतश्च मुनिना सूक्तया गिरा ।
तमाह भगवान् शर्वः शर्वया चाभिनंदितः ॥३५॥

सूतजी बोले–जब मार्कण्डेयजी ने पूजन करके कोमल वाणी से इस प्रकार स्तुति की, तब महादेवजी ने पार्वतीजी की सम्मति लेकर उनसे इस प्रकार कहा ॥३५॥

कामस्तेऽयं महर्षेऽस्तु भक्तिमांस्त्वमधोक्षजे ।
आ कल्पांताद्यशः पुण्यमजरामरता तथा ॥३६॥

महादेवजी बोले–हे महर्षि ! आपकी समस्त इच्छायें पूर्ण होंगी, आप कल्पान्ततक अजर-अमर रहेंगे और आपकी कीर्त्ति परम पवित्र होगी, क्यों कि आप भगवान् के परम भक्त हैं ॥३६॥

ज्ञानं त्रैकालिकं ब्रह्मन् विज्ञानं च विरक्तिमत् ।
ब्रह्मवर्चस्विनो भूयात्पुराणाचार्यताऽस्तु ते ॥३७॥

हे ब्रह्मन् ! आप ब्रह्मतेजधारीको भूत,भविष्यत वर्त्तमान का ज्ञान, वैराग्य मय विज्ञान और प्राणों की आचार्यता प्राप्त हो ॥३७॥

सूत उवाच

एवं वरान्समुनये दत्त्वाऽऽत्मेश्वर ईश्वरः ।
देव्यै तत्कर्म कथयन्ननुभूतं पुरा मुनेः ॥३८॥

सूतजी बोले–इस प्रकार मुनिको वरदान देकर उनके चरित्र तथा पहले देखे हुए माया का वैभव पार्वतजी से कहते हुए त्रिलोचन महादेवजी ने वहाँ से प्रस्थान किया ॥३८॥

सोऽप्यवाप्तमहायोगमहिमा भार्गवोत्तमः ।
विचरत्यधुनाप्यद्धाहरावेकांततां गतः ॥३९॥

भगवान् विष्णु की एकान्त भक्ति से महायोग की महिमा को पाकर भृगुवंशियों में श्रेष्ठ वह मुनि अब तक पृथ्वी पर विचरण करते हैं ॥३९॥

अनुवर्णितमेतत्ते मार्कंडेयस्य धीमतः ।
अनुभूतं भगवतो मायावैभवमद्भुतम् ॥४०॥

बुद्धिमान मार्कण्डेयजी का पवित्र चरित्र तथा उनके देखे हुए माया के अद्भुत वैभवको मैंने आप को कह सुनाया ॥४०॥

एतत्केचिदविद्वांसो मायासंसृतिमात्मनः ।
अनाद्यावर्तितं नृणां कादाचित्कं प्रचक्षते ॥४१॥

जो लोग भगवान् की माया को नहीं जानते, वे मार्कण्डेयजी के इस माया सम्बन्धी अनुभवको अधिक समय तक का कहते हैं, परन्तु माया के जानने वाले उसे क्षणमात्रही का कहते हैं ॥४१॥

य एवमेतद्भृगुवर्य वर्णितं रथांगपाणेरनुभावभावितम् । संश्रावयेत्संशृणुयादुतावुभौ तयोर्न कर्माशयसंसृतिर्भवेत् ॥४२॥

हे शौनक ! इस प्रकार भगवान् की महिमा से भरे हुए मार्कण्डेयजी के चरित्रको जो पुरुष सुने या सुनाये उन दोनों का कर्म वासना मय संसार न रहे ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवते द्वादशस्कन्धे दसमोऽध्यायः ॥१०॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ग्यारहवां अध्याय

(पूजनार्थ महापुरुष भगवान् का वर्णन)

शौनक उवाच

अथेममर्थं पृच्छामो भवंतं बहुवित्तमम् ।
समस्ततंत्रराद्धांते भवान्भागवततत्त्ववित् ॥ १ ॥
तांत्रिकाः परिचर्यायां केवलस्य श्रियः पतेः ।
अंगोपांगायुधाकल्पं कल्पयंति यथैव यैः ॥ २ ॥

शौनकजी बोले-हे महा वैष्णव ! हे अति ज्ञानी पुरुषोंमें श्रेष्ठ ! आप समस्त तन्त्र शास्त्रके सिद्धांतों का तत्व जानते हैं, इसलिये मैं आपसे यह विषय पूछता हूँ कि केवल चैतन्य रूप भगवान् के पूजन में उनके अङ्ग, उपांग, आयुध और आभूषणों की कल्पना किस प्रकार की जाती है ? ॥१॥॥२॥

तन्नो वर्णय भद्रं ते क्रियायोगं बुभुत्सताम् ।
येन क्रियानैपुणेन मर्त्यो यायादमर्त्यताम् ॥ ३ ॥

उस पूजन-विधि को हम जानना चाहते हैं कि जिसकी दक्षता से मनुष्य को भी अमर-पद प्राप्त होजाता है, इसलिये हे सूतजी ! उसे हमसे कहिये आपका कल्याण होगा ॥३॥

सूत उवाच

नमस्कृत्वा गुरून्वक्ष्ये विभूतीर्वैष्णवीरपि ।
याः प्रोक्ता वेदतंत्राभ्यामाचार्यैः पद्मजादिभिः ४॥

श्रीसूतजी बोले-मैं गुरुजनों को प्रणाम करके भगवान् विष्णु की विराट् आदि विभूतियाँ कहूँगा कि जिनका ब्रह्मा आदि आचार्यों ने वेद और तंत्रों में वर्णन किया है ॥४॥

मायाद्यैर्नवभिस्तत्त्वैः स विकारमयो विराट् ।
निर्मितो दृश्यते यत्र सचित्के भुवनत्रयम् ॥ ५ ॥

माया आदि नव तत्वों से विकार मय विराट् स्वरूप प्रकट हुआ है, जिस चेतन रूप अधिष्ठाता ब्रह्मांड (विराट् स्वरूप) में त्रिभुवन दीख पड़ते हैं ॥

एतद्वै पौरुषं रूपं भूः पादौ द्यौः शिरो नभः ।
नाभिः सूर्योक्षिणी नासे वायुः कर्णौ दिशःप्रभोः६।

इस विराट् पुरुष का यह रूप है-पृथ्वी उसके चरण, सूर्य मस्तक, अन्तरिक्ष नाभि, सूर्य नेत्र, पवन नासिका और दिशा कान हैं ॥६॥

प्रजापतिः प्रजननमपानो मृत्युरीशितुः ।
तद्बाहवो लोकपाला मनश्चंद्रो भ्रुवौ यमः ॥ ७ ॥

प्रजापति उपस्थ, मृत्यु पायु, लोकपाल बाहु, चन्द्रमा मन, यम भृकुटि रूप है ॥७॥

लज्जोत्तरोऽधरो लोभो दंता ज्योत्स्ना स्मयो भ्रमः ।
रोमाणि भूरुहा भूम्नो मेघाः पुरुषमूर्द्धजाः॥ ८ ॥

ऊपरी होंठ लज्जा, नीचेका होंठ लोभ, चंद्रिका दाँत, भ्रान्ति हास्य, वृक्ष रोम और मेघ केश रूप माने जाते हैं ॥८॥

यावानयं वै पुरुषो यावत्या संस्थया मितः ।
तावानसावपि महापुरुषो लोकसंस्थया ॥ ९ ।

इस ब्रह्मांड रूप पुरुष की जैसी स्थिति तथा प्रमाण है, वैसी ही स्थिति और प्रमाण भगवान्की छोटी मूर्त्ति में भी मानी जाती है ॥ ९ ॥

कौस्तुभव्यपदेशेन स्वात्मज्योतिर्बिभर्त्यजः ।
तत्प्रभाव्यापिनी साक्षाच्छ्रीवत्समुरसा विभुः॥१० ।

मूर्त्तिमें जो कौस्तुभ मणि का धारण करना कहा गया है वह शुद्ध चैतन्य माना गया है, उसके वक्षःस्थल में श्रीवत्सका चिह्नहै, वह साक्षात् शुद्ध चैतन्य की प्रभा से व्याप्त जीव है ॥१०॥

स्वमायां वनमालाख्यां नानागुणमयीं दधत् ।
वाससश्छंदोमयं पीतं ब्रह्मसूत्रं त्रिवृत्स्वरम् ॥११॥

उनकी माया ही अनेक गुणमयी माया है, वेद ही पीतांबर है, तीन मात्रा वाला 'ओ३म्' ही यज्ञोपवीत है ॥११॥

बिभर्त्ति सांख्यं योगं च देवो मकरकुंडले ।
मौलिं पदं पारमेष्ठ्यं सर्वलोकाभयंकरम् ॥१२॥

सांख्य और योगरूपी दोनों मकराकृत कुंडल हैं, सब लोकों से नमस्कार किया हुआ ब्रह्मलोक मुकुटमणि रूप है ॥१२॥

अव्याकृतमनंताख्यमासनं यदधिष्ठितः ।
धर्मज्ञानादिभिर्युक्तं सत्त्वं पद्ममिहोच्यते ॥१३॥

अनेक रंगों की माया ही अनन्त आसनहै,धर्म ज्ञान सहित सतोगुण कमलासन है ॥१३॥

ओजःसहोबलयुतं मुख्यतत्त्वं गदां दधत् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपां तत्त्वं दरवरं तेजस्तत्त्वं सुदर्शनम् ॥१४॥

इन्द्रियोंकी चतुरता, मनका उत्साह और शरीर के बल सहित प्राण ही उस विराट् पुरुष की गदा है और जल का तत्व ही शंख और तेज का तत्व सुदर्शन चक्र है ॥१४॥

नभोनिभं नभस्तत्त्वमसिं चर्म तमोमयम् ।
कालरूपं धनुः शार्ङ्गं तथा कर्ममयेषुधिम् ॥१५॥

आकाश खड्ग, अन्धकार ढाल, काल शार्ङ्ग धनुष और कर्म ही तरकस है ॥१५॥

इंद्रियाणि शरानाहुराकूतीरस्य स्यंदनम् ।
तन्मात्राण्यस्याभिव्यक्तिं मुद्रयार्थक्रियात्मताम् १६

इन्द्रियाँ बाण, मन रथ, तन्मात्रा इस रथ की चाल और अभय वर देनाही इस विराट् पुरुष के मुद्रा रूप हैं ॥१६॥

मंडलं देवयजनं दीक्षा संस्कार आत्मनः ।
परिचर्या भगवत आत्मनो दुरितक्षयः ॥१७॥

सूर्य, चन्द्र और अग्नि का मंडलही उस पुरुष के पूजन स्थान रूपहैं, गुरु-दीक्षा ही पूजन करने वाले का संस्कार और भगवान् की सेवा ही आत्म पापों की नाश करने वाली है ॥१७॥

भगवान्भगशब्दार्थं लीलाकमलमुद्वहन् ।
धर्मं यशश्च भगवांश्चामरव्यजनेऽभजत् ॥१८॥

भगवान् का छः गुण सूचक नाम ही लीला कमल है, धर्म और यश दोनों चामर और व्यजन रूप हैं ॥ १८ ॥

आतपत्रं तु वैकुंठं द्विजा धामाकुतोऽभयम् ।
त्रिवृद्वेदः सुपर्णाख्यो यज्ञं वहति पूरुषम् ॥१९॥

हे द्विजो ! निर्भय धाम वैकुण्ठ ही छत्र है; ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद ही उस यज्ञ पुरुष का वाहन गरुड़ है ॥१९॥

अनपायिनी भगवती श्रीः साक्षादात्मनो हरेः ।
विष्वक्सेनस्तंत्रमूर्तिर्विदितः पार्षदाधिपः ॥२०॥

साक्षात् भगवती लक्ष्मी ही भगवान् की अनपायिनी शक्ति है, पार्षद-प्रधान विष्वक्सेन ही तंत्र-मूर्ति हैं, अणिमा आदि अष्ट सिद्धि और सुनन्द आदि भगवान् विष्णु के द्वारपाल हैं ॥२०॥

नंदादयोऽष्टौ द्वास्थाश्च तेऽणिमाद्या हरेर्गुणाः ।
वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम् ।
अनिरुद्धइति ब्रह्मन्मूर्तिव्यूहोभिधीयते ॥२१॥

हे ब्रह्मन् ! वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध-यह चार पुरुष की मूर्त्तियाँ हैं ॥२१॥

स विश्वस्तैजसः प्राज्ञस्तुरीय इति वृत्तिभिः ।
अर्थेंद्रियाशयज्ञानैर्भगवान्परिभाव्यते ॥२२॥

वे विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय रूप मानी जाती हैं, जो कि जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय अवस्थाओं तथा उनके कारण रूप विषय, मन, अज्ञान तथा तुरीय अवस्था द्वारा भगवान्का बोध होता है, यही भावना भगवत्सम्बन्धी है ॥२२॥

शृंगोपांगायुधाकल्पैर्भगवांस्तच्चतुष्टयम् ।
बिभर्ति स्म चतुर्मूर्तिर्भगवान्हरिरीश्वरः ॥२३॥

अङ्ग, उपांग, आयुध और आभूषणोंसे शोभायमान् चतुर्भुज भगवान् अपनी मूर्त्तिमें जाग्रत आदि चारों अवस्थाओं या विषय आदि समस्त ब्रह्मांड को धारण किये हैं ॥२३॥

द्विजऋषभ स एष ब्रह्मयोनिःस्वयंदृक् स्वमहिम परिपूर्णो मायया च स्वयैतत् । सृजति हरति पातीत्याख्ययाऽनावृताक्षो विवृत इव निरुक्तस्तत्परैरात्मलक्ष्यः ॥२४॥

हे द्विजोत्तम ! यद्यपि वेदों के कारण, स्वयं प्रकाश, अपने प्रभाव से ही परिपूर्ण, अपनी माया के निमित्त द्वारा उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने के लिये ब्रह्मा, विष्णु और महेश-इन अलग-अलग नामों से पुकारे जाने वाले परमात्मा एक ही रूपहैं, तथापि शास्त्रों ने उनका पृथक् २ की भाँति वर्णन किया है, इसलिये परम भक्त विद्वान उनको आत्म रूप से प्राप्त होते हैं ॥२४॥

श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग्राजन्य वंशदहनानपवर्गवीर्य । गोविंद गोपवनिताव्रज भृत्यगीत तीर्थश्रवः श्रवणमंगल पाहि भृत्यान् २५॥

हे कृष्ण ! हे अर्जुन के सखा ! हे भूमिके द्रोही राजकुलों को भस्म करनेवाले ! हे एकसा पराक्रम रखने वाले ! हे गोविन्द ! हे गोपियों के समूह नारद आदि दासों द्वारा गाये जाने वाले ! हे तीर्थ तुल्य पवित्र यश वाले ! हे श्रवण मात्र से मङ्गल करने वाले ! हे हरि ! हम दासों की संसार से रक्षा कीजिये ॥२५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

य इदं कल्य उत्थाय महापुरुषलक्षणम् ।
तच्चित्तः प्रयतो जप्त्वा ब्रह्म वेद गुहाशयम् ॥२६॥

जो पुरुष प्रातःकाल उठकर एकाग्र चित्त से महापुरुष के इन लक्षणों को अपने हृदय में धारण करके उनका ध्यान करेगा- उसे अपने हृदय में विराजमान् भगवान् का बोध हो जायगा ॥ २६ ॥

शौनक उवाच

शुको यदाह भगवान्विष्णुरातायं शृण्वते ।
सौरो गणो मासि मासि नाना वसति सप्तकः॥२७॥
तेषां नामानि कर्माणि संयुक्तानामधीश्वरैः ।
ब्रूहि नः श्रद्दधानानां व्यूहं सूर्यात्मनो हरेः ॥२८॥

शौनक बोले-शुकदेवजी ने सुनते हुए राजा परीक्षित से कहा था कि-गंधर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष राक्षस, ऋषि और देव-इन सात-सात का सूर्य से सम्बन्ध रखने वाला गण एक-एक महीने चलताहै सो इनके तथा इनके स्वामी सूर्योंके नाम तथा कर्म हमसे कहिये, क्योंकि सूर्य भी नारायणका स्वरूप हैं, इसलिये उनका व्यूह सुननेकी मुझे श्रद्धाहै२७-२८

सूत उवाच

अनाद्यविद्यया विष्णोरात्मनः सर्वदेहिनाम् ।
निर्मितो लोकतंत्रोयं लोकेषु परिवर्त्तते ॥२९॥

सूतजी बोले-प्राणीमात्र के आत्मरूप विष्णु भगवान् की आदि माया द्वारा बने हुए और लोकों की मर्यादा के संचालक यह सूर्यदेव लोकों में भ्रमण करते हैं ॥ २९॥

एक एव हि लोकानां सूर्य आत्मादिकृद्धरिः ।
सर्ववेदक्रिया मूलमृषिभिर्बहुधोदितः ॥३०॥

लोकों के आत्मा तथा रचयिता भगवान्विष्णु ही अध्यस्त रूपसे सूर्य हैं और समस्त वेदमें कही हुई क्रियाओं के मूल होने के कारण उन क्रियाओं के कर्तृवाचक नामोंसे ऋषियों द्वारा पुकारेजातेहैं॥

कालो देशः क्रिया कर्ता करणं कार्यमागमः ।
द्रव्यं फलमिति ब्रह्मन्नवधोक्तोऽजया हरिः ॥३१॥

हे ब्रह्मन् ! काल, देश, क्रिया, कर्त्ता, कारण, कार्य, मंत्र और हविष्य-यह नौ प्रकार भगवान् की माया से ही हैं-ऐसा विद्वान् पुरुष कहते हैं ॥३१॥

मध्वादिषु द्वादशसु भगवान्कालरूपधृक् ।
लोकतंत्राय चरति पृथग्द्वादशभिर्गणैः ॥३२॥

इनमें कालका स्वरूप धारण करने वाले सूर्य भगवान् ही चैत्र आदि बारह महीनों में जगत् की स्थिति रखने के लिये अपने गणोंके साथ अलग २ बारह रूप धरकर भ्रमण करते हैं ॥३२॥

धाता कृतस्थली हेतिर्वासुकी रथकृन्मुने ।
पुलस्त्यस्तुंबुरुरिति मधुमासं नयंत्यमी ॥३३॥

चैत्र में कृतस्थली अप्सरा, हेति राक्षस, वासुकि नाग, रथ कृत यक्ष, पुलस्त्य ऋषि, और तुंबुरु नामक गन्धर्व के साथ धाता नाम के सूर्य भ्रमण करते हैं ॥३३॥

अर्यमा पुलहोऽथौजाः प्रहेतिः पुंजिकस्थली ।
नारदः कच्छनीरश्च नयंत्येते स्म माधवम् ॥३४॥

हे शौनक ! वैशाख में पुंजिकस्थली अप्सरा, प्रहेति राक्षस, कच्छनीर नाग, अथौजा यक्ष पुलह ऋषि और नारद गन्धर्व के साथ अर्यमा नामक सूर्य भ्रमण करते हैं ॥३४॥

मित्रोऽत्रिः पौरुषेयोऽथ तक्षको मेनका हहाः ।
रथस्वन इति ह्येते शुक्रमासं नयंत्यमी ॥३५॥

ज्येष्ठमें मेनका अप्सरा, पौरुषेय राक्षस, तक्षक नाग, रथस्वन यक्ष, अत्रि ऋषि और हाहा नामक गंधर्वके साथ मित्र नामक सूर्य भ्रमण करतेहैं॥३५॥

वसिष्ठो वरुणो रंभा सहजन्यस्तथा हुहूः ।
शुक्रश्चित्रस्वनश्चैव शुचिमासं नयंत्यमी ॥३६॥

आषाढ़में रंभा अप्सरा, मित्रस्वन राक्षस, शुक्र नाग, सहजन्य यक्ष, वसिष्ठ ऋषि और हूहू नामक गंधर्वके साथ वरुण नामक सूर्य भ्रमण करते हैं ३६

इंद्रो विश्वावसुः श्रोता एलापत्रस्तथांगिराः ।
प्रम्लोचा राक्षसो वर्यो नभोमासं नयंत्यमी॥३७॥

श्रावणमें प्रम्लोचा अप्सरा, वर्य राक्षस, एलापत्र नाग, श्रोता राक्षस, अङ्गिरा ऋषि और विश्वावसु गंधर्वके साथ इन्द्र नामक सूर्य भ्रमण करतेहैं ॥३७॥

विवस्वानुग्रसेनश्च व्याघ्र आसारणो भृगुः ।
अनुम्लोचा शंखपालो नभस्याख्यं नयंत्यमी॥३८॥

भाद्रपदमें अनुम्लोचा अप्सरा, व्याघ्र राक्षस, शंखपाल नाग, आसारण यक्ष, भृगु ऋषि और उग्रसेन गन्धर्व के साथ विवस्वान् नामक सूर्य भ्रमण करते हैं ॥३८॥

पूषा धनंजयो वातः सुषेणः सुरुचिस्तथा ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घृताची गौतमश्चेति तपोमासं नयं त्यमी ॥३९॥

माघमें घृताची अप्सरा, वात राक्षस, धनञ्जय नाग, सुरुचि यक्ष, गौतम ऋषि और सुषेण गंधर्व के साथ पूषा नामक सूर्य भ्रमण करते हैं ॥३९॥

ऋतुवर्चा भरद्वाजः पर्जन्यः सेनजित्तथा ।
विश्व ऐरावतश्चैव तपस्याख्यं नयंत्यमी ॥४०॥

फाल्गुनमें सेनजित अप्सरा, वची राक्षस, ऐरावत नाग, ऋतुयक्ष, भरद्वाज ऋषि और विश्व गंधर्वके साथ पर्जन्य नामक सूर्य भ्रमण करते हैं ॥

अथांशुः कश्यपस्तार्क्ष्य क्रतसेनस्तथोर्वशी ।
विद्युच्छत्रुर्महाशंखः सहोमासं नयंत्यमी ॥४१॥

अगहनमें उर्वशी अप्सरा, विद्युत् शत्रु राक्षस, महाशंख नाग, तार्क्ष्ययक्ष, कश्यप ऋषि और ऋतसेन गंधर्वके साथ अंशुनामक सूर्य भ्रमण करते हैं॥

भगःस्फूर्जोरिष्टनेमिरूर्ण आयुश्च पंचमः ।
कर्कोटकः पूर्वचित्तिः पुष्य मासं नयंत्यमी ॥४२॥

पौषमासमें पूर्वचित्ति अप्सरा, स्फूर्ज राक्षस, कर्कोटक नाग, ऊर्ण यक्ष, आयु ऋषि और अरिष्ट नेमिके साथ भग नामक सूर्य भ्रमण करते हैं ॥४२॥

त्वष्टा ऋचीकतनयः कंबलश्च तिलोत्तमा ।
ब्रह्मापेतोथ शतजितद्धृराष्ट्र इषंभराः ॥४३॥

क्वाँर में तिलोत्तमा अप्सरा, ब्रह्मापेत राक्षस, कंबल नाग, शतजित् यक्ष, जमदग्नि ऋषि और धृतराष्ट्र गंधर्व के साथ त्वष्टा नामक सूर्य भ्रमण करते हैं ॥ ४३ ॥

विष्णुरश्वतरो रंभा सूर्यवर्चाश्च सत्यजित् ।
विश्वामित्रो मखापेत ऊर्जमासं नयंत्यमी ॥४४॥

कार्तिकमें रंभा अप्सरा, मखापेत राक्षस, अश्वतर नाग, सत्यजित् यक्ष, विश्वामित्र ऋषि और सूर्यवर्चा गन्धर्व के साथ विष्णु नामक सूर्य भ्रमण करते हैं ॥४४॥

एता भगवतो विष्णोरादित्यस्य विभूतयः ।
स्मरतां संध्ययोर्नृणां हरंत्यंहो दिने दिने ॥४५॥

भगवान् विष्णु मूर्त्ति श्री सूर्य नारायणकी इन विभूतियोंको जो मनुष्य दोनों संध्या कालमें स्मरण करतेहैं, उनके पापोंका प्रतिदिन क्षय होता जाताहै॥

द्वादशस्वपि मासेषु देवोऽसौ षड्भिरस्य वै ।
चरन्समंतात्तनुते परत्रेह च सन्मतिम् ॥४६॥

बारह ही महीनोंमें छः गणोंके साथ सब जगह भ्रमण करते हुए यह सूर्य नारायण लोगों को इस लोक तथा परलोकमें उत्तम बुद्धि देते हैं ॥४६॥

सामर्ग्यजुर्भिस्तल्लिंगैर्ऋषयः संस्तुवंत्यमुम् ।
गंधर्वास्तं प्रगायंति नृत्यंत्यप्सरसोऽग्रतः ॥४७॥
उन्नह्यंति रथं नागा ग्रामण्यो रथयोजकाः ।
नोदयंति रथं पृष्ठे नैर्ऋता बलशालिनः ॥४८॥

अप्सरायें सूर्य के सामने नृत्य करती हैं, बलवान राक्षस सूर्य के रथ को पीछेसे बढ़ाते हैं, नाग दृढ़ता पूर्वक उस रथ को बाँधते हैं, यक्ष जोड़तेहैं, ऋषि सूर्य की महिमा से भरे हुए ऋक्, यजुः और सामवेद के मन्त्रों से उनकी स्तुति करते हैं और सूर्य के आगे गायन करते हैं ॥४७।४८॥

वालखिल्याः सहस्राणि षष्टिर्ब्रह्मर्षयोऽमलाः ।
पुरतोभिमुखं यांति स्तुवंति स्तुतिभिर्विभुम् ॥४९॥

साठ हज़ार बालखिल्य विशुद्ध ब्रह्मर्षि सूर्य के सामने पिछले पाँव दौड़ते हुए मन्त्रों से उनकी स्तुति करते हैं, ये ऋषि प्रति महीने बही रहते हैं॥

एवं ह्यनादिनिधनो भगवान्हरिरीश्वरः ।
कल्पेकल्पे स्वमात्मानं व्यूह्य लोकानवत्यजः॥५०॥

अनादि, अनन्त, अजन्मा और ईश्वर भगवान् विष्णु प्रत्येक कल्प में इस भाँति अपने स्वरूप का विभाग करके लोकों की रक्षा करते हैं ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते द्वादशस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

बारहवां अध्याय

(भागवत का विषयानुक्रम वर्णन)

सूत उवाच

नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे ।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य धर्मान्वक्ष्ये सनातनान्॥१॥

श्रीसूतजी बोले-उत्तम धर्म को नमस्कार है, श्रेष्ठ ज्ञान देने वाले श्रीकृष्ण को नमस्कार है, अब मैं आप सब ब्राह्मणों को नमस्कार करके सनातन धर्म (विषयों की अनुक्रमणिका) कहता हूँ ॥१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एतद्वः कथितं विप्रा विष्णोश्चरितमद्भुतम् ।
भवद्भिर्यदहं पृष्टो नराणां पुरुषोचितम् ॥ २ ॥

हे ब्राह्मणो ! तुम्हारे प्रश्न के अनुसार मैंने यह मनुष्य के सुनने योग्य श्रीभगवान् विष्णु के अद्भुत चरित्र तुमसे वर्णन किये हैं ॥२॥

अत्र संकीर्तितः साक्षात्सर्व पापहरो हरिः ।
नारायणो हृषीकेशो भगवान्त्सात्वतां पतिः॥ ३ ॥

इस पुराणमें समस्त पापों के नाशक, भक्त-पालक, हृषीकेश, साक्षात् भगवान् विष्णु नारायण का भली भाँति वर्णन किया गया है ॥३॥

अत्र ब्रह्म परं गुह्यं जगतः प्रभवाप्ययम् ।
ज्ञानं च तदुपाख्यानं प्रोक्तं विज्ञानसंयुतम् ॥ ४ ॥

कि जिसमें जगत् की उत्पत्ति और प्रलय के सीमा रूप,परम गूढ़, परब्रह्म तथा परब्रह्मका प्रकाशक ज्ञान एवं साधन कहे गये हैं ॥४॥

भक्तियोगः समाख्यातो वैराग्यं च तदाश्रयम् ।
पारीक्षितमुपाख्यानं नारदाख्यान मेव च ॥ ५ ॥
प्रायोपवेशो राजर्षेर्विप्रशापात्परीक्षितः ।
शुकस्यैव च ब्रह्मर्षेः संवादश्च परीक्षितः ॥ ६ ॥

इसमें भक्तियोग तथा उसके आश्रित रहनेवाला वैराग्य कहा गयाहै, (जिसमें पहले स्कंधमें) नारद तथा परीक्षित के उपाख्यान, ब्राह्मण के शाप से परीक्षितका अन्न-जल त्यागना और ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ श्रीशुकदेवजी के साथ राजा परीक्षित का संवाद-इतने विषय कहे गये हैं ॥५॥६॥

योगधारणयोत्क्रांतिः संवादो नारदाजयोः ।
अवतारानुगीतं च सर्गः प्राधानिकोऽग्रतः ॥ ७ ॥

(दूसरे स्कंध में) योग धारणा के द्वारा श्रेष्ठ लोकों में गति प्राप्त करना, नारदजी तथा ब्रह्माजी का संवाद, अवतारों का वर्णन और महत्तत्व के क्रमानुसार विराट् की उत्पत्ति-इतने विषयों का वर्णन है ॥ ७ ॥

विदुरोद्धवसंवादः क्षत्तृमैत्रेययोस्ततः ।
पुराणसंहिताप्रश्नो महापुरुषसंस्थितिः ॥ ८ ॥
ततः प्राकृतिकः सर्गः सप्त वैकृतिकाश्च ये ।
ततो ब्रह्मांडसंभूतिर्वैराजः पुरुषो यतः ॥ ९ ॥
कालस्य स्थूलसूक्ष्मस्य गतिः पद्मसमुद्भवः ।
भुव उद्धरणेऽभोधौ हिरण्याक्षवधो यथा ॥ १० ॥
ऊर्ध्वतिर्यगवाक्सर्गो रुद्रसर्गस्तथैव च ।
अर्धनारीनर स्याथ यतः स्वायंभुवो मनुः ॥ ११ ॥
शतरूपा च या स्त्रीणामाद्या प्रकृतिरुत्तमा ।
संतानो धर्मपत्नीनां कर्दमस्य प्रजापतेः ॥ १२ ॥
अवतारो भगवतः कपिलस्य महात्मनः ।
देवहूत्याश्च संवादः कपिलेन च धीमता ॥ १३ ॥

(तीसरे स्कंध में) विदुर और उद्धवका संवाद विदुर और मैत्रेयजी का संवाद, पुराण विषयक प्रश्न, प्रलय में परमात्मा की स्थिति, प्रकृतिसे होने वाला गुणों का क्षोभ, महत्तत्वादि सात प्रकृतियों तथा विकारों की उत्पत्ति, विराट् पुरुष के निवास रूप ब्रह्मांड की उत्पत्ति, स्थूल व सूक्ष्म काल की गति, कमल की उत्पत्ति; पृथ्वी को समुद्र में से उद्धार करते समय हिरण्याक्ष का वध, वृक्ष, पशु; पक्षी और मनुष्यों की उत्पत्ति, रुद्र की उत्पत्ति और जिनके स्त्रीरूप आधे अङ्गसे स्त्रियोंमें सर्वोत्तम प्रकृतिरूप शतरूपा तथा पुरुषरूप अर्द्धाङ्गसे स्वायंभुव मनु प्रकट हुए, ऐसे ब्रह्माजी का वर्णन, धर्म की स्त्रियों की सन्तान, कर्दम प्रजापतिकी उत्पत्ति महात्मा कपिलदेवजी का अवतार और बुद्धिमान् कपिल तथा देवहूतीका संवाद कहा गयाहै।८-१३।

नवब्रह्मसमुत्पत्तिर्दक्षयज्ञविनाशनम् ।
ध्रुवस्य चरितं पश्चात्पृथोः प्राचीनबर्हिषः ॥ १४ ॥
नारदस्य च संवादस्ततः प्रैयव्रतं द्विजाः ।
नाभेस्ततोऽनुचरितमृषभस्य भरतस्य च ॥ १५ ॥
ततो द्वीप समुद्राद्रिवर्षनद्युपवर्णनम् ।
ज्योतिश्चक्रस्य संस्थानं पातालनरकस्थितिः॥ १६ ॥

(चौथे स्कंध में) मरीचि आदि नौ ब्राह्मणों की उत्पत्ति, धर्म की स्त्रियों का वंश; दक्ष-यज्ञ विध्वंस ध्रुव चरित्र, पृथु चरित्र, प्राचीन बर्हि का चरित्र, प्राचीन बर्हि और नारदजी का संवाद, इतनेविषय वर्णन किये गये हैं, (पञ्चम स्कंध में) हे ब्राह्मणो ! प्रियव्रतका आख्यान, राजा नाभिका चरित्र,ऋषभदेवजी का चरित्र तथा भरत राजा का चरित्र, द्वीप समुद्र, पर्वत, खण्ड और नदियों का वर्णन, ज्योतिश्चक्र की स्थिति, पाताल की स्थिति तथा नरक की स्थितिका वर्णन किया गया है ॥१४॥१५॥१६॥

दक्षजन्म प्रचेतोभ्यस्तत्पुत्रीणां च संततिः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यतो देवासुरनरास्तिर्यङ्नगखगादयः ॥१७॥
त्वाष्ट्रस्य जन्म निधनं पुत्रयोश्च दितेर्द्विजाः ।
दैत्येश्वरस्य चरितं प्रह्लादस्य महात्मनः ॥१८॥

(छठे स्कंध में) प्रचेताओं से दक्ष का जन्म, दक्ष की कन्याओं के वंश में देव, असुर, नर, पशु, वृक्ष और पक्षियों की उत्पत्ति, वृत्रासुर का जन्म, तथा वध-इतने विषय वर्णन किये गये हैं, (सातवें स्कंध में) दिति के दोनों पुत्रों का वृत्तान्त, दैत्य-पति, प्रह्लाद तथा श्रीनृसिंहजी का चरित्र-इतने विषय वर्णन किये हैं ॥१७॥१८॥

मन्वंतरानुचरितं गजेंद्रस्य विमोक्षणम् ।
मन्वंतरावतारश्च विष्णोर्हयशिरादयः ॥१९॥
कौर्म मात्स्यं नारसिंहं वामनं च जगत्पतेः ।
क्षीरोदमथनं तद्वदमृतार्थे दिवौकसाम् ॥२०॥

(आठवें स्कंध में) मन्वन्तरों का वर्णन, गजेन्द्र मोक्ष, अमृतके लिये देवताओं द्वारा सिंधु-विमंथन कच्छपावतार, देवासुर संग्राम, विष्णुजी के मन्वंतरों में होने वाले अवतार, वामनावतार, मत्स्यावतार और हयग्रीव आदिका वृत्तान्त वर्णन किया गया है ॥ १९॥॥ २०॥

दैवासुरं महायुद्धं राजवंशानुकीर्तनम् ।
इक्ष्वाकुजन्म तद्वंशः सुद्युम्नस्य महात्मनः ॥२१॥
इलोपाख्यानमत्रोक्तं तारोपाख्यानमेव च ।
सूर्यवंशानुकथनं शशादाद्या नृपादयः ॥२२॥
सौकन्यं चाथ शर्यातेःककुत्स्थस्य च धीमतः ।
खट्वांगस्य च मांधातुः सौभरेः सगरस्य च॥२३॥
रामस्य कोसलेंद्रस्य चरितं किल्बिषापहम् ।
निमेरंगपरित्यागोजनक्कानां च संभवः ॥२४॥
रामस्य भार्गवेंद्रस्य निःक्षत्रकरणं भुवः ।
ऐलस्य सोमवंशस्य ययातेर्नहुषस्य च ॥२५॥
दौष्यंतेर्भरतस्यापि शंतनोस्तत्सुतस्य च ।
ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशोनुकीर्तितः ॥२६॥
यत्रावतीर्णो भगवान् कृष्णाख्यो जगदीश्वरः ।
वसुदेवगृहे जन्म ततो वृद्धिश्च गोकुले ॥२७॥
तस्य कर्माण्यपाराणि कीर्तितान्यसुरद्विषः ।
पूतनाऽसुपयःपानं शकटोच्चाटनं शिशोः ॥२८॥
तृणावर्त्तस्य निष्पेषस्तथैव बकवत्सयोः ।
धेनुकस्य सहभ्रातुः प्रलंबस्य च संक्षयः ॥२९॥
गोपानां च परित्राणं दावाग्नेः परिसर्पतः ।
दमनं कालियस्याहेर्महाऽहेर्नदमोक्षणम् ॥३०॥
व्रतचर्यासु कन्यानां यत्र तुष्टोऽच्युतो व्रतैः ।
प्रसादो यज्ञपत्नीभ्यो विप्राणां चानुतापनम्॥३१॥
गोवर्द्धनोद्धारणंच शक्रस्य सुरभेरथ ।
यज्ञाभिषेकः कृष्णस्य स्त्रीभिः क्रीडा च रात्रिषु३२॥
शंखचूडस्य दुर्बुद्धेर्वधोऽरिष्टस्य केशिनः ।
अक्रूराममनं पश्चात्प्रस्थानं रामकृष्णयोः ॥३३॥
व्रजस्त्रीणां विलापश्च मथुरालोकनं ततः ।
गजमुष्टिकचाणूरकंसादीनां च यो वधः ॥३४॥
मृतस्यानयनं सूनोः पुनः सांदीपनेर्गुरोः ।
मथुरायां निवसता यदुचक्रस्य यत्प्रियम् ॥३५॥
कृतमुद्धवरामाभ्यां युतेन हरिणा द्विजाः ।
जरासंधसमानीतसैन्यस्य बहुशो वधः ।
घातनं यवनेंद्रस्य कुशस्थल्या निवेशनम् ॥३६॥
आदानं पारिजातस्य सुधर्मायाः सुरालयात् ।
रुक्मिण्या हरणं युद्धे प्रमथ्य द्विषतो हरेः॥३७॥
हरस्य जृंभणं युद्धे बाणस्य भुजकृंतनम् ।
प्राग्ज्योतिषपतिं हत्वा कन्यानां हरणं च यत्३८॥
चैद्यपौंड्रकशाल्वानां दंतवक्रस्य दुर्मतेः ।
शंबरो द्विविदः पीठो मुरः पंचजनादयः ॥३९॥
माहात्म्यं च वधस्तेषां वाराणस्याश्च दाहनम् ।
भारावतरणं भूमेर्निमित्तीकृत्य पांडवान् ॥४०॥

(नवें स्कंध में) राजाओंका वंश, इक्ष्वाकु जन्म, इक्ष्वाकु-वंश, महात्मा सुद्युम्न का चरित्र, इला का आख्यान, सूर्य-वंश, शशाद राजाओं का वृत्तान्त, सुकन्या का वृत्तान्त, शर्यातिका वृत्तान्त, ककुत्स्थ का वृत्तान्त, राजा खट्वाङ्ग का चरित्र, मांधाता का चरित्र, सौभरिका चरित्र, सगर-चरित्र, कौशल नरेश श्रीरामचन्द्रजीका पार-नाशक वृत्तान्त, निमि राजा का देह-त्याग, जनक राजाओं की उत्पत्ति, तारा का उपाख्यान, भृगु-वंशियों में श्रेष्ठ परशुराम जी के द्वारा पृथ्वीका क्षत्रिय-हीन करनेका वृत्तांत, चन्द्रवंशी राजा पुरूरवा का चरित्र, नहुष तथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ययाति का चरित्र, दुष्यन्त के पुत्र भरत, शन्तनु और शन्तनु के पुत्रका चरित्र, ययातिके ज्येष्ठ पुत्र का वंश कि जिसमें जगदीश्वर श्रीकृष्ण भगवान् ने अवतार लिया था–इतने विषयों को कहा गया है, (दशम स्कंध में) वसुदेव गृह में श्रीकृष्ण-जन्म, गोकुल में उनका पालन, भगवान् का अनन्त कर्म द्वारा पूतना के प्राणों सहित दूध का पीना, बाल भगवान् की लात से छकड़े का उलटना, तृणावर्त, बकासुर, वत्सासुर, धेनुकासुर तथा उसके मित्रों और प्रलम्बासुर का बध, घेरते आते हुए दावाग्नि से ग्वालबालों की रक्षा, कालियदमन, अजगर से नन्दरायजी का छुड़ाना, कन्याओं द्वारा किया हुआ व्रत उसके प्रभाव से भगवान् का कृपा करना, ब्राह्मणों की स्त्रियों पर कृपा करना, ब्राह्मणों का पश्चाताप, गोवर्द्धन धारण करना, इन्द्र तथा कामधेनु द्वारा श्रीकृष्ण पूजन तथा अभिषेक, रात में स्त्रियोंके साथ रास-क्रीड़ा, दुर्बुद्धि शंखचूड़, अरिष्टासुर और केशी का बध, अक्रूर-आगमन, श्रीकृष्ण तथा बलरामजी का मथुरा गमन, गोपियों का विलाप, मथुरा-दर्शन, कुवलयापीड़ हाथी, चाणूर, मुष्टिक आदि तथा कंसवध, सांदीपन गुरुके मृतक पुत्र का लौटालाना, उद्धव तथा बलरामजी के साथ मथुरा में रहते हुए श्रीकृष्ण का किया हुआ यादवों का हित, जरासंध की लाई हुई सेना का बार-बार बध, कालयवन का संहार, द्वारका को बसाना, स्वर्ग से पारिजात तथा सुधर्मा सभाका लाना, युद्ध में शत्रु-दल मर्दन करके श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणीका हरण, युद्ध में महादेवजी को जंभाई आना, बाणासुर की भुजाओं का छेदना, प्राग्ज्योतिष नामक नगर के राजा भौमासुर को मार कर कन्याओं का हरण, शिशुपाल, पौंड्रक, शाल्व, दुर्बुद्धि दन्तवक्र, शंबरासुर, द्विविद, पीठकी, मुर और पंचजनआदि का बध, दैत्यों का प्रभाव, काशी-दाह और पांडवों द्वारा भूमि का भार उतारना–इतने विषय वर्णन किये गये हैं ॥ २१—४० ॥

विप्रशापापदेशेन संहारः स्वकुलस्य च ।
उद्धवस्य च संवादो वासुदेवस्य चाद्भुतः ॥४१॥
यत्रात्मविद्या ह्यखिला प्रोक्ताधर्मविनिर्णयः ।
ततो मर्त्यपरित्याग आत्मयोगानुभावतः ॥४२॥

(ग्यारहवें स्कंध में) ब्राह्मणों के शाप के बहाने से अपने कुल का संहार, उद्धव तथा श्रीकृष्ण का अद्भुत संवाद, सम्पूर्ण आत्म-विद्या तथा धर्म का निर्णय और अपने योगद्वारा श्रीकृष्णका देह-त्याग इतने विषयों का वर्णन किया गया है ॥४१॥४२॥

युगलक्षणवृत्तिश्च कलौ नृणामुपप्लवः ।
चतुर्विधश्च प्रलय उत्पत्तिस्त्रिविधा तथा ॥४३॥
देहत्यागश्च राजर्षेर्विष्णुरातस्य धीमतः ।
शाखाप्रणयनमृषेर्मार्कंडेयस्य सत्कथा ॥४४॥

(बारहवें स्कंधमें) युगोंके लक्षण और वृत्तियाँ कलियुग में मनुष्यों की दुर्गति, चार प्रकार का प्रलय, प्राकृतिक, नैमित्तिक तथा दैनिक त्रिविध उत्पत्ति, बुद्धिमान् राजर्षि परीक्षित का देह-त्याग, वेदव्यासजी का किया हुआ वेद की शाखाओं का विस्तार, मार्कण्डेयजी की पवित्र कथा, पूजन में श्रीभगवान् के अङ्ग आदि की कल्पना और जगदात्मा बारह सूर्यों का व्यूह, इतने विषय वर्णन किये गये हैं ॥४३॥४४॥

महापुरुषविन्यासः सूर्यस्य जगदात्मनः ।
इति चोक्तं द्विज श्रेष्ठा यत्पृष्टोहमिहास्मि वः ।
लीलावतारकर्माणि कीर्तितानीह सर्वशः ॥४५॥

हे द्विजोत्तमो ! इस प्रसंग में तुमने मुझसे जो कुछ पूछा उसका उत्तर मैं देचुका हूँ, इस भागवत पुराण में भगवान् के अवतार सम्बन्धी लीला को गाया गयाहै ॥ ४५ ॥

पतितः स्खलितश्चार्तःक्षुत्त्वा वा विवशो ब्रुवन् ।
हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात् ॥४६॥

गिरते, फिसलते, दुःख के समय, छींकते या विवशता के समय में जो पुरुष उच्च स्वर से श्री भगवान् का नाम उच्चारण करे, वह सब पापों से छूट जाता है ॥४६॥

संकीर्त्यमानो भगवाननंतः श्रुतानुभावोव्यसनं हिपुंसाम् । प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवाऽतिवातः ॥४७॥

कीर्त्तन करने या भगवान् की महिमा सुनने से वे अनन्त प्रभु पुरुषों के मनमें प्रवेश करके इस प्रकार सब दुःखों को दूर कर देते हैं, जैसे सूर्य अन्धकार को या प्रचंड वायु बादलों को छिन्न-भिन्न कर देता है ॥४७॥

मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा न कथ्यते यद्भगवानधोऽक्षजः । तदेव सत्यं तदु हैव मंगलं तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ॥४८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिस वाणी से भगवान् विष्णु का कीर्त्तन न किया जाय, उसे मिथ्या विषय वाली दुष्टा और बुरी समझनी चाहिये, प्रत्युत जो वाणी श्रीहरि का कीर्त्तन करती है, वह सत्य, मंगल-रूपिणी और पवित्र है ॥४८॥

त देव रम्यं रुचिरं नवं नवं तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् । तदेव शोकार्णवशोषणंनृणां यदुत्तम श्लोकयशोऽनुगीयते ॥४९॥

जिस वाणी से उत्तम यश वाले भगवान् की कीर्त्ति वर्णन कीजाय, वही वाणी मनके लिये उत्सव रूप रमणीक शोक-सिन्धु को सोखने वाली और सदैव नई की भाँति देवको प्रिय लगने वाली है ॥

न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् । तद्ध्वांक्षतीर्थं न तु हंससेवितं यत्राच्युतस्तत्र हि साधवोऽमलाः ॥५०॥

जो वाणी विचित्र पद-रचना कर सकती हो. परन्तु जगत् के पवित्रकर्ता श्रीहरि का यश न कहे, वह वाणी काग के समान अपवित्र पुरुषों को प्रिय लगती है, हंस के समान निर्मल ज्ञानी पुरुष उसे सेवन नहीं करते, क्योंकि वे तो भगवान् के वर्णन करने वाली वाणी से ही प्रेम करते हैं ॥५०॥

स वाग्विसर्गो जनताऽघसंप्लवो यस्मिन्प्रति श्लोकमबद्धवत्यपि । नामान्यनंतस्य यशोंकितानि यच्छृण्वंति गायंति गृणंति साधवः ॥५१॥

जो वाणी पद-रचना में सफल न हो उससेभी यदि प्रत्येक श्लोक में भगवान् के यशसे सुसज्जित अनन्त प्रभु के नामों का उच्चारण हो, तो उसी वाणी से मनुष्य के पाप नाश होजाते हैं, क्योंकि साधुजन उसी के द्वारा भगवान् के नाम कहते, सुनते या गाते हैं ॥५१॥

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरंजनम् । कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न ह्यर्पितं कर्म यदप्यनुत्तमम् ॥५२॥

भगवद्भक्ति से शून्य ब्रह्मका प्रकाशक ज्ञान भी शोभा नहीं देता, तब कर्म चाहे कितने भी अच्छे हों, परन्तु वे भगवान् को अर्पण किये बिना शोभा नहीं देते, क्योंकि वे तो सदैवही दुःखरूप हैं ॥५२॥

यशःश्रियामेव परिश्रमः परो वर्णाश्रमाचारतपः श्रुतादिषु । अविस्मृतिः श्रीधरपादपद्मयोर्गुणानुवादश्रवणादिभिर्हरेः ॥५३॥

वर्णाश्रम के आचरण, तप और वेदाध्ययन से बड़ा ही परिश्रम करने पर केवल यश और संपत्ति ही मिलती है, पर श्रीहरि के गुणों को कहने-सुनने से सदैव भगवान् श्रीकृष्ण के चरणारविन्द का स्मरण बना रहता है ॥५३॥

अविस्मृतिः कृष्णपदारविंदयोः क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति । सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम् ॥५४॥

भगवान् के चरणारविंद का स्मरण सदैव अमंगल का नाश करनेवाला, मंगलको बढ़ानेवाला है, वह अन्तःकरण को पवित्र करता है, परमात्मा में प्रेम बढ़ाता है और वैराग्य तथा विज्ञान सहित ज्ञान उत्पन्न करता है ॥५४॥

यूयं द्विजाग्र्या बतभूरिभागा यच्छश्वदात्मन्य खिलात्मभूतम् । नारायणं देवमदेवमीशमजस्रभावा भजताविवेश्य ॥५५॥

हे द्विजोत्तमो ! आप लोग परम भाग्यशालीहैं कि जो सर्वान्तर्यामी,सर्वोपास्य और सर्वोत्तम प्रभु परमेश्वर को अन्तःकरण में धारण करके अखण्ड भावसे सदैव भजते रहते हैं ॥ ५५ ॥

अहं च संस्मारित आत्मतत्त्वं श्रुतं पुरा मे परमर्षिवक्त्रात् । प्रायोपवेशे नृपतेः परीक्षितः सदस्यृषीणां महतां च शृण्वताम् ॥५६॥

जिस भगवान् के तत्व को मैंने अनशन धारण किये हुए राजा परीक्षित से महर्षियों की सभा में परम ऋषि शुकदेवजी द्वारा कहते हुए पहले सुना था,उसका आप लोगोंने आज मुझे स्मरणदिलाया ॥

एतद्वः कथितं विप्राः कथनीयोरुकर्मणः । माहात्म्यं वासुदेवस्य सर्वाशुभविनाशनम् ॥५७॥

हे विप्रो ! जिनके अनेकों कर्म वर्णन करने के योग्य हैं, ऐसे भगवान् वासुदेव का समस्त अशुभ नाशक यह माहात्म्य मैंने आपसे कहा है ॥५७॥

य एवं श्रावयेन्नित्यं यामं क्षणमनन्यधीः । श्रद्धावान्योऽनुशृणुयात्पुनात्यात्मानमेव सः॥५८॥

जो मनुष्य श्रद्धा-पूर्वक एकाग्र चित्त से इस प्रकार प्रति दिन एक पहर या एक क्षण भी भग-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वान् के चरित्रोंको सुने या सुनाये वह पुरुष अपने अन्तःकरण को साक्षात् रूपसे पवित्र करताहै॥५८॥

द्वादश्यामेकादश्यां वाशृण्वन्नायुष्यवान्भवेत्।
पठत्यनश्नन्प्रयतस्ततो भवत्यपातकी ॥५९॥

जो मनुष्य एकादशी या द्वादशी के दिन इस पुराणको सुने उसकी आयु बढ़तीहै, निराहार रहकर जो इसका पाठकरे वह निष्पाप होजाता है ॥५९॥

पुष्करे मथुरायां च द्वारवत्यां यतात्मवान्।
उपोष्य संहितामेतां पठित्वा मुच्यते भयात् ॥६०॥

पुष्कर, मथुरा या द्वारका में उपवास करके जितेन्द्रियता के साथ जो इस भागवत संहिता का पाठ करे, वह भय से छूट जाता है ॥६०॥

देवता मुनयः सिद्धाः पितरो मनवो नृपाः।
यच्छंति कामान्शृणतः शृण्वतो यत्र कीर्तनात्॥६१

देवता, मुनि, सिद्ध, पितर, मनु और राजागण इस पुराण के वक्ता तथा श्रोताके समस्त मनोरथों को श्रीभगवान् के कीर्त्तनके प्रभावसे पूरा करतेहैं॥

ऋचो यजूंषि सामानि द्विजोधीत्यानुविंदते।
मधु कुल्या घृतकुल्याः पयःकुल्याश्च तत्फलम्॥६२॥

द्विज वर्ण वालों को ऋग्वेद पढ़ने से शहदकी यजुर्वेद से घृत की और सामवेदसे दूधकी नदियाँ प्राप्त होने का जो फल मिलता है, वही फल इस भागवत के पाठ से मिल जाता है ॥६२॥

पुराणसंहितामेतामधीत्य प्रयतो द्विजाः।
प्रोक्तं भगवतो यत्तु तत्पदं परमं व्रजेत् ॥६३॥

हे विप्रो! यदि सावधानी के साथ इस पुराण संहिता को पढ़ा जाय, तो इसमें वर्णन किया हुआ भगवान् का परम पद प्राप्त हो सकताहै ॥६३॥

विप्रोऽधीत्याऽऽप्नुयात्प्रज्ञां राजन्योदधिमेखलाम्।
वैश्यो निधिपतित्वं च शूद्रः शुध्येत पातकात्६४॥

इसके पढ़ने से ब्राह्मण को ज्ञान, क्षत्रिय को समुद्र से घिरी हुई पृथ्वी का अधिकार, वैश्य को निधि और शूद्रको पापसे मुक्ति प्राप्त होती है॥६४॥

कलिमलसंहतिकालनोऽखिलेशो हरिरितरत्र न गीयते ह्यभीक्ष्णम्। इह तु पुनर्भगवानशेषमूर्तिः परिपठितोऽनुपदं कथाप्रसंगैः ॥६५॥

कलिमल-नाशक, अखिलेश्वर हरि भगवान्का दूसरे ग्रन्थों में बार-बार वर्णन नहीं है, परन्तु इस पुराण में तो कथाओं के प्रसंग-वशात् उन सर्व मूर्तिका पद-पद में गायन किया गया है ॥६५॥

तमहमजमनंतमात्मतत्त्वं जगदुदयस्थितिसंय मात्मशक्तिम्। द्युपतिभिरज शक्रशंकराद्यैर्दुरव सितस्तवमच्युतं नतोऽस्मि ॥६६॥

जिन अजन्मा, अनन्त और आत्म-तत्व अच्युत भगवान् की शक्तियाँ जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय रूप हैं और ब्रह्मा, इन्द्र तथा शिव भी जिनकी स्तुति को नहीं जानते, उनको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ६६ ॥

उपचितनवशक्तिभिः स्व आत्मन्युपरचितस्थिर जंगमालयाय। भगवत उपलब्धिमात्रधाम्ने सुर ऋषभाय नमः सनातनाय ॥६७॥

बढ़ी हुई प्रकृति आदि नौ शक्तियोंद्वारा जिन्हों ने अपने ही में स्थावर-जंगम देहों को रचा है ऐसे सर्व व्यापक, देवोत्तम, अनादि, केवल ज्ञान स्वरूप भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ॥६७॥

स्वसुखनिभृतचेतास्तद्व्युदस्तान्यभावोऽप्यजित रुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम्। व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनुं नतोऽस्मि ॥६८॥

अपने आत्म-सुख ही से पूर्ण चित्त होने के कारण अन्य पदार्थों में भाव न रखने वाले तथा अपना चित्त भगवान् की सुन्दर लीलाओं में आ कर्षित होजाने से जिन्होंने भगवान् के तत्व को प्रकाशित करने वागा यह पुराण लोकों के हितार्थ कृपा-पूर्वक प्रकट किया है, उन समस्त जगत् के दोष-नाशक श्रीशुकदेवजी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥

इति श्रीमद्भागवते द्वादशस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तेरहवां अध्याय

(उपसंहार)

सूत उवाच

यं ब्रह्मा वरुणेंद्ररुद्रमरुतः स्तुन्वंति दिव्यैःस्तवै
र्वेदैः सांगपद क्रमोपनिषदैर्गायंति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यंति यं योगिनो
यस्यांतं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः१

श्रीसूतजी बोले–जिनकी ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र और मरुत् देवता दिव्य स्तोत्रों से स्तुति करतेहैं, सांगोपांग पदक्रम उपनिषद सहित वेदों के द्वारा सामवेद के गायक जिनका गायन करते हैं, ध्यान में स्थित मोगीजन उन्हीं में लगे हुए मन से जिन का दर्शन करतेहैं और देवता तथा दैत्यों का समूह भी जिनका पार नहीं पाता, उन (परम) देव को मेरा प्रणाम है ॥१॥

पृष्ठे भ्राम्यदमंदमंदरगिरिग्रावाग्रकंडूयनान्नि
द्रालोः कमठाकृतेर्भगवतः श्वासानिलाः पांतु वः।
यत्संस्कारकलानुवर्तनवशाद्वेलानिभेनांभसां याता
यातमतंद्रितं जलनिधेर्नाद्यापि विश्राम्यति॥ २॥

पीठ पर घूमते हुए स्थूल मन्दराचलके पत्थरों की नोक से अङ्ग छिल जाने के कारण जिनको निद्रा आ रही थी और जिनकी श्वांस की पवन के संस्कार के लेश मात्र अनुवर्तन ही से समुद्र में क्षोभके बहानेसे उसका जल अबतक घटता-बढ़ता रहताहै और रुकने नहीं पाता, वे कच्छप भगवान् तुम्हारी रक्षा करें ॥२॥

पुराण संख्यासंभूतिमस्य वाच्यप्रयोजने।
दानं दानस्य माहात्म्यं पाठादेश्च निबोधत॥ ३॥

अब मैं पुराणों की संख्या, उनका समाहार, भागवत का विषय, प्रयोजन, दान तथा पाठ का माहात्म्य कहता हूँ ॥३॥

ब्राह्मं दशसहस्राणि पाद्मं पंचोनषष्टिच।
श्रीवैष्णवं त्रयोविंशच्चतुर्विंशति शैवकम्॥ ४॥
दशाष्टौ श्रीभागवतं नारदं पंचविंशतिः।
मार्कंडं नव वाह्नं तु दशपंच चतुः शतम्॥ ५॥
चतुर्दश भविष्यं स्यात्तथा पंच शतानि च।
दशाष्टौ ब्रह्मवैवर्तं लिंगमेकादशैवतु॥ ६॥
चतुर्विंशति वाराहमेकाशीतिसहस्रकम्।
स्कांदं शतं तथा चैकं वामनं दश कीर्तितम्॥ ७॥
कौर्मं सप्तदशाख्यातं मात्स्यं तत्तु चतुर्दश।
एकोनविंशत्सौपर्णं ब्रह्मांडं द्वादशैव तु॥ ८॥

ब्रह्मपुराण की श्लोक-संख्या दस हज़ार है, पद्मपुराणकी पचपन हज़ार; विष्णु पुराणकी तेईस हज़ार; शिवपुराण की चौबीस हज़ार, श्रीमद्भागवत की अठारह हज़ार, नारद पुराण की पच्चीस हज़ार, मार्कण्डेय पुराण की नौ हज़ार, अग्निपुराण की पन्द्रह हज़ार चारसौ, भविष्य पुराणकी चौदह हज़ार पाँचसौ, ब्रह्मवैवर्त पुराण की अठारह हज़ार लिंग पुराण की ग्यारह हज़ार, वराह पुराण की चौबीस हज़ार, स्कन्द पुराण की इक्कीस हज़ार एकसौ, वामन पुराण की दस हज़ार, कूर्म पुराण की सत्रह हज़ार, मत्स्य पुराण की चौदह हज़ार, गरुड़ पुराण की उन्नीस हज़ार और ब्रह्मांड पुराण की बारह हज़ार है ॥४—८॥

एवं पुराणसंदोहश्चतुर्लक्ष उदाहृतः।
तत्राष्टादशसाहस्रं श्रीभागवतमिष्यते॥ ९॥

इस प्रकार पुराणों के श्लोकों का योग चार लाख है, रामायण ऋषि द्वारा कहा हुआ काव्य और इतिहास कहलाता है ॥९॥

इदं भगवता पूर्वं ब्रह्मणे नाभिपंकजे।
स्थिताय भवभीताय कारुण्यात्संप्रकाशितम्॥१०॥

उनमें श्रीमद्भागवत की श्लोक-संख्या अठारह हज़ार है, नाभि के कमल में बैठे हुए और संसार से डरे हुए ब्रह्माजी के पास भगवान् ने कृपा करके यह श्रीमद्भागवत पहले ही प्रकाशित किया था ॥

आदिमध्यावसानेषु वैराग्याख्यानसंयुतम्।
हरिलीलाकथाव्रातामृतानंदितसत्सुरम्॥११॥

इस ग्रन्थ के आदि-अन्त-मध्य में सब जगह वैराग्य सम्बन्धी उपाख्यान हैं, यह पुराण भगवान् की लीला सम्बन्धी कथाओं के समूह रूपी अमृत द्वारा सज्जनों तथा देवताओं को आनन्द देताहै॥

सर्ववेदांतसारं यद्ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम्।
वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम्॥१२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समस्त वेदान्त की सार-भूत और ईश्वर तथा जीव की एकता से समझने योग्य अद्वितीय वस्तु (ब्रह्म) इस पुराण का विषय है और मुक्ति उसका प्रयोजन है ॥१२॥

प्रोष्ठपद्यां पौर्णमास्यां हेमसिंहसमन्वितम् ।
ददाति यो भागवतं स याति परमां गतिम्॥१३॥

जो मनुष्य भाद्रपद की पूर्णमासी के दिन स्वर्ण सिंहासन सहित भागवत ग्रन्थ का दान करे, वह परम गति को प्राप्त होता है ॥१३॥

राजंस्तावदन्यानि पुराणानि सतां गणे ।
यावद्न भागवतं नैव श्रूयतेऽमृतसागरम् ॥१४॥

जब तक यह अमृत-सिंधु रूप श्रीमद्भागवत न सुना जाय, तब तक सज्जनों के समाज में दूसरे पुराण शोभा नहीं पाते ॥१४॥

सर्ववेदांतसारं हि श्रीभागवतमिष्यते ।
तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित् ॥१५॥

जो लोग समस्त वेदान्त के सार-रूप श्रीमद्भागवत के अमृत-रस से तृप्त होचुके हैं वे दूसरे ग्रन्थों से कदापि प्रीति नहीं रखते ॥१५॥

निम्नगानां यथा गंगा देवानामच्युतो यथा ।
वैष्णवानां यथा शंभुः पुराणानामिदं तथा॥१६॥
क्षेत्राणां चैव सर्वेषां यथा काशी ह्यनुत्तमा ।
तथा पुराणव्रातानां श्रीमद्भागवतं द्विजाः ॥१७॥

जैसे नदियों में गङ्गा, देवताओं में विष्णु, वैष्णवों में शिवजी, वर्णों में ब्राह्मण और क्षेत्रों में काशी सर्वोत्तम है, वैसे ही पुराणों में श्रीमद्भागवत सर्वोत्तम है ॥१६॥१७॥

श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं
यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते । तत्र
ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं तच्छृ-
ण्वन् विपठन् विचारणपरो भक्त्याविमुच्येन्नरः॥

जिसमें परमहंसों को प्रिय लगने वाला निर्मल और श्रेष्ठ ज्ञान ही का कथन किया गयाहै, जिसमें वैष्णवों का अति प्रिय ज्ञान, वैराग्य और भक्ति सहित भगवान् के तत्व ही को प्रकाशित किया गयाहै,ऐसे श्रीमद्भागवत पुराणको जो पुरुष भक्ति पूर्वक सुने पढ़े या विचारे, वह संसार से मुक्त हो जाय ॥१८॥

कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपःपुरा
तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा ।
योगींद्राय तदात्मनाऽथ भगवद्रातायकारुण्यत
स्तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि१९

जिन्होंने कृपा-पूर्वक इस अतुल ज्ञान-दीपकरूप श्रीमद्भागवत को ब्रह्माजीके निकट प्रकाशित किया तथा ब्रह्मा रूप से नारदजी के निकट, फिर नारद रूप से वेदव्यासजी के निकट और तत्पश्चात् वेद-व्यासरूप से शुकदेवजी के निकट प्रकाशित किया एवं अन्तमें शुक रूप से परीक्षित के सामने प्रकाशित किया, उन शुद्ध, निर्मल, शोक रहित, सत्य और मोक्ष रूप परब्रह्मका हम लोग ध्यान करतेहैं॥

नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय साक्षिणे ।
य इदं कृपया कस्मै व्याचचक्षे मुमुक्षवे ॥२०॥

जिन्होंने मुक्ति के अभिलाषी ब्रह्माजी से कृपा पूर्वक इस श्रीमद्भागवत का वर्णन किया था, उन सर्वसाक्षी भगवान् वासुदेवको मैं प्रणाम करताहूँ॥

योगींद्राय नमस्तस्मै शुकाय ब्रह्मरूपिणे ।
संसारसर्पदष्टं यो विष्णुरातममूमुचत् ॥२१॥

योगिराज तथा ब्रह्मचारी श्रीशुकदेवजी को मैं प्रणाम करता हूँ कि जिन्होंने संसार-रूपी सर्प से डँसे हुए राजा परीक्षित का उद्धार किया ॥२१॥

भवे भवे यथा भक्तिः पादयोस्तव जायते ।
तथा कुरुष्व देवेश नाथस्त्वं नो यतःप्रभो ॥२२॥

हे प्रभु ! हे योगेश ! हमारे नाथ आपही हैं,इस लिये ऐसा कीजिये जिससे हमें जन्म जन्मान्तर में आपही के चरणारविंद की भक्ति प्राप्त हो ॥२२॥

नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणामो दुःखशमनस्त्वं नमामि हरिं परम् । २३॥

जिनके नाम का संकीर्त्तन तथा जिनको प्रणाम करना समस्त पाप तथा दुःख का नाशक है; उन श्रेष्ठ भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२३

इति श्रीमद्भागवते द्वादशस्कन्धे गोविन्ददास "विनीत" विरचितायां बाल-बोधनी
नाम्नी भाषा टीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

❀ श्रीमद्भागवत द्वादशस्कन्ध समाप्तः ❀

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीमद्भागवत की आरती

जय भागवत पुरान जयति जय ।
सकल सुमंगल-दान जयति जय ॥

ज्ञान, भक्ति, वैराग निरूपन, निगमागम, पुरान अभिभूषन ;
भरन विवेक, हरन भव-दूषन, आत्म-रूप प्रमान जयति जय ।
जय भागवत पुरान जयति जय ॥

जिती बार जग हरि-अवतारू, तिनकै लीला कर यह सारू ;
गाथा-रस लहि ब्रह्म-विचारू, उभय लोक-फल मान जयति जय ।
जय भागवत पुरान जयति जय ॥

चार पदारथ करतल करनी, भव-हरनी मुद-मंगल-करनी ;
सन्त-सरोरुह हृदय-विहरनी, श्रीहरि-कथा-निधान जयति जय ।
जय भागवत पुरान जयति जय ॥

त्रिभुवन पूज्य, हीय हुलसावन, जन-जिय हरन, भक्त-मन-भावन ;
हरि-पद-प्रीति-प्रतीत बढ़ावन, जन 'विनीत' हित प्रान जयति जय ।
जय भागवत पुरान जयति जय ॥

श्रीकृष्णार्पणमस्तुः-

भगवद्भक्तों का चरणारविन्दानुरागी—
गोविन्ददास "विनीत"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्री मार्कण्डेयपुराण

भाषा टीका सहित

अनुवादक—बा० वृन्दावनदास, बी० ए०, एल्-एल्० बी०

अठारह पुराणों में मार्कण्डेय पुराण अपना विशेष स्थान रखता है। प्राचीन काल में महामुनि जैमिनि को महाभारतमें कुछ शङ्काऐं हुईं। उनके निवृत्त करनेको वे ऋषि मार्कण्डेय जी के पास गये। मार्कण्डेय जी ने उन्हें प्रज्ञाचक्षु, विन्ध्याचल निवासी, सुकृश के पुत्र, चारों पक्षियों के पास शंकाऐं निवृत्त करनेके लिये भेजा। जैमिनि की वे उत्तम शङ्काऐं क्या हैं तथा उनके उत्तर स्वरूप पक्षियों ने कैसी ज्ञानयुक्त और मनोहर कथाऐं कही हैं यदि इसको जानना है तो इस पुराण को मंगाकर पढ़िये। आरम्भ से अन्त तक यह ग्रन्थ इतना मनोरंजक है कि जब तक एक कथा का प्रसङ्ग समाप्त नहीं होजाता पुस्तक छोड़ने को तबियत नहीं करती एक तरफ आचार कथन, श्राद्ध का वर्णन, नरकोंका वर्णन और योग का वर्णन आदि ज्ञान युक्त गूढ़ विषय हैं तो दूसरी ओर बीसियों ऋषियों और राजाओं की ऐसी मनोरम और सरस कथाऐं हैं कि एक बार समाप्त कर लेने पर भी पुस्तक को दुबारा पढ़ने को जी चाहता है। इस पुराण को कथाओं का भण्डार कहें तो अत्युक्ति न होगी।

ऐसा प्रतीत होता है कि आज कल के उपन्यास और कहानियां इत्यादि इन्हीं कथाओं को तोड़ मरोड़ कर गढ़े गये हैं। आइये। इन कथाओं को पढ़कर अपने धार्मिक संस्कारों को बलवान् बनाइये, साथ ही साथ इन कथाओं में आपके मनोरंजन के लिये अटूट सामग्री प्रस्तुत है।

संस्कृति श्लोकों के साथ साथ उनकी भाषा अलग अलग कालमों में समानान्तर रूप से दी गई है। भाषा सरल तथा शैली आधुनिक है। १३७ अध्यायों की ४५० सफे की सुनहरी ठप्पे व कपड़े की जिल्द सहित पुस्तक का मूल्य ४) रुपया डाक खर्च माफ।

मिलने का पता—

लाला श्यामलाल हीरालाल

श्यामकाशी प्रेस मथुरा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्री शिवमहापुराण।

अनुवादक-श्री १०८ इन्द्र ब्रह्मचारीजी महाराज

एक बार श्री गङ्गा-कालिन्दी सङ्गम, धर्मक्षेत्र, परम पावन प्रयाग में सत्यव्रत-परायण, महातेजस्वी मुनियों का एक बड़ा भारी समारोह हुआ। इसमें भगवान व्यासजी के शिष्य पौराणिकोत्तम श्री सूतजी भी पधारे। उनकी उपस्थिति का लाभ उठाकर मुनियोंने उनसे कलि-काल के प्राणियों के कल्याणार्थ शिवमहापुराण के सुनने की इच्छा की। प्रस्तुत शिव महापुराण की कथा उन्हीं श्रेष्ठ पौराणिक सूतजी के मुखारविंद से शौनकादिक ऋषियों के प्रति वर्णन की गई थी।

इसमें भगवान् शिव की महिमा का बड़ा ही उत्कृष्ट वर्णन है। तत्व पूर्ण विषयों के साथ साथ सैकड़ों मनोरंजक कथाओं से यह ग्रन्थ पूर्ण है। जिस देवता, ऋषि या राजा का चरित्र इसमें आप पढ़ना आरम्भ कीजिये उसको जबतक समाप्त न करदिया जायगा आपकी तबियत ग्रन्थ छोड़नेको न करेगी। इस १७०० पृष्ठ के ग्रन्थ में २४००० श्लोक हैं। यह ग्रन्थ दो जिल्दों में है (१) पूर्वार्द्ध और (२) उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध में (१) श्री विद्येश्वर संहिता और (२) रुद्र संहिताहैं। उत्तरार्द्ध में (३) शतरुद्र संहिता (४) कोटिरुद्र संहिता (५) उमा संहिता (६) कैलाश संहिता और (७) वायवीय संहिता हैं।

इन सब संहिताओं में भगवान् शिव सम्बन्धी अतुल तत्त्वज्ञान तथा शिवजी के सैकड़ों अवतारों की मनोहर कथाऐं वर्णित हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ दो जिल्दोंमें समाप्त हुआहै। प्रत्येक जिल्द का मूल्य ५) तथा दोनों भाग एक साथ लेने पर १०) का वी० पी० किया जावेगा। पोस्टेज माफ।

योग वाशिष्ठ भाषा ६ प्रकरण (योग विषय पर सर्वोत्तम पुस्तक २ खण्डों में) मूल्य ७)
श्रीमद्भागवत बारहों स्कन्ध तर्ज राधेश्याम में मूल्य ३)
महाभारत अठारहों पर्व तर्ज राधेश्याम में मूल्य ३)
विचार सागर टीका स्वामी निश्चलदास जी मूल्य २)
विचार सागर टीका श्री १०८ स्वामी पीताम्बरदास जी मूल्य ६)
मनुस्मृति सम्पूर्ण भाषा टीका सहित मूल्य २)

मिलने का पता—

लाला श्यामलाल हीरालाल

श्यामकाशी प्रेस मथुरा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri